॥ श्रीः ॥

चरकसंहिता।

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता।

पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासिपण्डितद्वारका-
दासात्मजाऽऽयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननराजवैद्य-
पण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-
प्रसादनी-
भाषाटीकासहिता।

तत्रादौ
द्वितीयो भागः २.

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना
मुम्बय्यां
(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन)
स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता।

संवत् १९९८, शके १८६३.



पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्याय.

॥ श्रीः ॥

अथ चरकसंहिता-

विषयाऽनुक्रमणिका ।

चिकित्सास्थान ।

१. अभयामलकीय प्रथमरसायनपाद ।

विषय.	पृष्ठांक.
...के नाम	८६६
...प्रकारकी अभेषज	"
...विध औषध	"
...ायनके गुण	८६७
...र्जीकरण गुण	"
...विध प्रयोग	८६८
...नौषधसेवननिषेध	"
...विधरसायनविधि	"
...टीनिर्माणविधि	८६९
...टी प्रवेश विधि	"
...सायनसे प्रथमशोधनका उपदेश	८७०
...ोधनद्रव्य व क्रम	"
...रीतकीके गुण	"
...सेवनका निषेध	८७१
...आमलेके गुण	"
...दोनो फलोंको अमृत कल्पत्व	"
औषधयोंकयउत्तमभूमि	८७२
ब्राह्मरसायन	"
ब्राह्म रसायनका फल	८७४
द्वितीय ब्राह्म रसायन	"
च्यवनप्राश	८७६
च्यवनप्राशके गुण	८७७
आमलकीयरसायन	८७८
हरीतक्यादिरसायनप्रथम	८७९
हरीतक्यादिरसायनद्वितीय	"

प्राणकामीयद्वितीयरसायनपाद ८८१

विषय.	पृष्ठांक.
आमलकघृतरसायन	८८३
आमलकावलेह प्रथम	८८४
आमलकावलेह द्वितीय	"
विडङ्गावलेह	८८५
आमलकावलेह तृतीय	"
नागबला रसायन	८८६
बलादिकरसायन द्रव्य	८८७
भल्लातकक्षीर	"
भल्लातकरसायन	८८८
भल्लातकतैल	८८९
भल्लातक विधान	"
भिलावेके गुण	८९०
रसायनकी उत्कृष्टता	"

करप्रचितीयनामक तृतीय-रसायन पाद । ८९१

विषय.	पृष्ठांक.
इसके गुण	८९२
केवलआमलकीयरसायन	"
लोहरसायन	८९३
ऐन्द्रिरसायन	८९४
ब्राह्मीआदिमेध्यरसायन द्रव्य	८९५
पिप्पलीरसायन	८९६
वर्द्धमान पिप्पली	"
त्रिफला रसायन	८९७
अन्य त्रिफला रसायन	"
अन्य त्रिफला रसायन	८९८
अन्य त्रिफला रसायन	"
शिलाजीत प्रयोग	"
शिलाजीतकी उत्पत्ति	८९९
सौवर्णशिलाजीत	"
शिलाजीतवीर्य	"
ताम्रोद्भव शिलाजीत	९००

विषय. पृष्ठांक.

दोष भेदसे प्रयोग ९००
शिलाजीतमें कुपथ्य ... ... "
शिलाजीतमें पथ्य ... ... "
शिलाजीतके गुण ९०१
आयुर्वेदसमुत्थानीयनामकचतुर्थ-रसायनपाद। .... "
ऋषियोंकाहिमालयगमन ... ... "
इन्द्रका रसायनउपदेश ९०२
ऐन्द्रीरसायन ९०३
द्रोणीप्रावेशिक द्रव्य रसायन ९०४
इन दिव्यरसायनोंको सेवन करनेकी योग्यता ९०६
साधारणजनोंके लिये अन्यरसायन ... "
इसके गुण ९०८
कुटी प्रवेशयोग्य मनुष्य ... ... "
कुटी प्रवेशके अयोग्य ... ... "
कुपथ्यसे उत्पन्न रोगोंमें चिकित्सा ... ९०९
रसायनके योग्य मनुष्य ... ... "
रसायनके अयोग्य ९१०
अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसा ... ... "
प्राणाचार्यके लक्षण... ... ... ९११
वैद्यको त्रिजातित्व ९१२
वैद्यके लिये कर्तव्य ... ... "
वैद्यको पुण्य ९१३
पादका उपसंहार ... ... "

. २ वाजीकरण अध्याय।

शरमूलीय प्रथम वाजीकरण पाद ९१४
स्त्रीकी प्रशंसा ... ... "
संतानार्थयोग्यस्त्रीसे गमन ९१६
संतानके विना पुरुषकी निन्दा ... ... "
संतानयुक्त पुरुषकी प्रशंसा ९१७
वृष्यगुटिका ... ... "
वाजीकरण घृत ९१८
वाजीकरणपिण्डरस... ... ... ९१९
वृष्यरस... ... ... ९२०
अन्यवृष्यरस ... ... "
वृष्य माष ... ... "
कुक्कुटमांसरस ... ... "
अण्डयोग ९२१

आसिक्तक्षीरीयद्वितीयवाजीकरणपाद. ९२२
अपत्यकारी षष्टिका... ... ... "
वृष्यपूपालिका ९२३
अपत्यकारक पेया ... ... "
वृष्यक्षीर ९२४
वृष्यघृत... ... ... "
वाजीकरणरसाला ... ... "
वृष्यदुग्धौदन ९२५
राक्षसयोग ... ... "
पादका उपसंहार ... ... "

माषपर्णनामकतृतीयवाजीकरणपाद. ९२६
वीर्यवर्द्धक दूध ... ... "
वृष्यलपसी ९२७
वृष्यक्षीर ... ... "
सिद्धदूध ... ... "
पिप्पलीयुक्तधारोष्णदूध ९२८
वृष्यपायस (खीर) ... ... "
वाजीकरण पूपालिका ... ... "
वृष्यघृत ९२९
मधूक योग ... ... "
नित्यदूधघृतके सेवनका गुण ... ... "
मित्रमण्डलीका निवास ... ... "
कामोत्पादककर्म ९३०
दर्पोत्पादक कामदेवके अस्त्र ... ... "
पादका उपसंहार ९३१

पुमान् जातबलादिकचतुर्थ वाजीकरणपाद. "
वृष्यप्रयोगविधि ९३२
वृष्यमांसगुटिका ... ... "
माहिषरसयोग ९३३
मत्स्यमांसयोग ... ... "
राक्षसी पूपालिका ... ... "
वीर्यवर्द्धक परमोत्तम पूपालिका... ... ९३४
परमवृष्ययोग ... ... "
वृष्यघृत... ... ... ९३५

विषय.	पृष्ठांक.
वीर्यवर्द्धकपरमोत्तम गुटिका	९३५
वाजीकरण उत्कारिका	,,
मधुरद्रव्योंको वृष्यत्व	९३६
द्रव्य प्रकाशकी अवस्था	,,
अवस्थाभेदसे स्त्रीसंगका निषेध ...	,,
शुक्रक्षयके कारण	९३७
कामोत्पत्ति न होनेके कारण	,,
शुक्रके स्थान और निकलनेका क्रम ...	,,
वीर्यनिकलनेके कारण	,,
फलवान वीर्यके लक्षण	९३८
वाजीकरणके लक्षण	,,
अध्यायका उपसंहार	,,

३ ज्वर चिकित्सित अध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरविषयमें अग्निवेशका प्रश्न... ...	९३९
आत्रेयजीका कथन	९४०
ज्वरके पर्यायवाचक शब्द	,,
ज्वरकी प्रवृत्ति और प्रवृत्ति	,,
महादेवके कोपसे दक्षयज्ञध्वंसका वर्णन ...	९४१
ज्वरके पूर्वरूप	९४२
ज्वरका अधिष्ठान	९४३
ज्वरका रूप	,,
ज्वरके दो भेद	,,
ज्वरके ५ भेद	,,
रसविध और अष्टविधज्वर	,,
शारीर और मानसिकज्वरके लक्षण ...	९४४
सौम्य और आग्नेयके लक्षण	,,
अंतरंगा ज्वरके लक्षण	,,
बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण	९४५
प्राकृत ज्वरके लक्षण और काल ...	,,
प्राकृत वैकृत भेद	९४६
हेतु	,,
साध्यज्वर	,,
असाध्य लक्षण	,,
संततज्वर	,,
सततकज्वरका लक्षण	९४८
इतराज्वरका लक्षण	,,
तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरलक्षण ...	९४९
इनका धातुभेदसे कथन	,,
इनके कोपमें दृष्टान्त	,,
तृतीयकज्वरके तीन प्रकार	,,
चातुर्थिकके दो प्रकार	,,
चातुर्थिक विपर्यय...	,,
विषम ज्वरोंको त्रिदोषत्व	,,
रसगतज्वरके लक्षण	९५१
रक्तगतज्वरके लक्षण	,,
मांसगतज्वरके लक्षण	,,
मेदोगतज्वरके लक्षण	,,
अस्थिगतज्वरके ल०	९५२
मज्जागतज्वरके ल०	,,
शुक्रगतज्वरके ल०—	,,
इनकी साध्याऽसाध्यता	,,
विशेषतासे ज्वरोंका वर्णन	,,
वातपित्तज्वरके ल०	९५३
वातकफज्वरके ल०	,,
पित्तकफज्वरके ल०	,,
वातपित्तोल्बण सन्निपातके ल०... ...	९५४
पित्तकफोल्बण सन्निपातके ल०... ...	,,
वातोल्बण सन्निपातके ल०	,,
पित्तोल्बण सन्निपातके ल०	,,
कफोल्बण सन्निपातके ल०	९५५
हीनवात, मध्यकफ पित्तोल्बण सन्निपातके ल०	,,
हीनवात, मध्यकफ,पित्ताधिक्य सन्निपातके ल०	,,
हीनपित्त, मध्यकफ,वाताधिक सन्निपातके ल०	,,
हीनपित्त, मध्यवात,कफाधिक सन्निपातके ल०	,,
कफहीन, वातमध्य,पित्ताधिक सन्निपातके ल०	,,
सन्निपातके ल०	९५६
इसकी असाध्यता	९५७
निजज्वरोंका निर्देश	,,
आगन्तुक ज्वरोंके चार प्रकार	,,
अभिघातज्वरके ल०	,,
अभिचार और अभिशापज्वरके ल० ...	९५८
काम, शोक और भयज्वरके ल० ...	९५९
क्रोध, भूतावेश, तथा विषसे उत्पन्नहुए ज्वरके लक्षण	,,
इन ज्वरोंमें विशेष वक्तव्य	,,
आगन्तुजज्वरोंकी भेदता	,,

विषय.	पृष्ठांक.
ज्वरोंकी संपत्ति	९६०
आमज्वरके ल०	"
निरामज्वरके लक्षण	९६१
नवज्वरमें वर्जित वस्तु	"
लंघनका निर्देश	"
लंघनके गुण	"
अधिक लंघनका दोष	९६२
तरुणज्वरमें निर्देश	"
ज्वरमें जलके नियम	"
मुस्तकादिमें शृतजल	"
ज्वरमें वमनका योग	९६३
तरुणज्वरमें वमनके दोष	"
यवागूका निर्देश और गुण ...	"
यवागूका निषेध	९६४
ज्वरमें तर्पण	"
द्राक्षादि तर्पण	"
तर्पणके अनन्तर यूष	९६५
अन्नकालमें दतधावन	"
अन्यनिर्देश	"
कैसे कषाय तरुणज्वरमें न देवे ...	९६६
ज्वरमें अन्न	"
घृतपानका समय	"
घृतका निषेध	"
मांसरस	"
ज्वरमें दूधका निर्देश	९६७
ज्वरमें विरेचनादिका निर्देश	"
बस्तिकर्मका निर्देश	"
शिरोविरेचनका निर्देश	९६८
अभ्यंगादिअन्यअनेक ज्वरनाशक चिकित्सा	"
ज्वरनाशक द्रव्य	"
ज्वरमें अन्न	"
ज्वरनाशक खटाई	९६९
ज्वरनाशक अनेक पेया	"
ज्वरमें यूष	९७०
ज्वरनाशक शाक	९७१
ज्वरमें मांस	"
ज्वरमें अन्य उपदेश	"
ज्वरनाशक अनेक कषाय	९७२
विषमज्वरनाशक पांच क्वाथ	९७
वत्सकादि क्वाथ	"
शीतकषाय	९७
संनिपातज्वर नाशकगण	"
कफपित्तज्वर नाशक	"
शट्यादिवर्ग	"
बृहत्यादिगण	९७४
ज्वरनाशक अन्यक्रम	"
ज्वरनाशक अनेकसिद्धघृतोंका वर्णन ...	"
पिप्पल्यादिघृत	९७५
वासादिघृत	"
बलादिघृत	"
ज्वरनाशकअन्यवमनादि निर्देश ...	९७६
वमनद्रव्य	"
विरेचन द्रव्य	"
ज्वरनाशक दूध	९७७
बस्तिकर्मके द्रव्य	९७८
अन्ययोग	९७९
अन्यबस्ति	"
अनुवासनबस्तियोग	"
अन्यअनुवासनयोग	९८०
अन्य उपदेश	"
चंदनादि तैल	९८१
दाहनाशक अन्ययोग	"
अत्यंतपित्तसे बढेहुए दाहज्वरका उपचार	९८२
अगरादि तैल	९८३
शीतज्वरनाशक अन्य कर्म	९८५
कुछज्वरोंमें लंघनका निषेध	९८६
अन्य ज्वरोंमें लंघनकी आवश्यकता ...	"
अल्पाग्निमें भारीपदार्थभोजनकरनेके दोष ...	"
वातज्वरमें चिकित्साक्रम	९८७
कफज्वरमें चिकित्साक्रम	"
अन्यज्वरोंमें उपदेश	"
द्वंद्वज और संनिपातजज्वरोंमें चिकित्साक्रम	९८८
वर्णगूलशोथमें उपचार	"
शाखाश्रित ज्वरका उपचार	"
जीर्णज्वरमें चिकित्सा	९८९
विषमज्वरमें निर्देश	"

विषय.	पृष्ठांक.
विषमज्वरनाशक अन्ययोग	९९०
विषमज्वरनाशक नस्य	९९१
अंजन	,,
धूप	,,
अन्ययोग	,,
दैवायत्त	९९२
पृथक् २ रसादिधातुगत ज्वरोंके यत्न ...	,,
अभिघातसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा ...	९९३
क्षतादिकोंसे उत्पन्नहुए ज्वरमें चिकित्सा ...	,,
काम, शोक, भय और क्रोधसे हुए ज्वरमें	,,
स्मृतिज्वरका यत्न	९९४
ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप	,,
समयपर ज्वरमुक्तिके लक्षण	,,
ज्वरमुक्तिके त्याज्य विषय	९९५
ज्वरमुक्तके कुपथ्य सेवनके दोष ...	,,
ज्वरमुक्त होनेपर कर्त्तव्य	९९६
पुनरागतज्वरकी चिकित्सा ...	,,
अन्ययोग	९९७
वैद्यको उपदेश	,,
अध्यायका उपसंहार	,,

४ रक्तपित्तचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
अग्निवेशका प्रश्न	९९८
पुनर्वसुजीका उत्तर...	,,
रक्तपित्तकी सम्प्राप्ति और निरुक्ति ...	,,
रक्तपित्तके अधिष्ठान	९९९
दोषभेदसे रक्तपित्तके लक्षण ...	,,
रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता	१०००
मार्गभेदसे साध्यासाध्य	,,
याप्य साध्य	१००१
साध्यरक्तपित्तके लक्षण ...	,,
उभयमार्ग गमनके कारण ...	,,
चिकित्साक्रम	,,
रक्तपित्तमें वेगोंको प्रथमही रोक देनेका उपाय	१००२
रक्तपित्तमें तृषाकी शांतिके लिये जल ..	,,
तर्पण और पेयाका निर्देश	,,
तर्पण	१००३
रक्तपित्तमें खटाई...	,,
रक्तपित्तमें अन्न	,,
रक्तपित्तमें यूष	१००३
रक्तपित्तमें शाक	,,
मांसरस	१००४
रक्तपित्तनाशक यवागुओंका वर्णन ...	,,
रक्तपित्तमें रसोंकी विशेष कल्पना ...	१००५
रक्तपित्तमें तृषानाशक योग	,,
रक्तपित्तमें अन्य उपदेश	१००६
वमन विरेचनका निर्देश ...	,,
रक्तपित्तमें विरेचकद्रव्य	१००७
वमनकारक द्रव्य	,,
अन्य उपदेश	,,
संशमनचिकित्सायोग्यरोगी	,,
रक्तपित्तनाशक औषधीप्रयोग	१००८
वातानुयायी रक्तपित्त	१०११
अधोगामीरक्तपित्तनाशक दूध... ...	,,
वासाघृत	१०१२
रक्तपित्तनाशक घृत	,,
अन्ययोग	,,
कफानुबंधीरक्तपित्तका यत्न	१०१३
शतावरीआदिघृत... ...	,,
पचपंचमूलघृत... ...	,,
दूषितरक्तको रोकनेका दोष	१०१४
नकसीरबंदकरनेकी नस्य	,,
अन्ययोग	,,
रक्तपित्तपरलेप और सेचनप्रयोग ...	१०१५
रक्तपित्तनाशकसेवनीयआचार तथा द्रव्य...	,,
अध्यायका उपसंहार	१०१६

५ गुल्मचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
गुल्मोत्पत्तिके कारण	१०१७
गुल्मके स्थानभेद	१०१८
वायुके गुल्मका हेतु	,,
वातज गुल्मके लक्षण	,,
पित्तजगुल्मका हेतु	,,
पित्तगुल्मके लक्षण...	,,
कफ गुल्मके हेतु	१०१९
कफगुल्मके लक्षण...	,,
सन्निपातज गुल्मके लक्षण	,,

विषय.	पृष्ठांक.
रक्तज गुल्मके हेतु	१०२०
चिकित्साका निर्देश	,,
वायुके गुल्ममें चिकित्साक्रम	,,
दोषानुबंध चिकित्सा क्रमसे	१०२१
पित्तके गुल्ममें चिकित्सा क्रम... ...	१०२२
गुल्ममें रक्तमोक्षण विधि	,,
अपक्व गुल्मके लक्षण	१०२३
विदह्यमान गुल्मके लक्षण	,,
सपक्व गुल्मके लक्षण	,,
अतस्थ गुल्मके लक्षण और चिकित्साक्रम	१०२४
कफगुल्मकी चिकित्सा	,,
वमनके योग्य रोगी	,,
कफके गुल्ममें अन्य उपदेश	१०२५
गुल्ममें क्षारविधि...	,,
गुल्ममें अरिष्ट	१०२६
गुल्ममें दाग देना...	,,
दाग देनेयोग्य वैद्य	,,
त्र्यूषणादिघृत	१०२७
अन्ययोग	,,
अन्य त्र्यूषणादि घृत	,,
हिंग्वादिघृत	,,
हवुषादिघृत	,,
पिप्पल्यादि घृत	१०२८
पेया	,,
हिंग्वादि चूर्ण	१०२९
गुल्ममें अन्ययोग	,,
शुण्ठ्यादिघृत	,,
अन्ययोग	१०३०
कफ तथा पित्तानुबंधी गुल्मपर योग ...	,,
लहसनका दूध	,,
अन्ययोग	१०३१
शिलाजीतका प्रयोग	,,
अन्य प्रयोग	,,
गुल्ममें स्वेदन और वस्तिकर्मका निर्देश ...	,,
गुल्मपर तैलोंका निर्देश	१०३२
गुल्मपर घृतपान	,,
नीलिन्यादिघृत	,,
वातगुल्ममें पथ्यादि	१०३३

विषय.	पृष्ठांक.
पित्तगुल्मकी चिकित्सा	१०३३
रोहिण्यादि घृत	,,
त्रायमाणादिघृत	१०३४
आमलकादि घृत	,,
द्राक्षादि घृत	,,
वासाघृत	१०३५
अन्यत्रायमाणघृत	,,
पित्तके गुल्ममें अनेक उपचार... ...	,,
कफ गुल्मकी चिकित्सा	१०३६
कफगुल्ममें स्वेदनविधि	१०३७
दशमूली घृत	,,
भल्लातकादि घृत	,,
पंचकोल घृत	१०३८
मिश्रस्नेह	,,
कफगुल्ममें विरेचन	,,
हरीतक्यादि गुड	१०३९
कफगुल्ममें वस्ति	,,
कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग	१०४०
गुल्ममें पथ्य	,,
कफगुल्मपर अन्य उपचार	,,
असाध्यगुल्मके लक्षण	१०४१
रक्तगुल्मकी चिकित्साका निर्देश ...	,,
रक्तभेदनकर्त्ता वस्ति	१०४२
प्रवर्त्तमान रुधिरसे उपचार	,,
अध्यायका उपसंहार	१०४३

६ प्रमेहचिकित्सिताऽध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
प्रमेहका निदान	१०४४
कफादि प्रमेहकी सम्प्राप्ति	,,
प्रमेहोंकी संख्या	,,
प्रमेहमें दोषदूष्योंकी संख्या	१०४५
दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि	१०४६
वातज प्रमेहका असाध्यत्व	,,
प्रमेहके पूर्वरूप	,,
स्थूल और कृश प्रमेहीकी चिकित्सा ...	१०४७
प्रमेहीके अन्य उपचार	,,
प्रमेहरोगमें पथ्य	,,
कफप्रमेहमें अन्य उपचार	१०४८
प्रमेहोंपर सामान्य प्रयोग	१०४९

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
कफप्रमेहपर दश कषाय	१०४९	कुष्ठका असाध्यत्व	१०६१
पित्तप्रमेहपर दश कषाय	"	कुष्ठोंकी दोषानुसार चिकित्सा	"
कफपित्त प्रमेहपर प्रयोग	१०५०	कुष्ठनाशक प्रयोग	१०६२
अन्य प्रयोग	१०५१	कुष्ठमें स्थापन योग	१०६३
सब प्रकारके प्रमेहोंपर क्वाथ	"	कुष्ठमें अनुवासनयोग	"
मध्वासव	"	कुष्ठमें नस्यप्रयोग	"
अन्य आसव	१०५२	अन्यक्रम	"
प्रमेहपर अन्य चिकित्सा	"	रक्तमोक्षणविधि	"
प्रमेहमें निदान परिवर्जन	१०५३	पित्तकुष्ठकी चिकित्सा	१०६४
रक्तपित्तका कोप	"	कुष्ठनाशक प्रयोग	१०६५
मधुमेह	१०५४	कुष्ठनाशक अन्य प्रयोग	"
प्रमेहका साध्यासाध्यत्व	"	कुष्ठनाशक अन्य योग	१०६६
प्रमेह पिडकाओंकी चिकित्सा	"	सुप्रकुष्ठनाशक प्रयोग	"
अध्यायका उपसंहार	"	मध्वासव	"
७ कुष्ठचिकित्सिताध्याय।		कनकबिन्दु अरिष्ट	१०६७
कुष्ठोत्पत्तिका हेतु	१०५५	श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग	"
कुष्ठके पूर्वरूप	१०५६	कुष्ठपर पथ्यापथ्य	१०६८
कुष्ठोंके नाम	"	कुष्ठपर लेप	"
कपाल कुष्ठके लक्षण	१०५७	दूसरा लेप	"
औदुम्बर कुष्ठके ल०	"	कुष्ठपर अन्य लेप	"
मण्डल कुष्ठके ल०	"	कुष्ठपर अन्य प्रयोग	१०६९
ऋष्यजिह्वकुष्ठके ल०	"	कषायादि ८ योग	१०७०
पुण्डरीक कुष्ठके ल०	"	कुष्ठपर अन्य प्रयोग	"
सिध्म कुष्ठके ल०	१०५८	अन्य प्रयोग	"
काकणक कुष्ठके ल०	"	कनेरका तैल	१०७१
एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके ल०	"	अन्य प्रयोग	"
किटिभ कुष्ठके ल०	"	अन्य तैल	"
वैपादिकके ल०	१०५९	कनकक्षीर तैल	१०७२
अलसकके ल०	"	सिध्मपर लेप	"
चर्मदलके ल०	"	अन्य तैल	१०७३
पामाके ल०	"	विपादिकाका यत्न	"
विस्फोटकके ल०	"	मण्डल कुष्ठपर लेप	"
शतारुके ल०	"	छ.लेप	"
विचर्चिकाके ल०	"	अन्य प्रयोग	१०७४
कुष्ठोंको दोषपरत्व	१०६०	अभ्यङ्ग प्रयोग	"
कुष्ठोंमें चिकित्साक्रम	"	घृतप्रयोग	१०७५
कुष्ठोंमें ज्ञातव्य	"	अन्य प्रयोग	"
वातजादि कुष्ठोंके ल०	१०६१	पटूपल घृत	१०७६

विषय.	पृष्ठांक.
महातिक्तघृत	१०७६
महाखदिरघृत	१०७७
कृमिनाशक प्रयोग...	१०७८
अन्य प्रयोग	"
श्वित्रकुष्ठपर योग	"
कुष्ठपर अन्यलेप	१०७९
श्वित्रकुष्ठके भेद	१०८०
श्वित्रका असाध्यत्व	"
किलासकी उत्पत्तिके कारण	"
अध्यायका उपसंहार	१०८१

८ राजयक्ष्मचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
राजयक्ष्माके विषयमें प्राचीन इतिहास ...	"
यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द	१०८२
यक्ष्माका मनुष्य लोकमें आगमन ...	"
यक्ष्माके ४ कारण...	१०८३
वेगसंधारणजन्य यक्ष्माका निदान लक्षण ...	१०८४
क्षयजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण ...	"
विषमाशनसे उत्पन्न यक्ष्माके निदान ल०...	"
राजयक्ष्माके पूर्वरूप	१०८५
राजयक्ष्मामें पुरीषपरक्षा	१०८६
राजयक्ष्माकी सम्प्राप्ति	"
यक्ष्माका साध्यासाध्यविचार	१०८७
प्रतिश्यायके लक्षण	"
राजयक्ष्माके विशेष लक्षण	१०८८
राजयक्ष्मामें स्वरभग	"
यक्ष्मामें अन्य उपद्रव	"
प्रतिश्यायादि छः रोगोंकी चिकित्सा ...	१०९०
अन्यप्रयोग	१०९१
संशमन क्रिया	१०९२
दोषाधिक्यमें सशोधन विधि	१०९३
लेहवर्णन	१०९४
सितोपलादि अवलेह	१०९५
दुरालभाद्यघृत	"
जीवन्त्यादि घृत	१०९६
बलाद्यघृत	"
यक्ष्मामें अन्य उपचार	"
मन्दाग्निमें घृत	१०९७
अतिसारनाशक योग	"
अन्यप्रयोग	१०९८
वैरस्यनाशक प्रयोग	१०९९
मुखधावन पांच प्रयोग	"
यवानीषाडव	"
तालीशपत्रादि गुटिका	११००
यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ...	"
दोषपरत्वमें यक्ष्मामें मांसविधान ...	११०२
यक्ष्मामें मद्यके गुण...	११०३
अन्यप्रयोग	"
अवगाहनविधि	११०४
उद्वर्त्तन विधि	"
पथ्यतम भोजन	११०५
यक्ष्मामें अन्य पथ्य...	"
यक्ष्मामें अन्य उपचार	"
अध्यायका उपसंहार	११०६

९ अर्शश्चिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
अर्शके भेद	११०७
अर्शका अधिष्ठान	"
सहजार्शका वर्णन	११०८
जन्मके अनन्तर अर्श प्रगट होनेका कारण	११०९
दोषभेदमें आकृति...	११११
वातार्शके लक्षण	"
वातार्शके कारण	१११२
पित्तार्शके स्वरूप	"
पित्तार्शके हेतु	१११३
कफोल्वण अर्शका स्वरूप	"
कफार्शके हेतु	१११४
अर्शके पूर्वरूप	"
सब अर्शोंमें त्रिदोषत्व	"
अर्शकी कृच्छ्रता	१११५
असाध्य अर्शके लक्षण	"
साध्यार्श	१११६
शस्त्रादिकर्म	"
अर्शपर धूनी	१११८
अर्शपर लेप	"
तक्रारिष्ट	११२१
तक्रप्रयोग	"
अर्शहर पेया	११२३

विषय.	पृष्ठांक.
अर्शहर यवागू	११२३
अर्शमें पथ्य	११२४
अर्शनाशक घृत	११२५
चव्यादि घृत	"
नागरादिघृत	११२६
पिप्पल्यादिघृत	"
हरीतकी प्रयोग	११२७
अन्यशाकादियोग	"
अनुवासन योग्य रोगी	११२८
अनुवासन तैल	"
निरूहणकर्म	११२९
निरूहणकर्म	"
हरीतकी अरिष्ट	"
दंत्यरिष्ट	११३०
फलारिष्ट	"
रक्तार्शकी चिकित्सा	११३३
वातानुबंधी रक्तार्श	"
कफानुबंधी रक्तार्श	"
संग्राही योग	११३५
कुटजादि रसायन	"
रक्तार्शपर अन्ययोग	११३६
पिच्छावस्ति और सिद्धवस्ति	११४१
अनुवासन बस्ति	"
ह्रीबेरादिघृत	"
सुनिष्पाक चांगेरी घृत	११४२

१० अतिसार चिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
अतिसारकी उत्पत्ति	११४५
वातातिसारके हेतु	११४६
वातिक आमातिसारके हेतु	"
वातिक पक्वातिसारके लक्षण	"
पित्तातिसारके हेतु और संप्राप्ति ...	११४७
पित्तातिसारके लक्षण	"
कफातिसारके हेतु	"
कफातिसारके लक्षण	११४८
सन्निपातातिसारके हेतु और संप्राप्ति ...	"
कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण ...	११४९
अतिसारकी चिकित्सा	११५१
प्रवाहिकाका यत्न	११५३
गुदभ्रंशकी चिकित्सा	११५४
चांगेरी घृत	"
चव्यादि घृत	११५५
अनुवासन प्रयोग	"
पित्तातिसारकी चिकित्सा	"
पित्तातिसारपर योग	११५६
पित्तातिसारमें अनुवासन	११५८
पिच्छावस्ति	"
रक्तातिसारकी संप्राप्ति	११५९
रक्तातिसारकी चिकित्सा	"
अतिसारनाशकयोग	११६०
कफातिसारकी चिकित्सा	११६३
अध्यायका उपसंहार	११६६

११ विसर्प चिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
विसर्पकी निरुक्ति	११६७
विसर्पके भेद	"
विसर्पके धातु	११६८
विसर्पका निदान	"
विसर्पकी साध्यासाध्यता	११६९
विसर्पके लक्षण	"
वातज विसर्पका निदान, ल०	११७०
पित्तविसर्पके निदान ल०	"
कफ विसर्पके निदान ल०	११७१
वातपित्तज अग्निविसर्पके ल०	११७२
कफपित्तज कर्दम विसर्पके ल०	११७३
कफवातज ग्रन्थि विसर्पके ल० ...	११७४
रोग और उपद्रवोंके भेद	११७५
सन्निपातका विसर्प	"
इनकी साध्याऽसाध्यता	"
विसर्पकी चिकित्सा	११७६
विसर्पकी विशेष चिकित्सा	११७७
वातपित्त ल्वण विसर्पोंपर लेप	११८०
कफोल्वण विसर्पोंपर लेप	११८२
विसर्पपर अन्य उपचार	११८३
लेपका विधान	११८४
विसर्पमें अन्नपान विधि	११८५
विसर्पमें सुपथ्य	११८६
द्वंद्वजविसर्पोंकी चिकित्सा	११८७

विषय.	पृष्ठांक
बहुत दिनकी प्रमेहकी चिकित्सा	११८८
गण्डमालाकी चिकित्सा	११९०
अध्यायका उपसंहार	"
१२ मदात्ययचिकित्सिताध्याय।	
प्रकृति भेदसे मद्यसेवन	११९३
मद्यके गुणदोष	११९४
मद्यके दशगुण	११९५
ओजके दशगुण	"
मद्यसे ओजके गुण नष्ट होकर मदकी उत्पत्ति	"
मदके भेद	११९६
मदके तीन भेद	"
प्रथम मदके लक्षण	११९७
मध्यम मदके	"
अन्त्यमद	"
मद्यकी निंदा	११९८
युक्तियुक्त मद्यके गुण	१२००
सात्त्विक मद्यपान	१२०१
राजसी मद्यपान	१२०२
तामस मद्यपान	"
मद्यपीने योग्य मनुष्य	१२०३
मद्यके अयोग्य मनुष्य	"
वात प्रधान मदात्यय	१२०४
पित्तप्रधान मदात्यय	"
कफप्रधान मदात्यय	१२०५
मदात्ययके लक्षण	"
मदात्ययका चिकित्साक्रम	१२०६
मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठ	१२०७
वातमदात्ययनाशक यत्न	१२०८
पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा	१२१०
कफपित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा	१२११
मदात्ययोंमें विशेष चिकित्सा	"
पित्तमदात्ययमें सेवनीय वस्तु	१२१२
मदात्ययका दाहनाशक यत्न	१२१३
कफप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा	१२१४
अष्टांगलवण	१२१५
सन्निपातज मदात्ययमें चिकित्सानिर्देश	१२१७
मदात्ययनाशकयोग	"
क्षीर प्रयोग	१२१८
ध्वंसकके लक्षण	१२१९
विक्षयके लक्षण	"
इन दोनोंकी चिकित्सा	"
मद्य न पीनेके गुण	"
अध्यायका उपसंहार	१२२०
१३ द्विव्रणीय चिकित्सिताध्याय।	
द्विविध व्रण	१२२१
आगंतुव्रणोंके हेतु	"
निजव्रणोंकी संप्राप्ति	१२२२
वातव्रणके लक्षण	"
वातव्रणमें चिकित्सानिर्देश	"
पित्तव्रणके लक्षण	"
पित्तव्रणमें चिकित्सानिर्देश	"
कफव्रणके लक्षण	१२२३
कफव्रणमें चिकित्सानिर्देश	"
व्रणोंके भेदादि	"
व्रणके वीसप्रकार	"
विविधपरीक्षा	१२२४
दुष्टव्रणोंके भेद	"
व्रणके आठ स्थान	"
व्रणोंकी आठ प्रकारकी गंध	"
चौदह प्रकारके स्राव	१२२५
व्रणके सोलह उपद्रव	"
व्रण शांत न होनेके कारण	"
व्रणोंमें साध्यासाध्यता	१२२६
चिकित्सानिर्देश	"
व्रणोंकी छत्तीस प्रकारकी चिकित्सा	"
शोथनाशक लेप	१२२७
दग्ध और पक्वशोथके लक्षण	१२२८
छः प्रकारके शस्त्रकर्म	"
पाटनयोग्य सूजन	१२२९
वेधनयोग्य रोग	"
छेदनीय रोग	"
लेखनीय रोग	"
पीडनद्रव्य	१२३०
एषणीय व्रण	१२३२
शोधनयोग्य व्रण	"
शोधनयोग	१२३३

विषय.	पृष्ठांक.
रोपणीय व्रण	१२३३
रोपणकर्त्ता द्रव्य...	,,
व्रणमें पथ्यापथ्य	१२३५
अग्निकर्मका निर्देश ...	,,
अग्निकर्मके अयोग्य मनुष्य	१२३६
सफेदत्वचाको सर्वदेहसमकारक लेप ...	१२३७
व्रणोंकी त्वचापर वालजमानेकी क्रिया ...	१२३८

१४ उन्मादचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
उन्मादके हेतु	१२३९
उन्मादकी सम्प्राप्ति	,,
उन्मादके सामान्य लक्षण ...	,,
उन्मादकी निरुक्ति व भेद	१२४०
वातज उन्मादके हेतु	,,
वातज उन्मादके लक्षण	,,
पित्तोन्मादके हेतु	,,
पित्तोन्मादके लक्षण...	१२४१
कफोन्मादके हेतु	,,
कफोन्मादके लक्षण...	,,
सन्निपातज उन्माद...	,,
आगंतुजोन्माद	१२४२
भूतोन्माद	,,
शरीरमें देवादिकोंका आवेश	,,
देवोन्मादके लक्षण	,,
शापोन्मादके ल०	१२४३
पितृकृतोन्मादके ल०	,,
गंधर्वविष्टोन्मादके ल०	,,
यक्षोन्मादके ल०	,,
राक्षसोन्मादके ल०...	१२४४
ब्रह्मराक्षसजनितोन्मादके ल०	,,
पैशाचिकउन्मादके ल०	,,
देवादिआवेशके समय	१२४५
उन्मादोंमें शोधनका निर्देश	१२४७
शोधनके गुण	,,
उन्मादनाशक घृत	१२४८
कल्याण घृत	,,
महापैशाचिक	१२५०
लशुनादिघृत	,,
द्वितीयलशुनादिघृत...	,,
अन्यादिघृत	१२५१
पुराने घृतके गुण	,,
उन्मादनाशक नस्य और अंजन ...	१२५२
सिद्धार्थकादि अगद	१२५३
फस्त, उन्मादनाशक अन्य प्रयोग ...	१२५४
उन्मादमें दैवीयत्न...	१२५५
उन्मादमुक्तके लक्षण	१२५७
अध्यायका उपसंहार	,,

१५ अपस्मारचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
अपस्मारके कारण	१२५८
अपस्मारके लक्षण	,,
अपस्मारके चारभेद	,,
वातापस्मारके लक्षण	१२५९
पित्तापस्मारके लक्षण	,,
कफके अपस्मारके लक्षण	,,
सन्निपातके अपस्मारके लक्षण	,,
अपस्मारके वेगका समय	,,
चिकित्साक्रम	१२६०
पंचगव्यघृत	,,
महापंचगव्यघृत	,,
अन्यघृत	,,
महागदका वर्णन	१२६५
महागदकी चिकित्सा	१२६६
अपस्माररोगीकी रक्षा	१२६७
अध्यायका उपसंहार	,,

१६ क्षतक्षीणचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
क्षतरोगके कारण	१२६८
क्षीणके हेतु	१२६९
क्षतक्षीणके लक्षण	,,
क्षतक्षीणका पूर्वरूप... ...	,,
क्षतक्षीणमें विशेषता	१२७०
साध्यासाध्य	,,
क्षतकी चिकित्सा	,,
एलादिगुटिका	१२७१
अमृतप्राश घृत	१२७३
सतूप्रयोग	१२७५
धात्रीआदिघृत	,,
सर्पिर्गुड	१२७६
द्वितीयसर्पिर्गुड	१२७७

विषय.	पृष्ठांक.
तृतीय सर्पिर्गुड	१२७७
चतुर्थ सर्पिर्गुड	१२७८
स्त्रीसंगसे हुए दाहके यत्न	१२७९
विशेष ज्ञातव्य	१२८०
सैंधवादिचूर्ण	"
खांडवचूर्ण	१२८१
नागवलाप्रयोग	"
क्षतक्षीणमें पथ्य	"
अध्यायका उपसंहार	१२८२

१७ श्वयथुचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
निजशोथके कारण	१२८३
आगतुज शोथ	"
शोथकी सम्प्राप्ति	"
शोथके सामान्यलक्षण	१२८४
वातजशोथ	"
असाध्य शोथके लक्षण	१२८५
साध्य सूजन	"
शोथकी चिकित्सा	"
शोथरोगमें त्याज्य वस्तु	१२-६
कफजशोथकी चिकित्सा	"
वातजशोथके यत्न	१२८७
दण्डीरादिअरिष्ट	१२८८
पुनर्नवाअरिष्ट	१२८९
त्रिफलाअरिष्ट	१२९०
पिप्पलीआदिचूर्ण	"
क्षारादिगुटिका	१२९१
गुडार्द्रकयोग	१२९२
शिलाजतुप्रयोग	"
कंसहरीतकी	१२९३
पटोलमूलादिघृत	"
चित्रकादिघृत	"
शोथहरयवागू	१२९४
वातशोथनाशक शैलेयादितैल	१२९५
पित्तजशोथमें यत्न	१२९६
कफशोथनाशक यत्न	"
अंगावयवभेदसे शोथोंका वर्णन ...	१२९७
गल और शिरकी सूजन	"
सुचोम और विदालिका	"
तालुविद्रधि, उपजिह्व, अधिजिह्व ...	१२९७
उपकुश और दंतविद्रधि	१२९८
गलगण्ड और गण्डमाला	"
उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्सा	"
ग्रंथियोंका वर्णन	"
ग्रंथियोंकी चिकित्सा	१२९९
त्याज्यग्रंथियें	"
अर्बुदकी चिकित्सा	१३००
आलजीके लक्षण	"
चिप्यक और विदारिका	"
विस्फोटक और कक्षा	"
मसूरिका	"
अण्डवृद्धि	१३०१
भगदरका वर्णन	१३०२
श्लीपदका निदान और चिकित्सा ...	"
जालगर्दभका निदान और चिकित्सा ...	"
आगन्तुशोथ	१३०३
अध्यायका उपसहार	"

१८ उदर चिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
उदर रोगकी संप्राप्ति	१३०४
उदररोगके कारण	"
उदररोगके पूर्वरूप	१३०५
उदररोगकी सम्प्राप्ति	१३०६
उदररोगके सामान्य लक्षण	"
उदररोगके ८ भेद...	"
वातोदरका निदान...	"
वातोदरके लक्षण	"
पित्तज उदररोगके निदान	१३०७
पित्तज उदररोगका लक्षण	"
कफज उदररोगका निदान ...	१३०८
कफके उदररोगका लक्षण	"
सन्निपातज उदररोगके लक्षण	"
प्लीहोदरका निदान	१३०९
प्लीहोदरके लक्षण	१३१०
बद्धोदरके निदान	१३११
बद्धगुदोदरके लक्षण	"
छिद्रोदर (क्षतोदर) का निदान ...	"
छिद्रोदरके ल०	"

विषय.	पृष्ठांक.	विषय.	पृष्ठांक.
जलोदरका निदान	१३१२	सुवाक्षीर घृत	”
जलोदरके ल०	”	संशमनयोग	१३२८
उदररोगमें शीघ्र चिकित्सा न करनेसे हानि	”	पिप्पल्यादिक्षार	१३२९
जलोदरकी सप्राप्ति...	१३१३	विशेष निर्देश	१३३१
जलोदरके उपद्रव	”	सार्पविषप्रयोग	१३३२
उदररोगकी कृच्छता	”	उदररोगमें शस्त्रकर्म	”
मृत्युकारक उदररोगकी अवधि ...	१३१४	जलोदरमें नालिकायंत्रद्वारा जल निकालना...	१३३३
साध्यासाध्यता	”	दूधकी प्रशंसा	१३३४
अजातजल उदररोगके ल०	”	अध्यायका उपसंहार ...	”
वातोदरकी चिकित्सा	१३१५	**१९ ग्रहणीचिकित्सा ।**	
अविरेच्य रोगी	१३१६	भुक्तान्नसे तीनों दोषोंकी उत्पत्ति ...	१३३५
पित्तज उदररोगकी चिकित्सा	”	आहारसे इन्द्रियोंकी पुष्टि ...	१३३६
पित्तोदरमें विरेचनयोग	”	अग्निवेशका प्रश्न	१३३७
कफजनित उदररोगकी चिकित्सा ...	१३१७	आत्रेयजीका उत्तर... ...	१३३८
सन्निपातके उदररोगकी चिकित्सा ...	”	शुक्रनिकलनेका क्रम	”
प्लीहोदरकी चिकित्सा ...	”	धातुओंके मल	१३३९
उदररोगमें चिकित्साक्रम	१३१८	जठराग्निकी प्रधानता	”
प्लीहनाशक चूर्ण	”	जठराग्निके दूषित होनेका हेतु...	१३४०
रोहितक घृत	”	अजीर्णके ल०	”
उदररोगोंमें विशेषकर्तव्य	१३१९	दोषसंसृष्टअजीर्णसे रोग ...	१३४१
त्रिदोदरकी असाध्यता ...	”	अग्निभेदसे परिपाक	”
जलोदरकी चिकित्सा	१३२०	ग्रहणीसम्प्राप्ति	१३४२
सर्व उदररोगोंमें कर्त्तव्य और पथ्य ...	”	ग्रहणीके उपद्रव	”
उदररोगमें पथ्य	”	ग्रहणीके पूर्वरूप	”
उदररोगोंमें तक्रप्रयोग	१३२१	ग्रहणीकी निरुक्ति	”
दूध प्रयोग	”	ग्रहणीके भेद	१३४३
उदरपर लेपनादियोग	१३२२	वातजग्रहणीके हेतु... ...	”
मूत्रादिप्रयोग	”	वातजग्रहणीके लक्षण ...	”
नवकोलघृत	”	पित्तज ग्रहणीरोगके हेतु और लक्षण ...	१३४४
नागरादि घृत	१३२३	कफज ग्रहणीके हेतु लक्षण	”
चित्रकघृत	”	ग्रहणीकी चिकित्सा ...	१३४५
यवादि घृत	”	वातजग्रहणीकी चिकित्सा ...	”
विरेचनका निर्देश	”	दशमूलादिघृत	१३४६
पटोलादि चूर्ण	१३२४	त्र्यूषणादिघृत	१३४७
गवाक्ष्यादि चूर्ण	”	पंचमूलादिघृत	”
नारायण चूर्ण	”	साम और निराम मलकी परीक्षा ...	१३४८
हपुषादि चूर्ण	१३२५	चित्रकादिगुटिका	”
नीलिन्यादि चूर्ण	१३२६	अन्य पाचनयोग	१३४९

विषय.	पृष्ठांक.
अभयादिचूर्ण	१३४९
पिप्पल्यादिचूर्ण	१३५०
मरिचादिचूर्ण	,,
भोजनमें डालनेका चूर्ण	,,
ऋध्यादि चूर्णयुक्त पंचविध यवागू ...	२३५१
भोजनार्थयूषादि	,,
तक्रके गुण	,,
तक्रारिष्ट	१३५२
पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा	,,
चंदनादिघृत	,,
नागरादिचूर्ण	१३५३
भूनिम्बादिचूर्ण	,,
वचादिचूर्ण	१३५४
किरातादिचूर्ण	,,
कफजनित ग्रहणीकी चिकित्सा... ...	१३५५
मध्वासव	,,
द्वितीय मध्वासव	१३५६
दुरालभासव	,,
मूलासव	२३५७
पिण्डासव	,,
मध्वरिष्ट	१३५८
पिप्पलीमूलादिचूर्ण... ...	,,
घृत	१३५९
क्षारघृत	,,
पिप्पलीमूलादिक्षार... ...	,,
भल्लातकादिक्षार	१३६०
दुरालभादिक्षार	,,
भूनिम्बादिक्षार	,,
हरिद्रादिक्षार	१३६१
क्षारगुटिका	,,
वत्सकादिक्षार	,,
त्रिफलादिक्षार	१३६२
त्रिदोषजग्रहणीकी चिकित्सा	,,
अग्निसंदीपनविधि	१३६४
जठराग्निकी समता और विषमताके गुणदोष	१३६६
भस्मकाग्नि निदान	,,
भस्मकाग्निकी चिकित्सा ...	१३६७
भस्मकाग्निनाशक विरेचन	१३६८
तीन प्रकारके भोजनोंकी व्याधियोंकी कारणता	१३६९
प्रातः और सायंकालके भोजनमें विशेषता	१३६९
अध्यायका उपसंहार	१३७०

२० पाण्डुचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
पाण्डुरोगके भेद	१३७१
पाण्डुरोगकी संप्राप्ति	१३७२
पाण्डुरोगका निदान	,,
पाण्डुके पूर्वरूप	१३७३
पाण्डुरोगके सामान्य लक्षण	,,
वातजपाण्डुके हेतु, लक्षण	,,
पित्तजपाण्डुके हेतु, लक्षण	१३७४
कफजपाण्डुके हेतु, लक्षण	,,
सन्निपातज पाण्डुके लक्षण	१३७५
मृत्तिकाभक्षणजनित पाण्डुके लक्षण ...	,,
असाध्य पाण्डु	,,
कामलाके लक्षण	१३७६
कुम्भकामला और उसकी असाध्यता ...	,,
पाण्डुरोगकी चिकित्सा	१३७७
स्नेहनार्थ घृत	,,
दाडिमादिघृत	१३७८
कटुरोहिण्यादिघृत	,,
पथ्यादिघृत	१३७९
दन्तीघृत	,,
द्राक्षाघृत	,,
हरिद्रादिघृत	,,
स्नेहनघृत	,,
अन्यप्रयोग	१३८०
हरीतकीप्रयोग	१३८१
नवायसचूर्ण	१३८२
गुडादिवटिका	,,
मण्डूरवटक	,,
ताप्यादिचूर्ण	१३८३
योगराजवटक	,,
शिलाजतुगुटिका	१३८४
पुनर्नवामण्डूरगुटिका...	१३८५
अन्ययोग	,,
धात्रीअवलेह	१३८६
मण्डूरवटक	,,
गौडारिष्ट	१३८७

विषय.	पृष्ठांक.
बीजकारिष्ट ...	१३८७
धात्र्यरिष्ट ...	,,
पाण्डुरोगमें जल ...	१३८८
वैद्योंको उपदेश ...	,,
मृद्दोषनाशक घृत ...	१३८९
पाण्डुमें देनेयोग्य मट्टी ...	,,
शाखाश्रित पित्तके लक्षण ...	१३९०
शाखाश्रितमें मल ...	१३९१
हलीमकके लक्षण ...	,,
हलीमककी चिकित्सा ...	,,
अध्यायका उपसंहार ...	१३९२

२१ हिक्काचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
हिक्का और श्वासके हेतु ...	१३९४
हिक्काके पूर्वरूप ...	१३९५
श्वासके पूर्वरूप ...	,,
महाहिक्काके लक्षण ...	,,
गंभीराके लक्षण ...	१३९६
व्यपेताके ल० ...	,,
क्षुद्रहिक्काके लक्षण ...	१३९७
अन्नजाहिक्काके लक्षण ...	,,
हिक्काकी साध्यासाध्यता ...	१३९८
श्वासरोगकी सम्प्राप्ति ...	१३९९
महाश्वासके लक्षण ...	,,
ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ...	,,
छिन्नश्वासके ल० ...	,,
तमकश्वासके ल० ...	१४००
प्रतमक और संतमकश्वास ...	१४०१
श्वासोंकी साध्यासाध्यता ...	१४०२
हिक्का और श्वासकी चिकित्सा ...	१४०३
धूमप्रयोग ...	,,
धूमपानके अयोग्य ...	१४०४
स्वेदनके अयोग्य रोगी ...	,,
हिक्काश्वासमें यूष और शाक ...	१४०६
हिक्काश्वासमें यवागू ...	१४०७
पाठ्यादिचूर्ण ...	१४१०
शुण्ठ्यादिचूर्ण ...	१४११
अन्ययोग ...	,,
हिक्काश्वासनाशक योग ...	,,
हिचकी नाशक कर्म ...	१४१२
निदान वर्जन ...	१४१३
दशमूलादिक्वाथ ...	,,
तेजोवत्यादिघृत ...	,,
मनःशिलादि घृत ...	१४१४
विशेषवक्तव्य ...	,,
अध्यायका उपसंहार ...	१४१५

२२ कास चिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
कासोंके भेद ...	,,
कासके पूर्वरूप ...	,,
कासकी सम्प्राप्ति ...	१४१६
कासशब्दकी निरुक्ति ...	,,
वातजकासके हेतु ...	,,
वातजकासके लक्षण ...	१४१७
पित्तजकासके हेतु ...	,,
पित्तजकासके लक्षण ...	,,
कफकासके हेतु ...	,,
कफकासके ल० ...	१४१८
क्षतजकासके हेतु ...	,,
क्षतजकासके ल० ...	,,
क्षयजकासके हेतु ...	१४१९
क्षयजकासके ल० ...	,,
कासोंकी साध्यासाध्यता ...	,,
वातकासकी चिकित्सा ...	१४२०
कण्टकारीघृत ...	,,
पिप्पलीघृत ...	१४२१
त्र्यूषणादिघृत ...	,,
रास्नादिघृत ...	,,
विडङ्गादिचूर्ण ...	१४२२
द्विक्षारादिचूर्ण ...	,,
अन्य प्रयोग ...	,,
चित्रकादिअवलेह ...	१४२३
अगस्त्यहरीतकी ...	,,
अन्य योग ...	१४२४
धूमप्रयोग ...	,,
वातजकासीमें पथ्य ...	१४२६
कासनाशक पेया ...	,,
वातजकासीमें शाकादि ...	१४२७

विषय.	पृष्ठांक.
पित्तजकासकी चिकित्सा ...	... १४२७
पित्तजकासमें पथ्य ...	... १४२९
क्षौद्रगर्भा गुटिका ...	... १४३०
कफकासचिकित्सा ...	... १४३१
कफकासनाशक अनेक योग ...	,,
दशमूलादिघृत ...	... १४३२
कण्टकारीघृत ...	,,
कुलत्थादिअवलेह ...	,,
कफनाशक धूम ...	,,
कफजकासमें अन्य अनुबंधोंके यत्न ...	,,
क्षतजकासकी चिकित्सा ...	... १४३५
पिप्पल्यवलेह ...	,,
धूमप्रयोग ...	... १४३६
क्षयजचिकित्सा ...	... १४३७
सविडङ्गादिघृत ...	... १४३९
गुडूच्यादिघृत ...	,,
कासमर्दादिघृत ...	,,
अन्य योग ...	... १४४०
हरीतक्यवलेह ...	,,
अन्य योग ...	,,
पद्मकाद्यवलेह ...	... १४४१
जीवंत्याद्यवलेह ...	,,
यवागूसर्षपादि ...	... १४४२
अध्यायका उपसंहार ...	,,

२३ छर्दिचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
वमनके भेद ...	... १४४४
वमनके पूर्वरूप ...	... १४४५
छर्दिके हेतु, संप्राप्ति ...	,,
वातछर्दीके ल० ...	,,
पित्तजवमनके हेतु ...	,,
पित्तजछर्दिके ल० ...	... १४४६
कफजछर्दिके हेतु, संप्राप्ति ...	,,
कफजछर्दिके ल० ...	,,
सान्निपातिकवमनके हेतु ...	,,
सन्निपातकी छर्दिके ल० ...	,,
प्राणनाशक छर्दिके ल० ...	... १४४७
द्विष्टार्थसंयोगजछर्दि ...	,,
छर्दिका साध्यासाध्यता ...	,,
छर्दिकी चिकित्सा ...	... १४४७
वातजछर्दिकी चिकित्सा ...	... १४४८
पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ...	... १४४९
कफकी छर्दिका यत्न ...	... १४५०
सन्निपातकी छर्दिकी चिकित्सा ...	... १४५१
द्विष्टार्थज छर्दिका यत्न ...	,,
वमनमें विशेष ज्ञातव्य ...	... १४५२
अध्यायका उपसंहार ...	... १४५३

२४ तृष्णाचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
प्यासके कारण और संप्राप्ति ...	... १४५३
पूर्वरूप और रूप ...	... १४५४
तृषाके सामान्य लक्षण ...	,,
वातजतृषाकी संप्राप्ति ...	... १४५५
वातजतृषाके लक्षण ...	,,
पित्तजतृषाका ल० ...	,,
आमदोषज तृषाके ल० ...	,,
तृषाका कारण ...	... १४५६
कष्टसाध्य और असाध्य तृषा ...	,,
अन्नजतृषाके लक्षण ...	,,
मद्यजतृषा ...	,,
अकालस्नानज तृषा ...	... १४५७
तृषाकी चिकित्सा ...	,,
आमज तृषाका यत्न ...	... १४६१
कफानुगत तृषाकी चिकित्सा ...	,,
क्षयकासज तृषाकी चिकित्सा ...	,,
मद्यपानजतृषाकी चिकित्सा ...	... १४६२
क्षुधाजनित और गुर्वन्नजतृषाकी चिकित्सा ...	,,
तृषामें तालुशोषका यत्न ...	,,
अतिरूक्षकी तृषाका यत्न ...	... १४६३
जलका निषेध ...	,,
जलकी आज्ञा ...	... १४६४
अध्यायका उपसंहार ...	,,

२५ विषचिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
विषोत्पत्ति ...	... १४६५
विषकी द्विविध योनि ...	,,
विषके वेग गुण आदि ...	,,
जंगमविषकी योनि ...	... १४६६
गरविष ...	,,

विषय.	पृष्ठांक.
जंगमविषके कार्य ...	१४६६
स्थावरविषके कार्य ...	१४६७
विषकी गति	"
विषके ८ वेग	"
जंगमविषके वेग ...	१४६८
विषके दश गुण	"
वातादिस्थानमें विषके लक्षण ...	१४६९
दूषीविषके धर्म	"
विषसे मनुष्यकी मृत्युके लक्षण...	१४७०
विषके २४ उपक्रम...	"
जंगमविषकी सामान्य चिकित्सा	"
पीयेहुए विषकी चिकित्सा ...	१४७२
संजीवन अगद ...	१४७४
विषके अन्य उपचार	१४७५
गंधनामक अगदहस्ती	१४७६
विषमें श्वासज्वरादिनाशक योग	१४८०
क्षारागद	१४८१
विषदेनेवाले पुरुषके लक्षण	१४८२
विषयुक्त भोजनकी परीक्षा ...	"
पात्रस्थ अन्नमें विषकी पहिचान	"
जलादिपेयपदार्थोंमें विषकी परीक्षा	१४८३
विषयुक्त अन्नपानके सेवनका विकार	"
दंतौन और शिरोऽभ्यंगमें विषके ल०	१४८४
अंजनमें विषके लक्षण	"
स्नान, अभ्यंगादिकोंमें विषके ल०	"
सवारी, शय्या, भूमि, पादुका आदिमें विषके लक्षण	"
विषयुक्त माला और धूमके लक्षण	"
कूप आदिमें विषके ल० ...	१४८५
इन विषोंमें सामान्य चिकित्साक्रम	"
सर्पोंका और उनके विषोंका वर्णन	"
दर्वीकरके कटेहुएके ल०	१४८६
मण्डली सांपोंके दंशके ल०	"
राजिमान सांपके दंशके ल०	"
सर्पोंके स्त्री पुरुष जातिके दंशभेद	"
गोदके काटेहुएके ल०	१४८७
भयानक दंश	१४८८
सर्पोंमें अवस्थाभेदसे विषकी प्रधानता	"
सांपके चार दांतोंके वर्ण	१४८८
दांतोंमें विषकी प्रबलता	"
सांपोंके गलजनित कीटोंके ल०	१४८९
दूषीविषोंके काटनेके लक्षण ...	"
दूषीविषलूताके दंशका लक्षण ...	"
लूतादष्ट मनुष्यके लक्षण	"
मूषकके काटेहुएके लक्षण	१४९०
कृकलासके विषके लक्षण	"
विच्छूके काटनेके ल०	"
कणभदंशके ल० ...	१४९१
उच्चिटिंगके दंशके ल०	"
विषैले मेंढकका काटा	"
मछलीके दंशका ल०	"
जौंकके विषके ल०	"
छिपकलीके काटनेके लक्षण	"
कनखजूरेके विषके लक्षण	"
मच्छरके काटनेके लक्षण	१४९२
मक्खियोंके दंशके लक्षण	"
सांपके काटनेसे असाध्यता	"
विषवृद्धिका समय ...	"
मंदविष सांप ...	१४९३
विषोंकी वातादि प्रकृति	"
वातप्रधान विषके लक्षण	"
पित्तप्रधान विषके लक्षण	"
कफ प्रधान विषके लक्षण	१४९४
वातादिभेदसे विषोंमें चिकित्साक्रम	"
विच्छूके विषमें क्रिया	"
उच्चटिकाके विषमें चिकित्साक्रम	"
सविष और निर्विष शरीरके लक्षण	१४९५
विषोंमें चिकित्सा ...	"
स्थानादिभेदसे विषनाशक योग	१४९६
विषोंके शोधनाशक योग	१४९७
सर्वविषनाशक योग	"
सांपके विषनाशक योग	१४९८
दर्वीकर सांपके काटे हुएकी चिकित्सा	"
मण्डली सांपके काटेका यत्न ...	"
राजिमानके काटेकी चिकित्सा ..	"
कीटादिकोंके विषकी चिकित्सा...	१४९९

विषय.	पृष्ठांक.
दूताविषनाशक योग	१४९९
चूहेके विषका यत्न...	१५००
कीटादि विषनाशक अगद	१५०१
कनखजूरेके विषका यत्न	,,
छिपकली विषनाशक योग	,,
पद्मशिरीषक अगद	१५०२
चतुष्पदोंके विषकी चिकित्सा ...	,,
शंकाजनित अज्ञातविषका यत्न	,,
विषरोगमें पथ्य ...	१५०३
विषरोगमें कुपथ्य ...	,,
कीणये जीवोंके विषके लक्षण...	,,
उनकी चिकित्सा ...	१५०४
गरविषके हेतु लक्षण	,,
गरविषकी चिकित्सा	१५०५
नागदंती घृत	,,
मृत घृत	,,
मनुष्यकी रक्षार्थ आचार	१५०६
अध्यायका उपसंहार	१५०७

२६ त्रिमर्मीय चिकित्सिताध्याय ।

विषय.	पृष्ठांक.
उदावर्त्तकी संप्राप्ति, लक्षण और उपद्रव ...	१५०८
उदावर्त्तकी चिकित्सा	१५०९
उदावर्त्तनाशक वर्तिप्रयोग	,,
उदावर्त्तनाशकचूर्ण प्रधमनयोग...	१५१०
उदावर्त्तनाशक चूर्ण	१५११
उदावर्त्तनाशक घृत...	१५१२
उदावर्त्तनाशक क्षार	,,
वमनद्वारा जीतनेयोग्य रोग	,,

अथ मूत्रकृच्छ्र निदान ।

विषय.	पृष्ठांक.
मूत्रकृच्छ्रके हेतु ...	१५१३
मूत्रकृच्छ्रकी संप्राप्ति	१५१४
अश्मरीका निदान ...	,,
अश्मरीजनित मूत्रकृच्छ्र	,,
शुक्राभिघातज मूत्रकृच्छ्र	१५१५
क्षतज मूत्रकृच्छ्र ...	१५१६
वातज मूत्रकृच्छ्रका चिकित्सा ...	,,
पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ...	१५१७
कफज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ...	१५१८
सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा	,,
अश्मरीकी चिकित्सा	१५१९
शर्करी और शर्करानाशक योग...	१५१९
वातादि मूत्रभेदसे मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ...	१५२०
मूत्रकृच्छ्रमें कुपथ्य...	१५२२
हृद्रोगके कारण ...	,,
हृद्रोगके उपद्रव ...	,,
वातभेदज हृद्रोगके लक्षण	,,
पित्तज हृद्रोगके लक्षण	१५२३
कफज हृद्रोगके लक्षण	,,
सन्निपातज और कृमिज हृद्रोगके लक्षण ...	,,
वातज हृद्रोगकी चिकित्सा	,,
त्र्यूषणादि घृत ...	१५२४
पित्तज हृद्रोगकी चिकित्सा ...	१५२५
कफजनित हृद्रोगकी चिकित्सा...	१५२६
सन्निपातज हृद्रोगकी चिकित्सा...	१५२७
अवस्थाविशेषमें हृद्रोगकी चिकित्सा	,,
कृमिजन्य हृद्रोगकी चिकित्सा ...	,,
पीनसादिनासारोग निदान	१५२८
वातज प्रतिश्यायके लक्षण	,,
पित्तज प्रतिश्यायके लक्षण	,,
कफज प्रतिश्यायके लक्षण	,,
सन्निपातज प्रतिश्यायके लक्षण...	,,
दुष्ट प्रतिश्यायके लक्षण	,,
छींक और नासाशोष	१५२९
प्रतिनाह और परिस्राव	,,
अपीनस और पूतिनासा	१५३०
घ्राणपाक और नासाशोथ ...	,,
नासार्बुद और पूयरक्त	,,
अर्शपिडका और नासादीप्त	,,
वातज प्रतिश्यायकी चिकित्सा...	१५३१
अणुतैल	,,
पित्तजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा	१५३२
कफजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा	१५३३
शिरोरोगका निदान	१५३५
वातज शिरोरोगकी चिकित्सा ...	,,
बलादि तैल	१५३६
मायूरघृत	,,
महामायूरघृत	१५३७
पित्तजशिरोरोगकी चिकित्सा ...	१५३८

विषय.	पृष्ठांक.
कफज शिरोरोगकी चिकित्सा ...	१५३९
अन्य शिरोरोगमें क्रिया ...	,,
वातज मुखरोगके लक्षण ...	१५४०
पित्तज मुखरोगके लक्षण ...	,,
कफज मुखरोगके लक्षण ...	,,
सन्निपातज मुखरोगके लक्षण ...	१५४१
मुखरोगचिकित्सा ...	,,
पिप्पल्यादि कवल ...	,,
तेजोवत्यादि चूर्ण ...	,,
पंचकोलादि गुटिका ...	१५४२
कालकचूर्ण ...	,,
पीतकचूर्ण ...	,,
मृद्वीकादिचूर्ण ...	१५४३
मुखपाकका यत्न ...	१५४४
खदिरादिगुटिका तथा तैल ...	,,
अरुचिके ५ भेद ...	१५४५
वातज अरुचिके लक्षण ...	,,
पित्तज अरुचि ...	,,
कफज अरुचिके लक्षण ...	,,
मनोविकारजन्य त्रिदोषज अरुचि ...	,,
अरोचक चिकित्सा ...	१५४६
अरुचिनाशक योग ...	,,
वातजकर्णरोगके लक्षण ...	१५४७
पित्तजकर्णरोगके लक्षण ...	,,
कफजकर्णरोगके लक्षण ...	,,
सन्निपातज कर्णरोग...	,,
कर्णरोगकी चिकित्सा ...	,,
क्षारतैल ...	१५४८
नेत्ररोगनिदान ...	१५४९
पित्तजनेत्ररोगके लक्षण ...	,,
कफजनेत्ररोगके लक्षण ...	,,
सन्निपातज नेत्ररोग...	,,
नेत्ररोगचिकित्सा ...	,,
वातजनेत्ररोगकी चिकित्सा ...	१५५०
पित्तजनेत्ररोगकी चिकित्सा ...	,,
कफजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा ...	,,
सन्निपातजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा ...	,,
वातजनेत्ररोगमें आश्चोतन ...	१५५१
रक्तपित्तजनित नेत्ररोगपर सेचन ...	१५५१
कफज और सन्निपातज नेत्ररोगपर सेचन...	,,
वातजनेत्ररोगहरवर्ति ...	,,
पित्तज नेत्ररोगहरवर्ति ...	,,
कफज नेत्ररोगहर वर्ति ...	१५५२
दृष्टिप्रसादनी वर्ति ...	,,
शंखनाभ्यादिवर्ती ...	१५५३
चूर्ण अंजन ...	,,
एलांजन ...	,,
सैंधवादि अंजन ...	,,
चक्षुष्यअंजन ...	,,
सुखावती वर्ति ...	१५५४
दृष्टीप्रदावर्ति ...	,,
तिमिररोगनाशक अंजन ...	,,
रसायन अंजन ...	१५५५
रसक्रिया ...	,,
खालित्य रोगका निदान ...	,,
खालित्यकी चिकित्सा ...	१५५६

अथ स्वरभेद चिकित्सा।

विषय.	पृष्ठांक.
वातज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	१५५८
पित्तज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	१५५९
कफज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	,,
रक्तज स्वरभंगकी चिकित्सा ...	,,
सन्निपातके स्वरभेदका यत्न ...	१५६०
अध्यायका उपसंहार ...	१५६१

२७. ऊरुस्तम्भचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
ऊरुस्तम्भके हेतु और संप्राप्ति ...	१५६२
ऊरुस्तंभके पूर्वरूप ...	१५६३
ऊरुस्तम्भके ल० ...	,,
ऊरुस्तम्भमें साध्यासाध्य ...	,,
ऊरुस्तम्भमें स्नेहन विरेचनादिका निषेध ...	१५६४
ऊरुस्तम्भकी चिकित्साका निर्देश ...	१५६५
ऊरुस्तम्भमें पथ्य ...	,,
ऊरुस्तम्भनाशक योग ...	,,
सैन्धवादि तैल ...	१५६७
अष्टकट्वरतैल ...	१५६८
अध्यायका उपसंहार ...	१५७०

२८. वातव्याधिचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
वायुकी उत्कृष्टता ...	१५७०
वायुके पांचभेद ...	१५७१
प्राणवायुके स्थान और कर्म ...	,,
उदानवायुके स्थान व कर्म ...	,,
समानवायुके स्थान व कर्म ...	,,
व्यानवायुके स्थान व कर्म ...	,,
अपानवायुके स्थान व कर्म ...	१५७२
विकृतवायुके कर्म ...	,,
वातव्याधियोंके हेतु ...	,,
पूर्वरूप और उपाय ...	१५७३
कुपितवायुके कर्म ...	,,
कोष्ठाश्रित कुपित वायुके कर्म ...	१५७४
सर्वांगगत कुपित वायु व लक्षण ...	,,
गुदस्थ कुपित वातके लक्षण ...	,,
आमाशयस्थ कुपित वातके कर्म ...	,,
पक्वाशयस्थ कुपित वायुके ल० ...	१५७५
श्रोत्रादिइन्द्रियगत कुपित वातके कर्म ...	,,
त्वचागत कुपित वातके ल० ...	,,
मांसमेदगत कुपित वातके ल० ...	,,
मांस मेदगतके लक्षण ...	,,
मज्जागत कुपितवातके ल० ...	,,
स्नायुगत वातके ल० ...	१५७६
शिरागत कुपित वातके ल० ...	,,
संधिगत वातके लक्षण ...	,,
अर्द्धांगगत वातके ल० ...	,,
मन्यास्तम्भ ...	१५७७
अन्तरायाम और बहिरायामके लक्षण ...	,,
धनुस्तम्भके लक्षण ...	१५७८
हनुस्तम्भ ...	,,
आक्षेपकके ल० ...	,,
दण्डापतानके ल० ...	,,
इसकी असाध्यता ...	१५७९
पक्षाघात,एकांग और सर्वांग वातव्याधिके ल०	,,
गृध्रसीरोगके ल० ...	,,
खल्लीरोगके ल० ...	१५८०
पित्तावृतवातके ल० ...	,,
कफावृत वातके ल० ...	,,
रक्तावृत वात ...	१५८१
मांसावृत वात ...	,,
मेदावृतवातके ल० ...	,,
अस्थिगत आवृत वात ...	,,
मज्जावृत वात ...	१५८२
शुक्रावृत वात ...	,,
अन्नावृत वात ...	,,
मूत्रावृत वात ...	,,
मलावृत वात ...	,,
इन रोगोंकी साध्याऽसाध्यता ...	,,
वातव्याधिमें सामान्य चिकित्सा ...	१५८३
स्नेहस्वेदनके गुण ...	,,
वातव्याधिमें विरेचनकर्म ...	१५८४
वातव्याधियोंकी विशेष चिकित्सा ...	१५८५
वातव्याधिनाशक अनेक योग ...	१५८८
वातव्याधिनाशक घृत ...	१५९०
चित्रकादिघृत ...	,,
उर्द्ध्वगत वातनाशक घृत ...	,,
वातनाशकस्नेह ...	१५९१
महास्नेह ...	,,
निर्गुण्डी तैल ...	१५९२
मूलकादितैल ...	,,
पंचमूलादि तैल ...	१५९३
शरीरकी शीततानाशक तैल ...	,,
सहचरादि तैल ...	१५९४
अदंष्ट्रादितैल ...	,,
बलातैल ...	,,
अमृतादि तैल ...	१५९५
रास्नादि तैल ...	१५९६
बलादि चार प्रकारके तैल ...	१५९७
मूलकादि तैल ...	,,
वृषमूलादि तैल ...	,,
रास्नादि तैल ...	१५९८
यवक्वादि तैल ...	,,
संतानोत्पादक तैल ...	,,
अन्य तैलोंका निर्देश ...	१५९९
वातरोगोंमें तैलोंकी प्रधानता ...	,,
पित्तावृत वातकी चिकित्सा ...	१६००

विषय.	पृष्ठांक.
कफावृत वातकी चिकित्सा	१६००
उरस्थवातमें क्रिया... ...	१६०१
रक्तादिधातुओंसे आवृत्त वातकी पृथक् २ चिकित्सा	"
पांचों वायुओंके परस्पर आवरण ...	१६०२
वायुओंके परस्पर आवरणके २० भेद ...	"
प्राणावृतव्यानवायुके लक्षण और चिकित्सा	१६०३
व्यानावृत प्राणवात	"
प्राणावृत समानके लक्षण	"
समानावृत प्राणके लक्षण, चिकित्सा ...	"
प्राणावृत उदान वायुके लक्षण चिकित्सा ...	"
उदानावृत प्राणवायु	१६०४
प्राणावृत अपान	"
अपानावृत प्राणवायु	"
व्यानावृत अपान	"
आपानावृत वायु	"
समानावृत व्यान	१६०५
उदानावृत व्यान	"
इतर आवरणोंका उपसंहार	"
अन्य १२ आवरणोका निर्देश	"
पित्तावृत प्राणवायु	१६०६
कफावृत प्राणवायुके लक्षण ...	"
पित्तावृत उदानके ल०	"
कफावृत उदानके ल०	१६०७
पित्तावृत समानके ल०	"
कफावृत समानके ल०	"
पित्तावृत व्यानके ल०	"
कफावृत व्यानके ल.	"
पित्तावृत अपानके ल०	"
कफावृत अपानके ल०	१६०८
पित्तकफ मिश्रितावरण	"
प्राण और उदानकी गुरुता ...	"
सर्वस्थानगत आवृत वायुओंकी चिकित्सा	१६०९
अध्यायका उपसंहार	१६१०

२९. वातशोणितचिकित्सिताध्याय।

विषय.	पृष्ठांक.
वातरक्तके हेतु	१६११
वातरक्तके स्थान	१६१२
वातरक्तकी संप्राप्ति...	१६१२
वातरक्तके पूर्वरूप	१६१३
उत्तान और गंभीर वातरक्तके भेद ...	"
उत्तान वातरक्तके लक्षण	"
गंभीरवातरक्तके लक्षण	१६१४
वातरक्तके वातादि भेद	"
वाताधिक वातरक्तके ल०	"
रक्ताधिक वातरक्त...	१६१५
पित्ताधिकवातरक्त	"
कफाधिक, द्वंद्वज, सन्निपातज, वातरक्तके ल०	"
वातरक्तकी साध्याऽसाध्यता	"
वातरक्तके चिकित्साका क्रम	१६१६
रक्तस्रावके अयोग्य वातरक्त ...	१६१७
वातरक्तकी विशेष चिकित्सा	"
वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६१८
रक्तपित्तोत्तर वातरक्तकी चिकित्सा ..	"
कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	"
वातरक्तमें त्याज्य वस्तु	"
वातरक्तमें पथ्य	१६१९
श्रावण्यादि घृत	"
बलादि घृत	"
भूम्यामलकी घृत	१६२०
पारपकघृत	"
द्विपञ्चमूलीघृत	"
द्राक्षाघृत	१६२१
गुडूची घृत	"
जीवकादि स्नेह	१६२२
स्थिरादि स्नेह	"
वातरक्तनाशक दूध... ...	"
पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६२३
कफाधिक वातरक्तकी चिकित्सा ...	१६२४
मलावृत वातरक्तकी चिकित्सा... ...	"
मधुयष्टी तैल	"
सुकुमार तैल	१६२५
अमृतादि तैल	१६२६
महापद्म तैल	"
महाकुष्मक तैल	१६२७
मधुयष्टि तैल	"

विषय.	पृष्ठांक.
शतपाक मधुपर्णी तैल	१६२८
सहस्रपाकी तैल	”
अन्य तैल	”
आरनाल तैल	१६२९
पिण्डतैल	”
पित्ताधिक वातरक्तके यत्न	”
दाहनाशक यत्न	”
लाली, दाह, शूल नाशक अन्य यत्न	१६३०
वाताधिक वातरक्तके यत्न	१६३१
कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा	१६३२
वातकफाधिक वातरक्तका यत्न	१६३३
त्रिदोषज वातरक्तमें यत्न	”
अध्यायका उपसहार	१६३५

३० योनिव्यापत् चिकित्सिताध्याय

विषय.	पृष्ठांक.
वातदूषित योनिके लक्षण	१६३६
पित्त दूषितयोनिके लक्षण	१६३७
कफदूषित योनिके लक्षण	”
त्रिदोषदूषित योनिके लक्षण	”
रक्तपित्त दूषित योनि	”
अरजस्का योनि	१६३८
अचरणा योनि	”
अतिचरणा योनि	”
प्राक्चरणा योनि	”
उपप्लुतायोनि	”
परिप्लुतायोनि	१६३९
उदावृता योनि	”
कर्णिनी योनि	”
पुत्रघ्नी योनि	१६४०
अंतर्मुखी योनि	”
सूचीमुखी योनि	”
शुष्कायोनि	”
वामिनी	१६४१
षण्डीके लक्षण	”
महायोनिके लक्षण	”
वातजयोनिरोगोंकी चिकित्सा	१६४२
बलादि तैल या घृत	१६४३
काश्मर्यादि घृत	१६४४
पिप्पल्यादि कल्क	१६४४
वृषकादि योग	”
पित्तज योनिरोगोंकी चिकित्सा	१६४५
बृहत् शतावरी घृत	१६४६
कफजनित योनिरोगकी चिकित्सा	”
तीनों दोषोंमें क्रियाक्रम	१६४८
प्रदरकी चिकित्सा	१६४९
वातप्रदरका यत्न	”
पित्तजनित प्रदरकी चिकित्सा	”
पुष्यानुग चूर्ण	१६५०
कफजनित प्रदरकी चिकित्सा	”
पित्तज प्रदरपर योग	१६५१
योनिरोगमें अन्य कर्म	”
पुरुष चिकित्साका निर्देश	१६५५
योनिरोगोंका उपसहार	”
अग्निवेशके वीर्यदोषमें प्रश्न	१६५६
दूषित वीर्यको गर्भमें असमर्थता	”
वीर्य दूषित होनेका कारण	”
दूषित शुक्रके आठ भेद	१६५७
वातदूषित शुक्रके लक्षण	”
पित्तदूषित शुक्रके ल०	”
कफदूषित शुक्रके ल०	१६५८
अन्यधातूपसंसृष्ट	”
अवसादि शुक्रके ल०	”
शुद्धशुक्रके ल०	”
दूषित वीर्यकी सामान्य चिकित्सा	”
वातदूषित वीर्यकी चिकित्सा	१६५९
पित्तदूषित वीर्यकी चिकित्सा	”
कफदूषित वीर्यमें चिकित्सा	”
अन्यधातूपससृष्ट वीर्यकी चिकित्सा	”
क्लैब्यरोग वर्णन	”
४ प्रकारसे नपुसकताकी प्राप्ति	१६६०
नपुसकताके सामान्य लक्षण	”
बीजोपघात क्लैब्यके हेतु, लक्षण	”
ध्वजभग नपुंसकताके हेतु, लक्षण	१६६१
ध्वजभगके लक्षण	१६६२
जरासंभव नपुंसकताके कारण और ल०	१६६३
क्षयज क्लीवताके हेतु,लक्षण	”

विषय.	पृष्ठांक.
मातृपितृदोषज नपुंसकता ...	... १६६४
क्लैब्य (नपुंसकता) रोगीकी चिकित्सा ...	१६६५
बीजोपघात क्लैब्यकी चिकित्सा ...	"
ध्वजभंगकी चिकित्सा ...	... १६६६
जरासंभव और क्षयज क्लैब्यकी चिकित्सा	"
प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ...	"
प्रदररोगके चार भेद ...	... १६६७
वातजप्रदरके हेतु, लक्षण	"
पित्तज प्रदरके हेतु, लक्षण ...	... १६६८
कफज प्रदरके हेतु, लक्षण	"
त्रिदोषज प्रदरके हेतु, लक्षण	"
शुद्धरजके लक्षण	... १६६९
प्रदररोगकी चिकित्साका निर्देश	... १६७०

अथ स्तन्यदोष चिकित्सा ।

विषय.	पृष्ठांक.
स्तन्यदोषोंके हेतु	"
वातादि भेदसे उनके लक्षण ...	... १६७१
वातदूषित स्तन्यके दोष ...	... १६७२
पित्तदूषित स्तन्यके लक्षण	"
कफदूषित स्तन्यके लक्षण	"
त्रिदोष दूषित स्तन्य ...	... १६७३
दूषित स्तन्यकी चिकित्सा	"
स्तन्य दोषोंकी विशेषचिकित्सा	... १६७५
क्षीरदोषज बालरोगोंकी चिकित्सा	... १६७८
स्थानका उपसंहार... ...	... १६७९
अध्यायका उपसंहार ...	... १६८०

इति चिकित्सास्थानकी विषयाऽनुक्रमणिका ।

अथ कल्पस्थान ।

१ मदन कल्प ।

विषय.	पृष्ठांक.
वमन, विरेचनकी निरुक्ति ...	... १६८९
वामक, रेचक द्रव्योंका धर्म	"
वामक और विरेचक द्रव्य ..	... १६९०
जांगलदेशके द०	.. १६९१
अनूप देशके द०	... १६९२
साधारण देश	"
औषधि ग्रहणयोग्य उत्तम भूमि	... १६९३
औषध ग्रहण प्रकार	"
औषध रक्षण विधि ...	... १६९४
वातरोगोंमें अनुपान	"
पित्तज रोगोंमें अनुपान ...	... १६९५
कफजरोगोंमें चिकित्सा	"
वमनकरानेका क्रम... ...	... १६९६
वामक योग	"
मन्त्र	... १६९७
हीनवेगमें क्रिया ...	"
वमनमें उष्ण द्रव्योंमें मधु देनेकी आज्ञा...	"
आठ वामक योग	... १६९८
चार वामकयोग	... १६९९
एक वामकयोग	"
एक वामकयोग	"
एक वामकयोग	... १७००
एक वामकयोग	"
छः वामकयोग	"
बीस वामकयोग	"
बीस २ मोदक और उत्कारिका वामकयोग	१७०१
एक २ शष्कुली अपूपयोग	"
पंद्रह २ अपूप शष्कुलीयोग	"
वमनके दश योग ...	... १७०२
मैनफलके प्रयोग	"
अध्यायका उपसंहार	"

२. जीमूत कल्प ।

विषय.	पृष्ठांक.
जीमूतके नाम ...	... १७०३
पांचयोग	"
एकयोग	... १७०४
एक गुडमण्ड योग...	"
बारहयोग	"
सातयोग	"
आठयोग	... १७०५
चारयोग	"
अध्यायका उपसंहार	"

३. इक्ष्वाकु कल्प ।

विषय.	पृष्ठांक.
कडुवे तुंबेके नाम और गुण ..	... १७०६
दूध आदि आठ योग	"
मस्तुका एकयोग, तक्रका एकयोग	... १७०७

विषय	पृष्ठांक
मसराके दूधका एक योग	१७०७
एक मद्ययोग	,,
गुडादि चार योग	१७०८
वर्धमान छ योग	,,
क्वाथके नौ योग, वर्त्तीक आठयोग	,
स्वरेहके पाचयोग	,,
मधसे एक योग	१७०९
मांसरसका एक योग	,,
अध्यायका उपसहार	,,

४. धामार्गव कल्प

विषय	पृष्ठांक
धामार्गवके नाम	१७१०
धामार्गवके गुण	,,
धामार्गवके ६० योग	
अध्यायका उपसहार	१७१२

५. वत्सककल्प।

विषय	पृष्ठांक
कुटजके नाम	१७१३
स्त्रीपुरुष भेद	,
कुटजके गुण	,,
कुटजके अट्ठारह योग	
अध्यायका उपसहार	१७१४

६ कृतवेधन कल्प।

विषय	पृष्ठांक
कृतवेधनके नाम	१७१५
कृतवेधनके गुण	,
साठ योगोंकी कल्पना	
अध्यायका उपसहार	१७१७

७ श्यामात्रिवृत्कल्प।

विषय	पृष्ठांक
निशोथके नाम	१७१८
निशोथके गुण	
निशोथके दो भद	
निशोथग्रहणका क्रम	१७१९
निशोथकी मात्रा	
निशोथसे अनेक विरेचकयोग	
तैल्वकावलेह	१७२२
सद्कारादि अवलेह	,
पानकादि पाचयोग	१७२२
विरेचक तर्पण	१७२३
रेचक मोदक	,,
शोधनगुडक	,,
कल्याणगुडक	,
व्योषादियोग	१७२४
गुभागुटिका	१७२५
वर्षाऋतुमें विरेचन	,
शरदऋतुमें विरेचन	,,
हेमतमें विरेचनयोग	१७२६
ग्रीष्मम विरेचन	,,
सर्वऋतुओंमें विरेचन	,,
रूक्ष मनुष्योंको विरेचन	,,
सिद्धचूर्ण	,,
सप्तलादिचूर्ण	१७२७
गुल्मनाशक घृत	,,
त्रिवृतारिष्ट	,,
सौवीरक	१७२८
तुषोदक आसव	,
अध्यायका उपसहार	१७२९

८ चतुरंगुल कल्प।

विषय	पृष्ठांक
अमलतासके नाम	१७३०
अमलतासके गुण	,
अमलतासके ग्रहणकरनेकी विधि	,
अमलतासके १२ वैरेचनिकयोग	१७३१
अध्यायका उपसहार	१७३२

९ तिल्वक कल्प।

विषय	पृष्ठांक
लोधके नाम	१७३२
लोधके १६ योग	,
अध्यायका उपसहार	१७३५

१० सुधा कल्प।

विषय	पृष्ठांक
सुधाकी तीक्ष्णता	१७३६
थोहरके भेद और नाम	,
थोहरके २० योग	,,
अध्यायका उपसहार	१७३८

११. सप्तला, शंखिनी कल्प।

विषय.	पृष्ठांक.
सप्तला शंखिनीके नाम	१७३९
सप्तला, शंखिनीके गुण	"
सप्तला शखिनीके प्रयोग	१७४०
अध्यायका उपसंहार	१७४२

१२. दंतीद्रवंती कल्प।

विषय.	पृष्ठांक.
दती, द्रवंतीके नाम	१७४३
इनके ग्रहण और शोधनक्रम	"
दती और द्रवंतीके गुण ...	"
दती, द्रवंतीके प्रयोग	"
दती द्रवंतीके योगोंका उपसंहार ...	१७४९
योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता	१७५०
विरुद्धवीर्य द्रव्योंके मिलानेका हेतु ...	"
भावना देनेका गुण...	१७५१
इनके सस्कारादि विषयमें ज्ञातव्य ...	"
योगोंके ३ भेद	"
तीक्ष्णयोगोंके लक्षण	"
द्रव्यमें तीक्ष्णताका कारण	१७५२
मध्यमयोगके लक्षण	"
हीनयोगके ल०	"
तीन प्रकारकी व्याधि आदि विचार ...	१७५३
वमनमें विशेष कर्त्तव्य	"
विरेचनमें कर्त्तव्य	१७५४
लघनयोग्य मनुष्य...	१७५७
वस्तियोग्य रोगी	"
शोधनके अयोग्य मनुष्य	"
मानपरिभाषा	१७५८
अनेकविध विचार	१७६०
तीनप्रकारके स्नेहपाक	"
उनके प्रयोग	१७६१
अध्यायका उपसंहार	"

इति कल्पस्थानकी विषयाऽनुक्रमणिका।

अथ सिद्धिस्थान।

१ कल्पनासिद्ध।

विषय.	पृष्ठांक.
स्नेहनकी अवधि	१७६३
स्नेहन, स्वेदनके गुण	१७६४
शोधनके पूर्व सेवनीयद्रव्य	"
शोधनान्तमें सेवनीय द्रव्य	१७६५
शोधनके हीन, मध्य और उत्तमवेग ...	"
उत्तम शोधनकी परीक्षा	१७६६
उत्तम वान्तके ल०...	"
वमनके अयोग और अतियोगके ल० ...	"
सम्यक्विरिक्तके ल०	"
दुर्विरिक्तके ल०	१७६७
अतिविरिक्तके ल०...	"
शोधनके अंतमें कर्त्तव्य	"
निरुहणका समय	"
ऋतुभेदसे अनुवासनका समय	१७६८
अनुवासनमें अन्यकर्म	"
निरुहणका अकाल...	"
निरुहणवस्तिके गुण	१७६९
अनुवासनके गुण	"
शोधनीय रोगोंमें बृंहणका निषेध ...	१७७०
संशोधनके अयोग्य रोगी	१७७१
वातजरोगोंमें वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता ...	"
उत्तम वस्तियोग	"
निरुहणके असम्यक् योगके ल० ...	१७७२
अनुवासनके सुयोगके ल०	"
अनुवासनके अयोगके ल०	"
अनुवासनके अतियोगका ल०	१७७३
अनुवासनके ठहरनेका समय	"
वस्तियोंकी सख्या और उनके प्रयोग ..	"
शिरोविरेचनक्रम	१७७४
शिरोविरेचनके योग, अयोग, अतियोग ...	"
पचकर्मके गुण और परहेजका समय ...	१७७५
पंचकर्मके अनन्तर त्याज्य	"
वस्तिके सुखपूर्वक प्रवेश न होनेके कारण ...	"
वस्तिके द्रव्यके लौटआनेका कारण ...	"
अपनी २ औषधोंसे भी रोगोंके शान्त न होनेका कारण	१७७६
अध्यायका उपसहार	"

२ पंचकर्मीय सिद्धि।

विषय.	पृष्ठांक.
पचकर्मके अयोग्य मनुष्य	१७७७

विषय.	पृष्ठांक
वमनके अयोग्य मनुष्य ...	... १७७७
इनको वमन करानेके दोष ...	... "
इनमें भी वमनकी आज्ञा ...	... १७७९
वमन करानेके योग्य रोगी ...	... १७८०
विरेचनके अयोग्य मनुष्य ...	... "
इनके विरेचन करानेके दोष ...	... १७८१
विरेचन योग्य मनुष्य ...	... १७८२
आस्थापनके अयोग्य ...	... १७८३
इनमें आस्थापनके दोष ...	"
आस्थापनके योग्य मनुष्य ...	... १७८४
अनुवासनके अयोग्य ...	... १७८५
इनमें अनुवासनके दोष ...	"
अनुवासनयोग्य मनुष्य ...	... १७८६
शिरोविरेचनके अयोग्य मनुष्य ...	"
इनमें नस्यकर्मके दुर्गुण ...	... १७८७
शिरोविरेचनयोग्य मनुष्य ...	... १७८८
अध्यायका उपसंहार ...	... १७८९

३ वस्तिसूत्रीय सिद्धि।

वस्तिनेत्रका प्रमाण ...	... १७९१
वस्तिकी परिधि ...	"
वस्तिकर्णिका व वस्तिपुटक ...	... १७९२
वस्तिकर्मविधि ...	"
वस्तिके विधानमें असावधानीके दोष ...	... १७९४
वस्तिमें लेटनेका विधान ...	... १७९५
वस्तिके अनन्तर कर्म ...	... १७९६
अनुवासनविधि ...	"
निरूहणमें स्नेहकी मात्रा ...	"
निरूहणकी मात्रा ...	... १७९७
शयनक्रम ...	"
भोजनादि क्रम ...	"
वातनाशक वस्तियोंके योग ...	१७९८
एरण्डतैलकी वस्तिके गुण ...	. १७९९
पित्तनाशक वस्ति ..	. १८००
कफोन्मादकवस्ति ...	... १८०१
वातादि भेदसे निरूहणकर्म ...	१८०४
वातादि भेदसे निरूहणके अनन्तर कर्म ..	"
अध्यायका उपसंहार	"

४ स्नेहव्यापादिका सिद्धि।

विषय.	पृष्ठांक.
वातघ्न अनुवासन योग ...	... १८०५
जीवन्त्यादि युग्मकस्नेह ...	... १८०६
पित्तनाशक अनुवासनयोग ...	"
वात कफ जनित रोगनाशक अनुवासन ...	"
कफनाशक तैलयोग ...	... १८०७
स्नेहवस्तिके गुण ...	... १८०८
इन छः आपदोंके कारण ...	"
वातावृत वस्तिका ल० ...	... १८०९
वातावृत वस्तिकी चिकित्सा ...	"
पित्तावृतस्नेहके ल० चिकित्सा ...	"
कफावृत स्नेहके ल० चिकित्सा	... १८१०
अन्नावृत स्नेहके ल० और चिकित्सा ...	"
मलावृत स्नेहके लक्षण और चिकित्सा ...	"
उर्द्धगत स्नेहवस्तिके ल० और चिकित्सा ...	१८११
उपेक्षणीय स्नेह ...	"
स्नेहमुक्त होनेपर कर्म ...	"
वस्तिकर्ममें जल ...	... १८१२
गर्मजलके गुण ...	"
स्नेहपाचनका काल ...	"
अनुवासनीय स्नेह विधान ...	"
उभयस्नेहप्रयोगका निषेध ...	... १८१३
केवल एक प्रकारकी वस्तिके निरंतर सेवनका निषेध ...	"
मात्रावस्तिका प्रयोग ...	"
अध्यायका उपसंहार ...	... १८१४

५ नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि।

त्याज्य वस्तिनेत्र ...	... १८१५
त्याज्यवस्ति ...	"
विषमादि वस्तियोंके विकार ...	"
वस्ति प्रणेताके दोष ...	... १८१६
इनके ल० और उपाय ...	"
अध्यायका उपसंहार ...	... १८१७

६ वमन विरेचन, व्यापत्तिसिद्धि।

शोधनका समय ...	... १८१९
स्नेहस्वेदादि कर्म ...	"
शोधन द्रव्यदानका समय ...	.. १८२०

विषय.	पृष्ठांक.
स्नेहन, स्वेदन और शोधनमें दृष्टान्त ...	१८२०
अजीर्णमें शोधन पीनेके दोष	,,
मात्रावत् औषध	१८२१
औषधपान क्रम	,,
शोधन पीनेसे प्रथम दिनमें आहार ...	,,
शुद्धिके ल०	,,
वमनमें ज्ञातव्य	१८२२
शोधनके अंतमें क्रम	,,
औषधजीर्णके ल०	१८२३
अजीर्ण औषधके ल०	,,
अयोग और अतियोगके १० उपद्रव ...	,,
परिचारिकादि दोष	१८२४
योगातियोगायोग	,,
अजीर्ण विरेचनका दोष	,,
वमनका अयोग	,,
विरेचनका प्रयोग	१९२५
शोधनके अयोगमें कर्त्तव्य	१८२६
अतियोगके दोष और चिकित्सा ...	,,
विरेचनका अतियोगनाशक योग ...	१८२७
वमनके अतियोगमें क्रिया	१८२८
अतर्गत जिह्वाका यत्न	,,
निसृत जिह्वाका यत्न	,,
वाग्ग्रह	,,
विरेचनके अयोगमें अफारा	१८२९
परिकर्त्तिकाके हेतु और चिकित्सा	,,
आमाजीर्णकी चिकित्सा	१८३०
अधिक दोषमें अल्पशोधनके दोष चिकित्सा	,,
रेचक औषध पीकर वेगोंको रोकनेके उपद्रव और चिकित्सा...	१८३१
वमनके अतियोगमें हृद्रह	,,
वामक औषधके वेग रोकनेके दोष और चिकित्सा	१८३२
अल्प दोषमें तीक्ष्ण...	,,
जीवसंग्रहक रक्त निकालनेकी चिकित्सा .	,,
शोधन विभ्रश	१८३३
अति स्निग्धको स्नेह विरेचनका दोष ...	१८३४
रूक्षतामें रूक्ष विरेचनके दोष और चिकित्सा	,,
गुरुकोष्ठको मृदुशोधनके दोष और चिकित्सा	,,
अध्यायका उपसंहार . .	,,

७ वस्तिव्यापत्सिद्धि ।

विषय.	पृष्ठांक.
वस्तिकी व्यापत्तियें	१८३६
अयोग	,,
अयोगकी चिकित्सा	,,
अतियोगके लक्षण और यत्न	१८३७
क्लमके ल० और चिकित्सा	,,
आध्मानके हेतु, ल०, चिकित्सा	१८३८
हिचकी व्यापल्लक्षण और चि०	१८३९
हृद्व्यापत्के ल० और यत्न ...	,,
ऊर्ध्वगमनव्यापत्ति	१८४०
प्रवाहिकाव्यापत्तिके ल० और चि० ...	१८४१
शिरःशूलव्यापत्ति	,,
अंगशूलव्यापत्ति	१८४२
परिकर्तिका व्यापत्ति	१८४३
परिस्राव व्यापत्ति	१८४४
अध्यायका उपसंहार	१८४५

८. प्रामृतयोगिका सिद्धि ।

विषय.	पृष्ठांक.
पचप्रासृतिकवस्ति	१८४६
अष्टप्रासृतिक वस्ति...	,,
नवप्रासृतिक वस्ति	,,
शुक्रवर्द्धक वस्ति	,,
पंचतिक्तकवस्ति	१८४७
कृमिनाशक वस्ति	,,
वृष्यवस्ति	,,
अन्य अनेक रोगोंमें वस्तियोग... ...	,,
वस्ति विषयक अन्य विवेचना	१८४८
छ मलोंके अतिसार...	१८४९
इनकी चिकित्सा	,,
उपरोक्त अतिसारनाशक घृत	१८५२
यवागू	,,
वातादि भेदसे रसमें कल्पना	१८५३
अध्यायका उपसंहार	,,

९. त्रिमर्मीय सिद्धि ।

विषय.	पृष्ठांक.
मर्मोका गुरुत्व	१८५४
हृदयमें अभिघातसे उपद्रव	१८५५
शिरमें अभिघातके उपद्रव	१८५६

विषय.	पृष्ठांक.
वस्तिमें चोट लगनेके उपद्रव ...	... १८५६
मर्मोकी चिकित्सा ...	,,
वातोपसृष्ट हृदयकी चि०	... १८५७
वातोपसृष्टशिरकी चि०	,,
वातोपसृष्टवस्तिकी चि०	,,
औतरवस्तिक तैल ...	... १८५८
अपतंत्रके ल० ...	... १८५९
अपतानकके ल० ...	,,
इनकी चिकित्सा ...	,,
तंद्रारोगके हेतु, ल०	... १८६०
तंद्राकी चिकित्सा ...	... १८६१
वस्तिरोग व मूत्रघातके १३ भेद	,,
मूत्रौकसादके लक्षण चिकित्सा ...	,,
मूत्र, जठरके हेतु, लक्षण, चिकित्सा	,,
मूत्रकृच्छ्रके ल० ...	... १८६२
मूत्रोत्संगके ल०	,,
मूत्रक्षयके ल०	,,
मूत्रातीतके ल०	,,
वातष्ठीलाके ल०	... १८६३
वातवस्तिके ल०	,,
उष्णवातके ल०	,,
मूत्रग्रंथिके ल०	,,
विड्विघातके ल० ...	... १८६४
वस्तिकुण्डलके ल०...	,,
इनकी चिकित्सा ...	१८६५
उत्तरवस्ति विधान ...	,,
वस्तिसे स्नेह न निकलनेपर वर्त्तिप्रयोग	... १८६६
स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका समय ...	.. १८६७
उत्तरवस्तियोग्य रोग	... १८६८
स्त्रियोंके लिये वस्तिनलका प्रमाण	,,
स्त्रियोंके वस्तिप्रवेश विधि	,,
दारुणके लक्षण और चिकित्सा	.. १८६९
अर्द्धावभेदकके लक्षण और चि०	,,
सूर्यावर्तके लक्षण और चि० ...	... १८७०
अनन्त वातके लक्षण और चि०	... १८७१
शिरःकम्पके लक्षण ...	,,
इनकी चि०	,,
नस्यके गुण	,,
नस्यके पांच भेद ...	... १८७२
नस्यभेदसे साध्य रोग	,,
विरेचन नस्य	... १८७३
तर्पण नस्य	,,
नस्यकर्मविधि	,,
नस्यके अनन्तर कर्म	... १८७४
अवपीडन और प्रध्मापन	,,
शिरोविरेचनके अनन्तर कर्म ...	,,
नस्यकर्मका अकाल और उनमें हुए रोगोंका यत्न	... १८७५
प्रतिमर्श नस्यके गुण	... १८७६
अध्यायका उपसंहार	,,

१०. वस्तिसिद्धि ।

विषय.	पृष्ठांक.
आस्थापनयोग्य मनुष्य	... १८७७
विविधवस्ति	... १८७८
वस्तिके गुण	,,
शोधनीय रोगोंमें बृंहणका निषेध	,,
बृंहणियोंमें शोधनका निषेध ...	,,
रोगविशेषसे वस्तिविशेष	... १८७९
वस्तिमें प्रयोग कियेजानेके द्रव्य	,,
वातनाशक योग ...	... १८८०
पित्तनाशक योग ...	,,
कफनाशक वस्तियोग	,,
पक्वाशय शोधक योग	... १८८१
वीर्यवर्द्धक योग ...	,,
समाहीयोग	,,
परिस्रावनाशक योग	... १८८२
दाहनाशक योग ...	,,
परिकर्त्तिका व प्रवाहिका नाशक योग	,,
अतियोग नाशक योग	... १८८३
अतियोगमें रक्तक्षय होनेपर योग	,,
अध्यायका उपसंहार	... १८८४

११. फलमात्रा सिद्धि ।

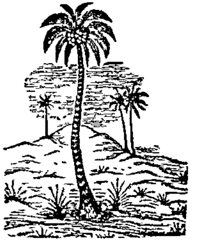
विषय.	पृष्ठांक.
आस्थापन विषयक फलोंमें ऋषियोंका विवाद	१८८५
आत्रेयजीका समाधान	... १८८६
शिष्योंका प्रश्न ...	... १८८७
आत्रेयजीका उत्तर...	,,

विषय.	पृष्ठांक.
हस्ति आदिके विषयमें प्रश्नोत्तर ...	... १८८७
हाथी आदिकी बस्तिका परिणाम	... १८८८
हस्ति आदिको निरूहणयोग ...	... ”
अग्निवेशका प्रश्न ...	... १८८९
इनकी चि० ...	... १८९०
बालकोंको अनुवासन निरूहण ...	... १८९१
अध्यायका उपसंहार ...	... ”

१२ उत्तरबस्ति सिद्धि।

विषय.	पृष्ठांक.
शोधनोत्तर क्रिया...	... १८९२
अग्निसंदीपनादि क्रम ...	... ”
वर्जनीय ८ व्यापार...	... १८९३
इनके दोष ...	... ”
उच्चभाषणजनित रोग ...	... १८९४
क्षोभजनित रोग ...	... ”
अतिभ्रमणजनित रोग ...	... १८९५
अतिबैठनेसे रोग ...	... ”
अजीर्णमें भोजनसे रोग ...	... ”
अहित भोजनके दोष ...	... १८९५
दिनमें सोनेके दोष ...	... ”
मैथुनके दोष ...	... १८९६
उनकी चिकित्सा ...	... १८९७
यापनबस्तिके योग...	... १८९८
अतिवृष्य स्नेहयोग ...	... १९०६
चलादि वृष्यस्नेह ...	... १९०७
सहचरादि रसायन स्नेह ...	... १९०८
इन स्नेहबस्तियोंके विशेष गुण ...	... १९०९
इनमें त्याज्य कर्म ...	... १९१०
बस्तियोगोंका उपसंहार ...	... ”
इनमें अन्य क्रम ...	... १९११
निरतर यापन बस्तिके दोष ...	... ”
सिद्धिस्थानकी निरुक्ति ...	... १९१२
इस ग्रंथके पढनेका फल ...	... ”
पैंतीस युक्तियोंका संग्रह ...	... १९१३
ग्रंथका फल ...	... १९१४
अध्यायका उपसंहार ...	... १९१५

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता।



वर्तमान समयके तौलसे
वैद्यकीय तौलका मिलान ।

३ राजिका ... ... १ सरसों
३ सरसों ... ... १ यव
३ यव ... ... १ गुंजा (रत्ती)
८ रत्ती ... ... १ माषा
३ माषा ... ... १ टङ्क (शाण)
२ शाण ... ... १ कोल (६ माषा)
२ कोल ... ... १ कर्ष (१ तोला)
२ कर्ष ... ... अर्धपल
४ कर्ष ... ... १ पल (४ तोला), बिल्व, मुष्टि
२ पल ... . १ प्रसृति
२ प्रसृति ... ... १ अंजली (१६ तोला) कुडव
२ अंजली ... ... १ मानिका (३२ तोला)
२ मानिका ... ... १ प्रस्थ (६४ तोला)
४ प्रस्थ ... ... १ आढक (४ सेर)
१ तुला ... ... अस्सी तोलाके सेरसे ५ सेर
४ आढक ... ... १ द्रोण (१६ सेर)
२ द्रोण ... ... १ सूर्प (३२ सेर)
२ सूर्प ... ... १ द्रोणी (६४ सेर)
४ द्रोणी ... ... १ खारी (२५६ सेर)
१ भार ... . २००० पल

कोई पांच तोलेका १ पल मानकर २० तोलाका कुडव (१ पाव पक्का) ४ कुडवोंका १ प्रस्थ (८० तोलेका सेर) लेतेहैं । इसी प्रकार ४ सेर पक्केका १ आढक, १६ सेर पक्केका द्रोण मानतेहैं । पुराने जमानेके कच्चे तौलसे पल ८ तोलाका लेतेहैं ।

इति

चरकसंहिता-चिकित्सितस्थान-
कल्पस्थान-सिद्धिस्थानकी

विषयाऽनुक्रमणिका

समाप्त ।

॥ श्रीः ॥

चरकसंहिता ।

श्रीमन्महर्षिप्रवरचरकप्रणीता ।

पण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित-

प्रसादनी-

भाषाटीकासहिता ।

तत्र

चिकित्सितस्थान-कल्पस्थान-सिद्धिस्थानानि ।

तान्येतानि

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन)

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितानि ।

संवत् १९६८, शके १८३३.

अथ चिकित्सितस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोऽभयामलकीयरसायनपादंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अभयामलकीय रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ।

औषधके नाम ।

चिकित्सितंव्याधिहरंपथ्यंसाधनमौषधम् ॥ प्रायश्चित्तंप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहितम् ॥ १ ॥ विद्याद्भेषजनामानिभेषजंद्विविधञ्चतत् । स्वस्थस्यौजस्करंकिञ्चित्किञ्चिदार्त्तस्यरोगनुत् ॥ २ ॥

भेषज, चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन, हित यह सब औषधके ही नाम हैं। वह औषध दो प्रकारके होतेहै। जैसे १ स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाले । २ रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाले ॥ १ ॥ २ ॥

दोप्रकारकी अभेषज ।

अभेषजञ्चद्विविधंबाधनंसानुबाधनम् ॥ ३ ॥

अभेपज भी दो प्रकारके होतेहै १ बाधन अर्थात् शीघ्र प्राणनाश करनेवाले । २ सानुबाधन जो कालान्तरमें अपने विकार आदिकोंको प्रगट करें ॥ ३ ॥

द्विविध औषध ।

स्वस्थस्यौजस्करंयत्तुतद्वृष्यंतद्रसायनम् ॥ ४ ॥

उनमे जो स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाले औषध हैं उनको वृष्य[1] और रसायन[2] कहतेहै ॥ ४ ॥

प्रायःप्रायेणरोगाणांद्वितीयंप्रशमेमतम् ।
प्रायःशब्दोविशेषार्थोह्युभयंह्युभयार्थकृत् ॥ ५ ॥

---

१ जो द्रव्य वीर्यको प्रगट करनेवाला हो उसको वृष्य कहतेहैं अथवा सम्पूर्ण धातुओंको पुष्ट करनेवाला हो उसको वृष्य कहतेहैं । २ जो द्रव्य वृद्धावस्थाको न आने देवे और रोगोंको उत्पन्न न होने देवे तथा आयुको बढावे उसको रसायन कहतेहैं ।

और दूसरी औषध जो रोगी मनुष्योंके रोगोंको दूर करनेवाली होतीहैं वे प्रायः रोगोंकी शान्तिके लिये उपयोग कीजातीहैं। इस जगह प्रायः शब्द विशेष अर्थका बोधक है। इससे यह तात्पर्य निकलताहै कि रोगनाशक औषधियां भी स्वस्थ मनुष्योंके बल और ओजको बढानेवाली होसकतीहैं तथा रसायन और बलवर्द्धक औषधियां रोगनाशक भी होतीहैं। इसलिये यह दोनों प्रकारकी औषधियां दोनों प्रकारके गुण करतीहैं। अथवा रसायन और वृष्य यह दोनोंही उभयगुणकर्त्ता होतीहैं। अर्थात् वृष्य औषध रसायनके गुणको भी कर सकतीहै और रसायन औषध वृष्य गुणवाली भी होतीहै ॥ ५ ॥

रसायनके गुण।

दीर्घमायुःस्मृतिंमेधामारोग्यंतरुणंवयः। प्रभावर्णस्वरौदार्य्यंदेहेन्द्रियबलंपरम् ॥ वाक्सिद्धिंप्रणतिंकान्तिलभतेनारसायनात्। लाभोपायोहिंशस्तानांरसादीनांरसायनम् ॥ ६ ॥

रसायनके सेवनसे मनुष्यको-दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्यता, यौवन, प्रभा-वर्ण, स्वर इन सबकी प्राप्ति तथा देह और इन्द्रियोंके बलकी प्राप्ति होतीहै एवं वाक्सिद्धि, योग्यता और कांतिका लाभ होताहै। रसायनके सेवनसे रसादि धातुओंकी प्राप्ति होतीहै अथवा यों कहिये कि रस आदिक संपूर्ण धातुओंको लाभ करनेवालोंमें परमोत्तम होनेसे इसको रसायन कहतेहैं ॥ ६ ॥

वाजीकारण गुण।

अपत्यसन्तानकरंयरसद्यःसंप्रहर्षणम्।वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्त्रियः ॥ ७ ॥ भवत्यतिप्रियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते। जीर्य्यतोऽप्यक्षयंशुक्रंफलवद्येनदृश्यते ॥ ८ ॥ प्रभूतशाखःशाखीवयेन चैत्योयथामहान्। भवत्यर्च्योबहुमतःप्रजानांसुबहुप्रजः ॥ ९ ॥ सन्तानमूलंयेनेहप्रेत्यचानन्त्यमश्नुते।यशःश्रियंबलंपुष्टिंवाजीकरणमेवतत् ॥ १० ॥

जिस द्रव्यके सेवनसे अधिक संतान उत्पन्न हों, शरीरमें तत्काल हर्ष उत्पन्न हो, घोडेके समान स्त्रियोंमें रमणकरनेका अप्रतिहत बल उत्पन्न हो तथा स्त्रियोंका अत्यंत प्रिय हो एवं जिसके सेवनसे वीर्य अधिक बढे, वृद्धावस्थामें भी वीर्यक्षय न हो और स्त्रीगमनकी शक्ति बनीरहे जैसे देवताके मंदिरमें लगाहुआ पीपल अपनी अनेक शाखाओंसे शोभायमान होताहै उसीप्रकार यह मनुष्य भी जिसके द्वारा

बहुतसी संतानों करके युक्त हो और अनेक बेटे, पोते-आदिकोंसे सेवा किया जावे एवं इस लोकमें संतानके सुखको भोगकर परलोकमें भी संतानके दियेहुए अनंत सुखको भोगे तथा यश, शरीर, लक्ष्मी, तेज, बल और पुष्टिको प्राप्त हो उस द्रव्यको वाजीकरण कहतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

द्विविध प्रयोग।

स्वस्थस्यौजस्करन्त्वेतद्द्विविधंप्रोक्तमौषधम् ।
यद्व्याधिनिर्घातकरंवक्ष्यतेतच्चिकित्सिते ॥ ११ ॥

इसप्रकार स्वस्थ मनुष्योंके सेवन करनेयोग्य और उनके ओज, बल, कांति आदिको बढानेवाले दोनों प्रकारके औषधोंका वर्णन करचुके और जो व्याधिनाशक औषध हैं उनको चिकित्सास्थानमें क्रमसे कथन करेंगे ॥ ११ ॥

चिकित्सितार्थएतावान्विकाराणांयदौषधम् ।
रसायनविधिश्चाग्रेवाजीकरणमेवच ॥ १२ ॥

उन रोगनाशक औषधियोंका वर्णन यथाक्रमसे चिकित्सास्थानमें ही कथन करेंगे। अब रसायन और वाजीकरणविधिको आगे कथन करतेहैं ॥ १२ ॥

अनौषधसेवननिषेध।

अभेषजमितिज्ञेयंविपरीतंयदौषधात् ।
तदसेव्यंनिषेव्यन्तुप्रवक्ष्यामियदौषधम् ॥ १३ ॥

जो द्रव्य औषधसे विपरीत गुणको करनेवाला हो उसको अभेषज कहतेहैं। वह अभेषज सेवन करने योग्य नहीं है। अर्थात् अभेषजको कभी नहीं खाना चाहिये। जो सेवन करने योग्य औषध हैं उनको वर्णन करतेहैं ॥ १३ ॥

द्विविधरसायनविधि।

रसायनानांद्विविधंप्रयोगमृषयोविदुः ।
कुटीप्रावेशिकश्चैववातातपिकमेवच ॥ १४ ॥

ऋषिलोग रसायन विधिका प्रयोग दो प्रकारका कहतेहैं। १ कुटीप्रवेशविधि अर्थात् वायु, धूप आदिसे बचकर कुटी (मकान) में प्रवेशकरके रसायनका सेवन करना। २ वातातपिक अर्थात् जिसमें पवन और धूप आदिका कोई बचाव नहीं कियाजाता ॥ १४ ॥

कुटीनिर्माणविधि।

कुटीप्रावेशिकस्यादौविधिःसमुपदेक्ष्यते । नृपवैद्यद्विजातीनांसाधू-

नांपुण्यकर्मणाम् ॥ १५ ॥ निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणेपुरे । दिशिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥ १६ ॥ विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भांसूक्ष्मलोचनाम् । घनभित्तिमृतुसुखांसुस्पष्टांमनसः प्रियाम् ॥ १७ ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यांस्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्जवैद्यौपधद्विजाम् ॥ १८ ॥

अब प्रथम कुटीप्रावेशिक रसायन प्रयोगकी विधिको कथन करतेहै । राजा, वैद्य, द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) साधु, पुण्यात्मा इनके आश्रयमें जो निर्भय स्थान हो और उत्तम हो जहां सब प्रकारके रसायन संबंधी द्रव्य प्राप्त होसकतेहों ऐसे स्थानमें पूर्व या उत्तरकी दिशाको देखकर कुटी बनावे । उस कुटीमें सब प्रकार रसायनके उपयोगके लिये यथावत् सामग्री होनी चाहिये । वह कुटी उत्तम रीतिसे लम्बी, चौडी और ऊंची तथा क्रमपूर्वक एकके भीतर दूसरा और दूसरेके भीतर तीसरा इसप्रकार तीन कमरोंवाली होनी चाहिये तथा जिसमें युक्तिपूर्वक छोटे २ झरोखे हों उसकी दीवारें उत्तम मजबूत होनी चाहिये और जिस ऋतुमें जिस प्रकारके गुणोंकी आवश्यकता हो वह ऋतुक्रमसे सुखदायक गुणोंवाली हो एवं स्वच्छ और मनोहर होनी चाहिये । उसमें निन्दित शब्द आदिक तथा स्त्रियें आदि न जा सकतीहों तथा इच्छित योग्य रसायनोपकारी संपूर्ण सामग्रीसे युक्त हो । जिसमें श्रेष्ठ वैद्य, और योग्य ब्राह्मण उपस्थित हों ऐसी कुटी बनाना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

कुटीप्रवेशविधि ।

अथोदगयनेशुक्लेतिथिनक्षत्रपूजिते । मुहूर्तकरणोपेतेप्रशस्तेकृतवापनः ॥ १९ ॥ धृतिस्मृतिबलंकृत्वाश्रद्दधानःसमाहितः । विधूयमानसान्दोपान्मैत्रींभूतेपुचिन्तयन् ॥ २० ॥ देवताःपूजयित्वाग्रेद्विजातींश्चप्रदक्षिणम् । देवगोब्राह्मणान्कृत्वाततस्तांप्रविशेत्कुटीम् ॥ २१ ॥

इसके अनंतर उत्तरायण, शुक्लपक्ष और उत्तम तिथि तथा शुभ नक्षत्रमें उत्तम शुभ करण मुहूर्त आदिको देखकर, क्षौर और स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रद्धावान् मनुष्य धृति और स्मृतिके बलको धारणकर सावधानीके साथ काम क्रोधादि मनके दोषोंको त्यागकर संपूर्ण जीवोंको मैत्रीभावसे देखताहुआ देवता आदिकोंका और तत्पश्चात् ब्राह्मणोंका पूजनकर, देव, गौ, ब्राह्मण आदिकोंकी प्रदक्षिणाकरके कुटीमें प्रवेश करे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

रसायनसे प्रथम शोधनका उपदेश ।

तस्यांसंशोधनैःशुद्धःसुखीजातवलःपुनः ।
रसायनंप्रयुञ्जीततत्प्रवक्ष्यामिशोधनम् ॥ २२ ॥

फिर प्रथम शोधनों द्वारा शुद्ध होकर सुखपूर्वक शरीरमे वल प्राप्त होनेपर रसायनका सेवन करे । अव प्रथम शोधनका कथन करतेहैं ॥ २२ ॥

शोधनद्रव्य व क्रम ।

हरीतकीनांचूर्णानिसैन्धवामलकेगुडम् । वचांविडङ्गंरजनींपिप्पलींविश्वभेषजम् । पिवेदुष्णाम्वुनाजन्तुःस्नेहस्वेदोपपादितः॥२३॥

प्रथम स्नेहन और स्वेदनसे उपपन्न शरीर मनुष्य हरड, सेधानमक, आमले, गुड, वच, विडंग, हल्दी, पीपल, सोंठ इन सवको मिलाकर इनका चूर्ण वनावे । फिर यह चूर्ण उचित मात्रासे खाकर ऊपरसे गरमपानी पीवे ॥ २३ ॥

तेनशुद्धशरीरायकृतसंसर्जनाय च । त्रिरात्रंयावकंदद्यात्पञ्चाहं वापिसर्पिषा । सप्ताहंवापुराणस्ययावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥ २४ ॥

इसप्रकार जव मनुष्य शुद्ध शरीर होजाय तो इसको क्रमपूर्वक मलशुद्धिके लिये तीन दिन पर्यन्त यवका पानी (यवागू) पिलावे । अथवा पांच दिन तक घीके संयोगसे या सात दिन तक पुराने यवादिकोका यूप देवे । जवतक मल शुद्ध न होजाय तवतक यही यूप दिया करे ॥ २४ ॥

शुद्धकोष्ठन्तुतंज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् ।
वयःप्रकृतिसात्म्यज्ञोयौगिकंयस्ययद्भवेत् ॥ २५ ॥

इसप्रकार जव देखे कि, उस मनुष्यका कोष्ठ शुद्ध होगयाहै तो अवस्था, प्रकृति और सात्म्यको विचारकर जिसको जिस प्रकारका रसायन प्रयोग हितकारक हो उसको उसप्रकारका रसायन प्रयोग करावे ॥ २५ ॥

हरीतकीके गुण ।

हरीतकींपञ्चरसामुष्णामलवणांशिवाम् । दोषानुलोमिनींलघ्वींविद्यादीपनपाचनीम् ॥ २६ ॥ आयुष्यांपौष्टिकींधन्यांवयसःस्थापनीं पराम् । सर्वरोगप्रशमनींवुद्धीन्द्रियवलप्रदाम् ॥ २७ ॥ कुष्ठंगुल्ममुदावर्त्तंशोषंपाण्ड्वामयंमदम् । अर्शांसिग्रहणीदोषंपुराणंविषमज्वरम् ॥ २८ ॥ हृद्रोगंसशिरोरोगमतीसारमरोचकम् । कासंप्रमेह-

मानाहंह्लीहानमुदरेनवम् ॥ २९ ॥ कफप्रसेकंवैस्वर्य्यंवैवर्ण्यंकामलांक्रिमीन् । श्वयथुंतमकंछर्दिंक्लैब्यमङ्गावसादनम् ॥ ३० ॥ स्रोतोविवन्धान्विविधान्प्रलेपंहृदयोरसोः । स्मृतिबुद्धिप्रमोहंश्चजयेच्छीघ्रंहरीतकी ॥ ३१ ॥

अब हरीतकी (हरड) के गुणोंको कहते हैं । हरडमें लवणरसके सिवाय पांच रस हैं । यह उष्ण, कल्याणकारक, दोषोंको अनुलोमन करनेवाली, हल्की, दीपन और पाचन होतीहै तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकारक, धन्य, परम अवस्थास्थापक, सर्वरोगनाशक, बुद्धिवर्द्धक, इन्द्रियमद, बलदायक एवं कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, बवासीर, ग्रहणी, जीर्णज्वर, विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरोचक, खांसी, प्रमेह, आनाह, प्लीहरोग, नवीन उदररोग, कफका गिरना, स्वरभंग, विवर्णता, कामला, कृमिरोग, सूजन, तमकश्वास, छर्दि, नपुंसकता, अंगोंका रहजाना, अनेक प्रकारके स्रोतोंका विबंध हृदय और छातीका प्रलेप, स्मृति और बुद्धिका मोह इन सब रोगोंको नष्ट करनेवाली है ॥ २६-३१ ॥

हरडके सेवनका निषेध ।

अजीर्णिनोरूक्षभुजःस्त्रीमद्यविषकर्षिताः ।
सेवेरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्चये ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यको बिल्कुल भी अन्न न पचता हो तथा रूक्ष भोजन करनेवाला स्त्री संग और मद्य तथा विषसे व्याकुल मनुष्य एवं जो क्षुधा, तृषा तथा उष्णतासे पीडित हो उसको हरडका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ३२ ॥

आमलेके गुण ।

तान्गुणांस्तानिकर्माणिविद्यादामलकीष्वपि ।
यान्युक्तानिहरीतक्यावीर्य्यस्यतुविपर्य्ययः ॥ ३३ ॥

जो गुण हरडमें हैं और जितने प्रकारके हरडके कर्म हैं वह आमलेमें भी हरडकेही समान हैं केवल विशेषता इतनीही है कि हरड उष्णवीर्य होतीहै और आमले शीतवीर्य होतेहैं ॥ ३३ ॥

दोनों फलोंको अमृतकल्पत्व ।

अतश्चामृतकल्पानिविद्यात्कर्मभिरीदृशैः ।
हरीतकीनांशस्यानिभिषगामलकस्यच ॥ ३४ ॥

इसीलिये हरड और आमलेके गुणकर्मोंको अमृतके तुल्य देखतेहुए वैद्यलोग इन दोनों फलोंको अमृतकल्प कहतेहैं ॥ ३४ ॥

औषधयोग्य उत्तम भूमि ।

औषधीनांपराभूमिर्हिमवाञ्छैलसत्तमः । तस्मात्फलानितज्जानि ग्राहयेत्कालजानिच ॥ ३५ ॥ आपूर्णरसवीर्य्याणिकालेकालेयथाविधि । आदित्यसलिलच्छायापवनप्रीणितानिच ॥ ३६ ॥ यान्यदग्धान्यपूतीनिनिर्व्रणान्यगदानिच । तेषांप्रयोगंवक्ष्यामिफलानां कर्म चोत्तमम् ॥ ३७ ॥

संपूर्ण औषधियोंके ग्रहण करनेकी अथवा उनके उत्पन्न होनेकी सबसे उत्तम भूमि हिमवान् पर्वत है । इसलिये उस हिमवान् पर्वतमें उत्पन्नहुए फल और अन्य वनस्पति जब अपने २ ठीक समय पर पूर्णरस और वीर्यसे संपन्न हों और धूप, जल, छाया, पवन आदिसे यथोचित परिपुष्ट होगई हों एवं उन फलादिकोंमें किसी प्रकारका दुर्गंध, दाग, कीट आदि न लगाहुआ हो एवं अन्य किसी प्रकारके दोषसे दूषित न हों ऐसे फल तथा बूटियोंको विधिके अनुसार ग्रहण करना चाहिये । उन हिमवान्‌के उत्तम फलोंका कर्म और जिस प्रकार उत्तम विधिसे प्रयोग करना चाहिये उसका वर्णन करतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

ब्राह्मयरसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशपलोन्मितान् । हरीतकीसहस्रञ्चत्रिगुणामलकंनवम् ॥ ३८ ॥ विदारिगन्धांबृहतींपृश्निपर्णींनिदिग्धिकाम् । विद्याद्विदारिगन्धाद्यंश्वदंष्ट्रापञ्चमंगणम् ॥ ३९ ॥ बिल्वाग्निमंथश्योनाकंकाश्मर्य्यमथपाटलीम् । पुनर्नवासूर्पपर्ण्यौबलामैरण्डमेवच ॥ ४० ॥ जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तींसशतावरीम् । शरेक्षुदर्भकाशानांशालीनांमूलमेवच ॥ ४१ ॥ इत्येषांपञ्चमूलानां पञ्चानामुपकल्पयेत् । भागान्यथोक्तांस्ततसर्वंसाध्यंदशगुणेऽम्भसि ॥ ४२ ॥ दशभागावशेषन्तुपूतंतद्ग्राहयेद्रसम् । हरीतकीश्च ताःसर्वाःसर्वाण्यामलकानिच ॥ ४३ ॥ तानिसर्वाण्यनस्थीनिफलान्यापोथ्यकूर्चनैः । विनीयतस्मिन्निर्य्यूहेचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ ४४ ॥ मण्डूकपर्ण्याःपिप्पल्याःशंखपुष्प्याःप्लवस्यच । मुस्तानांसविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा ॥ ४५ ॥ मधुकस्यहरि-

द्रायावचायाः कनकस्यच । भागांश्चतुष्पलान्कृत्वासूक्ष्मैलायास्त्व-चस्तथा ॥ ४६ ॥ सितोपलासहस्रञ्चचूर्णितंतुलयाधिकम् । तैल-स्यद्वयाढकंतत्रदद्यात्त्रीणिचसर्पिषः ॥ ४७ ॥ साध्यमौदुम्बरेपात्रे तत्सर्वंमृदुनाग्निना॥ज्ञात्वालेह्यमदग्धञ्चशीतंक्षौद्रेणसंसृजेत् ॥४८॥ क्षौद्रप्रमाणंलेहार्द्धंतत्सर्वंघृतभाजने । तिष्ठेत्संमूर्च्छितंतस्यमात्रां कालेप्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥ यानोपरुन्ध्यादाहारमेवंमात्रांजरांप्रति । षष्टिकःपयसाचात्रजीर्णेभोजनमिष्यते ॥ ५० ॥

पञ्चमूल पांच प्रकारके हैं । जैसे शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली और गोखरू यह लघुपंचमूल है । बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर और पाढला यह बृहत् पंचमूल है । पुनर्नवा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, बला, एरंडकी जड, यह पुनर्नवादि पंचमूल है । जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावर यह जीवकादि पंचमूल है। सरपतकी जड तथा, ईख, दर्भ, काश और शालिधानकी जड यह तृणपंचमूल कहा जाताहै । इन सबको मिलानेसे पचीस औषधियें हुई । इनमेंसे प्रत्येक औषधको २ पल (८ तोला) लेवे । और उत्तम हरड १००० तथा उत्तम परिपक्क आमले ३००० लेने चाहिये । प्रथम उन सब औषधियोंको दशगुने जलमें डालकर पकावे । जब पानी नौ भाग जलकर एक भाग शेष रहे तो उसको शुद्ध वस्त्रमें छान लेवे फिर आमले और हरडोंकी गुठलियें दूरकर उनका बारीक चूर्ण कूटलेवे । यह चूर्ण उन औषधियोंके काथमें मिला देवे । फिर उसीमें ब्राह्मी, पीपल, शंखपुष्पी, केवटी मोथा, नागरमोथा, वायविडंग, लालचन्दन, अगर, मुलहटी, हल्दी, वच, कनकबीज और छोटी इलायची इन सबको चारचार पल लेकर चूर्ण करे । और ११०० पल (१ मन १९ सेर) मिसरी लेवे । तेल २ आढक (८ सेर) घी ३ आढक इन सबको मिलाकर उत्तम तांबेके पात्रमें मंदमंद अग्निसे पकावे । जब गाढा होजाय तब इसको नीचे उतारकर ठण्डा होनेपर इसमें २॥ आढक उत्तम शहद मिलावे । फिर सबको विधिवत् एकमेलकर किसी घृतके चिकने पात्रमें भरकर रख देवे । इसको पंद्रह दिनतक ऐसेही धरा रहने दे । फिर इसमेंसे समयपर उचित मात्रानुसार खाना चाहिये । जितनी मात्रा खानेसे भूख बंद न होजाय उतनी मात्रासे नित्य विधिवत् खाना चाहिये । जब मात्रा जीर्ण होजाय अर्थात् प्रातःकालकी खायीहुई औषध पचकर भूख लगजाय तब साठीचावलोंका भात और दूधका भोजन करना चाहिये ॥ ३८–५० ॥

---

१ मात्रा छः मासासे ४ तोला अथवा ६ तोला है । शुद्धशरीर मनुष्य प्रात काल इसको खाकर ऊपरसे ताजा दूध गौ या बकरीका गरमकर पीवे अथवा गरमजलसे खावे ।

ब्राह्मरसायनका फल ।

वैखानसावालखिल्यास्तथाचान्येतपोधनाः । रसायनमिदंप्राप्य वभूवुरमितायुषः ॥ ५१ ॥ मुक्त्वाजीर्णवपुश्चाग्र्यमवापुस्तरुणंवयः । वीततन्द्राक्लमश्वासानिरातङ्काःसमाहिताः ॥ ५२ ॥ मेधास्मृतिवलोपेताश्चिररात्रंतपोधनाः । ब्राह्मंतपोब्रह्मचर्य्यंचेरुश्चात्यन्तनिष्ठया ॥ ५३ ॥ रसायनमिदंब्राह्ययमायुष्कामःप्रयोजयेत् । दीर्घमायुर्वयश्चाग्र्यंकामांश्चेष्टान्समश्नुते ॥ ५४ ॥

इतिब्राह्मयरसायनम् ।

इस ब्राह्मयरसायनके सेवनसे वैखानस और वालखिल्य तथा अन्यान्य तपोधन महर्षि अमित आयुको प्राप्त हुए और उनके शरीरकी जीर्णता र होकर तरुणावस्था प्राप्त हुई एवं तन्द्रा, क्लान्ति, श्वास आदिसे रहित होकर निरातंक (निरोग) शुद्धकाय हुए । तथा सावधानी, मेधा, स्मृति और वलसे संपन्न होकर चिरकालतक तप और ब्रह्मचर्यको पालन करते रहे । एवं इसी रसायनके प्रभावसे ब्राह्मयतपका आराधन करतेरहे । इस ब्राह्मयरसायनको आयुकी कामनाके लिये प्रयोग करना चाहिये । इसके प्रभावसे मनुष्य दीर्घायु नवीन अवस्थावाला होकर अपनी इच्छानुसार इष्टकामनाओंके फलको भोगताहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

द्वितीयब्राह्म रसायन ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्त्रंपिष्ट्वास्वेदनविधिनापयसऊष्मणासुस्विन्नमनातपशुष्कमनस्थिचूर्णयेत् । तदामलकसहस्त्रस्वरसपरिपीतंस्थिरापुनर्नवाजीवन्तीनागवलावह्मसुवर्च्चलामण्डूकपर्णीशतावरीशंखपुष्पीपिप्पलीवचाविडङ्गस्वयंगुप्तामृताचन्दनागुरुमधुकमधूकपुष्पोत्पलपद्ममालतीयुवतीयूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तम् । पुनर्नागवलासहस्त्रपलस्वरसपरिपीतमनातपशुष्कंद्विगुणितसर्पिषाक्षौद्रसर्पिषावाक्षुद्रगुडाकृतिंकृत्वाशुचौदृढेघृतभावितेकुम्भेभस्मराशेरधःस्थापयेतूअन्तर्भूमेःपक्षंकृतरक्षाविधानमथर्ववेदावित्पक्षात्ययेचोद्धृत्यकनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्द्धकर्षवृद्ध्यायथोक्तेनविधिनाप्रातःप्रातःप्रयुञ्जानोऽग्निवलमभिस-

मीक्ष्यजीर्णेचषष्टिकंपयसासर्पिष्कमुपसेवमानोयथोक्तान्गुणान्स-
मश्नुतेइति ॥ ५५ ॥

उत्तम रस और वीर्यसे संपन्न पकेहुए १००० आमले लेकर उनको एक स्वच्छ बारीक मलमलके वस्त्रमें ढीला बाँधकर दूधमें औटावे । जब आमले पकजायँ तब वस्त्रसे निकालकर उनकी गुठलियें दूर कर देवे और छायामें सुखाडाले । फिर उनका बारीक चूर्णकरके उस चूर्णमें १००० उत्तम पकेहुए आमलोंका स्वरस खपादेवे । उसमें मिलानेकी यह विधि है कि इस आमलेके चूर्णमें आमलेका रस डालता जाय और उसको घोटकर छायामें सुखाता जाय फिर शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागबला, सुवर्चला, ब्राह्मी, शतावर, शंखपुष्पी, पीपल, बच, वायविडंग, कौंचके बीजोंकी गिरी, गिलोय, लालचंदन, अगर, मुलहठी, मौहुवेके फूल, नीलोफर, कमल, मालतीफूल, प्रियंगु, जुही इन सबका चूर्ण उस आमलोंके चूर्णसे आठवां भाग लेकर उसी आमलोंके चूर्णमें मिलादेवे। फिर इस संपूर्ण चूर्णको नागबला (गंगेरन) के १००० पल (सवामन) स्वरसमे घोंट २ कर छायामें सुखाताजाय । जब संपूर्ण रस सूखजाय तब उसमे दोभाग घृत और १ भाग शहद मिलाकर अथवा घृतही मिलाकर नरम होजानेपर गुडमें लड्डूसे बनाकर घृतके चिकने पात्रमें रखदे और उस पात्रको बंदकर पवित्र भूमिमें रखके ढेरके नीचे दबा दे । अथवा जमीनमें गढा खोदकर उसमें ऊपर नीचे राख रख बीचमे घडेको दबा देवे । फिर इस घडेको पंद्रह दिनके बाद अथर्ववेदका जाननेवाला योग्य ब्राह्मण या वैद्य निकाले । फिर उसमें शुद्ध सोना और चांदीके वर्क, ताम्रभस्म, प्रवालभस्म, लोहभस्म, इन सबको मिलाकर आमलोंके चूर्णसे अठवां भाग मिला देवे । एकजीव होनेपर इसमेसे शुद्धकाय मनुष्य प्रातःकाल छः मासा खाया करे और अपने अग्निबलके अनुसार इसकी मात्राको इसप्रकार बढाता चलाजाय जिससे भूख बन्द न होजाय । जब यह औषध जीर्ण होकर दोपहर समय भूख लगे तो शाठीचावल, घृत और दूधका भोजन किया करे । इसके सेवनसे मनुष्य यथोक्त गुणोंको प्राप्त होताहै ॥ ५५ ॥

भवन्ति चात्र ।

इदंरसायनंब्राह्म्यंमहर्षिगणसेवितम् । भवत्यरोगोदीर्घायुःप्रयुञ्जा-
नोमहाबलः ॥ ५६ ॥ कान्तःप्रजानांसिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः।
श्रुतंधारयतेसत्त्वमार्षश्चास्यप्रवर्त्तते ॥ ५७॥ धरणीधरसारश्चवायु-

१ स्वरस न मिलसके तो क्राथ लेना चाहिये । गंगेरणके गुल्शकरी और कंघी प्रसिद्ध नाम हैं ।

नासमविक्रमः । सभवत्यविषश्चास्यगात्रेसंपद्यतेविषम् ॥ ५८ ॥
इतिद्वितीयब्राह्मयरसायनयोगः ।

यहांपर कहा है कि महर्षिगणोंका सेवित यह ब्राह्मयरसायन जो मनुष्य सेवन करताहै वह रोगरहित दीर्घायु और महाबलवान् होताहै । तथा सबका प्यारा सुन्दर सिद्ध मनोरथ, सूर्य और चंद्रमाके समान कांतिवाला और वेदोंका जाननेवाला अथवा श्रवणमात्रसे धारण करनेवाला होजाताहै । इसका मन ऋषियोंके समान होजाताहै । इसका शरीर पर्वतके समान सारयुक्त और वायुके समान पराक्रमवाला होजाताहै । इसके शरीरमें विष भी निर्विष होजाताहै ॥ ५६ ॥५७॥ ५८ ॥

च्यवनप्राश ।

बिल्वाग्निमन्थौश्योनाकःकाश्मर्य्यपाटलिर्बला । पर्ण्यश्चतस्रःपिप्पल्यःश्वदंष्ट्राबृहतीद्वयम् ॥ ५९ ॥ शृङ्गीतामलकीद्राक्षाजीवन्तीपुष्करागुरुः । अभयाचामृताऋद्धिर्जीवकर्षभकौशठी ॥ ६०॥ मुस्तं पुनर्नवामेदाएलाचन्दनमुत्पलम् । विदारीवृषमूलानिकाकोली काकनासिका ॥ ६१ ॥ एषांपलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च । पञ्चदद्यात्तदैकत्रजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ६२ ॥ ज्ञात्वागतरसान्येतान्यौषधान्यथतंरसम् । तच्चामलकमुद्धृत्यनिष्कुलंतैलसर्पिषोः॥६३॥ पलद्वादशकेभृष्ट्वादत्त्वाचार्द्धतुलांभिषक् । मत्स्याण्डिकायाःपूतायालेहवत्साधुसाधयेत् ॥ ६४॥ षट्पलंमधुनश्चात्रसिद्धशीतेसमावपेत् । चतुष्पलंतुगाक्षीर्य्याःपिप्पलीद्विपलंतथा ॥ ६५ ॥ पलमेकंनिदध्याच्चत्वगेलापत्रकेशरात् । इत्ययंच्यवनप्राशःपरमुक्तो रसायनः ॥ ६६ ॥

बेल, अग्निमंथ, शिवनाक, कुंभेर, पाटला, वला, मापपर्णी, मुद्गपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, पीपल, गोखरू, बडी कटेली, छोटी कटेली, काकडासिंगी, भूमिआमला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, हरड, गिलोय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कचूर, नागरमोथा, पुनर्नवा, (या सोंठ) मेदा, इलायची, चंदन, कमलगट्टे, विदारीकंद, अडूसेकी जड, काकोली, काकनासा इन सब औषधियोंको एक २ पल लेवे और शुद्ध पकेहुए उत्तम आमले ५०० लेवे । इन सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें

१ कोई आमले ५०० पल (२० सेर पक्के) लेते हैं ।

पकावे । इस पानीमें सब दवाइयें जौकूट कर डालदेना चाहिये और आमले बारीक थैलीमें ढीले बांधकर उसी जलमें डाल देने चाहिये । जब बारह सेर पानी जलकर ४ सेर पानी रहजाय तो उस पानीको छानकर अलग पात्रमें रख लेवे और थैलीमेंसे आंवले निकालकर उनकी गुठलियें निकालकर फेंक देवे । फिर इन आमलोंको सिलपर पीसकर या हाथसे मथकर १२ पल घृत और तेलमें भूनलेवे । फिर पूर्वोक्त औषधियोंके क्काथमें ५० पल मिसरी मिला चासनी बनावे । उस चासनीमें यह भुनेहुए आमले मिला देवे । विधिवत् अवलेह सिद्ध होनेपर उसको नीचे उतार लेवे । जब वह ठण्डा होजाय तो उसमें २४ तोला शहद मिला देवे और १६ तोला वंशलोचन, ८ तोला पीपल, ४ तोला दालचीनी, ४ तोला इलायचीके बीज, ४ तोला तेजपत्र, ४ तोला नागकेशर, इन सबका बारीक चूर्णकर इसमें मिला देवे । इस अवलेहको च्यवनप्राश कहतेहैं । यह परम उत्तम रसायन है ॥ ५९ ॥६० ॥ ६१ ॥ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

च्यवनप्राशके गुण ।

कासश्वासहरश्चैषविशेषेणोपदिश्यते । क्षीणक्षतानांवृद्धानांबालानाञ्चांगवर्द्धनः॥६७॥ स्वरक्षयमुरोरोगंहृद्रोगंवातशोणितम् । पिपासांमूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ॥६८॥ अस्यमात्रांप्रयुञ्जीतयोऽवरुन्ध्यान्नभोजनम् । अस्यप्रयोगाच्च्यवनःसुवृद्धोऽभूत् पुनर्युवा ॥ ६९ ॥ मेधांस्मृतिंकान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्षंबलमिन्द्रियाणाम् । स्त्रीपुप्रहर्षंपरमग्निवृद्धिवर्णप्रसादंपवनानुलोम्यम्॥७०॥ रसायनस्यास्यनरःप्रयोगाल्लभेतजीर्णोऽपिकुटीप्रवेशात् ॥ जराकृतंरूपमपास्यसर्वंबिभर्तिरूपंनवयौवनस्य ॥ ७१ ॥

इतिच्यवनप्राशः ।

इस च्यवनप्राशके सेवनसे खांसी और श्वास दूर होतेहैं । विशेषकरके च्यवनप्राशके सेवनसे क्षत, क्षीण, वृद्ध और बालकोंके अंगोंकी पुष्टि होती है । तथा हृदयके रोग, छातीके रोग, वातरक्त, प्यास, मूत्रके दोष, वीर्यदोष और स्वरकी क्षीणता यह सब नष्ट होतेहैं । इसकी इतनी मात्रा सेवन करना चाहिये जिससे अजीर्ण न होजाय । जब इसकी मात्रा पचजाय तो क्षुधा लगनेपर दूध, चावल और घृतका भोजन करना चाहिये । च्यवनप्राशको प्रायः दूधके अनुपानसे खाना चाहिये । इसके प्रयोगसेही च्यवनऋषि वृद्ध अवस्थावाले होने हुए भी फिर युवावस्थाको प्राप्त होगये । इसके

सेवनसे मेधा, स्मृति, कांति, आरोग्यता, आयु यह सब वृद्धिको प्राप्त होतेहैं । तथा इन्द्रियोंका बल बढताहै । स्त्रीगमनकी शक्ति होतीहै । जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । शरीरके वर्णका प्रकाश होताहै । वायु अनुलोम होताहै । इस च्यवन प्राश रसायनको यदि वृद्ध मनुष्य भी शुद्ध शरीर होकर कुटी प्रवेश विधिसे सेवन करे तो वृद्धावस्थाके रूपको त्यागकर संपूर्ण युवावस्थाके रूपोंसे संपन्न होजाताहै । पहिले यह रसायन अश्विनीकुमारोंने च्यवनऋषिको सेवन कराया था इसलिये इसको च्यवनप्राश कहतेहैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

चतुर्थआमलकीरसायन ।

अथामलकहरीतकीनामामलकविभीतकानामामलकहरीतकीविभीतकानांवापलाशत्वगवनद्धानांमृदावलिप्तानांकुकूलस्विन्नानामकुलकानांपलसहस्रमुलूखलेसंपोथ्यदधिघृतमधुपललतैलशर्करासंप्रयुक्तंभक्षयेदनन्नभुग्यथोक्तेनविधिना । तस्यान्तेयवाग्वादिभिःप्रकृत्यवस्थापनमभ्यङ्गोत्सादनंसर्पिषायवचूर्णैश्चायञ्चरसायनप्रयोगप्रकर्षोद्विस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्यप्रतिभोजनंयूषेणपयसावापष्टिकःससर्पिष्कोऽतःपरंयथासुखविहारः कामभक्ष्यःस्यात् । अनेन प्रयोगेणऋषयःपुनर्युवत्वमवापुर्बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनोनिर्विकाराःपरंशरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताश्चेरुश्चात्यन्तानिष्टंतपइति७२॥

इतिचतुर्थामलकरसायनम् ।

आमले और हरड अथवा आमले और बहेडे या हरड, बहेडे, आमले इन तीनोंको पलाशकी छालसे लपेटकर ऊपर कपडमिट्टी करके गोलासा बनालेवे । फिर इस गोलेको किसी बडे मुखके बडे पात्रमें रखदेवे । उस पात्रके नीचे बहुतसे छेदकर उसको पानीसे पकते हुए बडे पात्रके मुखपर रखदेवे । जब यह उस नीचेकी भाफसे पक जावें तो उनको निकालकर गुठली आदि निकाल डाले और ऊपरके छिलकेको बारीक पीस लेवे या ऊखलमें कूट लेवे । इसप्रकार शुद्ध, स्वेदित कियाहुआ यह हरड बहेडे आमलोंका छिलका १००० पल लेना चाहिये । फिर इसको घृत, दही, शहद, तिलोंका कल्क, तैल, मिसरी आदिसे विधिवत् सिद्धकरके विधिपूर्वक प्रातःकाल योग्य मात्रासे खाया करे । और इसके सेवनमें अन्नका त्याग कर देवे । भूख लगे तो दूध पीवे । इसके अनन्तर जब शरीर शुद्ध होजावे तब यवागू और विलेपी आदिसे शारीरिक स्वभावको ठीक करे अर्थात् क्रमसे स्वाभाविक भोजन करनेलगे । जितने

दिन इस रसायनका सेवन कियाजाय, यवका आटा और घृत मिला शरीरपर उबटन लगाता रहे। इस रसायन सेवनके पश्चात् क्षुधाके समय अग्निवलके अनुसार यूप, घृत अथवा दूध-घृत या दूध और साठी चावल तथा घृत मिलाकर क्रमपूर्वक सेवन करे। और हितकारक आहार विहारका सेवन करे। इसके अनन्तर इच्छापूर्वक सुख-कारी आहार विहार सेवन करे। इसके प्रयोगसे अनेक ऋषि वृद्धावस्थाको त्याग युवावस्थाको प्राप्त हुए। और निर्विकार रहकर पूर्णायुको भोगते रहे। तथा इसके सेवनसे शरीर बुद्धि और इन्द्रियोंके वलसे संपन्न होकर परम तप तपते थे॥ ७२॥

५ हरीतक्यादि रसायन।

हरीतक्यामलकविभीतकपञ्चपञ्चमूलनिर्य्यूहेणपिप्पलीमधुमधूक-काकोलीक्षीरकाकोलीआत्मगुप्ताजीवकर्षभकक्षीरशुक्लाकल्कसंप्र-युक्तेनविदारीस्वरसेनक्षीराष्टगुणसंप्रयुक्तेनचसर्पिषःकुम्भंसाधयि-त्वाप्रयुंजानोऽग्निवलंसमवेक्ष्यैव। जीर्णेचक्षीरसर्पिर्भ्यांशालिपष्टि-कमुष्णोदकानुपानमश्नञ्जराव्याधिपापाभिचारभ्यपगतशरीरः बुद्धीन्द्रियवलमतुलमुपलभ्याप्रतिहतसर्वारम्भः परमायुरवाप्नुया-दिति॥ ७३॥

इतिपञ्चमहरीतकी।

हरड, आमले, बहेडे और पूर्वोक्त पांचों पंचमूलका क्वाथ बनावे। तथा पिंपली, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली, कौंचके बीजोंकी गिरी, जीवक, ऋषभक, क्षीरविं-दारी इन सबका कल्क बनावे। फिर कल्कसे आठगुना विदारीकंदका रस और आठगुना गौका दूध और कल्कसे ४ गुना घृत डालकर घृतपाकविधिसे घृतको सिद्धकरे। इस घृतको शुद्धकाय मनुष्य अग्निवल विचारकर सेवन करे। जब घृत जीर्ण होजाय तब दूध शाली अथवा साठीके चावल घृत और दूध मिलाकर खावे। परन्तु जल भोजनके समय भी गर्म ही पीवे। शीतल न पीवे। इस घृतके सेवनसे बुढापा, रोग, पाप किसीका किया मंत्र, तंत्र आदि यह कोई शरीर पर अपना असर नहीं करसकते तथा शरीर, बुद्धि और इन्द्रियोंका बल अत्यन्त बढजाता है। संपूर्ण कामोंमें अप्रतिहत सिद्धि प्राप्त होती है। एवं आयुकी वृद्धि होतीहै॥ ७३॥

६ हरीतक्यादि रसायन।

हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतवल्लीविश्वभे-

पजमधूकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्कराभ्यामपि चसन्नियामलकस्वरसशतपलपीतमामलकचूर्णमयश्चूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंपाणितलमात्रंप्रातःप्रातःप्राश्ययथोक्तेनविधिनासायं मुद्गयूपेणपयसावासस्पिष्कंशालिषष्टिकमश्नीयात् । त्रिवर्षप्रयोगादस्यवर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतिश्रुतमेवतिष्ठतेसर्वामयाःप्रशाम्यन्तिविषमविषंभवतिगात्रेगात्रमश्मवत्स्थिरीभतिअदृश्योभूतानां भवतीति ॥ ७४ ॥

हरड, आँवला, बहेडा, हल्दी, शालिपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहठी, पीपल और कथ इन सबके कल्कसे और इनसे आठगुना दूध डालकर घृतको सिद्ध करे । जब वह शीतल होजाय तब शहद और मिसरी मिलावे फिर १००पल आमलेके चूर्णको आमलेके स्वरसकी भावना दे वह चूर्ण भी इस घृतमें मिलावे और आमलेके चूर्णसे चौथाभाग शुद्ध लोहभस्म, मिलावे । फिर इसमेंसे ६ मासासे आरंभकर दो तोला तक कुटीप्रवेशविधिसे नित्य प्रातःकाल खायाकरे । सायंकालमें मूंगके यूष अथवा दूधके साथ घृतयुक्त शाली अथवा शाठी चावल भोजन करे । इस रसायनको ३ वर्ष पर्यन्त सेवन करना चाहिये । इससे १०० वर्ष पर्यन्त सफेद बाल या सलवट वगैरह कोई वृद्धावस्थाका चिह्न नहीं होगा रोगरहित पूर्णआयुको भोगेगा । जिस बातको एकवार सुने उसको कभी नहीं भूले, शरीरमें कोई रोग न हो, इस मनुष्यके शरीरमें विष भी निर्विष होजाय, देह पत्थरके समान दृढ हो, भूत आदि इसको देख न सकें और मनुष्योंका प्यारा हो ॥ ७४ ॥

भवन्ति चात्र ।

यथामराणाममृतंयथाभोगवतांसुधा । तथाभवन्महर्षीणांरसायनविधिःपुरा ॥ ७५ ॥ नजरांनचदौर्बल्यंनातुर्य्यंनिधनंनच । जग्मुर्वर्षसहस्राणिरसायनपराःपुरा ॥ ७६ ॥ नकेवलंदीर्घमिहायुरश्नुतेरसायनंयोविधिवन्निषेवते । गतिंसदेवर्षिनिषेवितांशुभांप्रपद्यते ब्रह्मतथेतिचाक्षरम् ॥ ७७ ॥

यहांपर कहतेहैं कि जैसे देवताओंको अमृत, भोगी (वासुकी आदि नागों) को सुधा होतीहै उसीप्रकार पूर्वसमयमें महर्षिलोगोंके लिये रसायन प्रयोग होता था रसायन सेवन करनेवाले ऋषियोंको हजार वर्ष पर्यन्त भी बुढापा, रोग, मृत्यु, दुर्बलता

कोई नहीं होसकताथा । रसायन सेवन करनेसे केवल आयुकी वृद्धि होतीहै इतना ही नहीं किन्तु विधिवत् रसायन सेवनसे देवता और ऋषियोंकरके सेवित हुआ अक्षय सुखको प्राप्त होताहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

तत्रश्लोकः ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्षड्योगाःपरिकीर्त्तिताः ।
रसायनानांसिद्धानामायुर्यैरनुवर्त्तते ॥

इति चरक० चिकित्सिते अभयामलकीयेरसायनपादः प्रथमः १.

यहां एक श्लोक है कि इस अभयामलकीय नामक अध्यायके प्रथम पादमें इन छः रसायनके योगोंका वर्णन किया गयाहै । जो मनुष्य इन सिद्ध रसायनोंको सेवन करताहै उसकी वृद्धावस्था दूर होकर फिर युवावस्था प्राप्त होजातीहै और दीर्घायु होताहै ॥ ७८ ॥

इत्यभयामलकीये रसायनपादः प्रथमः ॥ १ ॥

अथातःप्राणकामीयंरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥ ७९ ॥

अब हम प्राणकामीय रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ७९ ॥

प्राणकामाःशुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुतहितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरंवयसःस्थापनंनिद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यदौर्बल्यापहरमनिलकफपित्तसाम्यकरंस्थैर्य्यकरमवबद्धमांसहरमन्तराग्निसन्धुक्षणंप्रभावर्णस्वरोत्तमकरंरसायनविधानम् । अनेनच्यवनादयोमहर्षयःपुनर्युवत्वमापुः । नारीणांचेष्टतमा बभूवुः । स्थिरसमसुविभक्तमांसाःसुसंहतस्थिरशरीराःसुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाःसर्वत्राप्रतिहतपराक्रमाःसर्वक्लेशसहाश्च ॥ ८० ॥

हे आयुके बढानेकी इच्छावाले मनुष्यो ! अब जिस प्रकारके रसायनका वर्णन करतेहैं यह भी दूसरे अमृतके समान है । यह रसायन अचिन्त्य, अद्भुतप्रभाववाला, आयुष्य, आरोग्यकारक, अवस्थास्थापक, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्लम और दुर्बलताको हरण करनेवाला वातादिदोषोंको दूरकर शरीरको दृढ तथा आलस्यरहित बनाताहै । तथा मांसकी शिथिलता दूरकर अग्निको दीपन करताहै एवं, प्रभाव, वर्ण

और स्वरको उत्तम करताहै । यह रसायन देवताओंको भी हितकारी है और इसीके द्वारा च्यवनादि ऋषियोंने फिर वृद्धावस्थासे युवावस्था प्राप्त की थी। इसके सेवनसे शरीरका मांस दृढ, सम और सुविभक्त रहताहै तथा बल, वर्ण और इन्द्रियें सब प्रसन्न रहतीहैं, पुरुषका पराक्रम कभी घटता नहीं एवं क्लेशोंको सहन करनेकी शक्ति रहतीहै ८०

सर्वेशरीरदोषाभवन्तिग्राम्याद्याहारादम्ल–लवण–कटुक-क्षारशुष्कशाकमाषतिलपललपिष्टान्नभोजिनांविरूढनवशूकशमीधान्यविरुद्धासात्म्यरूक्षक्षाराभिष्यन्दिभोजिनांक्लिन्नगुरुपूतिपर्य्युषितभोजिनांविषमाशनाध्यशनाप्रियाणांदिवास्वप्नस्त्रीमद्यनित्यानांविषमातिमात्रव्यायामसंक्षोभितशरीराणांभयक्रोधशोकलोभमोहायासबहुलानामतोनिमित्ताद्धिशिथिलीभवन्तिमांसानिविमुच्यन्तेसन्धयोविदह्यतेरक्तंविष्यन्दतेचानल्पंमेदोनसन्धीयतेऽस्थिषुमज्जाशुक्रंनप्रवर्त्ततेक्षयमुपैत्योजःसएवंभूतोग्लायतिसीदतिनिद्रातन्द्रालस्यसमन्वितोनिरुत्साहःश्वसिति । असमर्थश्चेष्टानांशारीरमानसानांनष्टस्मृतिबुद्धिच्छायोरोगाणामधिष्ठानभूतोनसर्वमायुरवाप्नोति । तस्मादेतान्दोषानवेक्षमाणःसर्वान्यथोक्तानहितानपास्याहारविहारान्रसायनानिप्रयोक्तुमर्हति ॥ ८१ ॥

असात्म्य आहारोके सेवनसे अथवा खट्टे, नमकीन, चरपरे, क्षार, रूक्ष तथ शुष्क शाक, उडद, तिल अनूपसंचारी जीवोंका मांस विरुद्ध या नवीन शूक औ शमीधान्य या अभिष्यन्दी, क्लिन्न, भारी, दुर्गंधयुक्त, बासी अन्न, विषमान्न आदिवे सेवनसे अथवा अध्यशन, दिनमें सोना, स्त्रीसंग, मद्य, विषम वा अत्यंत व्यायाम, एवं भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह और अत्यंत परिश्रम इनके अधिक सेवनसेही शरीरमें सब प्रकारके दोष उत्पन्न होकर देहके मांसको शिथिल करदेतेहै, संधियें ढीली होजाती हैं, रक्त विदाही तथा क्लेदयुक्त हो निगडजाताहै मेद अत्यंत निष्यंदित होजाताहै और मज्जा अस्थियोंमें संपन्न नहीं होती एवं शुक्र प्रवृत्त नहीं होता तथा ओजका क्षय होजाताहै । इसप्रकार ग्लानि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, निरुत्साह और श्वासकी वृद्धि होतीहै । शारीरिक और मानसिक चेष्टायें निर्बल होजातीहैं । स्मृति, बुद्धि और कान्तिका नाश हो शरीर रोगोंका घर बनजाता तथा मनुष्य अल्पायु होजाता हैं । इसलिये मनुष्यको उचित है कि उपरोक्त दोषोंको देखताहुआ असात्म्य आहार विहारोंका त्याग कर रसायनका सेवन करे ॥ ८१ ॥

आमलक घृत रसायन।

इत्युक्त्वाभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच । आमलकानांसुभूमिजानां कालजानामनुपहतगन्धवर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवीर्य्याणांस्वरसेनपुनर्नवाकल्कपादसंप्रयुक्तेनसर्पिषासाधयेदाढकमतःपरंविदारीस्वरसेनजीवन्तीकल्कसंप्रयुक्तेन। अतःपरंचतुर्गुणेनपयसावाबलातिबलाकषायेणशतावरीकल्कसंप्रयुक्तेन । अनेनक्रमेणैकैकंशतपाकंसहस्रपाकंवाशर्कराक्षौद्रचतुर्भागसंयुक्तंसौवर्णेराजतेमार्त्तिकेवाशुचौदृढेघृतभाविते कुम्भेस्थापयेत् । तद्यथोक्तेनविधिनायथाग्निप्रातःप्रातःप्रयोजयेत् । जीर्णेचक्षीरसर्पिर्भ्यांशालिषष्टिकमश्नीयात् । अस्यप्रयोगाद्वर्षशतंवयोऽजरंतिष्ठतिश्रुतमवतिष्ठतेसर्वामयाः प्रशाम्यन्तिअप्रतिहतगतिःस्त्रीष्वपत्यवान्भवति ॥ ८२ ॥

इसप्रकार कहकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि उत्तम समयमें उत्तम पृथ्वीमें उत्पन्नहुए संपूर्ण गंध, वर्ण, रस, संपन्न, पूर्ण प्रमाण, वीर्य संपन्न आमलोंका स्वरस और उस स्वरससे चौथाभाग पुनर्नवाका कल्क लेवे। १६ सेर दूध, १६ सेर बला और अतिबलाका क्वाथ, १ सेर शतावरका कल्क इन सबको मिलाकर ४ सेर पक्का घृत सिद्ध करे तथा विदारीकंदके स्वरससे और जीवन्तीके कल्कसे चारगुना दूध मिला इस १ आढ़क घृतको सिद्ध करे। इसप्रकार क्रमसे१०० बार अथवा १००० बार उपरोक्त औषधियोंके स्वरसक्वाथ द्वारा घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे। फिर चौथा भाग मिसरी और मिलावे । फिर इन सब औषधियोंको सोना, चांदी अथवा घृतसे चिकने मट्टीके पात्रमें भरकर रख देवे। इस रसायनको यथोक्त विधिके अनुसार जठराग्निका बलाबल विचारकर प्रातःकाल सेवन करे। जीर्ण होनेपर साठी अथवा शाली चावलोंका भात दूध घृतके संयोगसे भोजन करे। इसके प्रभावसे मनुष्य १०० वर्षतक वृद्धावस्थारहित रहताहै । सुनीहुई बातको धारणकर लेताहै अर्थात् सुननेमात्रसेही शास्त्रोंको यादकर लेताहै। सब रोग शान्त होतेहैं। संपूर्ण इच्छाओंको निर्विघ्नतासे पूर्णकरसके अथवा कोई आरंभ निष्फल न हो स्त्रियोंमें संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति उत्पन्न हो ॥ ८२ ॥

भवति चात्र ।

बृहच्छरीरंगिरिसारसारंस्थिरेन्द्रियश्चातिबलेन्द्रियश्च । अधृष्यमन्यैरतिकान्तरूपंप्रशस्तपूजासुखवित्तभाक्च ॥ ८३ ॥ बलंमहद्व-

र्णविशुद्धिरघ्यास्वरोघनौघस्तनितानुकारी । भवत्यपत्यंविपुलंस्थिरञ्चसमश्नतोयोगमिमंनरस्य ॥ ८४ ॥

इसके गुणोंके विषयमें यहांपर कहतेहैं कि जो मनुष्य इस आमलक घृत रसायनको सेवन करताहै वह बृहत्काय पर्वतके समान सारयुक्त, दृढ इन्द्रियोंवाला तथा इन्द्रियोंके बलसे सम्पन्न होताहै । कोई मनुष्य भी इसको जीत न सके, अत्यंत सुन्दर स्वरूपवाला योग्य पुरुषोंसे पूजित, सुखी और शुद्ध चित्तवाला होताहै तथा महाबलवान्, सुन्दर शुद्ध वर्णवाला, मेघके समान गंभीर स्वरवाला, बिजलीके समान गरजनेवाला बहुत और दृढ संतानके सुखको भोगताहै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

आमलकावलेह ।

आमलकसहस्त्रंपिप्पलीसहस्त्रसंप्रयुक्तंपलाशतरुभस्मनःक्षारोदकोत्तरंतिष्ठेत् । तदनुगतक्षारोदकमनातपशुष्कमनास्थिचूर्णीकृतंचतुर्गुणाभ्यांमधुसर्पिभ्यांसंनीयशर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंघृतभाजनस्थंषण्मासान्स्थापयेदन्तर्भूमेस्तस्योत्तरकालमग्निबलसमांमात्रांखादेत्पौर्वाह्णिकःप्रयोगः । सात्म्यपथ्यश्चाहारविधिर्नापराह्णिकः। अस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतिसमानंपूर्वेण ॥ ८५ ॥

१००० उत्तम पकेहुए आमले और १००० पीपल इन दोनोंको ढाक (पलाश) के छिलकोंकी क्षार और पानी मिलाकर उसमें भिगो देवे और छायामें रक्खे । जब वह क्षार इन पीपल और आमलेमें सूखजाय तो इन आमलोंकी गुठलियें दूरकर खूब सुखाकर पीपल और आमलेका बारीक चूर्ण करलेवे । फिर इसमें चौगुना घृत और शहद मिलावे और चौथा भाग मिसरी मिलाकर घीके चिकने बरतनमें बंदकर पृथ्वीमें गाड देवे और छः महीने पर्यन्त गडा रहनेदेवे । फिर इसको निकालकर अग्निबलके समान उचित मात्रासे प्रातःकाल खायाकरे । औषधिके जीर्ण होनेपर सात्म्य और पथ्य भोजन किया करे । फिर रात्रिके समय कुछ न खाय, इसके सेवनसे १०० वर्षतक मनुष्य अजर अर्थात् बृद्धावस्थारहित रहताहै ॥ ८५ ॥

दूसरा आमलकावलेह ।

आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामलकसहस्त्रस्वरसपरिपीतंमधुघृताढकाभ्यांद्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंघृतभाजनस्थंप्रावृषिभस्मराशौनिदध्यात्तद्वर्षान्तेसा-

त्न्यपथ्याशीप्रयोजयेत् । अस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठती-तिसमानंपूर्वेण ॥ ८६ ॥

४ सेर आमलोंके चूर्णको १००० आमलोंके स्वरसमें २१ दिन भावना देवे । फिर इस चूर्णको शहद और घृत २ आढक लेकर उसमें आठवाँ भाग पीपलका चूर्ण और चतुर्थ भाग मिसरी इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भर देवे । और वर्सातमें इस औषधीसे भरे पात्रको भस्ममें गाड देवे। वर्सातके पीछे अर्थात् आश्विनके महीनेमें इसको निकालकर विधिपूर्वक सेवन करे और पथ्य भोजन करे । इसके प्रभावसे मनुष्य पहिली अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्षतक नीरोग रहताहै ॥ ८६ ॥

विडङ्गावलेह ।

विडङ्गतण्डुलचूर्णानामाढकंपिप्पलीतण्डुलानामध्यर्द्धाढकंसितो-पलासर्पिस्तैलमध्वर्द्धाढकैःषड्भिरेकीकृतघृतभाजनस्थंप्रावृषिभ-स्मराशावितिसर्वंसमानंपूर्वेणयावदाशी ॥ ८७ ॥

बायविडंगके चावलों (तुषरहित बायविडंग) का चूर्ण १ आढक, पीपलके स्वच्छ कणकोंका चूर्ण आधा आढक, मिसरी आधा आढक, घृत आधा आढक, तैल आधा आढक, शहद आधा आढक इन छः द्रव्योंको एककर घीके चिकने पात्रमें बन्दकर श्रावणके महीनेमें भस्मके ढेरके नीचे दबा दे। और आश्विनके महीनेमें निकालकर विधिवत् प्रयोग करनेसे पूर्वोक्त संपूर्ण गुणोंको करताहै ॥ ८७ ॥

तीसरा आमलकावलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यांसपिधानायां बाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत् । तानि सुस्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेनपिप्पलीचूर्णानामाढ-केनचविडङ्गतण्डुलचूर्णानामध्यर्द्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानांद्वाभ्यां द्वाभ्यामाढकाभ्यांतैलस्यमधुनःसर्पिषश्चसंयोज्यशुचौदृढेघृतभा-वितेकुम्भेस्थापयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्धंप्रयोगः । अस्यप्रयोगा-द्वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमंपूर्वेण ॥ ८८ ॥

उत्तम सर्वगुणसम्पन्न १००० आँवलोंको गीली ढाककी लकडी या छिलकोंमें लपेटकर कपडमिट्टीकर जंगली ऊपलोंकी अग्नि द्वारा पकावे परन्तु इतने ऊपले लगावे

जिसमें वह आँवले जलने न पावें केवल अग्निकी गर्मीसे पकजाने चाहिये। फिर इनको निकालकर ठण्डे होनेपर इनकी गुठलियें दूरकर इनमें १ आढक पीपलका चूर्ण और १ आढक तुपरहित विडंगका चूर्ण, १॥ डेढ आढक मिसरी, दो आढक तेल, २आढक शहद और २ आढक घृत इन सबको मिलाकर एक घनजानेपर घी के चिकने पात्रमें भरके २१ दिन धरा रहने देवे। फिर विधिवत् प्रयोग करनेसे मनुष्य पूर्वावस्थाके समान, बल, वीर्य संपन्न, वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष पर्यन्त आयुके सुखको भोगताहै ॥ ८८ ॥

नागवला रसायन।

धन्वनिकुशास्तीर्णेस्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिकेसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यपगतविपश्वापदपवनसलिलाग्निदोषेकर्षवल्मीकश्मशानचैत्योपररसवर्जितेदेशेयथर्तुसुखपवनसलिलादित्यसेवितेजातान्यनुपहतान्यनध्यारूढान्यवालान्यजीर्णान्यविगतवीर्य्याणिशीर्णपुराणपर्णान्यसञ्जातफलानितपसितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्चनःस्वस्तिवाचयित्वाद्विजातीन्सुमुहूर्त्तेनागवलामूलान्युद्धरेत्। तेषांसुप्रक्षालितानांत्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रंवाश्लक्ष्णपिष्टमालोड्य पयसाप्रातःप्रयोजयेच्चूर्णीकृतानिवापिबेत्। पयसामधुसर्पिर्भ्यां वासंयोज्यभक्षयेत्। जीर्णेचक्षीरसर्पिर्भ्यांशालिषष्टिकमश्नीयात्। धवखदिरशिंशपासनसारणाश्वासंवत्सरप्रयोगादस्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ८९ ॥

उत्तम जांगल भूमिमें जिस जगह कुशा उत्पन्न होरहीहो और काली, या सुवर्णके समान पीली एवं मधुर और चिकनी मिट्टी हो, जिस स्थानमें किसी प्रकारका विप या विपधर जानवर अथवा कुत्ते आदि न फिरते हों और किसी पवन, जल या अग्निसे दग्ध आदि उपद्रवयुक्त न हो, जिस स्थानमें खेती, सांपकी बँबई, श्मशान, किसी देवताका स्थान अथवा ऊपर मिट्टीका संसर्ग न हो तथा ऋतुकालके अनुकूल पवन, जल, धूप आदिका यथोचित्त संसर्ग होताहो ऐसी भूमिमें सर्वगुणसंपन्न योग्य रीतिपर नागवला उत्पन्न होरही हो वह नागवला किसी वृक्षकी छाया अथवा बेल आदिसे ढकीहुई न हो एवं कच्ची, पुरानी, सूखी, हीनवीर्य, सूखे सडे पत्रोंवाली किसी कीटआदिकी खायीहुई न हो, जिसमें अभी फल न आयेहों। ऐसी नागवलाको माघ अथवा फाल्गुनके महीनेमें विधिपूर्वक प्रातःकाल पवित्र हो, देवता आदि-

कोंका पूजन कर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन करा उत्तम मुहूर्तमें नागबला (गंगेरन)की जडोंको उखाडकर लावे । उन जडोंको सुन्दर जलसे धोकर उन जडोंकी छाल १ तोला अथवा दो तोला या चार तोला मात्र लेकर बारीक पीसलेवे । उसको दूधमें घोलकर अथवा उसका चूर्ण दूधमें घोलकर प्रातःकाल पीजावे । अथवा शहद घृत और दूधमें मिलाकर पीवे । मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, घृत और साठीके चावलोंका भोजन करे । इसी प्रकार धव, खदिर, शीशम, बिजेसार, अम्बाडाकी जडका प्रयोग भी किया जाताहै । इसका १ वर्ष प्रयोग करनेसे मनुष्य बलवर्णादि संपन्न पूर्व अवस्थाके समान वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके सुखको भोगताहै ॥ ८९ ॥

बलादिक रसायनद्रव्य ।

बलातिबलाचन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिंशपासनस्वरसाःपुनर्नवान्ताश्चौषधयोदशयेवयःस्थापनाख्याताःस्तेषांस्वरसानागबलावत्स्वरसानामलाभेत्वयंस्वरसविधिश्चूर्णानामाढकमुदकस्याहोरात्रस्थितंमृदितपूतंस्वरसवत्प्रयोज्यम् ॥ ९० ॥

बला, अतिबला, चंदन, अगर, धव, तिनिश, खैर, शीशम, विजेसार इन सब वृक्षोंका स्वरस और लघु पंचमूल, बृहत् पंचमूल तथा पुनर्नवा इन ग्यारह औषधियोंका स्वरस इन सबको मिलाकर नागबला रसायनके समान सेवन करे । इनके सेवन करनेसे नागबला रसायनके समान गुण होताहै । यदि इनका स्वरस न मिल सके तो औषधोंका चूर्ण १ आढक लेकर, १ आढक जलमें भिगो रक्खे, १ दिन रात्रिके बाद मलकर छान लेवे । इस रसका स्वरसके समान प्रयोग करे ॥ ९० ॥

भल्लातकक्षीर ।

भल्लातकानिअनुपहतानिअनामयानिआपूर्णरसप्रमाणवीर्य्याणिपक्वजाम्बवप्रकाशानिशुचौशुक्रेवामासेसंगृह्ययवपल्वेमापपल्वेवानिधापयेत् । तानिचतुर्मासस्थितानिसहस्येवामासेप्रयोक्तुमारभेत । शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरःपूर्वंदशभल्लातकान्यापोथ्याष्टगुणेनाम्भसासाधुसाधयेत् । तेषांरसमष्टभागावशिष्टंपूतंसपयस्कंपिबेत्सर्पिषान्तर्मुखमभ्यज्यतानिएकैकभल्लातकोत्कर्षापकर्षेणदशभल्लातकानिआत्रिंशतःप्रयोज्यानि । नातःपरमुत्कर्षःप्रयोगविधानेनासहस्रपरएवभल्लातकप्रयोगः । जीर्णेचसर्पिषापयसाशालिषष्टिका-

शनमुपचारःप्रयोगान्तेचद्विस्तावत्पयसैवोपचारस्तत्प्रयोगाद्वर्षश-
तमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ९१ ॥

ज्येष्ठ अथवा आषाढके महीनेमें उत्तम शुद्ध रस, वीर्यसे पूरित काले जामुनके समान पकेहुए पूर्ण प्रमाणके भिलावेको ला, पहिले यव अथवा उडदकी राशिमें चार महीने पर्यंत गाडकर रख देवे। फिर चार महीनेके उपरांत मार्गशीर्ष या पौष महीनेंमें उनको निकालकर इस प्रकार सेवन करना आरंभ करे। पहिले दिन दश भिलावोंको कूटकर उससे आठगुने जलमें डालकर अग्निपर चढा दे जब पानी १ भाग रहजाय तो उसे उतारकर छान ले फिर दूधमें डाल इसका सेवन करे। भिलावा सेवन करनेसे शीत स्निग्ध मधुरकाय मनुष्य प्रथमको मुख और तालुमें अच्छी रीतिसे घृत चुपड लेना चाहिये। दूसरे दिन ११, तीसरे दिन १२ इसी प्रकार क्रमसे प्रतिदिन एकएक भिलावेको अधिक करता हुआ तीस पर्यन्त वढावे फिर क्रमशः घटाते हुए दशपर ले आवे। इस प्रकारसे एकमहीना ३० तक वढावे और एकमें घटानेमें १००० भिलावे पर्यन्त सेवन होजाताहै इससे अधिक सेवन नहीं करना चाहिये। जब औषधी भले प्रकार जीर्ण होजाय तब शालिचावल दूध और घृतके साथ भोजन करे। तथा भिलावेका सेवन करना छोड देनेपर भी शालिचावलका भात दूध और घृतके साथ सेवन करना उचित है। इस प्रकार कहीहुई इस भल्लातक रसायनसेवनसे १०० वर्ष पर्यन्त मनुष्य नीरोग होकर अजर अर्थात् वृद्धावस्थासे रहित हो सुख भोगताहै ॥ ९१ ॥

द्वितीय भल्लातक रसायन।

भल्लातकानांजर्जरीकृतानांपिष्टस्वेदनंपूरयित्वाभूमौआकण्ठंनि-
खातस्यस्नेहभावितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योडुपेनापिधाय
कृष्णमृत्तिकावलिप्तंगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्तेषांयःस्वरसःकुम्भंप्र-
पद्येतततोऽष्टभागमधुसम्प्रयुक्तंद्विगुणघृतमद्यात्। तत्प्रयोगाद्वर्ष-
शतमक्षरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥ ९२ ॥

---

१ भिलावा अनुचित रीतिसे सेवन कियाहुआ विषसे भी अधिक हानिकारक है इसका छींटा लगनेसे या हवा लगने मात्रसे ही शरीरमें सूजन खाज कभी जरम तक होजातेहैं इसके खानेका क्रम पहलें दिन एक, दूसरे दिन २, तिसरे दिन तीन, इस क्रमसे ३० वढावे फिर घटाते २ एक पर लाकर छोडदे इसका क्काथ उपरोक्त रीतिसे दूधमें मिलाकर पीवे कोई भिलावेकी मींगीको ही इस क्रमसे सेवन करना कहतेहैं किसी वैद्यके बिना स्वयं ही भिलावा कभी नहीं खाना चाहिये।

ऊपरकी टोपी वगैरह दूरकर शुद्ध भिलावेको वारीक पीसकर पीठी वना एक ऐसी हाँडीमें जिसके नीचे छेद हों भरकर ऊपरसे ढक देवे। और काली मिट्टीसे उसके मुखको वंद करदेवे। फिर १ घृतकी चिकनी हांडीको मुखपर्यन्त जमीनमें गाडदेवे। उसके ऊपर इस भिलावोंसे भरीहुई हांडीको रख देवे और विधिवत् संधियें जोडकर इसके चारों ओर गोबरी लगाकर आग लगा देवे। फिर शीतल होनेपर नीचेके गढेमें आगकी गर्मीसे जो भिलावेका रस या तेल टपकाहुआ हो उसको निकालकर उसमेंसे उचित मात्रा लेकर उसमें आठ भाग शहद और दोगुना घृत मिलाकर पहिले दूसरे घृतसे मुख चिकनाकर फिर इस घृतशहदयुक्त भिलावेके तेलको पीजावे। इसके विधिवत् सेवनसे मनुष्य वल, वर्ण संपन्न, दृढइन्द्रिय, पूर्वअवस्थाके समान, वृद्धावस्थारहित १०० वर्ष आयुके सुखको भोगताहै ॥ ९२ ॥

भल्लातकतेल।

भल्लातकतैलपात्रंसपयस्कंमधुकेनकल्केनाक्षमात्रेणशतपाकंकुर्या-त्समानंपूर्वेण ॥ ९३ ॥

भिलावेके चार सेर तैलको दूध और मुलहठीके कल्कसे १०० वार पकावे फिर इसमेंसे १ तोला नित्य दूधमें मिलाकर पीया करे तो पूर्व अवस्थाके समान, वल, वर्ण, इन्द्रिय संपन्न रोगरहित और वृद्धावस्थारहित होकर १०० वर्षकी आयुके सुखको भोगताहै ॥ ९३ ॥

भल्लातकविधान।

भल्लातकक्षीरंभल्लातकक्षौद्रंभल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकयूषोभल्लातकभल्लातकसर्पिर्भल्लातकपललंभल्लातकसक्तवोभल्लातकलवणंभल्लातकतर्पणमितिभल्लातकविधानमुक्तम् ॥ ९४ ॥

इसप्रकार भिलावेका दूध, भिलावेकाशहद, भिलावेका तैल, भिलावेका गुड, भिलावेका यूप, भिलावेका घृत, भिलावेकी पीठी, भिलावेकी सत्तू, भिलावेका नमक, भिलावेका तर्पण यह सब भिलावेकी पृथक् २ क्रियाये होतीहैं। बुद्धिमान् वैद्य युक्तिपूर्वक जहां जो जिसप्रकार होसकताहो उस प्रकार प्रयोग करे[१]। इसप्रकार भिलावोंकी विधि कहीगई है ॥ ९४ ॥

---

१ भिलावेकी हरएक क्रिया पहिले हाथोंको घृत या तैल चुपडकर करना चाहिये। चिकनाई न लगानेसे भिलावेका तेल जिस जगह लगजायगा उसी जगह सूजन और खाज उत्पन्न होजातीहै भिलावेके सेवन समय जितना घी पचसके सेवन करे।

भिलावेके गुण।

भवन्ति चात्र।

भल्लातकानितीक्ष्णानिपाकीन्यग्निसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पानिप्रयुक्तानियथाविधि ॥ ९५ ॥ एतेदशविधास्त्वेषांप्रयोगाःपरिकीर्त्तिताः। रोगप्रकृतिसात्म्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रकल्पयेत् ॥ ९६ ॥ कफजोनसरोगोस्तिनविबन्धोऽस्तिकश्चन। यंनभल्लातकंहन्याच्छीघ्रंमेधाग्निवर्द्धनम् ॥ ९७ ॥

यहांपर कहाहै कि भिलावे अत्यंत तीक्ष्ण और अग्निके समान पाचक होतेहैं। इनको विधिपूर्वक प्रयोग कियाहुआ अमृतके समान गुण करताहै। इनका दश प्रकारसे प्रयोग करनेकी विधि कही जाचुकीहै। उनमें रोग, प्रकृति और सात्म्यको जाननेवाला वैद्य जिस मनुष्यके लिये जिस प्रकार प्रयोग करना उचित समझे उस प्रकार सेवन करावे। कफसे उत्पन्न हुआ कोई रोग अथवा किसीप्रकारका विबंध ऐसा नहीं है जिसको भिलावेका सेवन नष्ट न करे। यह भिलावेका सेवन मेधा और अग्निको अत्यन्त बढानेवाला है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

रसायनकी उत्कृष्टता।

प्राणकामाःपुराजीर्णाश्च्यवनाद्यामहर्षयः। रसायनैःशिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥९८॥ ज्ञानंतपोब्रह्मचर्य्यमध्यात्मध्यानमेवच । दीर्घायुषोयथाकामंसंभुज्यत्रिदिवंगताः ॥९९॥ तस्मादायुःप्रकर्षार्थंप्राणकामैःसुखार्थिभिः। रसायनविधिःसेव्योविधिवत्सुसमाहितैः॥१००॥

इसप्रकार कल्याणप्रद इन रसायनोंके प्रयोगसे आयुकी कामनावाले च्यवनादिक वृद्ध महर्षि भी अमित आयुको प्राप्तहुए। तथा इन रसायनोंके प्रभावसे ही वह दीर्घायु ऋषि ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य, अध्यात्मज्ञान और ध्यान (योग समाधि) को प्राप्त होकर अपनी इच्छानुसार स्वर्गको प्राप्त हुए। इसलिये दीर्घायु होनेकी इच्छावाले और सुखकी इच्छावाले मनुष्योंको आयुको उत्तम बनानेके लिये सावधान होकर विधिपूर्वक रसायन सेवन करना चाहियें ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

तत्रश्लोकः।

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितैषिणा।
निर्दिष्टाःप्राणकामीयेसप्तचैवंदशर्षिणा ॥ १०१ ॥
इति प्राणकामीयेरसायनपादोद्वितीयः ॥ २ ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस प्राणकामीय रसायन पादमें सत्रह प्रकारकी सिद्ध रसायनोंको संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ १०१ ॥

इति प्राणकामीयो नाम रसायनपादो द्वितीयः ॥

अथातःकरप्रचितीयंरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥ १०२ ॥

अब हम करप्रचितीय नामक रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ १०२ ॥

आमलकायसकीय रसायन।

करप्रचितानांयथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थ्नांशुष्कचूर्णितानांपुनर्माघेफाल्गुनेवामासेत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपीतानांपुनःशुष्कचूर्णीकृतानामाढकमेकंग्राहयेत् । अथजीवनीयानांबृंहणीयानांस्तन्यजननानांशुक्रवर्द्धनानांवयःस्थापनानांषड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधगणानांचन्दनागुरुधवखदिरशिंशपासनसारणाञ्चाणुशश्छिन्नानांक्षितानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रकविडङ्गानाञ्चसमस्तानामाढकमेकंदशगुणेनाम्भसासाधयेत् । तस्मिन्आढकावशेषेरसेसुपूतेतानिआमलकचूर्णानिदत्त्वागोमयाग्निभिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत् । यावदपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्यायसीपुपात्रीष्वास्तीर्य्यशोपयेत् । सुशुष्कंतंकृष्णाजिनस्योपरिदृषदिश्लक्ष्णपिष्टमयःस्थाल्यांनिधापयेत् । सम्यक् तच्चूर्णमयश्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तंमधुसर्पिर्भ्यामग्निबलमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥ १०३ ॥

समयपर उत्तम पकेहुए सर्वगुणसंपन्न आमलोंको माघ या फाल्गुनके महीनेमें वृक्षके ऊपरसे हाथसे छांट २ कर तोडे । फिर इनकी गुठलियें निकालकर फेंक देवें और इन गुठलीरहित आमलोंको सुखाकर बारीक चूर्ण करलेवे । इस चूर्णको गीले आवलोंके रसकी इक्कीस भावना देकर बारीक पीस लेवे । यह चूर्ण पीताहुआ सूखा ४ सेर (१ आढक) लेवे । फिर षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें कहीहुई

जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यवर्द्धक, शुक्रजनक और अवस्थास्थापक ये सब औषधियें तथा लालचंदन, अगर, धव, खदिर, शीशम, विजयसार इन सब औषधियोंको १ आढक लेकर जौकूट करके दशगुने जलमें क्वाथ बनावे । जब नौभाग जलकर १ आढक जल शेषरहजाय तो उसको छानलेवे । फिर इस क्वाथमें पूर्वोक्त आवलोंका चूर्ण मिलाकर, जंगली उपले अथवा वंसपत्री या नरसलकी मंदमंद आंचसे इसको पकावे । जब पानी सूखनेपर आवे तब इसको उतारकर लोहेके पात्रमें बिछाकर सुखावे । जब अच्छीप्रकार सूखजाय तो इसको पहिले काले मृगका चर्म नीचे बिछाकर उसके ऊपर सिल रख उस सिलपर खूब बारीक पीसे । फिर इस पीसेहुए चूर्णको उत्तम पात्रमें भरकर रख देवे । इस चूर्णमें आठवां भाग लोहभस्म मिलाकर शहद और घृतके संयोगसे अग्निबल विचार, सेवन करे ॥ १०३ ॥

इसके गुण ।

तत्रश्लोकाः ।

एतद्रसायनंपूर्ववशिष्ठःकश्यपोऽगिराः । जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्येचतद्विधाः ॥ १०४ ॥ प्रयुज्यप्रयतामुक्ताःश्रमव्याधिजराभयात् । यावदैच्छंस्तपस्तेपुस्तत्प्रभावान्महाबलाः ॥ १०५ ॥ तपसाब्रह्मचर्य्येणध्यानेनप्रशमेनच । रसायनविधानेनकालयुक्तेनचायुषा ॥ ॥ १०६ ॥ स्थितामहर्षयःपूर्वनहिकिञ्चिद्रसायनम् । ग्राम्याणामन्यकार्य्याणांसिद्धिश्चाप्रयतात्मनाम् ॥ १०७ ॥ इदंरसायनंचक्रे ब्रह्मावार्षसहस्रिकम् । जराव्याधिप्रशमनंबुद्धीन्द्रियबलप्रदम्१०८॥

पूर्व समयमें इस रसायनके प्रभावसे वशिष्ठ, कश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु तथा इसीप्रकार अन्य ऋषि श्रम, व्याधि, वृद्धावस्था तथा अन्य सब प्रकारके भयसे विमुक्त हो महाबलसंपन्न होकर अपनी इच्छानुरूप तपश्चर्य्या, ब्रह्मचर्य, ध्यान और शान्तिको प्राप्तहुए । रसायनके प्रयोगसे आयुकी जो वृद्धि होतीहै उसमें कोई आयुके समयका प्रमाण नहीं है । क्योंकि रसायन सेवन करनेवाले महर्षियोंकी पूर्वकालमें सहस्रों वर्षकी आयु हुई है । अजितात्मा. विषयोंमें आसक्त, ग्रामीण, अजितेन्द्रिय मनुष्योंको रसायनकी सिद्धि नहीं होसकती । इस वर्षसहस्रक रसायनका ब्रह्माने निर्माण और सेवन कियाहै । यह आयुको करनेवाली बुढापा और व्याधियोंको नष्ट करनेवाली बुद्धि और बलको देनेवाली है ॥ १०४–१०८ ॥

केवल आमलकीय रसायन ।

संवत्सरंपयोवृत्तिर्गवांमध्येवसेत्सदा । सावित्रींमनसाध्यायन्ब्रह्म-

चारीजितेन्द्रियः ॥ १०९ ॥ संवत्सरान्तेपौषींवामाघींवाफाल्गुनीं तिथिम् । त्र्यहोपवासीशुक्लेश्चप्रविश्यामलकीवनम् ॥ ११० ॥ बृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम् । गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जपन्ब्रह्मामृतागमात् ॥ १११ ॥ तदाह्यवश्यममृतंवसत्यामलकेक्षणम् । शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच ॥११२॥ भवन्त्यमृतसंयोगात्तानियावन्तिभक्षयेत् । जीवेद्वर्षसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः ॥ ॥ ११३ ॥ सौहित्यमेषांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः । स्वयञ्चास्योपतिष्ठन्तेश्रीर्वेदावाक्चरूपिणी ॥ ११४ ॥

पहिले १ वर्ष पर्यन्त केवल दूध ही पीकर रहे । अन्न आदि और कुछ न खावे तथा निरन्तर गौओंके बीचमें ही वास कियाकरे और मनसे हरसमय गायत्रीका ध्यान करतेहुए ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय रहे । फिर इस वर्षके व्यतीत होनेपर तीन दिनरात्रि बिल्कुल निराहार उपवास करे पौष अथवा माघकी या फाल्गुनकी पूर्णिमाको यह तीन दिन व्यतीत होने चाहिये । अर्थात् इस प्रकारसे इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये जो पौष या माघ अथवा फाल्गुनकी एकादशीको वर्ष पूरा हो । फिर द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशीको उपवास करके पूर्णिमाको प्रातःकाल ऐसे पवित्र आमलोंके वनमें प्रवेश करे जिसमें वृक्षोंमें सर्वगुणसंपन्न पकेहुए बडे २ आँवले लगरहे हों फिर वृक्षपर चढकर आँवलेको तोडकर हाथमें ले लेवे फिर ब्रह्मामृत वेदोक्त मंत्रका जपकरे उससे उस आँवलेमें अमृतका संचार होजाताहै । फिर इस आँवलेको खालेवे । इसी विधिसे उस वृक्षकी टहनियोंमेंसे आँवले तोड २ कर खाताजाय । उस समय अवश्य ही क्षणमात्रके लिये आँवलेमें अमृतका संचार होजाताहै । उसमें खांड और शहदके समान मीठापन और चिकनाई तथा मृदुता होतीहै । जितने कालतक उस आमलक वृक्षके ऊपर आमलोंको खाय उतने समय तक उनमें अमृतका संचार रहताहै । इसलिये इस विधिसे खानेसे १००० वर्षकी आयु तथा निरन्तर यौवनावस्थाको प्राप्त होताहै । इसप्रकार अच्छी तरह भरपेट आँवलोंको खानेसे यह मनुष्य देवताओंके समान होजाताहै । और कांति, लक्ष्मी, वेद और सरस्वती यह सब स्वयं आकर इसके शरीरमें वास करने लगती हैं ॥ १०९-११४ ॥

लोह रसायन ।

त्रिफलायारसेमूत्रेगवांक्षारेचलावणे । क्रमेणचेंगुदीक्षारेकिंशुकक्षारएवच ॥ ११५ ॥ तीक्ष्णायसस्यपत्राणिवह्निवर्णानिवापयेत् ।

चतुरङ्गुलदीर्घाणितिलोत्सेधसमानिच ॥ ११६ ॥ ज्ञात्वातान्यञ्जनाभानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच ॥ ११७॥ युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाविते। संवत्सरंनिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥ ११८ ॥ दद्यादालोडनंमासेसर्वत्रालोडयन्बुधः । संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिषा ॥ ११९ ॥ प्रातःप्रातर्बलापेक्षीसात्म्यंजीर्णेचभोजनम् । एषएवचलोहानां प्रयोगः संप्रकीर्तितः ॥ १२० ॥ अनेनैवविधानेनहेम्नश्चरजतस्य च। आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत् ॥ १२१॥ नाभिघातैर्नचातङ्कैर्जरयानचमृत्युना । अधृष्यःस्याद्गजप्राणः सदाचातिवलेन्द्रियः ॥ १२२ ॥ धीमान्यशस्वीवाक्सिद्धःश्रुतधारीमहाबलः । भवेत्समांप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम् ॥ १२३ ॥

उत्तम तीक्ष्णलोह (फौलाद) के चार अंगुल लंबे और तिलके समान मोटे पत्र बनालवे । इन पत्रोंको आगमें तपाकर लाल वनजानेपर क्रमसे त्रिफलाके क्वाथमें, गोमूत्रमें एवं लवणक्षार, गोंदनीका क्षार, ढाकका क्षार इन प्रत्येकमें अनेकवार बुझावे। जब वह इसप्रकार तपातपाकर बुझातेहुए अन्जनके समान काला होजाय और भुरभुरा होजाय तब उसका बारीक चूर्ण बनावे । फिर इसे ऑवलेके रस और शहदके साथ मिलाकर घीके चिकने पात्रमें भरकर जौकी राशिमे दवाकर रखदेवे । और इसे बराबर महीने २ खोलकर किसी चीजसे खूब चलादिया करे इसप्रकार १ वर्ष व्यतीत होजानेपर फिर इसे निकाल लेवे इसमेंसे उचित मात्रा लेकर घृत और शहद मिलाकर जठराग्निका बलाबल विचारकर नित्य प्रातःकाल सेवन करे। जब औषध जीर्ण होजाय तब सात्म्य भोजनका सेवन करे । इसी विधिके अनुसार सोना, चांदी आदिका भी प्रयोग होताहै । यह सिद्ध प्रयोग आयुको वढानेवाला और सब रोगोंको नाश करनेवाला है । इस रसायनके सेवनसे मनुष्य अप्रतिहतवल और हाथीके समान दृढ तथा सब इन्द्रियें बलिष्ठ होकर अजर, अर्थात् बुढापारहित नीरोग होकर सुख भोगताहै एवं बुद्धि, यश और श्रुतको धारणकरनेवाला महावली होताहै यह लोह रसायन १ वर्ष पर्यन्त मनुष्य सेवन करे तो उपरोक्त गुणसंपन्न होताहै ॥ ११५ ॥ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

ऐन्द्रिय रसायन ।

ऐन्द्रीमत्स्याक्षिकोब्राह्मीवचाब्रह्मसुवर्चला । पिप्पल्योलवणंहे-

मशंखपुष्पीविषंघृतम् ॥ १२४ ॥ एषांत्रियवकान्भागान्हेमसर्पि-र्विषैर्विना । द्वौयवौ तत्रहेम्नस्तुतिलंदद्याद्विषस्य च ॥ १२५ ॥ सर्पिषश्चपलंदद्यात्तदैकध्यंप्रयोजयेत् । घृतप्रभूतंसक्षौद्रंजीर्णे चान्नंप्रशस्यते ॥ १२६ ॥ जराव्याधिप्रशमनंस्मृतिमेधाकरं परम् । आयुष्यंपौष्टिकंबल्यंस्वरवर्णप्रसादनम् ॥ १२७ ॥ पर-मोजस्करश्चैतत्सिद्धमेतद्रसायनम् । नैनंप्रसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्न विषंनरुक् ॥ १२८ ॥ श्वित्रंसकुष्ठंजठराणिगुल्माःप्लीहापुराणोविष-मज्वरश्च । मेधास्मृतिज्ञानहराश्चरोगाःशाम्यन्त्यनेनातिबलाश्च वाताः ॥ १२९ ॥

इन्द्रायण, मत्स्याक्षी, ब्राह्मी, वच, ब्रह्म, सोंचली, पीपल, निमक, शंखपुष्पी यह प्रत्येक वस्तु तीन ३ यव प्रमाण लेवे और सोनेके वर्क, दो यव, शुद्ध सिंगिया विष १ तिल इन सबको ४ तोला घृतमें बारीक पीसकर मिलाडाले । इसको शुद्धकाय मनुष्य प्रातःकाल खालेवे । जब यह जीर्ण होजाय तब घृत और मीठेके संग शाली अथवा साठी चावलोंका भात भोजन करे । इसके सेवनसे बुढापा और संपूर्ण रोग नष्ट होकर स्मृति और मेधा तथा आयुकी परम वृद्धि होतीहै । और यह पुष्टिदायक बलवर्द्धक, स्वर, वर्णको प्रसन्न करनेवाली है । जो मनुष्य इसका सेवन करताहै । उसके ओजकी वृद्धि होतीहै । इस सिद्ध रसायनके सेवनसे अलक्ष्मी, विष और रोग मनुष्यके शरीरको स्पर्शतक नहीं करते तथा श्वेतकुष्ठ, कुष्ठ, जठररोग, गुल्मरोग, प्लीहरोग, जीर्णज्वर, विषमज्वर तथा जो मेधा, स्मृति और ज्ञानके नष्टकर देनेवाले रोग हैं वह और अत्यन्त बलवान् वातविकार यह सब शान्त होजाते हैं ॥ १२४ ॥ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

ब्राह्मी आदि मेध्यरसायन द्रव्य ।

मण्डूकपर्ण्याःस्वरसःप्रयोज्यःक्षीरेणयष्टीमधुकस्यचूर्णम् । रसोगुडू-च्यास्तुसमूलपुष्प्याःकल्कः प्रयोज्यःखलुशंखपुष्प्याः ॥ १३० ॥ आयुःप्रदान्यामयनाशनानिबलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्यानि चैतानिरसायनानिमेध्याविशेषेणचशंखपुष्पी ॥ १३१ ॥

ब्राह्मीका स्वरस अथवा मुलहठीका चूर्ण या गिलोयका रस अथवा फूल और जडसहित शंखपुष्पीका कल्क इनमेंसे किसी एकको दूधके संयोगसे सेवन करना

चाहिये । यह सब द्रव्य उत्तम रसायन आयुवर्द्धक, रोगनाशक तथा बल, अग्नि, वर्ण और स्वरके बढानेवाले हैं । एवं मेधाजनक हैं । इनमें शंखपुष्पी विशेषकर मेधाकी बढानेवाली है ॥ १३० ॥ १३१ ॥

पिप्पली रसायन ।

पञ्चपट्सप्तदशवापिप्पलीर्मधुसर्पिषा । रसायनगुणान्वेषीसमामेकां प्रयोजयेत् ॥ १३२ ॥ तिस्रस्तिस्रस्तुपूर्वाह्णेभुक्त्वाग्रेभोजनस्यच । पिप्पल्यःकिंशुकक्षारभाविताघृतभर्जिताः ॥ १३३ ॥ प्रयोज्यामधुसर्पिर्भ्यांरसायनगुणैषिणा । जेतुंकासंक्षयंशोषंश्वासंहिक्कांगलामयान् ॥ १३४ ॥ अर्शांसिग्रहणीदोषंपाण्डुतांविषमज्वरम् । वैस्वर्य्यंपीनसंशोफंगुल्मंवातबलासकम् ॥ १३५ ॥

रसायनके गुणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको ६ या ७ अथवा १० पीपल लेकर घृत और शहदके साथ क्रमपूर्वक १ वर्ष पर्यन्त सेवन करनी चाहिये । वह पिप्पली भोजन करनेसे पहिले दोनों समय तीनतीन खाना चाहिये । अथवा पीपलोंको लेकर पलाशके क्षारकी भावना देकर घीमें भून लेवे । फिर रसायनके गुणकी इच्छावाला मनुष्य शहद और घृतके साथ इनका सेवन करे । इनके सेवनसे खांसी, क्षय, शोषरोग श्वास, हिचकी, गलेके रोग, बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभंग, पीनस, सूजन गुल्म और वात तथा कफके रोग अथवा वातबलाशक ज्वर, यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्यादशाहानिदशपैप्पलिकंदिनम् । वर्द्धयेत्पयसासार्द्धंतथा चापनयेत्पुनः ॥ १३६ ॥ जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतषष्टिकंक्षीरसर्पिषा । पिप्पलीनांसहस्रस्यप्रयोगोऽयंरसायनम् ॥ १३७ ॥ पिष्टास्ताबलिभिःसेव्याः श्रृतामध्यबलैर्नरैः । शीतीकृताह्रस्वबलैर्योज्यादोषामयान्प्रति ॥ १३८ ॥ दशपैप्पलिकःश्रेष्ठोमध्यमःषट्प्रकीर्त्तितः । प्रयोगोयस्त्रिपर्य्यन्तःसकनीयान्सचाबलैः ॥ १३९ ॥ बृंहणंस्वर्य्यमायुष्यंप्लीहोदरविनाशनम् । वयसःस्थापनंमेध्यंपिप्पलीनांरसायनम् ॥ १४० ॥

पहिले दिन १० पीपल, दूसरे दिन २० इसप्रकार क्रमसे दश दश पीपल दश दिनों तक वढाता चलाजाय। फिर दश दश घटाता चलाआवे। इन पीपलोंको दूधके साथ खाना चाहिये। जब भूख लगे तो शाठीके चावल, दूध और घृतके साथ खाना चाहिये। यह हजार पीपलका रसायन प्रयोग है। इनके सेवनका यह प्रकार है कि दीर्घकाय बलवान् मनुष्य इनको पीस दूधमें मिला पीवे और मध्यवल मनुष्य दूधमें उबालकर ठण्ढाकर वह दूध पीयाकरे। और लघुवल मनुष्य बलके अनुसार दोप, रोगादि विचारकर उचित रीतिसे प्रयोग करे। यह दश पीपलोंका प्रयोग उत्तम मात्रा कहाजाताहै सो बलवान् मनुष्योंको सेवन करना चाहिये ६ पीपलोंसे ६ दिनतक छः छः पीपल वढाना और उसी क्रमसे घटाना यह मध्यम मात्रा है। सो मध्यवल मनुष्योंको सेवन करना चाहिये। एवं तीन पीपलकी सबसे कनिष्ठ मात्रा है सो निर्बल मनुष्योंके लिये प्रयुक्त करनी चाहिये। इस पिप्पली रसायनके सेवनसे वीर्य और स्वरकी वृद्धि होतीहै तथा प्लीहरोग और उदररोग नष्ट होतेहैं अवस्था स्थिर होतीहै तथा मेधाकी वृद्धि होतीहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

त्रिफलारसायन।

जरणान्तेऽभयामेकांप्राग्भुक्तेद्वेविभीतके। भुक्त्वातुमधुसर्पिर्भ्यांच-त्वार्यामलकानिच ॥ १४१ ॥ प्रयोजयेत्समामेकांत्रिफलायारसा-यनम्। जीवेद्वर्षशतंपूर्णमजरोऽव्याधिरेवच ॥ १४२ ॥

प्रातःकाल १ हरड सेवन करे। भोजनसे प्रथम दो वहेडे। भोजन करनेके अनन्तर चार आँवले घृत और शहदके साथ मिलाकर खाय। इसप्रकार इस त्रिफला रसायनको १ वर्ष पर्यन्त सेवन करे। इसके सेवनसे मनुष्य जरा और व्याधिसे रहित हो पूर्ण १०० वर्षकी आयुके सुखको भोगताहै ॥ १४१ । १४२ ॥

अन्य त्रिफलारसायन।

त्रैफलेनायसींपात्रींकल्केनालेपयेन्नवाम्। तमहोरात्रिकंलेपंपिबे-त्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥ १४३ ॥ प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णेतत्रप्रशस्यते। अजरोरुक्समाभ्यासाज्जीवेच्चैवसमाशतम् ॥ १४४ ॥

त्रिफलाको पीसकर कल्क बना ले उस कल्कको किसी १ नवीन लोहेके पात्रमें लेपकर दिनरात्रि रहनेदे। फिर शहद और पानीमें मिला मात्रानुसार पीवे। फिर भूखके समय घी, चावलका भोजन करे। इसके १ वर्ष सेवनसे जरा और व्याधिरहित होकर १०० वर्ष तक जीता रहताहै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

अन्य त्रिफलारसायन ।

मधुकेनतुगाक्षीर्य्यापिप्पल्याक्षौद्रसर्पिषा। त्रिफलासितयाचापियुक्तासिद्धंरसायनम् ॥ १४५ ॥

मुलहठीके चूर्णके अथवा वंशलोचनके संग या शहदके संग अथवा पीपलके संग या घृत और शहदके संग अथवा मिसरीके संग त्रिफलाका १ वर्षपर्यन्त सेवन करना परम सिद्ध रसायन है ॥ १४५ ॥

अन्य त्रिफलारसायन ।

सर्वलोहैःसुवर्णेनवचयामधुसर्पिषा। विडङ्गपिप्पलीभ्याञ्चत्रिफलालवणेनच ॥ १४६ ॥ संवत्सरप्रयोगेणमेधास्मृतिबलप्रदा । भवत्यायुष्प्रदाधन्याजरारोगनिवर्हणी ॥ १४७ ॥

त्रिफला सर्वलोह भस्मके संग, अथवा केवल सुवर्णके संग या वच, शहद, घृत, विडंग, पिप्पली, लवण इनमेंसे किसी एकके संग अथवा सबके संग १ वर्ष पर्यन्त प्रयोग करनेसे मेधा, स्मृति, बल और आयुकी वृद्धि होती है । यह रसायन कांतिजनक तथा जरा (बुढापा) और व्याधिके नष्ट करनेवाली है ॥ १४६ ॥ १४७॥

शिलाजीत प्रयोग ।

अनम्लश्चकषायश्चकटुपाकेशिलाजतु । नात्युष्णशीतंधातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्यसम्भवः ॥ १४८ ॥ हेम्नश्चरजतात्ताम्राद्वरंकृष्णायसादपि । रसायनंतद्विधिभिस्तद्वृष्यंतच्चरोगनुत् ॥ १४९ ॥ वातपित्तकफघ्नैस्तुनिर्य्यूहैस्तत्सुभावितम् । वीर्य्योत्कर्षपरंयाति सर्वैरेकैकशोऽपिवा ॥ १५० ॥ प्रक्षिप्योद्धृतमप्येनंपुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे । कोष्णेसप्ताहमेतेनविधिनातस्यभावना ॥ १५१ ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनलोहैश्चूर्णीकृतैःसह । तत्पीतंपयसादद्याद्दीर्घमायुःसुखान्वितम् ॥ १५२ ॥ जराव्याधिप्रशमनंदेहदार्ढ्यकरंपरम् । मेधास्मृतिकरंबल्यंक्षीराशीतत्प्रयोजयेत् ॥ १५३ ॥ प्रयोगःसप्तसप्ताहास्त्रयश्चैकश्चसप्तकः । निर्दिष्टस्त्रिविधस्तस्यपरोमध्योऽवरस्तथा । पलमर्द्धपलंकर्षोमात्रातस्यत्रिधामता ॥ १५४ ॥

शिलाजीत, अम्लरस रहित है और कसैला, कटुपाकी, न अधिक गरम न अधिक शीतल होताहै । यह चार धातुओंसे उत्पन्न होताहै । जैसे सोना, चाँदी, तांबा और

लोहा, इन सबमें लोहेसे उत्पन्न हुई शिलाजीत सर्वोत्तम है। शिलाजीतका विधिपूर्वक सेवन आयुको बढाता है, वीर्यको उत्पन्न करताहै तथा संपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै शिलाजीत-वातनाशक, कफनाशक और पित्तनाशक औषधियोंके क्काथोंसे भावना दी जानेपर परम उत्तम वीर्यवाली होजातीहै। क्काथोंमें भावना देनेका यह क्रम है, कि इन तीनों प्रकारके क्काथोंको इकट्ठाकर अथवा पृथक् २ लेकर जब वह क्काथ किंचित् गरमरहे तो उनकी शिलाजीतमें भावना देवे। शिलाजीतकी भावना इसप्रकार देनी चाहिये। शिलाजीतको उन क्वाथोंमें डाले और उनमेंसे विधिवत् निकाल लेवे। इसीप्रकार सातबार करनेसे शिलाजीत परम उत्तम बनजातीहै। इस शिलाजीतको पूर्वोक्त विधिसे लोहभस्मोंके साथ अथवा दूधके साथ मनुष्यको पीनेको दे। इसके सेवनसे सुखयुक्त, दीर्घायु होतीहै तथा बुढापा और रोग शान्त होतेहैं। देह परम दृढ होतीहै। मेधा और स्मृति तथा बल बढताहै। इसके सेवन करनेवालेको केवल दूध मात्र पीनेको देना चाहिये। इसका सेवन ४९ दिन अथवा २१ दिन या ७ दिन करना चाहिये। ४९ दिन उत्तम, २१ दिन मध्यम और ७ दिन कनिष्ठ मात्रा कहीहै ४ तोला उत्तम, २ तोला मध्यम और १ तोला कनिष्ठ इसी विधिसे तीन प्रकारकी मात्रा कहीहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥ १५४ ॥

शिलाजीतकी उत्पत्ति।

जातेर्विशेषंसविधिंतस्यवक्ष्याम्यतःपरम् । हेमाद्याःसूर्य्यसन्तताः स्रवन्तिगिरिधातवः। जत्वाभंमृदुमृत्स्नाभंयन्मलंतच्छिलाजतु१५५

अब हम शिलाजीतके अलग २ जातिभेदको कथन करतेहैं। सूर्यके संतापसे तपेहुए पर्वतोंमेंसे सुवर्ण आदि धातुएँ तपकर जो स्राव करती हैं। उनमें जो स्राव लाखके समान वर्णवाला तथा नरम और मिट्टीकीसी कांतिवाला मल निकलताहै उसीको शिलाजीत कहतेहैं ॥ १५५ ॥

सौवर्णशिलाजीत।

मधुरश्चसतिक्तश्चजपापुष्पनिभश्चयः।
कटुर्विपाकेशीतश्चससुवर्णस्यनिस्रवः ॥ १५६ ॥

सुवर्ण प्रधान पहाडोंसे उत्पन्न हुई शिलाजीत-मीठी, किंचित् कडवी, जपाके फूलके समान वर्णवाली कटु विपाकी और शीतल होतीहै ॥ १५६ ॥

शिलाजीत रौप्य।

रूप्यस्यकटुकःश्वेतःशीतःस्वादुर्विपच्यते ॥ १५७ ॥

चांदीवाले पहाडसे उत्पन्न हुई शिलाजीत कटु, श्वेत,शीतल और स्वादुपाकी होतीहै१५७

ताम्रोद्भवशिलाजीत।

ताम्रस्यबर्हिकण्ठाभस्तिक्तोष्णकटुपच्यते॥ १५८ ॥

ताम्र प्रधान पहाडसे उत्पन्न हुई शिलाजीत मोरके गर्दनकी समान चमकीली, कडुई गरम और कटुपाकी होतीहै ॥ १५८ ॥

यस्तुगुग्गुलुकाभासस्तिक्तकोलवणान्वितः ।
कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः ।
गोमूत्रगन्धयःसर्वेसर्वकर्मसुयौगिकाः ॥ १५९ ॥

लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत गूगलके समान वर्णवाली, कडुई, लवणरसयुक्त, कटुविपाकी, शीतल होतीहै । यह शिलाजीत सबमें उत्तम है। सब प्रकारकी शिलाजीत गोमूत्रके समान गंधवाली और सब कर्मोंमें प्रयोग करने योग्य होतीहै ॥ १५९ ॥

दोषभेदसे प्रयोग ।

रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते । यथाक्रमंवातपित्तेश्लेष्मपित्तेकफेत्रिषु । विशेषतःप्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः ॥ १६० ॥

रसायन प्रयोगमें विशेषकर लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीत उत्तम होतीहै । और वातपित्तमें सुवर्णसे उत्पन्न हुई शिलाजीत, कफपित्तमें चादीकी और केवल कफमे तांबेसे उत्पन्न हुई एवं तीनों दोषोंमें लोहसे उत्पन्न हुई शिलाजीतका प्रयोग करना चाहिये । इस प्रकार सुवर्ण आदि धातुओंसे उत्पन्न हुई शिलाजीतके प्रयोगकी प्रशंसा की जातीहै ॥ १६० ॥

शिलाजीतमें कुपथ्य ।

शिलाजतुप्रयोगेषुविदाहीनिगुरूणिच । वर्जयेत्सर्वकालंतुकुलत्थान्परिवर्जयेत् ॥ १६१ ॥ तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनोभेदनाःपरम् । लोकेदृष्टास्ततस्तेषांप्रयोगःप्रतिषिध्यते॥ १६२ ॥

शिलाजीत सेवनके समय विदाही और भारी पदार्थोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये । और खासकर कुलथी तो बिलकुलही नही खानी चाहिये । क्योंकि कुलथी शिलाजीतसे अत्यंत विरोधी है और यह शिलाजीतको भेदन करनेवाली लोकमें भी प्रसिद्ध है । इसलिये इसका सेवन करना अत्यंत ही निषिद्ध है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शिलाजीतमें पथ्य ।

पयांसिशुक्तानिरसाःसयूषास्तोयंसमूत्रंविविधाःकषायाः । आलोडनार्थङ्गिरिजस्यशस्तास्तेतेप्रयोज्याःप्रसमीक्ष्यकार्य्यम् ॥ १६३ ॥

शिलाजीतको दूधमें घोलकर अथवा सिरका, मांसरस, यूष, जल, गोमूत्र और अनेक प्रकारके क्वाथ अथवा अन्य जिस रोगमें जिस प्रकारके अनुपानकी आवश्यकता हो ऐसे अनुपानोंसे शिलाजीतका सेवन करना चाहिये और घृत दूध आदि हल्के चिकने पदार्थ सेवन करना चाहिये ॥ १६३ ॥

शिलाजीतके गुण।

नसोऽस्तिरोगोभुविसाध्यरूपःशिलाह्वयंयंनजयेत्प्रसह्य। तत्कालयोगैर्विधिभिःप्रयुक्तंस्वस्थस्यचोर्जांविपुलांददाति ॥ १६४ ॥

पृथ्वीमें ऐसा साध्यरोग कोई नहीं है जिस रोगको शिलाजीतका प्रयोग बलात्कारसे नष्ट न कर देता हो। शिलाजीत समयानुसार विधिवत् उचित द्रव्योंके अनुपानसे प्रयोग कियाहुआ स्वस्थ मनुष्यको अत्यंत बल और ओजको देनेवाला है ॥ १६४ ॥

तत्रश्लोकः।

करप्रचितिकेपादेदशषट्चमहर्षिणा।
रसायनानांसिद्धानांसंयोगाःसमुदाहृताः ॥ १६५ ॥

इति करप्रचितीयेरसायनपादस्तृतीयः ॥ ३ ॥

यहांपर पादकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि इस करप्रचितिक पादमें महर्षि आत्रेयजीने सोलह प्रकारके सिद्ध रसायन प्रयोगोंका वर्णन कियाहै ॥ १६५ ॥

इति करप्रचितीये रसायनपादस्तृतीयः।

अथातआयुर्वेदसमुत्थानीयंचतुर्थंरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥ १६६ ॥

अब हम आयुर्वेद समुत्थानीय नामक चौथे रसायनपादकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ १६६ ॥

ऋषियोंका हिमालय गमन।

ऋषयःखलुकदाचिच्छालीनायायावराश्चग्राम्यौषध्याहाराःसन्तःसाम्पन्निकामन्दचेष्टानातिकल्याणाश्चप्रायेणबभूवुः । तेसर्वासामितिकर्त्तव्यतानामसमर्थाःसन्तोग्राम्यवासकृतंदोषंमत्वापूर्वनिवासमपगतग्राम्यदोषंमत्वाशिवंपुण्यमुदारंमेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममर-गन्धर्वयक्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावंब्रह्मर्षिसिद्धच

तिशरण्यंहिमवन्तममराधिपतिगुप्तंजग्मुःभृग्वङ्गिरोऽत्रिवशिष्ठक-श्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौतमप्रभृतयोमहर्षयः ॥ १६७ ॥

एक समय ऋषिलोग समयके स्वभावसे शालीन और यायावर आदि ग्राम्य औषध और आहारकी सेवन करनेसे आलस्यग्रस्त, संचयशील, कल्याणरहित होगये । उस समय उन्होंने यह सोचा कि हमें क्या करना चाहिये ! फिर ग्रामवाससे उत्पन्न हुए यह दोष जानकर आदिस्थान, ग्राम्य दोषरहित, पवित्र, पुण्य, मंगलमय, उदार, पुण्यरहित मनुष्य जिसको न प्राप्त होसके । जिसमेंसे गंगाका प्रवाह निकलताहै तथा देवता, गंधर्व यक्ष और किन्नरोंसे सेवित तथा अचिंत्य अद्भुतप्रभाव, ब्रह्मर्षि और सिद्ध, तथा चारणगणोंसे सेवित दिव्य तीर्थ, औषधोंके तेजसे प्रकाशमान, अत्यंत शरण्य, और देवताओंके पतिसे रक्षित जो हिमालय पर्वत है उसपर भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, असित और गौतम आदि महर्षि प्राप्तहुए ॥ १६७ ॥

इन्द्र रसायनका उपदेश ।

तानिंद्रःसहस्रदृक्अमरगुरुरब्रवीत्स्वागतंब्रह्मविदांज्ञानतपोधनानांब्रह्मर्षीणामस्तिननुवोग्लानिरप्रभावत्वंवैस्वर्य्यंवैवर्ण्यश्चग्राम्यवासकृतमसुखानुबन्धश्च । ग्राम्योहिवासोमूलमशस्तानांतत्कृतंपुण्यकृद्भिरनुग्रहःप्रजानांस्वशरीरमरक्षिभिःकालश्चायमायुर्वेदोपदेशस्यब्रह्मर्षीणामात्मनःप्रजानाञ्चानुग्रहार्थमायुर्वेदमश्विनौमह्यंप्रयच्छताम् । प्रजापतिरश्विभ्याम् । प्रजापतयेब्रह्माप्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिबहुलमसुखमसुखानुबन्धमल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्षकरंजराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंभवन्तोमत्तःश्रोतुमर्हन्तिउपधारयितुंप्रकाशयितुञ्चप्रजानुग्रहार्थमार्षंब्रह्मचमैत्रींकारुण्यमात्मनश्चानुत्तमंपुण्यमुदारंब्राह्ममक्षयंकर्मेति ॥ १६८ ॥

उन ऋषियोंको उस पवित्र स्थलमें उपस्थित हुए देख देवताओंके पति सहस्रनेः इन्द्रभगवान् कहनेलगे कि हे ब्रह्मके जाननेवाले ज्ञान और तपोधन ब्रह्मर्षियो ! ऋषियोंमें कुशल तो है ? क्योंकि आपलोगोंके शरीरोंमें ग्रामवाससे उत्पन्न हुई मलिनता कांति, स्वर और वर्णोंकी हीनता, असुखसे उत्पन्न हुए अशुभ लक्षण प्रतीत होतेहैं

इन अशुभ लक्षणोंका कारण आपलोगोंका ग्रामनिवास ही है। सो उन सब ऋषियोंके तथा प्रजाके जनोंपर अनुग्रह करनेकी इच्छावाले, पुण्यात्मा, परहितके लिये अपने शरीरको कष्ट देनेवाले जो आपलोग यहांपर पधारे हैं। सो आपलोगोंको आयुर्वेदके उपदेश करनेका यही समय है। जो आयुर्वेद ब्रह्मर्षि और प्रजागणोंके हितके लिये अश्विनीकुमारोंने मुझे प्रदान किया है और अश्विनीकुमारोंको दक्ष प्रजापतिने प्रदान किया। और ब्रह्माने प्रजाको जरा, व्याधिकी अधिकता तथा असुख और अशुभ कर्मोंके फलसे अल्पायु, अल्पतपस्या, इन्द्रियोंका दमन, नियम, दान, अध्ययन इनकी हीनता देखकर प्रजाके कल्याणके लिये दक्ष प्रजापतिको जिस आयुर्वेदका उपदेश कियाहै। जो आयुर्वेद कल्याणकारी, पुण्य, आयुको बढानेवाला जरा और व्याधियोंको नष्ट करनेवाला, ओजवर्द्धक, अमृतरूप, मंगलमय, शरणागतकी रक्षा करनेवाला और निर्मल है। उस आयुर्वेदको प्रजाके हितके लिये आप मुझसे श्रवण करो। और इस आयुर्वेदका जगत्में प्रचार करो। क्योंकि ऋषियोंका संपूर्ण आत्माओंके हितके लिये संपूर्ण प्राणियोंपर क्रिया करना उनकी आत्माओंके हितके लिये उत्तम ज्ञानका उपदेश करना ही अक्षय पुण्य कर्म है। अथवा ब्रह्म या वेदका ज्ञान ऋषियोंका मुख्य कर्म है। उससे संपूर्ण आत्माओंमें मैत्री, दया, उदारता रखतेहुए जो उन सबका हित साधन है वही अक्षय, ब्रह्मकर्म होताहै तात्पर्य यह हुआ कि आपलोग मुझसे आयुर्वेद ग्रहणकर जगत्का हितसाधन करो यही तुम्हारा पुण्य-कर्त्तव्य है ॥ १६८ ॥

तच्छ्रुत्वाविबुधपतिवचनमृषयःसर्वएवामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुःप्रहृष्टा-स्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रस्तदायुर्वेदामृतंऋषिभ्यःसंक्र-म्योवाचैतत्सर्वमनुष्ठेयञ्च । अयञ्चशिवःकालोरसायनानांदिव्या-श्चौषधयोहिमवतःप्रभवाःप्राप्तवीर्य्याः ॥ १६९ ॥

इन्द्रके इस वाक्यको सुनकर ऋषिलोग उस देवताओंके पतिकी ऋचाओं द्वारा स्तुति करनेलगे और प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके कहेहुए वाक्योंका अभिनन्दन करनेलगे। उसके उपरान्त इन ऋषियोंके प्रति संपूर्ण आयुर्वेदरूपी अमृत और रसायन क्रियाका उपदेश किया। तथा यह कहा कि हे ऋषियो! आपलोगोंको संपूर्ण रसायन क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये। यह रसायनक्रियाही कल्याणदायक है। और इसके करनेका उत्तम यही समय है क्योंकि इस हिमालयमेंही रसायन गुणकारी रसवीर्यसंपन्न दिव्य औषधियें प्राप्त होसकतीहैं ॥ १६९ ॥

ऐन्द्री रसायन।

तद्यथा–ऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशताव-

रीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागवलास्थिरावचाच्छत्रातिच्छत्रामेदा-महामेदाजीवनीयाश्चान्याःपयसाप्रयुक्ताः । षण्मासात्परममायुर्व-यश्चतरुणमनामयत्वंस्वरवर्णसंपदनुपचयंमेधांस्मृतिमुत्तमबलमि-ष्टांश्चापरान्भावानावहन्तिसिद्धाः ॥ १७० ॥

यह रसायन प्रयोग इसप्रकार है । जैसे इन्द्रायण, ब्राह्मी, क्षीरकाकोली, गोरख-मुण्डी, महाश्रावणी (महामुण्डी), शतावर, विदारीकंद, जीवन्ती, पुनर्नवा, गंगेरन, शालपर्णी, वच, छत्रे[1], अतिच्छत्रा (अवाक्पुष्पी) मेदा, महामेदा और जीवनीय-गणकी औषधियें इन सबको दूधके संयोगसे ६ महीनेतक सेवन करनेसे परम आयु, युवावस्था, नीरोगिता और स्वर, वर्णमें उत्तमताकी प्राप्ति होतीहै तथा पुष्टि, मेधा, स्मृति, उत्तम बल, एवं अन्य भी अभीष्ट सिद्धियोंको प्राप्त होताहै ॥ १७० ॥

द्रोणीप्रावेशिकद्रव्यरसायन ।

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्य्याहिरण्यक्षीरापुष्करसदृशपत्राआदित्यप-र्णीनामौषधिर्यासूर्य्यकान्तेतिविज्ञायतेसुवर्णवर्णक्षीरासूर्य्यमण्डला-कारपुष्पाच । नारीनामौषधिरश्वबलेतिविज्ञायतेयापुनरजसदृश-पत्राकाष्ठगोधानामौषधिर्गोधाकारा । सर्पानामौषधिःसर्पाकारा । सोमोनामौषधिराजःपञ्चदशपर्णःससोमइवहीयतेवर्द्धतेच । पद्मा-नामौषधिःपद्माकारापद्मरक्तापद्मगन्धा। अजानामौषधिरजशृङ्गी-तिविज्ञायते । नीलानामौषधिस्तुनीलक्षीरानीलपुष्पालताप्रतान-बहुला । इत्यासामष्टानामौषधीनांयांयामेवौषधिंलभेततस्यास्त-स्याःस्वरसस्यसौहित्यंगत्वास्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यांसपि-धानायांशयीत । तत्रप्रलीयतेषण्मासेनपुनःपुनः सम्भवति । त-स्याजंपयःप्रत्यवस्थापनम् । षण्मासेनदेवतानुकारीभवतियोवर्ण-स्वराकृतिबलप्रभाभिः । स्वयश्चास्यसर्ववाचोगतानिप्रादुर्भवन्ति । दिव्यश्चास्यचक्षुःश्रोत्रंभवतियोजनसहस्रगतिर्दशवर्षसहस्राण्या-युरनुपद्रवश्चेति । इतिद्रोणीप्रावेशिकरसायनम् ॥ १७१ ॥

---

[1] बर्फानी पहाडोंमें इसके ऊपर छतरीके आकारका पत्र निकलता है । जो वर्सातमें छतरीके आकारका मलिन भूमिमें सब जगह उत्पन्न होताहै वह नहीं है ।

ब्रह्मसुवर्चला नामकी १ औषधी है इसका पीले रंगका दूध और कमलके समान पत्र होतेहैं । आदित्यपर्णी नामक जो औषधी है इसको सूर्यकान्ता भी कहतेहैं । इसमेंसे भी सुवर्णके समान पीला, दूध निकलताहै और सूर्यमण्डलके आकारवाले फूल होतेहैं । नारीनामकी जो औषध है उसको अश्वबला भी कहतेहैं और स्त्रियोंके रजके वर्णके उसमें पत्र लगते हैं । काष्ठगोधा नामक औषधी गोहके आकारवाली होतीहै । सर्पा औषधी सांपके आकारवाली होतीहै । सोमनामक ओषधीराजमें पंद्रह पत्ते लगतेहैं वह चन्द्रमाके समान कृष्णपक्षमें घटते और शुक्ल पक्षमें बढते रहतेहैं । पद्मा नामक औषधी पद्मके आकारवाली और कमलके समान गंध और वर्ण (रंग) वाली होतीहै । अंजा नामक औषधीका नाम अजसिंगी भी है । नीलो नामक औषधीके फूल और दूध नीले रंगके होतेहैं और इसकी वेल प्रतानयुक्त फैलीहुई होतीहै । इन आठ औषधियोंमेंसे जो २ मिलसके उस उसका स्वरस निकाल शुद्धकाय मनुष्य कुटीप्रवेशविधिसे पीजावे । और मकानके अन्दर १ ढाककी गीली लकडीसे जिसमें मनुष्य लेटसके उस प्रकारकी द्रोणी (संदूकसा) बनाईहुई पहले तैयार रहनीचाहिये । उस द्रोणीमें घृत लगाकर औषधी पियाहुआ मनुष्य लेटजाय । इस मनुष्यको ६ महीनेतक इसमें पडे रहने देना चाहिये । और बार २ इसके मुखमें बकरीका थोडा २ दूध देता रहे । और सावधानीसे इसकी रक्षा रक्खे । इसप्रकार छः महीने करनेसे यह मनुष्य देवताओंके समान आयु, वर्ण, स्वर, स्वरूप, आकृति, बल और कांतिवाला होजाताहै । संपूर्ण विद्यायें अपने आप इसमें प्रगट होजातीहैं । इसके नेत्र और कान दिव्य होजातेहैं । एक हजार योजन तक इसकी गति होजाती है। एवं दशहजार वर्षकी आयुवाला तथा संपूर्ण रोगरहित होताहै॥१७१॥

१ इसको ब्रह्मसोंचली भी कहतेहैं यद्यपि ब्रह्मसोंचली हुलहुलका नाम है परन्तु यह ब्रह्मसोंचली नामकी एक लता है । इसमें कमलके पत्तोंके समान गोलपत्ते लगते हैं। तोडनेसे पीले रंगका दूध निकलताहै । सूर्यकीसी कान्तिवाले गोल फूल होतेहैं वह फूल सूर्य उदय होनेपर खिलतेहैं । फूल नीले, पीले, सफेद इन तीन जातियोंके होते हैं । २ आदित्यपर्णी, ब्रह्मसोंचलीका ही भेद है । इसलिये मूलमें इन दोनोंको एकही मानकर आठ प्रकारकी औषधियें कही गई हैं । कोई २ वैद्य ब्रह्मसोंचली और आदित्यपर्णी इन दोनोंको ही दो जातिका हुलहुल मानतेहैं । परन्तु जो हुलहुल सब जगह देखनेमें आताहै उसमें और इसमें बडा भारी अन्तर है । इसकी लता सजल, शीतल स्थानोंमें होतीहै । ३ नारी नामकी लाल पत्रोंवाली बूटी । ४ बर्फानी पहाडोंमें गोहके आकारकी बूटी । ५ सर्पाकार बूटी बर्फानी पहाडोंमें । ६ सोमलता, सोमकद आदि नामोंसे प्रसिद्ध है बर्फानी स्थानोंमें, मानसरोवरके किनारे अमरनाथके पहाडमें प्रायः मिलतीहै । इसकी यथोचित सेवनकी विधि सुश्रुतमें लिखी है । ७, ८ इन दोनोंको मैं नहीं जानता । ९ यह भी सजल, शीतल पहाडोंपर होतीहै ।

इन दिव्यरसायनोंको सेवन करनेकी योग्यता ।

भवन्तिचात्र ।

दिव्यानामोषधीनांयःप्रभावःसभवद्विधैः । शक्यः सोढुमशक्यस्तुनसोढुमकृतात्मभिः ॥ १७२ ॥ ओषधीनांप्रभावेणतिष्ठतांस्वेचकर्मणि । भवतांनिखिलंश्रेयःसर्वमेवोपपत्स्यते ॥ १७३ ॥

इसप्रकारकी दिव्य औषधियोंको हे ब्रह्मर्षियो ! आपके समान योग्य महात्माही सेवन और सहन करसकतेहैं । अजितेन्द्रिय अजितात्मा मनुष्य इन दिव्य रसायनोंको सहन नहीं करसकते । इन औषधियोंके प्रभावसे आपलोग सहस्रों वर्ष अपने २ योगादि मार्गोंमें प्रवृत्त रहतेहुए संपूर्ण कल्याणको प्राप्त होंगे ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्चप्रयतैर्नियतात्मभिः । शक्याऔषधयोह्येताःसेवितुंविषयाभिजाः ॥ १७४ ॥ तास्तुक्षेत्रगुणैस्तेषांमध्यमेनचकर्मणा । मृदुवीर्य्यतयातासांविधिर्ज्ञेयःसएवतु ॥ १७५ ॥

यदि वानप्रस्थ या गृहस्थ मनुष्य जितेन्द्रियं हो, जिसके मन और शरीर अपने वशमें हों वह इन औषधियोंको सेवन करना चाहे तो उनको क्षेत्र, गुण, विशेषसे मृदुवीर्य मध्यम कर्मद्वारा औषधी सेवन कराना चाहिये । परन्तु सेवनविधिमें कोई भेद नहीं है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

साधारणजनोंके लिये अन्य रसायन ।

पर्य्येष्टुंताःप्रयोक्तुंवायेऽसमर्थाःसुखार्थिनः ।
रसायनविधिस्तेषामयमन्यःप्रशस्यते ॥ १७६ ॥

जो मनुष्य इन उपरोक्त दिव्य रसायनोंको ढूंढ नहीं सकते और प्रयोग करनेमें असमर्थ हैं परन्तु रसायनके सुखकी इच्छा करतेहैं उनके लिये यह आगे कही रसायन-विधि श्रेष्ठ होतीहै ॥ १७६ ॥

वयसःस्थापनानाञ्चबल्यानांजीवनीयानांबृंहणीयाश्चयादश । खदिरस्यासनस्यच ॥ १७७ ॥ खर्ज्जूराणांमधूकानांमुस्तानामुत्पलस्य च । मृद्वीकानांविडङ्गानांवचायाश्चित्रकस्य च ॥ १७८ ॥ शतावर्य्याःपयस्यायाःपिप्पल्याजोङ्गकस्य च । ऋद्ध्यानागबलायाश्चहरिद्रायाधवस्य च ॥ १७९ ॥ त्रिफलाकण्टकार्य्योश्च विदार्य्याश्चन्दनस्यतु । इक्षूणांशरमूलानांश्रीपर्ण्यास्तिनिशस्य च ॥१८० ॥

रसाःपृथक्पृथक्ग्राह्याःपलाशक्षार एवच । एषांपलोन्मितान्भागान्पयोगव्यंचतुर्गुणम् ॥ १८१ ॥ द्वे पात्रेतिलतैलस्यद्वेचगव्यस्य सर्पिषः । तत्साध्यंसर्वमेकत्रसुसिद्धंस्नेहमुद्धरेत् ॥ १८२ ॥ तत्रामलकचूर्णानामाढकंशतभावितम् । स्वरसेनैवदातव्यंक्षौद्रस्याभिनवस्य च ॥ १८३ ॥ शर्कराचूर्णपात्रश्चप्रस्थमेकं प्रदापयेत् । तुगाक्षीर्य्याःसपिप्पल्याःस्थाप्यंसंमूर्च्छितश्चतत् ॥ १८४ ॥ शुचौ क्षेमात्तिकेकुम्भेमासार्द्धंघृतभाविते । मात्रामग्निसमांतस्यततऊर्द्ध्वप्रयोजयेत् ॥ १८५ ॥ हेमताम्रप्रवालानामयसःस्फटिकस्यच। मुक्तावैदूर्य्यशंखानांचूर्णानांरजतस्यच ॥ १८६ ॥ प्रक्षिप्यषोडशींमात्रां विहायायासमैथुनम्। जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतषष्टिकंक्षीरसर्पिषा॥१८७॥

षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें जो सूत्रस्थानमें कहआयेहैं उसमें कहीहुई बलवर्द्धक दश औषधियें एवं जीवनीयदशक, बृंहणीयदशक, वयःस्थापनदशक इन चार दशकोंकी चालीस औषधियें और खैरसार, विजेसार, पिण्डखजूर, महुए, नागरमोथा, नीलकमल, मुनक्का, बायबिडंग, वच, चीता, शतावर, क्षीरकाकोली, पीपल, काकनासा, ऋद्धि, नागबला, हल्दी, धव, त्रिफला, कटेली, विदारीकंद, चंदन, ईखकी जड, सरपतकी जड, कम्भारी, तिनिश इन प्रत्येक औषधीका स्वरस तथा पलाशका क्षार एकएक पल[1] लेवे। और इन सबको एकत्रकर इनसे चौगुना दूध लेवे। तिलोंका तेल और गोघृत दोदो आढक[2] लेवे। इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे पकावे। जब औषधियोंका रस और दूध जलकर स्नेह मात्र शेष रहे तो उसको स्वच्छ वस्त्रमें छानलेवे। फिर इसमें १०० बार आँवलेके स्वरसकी भावना दियाहुआ आँवलेका चूर्ण १ आढक, नवीन उत्तम शहद १ आढक, पिसीहुई मिसरी १ आढक, वंशलोचन और पीपलका चूर्ण १ प्रस्थ[3] इन सबको उसमें मिलादेवे और किसी घीके चिकने मिट्टीके पात्रमें भरकर पंद्रहदिनतक धरा रहने देवे। फिर जठराग्निका बलाबल विचार कर उचित मात्रासे सेवन करे। और सेवन करते समय मात्रा (खुराक) से सोलहवां भाग सोना, तांबा, मूंगा, लोहा, स्फटिक, मोती, वैडूर्य, शंख और चांदी इन सबकी बहुत उत्तम भस्म मिलाकर खाना चाहिये। इसके सेवनके समय सब प्रकारका परिश्रम और स्त्रीसंगको बिल्कुल त्याग देवे तथा किसीप्रकारका कुपथ्य

१ पल चार तोलेका होताहै। २ आढक चार सेरका होताहै। ३ प्रस्थ १ सेर कहाताहै।

सेवन न करे । जब मात्रा जीर्ण होकर भूख लगे तब शाठीके चावलोंका भात, दूध और घृत मिला भोजन कियाकरे ॥ १७७-१८७ ॥

इसके गुण ।

सर्वरोगप्रशमनं वृष्यमायुष्यमुत्तमम् । सत्त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् ॥ १८८॥ परमूर्जस्करश्चैव वर्णस्वरकरंतथा । विषालक्ष्मीप्रशमनंसर्ववाचोगतिप्रदम् ॥ १८९ ॥ सिद्धार्थताश्चाभिनवं वयश्चप्रजाप्रियत्वञ्चयशश्चलोके । प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदंयथावद्रसायनंब्राह्ममुदारवीर्य्यम् ॥ १९० ॥

यह रसायन सर्वरोगनाशक, वलवर्द्धक, परमआयुकारक और सत्त्व, स्मृति, शरीर अग्नि, बुद्धि तथा इन्द्रियोंके वलको देनेवालीहै । एवं ओजको बढानेवाली, स्वर और वर्णको उत्तम करनेवाली, विषविकार तथा शरीरकी अलक्ष्मीको दूर करनेवाली और वाक्सिद्धिको देनेवाली है । इसके सेवनसे मनोरथ सिद्धि, नवीन अवस्था और प्रजाका प्रियपात्र एवं लोकमें यशकी प्राप्ति होतीहै । जो मनुष्य इन सब गुणोंकी इच्छा रखता हो वह इस उदारवीर्य ब्राह्मरसायनका सेवन करे ॥ १८८ ॥ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

कुटीप्रवेशयोग्य मनुष्य ।

समर्थानामरोगाणांधीमतांनियतात्मनाम् ।
कुटीप्रवेशःक्षमिणांपरिच्छदवतांहितः ॥ १९१ ॥

जो मनुष्य सब प्रकार समर्थ हैं तथा आरोग्य (तन्दुरुस्त) बुद्धिमान्, जितात्मा क्षमायुक्त तथा संपूर्ण सामग्रीयुक्त हों उनको कुटीप्रवेशविधिसे रसायन सेवन करना हितकारक होताहै ॥ १९१ ॥

कुटीप्रवेशके अयोग्य ।

अतोऽन्यथातुयेतेषांसौर्य्यमारुतकोविधिः ।
ताभ्यांश्रेष्ठतरःपूर्वोविधिःसतुसुदुष्करः ॥ १९२ ॥

जो मनुष्य चंचल प्रकृतिवाले, रोगी, बुद्धिरहित, असमर्थ और असहनशील हैं तथा जिनके पास सब प्रकारकी सामग्री नहीं है उनको सौर्यमारुतिक अर्थात् जिसमें पवन, धूपका कोई विचार न हो, इस प्रकारकी साधारण रसायन सेवन करना चाहिये । यद्यपि कुटीप्रावेशिक रसायन सब प्रकार गुणोंमें परमोत्तम होतीहै परन्तु उसको साधारण मनुष्य कर नहीं सकते ॥ १९२ ॥

कुपथ्यसे उत्पन्न रागोंमें चिकित्सा।

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्व्याधयोयदि।
यथास्वमौषधंतेषांकार्य्यंमुक्त्वारसायनम्॥ १९३॥

रसायन सेवन करते समय किसी प्रकारका कुपथ्य होनेसे जो रोग उत्पन्न होय तो उनकी उन रोगोंके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये और रसायनका त्याग करदेना चाहिये॥ १९३॥

रसायनके योग्य मनुष्य।

सत्यवादिनमक्रोधंनिवृत्तंमद्यमैथुनात्। अहिंसकमनायासंप्रशान्तंप्रियवादिनम्॥ १९४॥ जपशौचपरंधीरंदाननित्यंतपस्विनम्। देवगोब्राह्मणाचार्य्यगुरुवृद्धार्च्चनेरतम्॥ १९५॥ आनृशंस्यपरंनित्यंनित्यंकारुण्यवेदिनम्। समजागरणस्वप्ननित्यंक्षीरघृताशिनम्॥ १९६॥ देशकालप्रमाणज्ञंयुक्तिज्ञमनहंकृतम्। शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्॥ १९७॥ उपासितारंवृद्धानामास्तिकानांजितात्मनाम्। धर्मशास्त्रपरंविद्यान्नरंनित्यरसायनम्॥ ॥ १९८॥ गुणैरेतैःसमुदितैःप्रयुङ्क्तेयोरसायनम्। रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते॥ १९९॥

जो जन सत्यवादी, क्रोधरहित, मद्य, मैथुनसे रहित, अहिंसक, श्रम न करनेवाला, प्रियवादी, जप, शौचाचार, धीरता इनको धारण करनेवाला तथा नित्य दानको देनेवाला, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरू और वृद्धजनोंकी पूजामें रत हो, निर्लज्ज कार्मोको न करनेवाला, दयाशील, ज्ञानी, उचित रीतिपर ठीक समय जागने और सोनेवाला हो दूध, घृतको भोजन करनेवाला हो एवं देश, काल प्रमाण और युक्तिको जाननेवाला हो, अहंकाररहित हो, प्रशंसनीय आचारको धारण करनेवाला हो, एक धर्मपर दृढ हो अध्यात्मको जाननेवाला हो, समस्त इन्द्रियोंको जीतकर ज्ञानमें लगानेवाला हो तथा वृद्ध, आस्तिक, जितात्मा, इनकी उपासना करनेवाला हो, धर्मशास्त्रकी आज्ञा पालन करनेवाला हो। इस प्रकारके मनुष्यको रसायनके विना भी रसायनके गुण प्राप्त होतेहै। जिन लोगोंमें इस प्रकारके गुण वर्तमान है यदि उनको रसायनका प्रयोग कियाजाय तो उनको रसायनके संपूर्ण गुण प्राप्त होतेहैं॥ १९४-१९९॥

यथास्थूलमनिर्वाह्यदोषाञ्छारीरमानसान्।रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यते

न कदाचन ॥ २०० ॥ योगाह्यायुःप्रकर्षार्थाजरारोगनिवर्हणाः । मनःशरीरशुद्धानांसिध्यन्तिप्रयतात्मनाम् ॥ २०१ ॥

जबतक शरीर और मनके दोषोंके समुदायसे मनुष्य शुद्ध नहीं होता तबतक वह कभी भी रसायनके गुणोंको प्राप्त नहीं करसकता । क्योंकि जिन लोगोंके मन और शरीर शुद्ध हैं तथा जो पुरुष जितात्मा हैं । उन्हींको यह आयुवर्द्धक, जराव्याधि नाशक रसायनके संपूर्ण योग सिद्ध होसकतेहैं ॥ २०० ॥ २०१ ॥

रसायनके अयोग्य ।

तदेतन्नभवेद्वाच्यंसर्वमेवहतात्मसु । अरुजेभ्योद्विजातिभ्यःशुश्रूपायेषुनास्तिच ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य अजितेन्द्रिय हैं, जिनका चित्त अपने वशमें नहीं है, जिनको आरोग्यतामें और ब्राह्मणोंमें श्रद्धा नहीं है । ऐसे मनुष्योंको रसायनका कथन मात्र भी नहीं करना चाहिये ॥ २०२ ॥

वैद्यकी सेवाका उपदेश ।

येरसायनसंयोगावृष्यायोगाश्रयेमताः । यच्चौषधंविकाराणांसर्वं तद्वैद्यसंश्रयम् ॥ २०३ ॥ प्राणाचार्य्यंबुधस्तस्माद्धीमन्तंवेदपारगम् । अश्विनाविवदेवेन्द्रःपूजयेदतिशक्तितः ॥ २०४ ॥

यह संपूर्ण रसायनयोग और वाजीकरणयोग एवं व्याधियोंको नष्ट करनेवाले औषध चिकित्सा यह सब वैद्यके आश्रय हैं । इसलिये जिस प्रकार इन्द्र अश्विनी कुमारोंका पूजन करताहै उसीप्रकार आयुर्वेदके जाननेवाले बुद्धिमान् प्राणाचार्य वैद्यकी सेवा यथाशक्ति मनुष्योंको करनी चाहिये ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसा ।

अश्विनौदेवभिषजौयज्ञवाहावितिस्मृतौ । दक्षस्यहिशिरश्छिन्नंपुनस्ताभ्यांसमाहितम् ॥ २०५ ॥ प्रशीर्णादशनाःपूष्णोनेत्रेनष्टेभगस्यच । वज्रिणश्चभुजस्तम्भस्ताभ्यामेवचिकित्सितः ॥ २०६ ॥ चिकित्सितस्तुशीतांशुर्गृहीतो राजयक्ष्मणा । सोमाभिपतितश्चन्द्रःकृतस्ताभ्यांपुनःसुखी॥२०७॥भार्गवश्च्यवनःकामीवृद्धःसन्विकृतिंगतः । वीतवर्णस्वरोपेतःकृतस्ताभ्यांपुनर्युवा ॥ २०८ ॥ एतैश्चान्यैश्चबहुभिःकर्मभिर्भिषगुत्तमौ । बभूवतुर्भृशंपूज्याविन्द्रादीनां

महात्मनाम् ॥ २०९ ॥ ग्रहाःस्तोत्राणिमन्त्राणितथान्यानिहवींषिच । धूम्राश्चपशवस्ताभ्यांप्रकल्प्यन्तेद्विजातिभिः ॥ २१० ॥

अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हैं । इनको यज्ञमें भाग भी दिया जाता है । इन्होंने दक्षके कटेहुए सिरको जोड दिया था । पूषादेवके गिरेहुए दांतोंको और भगदेवके नष्ट नेत्रोंको फिर उत्तम बना दिया था । इन्द्रकी स्तंभित भुजाओंकी चिकित्सा की थी, राजयक्ष्मासे व्याकुलहुए चंद्रमाको अश्विनीकुमारोंने ही अच्छा किया । सोमभावसे नष्टहुए चन्द्रमाको इन्होंने सुखी किया और भृगुके पुत्र च्यवन ऋषि कामवश होनेसे वृद्धावस्थामें विकृत होगयेथे उनको भी इन्होंनेही वर्ण, स्वरयुक्त फिरसे युवा बना दिया । इसप्रकारके बहुतसे योग्य और उत्तम चिकित्सा कर्म किये । उन कर्मोंके प्रभावसे यह अश्विनीकुमार इन्द्रादिक देवता और महात्माओंके विशेष पूजनीय हुए । इसीलिये द्विजाती भी उनके अर्पण मन्दिर, स्तोत्र, मंत्र, घृतकी आहुति, धूप और यज्ञभाग करते हैं ॥ २०९–२१० ॥

प्रातश्चसवनेसोमंशक्रोऽश्विभ्यांसहाश्नुते । सौत्रामण्यांचभगवानश्विभ्यांसहमोदते ॥ २११ ॥ इन्द्राग्नीचाश्विनौचैवस्तूयन्तेप्रायशोद्विजैः । स्तूयन्तेवेदवाक्येषुनतथान्याहिदेवताः ॥ २१२ ॥ अमरैरजरैस्तावद्विबुधैःसाधिपैर्ध्रुवैः । पूज्येतेप्रयतैरेवमश्विनौभिषजाविति ॥ २१३ ॥

प्रातःकाल इन्द्रभगवान् अश्विनीकुमारोंके साथ सोमको पान करतेहैं और सौत्रामणी यज्ञसे अश्विनीकुमारों सहित प्रसन्न होतेहैं । ब्राह्मण प्रायः इन्द्र, अग्नि और अश्विनीकुमारोंकी ही स्तुति करतेहैं । वेदवाक्योंमें भी जिसप्रकार अश्विनीकुमारोंकी स्तुति है वैसी अन्य देवताओंकी नहीं है । जरारहित, अमर, ज्ञानी, देवता, अपने अधिपति इन्द्रके साथ यत्नपूर्वक अश्विनीकुमारोंकी पूजा करतेहैं ॥ २११–२१३॥

मृत्युव्याधिजरावश्यैर्दुःखप्रायैःसुखार्थिभिः ।
किंपुनर्भिषजोमर्त्यैःपूज्याःस्युर्नातिशक्तितः ॥ २१४ ॥

मनुष्य प्रायः मृत्यु, व्याधि, बुढ़ापा आदि दुःखोंसे दुःखित हुए रहतेहैं उनको अपने सुखकी इच्छा करतेहुए यथाशक्ति वैद्योंका पूजन करना चाहिये ॥ २१४ ॥

प्राणाचार्यके लक्षण ।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ।
प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यःप्राणाचार्य्यःसहिस्मृतः ॥ २१५ ॥

शीलवान, मतिमान्, चिकित्साकी संपूर्ण युक्ति जाननेवाला, द्विजाति, आयुर्वेद शास्त्रमें पारंगत वैद्य प्राणाचार्य कहाजाताहै। वह संपूर्ण प्राणियोंको प्राणोंके समान पूजन करनेयोग्य है ॥ २१५ ॥

वैद्यको त्रिजातित्व।

विद्यासमाप्तौभिषजस्तृतीयाजातिरुच्यते।अश्नुतेवैद्यशब्दंहिनवैद्यः पूर्वजन्मना ॥ २१६ ॥ विद्यासमाप्तौब्राह्मंवासत्त्वमार्षमथापिवा। ध्रुवमाविशतिज्ञानात्तस्माद्वैद्यस्त्रिजस्स्मृतः ॥ २१७ ॥

वैद्य विद्याको समाप्त करनेपर त्रिजाति कहाजाताहै क्योंकि पूर्वजन्मसे कोई वैद्य नहीं कहाजासकता। ब्राह्मण बालकका जन्म संस्कार होनेके अनन्तर जब यज्ञोपवीत संस्कार होताहै तो वह द्विज कहाजाताहै फिर वैद्यविद्याकी समाप्ति होनेपर जब उसमें आयुर्वेदशास्त्रका प्रभाव होजाताहै तो उस समय उसमें ब्राह्मसत्त्व अथवा आर्षसत्त्व आकर प्रवेश कर लेताहै। उस समयसे वैद्य त्रिजाति कहाजाताहै ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितंनसमाचरेत्। प्राणाचार्य्यंबुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम् ॥ २१८ ॥ चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः। नोपाकरोतिवैद्यायनास्तितस्येहनिष्कृतिः ॥ २१९ ॥

दीर्घायुकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वैद्यका कभी भी खोटा चिंतवन नहीं करना चाहिये। और निंदा अहित तथा अपशब्द यह प्राणाचार्यको कभी न कहे। जब मनुष्य रोगावस्थामें ऐसी प्रतिज्ञा करे कि मैं अच्छा होजानेपर वैद्यकी सेवा करूंगा अथवा विना प्रतिज्ञा किये भी जो मनुष्य रोगमुक्त होनेपर वैद्यकी सेवा नहीं करता तो उस पापीके इसप्रकार पापका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है ॥२१८॥२१९॥

वैद्यके लिये कर्तव्य।

भिषगप्यातुरान्सर्वान्स्वसुतानिवयत्नवान्।
आबाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम् ॥ २२० ॥

वैद्यको भी चाहिये कि वह सर्वोत्तम धर्मकी इच्छा करताहुआ अपने पुत्रोंके समान रोगियोंकी संपूर्णरूपसे व्याधियोंसे रक्षा करे ॥ २२० ॥

धर्मार्थश्चार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः। प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्षरम् ॥ २२१ ॥ नार्थार्थंनापिकामार्थमथभूतदयांप्रति। वर्त्ततेयश्चिकित्सायांससर्वमतिवर्त्तते ॥ २२२ ॥ कुर्वतेयेतु

वृत्त्यर्थंचिकित्सापण्यंविक्रयम् । तेहित्वाकाञ्चनंराशिंपांशुराशि-मुपासते ॥ २२३ ॥

धर्मपरायण महर्षियोंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा करतेहुए आयुर्वेदका उपदेश कियाहै केवल अपने स्वार्थ अथवा कामनाके साधनकी इच्छासे आयुर्वेदका उपदेश किया है उनका प्रयोजन प्राणी मात्रपर दया करनाही है। इसलिये उनकी आज्ञानुसार चिकित्सा करनेवाला वैद्य सबसे उत्तम या ऊंचे दर्जेका माना जाताहै । जो वैद्य केवल आजीविकाके लिये चिकित्साकी दूकानदारी करताहै वह मूर्ख सुवर्णके ढेरको छोडकर धूलके ढेरकी उपासना करताहै ॥ २२१ ॥ २२२ ॥ २२३ ॥

वैद्यको पुण्य ।

दारुणैःकृष्यमाणानांगदैर्वैवस्वतक्षयम् । छित्त्वावैवस्वतान्पाशा-ञ्जीवितंप्रयच्छंति ॥ २२४ ॥ धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोपल-भ्यते । नहिजीवितदानाद्धिदानमन्यद्विशिष्यते ॥ २२५ ॥

रोगरूपी दारुण फांसियोंसे यमलोककी ओर खींचेहुए प्राणियोंको यमफांससे छुडाकर जो जीवनका दान देताहै उससे बढकर धर्मात्मा और दानी कौन होसकताहै अर्थात् कोई नहीं होसकता । क्योंकि जीवनदानसे बढकर दुनियामें और कोई दान नहीं है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

परोभूतदयाधर्मइतिमत्वाचिकित्सया ।
वर्त्ततेयःससिद्धार्थःसुखमत्यन्तमश्नुते ॥ २२६ ॥

जीवमात्रपर दया करनाही परमधर्म है यह मानकर जो वैद्य चिकित्सा करताहै वह वैद्य सिद्ध अर्थको अथवा अपने पर्यतनकी सिद्धिको प्राप्त होकर इस लोकके और परलोकके अत्यंत सुखको प्राप्त होताहै ॥ २२६ ॥

पादका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

आयुर्वेदसमुत्थानंदिव्यौषधिविधिःशुभः । अमृताल्पान्तरगुणंसि-द्धंरत्नरसायनम् ॥ २२७ ॥ सिद्धेभ्योब्रह्मचारिभ्योयदुवाचामरे-श्वरः । आयुर्वेदसमुत्थानेतत्सर्वंसम्प्रकाशितम् ॥ २२८ ॥

इति चरकसं० चिकित्सिते आयुर्वेदसमुत्थानीयो रसायनपादश्चतुर्थः ४

समाप्तश्च रसायनोऽध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

यहांपर अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस आयुर्वेद समुत्थानीय रसायन पादमें-आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य और शुभ तथा अमृततुल्य गुणवाली सिद्ध रसायनोंका ब्रह्मचारी सिद्ध ऋषियोंके प्रति इन्द्रका कथन करना यह सब वर्णन कियागया है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक प्रणीतायुर्वेदसंहितायां चिकित्सास्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायामायुर्वेदसमुत्थानीयो नाम चतुर्थःपादः । समाप्तश्चायं रसायनाध्यायः प्रथमः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

वाजीकरणम् ।

अथातःसम्प्रयोगशरमूलीयंवाजीकरणपादं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम सम्प्रयोग शरमूलीय वाजीकरण पादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषोनित्यमात्मवान् । तदायत्तौहिधर्मार्थौ प्रीतिश्चयशएवच ॥ १ ॥ पुत्रस्यायतनंह्येतद्गुणाश्चैतेसुताश्रयाः । वाजीकरणमग्र्यञ्चक्षेत्रंस्त्रीयाप्रहर्षिणी ॥ २ ॥

आत्मवान् मनुष्यको नित्यप्रति वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । क्योंकि धर्म, अर्थ, प्रीति और यश यह सब वाजीकरणकेही आधीन हैं । और पुत्रोत्पत्तिका परमस्थान वाजीकरण ही है । और पुत्रके आश्रय ही धर्म, अर्थ, प्रीति और यश-यह गुण रहतेहैं । तथा सबसे मुख्यक्षेत्र वाजीकरणका प्रहर्षको उत्पन्न करनेवाली स्त्रियें हैं ॥ १ ॥ २ ॥

स्त्रीकी प्रशंसा ।

इष्टाह्येकैकशोऽप्यर्थाःपरंप्रीतिकराःस्मृताः । किंपुनःस्त्रीशरीरेयेसंघातेन व्यवस्थिताः ॥ ३ ॥ संघातोहीन्द्रियार्थानांस्त्रीषुनान्यत्रविद्यते । स्त्र्याश्रयोहीन्द्रियार्थोयःसप्रीतिजननोऽधिकः ॥ ४ ॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध यह पांचों इन्द्रियोंके विषय हैं । इनमेंसे एककी प्राप्ति होना भी परम प्रीतिके आनन्दको देनेवाला होताहै । स्त्रीके शरीरमें यह पांचों ही संघातरूपसे विराजमान रहतेहैं । इसलिये स्त्रीसे बढकर इन्द्रियोंकी प्यारी वस्तु

और क्या होसकतीहै । सर्व इन्द्रियोंके विषय संघातरूपसे स्त्रीके सिवाय और किसी जगह नहीं रहसकते । स्त्रीके आश्रित जो इन्द्रियोंके विषय है वह ही अत्यंत प्रीतिको उत्पन्न करनेवाले है ॥ ३ ॥ ४ ॥

स्त्रीषुप्रीतिर्विशेषेणस्त्रीष्वपत्यंप्रतिष्ठितम् ।
धर्मार्थौस्त्रीषुलक्ष्मीश्चस्त्रीषुलोकाःप्रतिष्ठिताः ॥ ५ ॥

स्त्रियोंमे ही विशेषरूपसे प्रीति निवास करतीहै । स्त्रियोंमें ही संतान प्रतिष्ठित है । धर्म, अर्थ और लक्ष्मी यह सब स्त्रियोंमेंही विद्यमान है । स्त्रियोंमेही यह संसार प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥

सुरूपायौवनस्थायालक्षणैर्याविभूषिता ।
यावश्याशिक्षितायाचसास्त्रीवृष्यतमामता ॥ ६ ॥

सुन्दर, रूपवती, युवावस्थावाली, संपूर्ण योग्य लक्षणोंसे शोभायमान अपने वश तथा गुणवान् जो स्त्री है वह सबसे उत्तम वाजीकरण अर्थात् प्रहर्षोत्पादक है॥६॥

नानाभक्त्यातुलोकस्यदैवयोगाच्चयोषिताम् । तंतंप्राप्यविवर्तन्ते नरंरूपादयोगुणाः ॥ ७ ॥ वयोरूपवचोहावैर्यायस्यपरमाङ्गना । प्रविशत्याशुहृदयंदैवाद्वाकर्मणोऽपिवा ॥ ८ ॥ हृदयोत्सवरूपाया यासमानमनोरमा ।समानसत्त्वायावश्यायायस्यप्रीतयेप्रियैः ॥९॥

संसारमें अनेक प्रकारकी स्त्रियें होती है और दैवयोगसे उन्ही अनेक प्रकारके रूपादि गुणोंको देखकर अनेक प्रकारके मनुष्योंको प्रीति उत्पन्न होतीहै । उनमें भाग्याधीन वा कर्मवशसे जिस पुरुषको जैसी अवस्थारूपवाली स्त्रीका हृदयमें प्रेम उत्पन्न होताहै उसके लिये वही रूपवती और वही मनको प्रसन्न करनेवाली मनोरमा होतीहै । जो जिसके सत्त्वके अनुरूप सत्त्ववाली होतीहै और जो जिसके वश होतीहै वही स्त्री उसके अनुकूल प्यारे गुणोंके योगसे अपने प्यारे पुरुषमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली होतीहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

यापाशभूतासर्वेषामिन्द्रियाणांपरैर्गुणैः ।ययावियुक्तोनिस्त्रीकमरतिर्मन्यतेजगत् ॥ १० ॥ यस्याऋतेशरीरंनाधत्तेशून्यमिवेन्द्रियैः । शोकोद्वेगारतिभयैर्यांदृष्ट्वानाभिभूयते ॥११॥ यातियांप्राप्यविस्रम्भ दृष्ट्वाहृष्यत्यतीवयाम् । अपूर्वामिवयांयातिनित्यहर्षातिवेगतः॥१२॥ गत्वागत्वापिबहुशोयांतृप्तिंनैवगच्छति ॥ सास्त्रीवृष्यतमातस्यनानाभावाहिमानवाः ॥ १३ ॥

जो स्त्री संपूर्ण इन्द्रियोंको अपने गुणरूपी फांसीसे आकर्षण करतीहै, जिस स्त्रीके विना, पुरुषका चित्त अस्थिर होजाताहै। जिसके विना मनुष्य अपने शरीरको इन्द्रियोंसे शून्य मानकर शरीरकी इच्छा नहीं रखता, जिसके देखने मात्रसे मनुष्य के शोक, उद्वेग, अस्थिरता (अरति) भय, यह, सब दूर भागजातेहैं । जिसको देखते ही विश्वासको प्राप्त हो मनुष्य अपने संपूर्ण भावोंको प्रगट करने लगजाताहै। जिसको देखकर अत्यंत हर्षको प्राप्त होताहै। जिसको नित्य देखतेहुए भी अपूर्वके समान नित्य नयानया हर्षका वेग उत्पन्न होताहै। जिस स्त्रीसे नित्य सहवास करते हुए भी मनुष्य तृप्तिको प्राप्त नहीं होता वह स्त्री अपने अपने भावोंके समान पुरुषोंको अत्यंत वाजीकरण अर्थात् कामोत्पादक होतीहै क्योंकि संपूर्ण प्राणियोंकी प्रकृति एकसी नहीं होती ॥ १०-१३ ॥

संतानार्थ योग्यस्त्रीगमन।

अतुल्यगोत्रांवृष्यांश्चप्रहृष्टांनिरुपद्रवाम् ।
शुद्धस्नातांव्रजेन्नारीमपत्यार्थीनिरामयः ॥ १४ ॥

जो स्त्री अपने स्वभावके अनुरूप हो तथा अपने गोत्रकी न हो, जिसमें प्रीति हो,जो रोगरहित हो, प्रसन्नमन हो उपद्रवरहित हो और ऋतुसे शुद्ध स्नान करचुकी हो, संतानकी इच्छावाला पुरुष ऐसी स्त्रीसे संसर्ग करे ॥ १४ ॥

संतानके विना पुरुषकी निन्दा।

अच्छायश्चैकशाखश्चनिष्फलश्चयथाद्रुमः । अनिष्टगन्धश्चैकश्च निरपत्यस्तथानरः ॥ १५ ॥ चित्रदीपःसरःशुष्कमधातुर्धातुसन्निभः। निष्प्रजस्तृणपूलीतिज्ञातव्यःपुरुषाकृतिः ॥ १६ ॥

जैसे छायारहित एक शाखावाला निष्फल और अनिष्ट गंधवाला वृक्ष निन्दनीय होताहै उसी प्रकार संतानके विना पुरुष भी निंदनीय होताहै। संतानके विना मनुष्य जैसा चित्रमें लिखा दीपक, नाममात्रका ही होताहै परन्तु प्रकाशयुक्त नहीं होता उसी प्रकार संतानहीन मनुष्य भी निरर्थक होताहै। जैसे जलके विना सरोवर और विना धातुसे धातुके समान दीखनेवाला पदार्थ और घास या लकडीसे बनाहुआ पुरुषके आकारका पुतला केवल देखनेमात्रका ही होताहै। उसी प्रकार संतानके विना पुरुष होताहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

अप्रतिष्ठश्चनग्नश्चशून्यश्चैकेन्द्रियश्चना।
मन्तव्यो निष्क्रियश्चैवयस्यापत्यंनविद्यते ॥ १७ ॥

जिस मनुष्यको संतान नहीं है वह प्रतिष्ठारहित नग्नके समान शून्य, एकेन्द्रिय और क्रियारहित होताहै ॥ १७ ॥

संतानयुक्त पुरुषकी प्रशंसा।

बहुमूर्त्तिर्बहुमुखोबहुव्यूहोबहुक्रियः।
बहुचक्षुर्बहुज्ञानोबह्वात्माचबहुप्रजः ॥ १८ ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी संतान हैं उसको बहुतसी मूर्त्तियोंवाला,बहुतसे मुखवाला, बहुत व्यूह और बहुत क्रियावाला तथा बहुनेत्र, बहुज्ञान और बहुआतमा जानना चाहिये ॥ १८ ॥

मङ्गल्योऽयंप्रशस्तोऽयंधन्योऽयंवीर्य्यवानयम् । बहुशाखोऽयमिति चस्तूयतेनाबहुप्रजः ॥ १९ ॥ प्रीतिर्बलंसुखंवृत्तिर्विस्तारोविभवः कुलम्। यशोलोकाःसुखोदर्कास्तुष्टिश्चापत्यसंश्रिता ॥ २० ॥

जिस मनुष्यकी बहुतसी संतान हैं वह संसारमें यह मंगलमय, प्रशंसाके योग्य, पवित्र, धन्य और वीर्यवान् तथा बहुतसी शाखाओंवाला है । इसप्रकार कहकर स्तुति किया जाताहै। संसारमें प्रीति, बल, सुख, वृत्ति, विस्तार, विभव, कुल, यश, यह सब लोकसुखके समूह है। यह सब तथा तुष्टि संतानके ही आश्रित है॥१९॥२०॥

तस्मादपत्यमन्विच्छन्गुणांश्चापत्यसंश्रितान् ।
वाजीकरणनित्यःस्यादिच्छेत्कामसुखानिच ॥ २१ ॥

इसलिये संतानकी इच्छावाला मनुष्य तथा संतानके गुणोंकी इच्छा एवं कामसुखकी इच्छा करताहुआ; नित्य वाजीकरण पदार्थोंका सेवन करे ॥ २१ ॥

उपभोगसुखान्सिद्धान्वीर्य्यापत्यविवर्द्धनान् ।
वाजीकरणसंयोगान्प्रवक्ष्याम्यतउत्तरम् ॥ २२ ॥

अब उपभोगके सुखको करनेवाले तथा वीर्य और संतानके बढानेवाले सिद्ध वाजीकरण प्रयोगोंका वर्णन करतेहैं ॥ २२ ॥

वृष्यगुटिका ।

शरमूलेक्षुमूलानिकाण्डेक्षुंसेक्षुवालिकम्। शतावरींपयस्यांचविदारींकण्टकारिकाम्॥ २३ ॥ जीवन्तींजीवकंमेदांवीराश्चर्षभकंबलाम्। ऋद्धिंगोक्षुरकंरास्नामात्मगुप्तांपुनर्नवाम् ॥ २४ ॥ पृथक् त्रिपलिकान्कृत्वामाषाणामाढकंनवम् । विपाचयेज्जलद्रोणेचतु-

भागश्चशोषयेत् ॥ २५ ॥ तत्रपेष्याणिमधुकंद्राक्षांफल्गूनिपिप्पलीम् । आत्मगुप्तांमधूकानिखर्जूराणिशतावरीम् ॥ २६ ॥ विदार्य्यामलकेक्षूणांरसस्यचपृथक्पृथक् । सर्पिषश्चाढकंदद्यात्क्षीरद्रोणश्चतद्भिषक् ॥ २७ ॥ साधयेद्घृतशेषश्चसपूतंयोजयेत्पुनः । शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याश्चूर्णैःप्रस्थोन्मितैर्भिषक् ॥ २८॥ पलैश्चतुर्भिर्मागध्याःपलेनमरिचस्यच । त्वगेलाकेशराणाञ्चचूर्णैरर्द्धपलोन्मितैः ॥ २९ ॥ मधुनःकुडवाभ्याञ्चद्वाभ्यांतत्कारयेद्भिषक् । पलिकागुटिकाःकृत्वातायथाग्निप्रयोजयेत् ॥ ३० ॥ एषवृष्यःपरोयोगोवृंहणोवलवर्द्धनः । अनेनाश्वइवोदीर्णोलिङ्गमर्पयतेस्त्रियाम् ॥ ३१ ॥

सरकंडेकी जड, ईखकी जड, काण्डेक्षु, इक्षुवालिका, शतावरी, क्षीरकाकोली, विदारी कंद, कटेली, जीवन्ती, जीवक, मेदा, काकोली, ऋषभक, बला (खरेटी) ऋद्धि, गोखरू, रासना. कौंचकी बीजोंकी गिरू, पुनर्नवा इन प्रत्येकको तीनतीन पल लेवे, उडद १ आढक (४ सेर) इन सबको १ द्रोण (१६ सेर) पानीमें डालकर पकावे । जब चौथा हिस्सा बाकी रहे तब उतार लेवे । फिर इसमें मुलहठी, मुनक्का, गूलर, पीपल, कौंचके बीजोंकी गिरू. महुए, छोहाडे और शतावर इन सबका कल्क बना उसी क्वाथमें मिला देवे । फिर विदारीकंदका रस, आमलोंका रस, ईखका रस यह सब एक एक आढक मिलावे (और घृत १ आढक मिलावे) तथा दूध १ द्रोण मिलाकर सबको घृत पाक विधिसे पकावे। जब घृतमात्र शेष रहे तो घृतको छानकर किसी उत्तम पात्रमें डाल लेवे । और उस घृतमें मिसरी और वंशलोचन १ प्रस्थ मिलावे तथा पीपल ४ पल मिर्च १ पल, दालचीनी, इलायची, नागकेशर यह प्रत्येक २ तोला । शहद २ कुडव (आधा सेर पक्का) इन सबको उस घृतमें मिलाकर चार चार तोलेकी गोलियें बना लेवे । फिर इनको अग्निबल विचारकर सेवन करे। यह गुटिका (लड्डू) परम वीर्यवर्द्धक, शरीरको पुष्ट करनेवाली और बलके बढानेवाली है । इसके प्रयोगसे मनुष्य घोडेके समान मैथुनकर सकताहै ॥२३-३१॥

वाजीकरण घृत।

माषाणामात्मगुप्तायाबीजानामाढकंनवम् । जीवकर्षभकौवीरांमेदामृद्धिंशतावरीम् ॥ ३२ ॥ मधूकञ्चाश्वगन्धाञ्चसाधयेत्कुडवो-

१ एक सेरका १ प्रस्थ होताहै ।

न्मिताम्र । रसेतस्मिन्घृतप्रस्थंगव्यंदशगुणंपयः ॥ ३३ ॥ विदारीणांरसप्रस्थंप्रस्थमिक्षुरसस्यच । दत्त्वामृद्वग्निनासाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत् ॥ ३४ ॥ शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याःक्षौद्रस्यचपृथक्पृथक् । भागांश्चतुष्पलांस्तत्रपिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ॥ ३५ ॥ पलंपूर्वमतोलीढ्वाततोऽन्नमुपयोजयेत्।यइच्छेदक्षयंशुक्रंशेफसश्चोत्तमंबलम् ३६

नए उडद और कौंचके बीज यह दोनों एक एक आढक[1] लेवे । जीवक, ऋषभक काकोली, मेदा, ऋद्धि, शतावरी, मुलहठी और असगंध यह प्रत्येक एकएक कुडव[2] इन सब औषधियोंको लेकर दशगुने जलमें पकावे । जब नौभाग जलकर एक भाग बाकी रहे तब उस रसको छान लेवे । फिर उस रसमें १ प्रस्थ घी दश प्रस्थ दूध १ प्रस्थ विदारीकंदका रस, १ प्रस्थ इक्षुरस । इन सबको मिलाकर मंदमंद आंचसे पकावे । जब घृतमात्र शेषरहे उसको उतार लेवे । उस घृतमें चार पल वंशलोचन, ४ पल शहद, १ पल पीपलका चूर्ण यह सब मिला देवे । इसमेंसे १ पल चाटलियाकरे फिर घृत, दूध युक्त पथ्य भोजन किया करे । इसके सेवनसे वीर्यकी वृद्धि होतीहै तथा वीर्यक्षय नहीं होता एवं इन्द्रिय अत्यंत बलवान् होती है ॥ ३२–३६ ॥

वाजीकरण पिण्डरस ।

शर्करामाषविदलास्तुगाक्षीरीपयोघृतम् । गोधूमचूर्णषष्ठीनिसर्पिष्युत्कारिकांपचेत् ॥ ३७ ॥ तां नातिपक्वां मृदितां कौक्कुटे मधुरे रसे । सुगन्धे प्रक्षिपेदुष्णे यथा सान्द्रीभवेद्रसः ॥ ३८ ॥ एष पिण्डरसो वृष्यः पौष्टिकोबलवर्द्धनः । अनेनाश्व इवोदीर्णो बली लिङ्गं समर्पयेत् । शिखितित्तिरिहंसानामेवं पिण्डरसो मतः ॥३९ ॥

उडदकी बारीक पिसी पिठी अथवा उडदके दालका चूर्ण और गेहूंका मैदा इनमें मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनालेवे और उन पूडियोंको घृतमें पकाकर कुक्कुट (मुर्गा) के त्रिसुगंधयुक्त गर्म २ मांसरसमें भिगो देवे । जब वह उस गर्म मांसरसमें मिलकर गाढा होजाय तो इसको पिण्डरस कहते हैं । यह पिण्डरस वीर्यवर्द्धक पुष्टिकारक और बलको बढानेवाला है । इसके सेवनसे घोडेके समान लिंगेन्द्रिय तीक्ष्ण और बलवान् होतीहै । इसीप्रकार मोर, तीतर और हंसके मांसरसमें भी यह पिण्डरस बनताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

---

१ चार सेरका १ आढक होताहै । २ पावभरका १ कुडव होताहै ।

वृष्य रस ।

घृतं माषान् सवस्ताण्डान् साधयेन्माहिषेरसे । भर्जयेत्तंरसंपूतंफलाम्लंनवसर्पिषि ॥ ४० ॥ ईषत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः । एषवृष्यश्चवल्यश्चबृंहणश्चरसोत्तमः ॥ ४१ ॥

घृत, उडद, बकरेके अण्डकोश इनको भैंसेके मांसरसमें पकाकर छान लेवे । फिर उसको नवीन घृतमें सिद्धकरके अनार और आँवलेका रस थोडा, नमक, धनिया, जीरा और सोंठ मिलाकर उसका सेवन करे । यह रस वीर्यवर्द्धक, वलकारक, पुष्टिजनक है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अन्य वृष्य रस ।

चटकांस्तित्तिरिरसेतित्तिरीन्कौक्कुटेरसे । कुक्कुटान्बार्हिणरसेहांसेबर्हिणमेवच ॥ ४२ ॥ नवसर्पिषिसन्तप्तान् फलाम्लान् कारयेद्रसान् । मधुरान्वायथासात्म्यंगन्धाढ्यान्बलवर्द्धनान् ॥ ४३ ॥

चिडेका मांस तीतरके मांसरसमें, तीतरका मांस मुर्गेके मांसरसमें पकावे । एवं मुर्गेका मांस मोरके मांसरसमें, मोरका मांस हंसके मांसरसमें पकाकर नवीन घृतमें सिद्धकरे । और उपरोक्त विधिसे खट्टे फलोंका रस अथवा मीठा रस वा जैसे सात्म्य हो वैसे गंध द्रव्य आदि मिलाकर सेवन करनेसे वल वीर्यकी वृद्धि होतीहै ४२-४३॥

अन्य वृष्य रस ।

तृप्तिंचटकमांसानांगत्वायोऽनुपिवेत्पयः ।
नतस्यलिङ्गशैथिल्यं स्यान्नशुक्रक्षयोनिशि ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य तृप्तिपूर्वक चिडेका मांस खाकर ऊपरसे दूध पीताहै उसकी लिंगेन्द्रियमें कभी शिथिलता उत्पन्न नहीं होती और रात्रिमें वीर्यक्षय नहीं होता ॥४४॥

वृष्य माष ।

माषयूषेणयोभुक्त्वाघृताढ्यंषष्टिकौदनम् ।
पयःपिवतिरात्रिंसकृत्स्नांजागर्ति वेगवान् ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य उडदोंके दूधमें घृत मिलाकर उसके साथ साठीचावलोंके भातका भोजन करताहै और ऊपरसे दूध पीताहै वह कामके वेगसे व्याकुलहुआ सो नहीं सकता ॥ ४५ ॥

कुक्कुटमांस रस ।

ननास्वपितिरात्रीषुनित्यस्तब्धेनचशेफसा ।
तृप्तःकुक्कुटमांसानांभृष्टानांनक्रेरेतसि ॥ ४६ ॥

मगरके शुक्रमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्तिपूर्वक भोजन करनेसे मनुष्यकी इन्द्रिय क्षुभित रहनेसे वह रात्रिभर सो नहीं सकता ॥ ४६ ॥

अंडयोग।

निःस्राव्यमत्स्याण्डरसंभृष्टंसर्पिषिभक्षयेत् ।
हंसबर्हिणदक्षाणिचैवमण्डानिभक्षयेत् ॥ ४७ ॥

मछलीके अण्डोंके रसको घृतमें भूनकर अथवा हंस मोर और मुर्गीके अण्डोंको घीमें भूनकर खाना वीर्यको उत्पन्न करनेवाला होताहै ॥ ४७ ॥

वृष्यसेवन क्रम।

स्रोतःसुशुद्धेष्वमलेशरीरेवृष्यंयदानामितमत्तिकाले । वृषायतेतेन परंमनुष्यस्तद्बृंहणश्चैवबलप्रदश्च ॥ ४८ ॥ तस्मात्पुराशोधनमेव कार्य्यंबलानुरूपंनहिसिद्धियोगाः । सिध्यन्तिदेहेमलिनेप्रयुक्ताः क्लिष्टेयथावाससिरागयोगाः ॥ ४९ ॥

शरीर और शरीरके संपूर्ण छिद्र शुद्ध होनेपर ही वृष्यपदार्थोंका सेवन करना चाहिये। इसप्रकार सेवन करनेसे मनुष्य बैल समान वीर्यवान् होताहै और इसी प्रकार सेवनसे संपूर्ण वृष्य योग मनुष्योंको पुष्टि और बलकारक होतेहैं । इसलिये वमन विरेचन द्वारा पहिले शरीरको शोधनकर फिर अपने बलके अनुरूप सिद्ध वृष्य योगोंको सेवनकरना चाहिये यदि विना शोधनकिये मलिन देहवाला मनुष्य वृष्ययोगोंका सेवन करे तो वह जैसे मैले कपडेमें अच्छा रंग नहीं चढता उसी प्रकार वृष्ययोग भी सिद्धिदायक नहीं होते ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

पादका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ ।

वाजीकरणसामर्थ्यंक्षेत्रंस्त्रीयस्यचैवया । येदोषानिरपत्यानांगुणाः पुत्रवताश्चये ॥ ५० ॥ उक्तास्तेशरमूलीयेपादेपुष्टिबलप्रदाः । दश-पञ्चचसंयोगावीर्य्यापत्यविवर्द्धनाः ॥ ५१ ॥

इति च० सं० शरमूलीयेवाजीकरणपादःप्रथमः ।

अब पादके उपसंहारमें दो श्लोक कहतेहैं कि इस शरमूलीय वाजीकरण पादमें स्त्री योग्यता और वाजीकरणका क्षेत्र, संतानका कारण कहागयाहै । एवं संतानहै मनुष्यके दोष संतानवाले मनुष्योंके गुण और पंद्रह प्रकारके वीर्यवर्द्धक संतानदायक, पुष्टिकारक और बलके देनेवाले योगोंका कथन कियागयाहै ॥ ५० ॥ ५१ ॥

इति वाजीकरणाध्याये शरमूलीयवाजीकरणपादो नाम प्रथमपादः ॥

---

१ यद्यपि शुक्र वीर्यको ही कहतेहैं परंतु कोई इसका प्रयोग अंडा मानतेहैं ।

अथातआसिक्तक्षीरीयंद्वितीयंवाजीकरणपादंव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ॥ ५२ ॥

अब हम आसिक्तक्षीरीय नामक दूसरे वाजीकरणपादकी व्याख्या करतेहैं इस-प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ५२ ॥

अपत्यकारी गुटिका।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमशुष्कंशुद्धपष्टिकम्। उलूखले समापोथ्यपी-डयेत्क्षीरमर्दितम् ॥ ५३ ॥ क्षुण्णंविमर्दितंक्षीरेपीडयेत्सुसमाहितः। गृहीत्वातंरसंपूतंगव्येनपयसासह ॥ ५४ ॥ बीजानामात्मगुप्तायाः धान्यमाषरसेनच। बलायाःशूर्पपर्ण्योश्चजीवन्त्याजीवकस्यच। ऋद्ध्यर्षभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्यच ॥ ५५ ॥ शतावर्य्याविदार्य्याश्चद्राक्षाखर्ज्जूरयोरपि। संयुक्तंमात्रयावैद्यः साधयेत्तत्रचाव-पेत् ॥ ५६ ॥ तुगाक्षीर्य्याःसमापाणांशालीनांपष्टिकस्यच। गोधू-मानाश्चचूर्णानियैःससान्द्रीभवेद्रसः ॥ ५७ ॥ सान्द्रीभूतश्चतंकु-र्य्यात्प्रभूतमधुशर्करम्। गुटिकाबदरैस्तुल्यास्ताश्चसर्पिषिभर्जयेत् ॥ ५८ ॥ तायथाग्निप्रयुञ्जानःक्षीरमांसरसाशनः। पश्यत्यपत्यंवि-पुलंवृद्धोप्यात्मजमक्षयम् ॥ ५९ ॥

सुन्दर, शुद्ध, साठीके चावलोंको दूधमें भिगोकर गीले गीलोंकोही दूध डालकर किसी बडे कूंडेमें घोटडाले। जब वह खूब बारीक होजायँ तो उनको छानलेवे। उस छनेहुए गाढे रसमें और गौका दूध मिलादेवे। फिर उसमें कौंचके बीजोंकी गिरू धनिया और उडद इनका क्वाथ तथा बला (खरटी) मुग्धपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋद्धि, ऋषभक, काकोली, गोखरू, मुलहटी, शतावर, विदारीकंद, मुनक्का, पिण्डखजूर इन सबका अलग २ क्वाथ अथवा रस लेकर उस चावलोंके रसवाले दूधमें मिलाकर पकावे। जब तीन भाग जलकर १भाग शेष रहे तो उसको उतार लेवे। उसमें वंशलो-चन और घीमें भुनाहुआ उडदोंका शालिचावलोंका और साठीचावलोंका तथा गेहूंका आटा मिलावे। परन्तु इस प्रमाणसे मिलाना चाहिये जिसमें वह खूब गाढा होजाय। फिर इन सबमें शहद और मिसरी मिला इसकी बेरके समान गोली बना लेवे। उनको घीमें पकालेवे। फिर इनको जठराग्निका बलाबल विचारकर खावे। ऊपरसे दूध

अथवा मांसरस पीया करे । इसका सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्य भी बहुतसी संतान उत्पन्न करे और अपन संतानके अक्षय सुखको देखे ॥ ५३–५९ ॥

वृष्यपूपालिका ।

चटकानांसहंसानांदक्षाणांशिखिनांतथा । शिशुमारस्यनक्रस्य भिषक्शुक्राणिसंहरेत् ॥ ६० ॥ गव्यंसर्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवसामपि । षष्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णंगोधूममेवच ॥ ६१ ॥ एभिःपूपलिकाःकार्य्याःशष्कुल्योवर्त्तिकास्तथा । पूपाधानाश्चविविधाभक्ष्याश्चान्येपृथग्विधाः ॥६२॥ एषांप्रयोगाद्भक्ष्याणांस्तब्धेनापूर्णरेतसा । शेफसावाजिवद्यातियावदिच्छंस्त्रियोनरः ॥ ६३ ॥

वैद्य–चिडा, हंस, मुर्गा, मोर, शिशुमार, (सौंस) नक्र (मगरमच्छ) इन सबके शुक्रको इकट्ठा करावे । फिर इन सब वीर्योंको सूअर तथा चिडेकी चर्बीमें मिलाकर उनमें साठीके चावलोंका आटा और गेहूंका आटा मिलाकर पूडियें बनावे । उन पूडियोंको गौके घृत अथवा सूअरकी चर्बीमें पकालेवे । इसप्रकार पूडियों अथवा सोहालियें या खुरमें अथवा अनेक प्रकारके पूडे आदि बनाकर सेवन करनेसे लिंगेन्द्रिय पूर्णवीर्य और उद्दण्ड रहे । और पुरुष घोडेके समान स्त्रियोंमें गमनकर सके ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अपत्यकारक पेया ।

आत्मगुप्ताफलंमाषःखर्जूराणिशतावरीम् । शृङ्गाटकानिमृद्वीकां साधयेत्प्रस्थसम्मिताम् ॥६४॥ [1]क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंएतत्प्रस्थावशेषितम् । शुद्धेनवाससापूतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः ॥ ६५ ॥ शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याःसर्पिषोऽभिनवस्यच । तत्पाययेत्सक्षौद्रंषष्टिकान्नञ्चभोजयेत् ॥६६॥ जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्दन्ति। नरोऽपत्यंसुविपुलंयुवैवचसहृष्यति ॥ ६७ ॥

कौंचके बीज, उडद, पिण्डखजूर, शतावर, सिंघाडा, मुनक्का, यह सब दोदो पल लेवे । दूध १ प्रस्थ, पानी १ प्रस्थ मिलाकर उसमें फिर उपरोक्त औषधियोंको मिलाकर पकावे जब पानी जलकर दूध मात्र शेष रहजाय तब इसको शुद्ध वस्त्रद्वारा छान लेवे । फिर इसमें ६ पल मिसरी, वंशलोचन और नवीन घृत मिलावे ।

---

१ कोई कहतेहैं कि शुक्रका अर्थ अण्डा है अर्थात् शुक्रकी जगह अंडा लेना चाहिये ।

फिर इसमें शहद मिलाकर पीजावे । और साठीचावलोंके भातका भोजन करे । इस योगके सेवन करनेसे वृद्ध और निर्बल मनुष्य भी बहुतसी संतानोंको पैदाकर सकता है और हृष्ट पुष्टांग होजाताहै ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

वृष्यक्षीर ।

खर्जूरीमस्तकंमापान्पयस्यांसशतावरीम् । खर्जूराणिमधूकानिमृद्वीकामजडाफलम् ॥ ६८ ॥ पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलिलाढके । तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ६९ ॥ क्षीरशेषेणतेनाद्याद्घृताढ्यंषष्टिकौदनम् । सशर्करेणसंयोगएषवृष्यःपरं स्मृतः ॥ ७० ॥

खजूरकी गोभ (नर्मकोपल) उडद, क्षीरकाकोली, शतावरी, छोहाडा, महुए, मुनका और कौंचके बीज प्रत्येक एकएक पल लेकर बुद्धिमान् मनुष्य एक आढक जलमें डालकर पकावे जब तीनभाग पानी जलजावे और १ भाग शेषरहे उसको छान लेवे । इस क्वाथमें १ प्रस्थ दूध मिलाकर फिर पकावे । जब केवल दूधमात्र शेष रहे उस दूधमें घृत और मिसरी मिलाकर साठीचावलोंके भातके साथ खावे । यह प्रयोग परम वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक कहा है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥

वृष्यघृत ।

जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम् । खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलींविश्वभेषजम् ॥ ७१ ॥ शृङ्गाटकंविदारीञ्चनवंसर्पिःपयोजलम् । सिद्धंघृतावशेषंतच्छर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ ७२ ॥ षष्टिकान्नेन संयुक्तमुपयोज्यंयथाबलम् । वृष्यंबल्यञ्चवर्ण्यञ्चकण्ठ्यंबृंहणमुत्तमम् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, दोनों श्रावणी (छोटी और बडी गोरखमुण्डी) छुहाडा, मुलहठी, मुनका, पीपल, सोंठ, सिंघाडा, विदारीकंद यह प्रत्येक चार चार तोला और घृत २ सेर दूध ८ सेर, पानी ८ सेर इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्धकर लेवे फिर उस सिद्धघृतमें घृतसे चौथा भाग शहद और मिसरी मिलावे । इसको साठीचावलोंके साथ अग्निबल विचार सेवन करे । यह योग, वीर्यवर्द्धक, बलकारक वर्ण और कण्ठको उत्तम बनानेवालाहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वाजीकरण रसाला ।

दध्नःसरंशरच्चन्द्रसन्निभंदोषवर्जितम् । शर्कराक्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षी-

र्याश्चबुद्धिमान् ॥ ७४ ॥ युक्त्यायुक्तंसुसूक्ष्मैलंनवेकुम्भेशुचौपटे । मार्जितंप्रक्षिपेच्छीतेघृताढ्येषष्टिकौदने ॥ ७५ ॥ पिबेन्मात्रांर- सालायास्तंभुक्त्वाषष्टिकौदनम् । वर्णस्वरबलोपेतः पुमांस्तेनवृषा- यते ॥ ७६ ॥

शरदऋतुके चंद्रमाके समान निर्दोष और स्वच्छ मलाईयुक्त दही लेकर उसमें मिसरी, शहद, मिर्च, वंशलोचन, छोटी इलायची इनको युक्तिपूर्वक मिलाकर और शुद्ध स्वच्छ बारीक वस्त्रमे छानकर नये मट्टीके पात्रमें डालकर रख देवे । फिर इसको घृतयुक्त शाठीके भातके साथ सेवन करे । और भोजन करनेके अनन्तर भी इस रसालाको उचितमात्रासे पीजावे । इसके सेवनसे मनुष्य वर्ण, स्वर, बल और वीर्ययुक्त होजाताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वृष्यदुग्धौदन ।

चन्द्रांशुकल्पंपयसाघृताढ्यंषष्टिकौदनम् ।
शर्करामधुसंयुक्तंप्रयुञ्जानो वृषायते ॥ ७७ ॥

जो मनुष्य चंद्रमाके समान उज्ज्वल कढाहुआ दूध घृत मिश्री और साठीके भातमें मिलाकर खाताहै वह मनुष्य सांडके समान वीर्यसंपन्न होजाताहै ॥ ७७ ॥

राक्षसयोग ।

तप्तेसर्पिषिनक्राण्डंताम्रचूडाण्डमिश्रितम् । युक्तंषष्टिकचूर्णेनसर्पि- षाभिनवेनच ॥ ७८ ॥ पक्त्वापूपलिकाःखादेद्वारुणीमण्डपोनरः । यइच्छेदश्ववद्गन्तुंप्रसेक्तुंगजवच्चयः ॥ ७९ ॥

जिस मनुष्यको अश्वके समान स्त्रीगमन करनेकी शक्ति बढानेकी इच्छा हो और हाथीके समान वीर्यप्रवाह प्रगट करना चाहता हो वह मगरके अण्डे, और मुरगेके अण्डे और शाठीचावलोंके आटेको घृत और दूधमें उसनकर पूडियें बना उनको घृतमे पकालेवे । फिर इनको खाकर ऊपरसे वारुणी मद्यके मण्डको पीवे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पादका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

आसिक्तक्षीरिकेपादेयेयोगाःपरिकीर्तिताः ।
अष्टावपत्यकामैस्तेप्रयोज्याःपौरुषार्थिभिः ॥ ८० ॥

यहांपर पादके उपसंहारमें तीन श्लोक हैं । कि इस आसिक्त क्षीरिक वाजीकरण पादमें जो आठ प्रकारके योग कहेहैं । संतानकी इच्छा करनेवाले पुरुषार्थी मनुष्योंको इन सबका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८० ॥

एतैःप्रयोगैर्विविधैर्वपुष्मान्स्नेहोपपन्नोबलवर्णयुक्तः । हर्षान्वितो वाजिवदष्टवर्षोभवेत्समर्थश्चवराङ्गनासु ॥ ८१ ॥

इन प्रयोगोंके सेवन करनेसे मनुष्य सुन्दर पुष्ट देहवाला, स्निग्धवर्णवाला और बलयुक्त होजाताहै तथा हर्षयुक्त घोडेके समान आठवर्षका भी योग्य स्त्रियोंमें मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला रहताहै ॥ ८१ ॥

यद्यच्चकिञ्चिन्मनसःप्रियंस्याद्रम्यावनान्ताःपुलिनानिशैलाः । इ-ष्टाःस्त्रियोभूषणगन्धमाल्यंप्रियावयस्याश्चतदत्रयोगम् ॥ ८२ ॥

इति च० सं० आसिक्तक्षीरिके वाजीकरणपादो द्वितीयः ।

इनके सिवाय जो मनकी प्यारी लगनेवाली अन्य वस्तुएं हैं तथा सुन्दर मनोहर वन सजल नदियोंके किनारे, सजल और सुगंधित लता, वृक्षजालयुक्त पर्वत और बगीचे, सुन्दर स्त्रियें, आभूषण, सुगंधित फूलमाला अपनी अवस्थावालीप्यारी मण्डली यह सब वाजीकरणके अर्थात् कामदेवके उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ ८२ ॥

इति च० सं० चि० स्थाने आसिक्तक्षीरीये द्वितीयो वाजीकरणपादः ॥

अथातोमाषपर्णभृतीयंवाजीकरणपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभ-गवानात्रेयः ॥ ८३ ॥

अब हम माषपर्ण नामक तीसरे वाजीकरण पादकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ८३ ॥

वीर्यवर्द्धक दूध ।

माषपर्णभृतांधेनुंगृष्टिंपुष्टांचतुःस्तनीम् । समानवर्णवत्साञ्चजीव-वत्सांचबुद्धिमान् ॥ ८४ ॥ रोहिणीमथवाकृष्णामूर्द्धश्रृङ्गीमदारुणा-म् । इक्ष्वादामर्जुनादांवासान्द्रक्षीराञ्चधारयेत् ॥ ८५ ॥ केवलन्तु पयस्तस्याःशृतंवाशृतमेववा । शर्करामधुसर्पिभिर्युक्तंतद्वृष्यमुत्त-मम् ॥ ८६ ॥

जो गौ उडदके पत्ते चरतीहो, जो खूब मोटी ताजी बडे २ चार थनोंवाली हो जो गौ और उसका बछडा एकही रंगके लाल अथवा काले हों, और जिस गौके सब बछडे जीतेहों । जो गौ ईख और अर्जुन वृक्षके पत्ते चरतीहो

एवं जिसके सुंदर सुडौल सींग हों जो मारनेवाली नें हो तथा दूध गाढा हो तो ऐसी गौका दूध कच्चा या गर्मकरके मिश्री, घृत और शहत मिलाकर पीनेसे अत्यंत वृष्य होताहै। अर्थात् यह दूध बल, वीर्यकी अत्यंत वृद्धि करनेवाला होताहै८४-८६

वृष्यलप्सी।

शुक्रलैर्जीवनीयैश्चबृंहणैर्बलवर्द्धनैः । क्षीरसञ्जननैश्चैवपयःसिद्धं पृथक् पृथक् ॥८७॥ युक्तंगोधूमचूर्णेनसघृतक्षौद्रशर्करम्। पर्य्यायेणप्रयोक्तव्यमिच्छताशुक्रमक्षयम् ॥ ८८ ॥

शुक्रवर्द्धकगण, जीवनीयगण, बृंहणीयगण, बल्यगण तथा स्तन्यवर्द्धकगण इन सब गणोंकी औषधियोंसे अलग २ सिद्धकिया दूध और घृतमें भूना गेहूंका चूर्ण इनमें घृत शहद और मिसरी मिलाकर अक्षयवीर्यकी इच्छाकरनेवाला मनुष्य सेवन करे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

वृष्यक्षीर।

मेदांपयस्यांजीवन्तींविदारींकण्टकारिकाम्।श्वदंष्ट्रांक्षीरिकांमाषान्गोधूमाञ्छालिषष्टिकान् ॥८९॥ पयस्यर्द्धोदकेपक्त्वाकार्षिकानाढकोन्मिते। विवर्जयेत्पयःशेषंतत्पूतंक्षौद्रसर्पिषा ॥ ९० ॥ युक्तंसशर्करंपीत्वावृद्धःसप्ततिकोऽपिवा। विपुलंलभतेऽपत्यंयुवेवचसहृष्यति ॥ ९१ ॥

मेदा, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, कटेली, गोखरू, वंशलोचन, उडद, गेहूं, शाली और षष्ठी चावल, इनको एकएक तोला ले ४ सेर दूध और ४ सेर पानी मिलाकर सबको पकनेको रख देवे। जब संपूर्ण पानी जलकर दूधमात्र शेषरहे तो उसको छानकर उसमें, मिसरी, शहद, घृत, मिलाकर पीया करे। इस दूधको ७० वर्षका बुड्ढा भी पीवे तो बहुतसी संतानको उत्पन्न करे। और युवापुरुषके समान हर्षको प्राप्तहो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

सिद्धदूध।

मण्डलैर्जातरूपस्यतस्याएवपयःशृतम्।
अपत्यजननंसिद्धंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ९२ ॥

शुद्ध सुवर्णके वर्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे सिद्ध किया दूध घृत मिश्री और शहत मिलाकर पीनेसे अवश्य संतान होतीहै। यह सिद्धयोग है ॥ ९२ ॥

---

१ यह सब प्रकारके औषधियोंके गण सूत्रस्थानमें कहआये हैं।

पिप्पलीयुक्तधारोष्णं दूध।

त्रिंशत्सुपिष्टाःपिप्पल्यःप्रकुञ्चेतैलसर्पिषोः। भृष्टाःसशर्कराःक्षौद्राः क्षीरधारावदोहिताः॥ ९३॥ पीत्वायथावलश्चोर्ध्वंषष्टिकंक्षीरसर्पि-षा। भुक्त्वानरात्रिमस्तब्धंलिङ्गंपश्यतिनाक्षरम्॥ ९४॥

तीस पीपलोंको अच्छी तरह बारीक पीसकर १ पल तेल और घृतमें भूनकर उसमें मिसरी और शहत मिला लेवे। और एक बहुत बारीक स्वच्छ मलमलके कपडेको जिस पात्रमें दूध दूहाजाय उसके मुखपर बांधकर इस कपडेपर वह शहत घृतयुक्त पीपलका चूर्ण रखकर ऊपरसे दूधकी धारें निकाले। इसप्रकार दूहते २ इस पीपल, शहत, मिश्रीका सब सार दूधमें आजाताहै वह दूध विना जमीनपर रक्खे ताजा धारोष्ण ही नित्य पीलिया करे। भूख लगनेपर साठीके चावलोंका भात घृत और दूध मिला खाया करे। इसप्रकार इस धारोष्ण दूधके सेवनसे संपूर्ण रात्रि लिंगेन्द्रिय शिथिल नहीं होती। और वीर्य शीघ्र स्खलित नहीं होता९३-९४

वृष्यपायस (खीर)।

श्वदंष्ट्रायाविदार्याश्चरसेक्षीरचतुर्गुणे।
घृताढ्यःसाधितोवृष्योमाषषष्टिकपायसः॥ ९५॥

गोखरू और विदारीकंदका स्वरस मिलाकर सिद्धकिये चौगुने दूधमें उंडद और साठीके चावलोंकी घृत मिलाकर खीर पकावे। इस खीरके खानेसे; अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होतीहै॥ ९५॥

वाजीकरणपूपालिका।

फलानांजीवनीयानांस्निग्धानांरुचिकारिणाम्। कुडवश्चूर्णितानां स्यात्स्वयंगुप्ताफलस्यच॥ ९६॥ कुडवश्चैवमाषाणांद्वौद्वौचतिलमु-द्गयोः। गोधूमशालिचूर्णानांकुडवःकुडवोभवेत्॥ ९७॥ सर्पि-षःकुडवश्चैकस्तत्सर्वंक्षीरसंयुतम्। पक्त्वापूपलिकाःखादेद्बह्व्यः स्युर्यदियोषितः॥ ९८॥

बादाम आदि जीवनवर्द्धक, रुचिकारक और स्निग्ध फलोंका १ कुडव चूर्ण, कौंचके बीजोंका चूर्ण १ कुडव, उडदोंका चूर्ण २ कुडव, तिलोंका चूर्ण २ कुडव, मूंगका चूर्ण १ कुडव, गेहूं और शाली चावलोंका चूर्ण एकएक कुडव इन सबको १ कुडव घीमें मसलकर दूधमें मिलाकर पूडियें बनावे। उन पूडियोंको घृतमें पकाकर जिसके घरमें बहुतसी स्त्रियें हों वह मनुष्य खावे॥ ९६॥ ९७॥ ९८॥

वृष्यघृत ।

घृतंशतावरीगर्भंक्षीरेदशगुणेपचेत् ।
शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तंतद्वृष्यमुत्तमम् ॥ ९९ ॥

शतावरके कल्कको मिलाकर दशगुने दूध द्वारा घृतको सिद्धकरे । उस घृतमें मिसरी, पीपलका चूर्ण और शहद मिलाकर चाटनेसे अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होतीहै । यह परम उत्तम योग है ॥ ९९ ॥

मधूकयोग ।

कर्षंमधूकचूर्णस्यघृतक्षौद्रसमांशिकम् ।
प्रयुङ्क्तेयःपयश्चानुनित्यवेगःसनाभवेत् ॥ १०० ॥

एक कर्ष मुलहठीके चूर्णको घृत और शहद मिलाकर चाटे ऊपरसे मिसरी मिला दूध पीवे तो वह मनुष्य नित्य कामके वेगसे युक्त रहताहै ॥ १०० ॥

नित्यदूध घृतके सेवनका गुण ।

घृतक्षीराशनोनिर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगोयुवा ।
संकल्पप्रवणोनित्यंनरःस्त्रीषुवृषायते ॥ १०१ ॥

जो मनुष्य नित्य भय और व्याधिसे रहितहुए घृत और दूधका सेवन करतेहैं वह युवा पुरुष सदा कामान्ध हुए स्त्रियोंमें वृषके समान मैथुन करतेहैं ॥ १०१ ॥

मित्रमंडलीका निवास ।

कृतैककृत्याःसिद्धार्थायेचान्योन्यानुवर्त्तिनः । कलासुवाह्यायेतुल्याः सत्त्वेनवयसाचये ॥ १०२ ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचसमन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोकागतव्यथाः ॥ १०३ ॥ येतुल्यशीलायेभुक्तायेप्रियायेप्रियंवदाः । तैर्नरःसहविश्रब्धःसुवयस्यैर्वृषायते ॥ १०४ ॥

एकबराबरके एकमें कर्मोंके करनेवाले सिद्धमनोरथ आपसमें परस्पर प्रेम रखनेवाले सबही एक दूसरेकी आज्ञा पालन करनेवाले नृत्य, गीत आदि कलामें समान तथा सत्त्व और अवस्थामें तुल्य, उत्तम कुलमें उत्पन्नहुए, चतुर, अच्छे स्वभाववाले, पवित्र, नित्य स्त्रीसंगकी इच्छा रखनेवाले, हृष्टपुष्ट, शोक और व्याधिसे रहित एकसे स्वभाववाले, एक दूसरेके हित चाहनेवाले, सब आपसमें प्यार करनेवाले और प्यारे बोलनेवाले मित्रोंकी मण्डलीमें आनन्दसे रहना भी परम वाजीकरण है ॥ १०२-१०४ ॥

कामोत्पादक कर्म ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः । गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैःप्रियैः ॥ १०५ ॥ विहङ्गानांरुतैरिष्टैःस्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः । संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्चवृषायते ॥ १०६ ॥

तैल आदिकी मालिश करना, उवटन लगाना, स्नान करना, सुगंधित द्रव्योंका धारण करना, फूलोंका हार पहिनना उत्तम, आभूषणोंको पहिनना एवं सुन्दर घर, सुन्दर शय्या, सुन्दर आसन आदिका सुख उत्तम नये वस्त्रोंका धारण करना, बगीचे आदिकोंमें मनको हरण करनेवाले पक्षियोंके शब्द, सुन्दर स्त्रियोंका झनकार खूबसूरत स्त्रियोंसे हाथ पांव दबवाना यह सब कामदेवकी चेष्टाको उत्पन्न करनेवाले हैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

हर्षोत्पादक कामदेवके अस्त्र ।

मत्तद्विरेफाचरिताःसपद्माःसलिलाशयाः । जात्युत्पलसुगन्धीनि शीतगर्भगृहाणिच ॥ १०७ ॥ नद्यःफेनोत्तरीयाश्चगिरयोनीलसानवः । उन्नतिर्नीलमेघानांरम्यचन्द्रोदयानिशाः ॥ १०८ ॥ वायवःसुखसंस्पर्शाःकुसुदाकारगन्धिनः । रतिभोगक्षमाराज्यःसङ्कोचागुरुवल्लभाः ॥ १०९ ॥ सुखाःसहायाःपरपुष्टजुष्टाःफुल्लावनान्ताविशदान्नपानाः । गान्धर्वशब्दाश्चसुगन्धमाल्याःसत्त्वंविशालंनिरुपद्रवञ्च ॥ ११० ॥ सिद्धार्थताचाभिनवश्चकामःस्त्रीचायुधंसर्वमिहात्मजस्य । वयोनवंजातमदश्चकालोहर्षस्ययोनिःपरमानराणाम् ॥ १११ ॥

एवं मतवाले भ्रमरोंके गुंजारयुक्त कमलोंसे शोभायमान जलाशय, चमेली अथवा सब प्रकारके कमलोंकी जाति और उत्तम सुगंधी खस आदिसे शीतल और सुगंधित घर झागयुक्त तरंगोंसे शोभायमान नदियें, सजल, नीलवर्ण, शिखरोंसे युक्त पहाड, जिन पहाडोंके ऊपर नील बादलोंकी घटा छायीहुई हो तथा चंद्रमासे शोभायमान रात्रि सुगंधित फूलोंकी गंधयुक्त सुशीतल मंदमंद पवनका स्पर्श, रतिके उपभोग योग्य रात्रि, जिन स्थानामें किसी गुरुजन आदिका निवास न हो ऐसा संकोचरहित एकांत स्थान, सुन्दर, सुखदायक, कामके सहायक कोकिल आदिके मनोहर शब्दयुक्त प्रफुल्लित बाग, उत्तम मधुर चिकने अन्नपान, मधुर गायन और बाजे. आदिके

शब्द सुगंधित फूलोंकी माला, शोकादि उपद्रवरहित हृष्ट और विशाल चित्त, सिद्धार्थता, सुन्दर नवयौवना स्त्री यह सब कामदेवके अस्त्र हैं। अर्थात् कामके उत्पन्न करनेवाले हैं। एवं युवावस्था, वसंतऋतु अथवा संजातमदका समय यह सब मनुष्योंके शरीरमें कामदेवके हर्ष उत्पन्न करनेवाले होतेहैं ॥ १०७–१११ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवतिचात्र।

प्रहर्षयोनयोयोगाव्याख्यातादशपञ्च च।
माषपर्णतृतीयेऽस्मिन् पादेशुक्रबलप्रदाः ॥ ११२ ॥

इति च० सं० माषपर्णनामतृतीयोवाजीकरणपादः।

यहां पादके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस माषपर्णनामक तृतीय वाजीकरण पादमें वीर्य और बलके देनेवाले कामदेवका हर्ष उत्पन्न करनेवाले पंद्रह प्रयोगाको वर्णन किया गयाहै ॥ ११२ ॥

॥ इति माषपर्ण नाम तृतीयो वाजीकरणपादः ॥

अथातःपुमाञ्जातबलादिकंचतुर्थंवाजीकरणपादंव्याख्यास्यामइति हस्माहभगवानात्रेयः ॥ ११३ ॥

अब हम पुमान्जातबलादिक चौथे वाजीकरण पादका वर्णन करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥ ११३ ॥

पुमान्यथाजातबलोयावदिच्छंस्त्रियोव्रजेत्।
यथाचापत्यवान् सद्योभवेत्तदुपदेक्ष्यते ॥ ११४ ॥

जिस प्रकार पुरुष बलवान् होकर अपनी इच्छानुसार स्त्रियोंमें गमनकरसके और शीघ्र संतानवाला होसके वह वर्णन करतेहैं ॥ ११४ ॥

नहिजातबलाःसर्वेनराश्चापत्यभागिनः। बृहच्छरीराबलिनःसन्ति नारीषुदुर्बलाः॥ ११५॥ सन्तिचाल्पायुषःस्त्रीषुबलवन्तोबहुप्रजाः। प्रकृत्याचाबलाःसन्तिसन्तिचामयदुर्बलाः ॥ ११६ ॥ नराश्चटकवत्केचिद्व्रजन्तिबहुशःस्त्रियम्। गजवच्चप्रसिञ्चन्तिकेचिन्नबहुगामिनः ॥ ११७॥ कामयोगबलाःकेचित्केचिदभ्यसनध्रुवाः। केचित्प्रयत्नैर्वाह्यन्तेवृषाःकेचित्स्वभावतः ॥ ११८ ॥ तस्मात्प्रयोगान्व-

क्ष्यामोदुर्वलानांवलप्रदान् । सुखोपभोगान्वलिनांभूयश्चवलवर्द्ध-
नान्॥ ११९ ॥

संपूर्ण मनुष्य वल, वीर्य, सम्पन्न न होनेसे ही संतानके भागी नहीं होसकते वहुतसे मनुष्य ऐसे भी हैं जो शरीरसे हृष्टपुष्ट और वलवान् दिखाई देतेहैं परन्तु कामशक्तिमें हीन होनेसे स्त्रीगमनमें दुर्वल होतेहैं। वहुतसे ऐसेहैं जो शरीरमें कृश और थोडी आयुवाले होतेहुए भी स्त्रीसंगमें वलवान् और वहुतसी संतानवाले होतेहैं वहुतसे मनुष्य स्वभावसे ही दुर्वल होतेहैं और कोई मनुष्य व्याधिग्रस्त होनेसे दुर्वल होजातेहैं । कोई मनुष्य चिडेकी समान स्त्रियोंसे वारवार गमन करतेहैं । कोई मनुष्य ऐसे हैं जिनके वीर्यका प्रवाह हाथीके समान है । कोई ऐसे हैं जो स्त्रियोंसे वारवार संसर्ग नहीं करसकते । कोई मनुष्य कामयोगसे वलवान् हैं और वहुतसे अभ्याससे ही कामी वनेहुए हैं । कोई मनुष्य प्रयत्न करनेसे अर्थात् औषधी आदि प्रयोगसे कामके वलयुक्त होतेहैं कोई स्वभावसे ही होतेहैं । इसलिये अव दुर्वल मनुष्योंको वलके देनेवाले और वलवान् मनुष्योंको उपभोगके सुखको उत्पन्न करनेवाले और वलको वढानेवाले प्रयोगोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११५-११९ ॥

वृष्यप्रयोगविधि ।

पूर्वशुद्धशरीराणांनिरूहान्सानुवासनान् । वलापेक्षीप्रयुञ्जीतशु-
क्रापत्यादिवर्द्धनान्॥ १२० ॥ घृततैलरसक्षीरशर्करामधुसंयुताः ।
वस्तयःसंविधातव्याःक्षीरमांसरसाशिनाम् ॥ १२१ ॥

प्रथम वल, वीर्य और संतानादिकोंकी वृद्धि चाहनेवाला मनुष्य वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होकर वीर्य, वलादि वर्द्धक निरूहण और अनुवासन वस्ति कर्मको करावे । इन मनुष्योंके लिये घृत, तेल, दूध, मिसरी, शहत आदिके संयोगसे युक्त कीहुई वस्तियें करना चाहिये। तथा दूध और मांसरस खानेको देना चाहिये १२०-२१

वृष्यमांस गुटिका ।

पिष्ट्वावराहमांसानिदत्त्वामरिचसैन्धवे । कोलवद्गुटिकाःकृत्वातते
सर्पिषिभर्जयेत् ॥ १२२ ॥ भर्जनस्तम्भितास्ताश्चप्रक्षेप्याःकौक्कुटे
रसे । घृताढ्येगन्धपिशुनेदधिदाडिमसाधिते ॥ १२३ ॥ यथान-
भिन्द्याद्गुटिकास्तथातं साधयेद्रसम् । तंपिवन्भक्षयंस्ताश्चल-
भतेशुक्रमक्षयम् ॥१२४॥ मांसानामेवमन्येषांमेध्यानांकारयेद्भि-
षक् । गुटिकाःसुरसास्तासां प्रयोगः शुक्रवर्द्धनः ॥ १२५ ॥

वराहके मांसको वारीक पीसकर उसमें कालीमिर्च और सेंधानमक मिला वेरके समान गोलियें वना लेवे। उन गोलियोंको घृतमें पकाकर सख्त होजानेपर मुर्गेके मांसरसमें भिगो देवे। वह मांसरस घृतयुक्त इलायची आदिसे सुगंधित किया हुआ दही और अनारदाना मिलाकर वनायाहुआ होना चाहिये। उन गोलियोंको खाकर ऊपरसे यह मांसरस पीनेसे अक्षयवीर्यकी प्राप्ति होतीहै। इसीप्रकार अन्य जानवरोंके मांसोंकी भी गोलियें वनाकर ऐसे ही मांसरसयुक्त कग्के सेवन करना अत्यंत वीर्यको वढातीहै ॥ १२२-१२५ ॥

माहिषरसयोग।

मापानंकुरिताञ्छुद्धान्निस्तुपान् साजडाफलान्। घृताढ्येमाहिप-रसेदधिदाडिमसाधिते ॥ १२६ ॥ प्रक्षिपेन्मात्रयायुक्तोधान्यजी-रकनागरैः। पीतोभुक्तश्चसरसःकुरुतेशुक्रमक्षयम् ॥ १२७ ॥

छिलके रहित नये उडदोंकी उत्तम दाल और कौंचके वीजोंकी गिरू इनको पीसकर घृत और दूध मिला इनकी टिकिया घृतमें पकालेवे। फिर उनको धनियां, जीरा, सोंठ, अनारदाना, दही और घृत इनसे सिद्धकिये भैंसेके मांसरसमें डुवा देवे। फिर इनको खाकर ऊपरसे रस पीवे तो अक्षय वीर्यकी वृद्धि होतीहै १२६-१२७

मत्स्यमांसयोग।

आर्द्राणिमत्स्यमांसानिभृष्टाश्चशफरीश्चना। ततेसर्पिपियःखादे-त्सगच्छेत्स्त्रीपुनक्षयम् ॥ १२८ ॥ घृतभृष्टात्रसेछागेरोहितान्फल-साधिते। अनुपीतरसान्सिद्धानपत्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

तत्काल मारीहुई मछली अथवा शफरी मछलीके मांसको घृतमें भूनकर खानेसे स्त्रीगमन करतेहुए भी वीर्य नष्ट नहीं होता। इसीप्रकार रोहित मछलीको घृतमें भूनकर अनारदानायुक्त वकरेके मांसरसमें पकाकर पीये तो संतान उत्पन्नकरनेकी सामर्थ्य होजातीहै ॥ १२८॥१२९ ॥

राक्षसीपूपालिका।

कुट्टकंमत्स्यमांसानांहिङ्गुसैन्धवधान्यकैः। युक्तंगोधूमचूर्णेनघृते पूपलिकाःपचेत् ॥ १३० ॥ माहिषेचरसेमत्स्यान्स्निग्धाम्ललवणा-न्पचेत्। रसेचानुगतेमांसंपोथयेत्तत्रचावपेत् ॥ १३१ ॥ मारिचंजी-रकंधान्यमल्पंहिङ्गुनवंघृतम्। मापपूपलिकानांतद्गर्भार्थमुपकल्प-

येत् ॥ १३२ ॥ एतौपूपलिकायोगौबृंहणौबलवर्द्धनौ । हर्षसौभाग्य-
जननौपरंशुक्राभिवर्द्धनौ ॥ १३३ ॥ (मांसादीनांप्रयोगास्तुमांसादे-
षुप्रयोजयेत् । द्विजेषुघृतदुग्धादीनेवंसर्वत्रनिश्चयः)

मछली और मुर्गेके मांसको कूटकर उसमें सेंधा निमक धानियां और गेंहूका चूर्ण मिला घृतमें पूडियें पकावे । अथवा मछली, घृत, सेंधानमक, खटाई इन सबके साथ माहिष मांसरसको पकावे । जब मांस रस सूखजाय तो उस मांसको कूटकर उसमें मिर्च, जीरा, धनियां थोडा हींग, नवीन घृत यह सब मिलाकर उडदोंकी पूरियोंके भीतर भरे । उन पूडियोंको घृतमें पकालेवे । यह दोनों प्रकारकी पूडियें वीर्य और बलको बढानेवाली तथा कामोत्पादक कही हैं ॥ १३० ॥ १३१॥ ॥ १३२ ॥१३३॥ (यह मांसादिकोंका प्रयोग राक्षस प्रकृति या राक्षसगुण प्रधान जातियोंमें ही करना चाहिये । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके लिये दूध घृत आदिकों का प्रयोग ही निश्चितहै यह सर्व जगह जानना) ।

वीर्यवर्द्धक परमोत्तम पूपलिका ।

माषात्मगुप्तागोधूमशालिषष्टिकपैष्टिकम् । शर्करायाविदार्य्याश्चचू-
र्णमिक्षुरकस्यच ॥१३४॥ संयोज्यमसृणेक्षीरेघृतेपूपलिकाः पचेत् ।
पयोऽनुपानास्ताःशीघ्रं कुर्वंतिवृषतांपरम् ॥ १३५ ॥

उडद, कौंचके बीज, गेहूं, शालिचावल, शाठीचावल, विदारी कंद, तालमखाने इन सबके वारीक चूर्णमें मिसरी और दूध मिलाकर पूडियें बनावे । उन पूडियोंको घृतमें पका दूधके साथ खावे तो अत्यंत वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

परमवृष्ययोग ।

शर्करायास्तुलेकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः । प्रस्थोविदार्य्याश्चूर्ण-
स्यपिप्पल्याःप्रस्थएवच ॥ १३६॥ अर्द्धाढकंतुगाक्षीर्य्याःक्षौद्रस्या-
भिनवस्यच । तत्सर्वंमूर्च्छितंतिष्ठेन्मार्तिकेघृतभाजने ॥ १३७ ॥
मात्रामग्निसमांतस्यप्रातःप्रातःप्रयोजयेत् । एषवृष्यः परंयोगोब-
ल्योबृंहणएवच ॥ १३८ ॥

मिसरी १ तोला, गौका घृत १ तोला, वीदारीकंदका चूर्ण १ प्रस्थ पीपलका चूर्ण १ प्रस्थ, वंशलोचनका चूर्ण २ प्रस्थ, नवीन शहद २ प्रस्थ, इन सबको मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें रख देवे । जठराग्निका बलाबल विचार प्रातःकाल उचित मात्रासे खावे । यह योग अत्यंत वीर्यवर्द्धक बलकारक, और शरीरको पुष्ट करनेवाला है ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

वृष्यघृत।

शतावर्य्याविदार्य्याश्चतथामाषात्मगुप्तयोः। श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्का-थानश्चलेषुपृथक्पृथक् ॥ १३९ ॥ साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणे पुनः। शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ॥ १४० ॥

शतावर, विदारीकंद, उडद, कौंचके बीज और गोखरू इन सबके अलग २ क्वाथ सब मिलाकर १६ सेर होने चाहिये। दूध आठसेर, घृत १ सेर इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे। संतानकी इच्छावाला मनुष्य मिसरी और शहद मिलाकर इसको खावे ॥ १३९ ॥ १४० ॥

वीर्यवर्द्धक परमोत्तम गुटिका।

घृतपात्रंशतगुणेविदारीस्वरसेपचेत्। सिद्धंपुनःशतगुणेगव्येपयसि साधयेत् ॥ १४१ ॥ शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याःक्षौद्रस्येक्षुरसस्यच। पिप्पल्याःसजडायाश्चभागैःपादांशिकैर्युतम् ॥ १४२ ॥ गुटिकाः कारयेद्वैद्योयथास्थूलमुदुम्बरम्। तासांप्रयोगात्पुरुषःकुलिङ्गइव हृष्यति ॥ १४३ ॥

एकपात्र (आढक या ४ सेर) घृतलेकर उसको सौगुने विदारीकंदके रसमें पकावे। जब रस जलकर घृतमात्र शेष रहे उसमें १०० गुना दूध मिलाकर पकावे। फिर घृत सिद्ध होनेपर इसमें घीसे चौथा भाग मिसरी, वंशलोचन, शहद और तालमखाने, पीपलका चूर्ण, कौंचके बीजोंकी गिरी। इन सबको बारीक पीसकर मिलावे और गूलर के फलके समान इसकी गोलियें बनालेवे। अग्निका बलाबल विचार नित्य इन गोलियोंको खाया करे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

वाजीकरण उत्कारिका।

सितोपलापलशतंतदर्द्धंनवसर्पिषः। क्षौद्रपादेनसंयुक्तंसाधयेज्ज-लपादिकम् ॥ १४४ ॥ सान्द्रंगोधूमचूर्णानांपादंस्तीर्णेशिला-तले। शुचौश्लक्ष्णे समुत्कीर्य्यमर्दनेनोपपादयेत् ॥ १४५ ॥ शुद्धा उत्कारिकाःकार्य्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभाः। तासांप्रयोगाद्गजवन्ना-रीःसन्तर्पयेन्नरः ॥ १४६ ॥

१०० पल मिसरी, ५० पल नवीन घी, २५ पल जल इसका पाक करे। जब पाक होजाय तो इस घीमें भुनाहुआ. २५ पल गेहूंका चूर्ण, २५ पल शहद मिला देवे।

फिर इन सबको किसी बडे स्वच्छ साफ पत्थरके ऊपर मर्दन करे । जब मर्दन करते २ इसमें सफेदी आजाय तो, चंद्रमाके समान टिकिया बना लेवे । इन टिकियाओंके सेवनसे स्त्रीको गजके समान तृप्तकरसकताहै ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

मधुर द्रव्योंको वृष्यत्व ।

यत्किञ्चिन्मधुरंस्निग्धंजीवनंबृंहणंगुरु ।-हर्षणंमनसश्चैवसर्वंतद्वृष्यमुच्यते ॥ १४७ ॥ द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्भावितःप्रमदांव्रजेत् । आत्मवेगेनचोदीर्णःस्त्रीगुणैश्चप्रहर्षितः ॥ १४८ ॥ गत्वास्नात्वापयःपीत्वारसञ्चानुशयीतना । तथास्याप्यायतेभूयःशुक्रञ्चबलमेवच ॥ १४९ ॥

जितने द्रव्य मीठे, चिकने, जीवनवर्द्धक, बृंहण, गुरू और मनमें हर्षके उत्पन्न करनेवालेहैं । उन द्रव्योंसे पुष्टवीर्य हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करे । कामदेवके वेगसे उत्तेजित हुआ और स्त्रियोंके गुणोंसे हर्षको प्राप्त हुआ मनुष्य स्त्रीसंग करके स्नानकरे और दूध पीवे अथवा मांसरस पीवे एवं फिर सोजावे । इसप्रकार करनेसे मनुष्यका वीर्य और बल फिर शरीरमें यथोचित सम्पन्न हो जाताहै ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

वीर्यप्रकाशकी अवस्था ।

यथामुकुलपुष्पस्यसुगन्धोनोपलभ्यते ।
लभ्यतेतद्विकाशात्तुतथाशुक्रंहिदेहिनाम् ॥ १५० ॥

जैसे—बहुत छोटी बिना खिली फूलकी कली भीतर सुगंधी रहनेपर भी सुगंधि नहीं देती और फूल खिल जानेपर उसमेंसे सुगंधि आनेलगती है वैसे ही बाल अवस्थामें वीर्य रहनेपर भी युवावस्थामें जाकर विकाशको प्राप्त होताहै ॥ १५० ॥

अवस्थाभेदसे स्त्रीसंगका निषेध ।

नवैषोडशाद्वर्षात्सप्तत्याःपरतो नच । आयुष्कामोनरः स्त्रीभिः संयोगंकर्तुमर्हति ॥ १५१ ॥ अतिबालोह्यसम्पूर्णसर्वधातुः स्त्रियोव्रजन् । उपतप्येतसहसातडागमिवकाजलम् ॥१५२॥ शुष्करूक्षं यथाकाष्ठंजन्तुजग्धंविजर्जरम् । स्पृष्टमाशुविशीर्य्येततथावृद्धः स्त्रियोव्रजन् ॥ १५३ ॥

सोलहवर्षकी अवस्थासे पहिले, सत्तरवर्षकी अवस्थासे पीछे मनुष्य अपनी आयुकी इच्छा करताहुआ स्त्रीसंसर्ग कभी न करे । क्योंकि अति बालअवस्थामें धातुओंकद

बल संपूर्ण बलवान् न होनेसे यह इस प्रकार शोषको प्राप्त होताहै जैसे थोडे जलवाला तालाव तीक्ष्ण गर्मीके पडनेसे सूख जाताहै। जैसे सूखाहुआ, रूक्ष, कीडेका खायाहुआ, अत्यंत जीर्ण, काष्ठ मामूली स्पर्शकरनेसे टूट जाताहै उसीप्रकार वृद्ध मनुष्य भी स्त्रीगमनकरनेसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

शुक्रक्षयके कारण।

जरयाचिन्तयाशुक्रंव्याधिभिःकर्म्मकर्पणात् ।
क्षयंगच्छत्यनशनात्स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात् ॥ १५४ ॥

बुढापेके कारण चिंताके होनेसे, व्याधिसे, शरीरके अपकर्षण होनेसे, उपवास आदिकोंसे क्षीण होजानेसे, स्त्रियोंको अधिक सेवनकरनेसे मनुष्यका वीर्य क्षय होजाताहै ॥ १५४ ॥

कामोत्पत्ति न होनेके कारण।

क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषदर्शनात् । नारीणामरसज्ञत्वा-दभिचारादसेवनात् ॥ १५५ ॥ तृप्तस्यापिस्त्रियोगन्तुंनशक्तिरुप-जायते । देहसत्त्वबलापेक्षीहर्षः शक्तिश्चहर्षजा ॥ १५६ ॥

वीर्यके क्षयसे भयसे, विश्वास न होनेसे स्त्रियोंका कोई दोष दिखाई देनेसे स्त्री संसर्गजन्य रसज्ञान न होनेसे, अथवा रसिकता न होनेसे किसीप्रकारके अभिचारसे, स्त्रीसंग बिलकुल न करनेसे, मैथुनद्वारा अत्यंत तृप्त होनेसे मनुष्योंकी कामेच्छा उत्पन्न नहीं होती। क्योंकि कामका वेग मन और देहके बलकी अपेक्षा करताहै। और उस वेगसे ही कामेच्छा या कामशक्ति उत्पन्न होतीहै ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

शुक्रके स्थान और निकलनेका क्रम।

रसइक्षौयथादध्निसर्पिस्तैलंतिलेयथा। सर्वत्रानुगतंदेहेशुक्रं संस्प-र्शनेतथा ॥ १५७ ॥ तत्स्त्रीपुरुषसंयोगेचेष्टासंकल्पपीडनात् । शुक्रंप्रच्यवतेस्थानाज्जलमार्द्रात्पटादिव ॥ १५८ ॥

जैसे ईखमें रस, दहीमें घृत और तिलोंमें तेल व्यापक रहताहै उसीप्रकार वीर्य भी मनुष्यके संपूर्ण शरीरमें व्यापक रहताहै। तथा स्पर्शनेन्द्रियसे विशेपकरके संबंध रखताहै। वह वीर्य स्त्री, पुरुषके संयोगमें चेष्टा और संकल्पसे पीडितहुआ इसमकार मुचड जाताहै जैसे भिगेहुए कपडेको मीडनेसे उसमेंसे जल निकल जाताहै १५७–१५८

वीर्यनिकलनेके कारण।

हर्षात्तर्पात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवादपि। अनुप्लवत्वात्सौक्ष्म्या-

चद्रुतत्वान्मारुतस्यच ॥ १५९ ॥ अष्टाभ्यएभ्योहेतुभ्यःशुक्रंदेहा-त्प्रसिच्यते । चरतोविश्वरूपस्यरूपंद्रव्यंयदुच्यते ॥ १६० ॥

कामका हर्ष होनेसे, स्त्रीकी अत्यंत इच्छा होनेसे, वीर्यका सरत्व स्वभाव होनेसे, तथा पिच्छलता, गुरुता, अनुप्लवता और सूक्ष्मता होनेसे एवं वायुके द्रुतताके कारण वीर्य देहसे निकलताहै। अर्थात् इन आठ हेतुओंसे वीर्य शरीरमेंसे चलायमान होजाता है। वह वीर्य विश्वरूपकी चलनशील मूर्त्तिरूपी द्रव्य कहाजाता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥

फलवान् वीर्यके लक्षण ।

वहलंमधुरंस्निग्धमविस्रंगुरुपिच्छिलम् ।
शुक्लंवहुचयच्छुक्रंफलवत्तदसंशयम् ॥ १६१ ॥

जो वीर्य सघन, मधुर, स्निग्ध दुर्गंध, रहित, भारी, गाढा और अधिक होताहै वह अवश्य ही संतानरूपी फलको देनेवाला होताहै ॥ १६१ ॥

वाजीकरणके लक्षण ।

येननारीपुसामर्थ्यंवाजिवल्लभतेनरः ।
व्रजेच्चाभ्यधिकंयेनवाजीकरणमेवतत् ॥ १६२ ॥

जिस द्रव्यका सेवन करनेसे मनुष्य घोडेके समान मैथुन करनेकी सामर्थ्यवाला हो और अधिक मैथुनकर सके उसको वाजीकरण कहतेहैं ॥ १६२ ॥

तत्रश्लोकौ ।

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाः । यत्पूर्वं मैथुनात्सेव्यंसेव्यं यन्मैथुनादनु ॥१६३॥ यदानसेव्याःप्रमदाःकृत्स्नःशुक्रविनिश्चयः । निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टंपुमाञ्जातवलादिके ॥ १६४ ॥

इति चरकसंहितायां चिकित्सितस्थाने वाजीकरणाध्यायो द्वितीयः समाप्तः ।

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं । इस पुमान् जातबलादि नामक वाजी-करण चतुर्थपादमें वाजीकरण द्रव्योंके समूह वर्णन करनेका कारण और बारह उत्तम वाजीकरण प्रयोग, मैथुनसे प्रथम सेवनकरने योग्य पदार्थ, मैथुनके अन्तमें सेवन करनेयोग्य द्रव्य, स्त्रियोंको न सेवन करनेका समय, संपूर्ण वीर्यकी विधि और उसकी निरुक्ति यह सब कथन किया गयाहै ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० चिकित्सास्थाने प्र० भा० टी० वाजीकरणं नामद्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो ज्वरचिकित्सितमध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम ज्वर चिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

ज्वरविषयमें अग्निवेशका प्रश्न ।

विज्वरंज्वरसन्देहंपर्य्यपृच्छत्पुनर्वसुम् ।
विविक्तेशान्तमासीनमग्निवेशःकृताञ्जलिः ॥ १ ॥

काम क्रोधादि ज्वररहित, शान्तस्वभाव, एकांतमें बैठेहुए भगवान् पुनर्वसुजीसे हाथ जोडकर अग्निवेश ज्वरके विषयमें पूछनेलगे ॥ १ ॥

देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोवली ।
ज्वरःप्रधानंरोगाणामुक्तोभगवतापुरा ॥ २ ॥

हे प्रभो ! देह, इन्द्रिय और मनके तपानेवाला संपूर्ण रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ सब रोगोंमें बलवान् ज्वर ही संपूर्ण व्याधियोंमें आपने पहिले प्रधान कहाहै ॥ २ ॥

तस्यप्राणिसपत्नस्यध्रुवस्यप्रलयोदये । प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावंकारणानिच ॥ ३ ॥ पूर्वरूपमधिष्ठानंवलकालात्मलक्षणम् । व्यासतोविधिभेदश्चपृथग्भिन्नस्यचाकृतिम् ॥ ४ ॥ लिङ्गमामस्यजीर्णस्यचौषधंसक्रियाक्रमम् । विमुञ्चतःप्रशान्तस्यचिह्नंयच्चपृथक्पृथक् ॥ ५ ॥

सो हे भगवन् ! उस प्राणिमात्रके शत्रु और जन्म मरणके समय अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल, काल, लक्षण, विधिभेद, भिन्न २ ज्वरोंकी पृथक् पृथक् आकृति, आमज्वरके लक्षण, जीर्णज्वरके लक्षण, उसको शान्त करनेवाली औषधी, चिकित्साका क्रम, ज्वरके विमुक्त होने समयके लक्षण और ज्वररहित मनुष्यके लक्षणोंको कृपाकर विस्तारपूर्वक अलग २ वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

ज्वरावशिष्टोरक्ष्यश्चयावत्कालंयतोयतः । प्रशान्तःकारणैर्यैश्चपुन-

रावर्त्ततेज्वरः ॥ ६ ॥ याश्चापिपुनरावृत्तिंक्रियाःप्रशमयन्तितम् । जगद्धितार्थंतत्सर्वंभगवन्! वक्तुमर्हसि ॥ ७ ॥

एवं ज्वर दूर होजानेपर मनुष्यको कितने कालतक किन २ वस्तुओंसे परहेज रखना चाहिये और ज्वर एकवार शान्त हो फिर किन कारणोंसे लौटकर आजाताहै । फिर उसको किस क्रियाद्वारा शान्तकरना चाहिये । हे भगवन् ! जगतके हितके लिये यह संपूर्ण विषय कृपाकर मुझसे कहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

आत्रेयजीका कथन ।

तदग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्रवीत् ।
ज्वराधिकारेयद्वाच्यंतत्सौम्य ! निखिलंशृणु ॥ ८ ॥

इसप्रकार अग्निवेशके कथनको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! ज्वराधिकारमें ज्वरके विषयमें जो कुछ कहना योग्य है वह तुम सावधान होकर श्रवण करो ॥ ८ ॥

ज्वरके पर्य्यायवाचक नाम ।

ज्वरोविकारोरोगश्चव्याधिरातङ्कएवच ।
एकार्थनामपर्य्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥ ९ ॥

ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आतंक यह सब एक ही अर्थके वाचक शब्द हैं। इन विविध पर्यायवाचक शब्दोंसे ज्वर ही कहाजाताहै ॥ ९ ॥

ज्वरकी प्रकृति और प्रवृत्ति ।

तस्यप्रकृतिरुद्दिष्टादोषाःशारीरमानसाः । देहिनंनहिनिर्दोषंज्वरः समुपसेवते ॥ १० ॥ क्षयस्तमोज्वरःपाप्मामृत्युश्चोक्तोऽथमात्मजः । कर्मभिःक्लिश्यमानानांपञ्चत्वप्रत्ययान्नृणाम् ॥ ११ ॥ इत्यस्यप्रकृतिःप्रोक्ताप्रवृत्तिस्तुपरिग्रहः । निदानेपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्चदारुणात् ॥ १२ ॥

शरीर और मनके दोष ही ज्वरकी प्रकृति (कारण) माने जातेहैं । निर्दोष शरीरमें ज्वर उत्पन्न नहीं होता । और न निवास करताहै मनुष्योंके अपनेही कर्मोंसे क्लेशित होनेपर ज्वर, क्षय, तम, पाप और मृत्यु प्राप्त होतीहै और अपने कियेहुए ही कर्मोंके अधीन इस शरीरको त्याग जाताहै । इसप्रकार ज्वरकी प्रकृति (कारण) कही गयी । तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्योंके अपने ही कर्म क्लेशसे ज्वरकी उत्पत्ति होतीहै । प्रवृत्ति-उत्पत्तिका नाम है सो पहिले निदान स्थानमें कहआयेहैं कि महादेवके उग्र कोपसे ज्वरकी उत्पत्तिहै ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

महादेवके कोपसे दक्षयज्ञध्वंशका वर्णन ।

द्वितीयेहियुगेशर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् । दिव्यंसहस्रंवर्षाणामसुराअभिदुद्रुवुः ॥ १३ ॥ तपोविघ्नंशमीकर्त्तुंतपोविघ्नंमहात्मनाम् । पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाञ्चक्रेरुद्रःप्रजापतिः ॥ १४ ॥ पुनर्माहेश्वरंभागं ध्रुवंदक्षःप्रजापतिः । प्रायोनकल्पयामासप्रोच्यमानःसुरैरपि ॥१५॥ पाशुपत्यऋचोयाश्चशैव्यश्चाहुतयश्चयाः । यज्ञसिद्धिकृतास्ताभिर्हीनश्चैवसइष्टवान् ॥ १६ ॥

यह कथा ऐसी है कि त्रेतायुगमें महादेवजीने देवताओंके १ सहस्रवर्ष क्रोधादिकोंको छोडकर शान्तव्रत किया ऐसा समय पाकर दैत्य अनेक उपद्रव करनेलगे जिससे विचारे ऋषियोंके यज्ञ तप आदिकोंमें विघ्न होनेलगा परन्तु महादेवने राक्षसोंके उपद्रवोंको शान्त करनेकी सामर्थ्य रखतेहुए भी अपने शान्ति व्रतको भंग नहीं करना चाहा जब दक्षप्रजापतिने देखा कि महादेव सब सामर्थ्य रखते हुए और देवताओंके समझानेपरभी ऋषियोंके तपोविघ्नोंको दूर नहीं करते तो उसने यज्ञमें महादेवका भाग देना बंद करदिया । और पाशुपत्य नामक वेदकी ऋचाओं और यज्ञको पूर्ण करनेवाली महादेवके नामकी आहुतियोंके विनाही वह यज्ञकरनेलगा ॥ १३-१६ ॥

अथोत्तीर्णव्रतोदेवोबुद्ध्वादक्षव्यतिक्रमम् । रुद्रोरौद्रंपुरस्कृत्यभावमात्मविदात्मनः ॥१७॥ सृष्ट्वाललाटेचक्षुर्वैदग्ध्वातानसुरान्प्रभुः । बाणंक्रोधाग्निसन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् ॥ १८ ॥ ततोयज्ञःसविध्वस्तोव्यथिताश्चदिवौकसः । दाहव्यथापरीताश्चभ्रान्ताभूतगणादिशः ॥ १९ ॥

इसके पीछे जब महादेव अपने अक्रोधन व्रत करचुके तब उन्होंने दक्षके कियेहुए इस अपराधको जानकर अपने रौद्रभावसे मस्तकमें अग्निमय नेत्रको प्रकट किया फिर इन आत्मवित् महादेवने उस अग्निमय नेत्रद्वारा पहिले तो संपूर्ण राक्षसोंको भस्मीभूत किया । फिर क्रोधरूपी अग्निसे संतप्त होकर शत्रुओंको नष्ट करनेवाला यज्ञनाशन बाण छोडा उस क्रोधाग्निरूपी बाणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस हुआ और देवतालोग भी व्याकुल हुए एवं संपूर्ण भूतगण दाह और व्यथासे पीडित हुए । एवं संपूर्ण दिशाओंको भागनेलगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथेश्वरंदेवगणाःसहसप्तर्षिभिर्विभुम् । तमृग्भिरस्तुवन्यावच्छिवे भावेशिवःस्थितः ॥ २० ॥ शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृताञ्जलिः । क्रोधाग्निरुक्तवान्देवमहंकिंकरवाणिते ॥ २१ ॥

फिर तो संपूर्ण देवता और सप्तऋषि विभु महादेवकी अनेक प्रकारसे स्तुति करनेलगे । फिर नम्र वचनों द्वारा स्तुति करनेपर जगत्के कल्याणके लिये जब महादेव अपने शैवभावको प्राप्त हुए यह जानकर वह महादेवसे उत्पन्नहुआ क्रोधाग्निरूपी बाण हाथ जोडकर महादेवके आगे खडाहुआ और कहनेलगा कि हे देव ! मुझे क्या आज्ञा है और मैं आपके किस कार्यको करूं ॥ २० ॥ २१ ॥

तमुवाचेश्वरःक्रोधंज्वरोलोकेभविष्यसि । जन्मादौनिधनेचत्वमपिचावान्तरेषुच ॥ २२ ॥ सन्तापःसारुचिस्तृष्णाचाङ्गमर्दोहृदि व्यथा । ज्वरप्रभावोजन्मादौनिधनेचमहत्तमः ॥ २३ ॥

उसको महादेव भगवान् बोले कि हे क्रोध ! तूं संसारमें ज्वररूपसे प्रसिद्ध होगा। सब मनुष्योंके जन्म और मरणके समय तथा जीवन समयमें भी प्रगटहुआ करेगा। और संताप, अरुचि, अंगमर्द. हृदयमें व्यथा यह सब तुम्हारे प्रभाव होंगे । इस ज्वरके प्रभावसेही मनुष्यके जन्म और मरणके समय महाअज्ञान उपस्थित होजाताहै ॥ २२ ॥ २३ ॥

प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावश्चप्रदर्शितः ।
निदानेकारणान्यष्टौपूर्वोक्तानिविभागशः ॥ २४ ॥

इसप्रकार ज्वरकी प्रकृति,प्रवृत्ति और प्रभाव दिखाये गयेहैं । इसके पहिले निदानस्थानमें विभागपूर्वक आठ कारण कह आयेहैं ॥ २४ ॥

ज्वरके पूर्वरूप ।

आलस्यंनयनेसास्रेजृम्भणंगौरवंक्लमः। ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ ॥ २५ ॥ अविपाकास्यवैरस्यंहानिश्चबलवर्णयोः । शीलवैकृतमल्पश्चज्वरलक्षणमग्रजम् ॥ २६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूप कहते हैं । आलस्य, नेत्रोंसे आंसुओंका बहना, जंभाई आना, शरीर भारी होना, क्लम (कायली) अग्नि, धूप, छाया तथा जल इनकी इच्छा होना एवं द्वेष होना अर्थात् इच्छा और द्वेष यह दोनों अनिश्चित भावसे होना । अन्नका विपाक न होना मुखमें विरसता बल और वर्णकी हानि, स्वभावका किंचित् विकृतसा प्रतीत होना, यह ज्वरके पूर्वरूप हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलंसमनस्कञ्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ।
शरीरबलकालस्तुनिदानेसम्प्रदर्शितः ॥ २७ ॥

ज्वरका अधिष्ठान अर्थात् आश्रयस्थान केवल शरीर और मनही है । ज्वरके समय शरीरकी अवस्था, बल और काल यह सब निदानस्थानमें कथन करचुकेहैं ॥ २७ ॥

ज्वरका रूप ।

ज्वरप्रत्यात्मिकंलिङ्गंसन्तापोदेहमानसः ।
ज्वरेणाविशाताभूतंनहिकिञ्चिन्नतप्यते ॥ २८ ॥

शरीरका और मनका तपायमान होनाही सामान्यरूपसे प्रति मनुष्यमें ज्वरका लक्षण जानना । ज्वरके होनेसे ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसका मन और शरीर तपायमान न होताहो इसलिये देह इन्द्रिय और मनका तपायमान होनाही ज्वरका रूप है ॥ २८ ॥

ज्वरके दो भेद ।

द्विविधोविधिभेदेनज्वरःशारीरमानसः । पुनश्चद्विविधोदृष्टःसौम्यश्चाग्नेयएवच ॥ २९ ॥ अन्तर्वेगोबहिर्वेगोद्विविधःपुनरुच्यते । प्राकृतोवैकृतश्चैवसाध्यश्चासाध्यएवच ॥ ३० ॥

शारीर और मानसिक भेदसे ज्वर दो प्रकारका है । सौम्य और आग्नेय भेदसे दो प्रकारका है । अन्तर्वेगी और बहिर्वेगी यह दो भेद हैं । एवं प्राकृत और वैकृत तथा साध्य और असाध्य इसप्रकार ज्वर विधिभेदसे दो दो प्रकारका होताहै ॥२९॥३०॥

ज्वरके ५ भेद ।

पुनःपञ्चविधोदृष्टोदोषकालबलाबलात् ।
सन्ततःसततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ३१ ॥

फिर वह ज्वर दोष, काल, बल और अबल भेदसे पांच प्रकारका देखनेमें आताहै जैसे-संतत, सतत, अन्येद्यु (इकतरा) तृतीयक और चातुर्थिक ॥ ३१ ॥

सप्तविध और अष्टविध ज्वर ।

पुनराश्रयभेदेनधातूनांसप्तधामतः ।
भिन्नःकारणभेदेनपुनरष्टविधोज्वरः ॥ ३२ ॥

आश्रय भेदसे ज्वर सात प्रकारका है । क्योंकि रसादि सात धातुगत होनेसे सात प्रकारका होजाताहै । और कारण भेदसे ज्वर आठ प्रकारका होताहै । जैसे वातसे,

पित्तसे, कफसे, वातपित्तसे, वातकफसे, पित्तकफसे, सन्निपातसे और आगन्तुज कारणोंसे आठ प्रकारका होताहै ॥ ३२ ॥

शारीर और मानसिक ज्वरके लक्षण।

शारीरोजायतेपूर्वंदेहेमनसिमानसः । वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्मनसस्तापलक्षणम् । इन्द्रियाणाञ्चवैकृत्यंदेहसन्तापलक्षणम् ॥ ३३ ॥

शारीरिक ज्वर पहिले शरीरमें प्रगट होकर और मानसज्वर पहिले मनमें प्रगट हो फिर संपूर्ण देहमें व्यापक होजाताहै । तब चित्तकी विकृति, किसी वस्तुकी इच्छा न होना, ग्लानि, मनका संताप यह सब लक्षण मानस ज्वरके होतेहैं। एवं इन्द्रियोंमें व्याकुलता, देहका अत्यंत संतापित होना यह शारीरिक ज्वरके लक्षण हैं ॥ ३३ ॥

सौम्य और अग्नेयके लक्षण।

वातपित्तात्मकःशीतमुष्णंवातकफात्मकः ।
इच्छत्युभयमेतत्तुज्वरोव्यामिश्रलक्षणः ॥ ३४ ॥

इसीप्रकार वातपित्तात्मक ज्वर-सौम्य अर्थात् शीतल पदार्थकी इच्छा करनेवाला और शीतल द्रव्यों द्वारा शान्त होनेवाला होताहै। एवं वातकफात्मक-आग्नेय अर्थात् उष्णताकी इच्छा करनेवाला और उष्ण द्रव्यों द्वारा शान्त होनेवाला होताहै दोनोंके मिलेहुए लक्षणोंवाला दोनों प्रकारकी इच्छाको करता है ॥ ३४ ॥

योगवाहःपरंवायुःसंयोगादुभयार्थकृत् ।
दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात् ॥ ३५ ॥

वायु परमयोगवाही है। इसलिये संयोगसे दोनों प्रकारके लक्षणोंको करताहै। जब वह तेजके साथमें मिलजाताहै तो दाहको करनेवाला होजाताहै और सोमके साथ मिलजानेसे शीतताको करनेवाला होजाताहै ॥ ३५ ॥

अंतर्वेगी ज्वरके लक्षण।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णाप्रलापः श्वसनंभ्रमः । सन्ध्यास्थिशूलमस्वेदोदोषवर्चोविनिग्रहः । अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत् ॥ ३६ ॥

शरीरके भीतर अत्यंत दाह होना, प्यास अधिक लगना, प्रलाप (बकवाद) श्वास, भ्रम, संधियों और अस्थियोंमें पीडा होना, पसीनेका न आना, मलका रुकजाना, यह सब अन्तर्वेगी ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ३६ ॥

बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण।

सन्तापोऽभ्यधिकोबाह्यस्तृष्णादीनाञ्चमार्दवम्।
बहिर्वेगस्यलिङ्गानिसुखसाध्यत्वमेवच॥ ३७॥

शरीरके बाहर संताप अधिक होना, प्यास, आदिका कम होना यह बहिर्वेगी ज्वरके लक्षण हैं। बहिर्वेगीज्वर सुखसाध्य होताहै॥ ३७॥

प्राकृतज्वरके लक्षण और काल।

प्राकृतःसुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः।
कालप्रकृतिमुद्दिश्यप्रोच्यतेप्राकृतोज्वरः॥ ३८॥

प्राकृतज्वर समय और स्वभावके उद्देश्यसे कथन किया जाताहै। जैसे वसन्तऋतुका और शरदऋतुका ज्वर प्राकृत होनेसे सुखसाध्य होताहै॥ ३८॥

उष्णमुष्णेनसंवृद्धंपित्तंशरदिकुप्यति।
चितःशीतेकफश्चैवंवसन्तेसमुदीर्य्यते॥ ३९॥

क्योंकि उष्णतासे बढाहुआ पित्त उष्ण स्वभाववाला होनेसे उष्णस्वभाववाले शरदऋतुमें कुपित होताहै और शीतकालका संचितहुआ कफ वसन्तऋतुमें कुपित होताहै॥ ३९॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरोषधीभिःसवारिभिः।
सञ्चितंपित्तमुद्रिक्तंशरद्यादित्यतेजसा॥ ४०॥
ज्वरंसञ्जनयत्याशुतस्यचानुबलःकफः।
प्रकृत्यैवविसर्गाच्चतत्रनानशनाद्भयम्॥ ४१॥

वर्षाकालमें संपूर्ण औषधियें और जलोंका विपाक अम्ल होताहै। अम्ल विपाकसे पित्तका कोप होताहै। परन्तु वर्षाकालमें शीतल पवन और जलकी आर्द्रता आदि होनेसे पित्त कोपको प्राप्त न होकर संचित होता रहताहै। फिर शरदऋतुमें सूर्यके संतापकी सहायतासे कोपको प्राप्त होकर पित्तप्रधान ज्वरको उत्पन्न करताहै। और कफ उसका सहायक होजाताहै। क्योंकि उस समय स्वभावसेही विसर्गकाल होताहै। इसलिये उस समय लंघन न करनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै॥ ४०॥ ४१॥

अद्भिरोषधिभिश्चैवमधुराभिश्चितःकफः। हेमन्तेसूर्य्यसन्तप्तःवसन्तेप्रकुप्यति॥ ४२॥ वसन्तेश्लेष्मणातस्माज्ज्वरःसमुपजायते। आदानमध्येतस्यापिवातपित्तंभवेदनु॥ ४३॥ आदावन्तेचमध्ये

चज्ञात्वादोषबलाबलम् । शरद्वसन्तयोर्विद्वाञ्ज्वरस्यप्रतिकार-येत् ॥ ४४ ॥

इसीप्रकार शीतकालमें औषधी और जल आदि सब मधुर विपाकी होतेहैं उस मधुर विपाकसे हेमन्त कालका संचितहुआ कफ वसन्तकालमें सूर्यके संतापसे पिघल-कर कोपको प्राप्त हो कफके ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस समय सूर्यके आदान-कालका समय होनेसे वात पित्त इस कफके अनुयायी होजातेहैं । इसलिये शरद और वसन्त ऋतुके आदि अन्त और मध्यमें दोषोंका बलाबल विचारकर विद्वान वैद्य विधिवत् चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्राकृतवैकृतभेद ।

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः ।
प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येपुवैकृतः ॥ ४५ ॥

काल प्रकृतिके उद्देश्यसे अर्थात् दोषोंके स्वाभाविक कोप होनेके कालका निर्देश करके प्राकृत ज्वरका कथन किया गयाहै सो वसन्तऋतुमें कफके और शरदऋतुमें पित्तके यह प्राकृतज्वर कहेजातेहैं । इनमें लंघन आदि विरोधी न होनेसे अर्थात् लंघन कियाजाना हितकारक होनेसे यह प्रायः सुखसाध्य होतेहैं । परन्तु वातज्वर प्राकृत होते हुए भी दुःसाध्य होतेहैं । क्योंकि उनमें लंघन करना प्रायः हितकारक नहीं होता । और अन्यकालमें प्रगटहुए ज्वर भी वैकृत होतेहैं । एवं प्रायः दुःसाध्य होतेहैं ॥ ४५ ॥

हेतु ।

हेतवोविविधास्तस्यनिदानेसम्प्रदर्शिताः ॥ ४६ ॥

ज्वरके अनेक प्रकारके हेतुओंको निदानस्थानमें कह आयेहैं ॥ ४६ ॥

साध्यज्वर ।

वलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ।

बलवान् मनुष्यका अल्प दोषोंवाला और उपद्रवरहित ज्वर साध्य होताहै ॥

---

१ प्रायःवर्षाऋतुमें वायुका स्वाभाविक कोपकाल होताहै । शरदऋतुमें पित्तका स्वाभाविक कोपकाल होताहै और वसन्त ऋतुमें स्वाभाविक कफका कोपकाल होताहै । इसप्रकार अपने समयपर कुपित होना इनका प्राकृतधर्म है और इससे विपरीत वैकृत धर्म है । शरद और वसन्त ऋतुमें आमदोषकी अधिकता होनेसे लंघन करना अत्यावश्यक है । परन्तु वातज्वरमें लंघनकी आवश्यकता नहीं है ।

असाध्य लक्षण।

हेतुभिर्बहुभिर्जातोबलिभिर्बहुलक्षणः ।
ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ४७ ॥

बहुतसे बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न हुआ और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त तथा जो ज्वर शीघ्र इन्द्रियोंको नष्ट कर देवे वह मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाला अर्थात् असाध्य होताहै ॥ ४७ ॥

सप्ताहाद्वादशाहाद्वाद्वादशाहात्तथैवच ।
सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरोनरम् ॥ ४८ ॥

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वास तथा तीक्ष्ण वेगवाला हो वह सातदिनमें अथवा दश दिनमें या बारह दिनमें मनुष्यको मारडालताहै ॥ ४८ ॥

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदैर्घ्यरात्रिकः ।
असाध्योबलवान्यश्चकेशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगयाहो, शरीरमें सूजन उत्पन्न होआईहो, गंभीर ज्वर रहे और संपूर्ण रात्रि उसको बडे कष्टसे व्यतीत होतीहो तो वह ज्वर असाध्य जानना। एवं जिस मनुष्यके मस्तकपर केशोंमें बहुतसी सीमन्तरचनासी होजाय अर्थात् भौंरियेंसी और चूंटके समान रचनासी होजाय वह ज्वरवाला मनुष्य यदि बलवान् भी हो तब भी असाध्य जानना ॥ ४९ ॥

संततज्वर।

स्रोतोभिर्विसृतादोषागुरवोरसवाहिभिः । सर्वगात्रानुगास्तब्धा ज्वरंकुर्वन्तिसन्ततम् ॥५०॥ द्वादशाहंदशाहंवासप्ताहंवासुदुःसहः । सशीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५१ ॥ कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषस्तुल्योहिसन्ततम् । निष्प्रत्यनीकंकुरुतेतस्माज्ज्ञेयः सुदुःसहः ॥५२॥ यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषञ्चानिलादयः। अनुबध्नन्ति युगपदवश्यंसन्ततेज्वरे ॥ ५३ ॥

वातादि दोष रसवाही स्रोतोंके बीचमें व्याप्त होकर संपूर्ण देहमें पहुंच जातेहैं। फिर देहको स्तंभितकर संततज्वरको उत्पन्न कर देतेहैं। वह संततज्वर बारह दिनमें अथवा दश दिनमें या सात दिनमें बराबर चढा रहकर या तो शान्त होजाताहै अथवा मनुष्यको मारडालताहै। यह शीघ्रकारी ज्वर दुःसाध्य होताहै। क्योंकि दोष, काल, दूष्य और प्रकृति यह जब एक स्वभाववाले मिल जातेहैं तब अपने बलको

चज्ञात्वादोषबलाबलम् । शरद्वसन्तयोर्विद्वाञ्ज्वरस्यप्रतिकार-येत् ॥ ४४ ॥

इसीप्रकार शीतकालमें औषधी और जल आदि सब मधुर विपाकी होतेहैं उस मधुर विपाकसे हेमन्त कालका संचितहुआ कफ वसन्तकालमें सूर्यके संतापसे पिघलकर कोपको प्राप्त हो कफके ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस समय सूर्यके आदानकालका समय होनेसे वात पित्त इस कफके अनुयायी होजातेहैं । इसलिये शरद और वसन्त ऋतुके आदि अन्त और मध्यमें दोषोंका बलाबल विचारकर विद्वान वैद्य विधिवत् चिकित्सा करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्राकृतवैकृतभेद ।

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः ।
प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येषुवैकृतः ॥ ४५ ॥

काल प्रकृतिके उद्देश्यसे अर्थात् दोषोंके स्वाभाविक कोप होनेके कालका निर्देश करके प्राकृत ज्वरका कथन किया गयाहै सो वसन्तऋतुमें कफके और शरदऋतुमें पित्तके यह प्राकृतज्वर कहेजातेहैं । इनमें लंघन आदि विरोधी न होनेसे अर्थात् लंघन कियाजाना हितकारक होनेसे यह प्रायः सुखसाध्य होतेहैं । परन्तु वातज्वर प्राकृत होते हुए भी दुःसाध्य होतेहैं । क्योंकि उनमें लंघन करना प्रायः हितकारक नहीं होता । और अन्यकालमें प्रगटहुए ज्वर भी वैकृत होतेहैं । एवं प्रायः दुःसाध्य होतेहैं ॥ ४५ ॥

हेतु ।

हेतवोविविधास्तस्यनिदानेसम्प्रदर्शिताः ॥ ४६ ॥

ज्वरके अनेक प्रकारके हेतुओंको निदानस्थानमें कह आयेहैं ॥ ४६ ॥

साध्यज्वर ।

बलवत्स्वल्पदोषेपुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ।

बलवान् मनुष्यका अल्प दोषोंवाला और उपद्रवरहित ज्वर साध्य होताहै ॥

---

१ प्रायःवर्षाऋतुमें वायुका स्वाभाविक कोपकाल होताहै । शरदऋतुमें पित्तका स्वाभाविक कोपकाल होताहै और वसन्त ऋतुमें स्वाभाविक कफका कोपकाल होताहै । इसप्रकार अपने समयपर कुपित होना इनका प्राकृतधर्म है और इससे विपरीत वैकृत धर्म है । शरद और वसन्त ऋतुमें आमदोषकी अधिकता होनेसे लंघन करना अत्यावश्यक है । परन्तु वातज्वरमें लंघनकी आवश्यकता नहीं है ।

असाध्य लक्षण।

हेतुभिर्बहुभिर्जातोबलिभिर्बहुलक्षणः ।
ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः ॥ ४७ ॥

बहुतसे बलवान् हेतुओंसे उत्पन्न हुआ और बहुतसे लक्षणोंसे युक्त तथा जो ज्वर शीघ्र इन्द्रियोंको नष्ट कर देवे वह मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाला अर्थात् असाध्य होताहै ॥ ४७ ॥

ससाहाद्वादशाहाद्वाद्वादशाहात्तथैवच ।
सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरोनरम् ॥ ४८ ॥

जो ज्वर प्रलाप, भ्रम, श्वास तथा तीक्ष्ण वेगवाला हो वह सातदिनमें अथवा दश दिनमें या बारह दिनमें मनुष्यको मारडालताहै ॥ ४८ ॥

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदैर्घ्यरात्रिकः ।
असाध्योबलवान्यश्चकेशसीमन्तकृज्ज्वरः ॥ ४९ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगयाहो, शरीरमें सूजन उत्पन्न होआईहो, गंभीर ज्वर रहे और संपूर्ण रात्रि उसको बडे कष्टसे व्यतीत होतीहो तो वह ज्वर असाध्य जानना। एवं जिस मनुष्यके मस्तकपर केशोंमें बहुतसी सीमन्तरचनासी होजाय अर्थात् भौंरियेंसी और चूटके समान रचनासी होजाय वह ज्वरवाला मनुष्य यदि बलवान् भी हो तब भी असाध्य जानना ॥ ४९ ॥

संततज्वर।

स्रोतोभिर्विसृतादोषागुरवोरसवाहिभिः । सर्वगात्रानुगास्तब्धा ज्वरंकुर्वन्तिसन्ततम् ॥५०॥ द्वादशाहंदशाहंवाससाहंवासुदुःसहः । सशीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५१ ॥ कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषस्तुल्योहिसन्ततम् । निष्प्रत्यनीकंकुरुतेतस्माज्ज्ञेयः सुदुःसहः ॥५२॥ यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषश्चानिलादयः। अनुबध्नन्ति युगपदवश्यंसन्ततेज्वरे ॥ ५३ ॥

वातादि दोष रसवाही स्रोतोंके बीचमें व्याप्त होकर संपूर्ण देहमें पहुंच जातेहैं । फिर देहको स्तंभितकर संततज्वरको उत्पन्न कर देतेहैं। वह संततज्वर बारह दिनमें अथवा दश दिनमें या सात दिनमें बराबर चढा रहकर या तो शान्त होजाताहै अथवा मनुष्यको मारडालताहै। यह शीघ्रकारी ज्वर दुःसाध्य होताहै। क्योंकि दोष, काल, दूष्य और प्रकृति यह जब एक स्वभाववाले मिल जातेहैं तब अपने बलको

प्राप्त हुए दोष दुःसाध्य संततज्वरको उत्पन्न करतेहैं । क्योंकि इसकी चिकित्सामें अत्यंत कठिनाई पडतीहै इसलिये यह दुःसाध्य है । सातों धातु, तीनों दोष, मल, मूत्र यह सब संततज्वरमें एककालमेंही अनुबंधको प्राप्त होजातेहैं ॥ ५०–५३ ॥

सशुद्ध्यांवाप्यशुद्ध्यावारसादीनामशेषतः । सप्ताहादिषुकालेषु प्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ५४ ॥ यदातुनातिशुध्यन्तिनवाशुध्यन्ति सर्वशः । द्वादशैतेसमुद्दिष्टाःसन्ततस्याश्रयास्तदा ॥ ५५ ॥ विसर्गं द्वादशेकृत्वादिवसेव्यक्तलक्षणः । दुर्लभोपशमःकालंदीर्घमप्यनुवर्त्तते ॥ ५६ ॥ इति बुद्ध्वाज्वरंवैद्यउपक्रामेत्तुसन्ततम् । क्रियाक्रमविधौयुक्तःप्रायःप्रागपतर्पणैः ॥ ५७ ॥

रसादिक सातों धातुओं और तीनों दोष तथा मल मूत्र इन बारह द्रव्योंके संपूर्ण रूपसे अशुद्ध अथवा सर्वथा शुद्ध न रहनेसेही संततज्वर सात अथवा दश या बारह दिनोंमें शान्त होजाताहै या मनुष्यको मारडालताहै । इन बारह द्रव्योंके शुद्ध न होनेसे अथवा सर्वथा दोषयुक्त होनेसे ही संततज्वर इन रसादिक बारह द्रव्योंके आश्रित होताहै । कोई २ संततज्वर १२ दिन प्रगटरूपसे रहकर फिर गुप्तरूपसे शरीरमें रहने लगताहै और कुछ काल पाकर फिर प्रगट होजाताहै । इसकी चिकित्सा कष्टसाध्य होतीहै । इसप्रकार बुद्धिमान् वैद्य संततज्वरके क्रिया क्रम आदि विधिमें प्रवृत्तहुआ प्रायः लंघनद्वारा दोष शान्तकर चिकित्सा करे ॥ ५४–५७ ॥

सततकज्वर लक्षण ।

रक्तधात्वाश्रयःप्रायोदोषः सततकंज्वरम् । सप्रत्यनीकंकुरुतेकालवृद्धिक्षयात्मकः ॥ ५८ ॥ अहोरात्रेसततकोद्वौकालावनुवर्त्तते । कालप्रकृतिदूष्याणांप्राप्यैवान्यतमाद्बलम् ॥ ५९ ॥

वातादि दोष रक्तधातुमें आश्रित होकर सततकज्वरको उत्पन्न करतेहैं । यह ज्वर जिस दोषसे जिस कालमें उत्पन्न होताहै उसीकी वृद्धिसे वृद्धिको और क्षयसे क्षयको प्राप्त होताहै । सततकज्वर एक दिनरात्रिमें दोवार कोप और शान्तीको प्राप्त होताहै । यह काल, प्रकृति और दूष्यके बलसेही वेग और शान्तिको धारण करताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इकतराज्वर लक्षण ।

दोषोमेदोवहारुद्ध्वानाडीरन्येद्युकंज्वरम् ।
सप्रत्यनीकःकुरुतेएककालमहर्निशम् ॥ ६० ॥

वातादि दोष मेदके वहन करनेवाली नाडियोंको रोककर अन्येद्यु (इकतरा) ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। यह ज्वर अपने दोष, काल आदि बलका आश्रय लेकर १ दिनरात्रमें १ वार आताहै ॥ ६० ॥

तृतीयक चातुर्थिक ज्वरलक्षण।

दोषोऽस्थिमज्जगः कुर्य्यात्तृतीयकचतुर्थकौ।
गतिर्द्व्येकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथापरैः ॥ ६१ ॥

दोष मज्जामें प्राप्त होकर दोष, काल, प्रकृति आदिके बलको क्रमपूर्वक प्राप्त होकर तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। तृतीयकज्वर तीसरे दिन और चातुर्थिक चौथे दिन आताहै। इसप्रकार एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वरकी गतिको कहा ॥ ६१ ॥

इनका धातुभेदसे कथन।

रक्तमेवाभिसंसृज्यकुर्य्यादन्येद्युकंज्वरम्। मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तुतृतीयकम् ॥ ६२ ॥ ज्वरंदोषःसंसृतोहिमेदोमार्गचतुर्थकम्। अन्येद्युष्कःप्रतिदिनंदिनंक्षिप्त्वातृतीयकः। दिनद्वयंयोविश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥ ६३ ॥

दोष–रक्तमें मिलकर अन्येद्यु ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। मांसके स्रोतोंमें प्रवेश कर तृतीयक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। इसीप्रकार मेदवाही स्रोतोंमें प्रवेशकर चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। अन्येद्युज्वर दिनरात्रिमें १ वार कोपको करताहै तृतीयकज्वर १ दिन बीचमें छोडकर दूसरेदिन कोपको धारण करताहै। चातुर्थिकज्वर दो दिन मेद, मज्जा आदि धातुओंमे छिपा रहकर चौथे दिन अपने वेगको धारण करताहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इनके कोपमें दृष्टांत।

अधिशेतेयथाभूमिंबीजंकालेचरोहति। अधिशेतेतथाधातुंदोषः कालेचकुप्यति ॥ ६४ ॥ तेवृद्धिंबलकालञ्चप्राप्यदोषास्तृतीयकम्। चतुर्थकञ्चकुर्वन्तिप्रत्यनीकंबलक्षयात् ॥ ६५ ॥ कृत्वावेगंगतबलाःश्लेष्मस्थानेव्यवस्थिताः। पुनर्विवृद्धाःस्वेकालेज्वरयन्तिनरं मलाः ॥ ६६ ॥

जैसे अनेक प्रकारके बीज पृथ्वीमें रहतेहुए अथवा पृथ्वीमें गिरकर अपने समयके ऊपर काल पाकर प्रगट होजातेहैं उसीप्रकार दोष धातुओंमें शयन करतेहुए प्रकृति

और काल आदिका वल पाकर कोपको प्राप्त होतेहैं। जव उनका समय आताहै तो वातादि तीनों दोप तृतीयक या चातुर्थिक ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। तात्पर्य यह हुआ कि दोप धातु आदिकोंमें शयन करतेहुए एक अथवा दो दिन अपना वल न पाकर क्षीणताको प्राप्तहुए रहते हैं। फिर वल, कालको प्राप्त होकर अपने वेगको धारण करतेहैं फिर वेगके क्षय होनेसे कफके स्थानमें गतवल होकर स्थित रहतेहैं फिर वृद्धिको प्राप्त होकर अपने समयपर ज्वरके वेगको उत्पन्न करतेहैं ॥ ६४–६६ ॥

तृतीयक ज्वरके तीन प्रकार।

कफपित्तात्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः।
वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधःस्यात्तृतीयकः ॥ ६७ ॥

यदि तृतीयक ज्वर कफ, पित्त प्रधान हो तो प्रथम कमरके तिहड्डेमें अत्यन्त पीडाको उत्पन्न करताहै। यदि वातकफ प्रधान हो तो पहिले पीठको जकड देताहै। और वातपित्त प्रधान होनेसे प्रथम शिरमें पीडाको प्रगट करताहै। इसप्रकार तृतीयक ज्वर तीन प्रकारका होताहै ॥ ६७ ॥

चातुर्थिकके दो प्रकार।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधंज्वरः।
जङ्घाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वंशिरस्तोऽनिलसम्भवः ॥ ६८ ॥

चातुर्थिकज्वर भी अपने दो प्रकारके प्रभावोंको दिखाताहै। यदि वह कफप्रधान हो तो प्रथम जांघोंसे प्रवृत्त होताहै। और वातप्रधान होनेसे पहिले शिरसे प्रवृत्त होताहै ॥ ६८ ॥

चातुर्थिक विपर्यय।

विषमज्वरएवान्यश्चातुर्थकविपर्य्ययः। त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातुस्थःकरोत्ययम् ॥ ६९ ॥

एक चातुर्थिकज्वरसे विपरीत प्रकारका और विपमज्वर है। यह वीचमें दो दिन ज्वरके वेगको धारणकरके आदि और अन्तके दिनोंमें अपने वेगको नहीं करता यह चातुर्थिक और तृतीयक ज्वरके विपर्ययसेही होताहै। दोप एकएक धातु अथवा दो २ धातुमें स्थित होकर विपमज्वरको प्रगट करतेहैं ॥ ६९ ॥

विषम ज्वरोंको त्रिदोपत्व।

प्रायशःसन्निपातेनदृष्टःपञ्चविधोज्वरः।
सन्निपातेतुयोभूयान्सदोपःपरिकीर्तितः ॥ ७० ॥

प्रायः यह पांच प्रकारकेही विषमज्वर वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंके सन्निपात सेही होतेहैं। इन तीनों दोषोमें जो दोष प्रधान होताहै वही दोष मुख्य मानाजाताहै७०

ऋत्वहोरात्रदोषाणांमनसश्चबलाबलात्।
कालमर्थवशाच्चैवज्वरस्तंतंप्रपद्यते ॥ ७१ ॥

सब मनुष्योंको ऋतु, दिन, रात्रि, दोष और मनके बल तथा समय और कर्मके आधीन होकर मनुष्योंको अनेक प्रकारके ज्वर उत्पन्न होतेहैं। जिस समय जिस ज्वरके जिसप्रकार काल, कारण आदि उपस्थित होतेहैं उस समय उसीप्रकारका ज्वर उत्पन्न होजाताहै ॥ ७१ ॥

रसगतज्वरके लक्षण।

गुरुत्वंशीतमुद्वेगःसदनंछर्द्यरोचकौ।
रसस्थितेबहिस्तापःसाङ्गमर्दोविजृम्भणम् ॥ ७२ ॥

शरीरमें गौरव, शीत लगना मनमें उद्वेग होना, अंगोंका रहजाना, छर्दिहोना, एवं अरुचि शरीरके बाहर संताप होना, अंगमर्द और जँभाई आना यह रसगत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७२ ॥

रक्तगतज्वरके लक्षण।

रक्तोत्थापिडकास्तृष्णासरक्तंष्ठीवनंमुहुः।
दाहरागभ्रममदाः प्रलापोरक्तसंस्थिते ॥ ७३ ॥

शरीरपर रक्त विकारकी फुंसियेंसी होना, प्यास लगना वारवार थूकमे रक्तका आना दाह होना एवं राग, भ्रम, मद और प्रलापका होना यह लक्षण रक्तमें प्राप्तहुए ज्वरके होतेहैं ॥ ७३ ॥

मांसगतज्वरके लक्षण।

अन्तर्दाहोऽधिकस्तृष्णाग्लानिःसंसृष्टविट्कता।
दौर्गन्ध्यंगात्रविक्षेपोज्वरेमांसस्थितेभवेत् ॥ ७४ ॥

भीतर बहुत दाह होना, प्यास, ग्लानि, मलका पतला होकर निकलना, अथवा अधिक आना शरीरमें दुर्गंधका होना, यह माँसमें प्राप्त ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७४ ॥

मेदगतज्वरके लक्षण।

स्वेदस्तीव्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्ष्णशः।
स्वगन्धास्यासहत्वश्चमेदःस्थेग्लान्यरोचकौ ॥ ७५ ॥

पसीना आना, तीव्र प्यास, वकवाद, निरंतर अरति अपने शरीरकी गंध सहन न कर सकना, ग्लानि, और अरुचि यह सब मेदगत ज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ७० ।

अस्थिगत ज्वरके लक्षण।

विरेकवमनेचोभेसास्थिभेदंप्रकूजनम्।
विक्षेपणञ्चगात्राणांश्वासश्चास्थिगतेज्वरे॥ ७६॥

वमन विरचनेका होना, अस्थियोंमें भेदनकीसी पीडा कण्ठ अथवा आंतोंका कूजना हाथ पांव आदि शरीरके अंगोंका इधर उधर फेंकना और श्वास यह सब अस्थिगत ज्वरके लक्षण होतेहैं॥ ७६॥

मज्जागत ज्वरके लक्षण।

हिकाश्वासस्तथाकासस्तमसश्चातिदर्शनम्।
मर्मच्छेदोवहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जगे॥ ७७॥

हिचकी, श्वास, खांसी, अंधकार दिखाई देना, वारवार आंखोंके आगे अंधेरा होना, मर्मस्थानोंमें पीडा होना, शरीरके वाहर शीतलता और भीतर अत्यंत दाह यह सब मज्जागत ज्वरके लक्षण होतेहैं॥ ७७॥

शुक्रगतज्वरके लक्षण।

शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षंकृत्वाविनाश्यच।
प्राणवाय्वग्निसोमैश्वसार्द्धंगच्छत्यसौविभुः॥ ७८॥

शुक्रस्थानमें प्राप्त हुआ ज्वर वीर्यको वारवार निकालताहै फिर वीर्यको नष्ट करके यह विभुज्वर प्राणवायु और अग्नि तथा सोमके साथ चलाजाताहै अर्थात् मनुष्यको मारडालताहै॥ ७८॥

इनकी साध्याऽसाध्यता।

रसरक्ताश्रितःसाध्योमेदोमांसगतश्चयः।
अस्थिमज्जगतःकृच्छ्रःशुक्रस्थोनैवसिध्यति॥ ७९॥

रसगत और रक्तगत यह ज्वर साध्य होतेहैं। एवं मेद और मांसगत ज्वर भी साध्य हो सकतेहैं। अस्थिगत और मज्जागत ज्वर कृच्छ्रसाध्य होतेहै। परन्तु शुक्रगत ज्वर सर्वथा असाध्य ही होताहै॥ ७९॥

विशेषतासे ज्वरोंका वर्णन।

हेतुभिर्लक्षणैश्चोक्तःपूर्वमष्टविधोज्वरः।
समासेनोपदिष्टस्यव्यासतःशृणुलक्षणम्॥ ८०॥

पहिले हेतु और लक्षणोंसे संक्षेपसे आठ प्रकारका ज्वर कहचुकेहैं। अब विस्तार-पूर्वक उनके लक्षणोंको श्रवण करो॥ ८०॥

वातपित्तज्वरके लक्षण।

शिरोरुक्पर्वणांभेदोदाहोरोम्णांप्रहर्षणम् ।। कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽरुचिः ॥ ८१ ॥ स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भावातपित्तज्वराकृतिः ॥ ८२ ॥

शिरमें पीडा होना, संपूर्ण गांठोमें भेदनेकीसी पीडा, दाह, रोमोंका खडा होना, कण्ठ और मुखका सूखना, वमनका आना, प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, अरुचि, नींदका न आना, बकवाद, जंभाई यह सब वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

वातकफज्वरके लक्षण।

शीतकोगौरवंतन्द्रास्तैमित्यंपर्वणाश्चरुक्। शिरोग्रहःप्रतिश्यायःकासःस्वेदाप्रवर्त्तनम्[1] ।सन्तापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥८३॥

शीतका लगना, गौरव, तंद्रा, स्तैमित्य (शरीर गीले कपडेसे लिपटाहुआसा प्रतीत होना) संधियोंमें पीडा होना, शिरका भारी और पीडायुक्त होना, प्रतिश्याय (जुकाम) खांसी, पसीनेका न आना, संताप और ज्वरका वेग मध्यम होना यह वातकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ८३ ॥

पित्तकफज्वरके लक्षण।

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंस्वेदस्तम्भोमुहुर्मुहुः । मोहःकासोऽरुचिस्तृष्णाश्लेष्मपित्तप्रवर्त्तनम् । लिप्ततिक्तास्यतातन्द्राश्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ ८४ ॥

वारंवार गर्मीकी दाह होना, बारबार शीत लगना, बारंवार पसीना आना बारबार शरीरका स्तंभ होना, एवं मोह (बेहोशी) खांसी, अरुचि, प्यास, और मुख कफ तथा पित्तसे लिपायमान होना, तथा मुखसे कफ और पित्तका गिरना, मुख कडुआ रहना, और तंद्रा यह कफ और पित्तज्वरके लक्षण होतेहैं ॥ ८४ ॥

इत्येतेद्वन्द्वजाःप्रोक्ताःसन्निपातजउच्यते । सन्निपातज्वरस्योर्द्ध्वंत्रयोदशविधस्यहि ॥ ८५ ॥ प्राक्सूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणंवैपृथक्पृथक् ॥ ८६ ॥

---

[1] यद्यपि वातज्वरमें और कफज्वरमें पसीना नहीं आता, परन्तु वात और कफ दोनोंकी विषमतासे मिलकर प्रवृत्ति होनेसे पसीनेका आगमन होजाताहै। इसलिये "स्वेदाप्रवर्त्तनम्" का अर्थ इस जगह स्वेदकी आसमन्तात् प्रवृत्ति जानना।

इसप्रकार द्वंद्वज (द्विदोषज) ज्वरोंका कथन किया गयाहै । अब सन्निपात (त्रिदोष) से उत्पन्न हुए ज्वरका कथन करतेहैं। पहिले तेरह प्रकारके सन्निपातोंका सूत्ररूपसे कथन कर आयेहैं । अब उन तेरह सन्निपातोंके लक्षणोंको पृथक् पृथक् वर्णन करतेहैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातपित्तोल्वण सन्निपातके लक्षण ।

वातपित्तोल्वणेविद्याल्लिङ्गंमन्दकफेज्वरे ।
भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोऽतिरुक् ॥ ८७ ॥

जिस सन्निपातमें वात और पित्त यह दो दोष बहुत बढेहुए हों तथा कफ हीन लक्षणवाली हो उस सान्निपातिक ज्वरके यह लक्षण होतेहैं। जैसे भ्रम, प्यास, दाह, गुरुता, शिरमें अत्यंत पीडा ॥ ८७ ॥

वातकफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

शैत्यंकासोऽरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्व्यथा ।
वातश्लेष्मोल्बणेव्याधौलिङ्गंपित्तावरेविदुः ॥ ८८ ॥

शीत लगना, खांसी, अरुचि, तंद्रा, प्यास, दाह, पीडा, और व्याकुलता यह लक्षण वात कफोल्वण और हीनपित्त सन्निपातके होतेहैं ॥ ८८ ॥

पित्तकफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना ।
मन्दवातेव्यवस्यन्तेलिङ्गंपित्तकफोल्वणे ॥ ८९ ॥

छर्दि होना, वारवार शीत लगना और दाह होना, प्यास, मोह हड्डियोंमें पीडा, यह पित्तकफोल्वण और हीनवात सन्निपातज्वरके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

वातोल्वणस० ।

सन्ध्यस्थिशिरसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः ।
वातोल्वणेस्याद्व्यनुगेतृष्णाकण्ठस्यशोषता ॥ ९० ॥

संधियोंमे, अस्थियोंमें तथा शिरमें पीडा होना, बकवाद, गौरव, प्यास, कण्ठ और मुखका सूखना, यह वातोल्वण और हीन पित्तकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥९०॥

पित्तोल्वणस० ।

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्बलसंक्षयः ।
मूर्च्छाचातित्रिदोषेस्याल्लिङ्गंपित्तेगरीयसि ॥ ९१ ॥

मलमूत्रका रक्तके समान होना दाह, स्वेद, प्यास, बलकी हानि, अत्यंतमूर्च्छा यह पित्तोल्बण हीनवातकफ सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९१ ॥

कफोल्वणस० ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहस्तृष्णावमिभ्रमैः ।
कफोल्बणंसन्निपातंतन्द्राकासेनचादिशेत् ॥ ९२ ॥

आलस्य, अरुचि हृल्लास (जीमचलाना) दाह, वमन, तृषा, भ्रम, तंद्रा और खांसी यह कफोल्वण हीनवातपित्त सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९२ ॥

हीनवातमध्यकफपित्तोल्वणस० ।

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् ।
हीनवातेपित्तमध्येचिह्नंश्लेष्माधिकेमतम् ॥ ९३ ॥

प्रतिश्याय, वमन, आलस्य, तंद्रा, अरुचि और अग्निका मंद होना यह हीनवात, मध्यपित्त कफोल्वण सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९३ ॥

हीनवातमध्यकफपित्ताधिकस० ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ।
हीनवातेमध्यकफेलिङ्गंपित्ताधिकेमतम् ॥ ९४ ॥

मूत्र और नेत्र हल्दीके समान होना, दाह, भ्रम और अरुचि यह हीनवात, मध्यकफ, पित्तोल्बण सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९४ ॥

हीनपित मध्यकफ वाताधिक सं० ।

शिरोरुग्वेपथुःश्वासःप्रलापश्छर्द्यरोचकाः ।
हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ ९५ ॥

शिरमें पीडा, कंप, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि यह हीनपित्त, मध्यकफ वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होतेहैं ॥ ९५ ॥

हीनपित्त मध्यवात कफाधिक सं० ।

शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् ।
हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेविदुः ॥ ९६ ॥

शीतका लगना, गुरुता, तंद्रा, बकवाद, हड्डियोंमें पीडा, शिरमें पीडा यह हीनपित्त मध्यवात, कफाधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९६ ॥

कफहीन वातमध्य पित्ताधिक सं० ।

पर्वभेदोऽग्निमान्द्यंचतृष्णादाहोऽरुचिर्भ्रमः ।

कफहीनेवातमध्येलिङ्गंपित्ताधिकेविदुः ॥ ९७ ॥

संधियोंमें पीडा, मंदाग्नि, प्यास, दाह, अरुचि और भ्रम यह हीनकफ, मध्यवात और पित्ताधिक्य सन्निपातके लक्षण हैं ॥ ९७ ॥

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोषोऽतिपार्श्वरुक् ।
कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ ९८ ॥

श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुखका सूखना, पसलीमें अत्यंत पीडा होना, यह हीनकफ, मध्यपित्त, वाताधिक्य सन्निपातके लक्षण होतेहैं ॥ ९८ ॥

सन्निपातके लक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम् । क्षणेदाहःक्षणेशीतम- स्थिसन्धिशिरोरुजः । सास्रावेकलुपेरक्तेनिर्भुग्नेचापिदर्शने ॥ ९९ ॥ सस्वनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः । तन्द्रामोहःप्रलापश्चका- सःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १०० ॥ परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्रस्ताङ्ग- तापरम् । ष्ठीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच ॥ १०१ ॥ शिर- सोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोहृदिव्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिराद्द- र्शनमल्पशः ॥ १०२ ॥ कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् । कोठानांश्यावरक्तानांमण्डलानाञ्चदर्शनम् ॥ १०३ ॥ मूकत्वंस्रोत- सांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच । चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वरा- कृतिः ॥ १०४ ॥

इसके उपरान्त अब सन्निपात ज्वरके लक्षणोंको कथन करतेहैं। जैसे क्षणमें दाह और क्षणमें शीतलगने लगे, हड्डियोंमें संधियोंमें तथा शिरमें अत्यन्त पीडा हो, नेत्रोंसे जलका स्राव हो, नेत्र कलुपित लालवर्णके और टेढेसे होजांय एवम् भ्रमितसी दृष्टि होजाय। कानोंमें पीडा होना, और शब्दोंका सुनाई देना, कांटोंसे रुकासा प्रतीत होना, तंद्रा, बेहोशी, बकवाद, खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम, जीभका खरदरा होना, और जलीहुईसी प्रतीत होना संपूर्ण अंगोंका ढीला पडजाना, कफसे मिलेहुए रक्तपित्तका मुखसे निकलना शिरका इधर उधर पटकना प्यास नींदका न आना हृदयमें पीडा होना, पसीना, मूत्र और पुरीष इनका बहुत देरमें और बहुत थोडा निकलना, शरीरका नशेमें पुष्टसा प्रतीत होना, कण्ठका निरन्तर गूंजना, शरीरमें काले अथवा लालवर्णके चकत्ते और मण्डलसे दिखाई देना, बोलना बंद होजाना, स्रोतोंका परिपाक होना, पेटका भारी होना, दोषोंका बहुत देरमें पकना यह सन्निपातज्वरमें लक्षण होतेहैं ॥ ९९-१०४ ॥

इसकी असाध्यता ।

दोषेविबद्धेनष्टेऽग्नौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यःकृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १०५ ॥

जिस सन्निपातमें जठराग्नि नष्ट होजाय और दोष बलवान् हो एवं संपूर्ण लक्षण प्रगट हों वह सन्निपात असाध्य होताहै । इससे विपरीत अर्थात् दोष बलवान् न हों, जठराग्नि नष्ट न हुई हो संपूर्ण लक्षण न हो तो सन्निपातज्वर कष्टसाध्य होताहै॥१०५॥

निजज्वरोंका निर्देश ।

निदानेत्रिविधाप्रोक्तायापृथक्ज्वराकृतिः ।
संसर्गसन्निपातानांतथाचोक्तंस्वलक्षणम् ॥ १०६ ॥

वातज्वरके और पित्तज्वरके तथा कफज्वरके लक्षणोंको निदानस्थानमें कह आयेहैं और द्वन्द्वज तथा सन्निपातोंके लक्षणोंको यहांपर कह दियाहै ॥ १०६ ॥

आगंतुकज्वरोंके ४ प्रकार ।

आगन्तुरष्टमोयस्तुसनिर्दिष्टश्चतुर्विधः ।
अभिघाताभिषङ्गाभ्यामभिचाराभिशापतः ॥ १०७ ॥

आगन्तु जो आठवां ज्वर है वह चार प्रकारका कहाहै । जैसे-अभिघातनिमित्तक, अभिषंगनिमित्तक, अभिचारनिमित्तक और अभिशाप निमित्तक ॥ १०७ ॥

अभिघातज्वरके ल० ।

शस्त्रलोष्टकशाकाष्ठमुष्ट्यरत्नितलद्विजैः । तद्विधैश्चहतेगात्रेज्वरः स्यादभिघातजः ॥ १०८ ॥ तत्राभिघातजोवायुःप्रायोरक्तंप्रदूषयन् । सव्यथाशोफवैवर्ण्यंकरोतिसरुजंज्वरम् ॥ १०९ ॥

शस्त्र, पत्थर, पोरडा, लकडी, मुक्का, थप्पड, दांत आदिके लगनेसे तथा इसी प्रकारके अन्य किसी चोट आदिके लगजानेसे शरीरमें जो ज्वर उत्पन्न होताहै उसको अभिघात निमित्तक कहते हैं । उस चोट आदिके लगनेसे शरीरमे वायु कुपित होकर प्रायः रक्तको दूषित करताहुआ पीडा, व्याकुलता, सूजन, विवर्णता आदि वेदनायुक्त ज्वरको उत्पन्न करताहै । इस ज्वरको अभिघात ज्वर कहते है ॥१०८॥१०९

कामशोकभयक्रोधैरभिषक्तस्ययोज्वरः । सोऽभिषङ्गज्वरोज्ञेयोयश्चभूताभिषङ्गजः ॥ ११० ॥ कामशोकभयाद्वायुःक्रोधात्पित्तंत्रयोमलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्तिभूतसामान्यलक्षणः ॥१११॥ भूताधिकारेव्याख्यातंतदष्टविधलक्षणम् ॥ ११२ ॥

काम, क्रोध, शोक, भय आदिसे व्याकुल होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको अभिषंगज्वर कहतेहैं । और भूतादिकोंके आवेश होनेसे भी अभिषंगज्वर उत्पन्न होजाताहै । काम, क्रोध और भयसे वायु, क्रोधसे पित्त और भूतोंके आवेशसे तीनों दोष कुपित होतेहैं । उन भूतोंके आवेशसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जिन २ भूतादिकोंसे वह उत्पन्न होतेहैं उन्हींके समान उनमें लक्षण होते हैं । इन आठ प्रकारके भूतादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको भूताधिकारमें प्रथम कहचुके हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

विषवृक्षानिलस्पर्शात्तथान्यैर्विषसम्भवैः । अभिषक्तस्यचाप्याहुर्ज्वरमेकेऽभिषङ्गजम् । चिकित्सयाविषघ्न्यैवप्रशमंलभतेनरः ॥ ११३ ॥

विषैले वृक्षोंकी वायुका स्पर्श होनेसे अन्य विषैली वायु लगनेसे ज्वर उत्पन्न होजाताहै । या किसी विषके संसर्गसे जो ज्वर उत्पन्न होताहै उसको भी अभिषंगज्वर कहते हैं । ऐसे ज्वरोंमें विषनाशक चिकित्सा करनेसे ही मनुष्यको शान्ति प्राप्त होती है ॥ ११३ ॥

अभिचार और अभिशापज्वरके ल० ।

अभिचाराभिशापाभ्यांसिद्धानांयःप्रवर्त्तते ।
सन्निपातज्वरोघोरःसविज्ञेयःसुदुःसहः ॥ ११४ ॥

अभिचार अर्थात् किसी मारण मंत्र आदि प्रयोगसे अथवा देवता, सिद्ध, आदिकोंके अभिशापसे जो ज्वर उत्पन्न होताहै वह सन्निपातके लक्षणवाला घोरज्वर दुःसह और दुश्चिकित्स्य होताहै ॥ ११४ ॥

सन्निपातज्वरस्योक्तंलिङ्गंयत्तस्यतत्स्मृतम् ।
चित्तेन्द्रियशरीराणामर्त्तयोऽन्याश्चनैकशः ॥ ११५ ॥

सन्निपातज्वरके जो लक्षण कहचुके हैं वही लक्षण अभिशाप और अभिचारसे उत्पन्न हुए ज्वरमें भी होते हैं तथा मन, इन्द्रिय और शरीरमें अनेक प्रकारकी विचित्र पीडायें होती हैं ॥ ११५ ॥

प्रयोगस्त्वभिचारस्यदृष्ट्वाशापस्यचैवहि ।
स्वयंश्रुत्वानुमानेनलक्ष्यतेप्रशमेनवा ॥ ११६ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुए ज्वरोंको देखकर, सुनकर, अनुमान, और युक्ति द्वारा विचारकर निश्चय करे । अथवा मंत्र तंत्र आदिसे या अन्य बलिदानादि कर्म करनेसे यदि वह शान्त हो तब भी उसको अभिचारादिसे उत्पन्न हुआ जाने ॥ ११६ ॥

वैविध्यादभिचारस्यशापस्यचतदात्मके ।
यथाकर्मप्रयोगेणलक्षणंस्यात्पृथग्विधम् ॥ ११७ ॥

अभिचार और अभिशाप अनेक प्रकारके होतेहैं इसलिये उनके लक्षण और कर्म भी जो २ जिसप्रकार उत्पन्न हुए हों उस उस प्रकारके अलग अलग होते हैं। उनको वैद्य अनुमान और बुद्धिद्वारा निश्चय करे ॥ ११७ ॥

काम शोक और भय ज्वरके लक्षण ।

ध्याननिःश्वासवहुलंलिंगंकामज्वरेस्मृतम् ।
शोकजेवाष्पवहुलंत्रासप्रायंभयज्वरे ॥ ११८ ॥

एकओर ध्यान लगा रहना, श्वास अधिक चलना, यह कामज्वरमें लक्षण होते हैं। शोकज्वरमें-अत्यंत वाष्प (मुखसे आहऐसी फुंकार) निकलती है । भयज्वरमें डर अधिक लगा करताहै ॥ ११८ ॥

क्रोध, भूतावेश तथा विपसे उत्पन्नहुएज्वरके ल० ।

क्रोधजेवहुसंरम्भंभूतावेशेत्वमानुपम् ।
मूर्च्छामोहमदग्लानिभूयिष्ठंविपसम्भवे ॥ ११९ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें संरम्भ (अत्यंत क्रोध और कंप) उत्पन्न होताहै । भूतावेशसे उत्पन्न हुए ज्वरमें अमानुषीय लक्षण प्रगट होते हैं। विपसे उत्पन्न हुए ज्वरमें वेहोशी, मद, और ग्लानिकी अधिकता होती है ॥ ११९ ॥

इनज्वरोंमें विशेष वक्तव्य ।

केपाञ्चिदेषांलिंगानांसन्तापोजायतेपुरः । पश्चात्तुल्यन्तुकेपाञ्चिदेपुकामज्वरादिपु ॥ १२० ॥ कामादिजानामुद्दिष्टंज्वराणांयद्विशेपणम् । कामादिजानांरोगाणामन्येषामपितत्स्मृतम् ॥ १२१ ॥

इन कामज्वर आदिकोंमें किसी २ मनुष्यको तो ज्वरके प्रथम ही संताप और इन लक्षणोंका आविर्भाव होजाताहै और किसी २ मनुष्यको ज्वरके पीछे या किसीको साथ ही ये लक्षण प्रगट होते हैं । कामादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरोंमें जो उनके लक्षण कहेगये हैं वह कामादिकोंसे उत्पन्न हुए अन्य रोगोंमें भी जानने ॥ १२० ॥१२१॥

आगंतुजज्वरोंकी भेदता ।

तेपूर्वंकेवलाःपश्चान्निजैर्व्यामिश्रलक्षणाः ।
हेत्वौपधिविशिष्टाश्च भवन्त्यागन्तवोज्वराः ॥ १२२ ॥

मनस्यभिद्रुतेपूर्वंकामाद्यैर्नतथाबलम्।
ज्वरःप्राप्नोतिकामाद्यैर्मनोयावन्नदूष्यति ॥ १२३॥

आगन्तुज्वर पहिले तो केवल आगन्तुज लक्षणोंसे संयुक्त होते हैं और आगन्तुज कहेजाते हैं फिर वह वातादिकोंसे संयुक्त होनेपर निज रोगोंके लक्षणोंसे भी सम्मिलित होजातेहैं । आगन्तुक ज्वरोंके हेतु अर्थात् कारण और चिकित्सा निज ज्वरोंके समान नहीं होती । आगन्तुक ज्वरोंमें पहिले मनमें कामादि व्यथा उत्पन्न होकर पीछे ज्वर उत्पन्न होताहै । नित्य ज्वरोंके समान वह ज्वर शरीरमें पहिले बल नहीं पाता । जबतक मन दूषित नहीं होता तबतक कामादि ज्वर बलको प्राप्त नहीं होते ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

ज्वरोंकी संप्राप्ति ।

संसृष्टाःसन्निपतिताःपृथग्वाकुपितामलाः। रसाख्यंधातुमन्वेत्यपक्तिस्थानान्निरस्य च ॥ १२४ ॥ स्वेनतेनोष्मणाचैवकृत्वादेहोष्मणेबलम्। स्रोतांसिरुद्धासम्प्राप्ताःकेवलंदेहमुल्बणाः ॥ १२५ ॥ सन्तापमधिकंदेहेजनयन्तिनरस्तदा। भवत्यत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरितस्तेनचोच्यते ॥ १२६ ॥

संपूर्ण वातादि दोष अलग २ अथवा दो दो मिलकर या तीनों जब अपने कारणोंसे कुपित होतेहैं तो आमाशयमें स्थित होकर रसनामक धातुके साथ मिलजातेहैं फिर पाचकअग्निको उसके स्थानसे बाहर निकालकर उसकी गर्मीसे संपूर्ण देहको गर्म कर देतेहैं । और स्वयं वृद्धिको प्राप्त हुए स्रोतोंको रोक देतेहैं तब स्रोतोंके रुकजानेसे वह अपने स्थानसे निकलीहुई अग्नि मनुष्योंके शरीरमें अत्यंत संतापको उत्पन्नकर देतीहै । उससे मनुष्यका संपूर्ण शरीर तपाहुआ होनेपर इस मनुष्यको ज्वर चढा ऐसा कहाजाताहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदंनानाधिगच्छति।
स्वस्थानात्प्रच्युच्यतेचाग्नौप्रायशस्तरुणेज्वरे ॥ १२७ ॥

स्रोतोंके रुकेरहनेसे और जठराग्निके अपने स्थानसे अलग होजानेसे तरुणज्वरमें प्रायः मनुष्यको पसीना नहीं आता ॥ १२७ ॥

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच । हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्राचालस्यमेवच ॥ १२८ ॥ ज्वरोऽविसर्गी बलवान्दोषाणामप्रवर्त्त-

नम् । लालाप्रसेकोहृल्लासोक्षुन्नाशोऽविशदंमुखम् ॥१२९॥ स्तब्धसुप्तगुरुत्वञ्चगात्राणांबहुमूत्रता । नविड्जीर्णानचग्लानिर्ज्वरस्यामस्यलक्षणम् ॥ १३० ॥

अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, पेट्का भारीपन, हृदयकी अशुद्धि, तंद्रा, आलस्य, ज्वरका वेग रहना और बलवान् होना, दोषोंका न निकलना, मुखसे लार गिरना, जी मचलाना, भूख न लगना, मुख लाबसे लिपासा रहना, शरीर जकडा हुआसा होना, अंगोंका सोना, शरीरमें भारीपन, पेशाब अधिक आना, मलका न पक्ना यह आमज्वरके लक्षण हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥

निरामज्वरलक्षण ।

क्षुत्क्षामतालघुत्वञ्चगात्राणांज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहोनिरामज्वरलक्षणम् ॥ १३१ ॥

क्षुधा लगना, शरीरका हलका होना, ज्वरका नरम पडजाना एवं शरीर और अंगोंका नरम होना और पसीनायुक्त होना, दोषोंका निकलना, शरीरमें उत्साह होना यह निराम (पकेहुए) ज्वरके लक्षण हैं ॥ १३१ ॥

नवज्वरमें वर्जित वस्तु ।

नवज्वरेदिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम् ।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्चविवर्जयेत् ॥ १३२ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नानकरना, तेल आदि मलना, अन्न, मैथुन, क्रोध, अधिक वायुका सेवन, परिश्रम और ज्वरनाशक उत्कट क्काथोंका पीना इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ १३२ ॥

लंघनका निर्देश ।

ज्वरेलंघनमेवादावुपदिष्टमृतेज्वरात् ।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ १३३ ॥

ज्वरके आदिमें लंघन करना ही हितकर कहाहै । परन्तु क्षयज्वर, वातज्वर, क्रोधज्वर, कामज्वर और शोकज्वरमें लंघन नहीं करना चाहिये ॥ १३३ ॥

लंघनके गुण ।

लंघनेनक्षयंनीतेदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वंलघुत्वञ्चक्षुच्चैवास्योपजायते ॥ १३४ ॥

लंघनके करनेसे दोष क्षय होकर चैतन्य होजाताहै। फिर मनुष्यका ज्वर दूर होजाताहै। शरीर हलका होजाताहै और भूख लगने लगतीहै ॥ १३४ ॥

अधिक लंघन करनेका दोष।

प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत्।
वलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ १३५ ॥

ज्वरवाले मनुष्यको लंघन इतना कराना चाहिये जिससे उसके प्राणोंको वाधा न हो क्योंकि मनुष्यकी आरोग्यता प्राणबलके ही आश्रय है और उस आरोग्यताके लिये ही चिकित्साका प्रयोजन है ॥ १३५ ॥

तरुणज्वरमें निर्देश।

लंघनंस्वेदनंकालोयवाग्वस्तिक्तकोरसः।
पाचनान्यविपक्कानां दोषाणांतरुणेज्वरे ॥ १३६ ॥

तरुणज्वरमें लंघन (उपवास), पसीनादेना (वालुकास्वेद आदि), समय, यवागु, तिक्तरस तथा अन्य पाचन द्रव्य यह सब विना पके दोषोंको पाचन करनेवाले हैं ॥ १३६ ॥

ज्वरमें जलके नियम।

तृष्यतेसलिलंचोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे। मद्योत्थेपैत्तिकेवाथशीतं-लंतिक्तकैःशृतम् ॥ १३७ ॥ दीपनंपाचनंचैवज्वरघ्नमुभयंहितत्। स्रोतसांशोधनंवल्यंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥ १३८ ॥

वायु और कफके ज्वरमें प्यास लगनेपर गरम जल पीनेको देना चाहिये, मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वर और पित्तके ज्वरमें तिक्तद्रव्योंसे सिद्धकिया जल शीतलकर पीनेको देना चाहिये। यह दोनों प्रकारके जल, दीपन, पाचन और ज्वरको नष्ट करनेवाले हैं तथा स्रोतोंको शुद्ध करनेवाले वलकारक, रुचिकारक, पसीनेके लानेवाले और कल्याणकारी होतेहैं ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

मुस्तकादिसे शृत जल।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः।
शृतशीतंजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १३९ ॥

नागरमोथा, पापडा, खस, चंदन, नेत्रवाला और सोंठ इनसे उबाले जलको शीतल कर ज्वरवाले मनुष्यको प्यासकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ १३९ ॥

ज्वरमें वमनका योग।

कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयस्थितान्।
बुद्ध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानांवमनैर्हरेत्॥ १४०॥

जिस ज्वरमें कफ प्रधान हो और दोष उत्क्लेशित होकर वमन द्वारा निकलना चाहते हों तथा वह दोष उखडकर आमाशयमें स्थित हों ऐसे समय यदि वैद्य रोगी-को वमन कराने योग्य देखे और वसन्तऋतु आदि वमनका काल उपस्थित हो तो विचारपूर्वक उन ज्वरकारक दोषोंको वमन द्वारा निकाल डाले॥ १४०॥

तरुणज्वरमें वमनके दोष।

अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरुणेज्वरे।
हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहञ्चजनयेद्भृशम्॥ १४१॥

जिस मनुष्यके दोष निकलनेके लिये उत्क्लेशित होकर उपस्थित न हो और ज्वर कच्चा हो, ऐसे समय यदि वमन करायाजाय तो हृद्रोग, अफारा, वेहोशी इनको प्रगटकर देताहै इसलिये तरुणज्वरमें वमन नहीं कराना चाहिये॥ १४१॥

सर्वदेहानुगाःसामाधातुस्थादुःखनिर्हराः।
दोषाःफलेभ्यआमेभ्यःस्वरसाइवसात्ययाः॥ १४२॥

जैसे कच्चे फलमेंसे रस निकालने लगें तो वह फल सर्वथा नष्ट होजाताहै उसी-प्रकार कच्चे ज्वरमें दोष कच्चे होनेसे संपूर्ण देह और धातुओंमें व्यापक होते हैं। उस समय निकाले जानेसे शरीरमे अनेक प्रकारके दुःख उत्पन्न करतेहैं॥ १४२॥

यवागूका निर्देश और गुण।

वमितंलंघितंकालेयवागूभिरुपाचरेत्। यथास्वौषधसिद्धाभिर्मण्ड-पूर्वाभिरादितः॥ १४३॥ यावज्ज्वरमृदूभावात्षडहंवाविचक्षणः। तस्याग्निर्दीप्यतेताभिःसमिद्भिरिवपावकः॥ १४४॥ ताश्चभेषज-संयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः। वातमूत्रपुरीषाणांदोषाणाञ्चानुलो-मनाः॥ १४५॥

वमन करायेहुए अथवा लंघन किये मनुष्यको उचित समयपर चतुर वैद्य यवागू पिलावे। वह यवागू दोषानुसार औषधियों द्वारा सिद्ध की हुई होनी चाहिये और इसीप्रकार औषधियोंसे सिद्धकिया समयपर चावलोंका अथवा मूंगका मण्ड (पीठ) पिलावे। जबतक ज्वर नरमी न पकडे अथवा छः दिनपर्यन्त बुद्धिमान् वैद्य उचित

द्रव्योंसे सिद्ध किया यवागू पान करावे । क्योंकि यवागूके पान करनेसे मनुष्यकी अग्नि इसप्रकार चैतन्य होजातीहै जैसे लकडियोंके लगानेसे अग्नि चैतन्य होजातीहै यवागू औषधियोंके संयोगसे और हल्की होनेसे अग्निको दीपन करनेवाली होतीहै और अधोवात मूत्र, पुरीष तथा दोषोंको अनुलोमन करतीहै ॥ १४३-१४५ ॥

स्वेदनायद्रवौष्णत्वाद्द्रवत्वात्तृट्प्रशान्तये ।
आहारभावात्प्राणायसरत्वाल्लाघवायच ॥ १४६ ॥

द्रव और उष्ण होनेसे स्वेदन करतीहै । पतला होनेसे प्यासको शान्त करती है । आहारभाव होनेसे प्राणोंकी रक्षा करतीहै । सर होनेसे शरीरमें लघुताको उत्पन्न करतीहै ॥ १४६ ॥

ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात्पेयाभिरादितः ।
ज्वराानुपचरेद्धीमान्ऋतेमद्यसमुत्थितात् ॥ १४७ ॥

पेया (यवागू) ज्वरको नष्ट करनेवाली है और सब प्रकार सात्म्य होतीहै इसलिये ज्वरके उपचारमें लंघनके अनन्तर यवागू पान कराना चाहिये । परन्तु मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें यवागू न पिलावे ॥ १४७ ॥

यवागूका निषेध ।

मदात्ययेमद्यनित्येग्रीष्मेपित्तकफाधिके ।
ऊर्द्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥ १४८ ॥

मद्यसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, नित्य मद्यसेवन करनेवालेको, ग्रीष्मऋतुमें, पित्त, कफ प्रधान ज्वरमें और ऊर्द्धगत रक्तपित्तवाले ज्वरमें यवागू पिलाना हित नहीं है १४८

ज्वरमें तर्पण ।

तत्रतर्पणमेवाग्रेप्रयोज्यंलाजसक्तुभिः ।
ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तंसमधुशर्करम् ॥ १४९ ॥

ऐसे ज्वरोंमें धानोंकी खीलोंके सत्तुओंसे अथवा ज्वरनाशक फलोंके रससे बनाये हुए तर्पणोंको शहत और मिसरी मिला पिलाना चाहिये ॥ १४९ ॥

द्राक्षादि तर्पण ।

द्राक्षादाडिमखर्ज्जूरपियालैःसपरूपकैः ।
तर्पणार्हेषुकर्त्तव्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ १५० ॥

मुनक्का, अनार, खजूर, चिरौंजी, फालसा, इन सबसे बनायाहुआ तर्पण (शरबत) तर्पणयोग्य ज्वरोंमें ज्वरकी शान्तिके लिये पिलाना चाहिये ॥ १५० ॥

तर्पणके अनन्तर यूष ।

ततःसात्म्यवलापेक्षीभोजयेज्जीर्णतर्पणम् ।
तनुनामुद्गयूपेणजाङ्गलानांरसेनवा ॥ १५१ ॥

तर्पणके अनन्तर जब तर्पण पचजाय तो उसके सात्म्य और वल विचारकर थोडेसे मूंगोंका यूप अथवा जांगल जीवोंका मांसरस पीनेको देवे ॥ १५१ ॥

अन्नकालमें दंतधावन ।

अन्नकालेपुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् । योऽस्यवक्त्ररसस्तस्माद्विपरीतंप्रियश्चयत् ॥१५२॥ तदस्यमुखवैशद्यंप्रकांक्षाञ्चान्नपानयोः । धत्तेरसविशेपाणामभिज्ञत्वंकरोतियत् ॥ १५३ ॥ विशोध्यद्रुमशाखाग्रैरास्यंप्रक्षाल्यचासकृत् । मस्त्विक्षुरसमद्याद्यैर्यथाहारमवाप्नुयात् ॥ १५४ ॥

फिर भोजनके समय इस मनुष्यको ऐसी औषधीकी शाखा लेकर दांतन करावे जो रोगीके मुखके रससे विपरीत रसवाली हो और रोगीको अप्रिय न हो, ऐसी दांतन करानेसे रोगीका मुख स्वच्छ होजाताहै और अन्नपानकी रुचि उत्पन्न होतीहै। इसप्रकार दांतनके करनेवाले मनुष्यको यथोचित रीतिपर रसोंका स्वाद आने लगजाताहै इसलिये उचित वृक्षकी शाखाके अग्रभागकी उत्तम नरम कूंची बनाकर मुखके मैलको शोधन करे और बारबार जलसे कुल्ले करडाले । जब मुख स्वच्छ होजाय फिर इसको मस्तु (मण्ड, पीछ अथवा दहीका जल), यवागू, इक्षुरस अथवा मद्य आदिक जो जिससमय उचित हो वैसा आहार देवे ॥ १५२-१५४ ॥

अन्य निर्देश ।

पाचनीयंशमनीयंकपायंपाययेत्ततम् ।
ज्वरितंपडहेऽतीतेलघ्वन्नंप्रतिभोजयेत् ॥ १५५ ॥

छः दिन व्यतीतहोनेके अनन्तर ज्वरवाले मनुष्यको पाचन और शमनकारक कपायोंको पिलावे । एवं हलका और थोडा भोजन करावे ॥ १५५ ॥

स्तभ्यन्तेनविपच्यन्तेकुर्वन्तिविपमज्वरम् ।
दोपावद्धाःकपायेणस्तम्भित्वात्तरुणेज्वरे ॥ १५६ ॥

तरुणज्वरमें दोप वंधेहुए और स्तंभित होतेहैं । उस समय शमनीय कपाय देनेमे विपाकको प्राप्त न होकर ज्वरको विपमगतिवाला बना देतेहैं इसलिये छः दिनतक शमनीय कपाय देना उचित नहीं ॥ १५६ ॥

कैसे कषाय तरुणज्वरमें न देवे ।

नतुकल्पनमुद्दिश्यकषायःप्रतिषिध्यते ।
यःकषायःकषायःस्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥ १५७ ॥

तरुणज्वरमें कसैले क्वाथके देनेका निषेध है । मधुर आदि दोषोंको परिपाक करनेवाले क्वाथोंका निषेध नहीं है ॥ १५७ ॥

ज्वरमें अन्न ।

यूषैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ।
दशाहंतावदश्नीयाल्लघ्वन्नंज्वरशान्तये ॥ १५८ ॥

छः दिनसे उपरान्त दश दिनतक मूंग आदिका यूष खटाईके बिना अथवा इमली आदि उचित खटाईके साथ अथवा हितकारक जांगल मांसरसोंके साथ ज्वरकी शान्तिके लिये हितकारक हलके अन्नका भोजन करावे ॥ १५८ ॥

घृतपानका समय ।

अतऊर्द्ध्वंकफेमन्देवातपित्तोत्तरेज्वरे ।
परिपक्केषुदोषेषुसर्पिष्पानंयथामृतम् ॥ १५९ ॥

दश दिनके अनन्तर जब कफ क्षीण होजाय और वात पित्तकी अधिकता हो एवं सब दोष पकचुके हों ऐसे समय औषधियोंसे सिद्धकिया घृत देना ज्वरवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करताहै ॥ १५९ ॥

घृतका निषेध ।

निर्दशाहमपिज्ञात्वाकफोत्तरमलङ्घितम् ।
नसर्पिःपाययेद्वैद्यःकषायैस्तमुपाचरेत् ॥ १६० ॥

यदि ज्वरमें दश दिन व्यतीत न हुए हों अथवा इसके उपरांत भी कफकी अधिकता हो और लंघन द्वारा दोष क्षीण न किये गये हों ऐसे समय वैद्य घृत न पिलावे किन्तु कषायों द्वारा रोगकी शान्ति करे ॥ १६० ॥

मांसरस ।

यावल्लघुत्वादशनंदद्यान्मांसरसेनच ।
परंह्यलंदोषहरंपरंतच्चबलप्रदम् ॥ १६१ ॥

मांसाहारी मनुष्यको जबतक दोष क्षीण होकर शरीरमें हलकापन न हो तबतक ज्वरमें हितमांसरसोंका पान करावे । ऐसा करनेसे मांसरस दोषोंको नष्टकर बलको देताहै । परन्तु यह मांसरस ज्वरनाशक औषधियों द्वारा सिद्ध होना चाहिये ॥१६१॥

ज्वरमें दूधका निर्देश।

दाहतृष्णापरीतस्यवातपित्तोत्तरंज्वरम् ।

वद्धप्रच्युतदोषंवानिरामंपयसाजयेत् ॥ १६२ ॥

जिस ज्वरमें वातपित्तकी अधिकता हो, दाह तथा प्यासकी अधिकता हो, दोष वद्ध हों अथवा दोष पककर निकल गयेहों ऐसे ज्वरको ज्वरनाशक दूधोंसे जीतना चाहिये ॥ १६२ ॥

ज्वरोंमें विरेचानोंदिका निर्देश।

क्रियाभिराभिःप्रशमंनप्रयातियदाज्वरः ।

अक्षीणवलमांसस्यशमयेत्तंविरेचनैः ॥ १६३ ॥

यदि इन उपरोक्त क्रियाओंद्वारा भी ज्वर शान्तिको प्राप्त न हो तो जिस मनुष्यका वल और मांस क्षीण न हुआ हो ऐसे मनुष्यके ज्वरको ज्वरनाशक विरेचनों द्वारा शान्त करे ॥ १६३ ॥

बस्तिकर्मका निर्देश।

ज्वरक्षीणस्यनहितंवमनंनविरेचनम् । कामन्तुपयसातस्यनिरूहै-र्वाहरेन्मलान् ॥ १६४ ॥ निरूहोवलमग्निश्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम् । परिपक्केषुदोषेषुप्रयुक्तःशीघ्रमावहेत् ॥ १६५ ॥

जो मनुष्य क्षीण होगया हो ऐसे मनुष्यके ज्वरमें वमन, विरेचन कराना हित नहीं है। ज्वरसे क्षीण मनुष्यके दोषोंको औषधियोंसे सिद्धकिये दूधके साथ निरूहण-वस्ति द्वारा दोषोंको हरण करे क्योंकि निरूहणवस्ति वलको देनेवाली है, अग्निको वढाती है, ज्वरको नष्ट करतीहै, शरीरमें आनन्द और रुचिको उत्पन्न करतीहै एवं पकेहुए दोषोंको शीघ्र निकाल डालतीहै ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

पित्तंवाकफपित्तंवापित्ताशयगतंहरेत् ।

स्रंसनंत्रीन्मलान्वस्तिर्हरेत्पक्वाशयस्थितान् ॥ १६६ ॥

पित्ताशयमें प्राप्त हुए पित्तको अथवा पित्तकफको या पक्वाशयमें प्राप्त हुए तीनों दोषोंको स्रंसनवस्ति शीघ्र निकाल डालती है ॥ १६६ ॥

ज्वरेपुराणेसंक्षीणेकफपित्तेदृढाग्नये ।

रूक्षवद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुवासनम् ॥ १६७ ॥

पुराने ज्वरमें तथा कफ पित्तके क्षीण होनेपर रूक्ष अथवा वद्धमलवाले मनुष्यको अग्निके वलवान् करनेके लिये अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ १६७ ॥

शिरोविरेचनका निर्देश।

गौरवेशिरसःशूलेविबद्धेष्विन्द्रियेषुच।
जीर्णज्वरेरुचिकरंकुर्य्यान्मूर्द्धविरेचनम् ॥ १६८ ॥

इसीप्रकार इन्द्रियोंके बद्ध होनेपर शिर भारी तथा शूलयुक्त होनेपर जीर्णज्वरमें रुचिकारक नस्यद्वारा शिरको विरेचन करना चाहिये ॥ १६८ ॥

अभ्यंगादि अन्य अनेकज्वरनाशक चिकित्सा।

अभ्यङ्गांश्चप्रदेहांश्चसस्नेहान्सावगाहनान् । विभज्यशीतोष्णकृतान्कुर्य्याज्जीर्णज्वरेभिषक् ॥ १६९ ॥ तैराशुहिशमंयातिबहिर्मार्गगतोज्वरः। लभन्तेसुखमङ्गानिबलंवर्णश्चवर्द्धते ॥ १७० ॥

वैद्यको उचित है कि, जीर्णज्वरमें शीतल अथवा उष्ण जैसे उचित समझे उस प्रकारके अभ्यंग, (तैल आदि मालिश) प्रदेह (लेपन) इनका औषधियोंसे सिद्ध किये हुए चिकने द्रव्यों (लाक्षादि तैल, आदि) से उपयोग करे। इसीप्रकार शीत अथवा उष्ण अवगाहन (औषधियोंसे सिद्ध किये जलसे स्नान) करावें। इनके करनेसे बहिर्मार्गगत ज्वर शीघ्र शान्त होजाताहै और अंगोंको सुख प्राप्त होताहै एवं बलवर्णकी वृद्धि होती है ॥ १६९ ॥ १७० ॥

धूपनाञ्जनयोगैश्चयान्तिजीर्णज्वराःशमम् । त्वङ्मात्रशेषायेषाञ्च भवत्यागन्तुरन्वयः ॥ १७१ ॥ इतिक्रियाक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः ॥ १७२ ॥

जिन जीर्णज्वरोंमें केवल त्वचामात्र शेष रहगई हो वह ज्वर औषध सिद्ध तैलादिकोंकी मालिशसे और धूपन तथा अंजन आदिकोंके योगसे शान्तिको प्राप्त होते हैं। तथा आगन्तुक ज्वर भी धूपन और अंजनोंसे शान्त हो सकतेहैं। इस प्रकार ज्वरनाशक सिद्ध क्रियाके क्रमका उपदेश किया गयाहै ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

ज्वरनाशक द्रव्य।

येषान्त्वेपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्द्धमतःशृणु ॥ १७३ ॥

जिन द्रव्योंसे उपरोक्त चिकित्साक्रमका निर्देश कियाहै अर्थात् जिन द्रव्योंद्वारा चिकित्सा की जाती है अब उनको श्रवण करो ॥ १७३ ॥

ज्वरमें अन्न।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह ।
यवाग्वोदनलाजार्थेज्वरितानांज्वरापहाः ॥ १७४ ॥

ज्वरवालोंके लिये लाल शालि आदिक शुद्ध और पुराने चावल तथा साठी चावल, यवागू, भात और खीलोंके लिये हित तथा ज्वरनाशक है ॥ १७४ ॥

ज्वरनाशक खटाई ।

अम्लाभिलाषीतामेवदाडिमाम्लांसनागराम् ।
सृष्टविट्पैत्तिकोवाथशीतामधुयुतांपिबेत् ॥ १७५ ॥

खटाई खानेकी इच्छावाले ज्वररोगीको अनारकी खटाई सोंठयुक्त कर देनी चाहिये । जिस रोगीको पित्तका ज्वर हो और मल पतला होकर निकलता हो उसको खट्टे अनारके रसमे जल और शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ १७५ ॥

ज्वरनाशक अनेक पेया ।

लाजपेयांसुखजरांपिप्पलीनागरैःश्रृताम् ।
पिबेज्ज्वरीज्वरहरांक्षुद्वानल्पाग्निरादितः ॥ १७६ ॥

थोडी अग्निवाले क्षुधायुक्त ज्वर रोगीको धानोंकी खीलोंकी पेया पीपल और सोंठका चूर्ण बुरकाकर पिलानेसे ज्वरको नष्ट करतीहै और सुखपूर्वक पच जातीहै १७६

पेयांवारक्तशालीनांपार्श्ववस्तिशिरोरुजि ।
श्वदंष्ट्राकण्टकारिभ्यांसिद्धांज्वरहरांपिबेत् ॥ १७७ ॥

जिस मनुष्यके शिरमें वस्तिमें अथवा पसलीमें पीडा हो उसको गोखरू कटेलीके साथ सिद्ध की हुई लाल चावलोंकी पेया देनी चाहिये ॥ १७७ ॥

ज्वरातिसारीपेयांवापिबेत्साम्लांश्रृतांनरः ।
पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ॥ १७८ ॥

ज्वरातिसारवाले रोगीको पृश्निपर्णी, खरैटी, बेलगिर, सोंठ, नीलोफर और धनियेसे सिद्ध की हुई पेया किंचित् अनारकी खटाईसे भावित की हुई पिलानी चाहिये ॥ १७८ ॥

श्रृतांविदारीगन्धाद्यैर्दीपनींस्वेदनींनरः ।
कासीश्वासीचहिक्कीचयवागूंज्वरितःपिबेत् ॥ १७९ ॥

खांसी, हिचकी, श्वास, तथा ज्वरके उपद्रव युक्त ज्वरमें विदारी गंधादि गणमे सिद्ध की हुई दीपनकर्त्ता और स्वेदकारक पेया पीनेको देनी चाहिये ॥ १७९ ॥

विबद्धवर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैःश्रृताम् ।
सर्पिष्मतींपिबेत्पेयांज्वरीदोषानुलोमनीम् ॥ १८० ॥

जिस ज्वरवाले मनुष्यका दस्त साफ न उतरता हो उसको पीपल और आँवलोंके साथ सिद्ध की हुई यवोंकी पेयाको घृतयुक्त कर पिलावे ॥ १८० ॥

कोष्ठेविवद्धेसरुजिपिवेत्पेयांशृतांज्वरी ।
मृद्वीकापिप्पलीमूलचव्यामलकनागरैः ॥ १८१ ॥

जिस ज्वरवालेका कोष्ठ बद्ध हो तथा पीडायुक्त हो उसको मुनक्का, पीपलामूल, चव्य, आँवले और सोंठके साथ सिद्ध की हुई शाली चावलोंकी पेया पिलाना चाहिये ॥ १८१ ॥

पिवेत्सविल्वांपेयांवाज्वरेसपरिकर्त्तिके ।
वलावृक्षाम्लकोलाम्लकलशीधावनीशृताम् ॥ १८२ ॥

जिस मनुष्यको पेचिस अथवा पेटमें कतरनेकीसी पीडायुक्त ज्वर हो उसको वेलगिर, वला, तंतडीक, वेरका चूर्ण, पृश्निपर्णी और शालपर्णीसे सिद्ध की हुई पेया पिलावे ॥ १८२ ॥

अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्त्तःपिवेत्पेयांसशर्कराम् ।
नागरामलकैःसिद्धांघृतभृष्टांज्वरापहाम् ॥ १८३ ॥

जिस ज्वरवाले रोगीको पसीना न आता हो और निद्रा नाश होगई हो तथा प्यास अधिक लगती हो उसको सोंठ और आमलोंके योगसे सिद्ध की हुई पेयाको घृतमें छौंक तथा मिसरी मिलाकर पिलावे । यह पेया ज्वर और प्यास आदि नष्ट करतीहै ॥ १८३ ॥

ज्वरमें यूष ।

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान् ।
यूषार्थेयूषसात्म्यानांज्वरितानांप्रकल्पयेत् ॥ १८४ ॥

ज्वरवाले रोगीको जब भोजनकी इच्छा हो तो उसको मूंग, मसूर, चना, कुल्थी और मोठ आदि द्रव्योंमें जो जिसके लिये सात्म्य हो उसका यूष बनाकर देवे ॥ १८४ ॥

ज्वरनाशक शाक ।

पटोलपत्रंसफलंकुलकंपापचेलिकाम् ।
कर्कोटकंकटिल्लश्चविद्याच्छाकंज्वरेहितम् ॥ १८५ ॥

ज्वरमें पटोलपत्र, पंडोल, परवल, पाढ, कर्कोटक, (ककोडा, कोढ, करेला) करेला यह शाक ज्वरवाले रोगीको हितकारक है ॥ १८५ ॥

ज्वरमें मांस ।

लावान्कपिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान् । कुरंगान्कालपुच्छांश्च हरिणान्पृषताञ्छशान् ॥ १८६ ॥ प्रदद्यान्मांससात्म्याय ज्वरिताय ज्वरापहान् । ईषदम्लाननम्लान्वा रसान्काले विचक्षणः ॥१८७॥ कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकान् । गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ १८८ ॥

मांसाहारी ज्वररोगियोंको लवा, कपिंजल, एण, चकोर, उपचक्र (चकवा), कुरंग, कालपुच्छ, हरिण, पृषत् और खरगोश यह सब मांस खानेवाले मनुष्योंको किंचित अम्लरस युक्तकरके देवे । कोई २ चिकित्सक, मुर्गा, मोर, तीतर, बगुला, वत्तक इनको भारी और गर्म होनेके कारण ज्वरमे देना बहुत बुरा मानते हैं ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ।
भिषङ्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित् ॥ १८९ ॥

लंघन करनेसे यदि ज्वरमे वायुका बल अधिक होजाय तो उनको मात्रा, विकल्प और कालके जाननेवाला वैद्य औषधियोंसे सिद्ध किया मांसरस पान करावे । अथवा अन्य उचित पेयाका पान करावे ॥ १८९ ॥

ज्वरमें अन्य उपदेश ।

घर्माम्बु चानुपानार्थं तृषिताय प्रदापयेत् ।
मद्यं वा मद्यसात्म्याय यथादोषं यथाबलम् ॥ १९० ॥

ज्वररोगी आहारके अनन्तर यदि जल पीना चाहे तो उसको गर्म जल पिलाना चाहिये । एवं मद्य पीनेवालेको थोडासा विचारपूर्वक मद्य पिलावे ॥ १९० ॥

गुरूष्णस्निग्धमधुरकषायांश्च नवज्वरे । आहारान्दोषपक्त्यर्थं प्रायशः परिवर्जयेत् ॥१९१॥ अनुपानक्रमः सिद्धो ज्वरे यः सम्प्रकाशितः । अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यन्ते कषाया ज्वरनाशनाः ॥ १९२ ॥

नवीन ज्वरमें-भारी, चिकने, मधुर, कषाय आहारोंको दोषके परिपाक होनेके लिये प्रायः त्यागदेना चाहिये अर्थात् नवज्वरोंमें इन रसोंवाले आहारका भोजन नहीं करना चाहिये इसप्रकार ज्वरनाशक सिद्ध अनुपान क्रमका वर्णन कियागयाहै । अब ज्वरनाशक क्वाथोंका वर्णन करतेहैं ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

ज्वरनाशक अनेक क्वाथ ।

पाक्यंशीतकषायंवामुस्तपर्पटकंपिवेत् । सनागरंपर्पटकंपिवेद्वासदुरालभम् ॥ १९३ ॥ किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचीविश्वभेषजम् । पाठासुशीरंसोदीच्यंपिवेद्वाज्वरशान्तये ॥ १९४ ॥ ज्वरघ्नादीपनाश्चैतेकषायादोषपाचनाः । तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनाः १९५

पित्तपापडा और नागरमोथेके क्वाथको अथवा सोंठ, पित्तपापडा और यवासाके क्वाथको पकाकर या शीतकषाय करके पीवे । अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाठा, खस और सुगंधवालाका क्वाथ बनाकर पीवे । यह ३ क्वाथ ज्वरको नाश करनेवाले तथा दीपन, दोषोंको पाचन करनेवाले, तृषानाशक, अरुचिनाशक एवं मुखकी विरसताको दूर करनेवालेहैं ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

विषमज्वरनाशक पांच क्वाथ ।

कलिंगकाःपटोलस्यपत्रंकटुकरोहिणी । पटोलः शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । निम्बःपटोलस्त्रिफलामृद्वीकामुस्तवत्सकाः॥ ॥ १९६ ॥ किराततिक्तममृताचन्दनंविश्वभेषजम् । गुडूच्यामलकंमुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः ॥ १९७ ॥ कषायाःशमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधाञ्ज्वरान् । सन्ततंसततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥१९८॥

इन्द्रयव, पटोलपत्र और कुटकीका क्वाथ संततज्वरको नष्ट करताहै । पटोलपत्र, शारिवा, नागरमोथा, पाढ और कुटकीका क्वाथ, सततज्वरको नष्ट करता है । नीमका छिलका, पटोलपत्र, हरड, बहेडे, आमले, मुनक्का, नागरमोथा और इन्द्रयव इनका क्वाथ अन्येद्यु अर्थात् इकतरा ज्वरको नष्ट करताहै । चिरायता, गिलोय, लाल चंदन और सोंठका क्वाथ तृतीयक ज्वरको नष्ट करताहै । गिलोय, आमले, नागरमोथा इनका क्वाथ चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करताहै इसप्रकार यह आधे २ श्लोकमें कहे ५ क्वाथ पांच प्रकारके विषमज्वरको शीघ्र शान्त करनेवाले कहे हैं ॥ १९६ ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

वत्सकादि क्वाथ ।

वत्सकारग्वधंपाठांषड्ग्रन्थांकटुरोहिणीम् । मूर्वांसातिविषांनिम्बं पटोलंधन्वयासकम् ॥ १९९ ॥ वचामुस्तमुशीराणिमधुकंत्रिफलां बलाम् । पाक्यंशीतकषायंवापिवेज्ज्वरहरंनरः ॥ २०० ॥

इन्द्रयव, अमलतास, पाठा, पीपलामूल, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, पटोलपत्र, जवासा, वच, नागरमोथा, खस, मुलहठी, त्रिफला, वला इनका पकाया हुआ क्वाथ अथवा शीतल क्वाथ यदि मनुष्य पीवे तो ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ १९९ ॥ २०० ॥

शीतकषाय ।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकाश्मर्याणिपरूपकम् । त्रायमाणासुशीराणि त्रिफलांकटुरोहिणीम् ॥ २०१ ॥ पीत्वानिशिस्थितंजन्तुर्ज्वरात्क्षी- घ्रंविमुच्यते ॥ २०२ ॥

मुलहठी, नागरमोथा, मुनक्का, कुंभेर, फालसा, त्रायमाण, खस, त्रिफला और कुटकीका शीतकषाय (रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर) पीनेसे मनुष्योंका ज्वर शीघ्र दूर होजाताहै ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

सन्निपातज्वरनाशक गण ।

बृहत्यौवत्सकंमुस्तंदेवदारुमहौषधम् । कोलवल्लीचयोगोऽयंसन्निपा- तज्वरापहः । जात्यामलकमुस्तानितद्वच्छन्वयवासकम् ॥ २०३ ॥

दोनों कटेली, इन्द्रयव, नागरमोथा, देवदारु, सोंठ और चव्यका क्वाथ वनाकर पीनेसे सन्निपातज्वर दूर होताहै । तथा जायफल, आमले और नागरमोथेका क्वाथ. पीनेसे सन्निपातज्वरको नष्ट करताहै ॥ २०३ ॥

कफ पित्तज्वर नाशक ।

विवद्धदोषोज्वरितःकषायंसगुडंपिवेत् । त्रिफलांत्रायमाणाश्चमृद्वी- कांकटुरोहिणीम् ॥ २०४ ॥ पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकषायोह्यानुलो- मिकः । त्रिवृताशर्करायुक्तःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ २०५ ॥

जिस ज्वरमें दोष बंधाहुआ हो और मल न निकलता हो उसमें त्रिफला, त्राय- माण, मुनक्का और कुटकीका क्वाथ गुड मिला पिलावे । यह क्वाथ पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करताहै और मलको अनुलोमनकर निकालता है । इसीप्रकार निशोथका क्वाथ खांड मिलाकर पीनेसे पित्त और कफके ज्वरको नष्ट करताहै ॥ २०४॥२०५॥

शट्यादिवर्ग ।

शटीपुष्करमूलञ्चाव्याघ्रीशृङ्गीदुरालभा । गुडूचीनागरंपाठाकिरातं कटुरोहिणी ॥ २०६ ॥ एषशट्यादिकोवर्गःसन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते ॥ २०७ ॥

कचूर, पोहरकमूल,कटेली, काकडासिंगी, जवासा, गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता, कुटकी, यह शटी आदि वर्ग सन्निपातज्वरको नष्ट करताहै तथा खांसी हृदय और पसुलीकी पीडा, श्वास, और तंद्राको दूर करताहै ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

बृहत्यादिगण ।

बृहत्यौपुष्करंभार्गींशटीशृंगीदुरालभा । वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥ २०८ ॥ बृहत्यादिर्गणःप्रोक्तःसन्निपातज्वरापहः । कासादिषुचसर्वेषुदद्यात्सोपद्रवेषुच ॥ २०९ ॥

दोनों कटेली, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडासिंगी, जवासा, इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह बृहत्यादिगण संन्निपात ज्वरको नष्ट करताहै तथा सब प्रकारके खांसी आदि उपद्रवोंको दूर करताहै ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

कषायाश्चयवाग्वश्चपिपासाज्वरनाशनाः ।
निर्दिष्टाभेषजाध्यायेभिषक्तानपियोजयेत् ॥ २१० ॥

प्यास और ज्वरनाशक, काढे और यवागू जो सूत्रस्थानमें कहेहैं ज्वरके नाश करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य उनका भी उपयोग करे ॥ २१० ॥

ज्वरनाशक अन्यक्रम ।

ज्वराःकषायैर्वमनैर्लंघनैर्लघुभोजनैः । रूक्षस्ययेनशाम्यन्तिसर्पिस्तेषांभिषग्जितम् ॥ २११ ॥ रूक्षंतेजोज्वरकरंतेजसारूक्षितस्य च । यःस्यादनुबलोधातुःस्नेहसाध्यःसचानिलः ॥ २१२ ॥

जिन रूक्ष मनुष्योंका ज्वर क्वाथ, वमन, लंघन और हलके आहार द्वारा शान्त न हो वैद्यजन उस ज्वरको औषधियोंसे सिद्ध किये घृतद्वारा शान्त करें क्योंकि ज्वरको करनेवाली गर्मी आग्नेय होनेके कारण अपने तेजद्वारा शरीरको रूक्ष बना देती है उसके अनुगत जो रूक्षकर्त्ता वायु है वह स्नेहनद्वारा ही साध्य होती है ॥२११॥२१२॥

ज्वरनाशक अनेक सिद्धघृतोंका वर्णन ।

कषायाःसर्वएवैतेसर्पिषासहयोजिताः ।
प्रयोज्याज्वरशान्त्यर्थमग्निसन्धुक्षणाःशिवाः ॥ २१३ ॥

इन नीचे लिखेहुए औषधियोंके क्वाथोंमें या कल्कोंमें डालकर सिद्ध किये घृत ज्वरोंकी शान्तिकें लिये प्रयोग करना चाहिये । यह घृत-अग्निवर्द्धक और कल्याणदायक होतेहैं ॥ २१३ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पल्यश्चन्दनंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी।कलिङ्गमस्त्वामलकीशारिवातिविषास्थिरा ॥ २१४ ॥ द्राक्षामलकविल्वानित्रायमाणानिदिग्धिका । सिद्धमेतैर्घृतंसद्योजीर्णज्वरमपोहति ॥ २१५ ॥ क्षयंकासंशिरःशूलंपार्श्वशूलंहलीमकम् । अंसाभितापमग्निश्चविषमं सन्नियच्छति ॥ २१६ ॥

पीपल, चन्दन, नागरमोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, भूमिआमलकी, शारिवा, अतीश, शालिपर्णी, मुनक्का, आँवला, बेलगिर, त्रायमाण, और कटेलीसे सिद्धकिया घृत शीघ्र जीर्णज्वरको नष्ट करताहै और क्षय, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल, हलीमक, दोनों अंशोंका तपना, विषमाग्नि इन सबको शान्त करताहै ॥ २१४-२१६ ॥

वासादिघृत ।

वासांगुडूचींत्रिफलांत्रायमाणांयवासकम् । पक्कातेनकषायेणपयसाद्विगुणेनच ॥ २१७ ॥ पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः । कल्कीकृतैश्चविपचेद्घृतंजीर्णज्वरापहम् ॥ २१८ ॥

अडूसा (वांसा) गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा, इनके क्वाथमें दोगुना दूध मिला उस दूध और क्वाथको घृतमें डालदे और उसी घृतमें पीपल, मुनक्का, नागरमोथा, चंदन, कमल, सोंठ इन सबका कल्क डालकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर किसी पात्रमें रख देवे । इस घृतका प्रयोग जीर्णज्वरको नष्टकर डालताहै ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

बलादिघृत ।

बलांश्वदंष्ट्रांबृहतींकलसींधावनींस्थिराम् । निम्बंपर्पटकंमुस्तंत्रायमाणांदुरालभाम् ॥ २१९ ॥ कृत्वाकषायंपेष्यार्थेदद्यात्तामलकींशटीम् । द्राक्षांपुष्करमूलश्चमेदामामलकानिच ॥ २२० ॥ घृतंपयश्चतत्सिद्धंसर्पिर्ज्वरहरंपरम् । क्षयकासशिरःशूलपार्श्वशूलांसतापनुत् ॥ २२१ ॥

बला (खैंटी) गोखरू बडी, कटेली, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेली, शालपर्णी, नीमका छिलका, पित्तपापडा, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा इन सब औषधियोंका क्वाथ बनावे और भूमिआमला, कचूर, मुनक्का, पोहकरमूल, मेदा, और आँवलोंको पानी

मिलाकर पीसे फिर यह पिसाहुआ कल्क और उपरोक्त औपधियोंका क्वाथ और दूध यह सब मिलाकर घृतमें डाल पकावे सिद्ध होनेपर घृतका सेवन करे । यह घृत जीर्णज्वरको अवश्य नष्ट करताहै । तथा राजयक्ष्मा, खांसी, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और दोनो अंशोंकी तपनको दूर करताहै ॥ २१९ ॥ २२० ॥ २२१ ॥

ज्वरनाशक अन्यवमनादि निर्देश ।

ज्वरिभ्योबहुदोषेभ्यऊर्ध्वंश्चाधश्चबुद्धिमान् ।
दद्यात्संशोधनंकालेकल्पेयदुपदेक्ष्यते ॥ २२२ ॥

बहुत दोषयुक्त ज्वरवाले मनुष्यको बुद्धिमान् वैद्य संशोधनका समय विचार उचित कालमें क०स्थानोक्त वमन और विरेचन द्वारा ऊपर, नीचेका शोधन करावे॥२२२॥

वमनद्रव्य ।

मदनंपिप्पलीभिर्वाकलिङ्गैर्मधुकेनवा ।
युक्तमुष्णाम्बुनापेयंवमनंज्वरशान्तये ॥ २२३ ॥

पीपल अथवा इन्द्रयव या मुलहठीके साथ मैनफलके चूर्णको गर्मजलके अनुपानसे पीवे । इससे वमन होकर ज्वर शान्त होजाताहै ॥ २२३ ॥

क्षौद्राम्बुनारसेनेक्षोरथ वा लवणाम्बुना ।
ज्वरेप्रच्छर्दनंशस्तंमद्यैर्वातर्पणेनवा ॥ २२४ ॥

शहत और जल मिला अथवा ईखके रससे या नमक और जलसे अथवा मद्यको पीकर या अन्य तर्पण द्रव्योंको पीकर विधिवत् छर्दकर देना ज्वरको नष्ट करताहै ॥ २२४ ॥

मृद्वीकामलकानांवारसंप्रच्छर्दनंपिबेत् ।
रसमामलकानांवाघृतभृष्टंज्वरापहम् ॥ २२५ ॥

मुनक्का और आँवलोंका रस पीकर छर्द करे अथवा आँवलोंके रसको घीमें छौंककर उसमें नमक और गर्मजल मिला पीवे और छर्दकर डाले यह भी ज्वरके नष्ट करनेवाला छर्दन है ॥ २२५ ॥

विरेचनद्रव्य ।

लिह्याद्वात्रिवृतंचूर्णसंयुक्तंमधुसर्पिषा ।
पिबेद्वाक्षौद्रमासाद्यसघृतंत्रिफलारसम् ॥ २२६ ॥

निशोथके चूर्णको शहत और घृतमें मिला चाटनेसे अथवा घी और शहत मिलाकर त्रिफलेका रस पीनेसे विरेचन होकर ज्वर शान्त होताहै ॥ २२६ ॥

आरग्वधंवापयसामृद्वीकानांरसेनवा ।
त्रिवृतांत्रायमाणांवापयसाज्वरितःपिबेत् ॥ २२७ ॥

अमलतासको दूधमें मिलाकर अथवा मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे या निशोथका चूर्ण मुनक्काके रसमें घोलकर पीवे अथवा त्रायमाणको दूधमें मिलाकर पीवे तो इनसे विरेचन होकर ज्वर शान्त होजाताहै ॥ २२७ ॥

ज्वराद्विमुच्यतेपीत्वामृद्वीकाभिःसहाभयाम् । पयोऽनुपानमुष्णंवापीत्वाद्राक्षारसंनरः ॥ २२८ ॥ कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् ॥ २२९ ॥

इसीप्रकार मुनक्काके रसके साथ हरडका चूर्ण खावे अथवा द्राक्षाके रसको पीकर ऊपरसे गर्म दूध पीवे तो इन उपरोक्त संपूर्ण विरेचन योगोंसे खांसी, श्वास, शिरकी पीडा, पार्श्वशूल और ज्वर यह सब नष्ट होजातेहैं ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

ज्वरनाशक दूध ।

मुच्यतेज्वरितःपीत्वापञ्चमूलशृतंपयः । एरण्डमूलोत्कथितंज्वरात्सपरिकर्त्तिकात् । पयोविमुच्यतेपीत्वातद्वद्बिल्वशलाटुभिः २३०॥

पंचमूलसे सिद्धकिया दूध पीनेसे मनुष्य ज्वरसे छूटजाता है । अथवा एरण्डकी जडके क्वाथसे सिद्धकिया दूध या कच्चे बेलकी गिर मिलाकर सिद्धकिया दूध परिकर्तिता (कतरनी पेचिश) युक्त ज्वरको दूर करताहै ॥ २३० ॥

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नंशोफज्वरहरंपयः ॥ २३१ ॥

गोखुरू, बला, कटेली, गुड और सोंठसे सिद्धकियाहुआ दूध मलमूत्रके विबंध और सूजनवाले ज्वरको शान्त करताहै ॥ २३१ ॥

सनागरंसमृद्वीकंसघृतक्षौद्रशर्करम् ।
शृतंपयःसखर्जूरंपिपासाज्वरनाशनम् ॥ २३२ ॥

सोंठ, मुनक्का, घृत, खांड, शहद और छोहारोंसे सिद्धकिया दूध पुराने ज्वर और प्यासको शान्त करताहै । परन्तु इस दूधको शहदके सिवाय अन्य द्रव्य मिलाकर औटालेना चाहिये । फिर छानकर पीने योग्य ठण्डा होजानेपर शहद मिलाकर पीवे ॥ २३२ ॥

चतुर्गुणेनाम्भसावाशृतंज्वरहरंपयः ।
धारोष्णंवापयःसद्योवातपित्तज्वरंजयेत् ॥ २३३ ॥

चारगुने जलसे युक्तकर दूधको पकावे जब पानी जलकर दूध रहे उसको पीनेसे ज्वर शान्त होताहै । धारोष्ण दूधके पीनेसे भी पुराना वातपित्तज्वर शीघ्र शान्त होजाताहै ॥ २३३ ॥

जीर्णज्वराणांसर्वेषांपयःप्रशमनंपरम् ।
पेयंतदुष्णंशीतंवायथास्वंभेषजैःशृतम् ॥ २३४ ॥

सब प्रकारके जीर्णज्वरको दूधका पीना परम शान्तिकारक है । वह दूध गर्म अथवा ठण्ढा या दोषानुसार औषधियोंसे सिद्धकिया हुआ उचित रीतिसे सेवन करना चाहिये ॥ २३४ ॥

ज्वरनाशकअनेक वस्तिकर्मका निर्देश ।

प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान्सानुवासनान् ।
पक्काशयगतेदोषेवक्ष्यन्तेयेचसिद्धिषु ॥ २३५ ॥

जब देखे कि दोष पक्वाशयमें पहुंचे हुए हैं तो उनको ज्वरनाशक निरूहण और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करावे । वस्तिकर्म करनेकी विधि आगे सिद्धिस्थानमें कही जावेगी ॥ २३५ ॥

वस्तिकर्मके द्रव्य ।

पटोलारिष्टपत्राणिसोशीरश्चतुरंगुलः । ह्रीवेररोहिणीतिक्ताश्वदंष्ट्रा-मदनानिच ॥ २३६ ॥ स्थिरावलाचतत्सर्वंपयस्यर्द्धोदकेशृतम् । क्षीरावशेषंनिर्यूहंसंयुक्तंमधुसर्पिषा ॥ २३७ ॥ कल्कैर्मदनमुस्तानां पिप्पल्यामधुकस्यच । वत्सकस्यचसंयुक्तंवस्तिंदद्याज्ज्वरापहम् ॥ ॥ २३८ ॥ शुद्धेमार्गेहृतेदोषेविप्रसन्नेषुधातुषु । गतांगशूलोलघ्वं-गःसद्योभवतिविज्वरः ॥ २३९ ॥

पटोलपत्र, नीम अथवा रीठेके पत्र, खस, अमलतास, नेत्रवाला, लालचंदन, कुटकी, गोखरू, मैनफल, शालपर्णी, खरैटी इन सबको आधा दूध आधा जल मिलाकर पकावे । जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहजाय उसमें शहत और घृत मिलादेवे । और मैनफल, नागरमोथा, पीपल, मुलहठी, इन्द्रयव इन सबका कल्क बनाकर उसी दूधमें घोलदेवे । फिर इस दूध द्वारा वस्तिकर्म (अधोमार्गमे पिचकारी)

करे। इसके करनेसे मलमार्ग शुद्ध होकर दोष निकल जातेहैं और संपूर्ण धातुयें प्रसन्न होतीहैं। संपूर्ण अंगोंकी पीडा आदि दूर होकर शरीरमें हलकापन आजाता है और ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ २३६-२३९ ॥

अन्ययोग।

आरग्वधसुशीराणिमदनस्यफलानिच। चतस्रःपर्णिनीश्चैवनिर्यूहमुपकल्पयेत् ॥ २४० ॥ प्रियंगुर्मदनंमुस्तंशताह्वामधुयष्टिका। कल्कःसर्पिर्गुडःक्षौद्रंज्वरघ्नोबस्तिरुत्तमः ॥ २४१ ॥

अमलतास, खस, मैनफल, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुग्धपर्णी इनका क्वाथ बनाकर अथवा दूध और जल मिलाकर उपरोक्त औषधियोंका क्वाथ बनावे। इस क्वाथमें प्रियंगु, मैनफल, नागरमोथा, सौंफ, गुलाबके फूल और मुलहटीका कल्क बनाकर उपरोक्त क्वाथमें घोलदेवे और उसमें घी, गुड, शहद भी मिलावे। फिर इससे वस्तिकर्म करे। यह वस्ती ज्वर नाश करनेको परम उत्तम कहीहै २४०॥२४१

अन्यबस्ति।

गुडूचींत्रायमाणञ्चचन्दनंमधुकंवृपम्। स्थिरांवलांपृश्निपर्णींमदनञ्चेतिसाधयेत् ॥ २४२ ॥ रसंजांगलमांसस्यरसेनसहितंभिषक्। पिप्पलीफलमुस्तानांकल्केनमधुकस्यच ॥ २४३ ॥ ईषत्सलवणंयुक्त्यानिरूहंमधुसर्पिषा। ज्वरप्रशमनंदद्याद्बलस्वेदरुचिप्रदम् २४४॥

गिलोय, त्रायमाण, चंदन, मुलहठी, वांसा, शालपर्णी, वला, पृष्ठपर्णी, मैनफल इनमें सिद्धकिये दूध अथवा क्वाथको लेकर उसमें जांगलजीवोंका मांसरस मिलाकर और उसीमें पीपल, मैनफल, नागरमोथा और मुलहठीका कल्क बना घोलदेवे। फिर उसको घी, शहत, तथा किंचित् सेंधानमक मिला निरूहण वस्ति कर्म करे। यह वस्ति ज्वरको नष्ट करनेवाली, वलको वढानेवाली, स्वेदन और रुचिकारक है ॥ २४२ ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

अनुवासनवस्तियोग।

जीवन्तींमधुकंमेदांपिप्पलींमरिचंवचाम्। ऋद्धिंरास्नांबलांविश्वंशतपुष्पांशतावरीम् ॥ २४५ ॥ पिष्ट्वाक्षीरंजलंसर्पिस्तैलञ्चविपचेद्भिषक्। आनुवासनिकंस्नेहमेतद्दिद्याज्ज्वरापहम् ॥ २४६ ॥

---

१ मधुकमधुराणिच। इ० पा०। २ सब प्रकारकी बस्तियोंकी विधि सिद्धिस्थानमें वर्णन की है उसे देखो।

जीवन्ती, मुलहठी, मेदा, पीपल, कालीमिर्च, वच, ऋद्धि, रासना, बला, सोंठ, सौंफ और शतावरका बारीक चूर्णकर उसमें दूध, जल घृत और तेल मिलाकर पकावे । फिर सिद्ध होनेपर इस स्नेहसे अनुवासन बस्ति करे । यह ज्वरको शान्त करनेवाली है ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

अन्य अनुवासन ।

पटोलपिचुमंदाभ्यांगुडूच्यामधुकेनच ।
मदनैश्चशृतः स्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥ २४७ ॥

पटोल नीमकी छाल, गिलोय, मुलहठी, मैनफल इनके क्वाथसे, अथवा कल्कसे सिद्धकिये हुए घृतद्वारा कियाहुआ अनुवासन कर्म ज्वरको शान्त करताहै ॥ २४७ ॥

चन्दनागुरुकाश्मर्य्यपटोलमधुकोत्पलैः ।
सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते ॥ २४८ ॥

चंदन, अगर, कंभारी, पटोल, मुलहठी और कमलसे सिद्धकिया घृत अनुवासन द्वारा स्नेहन करनेसे ज्वरको शान्त करताहै ॥ २४८ ॥

अन्य उपदेश ।

यदुक्तंभेपजाध्यायेविमानेरोगभेपजे ।
शिरोविरेचनंकुर्य्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम् ॥ २४९ ॥

सूत्रस्थानके भेपनाध्यायमें और विमान स्थानके रोगभिपग्जितीय अध्यायमें जो शिरोविरेचनीय कर्म कहा गया है उसका युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे पुराना ज्वर नष्ट होताहै ॥ २४९ ॥

यच्चनावनिकंतैलंयाश्चप्राग्धूमवर्त्तयः ।
मात्राशितीयेनिर्दिष्टाःप्रयोज्यास्ताज्वरेष्वपि ॥ २५० ॥

सूत्रस्थानके मात्राशितीय अध्यायमें जो नस्यके लिये अणुतैल आदि तथा धूमवर्तियोंका कथन किया गयाहै उनका प्रयोग करना भी पुराने ज्वरोंको नष्ट करताहै ॥ २५० ॥

अभ्यंगांश्चप्रदेहांश्चपरिषेकांश्चकारयेत् ।
यथाभिलापंशीतोष्णंविभज्यद्विविधंज्वरम् ॥ २५१ ॥

और इसी प्रकार अभ्यंग (मालिश) प्रदेह (उबटन या लेप), परिषेक (सिचन करना) भी युक्तिपूर्वक शीतल अथवा उष्ण या जिस प्रकार जैसे ज्वरमें उचित हो विचारपूर्वक प्रयोग करे । इनसे भी ज्वर शान्त होजातेहैं ॥ २५१ ॥

सहस्रधौतंसर्पिर्वातैलंवाचन्दनादिकम्।
दाहज्वरप्रशमनंदद्यादभ्यञ्जनंभिषक् ॥ २५२ ॥

सहस्रवार धोयाहुआ गोघृतका लेप अथवा चंदनादि तैलकी मालिश करना दाहयुक्त ज्वरको शान्त करताहै ॥ २५२ ॥

चंदनादि तैल।

अथचन्दनाद्यंतैलमुपदेक्ष्यामः । चन्दनशैलेयभद्राश्रयकालानुसार्य्यकालीयकपद्मापद्मकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपुष्पोदीच्यचव्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतसवाणीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवातपोथशालतालधवतिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्य्यफलसर्जप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधधातकीदूर्वोत्कण्टकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करबीजक्रौञ्चादनबदरीकोविदारकदलीसंवर्त्तकारिष्टशतपर्वाशीतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणीरोहिणीशीतपाक्योदनपाकीकालाबलापयस्याविदारीजीवकर्षभमेदामहामेदामधुरकऋष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसारूटरूपकवकुलकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनारिकेलखर्जूरमृद्वीकापियालप्रियंगुधन्वनात्मगुप्तामधुकानामन्येषाञ्चशीतवीर्य्याणांयथालाभमौषधानांकषायंकारयेत् । तेनकषायेणद्विगुणितपयसातेषामेवचकल्केनकषायार्द्धमात्रंमृद्वग्निनासाधयेत्तैलम्। एतत्तैलंसद्योदाहज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैःसुश्लक्ष्णपिष्टैःसुशीतैःप्रदेहंकारयेदेतैरेवचशृतशीतंसलिलमवगाहपरिषेकार्थप्रयुञ्जीत ॥ २५३ ॥

लालचदन, छारछबीला, सफेद चंदन, अगर, पीतचंदन, कुसुम्भा, पद्माख, खस, शारिवा, मुलहठी, प्रपौण्डरीक (पण्डचाग), नागकेशर, सुगंधवाला, चव्य, लालकमल, नीलकमल, सहस्रदल, कमल, कुमोदनी, सौगन्धिक, सफेद कमल, शतदल कमल, बिस, कमलकी डण्डी, कमलका कंद, जलके ऊपरकी काई. (सिवाल), कसेरू,

कृष्णसारिवा, कुशा, कांस, ईखकी जड, दर्भ, सरकण्डेकी जड, नरसलकी जड, शालिधान्योंकी जड, जामुन, वेतकी कोंपल, वेतसमजनू, व्यूंस, गुन्द्रपटेर, कोह, विजयसार, अश्वकर्ण, (छोटी जातिका शालवृक्ष) स्यंदन, पलाश, वडा शाल, ताडवृक्ष, धन, तिनिवा, खैर, कदर, कदंव, काश्मरीफल, मैनफल, सर्ज, (राल) पाखर (पिलखन), अम्बाडा, गूलर, पीपल, वड, धावेके फूल, दून, काण्डदूव, सिंघाडे, मंजीठ, मालकांगुनी, पुष्करबीज, कमलगट्टे, बेर, लाल कचनार, केलाकंद, नागरमोथा, रीठावृक्षकी छाल, शतपर्वा (वरू) शीत कुंभिका (पानीमें होनेवाला नारीयाग) शतावर, अर्णी, छोटी और वडी गोरखमुण्डी, कुटकी, काकोली, कंघी, कटसरैया, कुडा, वला, क्षीरकाकोली, विदारीकंद, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, लाल सोहांजना, अतिवला, मल्लिका, मोचरस, अडूसा, मौलसरी, कुडा, पटोलपत्र, नीमकी छाल, सेंमरके फूल, नारियल, खजूर, दाख, चिरौंजी, फूल प्रियंगु, धन्वनवृक्ष, कौंचके वीज, महुएकी छाल इन सबको लेकर तथा अन्य भी इस प्रकारकी शीतवीर्य औषधियें जो मिलसकें उन सब औषधियोंको दो दो तोला लेकर सोलहगुने जलमें पकावे । चतुर्थ भाग शेष रहनेपर छान लेवे। इस क्वाथसे आधा धुली, तिलका तेल और दुगुना दूध तथा तेलसे चौथाभाग इन औषधियोंका कल्क मिलाकर मंद-मंद आंचसे पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस तेलकी मालिश करनेसे दाह और ज्वर दोनों निवृत्त होतेहैं । और इन्हीं ऊपर कही औषधियोंको सुन्दर पीसकर शीतल लेप करनेसे भी दाह और ज्वर शान्त होतेहैं । एवं इन सब औषधियोंके क्वाथको शीतल करके उसमें स्नान करनेसे भी दाह और ज्वर शान्त होतेहैं । इति चंदनादितैल ॥ २५३ ॥

दाहनाशक अन्य योग ।

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसलिलसेकावगाहाश्चसद्योदाहंज्वरमपन-यन्तिशीतस्पर्शत्वादिति ॥ २५४ ॥

शहत, कांजी, दूध, दही, घृत और जल यह भी शीतल स्पर्श होनेसे परिषेक, अवगाहन आदि करनेपर दाहज्वरको शीघ्र शान्त करते, ॥ २५४ ॥

अन्तर्गतपित्तमें वर्तहुये दाहज्वरके उपचार ।

भवन्तिचात्र । पौष्करेषुसुशीतेषुपद्मोत्पलदलेषुच । कदलीनांच पत्रेषुक्षौमेषुविमलेषुच ॥ २५५ ॥ चन्दनोदकशीतेषुसुप्याद्दाहा-र्दितःसुखम । हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा ॥ २५६ ॥ हेमशंखप्रवालानांमणीनांमौक्तिकस्यच । चन्दन[illegible]सानां-

स्पर्शानुरसान्स्पृशेत् ॥ २५७ ॥ स्रग्भिर्नीलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्विविधैरपि । शीतवातापहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः ॥ २५८ ॥ नद्यस्तडागाःपद्मिन्योह्रदाश्चविमलोदकाः । अवगाहेहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः ॥ २५९ ॥

दाहज्वरमें शीतल जलसे छिडकेहुए पुष्कर, उत्पल, आदि कमलोंके पत्रोंपर अथवा इनके फूलोंकी पंखडियोंपर वा कह्लारके जलसे छिडकेहुए पत्रोंपर अथवा जिस स्थानमें शीतल जलकी धारा, फुहारे आदि चलतेहों ऐसे शीतल स्थानमें उपरोक्त कमलोंके शीतल किये पत्रादि बिछाकर उनके ऊपर सोना, नरम रेशमी वस्त्रोंपर सोना, शीतल चंदन, जल आदिको शरीरपर छिडकना, सुवर्ण, शंख, मूगा, मणि, मोती आदिकोंकी माला, चंदन और शीतल जलसे शीतलकर शरीरपर धारण करना, अथवा अन्य शीतल पदार्थोंका स्पर्श करना, कमल, नीलकमल आदिक फूलोंकी माला धारण करना, अथवा कमलादिकोंको शीतल जलमें भिगो बदनपर छींटा देना। शीतल पंखोंपर चंदन, जल, छिडककर शीतल वायु करना । निर्मल जलसे भरीहुई नदी, तालाव और जिनमें कमल, कुमुद खिलरहे हों इसप्रकारके तालाव आदिकोंमें अवगाहन करना। पित्तके दाह, प्यास, ग्लानि और ज्वरको शान्त करतेहैं ॥ २९९-२९९ ॥

प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः । सान्त्वयेयुःपरैःकामैर्मणिमौक्तिकभूषणाः ॥ २६० ॥ शीतानिचान्नपानानिशीतान्युपवनानिच । वायवश्चन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः ॥ २६१ ॥

इसीप्रकार चंदनसे और मणि, मुक्तादि आभूषणोंसे शोभायमान, प्यारी, चतुर, सुन्दर, नवयौवनाका आलिंगन करना भी दाहज्वरको शान्त करताहै। तथा शीतल अन्नपान, शीतल बगीचे, शीतल चन्द्रमाकी किरणें यह सब दाहज्वरके शान्त करनेवाले हैं। इस प्रकार अत्यंत पित्तके बढनेसे उत्पन्न हुए दाहज्वरकी शान्तिका उपचार कथन किया गया ॥ २६० ॥ २६१ ॥

अथोष्णाभिप्रायिणांज्वरितानामभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः ।

अब जिन ज्वरोंमें उष्ण उपचार करना चाहिये उनके अभ्यंगादि क्रमोंको कहतेहैं।

अगरादितैल ।

अगुरुकुष्ठतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौणेयकक्षेमिकैलावरावराङ्गदपूरतमालपत्रभूतीकरोहिषःसरलशल्लकीदेवदार्वग्नि-

मन्थविल्वश्योणाककाश्मर्य्यपाटलापुनर्नवावृश्चीरकण्टकारिबृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमाषपर्णीमुद्गपर्णीगोक्षुरकैरण्डशोभाञ्जनकवरुणार्कचिरिबिल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डीरोरुबुकपत्तुराक्षीवाश्मान्तकशिग्रुमातुलुङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेषशृङ्गीहिंस्रादन्तशठैरावतकभल्लातकास्फोतकण्डीरात्मजकेषीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकभूस्तृणशृङ्गवेरपिप्पलीसर्षपाश्वगन्धारास्नारुहारोहावचाबलातिबलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीबदरकुलत्थमाषाणामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्य्याणांयथालाभमौषधानां कषायंकारयेत्तेनकषायेणतेषामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिमण्डारनालकट्वरप्रतिविनीतेनतैलपात्रंविपाचयेत् । तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायिणंज्वरितमभ्याञ्ज्यात् । तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैःश्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत् । एतेषामेवचसुखोष्णमुत्क्वाथमवगाहनपरिषेकार्थंप्रयुञ्जीतज्वरप्रशमार्थमिति ॥ २६२ ॥

अगर, कूठ, तगर, तेजपात, नरसल, शिलापुष्प, गंधतृण, रेणुका, गठौना, हल्दी, छोटी इलायची, त्रिफला, प्रियंगुका पत्र, धूप, अगर, तमालपत्र, अजवायन, रोहितृण, सरलकाष्ठ, शिलारस, देवदारू, अरनी, बेलकी छाल, श्योनाक, खंभारी, पाढर, पुनर्नवा, लाल पुनर्नवा, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, एरंडकी जड, सहांजना, बरना, आक, करंज, लोध, कचूर, पोहकर मूल, बडकी जटा, लाल एरंड, पत्तूर (शालिंच शाक), अक्षीवं (सांहजनेका भेद), अश्मन्तक, सिग्रू (सांहजना), बिजौरा नींबू, सलजम, मूलपर्णी, पीलूपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिंस्रा (हींस) जंभीरी नींबू, ऐरावतफल, भेलाये आस्फोतक तथा कण्डीर, आत्मजक, एषिका, लताकरंज, धनिया, अजमोद, जीरा और सुमुख, सुरस, कुटेरक, कण्डीर, कालमालक, क्षवक, फणिज्झक यह सब तुलसीके भेद, भूतृण, सोंठ, पीपल, सरसों, असगंध, रासना, दून, वच, खरैंटी, गदूँदेई, गिलोय

सौंफ, शीतवल्ली, नाकुलीकंद, गंधनाकुली, श्वेता, ज्योतिष्मती, चित्रक, कौंचके बीज, अम्ल चांगेरी, बेर, कुल्थी और उडद । इन सब औषधियोंको लेकर तथा इनके सिवाय अन्य भी जो उष्णवीर्य औषधी हैं उन सबको मिलाकर क्वाथ और कल्क बनावे । यह क्वाथ और कल्क तथा सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दहीका तोड, कांजी और घोल यह सब मिलाकर इनमें चारसेर पक्का तिलका तेल सिद्ध करे । इस तेलको किंचित् उष्ण रहते शरीरपर मालिश करे । यदि यह शीतल हो जाय तो इसको धूपमें गरमकर फिर शरीरपर मालिश करे । इस तैलका मालिश करना ज्वरको शान्त करता है और शरीरकी अकडन दूरकर हलका बनाताहै । तथा इन्हीं औषधोंके कल्कको गरमकर सुहाता २ लेप करना और इन्हींके क्वाथसे स्नान तथा सिंचन करना भी शीतज्वरको शान्त करताहै ॥ २६२ ॥

शीतज्वरनाशक अन्य कर्म ।

भवन्तिचात्र । त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाध्यायेनिदर्शितः । मात्राकालविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः ॥ २६३ ॥ साकुटी तच्च शयनं तच्चावच्छादनं ज्वरम् । शीतं प्रशमयन्त्याशु धूपाश्चागुरुजा घनाः ॥ २६४ ॥

शीतज्वरके अन्य उपचारोंको कथन करतेहैं । जो तेरह प्रकारके स्वेद (पसीना देना) स्वेदाध्यायमें कहेगये हैं बुद्धिमान् वैद्य मात्रा, काल आदि विचारकर उनका प्रयोग करे तो भी शीतज्वर नष्ट होजाताहै तथा उसी अध्याय (सूत्रस्थानका १४ वां अध्याय) में जो कुटीप्रवेशका विधान लिखा है तथा शयन, आच्छादन आदिका जो विधान है उनका उपयोग करना शीतज्वरको नष्ट करताहै । अगरकी अत्यंत गाढी धुनी देना भी शीतज्वरको शान्त करताहै ॥ २६३ ॥ २६४ ॥

पवित्रचारुगात्राश्च तरुण्यो यौवनोष्मणा ।
आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥ २६५ ॥

सुन्दर पवित्र अंगोंवाली युवा स्त्री भी शीतज्वरवालेको गाढ आलिंगन करके जवानीकी गर्मी द्वारा शीतज्वरको शान्त करसकतीहैं ॥ २६५ ॥

स्वेदनान्यन्नपानानि वातश्लेष्महराणि च ।
शीतज्वरं जयन्त्याशु संसर्गबलयोजनात् ॥ २६६ ॥

अन्य भी वात-कफज्वरके हरनेवाले जितने प्रकारके स्वेदन कर्म हैं उनके उपयोगसे तथा अन्य किसी प्रकारके औषधादिकोंके संसर्गसे शीतज्वर शान्त होजाताहै ॥ २६६ ॥

कुछ ज्वरोंमें लंघनका निषेध।

वातजे श्रमजे चैव पुराणे क्षतजे ज्वरे।
लंघनं न हितं विद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥ २६७ ॥

वायुके ज्वरमें, श्रमसे उत्पन्न हुए ज्वरमें, पुराने ज्वरमें तथा क्षतज ज्वरमें लंघन कराना हितकारक नहीं होता। इसलिये ऐसे ज्वरोंको शमन औषधियों द्वारा शान्त करे ॥ २६७ ॥

अन्य ज्वरोंमें लंघनकी आवश्यकता।

विक्षिप्यामाशयोष्माणं यस्माद्रत्वा रसं नृणाम्। ज्वरं कुर्वन्ति दोषास्तुहीयतेऽग्निबलंततः ॥२६८॥ यथा प्रज्वलितो वह्निः स्थाल्यामिन्धनवानपि। न पचत्योदनं सम्यगनिलप्रेरितो वह्निः ॥२६९॥ पक्तिस्थानात्तदा दोषैरूष्मा क्षिप्तो वह्निर्नृणाम्। न पचत्यभ्यवहृतंकृच्छ्रात्पचतिवालघु ॥ २७० ॥ अतोऽग्निबलरक्षार्थंलंघनादिक्रमोहितः ॥ सप्ताहेनहिपच्यन्तेसर्वधातुगतामलाः ॥ २७१ ॥ निरामश्चाप्यतःप्रोक्तोज्वरःप्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ २७२ ॥

दोष रससे मिलकर आमाशयकी अग्निको उसके स्थानसे निकालकर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं। इस कारणसे अग्निका बल नष्ट होजाताहै। जैसे हवाके वेगसे जलती-हुई अग्नि इन्धन युक्त होतेहुए भी अपने स्थानसे बाहरकी ओर चलीजानेपर चूल्हेपर रक्खे पात्रके अन्नको नहीं पका सकती उसी प्रकार दोषोंके वेग द्वारा अपने स्थानसे निकलीहुई जठराग्नि भी भोजनको पका नहीं सकती। अथवा अत्यंत हलके भोजनको भी कठिनतासे पचाती है। इसलिये अग्निके बलकी रक्षाके वास्ते लंघन आदि क्रम अर्थात् प्रथम लंघन कराना ही हितकर है। सातदिन लंघन करानेसे सब धातुओंमें गयेहुए दोष पकजातेहैं। फिर यह ज्वर प्रायः आठवें दिन निराम कहाजाता है ॥ २६८–२७२ ॥

अल्पाग्निमें भारी पदार्थ भोजन करनेके दोष।

उदीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नन्गुरुविशेषतः ॥ मुच्यतेसहसाप्राणैश्चिरं क्लिश्यतिवानरः॥ २७३ ॥

जिसके वातादि दोष प्रकट होगयेहों ऐसा अल्पाग्नि मनुष्य यदि भारी पदार्थोंका भोजन करे तो शीघ्र मृत्युको प्राप्त होताहै अथवा वह मनुष्य बहुत कालतक कष्टको पाताहै ॥ २७३ ॥

वातज्वरमें चिकित्साक्रम ।

एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितोज्वरे नातिगुर्वतिवास्निग्धं भोजयेत्सहसानरम् । ज्वरेमारुतजेत्वादावनपेक्ष्यापिहिक्रमम् ॥ ॥ २७४ ॥ कुर्य्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् । पाययित्वा कषायश्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ २७५ ॥ जीर्णज्वरहरंकुर्य्यात्सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ॥ २७६ ॥

इसलिये विद्वान् वैद्य वातिक ज्वरमें भी प्रथम ही सहसा (झटपट) भारी और अत्यंत स्निग्ध पदार्थोंका सेवन न करावे । किंतु क्रमपूर्वक जैसा जिससमय उचित हो उस प्रकार प्रथम अल्प और हलका फिर क्रमपूर्वक किंचित् भारी स्निग्ध भोजन पर पहुंचावे । यदि वातसे उत्पन्नहुए ज्वरमें पित्त और कफका अनुबन्ध न होवे तो लंघन न कराकर प्रथम तो वातज्वरनाशक तैलादिकका शरीरपर मालिश करावे और वातज्वरनाशक क्वाथ पिलावे तथा मांसरसका भोजन करावे । एवं जीर्णज्वरके शांत करनेको जो चिकित्साक्रम कहाहै उस विधिसे ही वातज्वरकी भी चिकित्सा करे ॥ २७४ ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

कफज्वरमें चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानांज्वरोऽनुष्णेकफाधिकः । परिपाकं न सप्ताहे नापि याति मृदूष्मणाम् । तं क्रमेण यथोक्तेन लंघनाल्पाशनादिना ॥ २७७ ॥ आदशाहमपक्रम्य कषायाद्यैरुपाचरेत् ॥ २७८ ॥

वातरहित कफप्रधान मनुष्यके कफज्वरमें शरीर अग्निकी उष्णतासे रहित होताहै इसलिये कफज्वरमें दोष सात दिनमें भी परिपाकको प्राप्त नहीं होते क्योंकि कफज्वरवाले मनुष्योंकी जठराग्नि अत्यंत मंद होतीहै इसलिये उनको दशदिन पर्यंत लंघन और अल्प तथा हलके आहार आदि क्रमसे दोषोंको क्षीणकर फिर क्वाथ आदिकोंसे चिकित्सा करे ॥ २७७ ॥ २७८ ॥

अन्य ज्वरोंमें उपदेश ।

सामा येये च कफजाः कफपित्तज्वराश्च ये । लंघनं लंघनीयोक्तं तेषु कार्य्यं प्रति प्रति । वमनैश्च विरेकैश्चवस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ २७९ ॥ ज्वरानुपचरेद्धीमान् कफपित्तानिलोद्भवान् ॥ २८० ॥

संपूर्ण सामज्वरोंमें, कफज्वरमें, कफपित्तज्वरमें लंघनकी विधिसे दोषानुसार लंघन कराना चाहिये। तथा कफज्वरको वमन द्वारा, पित्तज्वरको विरेचन द्वारा, वातज्वरको स्नेहबस्ति द्वारा जीतना चाहिये (परंतु जबतक दोष अत्यंत नवीन कच्चे और बद्ध हों तबतक वमनादि क्रिया उचित नहीं। दोषोंके चलायमान होनेपर ही वमनादि द्वारा दोष निकाल देने चाहिये ॥ २७९ ॥ २८० ॥

द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें चिकित्साक्रम।

संसृष्टान् सन्निपतितान् बुद्ध्वा तरतमैःसमैः। ज्वरान् दोषक्रमापेक्षी यथोक्तैरौषधैर्जयेत्। वर्द्धनेनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छ्रितस्य वा ॥ २८१ ॥ कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरं जयेत् ॥ २८२ ॥

और दोदो दोषोंके तथा तीनों दोषोंके मिलेहुए होनेपर उनकी न्यूनता अधिकता विचारकर (उनमें कौन दोष अधिक कौन कम और कौन सम है ऐसा देखकर) दोषोंके क्रमानुसार जो औषधियें उनको जीतनेवाली हों उनके द्वारा चिकित्सा करे। अर्थात् द्वंद्वज और सन्निपातज ज्वरोंमें क्षीणदोषको बढावे और बढेहुए दोषको शांत करे। एवं दोषोंको बराबर जाने तो प्रथम कफको, फिर पित्तको, तदनंतर वातको जीतनेकी क्रिया करे॥ २८१ ॥ २८२ ॥

कर्णमूलशोथमें उपचार।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः। शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते। रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिष्पानैश्च तं जयेत् ॥ २८३ ॥ प्रदेहैःकफपित्तघ्नैर्नावनैःकवलग्रहैः ॥ २८४ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जडमें एक दारुण सूजन उत्पन्न होजातीहै उस सूजनवाले सन्निपातज्वरवाला मनुष्य सैकडोंमें कोई एकाध ही बचताहै। इस दारुण सूजनमें जोंक अथवा सींगी द्वारा शीघ्र रक्त निकलवा देना चाहिये और कफ, पित्त तथा रुधिरके जीतनेवाले घृतोंका उपयोग (पिलाना) करना चाहिये। एवं कफपित्तनाशक लेप, सेक, नसवार आदिका उपयोग, कफ-पित्तनाशक क्वाथोंके कवल (कुल्ले) कराना इत्यादि क्रमसे उस कर्णशोथको शीघ्र शांत करे २८३-२८४

शाखाश्रित ज्वरका उपचार।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाम्यति।
शाखानुसारीरक्तस्यसोऽवसेकात्प्रशाम्यति॥ २८५ ॥

जिस ज्वरकी शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि क्रिया करनेपर भी शांति न होय उस ज्वरको केवल दोषाश्रितही न समझे, वह शाखाओं (रक्तादि) के आश्रित होताहै इसलिये ऐसे ज्वरोंमें रक्तमोक्षण (फस्तखोलना) तथा औषधियोंके क्राथोंसे स्नान कराना हित होताहै ॥ २८५ ॥

विसर्पादिकोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वीसर्पेणाभिघातेनयश्चविस्फोटकैर्ज्वरः ।
तत्रादौसर्पिषःपानंकफपित्तोत्तरोनचेत् ॥ २८६ ॥

विसर्परोगसे तथा चोट लगनेसे अथवा विस्फोटक (फोडे शीतला) आदिसे उत्पन्नहुए ज्वरोमें यदि कफपित्तका अनुबंध न हो तो घृतोंका पिलानाही हितकर होताहै ॥ २८६ ॥

जीर्णज्वरमें चिकित्सा ।

दौर्बल्याद्देहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते ।
बल्यैःसबृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत् ॥ २८७ ॥

देहके धातुओंके दुर्बल होनेसेही जीर्णज्वर प्रगट होताहै इसलिये बलकारक बृंहण घृतादिकों द्वारा जीर्णज्वरोंको शांत करना चाहिये ॥ २८७ ॥

विषम ज्वरमें निर्देश ।

कर्मसाधारणंकुर्य्यात्तृतीयकचतुर्थके । आगन्तुरनुबन्धोहिप्रायशो विषमज्वरे । वातप्रधानंसर्पिर्भिर्वस्तिभिःसानुवासनैः ॥ २८८ ॥ स्निग्धोष्णैरनुपानैश्चशमयेद्विषमज्वरम् । विरेचनेनपयसासर्पिषा संस्कृतेनच ॥ २८९ ॥ विषमंतिक्तशीतैश्चज्वरंपित्तोत्तरं जयेत् । वमनंपाचनंरूक्षमनुपानंविलंघनम् ॥ २९० ॥ कषायोष्णश्चविषमेज्वरेशस्तंकफोत्तरे ॥ २९१ ॥

तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरमें वस्ति आदिक तथा औषधादिकों द्वारा साधार चिकित्सा करे । क्योंकि प्रायः विषमज्वरोंमें आगंतुक हेतुओंका भी अनुबंध होताहै यदि यह विषमज्वर वातप्रधान हो तो घृतों द्वारा तथा स्वेदन और अनुवास वस्तियों द्वारा एवं गर्म और चिकने अनुपानों द्वारा शांत करना चाहिये । य विषमज्वर पित्तप्रधान होय तो विरेचन द्वारा तथा तिक्त और शीतल द्रव्योंके क्का अथवा उनसे सिद्धकिये घृत दूधों द्वारा चिकित्सा करे । एवं कफप्रधान विषमज्वर

चमनकराना, पाचन और रूक्ष द्रव्योंके तथा कषैले और उष्ण द्रव्योंके काथ पिलाना एवं लंघन कराना हितकर होताहै ॥ २८८–२९१ ॥

विषमज्वरनाशक अन्य योग ।

योगाःपराःप्रवक्ष्यन्तेविषमज्वरनाशनाः । प्रयोक्तव्यामतिमतादोषादीन्प्रविभज्यये । सुरासमण्डपानार्थेभक्ष्यार्थेचरणायुधाः॥२९२॥ तित्तिरिश्चमयूरश्चप्रयोज्योविषमज्वरे । पिबेद्वाषट्पलंसर्पिरभयांवाप्रयोजयेत् ॥ २९३ ॥ त्रिफलायाःकषायंवागुडूच्यारसमेववा । नीलिनीमजगन्धाञ्चत्रिवृतांकटुरोहिणीम् ॥ २९४ ॥ पिबेज्ज्वरागमेयुक्त्यास्नेहस्वेदोपपादितः । सर्पिषोमहतींमात्रांपीत्वावाच्छर्दयेत्पुनः २९५ ॥ उपयुज्यान्नपानंवाप्रभूतंपुनरुल्लिखेत् । सान्नंमद्यंप्रभूतंवापीत्वास्वप्याज्ज्वरागमे ॥ २९६ ॥ आस्थापनंयापनंवाकारयेद्विषमज्वरे । पयसावृषदंशस्यशकृद्वातदहःपिबेत् ॥ २९७ ॥ वृषस्यदधिमण्डेनसुरयावाससैन्धवम् । पिप्पल्यास्त्रिफलायाश्चदध्नस्तक्रस्यसर्पिषः ॥ २९८॥ पञ्चगव्यस्यपयसःप्रयोगोविषमज्वरे । लशुनस्यसतैलस्यप्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥ २९९ ॥ मेध्यानामुष्णवीर्याणामामिषाणाञ्चभक्षणम् ॥ ३०० ॥

अब विषमज्वरनाशक अन्य उत्तम २ योगोंका कथन करतेहैं । जिन उत्तम योगों का प्रयोग दोषोंको अलग २ विचारकर बुद्धिमान् वैद्यको करना चाहिये । विषमज्वरमें पीनेके लिये सुरामण्ड देना चाहिये । भोजनके लिये–मुर्गा, तीतर और मोरका मांसरस देवे । अथवा सिद्ध षट्पल, घृत, हरडे, त्रिफलेका काथ, या गिलोयका रस, पिलावे । अथवा ज्वर आनेके समय रोगीको स्नेहन स्वेदन करके फिर नीलिनी, अजगंधा, निशोथ, कुटकी इनका कषाय करके पिलावे । अथवा पहले स्नेहन स्वेदन करके फिर अधिकमात्रासे घृत पिलाकर वमन करावे । अथवा अधिक मात्रासे अन्नपान खिलापिलाकर फिर वमन करावे । अथवा ज्वरके आगमनके समय अन्न और मद्यका भोजन करके विषमज्वरवाला मनुष्य सोजाय । अथवा उचित द्रव्योंसे सिद्ध की हुई दूध आदि औषधी द्वारा आस्थापन अथवा यापन वस्तिकर्म करे । अथवा जिसदिन ज्वरकी बारी हो उस दिन दूधके साथ बिल्लीकी विष्ठाको पीवे । अथवा बैलके गोबरका रस सेंधानमक मिलाके पीवे या दहीका मंड सेंधे नमक

युक्त करके अथवा सेंधानमकयुक्त सुरा पीवे । अथवा पीपल, त्रिफला, दही, छाछ इनसे सिद्धकिया घृत अथवा पंचगव्य और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत या दूधका पीना, विषमज्वरको शांत करताहै । अथवा भोजनके प्रथम लहसुनयुक्त तैलका सेवनकरे अथवा उष्णवीर्य पवित्र मांसोंका सेवन भी विषम ज्वरोंको शांत करता है. ॥ २९२–३०० ॥

विषमज्वरनाशक नस्य।

हिंगुतुल्यानुवैयाघ्रीवसानस्यंससैन्धवा ।
पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्वत्ससैन्धवा ॥ ३०१ ॥

अथवा हींग व्याघ्र की चरबी और सेंधानमक इन तीनोंको बराबर लेकर इनकी नस्य लेना भी विषमज्वरको शांत करताहै। एवं पुराना घृत शेर की चरबी, सेंधानमक मिलाकर नस्य (हुलास) लेना भी विषमज्वरको शांत करताहै ॥ ३०१ ॥

अंजन।

सैन्धवंपिप्पलीनाञ्चतण्डुलाःसमनःशिलाः ।
नेत्राञ्जनंतैलपिष्टंशस्यतेविषमज्वरे ॥ ३०२ ॥

सेंधानमक, मधु, पीपलके कणकें, मनशिल, इनको तेलमें पीसकर अंजन आँजना विषमज्वरको नाश करताहै ॥ ३०२ ॥

धूप।

पलङ्कषानिम्बपत्रंवचाकुष्टंहरीतकी ।
सर्षपाःसयवाःसर्पिर्धूपनंज्वरनाशनम् ॥ ३०३ ॥

गूंगल, नीमके पत्र, वच, कूठ, हरडेका छिलका, सरसों, जौ और घृत की धूप देना, विषमज्वरको नाश करताहै ॥ ३०३ ॥

अन्ययोग।

येधूमाधूपनंयच्चनावनञ्चाञ्जनञ्चयत् । मनोविकारेव्याख्यातंकार्य्यं तद्विषमज्वरे । मणीनामौषधीनाञ्चमङ्गल्यानांविषस्यच ॥ ३०४ ॥
धारणादगदानाञ्चसेवनान्नभवेज्ज्वरः ॥ ३०५ ॥

जो उन्माद तथा मृगीरोगके अधिकारमें कहेहुए धूम, धूपन, नस्य, अंजन आदि कर्म हैं वह सब कर्म विषमज्वरको शांत करते हैं । एवं मणियोंका धारण करना, मंगल औषधियोंका धारण करना, वच्छनाग आदि विष अथवा विषनाशक अंगदोंको धारण करना एवं विषनाशक अगदोंको सेवन करना भी विषमज्वरको शांत करताहै ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

गुरुजनादिकोंके शापसे तथा अभिचार (टोने मंत्रादिक) से अथवा भूतादिकोंके आवेशसे उत्पन्न हुए संपूर्ण ज्वरोंमें दैव व्यपाश्रय (दैवीयत्न) तथा दैवी औषधियोंको प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१३ ॥

अभिघातसे उत्पन्न ज्वरकी चिकित्सा ।

अभिघातज्वरोनश्येत्पानाभ्यंगेनसर्पिषः। रक्तावसेकैर्मद्यैश्चसात्म्यैर्मांसरसोदनैः। सानाहोमद्यसात्म्यानांमदिरारसभोजनैः ॥३१४॥

चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुए ज्वरमें घृतोंका पीना, और अभ्यंग करना, रक्तमोक्षण कराना, सात्म्य, मांसरस युक्त भोजन तथा मद्यका सेवन करना हितकारक होताहै । मद्य, सात्म्य मनुष्योंको यदि अफारायुक्त ज्वर हो तो मांसरस और मद्यके संग भोजन देना हितकारी होताहै ॥ ३१४ ॥

क्षतादिकोंसे उत्पन्नहुए ज्वरमें चिकित्सा ।

क्षतानांव्रणितानाञ्चक्षतव्रणचिकित्सया ॥ ३१५ ॥

उरक्षत और व्रणजन्य ज्वरमें क्षतरोग और व्रणरोगके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३१९ ॥

काम शोक भय क्रोधसे हुए ज्वरमें ।

आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेनच । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः । काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्चपित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः । सद्वाक्यैःशाम्यति ह्याशु ज्वरः क्रोधसमुत्थितः ॥ ३१६ ॥

काम, शोक और भयसे उत्पन्नहुए ज्वरोंमें आश्वासन (दिलासा) देना, इष्टवस्तुको प्राप्त करना, वायुको शांत करनेवाले यत्न करना, और हर्ष (आनंद) दायक वार्तोंका सुनाना हितकारक होताहै । क्रोधसे उत्पन्न हुए ज्वरमें इच्छित पदार्थोंकी प्राप्ति, मनोज्ञ तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा शान्तिदायक सद्वाक्यों द्वारा शान्ति करना भी क्रोधज्वरको शांत करताहै ॥ ३१६ ॥

कामात् क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात् कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ३१७ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुआ ज्वर-कामके उत्पन्न होनेसे शान्त होजाताहै । कामसे उत्पन्न हुआ ज्वर क्रोधके होनेसे शांत होजाताहै । इसीप्रकार भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर यह दोनों क्रोध और कामके उत्पन्न होनेसे शांत होजातेहैं ॥ ३१७ ॥

स्मृतिज्वरका यत्न ।

ज्वरकालश्च वेगश्च चिन्तयञ्ज्वर्य्यते तु यः ।
तस्येष्टैस्तु विचित्रैश्च विषयैर्नाशयेत् स्मृतिम् ॥ ३१८ ॥

जिस मनुष्यको ज्वरका समय चिंतन करनेसे कि मुझे दुपहरको ज्वर आवेगा इत्यादि शोच करते २ समयपर ज्वर आजाय तो उस मनुष्यको इच्छित वस्तुओंका देना, सुन्दर कथा कहानी सुनाकर वक्त टालदेना, और खेल आदिकमें भुला रखना हितकारक होताहै ॥ ३१८ ॥

ज्वरमुक्तिके पूर्वरूप ।

ज्वरप्रमोक्षे पुरुषः कूजन् वमति चेष्टते । श्वसन् विवर्णः स्विन्नाङ्गो वेपते लीयते मुहुः ॥ ३१९ ॥ प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गः शीताङ्गश्च भवत्यपि । विसंज्ञो ज्वरवेगार्त्तः सक्रोध इव वीक्षते ॥ ३२० ॥ सदोषशब्दश्च शकृद्द्रवं स्रवति वेगवत् । लिंगान्येतानि जानीयाज्ज्वरमोक्षे विचक्षणः ॥ ३२१ ॥

जब रोगीका ज्वर वेसमय मुक्त होने लगताहै उससे प्रथम रोगीके यह लक्षण होतेहैं जैसे आतोंका कूंजना, वमन, अंगोंका इधर उधर हिलाना, श्वास, विवर्णता, सब अंगोंमें स्वेदआना, कंप, वार २ जडता प्राप्तहोना, वकवाद, सब अंगोंका अत्यंत गर्म अथवा शीत होना, वेहोशी, ज्वरके वेगसे व्याकुलता, क्रोधयुक्तके समान देखना, दुर्गंधयुक्त और शब्दके साथ वेगपूर्वक पतला दस्त आना यह लक्षण ज्वरमोक्षके समय होतेहैं । सो बुद्धिमान् वैद्यको जानना चाहिये ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥ ३२१ ॥

बहुदोषस्यवलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः ।
सत्क्रियादोषपक्त्याचेद्विमुश्चतिसुदारुणम् ॥ ३२२ ॥

प्रायः उपरोक्त लक्षण तब होते हैं जब बहुत दोषयुक्त बलवान तथा नवीन ज्वरको दोषोंके विना पकाए औषधों द्वारा शांत कियाजाय तब यह दारुण लक्षण होते हैं ॥ ३२२ ॥

समयपर ज्वरमुक्तिके लक्षण ।

कृत्वादोषवशाद्वेगंक्रमादुपरमन्तिये । तेषामदारुणोमोक्षोज्वराणां चिरकारिणाम् ॥ ३२३ ॥ विगतक्लमसन्तापमव्यथंविमलेन्द्रियम । युक्तंप्रकृतिसत्त्वेनविद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥ ३२४ ॥

परंतु दोषोंका परिपाक होकर लंघनादि क्रमद्वारा समयपर मोक्ष होताहै तो ज्वर मुक्तिके समय उपरोक्त दारुण लक्षण नहीं होते किंतु यह लक्षण होते हैं जैसे क्लांति दूर होजाना, संताप न रहना, शरीरमें व्यथा न रहना, सब इंद्रियोंका निर्मल होना, मन प्रसन्न होना, संपूर्ण भाव प्रकृतिस्थ होना यह विगतज्वर मनुष्यके अर्थात् ज्वर छूटजानेके लक्षण होतेहैं ॥ ३२३ ॥ ३२४ ॥

ज्वरमुक्तके त्याज्य विषय ।

सज्वरोज्वरमुक्तश्चविदाहीनिगुरूणिच । असात्म्यान्यन्नपानानि विरुद्धानिविवर्जयेत् ॥ ३२५ ॥ व्यवायमतिचेष्टाश्चस्नानमत्यशनानिच । तथाज्वरःशमंयातिप्रशान्तोजायतेनच ॥ ३२६ ॥

ज्वरयुक्त मनुष्यको अथवा ज्वरमुक्त होनेपर भी विदाही, भारी और असात्म्य तथा विरुद्ध अन्नपानोंको त्यागदेना चाहिये । एवं मैथुन, अधिक चेष्टा (चलना फिरना), एकसाथ अधिक बैठा रहना, अथवा अधिक देरतक स्नानकरना और अधिक भोजन करना त्याग देना चाहिये । तथा ऐसे उपाय करने चाहिये जिनसे ज्वर चढा हो तो शांत होजाय और ज्वर उतर गया हो तो फिर न आवे ॥ ३२५ ॥ ३२६ ॥

व्यायामञ्चव्यवायञ्चस्नानंचंक्रमणानिच ।
ज्वरमुक्तोनसेवेतयावन्नबलवान्भवेत् ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्त मनुष्य जबतक बलवान् न होजाय तबतक व्यायाम (दंड कसरत), मैथुन, स्नान और अधिक घूमना त्याग देवे ॥ ३२७ ॥

ज्वरमुक्तके कुपथ्यसेवनके दोष ।

असञ्जातबलोयस्तुज्वरमुक्तोनिषेवते । वर्ज्यमेतन्नरस्तस्यपुनरावर्त्ततेज्वरः ॥ ३२८ ॥ दुर्हृतेषु च दोषेषु यस्य वा विनिवर्त्तते । स्वल्पेनाप्यपचारेणतस्यव्यावर्तते पुनः ॥ ३२९ ॥ चिरकालपरिक्लिष्टं दुर्बलं दीनचेतसम् । अचिरेणैव कालेन स हन्ति पुनरागतः ॥ ३३० ॥

यदि ज्वरसे मुक्त होनेपर मनुष्य विना बल प्राप्तहुए व्यायामादि कुपथ्य सेवन करताहै तो उस मनुष्यको ज्वर फिर उत्पन्न होजाताहै। जो ज्वर अनुचित रीतिसे हरण कियाजानेपर शांत होजाताहै वह अत्यंत अल्प अपथ्य होनेसे भी फिर प्रगट होजाताहै।

१ स्थानमितिपाठान्तरम् ।

यह फिर आयाहुआ ज्वर मनुष्यको वहुत कालतक क्लेशित करके दुर्वल आर दीनचित्त वनाकर शीघ्र ही नष्ट कर डालताहै ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥ ३३० ॥

अथवापि परीपाकं धातुष्वेव क्रमान्मलाः। यान्ति ज्वरमकुर्वन्तस्ते तथाप्यपकुर्वते ॥ ३३१ ॥ दीनतां श्वयथुं ग्लानिं पाण्डुतां नान्नकामताम्। कण्डूरुत्कोठपिडकाः कुर्वन्त्यग्निञ्च ते मृदुम् ॥ ॥ ३३२ ॥ एवमन्येऽपि च गदा व्यावर्त्तन्तेपुनर्गताः। अनिर्घातेन दोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम् ॥ ३३३ ॥

अथवा ज्वरमुक्त मनुष्यके कुपथ्य सेवनसे दोष-ज्वरको उत्पन्न किये विना भी रसादिक धातुओंमें प्राप्त होकर उन धातुओंका परिपाक करते हैं। फिर रसादिक धातुओंके परिपाक होनेसे-दीनता, सूजन, ग्लानि, पाण्डुता, अन्नमें अरुचि, खाज, उत्कोठ, पिडका और मंदाग्नि यह रोग उत्पन्न होजातेहैं तथा इसीप्रकार अन्य रोगभी फिर आकर प्रवृत्त होजातेहैं। यह सव ज्वरमुक्त मनुष्योंके थोडेसे कुपथ्य करनेसे भी फिर आकर प्रकट होजातेहै ॥ ३३१ ॥ ३३२ ॥ ३३३ ॥

ज्वरमुक्तहोनेपर कर्तव्य।

निवृत्तेऽपि ज्वरे तस्माद्यथावस्थंयथाबलम्। यथाप्राणं हरेद्दोषं प्रयोगैर्वा शमं नयेत् ॥ ३३४ ॥ मृदुभिःशोधनैःशुद्धिर्यापनावस्तयोहिताः। हिताश्चलघवोयूपाजाङ्गलामिषजारसाः ॥ ३३५ ॥

इसलिये ज्वर छूटजानेपर भी अवस्था, वल और प्राणोंकी शक्तिके अनुसार दोषादि विचारकर प्रमाणानुसार क्रमसे दोषोंका हरण करे अथवा योग्य औषधियों द्वारा दोषोंको इसप्रकार शमन करे जिससे वह फिर कुपित न होने पावे, अथवा मृदु शोधनो द्वारा शरीरको शोधन करे और यापन, वस्तिकर्म करना भी हितकारक है तथा हलके यूषोंको पीना और जांगलजीवोंका मांसरस भोजन करना हितकारक है ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

पुनरागत ज्वरकी चिकित्सा।

अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्नानधूपनाभ्यञ्जनानिच। हितानिपुनरावृत्तेज्वरेतिक्तघृतानिच ॥ ३३६ ॥ गुर्व्यभिष्यन्दसात्म्यानांभोजनात्पुनरागते। लंघनोष्णोपचारादिः क्रमःकार्य्यश्चपूर्ववत् ॥ ३३७ ॥

पुनरागतज्वरमें योग्य औषधोंसे सिद्ध किये हुए तेलोंकी मालिश, उवटना, औष-

धोंसे स्नान, धूपन, अंजन और पंच तिक्तक घृतादिकोंका प्रयोग करना हितकारक होताहै यदि भारी, अभिष्यंदी और असात्म्य भोजन करनेसे फिर: ज्वर होगयाहो तो पहलेकी समान लंघन और उष्ण उपचारादि कर्म करे ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥

अन्य योग।

किराततिक्तकंतिक्तामुस्तंपर्पटकोऽमृता ।
घ्नन्तिपीतानिचाभ्यासात्पुनरावर्त्तकंज्वरम् ॥ ३३८ ॥

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, पापडा और गिलोय इनका क्वाथ अथवा इनसे सिद्ध घृत नित्य पीनेसे पुनरागत ज्वर नष्ट होजाताहै ॥ ३३८ ॥

वैद्यको उपदेश।

तस्यांतस्यामवस्थायांज्वरितानांविचक्षणः ।
ज्वरक्रियाक्रमापेक्षीकुर्य्याच्चन्नचिकित्सितम् ॥ ३३९ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि फिरसे आयेहुए ज्वरमें तथा अन्यान्य ज्वरोंमें भी ज्वरकी जैसी २ अवस्था हो उसकी उसी २ अवस्थाको विचारकर क्रमपूर्वक चिकित्सा करे ॥ ३३९ ॥

रोगराट्सर्वभूतानामन्तकृद्दारुणोज्वरः ।
तस्माद्विशेषतस्तस्ययतेतप्रशमंभिषगिति ॥ ३४० ॥

ज्वर संपूर्ण रोगोंका राजा है यह दारुण ज्वर ही संपूर्ण मनुष्योंको नष्ट करनेवालाहै इसलिये वैद्यको ज्वरकी शांतिके लिये विशेषतासे यत्न करना चाहिये ॥ ३४० ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवतिचात्र । यथाक्रमंयथाप्रश्नमुक्तंज्वरचिकित्सितम् । अत्रिजे-
नाग्निवेशायभूतानांहितमिच्छता ॥ ३४१ ॥

इति म०च०चिकित्सितस्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोध्यायः ३

अध्यायकी पूर्तिमें एक श्लोक है कि इसप्रकार भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशके प्रश्नानुसार क्रमपूर्वक संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये ज्वरोंकी चिकित्साका वर्णन कियाहै ॥ ३४१ ॥

इति श्रीमहर्षि चरक०चिकित्सितस्थाने भाषाटीकायां ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

रक्तपित्तचिकित्सितम् ।

अथातो रक्तपित्त चिकित्सितं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम रक्तपित्तचिकित्साका कथन करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अग्निवेशका प्रश्न ।

विहरन्तंजितात्मानंपञ्चगंगेपुनर्वसुम् । प्रणम्योवाचनिर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥ भगवन्रक्तपित्तस्यहेतुरुक्तःसलक्षणः । वक्तव्यंयत्परंतस्यवक्तुमर्हसितद्गुरो ॥ २ ॥

एक समय पंचगंग (पंजाब) के पहाडोंपर विचरतेहुए अग्निके समान तेजस्वी मोहरहित भगवान् पुनर्वसुजीको प्रणामपूर्वक अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! आपने रक्तपित्तके हेतु और लक्षणोंको तो कथन करदियाहै परंतु हे गुरो ! इस (रक्तपित्त) के विषयमें अन्य भी जो कुछ कहना योग्य हो सो भी कथन कीजिये ॥ १ ॥ २ ॥

पुनर्वसुजीका उत्तर ।

गुरुरुवाच ।

महागदंमहावीर्य्यमग्निवच्छीघ्रकारिच ।
हेतुलक्षणविच्छीघ्रंरक्तपित्तमुपाचरेत् ॥ ३ ॥

हेतु और लक्षणोंके जाननेवाले वैद्यको उचित है कि इस महाभयंकर बलवान् तथा अग्निके समान शीघ्र शरीरको नष्ट करनेवाले रक्तपित्तरोगकी शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

रक्तपित्तकी संप्राप्ति और निरुक्ति ।

तस्योष्णंतीक्ष्णमम्लञ्चकटूनिलवणानिच । घर्मश्चान्नविदाहश्चहेतुः पूर्वंनिदर्शितः ॥ ४ ॥ तैर्हेतुभिःसमुद्दिष्टंपित्तंरक्तंप्रपद्यते । तद्योनित्वात्प्रपन्नञ्चवर्द्धतेतत्प्रदूषयेत् ॥ ५ ॥

गरम, तीक्ष्ण, अम्ल, कटु और नमकीन पदार्थोंका अधिक सेवन करना तथा धूप, गर्मी, विदाही द्रव्योंका सेवन करना यह रक्तपित्तरोगको उत्पन्न करनेवाले

कारण हैं यह तो पहले कथन करचुकेहैं इन कारणोंसे कुपित और उत्तेजित हुआ पित्त रक्तको दूषित कर रक्तमें ही मिलजाताहै फिर वह रक्तयुक्त वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ ५ ॥

तस्योष्मणांद्रवोधातुर्धातोर्धातोःप्रसिच्यते। स्विद्यतस्तेनसंवृद्धिं भूयस्तदधिगच्छति ॥ ६ ॥ संयोगाद्दूषणात्ततुसामान्याद्गन्धवर्णयोः। रक्तस्यपित्तमाख्यातंरक्तपित्तंमनीषिभिः ॥ ७ ॥

पित्तकी गर्मीसे संपूर्ण धातुएँ स्वेदित होकर उनका द्रवीभूत अंश उस पित्तमें मिलजाताहै उससे वह पित्ततुल्य स्वभाववाला होनेसे और भी वृद्धिको प्राप्त होताहै। वह पित्तके संयोगसे और रक्तके गंध तथा वर्णके तुल्य होनेसे एवं रक्त और पित्तकी तुल्यता होनेसे उस दूषित रक्तपित्तके संयोगसे उत्पन्नहुए रोगको बुद्धिमान् रक्तपित्त कहतेहैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तपित्तके अधिष्ठान।

प्लीहानञ्चयकृच्चैवतदधिष्ठायवर्त्तते।
स्रोतांसिरक्तवाहीनितन्मूलानिहिदेहिनाम् ॥ ८ ॥

उस रक्तपित्तके प्लीहा (तिल्ली) और यकृत् (जिगर) अधिष्ठान हैं क्योंकि, देहधारियोंके रक्तवाही स्रोतोंके मूल प्लीहा और यकृत् ही हैं ॥ ८ ॥

दोषभेदसे रक्तपित्तके लक्षण।

सान्द्रंसपाण्डुसस्नेहंपिच्छिलञ्चकफान्वितम्। श्यावारुणंसफेनञ्च तनुरूक्षञ्चवातिकम् ॥ ९ ॥ रक्तपित्तंकषायाभंकृष्णंगोमूत्रसन्निभम्। मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥ १० ॥ संसृष्टलिंगं संसर्गात्त्रिलिंगंसान्निपातिकम् ॥ ११ ॥

यदि वह रक्तपित्त सांद्र, पांडुवर्ण, चिकना और गाढा हो तो कफप्रधान रक्तपित्त जानना और नीला, लाल, झागदार, थोडा और रूक्ष हो तो वातप्रधान जानना। एवं कषायवर्ण, काला, गोमूत्रके समान चमकदार, धूंवेके वर्णका, अथवा अंजनके समान वर्णवाला हो तो पित्तप्रधान होताहै। कफप्रधान रक्तपित्त मुख, नाक आदि ऊपरके भागोंसे प्रवृत्त होताहै। और वायुकी प्रधानतासे अधोभाग (गुदा, लिंग) द्वारा निकलताहै। पित्तप्रधान रक्तपित्त सब भागोंसे प्रवृत्त होताहै। यदि दो दोषोंके लक्षणोंवाला हो तो द्विदोषज जानना। तीनों दोषोंके लक्षणोंवाला सन्निपातसे हुआ रक्तपित्त होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

रक्तपित्तकी साध्यासाध्यता ।

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते। यत्त्रिदोषमसाध्यंतन्मन्दाग्नेरतिवेगवत् । व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यानश्नतश्चयत् ॥१२॥

एकदोषयुक्त रक्तपित्त साध्य होताहै। दो दोषोंवाला कष्टसाध्य होताहै और त्रिदोषज रक्तपित्त असाध्य होताहै । तथा रोगोंसे दुबले पतले मनुष्यका और मंदाग्निवालेका तथा वृद्धका, एवं जिसकी आहारशक्ति नष्ट होगई हो उसका वेगयुक्त रक्तपित्त असाध्य होताहै ॥ १२ ॥

मार्गभेदसे साध्यासाध्य ।

गतिरूर्द्ध्वमधश्चैवरक्तपित्तस्यदर्शिता । उर्द्ध्वासप्तविधाद्वाराद्विद्वारात्वधरागतिः ॥ १३ ॥ सप्तच्छिद्राणिशिरसिद्वेचाधःसाध्यमूर्द्ध्वगम् । याप्यन्त्वधोगमंमार्गौद्वावसाध्यंप्रपद्यते ॥ १४ ॥

रक्तपित्तकी ऊर्ध्वगति और अधोगति इन भेदोंसे दो प्रकारकी गति कहीहैं । उनमें दो नासिका, दोनों नेत्र, दोनों कान, एक मुख यह सात मार्ग ऊर्द्धभागके हैं और गुदा, लिंग यह दो मार्ग अधोभागके हैं । उर्द्धभागके मार्गोंसे गमन करनेवाला रक्तपित्त साध्य है । अधोगामी कष्टसाध्य होताहै और दोनों भागोंसे गमन करनेवाला असाध्य होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

यदातुसर्वच्छिद्रेभ्योरोमकूपेभ्यएवच ।
वर्त्ततेतामसंख्येयांगतिंतस्याहुरन्तिकीम् ॥ १५ ॥

जिस रक्तपित्तकी संपूर्ण छिद्रों और रोममार्गसे प्रवृत्ति हो उस असंख्येय गतिवाले रक्तपित्तको रोगीका अंत करनेवाला जानना ॥ १५ ॥

यच्चोभयाभ्यांमार्गाभ्यामतिमात्रंप्रवर्त्तते । तुल्यंकुणपगन्धेनरक्तंकृष्णमतीवच ॥ १६ ॥ संसृष्टंकफवाताभ्यांकण्ठेसज्जतिचापियत् । यच्चाप्युपद्रवैःसर्वैर्यथोक्तैःसमभिद्रुतम् ॥ १७ ॥ हारिद्रनीलहारिततताम्रैर्वर्णैरुपद्रुतम् । क्षीणस्यकासमानस्ययच्चतच्चनसिद्ध्यति ॥ १८ ॥

जो रक्तपित्त अधोमार्ग और ऊर्ध्वमार्ग इन दोनों ओर अधिक वेगसे प्रवृत्त हो, रक्तमें मुर्देकीसी गंध आवे, रक्त अत्यंत काला हो, कफ वायुसे युक्त हो, कंठमें अत्यंत रुकावटसी होकर रुधिरकी प्रवृत्ति हो, जिसमें संपूर्ण उपद्रव होगये हों तथा

वह रक्तपित्त हलदीके वर्णवाला, नीला, हरा, ताम्रवर्णका उपद्रवयुक्त हो, उससे मनुष्य क्षीण होगयाहो तथा खांसीसे युक्त हो वह रोगी किसी प्रकारके यत्नसे भी नहीं बचसकता ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

याप्य साध्य ।

यद्विदोषानुगंयद्वाशान्तंशान्तंप्रकुप्यति ।
मार्गान्मार्गंचरेद्यद्वायाप्यंपित्तमसृक्चतत् ॥ १९ ॥

जो रक्तपित्त दो दोषोंसे युक्त हो, और शांत होहोकर फिर कुपित होताहो पहले एक मार्गसे फिर दूसरे मार्गसे प्रवृत्त हो वह रक्तपित्त याप्य साध्य होताहै ॥ १९ ॥

साध्य रक्तपित्तके लक्षण ।

एकमार्गंबलवतोनातिवेगंनवोत्थितम् ।
रक्तपित्तंसुखेकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥ २० ॥

जो रक्तपित्त एकमार्गगामी हो और बलवान् मनुष्यका हो, थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुवा हो, और उपद्रवरहित हो तथा अच्छे समयमें प्रकटहुआ हो तो साध्य होताहै ॥ २० ॥

उभयमार्गगमनके कारण ।

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षञ्चरक्तपित्तस्यकारणम् ।
अधोगस्योत्तरंप्रायःपूर्वंस्यादूर्द्ध्वगस्यतु ॥ २१ ॥

उर्द्धगामी रक्तपित्तके उष्ण स्निग्ध कारण होतेहैं और अधोगामी रक्तपित्तके उष्ण रूक्ष कारण होतेहैं ॥ २१ ॥

उर्द्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतानुगम् ।
द्विमार्गंकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवध्यते ॥ २२ ॥

कफसे संमिलित रक्तपित्त ऊपरके मार्गोंसे गमन करताहै । वायुसे संमिलित रक्तपित्त अधोमार्गोंसे गमन करताहै । यदि कफ और वायु इन दोनोंसे संमिलित हो तो दोनों ओरके मार्गोंसे प्रवृत्त होताहै ॥ २२ ॥

चिकित्साक्रम ।

अक्षीणबलमांसस्यरक्तपित्तंयदश्नतः ।
तद्दोषदुष्टमुत्क्लिष्टंनादौस्तम्भनमर्हति ॥ २३ ॥

जिस रोगीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो और जठराग्नि बलवान् हो ऐसे रोगीके बढेहुए दोषयुक्त उदीर्ण (निकलेहुए) रक्तपित्तको रोकना नहीं चाहिये ॥२३॥

रक्तपित्तके वेगको प्रथमही रोकदेनेके दोष ।

गलग्रहंपूतिनस्यंमूर्च्छायमरुचिंज्वरम् । गुल्मंप्लीहानमानाहंकिलासंकृच्छमूत्रता ॥ २४ ॥ कुष्ठान्यर्शांसिवीसर्पंवर्णनाशंभगन्दरम् । बुद्धीन्द्रियोपरोधश्चकुर्य्यात्स्तम्भितमादितः ॥ २५ ॥

यदि रक्तपित्तके वेगको प्रगट होते ही रोकदेवे तो उससे गलग्रह, नाकसे दुर्गंध आना, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा (तिल्ली), अफारा, किलास, मूत्रका कष्टसे उतरना, कुष्ठ, ववासीर, विसर्प, वर्णका विगडना, भगंदर, बुद्धि और इन्द्रियोंका उपरोध, यह उपद्रव प्रथम ही रक्तपित्तके रोकदेनेसे प्रकट होजातेहैं ॥२४॥२५॥

तस्मादुपेक्ष्यंवलिनोवलदोषविचारिणा । रक्तपित्तंप्रथमतःप्रवृद्धंसिद्धिमिच्छता ॥ २६ ॥ प्रायेणहिसमुत्क्लिष्टमामदोषाच्छरीरिणाम् । वृद्धिंप्रयातिपित्तासृक्तस्माल्लङ्घनमादितः ॥ २७ ॥ मार्गदोषानुवन्धश्चनिदानंप्रसमीक्ष्यच । लंघनंरक्तपित्तादौतर्पणंवाप्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

इसलिये सिद्धकार्यकी इच्छा करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य दोष वल विचारकर वलवान् मनुष्यके रक्तपित्तको प्रथम हीं रोक देनेका यत्न न करे । क्योंकि मनुष्योंके शरीरमें चलाहुआ रक्तपित्त प्रायः आमदोषसे ही वृद्धिको प्राप्त होताहै इस कारण प्रथम रक्तपित्तमें लंघन करना चाहिये । तथा रक्तपित्तके मार्ग और दोषोंको विचार कर एवं उसके निदानको विचारकर प्रथम लंघन अथवा तर्पण करना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

रक्तपित्तमें तृषाकी शांतिके लिये जल ।

ह्रीवेरंचन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैःशृतम् ।
केवलंशृतशीतंवादद्यात्तोयंपिपासवे ॥ २९ ॥

सुगंधवाला, लालचंदन, खस, नागरमोथे, और पापडा इन सबको मिलाकर पकायाहुआ जल ठंढा करके अथवा केवल जल पकाकर ठंढा होनेपर रक्तपित्तवाले रोगीको प्यासकी शांतिके लिये पिलावे ॥ २९ ॥

तर्पण और पेयाका निर्देश ।

ऊर्द्ध्वगेतर्पणंपूर्वं पेयांपूर्वमधोगते ।
कालसात्म्यानुवन्धज्ञोदद्यात्प्रकृतिकल्पवित् ॥ ३० ॥

काल, सात्म्य, दोषोंका अनुबंध और प्रकृतिके विभागको जाननेवाला वैद्य उर्द्ध्वगत रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवे और अधोगत रक्तपित्तमें पहले पेया पिलावे ॥३०॥

तर्पण ।

जलंखर्ज्जूरमृद्वीकामधूकैःसपरूषकैः । शृतशीतंप्रयोक्तव्यंतर्पणार्थेसशर्करम् ॥ ३१ ॥ तर्पणंसघृतक्षौद्रंलाजाचूर्णैःप्रयोजयेत् । ऊर्द्ध्वगंरक्तपित्तंतत्पीतंकालेऽव्यपोहति ॥ ३२ ॥

खजूर, मुनक्का, महुवेके फूल और फालसे डालकर पकाएहुए जलको ठंडा करके उसमें मिसरी मिलाकर तर्पणके लिये रक्तपित्तवालेको पिलावे ॥ ३१ ॥ अथवा धानकी खीलोंके चूर्णसे बनाया हुआ तर्पण घृत और शहद मिलाकर पिलावे । यह दोनों प्रकारके तर्पण समय पर प्रयोग कियेजायँ तो ऊर्ध्वगत रक्तपित्तको जडसे नष्ट कर देतेहैं ॥ ३२ ॥

रक्तपित्तमें खटाई ।

मन्दाग्नेरम्लसात्म्यायतत्साम्लमपिकल्पयेत् ।
दाडिमामलकैर्विद्यादम्लार्थंश्चानुदापयेत् ॥ ३३ ॥

जो रोगी मंदाग्निवाला हो और उसको खटाई सात्म्य (अनुकूल) हो तो इन उपरोक्त तर्पणोंमें खटाई मिलादेना चाहिये । रक्तपित्तमें खटाईके लिये अनार अथवा आँवलेका रस प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३३ ॥

रक्तपित्तमें अन्न ।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः ।
श्यामाकश्चप्रियंगुश्चभोजनंरक्तपित्तिनाम् ॥ ३४ ॥

शालीचावल, साठीचावल, नीवार, कोदो, प्रशांतिक चावल, कांगुनीके चावल और शौकके चावलका भात भोजनके लिये रक्तपित्तमें देना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तपित्तमें यूष ।

मुद्रामसूराश्चणकाःसमकुष्ठाढकीफलाः ।
प्रशस्ताःसूपयूषार्थेकल्पितारक्तपित्तिनाम् ॥ ३५ ॥

मूंग, मसूर, चना, मोठ और अरहरकी दाल बनाकर रक्तपित्तके रोगमें देना चाहिये ॥ ३५ ॥

रक्तपित्तमें शाक ।

पटोलनिम्ववेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः । किराततिक्तकंशाकंगण्डीरः

सकटिल्लकः ॥ ३६ ॥ कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्य्यस्याथशा-
ल्मलेः । अन्नपानविधौशाकंयच्चान्यद्रक्तपित्तनुत् ॥ ३७ ॥ शाका-
र्थेशाकसात्म्यानांतच्छस्तंरक्तपित्तिनाम् । स्विन्नंवासर्पिषाभृष्टंयू-
षवद्वाविपाचितम् ॥ ३८ ॥

पटोलपत्र, नीमके पत्ते, (मधुनिम्ब), वेतकी कोंपल, पिलखनके पत्र, न्यूंसके पत्र और चिरायतेके पत्रोंका शाक तथा-करेला, गंडीर, लालकचनारकी कली, कुम्भेरके फूल और सेमलकी कलियोंका शाक देना चाहिये एवं अन्य भी अन्नपान विधिमें कहेहुए जो जो अन्न पान रक्तपित्तनाशक हो सो देने चाहिये । जिनको शाक प्रिय हो ऐसे रक्तपित्तके रोगीको रक्तपित्तनाशक शाक स्वेदितकर घृतमें भूनकर अथवा दालके समान पकाकर देना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मांसरस ।

पारावतान्कपोतांश्चलावान्रक्ताक्षवर्त्तकान् । शशान्कपिञ्जलाने-
णान्हरिणान्कालपुच्छकान् ॥ ३९ ॥ रक्तपित्तहितान्विद्याद्र-
सांस्तेषांप्रयोजयेत् । ईषदम्लाननम्लान्वाघृतभृष्टान्सशर्करान् ॥४०॥

रक्तपित्तमें पारावत, कबूतर, लवा, चकोर, बटेर, खगोश, तीतर, एणहिरन, हिरन और कालपुच्छ हिरन, इनका मांसरस हित है। यह मांसरस अनारकी खटाईसे किंचित् खट्टा करके अथवा विना खटाई घृतमें भूनकर मिसरीयुक्त करके देवे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

कफानुगेयूषशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ।
रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पः प्रवक्ष्यते ॥ ४१ ॥

यदि रक्तपित्तमें कफ भी निकलताहो तो उसमें रक्तपित्तके हरनेवाले यूष (दाल) और शाक भोजनमें देवे । और वातानुगामी रक्तपित्तमें मांसरस देवे। जो जो यवागू रक्तपित्तमें हितकारक हैं अब उनकी कल्पनाको कहतेहैं ॥ ४१ ॥

रक्तपित्त नाशक यवागुवोंका वर्णन ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियंगुकाः । जलेसाध्यरसेतस्मि-
न्पेयास्याद्रक्तपित्तिनाम् ॥ ४२ ॥ चन्दनोशीरलोध्राणांरसेतद्व-
त्सनागरे । किराततिक्तकोशीरमुस्तानांतद्वदेवच ॥ ४३ ॥

लालकमलकी केशर, नीलकमलकी केशर, पृष्ठपर्णी और प्रियंगुमें सिद्धकिये जलमें बनाई हुई पेया रक्तपित्तवाले रोगीको हितकारक है अथवा चंदन, खस

लोध और नागरमोथेके जलमें बनाईहुई पेया, अथवा चिरायता, खस और नागर मोथेसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

धातकीधन्वयासाम्बुबिल्वानांवारसेशृताः । मसूरपृश्निपर्ण्योर्वा स्थिरा मुद्गरसेनवा ॥ ४४ ॥ रसेहरेणुकानांवासघृतेसबलारसे । सिद्धाःपारावतादीनांरसेवास्युः पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥ इत्युक्ता रक्तपित्तघ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः । यवाग्वःकल्पनाचैषांकार्य्या मांसरसेष्वपि ॥ ४६ ॥

इसीप्रकार धावेके फूल, जवासा, नेत्रवाला और बेलगिरीसे सिद्ध किये जलमें बनाई हुई पेया भी रक्तपित्तरोगमें हितकारक है एवम् मसूर और पृष्ठपर्णीसे सिद्ध जलमें, या शालपर्णी और मूंगसे सिद्ध जलमें बनाई हुई पेया, अथवा हरेणुसे सिद्ध जलमें या घृतयुक्त बला (खरेटी) के जलमें सिद्ध की हुई पेया रक्तपित्त रोगमें देना चाहिये । अथवा पारावत आदिक पहले कहे हुए मांसरसोंमें सिद्ध की हुई अलग२ पेया देना चाहिये । यह सब प्रकारकी पेया शीतल करके मिसरी अथवा शहद मिलाकर रक्तपित्तकी शांतिके लिये देना चाहिये । इसप्रकार यवागुओंकी कल्पना कहीगईहै यह कल्पना इसी प्रकार मांसरसोंकी भी करनी चाहिये ४४-४६

रक्तपित्तमें रसोंकी विशेष कल्पना ।

शशःसवास्तुकःशस्तोविबन्धेरक्तपित्तिनाम् । वातोल्बणेतित्तिरिः स्यादुदुम्बररसेशृतः ॥ ४७ ॥ मयूरःप्लक्षनिर्यूहेन्यग्रोधस्यचकुक्कुटः । रसेबिल्वोत्पलादीनांवर्त्तकक्रकरौहितौ ॥ ४८ ॥

यदि रक्तपित्तरोगमें मलका विबंध होजाय तो बथुवेके शाकसे सिद्ध किये जलमें बनाहुआ खरगोशका मांसरस पिलावे वा वातप्रधान रक्तपित्तमें गूलरसे सिद्ध जलमें बनाया हुआ तीतरका मांसरस देवे अथवा पिलखनके सिद्धजलमें बनायाहुआ मोरका मांस या बडके छिलकोंसे सिद्ध किये जलमें बनायाहुआ मुरगेका मांसरस, अथवा बेलके काथमें और नीलकमलादिकोंके काथमें बनायाहुआ बटेर और क्रकरका मांसरस वातप्रधान रक्तपित्तमें हितकारक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

रक्तपित्तमें तृपानाशक योग ।

तृप्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृष्णाघ्नंवाफलोदकम् । सिद्धंविदारिगन्धाद्यै-रथवाशृतशीतलम् ॥ ४९ ॥ ज्ञात्वादोषावनुबलोबलमाहारमेवच । जलंपिपासवेदद्यादिसर्गादल्पशोऽपिवा ॥ ५० ॥

रक्तपित्तके रोगीकी तृषा शांत करनेके लिये तिक्तगणसे सिद्धकियाहुआ जल अथवा अनार आँवला या फालसेका शर्वत या अंगूरकी शर्वत या इनसे सिद्ध किया हुआ जल अथवा शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध कियाहुआ जल ठंढा करके देना चाहिये। रक्तपित्तरोगीके दोष, वल और आहार शक्तिको विचारकर प्यासकी शांति के लिये थोडा २ अथवा अधिक या जिससे जितना उचित हो पीनेको उक्त जल देवे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

रक्तपित्तमें अन्य उपदेश।

निदानंरक्तपित्तस्ययत्किञ्चित्संप्रकाशितम् । जीवितारोग्यकामै-स्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः ॥ ५१ ॥ इत्यन्नपानंनिर्दिष्टं क्रमशो रक्त-पित्तिषु । वक्ष्यतेवहुदोषाणांकार्य्यंवलवताञ्च यत् ॥ ५२ ॥

जिन द्रव्योंके सेवनसे रक्तपित्त रोगकी उत्पत्ति होतीहे जो रक्तपित्तके निदानस्थानमें कारण कहेहैं जीवन और आरोग्यता (तंदुरुस्ती) की इच्छावाले रक्तपित्तरोगीको उन सवका त्याग करदेना चाहिये इस प्रकार जो अन्नपान रक्तपित्तरोगमें हित कारकहैं उनका वर्णन किया गयाहै अव वहुत दोषयुक्त वलवान् रक्तपित्तरोगियोंके लिये चिकित्साके क्रमको कहतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

वमनविरेचनका निर्देश।

अक्षीणवलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम् । वहुदोषंवलवतोरक्त-पित्तंशरीरिणः ॥ ५३ ॥ कालेसंशोधनार्हस्यतद्धरेन्निरुपद्रवम् । विरेचनेनोर्द्ध्वभागमधोगंवमनेनच ॥ ५४ ॥

जिस रक्तपित्तवाले रोगीका वल और मांस क्षीण न हुआहो तथा संतर्पणजनित (दिनमें अधिक सोने आदिसे स्थूल शरीरवाले मनुष्यका), रक्तपित्त एवं जिस मनुष्यका शरीर वलवान् हो, जिसके शरीरमें दोष वढेहुए हों तथा जो मनुष्य संशोधनके योग्य हो ऐसे रक्तपित्तरोगीका रक्तपित्त यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसको उचित समयमें संशोधन करावे। यदि ऊर्द्धगामी रक्तपित्त हो तो विरेचनद्वारा नरम सा शोधन करे और अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करावे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

---

१ यद्यपि ऊर्द्धगामी रक्तपित्तमें विरेचन कराना लिखाहै अधोगामी रक्तपित्तमें वमन कराना कहाहै परंतु यह निर्देश केवल रक्तपित्तके वेगोंको शांत करनेके लिये है। यदि अधोगामी रक्तपित्तमें मलाशय दोषयुक्त हो तो मृदुविरेचन द्वारा दोष निकालडालना चाहिये। और आमाशय दूषित होय तो ऊर्द्धगत रक्तपित्तमें भी वमन कराना हितकर है, परंतु यह सब क्रिया समय और युक्तिके विचारपर निर्भर है ॥

रक्तपित्तमें विरेचकद्रव्य।

त्रिवृतामभयांप्राज्ञःफलान्यारग्वधस्यवा । त्रायमाणागवाक्ष्योर्वा-मूलमामलकानिवा ॥ ५५ ॥ विरेचनंप्रयुञ्जीतप्रभूतमधुशर्करम् रसःप्रशस्यतेतेषांरक्तपित्तेविशेषतः ॥ ५६ ॥

निशोथ और हरडका चूर्ण या क्वाथ, अथवा अमलतासकी फलीका गूदा शीतल-जलमेंही घोलकर, या त्रायमाण और इंद्रायणकी जड़का काथ अथवा आँवलेका वहुतसा स्वरस लेकर उसमें शहद और खांड मिलाकर पेट भरकर पीजावे। यह चार प्रकारके विरेचन ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तकी शांतिके लिये कहेहैं। इनमें आँवलेके रसका प्रयोग विशेष गुणकारी है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

वमनकारकद्रव्य।

वमनंमदनोन्मिश्रोमन्थःसक्षौद्रशर्करः । सशर्करंवासलिलमिक्षू-णांरसएववा ॥ ५७ ॥ वत्सकस्यफलंमुस्तंमदनंमधुकंमधु । अधोवहेरक्तपित्तेवमनंपरमुच्यते ॥ ५८ ॥

मैनफलके चूर्णयुक्त शहत और खॉड मिलाहुआ मंथ (जलमें घोलेहुए पतलेसे घृतयुक्त सत्तू) अथवा मैनफलका कल्क मिलाकर खांडमिला जल, या मैनफलके चूर्णयुक्त ईखका रस; अथवा इंद्रजौ, नागरमोथा, मैनफल, मुलैठी, सहद इनको जलमें घोलकर वमन करानेके लिये पिलावे। यह चार वामकयोग अधोगत रक्तपित्तकी शांतिके लिये कहेहैं ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्य उपदेश।

ऊर्द्ध्वगेशुद्धकोष्ठस्यतर्पणादिक्रमोहितः ।
अधोवहेयवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोवली ॥ ५९ ॥

शुद्धकोष्ठमनुष्यके ऊर्द्धगामी रक्तपित्तमें तर्पण (शर्वतादिपिलाना) आदि क्रम हितकारी होताहै। और अधोगत रक्तपित्तमें यदि वायु प्रवल न हो तो यवागु आदि क्रमहितकारक होताहै। यदि वायु प्रवलहो तो स्निग्ध मांसरसादि प्रयोग करे। अथवा अधोगत रक्तपित्तमें यवागू पान करावे इससे विपरीत कियाजाय तो वायुकी उग्रता होतीहै यह अर्थभी होसक्ताहै ॥ ५९ ॥

संशमनचिंकित्सायोग्य रोगी।

वलमांसपरिक्षीणंशोकभाराध्वकर्षितम्।ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यै-र्वाक्षीणमामयैः ॥ ६० ॥ गर्भिणींस्थविरंवालंरूक्षाल्पप्रमिताश-

नम्। अवश्यमविरेच्यंवायंपश्येद्रक्तपित्तिनम् ॥ ६१ ॥ शोपेणसा-नुबन्धंवायस्यसंशमनीक्रिया । शस्यतेरक्तपित्तस्यपुरोयातुप्र-वक्ष्यते ॥ ६२ ॥

जिन रोगियोंका बल और मांस क्षीण होगयाहो। अथवा शोक और भारसे व्याकुलहो। या मार्ग चलनेसे थकाहुआहो। या तेजधूपसे संतप्तहो। अथवा अन्य रोगोंसे क्षीणहो। एवं गर्भवती, बालक, रूक्ष शरीर अथवा मंदाग्निवाला रक्तपित रोगीहो या जो रोगी वमन विरेचन के अयोग्य हो अथवा जिसको रक्तपित्तके साथ शोषरोगकाभी संसर्ग हो उसके रोगको संशमनीय चिकित्साद्वारा शांत करना चाहिये अब उस संशमनीय चिकित्साके योगोंको कहतेहैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

रक्तपित्तनाशक औषधी प्रयोग।

आटरूपकमृद्वीकापथ्याकाथः सशर्करः। मधुमिश्रःश्वासकासरक्त-पित्तनिबर्हणः ॥ ६३ ॥ आटरूपकनिर्यूहेप्रियंगुमृत्तिकाञ्जने। विनीयलोध्रंक्षौद्रश्चरक्तपित्तनुदंपिवेत् ॥ ६४ ॥

अडूसा, मुनक्का, और हरडका क्वाथ खांड और शहत मिलाकर पीनेसे श्वास खांसी और रक्तपित्त शांत होताहै। अडूसे (वसूटे) के क्वाथमें प्रियंगु, गेरु, रसौत, लोध, और शहदमिलाकर पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होतीहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

पद्मकंपद्मकिञ्जल्कंदूर्वांवास्तूकमुत्पलम्। नागपुष्पश्चलोध्रश्चतेने-वविधिनापिवेत् ॥ ६५ ॥ प्रपौण्डरीकंमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे। यवासभृङ्गरजसोर्मूलंवागोशकृद्रसे ॥ ६६ ॥ विनीयरक्तपित्तघ्नं-पेयंस्यात्तण्डुलाम्बुना। युक्तंवामधुसर्पिर्भ्यांलिह्यादोऽश्वशकृद्र-सम् ॥ ६७ ॥

पद्माक, कमलकी केसर, दूब, बथुआके पत्ते, नागकेशर, और लोधका कल्क मिलाकर शहत युक्त अडूसेके क्वाथको पीवे तो रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ६५ ॥ प्रपौंडरीक, मुलैठी, और शहदको घोडेकी लीदके रसमें मिलाकर पीनेसे; अथवा जवासेकी जड और भांगरेकी जडका चूर्ण गोबरके रसमें मिलाकर पीनेसे, इन औषधियोंको चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होताहै। एवम् घोडेकी लीदका रस और गोबरका रस शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

खदिरस्यप्रियंगूणांकोविदारस्यशाल्मलेः । पुष्पचूर्णानिमधुनालिह्यान्नारक्तपित्तिकः ॥ ६८ ॥ शृंगाटकानांलाजानांमुस्तखर्जूरयोरपि । लिह्याच्चूर्णानिमधुनापद्मानांकेशरस्यच ॥ ६९ ॥ धन्वजानामसृग्लिह्यान्मधुनामृगपक्षिणाम् । सक्षौद्रंग्रथितेरक्तेलिह्यात्पारावतंशकृत् ॥ ७० ॥

कत्था, फूलप्रियंगु, लालकचनारके फूल और सेमलके फूलोंको पीसकर शहदमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त रोग शांत होताहै ॥ ६८ । सिंघाडे, धानकी खीलें, नागरमोथे, खजूर और कमलकी केशरके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ६९ ॥ यदि रक्तपित्त रोगमें रक्तकी गांठेंसी निकलें तो जांगलदेशके मृग पक्षियोंका रक्त अथवा कबूतरकी बीट शहदमें मिलाकर चाटे ॥ ७० ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाकट्फलशंखगैरिकाः । पृथक्पृथक्चन्दनतुल्यभागिकाःसशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः ॥ ७१ ॥ रक्तंसपित्तंतमकंपिपासांदाहंश्चपीताःशमयन्तिसद्यः ॥ ७२ ॥

खस, दारुहलदी, लोध, पद्माक, फूलप्रियंगु, कायफल, शंखका चूर्ण, गेरू और लालचंदनमेंसे किसी एकके बारीक चूर्णको बराबरकी मिसरी मिलाकर फांकी लेवे ऊपरसे चावलोंका धोवन पीवे अथवा चावलोके धोवनमें घोटकर पीवे या लालचंदन, मिसरी युक्त करके चावलोंके धोवनसे पीवे तो यह योग रक्तपित्त, तमकाश्वास, प्यास और दाहको शीघ्र शांत करते हैं ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

किराततिक्तंक्रमुकंसमुस्तंप्रपुण्डरीकंकमलोत्पलेच । ह्रीबेरमूलानिपटोलपत्रंदुरालभापर्पटकामृणालम् । धनञ्जयोदुम्बरवेतसत्वंङ्न्यग्रोधशालेययवासकत्वक् ॥ ७३ ॥ तुगालतावेतसतण्डुलीयंसशारिवंमोचरसःसमङ्गा ॥ पृथक्पृथक्चन्दनयोजितानितेनैवकल्पेनहितानितत्र ॥ ७४ ॥ निशिस्थितावासरसीकृतावाकल्कीकृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्तागणशःपृथग्वारक्तंसपित्तंशमयन्तियेगाः ॥ ७५ ॥

चिरायता, क्रमुक (सुपारी या पठानी लोध) नागर मोथा, प्रपौण्डरीक, कमल, नीलकमल, नेत्रवाला, तृणपंचमूल, पटोलपत्र, जवासा, पित्तपापडा, बिस (कमलकी

डंडी) अर्जुनवृक्ष, गूलर, ल्यूंसकी छाल, बडकी छाल, शालवृक्षकी छाल, जवासेकी छाल, वंशलोचन, दूब, वेतस, चौलाई, शारिवा, मोचरस, वाराहक्रांता, इनमेंसे किसी एकके चूर्णमें बराबरका लालचंदन मिलाकर उसमें सममाग मिसरी मिला चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो रक्तपित्तको शांत करतेहैं। यही द्रव्य रातको भिगोकर प्रातःकाल मल छानकर पीनेसे अथवा इनका स्वरस, या कल्क, अथवा ठंढाईके समान घोटकर पीनेसे या क्वाथ करके पीनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मुद्गाःसलाजाःसवयाःसकृष्णाःसोशीरमुस्ताःसहचन्दनेन । बला-जलेपर्य्युषितःकषायोरक्तंसपित्तंशमयत्युदीर्णम् ॥ ७६ ॥

मूंग, धानोंकी खीलें, जौं, पीपल, खस, नागरमोथा, लालचंदन इनको खरटीके काथमें रातको भिगोदेवे प्रातःकाल मल छानकर पीवे तो यह शीत कषाय वेगयुक्त रक्तपित्तको शांत करताहै ॥ ७६ ॥

वैदूर्य्यमुक्तामणिगैरिकाणांमृच्छंखहेमामलकोदकानाम् । मधूद-कस्येक्षुरसस्यचैवपानाच्छमंगच्छतिरक्तपित्तम् ॥ ७७ ॥

वैडूर्य, मोती, मणी, और गेरू । अथवा पीलीमिट्टी, शंख और सुवर्णको ऑवलोंके जलमें धोकर उस जल अथवा शहदका जल या ईखका रस पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होतीहै ॥ ७७ ॥

उशीरपद्मोत्पलचन्दनानांपङ्कस्यलोध्रस्यंचयःप्रसादः । सशर्करः क्षौद्रयुतःसुशीतोरक्तातियोगप्रशमायदेयः ॥ ७८ ॥

खस, कमल, नीलोफर, लाल चंदन, इनका कल्क और पठानीलोध, मिलाकर क्वाथ करे उस क्वाथको ठंढा करके अथवा इनका हिम बनाकर उसमें खांड और शहद मिलाकर रक्तपित्तके अतियोगकी शांतिके लिये पिलावे ॥ ७८ ॥

प्रियङ्गुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ताभयधातकीजलम् । स मृत्प्रसादंसहषष्टिकाम्बुनासशर्कररक्तनिवर्हणंपरम् ॥ ७९ ॥

फूल प्रियंगु, लालचंदन, पठानी लोध, शारिवा, महुवेके फूल, नागरमोथे, ऑवले और धावेके फलोंका जल और चिकनीमट्टीकी पापडी, तथा साठीके चावलोंका धोवन इन सबको मिलाकर खाँडयुक्त करके पीवे तो रक्तपित्तकी शांति होतीहै। यह उत्तम योग है ॥ ७९ ॥

१ कोई पङ्कका अर्थ वर्षाकी तालावमें सूखनेसे कीचकी पापडी अर्थ करतेहैं ।

वातानुयायीरक्तपित्त ।

कषाययोगैर्विविधैर्यथोक्तैर्दीप्तेऽनलेश्लेष्मणिनिर्जितेच । यद्रक्तपित्तं प्रशमंनयातितत्रानिलःस्यादनुतत्रकार्य्यम् ॥ ८० ॥

उपरोक्त कषायोंके विधिवत् प्रयोग किये जानेपर, जठराग्निके बलवान् होनेपर और कफके क्षीण होजानेपर भी रक्तपित्त शांत न होय तो उसमें वायुका अनुबंध जानना चाहिये ॥ ८० ॥

अधोगामी रक्तपित्तनाशक दूध ।

छागंपयःस्यात्प्रथमंप्रयोगेगव्यंशृतंपञ्चगुणेजलेवा । सशर्करंमाक्षिकसंप्रयुक्तंविदारिगन्धादिगणैःशृतंवा ॥ ८१ ॥ द्राक्षाशृतंनागरकैः शृतंवाबलाशृतंगोक्षुरकैःशृतंवा । सजीरकंसर्षभकंससर्पिःपयः प्रयोज्यंसितयाशृतंवा ॥ ८२ ॥ शतावरीगोक्षुरकैःश्रृतंवाश्रृतंपयो वाप्यथपर्णिनीभिः॥ रक्तंहिनस्त्याशुविशेषतस्तुयन्मूत्रमार्गात्सरुजं प्रयाति ॥ ८३ ॥

उसमे प्रथम बकरी अथवा गौका दूध पाचगुने जलमें सिद्ध करके खांड और शहद मिलाकर पिलावे । अथवा विदारिगंधा (शालपर्णी) आदि गणमे सिद्ध किया हुआ दूध, अथवा मुनक्का और नागरमोथेसे सिद्ध किया दूध, अथवा खरैटीसे सिद्ध किया दूध, या गोखरुओंसे सिद्ध किया दूध, अथवा जीरा, ऋषभक और घृतसे सिद्ध किया दूध, अथवा मिसरीसे सिद्ध किया दूध पिलावे । एवं शतावर और गोखुरूसे सिद्ध किया दूध, या चारों पर्णियोसे सिद्ध किया दूध रक्तपित्तको शांत करताहै और मूत्रमार्गसे जानेवाले पीडायुक्त रक्तको विशेषकरके नष्ट करता है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

विशेषतोविट्प्रथमंप्रवृत्तेपयोमतंमोचरसेनसिद्धम् ।
वटावरोहैर्वटशुङ्गकैर्वाह्रीवेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥ ८४ ॥

यदि विशेषरूपसे रक्त गुदा द्वारा निकलताहो मोचरससे सिद्ध कियाहुआ दूध, अथवा वड (बरौटे) की डाढी और कलियोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध, अथवा नेत्रवाला, नीलोफर और नागरमोथा (या सोंठ) से सिद्ध किया हुआ दूध पिलावे ॥ ८४ ॥

कषाययोगान्पयसापुरावापीत्वानुदद्यात्पयसानुशालीन् ।
कषाययोगैरथवाविपक्मैतैःपिबेत्सर्पिरपिस्रवेच्च ॥ ८५ ॥

इन औषधियोंका क्वाथ, अथवा क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीकर, अथवा इनकी फँकी लेकर ऊपरसे दूध पीवे और दूध चावल भोजन करे। अथवा इन औषधियोंके क्वाथ,या कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत पीवे तो रक्तकी अधिक प्रवृत्ति दूर होय ॥ ८५ ॥

वासाघृत।

वासांसशाखांसपलाशमूलांकृत्वाकषायंकुसुमानिचास्य ।
प्रदायकल्कंविपचेद्घृतंतत्सक्षौद्रमाश्वेवंनिहन्तिरक्तम् ॥ ८६ ॥

वांसे (बसूटे) की शाखा, पत्र, छिलके और टहनियोंका क्वाथ करके तथा इसके फूलोंका कल्क करके उस क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत विषमभाग शहद मिलाकर चाटनेसे रक्तपित्त शीघ्र नष्ट होताहै ॥ ८६ ॥

रक्तपित्तनाशक घृत ।

पलाशवृन्तस्यरसेनसिद्धंतस्यैवकल्केनमधुद्रवेण । लिह्याद्घृतंवत्सककल्कसिद्धंतद्वत्समंगोत्पललोध्रसिद्धम् ॥ ८७ ॥ स्यात्त्रायमाणाविधिरेषएवसोदुम्बरेचैवपटोलपत्रे । सर्पींषिपित्तज्वरनाशनानिसर्वाणिशस्तानिचरक्तपित्ते ॥ ८८ ॥

ढाकके वृन्तों (डंडियों) का क्वाथ और कल्क करके उनसे घृतको सिद्ध करे उस घृतको शहद मिलाकर चाटे। अथवा इसी प्रकार कुडाके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत, अथवा समंगा (लाजवंती) नीलकमल और पठानी लोधके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया घृत, एवं त्रायमाणासे सिद्ध किया घृत, अथवा गूलर और पटोलपत्रके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तपित्त नष्ट होताहै। यह उपरोक्त सब घृत रक्तपित्तको नाश करनेमें परम उत्तम हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अन्ययोग ।

अभ्यंगयोगाःपरिषेचनानिसेकावगाहाःशयनानिवेश्म । शीतोविधिर्वस्तिविधानमग्र्यंपित्तज्वरेयत्प्रशमायदृष्टम् ॥ ८९ ॥ तद्रक्तपित्तेनिखिलेनकार्यंकालश्चमात्राश्चपुरासमीक्ष्य । सर्पिर्गुडायेच हिताःक्षतेभ्यस्तेरक्तपित्तंशमयन्तिसद्यः ॥ ९० ॥

रक्तपित्त रोगमें पित्तज्वर (दाहज्वर) में कहेहुए अभ्यंग, परिषेचन, अवगाहन, शयन, शीतलघर, शीतल क्रिया और पित्तको शांत करनेवाला वस्तिकर्म तथा अन्य उपाय भी समय और मात्राको विचार कर करना हितकारक होतेहैं। एवं क्षतरोगमें कहेहुए घृत और गुड भी रक्तपित्तको नष्ट करतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कफानुबंधीरक्तपित्तका यत्न ।

कफानुवन्धेरुधिरेसपित्तेकण्ठागमेस्याद्ग्रथितेप्रयोगः । युक्तस्य युक्त्यामधुसर्पिषोश्चक्षारस्यचैवोत्पलनालजस्य ॥ ९१ ॥ मृणालपद्मोत्पलकेशराणांतथापलाशस्यतथाप्रियंगोः । तथामधूकस्यतथासनस्यक्षाराःप्रयोज्याविधिनैवतेन ॥ ९२ ॥

रक्तपित्तकफके संबन्धसे कंठमें आकर गांठदार होजाताहै, उसमें रक्तपित्तनाशक घृत और शहद मिलाकर चाटना, अथवा नीलोफरका खार घृत और शहद मिलाकर चाटना। या मृणाल(बिस)तथा लाल कमल और नीलोफरकी केशरकी भस्म बनाकर घृत और शहदके साथ चाटना, अथवा ढाकका खार फूलप्रियंगुकी भस्म, महुवेकी भस्म, बिजेसारकी भस्म, इनमेंसे किसी एकको शहद और घृत मिलाकर चाटना (मुखसे आनेवाले) गांठदार रक्तको शान्त करताहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

शतावरीआदिघृत ।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीकंकाकोलिमेदांमधुकंविदारीम् । पिष्ट्वाच मूलंफलपूरकस्यघृतंपचेत्क्षीरचतुर्गुणेन। कासज्वरानाहविबन्धशूलंतद्रक्तपित्तञ्चघृतंनिहन्यात् ॥ ९३ ॥

शतावरी, अनार, तंतडीक, काकोली, मेदा, मुलैठी, विदारीकंद और बिजौरेकी जडका कल्क आधसेर इन्हीं औषधियोंका काथ ४ सेर घृत २ सेर दूध ८ सेर इन सबको विधिवत् मिलाकर घृतपाकविधीसे घृत सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे खांसी, ज्वर, अफारा, विबंध और शूलयुक्त रक्तपित्त शांत होताहै ॥ ९३ ॥

पंचपंचमूल घृत ।

यत्पञ्चमूलैरथपञ्चभिर्वासिद्धंघृतंतच्चतदर्थकारि ॥ ९४ ॥

इसी प्रकार पांचों पंचमूल (लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, तृणपंचमूल, बलादिपंचमूल (मध्यम पंचमूल) और जीवनीय पंचमूल से सिद्धकिया घृतभी उपरोक्त गुणोंको करताहै ॥ ९४ ॥

नासिकाद्वारारक्तगिरनेकीचिकित्सा।

कषाययोगायइहोपदिष्टास्तेचावपीडेभिषजाप्रयोज्याः। घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरंसपित्तंयदाभवेन्निःसृतदुष्टदोषम्॥ ९५॥

रक्तपित्तको नष्ट करनेवाले जो इस अध्यायमें कषाय योग कहेहैं उनका कल्क कर उसके रसकी नस्य लेनेसे नासिकाद्वारा बहनेवाला रक्त (नकसीर) दूर होजाताहै॥ ९५॥

दूषितरक्तको रोकदेनेके दोष।

रक्तेप्रदुष्टेह्यवपीडवन्धेदुष्टप्रतिश्यायशिरोविकाराः। रक्तंसपूयंकुणपश्चगन्धःस्याद्घ्राणनाशःक्रिमयश्चदुष्टाः॥ ९६॥

यदि नासिका द्वारा गिरता हुआ दूषित रक्त प्रथम ही रोक दियाजाय तो उससे दुष्ट प्रतिश्याय, शिरके विकार, पीव (राध) युक्त दुर्गन्धित रक्त नाकद्वारा गिरना, घ्राणनाश होना और मस्तकमें कृमि पडजाना यह उपद्रव होतेहैं॥ ९६॥

नकसीरबंदकरनेकी नस्य।

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तंसचन्दनंस्यात्तुसिताजलेन। नस्यंतथाम्रास्थिरसःसमंगासधातकीमोचरसःसलोध्रः॥ ९७॥ द्राक्षारसस्येक्षुरसस्यनस्यंक्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव। यवासमूलानिपलाण्डुमूलंनस्यंतथादाडिमपुष्पतोयम्॥ ९८॥

नीलोफर, गेरू, शंख[1], लालचंदन इन सबको मिसरीयुक्त जलमें घोटकर नस्य लेने (संघने) से नासिका द्वारा रक्त बहना बंद होजाताहै। एवं आमकी गुठलीका रस, लाजवती, धावेके फूल, मोचरस, पठानीलोध इनके कल्कका[2] रस सूंघनेसे रक्तका गिरना (नकसीर) बंद होजाताहै। अथवा मुनक्काका रस या ईखका रस सूंघनेसभी नकसीर बंद होजातीहै। इसी प्रकार गौ या बकरीका दूध या दूर्वाका रस, अथवा जवासेकी जडका रस या प्याजका रस या अनारके फूलोका रस सूंघनेसे नासिकाद्वारा रक्त गिरना बंद होजाताहै॥ ९७॥ ९८॥

अन्ययोग।

प्रियालतैलंमधुकंपयश्चसिद्धंघृतंमाहिषमाजकंवा। आम्रास्थिपूर्वैःपयसाचनस्यंसशारिवैःस्यात्कमलोत्पलैश्च॥ ९९॥

---

१ शख अथवा नख नामक सुगंधद्रव्य। २ औषधीको गीलीही पीसकर अथवा पानीडालकर पीसनेसे जो गीली चटनीसी होजातीहै उसको कल्क कहतेहैं।

चिरौंजीका तेल, मुलैटी और दूध इनको मिलाकर पकावे फिर उसकी नस्य लेवे । अथवा आमकी गुठली, लाजवंती, धावेके फूल, मोचरस, पठानीलोध, शारिवा, कमल, नीलकमल और दूध इनसे सिद्ध कियाहुआ भैंसका घृत अथवा बकरीका घृत सूंघनेसे नासिकाद्वारा रक्तगिरना बंद होजाताहै ॥ ९९ ॥

रक्तपित्तपर लेप और सेचनप्रयोग।

भद्रश्रियंलोहितचन्दनञ्चप्रपौण्डरीकंकमलोत्पलञ्च ॥ उशीरवानीरजलंमृणालंसहस्रवीर्य्यंमधुकंपयस्या ॥ १०० ॥ शालीक्षुमूलानियवासगुन्द्रामूलंनलानांकुशकाशयोश्च । कुचन्दनंशैवलमप्यनन्ताकालानुसार्य्यौतृणमूलमृद्धिः ॥ १०१ ॥ मूलानिपुष्पाणिचवारिजानांप्रलेपनंपुष्करिणीमृदश्च। उदुम्बराश्वत्थमधूकलोध्राःकषाययृक्षाःशिशिराश्चसर्वे ॥ १०२ ॥ प्रदेहकल्पेपरिषेचनेचतथावगाहे घृततैलसिद्धौ। रक्तस्यपित्तस्यचशान्तिमिच्छन्भद्रश्रियादीनिभिषक्प्रयुञ्ज्यात् ॥ १०३ ॥

सफेद और लालचंदन, प्रपौण्डरीक, लालकमल, नीलकमल, खस, वानीर (व्यूंस वृक्ष) नेत्रवाला, मृणाल (भिस) दूर्वा, मुलैठी, क्षीरकाकोली, शालीधानकी जड, ईखकी जड, जवासेकी जड, गुंद्रपटेरकी जड, नरसलकी जड, कुशा और कासकी जड, पतंग (चंदनका भेद), शिवाल (काई), शारिवा, अगर, पंचतृणमूल, ऋद्धी, कमलोंके कंद (जड) और फूल पुष्करिणी (कमलोंवाले जलाशय) की मट्टी, इन सबको शीतल जलके संयोगसे घोटकर लेप करनेसे रक्तका स्राव बंद होजाताहै । तथा गूलर, अश्वत्थ (पीपल) महुआ, लोध, एवं अन्यभी जो कषैले और शीतवीर्य वृक्षहैं उन सबके कल्कका लेप, परिसेचन (तरडा देना) अवगाहन, (न्हाना छपके देना आदि) करनेसे रक्तपित्त शांत होताहै । तथा इन्ही उपरोक्त चंदनादि द्रव्योंके कल्कसे सिद्ध किये घृत और तेलका प्रयोग करना भी रक्तपित्तको शांत करता है ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

रक्तपित्तनाशक सेवनीय आचार तथा द्रव्य।

धारागृहंभूमिगृहञ्चशीतंवनञ्चरम्यंजलवातशीतम्।वैदूर्य्यमुक्तामणिभाजनानांस्पर्शाश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः॥१०४॥ पत्राणिपुष्पाणिचवारिजानांक्षौमञ्चशीतंकदलीदलाश्च। प्रच्छादनार्थंशयनासनानांपद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रशस्ताः॥१०५॥प्रियङ्गुकाचन्दनरूपि-

तानांस्पर्शाःप्रियाणाञ्चवराङ्गनानाम् । दाहेप्रशस्ताःसजलाःसुशीताःपद्मोत्पलानाञ्चकलापवाताः ॥ १०६ ॥ सरिन्नदानांहिमवद्दरीणांचन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽनुकूलाःशिशिराश्चसर्वाःकथाःसरक्तंशमयन्तिपित्तम् ॥ १०७ ॥

जहां जलकी धारा वहतीहो फुवारे चलते हों ऐसे नीचेकी मंजलके शीतलघर, जल युक्त सरसब्ज बागबगीचे वन, जलयुक्त शीतल पवन, शीतलजल, वैडूर्य, मोतीमणी युक्त पात्रोंका स्पर्श, शीतल जलसे भीगे हुए शीतलकमलोंके पत्रोंकी शरीरपर लगाना रेशमके वस्त्र और केलेके पत्र बिछी शय्या आसन आदिपर लेटना बैठना, कमल और नीलकमलोंको शीतल जलमें भिगोकर उनका स्पर्श चंदन, प्रियंगु, आदि शीतल पदार्थोंसे सुशोभित अंगोंवाली प्यारी स्त्रियोंका स्पर्श, कमल, नीलकमल, तथा शीतल पंखोंको शीतल जलमें भिगोकर पवन करना यह सब रक्तपित्तकी दाहको शांत करनेवालेहैं । एवं नदी, तालाब, हिमालयकी गुफा, चंद्रमाकी चांदनी, कमलोंसे शोभायमान जलाशय, तथा मनके अनुकूल शीतलद्रव्य और मनके हरनेवाली कहानियां यह सब रक्तपित्तकी दाहको शांत करतेहैं ॥ १०४-१०७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवतिचात्र । हेतुंवृद्धिंसंज्ञांस्थानंलिङ्गंपृथक्प्रदुष्टस्य । मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्य्यक्रमश्चैव ॥ १०८ ॥ पानान्नमिष्टमेवचवर्ज्यंसंशोधनञ्चशमनञ्च । गुरुरुक्तवान्यथावच्चिकित्सितेरक्तपित्तस्य ॥ १०९ ॥

इति च० सं० चिकित्सास्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम चतुर्थोऽध्यायः ४

यहां अध्यायपूर्तिमें दो श्लोक हैं कि इस रक्तपित्त चिकित्सिताध्यायमें रक्तपित्तके-हेतु, वृद्धि, संज्ञा, स्थान और दोषभेदसे अलग २ लक्षण, प्रदुष्ट रक्तपित्तके मार्ग तथा साध्य, असाध्य, याप्यसाध्य, इसकी चिकित्सा, सेवनकरने और त्यागने योग्य द्रव्य, संशोधन, और संशमन औषधियां, इन सबको भगवान् आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां चिकित्सास्थाने टकसालनिवासि-पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादन्याख्यभाषाटीकायां रक्तपित्तचिकित्सित नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम गुल्मचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यः पुनर्वसुर्भूतभविष्यदीशः । चिकित्सितंगुल्मनिवर्हणार्थं प्रोवाचसिद्धं वदतांवरिष्ठः ॥ १ ॥

पिताकी समान प्रजामात्रको शरण देनेवाले, भूत, भविष्यत् वर्तमानके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, पुनर्वसुजी गुल्मरोगकी निवृत्तिके लिये सिद्ध चिकित्साका कथन करने लगे ॥ १ ॥

गुल्मोत्पत्तिके कारण ।

विट्श्लेष्मपित्तादिपरिक्षयाद्वातैरेवबृद्धेः परिपीडितोवा । वेगैरुदीर्णैर्विहितैरधोवाबाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा ॥ २ ॥ रूक्षान्नपानैरतिसेवनैर्वाशोकेनमिथ्याप्रतिकर्मणावा । विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः कोष्ठेप्रकोपं समुपैतिवायुः ॥ ३ ॥ कफश्चपित्तञ्चसदूपयित्वा प्रोद्धूयमार्गान्विनिबद्ध्यताभ्याम् । हृत्प्लीहपार्श्वोदरवस्तिशूलंकरोत्यधोयातिनबद्धमार्गः ॥ ४ ॥ पक्वाशयेपित्तकफाशयेवा स्थितः स्वतंत्रः परसंश्रयेवा । स्पर्शोपलभ्यःपरिपिण्डितत्वाद्गुल्मोयथादोपमुपैतिनाम ॥ ५ ॥

मल (विष्ठा) कफ और पित्तकी अत्यंत क्षीणता अथवा वृद्धिसे वायुके अत्यंत पीडित होनेसे, आयेहुए वेगोंको रोकनेसे, बाहरी चोट आदि लगनेसे, अत्यंत संतर्पणसे, रूखे अन्नपानोंके अधिक सेवनसे, शोकसे एवं चिकित्साके मिथ्यायोग, अयोग वा अतियोगसे, शरीरकी विषम तथा अतिमात्र चेष्टाओंसे वायु कोष्ठमें अत्यंत कुपित होजातीहै । फिर वह कफ और पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रोकदेतीहै । फिर उत्तेजित होकर हृदय, प्लीहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल प्रगट करती है, और मार्गोंके बन्द होजानेके कारण नीचेको गमन नहीं करसकतीहै । फिर वह पक्वाशय अथवा पित्त कफाशयमें अकेली अथवा कफपित्तके साथ मिलकर स्थित होजातीहै । वह हाथ लगानेसे गोलासा दिखाई देने लगताहै वहीं दोषानुसार नाम

गुलमक होजाताहै। जैसे–वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक। सब प्रकारके गुल्मोंमें वायु ही प्रधान होतीहै और यही गुल्मका कारण होतीहै। इसलिये इसको वायगोला कहतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

गुल्मके स्थानभेद।

वस्तौ हि नाभ्यां हृदि पार्श्वयोर्वा स्थानानि गुल्मस्य भवन्ति पञ्च। पञ्चात्मकस्य प्रभवन्तु तस्य वक्ष्यामि लिंगानि चिकित्सितञ्च ॥ ६ ॥

वस्ति, नाभि, हृदय और दोनों पार्श्व यह पांच स्थान गुल्मके हैं इसकी पांच ही प्रकारसे उत्पत्ति है। अब हम इसके लक्षणों और चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ६ ॥

वायुके गुल्मका हेतु।

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रं विचेष्टितंवेगविनिग्रहश्च। शोकोऽभिघातोऽतिवलक्षयश्चनिरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥ ७ ॥

रूक्ष अन्न पानका सेवन, शरीरकी विषम और अधिक चेष्टा, मलमूत्रादिवेगोंका रोकना, शोक, अभिघात, बलकी अत्यंत क्षीणता, भोजन न करना यह सब वायुके गुल्मकी उत्पत्तिके हेतु हैं ॥ ७ ॥

वातज गुल्मके लक्षण।

यःस्थानसंस्थानरुजाविकल्पंविड्वातसंगंगलवक्त्रशोषम्। श्यावारुणत्वंशिशिरज्वरञ्चहृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजञ्च ॥ ८ ॥ करोतिजीर्णेऽभ्यधिकंप्रकोपंभुंक्तेमृदुत्वंसमुपैतियश्च। वातात्सगुल्मो नचतत्ररूक्षकषायतिक्तकटुचोपशेते ॥ ९ ॥

थोडी २ देरमें जिस गुल्मके स्थान, स्वरूप और वेदनामें अन्तर (फरक) पड जाय, जिसमें मल और अधोवायुका अवरोध हो तथा जिसके होनेसे गले और मुखमें शोष हो, जिसका वर्ण कुछ काला कुछ लाल हो, जिसमें शीतयुक्त ज्वरका वेग हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि तथा पार्श्व और शिरमें पीडा हो, जिसका अन्नके परिपाक होनेपर अत्यन्त कोप हो, जो भोजन करनेसे नरमसा पडजाय उसको वातज गुल्म जानना। इसमें रूक्ष, कटु, तिक्त और कषाय द्रव्योंका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

पित्तज गुल्मका हेतु।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविरोधिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा। आमाभिघातोरुधिरञ्चदुष्टंपैत्तस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥ १० ॥

कडवे, खट्टे, तीक्ष्ण, उष्ण, विरोधी और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध,पीडा, मद्य, धूप और अग्निके तापसे अविदग्ध अन्नके सेवनसे और रुधिरके दूषित होनेसे पित्तका गुल्म उत्पन्न होताहै ॥ १० ॥

पित्तगुल्मके लक्षण।

ज्वरःपिपासावदनाङ्गरागः शूलंमहज्जीर्य्यतिभोजनेच ।
स्वेदोविदाहोव्रणवच्चगुल्मः स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ ११ ॥

ज्वर, प्यास, मुख और देहमें अरुणता, अन्नके पचनेपर अत्यंत शूलका होना, पसीना विदाह, तथा गुल्ममें हाथका लगाना जखमके समान बुरा मालूम होना यह सब पित्तज गुल्मके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

कफगुल्मके हेतु।

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूरणंप्रस्वपनंदिवाच ।
गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य सर्वस्तुदृष्टोनिचयात्मकस्य ॥ १२ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके सेवनसे, आलस्यसे, संतर्पणसे, दिनमें सोनेसे कफका गुल्म उत्पन्न होताहै और सान्निपातिक गुल्ममें तीनों दोषोंके मिलेहुए कारण होतेहैं ॥ १२ ॥

कफगुल्मके लक्षण।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि ।
शैत्यंरुगल्पाकठिनोन्नतत्वंगुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥ १३ ॥

शरीरका गीले वस्त्रसे वेष्टितसा होना, शीतज्वर, अंगग्लानि, हृल्लास, खांसी, अरुचि, भारीपन, शैत्य, थोडी २ पीडा, कठिनता, ऊंचापन, यह सब कफजनित गुल्मके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

द्वन्द्वज गुल्मके लक्षण।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मेद्विदोषजेदोषबलाबलञ्च । व्यामिश्रदोषानपरांस्तुगुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १४ ॥

हेतु, लक्षण और दोषोंका बलाबल दो २ दोषोंके लक्षणयुक्त होनेसे द्विदोषज गुल्म तीन प्रकारके होतेहैं । औषधोंके प्रयोगकी कल्पनाके लिये इनके तीन भेद दिखायेहैं ॥ १४ ॥

सन्निपातज गुल्मके लक्षण।

महारुजंदाहपरीतमश्मवद् घनोन्नतंशीघ्रविदाहिदारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणंत्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १५ ॥

सन्निपातसे प्रकटहुए गुल्ममें अत्यंत घोर पीडा, दाह, पत्थरके समान कठोरपन और ऊंचापन होताहै । यह शीघ्र घोर दाह उत्पन्न करताहै तथा मन, शरीर और अग्निके बलको हरलेताहै । यह गुल्म असाध्य है ॥ १५ ॥

रक्तज गुल्मके हेतु ।

ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियंरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १६ ॥ यःस्पन्दते पिण्डितएवनाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः । सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मोमासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ॥ १७ ॥

मासिक ऋतु होनेके समय भोजन न करना, भय, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, अपानवायु आदि वेगोंका रोकना, स्तम्भनक्रिया, वमन और योनिदोषसे स्त्रियोंको रक्तगुल्म होताहै । जब यह रक्तगुल्म पेटमें फड़कने लगताहै तब इसमें अत्यन्त पीडा होने लगतीहै और इसमें लक्षण गर्भकेसे होतेहैं क्योंकि यह गुल्म मासिकऋतुके रक्तमें ही उत्पन्न होताहै, इसलिये केवल स्त्रियोंको ही होताहै । इस रक्तगुल्मकी दश महीने व्यतीत होनेपर चिकित्सा करनी उचित है ॥ १६ ॥ १७ ॥

चिकित्साका निर्देश ।

क्रियाक्रममतःसिद्धंगुल्मिनांगुल्मनाशनम् ।
प्रवक्ष्याम्यतऊर्ध्वंश्चयोगान्गुल्मनिबर्हणान् ॥ १८ ॥

अब हम गुल्मरोगियोंके गुल्मको दूर करनेके लिये गुल्मनाशक सिद्धप्रयोगोंका वर्णन करतेहैं ॥ १८ ॥

वायुके गुल्ममें चिकित्साक्रम ।

रूक्षव्यायामजंगुल्मंवातिकंतीव्रवेदनम् । बद्धविड्मारुतंस्नेहैरादितःसमुपाचरेत् ॥१९॥ भोजनाभ्यञ्जनैःपानैर्निरूहैःसानुवासनैः। स्निग्धस्यभिषजास्वेदः कर्त्तव्योगुल्मशान्तये ॥ २० ॥ स्रोतसां मार्दवंकृत्वाजित्वामारुतमुल्बणम् । भित्त्वाविबन्धं स्निग्धस्यस्वेदोगुल्ममपोहति ॥ २१ ॥ स्नेहपानंमतं गुल्मेविशेषेणोर्ध्वनाभिजे । पक्वाशयगतेबस्तिरुभयंजठराश्रये ॥ २२ ॥

रूक्ष भोजन तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुए वातिकगुल्ममें तीव्र वेदनायुक्त जिसमें अधोवायु और विष्ठाका विबंध हो उसमें प्रथम स्नेहनक्रिया करे । रोगीको भोजन,

अभ्यञ्जन, पान, निरूहण और अनुवासन वस्तिद्वारा स्निग्ध करके गुल्मरोगकी शान्तिके लिये स्वेदनकर्म करे। इस प्रकार स्निग्ध करके स्वेदन करनेसे शरीरके स्रोत नरम होजातेहैं, वायुकी प्रबलता क्षीण होजातीहै, विबंध खुलजाताहै फिर वह गुल्म भी शान्त होजाताहै। नाभिसे ऊपर होनेवाले गुल्ममें विशेषकर स्नेहपान कराना श्रेष्ठ है। पक्काशयगत गुल्ममें वस्तिकर्म करना चाहिये। एवं उदरस्थ गुल्ममें स्नेहपान और वस्तिकर्म दोनोंका करना हितकारक है ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

दोषानुबंध चिकित्साक्रमसे।

दीप्ताग्नौवातिकेगुल्मेविबंधेऽनिलवर्चसोः । बृंहणान्यन्नपानानिः स्निग्धोष्णानिप्रयोजयेत् ॥ २३ ॥ पुनः पुनः स्नेहपानंनिरूहाःसानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेपुकफपित्तानुरक्षिणा ॥ २४ ॥ कफे वातेजितप्रायेपित्तंशोणितमेववा । यदिकुप्यतिवातस्यक्रियमाणैश्चिकित्सितैः ॥ २५ ॥ यथोल्वणस्यदोपस्यतत्रकार्यंभिषग्जितम् । आदावन्तेचमध्येचमारुतंपरिरक्षता ॥ २६ ॥ वातगुल्मेकफोवृद्धोहरत्वाग्निमरुचिंयदि । हृल्लासगौरवंतन्द्रांजनयेदुल्लिखेत्तु तम् ॥ २७ ॥

वातिक गुल्ममें यदि अग्नि दीप्त (बलवान्) हो तथा अधोवायु और विष्ठाका विबंध हो तो बृंहणकरनेवाला स्निग्ध और उष्ण अन्न पानका प्रयोग करना चाहिये और वारवार स्नेहपान करावे। तथा कफपित्तानुबंधी वायुके गुल्ममें निरूहण और अनुवासन वस्ति करे। प्रायः कफ और वातके दूर होनेपर अथवा वातगुल्मकी चिकित्सा करनेके समय यदि पित्त और रक्त कुपित होजांय तो उस समय जिस दोषकी अधिकता हो उसीकी शान्तिका उपाय करना चाहिये। चिकित्साके आदि, मध्य और अन्तमें वायुकी सब प्रकार रक्षा करते रहना चाहिये। वातगुल्ममें यदि कफकी वृद्धि होकर जठराग्निको मन्द करके अरुचि, हृल्लास, भारीपन और तन्द्रा उत्पन्न करे तो उस रोगीको वमन कराना हित है ॥ २३-२७ ॥

शूलानाहविबंधेपु गुल्मे वातकफोल्वणे । वर्तयो गुटिकाश्चूर्णं कफवातहरस्मतम् ॥ २८ ॥ पित्तंवायदिसंवृद्धंसन्तापंवातगुल्मिनः । कुर्याद्विरेच्यः सभवेत्स्नेहैनैरानुलोमकैः ॥ २९ ॥ गुल्मे यद्यनिलादीनांकृतेसम्यगभिषग्जिते । नप्रशाम्यतिरक्तेनसस्नुतेनोपशाम्यति ॥ ३० ॥

वातकफाधिक गुल्मरोगमें यदि शूल, अफारा और विबंध हो तो कफवातनाशक वत्ती, गुटिका और चूर्णका प्रयोग करना चाहिये। वातगुल्मरोगीको यदि पित्त बढकर संताप उत्पन्न होजाय तो वायुके अनुलोमन करनेवाले स्नेहनद्रव्योंसे विरेचन करावे। यदि वातादिकोंको शमन करनेवाले औषधोंका प्रयोग कियाजानेपर भी गुल्म शांत न हो तो "रक्तमोक्षण" (गुल्मसंबंधी नससे रक्त निकालना) द्वारा "गुल्म" शान्त करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

पित्तके गुल्ममें चिकित्साक्रम।

स्निग्धोष्णेनोदितेगुल्मेपैत्तिकेस्रंसनंमतम्। रूक्षोष्णेनतुसम्भूते सर्पिःप्रशमनंपरम् ॥ ३१ ॥ पित्तंवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापक्वाशय-स्थितम्। कालविन्निर्हरेत्सद्यःसतिक्तैःक्षीरवस्तिभिः ॥ ३२ ॥ पयसावासुखोष्णेनसतिक्तेनविरेचयेत्। भिषगग्निबलापेक्षीसर्पि-षातैलकेनवा ॥ ३३ ॥

स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे जो पैत्तिक गुल्म उत्पन्न हुआहो उसमें स्रंसन (दस्तावर) औषध हित है। यदि रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे हुआहो तो उसमें घृतपान कराना परम उत्तम है। समयको जाननेवाला वैद्य पित्त अथवा पित्तज गुल्म जो पक्वाशयमें स्थित हो उसको उचित समयमें तिक्त औषधियोंसे संस्कारकीहुई क्षीरवस्ति द्वारा शीघ्र हरण करे। अथवा तिक्त औषधियोंसे पकायेहुए सुखोष्ण दुग्धको मिलाकर विरेचन करादेवे अथवा रोगीके अग्निबलको विचारकर औषधोंसे सिद्ध तेल अथवा घृत पिला विरेचन देवे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि।

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे। गुल्मिनामरुचौचापिरक्त-मेवावसेचयेत् ॥३४॥ छिन्नमूलाविदह्यन्तेनगुल्मायान्तिचक्षयम्। रक्तंहिव्यम्लतांयातितच्चनास्तिनचास्तिरुक् ॥३५॥ हृतदोषम्परि म्लानंजाङ्गलैस्तर्पितंरसैः। समाश्वस्तंचशेषार्तिंसर्पिषापुनराचरेत् ॥३६॥ रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्यवा। यदिगुल्मोविदह्येत शस्त्रंतत्रभिषग्जितम् ॥ ३७ ॥

यदि तृष्णा, ज्वर, दाह, शूल, पसीना, मन्दाग्नि और अरुचियुक्त पित्तगुल्म हो तो रक्तमोक्षण कराना चाहिये। रक्तमोक्षण द्वारा गुल्म जडसे ही नष्ट होजाताहै। इस

प्रकार गुल्मकी जड कटजानेसे वह पुष्ट नहीं होसकता। और रक्तकी अम्लता जाती रहतीहै और रक्तके न रहनेसे पीडा भी नहीं रहती। रुधिर निकालनेसे दोषोंके दूर होजानेपर रोगी अत्यन्त कमजोर होजाताहै। उस समय उसको जांगलजीवोंके मांसरससे तर्पित करना चाहिये। जब वह बलसम्पन्न होजाय तब बाकी रही पीडाको घृतपान कराके दूर करे रक्तपित्तके अत्यंत बढजानेसे वा चिकित्साके ठीक न होसकनेसे जो गुल्म पकजायँ उसमे शस्त्रक्रिया ही उत्तम चिकित्सा है॥३४-३७॥

अपक्व गुल्मके लक्षण।

गुरुः कठिनसंस्थानो गूढमांसोत्तराश्रयः।
अविवर्णः स्थिरश्चैव ह्यपक्वो गुल्म उच्यते ॥ ३८ ॥

भारी, कठोराकृति, गूढमांसमें स्थित, जिसका वर्ण न विगडा हो और अचल हो वह अपक्व गुल्म होताहै ॥ ३८ ॥

विदह्यमान गुल्मके लक्षण।

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः।
विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ॥ ३९ ॥

जो गुल्म (गोला) पकनेवाला हो उसमें दाह, शूल, अग्निसंक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर यह लक्षण होतेहैं। इसपर गुल्मनाशक लेप आदि करना चाहिये ॥ ३९ ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण।

विदाहलक्षणेगुल्मेवहिस्तुङ्गेसमुन्नते। श्यावेसरक्तपर्यन्तेसंस्पर्शे वस्तिसन्निभे। निपीडितोन्नतेस्तब्धेसुप्तेतत्पार्श्वपीडनात् ॥ ॥ ४० ॥ तत्रैवपिण्डितेशूलेसंपक्वंगुल्ममादिशेत्। तत्रधान्वन्तरीयाणामधिकारःक्रियाविधौ ॥ ४१ ॥ वैद्यानांकृतयोग्यानांव्यधशोधनरोपणैः। अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्षणम् ॥४२॥

इस प्रकार पाकलक्षणोके होनेपर गुल्म वाहरको और ऊंचा होकर उठताहै, कालावर्ण होजाताहै और इसके किनारे लाल होजातेहैं, स्पर्श करनेसे वस्तिकेसे आकारका प्रतीत हो, हाथसे दबाकर छोडनेपर फिर ऊँचा होजाय, किनारेसे दाबने पर स्तब्ध और सुप्त प्रतीत हो, एक ही स्थानमें गोलासा रहाकरे और पीडायुक्त हो तब इसे संपक्व (पकाहुआ) गुल्म समझना चाहिये। ऐसे गुल्मरोगमें सिद्धहस्त, धन्वन्तरीजीके कहेहुए शल्यशलाक्यतंत्रके जाननेवाले योग्य वैद्य (जर्राह) को

व्यधन, शोधन और रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार है । भीतरकी ओरको पकनेवाले गुल्मके भी ऊपरोक्त ही लक्षण होतेहैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अंतस्थ गुल्मके लक्षण और चिकित्साक्रम ।

हृत्क्रोडशूनतान्तःस्थेबहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः। पक्वःस्रोतांसिसंक्लिद्यव्रजत्यूर्ध्वमधोपिवा॥ ४३ ॥ स्वयंप्रवृत्तन्तंदोपमुपेक्षेतहिताशनैः। दशाहंद्वादशाहंवारक्षन्भिषगुपद्रवान् ॥ ४४ ॥ अतऊर्ध्वमतंपानंसर्पिपःसविशोधनम् । शुद्धंसतिक्तंसक्षौद्रंप्रयोगेसर्पिरिष्यते ॥४५॥

अन्तःस्थगुल्ममें हृदय और क्रोड (उस गुल्मके शीर्षभाग) में सूजन होतीहै और बहिस्थ गुल्म पसवाडोंमें प्रकट होताहै । गुल्म पककर स्रोतोंको क्लेदित (गीला) कर ऊपरकी ओर वा नीचेकी ओर गमन करताहै । यदि दोष अपने आप निकलने लगे तो हितकारी पथ्य सेवन करावे फिर वैद्य उपद्रवोंकी रक्षा करताहुआ इसकी दश बारह दिवसतक उपेक्षा करै । इसके अनन्तर संशोधन घृतका सेवन करावे । इसप्रकार जब रोगी शुद्ध होजाय तो तिक्त औषधियोंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शहत मिलाकर पिलावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

कफगुल्मकी चिकित्सा ।

शीतलैर्गुरुभिःस्निग्धैर्गुल्मेजातेकफात्मके ।
अवम्यस्याल्पकायाग्नेः कुर्याल्लंघनमादितः ॥ ४६ ॥

शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होताहै उसमें वमनके अयोग्य और मन्दाग्नियुक्त रोगीको प्रथम लंघन करानाचाहिये ॥ ४६ ॥

वमनके योग्य रोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दागुरुस्तिमितकोष्ठता ।
सोत्क्लेशाचारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः ॥ ४७ ॥

जिस गुल्मरोगीकी जठराग्नि मन्द होगई हो, पीडा मन्द होतीहो तथा कोष्ठमें भारीपन और गीलापनसा प्रतीत हो एवं जिसको उत्क्लेस (जी मचलाना) और अरुचि हो वह रोगी वमन करानेके योग्य होताहै ॥ ४७ ॥

उष्णैरेवोपचार्यस्य कृते वमनलंघने । योज्याचाहारसंसर्गीभेपजैः

१ कोई यहां गुल्मशब्दसे अंतर विद्रधि मानतेहैं । इससे पहिले आमाशयस्थ गुल्म (वायगोला) का वर्णन है । (२) अंतर्विद्रधिका निर्देश है ।

कटुतिक्तकैः ॥ ४७ ॥ सानाहंसविबंधंचगुल्मंकठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वा-दौस्वेदयेद्युक्त्यास्विन्नश्वविनमेद्भिषक् ॥ ४८ ॥ लंघनोल्लेखनेस्वे-देकृतेऽग्नौसंप्रधुक्षिते । कफगुल्मेपिवेत्कालेसक्षारकटुकंघृतम् ॥ ॥ ४९ ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफगुल्मंविरेचनैः । सस्नेहैर्वस्तिभि-र्वाथशोधयेद्दशमूलकैः ॥ ५० ॥

फिर वमन और लंघन करानेके अनन्तर उष्ण कटु और तिक्त औषधियोंको आहारमें मिलाकर देना चाहिये । अफारा और विबंधयुक्त गुल्म यदि कठोर और उन्नत हो तो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदन करना चाहिये क्योंकि स्वेदन कर्मद्वारा यह नीचा होजाताहै । इस प्रकार लंघन वमन और स्वेदनके करनेके अनन्तर जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तब कफजनित गुल्ममें क्षार और कटु द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ घृत पिलाना चाहिये । उपरोक्त लंघनादि उपचारों द्वारा जो कफगुल्म अपने स्थानसे चलायमान होजाय, तो दशमूलके औषधियोंसे सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नेहनवस्ति द्वारा उसका संशोधन करना चाहिये ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कफके गुल्ममें अन्य उपदेश ।

मन्दाग्नावनिलेमूढेज्ञात्वासस्नेहमाशयम् । गुलिकाश्चूर्णनिर्यूहाः प्रयोज्याःकफगुल्मिनाम् ॥ ५१ ॥ कृतमूलंमहावास्तुंकठिनंस्ति-मितंगुरुम् । जयेत्कफकृतंगुल्मंक्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥ ५२ ॥

कफगुल्मवाले मनुष्यकी यदि अग्नि मन्द पडगई हो और अधोवायु रुकगईहो तथा आमाशय स्निग्ध हो तो उसको अग्निवर्द्धक, गुल्मनाशक और वायुके निकाल-नेवाली गुटिका, चूर्ण और क्वाथादिक सेवन करावे । जो कफगुल्म जड पकड गयाहो और बहुत फैलगयाहो, कडा, गीला और फेनयुक्त भारी हो उसको क्षार, अरिष्ट, और अग्निकर्म द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

गुल्ममें क्षारविधि ।

दोषप्रकृतिगुल्मन्तुयोगंवुद्ध्वाकफोल्वणे । वलदोषप्रमाणज्ञःक्षारं गुल्मेप्रयोजयेत् ॥ ५३ ॥ एकान्तरंद्व्यन्तरंवात्र्यहंविश्रम्यवापुनः । शरीरवलदोषाणांवृद्धिक्षपणकोविदः ॥ ५४ ॥ श्लेष्माणंमधुरंस्नि-ग्धंमांसक्षीरघृताशिनः । भित्त्वाभित्त्वाशयान्क्षारः क्षरत्वात् क्षारयत्यधः ॥ ५५ ॥

कफप्रधान गुल्मरोगमें दोष, प्रकृति, गुल्म और योगको विचारकर क्षारका प्रयोग करे । फिर एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन ठहरकर शरीर, बल और दोषोंमें न्यूनाधिकता विचारकर उसीके अनुसार फिर क्षारका प्रयोग करे । क्षार-अपनी क्षरणशक्तिके बलसे मांस दूध और घी खानेवाले मनुष्यके आशयको भेदन करके मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्गद्वारा निकाल देताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

गुल्ममें अरिष्ट ।

मन्देऽग्नावरुचौसात्म्येमद्येसस्नेहमश्नताम् ।
प्रयोज्यामार्गशुद्ध्यर्थमरिष्टाः कफगुल्मिनाम् ॥ ५६ ॥

चिकना भोजन करनेवाले कफ गुल्म रोगीकी यदि जठराग्निमन्द पडगईहो और अरुचि हो एवं मद्य सात्म्य हो तो मार्गकी शुद्धिके लिये उनको अरिष्ट पिलाना हितकारी है ॥ ५६ ॥

गुल्मदाग देना ।

लंघनोल्लेखनैःस्वेदैः सर्पिष्पानैर्विरेचनैः । वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणैरपि ॥ ५७ ॥ श्लैष्मिकः कृतमूलत्वाद्यस्यगुल्मोनशाम्यति । तस्यदाहोद्धृतेरक्तेशरलोहादिभिर्मतः ॥ ५८ ॥ औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्चशमयेदग्निर्गुल्मेकफानिलौ । तयोः शमाच्चसंघातोगुल्मस्यविनिवर्तते ॥ ५९ ॥

लंघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इन सबका प्रयोग करनेसे भी जो कफजनितगुल्म शान्त न हो और बद्धमूल (जड पकड) हो गया हो तो पहिले रक्तमोक्षण कराके फिर शर (बाण) अथवा लोहसे दग्धकरना (दागदेना) उचित है अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णतासे गुल्मरोगमें कफ और वायुको शान्त कर देतीहै । इन दोनोंके शान्त होनेसे गुल्म (गोला) भी नष्ट होजाताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दागदेनेयोग्य वैद्य ।

दाहेधान्वन्तरीयाणामत्रापिभिषजांबलम् । क्षारप्रयोगेभिषजां क्षारतंत्रविदांबलम् ॥ ६० ॥ व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्रएषएवक्रियाक्रमः । सिद्धानतःप्रवक्ष्यामियोगान् गुल्मनिबर्हणान् ॥ ६१ ॥

जो वैद्य धन्वन्तरीके मतानुसार क्षार और अग्निकर्मादि कर्म जानतेहैं वे ही दाहकर्म (दागदेना) कर सक्तेहैं । और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका प्रयोग (तेजाबसे

दग्धकरना) कर सकते हैं । जो दो दो दोषोंसे उत्पन्नहुए गुल्म हैं उनमें मिलीहुई चिकित्सा करना चाहिये । अब हम गुल्मनाशक सिद्ध प्रयोगोंको कहतेहैं ॥६०॥६१॥

त्र्यूषणादिघृत ।

त्र्यूषणंत्रिफलाधान्यंविडंगाचव्यचित्रकैः ।
कल्कीकृतैर्घृतंसिद्धंसक्षीरंवातगुल्मनुत् ॥ ६२ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां वायविडंग, चव्य और चित्रकका कल्क बनाकर वह कल्क और चार गुना दूध मिलाकर घृतसिद्धकरे । यह घृत वातगुल्मको दूर करताहै ॥ ६२ ॥

अन्य त्र्यूषणादिघृत ।

एतएवचकल्काःस्युःकषायःपंचमूलिकः ।
द्विपञ्चमूलिकोवाथतद्घृतंगुल्मनुत्परम् ॥ ६३ ॥

इन्हीं ऊपर कहीहुई त्रिकुटा आदि औषधियोंका कल्क और पंचमूल अथवा दशमूलके क्वाथमें घृतको सिद्ध करे यह घृत भी गुल्मरोगको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥

अन्ययोग ।

षट्पलंवापिबेत्सर्पिर्यदुक्तंराजयक्ष्मणि । प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादाडिमेनवा । दध्नःशरेणवाकार्यंघृतंमारुतगुल्मिनाम् ॥ ६४ ॥

जो षट्पल घृत राजयक्ष्मारोगमें कहाहै उसे दूधके वदलेमें प्रसन्ना, सुरा, दाडिमका रस अथवा दहीके पानीके साथ पकाकर देवे तो वातगुल्म शान्त होताहै ॥६४॥

हिंग्वादि घृत ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविडदाडिमदीप्यकैः । पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ ६५ ॥ शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्चविपाचितम् । शूलानाहहरंसर्पिर्दध्नाचानिलगुल्मिनाम् ॥ ६६ ॥

हींग, संचरनमक, जीरा, विडलवण, अनारदाना, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, धनियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, वच, अजमोद, इलायची, सुरसा, तुलसी इनके कल्क और दहीसे घृतको सिद्ध करे । ये घृत वातरोगियोंके शूल और अनाहको दूर करताहै ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

हवुषादिघृत ।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः । साजाजीपिप्पलीमूलदी-

प्यकैर्विपचेद्घृतम् ॥ ६७ ॥ मातुलुङ्गदधिक्षीरकोलमूलकदाडिमैः। रसैस्तद्वातगुल्मघ्नंशूलानाहविमोक्षणम् ॥ ६८ ॥ योन्यर्शोग्रहणी-दोषश्वासकासारुचिज्वरान् । वातहृत्पार्श्वशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ॥ ६९ ॥

हाऊवेर, त्रिकुटा, कलौंजी, चव्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपलामूल, अजवायन इन सबका कल्क, और बिजौरेका रस, दही, दूध, बेरका रस, मूलीकारस, अनारका रस, इन सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे। यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह, योन्यर्श, ग्रहणीदोष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग, और पार्श्वशूलको नष्ट करदेताहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याःपिचुरध्यर्धोदाडिमाद्द्विपलंपलम् । धान्यात्पञ्चघृताच्छुण्ठ्याकर्षःक्षीरंचतुर्गुणम् ॥ ७० ॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योवातगुल्मंचिकित्सिति । योनिशूलंशिरःशूलमर्शांसिविषमज्वरम् ॥ ७१ ॥

पीपल तीन तोला, अनारदाना आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला सोंठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। यह घृत वातगुल्मको तत्काल नष्ट कर देताहै। इस घृतके सेवन करनेसे योनिशूल, शिरका शूल, बवासीर और विषमज्वर यह सब दूर होजातेहैं॥ ७० ॥ ७१ ॥

घृतानामौषधगुणायएतेपरिकीर्तिताः ।
तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकषायास्तेचगुल्मिनाम् ॥ ७२ ॥

जो द्रव्य ऊपरोक्त घृतोंके सिद्ध करनेके लिये कहेहैं, उन्हीं औषधियोंके चूर्ण, वर्त्ती और काथोंका प्रयोग करनेसे गुल्मरोग शान्त होताहै ॥ ७२ ॥

पेया ।

कोलदाडिमघर्माम्बुसुरामण्डाम्लकाञ्जिकैः । शूलानाहनुदःपेया बीजपूररसेनवा ॥ ७३ ॥ चूर्णानिमातुलुंगस्यभावितस्यरसेनवा । कुर्याद्वर्त्तीः सगुडिकागुल्मानाहार्तिशांतये ॥ ७४ ॥

बेरका रस, अनारका रस, इनको गरमजल, सुरामण्ड, खट्टी कांजी, अथवा बिजौरेके रसमें बनाई पेया पान करनेसे शूल और अनाह दूर होताहै अथवा बिजौरेके चूर्णमें बिजौरेके रसकी भावना देकर, वर्त्ती या गोली बनाकर सेवन करे तो गुल्म, अफारा, पीडा ये सब शान्त होजातेहैं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्ण ।

हिंगुत्रिकुटकांपाठांहवुपामभयांशठीम् । अजमोदाजगन्धेचातिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ७५ ॥ दाडिमंपुष्करंधान्यमजाजींचित्रकंवचाम् । द्वौक्षारौलवणेद्वेचचव्यंचैकत्रयोजयेत् ॥ ७६ ॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् । प्राग्भक्तमथवापेयंमद्येनोष्णोदकेनवा ॥ ७७ ॥ पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषुगुल्मेवातकफात्मके । आनाहेमूत्रकृच्छ्रेवाशूलेचगुदयोनिजे ॥ ७८ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषुप्लीह्निपाण्डवामयेऽरुचौ । *उरोविबन्धेकासेचहिक्काश्वासगलग्रहे* ॥७९॥ भावितंमातुलुंगस्यचूर्णमेतद्रसेनवा ॥ बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्मुकाःस्युस्ततोऽधिकम् ॥ ८० ॥

हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊवेर, हरडे, अजमोद, कचूर, अजगंध, इमली, अमलवेत, अनारदाना, कूठ, धनियां, कालाजीरा, चीता, वच, सज्जीखार, जवा, क्षार सेंधानमक, संचरनमक, और चव्य इन सबका बारीक चूर्ण करलेवै । इस चूर्णको अनुपानके साथ सेवन करै अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्यके साथ या उष्ण जलके साथ लेवे । इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृतशूल, वस्तिशूल, वातकफका गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, योनिशूल, ग्रहणीविकार, अर्शविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, छातीकी रुकावट, खांसी, हिचकी, श्वास और गलग्रह दूर होतेहैं । इसी चूर्णको बिजौरेके रसमें खरलकर गोलियां बनावे । ये गोलियां चूर्णसे भी अधिक गुणकारी हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

गुल्ममें अन्ययोग ।

मातुलुङ्गरसोहिंगुदाडिमंविडसैन्धवे ।
सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥ ८१ ॥

बिजौरेका रस, हींग, अनारदाना, विडनमक, सेंधानमक, इनको सुरामण्डके साथ पीनेसे वायुका गुल्म नष्ट होजाताहै ॥ ८१ ॥

शठ्यादि चूर्ण ।

शटीपुष्करहिंग्वम्लवेतसक्षारचित्रकान् । धान्यकंत्र्यमानीञ्चविडङ्गंसैधवंवचाम् ॥ ८२ ॥ सचव्यपिप्पलीमूलमजगन्धं सदाडिम-

१ पहाडी अजवायन या बनतुलसी ।

म् । अजाजीञ्चाजमोदाञ्चचूर्णंकृत्वाप्रयोजयेत् ॥ ८३ ॥ रसेनमातुलुङ्गस्यमधुयुक्तेनवायुनः । भावितंगुडिकांकृत्वासुपिष्टांकोलसम्मिताम् ॥ ८४ ॥ गुल्मंप्लीहानमानाहंश्वासंकासमरोचकम् । हिक्कांहृद्रोगमर्शांसिविविधाञ्छिरसोरुजान् ॥ ८५ ॥ पांड्वामयंकफोत्क्लेशंसर्वजाञ्चप्रवाहिकाम् । पार्श्वहृद्वस्तिशूलञ्चगुडिकैषाव्यपोहति ॥ ८६ ॥

कचूर, पोहकरमूल, हींग, अमलवेत, जवाखार, चीता, धनियां अजवायन. विडंग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल, अजगंध, अनार, काला जीरा, और अजमोदका चूर्ण वनाकर सेवन करनेसे अथवा विजौरेके रसकी भावना देकर शहत मिलाके जंगली वेरके वरावर गोलियां वनाकर सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास, खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफका उत्क्लेश, सब प्रकारकी प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृच्छूल, और वस्तिशूल यह सब रोग दूर होते हैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अन्ययोग ।

नागरार्द्धपलंपिष्ट्वाद्वेपलेलुञ्चितस्यच । तिलस्यैकंगुडपलंक्षीरेणोष्णेनवापिवेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्तंयोनिशूलञ्चनाशयेत् ॥ ८७ ॥

दो तोले सोंठ छिलके रहित, तिल आठ तोले, गुड चार तोले इन सवको गर्म दूधके साथ पीवे तो वातगुल्म. उदावर्त और योनिशूल नष्ट होजातेहैं ॥ ८७ ॥

कफ तथा पित्तानुबन्धी गुल्मपर योग ।

पिवेदेरण्डकंतैलंवारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेवतैलंपयसावातगुल्मीपिवेन्नरः । श्लेष्मण्यनुवलेपूर्वमतंपित्तानुगेपरम् ॥ ८८ ॥

कफके अनुवंधवाले वातगुल्ममें वारुणीमण्ड मिलाकर एरंडतैल पीवे । और पित्तके अनुवंधवाले वातगुल्ममें दूधमें मिलाकर एरंडतैल पीना हित करताहै ॥ ८८ ॥

लहसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलशुनस्यचतुष्पलम् । क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषञ्चनापिवेत् ॥ ८९ ॥ वातगुल्ममुदावर्त्तगृध्रसीविषमज्वरम् । हृद्रोगंविद्रधींशोपंसाधयत्याशुतत्पयः ॥ ९० ॥

साफ करके सुखायेहुए लहसुनको चार पल लेकर दूध वह लहसुन और अठगुना जल मिलाकर पकावै । जब पानी जलकर दूध शेप रहजाय तब उस दूधको छानकर पीवै तो वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधी, शोप यह सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

अन्ययोग ।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालंयवाग्रजः ।
गुल्मंजठरमानाहंपीतमेकत्रसाधयेत् ॥ ९१ ॥

तिलोंका तैल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी और जवाखारको एकत्र पकाकर पीवै तो गुल्मरोग, जठररोग, और अफारा दूर होजातेहैं ॥ ९१ ॥

शिलाजीतका प्रयोग ।

पञ्चमूलकषायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।
पिबेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥ ९२ ॥

पञ्चमूलके काथ और दूधके साथ शिलाजीतका सेवन करनेसे वातगुल्मसे छूट जाताहै ॥ ९२ ॥

अन्यप्रयोग ।

वाट्यंयूषेणपिप्पल्यामूलकानांरसेनवा ।
भुक्त्वास्निग्धमुदावर्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते ॥ ९३ ॥

पीपलके काथ अथवा मूलीके रसके साथ भुने जवोंका मण्ड सेवन करे तो उदावर्त्त और वातगुल्म दूर होताहै ॥ ९३ ॥

गुल्ममें स्वेदन और बस्तिकर्मका निर्देश ।

शूलानाहविबन्धार्तंस्वेदयेद्वातगुल्मिनम् । स्वेदैःस्वेदविधावुक्तैर्नाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥ ९४ ॥ बस्तिकर्मपरंविद्याद्गुल्मघ्नंतद्धिमारुतम् । स्वेस्थानेप्रथमंजित्वासद्योगुल्ममपोहति ॥ ९५ ॥ तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरूहैःसानुवासनैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तकफात्मकाः ॥९६॥ गुल्मघ्नाविविधाद्दष्टाःसिद्धाःसिद्धिषुबस्तयः॥९७॥

यदि वातगुल्मवाला रोगी शूल, आनाह और विबंधसे पीडित हो तो उसको स्वेदाध्यायमें कहेहुए नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद और शंकरस्वेद द्वारा स्वेदन करना चाहिये । वातजगुल्ममें बस्तिकर्म बहुत श्रेष्ठ है । क्योंकि यह वायुको उसके स्थानमें

ही जीतकर गुल्मको दूर करदेताहै । इसलिये निरूहण और अनुवासन वस्तियोंका बारंवार क्रमपूर्वक प्रयोग करनेसे, वातके, पित्तके और कफके गुल्म शान्त होजातेहैं । सिद्धिस्थानमें गुल्मनाशक अनेक प्रकारके सिद्ध वस्तिप्रयोग वर्णन किये गयेहैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

गुल्मपर तैलोंका निर्देश ।

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके । तानिमारुतगुल्मेषुपानाभ्यङ्गानुवासनैः । प्रयुक्तान्याशुसिद्ध्यन्तितैलंह्यनिलजित्परम्॥९८॥

सब प्रकारके गुल्मनाशक तेल वातरोगाध्यायमें वर्णन कियेहैं इन तैलोंको वात गुल्ममें पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा प्रयुक्त करनेसे वातगुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाताहै । वह तेल विशेषकरके वायुको नष्ट करतेहैं ॥ ९८ ॥

गुल्मपर घृतपान ।

नीलिनीचूर्णसंयुक्तंपूर्वोक्तंघृतमेववा । समलायप्रदेयंस्याच्छोधिनं वातगुल्मिके ॥९९॥ नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पिल्यकैःसह । शोधनार्थंघृतंदेयंसबिडक्षारनागरम् ॥ १०० ॥

मलयुक्त वातगुल्मरोगीको नीलिनीका चूर्ण मिला हुआ घृत अथवा पूर्वोक्त रेचक घृत शोधनके लिये देना चाहिये । अथवा नीलिनी, निसोथ, दन्ती, हरड, कबीला, बिडनमक, जवाखार, और सोंठ इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृत संशोधनके लिये पिलावे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

नीलिन्यादिघृत ।

नीलिनींत्रिवृतांरास्नांबलांकटुकरोहिणीम् । पचेद्विडङ्गंव्याधींश्चपालिकानिजलाढके॥ १०१ ॥ तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेनच ॥ १०२ ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् । जीर्णेसम्यग्विरिक्तश्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ १०३ ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् । श्वित्रंप्लीहानमुन्मादंघृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०४ ॥

नीलिनी, निशोथ, रास्ना, खरेटी, कुटकी, वायविडंग, कटेरी इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक जलमें पकावे जब चौथाई जल रहजाय तब इसमें, एक प्रस्थ दही और एक पल थोहरका दूध मिलाकर एक प्रस्थ घी पकावे । इसमेंसे एक

पल घृत यवागूमण्डमें मिलाकर रोगीको पिलावे । जब औषध जीर्ण होकर रोगीको अच्छी तरह विरेचन होलेवे तव मांसरसके साथ साठीका भात भोजन करावे । यह घृत गुलमकाढे, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा, और उन्माद रोगको शान्त करताहै ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

वातगुल्ममें पथ्यादि ।

कुक्कुटाश्चमयूराश्चतित्तिरिक्रौञ्चवर्तकाः । शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिषग्जितम् ॥ १०५ ॥ हितमुष्णंद्रवंस्निग्धंभोजनंवातगुल्मिनाम् । समण्डवारुणीपानंपक्वंवाधान्यकैर्जलम् ॥ १०६ ॥ मन्देऽग्नौवर्द्धतेगुल्मोदीप्तेचाग्नौप्रशाम्यति । तस्मादन्नातिसौहित्यंकुर्यान्नातिविलंघितम् ॥ १०७ ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्नेहस्वेदोपपादिते । याक्रियाक्रियतेसिद्धिंसायातिनिविरूक्षिते ॥ १०८ ॥

मुर्गा, मोर, तीतर, क्रौंच, बटेर, शालीचांवल, मद्य और घृत यह सब वातगुल्ममें हितकारक हैं । तथा उष्ण, पतला और स्निग्ध भोजन हित है । मण्डयुक्त वारुणी मद्य वा धनियां डालकर औटायाहुआ जल भी हितकारी है । अग्निके मन्द होजानेसे गुल्म बढताहै और प्रदीप्त होनेसे शान्त होजाताहै । इसलिये न तो अधिक पेटभर खाना चाहिये और न लंघन ही करना चाहिये । गुल्मरोगमें प्रथम स्नेहन, स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकीजातीहै उससे रोग शांत होजाताहै और रूक्षशरीर मनुष्यकी चिकित्सा कीजातीहै वह निष्फल होतीहै ॥ १०५–१०८ ॥

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ।

भिषगात्ययिकंबुद्ध्वापित्तगुल्ममुपाचरेत् ।
वैरेचनिकसिद्धेनपयसासर्पिषापिवा ॥ १०९ ॥

पित्तगुल्मको सांघातिक जानकर उसकी चिकित्सा करना चाहिये इसमें विरेचनकारक द्रव्योंके साथ सिद्ध किये हुए घृत अथवा दूधों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥

रोहिण्यादिघृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफलात्वचः । कार्षिकात्रायमाणाचपटोलात्रिवृतापले ॥ ११० ॥ द्विपलश्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणेम्भसि । घृताच्छेषंघृतसमंसर्पिषश्चचतुष्पलम् ॥ १११ ॥ पिबेत्संमूर्च्छितंतेन

गुल्मः शाम्यतिपैत्तिकः । ज्वरस्तृष्णाचशूलञ्चभ्रममूर्च्छारुचिस्तथा ॥ ११२ ॥

कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलेकी छाल और त्रायमाणा यह सब एक एक तोला लेवे । और पटोलकी जड और निशोथ चार चार तोला ले, दो पल मसूर इन सबको आठगुने जलमें औटावे, जब घृतके समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चार पल घृतको पकावे अथवा उन्हीं औषधोंसे सिद्ध किये घृतको इस १६ तोले क्वाथमें ४ तोला मिलाकर सेवन करनेसे पैत्तिक गुल्म, ज्वर, तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजातेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

त्रायमाणाद्यघृत ।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायमाणाचतुष्पलम् । पञ्चभागस्थितंपूतंकल्कैःसंयोज्यकार्षिकैः ॥ ११३ ॥ रोहिणीकटुकामुस्तेत्रायमाणादुरालभा । कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ ११४ ॥ रसस्यामलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टाष्टौदत्त्वासम्यग्विपाचयेत् ॥ ११५ ॥ पित्तरक्तभवंगुल्मंवीसर्पपैत्तिकंज्वरम् । हृद्रोगंकामलांकुष्ठंहन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥ ११६ ॥

चार पल त्रायमाणको दशगुने जलमें पकावे जब पांचवां भाग रहजाय तब उसको उतारकर छानले । फिर इसमें कुटकी, नागरमोथा त्रायमाणा, जवासा भूमिआंवला क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन. उत्पल इनको एक एक तोला ले पीस कूटकर उसमें डालदे और आंवलेका रस आठ पल, दूध आठ पल, घृत आठ पल यह सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे । सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवनकरनेसे पैत्तिकगुल्म, रक्तजगुल्म, विसर्प, पित्तका ज्वर, हृद्रोग, कामला, कोढ यह सब रोग दूर होजातेहैं ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

आमलकादिघृत ।

रसेनामलकेक्षूणांघृतपादंविपाचयेत् ।
पथ्यापादम्पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धिंपित्तगुल्मनुत् ॥ ११७ ॥

आंवले और ईखके रससे चौथाई घी और घीसे चौथाई हरडका चूर्ण मिलाकर पकावे । सिद्ध होजानेपर इस घृतके सेवन करनेसे पैत्तिकगुल्म नष्ट होजाताहै॥११७॥

द्राक्षादिघृत ।

द्राक्षांमधूकंखर्जूरंविदारींसशतावरीम् । परूपकाणित्रिफलांसाध-

येत्पलसंमिताम् ॥ ११८ ॥ जलाढकेपादशेषेरसमामलकस्यच । घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादितम् ॥ ११९ ॥ साधयेत्तं-घृतंसिद्धंशर्कराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नंसर्वपित्तविकारनुत् ॥ १२० ॥

मुनक्का, महुआ, खजूर, विदारीकंद, शतावर, फालसे और त्रिफला यह सब एक-एक पल लेवे और एक आढक जलमें डालकर, अग्निपर पकावे जब चौथाई शेप रहजाय, तब उतारकर छानलेवे फिर इसमें आँवलेका रस, घी, ईखका रस, दूध और घृत तथा घृतसे चौथाई हरडैका कल्क डालकर सबका पाक करले। जब घृत सिद्ध होजाय तब उसमें चौथाई मिसरी और शहत डालकर सेवनकरै तो पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले संपूर्ण विकार नष्ट होजातेहैं ॥११८॥११९॥१२०॥

वासाघृत।

वृषंसमूलमापोथ्यपचेदष्टगुणेजले । शेषेऽष्टभागेतस्यैवपुष्पकल्कंप्रदापयेत् ॥ १२१ ॥ तेनसिद्धंघृतंशीतंसक्षौद्रंपित्तगुल्मनुत् । रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्रोगनाशनम् ॥ १२२ ॥

अडूसाको जड समेत कूटकर आठगुने जलमें पकावे जब आठवां भाग जल रहजाय तब उसमें उसीके फूलका कल्क और घी डालकर पकावे । घृतमात्र शेप रहै तो उतारले, तथा ठंढा होनेपर शहत मिलाकर उसका सेवन करे तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त ज्वर, श्वास, खासी और हृदयरोग नष्ट होजातेहै ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

अन्य त्रायमाणघृत।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम् । अष्टभागस्थितं पूतंकोष्णंक्षीरसमंपिबेत् ॥ १२३ ॥ पिबेदुपरितस्योष्णंक्षीरमेवयथाबलम् । तेननिर्घृतदोषस्यगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः ॥ १२४ ॥

दो पल त्रायमाणको दो प्रस्थ जलमें डालकर पकावे जब आठवां भाग शेप रहजाय तब छानकर बराबरका दूध मिलाकर मन्दोष्ण पीवे, ऊपरसे यथाशक्ति गरम दूध पीवे। इसका सेवन करनेसे दोप दूर होकर पित्तगुल्म शान्त होजाताहै ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

पित्तके गुल्ममे अनेक उपचार।

द्राक्षाभयारसंगुल्मेपैत्तिकेसगुडंपिबेत् । लिह्यात्कम्पिल्लकंवापिविरेकार्थमधुद्रवम् ॥ १२५ ॥ शूलप्रशमनोऽभ्यंगः सर्पिषापित्तगु-

लिमनाम् । चन्दनाद्येनतैलेनतैलेनमधुकस्यवा ॥ १२६ ॥ येचापित्तज्वरार्तानांसतिक्ताःक्षीरवस्तयः । हितास्तेपित्तगुल्मिभ्योवक्ष्यन्तेयेचसिद्धिषु ॥ १२७ ॥ शालयोजाङ्गलंमांसङ्गव्याज्यंपयसीघृतम् । खर्जूरामलकंद्राक्षादाडिमंसपरूषकम् ॥ १२८ ॥ आहारार्थंप्रयोक्तव्यंपानार्थेसलिलंश्रृतम् । वलाविदारीगन्धाद्यैःपित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ १२९ ॥ आमान्वयेपित्तगुल्मेसामेवाकफवातिके । यवागूभिःखडैर्यूषैःसन्धुक्ष्योऽग्निर्विलङ्घिते ॥ १३० ॥ शमप्रकोपौदोषाणांसर्वेषामग्निसंश्रितौ । तस्मादग्निंसदारक्षेन्निदानानिचवर्जयेत् ॥ १३१ ॥

पित्तके गुल्मरोगमें विरेचनके लिये मुनक्का, हरडे और गुडका काथ पीवे । अथवा शहतमें कवीला मिलाकर चाटे । पित्तगुल्मवाले रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतकी मालिश तथा चन्दनादितैल या मुलहठीके तैलकी मालिश करे । पित्तज्वरसे पीडित रोगियोंके लिये तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध क्षीरसे वस्तिकरना तथा आगे सिद्धिस्थानमें वर्णन की हुई वस्तियें पित्तगुल्ममें हितकारी होतीहैं । एवं शालीचावल, जांगल पशुओंका मांस, गौ और बकरीका दूध, घी, खजूर, आँवला, मुनक्का, अनार, और फालसा, आहारकेलिये हित हैं और पीनेके लिये औटायाहुआ जल देवे । खरेटी और शालिपर्णी आदि गणकी औषधियों द्वारा पित्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये । आमयुक्त पित्तगुल्ममें लंघन कराके यवागू अथवा खड यूप का सेवन कराके अग्निको प्रदीप्त करे । सम्पूर्ण दोषोंकी शान्ति और प्रकोप जठराग्निके आश्रित हैं इसलिये, अग्निकी साम्यावस्थाके लिये सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये तथा जिन कारणोंसे रोग उत्पन्न हुआहो उनको त्याग देना चाहिये ॥१२५-१३१॥

कफगुल्मकी चिकित्सा ।

वमनार्हायवमनं प्रदद्यात्कफगुल्मिने । स्निग्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते ॥ १३२ ॥ परिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्वजानथवाकुशान् । भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मेघटमुखङ्क्षिपेत् ॥ १३३ ॥ संगृहीतोयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत् ।वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्द्याद्गुल्मप्रमाणवित् ॥ १३४॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभंप्रपीडनैः। मृद्नीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्त्रहृदयंस्पृशेत् ॥ १३५ ॥

कफके गुल्मवाला रोगी यदि वमनके योग्य हो तो उसको वमन कराना चाहिये। प्रथम स्नेहन और स्वेदन करनेसे जब गुल्म नम्र होकर शिथिल होजाय तब गुल्मस्थान पर पतलासा वस्त्र बिछादेवे। फिर एक घडेमें वल्वजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्मस्थानमें उस घडेका मुख लगादेवे, घडेकी भाफ गुल्मको आकर्षण करलेतीहै। जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडेको उठाले और वस्त्रको हटाकर गुल्मका विस्तार देखलेवे और उसको विमार्ग, अजपद, और आदर्श इनमेसे किसी एक शस्त्रद्वारा भेदन करे। परन्तु केवल गुल्महीको प्रपीडन करे और आंतों वा हृदयपर किसी प्रकारका आघात होनेका बचाव रक्खे ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

कफगुल्ममें स्वेदनविधि।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च।
श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ १३६ ॥

वैद्यको चाहिये कि कफगुल्मको तिल, एरण्ड, अलसी और सरसोंका लेप करके ऊपरसे सहतासहता गरम लोहेके पात्रसे स्वेदन करे ॥ १३६ ॥

दशमूलीघृत।

सव्योपक्षारलवणं दशमूलीशृतं घृतम्।
कफगुल्मं जयत्याशु सहिंगुविडदाडिमम् ॥ १३७ ॥

त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक और दशमूलके क्काथ तथा कल्कमें घृतको पकावै फिर इस घृतको हींग, विडनमक और अनारके रसके साथ मिलाकर सेवनकरे तो कफगुल्म शीघ्र ही नष्ट होजाताहै ॥ १३७ ॥

भल्लातकादिघृत।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलपलोन्मितम्। साध्यं विदारीगन्धाद्यमापोथ्य सलिलाढकैः ॥ १३८ ॥ पादशेषे रसे तस्मिन् पिप्पलीं नागरं वचाम्। विडङ्गं सैन्धवं हिंगु यावशूकं विडं शटीम् ॥ १३९ ॥ चित्रकं मधुकं रास्नाम्पिष्ट्वा कर्षसमं भिषक्। प्रस्थं च पयसः कृत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १४० ॥ एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम्। प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥ १४१ ॥

---

१ घडे (कुने) की भाफसे गुल्म बाहर आजाताहै फिर उसको युक्तिपूर्वक जानकार ही चीर सकताहै। इसमें प्राणजानेका भी भय है।

शुद्ध भिलावे दो पल, पंचमूलकी प्रत्येक गणकी औषधियां एक एक पल, और विदारीगन्ध आदि औषधोंको कूटकर एक आढक जलमें औटावे. जब चौथाई भाग शेष रहे तब उसमें पीपल, सोंठ, वच, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार, विडनमक, कचूर, चीता, मुलैठी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्ष, दूध १ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर सेवन करनेसे यह भल्लातक घृत कफगुल्मको दूर करनेमें परम उत्तम है। तथा प्लीहा, पाण्डुरोग, श्वास और ग्रहणीको दूर करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥

पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैःसयवक्षारैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ १४२ ॥ क्षीरप्रस्थश्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंकफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंप्लीहकासज्वरापहम् ॥ १४३ ॥

पीपल, पिप्पलामूल, च्यच, चीता, सोंठ और जवाखार यह एक २ पल लेवे, इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घृत डालकर सिद्ध करे। इस घृतका सेवन करनेसे कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर दूर होतेहैं ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तींदशमूलंपलोन्मितम् । जलेचतुर्गुणेपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥१४४॥ सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरश्चैकत्रसाधयेत् । ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ १४५ ॥ कफवातविबन्धेषुकुष्ठप्लीहोदरेषुच । प्रयोज्योमिश्रकः स्नेहोयोनिशूलेषु चाधिकम् ॥ १४६ ॥

निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल यह सब एक २ पल लेकर चौगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग शेष रहे तब इसको छानकर इसमें घी, एरण्डतैल और दूध मिलाकर पकावे। इस प्रकार यह मिश्रक स्नेह तैयार होताहै। इसको शहत मिलाकर सेवन करे तो कफगुल्म, कफ, वात, विबन्ध, कुष्ट प्लीहा और उदररोग नष्ट होतेहैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

कफगुल्ममें विरेचन ।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्रंसनन्नीलिनीघृतम् । द्विगुणंतद्विरेकार्थंप्रयोज्यंकफगुल्मिनाम् ॥ १४७ ॥ सुधाक्षीरद्रवेचूर्णंत्रिवृतायाःसुभावितम् । कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरिच्यते ॥ १४८ ॥

वातगुल्ममें जो रेचक नीलिनीघृत कहागयाहै । उसकी दूनी मात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवे । अथवा त्रिवृताके चूर्णमें थोहरके दूधकी भावना देकर उसमें घी और शहत मिलाकर एक तोला चाटे तो उत्तम रीतिसे विरेचन होताहै।१४७॥१४८॥

हरीतक्यादि गुड ।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिःपञ्चचाभयाः । दन्त्याः पलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच ॥ १४९ ॥ अष्टभागस्थितंतञ्चरसंपूतमधिक्षिपेत् । दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्तत्राभयाश्चताः ॥ १५० ॥ तैलार्धकुडवश्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् । चूर्णितंपलमेकञ्चपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ १५१ ॥ तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु । क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥ १५२ ॥ ततोलेहपलंलीढ्वाजग्ध्वाचैकांहरीतकीम् । सुखंविरिच्यतेस्निग्धोदोषप्रस्थमनामयः ॥ १५३ ॥ गुल्मंश्वयथुमर्शांसिपाण्डुरोगमरोचकम् । हृद्रोगंग्रहणीदोषंकामलांविषमज्वरम् ॥ १५४ ॥ कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्नन्त्युपसेवितः । निरत्ययःक्रमश्चास्याद्रवोमांसरसोदनः ॥ १५५ ॥

वडी २ पचीस हरडें, दन्ती (पहाडी जमालगोटेकी जड) पचीस पल, चित्रक पचीस पल इन सबको एक द्रोण जलमें पकावे, जब आठवां भाग शेष रहे तो उसको छानलेवे । फिर गुड पचीस पल और वह हरडे उसमें डालदे और आधा कुडव तेल (चाकूसे चीरकर) उसमे मिलादेवे तथा निशोथ चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल कूटकर धीरे २ पकावे । जब पककर गाढा होजाय तब उतारले ठंढा होनेपर आधा कुडव शहत, एक पल दालचीनी, एक पल इलायची, एक पल तेजपात, और केसर एक पल उसीमें मिलादेवे । इसमेंसे फिर नित्य एक एक पल चाटकर ऊपरसे एक हरड खाले तो सुखपूर्वक एक प्रस्थ मल निकलताहै । और इसके सेवनसे गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डु रोग, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, कामला, विषमज्वर, कुष्ठ, प्लीहा, अफारा यह सब रोग दूर होजातेहैं । इसमें मांस रस और भातका भोजन करना चाहिये ॥ १४९-१५५ ॥

कफ गुल्ममें बस्ति ।

सिद्धाः सिद्धिषु वक्ष्यन्ते निरूहाः कफगुल्मिनाम् ॥ १५६ ॥

कफगुलमवाले रोगियोंके लिये सिद्धिस्थानमें सिद्ध निरूहणवस्तियां लिखीगई हैं ॥ १५६ ॥

कफगुलममें चूर्णादिप्रयोग ।

अरिष्टयोगाःसिद्धाश्चग्रहण्यर्शश्चिकित्सिते । यच्चूर्णगुटिकायाश्च विहितावातगुल्मिनाम् । द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसास्ताःकफेमताः ॥ १५७ ॥ य एव ग्रहणीदोषेक्षारास्तेकफगुल्मिनाम् । सिद्धा निरत्ययाः शस्तादाहस्त्वन्तेप्रशस्यते ॥ १५८ ॥

ग्रहणी और अर्श चिकित्सित अध्यायमें जो सिद्ध अरिष्ट तथा वातगुलमनाशक जो चूर्ण और गोलियां वर्णन कीहैं वह सब कफगुलममें हितकारी हैं । परन्तु उन चूर्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत डालाजाताहै कफगुलममें उससे दूना डालना चाहिये । जो क्षार ग्रहणीदोषमें वर्णन कियेहैं वहभी कफगुलममें हित हैं । कफगुलमको अन्तमें दग्ध करना भी हित है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

गुलममें पथ्य ।

प्रपुराणानिधान्यानिजाङ्गलामृगपक्षिणः । कौलत्थोमुद्गयूपश्चपिप्पल्यानागरस्यच ॥ १५९ ॥ शुष्कमूलकयूपश्चबिल्वस्यवरुणस्य च । चिरिबिल्वांकुराणाञ्चयवान्याश्चित्रकस्यच ॥ १६० ॥ बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमैः । तक्रेणतैलसर्पिर्भ्याव्यञ्जनान्युपकल्पयेत् ॥ १६१ ॥

गुलमरोगमें पुराने बहुत उत्तम धान्य, जांगल पशुपक्षियोंका मांस कुल्थीका यूप, मूंगका यूप, पीपल, सोंठ और सूखी मूलीका यूप, बिल्व, वरना, कंजा, अजवायन, चीता इनको डालकर बनायाहुआ यूप अथवा बिजौरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार, तक्र, तेल घी इनके साथ अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करना चाहिये ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१ ॥

कफगुलमपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितंतोयंपुराणंवारुणीरसम् । कफगुल्मीपिबेत्कालेजीर्णमाध्वीकमेववा ॥ १६२ ॥ यवानीचूर्णितन्तक्रंबिडनलवणीकृतम् । पिबेत्सन्दीपनंवातकफमूत्रानुलोमनम् ॥ १६३ ॥

पंचमूलका क्वाथ, पुरानी वारुणी अथवा माध्वीक मद्यका कफगुल्ममें पान करना चाहिये। अजवायन और नमकको पीसकर तक्र (मट्ठे) में मिलाकर पीनेसे अग्नि संदीपन होतीहै तथा वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण।

संचितःक्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः। कृतमूलःशिरानद्धोय-दाकूर्मइवोन्नतः ॥ १६४ ॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्व-रैः। तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिद्ध्यति ॥ १६५ ॥ गृही-त्वासज्वरश्वासंवम्यतीसारपीडितम्। हृन्नाभिहस्तपादेषुशोफः कर्षतिगुल्मिनम् ॥ १६६ ॥

जो गुल्म क्रमपूर्वक धीरे धीरे बढकर बहुत बीचमें फैलजाय और जड पकडकर नसोंमें स्थित हो कछुएकी पीठकी समान ऊंचा होजाय तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, छर्द, अरति, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय यह उपद्रव होतेहैं वह असाध्य होताहै। जिस गुल्मरोगीके ज्वर, श्वास, वमन और अतिसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और पांवमें सूजन प्रगट होजातीहै वह रोगी असाध्य जानना ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्साका निर्देश।

रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रमे। स्निग्धस्विन्नशरीरायद-द्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ १६७ ॥ पलाशक्षारपात्रेद्वेद्वेपात्रेतैलसर्पिषोः। गुल्मशैथिल्यजननींपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ॥ १६८ ॥ प्रभिद्येतन यद्येवंदद्याद्योनिविरेचनम्। क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः ॥ १६९ ॥ ताभ्यांवाभावितान्दद्याद्योनौकटुकमत्स्यकान्। वरा-हमत्स्यपित्ताभ्यांनक्तकान्वासुभावितान् ॥ १७० ॥ अधोहरैश्चो-र्ध्वहरैर्भावितान्वासमाक्षिकान्। किण्वंवासगुडक्षारंदद्याद्योनिवि-शोधनम् ॥ १७१ ॥

रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय (दसवां महीना) व्यतीत होजाय तब स्नेहन, स्वेदनकर्म करनेके अनन्तर स्निग्ध विरेचन करावे ढाकका खार दो आढक, घी और तेल एक एक आढक इन सबको मिलाकर पाक करै फिर गुल्मको शिथिल करनेके लिये योग्य मात्रासे रोगीको देवै। यदि इस प्रयोगसेभी गुल्मभेदन न हो तो योनि

विरेचनकर्त्ता द्रव्योंका प्रयोग योनिके मार्गसे करै। क्षार और तिलकल्क अथवा थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ तिलकल्क योनिमार्गमें रक्खे । अथवा क्षार और थोहरके दूधकी भावना दियाहुआ कटुरसयुक्त मछलीका मांस योनिमें रक्खे । अथवा सूअरके और मछलीके पित्तेकी भावना मगरके मांसको देकर अथवा विरेचन कारक और वमन कारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ मगरका मांस शहत मिलाकर अथवा किण्व (सुराबीज) गुड और क्षार मिलाकर योनिमार्गमें रक्खे । इनसे स्राव होकर योनिद्वाराही गुल्म खरजाताहै ॥ १६७-१७१ ॥

रक्तपित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिषा ।
लशुनंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैप्रदापयेत् ॥ १७२ ॥

अथवा शहत और घीके साथ रक्तपित्त नाश करनेवाले क्षारको चटावै । अथवा लहसन, तीक्ष्ण मद्य, और मछली यह खानेको देवे । इससे भी योनिस्राव होकर रक्त गुल्म खरजाताहै ॥ १७२ ॥

रक्तभेदनकर्त्ता बस्ति ।

वस्तिंसक्षारगोमूत्रंसक्षारन्दाशमूलिकम् ।
अदृश्यमानेरुधिरेदद्याद्गुल्मप्रभेदनम् ॥ १७३ ॥

यदि रक्त न निकलता हो तो उसके भेदनकरनेके लिये क्षार और गोमूत्रकी अथवा क्षार और दशमूलके क्वाथकी वस्तिका प्रयोग करे ॥ १७३ ॥

प्रवर्त्तमान रुधिरमें उपचार ।

प्रवर्त्तमानेरुधिरेदद्यान्मांसरसौदनम् । घृततैलेनचाभ्यङ्गपानार्थं तरुणींसुराम् ॥ १७४ ॥ रुधिरेऽतिप्रवृत्तेतुरक्तपित्तहराःक्रियाः । कार्यावातरुगार्तायाः सर्वावातहराःपुनः ॥ १७५ ॥ घृततैलाव-सेकाश्चतित्तिरिश्चरणायुधः । सुरासमण्डापूर्वञ्चपानमम्लस्यसर्पिषः । प्रयोजयेदुत्तरंवाजीवनीयससर्पिषा ॥ १७६ ॥

यदि रक्तस्राव होताहो तो मांसरस और भात खानेको देवे, घी और तेलकी मालिश करावे तथा नवीन मद्य पीनेको देवे । यदि रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्तिहो तो रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । एवं वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वातनाशिनी क्रिया करै । इनमें घृत और तैलप्रयोग, रक्त निकालना, तीतर और मुर्गेका मांस, मण्डयुक्त सुरा, अम्लरसयुक्त घृतपान करना हितकारी है।तथा जीवनीयगणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धकियेहुए घृतकी उत्तरवस्ति देना हितकारक है॥१७४॥१७५॥१७६॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्तिचात्र ।

सर्पिःसारिक्तसिद्धंक्षीरंप्रस्रंसनन्निरूहांश्च ॥ रक्तस्यचावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः । उपनाहनंसशस्त्रंपकास्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य ॥ १७७ ॥ संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्यगुल्मस्य । स्नेहः स्वेदोभेदोलंघनमुल्लेखनंविरेकाश्च ॥ १७८॥ सर्पिर्वस्तिर्गुडिकाश्चूर्णमरिष्टाश्चसक्षाराः । गुल्मस्यान्तेदाहःकफजस्याग्रेऽपनीतरक्तस्य ॥ १७९ ॥ गुल्मस्यरौधिरस्यक्रियाक्रमःस्त्रीभवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतूनांवर्जनंयथास्वञ्च ॥ १८० ॥ नित्यश्चाग्निसमाधिः स्निग्धस्यचसर्वकर्माणि । हेतुर्लिङ्गंसिद्धिःक्रियाक्रमःसाध्यतानुयोगश्च ॥ गुल्मचिकित्सितसंग्रहएतावानग्निवेशस्य ॥ १८१ ॥

इति चरक० चिकित्सि०गुल्मचिकित्सितंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशके संग्रहार्थ इस गुल्मचिकित्सिताध्यायमें गुल्मरोगनाशक घृत और दूध, विरेचन, निरूहण, रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्ममें उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रद्वारा भेदन, आभ्यंतर भिन्नकी चिकित्सा संशोधन और संशमनप्रयोग, कफगुल्ममें स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गुटिका, चूर्ण, अरिष्ट, क्षार, तथा रक्त निकालकर फिर दाहकर्म यह वर्णन कियेहैं । एवं स्त्रियोंको होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, गुल्मोत्पादक कारणोंका त्याग, रोगीको स्निग्ध करनेपर जठराग्निकी रक्षा, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्साक्रम, साध्यता और अनुयोग, यह सब वर्णन किया गयाहै ॥ १७७-१८१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० चिकित्सितस्थाने प्र० भाषाटीकायां गुल्मचिकित्सितं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःप्रमेहचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इति ह स्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

निर्मोहमानानुशयोनिराशःपुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः ।
कालेऽग्निवेशायसहेतुलिंगानुवाचमेहाञ्छमनश्चतेषाम् ॥ १ ॥

मोह, मान, राग द्वेष और इच्छासे रहित, ज्ञान और महातपशाली भगवान् पुनर्वसुजी प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय यथासमय अग्निवेशने कहने लगे ॥ १ ॥

प्रमेहका निदान ।

आस्यासुखंस्वप्नसुखन्दधीनिग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि ।
नवान्नपानंगुडवैकृतश्चप्रमेहहेतुःकफकृच्चसर्वम् ॥ २ ॥

बहुत बैठे रहनेसे, बहुत सोनेसे, दही तथा ग्राम्य, आनूप तथा औदक पशुपक्षियोंका मांस अधिक खानेसे और अधिक दूध वं नये अन्न पानका सेवन करनेसे, मिठाई आदिके सेवनसे, तथा और भी सब प्रकारके कफकारी पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे प्रमेहरोग उत्पन्न होताहै ॥ २ ॥

कफादिप्रमेहकी सम्प्राप्ति ।

मेदश्चमांसश्चशरीरजश्चक्लेदंकफोवस्तिगतंप्रदूष्य । करोतिमेहं समुदीर्णमुष्णैस्तान्येवपित्तंपरिदूष्यभूयः ॥ ३ ॥ क्षीणेषुदोषेष्ववकृष्यवस्तौधातुन्प्रमेहाननिलःकरोति । दोषोहिवस्तौसमुपेत्यमूत्रं सन्दूष्यमेहाञ्जनयेद्यथास्वम् ॥ ४ ॥

मेद, मांस और शरीरके क्लेदको दूषित करके मूत्रस्थानमें प्राप्तकर कफ, प्रमेहको उत्पन्न करताहै । इसीप्रकार उष्ण पदार्थोंके सेवनसे कुपितहुआ पित्त मेद, मांसादि दूषित करके जब वस्तिस्थानमें प्राप्त होताहै तब पित्तके प्रमेहोंको प्रगट करताहै । एवं लंघनादि द्वारा कफपित्त और मलमूत्रादिके क्षीण होनेपर वायु कुपित होकर रस, मज्जा वसा और ओज धातुको वस्तिस्थानमें आकर्षणकर वातजप्रमेह उत्पन्न करताहै दोषही वस्तिमें प्राप्त हो मूत्रको दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

प्रमेहोंकी संख्या ।

साध्याःकफोत्थादशपित्तजाःषड्याप्यानसाध्याः पवनाश्चतुष्काः ।
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमन्ते ॥ ५ ॥

चिकित्सामें समक्रियत्व होनेसे दश प्रकारके कफजनित प्रमेह साध्य होतेहैं। चिकित्सामें विषमक्रियत्व होनेसे छः प्रकारके पित्तजनित प्रमेह याप्य होतेहैं। इसी प्रकारसे क्रियामें विरोध पडनेसे चार प्रकारके वातजनित प्रमेह असाध्य होतेहैं। समक्रियत्वका यह तात्पर्य है कि दोष और मेदा आदि दूष्य यह समानगुण हैं इससे कफनाशक क्रिया करनेसे ही प्रमेह शान्त होजातेहैं, इसलिये साध्य हैं। तथा पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदको बढातेहैं और मेदाके नाश करनेवाले उष्ण कटुकादि द्रव्य पित्तको बढातेहैं इसलिये यहां क्रियाकी विषमता होनेसे पित्तज प्रमेह याप्य हैं। जिन द्रव्यों और क्रिया द्वारा प्रमेहकी शांति होतीहै उन्हींसे वायुका कोप होताहै और इसमें सब प्रकारकी क्रिया विरोधी पडतीहैं इसलिये वायुके प्रमेह असाध्य होतेहैं ॥ ५ ॥

प्रमेहमें दोषदूष्योंकी संख्या।

कफःसपित्तःपवनश्चदोषामेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः। मज्जारसौजःपिशितश्चदूष्यंप्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ६ ॥

वात, कफ, पित्त यह तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्बी, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस यह सब दूष्य हैं, इन दोष दूष्योंके संयोगसे बीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होतेहैं ॥ ६ ॥

जलोपमंवेक्षुरसोपमंवाघनंघनंचोपरिविप्रसन्नम्। शुक्लंसशुक्रंशिशिरंशनैर्वालालेववावालुकयायुतंवा ॥ ७ ॥ विद्यात्प्रमेहान्कफजान्दशैतान्क्षारोपमङ्कालमथापिनीलम्। हारिद्रमाञ्जिष्ठमथापिरक्तमेतान्प्रमेहान्पडुपन्तिपित्तात् ॥ ८ ॥ मज्जौजसावावसयान्वितंवालसीकयावासततंविबद्धम्। चतुर्विधंमूत्रयतीववाताच्छेषेपु धातुष्वपकर्षितेपु ॥ ९ ॥

कफसे दशप्रकारके प्रमेह होतेहैं। जैसे १ जलके समान वर्णवाला "उदकमेह" होताहै। २ ईखके रसके समान "इक्षुप्रमेह" होताहै। ३ कुछ मिलाहुआसा गाढा मूत्र अथवा रात्रिको पात्रमें रखनेसे गाढा होजाय वह "सान्द्रमेह" होताहै। ४ जो मूत्रपात्रमें रखनेसे नीचे गाढा और ऊपर मद्यके समान हो उसे "सुरामेह" कहते हैं। ५ जो वीर्यमिला मूत्र होताहै उसे "शुक्रमेह" कहतेहैं। ६ पिसेहुए चावलोंके समान सफेद मूत्र हो तो "पिष्टमेह" जानना। कोई इसीको शुक्रमेह भी कहतेहैं। ७ जिसमें धीरे धीरे मूत्रके बिन्दू टपकतेहैं उसको "शनैःमेह" कहतेहैं। ८ जिसमें

मुखकी लारके समान तार सा निकलताहै उसको "लालमेह" कहतेहैं । ९ जिसमें वालूके समान कणपदार्थ निकलें वह "सिकतामेह" होताहै । १० जिसमें शीतल और बहुत मूत्र उतरताहै वह "शीतमेह" होताहै । इस प्रकार कफसे होनेवाले दश प्रकारके प्रमेह होतेहैं ॥ पित्तसे छः प्रकारके प्रमेह होतेहैं । जैसे १ क्षारके समान मूत्र "क्षारमेह" में । २ काले रंगका मूत्र "कालमेह" मे , ३ नीले रंगका मूत्र "नीलमेह" में । ४ हल्दीके समान रंगवाला "हारिद्रमेह" में । ५ आमकी सी दुर्गंधयुक्त और मजीठके समान "माजिष्ठमेह" में । ६ एवं रुधिरके समान लाल वर्णवाला मूत्र "रक्तमेह" में होताहै । यह छः प्रकारके पित्तप्रमेह होतेहैं ॥ चार प्रकारके वातजप्रमेह होतेहैं । जैसे १ मज्जाके समान वर्णवाला मूत्र "मज्जामेह" में । वसाके समान वर्णवाला मूत्र "वसामेह" में । ३ ओजमिश्रित मूत्र " ओजःप्रमेह." में । और ४ लसीकायुक्त मूत्र "लसीकामेह" में होताहै । जब सब धातुएँ क्षीण होजातीहैं तब वातके कोपसे यह चार प्रकारकी धातुएँ ही मूत्रमें निकलने लगतीहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

दोषानुसार प्रमेहके वर्णादि ।

वर्णरसंस्पर्शमथापिगन्धंयथास्वदोषम्भजतेप्रमेहः ॥ १० ॥

जिस दोषसे प्रमेह उत्पन्न होताहै उसका वर्ण, रस, स्पर्श और गंध उसी दोषके अनुसार होजाताहै ॥ १० ॥

वातज प्रमेहका असाध्यत्व ।

श्यावारुणोवातकृतःसशूलोमज्जादिषाड्गुण्यमुपैत्यसाध्यः॥ ११ ॥

जो वायुका प्रमेह श्यामवर्ण और लालवर्ण तथा शूलयुक्त हो और उसमें मज्जा, वसा, ओज, लसीका, रस, शुक्र इन छः धातुओंके गुण हों तो उसे असाध्य जानना ॥ ११ ॥

प्रमेहके पूर्वरूप ।

स्वेदोऽङ्गगन्धःशिथिलाङ्गताच शय्यासनस्वप्नसुखेरतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ १२ ॥ शीतप्रियत्वङ्गलतालुशोषो माधुर्यमास्येकरपाददाहः । भविष्यतोमेहगदस्यरूपं मूत्रेऽभिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥ १३ ॥

पसीनेका आना, अंगोंसे दुर्गंध आना, देहका शिथिलसा होजाना, शय्यापर पडे रहने, सुखपूर्वक आसनपर बैठे रहने और सोनेकी इच्छा बनी रहना । हृदय, नेत्र, जिह्वा और कानोंमें मळ लिपीसी रहना । देहका कठोर होना, केश और नखोंका अत्यंत बढना, ठण्डी वस्तु पर प्रेम होना, गल और तालुमें खुश्की होना, मुखमें

मीठापन, हाय और पांवोमें दाह होना और मूत्रपर चीटियोंका लगना यह सब प्रमेहके पूर्वरूप होतेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

स्थूल और कृश प्रमेहीकी चिकित्सा ।

**स्थूलःप्रमेहीबलवानिहैकः कृशस्तथैकःपरिदुर्बलश्च ।
संबृंहणंतत्रकृशस्यकार्यंसंशोधनंदोषबलाधिकस्य ॥ १४ ॥**

कोई प्रमेहरोगवाला मनुष्य स्थूलशरीर और बलवान् होताहै तथा कोई कृश शरीर और दुर्बल होताहै । इनमें कृशरोगीको बृंहण करना चाहिये और बलवान्को संशोधन देकर उसके दोषोंको निकाल देना चाहिये ॥ १४ ॥

प्रमेहीके अन्य उपचार ।

**स्निग्धस्ययोगाविविधाः प्रयोज्याः कल्पोपदिष्टामलशोधनाय ।
ऊर्ध्वंतथाधश्चमलेऽपनीतेमेहेषुसन्तर्पणमेव कार्यम् ॥ १५ ॥
गुल्मःक्षयोमेहनवस्तिशूलं मूत्रग्रहश्चाप्यपतर्पणेन । प्रमेहिणःस्युः
परितर्पणानिकार्याणितस्मात्प्रसमीक्ष्य वह्निम् ॥ १६ ॥ संशोधनं
नार्हतियःप्रमेही तस्यक्रियासंशमनीप्रयोज्या ॥ १७ ॥**

प्रथम रोगीको स्निग्ध करके कल्पस्थानमें कहेहुए प्रयोगोसे दोषोंका शोधन करे। जब वमन विरेचन द्वारा दोष निकलजांय फिर उसको सन्तर्पण करना चाहिये । क्योंकि अपतर्पण करनेसे प्रमेहरोगीके गुल्म, क्षय और लिंग तथा वस्तिस्थानमें पीडा और मूत्रकी रुकावट उत्पन्न होतेहैं इसलिये संतर्पण क्रिया करे । जो प्रमेहरोगी संशोधनके योग्य न हो उसकी संशमन चिकित्सा करने योग्य है ॥ १५॥१६॥१७ ॥

प्रमेह रोगमें पथ्य ।

मन्थाःकषायाययवचूर्णलेहाः प्रमेहशान्त्यैलघवश्चभक्ष्याः । येविष्किरायेप्रतुदाविहंगास्तेषांरसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः ॥ १८ ॥ यवौदनं रूक्षमथापिवाद्यान्मयान्ससक्तूनपिचाप्यपूपान् ॥ मुद्गादियूषैरथ तिक्तशाकैः पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ १९ ॥ दन्तींगुदीतैलयुतं प्रमेहीतथातसीसर्षपतैलयुक्तम् । सषष्टिकंस्यात्तृणधान्यमन्नंयवप्रधानस्तुभवेत्प्रमेही ॥ २० ॥

प्रमेहरोगकी शान्तके लिये मन्थकषाय, जौओके आटेका लेह तथा हलका भोजन खानेको देवे । एवं विष्किर और प्रतुदसंज्ञक जंगली पक्षियोंके मांसके रसके साथ

रूखा यवान्न अथवा यवोंके सत्तुओंके साथ मद्य वा अपूप भक्षण करै । मूंग आदिके यूषके साथ अथवा तिक्त शाकोंके साथ पुराने शालीचावलोंका भात खावे । दंती और गांदनीका तेल मिलाकर अथवा अलसी और सरसोंका तेल मिलाकर साठी चावल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै । प्रमेहरोगीको विशेषतासे जौके पदार्थका सेवन करना हित है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

कफप्रमेहमें अन्य उपचार।

यवस्यभक्ष्यान्विविधांस्तथाद्यात्कफप्रमेहीमधुसम्प्रयुक्तान् । नि-
शिस्थितानांत्रिफलाकषायैःस्युस्तर्पणाक्षौद्रयुतायवानाम् ॥ २१ ॥
ताञ्शीधुयुक्तान्प्रपिवेत्प्रमेहीप्रायोगिकान्मेहवधार्थमेव ॥ २२ ॥

कफप्रमेहवाला मनुष्य जौवोंके सत्तू आदि और अनेक भोजनके पदार्थ वना शहदके साथ सेवन करतारहे । रात्रिकालमें जौओंको त्रिफलेके क्वाथमें भिगोदेवे दूसरे दिन इनका भात वनाकर शहदके साथ अथवा इनका यूप वनाकर ठंढा होनेपर सहद मिलाकर पीवे तो तर्पण होवे । इन्हीं जौओंको शीधुके साथ पानकरै तो प्रमेह नष्ट होताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

येश्लेष्ममेहेविहिताःकषायास्तैर्भावितानाश्चपृथग्यवानाम् । शक्तू-
नपूपान्सगुडान्सधानान्भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्चखादेत् ॥ २३ ॥
खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां तथायवानांविविधाश्चभक्ष्याः । देया-
स्तथावेणुयवायवानां कल्पेन गोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ २४ ॥
संशोधनोल्लेखनलंघनानिकालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्ति
पित्तप्रभवान्विरेकाः संतर्पणः संशमनोविधिश्च ॥ २५ ॥

जो कफप्रमेहनाशक कषाय हैं उनकी जौओंको अलग २ भावना देकर उनके सत्तू, अपूप, गुडमिश्रित धनियां तथा और अनेक प्रकारके पदार्थ वनवाकर सेवन करना हित है ॥ २३ ॥ गधा, घोडा, वैल वा गौकी गुदामें होकर जो विना, टूटे जौ निकलआतेहैं या इनके लीद गोवरके रसकी अनेक भावना देकर उनके एवं वेणुयव (वांसके यव) और गेहूंके अनेक प्रकारके पदार्थ वनाकर सेवन करे ॥२४॥ ठीक समयपर कराये हुए संशोधन, वमन, लंघन करानेसे भी कफप्रमेह दूर होताहै । एवं ठीक समयपर वमन, विरेचन, लंघन संतर्पण और संशमन द्वारा पित्तज प्रमेह भी शान्त होजातेहैं ॥ २५ ॥

प्रमेहोंपर सामान्य प्रयोग।

दार्वीसुराह्वांत्रिफलांसमुस्तां कषायमुत्क्वाथ्यपिबेत्प्रमेही। क्षौद्रेणयुक्तामथवाहरिद्रांपिबेद्रसेनामलकीफलानाम्॥ २६॥

दारुहल्दी, देवदारू, त्रिफला और मोथाके काथको शहत मिलाकर पीनेसे अथवा आंवलेके रसके साथ कच्ची हल्दीका पान करनेसे प्रमेह नष्ट होजातेहैं॥ २६॥

कफप्रमेहपर दश कषाय।

हरीतकीकट्फलमुस्तरोध्रं पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनश्च। उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गंकदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च॥ २७॥ दार्वीविडङ्गंखदिरोधवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि। चव्याग्निमन्थीत्रिफलासपाठा पाठाश्वदंष्ट्रेसहमूर्वयाच॥ २८॥ यवान्युशीराण्यभयागुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः। पादैःकषायाः कफमेहिनान्ते दशोपदिष्टामधुसम्प्रयुक्ताः॥ २९॥

१. हरड, कायफल, मोथा, लोध। २. पाढ, वायविडंग, अर्जुन और ढामण (धन्वन)। ३. दोनो हल्दी, तगर और वायविडंग। ४. कदम्ब, शाल, अर्जुन और अजवायन। ५. दारुहल्दी, वायविडंग, खैर और धव। ६. देवदारु, कूठ, अगर और चंदन। ७. चव्यअरनी, त्रिफला और पाढ। ८. पाढ, गोखरू और मूर्वा। ९. अजवायन, खस, हरड और गिलोय। १०. काकजंघा, हरड चित्रक और सप्तपर्ण। यह प्रत्येक श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए दशप्रकारके काथ शहत मिलाकर पीनेसे कफप्रमेह दूर होतेहैं॥ २७॥ २८॥ २९॥

पित्तप्रमेहपर दश कषाय।

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम्। पटोलनिम्बामलकामृतानांमुस्ताभयापद्मकवृक्षकाणाम्॥ ३०॥ रोध्राम्बुकालीयकधातकीनांनिम्बार्जुनानान्तिनिशोत्पलानाम्। शिरीषसर्जार्जुनकेसराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम्॥ ३१॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानांकटङ्कटेर्युत्पलमुस्तकानाम्। पैत्तेषुमेहेषुदशैवदृष्टाःपादैः कषायामधुसम्प्रयुक्ताः॥ ३२॥

१. खस, लोध, रसौत, और चंदन। २. खस, आमला, मोथा और हरड। ३. पटोलपत्र, नीम, आमला और गिलोय। ४. नागरमोथा, हरड, पद्माख, और

इन्द्रजौ । ५. लोध, नेत्रवाला, दारुहल्दी, और धावेका फूल । ६ नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और नीलकमल । ७. सिरसकी छाल, शल, अर्जुन और नागकेशर । ८. प्रियंगु, लालकमल, नीलकमल, और ढाकके फूल (केसू) । ९. पीपल, पाढ, असन (बिजेसार) और बेतस । १० दारुहल्दी, उत्पल (नीलकमल) और नागरमोथा । यह एक २ पादमें प्रत्येक श्लोकके कहेहुए दश क्वाथ शहत मिलाकर पित्तप्रमेहोंकी शान्तिके लिये देना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

सर्वेषुमेहेषुमतौतुपूर्वौकाषाययोगौविहितास्तुसर्वे । मन्थस्यपानेयवभावनायां स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च ॥३३॥ सिद्धानितैलानि घृतानिचैवदेयानिमेहेष्वनिलात्मकेषु । मेदःकफश्चैवकषाययोगैः स्नेहैश्चवायुःशममेतितेषाम् ॥ ३४ ॥

दारुहल्दी और आँवलेके रसवाले सबसे प्रथम जो दो कषायके प्रयोग वर्णन किये गयेहैं । वह सब प्रकारके प्रमेहोंमें उपयोगी हैं । इन सब कषायोंका मन्थपान, जौओंकी भावना देना अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक् २ प्रयोग करना चाहिये । वायुके प्रमेहोंमें औषधोंसे सिद्ध कियाहुआ तैल घृतका प्रयोगकरना चाहिये । कषायोंके प्रयोगसे, मेद और कफ तथा स्नेहन योगोंसे वायु शान्त होतीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफपित्तप्रमेहपर प्रयोग ।

काम्पिल्लसप्तच्छदशालजानिवैभीतरौहीतककोटिजानि । कपित्थपुष्पाणिचचूर्णितानिक्षौद्रेणलिह्यात्कफपित्तमेही ॥ ३५ ॥ पिबेद्रसेनामलकस्यवापिकल्कीकृतान्यक्षसमानिकाले । जीर्णेचभुञ्जीत पुराणमन्नंमेहीरसैर्जांगलजैर्मनोज्ञैः ॥ ३६ ॥ दृष्ट्वानुबन्धंपवनंकफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्विकल्पः । तैलंकफेस्यात्तत्सकषायसिद्धंपित्ते घृतंपित्तहरैःकषायैः ॥ ३७ ॥

कमीला, सप्तपर्ण, राल, बहेडा, रोहीतक, इन्द्रजौ और कैथके फूलोंका बारीक चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त प्रमेह शान्त होजाताहै । अथवा इसी कमीला आदि चूर्णका एक तोला कल्क आँवलेके रसके साथ पीना चाहिये । और औषध पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालीचावलोंका भात सेवन करे । प्रमेह रोगमें वायुका अनुबंध होनेपर स्नेहविधिकी कल्पना करनी चाहिये । यदि कफका अनुबंध हो तो कफनाशक द्रव्योंके क्वाथमें सिद्ध कियेहुए तेलका प्रयोग

करना चाहिये। यदि पित्तका अनुबंध हो तो पित्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अन्यप्रयोग।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कैर्भल्लातकैःसातिविषैःसरोध्रैः। वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तैर्हरिद्रयापद्मकदीप्यकैश्च ॥ ३८ ॥ मञ्जिष्ठयावागुरुचन्दनैश्चसर्वैःसमस्तैःकफवातजेषु। मेहेषुतैलंविपचेद्घृतंतुपैत्तेषुमिश्रंत्रिषुलक्षणेषु ॥ ३९ ॥

गोखरू, कचनार, खैर, भिलावा, अतीस, पठानीलोध, वच, पटोलपत्र, कोहवृक्षकी छाल, नीमकी छाल, नागरमोथा, हल्दी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, अगर, और चन्दनके क्वाथ द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफवातसे हुए प्रमेह दूर होतेहैं। तथा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत, वातपित्तसे हुए प्रमेहको एवं तीनों दोष नाशकरनेवाले द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृत और तेल दोनो त्रिदोषजन्य प्रमेहोंको दूर करतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

सब प्रकारके प्रमेहोंपर क्वाथ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचनिःक्काथनिशासकल्का।
पिबेत्कषायंमधुसम्प्रयुक्तंसर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु ॥ ४० ॥

त्रिफला, देवदारू, हल्दी, इन्द्रायणकी जड और नागरमोथेका क्वाथ करके उसमें हलदीका कल्क और शहत मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके बढेहुए प्रमेह दूर होतेहैं ॥ ४० ॥

मध्वासव।

लोध्रंशठींपुष्करमूलमेलां मूर्वाविडंगत्रिफलांयवानीम्। चव्यंप्रियंगुंक्रमुकंविशालां किराततिक्तंकटुरोहिणीञ्च ॥ ४१ ॥ भार्गीनतंचित्रकपिप्पलीनां मूलंसकुष्ठातिविषंसपाठम्। कलिंगकान्केशरमिन्द्रसाह्वांनखंसपत्रंमरिचंप्लवञ्च ॥ ४२ ॥ द्रोणेऽम्भसःकर्षसमानिपक्वापूतेचतुर्भागजलावशेषे। रसेऽर्धभागंमधुनःप्रदायपक्षान्निधेयोघृतभाजनस्थः ॥ ४३ ॥ मध्वासवोऽयंकफपित्तमेहान्क्षिप्रंविहन्याद्द्विपलप्रयोगात्। पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिंग्रहण्यादोषंकिलासंविविधञ्चकुष्ठम् ॥ ४४ ॥

पठानी लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, मियंगु, वायविडंग, त्रिफला अजवायन, चव्य, सुपारी, इन्द्रायणकी जड, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चित्रक, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजो, नागकेशर नखीद्रव्य, तेजपात, कालीमिर्च, केवटीमोथा। इन सबको एक एक तोला लेकर सोलह सेर जलमें पकावे। जब चौथाई शेष रहे तो छानले, फिर इस रससे आधा शहत मिलाकर घीके चिकने पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक रक्खा रहनेदे। यह मध्वासव हुआ। इसमेंसे नित्यप्रति दो पलका सेवन करनेसे कफपित्तसे हुए प्रमेह, पाण्डुरोग, अर्शरोग, अरुचि, ग्रहणीदोष, किलास और सब प्रकारके कुष्ठ दूर होतेहैं ॥ ४१-४४ ॥

अन्य आसव।

क्वाथःसएवाष्टपलेचदन्त्याभल्लातकानाञ्चचतुष्पलेस्यात्। सितोपलात्वष्टपलाविशेषःक्षौद्रञ्चतावत्पृथगासवौतौ ॥ ४५ ॥

पूर्वोक्त लोध्रादि क्वाथसे दो आसव और बनतेहैं। जैसे इसी लोध्रादि क्वाथमें दंती आठ पल, शहत और मिश्री आठ आठ पल मिलावे। अथवा उसी पूर्वोक्त क्वाथमें भिलावे चार पल, मिश्री आठ पल और शहत आठ पल मिलावे। यह दोनों आसव गुणमें मध्वासवके समान हैं ॥ ४५ ॥

प्रमेहपर अन्य चिकित्सा।

सारोदकञ्चाथकुशोदकंवामधूदकंवात्रिफलारसंवा। शीधुंपिबेद्वानिगदंप्रमेहीमाध्वीकमग्र्यंचिरसंस्थितंवा ॥ ४६ ॥ मांसानिशूल्यानिमृगद्विजानांखादेद्यवानांविविधांश्चभक्ष्यान्। संशोधनारिष्टकषायलेहैः संतर्पणघ्नः शमयेत्प्रमेहान् ॥ ४७ ॥ भृष्टान्यवान्भक्षयतः प्रयोगाच्छुष्कांश्चसक्तून्नभवन्तिमेहाः। श्वित्रञ्चकुष्ठञ्चकफञ्चकृच्छ्रंतथैवमुद्गामलकप्रयोगात् ॥ ४८ ॥

सारोदक अथवा कुशोदक या मधूदक, मृग और पक्षियोंका अथवा त्रिफलेका क्वाथ एवं शीधु या पुराना माध्वीक सेवनकरनेसे प्रमेह दूर होताहै। एवं पशुपक्षियोंका शूल मांस भुना हुआ मांस तथा जौओंके बनेहुए नाना पदार्थोंका सेवन करे। प्रमेहको संशोधन, अरिष्ट, कषाय, लेह और संतर्पण द्वारा शमन करे। भुनेहुए जौ और उनके सत्तू तथा मूंग और आँवला इनके प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ कुष्ठ, कफ और मूत्रकृच्छ्र दूर होतेहैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सन्तर्पणोत्थेषुगदेषुयोगामेदस्विनांयेचमयोपदिष्टाः। विरूक्षणा-

थंकफपित्तजेषु सिद्धाः प्रमेहेष्वपितेप्रयोज्याः ॥ ४९ ॥ व्यायामयोगैर्विविधैःप्रगाढैरुद्वर्त्तनैः स्नानजलावसेकैः । सेव्यत्वगेलागुरुचन्दनाद्यैर्विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः ॥ ५० ॥ क्लेदश्चमेदश्चकफश्चवृद्धोनाशंप्रयातिप्रसमीक्ष्यतस्मात् । वैद्येनपूर्वंकफपित्तजेषु मेहेषु कार्याण्यपतर्पणानि ॥ ५१ ॥

संतर्पणसे उत्पन्न हुए रोगोंमें तथा जिनका मेदधातु बढगयाहै उनके लिये जो रूक्षणकरनेवाले प्रयोग कहेहैं उनका कफपित्तसे उत्पन्न हुए प्रमेहमें प्रयोग करना चाहिये। दण्ड कसरत, अनेक प्रकारके उबटने, स्नान, जलावसेक, तथा खस, दालचीनी, अगर और चंदनका लेप करनेसे प्रमेहरोग शीघ्र नष्ट होताहै । अपतर्पण करनेसे क्लेद, मेद और कफ यह नष्ट होतेहैं इसलिये वैद्यको कफपित्तके प्रमेहोंमें प्रथम अपतर्पण करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

यावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्बणानांविहिताक्रियासा ।
वायुर्हिमेहेष्वतिकर्षितानांकुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता ॥५२॥

यदि तीनों दोषोंके प्रमेहोंमें वातकी अधिकता हो तो प्रथम वातजप्रमेहके अनुसार उपाय करें, क्योंकि वातप्रमेह मनुष्यको बहुत जल्दी कृश करके रोगको असाध्य बनादेताहै । फिर सब चिकित्सा निष्फल होतीहै ॥ ५२ ॥

प्रमेहमें निदान परिवर्जन ।

यैर्हेतुभिर्येप्रभवन्तिमेहास्तेषुप्रमेहेषुनतेनिषेव्याः ।
हेतोरसेवाविहितायथैवजातस्यरोगस्यभवेच्चिकित्सा ॥ ५३ ॥

जिन कारणोंसे जो २ प्रमेह उत्पन्न हुएहों उनमें उन्हीं २ कारणोंका त्याग करदेना चाहिये । क्योंकि हेतुका परित्याग करना ही एक प्रकारकी रोगकी चिकित्सा है ॥ ५३ ॥

रक्तपित्तका कोप ।

हारिद्रवर्णंरुधिरंसफेनं विनाप्रमेहस्यहिपूर्वरूपैः ।
यन्मूत्रयेत्तन्नवदेत्प्रमेहं रक्तस्यपित्तस्यहिसप्रकोपः ॥ ५४ ॥

यदि मूत्रका वर्ण हल्दीके समान वर्णवाला और रुधिरके समान वर्णवाला हो तथा झागदार हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो तो उस रोगीको प्रमेह नहीं होताहै उसको रक्तपित्तका कोप जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

मधुप्रमेह ।

दृष्ट्वाप्रमेहंमधुरंसपिच्छंमधूपमंस्याद्विविधोपचारः ॥ ५५ ॥

यदि प्रमेहमें मीठापन हो और शहतके समान पिच्छिल हो तो उसको "मधुमेह" कहतेहैं, उसमें अनेक प्रकारकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ५५ ॥

प्रमेहका साध्यासाध्यत्व ।

क्षीणेषुदोषेष्वनिलात्मकःस्यात्संतर्पणाद्वाकफसम्भवःस्यात् । सपूर्वरूपाःकफपित्तमेहाः क्रमेणतेवातकृताश्चमेहाः ॥ ५६ ॥ साध्यानतेपित्तकृतास्तुयाप्याःसाध्यास्तुमेदोयदिनप्रदुष्टम् । जातः प्रमेहोमधुमेहिनावा न साध्यरोगः सहिवीजदोषात् ॥ ५७ ॥ येचापिकेचित्कुलजाविकाराभवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ५८ ॥

मल और कफपित्तके क्षीण होनेसे वातात्मक प्रमेह होताहै । और संतर्पणसे कफका प्रमेह उत्पन्न होताहै । कफज तथा पित्तज प्रमेह जो उपद्रवयुक्त पूर्वरूपसे उत्पन्न हुएहों अथवा जो वातजनित प्रमेह हों वह सब असाध्य होतेहैं । पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजनित प्रमेह जिनमें मेद दूषित नहीं होता वह साध्य होतेहैं । मधुमेहीकी संतानके जो वीजदोषके कारण प्रमेह हो वह असाध्य होताहै । एवं जो रोग कुलपरम्परासे चले आतेहैं वह भी असाध्य होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

प्रमेहपिडकाओंकी चिकित्सा ।

प्रमेहिणांयाःपिडकामयोक्ता रोगाधिकारेपृथगेवसप्त । ताःशल्यहृद्भिःकुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥ ५९ ॥

रोगाधिकारमें जो प्रमेहरोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन कीगईहैं उनकी चिकित्सा धन्वन्तरिजीके कहेहुए शल्यतंत्रको जाननेवाला कुशल वैद्य शस्त्रद्वारा तथा क्रियाद्वारा करे ॥ ५९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्दोषाद्दूष्यंमेहानांसाध्यतानुरूपश्च । मेहीत्रिविधस्त्रिविधंभिषग्जितंलक्षणंतस्य । आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाः कषायाश्च ॥ ६० ॥ तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरासवासिद्धाः । व्यायामवि-

धिर्विविधः स्नानान्युद्वर्तनानिगन्धाश्च । मेहानांप्रशमार्थचिकित्सि-तेदृष्टमेतावदिति ॥ ६१ ॥

इति श्रीचरक० चिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितं नामषष्ठोऽध्यायः६

प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता, अनुरूप, तीन प्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणकरनेके लिये जौके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभव कियेहुए आसव, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्वर्त्तन, गंधद्रव्यादि, प्रमेहनाशक विधि इस प्रमेह चिकित्सितनामके अध्यायमें कही गई हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० चि० स्था० प्र०भा०टी०प्रमेहचिकित्सितंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः कुष्ठचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ।

हेतुंलिंगंविविधंकुष्ठानामाश्रयंप्रशमनञ्च । शृण्वग्निवेश ! सम्यग्वि-शेषतःस्पर्शनघ्नानाम् ॥ १ ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरू-णिच । भजतामागतांछर्दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ २ ॥ व्या-याममतिसंतापमतिभुक्त्वानिषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान्-क्रमंमुक्त्वानिषेविणाम् ॥ ३ ॥ घर्मश्रमभयार्तानांद्रुतंशीताम्बुसे-विनाम् । अजीर्णाध्यशिनाञ्चैवपञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ ४ ॥ न-वान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लानिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नगुड-क्षीरतिलाशिनाम् ॥५॥ व्यवायंचाविजीर्णेऽन्नेनिद्रांचाभजतांदिवा। विप्रान्गुरून्धर्षयतांपापंचाकर्मकुर्वताम् ॥ ६ ॥ वातादयस्त्रयोदुष्टा-स्त्वग्रक्तंमांसमम्बुच । दूषयन्तिसकुष्ठानांसप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥७॥

अतः कुष्ठाविजायन्तेसप्तचैकादशैवच । नचैकदोषजंकिञ्चित्कुष्ठंसमुपलभ्यते ॥ ८ ॥

अब हम स्पर्शशक्ति और त्वचाके नष्ट करनेवाले कुष्ठ (कोढ) के अनेक हेतु, लक्षण और उनके शान्तिके उपायोंका वर्णन करतेहैं । हे अग्निवेश! तुम सावधान होकर सुनो विरुद्ध अन्नपान और चिकने, भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन, उपस्थित वमनके वेगको रोकना तथा मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अधिक भोजन करके अधिक परिश्रम और अत्यन्त संतापका सेवन, क्रमको छोडकर शीत, उष्ण, लंघन और आहारका सेवन, धूप, परिश्रम आदिसे अथवा भयसे घबराये हुए व्यथित समय शीघ्र शीतल जलका सेवन करना, अजीर्णमें भोजन करना, वमन, विरेचनादि पांचकर्मोंमें अपचारका, होना, नया अन्न दही, मछली, नमक और खटाईका अधिक सेवन उडद, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध, और तिलोंका अधिक सेवन अन्नके पचे विना मैथुन करना, दिनमें सोना, पापकर्मका करना ब्राह्मण और गुरुजनादिकोंका तिरस्कार करना, इन सब कारणोंसे कुपितहुए वातादिक तीनों दोष तथा इनसे दूषित हुए त्वचा, रक्त, मांस और लसीका यह सातों सब प्रकारके कुष्ठोंके कारण हैं । इनसे ७ महाकुष्ठ और ११ क्षुद्र कुष्ठ सब मिलाकर १८ प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं । एक दोषसे कोई कुष्ठ नहीं होता किन्तु इनमें सब दोषोंका संबंध होताहै ॥ ६–८ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यथात्वंस्वेदोतिनवावैवर्ण्यमुन्नतिः । कोठानांलोमहर्षश्चकण्डूस्तोदःश्रमःक्लमः ॥ ९ ॥ व्रणानामधिकंशूलंशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । दाहःसुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥

त्वचाका बिगडजाना, पसीनोंका अधिक आना, अथवा बिल्कुल न आना, शरीरकी विवर्णता, त्वचामें चकत्तेसे प्रगट होना, रोमांच होना तथा खाज, तोद, श्रम, ग्लानि होना, शरीरमें घाव (जखम) होनेपर उनमें अधिक पीडा होना, घावोंका शीघ्र प्रगट होजाना और बहुत दिनोंतक बनेरहना एवं अंगोंका सोजाना यह सब कुष्ठके पूर्वरूपमें होतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥

कुष्ठोंके नाम ।

अतऊर्ध्वमष्टादशानांकुष्ठानांकपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वपुण्डरीकसिध्मकाकणकैककुष्ठचर्मकिटिभविपादिकालसकदद्रुचर्मदलपामाविस्फोटकशतारुर्विचर्चिकानांलक्षणान्युपदेक्ष्यामः ॥ ११ ॥

इसके उपरांत कपाल औदुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म, काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिभ, विपादिका, अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारु, और विचर्चिका इन १८ प्रकारके कुष्ठोंके लक्षणोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११ ॥

१-कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभंयद्रूक्षंपरुषन्तनु ।
कापालन्तोदबहुलंतत्कुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥ १२ ॥

जो कुष्ठ काला लालवर्णयुक्त, कपालके समान रूक्ष, खुर्दरा, पतली त्वचावाला और जिसमें सुई चुभानेकीसी अत्यंत पीडा होतीहो उसको कपालकुष्ठ कहतेहैं । यह कुष्ठ विषम अर्थात् कष्टसाध्य होताहे ॥ १२ ॥

२-औदुम्बर कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूविदाहरुग्रागपरीतंलोमपिञ्जरम् ।
उदुम्बरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरंविदुः ॥ १३ ॥

जिस कुष्ठमें खुजली, दाह, पीडा, और लाल वर्ण हो तथा रोमोंमें पीलापन हो और जिसका आकार गूलरके फलके समान हो उसको औदुम्बर कुष्ठ कहतेहैं ॥१३॥

३-मंडल कुष्ठके लक्षण ।

श्वेतंरक्तंस्थिरंस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।
कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तंकुष्ठंमण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा लालवर्णयुक्त हो और कठोर गिलगिला, चिकना, ऊपरको ऊंचा, उठाहुआ, और मण्डलाकार हो, जिसके चकत्ते आपसमें मिलेहुए हों उसको मण्डलकुष्ठ कहतेहैं । यह कुष्ठ कष्टसाध्यहै ॥ १४ ॥

४-ऋष्यजिह्व कुष्ठके लक्षण ।

कर्कशंरक्तपर्य्यन्तमन्तःश्यावसवेदनम् ।
यदृष्यजिह्वासंस्थानंऋष्यजिह्वंतदुच्यते ॥ १५ ॥

जो कुष्ठ स्पर्शमें खर हो और जिसके किनारे लालवर्णके हों, बीचमें काला और पीडायुक्त हो, आकारमें रीछकी जिह्वाके समान हो उसको ऋष्यजिह्व कहतेहैं ॥१५॥

५-पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतंरक्तपर्य्यन्तंपुण्डरीकदलोपमम् ।
सोत्सेधञ्चसदाहञ्चपुण्डरीकंतदुच्यते ॥ १६ ॥

जिस कुष्ठका वर्ण श्वेत हो और किनारे लाल हों, जो कमलके फूलकी पंखडीके (पत्रके) समान हो तथा उंचाईयुक्त और दाहवाला हो उसको पुण्डरीक कुष्ठ कहतेहैं ॥ १६ ॥

६-सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतंताम्रंतनुचयद्रजोघृष्टंविमुञ्चति ।
अलाबुपुष्पवर्णतत्सिध्मंप्रायेणचोरसि ॥ १७ ॥

जो कुष्ठ श्वेत तथा ताम्रवर्णवाला हो और त्वचा पतली हो, जिसके खुजलानेसें भूसीसी उडतीहो, जिसका आकार घीयाके फूलके समान हो उसको सिध्मकुष्ठ कहतेहैं । यह प्रायः छातीपर अधिक होताहै ॥ १७ ॥

७-काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकावर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिङ्गंतत्कुष्ठंकाकणंनैवसिद्ध्यति ॥ १८ ॥

जिस कुष्ठका आकार रत्तक (घुंघुची) के समान वीचमें काला और किनारोंपर लाल अथवा वीचमें लाल और किनारोंपर कालेवर्णका हो तथा किञ्चित् पाकयुक्त और तीव्रपीडायुक्त हो उसको काकणककुष्ठ कहतेहैं, यह तीनों दोषोंकी प्रधानतायुक्त होनेसे असाध्य होताहै । यह सात महाकुष्ठ कहातेहैं ॥ १८ ॥

८-९-१-एककुष्ठ और २-चर्मकुष्ठके लक्षण ।

अस्वेदनंमहावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेककुष्ठंचर्माख्यंबहलंहस्तिचर्मवत् ॥ १९ ॥

जिसमें पसीने न आते हों, जो बहुत जगहमें व्याप्त हो, जो मछलीके कल्कके समान चमकयुक्त हो उसको एककुष्ठ कहतेहैं । (जिसमें शरीर काला अथवा लाल पडजाता है उसको एककुष्ठ कहतेहैं और यह असाध्य होताहै) जिसमें त्वचा हाथीके चमडेके समान मोटी होजाय उसको चर्मकुष्ठ (गजचर्म) कहतेहैं ॥ १९ ॥

१०-किटिभ कुष्ठके लक्षण ।

श्यावंकिणखरस्पर्शंपरुषंकिटिभंस्मृतम् ॥ २० ॥

जो श्यामवर्ण कणके समान खरस्पर्श (खरदरा) और रूखासा होताहै उसको किटिभकुष्ठ कहतेहैं ॥ २० ॥

---

१ कोई श्वेतकुष्ठ (फुलवहरी) को ही सिध्मकुष्ठ कहतेहैं । परन्तु श्वेतकुष्ठ और है तथा सिध्म (छिम्म) में बडा भारी अंतर है ।

११-वैपादिकके लक्षण।

वैपादिकंकरेपादेस्फोटनंतीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥

हाथ पावोंके फटजानेपर जो तीव्र वेदनायुक्त बिवाई होजातीहै उसको विपादिका (बिवाई) कहतेहैं ॥ २१ ॥

१२-अलसकके लक्षण।

सकण्डूकैःसरागैश्चगण्डैरलसकंस्मृतम् ॥ २२ ॥

जिसमें खुजलीयुक्त लालरंगकी गांठेंसी हों उसको अलसककुष्ठ कहतेहैं ॥ २२ ॥

१३-दद्रुमण्डलके लक्षण।

सकण्डूरागपिडकंदद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २३ ॥

जो अत्यंत खाजयुक्त लाल २ छोटी २ फुन्सियों सहित चकत्तेसे हों उसको दद्रु मण्डल कहतेहैं ॥ २३ ॥

१४-चर्मदलके लक्षण।

रक्तंसकण्डुसस्फोटंसरुग्दलतिचापियत्।
तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते ॥ २४ ॥

जिसका लाल वर्ण हो और खुजली होतीहो जो फोडे और पीडासे युक्त हो तथा फटाहुआ सा हो,जिसमें हाथका स्पर्श न सहाजाय उसको चर्मदल कुष्ठ कहतेहैं॥२४॥

१५-पामाके लक्षण।

पामाःश्वेतारुणाःश्यावाःपिडका कण्डुलाभृशम् ॥ २४ ॥

हाथों आदि सब शरीरमें सफेद, लाल, काली बहुतसी खुजलीयुक्त फुन्सियोंको पामा (खुजली खाजी) कहतेहैं ॥ २५ ॥

१६-विस्फोटकके लक्षण।

श्वेताःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः ॥ २६ ॥

जिन फोडोंमें सफेद, काले और लालवर्णकी झलक मारतीहो और त्वचा पतली हो उन फोडोंको विस्फोटक कहतेहैं ॥ २६ ॥

१७-शतारुके लक्षण।

रक्तंश्यावंसदाहार्तिशतारुःस्याद्बहुव्रणम् ॥ २७ ॥

जिसमें लाल तथा श्यामवर्ण और दाहयुक्त बहुतसे व्रण (घाव) हों उसको शतारु कहतेहैं ॥ २७ ॥

१८-विचर्चिकाके लक्षण।

सकण्डूःपिडकाःश्यावाबहुस्रावाविचर्चिकाः ॥ २८ ॥

बहुत स्राव और खुजलीयुक्त श्यामवर्णकी फुन्सियोंको विचर्चिका कहतेहैं। यह ११ क्षुद्र कुष्ठ होतेहैं ॥ २८ ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठंकापालंमण्डलंकफे । पित्तेत्वौदुम्बरंविद्यात्काकणन्तुत्रिदोषजम् ॥ २९ ॥ वातपित्तेश्लेष्मपित्तेवातश्लेष्माणिचाधिके । ऋष्यजिह्वंपुण्डरीकंसिध्मकुष्ठंचजायते ॥ ३० ॥ चर्माख्यमेककुष्ठञ्चकिटिभंसविपादिकम् । कुष्ठञ्चालसकंज्ञेयंप्रायोवातकफादिकम् ॥ ३१ ॥ दद्रूश्चर्मदलंपामाविस्फोटाश्चशतारुषः । पित्तश्लेष्माधिकाःप्रायःकफप्रायाविचर्चिका ॥ ३२ ॥

कपालकुष्ठमें वायु प्रधान होतीहै । मण्डलकुष्ठमें कफकी प्रधानता होतीहै । उदुम्बरकुष्ठमें पित्तकी प्रधानता होतीहै । और काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी प्रधानता होतीहै । ऋष्यजिह्वमें वात पित्तकी प्रधानता है । पुण्डरीककुष्ठमें कफपित्तकी प्रधानता होतीहै । और सिध्मकुष्ठमें वातकफकी प्रधानता होतीहै । गजचर्म, एककुष्ठ, किटिभ,विपादिका और अलसकमें प्रायः वातकफकी प्रधानता होतीहै । दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, और शतारुकुष्ठमें प्रायः कफपित्तकी प्रधानता होतीहै । एवं विचर्चिकामें कफकी प्रधानता होतीहै । संपूर्ण कुष्ठ तीनों दोषोंसे युक्त होतेहुए भी उनमें इस प्रकार एक २ अथवा दो २ दोषोंकी अधिकता होतीहै ॥ २९-३२ ॥

कुष्ठोंमेंचिकित्साक्रम ।

सर्वंत्रिदोषजंकुष्ठंदोषाणाञ्चबलाबलम् । यथास्वैर्लक्षणैर्बुद्ध्वाकुष्ठानांक्रियतेक्रिया ॥ ३३ ॥ दोषस्ययस्यपश्येत्कुष्ठेषुविशेषलिङ्गमुद्रिक्तम् । तस्यैवशमंकुर्यात्ततःपरञ्चानुबन्धस्य ॥ ३४ ॥

संपूर्ण कुष्ठही त्रिदोषाश्रित होतेहैं । इनमें उनके अपने २ लक्षणों द्वारा दोषोंका बलाबल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । जिस कुष्ठमें जिस दोषके अधिक चिह्न दिखाईपडें पहिले उसीकी चिकित्सा करना चाहिये । उसके करनेपर अनुबंधी दोषोंकी चिकित्सा करना उचित है ॥ ३३ । ३४ ॥

कुष्ठोंमें ज्ञातव्य ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैःपुनस्तुकुष्ठानि ।
ज्ञायन्तेतैर्हेतुर्हेतुस्तांश्चप्रकाशयन्ति ॥ ३५ ॥

कुष्ठोंके भेदोंसे दोष और दोषोंके लक्षणोंसे कुष्ठ पहिचाने जातेहैं । एवं कुष्ठविशेषसे हेतु और हेतुओंसे कुष्ठ जाने जातेहैं जैसे उदुंबरकुष्ठसे पित्तकी अधिकता और पित्तके लक्षणोंसे उदुंबरकुष्ठ जाना जाताहै । सो आगे दिखातेहैं ॥ ३९ ॥

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण ।

रौक्ष्यंशोपस्तोदःशूलंसङ्कोचनंतथायासः । पारुष्यंखरभावोहर्षः श्यावारुणत्वंच ॥ ३६ ॥ कुष्ठेषुवातलिङ्गंदाहोरागःपरिस्रवःपाकः। विस्रोगन्धःक्लेदःतथांगपतनञ्चपित्तकृतम् ॥ ३७ ॥ श्वैत्यंशैत्यं-कण्डूः स्थैर्यंसोत्सेधगौरवंस्नेहाः । कुष्ठेषुतुकफलिंगंजन्तुभिरभि-भक्षणंक्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तंमतिमान्विवर्जयेदबलम् ॥ ३८ ॥

जिस कुष्ठमें रूखापन, शोष, तोद, शूल, संकोच, आयास, कठोरता, खरदरापन, रोमोंका खडाहोना और श्याम तथा लालवर्ण यह वायुके लक्षण हों उसको वातप्रधान जानना । जिसमें दाह, लालवर्ण, स्राव, पाक, विस्रगंध, क्लेद, और किसी अवयवका गिरजाना यह पित्तकृत लक्षण हों उसको पित्तप्रधान जानना । जिस कुष्ठमें शीतलता, खुजली, स्थिरता, ऊंचापन, गुरुता, चिकनापन एवं श्वेतवर्ण हो तो यह कफप्रधान कुष्ठके लक्षण समझना । जिस कुष्ठमें कीडे पडगयेहों क्लेद हो तथा वातादि तीनों दोषोंके लक्षण हों और रोगी दुर्बल हो तो बुद्धिमान् वैद्य ऐसे रोगीको असाध्य जानकर त्याग देवे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कुष्ठका असाध्यत्व ।

तृष्णादाहपरीतंशान्ताग्निंजन्तुभिर्जग्धम् ॥ वातकफप्रबलंयच्चैदेक-दोषोल्वणंनतत्कृच्छ्रम् । कफपित्तवातपित्तप्रबलानितुकृच्छ्रकु-ष्ठानि ॥ ३९ ॥

जिस कुष्ठरोगीको प्यास, दाह और मंदाग्नि हो तथा कीडे पडगयेहों वह असाध्य जानना । वातकफाधिक अथवा एकदोषाधिक हो वह कुष्ठ साध्य होताहै । और जिन कुष्ठोंमें कफपित्त अथवा वातपित्त प्रबल होतेहैं वह कष्टसाध्य होतेहैं ॥ ३९ ॥

कुष्ठोंकी दोषानुसार चिकित्सा ।

वातोत्तरेषुसर्पिर्वमनंश्लेष्मोत्तरेषुकुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषुमोक्षोरक्तस्यविरेचनंचाग्रे ॥ ४० ॥

वातप्रधान कुष्ठमें प्रथम ही घृतपान कराना चाहिये । कफप्रधानमें वमन करावे और पित्तप्रधानमें रक्तमोक्षण तथा विरेचन कराना चाहिये ॥ ४० ॥

वमनविरेचनयोगाःकल्पोक्ताःकुष्ठिनांप्रयोक्तव्याः ।
प्रच्छनमल्पेकुष्ठेमहतिशिरावेधनंमहतिचशस्तम् ॥ ४१ ॥

कल्पस्थानमें कहेहुए वमन विरेचन कुष्ठरोगियोंके लिये प्रयुक्तकरे । अल्पकुष्ठमें पछने लगा,उनमेंसे किंचित् रक्तनिकालकर औषध लगाना और महाकुष्ठमें शिरावेधन (फस्तखोलना) हित है ॥ ४१ ॥

वहुदोषःसंशोध्यःकुष्ठीवहुशोनुरक्षताप्राणान् ।
दोषेह्यतिमात्रहृतेवायुर्हन्यादवलमाशु ॥ ४२ ॥

वहुत दोषोंसे युक्त कोढमें संशोधन करे परन्तु इस प्रकार प्राणोंकी रक्षा करता रहे कि जिससे संशोधन करते रोगीकी मृत्यु न होजाय । क्योंकि दोषोंके अत्यन्त हरण किये जानेसे निर्वल रोगीको वायु शीघ्र मारडालतीहै ॥ ४२ ॥

स्नेहस्यपानमिष्टंशुद्धेकोष्ठेप्रवाहितेरुधिरे ।
वायुर्हिशुद्धकोष्ठंकुष्ठिनमवलंविशतिशीघ्रम् ॥ ४३ ॥

संशोधन द्वारा अनेकवार शुद्ध कोष्ठ होनेके अनन्तर और रक्तमोक्षण (फस्तखोलने) के अनन्तर रोगीको स्नेहपान कराना चाहिये क्योंकि स्नेहपान न करनेसे शुद्ध कोष्ठ रोगीके कोष्ठमें अति शीघ्र वायु प्रवेश करलेतीहै ॥ ४३ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दोषोत्क्लिष्टेहृदयेवम्यःकुष्ठेषुचोर्द्धभागेषु।कुटजफलमदनमधुकैः सपटोलैर्निम्बरसयुक्तैः ॥ ४४ ॥ शीतरसःपकरसोमधुनिमधुकश्चवमनानि । कुष्ठेषुत्रिवृतादन्तीत्रिफलाचविरेचनेशस्ताः ॥ ४५ ॥

हृदयके दोषोंसे उत्क्लेशित होने और शरीरके ऊपरी भागमें कुष्ठरोगके होनेपर इन्द्रजौ, मैनफल, मुलैठी पटोलपत्र और नीमके रस या कायको पिलाकर करावे ४४ कुष्ठरोगमें वमन करानेके लिये मैनफल आदिका शीतकषाय अथवा काथमें शहत और मुलैठीका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये । एवं कुष्ठमें विरेचन करानेके लिये निशोथ, दन्ती और त्रिफला यह द्रव्य उत्तम हैं ॥ ४५ ॥

सौवीरकंतुषोदकमालोडनमासवांस्तुशीध्वादीन् । शंसन्त्यधोहराणांयथाविरेकःक्रमश्रेष्टः ॥ ४६ ॥

विरेचनकर्त्ता द्रव्य घोलनेके लिये या अनुपानके लिये सौवीरक, तुषोदक, आसव अथवा शीधु लेना चाहिये । तदनन्तर विरेचन विधिमें जो पेयादिक्रम वर्णन कियाहै उसका सेवन करना चाहिये ॥ ४६ ॥

कुष्ठमें स्थापन योग ।

दार्वीबृहतीसेव्यैःपटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः ।
सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गयवमुस्तैः ॥ ४७ ॥

कुष्ठ रोगीको दारुहल्दी, बडी कटेरी खस पटोलपत्र, नीमकी छाल, मैनफल, करंजुआ, इन्द्रजौ और मोथा इनके क्वाथमें सिद्ध कियेहुए स्नेहसे आस्थापनवस्ति करावे ॥ ४७ ॥

कुष्ठमें अनुवासन योग।

वातोल्वणंविरिक्तंनिरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य ।
फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैःसाधयेत्स्नेहम् ॥ ४८ ॥

विरेचन और निरूहण करनेके अनन्तर वायुकी अधिकता होनेपर यदि अनुवासन करना उचित समझे तो मैनफल, मुलेठी नीमकी छाल, कुडाकी छाल और पटोलपत्रोंसे सिद्ध किये हुए स्नेहकी अनुवासनवस्ति देवे ॥ ४८ ॥

कुष्ठमें नस्यप्रयोग ।

दन्तीमधूकसैन्धवफणिज्झकाःपिप्पलीकरञ्जफलम् ।
नस्यंस्यात्सविडङ्गंक्रिमिकुष्ठकफप्रदोषघ्नम् ॥ ४९ ॥

दन्ती, मुलेठी, सेंधानमक, फणिज्झक, तुलसी, पीपल,करंजुवा और वायविडंगकी, नस्य (नासवार) ले तो क्रिमिकुष्ठ (मस्तकके कृमि) और कफविकार नष्ट होतेहैं ॥ ४९ ॥

अन्य क्रम ।

वैरोचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशाम्यन्ति । क्रिमयःकुष्ठकिलासप्रयोजितैरुत्तमाङ्गस्थाः ॥ ५० ॥ स्थिरकठिनमण्डलानांखिन्नानांप्रस्तरप्रणालीभिः । कूर्चैर्विघट्टितानांरक्तोत्क्लेशोपनेतव्यः॥५१॥

सूत्रस्थानमें विरेचनकरनेवाले धूमप्रयोग कहे हैं उनके प्रयोगसे शिरके कृमि कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजातेहैं । स्थिर और कठोर चकत्तोंको प्रस्तरस्वेदसे स्वेदित करके उन चकत्तोंको कूर्च (कूची) से साफ करके उनके उत्क्लेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपटोलैःसुखोष्णैश्च । खिन्नोत्स्विन्नंविलिखेत्कुष्ठंतीक्ष्णेनशस्त्रेण ॥ ५२ ॥ रुधिरागमार्थमथवाशृङ्गाला-

वृभिराहरेद्रक्तम् । प्रच्छितमल्पंकुष्ठंविरेचयेद्वाजलौकाभिः॥ ५३ ॥ येलेपाःकुष्ठानांयुज्यन्तेनिर्हृतास्त्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥ ५४ ॥

आनूप और औदक पशुपक्षियोंका सुखोष्ण मांस और पंडोलको उबालकर उनसे कुष्ठको स्वेदन करे फिर साफ करके पोछ लेवे पीछे तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर निकालनेके लिये लेखन करे अथवा सींगी या तुंबीद्वारा रक्तको निकाले और क्षुद्रकुष्ठमें पछने लगाकर जोकोंसे रुधिरको निकालना चाहिये। कोष्ठके शुद्ध होनेपर और रुधिर तथा दोषोंके निकालनेसे घाव शुद्ध होनेपर जो लेप किये जातेहैं वह शीघ्र लाभदायक होतेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

येपुनरशस्त्रंकमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानिस्युः । तेषुनिपात्यक्षारं रक्तंदोषंचानिःस्राव्य ॥ ५५ ॥ पाषाणकठिनपरुषेसुप्तेकुष्ठेस्थिरे पुराणेच । पीतागदस्यकार्योविषैः प्रदेहोऽगदैश्चानु ॥ ५६ ॥

जिन कुष्ठोंमें शस्त्रका प्रयोग कार्य नहीं कर सकता और जिनमें स्पर्शशक्तिका नाश होजाताहै उनमें क्षारके प्रयोगसे रक्त और दोषोंको निकाल देना चाहिये॥५५॥ पत्थरके समान कठोर, परुष, सुप्त स्थिर और पुराने कुष्ठमें रोगीको विषनाशक औषध पिलाकर कुष्ठपर विषैली औषधियोंका लेप करना चाहिये। फिर थोडी देर पीछे उस विषैली औषधको उतारकर विषनाशक लेप करे ॥ ५६ ॥

स्तब्धानिसुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चैर्दन्तीत्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥ ५७ ॥ जात्यर्कनिम्बकुटजैः पत्रैःशस्त्रैःसमुद्रफेनैर्वा । घृष्टानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदेह्यानि॥५८॥

स्तब्ध, अत्यन्तशून्यतायुक्त फैलेहुए स्वेदरहित और खुजलीयुक्त कुष्ठको प्रथम दन्ती, त्रिफला, कनेर, करंजुआ नीमकी छाल, कुडाकी छाल इनकी कूर्चीसे अथवा चमेली, आक, नीम और कुडाके पत्तोंसे अथवा शस्त्रोंसे अथवा समुद्रफेनसे अथवा सूखे गोहेसे घिसकर खुजलावे फिर रोगनाशक लेप करना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठघ्नंकर्मोक्तंपित्तकुष्ठानाम् । कफपित्तरक्तहरणंतिक्तकषायैःप्रशमनश्चसर्पींषि ॥ ५९ ॥ तिक्तकानिचयच्चान्यच्चद्रक्तपित्तनुत्कर्म । बाह्याभ्यन्तरमभ्यंतरकार्यंपित्तकुष्ठघ्नम् ॥ ६० ॥

इस प्रकार वातप्रधान कुष्ठ और कफप्रधान कुष्ठकी चिकित्साका क्रम कहागयाहै पित्तप्रधान कुष्ठमें कफ पित्त रुधिरको हरनेवाला कर्म करना चाहिये। तिक्तकषाय, तिक्तघृत, तथा अन्य रक्तपित्तनाशक कर्म एवं पित्तकुष्ठको नाश करनेवाली उत्तम २ बाह्य और आभ्यंतर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनुत्प्रोक्तम् ।
वक्ष्यामिकुष्ठशमनंप्रायस्त्वग्दोषसामान्यात् ॥ ६१ ॥

वातादि दोषोंकी प्रधानताके अनुसार कुष्ठनाशक क्रिया कही गयीहै। सब कुष्ठ त्वचाको ही दूषित करतेहैं इसलिये प्रायः त्वचाके दोषकी सब कुष्ठोंमें समानता है। सो अब त्वग्दोषकी समानतासे कुष्ठनाशक प्रयोग वर्णन करतेहैं ॥ ६१ ॥

कुष्ठनाशक प्रयोग।

दार्वीरसाञ्जनंवागोमूत्रेणप्रबाधतेकुष्ठम् ।
अभयाप्रयोजितावामांसव्योपगुडतैलाः ॥ ६२ ॥

दारूहल्दी अथवा रसौत या हरडोंको गोमूत्रके साथ पीने और लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै। इसमें मांस, सोंठ, मिर्च, पीपल गुड और तेलको त्यागदेना चाहिये ॥ ६२ ॥

कुष्ठनाशक अन्य प्रयोग।

मूलंपटोलस्यतथागवाक्ष्याःपृथक्पलांशंत्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणाकटुरोहिणीच भागार्द्धिकानागरपादयुक्ता ॥ ६३ ॥ पलंत्वथैकंसहचूर्णितानांजलेशृतंदोषहरंपिबेन्ना । जीर्णेरसेधन्वमृगद्विजानां पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ ६४ ॥ कुष्ठानिशोफंग्रहणीप्रदोषं अर्शांसिकृच्छ्राणिहलीमकञ्च । षड्रात्रयोगेननिहन्तिचैव हृद्वस्तिशूलंविषमज्वरञ्च ॥ ६५ ॥

पटोलकी जड ४ तोला, इन्द्रायणकी जड ४ तोला, हरड २ तोला, बहेडा २ तोला, आँवले २ तोला, त्रायमाण २ तोला, कुटकी २ तोला, सोंठ १ तोला, इन सबका बारीक चूर्णकर उसमेंसे प्रतिदिन एक एक पल लेकर जलमें औटाकर पीवे। औषधके पचनेपर धन्वदेशज मृगोंके मांसरसके साथ पुराने शालीचावलोंका भात जवोंके सत्तू खावे। इस प्रयोगको छः दिन पर्यंत सेवन करनेसे शोक, कोढ, ग्रहणी दोष, कृच्छसाध्य अर्श, हलीमक, हृदयशूल, वस्तिशूल, और विषमज्वर यह सब नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

कुष्ठनाशक अन्ययोग ।

मुस्तंव्योषंत्रिफलामञ्जिष्ठादारुपञ्चमूलेद्वे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्स-विशालश्चित्रकोमूर्वा ॥ ६६ ॥ चूर्णतर्पणभागैर्नवभिःसंयोजितंस-मध्वाज्यम् । श्रेष्ठंकुष्ठनिवर्हणमेतत्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ ६७ ॥ श्वयथुंसपाण्डुरोगंश्वित्रंग्रहणीप्रदोषमर्शांसि । ब्रध्मभगन्दरपि-डकाःसकण्डुकोठांश्चविनिहन्ति ॥ ६८ ॥

मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, मजीठ, दारुहल्दी, लघुपंचमूल बृहत्पंचमूल, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, इन्द्रायणकी जड, चीता और मूर्वा इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर नौ भाग शहत और घृत मिलाकर सेवन करै इसके प्रयोगसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै तथा शोथ, पाण्डुरोग, श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्ष, ब्रध्न, भगन्दर, पिडका खुजली और कोढरोग यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सुप्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविपाकटुकानिम्बकलिंगकावचापटोलानाम् । माग-धिकारजनीद्वयपद्मकमूर्वाविशालानाम् ॥ ६९ ॥ भूनिम्बपलाशा नांदद्याद्विपलंततस्त्रिवृद्द्विगुणा । तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णंसु-प्तिनुत्परमम् ॥ ७० ॥

त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, वच, पटोलपत्र, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माक, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड, चिरायता, और ढाककी छाल यह दो दो पल लेवे, निशोथ चारपल और ब्राह्मी वारह पल लेवे । इन सबका चूर्ण करके सेवन करनेसे सुप्तकण्ठ (त्वचाकी शून्यता) नष्ट होताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मध्वासव ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपयित्वातद्रसेनतोयार्थः । क्षौद्रप्रस्थेकार्यः कार्येतेचाष्टपलिकेच ॥ ७१ ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलंप्रक्षिपे-त्तथामूनि । त्रिफलात्वङ्मरिचंचपत्रङ्कनकश्चकर्पांशम् ॥ ७२ ॥ मत्स्यण्डिकामधुसमा तन्मांसमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः कुष्ठकिलासेशमंयाताः ॥ ७३ ॥

खैर और देवदारुका सार लेकर इन्हींके रस या काथमें पकाकर उसमें दो प्रस्थ शहत तथा कत्था आठ पल, देवदारू आठ पल, लोहचूर्ण आठ पल, त्रिफलाकी त्वचा,

काली मिर्च, तेजपात और धतूरा एक २ कर्ष और मिसरी शहतके बराबर लेवे। इन सबको मिलाकर एक महीना लोहेके पात्रमें भरकर रक्खे इस प्रकार मध्वासव तैयार होताहै। इसके सेवनसे कुष्ठ और किलास रोग नष्ट होतेहैं ॥ ७१ ॥ ७२ ७३ ॥

कनकबिन्दुअरिष्ट।

खदिरकषायद्रोणं कुम्भेघृतभावितेसमारोप्य। द्रव्याणिचूर्णिता-नित्वष्टपलिकान्यत्र देयानि ॥ ७४ ॥ त्रिफलाव्योषविडंगरजनी मुस्ताटरूषकेन्द्रयवा। सौवर्णत्वक्छिन्नामासंनिदधीत धान्यमध्ये च ॥ ७५ ॥ प्रातः प्रातः पिवतो युक्त्या मासेनकुष्ठहृद्भवति। पक्षेणार्शःश्वासभगंदरं कासकिलडुष्टम्। पांडुंसवातरक्तं हन्या-त्सप्रमेहशोपांश्च। नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टंकनकविन्दुम्७६

एक द्रोण खैरका काथ लेकर घृतके चिकने घडेमें भरदे फिर उसमें नीचे लिखी ओषधियोंका आठ २ पल चूर्ण मिलावे। यथा हरडे, बहेडे, आँमले, सोंठ, मिर्च पीपल, वायविडंग, हलदी, नागरमोथा, अडूसा, इंद्रजौ, चोख, गिलोय और धतूरेकी जडका छिलका मिलाकर उस घडेका मुख बंद करके घडेको धान्यकी राशिमें गाडदेवे। फिर एक महीनेके अनंतर निकालकर छानलेवे उसमेंसे मात्रानुसार नित्य प्रातःकाल एक महीना पर्यंत पीवे तो महाकुष्ठ दूर हो। एक पक्ष पीनेसे क्षुद्र कुष्ठ दूरहों। और इसके सेवनसे बवासीर, श्वास, भगंदर, खांसी, किलासकुष्ठ, प्रमेह, औरशोषरोग दूर होते हैं। तथा इस कनकविन्दु अरिष्टके पीनेसे मनुष्यका वर्ण सुवर्णके समान होजाताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

कुष्ठेष्वनिलकफकृतेष्वेवंपेयास्तथैवपित्तेषु।
कृतमूत्रक्काथश्चाप्येषविशेषात्कफकृतेषु ॥ ७७ ॥

वातप्रधानकुष्ठमें कफप्रधानकुष्ठमें, और पित्तप्रधानकुष्ठमें इस प्रकारके आसव और अरिष्टोंका प्रयोग करना चाहिये। और कफप्रधान कुष्ठमें तो विशेषकर औषधियोंके काथमें गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये ॥ ७७ ॥

श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग।

त्रिफलासवश्चगौडःसचित्रकःश्वित्ररोगकुष्ठघ्नः।
क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधुयोगसंयुक्तः ॥ ७८ ॥

त्रिफलेका आसव और गौडी मद्यको चीतेके साथ पीनेसे श्वित्रकुष्ठनष्ट होताहै

अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी इनके क्वाथमें शहत मिलाकर गौडी मद्यके साथ पीनेसे श्वित्रकुष्ठ दूर होताहै ॥ ७८ ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्य ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषुशाकानिचातिक्तकानि । भल्लातकैश्चत्रिफलैःसनिम्बैर्युक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥ ७९ ॥ पुराणधान्यान्यथजाङ्गलानिमांसानिमुद्गाश्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगुर्वम्लपयोदधीनि नानूपमत्स्यानगुडास्तिलाश्च ॥ ८० ॥

हलका अन्न, तिक्तशाक, भिलावे, त्रिफला, और नीमके साथ सिद्ध किये हुए अन्न और घृत, पुराने चावल यह सब कुष्ठरोगमें हितकारी हैं । भारी, खट्टा अन्न, दूध, दही, आनूपजीवोंका मांस, मछली, गुड और तिल यह सब अहित हैं अर्थात् हानिकारक होतेहैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दार्वीशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गञ्च ।
कुष्ठेलेपनमिष्टंरसाञ्जनञ्चाभयाचैव ॥ ८१ ॥

इलायची, कूठ, दारुहलदी, सौंफ, चीता, वायविडंग, रसौत, और हरड इन सबको गोमूत्रमें रगडकर लेप करनेसे कुष्ठ दूर होताहै ॥ ८१ ॥

दूसरा लेप ।

चित्रकमेलाविम्बींवृषकत्रिवृदर्कनागरकम् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाशस्य ॥ ८२ ॥ क्षारेणगवांमूत्रस्रुतेनतेनास्यमण्डलान्याशु । भिद्यन्तेचविशान्तिचलिप्तान्यर्काभितप्तानि ॥ ८३ ॥

चित्रक, इलायची, कंदूरी, अडूसा, निशोथ, आक और सोंठ इनके चूर्णको आठ दिन तक भावना देकर लेपके योग्य बनालेवे इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूपमें बैठजावे । इस लेपसे मण्डलकुष्ठ शीघ्र विलीन होकर नष्ट होजाताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमरिचंलवणंरजनीतगरंसुधागृहोद्धूमः । मूत्रंपित्तंक्षारः पालाशःकुष्ठनुल्लेपः ॥ ८४ ॥ त्रपुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुच्चित्रकंबृहती । गोधारसःसलवणंदारुचमूत्रञ्चमण्डलनुत् ॥ ८५ ॥ कदलीपलाशपाटलिनिचुलक्षाराम्भसाप्रसन्नेन । मासेषुतोयकार्यं

कार्यस्पिष्टेचकिण्वेच ॥ ८६ ॥ तैर्मोदकःसुजातःकिण्वैर्जनितप्रलेपनंशस्तम् । मण्डलकुष्ठविनाशनमातपसंस्थेक्रिमिघ्नश्च ॥ ८७ ॥

जटामांसी, मिरच, सेंधानमक, हलदी, तगर, थोहर, गृहधूम, गोमूत्र, पित्त, और ढाकका खार इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होजाताहै । अथवा रांग, सीसा, लोहचूर्ण, चीता और बडी कटेरी इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ रोग दूर होताहै । अथवा गोधारसे, सेंधानमक, दारुहल्दी और गोमूत्र इनका लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होजाताहै । अथवा केला, ढाक, पाढ और निचुल (हिंजल) इनके क्षारके शुद्ध जलमें मांसको पकावे फिर उसी जलमें चावलोंको पीसकर उसमें सुराकिण्वको "घोलले" । यह सब मिलकर मोदकके समान गोलासा बनजायगा । और इसमेंसे जो वह सुराका घोलसा नीचे हो उसको निकालकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ दूर होजाताहै । और लेपकरके धूपमें तपानेसे क्रिमिरोग नष्ट होजाताहै ॥ ८४-८७ ॥

कुष्टपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तंमदनंत्रिफलाःकरञ्जआरग्वधःकलिङ्गयवाः । दार्वीससप्तपर्णास्नानंसिद्धार्थकंनाम ॥ ८८ ॥ एषकषायोवमनंविरेचनंवर्णकरस्तथोद्धर्षः । त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनः पाण्डुरोगघ्नः ॥ ८९ ॥

नागरमोथा, मैनफल, त्रिफला, लताकरंजका फल, अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी सप्तपर्ण, और सफेदसरसों यह कूटकर जलमें उबाले फिर उस जलसे स्नान करनेसे तथा इसी कषायके पीनेसे वमन और विरेचन होकर कुष्ठ नष्ट होजाताहै । एवं इन्हीं औषधियोंके कल्कसे उबटन करनेसे त्वचाके दोष, कुष्ठ, सूजन, जखमोंका बहना और पाण्डुरोग दूर होजातेहैं ॥ ८८ । ८९ ॥

कुष्ठंकरञ्जबीजान्येडगजःकुष्ठसूदनोलेपः । प्रपुन्नाडबीजसैन्धवरसाञ्जनकपित्थरोध्रास्च ॥ ९० ॥ करवीरमूलकल्कःकुटजकरञ्जयोःफलन्त्वचन्दार्व्याः । सुमनःप्रवालयुक्तोलेपःकुष्ठापहः सिद्धः रोध्रस्यधातकीनांवत्सकबीजस्यनक्तमालस्य ॥९१॥ कल्कश्चमालतीनां कुष्ठेसूद्धर्त्तनालेपौ शैरीपीत्वक्पुष्पंकार्पास्याराजवृक्षपत्राणि । पिष्ट्वाचकाचमाचीचतुर्विधःकुष्ठनुल्लेपः ॥ ९२ ॥

---

१ फाड़गोधा (गोहके आकारकी बूटी) अथवा "हसपदी" बूटी । २. शराबके "घोउ" (खमीर) को सुराकिण्व कहतेहैं ।

अथवा कूठ लताकरंजके बीज, पनवाड (चक्रमर्द) के बीज इन सबका लेप करनेसे कुष्ठ रोग दूर होताहै । अथवा पनवडके बीज, सेंधानमक, और रसौत, कैथका छिलका, लोध, कनेरकी जड, कुडाकी छाल, लताकरंजके बीज, दारुहल्दीकी छाल और फल, चमेलीकी कोंपल इनका लेप करनेसे कुष्ठ नष्ट होताहै । लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, करंजुआ और मालतीकी कोंपल इनको पीसकर देहपर मर्दन और लेपकरे तो कुष्ठ दूर होताहै । एवं सिरसकी छाल, कशासके फूल, अमलतासके पत्ते और मकोह इनका लेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होजाताहै । यह चार प्रकारके लेप कुष्ठको नष्ट करनेवालेहैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

कषायादि ८ योग ।

दार्व्यारसाञ्जनस्यचनिम्बपटोलस्यखदिरसारस्य । आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाःसप्तपर्णस्य ॥ ९३ ॥ इतिषट्कषाययोगानिर्दिष्टाः सप्तमश्चतिनिशस्य । स्नानेपानेचमतास्तथाष्टमश्चास्यसारस्य ॥ ॥ ९४ ॥ आलेपनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेतएवचकषायाः । तैलघृतपाकयोगेचेष्यन्तेकुष्ठशान्त्यर्थम् ॥ ९५ ॥

दारुहलदी और रसौतका क्वाथ, नीमकी छाल, और पटोलकी जडका क्वाथ, खैरसारका क्वाथ, अमलतास और इन्द्रजौका क्वाथ, सप्तपर्णका क्वाथ; इन क्वाथोंसे स्नान करनेसे और इन्हीं सबको पीनेसे कुष्ठ दूर होजाताहै । तथा आठवां तिनिशका सार भी उपरोक्त गुण करताहै । इन आठों योगोंका क्वाथ, लेप, उबटन, और इनके चूर्णका घावोंपर बुरकाना, (छिडकना) कुष्ठोंको नाश करताहै । इन्हीं कषायोंमें सिद्ध तेल और घृत भी कुष्ठको दूर करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमञ्जिष्ठारोहिणीवचारजनी । एषकषायोऽभ्यस्तोहिनस्तिकफपित्तजंकुष्ठम् ॥ ९६ ॥ एतैरेवचसर्पिःसिद्धंवातोल्वणंजयतिकुष्ठम् । एषचकल्पोदृष्टःखदिरासनदारुनिम्बानाम् ॥ ९७ ॥

त्रिफला, नीम, पटोलकी जड, मजीठ, कुटकी, वच और हल्दीका क्वाथ पीनेका अभ्यास करनेसे कफपित्तसे उत्पन्न हुआ कुष्ठ दूर होजाताहै । इसी क्वाथमें सिद्ध किया घृत वातप्रधान कुष्ठको जीतताहै । और इसी प्रकार खैर, विजैसार, दारुहल्दी और नीमका क्वाथ भी उपरोक्त प्रकारके गुण करताहै ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

अन्यप्रयोग ।

कुष्ठार्कतुत्थकट्फलमूलकबीजानिरोहिणीकटुका । कुटजफलोत्प-

लसुस्तंबृहतीकरवीरकाशीशम् ॥ ९८ ॥ एडगजनिम्बपाठादुरालभाचित्रकोविडंगश्च । तिक्तेक्ष्वाकुबीजंकम्पिल्यकसर्षपवचादार्वी ॥ ९९ ॥ एतैस्तैलंसिद्धंकुष्ठघ्नंयोगएषवालेपः । तन्मर्दनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेषएवेष्टः ॥ १०० ॥

कूठ, आककी जड, नीलाथोथा, कायफल, मूलीके बीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नील, कमल, नागरमोथा, बडीकटेरी, कनेर, कसीस, पनवाड, नीमकी छाल,पाठा, जवासा, चित्रक, वायविडंग, कडवी तुंबीके बीज, कबीला, सरसों, वच, इनके क्वाथमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठको दूर करताहै । तथा इन्हीं औषधियोंके कल्कका लेप, मालिश, उबटन, और इन्हींके चूर्णोंको घावपर छिडकना भी कुष्ठको नाश करता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

कनेरका तेल ।

श्वेतकरवीररसोगोमूत्रंचित्रकोविडंगश्च ।
कुष्ठेषुतैलयोगाःसिद्धोयंसम्मतोभिषजाम् ॥ १०१ ॥

सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीता और वायविडंगमें सिद्ध किया तेल कुष्ठको दूर करताहै । यह सब वैद्योंका सम्मत योगहै ॥ १०१ ॥

अन्यप्रयोग ।

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्वत्सकृविडंगश्च । कुष्ठार्कमूलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणीकटुका । एतैस्तैलंसाध्यंकल्कैःपादांशिकैर्गवांमूत्रम् । दत्त्वातैलचतुर्गुणमभ्यंगःकुष्ठकण्डूघ्नः ॥ १०२ ॥

सफेद कनेरके पत्ते और जडकी छाल, इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककी जड, सरसों सुहांजनेकी छाल और कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेलसे चौगुना गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध करे । फिर इस तैलकी मालिश करनेसे कोढ और खुजली दूर होजातीहै ॥ १०२ ॥

अन्यतैल ।

तिक्तेक्ष्वाकुबीजंद्वेतुत्थेरोचनाहरिद्रेद्वे । बृहतीफलमेरण्डःसविशालश्चित्रकोमूर्वा ॥१०३॥ काशीशहिंगुशिग्रुत्र्यूपणसुरदारुतुम्बरुविडङ्गम् । लांगलकीकटजत्वकटुकाख्यारोहिणीचैव ॥ १०४॥ सर्षपकल्कैरेतैर्मूत्रेचतुर्गुणंसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नंतैलम् ॥ १०५ ॥

कडवी तुंबीके बीज, दोनों प्रकारका तुत्थ (तूतिया) गोरोचन, दोनों हलदीं, कटेरीके फल, एरंडकी जड, चीता, मरोडफली, कसीस, इन्द्रायणकी जड, हींग, सुहांजना त्रिकुटा, देवदारू, धनियां, वायविडंग, लांगलीकंद, कुडाकी छाल, कुटकी और सरसोंके कल्कसे ४ गुना कडुवा तेल और तेलसे ४ गुना, गोमूत्र डालकर तेलको सिद्धकरले । इस तेलकी मालिश करनेसे खुजली, कोढ वात और कफ नष्ट होतेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

कनकक्षीर तैल ।

कनकक्षीरीशैलाभार्ङ्गीदन्तीफलानिमूलञ्च। जातीफलानिप्रवालसर्षपलशुनविडङ्गंकरञ्जत्वक् ॥१०६॥ सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बचित्रकास्फोताः। गुञ्जैरण्डबृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ॥७॥ कुष्ठंपाठामुस्तंतुम्बुरुंमूर्वावचासषड्ग्रन्था। एडगजकटुजाशिग्रुत्र्यूपणभल्लातकक्षवकाः ॥१०८॥ हरितालमवाक्पुष्पीतुत्थंकम्पिल्लकोमृतासंगः । सौराष्ट्रीकासीसंदार्वीत्वक्सार्जिकालवणम् ॥१०९॥कल्कैरेतैस्तैलंकरवीरकमूलकपल्लवकषाये।सार्षपमथवातैलंगोमूत्रचतुर्गुणंसाध्यम् ॥ ११० ॥स्थाप्यंकटुकालाबुनितत्सिद्धंतेनास्यमण्डलान्याशु । भिन्द्याद्भिषगभ्यंगात्क्रिमींश्चकण्डूंविनिहन्यात् ॥१११॥

सत्यानाशी, मनसिल, भारंगी, बुलबुले (पहाडी जमालगोटे) दन्तीकी जड, जायफल, चमेलीके पत्ते, सफेद सरसों, लहसुन, बायविडंग, करंजकी छाल, सतवन, आकके पत्ते, जड और छाल, नीमकी छाल, चीता, कोयल, रत्तक, एरंडकी जड, बडी कटेरी, मूली, सुरसातुलसी, अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ,पाढ नागरमोथा, तुंबुरू, मूर्वा, कचूर, वच, पनवाड कुडा, सुहांजना, त्रिकुटा, भिलावा, क्षवक तुलसी, हरतालं, सौंफ, नीलमोथा, कमीला, मुर्दासिंग, सोरठमिट्टी, सीसा, दारूहलदीकी छाल, सज्जीखार, सेंधानमक, इनके कल्क और करनेकी जड तथा पत्तोंके क्वाथमें सरसोंका तैल और उससे चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैल सिद्धकरे। इस तैलको कौडे तुंबेमें भरकर रखदेवे । इस तैलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग, खुजली, तथा सब प्रकारके कुष्ठ शान्त होजातेहैं. ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥ ११० ॥१११॥

सिध्मपर लेप ।

कुष्ठंतमालपत्रं मरिचंसमनःशिलंसकाशीशम् । तैलेनयुक्तमुचितंसप्ताहं भाजनेताम्रे ॥ तेनालिप्तंसिध्मंसप्ताहाद्व्येतितिष्ठतोघर्मे। मासाद्नवं किलासंस्नानंमुक्त्वा विशुद्धतनोः ॥ ११२ ॥

कूठ, तमालपत्र, कालीमिर्च, मनसिल, कसीस इन सबका चूर्ण बनाकर कडुवे तेलमें मिलाकर सात दिन तक तांबेके पात्रमें रखदेवे, फिर इसको लगाकर धूपमें बैठे इस प्रकार ७ दिन करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाताहै। तथा शुद्ध देहवाला मनुष्य इसको १ महीने तक लगावे तो किलास, कुष्ठ नष्ट होजाताहै। परन्तु इसके सेवनमें स्नान नहीं करना चाहिये ॥ ११२ ॥

अन्य तैल।

सर्षपकरञ्जकोशातकानितैलान्यथेंगुदीनाञ्च।
कुष्ठेषुहितान्याहुस्तैलंयच्चापिखदिरस्यतैलानि ॥ ११३ ॥

सरसों, करंजुआ, कडवी तोरी, गोंदनी और खैर इन सबको अलग २ सिद्धकिये तैल कुष्ठको दूर करतेहैं ॥ ११३ ॥

विपादिकाका यत्न।

जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वीकाम्पिल्लकस्तथातुत्थम् । एषघृततैलपाकः सिद्धःसिद्धेचसर्जरसःक्षेप्यः ॥ ११४ ॥ समधूच्छिष्टोविपादिका नश्यतिव्यासाचर्मैककुष्ठम् । किटिभंकुष्ठंशाम्यत्यलसकञ्चविपादिकायाम् ॥ ११५ ॥

जीवन्ती, मंजीठ, दारुहल्दी, कमीला, नीला, मोथा, इनमें घृत और तेलको एक साथ पाककरे पकते समय इसमें राल और मोम मिलादे इसको विपादिका (बिवाई) में भरदेनेसे बिवाई नष्ट होजातीहै एवं एककुष्ठ, किटिभ, कुष्ठ और अलसक सब दूर होजाते हैं ॥ ११४ ॥ ११५ ॥

मण्डल कुष्ठपर लेप।

किण्वंवराहरुधिरंपृथ्वीकासैन्धवञ्चलेपःस्यात् । लेपोयोज्यःकुस्तुम्बुरूणिकुष्ठञ्चमण्डलनुत् ॥११६॥ पूतीकादारुजटिलापकसुराक्षौद्रमुद्गपर्ण्योच । लेपःसकाकनासोमण्डलकुष्ठापहःसिद्धः ॥ ११७ ॥

किण्व (सुराका खमीर) सूकरका रक्त, काला जीरा, सेंधानमक, इनका लेप करनेसे तथा इसीमें धनियां और कूठ मिलाकर लेप करनेसे मण्डलकुष्ठ नष्ट होजाताहै। अथवा करंजुआ, देवदारु, जटामांसी, मुरा, शहत, मुद्गपर्णी और काकनासा इनका लेप भी मण्डलकुष्ठको नष्ट करताहै। यह सिद्धयोग है ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

छै: लेप।

चित्रकशोभाञ्जनकौगुडूच्यपामार्गदेवदारूणि । खदिरोधवश्चलेपः

श्यामादन्तीद्रवन्तीच ॥ ११८ ॥ लाक्षारसाञ्जनैलापुनर्नवाचेति कुष्ठिनोलेपाः । दधिमण्डयुताःसर्वेदेयाःषण्मारुतकफघ्नाः ॥ ११९ ॥

चित्रक और सुहांजना, गिलोय, अपामार्ग, देवदारू, खैर, धव, बावची, दन्ती और द्रवन्ती, लाख, रसौत और इलायची तथा पुनर्नवा; इन छः योगोंमेंसे किसी एकको दधिमण्डमें रगडकर लेपकरनेसे कुष्ठ तथा वात कफ नष्ट होतेहैं॥११८॥११९॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैःक्रिमिघ्नैश्च । क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यंदद्रूकुष्ठञ्चशममुपैति ॥ १२० ॥ एडगजःसर्जरसोमूलकबीजञ्च सिध्मकुष्ठानाम् । काञ्जिकयुक्तन्तुपृथङ्मतमिदमुद्वर्त्तनंक्रमशोलेपाः ॥ १२१ ॥

पनवाडके बीज, कूठ सेंधानमक, सौवीरक (कांजी) सरसों और वायविडंग इनका लेप करनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दद्रुकुष्ठ नष्ट होतेहैं। अथवा पनवाडके बीज, राल, मूलीके बीज इनको कांजीमें घोटकर किसीके मतमें उवटना तथा किसीके मतमें क्रमपूर्वक लेप करनेसे सिध्मकुष्ठ दूर होजाताहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

अन्य प्रयोग।

वासात्रिफलापानेस्नानेचोद्वर्त्तनेप्रलेपेच । बृहतीसेव्यपटोलाःसशारिवारोहिणीचैव ॥ १२२ ॥ खदिराबघातककुभारोहीतककुटजधवनिम्बाः । ससच्छदकरवीराःशस्यन्तेस्नानपानेषु ॥ १२३ ॥

वांसा (अडूसा) और त्रिफलाको पीने, स्नानकरने, उवटने और लेपमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ दूर होताहै । अथवा वडी कटेरी, खस, पटोलपत्र, सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रोहितत्वण, कुडा, धव, नीम, सप्तपर्ण, कनेर,इनका स्नान तथा पीनेमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ शान्त होतेहैं ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अभ्यंग प्रयोग।

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनंमृणालानि । भागोत्तराणिसिद्धं प्रलेपनंपित्तकफकुष्ठे ॥ १२४ ॥ यष्ट्याह्वरोध्रपद्मकपटोलपिचुमर्दचन्दनरसाश्च । स्नानेपानेचहिताःसुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः ॥१२५॥ आलेपनंप्रियंगुर्हरेणुकावत्सकस्यचफलानि । सातिविषाचसेव्यासचन्दनारोहिणीकटुका ॥ १२६ ॥ तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यं-

-गोदह्यमानकुष्ठेषु । तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्पलयुतैश्चा-भ्यंगः ॥ १२७ ॥

नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, नागकेसर, तेजपत्र, केवटी मोथा, लालचंदन, भिस इनको क्रमसे उत्तरोत्तर एक एक भाग अधिक लेवे फिर लेप करे तो पित्तकफ कुष्ठ दूर होताहै। अथवा मुलेठी, लोध, पद्माख, पटोलपत्र, नीमकी छाल और रक्तचंदन इनका क्वाथ शीतल करके स्नान और पीनेमें देनेसे पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होताहै। अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस, खस, लालचंदन और कुटकी इनका लेप अथवा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किया अथवा सौवार वा सहस्रवार धोया घृतका लेप करनेसे दाहयुक्त पित्तप्रधान कुष्ठ दूर होताहै। इसीप्रकार रक्तचंदन, मुलहठी, प्रपौण्डरीक और नील कमल इनसे सिद्धकिये हुए तेलके लगानेसे भी दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होताहै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

घृतप्रयोग।

क्लेदेप्रपततिचांगेदाहेविस्फोटकेसचर्मदले । शीताःप्रदेहसेकाव्य-धनविरेचकौघृतंतिक्तम् ॥ १२८॥ खदिरघृतंनिम्बघृतंदार्वीघृतमु-त्तमंपटोलघृतम्। कुष्ठेपुरक्तपित्तप्रबलेषुभिषग्जितंसिद्धम् ॥ १२९॥

कुष्ठमें स्राव अथवा किसी अंगके गिरनेसे, विस्फोटक वा चर्मदलमें शीतल लेप, सेक, रक्त निकालना, विरेचन और तिक्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दार्वीघृत और पटोलघृतका प्रयोग यह सब हितकारी होतेहैं। जिनमें रक्तपित्त प्रबल हैं येही प्रयोग उन कुष्ठोंमें भी हितकारक हैं ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अन्य प्रयोग।

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाःपटोलपत्रञ्चकार्षिकाःशेषाः । कटुरोहि-णीसनिम्बायष्ट्याह्वात्रायमाणाच ॥ १३० ॥ एषकषायःसाध्योद-त्त्वाद्विपलंमसूराणाम्।सलिलाढकेऽष्टभागेशेषेपूतोरसोग्राह्यः।तेच-कषायाष्टपलेचतुष्पलंसर्पिषश्चपक्तव्यम् ॥ १३१ ॥ यावत्स्यादष्टप-लंशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वातपित्तकुष्ठंवीसर्पंवातशोणितंप्रबल-म् ॥१३२॥ ज्वरदाहगुल्मविद्रधिविभ्रमविस्फोटकान्हन्ति॥१३३॥

त्रिफलेका छिलका दो तोला, पटोलपत्र २ तोला, कुटकी, नीमकी छाल, मुल-हठी, त्रायमाण यह प्रत्येक एकएक तोला तथाद्विपल मसूर ८ तोला इनसबको

चार सेर पक्के पानीमें पकावे । जब आधसेर बाकी रहे तो छान ले । इस काथमें चार पल घृत मिलाकर पकावे जब आठपल शेष रहे तब शीत गरम पीवे इसके पीनेसे वातपित्तप्रधान, कुष्ठ, विसर्प, प्रबल वातरक्त, ज्वर, दाह, गुल्म, विद्रधि, विभ्रम-विस्फोटक यह सब दूर होतेहैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

षट्पलघृत ।

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभांतिक्तरोहिणींत्रिफलम् ।कुर्यादर्द्धपलांशंपर्पटकंत्रायमाणाश्च ॥१३४ ॥ सलिलाढकसिद्धानांरसेऽष्टभागस्थितेक्षिपेत्पूते । चन्दनकिराततिक्तकमागधिकांत्रायमाणाश्च ॥१३५ ॥ मुस्तंवत्सकबीजंकल्कीकृत्वार्द्धकार्षिकान्भागान् । नवसर्पिषश्चषट्पलमेतत्सिद्धंघृतंपेयम् ॥ १३६ ॥कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्डवामयश्वयथुहारि । वीसर्पपिडकपामाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ॥ १३७ ॥

नीम, पटोलपत्र, दारुहलदी, जवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापडा और त्रायमाणा यह दो२ तोला लेकर १आढक पानीमें पकावे । जब अठवां भाग शेष रहे तब उतारकर छान ले। इसमें लालचंदन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा, मोथा, इनको छः छः मासा लेकर कूट छानकर मिलावे और इसमें २४ तोला घृत मिलाकर सिद्ध करके इस घृतको योग्यमात्रासे पीवे तो कुष्ठज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन, विसर्प, पिडिका, पामा, कण्डू, मद तथा गलगण्ड यह सब नष्ट होजाते हैं ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

महातिक्तघृत ।

सप्तच्छदंप्रतिविषंशम्पाकंतिक्तरोहिणींपाठाम् । मुस्तमुशीरंत्रिफलांपटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ १३८॥ धन्वयवासंचन्दनमुपकुल्यांपद्मकंरजन्यौच । षड्ग्रन्थांसविशालांशतावरींशारिवेचोभे॥१३९॥ वत्सकबीजंवासांमूर्वाममृतंकिराततिक्तञ्च । कल्कान्कुर्य्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वांत्रायमाणाश्च ॥ १४० ॥ कल्कस्यचतुर्भागेजलमष्टगुणंरसोऽमृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिःपाययेत्सिद्धम् ॥ १४१ ॥ कुष्ठानिरक्तपित्तप्रबलान्यर्शांसिरक्तवाहीनि । वीसर्परक्तपित्तंवातासृक्पाण्डुरोगञ्च ॥१४२ ॥ विस्फोटकान्सपा-

मासुन्मादंकामलांज्वरंकण्डूम् । हृद्रोगंगुल्मपिडकाअसृग्दरगण्डमालाश्च ॥ १४३ ॥ हन्यादेतत्सर्पिःपीतंकालेयथाबलंसद्यः । योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ १४४ ॥

सप्तपर्ण (सतौना), अतीस, अमलतास, कुटकी, पाढ, मोथा, त्रिफला, पटोलपत्र, नीम, पित्तपापडा, जवासा, लाल चंदन, पीपल, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, बच, इन्द्रायणकी जड, शतावर, दोनों शारिवा, इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वा, गिलोय, चिरायता, मुलेठी और त्रायमाण इनका कल्क करे और कल्कसे चौगुना घृत घृतसे अठगुना जल घृतसे दूना आंवलेका रस, इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतके पान करनेसे प्रबल कुष्ठ, रक्तपित्त, खूनी बवासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, खाज, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, रक्तप्रदर, और गण्डमाला यह सब रोग शीघ्र दूर होजातेहैं । यह घृत बल और कालके अनुसार पान कियाजाय तो जो रोग अनेक प्रयोगोंसे भी शांत नहीं हुएहों वे इस महातिक्त घृतसे शीघ्र नष्ट होजातेहैं ॥ १३८-१४४ ॥

दोषेह्रतेपनीतेरक्तेबाह्यांतरेकृतेशमने ।
स्नेहेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्ततेसाध्यम् ॥ १४५ ॥

दोषोंके दूर होनेसे, बिगडेहुए रक्तके शिरावेधन (फस्त) द्वारा निकाल देनेसे बाह्य और आभ्यंतर दोष शमन होनेसे तथा उचितकालमें स्नेह प्रयोगसे जो साध्य कुष्ठ शान्त होजाताहै वह फिर प्रगट नहीं होताहै ॥ १४५ ॥

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाःपञ्चशिंशपाशणयोस्तुले । तुलार्द्धासर्वएवैतेकरआरिष्टवेतसाः । पर्पटःकुटजश्चैववृषःक्रिमिहरस्तथा ॥ १४६ ॥ हारिद्रोकृतमालश्चगुडूचीत्रिफलात्रिवृत् । सप्तपर्णश्चसक्षुण्णादशद्रोणेषुवारिणः ॥ १४७ ॥ धात्रीरसंचतुल्यांशंसर्पिषश्चाढकंपचेत् । अष्टभागावशेषन्तुकषायमवतारयेत् ॥ १४८ ॥ महातिक्तकल्कैस्तुयथोक्तैःपलसम्मितैः । निहन्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गनिषेवनात् । महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारनुत् ॥ १४९ ॥

खैरकी लकडी ५०० पल, शीसम और विजैसार एक एक सौ पल, करंजुआ, नीमकी छाल, बेतस, पित्तपापडा, कुडा, अडूसा, वायविडंग, दोनों हलदी, अमलतास,

गिलोय, त्रिफला, निशोथ, सप्तपर्ण, यह सब ५० पल इन सबको दश द्रोण जलमें पकावे जब अष्टमांश शेष रहे उतारकर छानले। फिर इसमें इसके बराबर आंवलेका रस और १ आढक घृत तथा महातिक्त घृतमें कहेहुए सब द्रव्य एकएक पल लेकर उसमें मिलाकर घृत सिद्धकरे। इस घृतको पीने और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होतेहैं। यह महाखदिर घृत कुष्ठनाशक परम उत्तम योग है१४६।१४७।१४८।१४९॥

क्रिमिनाशक प्रयोग।

प्रपतत्सु लसीकाप्रस्रुतेषुगोत्रेषुजन्तुदग्धेषु। मूत्रंनिम्बविडङ्गेस्नानं पानंप्रदेहश्च ॥ १५० ॥ वृषकुटजसप्तपर्णाःकरवीरकरञ्जनिम्बाश्च। स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदःसगोमूत्राः ॥ १५१ ॥ पानाहारविधाने प्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच । क्रिमिनाशनंविडंगंविशिष्यतेकुष्ठहृत्खदिरः ॥ १५२ ॥

यदि कोई अंगावयव गलकर गिरजाय या शरीरमेंसे लसीका निकलतीहो अथवा कीडे पडगये हों तो गोमूत्र, वायविडंग और नीम इनमेंसे किसी एकको या सबको मिलाकर क्वाथ करके पीने और स्नान करनेमें प्रयोग अथवा लेप करै। या अडूसा, कुडा, सप्तपर्ण, कनेर, कंजा, नीम इनको गोमूत्रमें पकाकर स्नान, पान और लेप करनेसे क्रिमिकुष्ठ नष्ट होजाताहै। वायविडंग और खैरको, खाने पीने, प्रसेक, धूपन और प्रदेहमें प्रयोग करना विशेषतासे कुष्ठ नाश करताहै ॥ १५० ॥ १५१॥ १५२ ॥

अन्य प्रयोग।

एडगजसविडंगोमूलान्यारग्वधस्यकुष्ठानाम्। उद्धूलनंश्वदन्तागोश्ववराहोष्ट्रदन्ताश्च ॥ १५३ ॥ एडगजःसविडंगोरजनीद्वयराजवृक्षमूलञ्च। कुष्ठोद्दालनमभ्यंसपिप्पलीपाकलंयोज्यम् ॥ १५४ ॥

पनवाडके बीज, वायविडंग, अमलतासकी जड तथा कुत्ता, गौ, घोड़ा, सूअर, और ऊंट इनके दांतोंका चूर्ण कर कुष्ठपर बुरकाना अथवा पनवाडके बीज, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, अमलतासकी जड, पीपल और पाटला इनको पीसकर कुष्ठोंपर बुरकाना या लेप अथवा उबटन करना कुष्ठोंको दूर करताहै ॥१५३॥१५४॥

श्वित्रकुष्टपर योग।

श्वित्राणांसविशेषंप्रयोक्तव्यंसर्वतोविशुद्धानाम् । श्वित्रेस्रंसनमग्र्यंमलपूरसइष्यतेसगुडः ॥ १५५॥ तंपीत्वासुस्निग्धोयथाबलंसूर्य्यपादसन्तापम्। सेवेतविरिक्तश्चत्र्यहंपिपासुःपिबेत्पेयाम्॥१५६॥

श्वित्रेङ्गेयेस्फोटाजायन्तेकण्टकेनतान्भिन्द्यात् । स्फोटेषुविस्रुतेषुप्रातःप्रातः पिबेत्पक्कम् ॥ १५७॥ मलपुमशनंप्रियङ्गुशतपुष्पांचाम्भसासमुत्काथ्य।पालाशंवाक्षारंयथावलंफाणितोपेतम्॥१५८॥ यच्चान्यत्कुष्ठघ्नंश्वित्राणांसर्वमेवतच्छस्तम् । खदिरोदकसंयुक्तं खदिरोदकपानमग्र्यमहि ॥१५९॥ समनःशिलंविडंगंकासीसंरोचनां कनकपुष्पीम् । श्वित्राणांप्रशमार्थंससैन्धवंलेपनंदद्यात् ॥ १६० ॥

श्वित्रकुष्ठियोंको सब प्रकार संशोधनादिसे शुद्ध करके फिर औषध प्रयोग करे । श्वित्रकुष्ठमें कटूमरका रस और गुड, मिलाकर विरेचन कराना विशेष हितकारी होताहै इस रसको पीकर देहपर कुष्ठनाशक तेलको मलकर फिर जितनी देर सहसके उतनी देर धूपमें बैठना चाहिये । विरेचनके अनन्तर तीन दिन तक पेयाका पान करना चाहिये । श्वित्रकुष्ठमे जो फुन्सियां होजायँ उनको कांटोसे वेधनकरके और उनमेसे पीव निकाल डाले और प्रतिदिन प्रातःकाल कटूमर, विजैसार, प्रियंगु और सौंफका क्वाथ करके पीवे । अथवा ढाकके क्षारको बलके अनुसार गुडकी रावमें मिलाकर पीवे । अथवा जो और भी कुष्ठनाशक प्रयोग कथन किये हैं वह सब श्वित्रकुष्ठमें उपयोगी हे । विशेप करके खैरके क्वाथके साथ लेप वा खैरके क्वाथादि पीना श्वित्रकुष्ठमें विशेप हितकारी होताहै । और मनसिल, वायविडंग, कसीस, गोरोचन, अमलतास और सेंधानमक इनका लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाताहै ॥ १५५ । १५६ । १५७ । १५८ । १५९ । १६० ॥

कुष्ठपर अन्य लेप ।

कदलीक्षारयुतंवाखदिरास्थिदग्धंगवांमूत्रेणयुक्तम् । हस्तिमदाध्युषितंवामालत्याक्षारकक्षारम्॥१६१॥ नीलोत्पलंसकुष्ठंससैन्धवंहस्तिमूत्रपिष्टंवा । मूलकबीजोवल्गुजलेपःपिष्टोगवांमूत्रे ॥१६२॥काकोदुम्बरिकावासवल्गुजचित्रकोगवांमूत्रे । पिष्टामनःशिलावासंयुक्तावर्हिपित्तेन ॥ १६३ ॥ लेपःकिलासहन्तामूलान्यावल्गुलानि लाक्षाच । गोमूत्रमञ्जनेद्वेपिप्पल्यःकाललोहरजः ॥ १६४ ॥

केलेका खार, वा खैरकी लकडीका खार, गौके मक्खनमें मिलाकर कुष्ठपर लेप लगावे अथवा मालतीके खारको हाथीके मदके जलमें मिलाकर लेप करै अथवा नील कमल, कूठ, सेधानमक इनको हाथीके मूत्रमें पीसकर लेप करै अथवा मूलीके

बीज और बावचीबीजका गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै । अथवा कठूमर, अडूसा, बावची, चीता इनको गौके मूत्रमें रगडकर लेप करे । अथवा मनसिलको मोरके पित्तमें रगड लेप करे तो कुष्ठ दूर होताहै । बावचीकी जड, लाख, गोमूत्र, मूर्वा, रसौत, पीपल और कान्तिसार लोहका चूर्ण इनका लेप करे तो किलासकुष्ठ नष्ट होताहै ॥ १६१ । १६२ । १६३ । १६४ ॥

शुद्धथाशोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्चसक्तूनाम् ।
श्वित्रंकस्यचिदेवप्रशाम्यतिक्षीणपापस्य ॥ १६५ ॥

जिस मनुष्यके पाप क्षीण होजातेहैं उसका श्वित्रकुष्ठ संशोधन, रक्तमोक्षण, विरू-क्षण तथा सत्तुओंके सेवन करनेसे ही दूर होजाताहै ॥ १६५ ॥

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणंवारुणंश्वित्रकिलासंनामभिस्त्रिभिः । विज्ञेयंत्रिविधंतच्च-त्रिदोषेप्रायशश्चतत् ॥ १६६ ॥ दोषेरक्ताश्रितेरक्तंताम्रंमांससमा-श्रिते । श्वेतंमेदःश्रितंश्वित्रंगुरुतश्चोत्तरोत्तरम् ॥ १६७ ॥

श्वित्रकुष्ठ दारुण वरुण और किलास इन भेदोंसे तीन प्रकारका होताहै । और यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित है । दोष रक्ताश्रित होनेपर श्वित्रका वर्ण लाल होताहै । मांसा-श्रित होनेपर ताम्रवर्ण और मेदाश्रित होनेपर श्वेतवर्ण होजाताहै । इन तीनोंमें लालसे ताम्रवर्ण और ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण गुरु होताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

श्वित्रका असाध्यत्व ।

यत्परस्परतोभिन्नंबहुयद्रक्तलोमवत् ।
यच्चवर्षगणोत्पन्नंतत्श्वित्रंनैवसिद्धयति ॥ १६८ ॥

जो श्वित्र परस्पर भिन्न २ हों और जिसका वर्ण अधिक लाल हो, जिसमें बहुत रोम हों और जो बहुत दिनोंका पुराना हो वह श्वेतकुष्ठ असाध्य होताहै ॥ १६८ ॥

किलासकी उत्पत्तिके कारण ।

वचांस्यतथ्यानिकृतघ्नभावो निंदासुराणांगुरुधर्षणञ्च ।
पापक्रियापूर्वकृतञ्चकर्म हेतुःकिलासस्यविरोधिचान्नम् ॥१६९॥

झूठ बोलनेसे, कृतघ्नतासे, देवताओंकी निन्दा करनेसे, गुरुजनोंका अपमान करनेसे इस जन्मके अथवा पूर्वजन्मके पापकर्मसे और विरुद्ध भोजन करनेसे किलास कुष्ठ उत्पन्न होताहै ॥ १६९ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गंसमासतोदोषनिर्देशात् । साध्यासाध्यंकृच्छ्रंकुष्ठापहाश्चयेयोगाः ॥१७०॥ सिद्धाःकिलासहेतुर्लिंगंगुरुलाघवंशांतिः। इतिसंग्रहःप्रणीतोमहर्षिणाकुष्ठनाशनेऽध्याये। स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थंशिष्यायहुताशवेशाय ॥ १७१ ॥

इति चरक० चिकित्सि०गुल्मचिकित्सितंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भगवान् पुनर्वसुजीने इस कुष्ठचिकित्सित अध्यायमें कुष्ठोंके हेतु, द्रव्य, लक्षण, दोष निर्देशका संक्षेपसे वर्णन, साध्य, असाध्य और कष्टसाध्यके लक्षण, कुष्ठनाशक, सिद्ध प्रयोग, किलासके हेतु, लक्षण, गुरुता, लाघवता, चिकित्सा अपने शिष्य अग्निवेशकी स्मृति और बुद्धि बढानेके लिये कहे हैं ॥ १७० । १७१ ॥

इति श्री च० आ० सं० चिकित्सास्थाने प्र० भाषाटीकायां कुष्ठचिकित्सितं नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातोराजयक्ष्मचिकित्सितंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम राजयक्ष्माचिकित्सितनामक अध्यायका वर्णन करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

राजयक्ष्माके विषयमें प्राचीन इतिहास।

दिवौकसांकथयतामृषिभिर्विश्रुताकथा । कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति ॥ १ ॥ रोहिण्यामतिसक्तस्यशरीरंनानुरक्षतः । आजगामाल्पतामिन्दोर्देहःस्नेहपरिक्षयात् ॥ २ ॥ दुहितॄणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्चप्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेणमूर्तिमान्निःसृतोमुखात् ॥ ३ ॥ प्रजापतेर्हिदुहितुरष्टाविंशतिरंशुमान्। भार्यार्थंप्रतिजग्राहनचसर्वास्ववर्तत ॥४॥ गुरुणात्मवध्यातंभार्यास्वसमवर्तिनम्। रजोऽन्धमबलंदीनंयक्ष्माशशिनमाविशत् ॥ ५ ॥

ऋषियोंने देवताओंको इस प्रकार चंद्रमाके विषयमें पौराणिक कामकथा कहते

हुए सुना कि एक समय चंद्रमा रोहिणीपर अत्यंत आसक्त होगयेथे और अपने शरीर तथा आरोग्यतापर कोई ध्यान न देकर उसीमें रत रहतेथे इसलिये शरीरका स्नेह क्षीण होनेसे चंद्रमाका शरीर बहुत कृश होगया। केवल रोहिणीमें ही चंद्रमा आसक्त था इसलिये दक्षप्रजापतिकी शेप कन्याओंको संभोगसे वंचित रहना पडता था यह वृत्तांत सुनकर दक्षके मुखसे निश्वास रूपसे मूर्तिमान् क्रोध प्रगट हुआ, क्योंकि, दक्षकी २८ कन्या चंद्रमाने स्त्रीभावके लिये ग्रहण की थीं परंतु सिवाय रोहीणीसे वह और किसीसे स्त्रीभाव नहीं रखताथा। इसलिये रजोगुणसे अंध हुए सब भार्याओंसे समव्यवहार न करनेवाले निर्बल कृश शरीर चन्द्रमाके शरीरमें दक्षके शापसे यक्ष्मा-रोगका प्रवेश हुआ ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिष्प्रभः। देवदेवर्पिसहितोजगाम शरणंगुरुम् ॥ ६ ॥ अथचन्द्रमसःशुद्धांमतिंबुद्ध्वाप्रजापतिः । प्रसादंकृतवान्सोमस्ततोऽश्विभ्यांचिकित्सितः ॥ ७ ॥ सविमुक्तग्रहश्चन्द्रोविरराजविशेषतः । तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्त्व-मवापच ॥ ८ ॥

फिर इस प्रकार दक्ष (अपने श्वशुर) के क्रोधसे कांतिहीन हुआ चंद्रमा देव और देवर्षियोंको साथ लेकर दक्षप्रजापतिकी शरण गया। दक्षप्रजापतिने शरण आएहुए चंद्रमाको शुद्धचित्त देखकर प्रसन्नतासे कृपा की फिर दक्षके शिष्य अश्वि-नीकुमारोंने चंद्रमाकी चिकित्सा की। उनकी चिकित्सासे चन्द्रमा यक्ष्मारूप ग्रहसे छूटकर विशेष प्रकाशयुक्त होगया और अश्विनीकुमारोंकी चिकित्सा द्वारा अत्यंत तेजयुक्त होनेसे शुद्ध सत्त्वको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

यक्ष्माके पर्य्यायवाचक शब्द ।

क्रोधोयक्ष्माज्वरोरोगएकोऽर्थोदुःखसंज्ञितः ।
यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्माततोमतः ॥ ९ ॥

क्रोध, यक्ष्मा, ज्वर, रोग और दुःख यह सब एकार्थवाची शब्द हैं। यह रोग प्रथम ही राजा (चंद्रमा) को हुआ था इसलिये इसको राजयक्ष्मा कहतेहैं ॥ ९ ॥

यक्ष्माका मनुष्यलोकमें आगमन ।

सयक्ष्माहुंकृतोऽश्विभ्यांमानुपंलोकमागतः ।
लब्ध्वाचतुर्विधंहेतुंसमाविशतिमानवान् ॥ १० ॥

वही यक्ष्मारोग, अश्विनीकुमारोंकी हुंकारसे स्वर्गको छोडकर मनुष्यलोकमें आगया। और चार प्रकारके कारणोंसे मनुष्योंके शरीरमें प्रविष्ट होनेलगा ॥ १० ॥

यक्ष्माके ४ कारण।

अयथाबलमारम्भंवेगसन्धारणक्षयम्।
यक्ष्मणःकारणंविद्याच्चतुर्थंविषमाशनम्॥ ११॥

१ अयथाबल आरंभ (अपनी शक्तिसे बढकर कार्यमें प्रवृत्त होना) २ मलमूत्रादिवेगोंका रोकना। ३ क्षय और ४ विषमाशन। यह यक्ष्माके चार हेतु हैं॥ ११॥

१ अयथाबलपराक्रमजन्ययक्ष्माका निदान।

युद्धाध्ययनभाराध्वलंघनप्लवनादिभिः। पतनैरभिघातैर्वासाहसैर्वातथापरैः॥ १२॥ अयथाबलमारब्धैर्जन्तोरुरसिविक्षते। वायुः प्रकुपितोदोषावुदीर्य्योभौविधावति॥ १३॥ सशिरःस्थः शिरःशूलंकरोतिगलमाश्रितः। कण्ठोद्ध्वंसञ्चकासञ्चस्वरभेदमरोचकम्॥ १४॥ पार्श्वशूलञ्चपार्श्वस्थोवर्चोभेदंगुदेस्थितः। जृम्भांज्वरंचसन्धिस्थउरस्थश्चोरसोरुजम्। क्षणनाच्चोरसोरक्तंकासमानःकथानुगम्॥ १५॥ जर्जरेणोरसाक्षिप्रमुरःशूलीनिरस्यति इतिसाहसिकंयक्ष्मारूपैरेतैःप्रपद्यते। एकादशभिरात्मज्ञोभजेत्तस्मान्नसाहसम्॥ १६॥

अयथाबल पराक्रमजन्य यक्ष्माका निदान, अपनी शक्तिसे बढकर युद्ध करना पढना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, अथवा नदी आदिके वेगको बलपूर्वक लंघन, छलांगमारना, गिरना, चोटलगना अथवा अन्य साहस करना। इस प्रकार अयथाशक्ति काम करनेसे वक्षःस्थल (छाती) में क्षत (घाव) होजाताहै और वायु कुपित होकर कफ और पित्तको उदीर्णकर प्रबल वेग धारण करताहै। यदि वह वायु शिरमें प्रवेश करे तो शिरमें शूल उत्पन्न करताहै। जब गलेमें प्रवेश करताहै तो कण्ठका उद्ध्वंस, खांसी, स्वरभंग और अरुचि प्रगट करताहै। पार्श्वमें प्रवेश करे तो पार्श्वशूल, गुदामें प्रवेश करे तो मलभेद, संधियोंमें प्रवेश करे तो जंभाई और ज्वर, वक्षःस्थलमें प्रवेश करे तो छातीमें पीडा प्रगट करताहै। छातीमें क्षत (घाव) होनेसे खांसीमें कफके साथ रुधिर आताहै। छातीमें घाव होनेसे खांसीके साथ छातीमें पीडा होतीहै इस प्रकार अधिक साहससे यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंसे प्रगट होताहै। इसलिये बुद्धिमानको उचित है कि इन साहसिक कर्मोंको न करे॥ १२॥१३॥१४॥१५॥१६॥

२ वेगसंधारणजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण।

ह्रीमत्त्वाद्वाघृणित्वाद्वाभयाद्वावेगमागतम् । वातमूत्रपुरीषाणांनिगृह्णातियदानरः ॥ १७ ॥ तदावेगप्रतीघातात्कफपित्तेसमीरयन् । ऊर्ध्वंतिर्यगधःकुर्याद्विकारान्कुपितोऽनिलः ॥ १८ ॥ प्रतिश्यायश्चकासश्चस्वरभेदमरोचकम् । पार्श्वशूलंशिरःशूलंज्वरमंसावमर्दनम् ॥ १९ ॥ अंगमर्दमुहुश्छर्दिर्वर्चोभेदंत्रिलक्षणम् । रूपाण्येकादशैतानियक्ष्मायैरुच्यतेमहान् ॥ २० ॥

जब मनुष्य लज्जा, घृणा अथवा भयसे वात, मूत्र और पुरीषके वेगको रोकलेताहै तब वेगोंके प्रतिघातसे कुपित हुआ वायु कफ और पित्तको उत्तेजित कर ऊपर, नीचे या तिरछे स्थानोंमें गमनकर रोगको उत्पन्न करताहै । जैसे प्रतिश्याय, खांसी, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, अंसोंमें पीडा, अंगमर्द, वारवार वमन और मलभेद यह वेग संधारणजन्य यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणोंवाला होताहै । इस त्रिदोषयुक्त उपद्रवोंवाले यक्ष्माको महायक्ष्मा कहतेहैं ॥ १७ । १८ । १९ । २० ॥

३ क्षयजन्ययक्ष्माका निदान, लक्षण।

ईर्ष्योत्कण्ठाभयत्रासक्रोधशोकातिकर्षणात् । व्यवायानशनाभ्याञ्चशुक्रमोजश्चहीयते ॥ २१ ॥ ततः स्नेहक्षयाद्वायुर्वृद्धोदोषानुदीरयन् । प्रतिश्यायंज्वरंकासमंगमर्दंशिरोरुजम् ॥ २२ ॥ श्वासंविड्भेदमरुचिंपार्श्वशूलंस्वरक्षयम् । करोतिचांससन्तापमेकादशमिहाङ्गहृत् ॥ २३ ॥ लिंगान्यावेदयन्त्येतानेकादशमहागदम् । संप्रासराजयक्ष्माणंक्षयात्प्राणक्षयप्रदम् ॥ २४ ॥

ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, अतिकर्षण और मैथुनसे अथवा आहार न करनेसे, शुक्र और ओज क्षीण होजातेहैं । शुक्र और ओजका क्षय होनेसे शरीरका स्नेह भी नष्ट होजाताहै । फिर वायु कुपित होकर दोषोंको उत्तेजित करके प्रतिश्याय, ज्वर, खांसी, अंगमर्द, शिरका शूल, श्वास, मलभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, स्वरभंग और दोनों अंशोंमें संताप, शरीरको क्षीण करनेवाले इन ग्यारह लक्षणोंसे युक्त यह क्षयजन्य राजयक्ष्मा नामका महारोग शीघ्र ही प्राणोंका नाश करनेवाला होताहै ॥ २१ । २२ । २३ । २४ ॥

४ विषमाशनसे उत्पन्न यक्ष्माके निदान,लक्षण।

विविधान्यन्नपानानिवैषम्येणसमश्नतः । जनयन्त्यामयान्घोरान्

विषमामारुतादयः ॥ २५ ॥ स्रोतांसिरुधिरादीनांवैषम्याद्विषमंग-गताः । रुद्धारोगायकल्पन्तेपुष्यन्तिचनधातवः ॥ २६ ॥ प्रतिश्यायंप्रसेकश्चकासंछर्द्दिमरोचकम् । ज्वरमंसाभितापश्चच्छर्दनंरुधिरस्यच ॥ २७ ॥ पार्श्वशूलंशिरःशूलंस्वरभेदमथापिवा । कफपित्तानिलकृतंलिङ्गंविद्याद्यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ इतिव्याधिसमूहस्यरोगराजस्यहेतुजम् । रूपमेकादशविधंहेतुश्चोक्तश्चतुर्विधः ॥ २९ ॥

नाना प्रकारके अन्नपानोंको विषमरीतिसे सेवन करनेसे विषमभावको प्राप्त हुए वातादिक दोष घोर रोगोंको उत्पन्न करतेहैं, तथा विषमभावको प्राप्तहुए तीनो दोष रक्तादिकोंके सोतोंको रोककर धातुओंको पुष्ट नहीं होने देते और इन रोगोंको उत्पन्न करतेहैं। जैसे प्रतिश्याय प्रसेक (कफपडना) खांसी, छर्दी, अरुचि, ज्वर, स्कंधका परिताप, रुधिरका वमन, पार्श्वशूल, शिरः शूल, स्वरभेद इस प्रकार विषमाशनसे उत्पन्न हुए यक्ष्मामें क्रमसे कफ, पित्त वायु इन तीनो दोषोंके लक्षण होतेहैं। व्याधियोंके समूहरूप रोगोंके राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके इस प्रकार चार हेतु कहेगयेहैं और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव कहे गयेहैं २५।२६।२७।२८।२९.

राजयक्ष्माके पूर्वरूप।

पूर्वरूपंप्रतिश्यायोदौर्बल्यंदोषदर्शनम् । अदोषेष्वपिभावेषुकाये वीभत्सदर्शनम् ॥ ३० ॥ घृणित्वमश्नतश्चापिबलमांसपरिक्षयः । स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुण्ठने ॥ ३१ ॥ मक्षिकाघुणकेशानांतृणानांपतनानिच । प्रायोन्नपानेकेशानांनखानांश्चाभिवर्द्धनम् ॥ ३२ ॥ पतत्रिभिःपतंगैश्चश्वापदैश्चाभिधर्षणम् । स्वप्नेकेशास्थिराशीनांभस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ ३३ ॥ जलाशयानांशैलानां वनानांज्योतिषामपि । शुष्यतांक्षीयमाणानांपततांयच्चदर्शनम् ॥ ॥ ३४ ॥ प्राग्रूपंबहुरूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः । रूपंत्वस्ययथोद्देशं परंशृणुसभेषजम् ॥ ३५ ॥

राजयक्ष्मा रोगके प्रकट होजानेसे प्रथम तो प्रतिश्याय (जुकाम) उत्पन्न होताहै, फिर क्रमसे दुर्बलता, अदोषभावोंमें दोषदर्शन, शरीरमें भयानकपन, सब वस्तुओंमें

घृणा होना, भोजन करते २ भी बल और मांसका क्षय होना, स्त्रियोंका प्रिय लगना, मद्यमांसकी इच्छा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायः अन्नपानमें मक्खी, घुन, बाल और तृण आदि गिरना, केश और नखोंका अधिक बढना, स्वप्नमें पक्षी, पतंग, कुत्ते, व्याघ्र आदिका डराना, तथा स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्मके ढेरपर चढना, सूखे जलाशयोंको और क्षय होतेहुए पर्वतोंको और वनोंको एवं गिरतेहुए तारागणोंको देखना यह सब इस अनेक रूपवाले राजयक्ष्माके पूर्वरूप होतेहैं अब यथाक्रम राजयक्ष्माके लक्षण और औषधियोंका श्रवण करो ॥३०। ३१।३२।३३।३४॥३५॥

राजयक्ष्मामें पुरीषरक्षा ।

यथास्वेनोष्मणापाकंशरीरायान्तिधातवः । स्रोतसाचयथास्वेन धातुःपुष्यतिधातुना ॥ ३६ ॥ स्रोतसांसन्निरोधाच्चरक्तादीनाञ्चसंक्षयात् । धातूष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्माप्रवर्तते ॥ ३७ ॥ तस्मिन्काले पचत्यग्निर्यदन्नंकोष्ठमाश्रितम् । मलीभवतितत्प्रायःकल्पते किञ्चिदोजसे ॥ ३८ ॥ तस्मात्पुरीपंसंरक्ष्यंविशेषाद्राजयक्ष्मिणः । सर्वधातुक्षयार्तस्यबलंतस्यहिविड्बलम् ॥ ३९ ॥

शरीरकी संपूर्ण धातुयें अपनी २ गर्मीसे पाकको प्राप्त होतीहैं और अपने २ स्रोतोंके योगसे धातुओंद्वारा सब धातु पुष्ट होते हैं। जब दोषोंद्वारा स्रोत रुकजातेहैं तो स्रोतोंके बन्द होनेसे और रक्तादि धातुओंके क्षीण होनेसे एवं धातुओंकी गर्मी नष्ट होजानेसे राजयक्ष्माकी प्रवृत्ति होतीहै । तब कोष्ठाश्रित अग्नि जिस अन्नको परिपाक करतीहै उसका रस रक्तादि न बनकर प्रायः मलही बनजाताहै और उसमेंसे बहुत थोडा अंश ओजमें परिणत होताहै । इसलिये राजयक्ष्मावाले रोगीके मलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये क्योंकि संपूर्ण धातुओंके क्षीण होनेसे रोगी अत्यंत दुर्बल होजाताहै । इस अवस्थामें केवल मलके बलसेही उसमें बल रहताहै । इसलिये जहां तक होसके ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे मलकी रक्षा रहे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

राजयक्ष्माकी संप्राप्ति ।

रसःस्रोतःसुरुद्धेषुस्वस्थानस्थो विदह्यते । स ऊर्द्ध्वंकासवेगेनबहुरूपः प्रवर्तते । जायन्ते व्याधयश्चातः षडेकादशधा पुनः ॥ येषां संघातयोगेनराजयक्ष्मेति कल्प्यते ॥ ४० ॥

कासोंऽसतापोवैस्वर्यंज्वरः पार्श्वशिरोरुजौ । शोणितश्लेष्मणोश्छर्दिः श्वासःकोष्ठामयोऽरुचिः ॥ ४१ ॥ रूपाण्येकादशैतानियक्ष्मिणः षडिमानिवा । कासोज्वरःपार्श्वशूलंस्वरवर्चोगदोऽरुचिः ॥ ४२ ॥

स्रोतोंके रुकजानेसे आहरका रस संपूर्ण शरीरमें परिवर्त्तित न होकर केवल आमाशयमेंही स्थित रहकर विदग्ध होजाताहै । तब वह रस खांसीके साथ ऊपरको गमनकर अनेक रूपसे निकालताहै । उससे छः अथवा ग्यारह प्रकारकी व्याधियें उत्पन्न होतीहैं । इन संपूर्ण व्याधियोंके समुदायको ही राजयक्ष्मा कहतेहैं वह व्याधियें यह हैं । जैसे-खांसी, स्कंधोंका तपना, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्वपीडा, शिरमें पीडा, वमनमें रक्तका आना, कफकी छर्द, श्वास, कोष्ठरोग (मलभेद या कोष्ठपीडा), अरुचि यह यक्ष्मारोगके एकादश उपद्रव (रूप) हैं । और खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभंग, मलभेद अरुचि यह छः उपद्रव (रूप) हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार ।

सर्वैरर्धैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मांसबलक्षये ।
युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा ॥ ४३ ॥

जो रोगी उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त हो अथवा आगे कहेहुए तीन लक्षणोंवाला हो और उसका मांस तथा बल क्षीण होगयाहो उसको असाध्य जानना । यदि उपरोक्त सब लक्षणोंसे युक्त भी हो परन्तु बल और मांस क्षीण न हुए हों तो वह यक्ष्मारोगी साध्य होताहै ॥ ४३ ॥

प्रतिश्याय के लक्षण ।

घ्राणमूलेस्थितःश्लेष्मारुधिरंपित्तमेववा । मारुताध्मातशिरसोमारुतंश्यायतेप्रति ॥ ४४ ॥ प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतेदेहकर्शनः । तस्यरूपंशिरःशूलंगौरवंघ्राणविप्लवः ॥ ४५ ॥ ज्वरःकासःकफोत्क्लेशःस्वरभेदोऽरुचिःक्लमः । इन्द्रियाणामसामर्थ्यंयक्ष्माचातःप्रवर्तते ॥ ४६ ॥ पिच्छिलंबहुलंविस्रंहरितंश्वेतपीतकम् ॥ कासमानोरसंयक्ष्मीनिष्ठीवतिकफानुगम् ॥ ४७ ॥

जब मनुष्यकी नासिकाके मूलमें स्थित कफ अथवा रुधिर या पित्त मस्तकगत वायु द्वारा दबकर उत्क्षेपितहुए वायुसे मिलकर मस्तककी ओर जातेहैं तब वह प्रतिमार्गी वायु देहको कर्षण करनेवाला, घोर प्रतिश्याय (जुकाम) को प्रकट

करताहै । इसके होनेसे शिरमें पीडा, भारीपन, नासिकास्राव, ज्वर, खांसी, कफका प्रसेक, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियोंमें दुर्बलता यह उपद्रव होतेहैं । इस प्रतिश्यायसे ही राजयक्ष्मा रोगकी उत्पत्ति होतीहै । राजयक्ष्मावाले रोगीकी खांसीमें पिच्छिल, गाढा, दुर्गंधयुक्त, हरा, सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ निकलने लगताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्चतापःपादकरस्यच ।
ज्वरःसर्वांगगश्चेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ॥ ४८ ॥

अंस (कंधे) और पसलियोंमें संताप (या पीडा) हाथ और पांवोंका तपना, सर्वांगमें निरन्तर ज्वर रहना, यह राजयक्ष्माके तीन मुख्य लक्षण हैं ॥ ४८ ॥

राजयक्ष्मामें स्वरभंग ।

वातात्पित्तात्कफात्रक्तात्कासवेगात्सपीनसात् । स्वरभेदोभवे-द्वाताद्रूक्षःक्षामश्चलःस्वरः ॥ ४९ ॥ तालुकण्ठपरिप्लोषःपित्ताद्र-क्तमसूयते । कफान्मन्दोविबद्धश्चस्वरःखुरुखुरायते ॥ ५० ॥ स-न्नोरक्तविवन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रात्प्रवर्तते । कासातिवेगात्कर्षणः पीनसात्कफवातिकः ॥ ५१ ॥

यक्ष्मारोगमें वातसे, पित्तसे, कफसे, खांसीके वेगसे और प्रतिश्यायसे स्वरका भंग होताहै । वायुके कोपसे जो स्वरभंग होताहै उसमें स्वर रूखा, क्षीण और चल होताहै पित्तसे कण्ठ और तालुमें दाह तथा रुधिरकी प्रवृत्ति होतीहै । कफके स्वरभंगमें स्वर मंद और बद्ध तथा खांखां शब्द होताहै । रक्तके विबंधसे स्वर सन्न सन्न होताहै तथा कष्टसे शब्द निकलताहै । खांसीके वेगसे रोगी कर्षण होताहै । और प्रतिश्यायसे कफ तथा वातके लक्षण होतेहैं । (जैसे-रूक्ष, क्षीण, मंद, खरखराहट और बद्ध स्वर होताहै) ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

यक्ष्मामें अन्य उपद्रव ।

पार्श्वशूलंत्वनियतंसंकोचायामलक्षणम् । शिरःशूलंससन्तापंय-क्ष्मिणःस्यात्सगौरवम् ॥ ५२ ॥ अतिस्विन्नेशरीरेतुयक्ष्मिणोविष-माशनात् । कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तंश्लेष्माचोत्क्लिष्टसञ्चितः ॥ ५३ ॥

राजयक्ष्मामें पार्श्वशूल अनियत तथा संकोच और आयामके लक्षणोंवाला होताहै एवं मस्तकपीडा संताप और भारीपनयुक्त होतीहै । विषमाशनसे प्रकट हुए यक्ष्मामें

रोगीका शरीर अत्यंत खिन्न होताहै। इसलिये संचितहुई कफके साथ रक्त भी उत्क्लेशित होकर निकलने लगताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

रक्तंविरुद्धमार्गत्वान्मांसादीन्नानुपद्यते।
आमाशयस्थमुत्क्लिष्टंबहुत्वात्कंठमेतिवा ॥ ५४ ॥

क्योंकि रक्तवाही स्रोतोंके बंद होजानेसे रक्त मांसादिधातुओंको पुष्ट नहीं कर सकता, मार्ग रुकजानेसे आमाशयमें आकर स्थित होजाताहै और बहुत इकट्ठा होनेसे उत्क्लेशित होकर कंठमें आजाताहै। अधिक और उत्क्लेशित न होनेसे नहीं भी आता ॥ ५४ ॥

वातश्लेष्मविबंधत्वादुरसःश्वासमृच्छति।
दोषैरुपहतेचाग्नौसपिच्छमभिसार्यते ॥ ५५ ॥

वात कफ द्वारा श्वासके आने जानेवाली नलीके रुकनेसे श्वास छातीमें रुककर बडी कठिनतासे आने लगताहै और दोषों द्वारा जठराग्निके उपहत होजानेसे मल पिच्छल (लेहसदार गाढा) उतरने लगताहै क्योंकि अग्नि यथोचित रीतिसे अन्नका सार नहीं निकाल सकती ॥ ५५ ॥

पृथग्दोषैःसमस्तैर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते।
जायतेऽरुचिराहारैर्दुष्टैरर्थैश्चमानसैः ॥ ५६ ॥

जब वातादि दोष सब मिलकर अथवा अलग २ जीभ और हृदयके आश्रित होतेहैं तो अरुचिको प्रकट करतेहै। एवं दूषित आहार (जो देखने और खानेमें बुरा हो) से तथा मानसिक कारणोंसे भी अरुचि उत्पन्न होजातीहै ॥ ५६ ॥

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यान्मुखरसैःक्रमात्। वाताद्यैररुचिंजातांमानसींदोषदर्शनात् ॥ ५७ ॥ अरोचकात्सामवेगाद्दोषोत्क्लेशाद्भयादपि। छर्दिर्यासाविकाराणामन्येषामप्युपद्रवः ॥ ५८ ॥

मुखका रस कसैला हो तो वातजनित अरुचि जानना। तिक्त हो तो पित्तजनित और मीठा हो तो कफजनित अरुचि होतीहै। इसी प्रकार मानसिक अरुचि दोषोंके देखनेसे जानी जातीहै। अरुचि, आमवेग, दोषोंका उत्क्लेश और भय इनसे राजयक्ष्मा तथा अन्य विकारोंमें भी वमन उत्पन्न होतीहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सर्वस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्तुबलाबलम्।
परीक्ष्यावस्थितंवैद्यःशोषिणंसमुपाचरेत् ॥ ५९ ॥

सब प्रकारके यक्ष्मा त्रिदोषसे ही होतेहैं; इसलिये यक्ष्मामें दोषोंका बलाबल विचारकर वैद्यको शोषरोग (यक्ष्मा) वालेकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५९ ॥

प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासेस्वरक्षये ।
पार्श्वशूलेचविविधाःक्रियाःसाधारणीःशृणु ॥ ६० ॥

अब प्रतिश्याय, मस्तकपीडा, खांसी, श्वास, स्वरभंग और पार्श्वशूलकी अनेक प्रकार साधारण चिकित्साका श्रवण करो ॥ ६० ॥

प्रतिश्यायादि छः रोगोंकी चिकित्सा ।

पीनसेस्वेदमभ्यङ्गंधूममालेपनानिच । परिषेकावगाहांश्चयावकं वाट्यमेवच ॥ ६१ ॥ लवणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहोपसंहितान् । लावतित्तिरिदक्षाणांवर्तकानाञ्चकल्पयेत् ॥ ६२ ॥ सपिप्पलीकं सयवंसकुलत्थंसनागरम् । दाडिमामलकोपेतंस्निग्धमाजंरसंपिवे-त् ॥ ६३ ॥ तेनषड्विनिवर्तन्तेविकाराःपीनसादयः । मूलकानां कुलत्थानांयूषैर्वासूपकल्पितैः ॥ ६४ ॥ यवगोधूमशाल्यन्नैर्यथासा-त्म्यमुपाचरेत् ॥ ६५ ॥

प्रतिश्याय (जुकाम) में अभ्यंग, धूम्रपान, आलेपन, परिषेक और अवगाहन कराना हित है तथा, भुने जवोंका मण्ड, नमक, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंका पान कराना एवं घृतमें संस्कार कियेहुए लवा, तीतर, मुर्गा और वतकके मांसरसका प्रयोग करना हित है । तथा पीपल, यव, कुल्थी, सोंठ, अनार और आमलोंसे युक्तकर घीमें संस्कार कियाहुआ बकरेका मांसरस प्रयोग करावे । इससे प्रतिश्याय आदि छः उपद्रव दूर होतेहैं । अथवा सलजम और कुल्थीके यूषमें सिद्ध करके यव, गेहूं या शालीचावलोंका भात यथासात्म्य सेवन करावे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

पिबेत्प्रसादंवारुण्याजलंवापाञ्चमूलिकम् । धान्यनागरसिद्धंवातामलक्याथवाश्रृतम् ॥ ६६ ॥ पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेनचान्नानिक-ल्पयेत् । कृसरोत्कारिकामाषकुलत्थयवपायसैः ॥ ६७ ॥ सङ्कर-स्वेदविधिनाकण्ठंपार्श्वमुरःशिरः । स्वेदयेत्पत्रभङ्गैर्नशिरश्चपरिषे-चयेत् ॥ ६८ ॥ बलागुडूचीमधुकशृतैर्वावारिभिःसुखैः । वस्तम-त्स्यशिरोभिर्वानाडीस्वेदैःप्रयोजयेत् । कण्ठेशिरसिपार्श्वेचपयोभि-

वीसवातिकैः ॥ ६९ ॥ औदकानूपमांसानिसलिलंपाश्वमूलिकम् ।
सस्नेहंसारनालंवानाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ ७० ॥

वारुणीमण्ड, अथवा पंचमूलसे सिद्ध किया जल या धनियाँ और सोंठ मिलाकर पकाया जल अथवा भूमिआंवलासे सिद्ध किया जल या शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, मुधपर्णी इनसे सिद्धकिया जल पीनेको देना चाहिये । अथवा इन्ही जलोंमें सिद्ध कियेहुए अन्नका भोजन करावे । कृशरा (खिचडी), उत्कारिका (रोटी आदि), उडद, कुल्थी, यव, खीर इनसे संकरस्वेदविधि द्वारा कण्ठ, पसली, हृदय और शिरको स्वेदन करना चाहिये । या वातनाशक पत्रों (असगन्ध, एरण्ड) द्वारा स्वेदन करे । अथवा बला, गिलोय और मुलहटीसे सिद्ध कियेहुए सुखोष्ण जलसे परिषेचन करे । अथवा बकरे या मछलीका मस्तक डालकर पकायेहुए जलसे या वातनाशक द्रव्योंके क्वाथसे नाडीस्वेदविधि द्वारा कण्ठ, शिर और पसलियोंको स्वेदनकरे । अथवा जलसंचारी या अनूपसंचारी जीवोंके मांससे सिद्धकिये जल द्वारा या पंचमूलसे सिद्धकिये जल द्वारा अथवा स्नेहयुक्त कांजी द्वारा नाडीस्वेदविधिसे स्वेदन करे ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ । ६९ ॥ ७० ॥

जीवन्त्याःशतपुष्पायाबलायामधुकस्यच । वचायावेशवारस्य विदार्यामलकस्यच ॥ ७१ ॥ औदकानूपमांसानामुपनाहाश्चसंस्कृताः । शस्यन्तेचचतुःस्नेहाःशिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ॥ ७२ ॥

जीवन्ती, सौंफ, खरैटी, मुलैठी, वच, वेशवार, विदारीकंद, आँवला, जलजीवों और अनूपसचारी जीवोंका मांस चतुःस्नेह मिलाकर सिद्ध किया हुआ लेप शिर, पसली और कन्धोंकी पीडाको दूर करताहै अथवा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए चतुःस्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा) का मर्दन करना भी उपरोक्त गुण करताहै ॥ ७१ । ७२ ॥

शतपुष्पासमधुकंकुष्ठंतगरचन्दनम् ।
आलेपनंस्यात्सघृतंशिरःपार्श्वांसशूलनुत् ॥ ७३ ॥

सौंफ, मुलैठी, कूठ, तगर और चंदनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे शिर, पसली और कंधोंकी पीडा दूर होतीहै ॥ ७३ ॥

अन्य प्रयोग ।

बलारास्नातिलाःसर्पिर्मधुकंनीलमुत्पलम् । पलंकपादेवदारुचन्दनंकेशरंघृतम् ॥ ७४ ॥ वीराबलाविदारीचकृष्णगन्धापुनर्नवा ।

शतावरीपयस्याचकन्तृणंमधुकंघृतम् ॥ ७५ ॥ चत्वारएते श्लोकार्धैःप्रदेहाःपरिकीर्तिताः । शस्ताःसंसृष्टदोषाणांशिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ॥ ७६ ॥

१-बला, रासना, तिल, घी, मुलैठी और नीलकमल;२-गुग्गुल, देवदारु, चंदन, केशर और घी; ३-क्षीरकाकोली, बला, विदारीकंद, सुहांजना और पुनर्नवा; ४-शतावर, क्षीरकाकोली, शालपर्णी, मुलैठी और घी; यह आधे आधे श्लोकमें कहे हुए चार प्रकारके लेप शिर, पसली और कंधोंकी पीडाको दूर करनेमें उत्तम कहेहैं ॥ ७४ । ७५ । ७६ ॥

संशमनक्रिया ।

नावनंधूमदानानिस्नेहाश्चोत्तरभाक्तिकाः । तैलान्यभ्यङ्गयोगानिवस्तिकर्मतथापरम् ॥ ७७ ॥ जलौकालाबुशृङ्गैर्वाप्रदुष्टंव्यधनेनवा । शिरःपार्श्वांसशूलेषुरुधिरंतस्यनिर्हरेत् ॥ ७८ ॥

शिरशूल, अंस (कंधे) शूल और पार्श्व (पसली) शूलमें नस्य, धूमपान, भोजनोत्तर घृतपान, नारायणतेल आदि योग्य तैलोंकी मालिश और वस्तिकर्म यह परम हितकारक हैं। और जोंक, तुंबी, सिंगी और शिराविधन द्वारा रक्तनिकालनेसे भी शिर; पसली और कंधोंकी पीडा दूर होजातीहै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

प्रदेहःसघृतश्रेष्ठःपद्मकोशीरचन्दनैः । दूर्वामधुकमञ्जिष्ठाकेशरैर्वा घृताप्लुतैः ॥ ७९ ॥ प्रपुण्डरीकानिर्गुण्डीपद्मकेशरसुत्पलम् । कशेरुकापयस्याचससर्पिष्कंप्रलेपनम् ॥ ८० ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा । अभ्यङ्गःसर्पिषासेकःशस्तश्चसधुकाम्बुना ॥ ८१ ॥ माहेन्द्रेणसुशीतेनचन्दनादिशृतेनवा । परिषेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ॥ ८२ ॥

पद्माख, चंदन और खस, घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूब, मुलैठी मजीठ और केसरको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे या पंडयारेका छिलका, संभालूका छिलका, कमलकी केशर, नील कमल, कसेरू और क्षीरकाकोलीको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे मस्तक, पार्श्व और अंसोंकी पीडा दूर होतीहै । एवं चंदनादितैल अथवा सौ वार धोयेहुए घृतका अभ्यंग अथवा घृत या मुलैठीके जलका परिषेक या माहेन्द्र शीतल जल अथवा चंदनादिक्वाथका परिषेक करनेसे दाहयुक्त मस्तकपीडा शान्त होतीहै। इस प्रकार संशमनी क्रिया कही गई ॥७९।८०।८१।८२॥

दोषाधिक्य में संशोधनविधि ।

दोषाधिकानांवमनंशस्यतेसविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानांसस्नेहंयत्नकर्षणम् ॥ ८३ ॥

जिस यक्ष्मारोगीका मांस और बल क्षीण न हुआ हो उसको दोषोंकी प्रबलतामें स्नेह और स्वेदन कराके स्निग्ध, वमन, विरेचन कराना चाहिये। परन्तु वह कृश न होने पावे ॥ ८३ ॥

शोषीमुञ्चतिगात्राणिपुरीषस्रंसनादपि । अवलापेक्षिणींमात्रांकिंपुनर्योविरिच्यते ॥ योगान्संशुद्धकोष्ठानांकासेश्वासेस्वरक्षये । शिरःपार्श्वांसशूलेषुसिद्धानेतान्प्रयोजयेत् ॥ ८४ ॥ वलाविदारिगन्धाद्यैर्विदार्यामधुकेनवा । सिद्धंसलवणंसर्पिर्नस्यंस्यात्स्वर्यमुत्तमम् ॥ ८५ ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकंपिप्पल्योबृहतीवला । क्षीरं सर्पिश्चतत्सिद्धंस्वर्यंस्यान्नावनंपरम् ॥ ८६ ॥ शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासनिवर्हणम् । प्रयुज्यमानंवहुशोघृतंचोत्तरभाक्तिकम् ॥ ॥ ८७ ॥ दशमूलेनपयसासिद्धंमांसरसेनच । वलागर्भंघृतंसद्यो रोगानेतान्प्रवाधते ॥ ८८ ॥ भक्तस्योपरिमध्येवायथाग्निप्रविचारितम् । रास्नाघृतंवासक्षीरंसक्षीरंवावलाघृतम् ॥ ८९ ॥

शोषरोगीका मल निकलजानेसे उसका शरीर ही नष्ट होजाताहै इसलिये उसके बलके अनुसार ही विचारपूर्वक मृदु शोधन कराना चाहिये । कोष्ठ शुद्ध होजानेपर रोगीको यदि खांसी श्वास, स्वरभेद, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूल बाकी रहजाय तो नीचे लिखी औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये । जैसे बला, शालपर्ण्यादिगण, विदारीकंद, मुलैठी इनसे सिद्ध कियेहुए सेंधानमकयुक्त घृतकी नस्य देना स्वरभंगको दूर करनेमें उत्तम है । पुण्डचारा, मुलैठी, पीपल, बडी कटेरी, बला और दूध इनके साथ सिद्ध कियेहुए घृतकी नस्य देना स्वरको उत्तम करताहै । अनेक योग्य द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ घृत भोजनके अनन्तर विधिवत् पानकरनेसे मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी और श्वास सब दूर होतेहैं । एवं दशमूल, दूध, मांसरस और बलाके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत उपरोक्त रोगोंको शीघ्र दूर करताहै । तथा भोजन करनेके अनन्तर अथवा भोजनके मध्यमें जठराग्निके बलानुसार दूध और रासनाघृत अथवा दूध और बलाघृत पान करनेसे उपरोक्त सब उपद्रव दूर होजातेहैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

स्नेहवर्णन ।

लेहान्कासापहान्स्वर्यान्श्वासहिक्कानिबर्हणान् ।
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नान्स्नेहांश्चातःपरंशृणु ॥ ९० ॥

अब हम खांसीको दूर करनेवाले, स्वरको बढानेवाले तथा श्वास, हिचकी, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल और अंसशूलको दूर करनेवाले . स्नेहोंका वर्णन करतेहैं सो सुनो ॥ ९० ॥

घृतंखर्जूरमृद्वीकाशर्कराक्षौद्रसंयुतम् ।
सपिप्पलीकंवैस्वर्यंकासश्वासनिबर्हणम् ॥ ९१ ॥

घी, खजूर, मुनक्का, मिसरी, शहद और पीपल इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभंग, खांसी और श्वासरोग नष्ट होताहै ॥ ९१ ॥

दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् । सपिप्पलीकंसक्षौद्रन्तत्परंस्वरबोधनम् ॥ ९२ ॥ शिरःपार्श्वांसशूलघ्नंकासश्वासज्वरापहम् । पञ्चभिःपञ्चमूलैर्वाशृताद्यदुदियाद्घृतम् ॥ ९३ ॥ पञ्चानांपञ्चमूलानांरसेक्षीरचतुर्गुणे । सिद्धंसर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणःसप्तकंबलम् ९४

पांचों पंचमूल मिलाकर पकायेहुए दूधके मक्खनमें पीपल और शहत मिलाकर चाटनेसे स्वरभंग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, अंसशूल, खांसी, श्वास और ज्वर यह सब दूर होतेहैं । एवं पांचों पंचमूलोंके क्वाथ और कल्क तथा चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत राजयक्ष्माके उपरोक्त सात उपद्रवोंको जीतलेताहै ॥९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

खर्जूरंपिप्पलीद्राक्षापथ्याशृङ्गीदुरालभा । त्रिफलापिप्पलीमुस्तंशृंगाटीगुडशर्करा ॥ ९५ ॥ वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करागुडः । नागरंचित्रकोलाजाःपिप्पल्यामलकंगुडः ॥ ९६ ॥ श्लोकार्द्धेविहितानेताँल्लिह्यान्नामधुसर्पिषा । कासश्वासापहान्स्वर्यान्पार्श्वशूलापहांस्तथा ॥ ९७ ॥

१ खजूर (छुहारा) पीपल, मुनक्का, हरड, काकडासिंगी और जवासा । २ त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, सिंघाडा, और गुडशर्करा । ३ क्षीरकाकोली, कचूर, पोहकरमूल, तुलसी और गुडशर्करा । ४ सोंठ, चित्रक, धानकी खील, पीपल, आँवला, और गुड । इन आधे आधे श्लोकमें कहेहुए चार योगोंको घृत और शहद मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, स्वरभंग, पार्श्वशूल यह सब दूर होतेहैं ॥९५॥९६॥९७॥

सितोपलादि अवलेह ।

सितोपलांतुगाक्षीरींपिप्पलींबहुलांत्वचम् । अन्त्यादूर्ध्वांद्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ ९८ ॥ चूर्णितंप्राशयेद्वाततृश्वासकासकफातुरम् । सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निंपार्श्वशूलिनम् ॥ ९९ ॥

मिसरी आठ भाग, वंशलोचन चार भाग, पीपल दो भाग, इलायचीके बीज एक भाग, दालचीनी आधा भाग इन सबका चूर्ण करके शहद और घृतमें मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, कफ, जीभकी जडता, अरुचि, मंदाग्नि और पार्श्वशूल यह सब दूर होतेहैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

हस्तपादांगदाहेषुज्वरेरक्तेतथोर्द्ध्वगे ।
वासासर्पिःशतावर्याःसिद्धंवापरमंहितम् ॥ १०० ॥

हाथ पांव, और शरीरकी दाह निवृत्तिके लिये तथा ज्वरमें और ऊर्द्धगामी रक्तपित्तमें वासाघृत अथवा शतावरीघृतका सेवन करना परम हितकारी है ॥ १०० ॥

दुरालभाद्यघृत ।

दुरालभांश्वदंष्ट्राश्चचतस्रःपर्णिनीर्बलाम् । भागान्पलोन्मितान्कृत्वा पलंपर्पटकस्यच ॥ १०१ ॥ पचेद्दशगुणेतोयेदशभागावशेषिते । रसेसुपूतेद्रव्याणामेषांकल्कान्समावपेत् ॥ १०२ ॥ शठ्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः । तामलक्याःकिराताानांतिक्तस्यकुटजस्यच ॥ १०३ ॥ फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्षसम्मितान् । ततस्तेनघृतप्रस्थंक्षीराद्विगुणितंपचेत् ॥ १०४ ॥ ज्वरंदाहंभ्रमं कासमंसपार्श्वशिरोरुजम् । तृष्णाच्छर्दिरतीसारमेतान्सर्पिरपोहति ॥ १०५ ॥

जवासा, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, बला और पापडा यह एक एक पल लेकर दशगुने जलमें औटावे । दशवां भाग शेष रहनेपर नीचे उतारकर छान ले फिर इसमें पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूमिऑवला, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और सारिवा इनको एक एक कर्ष लेकर कूट छानकर मिलावे । फिर इसमें १ प्रस्थ घी २ प्रस्थ दूध मिलाकर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवनसे ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, प्यास, वमन और अतिसार यह सब दूर होतेहै ॥ १०१-१०५ ॥

जीवन्त्यादि घृत ।

जीवन्तींमधुकंद्राक्षांफलानिकुटजस्यच । शठींपुष्करमूलञ्चव्याघ्रीं गोक्षुरकम्वलाम् ॥१०६॥ नीलोत्पलंतामलकींत्रायमाणांदुरालभाम् । पिप्पलीञ्चसमंपिष्ट्वाघृतंवैद्योविपाचयेत् ॥ १०७ ॥ एतद्व्याधिसमूहस्यसमुत्थंराजयक्ष्मणः । रूपमेकादशविधंसर्पिरेकंव्यपोहति ॥ १०८ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, गोखरू, वला, भूमिआँवला, नीलोफर, त्रायमाण, जवासा और पीपल, इन सबको समान भाग ले कल्क बनावे । इस कल्क और चौगुने दूधसे सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे व्याधिसमूहरूप राजयक्ष्माके ग्यारह उपद्रव नष्ट होजातेहैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

वलाद्यघृत ।

वलांस्थिरांपृश्निपर्णींबृहतींसनिदिग्धिकाम् । साधयित्वारसेतस्मिन्पयोगव्यंसनागरम् ॥ १०९ ॥ द्राक्षाखर्जूरसर्पिर्भिःपिप्पल्याचशृतंसह । सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्वर्यञ्चैतत्प्रयोजयेत् ॥ ११० ॥

वला, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी और दोनों कटेली इनका काथ, घृतसे चौगुना दूध, मुनक्का, खजूर, सोंठ, पीपल इनका कल्क बनाकर घृतपाक विधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको शहत मिलाकर सेवन करनेसे ज्वर, खाँसी और स्वरभग यह सब दूर होजातेहैं ॥ १०९ ॥ ११० ॥

यक्ष्मामें अन्य उपचार ।

आजस्यपयसश्चैवप्रयोगोजांगलारसाः । यूषार्थेचणकामुद्गामकुष्ठाश्चोपकल्पिताः॥१११॥ ज्वराणांशमनेयोगःपूर्वमुक्तःक्रियाविधिः। यक्ष्मिणांज्वरदाहेषुससर्पिष्कः प्रशस्यते ॥ ११२ ॥

यक्ष्मारोगमें वकरीका दूध और जंगली जीवोंका मांसरस हितकारी होताहै । तथा चना, मूंग और मोठ यह यूषके लिये हित हैं । एवं जो ज्वरनाशक प्रयोग चिकित्सा तथा घृत आदि पहले कहचुके हैं, वह सब भी यक्ष्मारोगियोंके ज्वर और दाहकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करने चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

कफप्रसेकेवलवान्श्लैष्मिकःछर्दयेन्नरः । पयसाफलयुक्तेनमधुरेणरसेनवा ॥११३॥ सर्पिष्मत्यायवाग्वावावमनीयोपसिद्धया । वमितो-

द्याश्चलघ्वन्नमन्नकालेसदीपनम्॥११४॥यवगोधूममाध्वीकशीधुवरि-
ष्टसुरासवान्। जांगलानिचशूल्यानिसेवमानःकफञ्जयेत् ॥ ११५ ॥

कफयुक्त बलवान् रोगीको कफके प्रसेकमें मैनफलका चूर्ण मिलाकर दूध अथवा मैनफलयुक्त मधुररस या वमनकारक द्रव्योंसे सिद्ध की हुई घृतयुक्त यवागू पिलाकर वमन कराना चाहिये। फिर वमनके अनंतर क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन करावे। तथा जव, गेहूं, माध्वीक, सीधु, अरिष्ट, सुरा, आसव, शूलपर भुनाहुआ जंगली जीवोंका मांस सेवन करावे तो कफ शान्त होताहै ॥ ११३ ॥११४॥ ११५ ॥

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुःश्लेष्माणमस्यति । कफप्रसेकन्तंविद्वा-
न्स्निग्धोष्णेनैवनिर्जयेत् ॥ ११६ ॥ क्रियाकफप्रसेकेयावम्यांसैवप्र-
शस्यते । हृद्यानिचान्नपानानिवातघ्नानिलघूनिच ॥ ११७ ॥

राजयक्ष्मा रोगीको जब कफ अधिक निकलने लगताहै तब वायु ही उस कफको उदीर्णकर निकालताहै इसलिये उस समय स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफको जीतना चाहिये। जो चिकित्सा कफके प्रसेक (गिरने) की कीजातीहै वही चिकित्सा वमनकी शान्तिके लिये भी हितकारी है। तथा वमनकी निवृत्तिके लिये हृद्य, वातनाशक और हलके अन्नपानका प्रयोग करना हित होताहै ॥११६॥११७॥

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते । प्राप्नोत्यास्यस्यवैरस्यं
नचान्नमभिनन्दति ॥ ११८ ॥ तस्याग्निदीपनाद्योगानतीसारनि-
बर्हणान् । वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिप्रतिबाधकान् ॥ ११९ ॥

जठराग्निके उपहत होनेसेही प्रायः पिच्छिल (लहेसदार, गाढा, गिलगिला) दस्त आताहै तथा मुखका स्वाद बिगडजाताहै और अन्नमें अरुचि होतीहै इसलिये उसको अग्निदीपनकर्त्ता, अतिसारनाशक, मुखशोधक और रुचिकारक योगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

अतिसार नाशक योग।

सनागरानिन्द्रियवान्पिवेद्वातण्डुलाम्बुना । सिद्धांयवागूजीर्णेच
चांगेरीतक्रदाडिमैः ॥ १२० ॥ पाठाम्बिल्वंयवानींचपातव्यंतक्र-
संयुतम्। दुरालभांशृंगवेरंपाठाञ्चसुरयासह ॥१२१॥ जाम्ब्वाम्र-
बिल्वमध्यञ्चसकपित्थंसनागरम्। पेयामण्डेनपातव्यमतीसार-

निवृत्तये ॥ १२२ ॥ एतानेवचयोगांस्त्रीन्पाठादीन्कारयेत्खडान् । ससूपधान्यान्सस्नेहान्साम्लान्संग्रहणान्परान् ॥ १२३ ॥

राजयक्ष्मामें अतिसार हो तो सोंठ और इन्द्रजवोंके चूर्णको खीलोंके धोवनके साथ पान करावें । औषध पचनेपर चांगेरी (अम्ललोनिया) तक्र और अनारके रसके साथ सिद्ध की हुई यवागू पिलाना चाहिये । अथवा पाठा, बेलगिरि, अजवायन इनके क्वाथको तक्रमें मिलाकर पिलावे । या जवासा, सोंठ, पाठा इनके क्वाथको मद्यके साथ पिलावे । अथवा जामुन और आमकी गुठली, बेलगिरि, कैंथ, सोंठ इनके क्वाथको पेयाके साथ अथवा मण्डके साथ पिलावे । अथवा इन तीनों अतिसारनाशक योगोंका सूपधान्यके साथ षड्यूप बनाकर घी और अनारकी खटाई मिला सेवन करावे तो यह अत्यंत संग्राही है ॥ १२० ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनांमृणालीकृष्णगन्धयोः ।
श्रीपर्ण्यामदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्लवान् ॥ १२४ ॥
चांगेर्य्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् ।
खडानदधिसरोपेतान् ससर्पिष्कान्सदाडिमान् ॥ १२५॥

वेतस, अर्जुन, जामुनकी गुठली, कमल, सुहांजना, कुम्भेर, मल्लिका (मालती) और जूहीके पत्र, अम्ललोनिया, चूका, अनारका रस, दूधी, दही और घृत डालकर यूप बना सेवन करे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

मांसानांलघुपाकानांरसाःसांग्राहिकैर्युताः । व्यंजनार्थेप्रशस्यन्ते भोज्यार्थेरक्तशालयः॥ १२६ ॥ स्थिरादिपंचमूलेनपानेशस्तंशृतञ्जलम् ॥ १२७ ॥ तक्रंसुरांसचूक्रीकादाडिमस्याथवारसः। दीपनंग्राहिनिर्दिष्टंभेषजंभिन्नवर्चसे ॥ १२८ ॥

यक्ष्मारोगियोंके अतिसारमें व्यंजनके लिये संग्राहक द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ लघुपाकी मांसरस और लाल शालीचावलोंका भोजन प्रयुक्त करे । तथा शालपर्णी आदि पंचमूलसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे । अतिसारमें तक्र,मद्य, चूका और अनारका रस संदीपनकर्त्ता तथा संग्राही होताहै ॥१२६॥१२७॥१२८॥

१–'ससूपधान्य, का अर्थ सूपधान्य " मूग, मोठ, मसूर " आदि जानना, गगाधरने चरककी संस्कृतटीकामें 'चुक्रधान्यं' ऐसा पाठ लिखकर खट्टा चूक, और धनिया,यह अर्थ किया है यहभी ठीक है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग।

परंमुखस्यवैरस्यनाशनंरोचनंशृणु । द्वौकालौदन्तपवनंभक्षयेन्मुखधावनैः ॥ १२९ ॥ तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान् । पिबेद्धूमन्ततोभृष्टमद्यादीपनरोचनम् । भेषजंपानमन्नञ्चहितमिष्टोपकल्पितम् ॥ १३० ॥

अब मुखकी विरसताको दूर करनेवाले प्रयोगोंको सुनो प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय मुखशोधक दाँतन करना, मुखमें जलभर कुल्ले करना और मुखशोधक द्रव्योंको पानीमें घोलकर मुखमें रखना चाहिये । फिर धूम्रपान, दीपन और रुचिकारक द्रव्योंका सेवन करना हित है । एवं जिसको चित्त चाहताहो वह अन्नपान भी मुखकी विरसताको दूर करताहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥

मुखधावनपांचप्रयोग।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानिमुस्तंसामलकन्त्वचम् । त्वचोदार्व्योयवानीचपिप्पल्यस्तेजवत्यपि ॥ १३१ ॥ यवानीतिन्तिडीकञ्चपञ्चैतेमुखधावनाः ॥ श्लोकपादेषुविदिताःशोधनामुखरोचनाः ॥ १३२ ॥ गुलिकांधारयेदास्येचूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम् । एषामालोडितानांवा धारयेत्कवलग्रहान् ॥ १३३ ॥

१ दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां,अथवा२ नागरमोथा, केवटी, मोथा, आँवला, दालचीनी । अथवा ३ दालचीनी, दारुहलदी और अजवायन; ४ या पीपल और तेजवती । ५ अथवा अजवायन और तिंतिडीकका चूर्ण । यह चौथाई २ श्लोकमें कहे हुए चूर्णको दांत और मुखमें मलना, मुखको शुद्ध करताहै । और रुचिवर्द्धक है अथवा इनकी गोली बना मुखमें रखनी चाहिये। अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करै अथवा जलमें मिला थोडी २ देर मुखमें रख कुल्ले करे ॥ १३१ ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

सुरामाध्वीकशीधूनांतैलस्यमधुसर्पिषोः ।
कवलान्धारयेदिष्टान्क्षीरस्येक्षुरसस्यच ॥ १३४ ॥

सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईखके रसको मुखमें धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होतीहै ॥ १३४ ॥

यवानीषाडव ।

यवानीतिन्तिडीकञ्चनागरंसाम्लवेतसम् । दाडिमम्बदरंचाम्लं

कार्षिकानुपकल्पयेत् ॥ १३५ ॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गश्चार्द्धकार्षिकम् । पिप्पलीनांशतश्चैकंद्वेशतेमरिचस्यच ॥ १३६ ॥ शर्करायाश्चचत्वारिपलान्येकलचूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १३७॥ हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नंविबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरंग्राहिग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १३८ ॥

अजवायन, तितिडीक, सोंठ, अम्लवेत, अनार, वेर, यह प्रत्येक एक एक कर्ष । धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी यह आधा २ कर्ष, पीपल १०० काली मिरच २०० और शर्करा चार पल इन सबका चूर्ण बनालेवे । यह चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजनमें रुचिकारक, हृद्रोग, प्लीहा, और पार्श्वशूलको दूर करनेवाला तथा विबन्ध और अफारेको दूर करनेवालाहै । तथा खांसी, श्वास, ग्रहणी और बवासीरके विकारोंको दूर करनेवाला है तथा संग्राही है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

तालीशपत्रादि गुटिका ।

तालीशपत्रंमरिचंनागरंपिप्पलीशुभा । यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्वगेलेचार्धभागिके ॥ १३९ ॥ पिप्पल्यष्टगुणांचात्रप्रदेयासितशर्करा । कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णंदीपनंपरम् ॥ १४० ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोषप्लीहज्वरापहम् । वम्यतीसारशूलघ्नमूर्द्ध्ववातानुलोमनम् ॥१४१॥ कल्पयेद्गुटिकाश्चैवचूर्णंपक्त्वासितोपलैः । गुटिकाह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराःस्मृताः ॥ १४२ ॥

एक भाग तालीशपत्र, दो भाग काली मिरच, तीन भाग सोंठ, चार भाग पीपल और पांच भाग वंशलोचन; दालचीनी और इलायची आधा आधा भाग लेवे और पीपलसे अठगुनी मिसरी डालकर चूर्ण बनावे । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचिको हरताहै । अत्यंत अग्निसंदीपन है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष, प्लीहा और ज्वरको दूर करताहै । वमन, अतिसार और शूलको नष्ट करताहै । तथा ऊर्ध्ववातको अनुलोमन करताहै । अग्निके संस्कारसे मिश्रीकी चासनीमें पूर्वोक्त चूर्णकी बनाई हुई गोलियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होतीहैं १३९।१४०।१४१।१४२॥

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवत् । दद्यान्मांसादमांसानि

बृंहणानिविशेषतः ॥ १४३ ॥ शोषिणेबर्हिणंदद्याद्बर्हिशब्देनचापरान् । गृध्रानुलूकान्चाषांश्चविधिवत्सूपकल्पितान् ॥ १४४ ॥ काकांस्तित्तिरिशब्देनमत्स्यशब्देनचोरगान् । भृष्टान्मत्स्यान्त्रशब्देनदद्याद्गण्डूपदानपि ॥ १४५ ॥ लोमशान्स्थूलनकुलान् विडालांश्चोपकल्पितान् । शृगालशावांश्चभिषक्शशशब्देनदापयेत् ॥ १४६ ॥ सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्चव्याघ्रानेवंविधांस्तथा । मांसादान्मृगशब्देनदद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ १४७ ॥ गजखड्गितुरङ्गाणांवेशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्माहिषशब्देनमांसंमांसाभिवृद्धये ॥ १४८ ॥

जिस यक्ष्मारोगीका मांस क्षीण होगयाहो उसको मांसाहारी जीवोंका मांस अनेक प्रकार कल्पना कर देना चाहिये । क्योंकि यह अत्यंत बृंहण होताहै । इस रोगीको मोरका मांस अथवा मोरसे अन्य गिद्ध, घुग्घू और चाषपक्षीका मांस अनेक तरहसे बनाकर सेवन करावे । तीतरके नामसे कौएका मांस, बर्मीके नामसे सिर और पूंछके विना सर्पका मांस, मछलीके अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोशके मांसके नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलका मांस, बिल्ली वा शृगालके बच्चेका मांस अनेक रीतिसे कल्पनाकरके देवे । हिरनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोझ, बर्वर तथा ऐसे ही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस, मांसकी वृद्धिके लिये देवे । भैंसाके मांसके नामसे हाथी, घोडे वा गेंडेके मांसका शोरुआ बनाकर देवे । यह सब मांस मांसके बढानेवाले हैं ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

द्विजानामोषधीसिद्धंघृतंमांसविवृद्धये ।
सितायुक्तंप्रदातव्यंगव्येनपयसाभृशम् ॥ १४९ ॥

द्विजातियोंको मांसके बदले बृंहण औषधियोंसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिसरी मिलाकर गोदुग्धके साथ पिलावे ॥ १४९ ॥

मांसेनोपचिताङ्गानांमांसंमांसकरंपरम् । तीक्ष्णोष्णोलघुवाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम् ॥ १५० ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनिष्टानिप्रयोजयेत् । तेपूपधासुखंभोक्तुंतथाशक्यानितानिहि ॥ १५१ ॥ जानञ्जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धंवापुनरुल्लिखेत् । तस्माच्छद्मोपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥ १५२ ॥

मांससे पुष्टहुए मांसाहारी जीवोंका मांस मांसको अत्यंत-बढाताहै । यक्ष्मारोगमें मृग और पक्षियोंका मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होनेसे अत्यंत हितकारी होताहै। अनभ्यासके कारण जो सर्प आदि अनिष्ट मांसोंका प्रयोग कियाजाताहै उनमें युक्ति पूर्वक प्रशंसा आदिकर रुचिको उत्पन्न करके प्रयोग करे। रोगी जानकर घृणा प्रगट करताहुआ यदि खाँसी लेताहै तो वमन कर देताहै। इसलिये इन मांसोंको छलसे सिद्धकर मांस सात्म्य मनुष्यको शोषके निवृत्तिके लिये देवे ॥ १५०–१५२ ॥

दोषपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान ।

बर्हितित्तिरिदक्षाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः । खरगोमहिषाणाञ्चमांसंमांसकरंपरम् ॥ १५३ ॥ योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामान्नपानिके। तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसानिशोषिणे ॥ १५४ ॥ प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचारिणः । आहारार्थेप्रदातव्यामात्रयावातशोषिणे ॥ १५५ ॥ प्रतुदाविष्किराश्चैवधान्वजाश्वमृगद्विजाः ॥ कफपित्तपरीतानांप्रयोज्याःशोषरोगिणाम् ॥ १५६ ॥ विधिवत्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृदूनिच । रसवन्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥ १५७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊंट, गधा, खर्गोश और भैंसा इनका मांस अत्यंत मांसवर्द्धक है। जो अन्नपानाध्यायमें आठ प्रकारके मांस कथन कियेहैं उन मांसोंको भी यक्ष्मारोगीको दोषबलानुसार सेवन करना चाहिये । यथा वातशोषी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप, देशज, जलज और जलचर पशुपक्षियोंका मांस आहारार्थ देना चाहिये। कफपित्त, शोषरोगियोंको प्रतुद, विष्किर और धन्वज पशुपक्षियोंका मांस देना हित है। इन संपूर्ण मांसोंको विधिवत् सूप (शोरुआ) सिद्ध कराके मनोज्ञ, मृदु, रसीले और सुगंधित द्रव्य डालकर देवे ॥१५३–१५७॥

मांसमेवाश्नतःशोषेमाध्वीकंपिबतोऽपिच । नियतस्याल्पचित्तस्य चिरंकायेनतिष्ठति ॥ १५८ ॥ वारुणीमण्डभक्तस्यबर्हिर्मार्जनसेविनः । अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम् ॥ १५९ ॥ प्रसन्नां-वारुणींशीधुमरिष्टानासवान्मधु । यथेष्टमनुपानार्थंपिबेन्मांसानि भक्षयेत् ॥ १६० ॥

विधिवत् मांस मद्यके सेवन करनेवाले जितात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत

दिन नहीं रहसकता है । जो वारुणीमण्डको पीताहै और सूत्रस्थानोक्त स्नानादि बहिर्मार्जन करताहै तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगोंको नहीं रोकता उस मनुष्यके शरीरमें यक्ष्मा प्रवेश नही कर सकता । यक्ष्मारोगमें प्रसन्न, वारुणी, शीधु, अरिष्ट, आसव और मधु इनका यथेष्ट पान करना और यथेष्ट मांसभक्षण करना हितकारक है । (जो मांस नहीं खाते उनको मक्खन, घृत, आसव, दूध आदि पदार्थ सेवन करना चाहिये) ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

यक्ष्मामें मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णवैशद्यसूक्ष्मत्वात्स्रोतसांमुखम् । प्रमथ्यविवृणोत्याशु तन्मोक्षात्सप्तधातवः । पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोषः प्रशाम्यति ॥ १६१ ॥

मद्य-तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्म होनेसे स्रोतोंके मुखको बलसे मथनकर खोलदेतीहै । और उनके खुलनेसे सातों धातुएं पुष्ट होने लगतीहैं और धातुओंके पुष्ट होनेसे शोषरोग शीघ्र शान्त होजाताहै ॥ १६१ ॥

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरसेसिद्धंसर्पिःप्रयोजयेत् । सक्षौद्रंपयसासिद्धंसर्पिर्दशगुणेनवा ॥ १६२ ॥ सिद्धंमधुकरैर्द्रव्यैर्दशमूलकषायिकैः । क्षीरमांसरसोपेतंघृतंशोषहरंपरम् ॥१६३॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । सयावशूकैःसक्षीरैःस्रोतसांशोधनंघृतम्॥१६४॥ रास्नाबालागोक्षुरकंस्थिरावर्षान्तसाधितम् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसक्षीरंशोषनुद्घृतम् ॥ १६५ ॥ यवाग्वावापिवेन्मात्रांलिह्याद्वामधुनासह । सिद्धानांसर्पिषामेषामद्यादन्नेनवासह ॥१६६॥ शुष्यतामेषनिर्दिष्टोविधिराभ्यवहारिकः । बहिःस्पर्शनमाश्रित्यवक्ष्यतेऽतःपरंविधिः ॥ १६७ ॥

शोषरोगीको मांस खानेवाले जीवोंके मांसरसमें सिद्ध कियाहुआ घृत पिलावे । अथवा दशगुने दूधमें घृत सिद्ध करके शहतके साथ सेवन करावे । अथवा मधुरगणोंकी औषधियों और दशमूलके क्वाथमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमे घृतको सिद्ध करे । यह घृत शोषनाशक परम उत्तम प्रयोग है । अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, जवाखार और दूध इनसे सिद्ध किये हुए घृतका सेवन करानेसे

स्रोतोंका मुख शुद्ध होजाताहै । अथवा रास्ना, खरैंटी, गोखरु, शालिपर्णी और पुनर्नवाके क्काथमें जीवन्ती, पीपल, भारंगी, और दूध मिला घृतको सिद्धकरे । यह घृत शोपरोगको नष्ट करनेवाला है । ऊपर कहेहुए घृतोंको यवागूमें मिलाकर पीना अथवा शहतमें मिलाकर चाटना अथवा भोजनमें सेवन करना शोपरोगको दूर करताहै । शोपरोगीके लिये यह आहार विधि कहीहै । अब वहिःस्पर्शन संबंधी विधिका कथन करतेहैं ॥ १६२–१६७ ॥

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीरोऽम्बुकोष्ठतंस्वभ्यक्तमवगाहयेत् । स्रोतोविवन्धमोक्षार्थं वलपुष्ट्यर्थमेववा ॥१६८॥ उत्तीर्णमिश्रकैःस्नेहैःपुनरुक्तैःसुखाकरैः । मृद्नीयात्सुखमासीनंसुखंचाच्छादयेन्नरम् ॥१६९॥

रोगीके शरीरपर तैलमर्दन करके स्नेहकोठी अथवा दूध या जलकी कोठीमें विठा ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा वल पुष्टि होतीहै । कोठीमें अवगाहनके अनन्तर रोगीको आरामसे विठाकर पूर्वोक्त मिश्रस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मर्दनकर मनुष्यको उत्तम वस्त्रसे ढक देवे ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

उद्वर्त्तनविधि ।

जीवन्तींशतवीर्य्यांश्चविकसांसपुनर्नवाम् । अश्वगन्धामपामार्गंतर्कारींमधुकंवलाम् ॥ १७० ॥ विदारींसर्षपंकुष्ठंतण्डुलानतसीफलम् । माषांस्तिलांश्चकिण्वञ्चसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ १७१ ॥ त्रिगुणंयवचूर्णेनदध्नायुक्तंसमाक्षिकम् । एतदुत्सादनंकार्य्यंपुष्टिवर्णवलप्रदम् ॥ १७२ ॥

जीवन्ती, शतवीर्य्या, शतावर या सफेद दूर्वा, मजीठ, सोंठ, असगंध, अपामार्ग, जैतवृक्षकी छाल, मुलैठी, खरैंटी, विदारीकंद, सरसों, कूठ, चावल, अलसी, उडद, तिल और सुराबीज इन सबको पीसकर इसमें तीनगुना जौका चूर्ण, तथा दही और शहत मिलाकर उवटन करे । इस उद्वर्त्तनसे वल, वर्ण और पुष्टि वढती है ॥ १७० ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

गौरसर्षपकल्केनगन्धैश्चापिसुगन्धिभिः । स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयौषधैःशृतैः ॥ १७३ ॥ गन्धैःसमाल्यैर्वासोभिर्भूपणैश्चविभूषितः । स्पृश्यान्संस्पृश्यसंपूज्यदेवताःसभिषग्द्विजान् ॥ १७४ ॥

इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभोजनम् । इष्टमिष्टैरुपहितंसुखमद्या-त्सुखप्रदम् ॥ १७५ ॥

सफेद सरसोंके कल्क, और सुगंधित द्रव्योंको मलकर जीवनीय गणोक्त औषधियोंके क्वाथसे ऋतुके अनुसार सुखदायक स्नान करना चाहिये। फिर सुगंध लगाकर फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र और आभूषण धारण करे, तथा मंगलद्रव्योंका स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करे फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ प्रिय, रस, वर्ण और स्पर्श और गंधसे युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करना चाहिये॥१७३-१७५॥

पथ्यतम भोजन।

समातीतानिधान्यानिकल्पनीयानिशुष्यताम् ।
लघूनिहीनवीर्य्याणितानिपथ्यतमानिहि ॥ १७६ ॥

शोषरोगियोंके लिये एक वरसके पुराने चावलोंका सेवन कराना हलका और हीन वीर्य होनेके कारण परम पथ्य होताहै ॥ १७६ ॥

यक्ष्मामें अन्य पथ्य।

यच्चोपदेक्ष्यतेपथ्यंक्षतक्षीणचिकित्सिते ।
यक्ष्मिणस्तत्प्रयोक्तव्यंवलमांसाभिवृद्धये ॥ १७७ ॥

तथा क्षतक्षीण चिकित्सामें जो पथ्य कहेंगे वह सब वल और मांस बढानेके लिये यक्ष्मा रोगीको देने चाहिये ॥ १७७ ॥

यक्ष्मामें अन्य उपचार।

अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः । वस्तिभिःक्षीरसर्पिर्भि-र्मांसैर्मांसरसोदनैः ॥ १७८ ॥ इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानांगन्धानामुपसेव-नैः । यथर्तुविहितैःस्नानैर्वासोभिरहतैः प्रियैः ॥१७९॥ सुहृदांरम-णीयानांप्रमदानांचदर्शनैः । गीतवादित्रशब्दैश्चप्रियश्रुतिभिरेव-च ॥ १८० ॥ हर्षणाश्वासनैर्नित्यंगुरूणांसमुपासनैः । ब्रह्मचर्येण दानेनतपसादेवतार्चनैः ॥ १८१ ॥ सत्येनांचारयोगेनमङ्गलैरवि-हिंसया । वैद्यविप्रार्चनाच्चैवरोगराजोनिवर्त्तते ॥ १८२ ॥

योग्य तैलकी मालिश करना, उबटन मलना, स्नान, अवगाहन, मार्जन, वस्तिकर्म, घृत, दुग्ध, और मांससेवन, मांसके अन्न खाना। इष्ट मद्य पीना, मनोहर गंधोंको सूंघना, ऋतु ऋतुके अनुसार जलोंसे स्नान करना, नवीन और प्यारे

वस्त्रोंको धारण करना, इष्टमित्रोंसे मिलना और सुंदर स्त्रियोंका देखना, गीत वाजोंके शब्दों तथा प्यारी वातोंका सुनना, हर्ष और आश्वासनदायक वातोंका सुनना गुरुजनोंकी नित्यसेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप और देवतार्चन नियमोंका पालन करना, सत्यव्रत पालन, मंगलाचरण और अहिंसा, वैद्य और विप्रोंका पूजन इनके सेवनसे रोगराज यक्ष्मा दूर होजाताहै ॥ १७८॥१७९॥१८०॥१८१॥१८२ ॥

प्रयुक्तयायया चेष्टया राजयक्ष्मा पुराजितः ।
तांवेदविहितामिंष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत्॥ १८३ ॥

प्राचीन कालमें जिसयज्ञके करनेसे यह रोग दूर किया गया था उस वेदोक्त यज्ञको आरोग्य प्राप्तिके लिये करना चाहिये ॥ १८३ ॥

अध्यायका उपसंहार।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिप्राग्रूपंरूपसंग्रहः । समासव्यासतश्चोक्तंभेपजंराजयक्ष्मणः ॥ १८४ ॥ नामहेतुरसाध्यंचसाध्यत्वंकृच्छ्रसाध्यता । इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते ॥ १८५ ॥

इति चरक० चि०राजयक्ष्मचिकित्सितंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस राजयक्ष्म चिकित्सित अध्यायमें राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप और औषधियां संक्षेप तथा विस्तारसे वर्णन कीगई हैं । तथा यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यताका कथन किया गया है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

इति श्री च० स० चिकित्सितस्थाने प्र० भाषाटीकायां राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसांचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम अर्श चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

आसीनंमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम् । पृष्टवानर्शसांयुक्तिमग्निवेशःपुनर्वसुम् ॥ १ ॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगचिकित्सितम् । साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति ॥ २ ॥

एक समय आत्रेय भगवान् जपादिनित्य क्रियासे निवृत्त हो प्रसन्नचित्त निश्चित बैठेहुए थे। उस समय अग्निवेशने अर्श (बवासीर) रोगकी युक्ति, प्रकोपका कारण, आकृति, अधिष्ठान, रूप, चिकित्सा और साध्यता तथा असाध्यताके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रकट की। भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रति अर्शरोगके विषयमें इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया ॥ १ ॥ २ ॥

अर्शके भेद।

इह खल्वग्निवेश ! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित्कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि । तत्रबीजंगुदवलिबीजोपतप्तमायतनमर्शसांसहजानाम्। तत्रद्विविधौबीजौउपतप्तौ, हेतुःमातापित्रोरपचारः पूर्वकृतश्चकर्मतथाअन्येषामपिसहजानांविकाराणांतत्रसहजानिसहजातानिशरीरेणअर्शांसीत्यधिमांसविकाराः ॥ ३ ॥

हे अग्निवेश! अर्श (बवासीर) रोग दो प्रकारका होताहै। एक सहज (जो जन्मसे ही होताहै) दूसरा जन्मके अनंतर अपने कारणोंसे प्रकट होनेवाला। इनमें सहज अर्शके कारण एक तो माता पिता के रज वीर्यका विकार होताहै, दूसरा इसके पूर्वजन्मका किया कर्म है। सो संपूर्ण सहज रोगोंके यह दो ही कारण होतेहैं। सहज अर्श एकप्रकारका अधिमांस रोगही जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शका अधिष्ठान।

सर्वेषाञ्चार्शसांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमाङ्गुलेऽवकाशेत्रिभागान्तरास्तिस्रोगुदवलयःक्षेत्रमितिदेशः ॥ ४ ॥

संपूर्ण अर्शोंके प्रकट होनेका स्थान गुदाद्वारसे अंदर साढे पांच अंगुलके बीचमें जो प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी नामकी तीन वलियें हैं यही अर्शरोगके उत्पन्न होनेका क्षेत्र है ॥ ४ ॥

केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिशन्तिअर्शसांशिश्नमपत्यपथंगलमुखनासिकाकर्णाक्षिवर्त्मानित्वक्च । तदस्त्यधिकमांसदेशाएषगुदवलिजानान्त्वर्शांसीतिसंज्ञातत्रअस्मिन्सर्वेषाञ्चअर्शसामधिष्ठानंमेदोमांसंत्वक्च ॥ ५ ॥

कोई ऐसा मानतेहैं कि अर्शरोगके प्रकट होनेका स्थान केवल गुदा ही: नहीं किंतु और भी बहुतसे स्थान हैं जैसे लिंगेन्द्रिय, योनिद्वार, गला, मुख,: नासिका, कान,

वस्त्रोंको धारण करना, इष्टमित्रोंसे मिलना और सुंदर स्त्रियोंका देखना, गीत बाजोंके शब्दों तथा प्यारी बातोंका सुनना, हर्ष और आश्वासनदायक बातोंका सुनना गुरुजनोंकी नित्यसेवा करना, ब्रह्मचर्य, दान, तप और देवतार्चन नियमोंका पालन करना, सत्यव्रत पालन, मंगलाचरण और अहिंसा, वैद्य और विप्रोंका पूजन इनके सेवनसे रोगराज यक्ष्मा दूर होजाताहै ॥ १७८॥१७९॥१८०॥१८१॥१८२ ॥

प्रयुक्तयाययाचेष्टयाराजयक्ष्मापुराजितः ।
तांवेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थीप्रयोजयेत्॥ १८३ ॥

प्राचीन कालमें जिसयज्ञके करनेसे यह रोग दूर किया गया था उस वेदोक्त यज्ञको आरोग्य प्राप्तिके लिये करना चाहिये ॥ १८३ ॥

अध्यायका उपसंहार।

प्रागुत्पत्तिर्निमित्तानिप्राग्रूपंरूपसंग्रहः । समासव्यासतश्चोक्तंभेषजंराजयक्ष्मणः ॥ १८४ ॥ नामहेतुरसाध्यंचसाध्यत्वंकृच्छ्रसाध्यता । इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते ॥ १८५ ॥

इति चरक० चि०राजयक्ष्मचिकित्सितंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस राजयक्ष्म चिकित्सित अध्यायमें राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप और औषधियां संक्षेप तथा विस्तारसे वर्णन कीगई हैं । तथा यक्ष्माके पर्यायवाचक शब्द, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यताका कथन किया गया है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

इति श्री च० सं०चिकित्सितस्थाने प्र० भाषाटीकायां राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शसांचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम अर्श चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं, इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे ॥

आसीनंमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम् । पृष्टवानर्शसांयुक्तिमग्निवेशःपुनर्वसुम् ॥ १ ॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगचिकित्सितम् । साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति ॥ २ ॥

एक समय आत्रेय भगवान् जपादिनित्य क्रियासे निवृत्त हो प्रसन्नचित्त निश्चित बैठेहुए थे। उस समय अग्निवेशने अर्श (ववासीर) रोगकी युक्ति, प्रकोपका कारण, आकृति, अधिष्ठान, रूप, चिकित्सा और साध्यता तथा असाध्यताके विषयमें जाननेकी इच्छा प्रकट की। भगवान् पुनर्वसुजीने अग्निवेशके प्रति अर्शरोगके विषयमें इस प्रकार वर्णन करना आरंभ किया ॥ १ ॥ २ ॥

अर्शके भेद।

इह खल्वग्निवेश! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित्कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि। तत्रबीजंगुदवलिबीजोपतप्तमायतनमर्शसांसहजानाम्। तत्रद्विविधौबीजौउपतप्तौ, हेतुःमातापित्रोरपचारः पूर्वकृतश्चकर्मतथाअन्येषामपिसहजानांविकाराणांतत्रसहजानिसहजातानिशरीरेणअर्शांसीत्यधिमांसविकाराः ॥ ३ ॥

हे अग्निवेश! अर्श (ववासीर) रोग दो प्रकारका होताहै। एक सहज (जो जन्मसे ही होताहै) दूसरा जन्मके अनंतर अपने कारणोंसे प्रकट होनेवाला। इनमें सहज अर्शके कारण एक तो माता पिता के रज वीर्यका विकार होताहै, दूसरा इसके पूर्वजन्मका किया कर्म है। सो संपूर्ण सहज रोगोंके यह दो ही कारण होतेहैं। सहज अर्श एकप्रकारका अधिमांस रोगही जानना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शका अधिष्ठान।

सर्वेषाञ्चार्शसांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमाङ्गुलेऽवकाशेत्रिभागान्तरास्तिस्रोगुदवलयःक्षेत्रमितिदेशः ॥ ४ ॥

संपूर्ण अर्शोंके प्रकट होनेका स्थान गुदाद्वारसे अंदर साढे पांच अंगुलके बीचमें जो प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी नामकी तीन वलियें हैं यही अर्शरोगके उत्पन्न होनेका क्षेत्र है ॥ ४ ॥

केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिशान्तिअर्शसांशिश्नमपत्यपथंगलसुखनासिकाकर्णाक्षिवर्त्मानित्वकच। तदस्त्यधिकमांसदेशएषगुदवालिजानान्त्वर्शांसीतिसंज्ञातत्रअस्मिन्सर्वेषाञ्चअर्शसामधिष्ठानंमेदोमांसंत्वक्च ॥ ५ ॥

कोई ऐसा मानतेहैं कि अर्शरोगके प्रकट होनेका स्थान केवल गुदा ही नहीं किंतु और भी बहुतसे स्थान हैं जैसे लिंगेन्द्रिय, योनिद्वार, गला, मुख, नासिका, कान,

नेत्रोंकी पलकें और त्वचा । परंतु इन स्थानोंमें होनेवाले अर्शाकार रोगको अर्श नहीं कहते वह अधिमांस कहाजाताहै । और गुदाकी तीन वलियोंमें होनेवाले मस्सोंको ही अर्श (ववासीर) कहतेहैं । सब प्रकारके अर्शोंका अधिष्ठान मेद, मांस, और त्वचा ही होतेहैं ॥ ९ ॥

सहजार्शका वर्णन ।

तत्रसहजानिअर्शांसिकानिचिदणूनिकानिचिन्महान्तिकानिचिं· द्दीर्घाणिकानिचिद्ध्रस्वानिकानिचिद्वृत्तानिकानिचिद्विपमविसृतानिकानिचिदन्तःकुटिलानिकानिचिद्बहिःकुटिलानिकानिचिज्जटिलानिकानिचिदन्तर्मुखानियथास्वंदोषानुवन्धवर्णानि ॥ ६ ॥

सहज अर्शमें जो मस्से होतेहैं वह कोई वहुत छोटे, कोई वडे, कोई लंवे, कोई गोल, कोई टेढेसे फैलेहुए, कोई भीतरको मुडेहुएसे, कोई वाहरको निकलेहुए, कोई जटिल (खिंडेहुएसे) कोई पतले मुखवाले, होतेहैं । इनमें जिस दोषका अनुवंध हो उनके उसी दोषके अनुरूप वर्ण, लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

तैरुपहतोजन्मप्रभृतिभवतिअतिकृशोविवर्णःक्षामोदीनःप्रचुरविबद्धवातमूत्रपुरीषःशार्करीचाश्मरीवातथानियतविवद्धमुक्तपकामशुष्कभिन्नवर्चाअन्तरांतराश्वेतपाण्डुहरितपीतरक्तारुणतनुसान्द्रपिच्छिलकुणपगन्धामपुरीषोपवेशीनाभिवस्तिवंक्षणोद्देशेप्रचुरपरिकर्त्तिकान्वितःसशूलगुदप्रवाहिकःपरिहर्षप्रमेहप्रसक्तविष्टम्भान्त्रकूजोदावर्त्तहृदयेन्द्रियोपलेपः प्रचुरविवद्धतिक्ताम्लोद्गारः सुदुर्वलोदुर्वलाग्निरल्पशुक्रःक्रोधनोदुःखोपचारशीलःकासश्वासतमकतृष्णाहृल्लासच्छर्दिररोचकाविपाकपीनसक्षवथुपरीतस्तैमिरिकःशिरःशूलीक्षामभिन्नसन्नसक्तजर्जरस्वरःकर्णरोगीसशूनपाणिपादवदनाक्षिकूटःसज्वरःसाङ्गमर्दःसर्वपर्वास्थिशूलीचअन्तरान्तरापार्श्वकुक्षिवस्तिहृदयपृष्ठत्रिकग्रहोपतप्तःप्रध्यानपरःपरमालसश्चेतिजन्मप्रभृतिअस्यगुदजैरावृतोमार्गोपरोधाद्वायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणोदानान्पित्तश्लेष्माणौचप्रकोपयति। तेप्रकुपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्माणौचार्शसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनयन्तीत्युक्तानिसहजान्यर्शांसि ॥ ७ ॥

सहज अर्शवाला मनुष्य जन्मकालसे ही कृश, हीनवर्ण, क्षीण, और दीन, तथा नित्य ही अधोवात, मल, और मूत्रके विबंध युक्त रहताहै तथा शर्करा और पथरीका रोग बना रहताहै, उनको सदैव विबंध (कब्ज) से रुक २ कर पक्व मल, विनपचा मल, आम, फटाहुआ मल, सूखाहुआ, और फटाहुआसा मल उतरताहै । और बीच २ मे कभी सफेद, पांडुरवर्ण, हरा, पीला, लाल, ताम्रवर्ण, पतला, गाढा, पिच्छिल और मुरदेकीसी दुर्गन्धयुक्त मल निकलताहै । जब वह मनुष्य बैठताहै तो इसकी नाभी, वस्ती, और वंक्षण (बखिया) में कतरनीकीसी पीडा होने लगतीहै। एवं इस मनुष्यके शूल, प्रवाहिका (पेचिश), रोमांच, प्रमेह, अत्यंत, विष्टंभ (कब्जियत) अंत्रकूजन, उदावर्त, हृदय और इन्द्रियोंका लिपासा रहना, विबंधसे अफारासा होकर खट्टी और कडवी डकार आना, दुर्बलता, अन्नका न पचना, मंदाग्नि, वीर्यकी हीनता, क्रोध और दुःखयुक्त चित्त बना रहना, भोगकी इच्छा रखना, खांसी, श्वास, तमकश्वास हल्लास, वमन, अरुचि, अविपाक, प्रतिश्याय (जुकाम) छींक, तिमिररोग, मस्तकपीडा, स्वरभंग, स्वरकी क्षीणता, स्वरकी जडता, स्वरकी जर्जरता, कर्णरोग, हाथ, पांव, मुख और नेत्रोंकी पलकोंमें सूजन, ज्वर, अंगमर्द (अँगडाई) संपूर्ण संधियोंमें पीडा, कभी २ पसली कूख हृदय वस्ती पीठ त्रिक स्थानमें पीडा होना, सदैव चिंता बनारहना, अत्यंत आलस्य होना, जन्मकालसे ही गुदामें प्रगटहुई बवासीरके मस्सोंसे अपानवायु रुक कर ऊपरको गमन करताहुआ समान, व्यान, प्राण, और उदान वायुको दूषित करता हुआ पित्त और कफको भी कुपित करदेताहै । यह पांच प्रकारके वायु ही पित्त और कफको अर्श रोगमें प्रेरित करते हुए इन उपरोक्त विकारोंको प्रकट करते हैं ॥७॥

अतऊर्द्धंजातस्योत्तरकालजान्व्याख्यास्यामः ॥ ८ ॥

अब हम जन्म लेनेके अनंतर होने वाले अर्शरोगका वर्णन करते हैं ॥ ८ ॥

जन्मके अनंतर अर्शप्रगट होनेका कारण।

गुरुमधुरशीताभिष्यन्दिविदाहिविरुद्धाजीर्णप्रमिताशनासात्म्यभोजनाद्गव्यमात्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशितभक्षणात्कृशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमान्नक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवनाच्चमाषयूषेक्षुरसपिण्याकपिण्डालुकशुष्कशाकशुक्तलशुनकिलाटपिण्डकबिसमृणालशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकशृङ्गाटकतरुणविरूढनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलशाकरागहरितवसाशिरस्प-

दपर्य्युपितपूतिशीतसङ्कीर्णान्नाभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्तमद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादतिस्नेहपानादसंशोधनाद्वस्तिकर्मविभ्रमादव्यवायाद्दिवास्वप्नात्सुखशयनासनोपसेवनाच्चोपहताग्नेर्मलोपचयोभवतिअतिमात्रम् । अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्भ्रान्तयानोष्ट्रप्रयाणादतिव्यवायाद्वस्तिनेत्रासम्यक्प्रणिधानाद्गुदक्षणनादभीक्ष्णंशीताम्बुसंस्पर्शाच्चेललोष्टतृणादिघर्षणात्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगोदीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात्स्त्रीणाञ्चामगर्भभ्रंशाद्गर्भोत्पीडनाद्विषमप्रसूतिभिश्चप्रकुपितोवायुरपानस्तंमलमुपचितमधोगममासाद्यगुदवलिष्वाधत्तेततस्तासुअर्शांसिप्रादुर्भवन्ति ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल, अभिष्यंदी, विरुद्ध अजीर्णकर्ता, बहुत थोडा, और असात्म्य भोजन करनेसे तथा गौ, मछली, वराह, भैंसा, बकरी और मेंढा आदिके मांस खानेसे कृश, सूखाहुआ, और सडाबुसा मांस खानेसे, पिष्ट पदार्थ, परमान्न (खीर खोआ आदि) दूध, लड्डू, दही, तिल, गुड, इनसे बने हुए पदार्थोंका निरंतर सेवन करनेसे, उडदोंका यूष, ईखका रस, पिण्याक (तिलोंकी पीठी आदि) पिण्डालु, सूखे शाक, सिरका, लहसुन, किलाट, पिडक, बिस, मृणाल, शालूक, क्रौंचकन्द, कसेरू, सिंवाडे, एवं कच्चे और उगे हुए तथा नवीन धान्योंके सेवनसे, कच्ची मूलीको अत्यंत और निरंतरखानेसे, भारी फल, शाक, राग खांडव, हरित (सब्जी) पशुपक्षियोंके मस्तक चर्बी और पैरोंको खानेसे । बासी दुर्गंधित, ठंढा और संकीर्ण भोजन करनेसे मंदक, दही, और मद्य इनके अधिक पीनेसे, दूषित और गुरुपाकी जलके सेवनसे; अधिक स्नेहपान करनेसे, संशोधन न करानेसे, वस्तिकर्मके मिथ्यायोग होनेसे; अव्यवायसे, दिनमें सोनेसे सुखपूर्वक सुंदर आसन, शय्या, आदि पर अधिक बैठेरहनेसे, अग्नि मंद होजातीहै उससे मलकी वृद्धि होतीहै । एवं पावोंके भारसे बैठने तथा विषम और कठोर आसन पर बैठे रहनेसे, बहुत हिलने जुलने वाली उद्भ्रान्त सवारीमें बैठनसे ऊँट पर चढनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, वस्तिकर्मके समय वस्तिकी नलीका मिथ्यायोग होनेसे गुदाको यथोचित शुद्ध न रखनेसे, मलद्वारमें अत्यंत शीतल जलके स्पर्शसे, (उष्णजलके साथ धोनेसे) कपडा, मट्टीका ढेला, या घास आदि लेकर गुदाको घिसनेसे, निरंतर किनछने (गुदाको बाहरकी ओर धकेलनेका यत्न करने) से मल मूत्र वातको विना वेग त्यागनेसे इनके उपस्थित वेगोंको रोकनेसे

एवं स्त्रियोंके गर्भपात, गर्भका उत्पीडन, होनेसे अथवा अधिक प्रसव या प्रसवकी विषमता होनेसे, अपानवायु कुपित होकर उस उपचित मलसे अधोगमनके समय मिलकर गुदाकी तीन वलियोंको बाधनकर उनमें अर्श (ववासीर) रोगको प्रकट करताहै ॥ ९ ॥

दोषभेदसे आकृति ।

सर्षपमसूरमाषमुद्गमकुष्ठकयवकलायपिण्डिटिण्टिकेरखर्जूरकर्कन्धुकाकणन्तिकाबिम्बीबदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनांगुष्ठकशेरुकशृङ्गाटकशृङ्गीदक्षशिखिशुकतुण्डजिह्वामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्याद्वातपित्तकफप्रबलानि ॥ १० ॥

वात पित्त तथा कफकी प्रबलतावाले अर्शों (ववासीरके मस्सों) की आकृति सामान्यतासे सरसो, मसूर, माष, मूंग, मोठ, जव, कलाय, करीरके फल, खजूर, छोटा बेर, चिर्भटी कंदूरी, बेर, बांसके बीज, गूलर, जामन, दाख, अंगूठा कसेरु सिंघाडा, काकडासिंगी समान आकारवाले तथा मुर्गा, मोर तोता इनकी चोंच या जीभके समान अथवा फूलकी कलीके समान आकृति होतीहै ॥ १० ॥

वातार्शके लक्षण ।

तेषामयंविशेषः । शुष्कम्लानकठिनपरुषरूक्षश्यावातितीक्ष्णाग्राणिवक्राणिस्फुटितमुखानिविषमविस्तृतानिशूलाक्षेपतोदस्फुरणचिमिचिमासंहर्षणपरीतानिस्निग्धोष्णोपशयानिप्रवाहिकाध्मानशिश्नवृषणवस्तिवङ्क्षणहृद्ग्रहाङ्गमर्दहृदयप्रबलानिप्रततविबद्धवातमूत्रवर्चांसिकठिनवर्चांस्यूरुकटीपृष्ठत्रिकपार्श्वकुक्षिवस्तिशूलशिरोऽभितापक्षवथूद्गारप्रतिश्यायकासोदावर्त्तायासशोपशोथमूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्य्यकण्डूनासाकर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारुणपरुषनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यवातोल्वणानिअर्शांसीतिविद्यात् ॥ ११ ॥

उनमें वातादिभेदसे यह विशेषता (फर्क) होतीहै । वातोल्वणअर्शके मस्से सूखे, कुम्हलाये हुए, कठिन, खरदरे, रूखे, श्यामवर्ण, आगेसे नोकीले, टेढे, फटेहुए मुखवाले, विषमतासे फैलेहुए शूलयुक्त, तथा आक्षेप, तोद, स्फुरण (फडकना) और चिमचिमाहटयुक्त हों इनमें रोमांचहोताहै यह स्निग्ध और उष्ण क्रिया द्वारा शांत

होतेहैं यह वातार्शके मस्सोंके लक्षण हैं। वातार्शमें-प्रवाहिका, अफारा, तथा शिश्नेन्द्रिय फोते और वंक्षणमें पीडा, हृदयमें शूल, अंगडाई, हृदयद्रव (हौल) की प्रबलता, निरंतर वात मूत्र और मलका विबंध, मल कठिनतासे उतरे तथा ऊरु कमर पीठ त्रिकस्थान पार्श्वकुक्षि और वस्तिमें पीडा होय । शिरोवेदना, छींक, डकार, प्रतिश्याय, खांसी उदावर्त, श्रम, शोष, सूजन, मूर्छा, अरोचक, विरसता, अंधकार, खुजली, नाक, कान और कनपटियोंमें पीडा, स्वरभंग, तथा नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र और मल काले और लाल वर्णके होना तथा कठोर होना यह वायुकी अर्श (ववासीर) के लक्षण जानना ॥ ११ ॥

वातार्शके कारण।

भवतश्चात्र ।

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच । प्रमिताल्पाशनंतीक्ष्णंमद्यमैथुनसेवनम् ॥ १२ ॥ लङ्घनंदेशकालौचशीतौव्यायामकर्मच । तीक्ष्णोवातातपस्पर्शोहेतुर्वातार्शसामिति ॥ १३ ॥

यहां कहतेहैं कि कषैले, कडुवे, चर्परे, रूखे, शीतल, और लघु पदार्थोंका अधिक सेवन करना । अल्पभोजन तीक्ष्ण मद्य तथा मैथुनका अधिक सेवन शीत काल, शीत देश, अधिक व्यायाम, तीक्ष्णवायुका स्पर्श, यह सब वातार्श होनेके हेतुहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

पित्तार्शका स्वरूप ।

तत्रयानिमृदुशिथिलसुकुमाराणिअस्पर्शासहानिरक्तपीतनीलकृष्णानिस्वेदोपक्लेदबहुलानिविस्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्राविणिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्तिशिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहारितवर्चांसिपीतविस्रगन्धप्रचुरविण्मूत्राणिपिपासाज्वरतमकसंमोहभोजनद्वेषकराणिपीतनखनयनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यपित्तोल्वणानिअर्शासीतिविद्यात् ॥ १४ ॥

जिस ववासीरके मस्से नम्र, शिथिल, सुकुमार, स्पर्श न सहनेवाले, पीले, नीले, लाल, और काले वर्णके हों, जिनमें स्वेद और क्लेदकी अधिकता हो, दुर्गंधयुक्त पतला पीलेरंगका रुधिर स्रवताहो, सब मस्सोंमेंसे रुधिरका स्राव हो, उनमें दाह, खाज, शूल, तोद और पाक हो, और जिनमें शीतल द्रव्योंके सेवनसे शान्ति प्रतीतहो एवं पीले और हरे वर्णका मल उतरताहो तथा दुर्गंधयुक्त हलदीके समान

मल मूत्र पीले वर्णके हों और प्यास, ज्वर, तमकश्वास, मोह और अन्नसे द्वेष हो। नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मल मूत्र यह सब पीतवर्णके हों ये लक्षण पित्तोल्बण अर्शके जानने ॥ १४ ॥

पित्तार्शके हेतु।

भवतश्चात्र।

कट्वम्ललवणक्षारव्यायामाग्न्यातपप्रभाः । देशकालावशिशिरौ क्रोधोमद्यमसूयनम् ॥ १५ ॥ विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्वंपानान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानांविज्ञेयःप्रकोपहेतुरर्शसाम् ॥ १६ ॥

यहां कहाहै कि चरपरे, खट्टे, नमकीन और खारे पदार्थोंके सेवनसे, अधिक कसरत करना, अधिक धूपका सहना, गर्मदेश, उष्ण काल, क्रोध, मद्यपान, ईर्षा और सर्व प्रकारके दाहकर्त्ता, तीक्ष्ण, उष्ण अन्नपान और औषधका सेवन यह सब पित्तोल्बण अर्शके प्रकोप होनेके हेतु कहेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

कफोल्बण अर्शका स्वरूप।

तत्रयानिप्रमाणवन्तिउपचितानिश्लक्ष्णानिस्पर्शसहानिश्वेतपाण्डुपिच्छिलानिस्तब्धानिगुरूणिस्तिमितानिसुप्तसुप्तानिस्थिरश्वयथूनिकण्डूबहुलानिप्रततपिञ्जरश्वेतरक्तपिच्छास्रावीणिगुरुपिच्छिलश्वेतमूत्रपुरीषाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहिकातिमात्रोत्थानवंक्षणआनाहवन्तिपरिकर्त्तिकाहृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकप्रतिश्यायगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोपशोथपाण्डुरोगशीतज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्योपलेपास्यमाधुर्य्यप्रमेहकराणिदीर्घकालानुपशयानि अतिमात्रमग्निमार्दवक्लैब्यकराणिआमविकारप्रबलानिपुरूणिच्शुक्लनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यश्लेष्मोल्बणानिअर्शांसीतिविद्यात् ॥ १७ ॥

जिस अर्शके मस्से प्रमाणशाली, पुष्ट, चिकने, सुडौल, स्पर्शके सहनेवाले, सफेद, पीले, पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, गीले, अत्यंत सुन्न, स्थिर, सूजन और खाजयुक्त हों, जिनमें, निरन्तर पीला, सफेद, लाल, गाढा और पिच्छिल स्राव होताहो और मूत्र, मल, गाढे और सफेद हों, तथा उष्णद्रव्योंके सेवनसे शान्ति प्रतीत होतीहो एवं प्रवाहिका वंक्षणोंमें अफारा, कतरनेकीसी पीडा, हृल्लास, वारंवार थूकना,

खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, गौरवता, मूत्रकृच्छ्र, छर्दी, शोष, सूजन, पाण्डुरोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदय, इन्द्रिय और मुखका कफसे लिपासा होना, मुखमें मीठापन, प्रमेहरोग होना, अर्शका बहुत समय तक बने रहना, अत्यंत मंदाग्नि, क्लीवता, आमविकार, इन प्रबल उपद्रवोंका होना एवं नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्वेतवर्ण होना यह सब कफकी बवासीरके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

कफार्शके हेतु ।

भवन्तिचात्र ।

मधुरस्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरूणिच । अव्यायामदिवास्वप्न-शय्यासनसुखेरतिः ॥ १८ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौचदेशकालावचि-न्तनम् । श्लैष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ १९ ॥

मीठे, चिकने, शीतल, नमकीन, खट्टे और भारी द्रव्योंका अधिक सेवन, व्यायाम न करना, दिनमें सोना, अधिक सोना, आरामसे बैठे रहना, पूर्वकी पवनका सेवन करना, शीतल देश, शीतकाल, किसी प्रकारकी भी चिन्ता न होना यह कफकी बवासीरके कारण हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्बणानिच ।
सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसमम् ॥ २० ॥

दो दोषोंके हेतु और लक्षणोंके मिलनेसे द्विदोषज अर्श जानना । सन्निपातके अर्शमें तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण होतेहैं यह अर्श सहज अर्शके समान होतीहै ॥ २० ॥

अर्शके पूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदौर्बल्यंकुक्षेराटोपएवच । कार्श्यमुद्गारबाहुल्यंसक्-थिसादोऽल्पविट्कता ॥ २१ ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्त्तिराशङ्काचोद्-रस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ २२ ॥

अन्नका विष्टम्भके साथ परिपाक होना, दुर्बलता, कूखमें अफारासा होना, कृशता, अधिक डकार आना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, मलका थोडा २ उतरना, ग्रहणी-दोष, पाण्डुरोग, उदरपीडा वारवार मलत्यागकी शंका होना, यह सब अर्श (बवासीर) के पूर्वरूप कहे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

सब अर्शोंको त्रिदोषत्वं ।

अर्शांसिखलुजायन्तेनासन्निपतितैस्त्रिभिः ।
दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषःकल्प्यतेऽर्शसाम् ॥ २३ ॥

सब प्रकारके अर्शरोगोंमें तीनों दोषोंका सम्बन्ध होताहै । विना तीनों दोषोंके कोपके अर्शरोग होता ही नहीं, परन्तु इनमें जो दोष प्रबल होताहै उसीके नामसे अर्शकी कल्पना की जातीहै ॥ २३ ॥

अर्शकी कृच्छ्रता ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तंकफोगुदवलित्रयम्। सर्वएवप्रकुप्यन्तिगुदजानांसमुद्भवे ॥ २४ ॥ तस्मादर्शांसिदुःखानिबहुव्याधिकराणिच । सर्वदेहोपतापीनिप्रायःकृच्छ्रतमानिच ॥ २५ ॥

अर्शरोगके प्रकट होनेसे प्राणवायु आदिक पांचों वायु पित्त और कफ तथा गुदाकी तीनों वलियें एकसाथ दूषित होजातींहैं इसीलिये बहुतसी व्याधियोंको करनेवाला और संपूर्ण देहको उपतापित (कष्ट) करनेवाला यह अर्शरोग कष्टसाध्य होताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

असाध्य अर्शके लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथा। शोथोहृत्पार्श्वशूलश्चयस्यासाध्योऽर्शसोहिसः ॥२६॥ हृत्पार्श्वशूलंसंमोहश्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः। तृष्णागुदस्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥ २७ ॥

जिस अर्शरोगमें हाथ, पांव, गुदा, नाभि, मुख और अण्डकोशोंमें सूजन प्रकट होजाय, हृदय, और पसलीमें शूल हो, वमन, संमोह, अंगोंमें पीडा, ज्वर, तृषा, गुदाके अग्रभागका पकना यह लक्षण हों वह अर्शरोगीको मारडालताहै ॥२६॥२७॥

सहजानित्रिदोषाणियानिचाभ्यंतरांवलिम् । जायन्तेऽर्शांसिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥२८॥ शेषत्वादायुपस्तानिचतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकायाग्नेःप्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा॥२९॥ द्वन्द्वजानिद्वितीयायांवलौयान्याश्रितानिच । कृच्छ्रसाध्यानितान्याहुःपरिसंवत्सराणिच ॥ ३० ॥

एवं जो सहज अर्श त्रिदोषसे कुपित होकर गुदाकी भीतरकी वलीमें आश्रित होजातीहै, वह भी असाध्य है. यदि मनुष्यकी आयु शेष हो और चिकित्साके चारो पाद सर्वगुण सम्पन्न हों तथा जठराग्नि बलवान हो तो उपरोक्त रोगी याप्य साध्य होताहै । नहीं तो असाध्य जानना. यदि द्वन्द्वज अर्श गुदाकी दूसरी वलीके आश्रित हो अथवा एक वरससे अधिकका हो वह सब अर्श कष्टसाध्य जानना ॥२८॥२९॥३०॥

साध्यार्श ।

वाह्यायान्तुवलौजातान्येकदोषोल्वणानिच । अर्शांसिसुखसाध्यानिनचिरोत्पतितानिच ॥३१॥ तेषांप्रशमनेयत्नमाशुकुर्य्याद्विचक्षणः । तान्याशुहिगुदंवद्ध्वाकुर्य्युर्बद्धगुदोदरम् ॥ ३२ ॥

जिस अर्शके मस्से गुदाकी बाहरवाली वलीमें हों तथा एकदोषकी प्रबलतासे उत्पन्न हुए हों और १ वर्षसे भीतरके हों वह सुखसाध्य जानने उनके शान्त करनेके लिये चतुर वैद्य शीघ्र ही यत्न करे । अर्शरोगकी चिकित्सामें विलंब करनेसे अर्श गुदाके मार्गको रोककर बद्धगुदोदर रोगको प्रकट कर देतेहैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

शस्त्रादि कर्म ।

तत्राहुरेकेशस्त्रेणकर्त्तनंहितमर्शसाम् । दाहंक्षारेणचाप्येकेदाहमेकेतथाग्निना ॥ ३३ ॥ अस्त्येतद्भूरितन्त्रेणधीमताद्दष्टकर्मणा । क्रियतेत्रिविधंकर्मभ्रंशस्तस्यसुदारुणः ॥ ३४ ॥ पुंस्त्वोपघातःश्वयथुर्गुदेवेगविनिग्रहः । आध्मानंदारुणंशूलंव्यथारक्तातिवर्त्तनम् ॥ ॥ ३५ ॥ पुनर्विरोहोरूढानांक्लेदोभ्रंशोगुदस्यच । मरणंवाभवेच्छीघ्रंशस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ॥ ३६ ॥

कोई कहतेहैं कि अर्शरोगके मस्सोंको शस्त्रसे काटकर निकाल देना हित है । किसीके मतमें क्षारकर्म अथवा अग्निकर्मसे दग्ध करदेना ही श्रेष्ठ मानाहै । सो शास्त्रके जाननेवाले दृष्टकर्मा (क्रियाकुशल) बुद्धिमान् वैद्यको ही समयानुसार इन तीनों उपायोंमेंसे जिस समय जो उचित हो सो करनाचाहिये । इनमें किसी प्रकारका क्रमभ्रंश होनेसे भयंकर उपद्रव होजातेहैं । इसलिये यह कर्म सिद्धहस्त वैद्यके ही करनेके हैं । शस्त्र, क्षार और अग्निकर्म इनमें किसी प्रकारका विभ्रम होनेसे नपुंसकता, गुदामें, सूजन, मलमूत्रादिवेगोंका विघात, अफारा, दारुण शूल, पीडा, रुधिरकी प्रवृत्ति, मस्सोंका फिर प्रकट होजाना, क्लेद, गुदाका निकलना, अथवा बिगड जाना तथा मृत्यु यह घोर उपद्रव शीघ्र होजातेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

यत्तुकर्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ।
तदर्शसांप्रवक्ष्यामिसमूलानांनिवृत्तये ॥ ३७ ॥

अब हम अर्शरोगकी समूल निवृत्तिके लिये उन सुखसाध्य उपायोंका कथन करतेहैं जिनमें किसी प्रकारकी कठिनता और कर्मभ्रंश होनेके दारुण उपद्रवोंका भय नहीं है ॥ ३७ ॥

वातश्लेष्मोल्वणान्याहुःशुष्काण्यर्शांसितद्विदः ।
प्रस्रावीणितथार्द्राणिरक्तपित्तोल्वणानिच ॥ ३८ ॥

अर्शके ज्ञाता वैद्यजन वात और कफप्रधान अर्शको सूखी अर्श कहतेहैं। और रक्तपित्त प्रधान अर्शको स्राव तथा गीली अर्श कहतेहैं ॥ ३८ ॥

तत्रशुष्कार्शसांपूर्वंप्रवक्ष्यामिचिकित्सितम् । स्तब्धानिस्वेदयेत्पूर्वं शोफशूलान्वितानिच ॥ ३९ ॥ चित्रकक्षारविल्वानांतैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् । यवमाषपुलाकानांकुलत्थानाञ्चपोट्टलैः ॥ ४० ॥ गोखराश्वशकृत्पिण्डैस्तिलकल्कैस्तुषैरपि । वचाशताह्वापिण्डैर्वासुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ॥ ४१ ॥ सक्तूनांपिण्डिकाभिर्वास्निग्धानांतैलसर्पिषा । शुष्कमूलकपिण्डैर्वापिण्डैर्वाकार्ष्णगन्धिकैः ॥ ४२ ॥ रास्नापिण्डैःसुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हपुषैरपि । इष्टकस्यखराह्वायाःशाकैर्गृञ्जनकस्यच । अभ्यज्यकुष्ठतैलेनस्वेदयेत्पोट्टलीकृतैः ॥ ४३ ॥

अब हम प्रथम सूखी अर्शकी चिकित्साका कथन करतेहैं । जो अर्श (ववासीर) स्तब्ध, सूजन और पीडायुक्त हो उसमें चित्रक, जवाखार, और वेलके :फलोंका तैल लगाकर फिर नीचे लिखे द्रव्योंके प्रयोगसे स्वेदन करै । जैसे-जो, उडद, पुलाकधान्य और कुल्थी इनको पकाकर पोटलीमें बांध इस पोटलीसे उन मस्सोंको धीरे २ स्वेदन करै । अथवा गौका गोवर, गधे और घोडेकी लीदका गीलागीला गोला बनाकर उस गोलेको कपडेमें लपेट गर्मकर उससे मस्सोंको स्वेदन करै । अथवा तिलोंका कल्क और तुषोंसे अथवा वच और सौंफको पीसकर स्नेहयुक्त कर सुखोष्ण स्वेदन करे । या घृत और तैलके योगसे चिकने किये सत्तुओंकी पिंडीसे स्वेदन करे । अथवा सूखी मूलीके पिंडसे या सुहांजनेके कल्कसे या सुखोष्ण रासनाके पिंडसे अथवा स्नेहयुक्त हाउवेरके पिंडसे स्वेदन करै । अथवा कूठका तेल चोपडकर ईट, खुरासानी अजवायन अथवा अजमोद और सलजमके सागकी पोटली बनाकर स्वेदन करै ॥ ३९-४३ ॥

वृषार्कैरण्डविल्वानांपत्रोत्काथैश्चसेचयेत् ॥४४॥ मूलकत्रिफलार्काणांवेणूनांवरुणस्यच । अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच ॥ ४५ ॥ जलेनोत्क्वाथ्यशूलार्तंस्वभ्यक्तमवगाहयेत् । कोलोत्क्वाथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतुषोदके ॥ ४६ ॥ विल्वोत्क्वाथेथवातके

दधिमण्डाम्लकाञ्जिके । गोमूत्रेवासुखोष्णेतंशूलार्त्तमुपवेशयेत् ॥ ॥ ४७ ॥ कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतुकावृषदंशजाम् । वसामभ्यञ्जनं कुर्य्याद्धूपनञ्चार्शसांहितम् ॥ ४८ ॥

यदि अर्शके मस्सोंमें अधिक शूल होताहो तो अडूसा, आक, एरंड और बेलके पत्तोंके क्वाथसे मस्सोंको सेचन करे । अथवा शूलसे पीडित अर्शवालेके मस्सोंपर तैल लगाकर मूली, त्रिफला, आक, बांस, वर्ना, अरणी, सुहांजना और अश्मंतकका काथ बनाकर उस क्वाथमें रोगीको विठावे अथवा बेरके काथमें या सौवीरक अथवा तुषोदक या बेलका क्वाथ अथवा छाछ या खट्टी कांजी अथवा किंचित् गर्म गोमूत्रमें विठावे, या इन क्वाथोंका अर्शपर तरडा देवे। काला सांप, वराह, ऊंट, चमगीदड अथवा बिल्लीकी चरबीको लेकर बवासीरके मस्सोंपर मालिश करे ॥ ४४-४८ ॥

अर्शपर धूनी ।

नृकेशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ।
अर्कमूलंशमीपत्रमर्शोभ्योधूपनंहितम् ॥ ४९ ॥

मनुष्यके केश, सर्पकी कांचुली, बिल्लीका चमडा, आककी जड और शमीवृक्षके पत्रोंको कूटकर आग पर डाल बवासीरके मस्सोंको धूनी देना हितकारक है ॥ ४९ ॥

तुम्बुरूणिविडङ्गानिदेवदार्वक्षताघृतम् । बृहतीचाश्वगन्धाचपिप्पल्यःसुरसाघृतम्। वराहवृषविट्चैवधूपनंसक्तवोघृतम् ॥ ५० ॥

धनियां, वायविडंग, देवदारू, सफेद सरसों, घी, अथवा बडी कटेरी असगंध, पीपल, सुरसा, तुलसी और घृतकी धूनी या वराहकी विष्ठा, बैलके गोवर, सत्तू और घीकी धूनी देना अर्शरोगमें हितकारी है ॥ ५० ॥

अर्शपर लेप।

कुञ्जरस्यपुरीषन्तुघृतंसर्जरसोरसः ॥ ५१ ॥ हरिद्राचूर्णसंयुक्तंसुधाक्षीरंप्रलेपनम् । गोपित्तपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम्॥५२॥ शिरीषबीजंकुष्ठञ्चपिप्पल्यःसैन्धवंगुडः । अर्कक्षीरंसुधाक्षीरंत्रिफलाचप्रलेपनम् ॥ ५३ ॥ पिप्पल्यश्चित्रकाःश्यामाःकिण्वंमदनतण्डुलाः। प्रलेपःकुक्कुटशकृद्धरिद्रागुडसंयुतः ॥ ५४ ॥ निकुम्भःसाम्रतासङ्गःपारावतशकृद्गुडः । प्रलेपःस्याद्गजास्थीनिनिम्बोभल्लातकानिच ॥ ५५॥

हाथीकी लीद, घी, राल, शिलारस, हल्दीका चूर्ण और थोहरके दूधको रगडकर ववासीरके मस्सोंपर लेप करनेसे मस्से दूर होतेहैं। अथवा पीपल और हलदीको गोपित्तमें मिलाकर लेप करे। अथवा सिरसके बीज, कूट, पीपल, सैंधानमक, गुड, आकका दूध, थोहरका दूध और त्रिफला इन सबको मिलाकर लेपकरे या पीपल, चित्रक, सारिवाकी जड, सुराबीज, मैनफल, विडंग चावल, मुर्गेकी बीट, हलदी और गुड इन सबको मिलाकर लेपकरे। अथवा जमालगोटेकी जड मुर्दाशंख (या नीला थोथा) कबूतरकी बीट, गुड, हाथीदांतका चूर्ण, नीमके बीज और भेलावे इन सबको पीसकर अर्शके मस्सोंपर लेपकरे ॥ ५१–५५ ॥

प्रलेपःस्यादलर्केणवासन्तकवसायुतः । शूलश्वयथुहृद्रोगेपूलूकीवसयाथवा ॥ ५६ ॥ आर्कपयःसुधाकाण्डंकटुकालाबुपल्लवाः । करञ्जोवस्तमूत्रश्चलेपनंश्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ५७ ॥

यदि अर्शरोगमें शूल, सूजन और हृदयरोग हो तो ऊंटकी चर्वी, सफेद आकका दूध और उल्लूकी चर्वी मिलाकर लेपकरे। अथवा आकका दूध, थोहरका टुकडा, कडुवे तुंवेके पत्ते, करंजुएके बीज इन सबको बकरेकें मूत्रमें पीसकर लेपकरना अर्शरोगमें हित है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

अभ्यङ्गाद्याःप्रदेहान्तायएतेपरिकीर्त्तिताः । स्तम्भश्वयथुकण्डर्त्तिशमनास्तेऽर्शसांमताः॥ ५८ ॥ प्रदेहान्तेरुपक्रान्तान्यर्शांसिप्रस्रवन्तिहि । सञ्चितंदुष्टरुधिरंततःसम्पद्यतेसुखम् ॥ ५९ ॥ शीतोष्णस्निग्धरूक्षैर्हिनव्याधिरुपशाम्यति । रक्तेदुष्टेभिषक्तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ६० ॥ जलौकोभिस्तथाशस्त्रैःसूचीभिर्वापुनःपुनः । अवर्त्तमानंरुधिरंरक्तार्शोभ्यःप्रवाहयेत् ॥ ६१ ॥

अभ्यंगसे लेकर प्रदेह पर्यन्त जो प्रयोग कहे गयेहैं वह अर्शरोगकी स्तम्भका सूजन, खुजली और पीडाको शान्त करतेहैं। इन उपायोंके करनेसे अर्शका संचित हुआ दुष्ट रुधिर निकलकर मस्से बैठजातेहैं उससे शरीरको सुख प्राप्त होताहै। यदि दुष्ट रुधिर न निकले तो शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष उपचारोंके करनेसे अर्शरोग शान्त नहीं होता इसलिये दुष्ट रुधिरको निकालदेना ही चाहिये। यदि दुष्ट रुधिरका स्राव न हो और वह रुधिर विद्यमान रहकर खुजली आदि उपद्रव करताहो तो जोंक अथवा शस्त्र या सुई आदिसे उस रुधिरको वार वार निकालता रहे॥५८–६१॥

गुदश्वयथुशूलार्त्तमन्दाग्निंपाययेत्तुतम् । त्र्यूषणंपिप्पलीमूलंपाठां-हिङ्गुसचित्रकम् ॥ ६२ ॥ सौवर्चलंपुष्कराख्यमजाजींविल्वपेषिकाम् । विडंयमानीहपुषांविडङ्गंसैन्धवंवचाम् ॥ ६३ ॥ तिन्तिडीकञ्चमण्डेनमद्येनोष्णोदकेनच । तथार्शोग्रहणीदोषशूलानाहाद्विमुच्यते ॥ ६४ ॥

यदि गुदामें सूजन और शूल तथा मंदाग्नि यह उपद्रव हों तो उस अर्शरोगीको नीचे लिखे द्रव्योंका पान करावे । सोंठ, मिरच, पीपल, पिप्पलामूल, पाठ, हींग, चीता, संचरनमक, कूठ, काला जीरा, बेलगिरि, विडलवण, अजवायन, हाउबेर, वायविडंग, सेंधानमक, वच, इमली इन सबको सुरामण्ड तथा गर्मजलके साथ पिलावे तो अर्शरोग, ग्रहणीविकार, शूल और अफारा यह सब दूर होतेहैं ॥६२-६४॥

कुर्य्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तंह्यातिसारिके । सगुडामभयांवाथप्राशयेत्पौर्वभक्तिकीम् ॥ ६५ ॥ पाययेतत्रिवृच्चूर्णंत्रिफलायारसेनवा । हृतेगुदाश्रयेदोषेगच्छन्त्यर्शांसिसंक्षयम् ॥ ६६ ॥

अतिसार रोगमें, जिन पाचनयोगोंका वर्णन कियाहै उनका सेवन करना अथवा हरडे. और गुड मिलाकर भोजनसे पहिले सेवन करना या त्रिफलाके रसमें निशोथके चूर्णको मिलाकर पीनेसे गुदाश्रित दोष दूर होकर अर्शरोग भी नष्ट होजाताहै ६५।६६

गोमूत्राध्युषितांदद्यात्सगुडांवाहरीतकीम् । हरीतकींतक्रयुतांत्रिफलांवाप्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥ सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तंप्रयोजयेत् । चव्यंवासीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकंपिबेत् ॥ ६८ ॥ सुरांवाहपुषां पाठायुक्तांसौवर्चलायुताम् । दधित्थविल्वसंयुक्तंतथावाचव्यचित्रकौ ॥ ६९ ॥ भल्लातकयुतंवाथप्रदद्यात्तत्रतर्पणम् । विल्वनागरयुक्तंवायमान्याचित्रकेणवा ॥ ७० ॥ चित्रकंहपुषांहिंगुंदद्याद्वातक्रसंयुतम् । पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत् ॥ ७१ ॥

अथवा हरडेको गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगोयदे दूसरे दिन गुडके साथ मिलाकर सेवन करे । अथवा छाछके साथ हरडे, या छाछयुक्त त्रिफलेका सेवन करावे । अथवा सोंठ और चित्रकके चूर्णको शीधुमद्यके साथ सेवन करे । अथवा शीधुके साथ चव्यका चूर्ण वा सीधुके साथ काला जीरा और अजवायनका चूर्ण पीवे ।

अथवा सुराके साथ हवुषाचूर्ण या संचरनिमक मिलाकर पाढेका चूर्ण पीवे। अथवा कैथ और बेलगिरिका क्वाथ वा चव्य और चित्रकका क्वाथ पीवे। अथवा सुथे भिलावोंको तर्पणके साथ पीवे। अथवा बेलगिरि और सोंठ वा अजवायन और चित्रक वा चित्रक, हवुषा और हींगको छाछमें मिलाकर देवे। अथवा छाछके साथ पीपल, पीपरामूल, चव्य, चित्रक और सोंठ देवे॥ ६७-७१॥

तक्रारिष्ट।

हपुषांकुश्चिकांधान्यमजाजींकारवींशटीम्। पिप्पलींपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम्॥ ७२॥ यमानीश्चाजमोदाश्चचूर्णितंतक्रसंयुतम्। मन्दाम्लकटुकंविद्वान्स्थापयेद्घृतभाजने॥ ७३॥ व्यक्ताम्लकटुकंजातंतक्रारिष्टंमुखप्रियम्। प्रपिबेन्मात्रयाकालेष्वन्नस्यतृपितस्त्रिषु॥ ७४॥ दीपनंरोचनंवर्ण्यंकफवातानुलोमनम्। गुदश्वयथुकण्ड्वार्त्तिनाशनंबलवर्द्धनम्॥ ७५॥

हाउवेर, सूक्ष्म जीरा (कलौंजी), धनियां, काला जीरा, सौंफ, कचूर, पीपल, पिपलामूल, चीता, गजपीपल, अजवायन और अजमोद, इन सबको बराबर लेकर चूर्णकर तक्रमें मिलादेवे। यह सब मिलाकर स्वादमें किंचित् खट्टा और चरपरा होजायगा। फिर इसको घीके चिकने पात्रमें भरकर रख देवे। जब देखे कि यह बहुत खट्टा और चरपरे स्वादका बनगया और खानेमें मुखको प्यारा लगने लगा तो इस तक्रारिष्टको भोजनके समय जब जब प्यास लगे इसको मात्राके अनुसार पीया करे। क्रमसे भोजनके आदि मध्य तथा अन्तमें पीवे। यह दीपन, पाचन, रुचिकारक, वर्णकरता, कफ और वायुको अनुलोमन करनेवाला, गुदाकी सूजन, खुजली और पीडाको दूर करनेवाला तथा बलको बढानेवाला है॥ ७२॥ ७३॥ ७४॥ ७५॥

तक्रप्रयोग।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ट्वाकुम्भंप्रलेपयेत्। तक्रंवादधिवातत्रजातमर्शोहरंपिबेत्॥ ७६॥ वातश्लेष्मार्शसांतक्रात्परंनास्तीहभेषजम्। तत्प्रयोज्यंयथादोषंसस्नेहंरूक्षमेववा॥ ७७॥ सप्ताहंवादशाहंवा पक्षंमासमथापिवा। बलकालविशेषज्ञोभिषक्तक्रंप्रयोजयेत्॥ ॥ ७८॥ अत्यर्थमृदुकायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत्। सायंवालाजसक्तूनांदद्यात्तक्रावलेहिकाम्॥ ७९॥ जीर्णेतक्रेप्रदद्याद्वातंक्रपेयां

ससैन्धवाम् ॥ ८० ॥ तक्रानुपानंसस्नेहंतक्रौदनमतःपरम् । यूषैर्मांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसंयुतैः ॥ ८१ ॥

चित्रककी जडकी छालको पीसकर घडेके भीतर लेपकर देवे । उस घडेमें बनाया हुआ दही अथवा तक्र पीनेसे अर्शरोग दूर होताहै, वायु और कफसे उत्पन्न हुए अर्शरोगमें तक्रसे वढकर और कोई औषध नहीं है । इसलिये तक्र (छलवलायाहुआ दही) दोषानुसार स्निग्ध अथवा रूक्ष भोजनके साथ सेवन करावै । दोषोंका वल और कालको विचारकर वैद्य तक्रको सात दिन अथवा दश दिन या पंद्रह दिन वा एक महीने तक सेवन करावै । जिस अर्शरोगीकी जठराग्नि मंद होगई हो उसकी तक्रद्वारा ही चिकित्सा करनी चाहिये । अथवा सायंकाल खीलोंके सत्तू, तक्रमें मिलाकर चटावै । तक्रके जीर्ण होनेपर तक्र (विना मक्खन निकाली छाछ) में सेंधानमक मिला पिलावे । पानीकी जगह भी तक्रका ही अनुपान करावै । और घृतयुक्त चांवलोंको भी तक्रके ही साथ खिलावे । अथवा तक्रमें ही सिद्ध किया यूष अथवा मांसरसके साथ तक्रमें वनाया अन्न प्रयुक्त करे॥७६-८१॥

कालक्रमज्ञःसहसानचतक्रंनिवारयेत् । तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपशमोमतः ॥ ८२ ॥ अपकर्षोयथोत्कर्षोनत्वन्नादपकृष्यते । शक्त्यागमनरक्षार्थंदार्ढ्यार्थमनलस्यच । वलोपचयवर्णार्थमेषनिर्दिश्यतेक्रमः ॥ ८३ ॥

कालक्रमको जाननेवाला वैद्य तक्रके प्रयोगको एकदम ही न छोडादेवे । किंतु जो तक्र १ महीना सेवन कियागया हो उसका क्रमपूर्वक एक महीनेमें ही त्याग करावै । जिसप्रकार १ महीनेमें क्रमक्रमसे तक्रका प्रयोग वढाया गया हो उसी क्रमसे दूसरे महीनेमें घटाना चाहिये । उसका यह क्रम है कि प्रथम महीनेमें अन्नका परिमाण क्रमसे घटाता जाय और तक्रका वढाता जाय । और दूसरे महीनेमें तक्रका परिणाम घटाताजाय और अन्नका वढाताजाय । इस प्रकार शरीरकी रक्षाके लिये और अग्निकी दृढताके लिये तथा वल पुष्टि और वर्णकी वृद्धिके लिये यह क्रम कहागयाहै इस प्रकार तक्रके सेवन करनेसे अर्शरोग निवृत्त होकर फिर कभी नहीं होता ॥८२॥८३॥

रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहंयतश्चानुद्धृतंघृतम् ॥ ८४ ॥ तक्रंदोषाग्निवलवित्त्रिविधंतत्प्रयोजयेत् । हतानिनविरोहन्तितक्रेणगुदजानितु ॥ ॥ ८५ ॥ भूमावपिनिषिक्तंतद्दहेत्तक्रंतृणोलुपम् । किंपुनर्दीप्तकायाग्नेःशुष्काण्यर्शांसिदेहिनः ॥ ८६ ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेषुरसःस-

म्यगुपैतियः । तेनपुष्टिर्बलंवर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥ ८७ ॥ वातश्लेष्मविकाराणांशतश्चापिनिवर्त्तते । नास्तितक्रात्परंकिञ्चिदौषधं कफवातजे ॥ ८८ ॥

दोष, अग्नि और बलको जाननेवाला वैद्य तीन प्रकारसे तक्रका प्रयोग करे । जैसे–१ रूक्षतक्र (घृतरहित छाछ) यह कफप्रधान अर्शमें प्रयुक्त किया जाताहै । २ अर्धोद्धृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे आधा मक्खन निकाला गया हो) यह समवातकफके अर्शमें प्रयुक्त कियाजाताहै । ३ अनुद्धृतस्नेहतक्र (जिसमेंसे मक्खन बिल्कुल न निकाला हो) यह वातप्रधान अर्शमें प्रयुक्त करना चाहिये । तक्रसेवनसे नष्टहुआ अर्शरोग फिर कभी प्रकट नहीं होता । तक्रको पृथ्वीमें कांटा, कुशा आदिकी जडोंमें डालनेसे वह जडें भी नष्ट होजातीहैं । फिर यदि दीप्ताग्नि मनुष्यका शुष्क अर्शरोग जातारहे, तो क्या आश्चर्य है । तक्रके सेवनसे शरीरके छिद्र शुद्ध होकर संपूर्ण शरीरमें रस उत्तम रीतिसे प्रवाहित होताहै । उससे पुष्टि, बल, वर्ण और हर्ष उत्पन्न होताहै । और उससे वातकफके सैकडों रोग नष्ट होतेहैं । कफवातप्रधान रोगोंमें तक्रसे बढकर कोई औषधि नहीं है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अर्शोहर पेया ।

पिप्पलींपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् । शृङ्गवेरमजाजींचकारवींधान्यतुम्बुरुम् ॥ ८९ ॥ बिल्वंकर्कटकंपाठांपिष्ट्वापेयांविपाचयेत् । फलाम्लांयमकस्नेहांतांदद्याद्गुदजापहाम् ॥ ९० ॥ एतैश्चैवखडंकुर्य्यादेतैश्चैवपचेज्जलम् । एतैश्चैवघृतंसाध्यमर्शसांविनिवृत्तये ॥ ९१ ॥

पीपल, पिपलामूल, चित्रक, गजपीपल, अदरख, कालाजीरा, कलौंजी, धनियां, बेलगिरी, नैपाली धनियां, काकडासिंगी, पाढला, इनको पीसकर इनके साथ पेया बनावे । उस पेयामें अनारका रस, घृत और तेल मिलाकर सेवन करे (पीवे) तो अर्शरोग नष्ट हो । तथा इन्हीं सब द्रव्योंसे खण्डयूष क्वाथ और घृत सिद्धकर पानकरे तो अर्शरोग शान्त हो ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥

अर्शोहर यवागू ।

शटीपलाशसिद्धांवापिप्पल्यानागरेणवा । दद्याद्यवागूंतक्राम्लांमरिचैरवचूर्णिताम् ॥ ९२ ॥ शुष्कमूलकयूषंवायूषंकौलत्थमेववा ।

दधित्थबिल्वयूषंवासकुलत्थमकुष्ठकम् ॥९३॥ छागलंवारसंदद्याद्यूषैरेतैर्विमिश्रितम् । लावादीनांफलाम्लंवासतक्रंग्राहिभिर्युतम् ॥९४॥

कचूर और पलाश (ढाक) के साथ या पीपल और सोंठके साथ यवागू सिद्ध करके उसमें तक्रकी खटाई, काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर अर्शरोगवाले मनुष्यको देवे सूखी मूलीका यूष अथवा कुलथीका यूष वा कैथ और बेलगिरिका यूष अथवा कुलथी और मोठका यूष या इन्हीं उपरोक्त यूषोंमें मिलायाहुआ बकरेका मांसरस अथवा अनारका रस और तक्रकी खटाईसे संयुक्त संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ लवा आदिकोंका मांसरस भोजनमें प्रयुक्त करे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

अर्शमें पथ्य ।

रक्तशालिर्महाशालिःकलमोजाङ्गलःसितः । शारदःषष्टिकश्चैवस्यादन्नविधिरर्शसाम् ॥ ९५ ॥ इत्युक्तोभिन्नशकृतामर्शसाञ्चविधिक्रमः । येऽत्यर्थंगाढशकृतस्तेषांवक्ष्यामिभेषजम् ॥ ९६ ॥

लाल शालीचावल, महाशालीचावल, चोहोंडा और वासंतीके चावल, जांगल, सित, शारद और साठीचावल इन सबका भात अर्शरोगमें हितकारी है । जिस अर्श रोगवालेका मल फटाहुआ और पतला हो यह चिकित्साविधि उसके लिये वर्णन की गई है । अब कठोर और गाढे मलवाले अर्शरोगीकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

सस्नेहैःसक्तुभिर्युक्तंप्रसन्नांलवणीकृताम् । दद्यान्मत्स्यण्डिकांपूर्वंभक्षयित्वासनागराम् ॥ ९७ ॥ गुडंसनागरंपाठांफलाम्लंपाययेच्चतम् । गुडंघृतंयवक्षारंयुक्तंवापिप्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥ यमानीं नागरंपाठांदाडिमस्यरसंगुडम् । सतक्रंलवणंदद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ ९९ ॥

पहिले सोंठका चूर्ण और मिसरी मिलाकर भक्षण करे फिर स्नेहयुक्त सत्तू और सेंधे नमकयुक्त सुरामण्ड पीवे तो अर्शरोगीके मलकी कठोरता दूर हो । अथवा गुड, सोंठ, पाठा, अनारका रस यह सब मिलाकर पीवे । या गुड, घृत, जवाखार इनको मिलाकर भक्षण करे । अथवा अजवायन, सोंठ, पाठला, अनारका, रस, गुड, तक्र, सेंधानमक यह सब मिलाकर पीवे । इन सब योगोंके सेवनसे अधोवायु और मलका अनुलोमन होताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

दुःस्पर्शकेनबिल्वेनयमान्यानागरेणवा । एकैकेनापिसंयुक्तापाठा-

हन्त्यर्शसांरुजम् ॥ १०० ॥ प्रागुक्तान्यमकेभृष्टाञ्छक्तुभिश्चावचूर्णितान् । करञ्जपल्लवान्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनान् ॥ १०१ ॥ मदिरांवासलवणांसीधुंसौवीरकंतथा । गुडनागरसंयुक्तंपिबेद्वापौर्वभक्तिकम् ॥ १०२ ॥

जवासा, वेलगिरि, अजवायन और सोंठ इनमेंसे किसी एकके साथ पाटला (पाढ) का क्काथ पीनेसे अर्शरोग दूर होताहै पूर्वोक्त यमक (घृत, तैल) में करंजुयेके पत्रोंको भूनकर सत्तुओंके साथ सेवनकरे तो मल और अधोवायुका अनुलोमन होताहै । अथवा भोजनसे प्रथम सेंधानमक मिलाकर मद्य पीनेसे या गुड और सोंठ मिलाकर सीधु और सौवीरक पीनेसे अधोवायु और विष्ठाका अनुलोमन होताहै ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अर्शनाशक घृत ।

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः । फाणितेनचसंयोज्यफलाम्लंदापयेद्घृतम् ॥ १०३ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली । शृङ्गवेरंयवक्षारंतैःसिद्धंवापिवेद्घृतम् ॥ १०४ ॥ चव्यचित्रकसिद्धंवागुडक्षारसमन्वितम् । पिप्पलीमूलसिद्धंवासगुडक्षारनागरम् ॥ १०५ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः । सिद्धंसर्पिर्विधातव्यंवातवर्चोविबन्धनुत् ॥ १०६ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार, कलौंजी, धनियां, जीरा और फाणित इनमें अनारके रसकी खटाई और घृत मिलाकर सेवन करे । अथवा पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, जवाखार, अदरख इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करै । अथवा चव्य और चित्रक, अथवा गुड और जवाखारमें मिलाया घृत अथवा पीपलामूलसे सिद्धकिया घृत या गुड जवाखार और सोंठके चूर्णयुक्त घृतको सेवन करै । अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनारका रस और धनियां इनसे सिद्ध किया घृत सेवन करै तो अधोवायु और मलकी रुकावट दूर होतीहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

चव्यादि घृत ।

चव्यंत्रिकटुकंपाठांक्षारकुस्तुम्बुरूणिच । यमानींपिप्पलीमूलसुभेचविडसैन्धवे ॥ १०७ ॥ चित्रकंविल्वमभयांपिष्ट्वासर्पिर्विपाचयेत् । शकृद्वातानुलोम्यार्थंजातेदध्निचतुर्गुणे ॥ १०८ ॥ प्रवाहि-

कांगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंपरिस्रवम् । गुदवंक्षणशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०९ ॥

चव्य, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ, जवाखार, धनियां अजवायन, पीपलामूल, विडलवण, सेंधानमक, चित्रक, वेलगिरि और हरड इन सवका कल्क कर चारगुने दहीके साथ घृतको सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे अधोवात और मलका अनुलोमन होताहै तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश; मूत्रकृच्छ परिस्राव, गुदाकी पीडा, वंक्षणोंकी पीडा यह सब नष्ट होजातेहैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

नागरादिघृत ।

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली । श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यंविल्वपाठायमानिकाः ॥ ११० ॥ चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरेतैर्विपाचयेत् । चतुर्गुणेनदध्नाचतद्घृतंकफवातनुत् ॥ १११ ॥ अर्शांसिग्रहणीदोषंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् । गुदभ्रंशार्त्तिमानाहंघृतमेतद्व्यपोहति ॥ ११२ ॥

सोंठ, पिपलामूल, चित्रक, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, वलेगिरी, पाढ और अजवायन इन सवके कल्क और चांगेरीके रस तथा ४ गुने दहीके साथ सिद्ध किया घृत सेवन करनेसे कफवात, अर्शरोग, ग्रहणी विकार, मूत्रकृच्छ, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, गुदाकी पीडा और अफारा यह सव दूर होतेहैं ॥ ११०-११२ ॥

पिप्पल्यादिघृत ।

पिप्पलींनागरंपाठांश्वदंष्ट्राञ्चपृथक्पृथक् । भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वाकषायमुपकल्पयेत् ॥ ११३ ॥ कर्षीरंपिप्पलीमूलंव्योपञ्चव्यञ्च चित्रकम् । पिष्ट्वाकषायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक् ॥ ११४ ॥ पलानिसर्पिपस्तस्मिंश्चत्वारिंशत्प्रदापयेत् । चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यंसर्पिपादधिपड्गुणम् ॥ ११५ ॥ मृद्वग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत् । तदाहारेविधातव्यंपानेप्रायोगिकेविधौ ॥ ११६ ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नंगुल्महृद्रोगनाशनम् । शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम् ॥ ११७ ॥ कासहिक्कारुचिश्वाससूदनंपार्श्वशूलनुत् । वलपुष्टिकरंवर्ण्यमग्निसन्दीपनंपरम् ॥ ११८ ॥

पीपल, सोंठ, पाढ और गोखरू यह प्रत्येक तीन तीन पल लेकर क्काथ करे। इस क्काथको छानकर कण्डीरतुलसी, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, चित्रक यह सब दो २ पल लेकर इनका कल्क बनावे। तथा चालीस पल घृत और चालीस पल चांगेरीका रस, घीसे छः गुना, दही इन सबको मिलाकर घृतपाक विधिसे घृत सिद्ध करे। इस घृतको विधिपूर्वक सेवन करनेसे ग्रहणी दोष, बवासीर, गुल्म, हृद्रोग, सूजन, प्लीहा, उदररोग, अफारा, मूत्रकृच्छ, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल, यह सब दूर होतेहैं। तथा बल, पुष्टि, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

हरीतकीप्रयोग।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरीतकीम्। त्रिवृद्दन्तीयुतांवापिभक्ष-येदानुलोमिकीम् ॥ ११९ ॥ विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येननि-र्मले। गुदेऽर्शांसिप्रशाम्यंतिपावकश्चाभिवर्द्धते ॥ १२० ॥

घीमें भुनीहुई हरडोंको गुड और पीपलके साथ या निशोथ और दंतीके साथ सेवन करनेसे विष्ठाका अनुलोमन होताहै तथा अधोवायु मल, कफ और पित्तका अनुलोमन होकर गुदा शुद्ध होजातीहै और बवासीर नष्ट होतीहै तथा जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

अन्यशाकादियोग।

बर्हितित्तिरिलावानांरसानम्लान्सुसंस्कृतान्। दक्षाणांवर्त्तकाना-श्चदद्याद्विड्वातसंग्रहे ॥ १२१ ॥ त्रिवृदन्तीपलाशानांचाङ्गेर्याश्चि-त्रकस्यच। सुभृष्टंयमकेदद्याच्छाकंदधिसमन्वितम् ॥ ११२ ॥ उपोदिकांतण्डुलीयंवीरांवास्तुकपल्लवान्। सुवर्चलांसलोणीकांय-वशाकमवल्गुजम् ॥ १२३ ॥ काकमाचींरुहापत्रंमहापत्रंतथाम्लि-काम्। जीवन्तीशटिशाकश्चशाकंगृञ्जनकस्यच ॥ १२४ ॥ दधिदाडिमसिद्धानिभृष्टानियमकेऽपिच। धान्यनागरयुक्तानिशा-कान्येतानिदापयेत् ॥ १२५ ॥

मल और अधोवायुका अवरोध न होवे तो मोर, तीतर और लवाके मांसरसको खटाई डालकर सेवन करावे। अथवा निशोथ, दन्ती, पलाश, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दहीकी मलाई मिला सेवन करावे। अथवा पोई, चौलाई, काकोली, बथुआ, सोंचली, नोनिया, यवशाक, बावची, मकोय और

गिलोयके पत्र, मानशाक, अम्लिका, जीवन्ती, कचूर और गाजर इनके शाकको घी और तेलमें भूनकर दही तथा अनारकी खटाई मिला और धनियां तथा सोंठसे संयुक्तकर सेवन करावै ॥ १२१-१२५ ॥

गोधाश्वावित्सलोपाकमार्जारोष्ट्रगवामपि । कूर्मशल्लकयोश्चैवसाधयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनंदद्याद्रसैस्तैर्वातशान्तये ॥१२६॥ ज्ञात्वावातोल्वणंरूक्षंदीप्ताग्निंगुदजातुरम् ॥ १२७ ॥ मदिरांशार्करंजातंशीधुंतक्रंतुषोदकम् । अरिष्टंदधिमण्डंवाशृतंवाशिशिरंजलम् ॥ १२८ ॥ कण्टकार्य्याशृतंवापिशृतंनागरधान्यकैः । अनुपानंभिषग्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ १२९ ॥

गोह, सेह, लोपाक, ऊंट, विलाव, कछुआ, शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहेहुए शाकोंके समान सिद्धकर लाल चावलोंके भातके साथ सेवन करनेसे वायुका अर्शरोग शान्त होताहै, वातप्रधान अर्शरोगमें रूक्षता और दीप्ताग्नि होनेसे मद्य, शर्कराकी मद्य, सीधु, तक्र, तुषोदक, अरिष्ट, दधिमण्ड, गर्मकर ठण्डा, किया जल अथवा कटेलीसे सिद्धकिया जल या सोंठ और धनियेसे सिद्ध किया जल पीनेके लिये देवे तो अधोवायु और मलका अनुलोमन होताहै ॥१२६॥ १२७ ॥ १२८ ॥१२९॥

अनुवासनयोग्य रोगी ।

उदावर्तपरीतायेयेचात्यर्थंविरूक्षिताः ।
विलोमवाताःशूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ॥ १३० ॥

जिस अर्शवालेको उदावर्त्त और अत्यंत रूक्षता हो, जिसकी वायु विलोमगति होगईहो तथा जो शूलसे पीडित हो उसको अनुवासन कर्म करना हित है ॥१३०॥

अनुवासन तैल ।

पिप्पलींमदनंविल्वंशताह्वांमधुकंवचाम् । कुष्ठंशटींपुष्कराख्यंचित्रकंदेवदारुच ॥ १३१ ॥ पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंपयसाद्विगुणेनच । अर्शसांमूढवातानांतच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ १३२ ॥ गुदनिःसरणं शूलंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् । कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहंवंक्षणाश्रयम् ॥ १३३ ॥ पिच्छास्रावंगुदेशोफवातवर्चोविनिग्रहम् । उत्थानंबहुशोयच्चजयेत्तच्चानुवासनात् ॥ १३४ ॥

पीपल, मैनफल, वेलगिरि, सौंफ, मुलैठी, वच, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चित्रक, देवदारू इन सबका कल्क बनाकर दोगुना दूध मिला तैलको सिद्धकरे । यह तैल अनुवासनकर्म, अर्शरोग और मूढवातमें परम उत्तम है। इसके द्वारा अनुवासन करनेसे गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, जांघ और पीठकी दुर्वलता, वंक्षणका अफारा, परिस्राव, गुदाकी सूजन, अधोवायु और विष्ठाका विवंध वारवार दस्तकी शंका होना, यह सब दूर होतेहैं ॥ १३१-१३४ ॥

आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैः । दार्वन्तैःस्तब्धशूलानि गुदजानिप्रलेपयेत् ॥ १३५ ॥ दिग्धातैःप्रस्रवन्त्याशुश्लेष्मपिच्छां-सशोणिताः । कण्डूःस्तम्भसरुक्शोफःस्रुतानांविनिवर्तते ॥१३६॥

ऊपर कहेहुए अनुवासनतैलके पीपलसे लेकर देवदारू पर्यन्त संपूर्ण द्रव्योंको वारीक पीसकर घृत तैल मिला किंचित् गरम करे फिर इसका लेप करनेसे ववासी-रकी कठोरता और शूल नष्ट होजाताहै । और इस लेपसे रक्तसहित चिपटाहुआ गाढा कफ शीघ्र निकलजाताहै । उसके निकलनेसे अर्शकी खुजली, कठोरता, पीडा, सूजन-यह सब दूर होजातेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

निरूहण कर्म ।

निरूहंवाप्रयुञ्जीतसक्षीरंदशमूलिकम् ।
समूत्रस्नेहलवलंकल्कैर्युक्तंफलादिभिः ॥ १३७ ॥

अथवा दूध, दशमूल, गोमूत्र, चतुःस्नेह, सेंधानमक और मैनफलका क्वाथ करके निरूहणवस्तिकर्म करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हरीतकी अरिष्ट ।

हरीतकीनांप्रस्थार्द्धंप्रस्थमामलकस्यच स्यात्कपित्थाद्दशपलंततोऽ-र्द्धाचेन्द्रवारुणी ॥ १३८ ॥ विडङ्गंपिप्पलीलोध्रंमरिचंसैलवालुकम्। द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेविपाचयेत् ॥१३९॥ द्रोणशेषेरसेतस्मि-न्पूतेशीतेसमावपेत् । गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्पक्षंघृतभाजने ॥१४०॥ पक्षादूर्द्ध्वंभवेत्पेयाततोमात्रांयथाबलम् । अस्याभ्यासादरिष्टस्य नश्यन्तिगुदजानपि ॥ १४१ ॥ ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदरा-पहाः । कुष्ठशोफारुचिहरोबलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ १४२ ॥ सिद्धो-यमभयारिष्टःकामलाश्वित्रनाशनः । क्रिमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजय-क्ष्मज्वरान्तकृत् ॥ १४३ ॥

हरडे आधा प्रस्थ, आँवले १ प्रस्थ, कैथ १० पल, इन्द्रायण ५ पल, वायविडंग, पठानी लोध, काली मिर्च और एलवा प्रत्येक २ पल इन सबको चार द्रोण जलमें डालकर क्वाथ करे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। जब शीतल होजाय तो इसमें २०० पल गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें ढककर रखदेवे। १५ दिनके बाद अग्निके बलके अनुसार उचित मात्रासे सेवन करे। इस अरिष्टके निरन्तर सेवनसे बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं तथाबल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै। यह सिद्ध (अनुभव किया हुआ) अभयारिष्ट कामला और श्वित्रकुष्ठको दूर करताहै। तथा कृमिरोग, ग्रंथी, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर इन सबको नष्ट करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

दंत्यरिष्ट।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः । भागान्पलांशानापोथ्य जलद्रोणेविपाचयेत् ॥ १४४ ॥ त्रिफलायादलानाञ्चप्रक्षिप्यत्रिपलंततः । रसेचतुर्थेशेषेतुपूतेशीतेसमावपेत् ॥ १४५ ॥ तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेन्मासार्द्धंघृतभाजने । तन्मात्रयापिबेन्नित्यमर्शोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंवातवर्चोऽनुलोमनम् । दीपनश्चारुचिघ्नश्चदन्त्यारिष्टमिदंविदुः ॥ १४७ ॥

दंती, चित्तेकी जड, दोनों पंचमूल इन बारह औषधियोंको एक एक पल लेवे। त्रिफला ३ पल, इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें क्वाथ पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर छानकर ठण्डा करे फिर इसमें १ तुला गुड मिला घीके चिकने पात्रमें भर १५ दिन पर्यन्त रक्खा रहनेदे। फिर इसमेंसे बलके अनुसार उचित मात्रासे नित्य सेवन करे तो बवासीर, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होतेहैं। तथा अधोवायु और मलका अनुलोम होताहै यह दंतीअरिष्ट अग्निको संदीपन करनेवाला और अरुचिनाशक है ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

फलारिष्ट।

हरीतकीफलप्रस्थंप्रस्थमामलकस्यच । विशालायादधित्थस्यपाठाचित्रकमूलयोः ॥ १४८ ॥ द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम्। पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ १४९ ॥ गुडस्यैकांतुलांवैद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने । पक्षस्थितंपिबेदेनंग्रहण्यर्शोविका-

रवान् ॥ १५० ॥ हृत्पाण्डुरोगंप्लीहानंकामलांविषमज्वरम् । वर्चो-मूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम् ॥ १५१ ॥ कासंगुल्मभुदावर्त्तफलारिष्टोव्यपोहति । अग्निसन्दीपनोह्येषकृष्णात्रेयेण भाषितः ॥ १५२ ॥

उत्तम हरडे १ प्रस्थ, ऑवले १ प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड, कैथके फल, पाढ और चीतेकी जडका छिलका यह प्रत्येक दो २ पल इन सबको कूटकर २ द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश रहनेपर छानकर ठण्ढा करदेवे। फिर इसमें १ तुला गुड मिला, घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। १५ दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे तो इस फलारिष्टके सेवनसे संग्रहणी, बवासीर, हृद्रोग, पाण्डु, प्लीहा, कामला, विषमज्वर, मलकी रुकावट, मूत्रकी रुकावट, अधोवायुकी रुकावट, मंदाग्नि, खांसी, गुल्म और उदावर्त्त यह सब रोग नष्ट होते हैं ॥ १४८-१५२ ॥

दुरालभायाःप्रस्थःस्याच्चित्रकस्यवृषस्यच । पथ्यामलकयोश्चैवपाठायानागरस्यच ॥ १५३ ॥ दन्त्याश्चद्विपलान्भागाञ्जलद्रोणेविपाचयेत् । पादावशेषेपूतेचसुशीतेशर्कराशतम् ॥ १५४ ॥ प्रक्षिप्य स्थापयेत्कुम्भेमासार्द्धंघृतभाजने । प्रलिप्तेपिप्पलीचव्यप्रियंगुक्षौद्रसर्पिषा ॥ १५५ ॥ तस्यमात्रांपिबेत्कालेशार्करस्ययथाबलम् । अर्शांसिग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम् ॥ १५६ ॥ शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानग्निमार्दवम् । हृद्रोगंपाण्डुरोगश्चसर्वमेतेनसाधयेत् ॥ १५७ ॥

जवासा १ प्रस्थ, चित्रक, अडूसा, हरड, आँवला, पाढ, सोंठ, दंती यह प्रत्येक २ पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेषरहनेपर छानकर ठण्ढा करे फिर इसमें १०० पल खांड मिलाकर घृतके चिकने पात्रमें भरकर रखदेवे। परन्तु इसको पात्रमें डालनेसे पहिले पात्रके अन्दर, पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहद और घी इनका लेप करलेवे। फिर पंद्रह दिनके अनन्तर बलानुसार उचित मात्रासे सेवन करे तो बवासीर, संग्रहणी, उदावर्त्त, अरुचि, मलमूत्र और अधोवायुका अवरोध, उद्गार, विबंध, मंदाग्नि, हृद्रोग और पाण्डुरोग यह सब दूर होतेहैं ॥ १५३-१५७ ॥

नवस्यामलकस्यैकांकुर्य्याज्जर्जरितांतुलाम् । कुडवांशंविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच ॥ १५८ ॥ पाठांमूलञ्चपिप्पल्याःक्रमुकंचव्यचि-

हरडे आधा प्रस्थ, आँवले १ प्रस्थ, कैथ १० पल, इन्द्रायण ५ पल, वायविडंग, पठानी लोध, काली मिर्च और एलवा प्रत्येक २ पल इन सबको चार द्रोण जलमें डालकर क्वाथ करे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। जब शीतल होजाय तो इसमें २०० पल गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें ढककर रखदेवे। १५ दिनके बाद अग्निके बलके अनुसार उचित मात्रासे सेवन करे। इस अरिष्टके निरन्तर सेवनसे बवासीर, संग्रहणी, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, कुष्ठ, सूजन, अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं तथाबल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै। यह सिद्ध (अनुभव किया हुआ) अभयारिष्ट कामला और श्वित्रकुष्ठको दूर करताहै। तथा कृमिरोग, ग्रंथी, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर इन सबको नष्ट करताहै ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

दंत्यरिष्ट।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः । भागान्पलांशानापोथ्य जलद्रोणेविपाचयेत् ॥ १४४ ॥ त्रिफलायादलानाञ्चप्रक्षिप्यत्रिपलंततः । रसेचतुर्थेशेषेतुपूतेशीतेसमावपेत् ॥ १४५ ॥ तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेन्मासार्द्धंघृतभाजने । तन्मात्रयापिवेन्नित्यमर्शोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ १४६ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंवातवर्चोऽनुलोमनम् । दीपनञ्चारुचिघ्नञ्चदन्त्यरिष्टमिदंविदुः ॥ १४७ ॥

दंती, चित्तेकी जड, दोनों पंचमूल इन बारह औषधियोंको एक एक पल लेवे। त्रिफला ३ पल, इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें क्वाथ पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर छानकर ठण्डा करे फिर इसमें १ तुला गुड मिला घीके चिकने पात्रमें भर १५ दिन पर्यन्त रक्खा रहनेदे। फिर इसमेंसे बलके अनुसार उचित मात्रासे नित्य सेवन करे तो बवासीर, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होतेहैं। तथा अधोवायु और मलका अनुलोम होताहै यह दंतीआरिष्ट अग्निको संदीपन करनेवाला और अरुचिनाशक है॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

फलारिष्ट।

हरीतकीफलप्रस्थंप्रस्थमामलकस्यच । विशालायादधित्थस्यपाटाचित्रकमूलयोः ॥ १४८ ॥ द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम्। पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ १४९ ॥ गुडस्यैकांतुलांवैद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने । पक्षस्थितंपिवेदेनंग्रहण्यर्शोविका-

रुकावट, खांसी और सब प्रकारके प्रबल कफरोग तथा सलवट पडना, सफेद बाल-होना और वालोंका गिरना यह सब रोग नष्ट होते हैं, वातनाशक पत्रोंके गरम २ क्वाथसे बवासीरके मस्सोंको धोना सूखी बवासीरको नष्ट करताहै। इस प्रकार सूखी अर्शकी अनुभूत चिकित्साका वर्णन कियागया॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥ १६१॥ ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

रक्तार्शकी चिकित्सा।

चिकित्सितमिदंसिद्धंस्राविणांशृण्वतःपरम्।
तत्रानुबन्धोद्विविधःश्लेष्मणोमारुतस्यच ॥ १७० ॥

अब रक्तस्राववाली अर्श (खूनी बवासीर) की सिद्ध चिकित्साका वर्णन करतेहैं। उस रक्तस्रावी बवासीरमें दो प्रकारके अनुबंध होतेहैं। एकमें कफका अनुबंध और दूसरीमें वायुका अनुबंध होताहै ॥ १७० ॥

वातानुबन्धीरक्तार्श।

विड्श्यावंकठिनंरूक्षञ्चाधोवायुर्नवर्त्तते । तनुचारुणवर्णञ्चफेनिलञ्चासृगर्शसाम्॥ १७१ ॥ कट्यूरुगुदशूलञ्चदौर्बल्यंयदिवाधिकम्। तत्रानुबन्धोवातस्यहेतुर्यदिविरूक्षणम् ॥ १७२ ॥

जिस रक्तार्शमें मलकाला और कठिन तथा रूक्ष हो और अधोवायु न निकल सकताहो तथा रुधिर पतला, लालवर्ण और झागदार आताहो एवं कमर,जांघों और पीठमें पीडा तथा दुर्बलता हो, और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे इसकी उत्पत्ति हुईहो तो इस खूनी बवासीरमें वायुका अनुबंध जानना ॥ १७१ ॥, १७२ ॥

कफानुबंधी रक्तार्श।

शिथिलंश्वेतपीतञ्चविट्स्निग्धंगुरुशीतलम्। यद्यर्शसांघनञ्चासृक्तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम् ॥ १७३ ॥ गुदंसपिच्छंस्तिमितंगुरुस्निग्धञ्चकारणम् । श्लेष्मानुबन्धोविज्ञेयस्तत्ररक्तार्शसांबुधैः ॥ १७४ ॥

जिस रक्तार्शमें शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल मल उतरताहो तथा रुधिर गाढा और तारदार कुछ पीतवर्ण, पिच्छिल हो, जिसमें गुदा कफसे लिपीसी रहे तथा गीली रहे और यह अर्श स्निग्ध और भारी पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुईहो तो इस खूनी बवासीरमें कफका अनुबंध जानना ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

स्निग्धशीतंहितंवातेरूक्षशीतंकफानुगे।
चिकित्सितमिदंतस्मात्सम्प्रधार्य्यप्रयोजयेत्॥ १७५ ॥

त्रकौ । मञ्जिष्टानालुकंलोध्रंपलिकान्युपकल्पयेत् ॥ १५९ ॥ कुष्ठं दारुहरिद्राञ्चसुराह्वंसारिवाद्वयम् । इन्द्राह्वंभद्रमुस्तञ्चकुर्य्यादर्द्धं पलोन्मितम् ॥ १६० ॥ चत्वारिनागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच । द्रोणाभ्यामम्भसोद्वाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् ॥ १६१ ॥ पादावशेषेपूतेचशीतेतस्मिन्समावपेत् । मृद्वीकाद्वयाढकरसंशीतं निर्य्यूहसंमितम् ॥ १६२ ॥ शर्करायाश्चभिन्नायादद्याद्द्विगुणितांतुलाम् । कुसुमस्यरसस्यैकमर्द्धप्रस्थंनवस्यच ॥ १६३ ॥ त्वगेलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेशरान् । चूर्णयित्वातुमतिमान्कार्षिकानत्रदापयेत् ॥ ॥ १६४ ॥ तत्सर्वंस्थापयेत्पक्षंशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पिषा किञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते ॥ १६५ ॥ पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयंकनकोनाम विश्रुतः । पेयःस्वादुरसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः ॥ १६६ ॥ अर्शांसिग्रहणीदोषमानाहमुदरंज्वरम् । हृद्रोगंपाण्डुतांशोषंगुल्मवर्चोविनिग्रहम् ॥ १६७ ॥ कासंश्लेष्मामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति । वलीपलितखालित्यंदोषजंचव्यपोहति ॥ १६८ ॥ पत्रभंगोदकैः शौचंकुर्य्यादुष्णेनचाम्भसा । इतिशुष्कार्शसांसिद्धमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥ १६९ ॥

नवीन पकेहुए आँवले १ तुला (५ सेर) वायविडंग, १ कुडव, पीपल, १ कुडव-कालीमिर्च १ कुडव, और पाठ, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चित्रक, मंजीठ, एलवा और लोध यह प्रत्येक एक २ पल लेवे । कूठ, दारूहलदी, देवदारु, दोनों सारिवा, कुडा, भद्रमोथा यह प्रत्येक आधा२ पल लेवे।नवीन नागकेशर४ पल लेवे । इन सबको कूटकर दो द्रोण पानीमें पकावे । चतुर्थांश शेपरहने पर उतारकर छान लेवे । फिर ठण्डा होनेपर इसमें२आढक मुनक्का रस,२तुला उत्तम देशी खांड,आधा प्रस्थ उत्तम शहद और एक एक कर्ष दालचीनी, इलायचीके वीज,तेजपात, मोथा, सुगंधवाला, सुपारी, खस और नागकेशर इन सबका पृथक् २ चूर्ण मिलावे । इन सबको मिलाकर पात्रका मुख वन्दकर १५ दिन रक्खा रहने देवे । इस पात्रके भीतर प्रथम ही घृत, अगर और खांडका लेप कर देना चाहिये । इसको कनकारिष्ट कहतेहैं यह मधुर, हृदयको प्रिय, अन्नमें रुचि वढानेवाला परमोत्तम अरिष्ट है । इसके सेवनसे ववासीर संग्रहणी, अफारा, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग, पाण्डुरोग, शोषरोग, गुल्म, मलकी

करना चाहिये। पित्तप्रधान रक्तार्शका रुधिर ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त होताहै। यदि उसमें वात और कफका अनुबंध न हो तो उसको सर्वथा रोकदेना ही उचित है॥ १८२-१८४॥

संग्राही योग।

कुटजत्वङ्निर्य्यूहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः। त्वग्दाडिमस्यतद्वत्सनागरश्चन्दनरसश्च ॥१८५॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाःसनागराःकथिताः । रक्तार्शसांप्रशमानादार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥१८६॥ सातिविषाकुटजत्वक्फलश्चरसाञ्जनम् । मधुयुक्तंरक्तापहंदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन ॥ १८७ ॥

कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पीनेसे स्निग्धरक्त बन्द होताहै एवं अनारके छिलकेके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अथवा चंदनके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रक्तकी प्रवृत्ति बन्द होजातीहै। अथवा चंदन, चिरायता, जवासा और सोंठका काथ पीनेसे रक्तार्श दूर होताहै । एवं दारुहल्दी, दालचीनी, खस और नीमका क्वाथ सेवन करनेसे अथवा अतीस, कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ और रसौत इन सबके चूर्णको शहद और तंदुलजलके साथ जब २ प्यास लगे तब २ पिलाया करे तो रक्तार्श दूरहो ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

कुटजादि रसायन।

कुटजत्वचोविपाच्यंपलशतमार्द्रम्यमेवसलिलेन । यावद्गतरसद्रव्यंपूतोरसस्ततोग्राह्यः ॥ १८८ ॥ मोचरसःससमङ्गःफलिनीचसमांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकवीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ ॥ १८९ ॥ पूतःक्वथितःसरसोदार्वीलेपस्ततःसमवतार्य्य । मात्राकालोपहितारसक्रियैपाजयतिरक्तम् ॥ १९० ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवायथाग्निबलम् । जीर्णौषधश्चशालीन्पयसाछागेन भुञ्जीत ॥ १९१ ॥ रक्तार्शांस्यतीसारंरक्तंसासृक्रुजोनिहन्यात्तु । बलवच्चरक्तपित्तंरसक्रियैपाजयत्युभयभागम् ॥ १९२ ॥

कुडाकी छाल, सौ पल लेकर उसको कूटकर आकाशके जलमें पकावे । जब पकते २ छालका रस निकलआवे उसको उतारकर छानलेवे। फिर उसमें मोचरस, वाराहीकंद और प्रियंगुके फूलोंका चूर्ण समभाग लेकर डाले । फिर इन तीनोंके चूर्णके बराबर इन्द्रजवोंका चूर्ण मिलावे । इन सबको फिर आगपर

वातानुवंधी रक्तार्शमें स्निग्ध, शीतल और कफानुवंधीमें रूक्ष, शीतल चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये। इसप्रकार विचारपूर्वक रक्तार्शमें चिकित्सा करे॥ १७५ ॥

पित्तश्लेष्माधिकंमत्वाशोधनेनोपपादयेत् । स्रवणश्चाप्युपेक्षेतलङ्घनैर्वासमाचरेत् ॥ १७६ ॥ प्रवृत्तमादावर्शोभ्योयोनिगृह्णात्यबुद्धिमान् । शोणितंदोपमनिलंतद्रोगाञ्जनयेद्बहून् ॥ १७७ ॥ रक्तपित्तंज्वरंतृष्णामग्निनाशमरोचकम् । कामलांश्वयथुंशूलंगुदवङ्क्षणसंश्रयम् ॥ १७८ ॥ कण्डूरुःकोठपिडकाःकुष्ठंपाण्ड्वामयंगदम् । वातमूत्रपुरीषाणांविबन्धंशिरसोरुजम् ॥ १७९ ॥ स्तैमित्यंगुरुगात्रत्वंतथान्यात्रक्तजान्गदान् । तस्मात्स्रुतेदुष्टरक्तेरक्तसंग्रहणं मतम् ॥ १८० ॥ हेतुलक्षणकालज्ञोबलशोणितवर्णवित् । कालं तावदुपेक्षेतयावन्नात्ययमाप्नुयात् ॥ १८१ ॥

यदि रक्तार्शमें वायुकी अधिकता न हो और पित्त, कफ मवल हों तो पहिले वमन विरेचन आदिसे संशोधन कर फिर चिकित्सा करना चाहिये। अथवा रक्तस्रावको न रोककर लंघनपूर्वक चिकित्सा करे। जो मूर्ख चिकित्सक अर्शके रक्तस्रावको प्रथम ही रोकदेतेहैं उससे वायु कुपित होकर वातजनित रोग प्रगट होजातेहैं । तथा रक्तपित्तज्वर, तृषा, मंदाग्नि, अरुचि, कामला, सूजन, गुदा और वंक्षणमें पीडा, खुजली, व्रग, चकत्ते, पिंडिका, कुष्ठ, पाण्डु, अधोवात, मूत्र और मलका विबंध, मस्तकपीडा, स्तैमित्य, देहमें भारीपन तथा अन्य रुधिरके विकार उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये दूषित रक्तके कारण, लक्षण, समय, वल और वर्ण विचारकर ही रुधिरके स्रावको रोकना चाहिये। जबतक किसी प्रकारके अनिष्ट होनेकी संभावना न हो तब तक बुद्धिमान् वैद्यको ववासीरके रक्तका स्राव न रोकना चाहिये १७६-१८१

अग्निसन्दीपनार्थञ्चरक्तसंग्रहणायच। दोषाणांपाचनार्थञ्चपरंतिक्तैरुपाचरेत् ॥ १८२ ॥ यत्तुप्रक्षीणदोपस्यरक्तंवातोल्बणस्यच । वर्त्ततेस्नेहसाध्यंतत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ १८३ ॥ यत्तुपित्तोल्बणंरक्तं घर्मकालेप्रवर्त्तते । स्तम्भनीयंतदेकान्तान्नचेद्वातकफानुगम्॥१८४॥

पीछे अग्निसंदीपनके लिये स्वच्छ रक्तको रोकनेवाली और दोषोंको पचानेवाली तिक्त औषधों द्वारा चिकित्सा करे। क्षीण दोषवाले वातप्रधान अर्शरोगीका रक्त स्नेहसाध्य होताहै। उस रोगीको स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन प्रयोगसे शान्त

करना चाहिये। पित्तप्रधान रक्तार्शका रुधिर ग्रीष्मकालमें प्रवृत्त होताहै। यदि उसमें वात और कफका अनुबंध न हो तो उसको सर्वथा रोकदेना ही उचित है॥१८२-१८४॥

संग्राही योग।

कुटजत्वङ्निर्य्यूहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः। त्वग्दाडिमस्यतद्वत्सनागरश्चन्दनरसश्च ॥१८५॥ चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाःसनागराःक्थिताः। रक्तार्शसांप्रशमानादार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च ॥१८६॥ सातिविषाकुटजत्वक्फलश्चरसाञ्जसनम्। मधुयुक्तंरक्तापहंदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन ॥ १८७ ॥

कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ मिलाकर पीनेसे स्निग्धरक्त बन्द होताहै एवं अनारके छिलकेके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे अथवा चंदनके क्वाथमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे रक्तकी प्रवृत्ति बन्द होजातीहै। अथवा चंदन, चिरायता, जवासा और सोंठका क्वाथ पीनेसे रक्तार्श दूर होताहै। एवं दारुहल्दी, दालचीनी, खस और नीमका क्वाथ सेवन करनेसे अथवा अतीस, कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ और रसौत इन सबके चूर्णको शहद और तंदुलजलके साथ जब २ प्यास लगे तब २ पिलाया करे तो रक्तार्श दूरहो ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

कुटजादि रसायन।

कुटजत्वचोविपाच्यंपलशतमार्द्रंस्यमेघसलिलेन। यावद्गतरसद्रव्यंपूतोरसस्ततोग्राह्यः ॥ १८८ ॥ मोचरसःससमङ्गःफलिनीच समांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च। वत्सकबीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ ॥ १८९ ॥ पूतःक्वथितःसरसोदार्वीलेपस्ततःसमवतार्य्य। मात्राकालोपहितारसक्रियैषाजयतिरक्तम् ॥ १९० ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवायथाग्निबलम्। जीर्णौषधश्चशालीन्पयसाछागेन भुञ्जीत ॥ १९१ ॥ रक्तार्शास्यतीसारंरक्तंसासृक्रुजोनिहन्यात्तु। बलवच्चरक्तपित्तंरसक्रियैषाजयत्युभयभागम् ॥ १९२ ॥

कुडाकी छाल, सौ पल लेकर उसको कूटकर आकाशके जलमें पकावे। जब पकते २ छालका रस निकलआवे उसको उतारकर छानलेवे। फिर उसमें मोचरस, वाराहीकंद और प्रियंगुके फूलोंका चूर्ण समभाग लेकर डाले। फिर इन तीनोंके चूर्णके बराबर इन्द्रजवोंका चूर्ण मिलावे। इन सबको फिर आगपर

चढाकर पकावे और धीरे धीरे चलाताजावे । जब गाढा होजाय और कडछीसे लगने-लगे तो उतारकर उत्तम चिकने पात्रमें रखदेवे । इसकी मात्रा बल,काल विचारकर सेवन करनेसे खूनी बवासीर नष्ट होतीहै । इस औषधीको बकरीके दूध या पेया अथवा मण्डके साथ सेवन करना चाहिये । औषध पचजानेपर शालिचावलोंका भात बकरीके दूधके साथ भोजन करावे । इस कुटजरसायनके सेवन करनेसे खूनी बवासीर, रक्तातिसार, रक्तकी पीडा, रक्तजनित विकार और प्रबल रक्तपित्त, ऊर्द्ध्व-गामी और अधोगामी रक्तविकार यह सब दूर होते हैं ॥ १८८-१९२ ॥

रक्तार्शपर अन्ययोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गामोचरसश्चन्दनंतिलालोध्रम् । पीत्वाछागलिपय-साभोज्यंपयसैवशाल्यन्नम् ॥ १९३ ॥ छागलिपयःप्रयुक्तंनिहन्ति रक्तंसवास्तुकरसश्च ।, धन्वविहङ्गमृगाणांरसोनिरम्लःकद-म्लोवा ॥ १९४ ॥

नीलकमल, वाराहीकंद, मोचरस, लाल चंदन, तिल और पठानी लोध, इन सबके चूर्णको बकरीके दूधके साथ सेवन करे । औषध जीर्ण होनेपर बकरीका दूध, भात भोजन करे। अथवा बथुआके पत्रोंके रसको बकरीके दूधमें मिलाकर पीनेसे खूनी बवासीर दूर होतीहै। अथवा जंगली जीवोंका मांसरस किंचित् अम्ल करके या बिना ही खटाईसे सेवन करे तो रक्तार्श दूर होताहै ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

पाठावत्सकबीजंरसाञ्जनंनागरंयमान्यश्च । बिल्वमितिचार्शसै-श्चूर्णितानिपेयानिसशूलेषु ॥ १९५ ॥ दार्वीकिराततिक्तंमु-स्तंदुस्पर्शकश्चरुधिरघ्नम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूलेचघृतंविधात-व्यम् ॥ १९६ ॥

पाढ, इन्द्रजी, रसौंत, सोंठ, अजवायन और बेलगिरिका चूर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे शूलयुक्त रक्तार्श दूर होताहै दारूहलदी, चिरायता, नागर मोथा, जवासा इन सबका चूर्ण, बवासीरके खून रोकनेके लिये परमोत्तम है । यदि रुधिरकी अधिक प्रवृत्ति हो और अधिक पीडा होतीहो तो इन्हीं दारुहलदी आदि औषधियोंके काथ और कल्कसे सिद्ध किया घृत सेवन करना चाहिये ॥१९५॥१९६॥

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः । सिद्धंघृतंवि-धेयंशूलेरक्तार्शसांभिषजा॥ १९७ ॥ सर्पिःसदाडिमरसंसयावशूकं जयत्याशु । रक्तंसशूलमथवानिदिग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥१९८॥

कुडाकी, छाल, इन्द्रजौ, केशर, नीलकमल, पठानी लोध और धावेके फूल इन सबके कल्कसे सिद्धकिया घृत शूलयुक्त अर्शरोगको शान्त करताहै । अथवा अनारके रस और जवाखारसे सिद्ध किया घृत या कटेली और दूधीबूटीके कल्कसे सिद्ध किया घृत शूलयुक्त रक्तार्शको दूर करताहै ॥ १९७ ॥ १९८ ॥

लाजाःपेयापीताचुक्रिकाकेशरोत्पलैःसिद्धा । हन्त्याशुरक्तरोगं तथाबलापृश्निपर्णीभ्याम् ॥ १९९ ॥ ह्रीबेरबिल्वनागरनिर्य्यूहे साधितांसनवनीताम् । वृक्षाम्लदाडिमाम्लामम्लीकाम्लांसकोलाम्लाम् ॥ २०० ॥ गृञ्जनकसुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिवेत्पेयाम्। रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम् ॥ २०१ ॥

चूका, नागकेशर, नीलोफरसे सिद्ध कीहुई खीलोंकी पेया अथवा खरैटी और पृष्ठपर्णीसे सिद्ध कीहुई खीलोंकी पेया रक्तार्शको शीघ्र नष्टकरतीहै । एवं नेत्रवाला बेलगिरि और सोंठके क्वाथसे सिद्ध कीहुई पेया मक्खनके साथ सेवन करनेसे अथवा तिंतिडीक और अनारदानेके रसके साथ खट्टी करके या इमली और बेरके गुदेके साथ खट्टी करके सेवन करनेसे अथवा लहसुन और मद्यके साथ सिद्ध की हुई पेया घृत और तेलमें छमककर पान करनेसे रक्तातिसार, शूल, प्रवाहिका और सूजन यह सब नष्ट होतेहैं । १९९ ॥ २०० ॥ २०१ ॥

काश्मर्य्यामलकानांसकर्बुदारफलाम्लानाम् । गृञ्जनकशाल्मलीनांक्षीरिण्याश्चुक्रिकायाश्च ॥ २०२ ॥ न्यग्रोधशुङ्गकानां खडांस्तथाकोविदारपुष्पाणाम् । दध्नःसरेणसिद्धान्दद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति ॥ २०३ ॥

यदि रक्तार्शमें रुधिर अधिक निकलता हो तो कुम्भेर, आमले, गुल्लड, अनार, लहसुन, सेंबल, क्षीरकाकोली (या दूधी) चूका, वडके अंकुर और दहीकी मलाई इन सबका खडयूष बनाकर सेवन करे तो रुधिरस्राव बन्द होताहै ॥ २०२॥२०३ ॥

सिद्धंपलाण्डुशाकञ्चतक्रेणोपोदिकांसबदराम्लाञ्च । रुधिरस्रवे प्रदद्यान्मसूरसूपञ्चतक्राम्लम् ॥ २०४ ॥ पयसाशृतेनयूषैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् । भोजनमद्यादम्लैःशालिश्यामाककोद्रवजम् ॥ २०५ ॥

प्याजका शाक, अथवा पोईका साग और बेरकी खटाई, छाछमें सिद्ध करके रुधिरस्रावमें देना चाहिये । अथवा मसूरका यूप तक्रसे खट्टाकर पीनेको देवे । रुधिरस्रावमें जलसे सिद्ध किया दूध अथवा रक्तनाशक द्रव्योंके क्वाथसे या पंचमूलादि क्वाथसे सिद्धकिया दूध अथवा मसूर, मूंग, अडहर और मोठका यूप रुधिरस्रावकी शान्तिके लिये देवे । और भोजनके लिये शालिचावल, श्यामाक चावल और कोद्रव अन्नको सिद्धकर मद्य और तक्रके साथ सेवन करावे ॥ २०४ ॥ २०५ ॥

शशहरिणलावमांसैःकपिञ्जलैणेयैःसुसिद्धैश्च ।
भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीपत्समरिचैर्वा ॥ २०६ ॥

रक्तार्शमें खरगोश, हिरण, लवा, तीतर और एणका मांस खटाई अथवा मिठाई, थोडी काली मिर्चके योगसे सिद्ध करके खानेको देवे ॥ २०६ ॥

दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्चमधुराम्लैः ।
अद्यादसैरतिवहेष्वर्शःस्वनिलोल्वणशरीरः ॥ २०७ ॥

वातोल्वण रक्तार्शमें यदि अधिक रक्तकी प्रवृत्ति हो तो मुर्गा, मोर, तीतर, ऊंट अथवा लोपाकका मांसरस मधुर, अम्ल करके सेवन करावे ॥ २०७ ॥

रसखडयूपयवागूसंयुक्तःकेवलोऽथवाजयति ।
रक्तमतिवर्त्तमानंवातश्चपलाण्डुरुपयुक्तः ॥ २०८ ॥

मांसरस अथवा खडयूप या यवागूके साथ प्याजका सेवन करना अथवा केवल प्याज ही सेवन करना वातानुबंधी रक्तकी अधिक प्रवृत्तिको दूर करदेताहै और वायुको शान्त करताहै ॥ २०८ ॥

छागान्तराधितरुणंसरुधिरमुपसाधितंवहुपलाण्डु ।
व्यत्यासान्मधुराम्लंविट्शोणितसंक्षयेदेयम् ॥ २०९ ॥

जिस रक्तार्शवाले रोगीका मल और रक्त अत्यंत क्षीण होगयाहो उसको तरुण वकरेके मध्य देहका मांस तत्काल निकालेहुए रुधिरके साथ प्याजके योगसे सिद्धकर विपरीत क्रमसे खट्टा और मीठा बनाकर सेवन करावे ॥ २०९ ॥

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसरमथिताभ्यासादर्शास्यपयान्तिरक्तानि ॥ २१० ॥

मक्खन और काले तिलोंका सेवन करनेसे अथवा नागकेशर, मक्खन और मिसरी मिलाकर सेवन करनेसे या दहीकी मलाई और जलरहित घोलके सेवन करनेसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) अवश्य दूर होताहै ॥ २१० ॥

नवनीतंघृतंछागंमांसंसपष्टिकःशालिः ।
तरुणश्चसुरामण्डस्तरुणाचसुरानिहन्त्यजस्रम् ॥ २११ ॥

मक्खन, घृत, वकरेका मांस, साठी और शालिचावल, नवीन सुरामण्ड और नवीन मद्यके सेवन करनेसे रक्तार्श शान्त होतीहै ॥ २११ ॥

प्रायेणवातबहुलान्यर्शांसिभवन्त्यतिस्तुतेरक्ते । दुष्टेऽपिकफपित्ते तस्मादनिलोऽधिकोज्ञेयः ॥ २१२ ॥ दृष्ट्वातुरक्तपित्तंप्रबलंकफवातलिङ्गमल्पञ्च । शीताःक्रियाःप्रयोज्यायथेरितावक्ष्यतेचान्या २१३॥

ववासीरका रक्त अधिक निकलजानेसे अर्शमें प्रायः वायुका अधिक कोप होताहै । इसलिये कफपित्त दूषित होनेपर भी वायु ही वलवान् होतीहै । अर्शमें रक्तपित्तकी अधिकता और कफवातके लक्षणोंकी अल्पता दिखाईदे तो पूर्वोक्त और जो आगे कहेंगे वह शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

मधुकंसपञ्चवल्कंवदरीत्वगुडुम्वरंधवपटोलम् । परिषेचनेविदध्याद्वृपककुभयवासनिम्बांश्च ॥ २१४ ॥ रक्तेऽतिवर्त्तमानेदाहेक्लेदेच गाहयेचापि । मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिःक्काथे ॥२१५॥ इक्षुरसमधुकवेतसनिर्य्यूहेशीतलेपयसिवाऽतम् । अवगाहयेत्प्रदिग्धंपूर्वंशिशिरेणतैलेन ॥ २१६ ॥

मुलेठी, पंचवल्कल, (गूलर, पीपल, वड, पिलखन और वेतस मजनूकी छाल) वेरकी छाल, उदुम्बर और धवकी छाल, पटोल, अडूसा, अर्जुन, जवासा और नीमकी छाल, इन सवका काथ करके रक्तार्शका परिसेचन करे ॥ अर्शका रुधिर अत्यंत स्राव होनेपर तथा दाह और क्लेद होय तो पहले रोगीके शरीरमें शीतल तैलका अभ्यंग करके फिर उसको मुलैठी, कमलकी डंडी, पद्माख, लालचंदन, कुशा और कांसकी जडें इन सवका क्काथ करशीतल होनेपर इस क्कायमें विठावे । अथवा ईखके रसमें या मुलैठी और वेतसके क्कायमें, अथवा शीतल दूधमें अवगाहन करावे ॥ २१४ ॥ २१५ ॥ २१६ ॥

दत्त्वाघृतंसशर्करंसुपस्थदेशेगुदेत्रिकदेशे । शिशिरजलस्पर्शसुखाधाराप्रस्तम्भनीयोज्या ॥ २१७ ॥ कदलीदलैरभिनवैःपुष्करपत्रैश्चशीतजलसिक्तैः । प्रच्छादनंमुहुर्मुहुरिष्टंपद्मोत्पलदलैश्च ॥ २१८ ॥

शिश्नेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थानमें घृत और मिसरीका लेप करके ऊपरसे सुहाती २ शीतल जलकी धारा देवे तो अर्शके रक्तका प्रवाह बंद होजाताहै एवं कोमल ताजे केलेके पत्रोंसे अथवा शीतल जलमें भिगोकर कमल या नीलकमलके पत्रोंसे वार २ गुदाको ढकना भी रक्तार्शमें हितकारी है ॥ २१७ ॥ २१८ ॥

दूर्वाघृतप्रदेहःशतधौतसहस्रधौतमपिसर्पिः ।
व्यजनपवनश्चशीतोरक्तस्रावंजयत्याशु ॥ २१९ ॥

दूब और घृतका लेप करना अथवा सौवार धोएहुए या सहस्रवार धोएहुए मक्खनका लेप करना और पंखेकी पवन करना भी खूनी ववासीरके रक्तस्रावको बंद करताहै ॥ २१९ ॥

समङ्गामधुकाभ्यांतिलमधुकाभ्यांरसाञ्जनघृताभ्याम् । सर्जरसघृताभ्यांवानिम्बघृताभ्यांमधुघृताभ्याम् ॥ २२० ॥ दार्वीत्वक्सर्पिभ्यांसचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम् । दाहेक्लेदेगुदभ्रंशेगुदजाः प्रतिसारणीयाःस्युः ॥ २२१ ॥

वाराहीकंद और मुलैठी, अथवा तिल और मुलैठी या रसौत और घृत, एवं राल और घृत, नीम और घृत, शहत और घृत, दारुहल्दीकी छाल और घृत, नीलकमल, लालचंदन और घृत; इनमेंसे किसी एक योगका लेप करनेसे ववासीरकी: दाह, क्लेद और गुदाका निकलना यह सब दूर होतेहैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥

आभिःक्रियाभिरथवाशीताभिर्यस्यतिष्ठतिनरक्तम् । तंकालेस्निग्धोष्णैर्मांसैस्तर्पयेन्मतिमान् ॥ २२२ ॥ अवपीडकसर्पिर्भिःकोष्णैर्घृततैलिकैस्तथाभ्यंगैः । क्षीरघृततैलसेकैःकोष्णैःसमुपाचरेदाशु ॥ २२३ ॥ कोष्णेनवातप्रवलेघृतमण्डेनानुवासयेच्छीघ्रम् । पिच्छावर्स्तिदद्याद्वस्तिकालेतस्याथवासिद्धम् ॥ २२४ ॥

इन उपरोक्त शीतल क्रियाओंके करनेसे यदि अर्शका रुधिर बन्द न हो तो रोगीको स्निग्धोष्ण मांसरसका तर्पण देवे । और ऐसे रोगीको शिरोविरेचन करनेवाले घृतका प्रयोग अथवा किंचित् उष्ण घृत तैलकी मालिश करावे । और सुखोष्ण दूध, घृत और तैलसे सेचन करे । तथा ऐसे रोगीको वात प्रवल होवे तो किंचित् उष्ण घृत और मस्तुसे शीघ्र अनुवासन करे । और यथासमय आगे कही पिच्छावस्ति या सिद्धवस्तिका प्रयोग करे ॥ २२२ ॥ २२३ ॥ २२४ ॥

पिच्छावस्ति और सिद्धवस्ति।

यवासकुशकाशानांमूलंपुष्पञ्चशाल्मलम्। न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्चद्विपलोन्मिताः ॥ २२५ ॥ त्रिप्रस्थेसलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थंचसाधयेत्। क्षीरशेषंकषायञ्चपूतंकल्कैर्विमिश्रयेत् ॥ २२६ ॥ कल्काःशाल्मलिनिर्यासससमङ्गाचन्दनोत्पलम्। वत्सकस्यचबीजानिप्रियंगुःपद्मकेशरम् ॥ २२७ ॥ पिच्छावस्तिरयंसिद्धःसघृतक्षौद्रशर्करः। प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ॥ २२८ ॥

जवासा, कुशा, कांसकी जड, सेंमलके फूल और वड, गूलर तथा पीपलके अंकुर (कलियें) प्रत्येक दो २ पल लेवे: पानी ३ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। जब दूधमात्र शेष रहे तो उतारकर छानलेवे। फिर मोचरस, वाराहीकंद, लाल चंदन, नीम, कमल, इन्द्रजौ, फूलप्रियंगु और कमलके केशर इन सबको वारीक पीसकर कल्क बना उपरोक्त दूधमें मिलादेवे। इस कल्क मिले औषध सिद्ध दूधसे जो वस्तिकर्म कियाजाताहै उसको पिच्छावस्ति कहतेहैं। और इसी पिच्छावस्तिमें घृत,शहत और खांड मिलादेवें तो इसको सिद्धवस्ति कहतेहैं। यह दोनो प्रकारकी वस्तियें प्रवाहिका, गुदभ्रंश, रक्तस्राव और ज्वरको नष्ट करतीहैं ॥ २२५-२२८ ॥

अनुवासनवस्ति।

प्रपौण्डरीकंमधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम्।
पिष्टानुवासनंस्नेहंक्षीरद्विगुणितंपचेत् ॥ २२९ ॥

प्रपौण्डरीक (पंडचारा) मुलैठी, तथा पिच्छावस्तिमें कहेहुए संपूर्ण द्रव्य इन सबका कल्क बना दुगना दूध डाल तैल सिद्धकरे। इस तैलसे अनुवासन वस्ति करना अर्शरोगमें हितकारी है ॥ २२९ ॥

ह्रीवेरादि घृत।

ह्रीवेरमुत्पलंलोध्रंसमङ्गाचव्यचन्दनम्। पाठासातिविषाविल्वंधातकीदेवदारुच ॥ २३० ॥ दार्वीत्वङ्नागरंमांसीमुस्तंक्षारोयवाग्रजः। चित्रकश्चेतिपेष्याणिचाङ्गेरीस्वरसेघृतम् ॥ २३१ ॥ एकध्यं साधयेत्सर्वंतत्सर्पिःपरमौषधम्। अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ ॥ २३२ ॥ मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेबस्त्यानाहप्रवाहणे। पिच्छास्रावेऽर्शसांशूलेयोज्यमेतत्त्रिदोषनुत् ॥ २३३ ॥

सुगंधवाला, नीलकमल, पठानी लोध, बाराहीकंद, चव्य, लालचंदन, पाठा, अतीश, बेलगिरि, धावेके फूल, देवदारू, दारुहलदी, सोंठ, जटामांसी, नागरमोथा, जवाखार और चित्रक इन सबका कल्क और आँवलेका स्वरस, मिलाकर सिद्धकिया घृत सेवन करनेसे, बवासीर, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डुज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदाका निकलना, वस्तिका अफारा, प्रवाहिका, पिच्छास्राव और शूलयुक्त अर्शरोग यह सब दूर होतेहैं । हीवेरादिघृत त्रिदोषको भी नष्ट करता है ॥२३०॥२३१॥२३२॥२३३॥

सुनिषण्णकचांगेरी घृत ।

अवाक्पुष्पीवलादार्वीपृश्निपर्णीत्रिकण्टकः । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्चद्विपलोन्मिताः ॥ २३४ ॥ कषायएषांपेष्यास्तुजीवन्तीकटुरोहिणी । पिप्पलीपिप्पलीमूलंनागरंसुरदारुच ॥ २३५ ॥ कलिङ्गाःशाल्मलंपुष्पंवीराचन्दनमुत्पलम् । कट्फलंचित्रकंमुस्तं प्रियंग्वतिविषास्थिराः ॥ २३६ ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कंसमङ्गासनिदिग्धिका । बिल्वंमोचरसःपाठाभागाःकर्षसमन्विताः ॥२३७॥ चतुःप्रस्थेशृतंप्रस्थंकषायमवतारयेत् । त्रिंशत्पलानिप्रस्थोऽत्रविज्ञेयोद्विपलाधिकः ॥ २३८ ॥ सुनिषण्णकचाङ्गेर्योःप्रस्थौद्वौस्वरसस्यच । सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २३९ ॥ एतदर्शःस्वतीसारेरक्तस्रावेत्रिदोषजे । प्रवाहणेगुदभ्रंशेपिच्छासुविविधासुच ॥ २४० ॥ उत्थानेचातिवहुशः शोथशूलेगुदाश्रये । मूत्रग्रहेमूढवातेमन्देऽग्नावरुचावपि ॥ २४१ ॥ प्रयोज्यंविधिवत्सर्पिर्वलवर्णाग्निवर्द्धनम् । विविधेष्वन्नपानेषुकेवलंवानिरत्ययमिति॥२४२॥

अवाक्पुष्पी (सौंफ), वला, दारुहलदी, पृष्ठपर्णी, गोखरू, वडके अंकुर, गूलरके अंकुर, पीपलके अंकुर यह प्रत्येक दो पल लेकर ४ प्रस्थ जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर जीवन्ती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेंमलके फूल, काकोली, लाल चंदन, नील कमल, कायफल, चित्रक, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, अतीश, शालपर्णी, लाल और नीलकमलकी केशर, समंगा, (वाराहकान्ता) कटेरी, बेलगिरि, मोचरस और पाढ यह प्रत्येक दो २ तोले लेकर कल्क बनावे । चौपतियाका रस १ प्रस्थ, चांगेरीका रस १ प्रस्थ, इन सबको एकत्र कर घृतपाकविधिसे घृत सिद्ध करे । इस घृतके सेवनसे बवासीर, अतिसार, त्रिदोषज

रुधिरस्राव, प्रवाहिका, गुदाका निकलना, अनेक प्रकारका पिच्छास्राव, वारंवार मलत्यागकी शंका होना, गुदाका शोथ, पीडा, मूत्रावरोध, मूढवात, मंदाग्नि और अरुचि यह सब नष्ट होतेहैं। इसके विधिवत प्रयोगसे बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै। इस घृतको अकेला ही अथवा अनेक प्रकारके भोजनादिकोंमें सेवन करना चाहिये ॥ २३४--२४२ ॥

भवन्ति चात्र।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिचयोजयेत्। नित्यमग्निबलापेक्षीजयत्यर्शःकृतान्गदान् ॥ २४३ ॥ त्रयोविकाराःप्रायेणयेपरस्परहेतवः। अर्शांसिचातिसारश्चग्रहणीदोपएवच ॥ २४४ ॥ एपामग्निबलेहीनेवृद्धिर्वृद्धेपरिक्षयः । तस्मादग्निबलंरक्ष्यमेपुत्रिषु विशेषतः ॥ २४५ ॥

यहां कहतेहैं कि अर्शरोगमें विपरीतक्रमसे मीठे, खट्टे, शीतल और उष्ण पदार्थोंका प्रयोग करे। और सदा जठराग्निके वलकी ओर ध्यान रखताहुआ अर्शके विकारोंको जीते। अर्शरोग, अतिसार और ग्रहणी यह प्रायः तीनों ही परस्पर एक दूसरेके कारण होतेहैं। इन तीनोंमें ही जठराग्निका वल क्षीण होनेसे रोगकी वृद्धि होती है और अग्निके बलवान् होनेसे रोगका ह्रास होताहै। इसलिये इन तीनोंमें अग्निबलकी विशेषरूपसे रक्षा करनी चाहिये ॥ २४३ ॥ २४४ ॥ २४५ ॥

भृष्टैःशाकैर्यवागूभिर्यूपैर्मांसरसैःखडैः। क्षीरतक्रप्रयोगैश्चविचित्रैर्गुदजाञ्जयेत् ॥ २४६ ॥ यद्वायोरानुलोम्याययदग्निबलवृद्धये। अन्नपानौपधंद्रव्यंतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः ॥ २४७ ॥ यदतोविपरीतंस्यान्निदानेयत्प्रदर्शितम्। गुदजाभिपरीतेनतत्सेव्यंनकथञ्चन ॥ २४८ ॥

अर्शरोगकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारके भुनेहुए साग, यूप, यवागू, मांसरस, दूध और तक्रका प्रयोग करना चाहिये। जो द्रव्य वायुको अनुलोमन करनेवाले हैं जो अग्निबलको बढातेहैं उन अन्नपान और औपधोंका अर्शरोगीको वरावर सेवन करना चाहिये। तथा जो इनसे विपरीत अर्थात् अर्शरोगको उत्पन्न करनेवाले द्रव्योंमें कहे गयेहैं उनको कभी भी सेवन न करे ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

तत्रश्लोकाः।

अर्शसांद्विविधंजन्मपृथगायतनानिच। स्थानसंस्थानलिंगानिसा-

ध्यासाध्यविनिश्चयः ॥२४९॥ अभ्यंगाःस्वेदनंधूमाःसावगाहाःप्रलेपनाः । शोणितस्यावसेकश्चयोगादीपनपाचनाः ॥ २५० ॥ पानान्नविधिरध्यश्चवातवर्चोऽनुलोमनः । योगाःसंशमनीयाश्चसर्पींषि विविधानिच ॥ २५१ ॥ वस्तयस्तक्रयोगाश्चवरारिष्टाःसशर्कराः । शुष्काणामर्शसांशस्ताःस्राविणांलक्षणानिच ॥ २५२ ॥ द्विविधं सानुबन्धानांतेषाश्चेष्टंयदौषधम् । रक्तसंग्रहणायोगाःपेष्याश्चविविधात्मकाः ॥ २५३ ॥ स्नेहपानविधिश्चाध्योविधिःपानान्नयोश्चयः । परिषेकावगाहाश्चप्रदेहाःप्रतिसारणम् ॥ २५४ ॥ अतिवृत्तस्यरक्तस्यविधातव्यंयदुत्तरम् । तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजानांचिकित्सितम् ॥ २५५ ॥

इति चरक० चि० अर्शश्चिकित्सितंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक हैं कि इस अर्श चिकित्सितनामक अध्यायमें सहजार्श और जन्मसे उपरांत होनेवाली अर्शोंकी अलग २ कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, साध्यता और असाध्यताका निर्णय, अभ्यंग, स्वेदन, धूनी देना, अवगाहन, प्रलेपन, रक्तमोक्षण, दीपन और पाचनप्रयोग, वात और मलके अनुलोमन करनेवाले योग, अन्नपानविधि, संशमनीय द्रव्य, अनेक प्रकारके घृत, वस्तियें, तक्रप्रयोग, शर्करायुक्त परमोत्तम अरिष्ट, सूखी ववासीरमें उपयोगी औषध प्रयोग, रक्तार्शके लक्षण और दो प्रकारके अनुबंध, औषध, रक्त रोकनेवाले अनेक औषधप्रयोग अनेक प्रकारके घृत, स्नेहपानविधि, अन्नपानविधि, रक्तके अधिक स्रावमें परिषेक और अवगाहन तथा प्रदेह और रक्तार्शनाशक योग, रक्तकी अतिप्रवृत्तिमें कर्तव्य यह सब वर्णन कियाहै ॥ २४९–२५५ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प्र० आयुर्वेदीय सं० चि० स्था०प्र०भा०टी० अर्शश्चिकित्सितं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

अतिसारचिकित्सितम् ।

अथातोऽतिसारचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम अतीसारचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करनेलगे।

भगवंतंखलुआत्रेयंकृताह्निकंकृताग्निहोत्रमासीनमृषिगणपरिवृतमुत्तरेहिमवतःपार्श्वेविनयादुपेत्यअभिवाद्यअग्निवेशउवाचभगवन्! अतिसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्षणोपशमनानिप्रजानुग्रहार्थमाख्यातुमर्हसीति ॥ १ ॥

एक समय भगवान् आत्रेयजी अग्निहोत्रादि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर हिमालयके उत्तर निकुञ्जमें ऋषिगणोंसे घिरेहुए बैठे थे। उस समय अति नम्रतापूर्वक वंदनाकर अग्निवेश पूछनेलगे कि हे भगवन्! अतिसार रोगकी प्रथम उत्पत्ति, कारण, लक्षण और उसके शान्त करनेका उपाय प्रजाजनोंके कल्याणके लिये कहिये ॥ १ ॥

अथभगवानात्रेयस्तदग्निवेशवचनमनुनिशम्योवाच । श्रूयताम् अग्निवेश ! सर्वमेतदखिलेनव्याख्यायमानम् ॥ २ ॥

अग्निवेशके इस कथनको सुनकर भगवान् आत्रेय कहनेलगे कि हे अग्निवेश ! इस विषयमें हमारे संपूर्ण कथनको सुनो ॥ २ ॥

अतिसारकी उत्पत्ति।

आदिकालेखलुयज्ञेषुपशवःसमालभनीयावभूवुर्नारम्भायप्रक्रियन्तेस्म । ततोदक्षयज्ञप्रत्यवरकालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेक्ष्वाकुकुविडचर्य्येत्यादीनाञ्चक्रतुषुपशूनामेवअभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमवापुः। अतश्चप्रत्यवरकालंपृषध्रेणदीर्घसत्रेणयजमानेनपशूनामलाभाद्गवामालम्भःप्रावर्त्तितः। तंदृष्ट्वाप्रव्यथिताभूतगणास्तेपाञ्चोपयोगादुपकृतानांगवांगौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामतीसारःपूर्वमुत्पन्नःपृषध्रयज्ञे ॥३॥

पहिले समयमें यज्ञमें पशुओंका वध नहीं किया जाता था किन्तु वह यज्ञभूमिमें वैसे ही लाये जातेथे फिर दक्षके यज्ञके अनन्तर मारिष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविडचर्या आदि मनुपुत्रोंने यज्ञमें पशुओंको छोडदेनेकी प्रथा चलाई। फिर इसके अनन्तर राजा पृषध्रने पशुओंके न मिलनेसे यज्ञमें गोवध किया इसको देखकर गौओंकी अत्यंत उपयोगिता स्मरण करतेहुए संपूर्ण प्राणी अत्यंत दुःखित हुए। और उस यज्ञमें गोमांसके गुरु और असात्म्य तथा दुष्ट भोजनके कारण भोजनकरने-

वालोंकी जठराग्नि नष्ट होगई और मन भी भ्रष्ट होगये । तब उस यज्ञमें उन मनुष्योंको अतिसार रोग प्रगट हुआ ॥ ३ ॥

वातातिसारके हेतु ।

अथापरंकालंवातलस्यवातातपव्यायामातिमात्रनिषेविणोरूक्षाल्पप्रमिताशिनःतीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्यउदावर्त्तयतश्चवेगाद्वायुप्रकोपमापद्यतेपक्ताचोपहन्यतेसवायुःकुपितोऽग्नाउपहतेमूत्रस्वेदौपुरीपाशयमुपहृत्यताभ्यांपुरीषंद्रवीकृत्यअतिसारायप्रकल्पते ॥ ४ ॥

अब वातादिभेदसे अतिसार रोगका वर्णन करतेहैं । वातलस्वभाववाले मनुष्यके वायु, धूप और शारीरक परिश्रमके अधिक सेवनसे अथवा अत्यंत रूक्ष अल्प और एकरस भोजनके निरन्तर सेवनसे एवं मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे वायु कुपित होकर पाचकाग्निको बिगाड देता है । उस अग्निके उपहत होनेसे कुपित हुआ वायु मूत्र और स्वेदको मलाशयमें प्राप्तकर मलको पतला बना अतिसार रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ४ ॥

वातिक आमातिसारके लक्षण ।

तस्यरूपाणिविड्जलमामविप्लुतमवसादितंरूक्षंद्रवंसशब्दमशब्दं वाविबद्धमूत्रवातमतिसार्य्यतेपुरीषंवायुश्चान्तःकोष्ठस्यसशब्दशूलः तिर्य्यक्चरतिविबद्धइतिआमातिसारः ॥ ५ ॥

उस वातिक अतिसारके यह लक्षण होतेहैं । जैसे मलका जलके समान होना, अपक्व मलका गिरना, अवसादित तथा रूक्ष, द्रव और शब्दके साथ अथवा एकसाथ शब्दरहित मलका आना, मूत्र और अधोवायुके विबंध सहित दस्त होना और कोठेमें वायु विबंधहोकर गुड गुड शब्दयुक्त शूलके साथ तिरछा गमन करे यह वायुके आमातिसारके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

वातिक पक्वातिसारके लक्षण ।

वातात्पक्वंविबद्धमल्पाल्पंसशब्दंसशूलपिच्छापरिकर्तिकंहृष्टरोमाविनिश्वसन्शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुपृष्ठपार्श्वशूलीभ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीषंवातात्तमाहुःअनुग्रन्थमइत्येकेवातानुग्रन्थितवर्चस्त्वात् ॥ ६ ॥

वायुसे पक्व होकर मल बद्ध होकर अथवा विबंधयुक्त थोडा २ शब्द और शूलसहित झागदार और कतरनेकीसी पीडायुक्त दस्त आवे उस समय रोमोंका खडा

होना, मुख सूखना, कमर, ऊरू, त्रिकस्थान, जानु और दोनों पार्श्वोंमें पीडा होना, गुदाका बाहर निकलना, वारंवार गांठदार मल आना, यह पक्व वातातिसारके लक्षण हैं। वातातिसारमें इस प्रकार गांठदार मल होनेसे कोई उसको अनुग्रंथित अतिसार भी कहतेहैं ॥ ६ ॥

पित्तातिसारके हेतु और संप्राप्ति।

पित्तलस्य पुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निसूर्य्यसन्तापोष्णमारुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहुलस्यपित्तंप्रकोपमापद्यते । तत्प्रकुपितंद्रवत्वादुष्माणमुपहत्यपुरीषाशयमाश्रितमौष्ण्याद्द्रवत्वात्सरत्वाच्चभित्त्वापुरीषमतिसारायप्रकल्पते७॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यके खट्टे, नमकीन, चरपरे, खारे, गरम और तीक्ष्ण द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे और निरंतर अग्नि, सूर्यकी धूप और गरम वायुसे शरीरके तपायमान होनेसे तथा क्रोध और इर्ष्यावाला स्वभाव होनेसे पित्त कुपित होजाताहै। वह कुपित हुआ पित्त पतला होनेसे पाचकाग्निको उपहत करके मलाशयमें आश्रित हो उष्णत्व, द्रवत्व और सरत्व होनेसे मलको भेदन करदेताहै। तब अतिसार रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ७ ॥

पित्तातिसारके लक्षण।

तस्यरूपाणिहरिद्रहरितनीलकृष्णपित्तोपहितमतिदुर्गंधमतिसार्य्यतेपुरीषंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्नसन्तापपाकपरीतः ॥ ८ ॥

पित्तातिसारमें दस्तका रंग हलदीके वर्णका, हरा, नीला, काला, पित्तयुक्त, और दुर्गंधित होताहै। तथा रोगीको पसीना, दाह, मूर्छा, शूल, वद निकलना, या वदकासा संताप और गुदा आदिका पकना यह पित्तातिसारके लक्षण होतेहैं ॥ ८ ॥

कफातिसारके हेतु।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपरस्यालसस्यश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभावाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धःस्रस्तोऽग्निमुपहत्यसौम्यस्वभावात्पुरीषाशयमुपहत्योपक्लेद्यपुरीषमतिसारायकल्पते ॥ ९ ॥

भारी, मीठे, शीतल और चिकने द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे एवं अतिभोजन,

रक्त और बल किंचित् क्षीण होजातेहैं, अग्नि मंद पडजातीहै और मुक्तेका स्वाद, नीरस होजाताहै। इन लक्षणोंवाले त्रिदोपज अतिसारको कष्टसाध्य जानना । जिस अतिसारमें नीचे लिखे हुए वर्णोंवाला मल आताहो और रोगी इन उपद्रवोंसे युक्त हो तो उसको ग्रह असाध्य है ऐसा कहकर त्यागदेना चाहिये। वे लक्षण यह हैं। जैसे मलका वर्ण क्वाथ, रुधिर, यकृत्पिण्ड, मांसका धोवन, दही, घी, मज्जा, तेल, वसा, दूध, वेसवारके समान हो अथवा अधिक नीला या अत्यंत लाल, अत्यंत काला अथवा जलके समान स्वच्छ, मोरके पंखके समान चित्रविचित्र, अत्यंत चिकना, हरा, नीला, कसैले वर्णका, अनेक वर्णवाला, गंदला, तारदार, आमयुक्त, चकमका-हटयुक्त, मुर्देकीसी गंधवाला, अत्यंत दुर्गंधवाला, कच्ची मछलीकी गंधवाला, जिसपर मक्खियें बहुतसी आकर चिपटती हों, पतली कीहुई धातुके समान अल्प मल और अधिक धातुवाला अथवा मलरहित दस्त आतेहों और रोगीको प्यास, दाह, ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी और श्वास हो तथा दस्त अत्यंत पीडा या पीडा-रहित आतेहों, गुदा शिथिल और पाकयुक्त हो, गुदाकी त्रिवली विप्लुत होजाय, गुदाकी नाल बाहरको निकल आवे। बल, मांस और रुधिर अत्यंत क्षीण होजाय या संपूर्ण देह, पार्श्वभाग और हड्डियोंमें पीड़ा प्रकट होजाय, एवं रोगी अरुचि, प्रलाप, और बेहोशीसे व्याकुल हो, अथवा यह उपरोक्त संपूर्ण उपद्रव एकाएकी शान्त होजांय तो ऐसे रोगीकी चिकित्सा नहीं करना चाहिये। यह असाध्य होताहै ॥ १२ ॥

तमसाध्यतामसंप्राप्तंचिकित्सेद्यथाप्रधानोपक्रमेणहेतूपशयदोष-विशेषपरीक्षयाचेति ॥ १३ ॥

जो अतिसार असाध्य न हुआ हो उसकी प्रधान दोषके अनुसार हेतु, उपशय और दोष विशेषकी परीक्षा करके चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३ ॥

आगन्तूद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ । तत्तयोर्लक्षणंवायोर्यद-तीसारलक्षणम् ॥ १४ ॥ मारुतोभयशोकाभ्यांशीघ्रंहिपरिकुप्यति । तयोःक्रियावातहराहर्षणाश्वासनानिच ॥ १५ ॥

दो प्रकारके आगन्तुक अतिसार होतेहैं, यह दोनों मनसे होतेहैं। जैसे १भयातिसार २ शोकातिसार। इन दोनोंके लक्षण वातातिसारके समान होतेहैं। भय और शोकसे वायुका शीघ्र कोप होजाताहै इसलिये इसमें वातनाशक क्रिया करना चाहिये । तथा आनन्दको उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्ता आदिकोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

इत्युक्ताःषडतीसाराःसाध्यानांसाधनन्त्वतः ।
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्व्येणयथावत्तन्निबोधत ॥ १६ ॥

इस प्रकार छः प्रकारके अतिसारोंका वर्णन कियागयाहै । अब इससे आगे क्रमपूर्वक साध्य अतिसारोंकी चिकित्साका श्रवण करो ॥ १६ ॥

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमूर्च्छिताः ।
अतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संप्रवर्त्तयेत् ॥ १७ ॥

जिसके दोष आहारके विदग्ध होनेसे कुपित और संचित होकर अतिसारको उत्पन्न करें । उस अतिसारवालेको विरेचन देकर दोषोंको निकालदेना चाहिये ॥ १७ ॥

नतुसंग्रहणंदेयंपूर्वमामातिसारिणे । विबध्यमानाःप्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्बहून् ॥ १८ ॥ दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा । शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ १९ ॥ तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान्वर्तमानान्स्वयंमलान् । कृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयां संप्रवर्त्तिनीम् ॥ २० ॥ तयाप्रवाहितेदोषेप्रशाम्यत्युदरामयः । जायतेदेहलघुताजठराग्निश्चवर्द्धते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें कभी भी दस्तोंको रोकनेवाली औषध नहीं देना चाहिये, क्योंकि कच्चे दस्तोंको रोकदेनेसे दोष विबद्ध होकर बहुतसे रोगोंको उत्पन्न करतेहै । जैसे दण्डकवायु, अलसक, अफारा, संग्रहणी, अर्शरोग, सूजन, पाण्डु, प्लीहरोग, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग और ज्वर इन रोगोंको उत्पन्न करताहै । इसलिये उठेहुए प्रचलित दोष और मलोंको प्रथमही रोकना नहीं चाहिये । यदि मल कठिनतासे उतरताहो तो मलके निकालनेके लिये हरडे खिलाकर विरेचन करादेना चाहिये । हरड द्वारा दोष निकलजानेसे पेटके विकार शान्त होजातेहैं और शरीर हलका होजाता है तथा जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रमध्यांमध्यदोषाणांदद्याद्दीपनपाचनीम् ।
लंघनश्चाल्पदोषाणांप्रशस्तमतिसारिणाम् ॥ २२ ॥

अतिसारमें दोषोंका बल मध्यम होवे तो दीपन, पाचन औषधका प्रयोग करना चाहिये। और अल्प दोष बलवाले अतिसारमें लंघन कराना ही हित है ॥ २२ ॥

अतिसारकी चिकित्सा।

पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचा । ह्रीवेरंभद्रमुस्तानिबिल्वं-

बेफिकरी, दिनमें सोना, आलसी बने रहना, इन कारणोंसे कफप्रधान मनुष्योंके शरीरमें कफ कुपित होताहै। कफ स्वभावसे ही मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीत और शिथिल होनेसे जठराग्निको उपहत करके सौम्यभावसे मलाशयमें प्राप्त हो मलाशयके बलको क्षीण और क्लेदित कर कफातिसारको प्रगट करता है ॥ ९ ॥

कफातिसारके लक्षण।

तस्यरूपाणिस्निग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुर्गन्धश्लेष्मोपहितमनुवन्धशूलमल्पाल्पमभीक्ष्णमतिसार्य्यतेसप्रवाहिकंगुरूदरगुदवस्तिवंक्षणोद्देशःकृतापकृतसंगोभवतिसलोमहर्षःसोत्क्लेशो निद्रालस्यपरीतःसादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ॥ १० ॥

उस कफातिसारके यह लक्षण होतेहैं। जैसे स्निग्ध, सफेद, पिच्छिल, तंतुयुक्त, आँववाला, भारी, दुर्गंधित, कफयुक्त, पीडाके साथ थोडा २ दस्त आना। और प्रवाहिका, तथा पेट, गुदा, बस्ति और वंक्षण (बखियों) में भारीपन, कभी बँधा-हुआ कभी पतला मल उतरना, रोमांच, कफका उत्क्लेश, निद्रा, आलस्य, अंगोंका सो जाना और अन्नमें अरुचि यह कफातिसारके रूप (लक्षण) जानना ॥ १० ॥

सन्निपातातिसारके हेतु और संप्राप्ति।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्म्मणांविषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसेवनादस्वप्नादतिस्वप्नाद्वेगविधारणादृतुविपर्य्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वरार्शोविकारातिकर्शनाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाप्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यपक्वाशयमनुप्रविश्यअतीसारंसर्वदोषलिंगंजनयंति ॥ ११ ॥

अत्यंत शीतल, चिकने, रूखे, गरम, भारी, खर, कठिन, पदार्थोंके सेवनसे विषम विरुद्ध और असात्म्य भोजनके सेवनसे, समयातीत भोजन और अल्पभोजन करनेसे, दूषित मद्य और दूषित जल, पीनेसे, अतिमद्यपान, संचितमलका शोधन न करना, बार २ विरेचन कराना, अग्नि, सूर्यका ताप, अधिक वायु, अधिक जल, इनके अधिक सेवनसे, न सोने अथवा अधिक सोनेसे, मलमूत्रादिवेगोंको रोकनेसे,

ऋतुओंके विपर्ययसे सामर्थ्यसे अधिक वल करनेसे, एवं भय, शोक और चित्तोद्वेगके अतियोगसे, था कृमि, शोप, ज्वर और अर्शरोगसे; एवं अतिकर्षणसे मंदाग्निवाले मनुष्योंके शरीरमें वातादि तीनों दोप कुपित होकर जठराग्निको फिर उपहत करके मलाशयमें प्रविष्ट हो सर्व दोपोंके लिंगोंवाले अतिसार रोगको प्रगट करतेहैं ॥ ११ ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण ।

अपिच। शोणितादीन्धातूनतिप्रदुष्टान्दूपयन्तोधातुदोपस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति।तत्रशोणितादिपुधातुपुअतिप्रदुष्टेपु, हारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुवद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद् ग्रथितमामंसक्तत्सकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निविहतमुखरसस्तादृशमातुरंकृच्छ्रसाध्यंविद्यात्। एभिर्वर्णैरतिसार्य्यमाणंसोपद्रवमातुरमसाध्योऽयमितिप्रत्याचक्षीत। तद्यथा–काथशोणिताभंयकृत्पिण्डोपमंमांसोदकसन्निकाशंदधिघृतमज्जातैलवसाक्षीरवेशवाराभमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवाच्छंपुनर्मेचकाभमतिस्निग्धंहरितनीलकषायवर्णकर्वुरमाविलंतन्तुमदामं चन्द्रकोपगतमतिकुणपपूतिपूयगन्धमाममत्स्यगन्धिमक्षिकाक्रान्तं कथितवहुधातुद्रवमल्पपुरीषमपुरीषंवातिसार्य्यमाणंतृष्णादाहज्वरभ्रमतमकहिक्काश्वासानुवन्धमतिवेदनमवेदनंवास्रस्तपक्वगुदंपतितगुदवलिंमुक्तनालमतिक्षीणवलमांसशोणितंसर्वपार्श्वास्थिशूलिनमरोचकातिप्रलापसंमोहपरीतंसहसोपरतविकारमतिसारिणमचिकित्स्यंविद्यादितिसन्निपातातिसारः ॥ १२ ॥

तथा त्रिदोपज अतिसारमें रक्तादि संपूर्ण धातुयें दूपित होजातीहैं । उन दूपित धातुओंके स्वभावानुसार अतिसारका वर्ण विशेप होताहै । रक्तादिधातु अत्यंत दुष्ट हों तो हलदीके समान पीला, हरा, नीला, मजीठके समान, वर्णवाला, मांसके धोवनके समान, लाल, काला, सफेद, वाराहकी चर्वीके समान शूलयुक्त अथवा शूलके विना थोडा २ या अनेक प्रकार विपरीतभावसे कभी गांठदार-कभी कच्चा, कभी पककर मल आने लगताहै । इस त्रिदोपातिसारमें रोगीका मांस

नागरधान्यकम् ॥ २३ ॥ पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसमांशाकण्टकारिका । तिस्रःप्रमथ्याविहिताःश्लोकार्द्धेष्वतिसारिणाम् ॥ २४ ॥

१ पीपल, सोंठ, धनियां अजवायन, हरडे और वच । २ नेत्रवाला, भद्रमोथा, वेलगिरी, सोंठ और धनियां । ३ पृष्ठपर्णी, गोखरू और इन दोनोंके बराबर कटेली यह आधे २ श्लोकमें कहेहुए तीन योग अतिसारमें हितकारी हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

वचाप्रतिविषाभ्यांवामुस्तपर्पटकेनवा ।
ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यांपक्वंवापाययेज्जलम् ॥ २५ ॥

वच और अतीश, नागरमोथा और पापडा, अथवा नेत्रवाला और सोंठ, डालकर पकायाहुआ जल पीनेको देना अतिसारमें हितकारी है ॥ २५ ॥

युक्तेऽन्नकालेक्षुत्क्षामंलघून्यन्नानिभोजयेत् । तथासशीघ्रमाप्नोति रुचिमग्निवलंवलम् ॥ २६ ॥ तक्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्पणेनवा । सुरयामधुनाचादौयथासात्म्यमुपाचरेत् ॥ २७ ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखडैर्यूषैरसौदनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्यादतःपरम् ॥ २८ ॥

अतिसारमें क्षुधा लगनेपर हलके अन्नका भोजन देवे । ऐसा करनेसे रुचि जठराग्नि और बलकी वृद्धि होतीहे । प्रथम भोजनके लिये प्रकृतिके अनुसार जैसे सात्म्य हों तक्र, कांजी, यवागू तर्पण या सुरा अथवा शहदका प्रयोग करना चाहिये । फिर क्रमपूर्वक दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई यवागू विलेपी, खडयूष, मांसरस और भात आदि भोजनके लिये प्रयुक्त करे ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

शालपर्णींपृश्निपर्णींबृहतींकण्टकारिकाम् । बलांश्वदंष्ट्रांविल्वानि पाठांनागरधान्यकम् ॥ २९ ॥ शटींपलाशंहपुषांवचांजीरकपिप्पलीम् । यमानींपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ ३० ॥ वृक्षाम्लंदाडिमाम्लञ्चसहिंगुविडसैन्धवम् । प्रयोजयेदन्नपानेविधिनासूपकल्पितम् ॥ ३१ ॥ वातश्लेष्महरोह्येषगणोदीपनपाचनः । ग्राहीवल्योरोचनश्चतस्माच्छस्तोऽतिसारिणाम् ॥ ३२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेली, वला, गोखरू, वेलगिरि, पाढ, सोंठ, धनियां, कचूर, ढाक, हाउवेर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपर, अमलवेत, अनारदाना, हींग, विडनमक, सेंधानक, इन सबका विधिपूर्वक जलमें

व्यंजनकी भांति रस बना अतिसारके रोगीको अन्नपानमें दियाकरे । यह शालपर्ण्यादि औषधोंका गण वात और कफको हरनेवाला दीपन, पाचन, संग्राही, बलकारक, रुचिको प्रकट करनेवाला है । इसीलिये इसका प्रयोग अतिसार रोगवालोंके लिये परमोत्तम है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

आमेपरिणतेयस्तुविवन्धमतिसार्य्यते । सशूलपिच्छमल्पाल्पंवहुशःसप्रवाहिकम् ॥ ३३ ॥ तंमूलकानांयूषेणवदराणामथापिवा । उपोदिकायाःक्षीरिण्यायमान्यावास्तुकस्यवा ॥ ३४॥सुवर्चलायाश्चश्चोर्वाशाकेनावल्गुजस्यवा । शट्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्याश्चिर्भटस्य वा ॥ ३५ ॥ लोणीकायाःसपाठायाः शुष्कशाकेनवापुनः । दधिदाडिमसिद्धेनवहुस्नेहेनभोजयेत् ॥ ३६ ॥

आमके पकजानेसे जिसका दस्त बद्ध होगयाहो तो शूलयुक्त पिच्छिल और थोडा २ वार वार आताहो । प्रवाहिकासे युक्त हो तो उस रोगीको मूली अथवा वेर या पोईका यूप अथवा खिरनी या अजवायन या बथुआ अथवा ब्राह्मी या हुलहुलका यूप एवं चंचु, नाडीका साग सोमराजी, कचूर, ककीरू (कडू) जीवन्ती, चिरभट, लोनियाँ और पाठा इनमेंसे किसी एकका सूखा साग लेकर उसको विधिवत् सिद्धकर दही और अनारकी खटाई तथा बहुतसा घृत मिला भोजन करावे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

प्रवाहिकाका यत्न ।

कल्कःस्याद्बालविल्वानांतिलकल्कश्चतत्समः ।
दध्नःसरोऽम्लस्नेहाढ्यःखडोहन्यात्प्रवाहिकाम् ॥ ३७ ॥

कच्चे बिल्वका कल्क और उसके समान तिलोंका कल्क और दहीकी मलाई, अनारका रस और घृत इनसे खडयूष बनाकर सेवन करे तो प्रवाहिका (पेचिस) दूर हो ॥ ३७ ॥

यवानांमुद्गमाषाणांशालीनाञ्चतिलस्यच । कोलानांबालविल्वानांधान्ययूपंप्रकल्पयेत् ॥ ३८ ॥ ऐकध्यंयमकेभृष्टंदधिदाडिमसाधितम् । वर्चःक्षयेशुष्कमुखंशाल्यन्नंतेनभोजयेत् ॥ ३९ ॥

यदि मलके क्षय होजानेसे रोगीका मुख सूखजाय तो उसको जव, मूंग, उडद, चावल, तिल, वेर, कच्चे बिल्वकी गिर और दही, अनारदानेका रस इनका धान्ययूप बनाकर तेल और घृतसे भर्जितकर पुराने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे ३८।३९॥

दध्नःसरंवायमकेभृष्टंसगुडनागरम् । सुरांवायमकेभृष्टांव्यञ्जनार्थेप्रदापयेत् ॥ ४० ॥ फलाम्लंयमकेभृष्टंयूषंगृञ्जनकस्यवा । लोपाकरसमम्लंवास्निग्धाम्लंकच्छपस्यवा ॥ ४१ ॥ बर्हितित्तिरिदक्षाणांवर्त्तकानांतथारसः । स्निग्धाम्लाःशालयश्चाग्र्यावर्चःक्षयरुजापहाः ॥ ४२ ॥

अथवा दहीकी मलाई, गुड और सोंठ, इनको यमकस्नेहमें भूनकर अथवा सुराको घृत तैलमें छौंककर भोजनके साथमें देवे। अथवा लहसुनका रस और अनारदानेका रस घृत तैलमें छौंककर अथवा लोपाकका मांसरस अनारके रसयुक्त कर या कछुएका मांस स्निग्ध और खट्टा करके भातके साथ देवे। अथवा मोर, तीतर, मुर्गा या बटेरका मांसरस स्निग्ध और अम्ल करके उत्तम पुराने चावलोंके भातके साथ खानेको देवे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार शान्त होतेहैं॥४०।४१।४२॥

अन्तराविरसंपूत्वारक्तंमेषस्यचोभयम् । पचेद्दाडिमसाराम्लंसधान्यस्नेहनागरम् ॥ ४३ ॥ भोजनंरक्तशालीनांतेनाद्यात्प्रविवेच्च तत् । तथावर्चःक्षयकृतैर्व्याधिभिर्विप्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

मेंढेके मध्यभागके मांसरसमें मेंढेका रुधिर मिलाकर छानलेवे। फिर इसमें अनारका रस, धनियां, घृत, सोंठ मिलाकर फिर व्यंजनपाकविधिसे सिद्धकरले। इस रसके साथ उत्तम पुराने चावलोंका भात भोजन करावे तो मलके क्षय होनेसे उत्पन्न हुए विकार दूर होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

गुदभ्रंशकी चि० ।

गुदानिःसरणेशूलेपानमम्लस्यसर्पिषः ।
प्रशस्यतेनिरामाणामथवाप्यनुवासनम् ॥ ४५ ॥

-यदि अतिसारवाले रोगीकी गुदा बाहर निकल आवे और शूल होताहो तो चूकाकी खटाई और घृत मिला पीना चाहिये। यदि रोगीका उदर आमरहित हो तो अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

चांगेरीघृत ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्कथितंपेयंगुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४६ ॥

---

१. घृत तैल ।

चांगेरी, (चूका) वेर, दही, अनारका रस, सोंठ और जवाखार इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत गुदभ्रंश और शूलको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

चव्यादिघृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलंसव्योपविडदाडिमम् ।
पेयमम्लंघृतंयुक्त्यासधान्याजाजिचित्रकम् ॥ ४७ ॥

चव्य, पीपलामूल, मिर्च, पीपल, सोंठ, विडनमक, अनारदाना, धनियां, जीरा और चित्रक इनसे सिद्ध किया हुआ घृत पीनेसे गुदभ्रंश (कांच निकलना) दूर होताहै ॥ ४७ ॥

अनुवासन प्रयोग ।

दशमूलोपसिद्धंवासविल्वमनुवासनम् । शताह्वाशटिविल्वैर्वावचयाचित्रकेणवा । स्तब्धभ्रष्टगुदेपूर्वंस्नेहस्वेदौप्रयोजयेत् । सुस्विन्नश्चमृदुभूतंपिचुनासंप्रवेशयेत् ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

दशमूल और कच्चे वेलगिरिसे सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्ति करना अथवा सौंफ, कचूर और वेलगिरिसे सिद्ध किये तैल या वच, और चित्रकसे सिद्ध किये तेलसे अनुवासन करना गुदस्तम्भ और गुदभ्रंशको दूर करताहै । किन्तु पहिले स्नेहन और स्वेदन करनेपर जब गुदा नरम होजाय तो इस तैलमें उत्तम रूईका फोहा भिगोकर अनुवासन (गुदामें प्रवेश) करे ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

विबन्धवातवर्चास्तुबहुशूलप्रवाहिकः । सरक्तपिच्छतृष्णार्त्तःक्षीरसौहित्यमर्हति । यमकस्योपरिक्षीरंधारोष्णंवापिबेन्नरः ॥ ५० ॥ शृतमैरण्डमूलेनवालविल्वेनवापयः । एवंक्षीरप्रयोगेणरक्तंपिच्छावशाम्यति । शूलंप्रवाहिकाचैवविबन्धश्चोपशाम्यति ॥ ५१ ॥

जिस रोगीका अधोवायु और मल बद्ध होगयाहो तथा प्रवाहिका (पेचिश) और शूल अत्यंत बढगयाहो तथा रक्त और पिच्छिल मल निकलता हो और प्याससे व्याकुल हो तो उसको पेटभरकर दूध पिलावे । अथवा घी और तेल पिलाकर ऊपरसे धारोष्ण दूध पिलावे । या एरंडकी जड अथवा कच्ची वेलगिरिसे सिद्ध किया दूध पिलावे । इस प्रकार दूधके पीनेसे रक्तस्राव, पिच्छाशूल, प्रवाहिका और विबंध यह सब शान्त होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

पित्तातिसारकी चि० ।

पित्तातिसारंपुनर्निदानोपशयाकृतिभिरामान्वयमुपलभ्ययथाबलं

लङ्घनपाचनाभ्यामुपाचरेत् ॥ ५२ ॥ तृष्यतस्तुमुस्तपर्पटकोशीर-शारिवाचन्दनकिराततिक्तकोदीच्यवारिभिरुपचारः ॥ ५३ ॥

पित्तके अतिसारमें निदान, उपशय और लक्षणोंसे आमका अनुबंध प्रतीत हो तो यथावल लंघन और पाचन देवे । यदि रोगी तृषासे व्याकुल हो तो मोथा, पापडा, खस, सारिवा, लाल चंदन, चिरायता और नेत्रवाला इनसे पकाया जल शीतल कर देवे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

लंघितस्यचाहारकालेवलातिवलासूर्य्यशालपर्णीपृश्निपर्णीवृहती-कण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिर्यूहसंयुक्तेनयथासात्म्यंयवागूम-ण्डादिनातर्पणादिनावाक्रमेणोपचारः ॥ ५४ ॥

लंघन करानेके अनन्तर भोजनके समय बला, अतिवला, मुग्धपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, वडी कटेरी, छोटी कटेरी, शतावर, गोखरू इनके क्वाथके साथ यवागूमण्ड अथवा तर्पणादि सात्म्यके अनुसार क्रमपूर्वक भोजनके लिये देवे ॥ ५४ ॥

मुद्गमसूरहरेणुमकुष्ठकयूषैर्वालावकपिञ्जलशशहारिणैणेयकालपु-च्छकरसैरीषदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुक्षयेत् ॥ ५५ ॥

मूंग, मसूर, हरेणु और मोठ, इनका यूष अथवा लवा, तीतर, शशा, हिरण, काला हिरण, कालपुच्छक हिरण इनके मांसरसको अनारकी खटाईसे अम्लकर अथवा विना अम्ल किये क्रमपूर्वक पीनेको देवे तो अग्नि चैतन्य हो ॥ ५५ ॥

अनुवन्धस्त्वेतुअस्यदीपनीयपाचनीयोपशमनीयसंग्रहणीयान्योगा-न्प्रयोजयेदिति ॥ ५६ ॥

यदि इन क्रियाओंसे अतिसार रोग शान्त होकर उसका कुछ अंश शेष रहजाय तो दीपन, पाचन, उपशमन और संग्राही योगोंका प्रयोग करे ॥ ५६ ॥

पित्तातिसारपर योग ।

भवन्तिचात्र ।

सक्षौद्रातिविषंपिष्ट्वावत्सकस्यफलत्वचम् ।
पिवेत्पित्तातिसारघ्नंतण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ५७ ॥

पीस, अतीस, इन्द्रजौ, और कुडाकी छालको शहद और तण्डुलजलके साथ सेवन करे तो पित्तातिसार दूर हो ॥ ५७ ॥

किराततिक्तकंमुस्तंवत्सकःसरसाञ्जनः। विल्वंदारुहरिद्राअत्वग्घी-

चेरंदुरालभाम् ॥ ५८ ॥ चन्दनश्चमृणालश्चनागरंलोध्रमुत्पलम् । तिलामोचरसोलोध्रंसमङ्गाकमलोत्पलम् ॥ ५९ ॥ उत्पलंधातकीपुष्पंदाडिमत्वक्महौषधम् । कट्फलंनागरंपाठाजम्ब्वाम्रास्थि दुरालभाः ॥ ६० ॥ योगाःषडेतेसक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः । पेयाःपित्तातिसारघ्नाःश्लोकार्द्धेननिदर्शिताः ॥ ६१ ॥

१-चिरायता, नागरमोथा, कुडाकी छाल, और रसौत, २-बेलगिरि, दारुहलदी, दालचीनी, नेत्रवाला और जवासा, ३-लाल चंदन, कमलकी डण्डी, सोंठ, लोध, और नीलकमल, ४-तिल, मोचरस, पठानी लोध, लाजवंती, नील कमल और लाल कमल; ५-नीलकमल, धायके फूल, अनारका छिलका और सोंठ। ६ कायफल, सोंठ, पाठ, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली और जवासा, इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए छः प्रयोगोंमेंसे किसी एकका बारीक चूर्ण शहद और तण्डुलजलके साथ सेवन करनेसे पित्तातिसार दूर होजाताहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ।

जीर्णौषधानांशस्यन्तेयथायोगंप्रकल्पितैः ।
रसैःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ॥ ६२ ॥

औषध जीर्ण होनेपर उसी प्रयोगकी औषधोंसे सिद्ध किया संग्राही मांसरस पुराने लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजन करावे ॥ ६२ ॥

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति । अजाक्षीरप्रयोगेणबलं वर्णश्चवर्द्धते ॥ ६३ ॥ बहुदोषस्यदीप्ताग्नेःसप्राणस्यनतिष्ठति । पैत्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत् ॥ ६४ ॥

दीप्ताग्निवाले मनुष्यका पित्तातिसार शीघ्र शान्त होजाताहै । उसको बकरीका दूध पिलानेसे बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै । बहुत दोषवाले दीप्ताग्नियुक्त बलवान् पित्तातिसारवालेको दूधके साथ विरेचन करानेसे अतिसार दूर होताहै ॥ ६३॥६४ ॥

पलाशफलनिर्य्यूहंपयसापाययेत्तुतम् । ततोऽनुपाययेत्कोष्णंक्षीरमेवयथाबलम् ॥ ६५ ॥ प्रवाहितेतेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः । पलाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी ॥ ६६ ॥

दूधके साथ विरेचन देनेमें ढाककी फलियोंका काथ दूधमें मिलाकर पिलावे । फिर यथाशक्ति किंचित् उष्ण दूधका अनुपान करावे । इस प्रकार मल निकल जानेपर पेटका विकार शान्त होजाताहै । अथवा ढाककी फलियोंकी जगह त्रायमाणका काथ दूधमें मिलाकर मलके शोधनके लिये प्रयुक्त करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

पित्तातिसारमें अनुवासन ।

संसर्ग्यांक्रियमाणायांशूलंचयद्यनुवर्त्तते । स्रुतदोषस्यतंशीघ्रंयथावदनुवासयेत् ॥ ६७ ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनच । तैलपादंघृतंसिद्धंसविल्वमनुवासनम् ॥ ६८ ॥ कृतानुवासनस्यापिक्रतसंसर्जनस्यच । वर्त्ततेयद्यतीसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ॥ ६९ ॥

मल शोधन करनेके अनन्तर पेयादिके क्रमका पालन करनेपर भी यदि शूल आदि रहजाय तो दोष निकालनेके अनन्तर विधिपूर्वक अनुवासन कर्म करे । सौंफ, शतावर, दूध, मुलैठी, घी और घीसे चौथा भाग तेल, वेलगिरि इन सबको तैलपाक विधिसे सिद्ध करके अनुवासनमें प्रयुक्त करे । अनुवासन कर्म करनेपर भी पेयादिक्रमका पालन करतेहुए अतिसार संपूर्णरूपसे निःशेष शान्त न हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

पिच्छा वस्ति ।

परिवेष्ट्यकुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानिशाल्मलेः । कृष्णमृत्तिकयालिप्यस्वेदयेद्गोमयाग्निना ॥ ७० ॥ सुशुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिवृंतानिशाल्मलेः । शृतेपयसिमृद्नीयादापोथ्योलूखलेततः ॥ ७१ ॥ पिष्टंमुष्टिसमंप्रस्थेतत्पूतंतैलसर्पिषा । योजितंमात्रयायुक्तंकल्केनमधुकस्यच ॥ ७२ ॥ वस्तिमभ्यक्तगात्रायदद्यात्प्रत्यागतेततः । स्नात्वा भुञ्जीतपयसाजाङ्गलानांरसेनवा ॥ ७३ ॥ पित्तातिसारज्वरशोथगुल्माजीर्णातिसारग्रहणीप्रदोषान् । जयत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान्विरेचनास्थापनयोश्चवस्तिः ॥ ७४ ॥

सेमलके फूलोंकी जडकी ओरकी गीली कच्ची टोपियें लेकर उनको हरी कुशाओंसे लपेटकर ऊपरसे काली मिट्टीका लेप करे । फिर इस गोलेको मृदु आगमें पकावे जब ऊपरकी मट्टी सूखजाय तो बीचमेंसे सेंवलके फूलोंकी टोपियें निकालकर ऊखलमें भली प्रकार कूटलेवे । वह कुटीहुई सेंवलकी कलियें ५ तोला लेकर १ सेर दूधमें पकावे । इस दूधमें तेल घृत और मुलैठीका कल्क मिलाकर इससे वस्तिकर्म करे । किन्तु वस्ति देनेसे प्रथम रोगीके शरीरपर तेलकी मालिशकर लेना चाहिये । जब वस्तिद्वारा भीतर गया द्रव्य बाहर निकलचुके फिर रोगीको स्नान कराके दूध अथवा जांगलजीवोंका मांसरस पिलावे । इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तातिसार, ज्वर,

सूजन, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार, संग्रहणी, विरेचन और आस्थापनके मिथ्यायोगसे उत्पन्न हुए सब प्रकारके रोग दूर होजातेहैं ॥ ७०–७४ ॥

रक्तातिसारकी संप्राप्ति।

पित्तातिसारीयस्त्वेतांक्रियांमुक्त्वानिषेवते । पित्तलान्यन्नपानानि तस्यपित्तंमहाबलम् ॥ ७५ ॥ कुर्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुप्रदूषयेत् । तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्चदारुणम् ॥ ७६ ॥

जो पित्तातिसारवाला रोगी उपरोक्त क्रियाको छोडकर पित्तके बढानेवाले अन्नपानोंका सेवन करताहै उसका पित्त अत्यंत प्रकोपको प्राप्त होकर रक्तको अत्यंत दूषित करके रक्तातिसारको उत्पन्न करदेताहै । उसमें प्यास, शूल, विदाह और गुदाका दारुण पाक यह उपद्रव होतेहैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

रक्तातिसारकी चिकित्सा।

छागंतत्रपयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् । पानार्थेव्यञ्जनार्थेचगुदप्रक्षालनंतथा ॥ ७७ ॥ भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् । रसैःपारावतादीनांघृतभृष्टैःसशर्करैः ॥ ७८ ॥ शशपक्षिमृगाणाञ्च शीतानांवनचारिणाम् । रसैरनम्लैःसघृतैर्भोजयेत्तंसशर्करैः ॥७९॥ रुधिरंमार्गमाजंवाघृतभृष्टंप्रशस्यते । काश्मर्य्याःफलयूषोवाकिञ्चिदम्लःसशर्करः ॥ ८० ॥

रक्तातिसारमें शहद और मिसरी मिलाहुआ बकरीका शीतल दूध पीना परम हितकारी है । यह दूध पीनेमें, तथा व्यंजनमें और गुदाको धोनेमें प्रयुक्त करना चाहिये । इसी दूधको लाल शालीचावलोंके भातके साथ भोजनमें प्रयुक्त करे । अथवा कबूतर आदि पक्षियोंके मांसरसको घीमें भूनकर मिसरी मिला पिलावे । या खरगोश, पक्षी, मृग आदि शीतवीर्य मांसका रस खटाईके विना घी और मिसरी मिला पिलावे । अथवा मृगका रक्त या बकरीका रक्त घृतमें भूनकर पिलावे । अथवा कुंभेरके फलोंका यूष, किंचित् खटाई और मिसरी मिला पिलावे ॥ ७७–८० ॥

नीलोत्पलंमोचरसोसमङ्गापद्मकेशरम् । अजाक्षीरयुतंदद्याज्जीर्णे चपयसौदनम् ॥ ८१ ॥ दुर्बलंपाययित्वावातस्यैवोपरिभोजयेत् । प्रागुक्तंनवनीतंवादद्यात्समधुशर्करम् ॥ ८२ ॥

नीलकमल, मोचरस, वाराहकांता और कमलकी केशर इन सबका चूर्ण बनाकर

वकरीके दूधके साथ देवे । क्षुधा लगनेपर वकरीका दूध और पुराने शालिचावलोंका भात खिलावे यदि रोगी दुर्वल हो तो औषधपान करनेके अनन्तर ही भोजन करावै । अथवा वकरीके दूधका मक्खन शहत और मिसरी मिलाकर चटावे॥ ८१ ॥ ८२ ॥

प्राज्यक्षीरोत्थितंसर्पिःकपिञ्जलरसाशनः । त्र्यहादारोग्यमाप्नोति पयसाक्षीरभुक्तथा ॥ ८३ ॥ पीत्वाशतावरीकल्कंपयसाक्षीरभुग्-जयेत् । रक्तातिसारंपीत्वावातथासिद्धंघृतंनरः ॥ ८४ ॥

दूधसे निकाले मक्खनको खाकर ऊपरसे कपिंजल (सफेद तीतर) का मांसरस पीवे । अथवा जल मिलाहुआ वकरीका दूध तीन दिन तक पीवे तो रक्तातिसार दूर होताहै ॥ ८३ ॥ शतावरके कल्कको जलयुक्त दूधमें मिलाकर पीवे और दूधका ही भोजन करे । अथवा शतावरके कल्कसे सिद्ध किया घृत पीवे तो रक्तातिसार दूर हो ॥ ८४ ॥

घृतंयवागूमण्डेनकुटजस्यफलैःशृतम् ।
पेयंतस्यानुपातव्यापेयारक्तोपशान्तये ॥ ८५ ॥

इन्द्रजौ और यवागुमण्डसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाका पान करे तो रक्तातिसार शान्त होताहै ॥ ८५ ॥

अतिसारनाशक योग ।

त्वक्चदारुहरिद्रायाःकुटजस्यफलानिच । पिप्पलीशृङ्गवेरञ्चला-क्षाकटुकरोहिणी ॥ ८६ ॥ षड्भिरेतैर्घृतंसिद्धंपेयामण्डावचारि-तम् । अतीसारंजयेच्छीघ्रंत्रिदोषमपिदारुणम् ॥ ८७ ॥

दारुहलदीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ, लाख, कुटकी, इन छः औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेया मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित दारुण अतिसार दूर होताहै ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

कृष्णमृन्मधुकंशंखंरुधिरंतण्डुलोदकम् । पीतमेकत्रसक्षौद्रंरक्तसं-ग्रहणंपरम् ॥ ८८ ॥ पीतःप्रियंगुकाकल्कःसक्षौद्रस्तण्डुलाम्भसा । रक्तस्रावंजयेच्छीघ्रंधन्वमांसरसाशिनः ॥ ८९ ॥

काली मट्टी, मुलैठी, शंखभस्म, केशर और चावलोंका धोअन इन सबको एक-त्रकर शहद मिलाकर पीवे तो रक्तातिसार दूर होताहै । अथवा फूलप्रियंगुका कल्क, शहत और तण्डुलजलसे पीवे तो रक्तका स्राव शीघ्र बन्द होताहै । इसके ऊपर जंगली जीवोंके मांसरसके संग चावलोंका भात भोजन करना चाहिये ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

कल्कस्तिलानांकृष्णानांशर्करापञ्चभागिकः ।
आजेनपयसापीतः सद्योरक्तंनियच्छति ॥ ९० ॥

काले तिलोंका कल्क ५ भाग, खांड १ भागको बकरीके दूधके साथ पीनेसे रक्तातिसार शीघ्र दूर होताहै ॥ ९० ॥

पलंवत्सकबीजस्यश्रपयित्वारसंपिबेत् ।
योरसाशीजयेच्छीघ्रंसपैत्तंजठरामयम् ॥ ९१ ॥

१ पल इन्द्रजौके क्वाथको जो मनुष्य पीताहै और ऊपरसे मांसरसका सेवन करताहै उसके पित्तातिसार और रक्तातिसार तत्काल नष्ट होजातेहैं ॥ ९१ ॥

पीत्वासशर्कराक्षौद्रंचन्दनंतण्डुलाम्भसा ।
दाहतृष्णाप्रमेहेभ्योरक्तस्त्रावाद्विमुच्यते ॥ ९२ ॥

चावलोंके धोवनमें शहत, मिसरी और लालचंदन मिलाकर पीवे तो दाह, प्यास, प्रमेह और रक्तका स्राव यह सब दूर होतेहैं ॥ ९२ ॥

गुदोवहुभिरुत्थानैर्यस्यपित्तेनपच्यते ।
सेचयेत्तंसुशीतेनपटोलमधुकाम्बुना ॥ ९३ ॥

यदि बहुत दस्तोंके लगनेसे गुदा पकगई हो तो गुदाको पटोलपत्र और मुलैठीके क्वाथको शीतलकर उससे धोवे ॥ ९३ ॥

पञ्चवल्कमधूकानांरसैरिक्षुरसैर्घृतैः।छागैर्गव्यैःपयोभिर्वाशर्कराक्षौद्रसंयुतैः ॥ ९४ ॥ प्रक्षालनानांकल्कैर्वासर्सापष्कैःप्रलेपयेत् । एषांवासुकृतैश्चूर्णैस्तंगुदंप्रतिसारयेत् ॥ ९५ ॥ धातकीलोध्रचूर्णैर्वासमांशैःप्रतिसारयेत् । तथातत्रस्त्रवत्यस्त्रंगुदंतैःप्रतिसारितम् ॥ ॥ ९६ ॥ पक्वताप्रशमंयातिवेदनाचोपशाम्यति । यथोक्तैःसेचनैः शीतैःशोणितेनिःस्त्रवत्यपि । गुदवंक्षणकट्यूरुसेचयेद्घृतभावितम् ॥ ९७ ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा । कार्पाससहयोगेनसेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥ ९८ ॥

अथवा पंचवल्कल और महुएका क्वाथ, या ईखका रस अथवा घृत या शहद और मिसरीयुक्त बकरीका दूध, या गौका दूध लेकर उससे गुदा प्रक्षालनकरे या इन सब द्रव्योंके बारीक चूर्णको घीमें मिलाकर गुदापर लेपकरे अथवा इन सबके बारीक चूर्णको गुदापर बुरकावे । अथवा धावेके फूल और पठानी लोधको बारीक करके गुदापर प्रतिसारण करे। इस प्रकार प्रतिसारण करनेसे मलद्वारसे

रुधिरका स्राव होताहै । उससे गुदाका पकना और गुदाकी पीडा यह सब दूर होजातीहै । रक्तका स्राव होनेपर गुदा, वंक्षण, कमर और उरूस्थलमें घृत चुपडकर पूर्वोक्त शीतल क्वाथोंका तरडा देवे । अथवा चंदनादितैल या १०० वार धुलेहुए घृतको गुदा और वंक्षणोंपर लेप करके रूईके फोहेको उपरोक्त शीतल क्वाथोंमें भिगो उससे गुदाको सेचनकरे ॥ ९४–९८ ॥

अल्पाल्पंवहुशोरक्तंसशूलमुपवेश्यते । यदावायुर्विवद्धश्चकृच्छ्रंच-रतिवानवा ॥ ९९ ॥ पिच्छावस्तिंतदातस्ययथोक्तमुपकल्पयेत् । प्रपौण्डरीकसिद्धेनसर्पिषाचानुवासयेत् ॥ १०० ॥

यदि थोडा २ रक्त वारंवार पीडाके साथ निकले और अपानवायु विरुद्ध होकर कोष्ठमें विचरण करे अथवा एकस्थानमें ही बद्ध रहे तो ऐसे समय पूर्वोक्त पिच्छावस्ति विधिवत् प्रयोग करना चाहिये । अथवा प्रपौण्डरीकके साथ सिद्धकियेहुए घृतसे अनुवासन करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

प्रायशोदुर्वलगुदाश्चिरकालातिसारिणः ।
तस्मादभीक्ष्णशस्तेषांगुदस्नेहंप्रयोजयेत् ॥ १०१ ॥

अतिसार रोग वहुत दिन तक वना रहनेसे गुदा अत्यंत दुर्वल होजातीहै । इसलिये ऐसे मनुष्योंकी गुदामें नित्य चिकनाई लगाना चाहिये ॥ १०१ ॥

पवनोऽतिप्रवृत्तोहिस्वेस्थानेलभतेऽधिकम् ।
वलंतस्यसपित्तस्यजयार्थेवस्तिरुत्तमः ॥ १०२ ॥

अतिसारकी अत्यंत प्रवृत्ति होनेसे वायु अपने स्थान (मलाशय) में अत्यंत कुपित होकर पित्तसे मिलजातीहै । उस प्रवल वात पित्तके जीतनेके लिये वस्ति क्रिया करना ही श्रेष्ठहै ॥ १०२ ॥

रक्तंविट्सहितंपूर्वंपश्चाद्वायोऽतिसार्य्यते ।
शतावरीघृतंतस्यलेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ १०३ ॥
शर्कराद्धांशिकंलीढंनवनीतंनवोद्धृतम् ।
क्षौद्रपादंजयेच्छीघ्रंतंविकारंहिताशिनः ॥ १०४ ॥

जिस रोगीके मलके साथ प्रथम रुधिर निकले और पीछे अधोवायु निकले उसको शतावरीका घृत चटाना चाहिये । अथवा ताजा मक्खन लेकर उसमेंसे आधेको मिसरीमें और आधा शहतमें मिलाकर चाटे और पथ्य भोजन करे तो यह विकार शान्त होताहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्यवासयेत् । अहोरात्रंजलेतत्तेघृतंतेनाम्भसापचेत् ॥ १०५ ॥ तदर्द्धंशर्करायुक्तंलिह्यात्सक्षौद्रपादिकम् । अधोवायदिवाप्यूर्द्ध्वंयस्यरक्तंप्रवर्त्तते ॥ १०६ ॥

वड, गूलर और पीपलके अंकुरोंको कूटकर १ दिन रात गर्म जलमें भिगोरक्खे। फिर उस जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत आधी मिसरी और चौथा भाग शहत मिलाकर चाटनेसे अधोवायुके साथ या दस्तके साथ अथवा वमनके साथ रक्तका निकलना वन्द होजाताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

यस्त्वेवंदुर्बलोमोहात्पित्तलान्येवसेवते ।
शीघ्रंविपद्यतेप्राप्यवलीपाकंसुदारुणम् ॥ १०७ ॥

जो दुर्वल रक्तातिसार रोगी मोहसे पित्तकर्त्ता पदार्थोंका सेवन करताहै वह दारुण गुदवलीके पाकसे व्याकुल हो मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १०७ ॥

कफातिसारकी चिकित्सा।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितंलङ्घनपाचनम्। योज्यश्चामातिसारघ्नोयथोक्तोदीपनोगणः ॥ १०८ ॥ लंघितस्यानुपूर्व्याश्चकृतायांननिवर्त्तते । कफजोयद्यतीसारःकफघ्नैस्तमुपाचरेत् ॥ १०९ ॥

कफके अतिसारमें पहिले लंघन कराना और पाचन देना हितकारी है तथा पहिले कहाहुआ आमातिसारनाशक दीपनीयगणका प्रयोग करना उचित है। भले प्रकार लंघन और पेयादिक्रमके पालन करनेपर भी यदि कफातिसार शान्त न हो तो कफनाशक योगोंसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

विल्वकर्कटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम्। वचाविडंगंभूतीकंधान्यकंदेवदारुच ॥ ११० ॥ कुष्ठंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी । पिप्पलीपिप्पलीमूलंचैत्रकंहस्तिपिप्पली ॥ १११ ॥ योगाञ्श्लोकार्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयोजयेत् । श्रुताञ्श्लेष्मातिसारेपुकायाग्निवलवर्द्धनान् ॥ ११२ ॥

१ वेलगिर, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, हरडे और सोंठ; २ वच, वायविडंग, अजवायन, धनियां और देवदारु; ३ कूठ, अतीस, पाढ, चव्य और कुटकी, ४ पीपल, पीपलामूल, चित्रक, और गजपीपल; इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगका क्वाथ शहत मिलाकर पीनेसे कफातिसार दूर होकर जठराग्निका वल वढताहै ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

अजाजींससितांपाठांनागरंमरिचानिच । धातकीद्विगुणंदद्यान्मातुलुङ्गरसाप्लुतम्॥ ११३ ॥ रसाञ्जनंसातिविषंकुटजस्यफलानिच। धातकींद्विगुणंदद्यात्पातुंसक्षौद्रनागरम् ॥ ११४ ॥

जीरा, मिसरी, पाढ, सोंठ, काली मिर्च इन सबसे दूने धावेके फूल लेकर बारीक चूर्ण बना बिजौरेके रसमें घोटकर सेवन करै । अथवा रसौत, अतीश, इन्द्रजौ इन सबसे दूने धावेके फूल इनका चूर्ण बना शहत और सोंठ मिला सेवन करे तो कफातिसार दूर हो ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

धातकीनागरंविल्वंलोध्रंपद्मस्यकेशरम् । जम्बुत्वङ्नागरंधान्यं पाठामोचरसंवला ॥ ११५ ॥ समङ्गाधातकीविल्वमध्यंजम्ब्वाम्रयोस्त्वचा । कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचानिच ॥ ११६ ॥ चाङ्गेरीकोलतक्राम्लांश्चतुरस्तान्कफातुरे । श्लोकार्द्धविहितान्दद्यात्सस्नेहलवणान्खडान् ॥ ११७ ॥

१ धावेके फूल, सोंठ, बेलगिरि, पठानी लोध और पद्मकेशर, २ जामनुकी छाल सोंठ, धनियाँ, पाठा, मोचरस और बला, ३ वाराहक्रान्ता, धावेके फूल, बेलगिरि, जामुनकी छाल और आमकी छाल, ४ कैथ, वायविडंग, सोंठ और मिर्च; इन आधे २ श्लोकोंमें कहे चार योगोंमेंसे किसी एकको चांगेरी, बेर और तक्रकी खटाई तथा स्नेह और लवणयुक्त कर खडयूप बना कफातिसारमें प्रयुक्त करे ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

कपित्थमध्यंलीढ्वातुसव्योषक्षौद्रशर्करम् ।
कट्फलंमधुयुक्तंवामुच्यतेजठरामयात् ॥ ११८ ॥

कैथका गूदा, त्रिकुटा, शहद और शर्करा इन सबको मिलाकर चाटे, अथवा कायफल, शहदमें मिलाकर चाटे तो कफजनित पेटके विकार शान्त होतेहैं ॥११८॥

कणांमधुयुतांपीत्वातक्रंपीत्वासचित्रकम् ।
जग्ध्वावाबालविल्वानिमुच्यतेजठरामयात् ॥ ११९ ॥

शहदमें पीपल मिलाकर चाटनेसे अथवा तक्रमें चित्रकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे अथवा कच्चे बिल्वकी गिरि खानेसे कफजनित उदररोग दूर होजाते ॥ ११९ ॥

बालविल्वंगुडंतैलंपिप्पलींविश्वभेषजम् ।
लिह्याद्वातेप्रतिहतेसशूलःसप्रवाहिकः ॥ १२० ॥

कच्चे बिल्वकी गिरि, गुड, तेल, पीपल और सोंठ इन सबको मिलाकर सेवन करनेसे अधोवायुकी रुकावट शूल और प्रवाहिका यह सब दूर होतेहैं ॥ १२० ॥

भोज्यंमूलकषायेणवातघ्नैश्चोपसेवनैः । वातातिसारविहितैर्यूषैर्मांसरसैःखडैः ॥ १२१ ॥ पूर्वोक्तमम्लंसर्पिर्वाषट्पलंवायथावलम् । पुराणंवाघृतंदद्यायवागूमण्डमिश्रितम् ॥ १२२ ॥ वातश्लेष्मविबन्धेवाकफेवातिस्रवत्यपि । शूलेप्रवाहिकायांवापिच्छावस्तिंप्रयोजयेत् ॥ १२३ ॥

मूलीका क्वाथ अथवा वातनाशक द्रव्य या वातातिसारमें कहेहुए यूष, मांसरस, खडयूष इनका सेवन करना अथवा पूर्वोक्त अम्लघृत वा षट्पल घृत अथवा पुराना घृत यवागूमण्डमें मिलाकर सेवन करावै। वात और कफके विबंध अथवा कफवातके स्रावमें शूल और प्रवाहिका हो तो पिच्छावस्तिका प्रयोग करावे ॥१२१॥१२२॥१२३॥

पिप्पलीबिल्वकुष्ठानांशताह्वावचयोरपि । कल्कैःसलवणैर्युक्तंपूर्वोक्तंसन्निधापयेत् ॥ १२४ ॥ प्रत्यागतेसुखेस्नातंकृताहारंदिनात्यये । बिल्वतैलेनमतिमान्सुखोष्णेनानुवासयेत् ॥ १२५ ॥

पीपल, वेलगिरि, कूठ, सौंफ और वच, इनके कल्कमें नमक मिलाकर पिच्छावस्तिका प्रयोग करे। जब वस्तिद्वारा गयाहुआ द्रव्य सब बाहर निकलजाय तो रोगीको स्नान कराकर पथ्य भोजन करावे। फिर सायंकाल बिल्वतैलसे अनुवासन करावे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

वचान्तैरथवाकल्कैस्तैलंपक्त्वानुवासयेत् ।
बहुशःकफवातार्त्तस्तथासलभतेसुखम् ॥ १२६ ॥

अथवा पीपल, वेलगिरि, कूठ, सौंफ और वच, इनसे सिद्धकिये तैलसे कफ और वायुसे पीडित रोगीको बार बार अनुवासनकर्म करावे। ऐसा करनेसे रोग शान्त होकर मनुष्यको सुख प्राप्त होताहै ॥ १२६ ॥

स्वेस्थानेमारुतोऽवश्यंवर्द्धतेकफसंक्षये ।
सवृद्धःसहसाहन्यात्तस्मात्तंत्वरयाजयेत् ॥ १२७ ॥

कफके क्षय होनेपर पक्वाशयमें स्थित वायु अत्यंत प्रबल होजातीहै फिर वह बढीहुई वायु शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट कर देतीहै। इसलिये उसको अत्यंत शीघ्र जीतना चाहिये ॥ १२७ ॥

वातस्यानुजयेत्पित्तंपित्तस्यानुजयेत्कफम् ।
त्रयाणांवाजयेत्पूर्वंयोभवेद्बलवत्तमः ॥ १२८ ॥

पहिले वातको जीते, फिर पित्तको जीते तदनन्तर कफको जीतना चाहिये । अथवा इन तीनोंमें जो बढा हुआ हो पहिले उसको जीतना उचित है ॥ १२८ ॥

तत्र श्लोकः ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिलक्षणंसाध्यतातथा ।
क्रियाचावस्थिकीसिद्धानिर्दिष्टाह्यतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥

इति चरक० चि० राजयक्ष्मचिकित्सितंनामदशमोऽध्यायः ॥१०॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस अतिसारचिकित्सित अध्यायमें अतिसाररोगकी प्रथम उत्पत्ति, हेतु, लक्षण, साध्यता और अवस्थानुसार अतिसार रोगियोंकी सिद्ध चिकित्सा यह सब वर्णन कियागयाहै ॥ १२९ ॥

इति श्रीच० प्र०आ०स०चि० स्थाने प्र० भा० अतिसारचिकित्सितं नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम विसर्पचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

कैलासेकिन्नराकीर्णेबहुप्रस्रवणौपधे । पादपैर्विविधैःस्निग्धैर्नित्यं कुसुमसम्पदैः ॥ १ ॥ वहद्भिर्मधुरान्गन्धान्सर्वतःस्वभ्यलंकृते । विहरन्तंजितात्मानमात्रेयमृपिवन्दितम् ॥ २ ॥ महर्पिभिःपरिवृतंविभुंभूतहितेरतम् । अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादिदमुक्तवान् ॥३॥ भगवन् ! दारुणंरोगमाशीविपविपोपमम् । विसर्पन्तंशरीरेपुदेहिनामुपलक्षये ॥ ४ ॥ सहसैवनरास्तेनपरीताःशीघ्रकारिणा। विनश्यन्त्यनुपक्रान्तास्तत्रनःसंशयोमहान् ॥ ५ ॥ सनाम्नाकेनविज्ञेयः संज्ञितःकेनहेतुना । कतिभेदःकियद्धातुःकिंनिदानःकिमाश्रयः ॥६॥

सुखसाध्यःकृच्छ्रसाध्योज्ञेयोयश्चाप्युपक्रमः । कथंकैर्लक्षणैःकिञ्चभगवँस्तस्यभेषजम् ॥ ७ ॥

किन्नरोंसे सुशोभित अनेक झरने और बहुतसी औषधियोंसे युक्त, जिसमें अनेक प्रकारके स्निग्ध वृक्ष सुगन्धित फूलोंकी सुन्दर गन्धोंको बरसारहेहैं और सब ओरसे शोभाको बढारहेहैं उस कैलास पर्वतपर एक समय जितेन्द्रिय ऋषिगणोंसे पूजित प्रभावशाली परम करुणामय महर्षि आत्रेयजी भ्रमण कररहे थे। उन महर्षिगणोंसे घिरे हुए अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश अवकाश पाकर पूछने लगे कि हे गुरो! एक प्रकारका दारुण रोग सांपके विषके समान मनुष्योंके शरीरमें शीघ्र फैलनेवाला देखनेमें आताहै इससे ग्रसित हुए मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होतेहैं। इसमें मुझे बडा भारी संशय है कि इस रोगका नाम क्या है और वह नाम किस कारणसे हुआ इसके कितने भेद हैं और कौनसी धातुयें हैं तथा निदान क्या है और अधिष्ठान क्या है। इसकी साध्यता, कष्टसाध्यता और असाध्यता लक्षण तथा चिकित्सा किस प्रकार है सो कृपा करके यथाक्रम इसका वर्णन कीजिये ॥ १–७ ॥

विसर्पकी निरुक्ति।

तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वात्रेयःपुनर्वसुः । यथावदखिलंसर्वंप्रोवाच मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥ विविधंसर्पतियतोविसर्पस्तेनसस्मृतः । परिसर्पोऽथवानाम्नासर्वतःपरिसर्पणात् ॥ ९ ॥

अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसु आत्रेयजी इसके विषयमें संपूर्णरूपसे कथन करने लगे कि यह रोग अनेक प्रकारसे देहमें सर्पण (विचरण) करताहै इसलिये इसका नाम विसर्प है। और शरीरमें सर्वतः परिसर्पित होनेसे इसको परिसर्प भी कहतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विसर्पके भेद।

सचसप्तविधोदोषैर्विज्ञेयःसप्तधातुकः । पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैकोविसर्पोद्वन्द्वजास्त्रयः ॥ १० ॥ वातिकःपैत्तिकश्चैवकफजःसान्निपातिकः । चत्वारएतेवीसर्पावक्ष्यन्तेद्वन्द्वजास्त्रयः ॥ ११ ॥

यह वातादिभेदसे सात प्रकारका होताहै। जैसे एक वातका, एक पित्तका, एक कफका और तीन दो दो दोषोंसे एक सन्निपातसे ॥ १० ॥ ११ ॥

आग्नेयोवातपित्ताभ्यांग्रन्थाख्यः कफवातजः ।
यस्तुकर्दमकोघोरःसपित्तकफसम्भवः ॥ १२ ॥

वातपित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पको आग्नेय कहतेहैं । कफ और वातसे उत्पन्नहुए विसर्पको ग्रंथिविसर्प कहतेहैं और पित्तकफके विसर्पको कर्दमक ॥ १२ ॥

विसर्पके धातु ।

रक्तंलसीकात्वङ्मांसंदूष्यंदोषास्त्रयोमलाः ।
विसर्पाणांसमुत्पत्तौविज्ञेयाःसप्तधातवः ॥ १३ ॥

रक्त, लसीका, त्वचा, मांस यह चारों दूध और तीनों दोष यह सात धातु विसर्पकी उत्पत्तिमें दूषित होतेहैं ॥ १३ ॥

विसर्पका निदान ।

लवणाम्लकटूष्णानांरसानामतिसेवनात् । दध्यम्लमस्तुशुक्तानां-सुरासौवीरकस्यच ॥ १४ ॥ व्यापन्नबहुमद्यौष्णरागषाडवसेवनात् । शाकानांहरितानाञ्चसेवनाच्चविदाहिनाम् ॥ १५ ॥ कूर्चिकानांकिलाटानांसेवनान्मन्दकस्यच । दध्नःशाण्डाकिपूर्वाणामास्तुतानाञ्चसेवनात् ॥ १६ ॥ तिलमाषकुलत्थानांतैलानांपैष्टिकस्यच । ग्राम्यानूपौदकानाञ्चमांसानांलशुनस्यच ॥ १७ ॥ प्रक्लिन्नानामसात्म्यानांविरुद्धानाञ्चसेवनात् । अत्यादानाद्दिवास्वप्नादजीर्णाध्यशनात्क्षतात् ॥ १८ ॥ वधबन्धप्रपतनाद्धर्मकर्मातिसेवनात् । विषवाताग्निदोषाच्चविसर्पाणांसमुद्भवः ॥ १९ ॥

लवण, अम्ल, कटु और उष्ण रसोंके अत्यंत सेवनसे; दही, खटाई मस्तु (दहीका तोड) सुक्त, सुरा, सौवीरक, दूपितमद्य, तीक्ष्णमद्य, दूपित राग, खण्डव, शाक, सब्जी, विदाहकारक द्रव्य, कूचिका, किलाट, मंदकदही तथा दही और शाण्डाकी आदि आसवका अधिक सेवन करनेसे तथा तिल, उडद, कुल्थी, तेल और पिष्टान्नके सेवनसे ग्राम्य अनूपसंचारी और जलज जीवोंके मांस अधिक सेवन करनेसे, लहसुन तथा क्लेदित विरुद्ध और असात्म्य अन्नके सेवनसे अत्यंत आदान, दिनमें सोना, अजीर्ण और अधिक भोजन करनेसे क्षत, वेधन, बंधन और पतन होनेसे धूप और परिश्रमके अधिक सेवनसे, विष, दूपितपवन और अग्निके दोषसे विसर्परोगकी उत्पत्ति होतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

एतैर्निदानैर्व्यामिश्रैःकुपितामारुतादयः ।
दुष्यंसंदूष्यरक्तादिविसर्पन्त्यहिताशिनाम् ॥ २० ॥

इन मिलेहुए कारणोंसे अहित भोजन करनेवाले मनुष्योंके वातादि दोष कुपित होकर रक्त, लसीका, त्वचा और मांसको दूषित करके विसर्परोगको शरीरमें फैलातेहैं ॥ २० ॥

विसर्पकी साध्याऽसाध्यता ।

वहिःश्रितःश्रितश्चान्तस्तथाचोभयसंश्रितः ।
विसर्पोबलमेतेषांज्ञेयंगुरुयथोत्तरम् ॥ २१ ॥

वह विसर्प रोग शरीरके बाहर अथवा भीतर या बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित होताहै । इनमें बाहर होनेवाले विसर्पसे भीतरवाला विसर्प बलवान् होताहै और भीतर वालेसे दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प प्रबल होताहै ॥ २१ ॥

वहिर्मार्गाश्रितंसाध्यमसाध्यमुभयाश्रितम् ।
विसर्पंदारुणंविद्यात्सुकृच्छ्रन्त्वन्तराश्रयम् ॥ २२ ॥

बाहर होनेवाला विसर्प साध्य होताहै । बाहर और भीतर दोनों स्थानोंमें आश्रित विसर्प असाध्य तथा केवल भीतर ही होनेवाला विसर्प कष्टसाध्य होताहै ॥ २२ ॥

अन्तःप्रकुपितादोषाविसर्पन्त्यन्तराश्रये ।
वहिर्वहिःप्रकुपिताःसर्वत्रोभयसंश्रिताः ॥ २३ ॥

अंतराश्रित विसर्पमें सब दोष भीतरकी ओर कुपित होकर भीतर विसर्पको करतेहैं वहिराश्रित विसर्पमें बाहर और उभयाश्रित विसर्पमें सर्वत्र विसर्पण करतेहैं ॥ २३ ॥

विसर्पके लक्षण ।

मर्मोपघातात्संमोहादयनानांविघट्टनात् । तृष्णातियोगाद्वेगानां विषमाणांप्रवर्त्तनात ॥ २४ ॥ विद्याद्विसर्पमन्तर्यदाशुचाग्निवल-क्षयात् । अतोविपर्य्ययाद्बाह्यमन्यैर्विद्यात्स्वलक्षणैः ॥ २५ ॥

मर्मोंका अभिघात, बेहोशी, मल मूत्रादि वेगोंकी विषमभावसे प्रवृत्ति और शीघ्र अग्निके बलकी हानि यह अंतर्विसर्पके लक्षण हैं । इससे विपरीत लक्षणोंसे बाहर होनेवाले विसर्पको जाने ॥ २४ ॥ २५ ॥

यस्यलिङ्गानिसर्वाणिवलवच्चस्यकारणम् ।
यस्यचोपद्रवाःकृष्टामर्मगोयश्चहन्तिसः ॥ २६ ॥

जिस विसर्पके कारण बलवान् हों और बाहर और भीतरके सब लक्षणयुक्त हों तथा उपद्रव सहित हों और मर्मगामी हों वह विसर्प प्राणोंको नाश करनेवाला होताहै ॥ २६ ॥

वातजविसर्पका निदान लक्षण ।

रूक्षोष्णैःकेवलोवायुःपूरणैर्वासमाचितः ।
प्रदुष्टोदूषयन्दूष्यंविसर्पतियथावलम् ॥ २७ ॥

तस्य स्वरूपाणि ।

भ्रमदवथुपिपासानिस्तोदशूलाङ्गमर्दोद्वेष्टनकम्पज्वरतमककासा-स्थिसन्धिभेदविश्लेषणवेपनारोचकाविपाकाश्चक्षुपोराकुलत्वमस्रा-गमनंपिपीलिकासञ्चारइवचाङ्गेपुयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोविसर्पति सोऽवकाशःश्यावारुणावभासःश्वयथुमान्निस्तोदभेदशूलायासस-कोचहर्षस्फुरणैरतिमात्रंप्रपीड्यते । अनुपक्रान्तश्चोपचीयतेशीघ्रं भेदैःस्फोटकैस्तनुभिररुणाभैःश्यावैर्वातनुविषमदारुणाल्पास्रावै-र्विवद्धवातमूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानिचास्यनोपशेरतेविपरीता-निचोपशेरतइतिवातविसर्पः ॥ २८ ॥

रूक्ष, उष्ण अथवा बहुत भोजन करनेसे संचित हुई वायु अथवा अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु प्रदुष्ट होकर रक्तादि दूष्योंको दूषितकर यथावल शरीरमें विचरण करतीहै तब उसके यह लक्षण होतेहैं । जैसे भ्रम, धुकधुकी, प्यास, तोद, शूल, अंगमर्द, उद्वेष्टन, कंप, ज्वर, तमकश्वास, खांसी, हडफूटन, संधियोंमें पीडा, हड्डियोंका ढीला पडजाना और कांपना, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, नेत्रोंमें व्याकुलता, रुधिरका निकलना, शरीरमें चींटियोंका चलनासा प्रतीत होना, जिस स्थानमें विसर्प फैलताहो उस स्थानका वर्ण, लाल और सूजनयुक्त होजाना, उसमें सुई चुभनेसी पीडा होनी तथा भेद, शूल, आयाम, संकोच, हर्ष, स्फुरण इनका अधिक होना, इसकी चिकित्सा शीघ्र न की जानेसे विसर्पके स्थानमें भेद होना तथा पतले, लाल या काले, बहुतसी फुन्सियां होना, उनमेंसे पतला, स्वच्छ और लाल थोडा २ स्राव होना, अधोवायु, मूत्र और मलकी रुकावट होना और वातकारक निदानमें कहेहुए द्रव्योंसे रोगका बढना, उससे विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह वातजविसर्पके लक्षण हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

पित्तविसर्पके निदान लक्षण ।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाह्यम्लाशनैश्चितम् । दूष्यंसंदूष्यमार्गांश्च पूरयन्वैविसर्पति ॥ २९ ॥ तस्यरूपाणि-ज्वरस्तृष्णामूर्च्छामोहश्छ-

र्दिररोचकोऽङ्गभेदःस्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहःप्रलापःशिरोरुक्चक्षुषो-राकुलत्वमस्वप्नमरतिर्भ्रमःशीतवातवारितर्षोऽतिमात्रंहरितनेत्रमू-त्रवर्चस्त्वक्तेषांहरितहारिद्ररूपदर्शनंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोऽनुस-र्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहरिद्रनीलकृष्णरक्तानांवर्णानामन्यतमं पश्यति । सोत्सेधैश्चातिमात्रंदाहसम्भेदनपरीतैःस्फोटकैरुपचीयते तुल्यवर्णास्रावैरचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोप-शेरतइतिपित्तविसर्पः ॥ ३० ॥

पित्तकारक, गरम, उपचारके करनेसे विदाही, खट्टे, द्रव्योंके सेवनसे संचित हुआ पित्त रक्तादि दूष्योंको दूषित करके छिद्रोंको पूरणकर विसर्परोगको प्रगट करताहै । उस पित्तविसर्पके ये लक्षण हैं । जैसे ज्वर, प्यास, मूर्च्छा, मोह, वमन, अरुचि, अंगमर्द, स्वेद, अधिक अन्तर्दाह, वकवाद, मस्तकपीडा, नेत्रोंमें व्याकुलता, नींदका न आना, अस्थिरता, भ्रम, शीतल, पवन और शीतल जलकी इच्छा, नेत्र, मूत्र, मल और त्वचाका हरा और हल्दीके समान होना, सब वस्तुयें हल्दीके समान दिखाई देना, विसर्प होनेके स्थानमें ताम्रवर्ण, हरा, हल्दीके समान, नीला, काला अथवा लालवर्ण होना, विसर्पका अत्यंत उठाहुआ होना, जलन और स्वेदसे युक्त फोडोंसे व्याप्त होना, इनमेंसे उपरोक्त वर्णका स्राव होना, इस विसर्पका अतिशीघ्र पकजाना निदानमें कहेहुए द्रव्योंसे वृद्धिको प्राप्त होना और उससे विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह पित्तविसर्पके लक्षण हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥

कफविसर्पके निदान लक्षण ।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः । कफःसंदूषयन्दूष्यंकृच्छ्-मङ्गेविसर्पति ॥ ३१ ॥ तस्यरूपाणि-शीतकःशीतकज्वरोगौरवंनि-द्रातन्द्रारोचकोमधुरास्यत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाच्छर्दिरालस्यं स्तैमित्यमग्निनाशोदौर्बल्यंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पतिसोऽवकाशःश्व-यथुमान्पाण्डुर्मात्रातिरक्तस्नेहःसुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैश्चिरकारिभिर्बहुलत्वगुपलेपैःस्फोटैःश्वेतपाण्डुभिरनुव-ध्यतेप्रभिन्नस्तुश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमद्घनमनुवद्धंस्निग्धमास्रावंस्रवत्यू-र्द्ध्वंचगुरुभिःस्निग्धैर्जलावततैःस्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्व्रणैरनुबध्यते-

नुपक्षीश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मविसर्पः ॥ ३२ ॥

मीठे, खट्टे, नमकीन, चिकने और भारी पदार्थोंके सेवनसे और दिनमें सोनेसे संचितहुआ कफ रक्तादि दूष्योंको दूषित करके कष्टकारक हुआ शरीरमें परिसर्पण (विसर्परोग) करताहै। उसके ये लक्षण होतेहैं। जैसे विसर्पका शीतल होना, शीतज्वर, गुरुता, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुखमें मीठापन और लिपाहट, वारवार कफका प्रसेक, वमन, आलस्य स्तैमित्य, जठराग्निका नाश और दुर्वलता तथा विसर्पके स्थानमें सूजन हो पीला और अत्यंत लाल, अधिक चिकना, सुन्न, कठोर, भारी और अल्प पीडायुक्त विसर्प हो। वह कठिनतासे परिपाकको प्राप्त हो, देरतक वनारहे, त्वचामें अत्यंत उपलेपसा हो, सफेद तथा पाण्डुवर्णके फोडोंसे व्याप्त हो विसर्पके फूटनेसे स्वेद, पिच्छिल, तारयुक्त, गाढा और हरवक्त रहनेवाला तथा चिकना स्राव हो, विसर्पके ऊपरके भागमें भारी, चिकने, गीले त्वचामें लिपेहुएसे व्रणोंका अनुवंधन होना, आनुषंगिका, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका सफेद होना कफकारक द्रव्योंसे रोगका वढना और विपरीत द्रव्योंसे शान्त होना यह कफविसर्पके लक्षण हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

वातपित्तज अग्निविसर्पके लक्षण ।

वातपित्तंप्रकुपितमतिमात्रंस्वहेतुभिः । परस्परंलब्धवलंदहद्गात्रंविसर्पति ॥ ३३ ॥ तदुपतापादातुरःसर्वशरीरमङ्गारैरिवाकीर्य्यमाणं मन्यते । छर्दतीसारमूर्च्छादाहमोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृष्णाविपाकाङ्गभेदादिभिश्चाभिभूयते । यंयंचावकाशंविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशःशान्ताङ्गारप्रकाशोऽतिरिक्तोवाभवत्यग्निदग्धप्रकारैश्चस्फोटैरुपचीयतेसशीघ्रगत्वादाशुएवमर्मानुसारीभवतिमर्मणिचोपतप्तपवनोऽतिवलोभिनत्तिअङ्गानिअतिमात्रंप्रमोहयतिसंज्ञांहिकाश्वासौजनयतिनाशयतिनिद्रांसनष्टनिद्रःप्रमूढसंज्ञोव्यथितचेतानकचनसुखमुपलभतेअरतिपरीतःस्थानादासनाच्छय्यांक्रान्तुमिच्छतिक्लिष्टभूयिष्ठश्चाशुनिद्रांभजतिअवलोदुःखप्रवोधश्चतमेवंविधमग्निविसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥ ३४ ॥

अपने कारणोंसे प्रकोपको प्राप्त हुए वात, पित्त, परस्पर वलको प्राप्त हो देहमें

दाहको प्रगट करतेहुए विसर्पको करतेहैं तब यह होतेहैं। वातपित्तके विसर्पमें संपूर्ण शरीरमें जलतेहुए अंगार विखरेहुए हैं ऐसा प्रतीत हो, तथा, वमन, अतिसार, मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमकश्वास, अरुचि, हड्डियोंका टूटना, संधियोंमें पीडा, प्यास, अन्नका न पकना और अंगभेद आदि उपद्रवोंका होना, विसर्प होनेका स्थान बुझेहुए अंगारोंके समान अथवा अत्यंत काले वर्णका हो। आगसे जले हुएके समान दाहयुक्त फोडोंसे व्यापक होना। यह विसर्प शीघ्रगति होनेसे सद्यः गरम स्थानमें पहुंचजाय। मर्मस्थानमें वायुका संताप होनेसे सब अंगोंमें अत्यंत भेदनकीसी पीडा, संज्ञानाश, हिचकी, श्वास यह उत्पन्न होते हैं और निद्रानाश होताहै। रोगी निद्रारहित, चैतन्यतारहित और व्यथायुक्त चित्तवाला होनेसे किसी प्रकार भी सुखको प्राप्त नहीं होसकता और अस्थिर होकर स्थान, आसन, शय्यापर इधर उधर पलटनेकी इच्छा करताहै। फिर अत्यंत व्याकुल और दुर्वल होकर गिरजाताहै। और तत्काल वैकारिक निद्राको प्राप्त होताहै तथा जगानेसे भी मुश्किलसे जागताहै। इस प्रकार यह अग्निविसर्पवाला रोगी अचिकित्स्य जानना॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कफपित्तजकर्दमविसर्पके ल०।

कफपित्तंप्रकुपितंबलवत्स्वेनहेतुना। विसर्पत्येकदेशन्तुप्रक्लेदयति देहिनः ॥ ३५ ॥ तद्विकाराः—शीतज्वरःशिरोगुरुत्वंदाहःस्तैमित्य-मङ्गावसादनंनिद्रातन्द्रामोहोऽन्नद्वेषःप्रलापोऽग्निनाशोदौर्वल्यमस्थि-भेदोमूर्च्छापिपासास्रोतसांप्रलेपोजाड्यमिन्द्रियाणांप्रायोपवेशन-मंगविक्षेपोऽङ्गमर्दोऽरतिरौत्सुक्यश्चउपजायतेप्रायश्चामाशयेविसर्प-त्येकदेशग्राहीयस्मिंश्चावकाशेविसर्पतिसोऽवकाशोरक्तपीतपाण्डु-पीडकापकीर्णइवमेचकाभःकालोमलिनःस्निग्धोवहूष्मागुरुःस्तिमि-तवेदनःश्वयथुमान्गम्भीरपाकःनिरास्रवःशीघ्रक्लेदःस्विन्नक्लिन्नपूति-मांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परामृष्टोऽवदीर्यतेकर्दमइवावपीडितोऽनन्त-रंप्रयच्छत्युपक्लिन्नपूतमांसत्यागीशिरास्नायुसंदर्शीकुणपगन्धीचभव-तिसंज्ञास्मृतिहन्तातंकर्दमविसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥ ३६ ॥

अपने कारणोंसे कुपित हुए कफ और पित्त परस्पर बलको प्राप्त हो मनुष्यके शरीरको क्लेदित कर देहके एकदेशमें विसर्पको करतेहैं। इस कफपित्तजनित विसर्पके यह लक्षण होतेहैं। जैसे शीतज्वर, सिरका भारी होना, दाह, स्तैमित्य, अंगोंका सोना, निद्रा, तन्द्रा, मोह, अन्नसे द्वेष, प्रलाप, अग्निनाश, दुर्वलता, हडफूटन, मूर्च्छा,

प्यास, छिद्रोंका उपलेप, इन्द्रियोंमें जडता, आम निकलना, अंगविक्षेप, अंगमर्द, अरति और उत्सुकता यह उपद्रव होते हैं । प्रायः यह विसर्प आमाशयके एक देशमें प्रगट होकर धीरे २ फैलने लगताहै । जिस स्थानमें यह विसर्प होताहै वह लाल, पीला, पाण्डुवर्ण, पिडकाओंसे व्याप्त होताहै । तथा, मेचकके रंगका काला, मलिनवर्ण, चिकना, भारी, स्तिमित, स्थिर पीडायुक्त सूजनवाला, गंभीरपाकी, स्रावरहित और शीघ्र क्लेदयुक्त होजाताहै । इस विसर्पके स्थानका मांस स्विन्न क्लेदयुक्त, दुर्गन्धित होताहै। इसमें थोडी २ पीडा होतीहै और उस स्थानको दवानेसे विसर्प फूटजाताहै । अधिक दवानेसे कीचके समान उसमें अंगुली गडजातीहै अथवा वह कीचके समान अंगुलीसे लिपटजाताहै । और इसमेंसे सडाहुआ, दुर्गंधित क्लेदयुक्त मांस निकलता है तथा शिरा, स्नायु बाहर निकलआतीहैं । मुर्देकीसी दुर्गंध आतीहै । रोगीका ज्ञान और स्मृति नष्ट होजातीहै । इस कफपित्तज विसर्पको कर्दम विसर्प भी कहतेहैं ॥३५॥३६॥

कफवातजग्रन्थिविसर्पके लक्षण ।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपानाभिष्यन्दिसेविनामव्यायामसेविनामप्रतिकर्मशालिनांश्लेष्मावायुश्चप्रकोपमापद्यतेतावुभौदुष्टप्रवृद्धौअतिवलौप्रदूष्यदूष्यंविसर्पायकल्पेते । तत्रवायुःश्लेष्मणाविवद्धमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्दन्क्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रपाकसाध्यांकफाशयेसंजनयतिउत्सन्नरक्तस्यवाप्र-दूष्यरक्तंशिरास्नायुमांसत्वगाश्रितंग्रन्थिविसर्पंकुरुतेतीव्ररुजाग्र-मन्यते । छ[illegible]नामणूनांदीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्ज्वरातिसारका-दतृष्णादि[illegible]शोषप्रमेहवैवर्ण्यारोचकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छाङ्गभङ्गनि-सर्पतिसो[illegible]याः प्रादुर्भवन्तिउपद्रवास्तैरुपद्रुतःसर्वकर्मणांविप-कारैश्चस्फो[illegible]विवर्जनीयोभवतीतिग्रन्थिविसर्पः ॥ ३७ ॥

णिचोपतप्त[illegible] ज्ञांहिकाश्वा[illegible] तचेतानकच[illegible] न्तुमिच्छतिहि[illegible] वंविधमग्निविस[illegible]

[illegible]ठिन, मधुर, शीतल और स्निग्ध अन्नपान तथा अभिष्यंदी द्रव्योंके [illegible] करनेसे संचित दोषोंका शोधन न करनेसे कफ और वायुकोपको [illegible] दुष्ट और प्रबल होकर रक्तादि दूष्योंको दूषित कर विसर्पको प्रगट [illegible] मार्ग बन्ने रुकजाताहै फिर वह वायु कफके अनेक विभागकर [illegible] कृच्छ्रपाकी और कृच्छसाध्य ग्रंथिमालाको प्रगट करताहै । [illegible] बढे हुए रक्तवाले मनुष्यके रक्तको दूषितकर शिरा, स्नायु, [illegible] उत्पन्न करतेहैं । उन ग्रंथियों (गांठों) में अत्यंत पीडा

अपने कारणोसे

होतीहै। वह ग्रंथियें स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ, गोल और लालवर्णकी होतीहैं। इनके उपतापसे ज्वर, अतिसार, खांसी, हिचकी, श्वास, शोष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, छर्दि, मूर्च्छा, अंगभेद, निद्रा, अरति, अंगावसाद, आदि उपद्रव उत्पन्न होतेहैं। इन संपूर्ण उपद्रवोंसे व्याकुल हुआ मनुष्य संपूर्ण कर्मोंके करनेमें अयोग्य होजाताहै। यह वातकफजनित ग्रंथिविसर्प त्याग देने योग्य है॥ ३७॥

रोग और उपद्रवोंके भेद।

उपद्रवस्तुखलुरोगोत्तरकालजोरोगाश्रयोरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पश्चाज्जायतइतिउपद्रवसंज्ञः। तत्रप्रधानोव्याधिर्व्याधेर्गुणीभूत उपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधानप्रशमेप्रशमोभवति। सतुपीडाकरतरोभवतिइतिपश्चादुत्पद्यमानोव्याधिः परिक्लिष्टशरीरत्वात्तस्मादुपद्रवं त्वरमाणोऽभिबाधेत॥ ३८॥

रोग होनेके उपरांत रोगके आश्रयसे उपद्रव उत्पन्न होतेहैं। इसलिये इनको भी रोग ही मानना चाहिये। क्योंकि यह रोग स्थूल अथवा सूक्ष्मरूपसे रोगके अनन्तर प्रगट होतेहैं। इसलिये यह उपद्रव कहेजातेहैं। इनमें रोगको प्रधान तथा उपद्रवोंको रोगका गुणीभूत मानना चाहिये। प्रायः रोगके शान्त होनेपर उपद्रव भी शान्त होजातेहैं। उपद्रव शरीरके व्याधिद्वारा अत्यंत क्लेशित होनेसे व्याधिके पीछे प्रकट होजातेहैं परन्तु कष्ट देनेमें प्रधान व्याधिसे भी अधिकतर होतेहैं इसलिये उपद्रवोंकी शान्तिके लिये शीघ्र यत्न करना चाहिये॥ ३८॥

सन्निपातका विसर्प।

सर्वायतनसमुत्थंसर्वलिङ्गव्यापिनंसर्वधात्वनुसारिणमाशुकारिणम्। महात्ययिकमितिसन्निपातविसर्पमचिकित्स्यंविद्यात्॥ ३९॥

सब हेतुओंसे प्रकट हुआ संपूर्ण लक्षणोंवाला सब धातुओंको दूषितकर व्यापक हुआ शीघ्रकारी आत्ययिक दारुण सान्निपातिक विसर्प अचिकित्स्य (असाध्य) जानना॥ ३९॥

इनकी साध्यासाध्यता।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्ताविसर्पास्त्रयःसाध्याभवन्त्यग्निकर्दमाख्यौपुनरनुपसृष्टेमर्मणिअनुपहतेवाशिरास्नायुमांसक्लेदेसाधारणक्रियाभिरुपायैस्ताववेवाभ्यस्यमानौप्रशान्तिमापद्येयातामनादरोपक्रान्तंपुनस्तयोरन्यतरोहन्यात्देहमाश्वेवाशीविषवत्॥ ४०॥

इनमें वातका, पित्तका और कफका यह तीन विसर्प साध्य हैं । और आग्नेय, कर्दमक, यह दो द्वन्द्वज विसर्प यदि मर्मस्थानमें व्यापक न हों तथा शिरा, स्नायु और क्लेदको बिगाडकर फैलेहुए न हों तो उनमें उन उन दोषोंकी साधारण चिकित्सा करनेसे शान्त होजातेहैं। परन्तु विधिवत् यत्नपूर्वक चिकित्सा न करनेसे उनमें भी कोई विसर्प आशीविषके समान शीघ्र प्राणोंको नष्टकर देताहै ॥ ४० ॥

तथाग्रन्थिविसर्पमजातोपद्रवमारभेतचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्त्वेनंपरिहरेत्। सन्निपातजंसर्वधात्वनुसारित्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चअसाध्यंविद्यात् ॥ ४१ ॥

और ग्रंथिविसर्प यदि उपद्रवयुक्त न हो तो उसकी चिकित्सा करे। यदि वह उपद्रवयुक्त हो तो उसको असाध्य समझकर त्यागदेवे। और सन्निपातसे उत्पन्न हुआ विसर्प सर्व धातु अनुसारी आशुकारी और चिकित्सामें विरुद्ध पडनेसे सर्वथा असाध्य जानना ॥ ४१ ॥

विसर्पकी चिकित्सा।

तत्रसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः ॥ ४२ ॥ लंघनोल्लेखनेशस्तेतिक्तकानाञ्चसेवनम् । कफस्थानगतेसामेरूक्षशीतैःप्रलेपयेत्४३

अब साध्य विसर्पोंके साधन (चिकित्सा) का वर्णन करतेहैं। आमदोषयुक्त कफस्थानगत विसर्प हो तो लंघन वमन और तिक्तरसका सेवन कराना हितहै। तथा विसर्पके ऊपर रूक्ष, शीतल द्रव्योंका लेप करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्याच्चिकित्सितम् ।
शोणितस्यात्रसेकश्चविरेकश्चविशेषतः ॥ ४४ ॥

आमदोषयुक्त दोष यदि पित्तस्थानगत हो तब भी इसीप्रकार चिकित्सा करे। और रक्तमोक्षण (फस्त) तथा विरेचन यह दो कर्म इसमें विशेष करे ॥ ४४ ॥

मारुताशयसम्भूतेऽप्यादितःस्याद्विरूक्षणम् ।
रक्तपित्तान्वयेऽप्यादौस्नेहनंनहितंमतम् ॥ ४५ ॥

रक्तपित्तके संसर्गयुक्त रोग यदि वातस्थानगत भी हों तो भी प्रथम रूक्षक्रिया ही करना चाहिये। क्योंकि रक्तपित्तके संबंधवाले रोगोंमें भी प्रथम ही स्नेहन कराना हित नहीं मानाहै ॥ ४५ ॥

वातोल्बणेतिक्तघृतंपैत्तिकेचप्रशस्यते ।
लघुदोषेमहादोषेपैत्तिकेस्याद्विरेचनम् ॥ ४६ ॥

जिस विसर्पमें वायु प्रबल हो और जिसमें अल्पपित्त हो उसमें तिक्तघृतका प्रयोग करना चाहिये । जिस विसर्पमें पित्त अत्यंत बढी हुई हो उसमें विरेचन कराना हित है ॥ ४६ ॥

नघृतंबहुदोषायदेयंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोह्युपस्तब्धस्त्वङ्मांसरुधिरंपचेत् ॥ ४७ ॥ तस्माद्विरेकमेवादौशस्तंविद्याद्विसर्पिणः । रुधिरस्यावसेकश्चतद्ध्यस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ ४८ ॥

जो घृत विरेचन करनेवाला न हो उसको बहुत दोषयुक्त विसर्पमें नहीं देना चाहिये क्योंकि यदि घृत विरेचनकर्त्ता न होगा तो उससे दोषोंका उपस्तंभ होकर त्वचा, मांस, और रुधिर पाकको प्राप्त होतेहैं। इसलिये विसर्परोगीको प्रथम विरेचन कराना ही हित है। तथा रक्तमोक्षण (फस्त) करना श्रेष्ठ है । क्योंकि विसर्परोगका आश्रय रक्त कहा जाताहै उसके निकलनेसे विसर्प भी शान्त होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इतिविसर्पनुत्प्रोक्तंसमासेनचिकित्सितम् ।
एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥ ४९ ॥

इस प्रकार विसर्पनाशक चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन कियाहै । उसीको अब फिर विशेषतासे वर्णन करतेहैं ॥ ४९ ॥

विसर्पकी विशेषचिकित्सा ।

मदनंमधुकंनिम्बंवत्सकस्यफलानिच । वमनंसंप्रदातव्यंविसर्पे कफपित्तजे ॥ ५० ॥ पटोलपिचुमर्दाभ्यांपिप्पल्यामदनेनच । विसर्पेवमनंशस्तंतथाचेन्द्रयवैःसह ॥ ५१ ॥ यांश्चयोगान्प्रवक्ष्यामिकल्पेषुकफपित्तिनाम् । विसर्पिणांप्रयोज्यास्तेदोषनिर्हरणाः परम् ॥ ५२ ॥

मेनफल, मुलैठी, नीमकी छाल और इन्द्रयव इनका क्वाथ पिलाकर कफपित्तजनित विसर्पमें वमन करावे अथवा पटोलपत्र, नीमका छिलका, पीपल और इन्द्रयव इनके क्वाथसे वमन कराना श्रेष्ठ है । या कल्पस्थानमें कफपित्तव्याधिवालोंके लिये जो वमनकारक प्रयोग कहे जायंगे उनके प्रयोगों द्वारा कफपित्तके विसर्पमें भी दोषको निकालना परम श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मुस्तनिम्बपटोलानांचन्दनोत्पलयोरपि । शारिवामलकोशीरमुस्तानांवाविचक्षणः ॥ ५३ ॥ पाययेतकषायान्हिसिद्धान्वीसर्प-

नाशनान् । किराततिक्तकंलोध्रंदुरालभांसचन्दनाम् ॥ ५४ ॥ नागरंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलंसविभीतकम् । मधुकंनागपुष्पञ्चदद्याद्वि-सर्पशान्तये ॥ ५५ ॥

१ अथवा नागरमोथा, नीमका छिलका, और पटोलपत्र, २ लालचंदन और नीलकमल, ३ सारिवा, आँवले, खस और नागरमोथा, इन तीनोंमेंसे किसी एकका क्वाथ बनाकर पिलानेसे विसर्परोग शान्त होताहै । अथवा चिरायता, पठानीलोध, जवासा, लालचंदन, सोंठ, कमलकी केशर, नीलकमल, बहेडा, मुलैठी और नागकेशर इनका क्वाथ विसर्परोगकी शान्तिके लिये देवे ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् ।
नागपुष्पश्चलोध्रश्चतेनैवविधिनापिवेत् ॥ ५६ ॥

अथवा उसी प्रकार प्रपौण्डरीक, (पंडचारा) मुलैठी, कमलकी केशर, नील-कमल, नागकेशर, पठानी लोध इनका क्वाथ बनाकर पीवे ॥ ५६ ॥

द्राक्षांपर्पटकंशुण्ठींगुडूचींधन्वयासकम् ।
निशापर्युषितंदद्यात्तृष्णाविसर्पशान्तये ॥ ५७ ॥

मुनक्का, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा, इनको कूटकर रात्रिको जलमे भिगो देवे । फिर प्रातःकाल इसका पानी उतारकर विसर्प और प्यासकी शान्तिके-लिये देवे ॥ ५७ ॥

पटोलंपिचुमर्दञ्चदार्वींकटुकरोहिणीम् ।
यष्ट्याह्वांत्रायमाणाञ्चदद्याद्विसर्पशान्तये ॥ ५८ ॥

पटोलपत्र, नीमका छिलका, दारुहलदी, कुटकी, मुलैठी और त्रायमाणका क्वाथ विसर्पकी शान्तिके लिये पिलावे ॥ ५८ ॥

पटोलादिकषायंवापिवेत्त्रिफलयासह । मसूरविदलैर्युक्तंघृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥ पटोलपत्रमुद्गानांरसमामलकस्यच । पायये-त्घृतोन्मिश्रंनरंविसर्पपीडितम् ॥ ६० ॥ यच्चसर्पिर्महातिक्तंपित्त-कुष्ठनिबर्हणम् । निर्दिष्टंतदपिप्राज्ञोदद्याद्विसर्पशान्तये ॥ ६१ ॥ त्रायमाणाघृतंसिद्धंगौल्मिकेयदुदाहृतम् । विसर्पाणांप्रशान्त्यर्थं दद्यात्तदपिबुद्धिमान् ॥ ६२ ॥

अथवा पटोलपत्रादि क्वाथको त्रिफलाके साथ पिलावे। अथवा मसूरकी दालका पानी घृतयुक्त कर पिलावे। या पटोलपत्र, मूंग और ऑवलोंका रस विसर्पसे पीडित रोगीको पिलाना हित है। अथवा महातिक्तकघृत जो कुष्ठाधिकारमें पित्त-कुष्ठशान्तिके लिये कहाहै उसको विसर्परोगकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे एवं गुल्म-चिकित्सामें जो त्रायमाणघृत कह आयेहैं उसको भी बुद्धिमान् वैद्य विसर्पोंकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करे ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रिवृच्चूर्णसमालोड्यसर्पिषापयसापिवा। घर्माम्बुनावासंयोज्यमृद्वीकानांरसेनवा ॥ ६३ ॥ विरेकार्थंप्रयोक्तव्यंसिद्धंविसर्पनाशनम्। त्रायमाणाशृतंवापिपयोदद्याद्विरेचनम् ॥ ६४ ॥

निशोथके चूर्णको घृतमें घोलकर अथवा दूधमें घोलकर अथवा गरम जलके साथ वा मुनक्काके रस (क्वाथ) के साथ विसर्परोगमें विरेचन करानेके लिये पिलावे। अथवा त्रायमाणके साथ सिद्धकिया दूध विरेचनार्थ पिलावे, यह भी विसर्पको शान्त करताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

त्रिफलारससंयुक्तंसर्पिस्त्रिवृतयासह ।
प्रयोक्तव्यंविरेकार्थंविसर्पज्वरनाशनम् ॥ ६५ ॥

त्रिफलाके रस (क्वाथ) के साथ निशोथका चूर्ण पिलावे इससे विरेचन होकर विसर्पका ज्वर (दुःख) नष्ट होजाताहै ॥ ६५ ।

रसमामलकानांवाघृतमिश्रंप्रदापयेत् ।
सएवगुरुकोष्ठायत्रिवृच्चूर्णयुतोहितः ॥ ६६ ॥

अथवा आँवलेके रसयुक्त घृतको पिलावे। यदि रोगी भारी कोठेवाला हो तो इसीमें निशोथका चूर्ण मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ६६ ॥

दोषेकोष्ठगतेभूयएतत्कुर्य्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टेतुरुधिरेरक्तमेवादितोहरेत् ॥६७॥ पिभग्वातान्वितंरक्तंविपाणेनाभिनिर्हरेत् । पित्तान्वितंजलौकोभिःकफान्वितमलावुभिः ॥ ६८ ॥ यथासन्नं विकारस्यव्यधयेदाशुवासिनाम् । त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदोरक्तक्लेदाद्धि· जायते ॥ ६९ ॥

यदि कोष्ठमें दोषकी अधिकता हो तो यह उपरोक्त रेचनकारक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे। और जो रुधिर अपने स्थानमें प्रदुष्ट हो तो पहले रुधिको ही निकालना

चाहिये । यदि रक्त वाताश्रित हो तो उसको सिंगी लगाकर निकाले । और पित्ताश्रित हो तो जोंक लगाकर निकाले । एवं कफसंयुक्त रुधिरको तूंबी लगाकर निकालना चाहिये । विगडे हुए रक्तको विसर्पके समीपकी नसमें नस्तर लगाकर शीघ्र निकाल, देवे जिससे रक्तमें क्लेदता उत्पन्न न होनेपावे । क्योंकि रक्तमें क्लेदता आनेसे त्वचा, मांस और स्नायुओंमें भी क्लेदता आकर सडन उत्पन्न होजातीहै ॥ ६७-६९ ॥

अन्तःशरीरेसंशुद्धेदोपेत्वङ्मांससंश्रिते।
आदितःस्वल्पदोपाणांक्रियावाह्याप्रवक्ष्यते ॥ ७० ॥

जव उपरोक्त विरेचनी क्रियासे अथवा रक्तमोक्षणसे भीतरी दोष शुद्ध होजाय और त्वचा मांसमें रहजाय अथवा पहलेसे ही वहुत अल्प दोप हो तो वाह्य क्रियाका प्रयोग करना चाहिये अव उस वाह्यक्रियाको कहतेहैं ॥ ७० ॥

वातपित्तोल्वण विसर्पोपर लेप।

उदुम्बरत्वङ्मधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् ।
नागपुष्पंप्रियंगुश्चप्रदेहःसघृतोहितः ॥ ७१ ॥

गूलरकी छाल, मुलैठी, कमलकेशर, नीलकमल, नागकेशर, प्रियंगु इन सवको वारीक पीसके घृत (मखन) में मिलाकर लेप करनेसे विसर्परोग शांत होताहै ॥ ७१ ॥

न्यग्रोधपादास्तरुणाःकदलीगर्भसंयुताः ।
विसग्रन्थिश्चलेपःस्याच्छतधौतघृताप्लुतः ॥ ७२ ॥

वडकी नवीन कोमल जटा, केलेकी गोभ, कमलकी जड और सौवार धुलाहुआ मक्खन इन सवको एकत्र मिलाकर लेप करनेसे विसर्प रोग शान्त होताहै ॥ ७२ ॥

कालीयंमधुकंहेमवल्यंचन्दनपद्मकम् ।
एलामृणालंफलिनीप्रलेपःस्याद्घृताप्लुतः ॥ ७३ ॥

अगर, मुलैठी, नागकेशर, लालचंदन, पद्माक, छोटी इलायची, कमलकी ठंडी और प्रियंगु इन सवको वारीक पीस १०० वार धोयेहुए घृतमें मिलाकर लेप करनसे विसर्प शान्त होताहै ॥ ७३ ॥

शाद्वलश्चमृणालश्चशंखचन्दनमुत्पलम् ।
वेतसस्यचमूलानिप्रदेहस्यात्ससतण्डुलः ॥ ७४ ॥

कमलकी डण्डी अथवा दूव, शंखका चूर्ण, लाल चंदन, नीलकमल, वेतसकी जड और वायविडंग इन सवको वारीक पीसकर लेपकरे ॥ ७४ ॥

शारिवापद्मकिञ्जल्कमुशीरंनीलमुत्पलम् ।
मञ्जिष्ठाचन्दनंलोध्रमभयाचप्रलेपनम् ॥ ७५ ॥
नलदश्चहरेणुश्चलोध्रंमधुकपद्मकौ ।
दूर्वासर्जरसश्चैवसघृतंस्यात्प्रलेपनम् ॥ ७६ ॥

या शारिवा, कमलकेशर, खस, नीलकमल, मँजीठ, लालचंदन, पठानी लोध और हरडे इन सबका लेप करे । अथवा खस, रेणुका, पाठानी लोध, मुलैठी, पद्माक, दूब और राल इनको वारीक पीस घुलेहुए घृतमें मिला लेप करे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

यावकाःसक्तवश्चैवसर्पिषासहयोजिताः । प्रदेहोमधुकंवीरासघृता-यवसक्तवः ॥ ७७ ॥ बलामुत्पलशालूकंवीरामगुरुचन्दनम् । कुर्य्यादालेपनंवैद्योमृणालश्चविसान्वितम् ॥ ७८ ॥ यवचूर्णसम-धुकंसघृतञ्चप्रलेपनम् । हरेणवोमसूराश्चसमुद्गाःश्वेतशालयः । पृथक्पृथक्प्रदेहाःस्युःसर्वेवासर्पिषासह ॥ ७९ ॥

यवोंके सत्तुओंको घृतमें मिला लेपकरे अथवा यवके सत्तूघृत, क्षीरकाकोली और मुलैठी इनको मिला लेपकरे । या वला, नीलकमल, शालू, क्षीरकाकोली, अगर और लाल चंदन घिस और खस इन सबको वारीक पीसकर लेपकरे । या यवका चूर्ण और मुलैठीका मैदा इनको घृतमें मिला लेपकरे । अथवा रेणुका, मसूर, मूंग सफेद शालीचावल इन सबको एकत्र घृतमें मिलाकर लेपकरे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

पद्मिनीकर्दमःशीतोमौक्तिकंपिष्टमेवत्रा ।
शंखःप्रवालःशुक्तिर्वागैरिकोवाघृताप्लुतः ॥ ८० ॥

पद्मिनी और कीच अथवा कमलिनीकी जडमें लगा शीतल कीचका लेप या शीतल जलमें पीसेहुए मोती; अथवा शंख, मूंगा, सीपी गेरू इनमेंसे किसी एकका बहुत वारीक चूर्ण घीमें मिला लेपकरे ॥ ८० ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंबलाशालूकमुत्पलम् । न्यग्रोधपत्रंदुग्धीकासघृ-तंस्यात्प्रलेपनम् ॥ ८१ ॥ विसानिचमृणालश्चसघृताचकशेरुका । शतावर्य्याविदार्य्याश्चकन्दौधौतघृताप्लुतौ ॥ ८२ ॥

पंडयारेकी छाल, मुलैठी, बला, कमलकंद, नीलकमल, बडके पत्ते और मुनक्का इनको पीसकर घृतमें मिला लेपकरे । कमलकी जड, कमलकी डण्डी और कसेरू

इनको वारीक पीसकर घृतमें मिला लेपकरे । अथवा शतावर और विदारीकंदको वारीक पीसकर धुलेहुए घृतके साथ लेपकरे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

शैवालंनलमूलानिगोजिह्वावृषकर्णिका ।
इन्द्राणीशाकंसघृतंशिरीषत्वग्वलाघृतम् ॥ ८३ ॥

शैवाल (पानीकी काई) नरसलकी जड, जंगली गोभी, वृषकर्णी (सुखदर्शन) संभालेके पत्ते इन सबको बारीक पीसकर घृतमें मिला लेप करे । अथवा सिरसकी छाल और बलाको घृतमें मिला लेप करे ॥ ८३ ॥

न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षवेतसाश्वत्थपल्लवैः ।
त्वक्कल्कैर्बहुसर्पिष्कैस्तैरेवालेपनंहितम् ॥ ८४ ॥

वड, गूलर, पिलखन, वेतस और पीपलके पत्ते और छालको वारीक पीसकर बहुतसे घृतमें मिला लेपकरे । तो विसर्परोग शान्त हो ॥ ८४ ॥

प्रदेहाःसर्वएवैतेवातपित्तोल्बणेशुभाः ।
सकफेतुप्रवक्ष्यामिप्रलेपानपराञ्छुभान् ॥ ८५ ॥

यह सब लेप वातपित्तोल्बण विसर्पमें हितकारी हैं । अब कफोल्बण विसर्पको शान्त करनेवाले लेपोंका वर्णन करतेहैं ॥ ८५ ॥

कफोल्बण विसर्पोंपर लेप ।

त्रिफलांपद्मकोशीरंसमंगांकरवीरकम् । नलमूलान्यनन्तश्चप्रदेहमुपकल्पयेत् ॥ ८६ ॥ खदिरंसप्तपर्णंचमुस्तमारग्वधंधवम् । कुरण्टकंदेवदारुदद्यादालेपनंभिषक् ॥ ८७ ॥

त्रिफला, पद्मकाष्ठ, खस, समंगा (मजीठ) कनेरकी छाल, नरसलकी जड, अनन्तमूल इन सबको वारीक पीसकर लेप करे । अथवा कत्था, सप्तपर्णकी छाल, नागरमोथा, अमलतास धवकी छाल, कठसरईया और देवदारू इनको वारीक पीसकर लेपकरे ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

आरग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच । इन्द्राणीशाकंकाकाह्वांशिरीषकुसुमानिच ॥ ८८ ॥ [१]शैवालंनलमूलानिवीरागन्धप्रियंगुकौ । त्रिफलांमधुकंवीरांशिरीषकुसुमानिच ॥ ८९ ॥ प्रपौण्डरीकंह्रीवेरंदार्वीत्वङ्मधुकंवलाम् । पृथगालेपनंकुर्य्याद्द्वन्द्वशःसर्वशोऽ-

१ इन सब लेपोंमें सौ बारका धुलाहुआ मक्खन या पुराना घी लेना चाहिये ।

पिवा ॥ ९० ॥ प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्वल्पघृतायुताः । वातपित्तोल्वणेयेतुप्रदेहास्तेघृताधिकाः ॥ ९१ ॥

अमलतासके पत्ते, लसोढेकी छाल, संभालूके पत्ते मकोहके पत्ते, और सिरसके फूल; शैवाल (पानीकी काई) नरसलकी जड, वीरा (विदारीकंद) और गंध प्रियंगु, त्रिफला, मुलैठी, वीरा और सिरसके फूल, यह तीन प्रकारके लेप विसर्पको शान्त करतेहैं । एवं पंडचारा, नेत्रवाला, दारूहल्दीकी छाल मुलैठी इन द्रव्योंमेंसे एक एक द्रव्यको अथवा दोदोको मिलाकर या संपूर्ण मिलाकर वारीक पीसकर लेप करे । यह सब लेप थोडा घृत मिलाकर करना चाहिये और पीछे जो वातपित्तोल्वण विसर्पपर लेप कह आयेहैं उनमें अधिक घृत मिला करना चाहिये ॥९०॥९१॥

प्रदेहाःसर्वएवैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ।
क्षणेक्षणेयुज्यमानापूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ॥ ९२ ॥

यह संपूर्ण लेप रक्तको स्वच्छ करनेवाले हैं इन लेपोंको क्षण क्षणके वाद उतारकर दूसरा नवीन लेप करते रहना चाहिये ॥ ९२ ॥

विसर्पपर अन्य उपचार ।

घृतेनशतधौतेनप्रदिह्यात्केवलेनच । घृतमण्डेनशीतेनपयसामधुकाम्बुना ॥ ९३ ॥ पञ्चवल्ककषायेणसेचयेच्छीतलेनवा । वातासृक्पित्तवहुलंविसर्पंवहुशोभिषक् ॥ ९४ ॥ सेचनास्तेप्रदेहायेतएवघृतसाधनाः । तेचूर्णयोगावीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ॥ ९५ ॥

वातसंयुक्त रक्तपित्त विषयमें केवल सौ वार धुलेहुए घृतका लेप करना चाहिये । अथवा घृतमण्डसे या शीतल दूधसे अथवा मुलैठीसे या पंचवल्कल (वड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसकी छाल) के शीतल क्काथसे वैद्य विसर्पको सेचन करे । तथा विसर्पमें जिन द्रव्योंका घृतके साथ मिलाकर लेप करना कहाहै उन द्रव्योंके क्काथसे विसर्पको सेचन भी करना चाहिये । अथवा उन्हीं द्रव्योंका वारीक चूर्ण विसर्पके जखमोंपर बुरकावे (उन्हीं द्रव्योंके क्काथका पिलानेमें प्रयोग करे और उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत भी प्रयोग किया जासकताहै) ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

दूर्वास्वरससिद्धश्चघृतंस्याद्व्रणरोपणम् ।
दार्वीत्वङ्मधुकंलोध्रंकेशरश्चावचूर्णनम् ॥ ९६ ॥

दूबके स्वरससे सिद्ध किया घृत विसर्पके व्रणोंपर लेप करनेसे घावोंको भरताहै और दारुहल्दीकी छाल, मुलैठी, लोध और नागकेशरका वारीक चूर्ण घावोंपर

बुरकावे तो विसर्पके घाव दूर हों (पहिले उपरोक्त घृतको घावोंपर चुपडकर ऊपरसे यह चूर्ण बुरकाना परम हितकारक है) ॥ ९६ ॥

पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिवलामधुकोत्पले ।
एतत्प्रक्षालनंसर्पिर्व्रणचूर्णप्रलेपनम् ॥ ९७ ॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और नीलकमल इनका क्वाथ वनाकर विसर्पके जखमोंको धोना चाहिये । और उन्हीं द्रव्योंके कल्क, क्वाथसे सिद्ध किया घृत खाने और लेपनमें हित है तथा इन हीं द्रव्योंका बारीक चूर्ण जखमोंपर बुरकाना हितकारक है । एवं इन्हींका लेप करना भी परम हितकर है॥९७॥

प्रदेहाःसर्वएवैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ।
क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ॥ ९८ ॥

पूर्वोक्त संपूर्ण लेप रक्तको प्रसादन करनेवाले हैं, इनको क्षणक्षणमें पहिलेको उतार फिर नया २ करते रहना चाहिये । (यह श्लोक दोबारा कहा गया) ॥ ९८ ॥

अनवीनेघृतेपूर्वेप्रदेहावहुशोधनाः ।
देयाःप्रदेहाःकफजेपर्य्यधानोद्धृतेघनाः ॥ ९९ ॥

संपूर्ण लेप पुराने घृतके संयोगसे करने चाहिये । और भली प्रकार वारीक शुद्धतापूर्वक कंकड आदि रहित होने चाहिये । अथवा यों कहिये कि पुराने घृतमें मिलाकर किये लेप जखमोंको शीघ्र शुद्धकर भरदेनेवाले होतेहैं । कफजविसर्पमें जो कफनाशक लेप हैं उनको लगाकर पहिलेको उतार दूसरा गाढा २ लेप करता रहे ॥ ९९ ॥

लेपका विधान ।

त्रिभागांगुष्ठमात्रःस्यात्प्रलेपःकल्कपेषितः । नातिस्निग्धोनरूक्षश्च नपिण्डोनद्रवःसमः ॥ १०० ॥ नचपर्य्युषितंलेपंकदाचिदवचारयेत् । नचतेनैवलेपेनपुनर्जातुप्रलेपयेत् ॥ १०१ ॥ क्लेदवीसर्पशूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् । लेपोह्युपरिपट्टस्यकृतःस्वेदयतिव्रणम् ॥ १०२ ॥ स्वेदजाःपीडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते । उपर्य्युपरिलेपस्यलेपोयश्चवचार्य्यते ॥ १०३ ॥ तानेवदोपाञ्जनयेत्पट्टस्योपरियान्कृतः। अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयश्चवचार्य्यते ॥१०४॥ त्वचिनश्लिष्यतेसम्यङ्नदोपंशमयत्यपि । तन्वालिप्तंनकुर्वीतसं-

शुष्कोह्यापुटायते ॥ १०५ ॥ नचौषधिरसोव्याधिंप्राप्नोत्यपिचशुष्यति। तन्वालिप्तेनयेदोषास्तानेवजनयेद्भृशम् ॥ १०६ ॥ संशुष्कःपीडयेद्व्याधिंनिस्नेहोह्यवचारितः । अन्नपानानिवक्ष्यामिविसर्पाणांनिवृत्तये ॥ १०७ ॥

लेपका यह क्रम है कि अंगूठेके तीसरे भाग बराबर मोटा लेप करना चाहिये। और लेपका कल्क न बहुत चिकना, न बहुत रूक्ष, न पिण्डकी समान वंधनेवाला और न अत्यंत पतला होना चाहिये। लेप सम और उत्तम रीतिसे करना चाहिये। जिस स्थानपर पहिले लेप किया हो उसीपर फिर लेप करना उचित नहीं और जो लेप उतारा गया हो उसीको भी फिर लेपन नहीं करना चाहिये। क्योंकि लेपके ऊपर लेप करनेसे जखमोंके अन्दर क्लेद बन्द होकर विसर्प, शूल और जखमोंमें उष्णता प्रगट होजातीहै और पूर्वोद्धृत लेपकी औषधिको फिर लेपकरना भी जखमोंमें क्लेदता आदि उत्पन्न करताहै। एवं घावपर वस्त्र विछाकर लेप करना भी उचित नहीं ऐसा करनेसे घावोंका स्वेदन होताहै और पसीना आनेसे घावके इधर उधर और फुन्सियें प्रगट होजातीहै तथा खाज होने लगती हैं। लेपके ऊपर लेप करनेसे जो २ उपद्रव होतेहैं। कपडेपर लेपकर जखमोंपर लगानेसे भी वही उपद्रव होजातेहैं। एवं अतिस्निग्ध और अत्यन्त पतला लेप त्वचापर ठहरता नहीं इसलिये रोगको भी शान्त नहीं कर सकता। तथा वारीक २ लेप करनेसे वह लेप जल्दी सूखकर फटजाताहै और संपुटके समान ऊंचा खिंच जाताहै। और पिण्डके समान बहुत काठा लेप कियाजाय तो उस औषधीका रस रोगतक नहीं पहुंच सकता और वह लेप भी जल्दी सूखजाताहै। वारीक लेप करनेसे जो दोष होतेहैं वही बहुत कठोर लेपसे भी होतेहैं। यदि विना चिकनाईसे रूक्ष लेप किया जाय तो वह जखमोंको पीडन करताहै उससे जखम फट जाताहै। इसलिये इन दोषोंसे रहित विधिवत् लेप करना चाहिये। अब विसर्पोंकी निवृत्तिके लिये अन्नपान विधिका कथन करतेहैं ॥१००॥१०१ ॥ १०२ ॥ १०३ ॥ १०४॥ १०५ ॥ १०६ ॥१०७॥

विसर्पमें अन्नपानविधि।

लंघितेभ्योहितोमन्थोरूक्षःसक्षौद्रशर्करः ।
मधुरःकिञ्चिदम्लोवादाडिमामलकान्वितः ॥ १०८ ॥

विसर्परोगवाला मनुष्य लंघन[1] आदि कर चुकनेपर स्निग्धतारहित शहत और

[1] यहा लंघनशब्दसे उपवास, वमन, विरेचन और रक्तमोक्षण यह सब जानना।

शर्कराके योगसे मन्थका पान करे। उन्हीं मन्थोंको दाडिम और आँवलोंसे खट्टा कर अथवा शहतसे मधुर कर पानकरे ॥ १०८ ॥

सपरूषकमृद्वीकःसखर्जूरःशृताम्बुना । तर्पणैर्यवशालीनांसस्नेहा त्रावलेहिका ॥ १०९ ॥ जीर्णेपुराणशालीनांयूषैर्भुञ्जीतभोजनम् । मुद्गान्मसूरांश्चणकान्यूषार्थमुपकल्पयेत् ॥ ११० ॥ अनम्लान्दाडिमाम्लान्वापटोलामलकैःसह । जांगलानाञ्चमांसानांरसांस्तस्योपकल्पयेत् ॥ १११ ॥ रूक्षान्परूषकद्राक्षादाडिमामलकान्वितान् । रक्ताःश्वेतामहाह्वाश्चशालयःषष्टिकैःसह ॥ ११२ ॥ भोजनार्थेप्रशस्यन्तेपुराणाःसुपरिस्नुताः । यवगोधूमशालीनांसात्म्यान्येवप्रदापयेत् ॥ ११३ ॥ येषांनात्युचितःशालिर्नरायेचकफाधिकाः ॥११४॥

फालसा, मुनक्का और खजूरके साथ सिद्ध किये जलमें तर्पण बना पीवे । अथवा यव और शालीचावलोंकी पतलीसी अवलेहिका रस बनाकर घृत (औषधसिद्ध) मिला सेवन करे। इसके पचजानेपर पुराने शालीचावलोंका भात यूषके साथ देवे। यूषके लिये मूंग अथवा मसूर या चने लेने चाहिये । वह यूप विना खटाई अथवा अनारकी खटाईयुक्त देवे। या पटोल और आँवलोंका यूप बना देवे । अथवा जंगली जीवोंका मांसरस विना चिकनाईसे फालसा, दाख, अनार और आँवले डालकर सेवन करावे। भोजनके लिये लाल चावल, सफेद चावल, वासमती चावल, शाठी चावल, भली प्रकार पकाकर उनकी पीछ (मांड) आदि दूरकर उत्तम भात बनाकर खानेको दे। अथवा यव, गेहूं, चावल इनमेंसे जो सात्म्य हों उसका भोजनमें प्रयोगकरे। किसी पुस्तकमें "पयोगोधूमसात्म्यानाम्" ऐसा पाठ लिखा है कि जिन *मनुष्योंको दूध और गेहूं (गेहूंका दलिया) सात्म्य (माफिक, अनुकूल)* हों वह उनका सेवन करे। जिनको चावल खानेका अभ्यास नहीं अर्थात् चावल सात्म्य न हों और जिनकी कफप्रकृति है उनको दूध और गेहूंका प्रयोग करे ॥ १०९ ॥ ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

विसर्पमें कुपथ्य ।

**विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धंस्वपनंदिवा ।
क्रोधव्यायामसूर्य्याग्निप्रवातांश्चविवर्जयेत् ॥ ११५ ॥**

---

१ कफप्रधान विसर्पमें स्नेहरहित शहदयुक्त तर्पण और वातप्रधान विसर्पमें अवलेहिका, पित्तप्रधानमें समयानुसार दोनोंमेंसे कोई एक या शर्करायुक्त फालसे आदि द्रव्योंका रसिहित सिद्ध किया तर्पण देवे ।

विसर्प रोगीको विदाही अन्नपान, विरुद्ध भोजन, दिनमें सोना, क्रोध, व्यायाम, धूपमें फिरना, अग्निका ताप प्रवल वायु इन सबका त्याग कर देना चाहिये ॥११५॥

द्वंद्वजविसर्पोंकी चिकित्सा ।

कुर्याच्चिकित्सितान्यस्माच्छीतप्रायाणिपैत्तिके । रूक्षप्रायाणिकफजेस्नैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणेहितम् ॥ ॥ ११६ ॥ कफपित्तप्रशमनंप्रायःकर्दमसंज्ञिते ॥ ११७ ॥

पित्तप्रधान विसर्पमें शीतल प्रायः चिकित्सा करनी चाहिये और कफप्रधानमें रूक्ष चिकित्सा एवं वातप्रधानमें स्निग्धप्रायः चिकित्सा करना चाहिये । अग्निविसर्पमे वातपित्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करना हित है । कर्दम विसर्पमें कफपित्तनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वाग्रन्थिवीसर्पमादितः । रूक्षणैर्लंघनैःसेकैःप्रदेहैः-पाञ्चवल्किकैः । शिरामोक्षैर्जलौकाभिर्वमनैःसविरेचनैः ॥ ११८ ॥ घृतःकषायतिक्तैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् । ऊर्द्ध्वञ्चाधश्चशुद्धायरक्तं चाप्यवसेचिते ॥११९॥ वातश्लेष्महरंकर्मग्रन्थिविसर्पिणेहितम् ॥ उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते ॥ १२० ॥

ग्रंथिविसर्पमें रक्तपित्तकी अधिकता प्रतीत हो तो पहिलेसेही रूक्षण, लंघन, पंचवल्कलसे सेक और प्रलेप तथा शिरामोक्षण (फस्त) जोंक लगाना, तथा वमन विरेचन द्वारा दोप निकालना या तिक्तक घृतका प्रयोग करना बुद्धिमान् वैद्य दोप काल आदि विचारकर जिस प्रकार उचित समझे उस प्रकारकी चिकित्सा करे। पहिले वमन विरेचन द्वारा उभयतः शुद्धकर और रक्तनिकालनेके अनन्तर ग्रंथिविसर्पमें वातकफनाशक कर्म करे ॥ ११८ ॥ ११९ ॥ १२० ॥

स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलिनः । दशमूलोपसिद्धेनतैलेनोष्णेनसेचयेत् ॥ १२१ ॥ कुष्ठतैलेनचोष्णेनयवक्षारयुतेनच । गोमूत्रैःपत्रनिर्य्यूहैरुष्णैर्वापरिषेचयेत् ॥ १२२ ॥

ग्रंथिविसर्पमें पीडा दूर करनेके लिये गर्म २ उत्कारिका (रोटी आदि) से उपनाह (सेक) करना अथवा स्निग्ध वेशवारसे या दशमूलसे सिद्ध कियेहुए तैलसे ग्रंथिविसर्पकी ग्रंथियोंको सेचन (टकोर) करना चाहिये । अथवा कूठसे सिद्ध किये हुए जवाखारयुक्त गर्म २ तैलसे अथवा गर्म गोमूत्रसे या गर्म द्रव्योंके पत्तोंके काथसे सेचन करे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

सुखोष्णयाप्रदिह्याद्वापिष्टयाचाश्वगन्धया । शुष्कमूलककल्केनन-क्तमालत्वचापिवा ॥ १२३ ॥ विभीतकस्यवाग्रन्थिकल्केनोष्णेन सेचयेत् । वलांनागवलांपथ्यांभूर्जग्रन्थिविभीतकम् ॥ १२४ ॥ वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुर्य्याद्ग्रंथिप्रलेपनम् । दन्तीचित्रकमूलत्वक्सुधार्कपयसीगुडः ॥ १२५ ॥ भल्लातकास्थिकासीसंलेपोभिन्द्या·च्छिलामपि । वहिर्मार्गस्थितंग्रन्थिंकिंपुनःकफसम्भवम् ॥१२६॥

अथवा किंचित् उष्ण असगंधके कल्कका या सूखी मूलीके कल्कका अथवा करंजुएकी छालके कल्कका ग्रंथिविसर्पपर लेप करना चाहिये। अथवा बहेडेके गर्म गर्म कल्कको ग्रंथिविसर्पपर लेप करे या वला, नागवला, हरड भोजपत्रकी गांठ, बहेडे, बांसके पत्ते, अग्निमंथ इनको बारीक पीसकर गर्मकर ग्रंथिविसर्पपर लेप करे। अथवा दंती, चित्तेकी जडकी छाल, थोहरका दूध, आकका दूध, गुड, भिलावेकी गुठली, हीराकसीस इन सबको लेप करनेसे पत्थरकी शिला भी फूटजावे फिर कफजनित बहिर्मार्गगामी विसर्पकी ग्रंथिका तो कहना ही क्या है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

बहुतदिनकी ग्रंथिकी चिकित्सा।

दीर्घकालस्थितंग्रन्थिंभिन्द्याद्वाभेषजैरिमैः । मूलकानांकुलत्थानां यूषैःसक्षारदाडिमैः ॥ १२७ ॥ गोधूमान्नैर्यवान्नैर्वासशीधुमधुशर्करैः । सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ॥ १२८ ॥ त्रिफलायाःप्रयोगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः । मुस्तभल्लातसक्तूनांप्रयोगैर्माक्षिकस्यच ॥ १२९. ॥ देवदारुगुडूच्योश्चप्रयोगैर्गिरिजस्यच ॥ ॥ १३० ॥ धूमैर्विरेकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः॥ अयोलवणपाषाणहेमताम्रप्रपीडनैः । आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्वली स्थिरः ॥ १३१ ॥

यदि ग्रंथि बहुत दिनकी उत्पन्न हुई हो और फूटनेमें न आवे तो उसका इन औषधियोंमें भेदन करावे। जैसे जवाखार और डामिका रस मिलाहुआ कुल्थीका यूष। अथवा मूलीका यूष या शीधु, शहत और खांडके साथ गेंहूका दलिया या यवका दलिया। अथवा शहत, वारुणीमण्ड, और बिजौरेका रस मिलाकर या पीपल और शहतके साथ त्रिफलाका प्रयोग करे। अथवा शहत, नागरमोथा और

भिलावेके साथ अनेक प्रकारकी सत्तुओंका प्रयोग करे। या देवदारूके साथ गिलोय तथा गेरूका प्रयोग करे ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

ग्रन्थिःपाषाणकठिनोयदानैवोपशाम्यति ।
अथास्यदाहःक्षारेणशरैर्लौहैनवाहितः ॥ १३२ ॥

अथवा गुल्मरोगके भेदन करनेवाले जो धूम्रप्रयोग शिरोविरेचन, कहे हैं उनका प्रयोग करे। और लोह, लवण, पाषाण, सुवर्ण और ताम्रआदि गरम कर उससे ग्रंथिको पीडनकरे। अथवा उष्ण द्रव्योंके लेपन द्वारा प्रपीडन करे। इन सिद्ध अनेक प्रकारकी क्रियाओं द्वारा बलवान् स्थिर और पत्थरके समान कठिन यदि शान्त न हो तो उसकी क्षारकर्म, दाहकर्म अथवा शर (बाण) वा लोहसे दागना आदि कर्म करना हित है ॥ १३२ ॥

पाकिभिःपाचयित्वावापाटयित्वासमुद्धरेत् । मोक्षयेद्बहुशश्चास्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ॥ १३३ ॥ पुनश्चापह्वतेरक्तेवातश्लेष्मजिदौषधम् । धूमोविरेकःशिरसःस्वेदनंपरिमर्दनम् ॥ १३४ ॥

अथवा पकानेवाली औषधोसे पकाकर तीक्ष्ण शस्त्र द्वारा सिद्धहस्त वैद्य ग्रंथिको चीरकर उसका सब मवाद निकालडाले और जो उसमें उत्क्लेशित रक्त हो उसको भी निकालता रहे जब रक्त निकलचुके फिर वातकफनाशक औषध, धूम्र, शिरोविरेचन, स्वेदन और प्रपीडन कर्म करे ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

अपशाम्यतिदोषेचपाचनंवाप्रशस्यते । प्रक्लिन्नेदाहपाकाभ्यांभिपक्शोधनरोपणैः । बाह्यैश्चाभ्यन्तरैश्चैवव्रणवत्समुपाचरेत् ॥१३५॥

जो ग्रंथि दग्ध आदि करनेसे शांत न होतीहो उसको पकाना ही उत्तम होताहै। और जो ग्रंथि दाह तथा पाकसे क्लेदित होगई हो उसकी वैद्य शोधनीय और रोपणीय क्रिया करे। तथा बाहर और भीतरसे उस ग्रंथिकी व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ १३५ ॥

कम्पिल्यकंविडंगानिदार्वीकारञ्जकंफलम् ।
पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचिकित्सितम् ॥ १३६ ॥

कमीला, वायविडंग, दारूहल्दी और कंजुएके फलोंके कल्कसे सिद्ध किये तेलका ग्रंथिविसर्पके जखमोंको रोपण करनेके लिये प्रयोग करे ॥ १३६ ॥

द्विव्रणीयोपदिष्टेनकर्मणाचाप्युपाचरेत् ।
देशकालविभागज्ञोव्रणग्रन्थिविसर्पवित् ॥ १३७ ॥

देश, कालके विभागको जाननेवाला और व्रण तथा ग्रंथिविसर्पको जाननेवाला वैद्य द्विव्रणीय चिकित्सामें कहीहुई क्रियाद्वारा ग्रंथिविसर्पकी चिकित्सा करे ॥१३७॥

गंडमालाकी चिकित्सा ।

यएवविधिरुद्दिष्टोग्रन्थीनांविनिवृत्तये। सएवगलगण्डानांकफजानां निवृत्तये ॥ १३८ ॥ गलगण्डास्तुवातोत्थायेकफानुगतानृणाम् । घृतक्षीरकषायाणामभ्यासान्नभवन्तिते ॥ १३९ ॥

ग्रंथियोंको निवृत्त करनेकी जो चिकित्सा वर्णन कीहै कफसे उत्पन्न हुई गलगण्ड (अंजीरों) की निवृत्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये । सब प्रकारकी गलग्रंथियें जो कफके संबंधसे उत्पन्न होतीहैं वह घृत, क्षार और कषायोंके अभ्यास करनेसे मनुष्योंके शरीरमें होही नहीं सकतीं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

यानीहोक्तानिकर्माणिविसर्पाणांनिवृत्तये ।
एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमेकतः ॥ १४० ॥
विसर्पोनह्यसंसृष्टोरक्तपित्तेनजायते ।
तस्मात्साधारणंसर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥ १४१ ॥

विसर्परोगकी शान्तिके लिये जितने कर्म कहेहैं वह सब एक ओर और केवल रक्तका निकाल देना एक ओर है । क्योंकि रक्तपित्तके संसर्गके विना विसर्प रोग होही नहीं सकता. इसलिये रक्तका निकाल देना ही साधारण रूपसे उत्तम चिकित्सा है । इस प्रकार विसर्परोगकी साधारण चिकित्साका कथन किया है ॥ १४० ॥ १४१ ॥

विशेषोदोषवैषम्यान्नचनोक्तःसमासतः ।
समासव्यासनिर्दिष्टांक्रियांविद्वानुपाचरेत् ॥ १४२ ॥

इसमें दोषोंकी विषमता हेतु भेद आदि जो हैं वह बहुत विशेषतासेही नहीं कहेगये और न बहुत संक्षेपसे ही कहेगये हैं । इस संक्षेप और विस्तारसे निर्देश कीहुई क्रियाको बुद्धिमान् वैद्य विचारकर चिकित्सा करे ॥ १४२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

निरुक्तनामभेदाश्चदोषादूष्याणिहेतवः । आश्रयोमार्गतश्चैवविसर्पगुरुलाघवम् ॥ १४३ ॥ लिंगान्युपद्रवायेचयल्लक्षणउपद्रवाः ।

साध्यत्वंनचसाध्यानांसाधनञ्चयथाक्रमम् ॥ १४४ ॥ इतिपिप्रच्छवेसिद्धिमग्निवेशायधीमते । उक्तंभगवताह्येतद्विसर्पाणांचिकित्सिते ॥ १४५ ॥

इति चरक० विसर्पचिकित्सितंनामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अब अध्यायका उपसंहार करते हैं कि इस विसर्पचिकित्सित नामके अध्यायमें विसर्पकी निरुक्ति नाम, भेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, मार्ग, गुरुता, लाघव, लक्षण, उपद्रव, उपद्रवोंके लक्षण, साध्यता, असाध्यता और चिकित्सा यह सब भगवान् आत्रेयजीने बुद्धिमान् तत्त्वके जाननेकी इच्छावाले अग्निवेशके प्रति यथाक्रम वर्णन कियाहै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

इति श्री च० प्र०आ०स० चि० स्थाने प्र० भा०टी विसर्पचिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम मदात्यय चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

सुरैःसुरेशसहितैर्यासुरापरिपूजिता । सौत्रामण्यांहूयतेयाकर्मभिर्याप्रतिष्ठिता ॥ १ ॥ यज्ञोहियाचशक्रस्यसोमोऽतिपतितोयया । नीरजस्तमसाविष्टस्तस्माद्दुर्गात्समुद्धृतः ॥ २ ॥ विधिभिर्वेदविहितैर्यायजद्भिर्महात्मभिः । दृश्यास्पृश्याप्रकल्प्याचयज्ञियायज्ञसिद्धये ॥ ३ ॥ योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्बहुधाचया । भूत्वाभवत्येकविधासामान्यान्मदलक्षणात् ॥ ४ ॥ यादेवानमृतंभूत्वास्वधाभूत्वापितॄंश्रया । सोमोभूत्वाद्विजातीन्यायुङ्क्ते श्रेयोभिरुत्तमैः ॥ ५ ॥ आश्विनंयामहत्तेजोवीर्यंसारस्वतश्चया । बलमैंद्रंचयासोमेसौत्रामण्याश्रयामता ॥ ६ ॥ शोकारतिभयोद्वेगनाशिनीयामहाबला । याप्रीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचनिर्वृ-

तिः ॥ ७ ॥ यासुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः । रतिःसुरेत्यभिहितातांसुरांविधिनापिवेत् ॥ ८ ॥

इन्द्र सहित देवताओंने जिस मद्यका पूर्व समयमें पूजन कियाहै जिसकी सौत्रामणी यज्ञके बीचमें आहुती दीगई । जो कर्मद्वारा प्रतिष्ठित हुई है । जो यज्ञमें प्रतिष्ठा पाचुकी है । जिसके पीनेसे सोमपान करनेवाले इन्द्र तमसे आविष्ट हुए संकटसे विमुक्त हुए, जिस मद्यको यज्ञकी हितकारिणी होनेसे महात्माओंने वेदविहित विधिसे यजन करतेहुए देखनेयोग्य स्पृश्य कल्पना करने योग्य यज्ञकी सिद्धिके लिये मानाहै । जो मद्य द्रव्य, संस्कार और नाम विशेषसे अनेक प्रकारकी होतेहुए भी मदकारक सामान्य लक्षणोंसे एक ही प्रकारकी मानी जातीहै । जो मद्य अमृतरूपसे देवताओंको, स्वधा होकर पितृगणोंको, सोम होकर द्विजोंको, उत्तम कल्याणकी देनेवाली है जो सुरा अश्विनीकुमारोंको महातेजको देनेवाली है. जो सरस्वतीका वीर्य है, इन्द्रका बल है, सौत्रामणी यज्ञमें सोमरूप है जो सुरा शोक, अरति, भय और उद्वेगको नाशकरनेवाली है, जो सुरा प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और सुखको देनेवाली है । जो सुरा देवता, दैत्य,गंधर्व,यक्ष, राक्षस और मनुष्योंमें रतिकी उत्पादन करनेवाली है । उस सुराको सुरापी पुरुष (वाममार्गी) इस विधिसे पीवे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

शरीरकृतसंस्कारःशुचिरुत्तमगन्धवान् । प्रावृतोनिर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्तुद्दामगन्धिभिः ॥ ९ ॥ विचित्रविविधस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः । देवद्विजातीन्संपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम् ॥ १० ॥ देशेयथर्त्तुकेशस्तेकुसुमप्रकरीकृते । संवाससंमतेमुख्येधूपसंमोदवोधिते ॥ ११ ॥ सोपधानेसुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने । उपविष्टोऽथवातिर्य्यक्स्वशरीरसुखेस्थितः ॥ १२ ॥ सौवर्णैराजतैश्चापितथामणिमयैरपि । भाजनैर्विमलैश्चान्यैःसुकृतैश्चपिवेत्सदा ॥ १३ ॥ स्त्रीभिर्यौवनमत्ताभिःशिक्षिताभिर्यथर्त्तुकैः । वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूपिताभिर्विभू-

---

१. स्तेनो हिरण्यस्य सुरा पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन् ।
ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमाश्चर ७७ स्तैः ॥ १ ॥
"छान्दोग्योपनिषदि"

ब्रह्महत्या सुरापान स्तेय गुर्वंगनागमः । महान्ति पातकान्याहुस्संसर्गश्चापि तैः सह ॥ मनुः-

पितः ॥ १४ ॥ शौचानुरागयुक्ताभिःप्रमदाभिरितस्ततः । संवाह्यमानइष्टाभिःपिबेन्मद्यमनुत्तमम् ॥ १५ ॥ पिबेन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हरितकैःशुभैः । लवणैर्गन्धपिशुनैरवदंशैर्यथर्त्तुकैः ॥ १६ ॥ भृष्टैर्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् । पौरोगवर्गविहितैर्भक्ष्यैश्चविविधात्मकैः ॥ १७ ॥

वमन, विरेचनादिसे शुद्धदेह होनेपर उत्तम पवित्र, सुगंधित द्रव्योंसे सुगंधित हो निर्मल वस्त्रोंको धारणकर ऋतुके अनुसार सुगंधित फूलमाला आदि धारणकर अनेक प्रकारके रत्न आभूषणोंसे सुशोभित हो, देवता, ब्राह्मण आदिका पूजन कर, मंगल वस्तुओंका स्पर्श करे फिर ऋतुके अनुसार पुष्पादिकोंसे सुशोभित, सुगंधित द्रव्योंसे धूपन कियेहुए सुन्दर स्थानमें एक शय्या विछावे, जिस शय्या, आसन, आदि पर मनोनुकूल तकिया, तोशक आदि विछे हुए हों ऐसी शय्या आसन आदि पर वैठकर, अथवा तकियेके सहारेसे टेढा होकर स्थित हुआ सुवर्ण, चांदी अथवा अन्य मणिमयं निर्मल सुन्दर वनेहुए सुचित्रित पात्रमें डालकर यौवनके मदसे मत्तहुई सब कलाओंको जाननेवाली ऋतुके अनुसार वस्त्र, भूषण, माला आदिकोंसे सुशोभित हुई पवित्रता और अनुरागयुक्त मनोनुकूल स्त्रियोंसे सेवित किया हुआ पुरुष मद्यका पान करे । और उसके अनन्तर अनुकूल उत्तम फल नमकीन सुगंधित ऋतुके अनुसार चटनी आदि सेवन करे । अनेक प्रकारके जीवोंके मांसको नमकीन सुगंधित वनाकर अथवा और अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ सेवन करे ॥ ९–१७ ॥

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिषःप्राक्प्रयुज्यच ।
प्रदायसजलंमद्यमादितोवसुधातले ॥ १८ ॥

प्रकृतिभेदसे मद्यसेवन ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः । स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नैर्वातिकोमद्यमाचरेत् ॥ १९ ॥ शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः । पैत्तिकोभावितश्चान्नैःपिबेन्मद्यंनसीदति ॥ २० ॥ उपचारैरशिशिरैर्यवगोधूमभुक्पिबेत् । श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मांसैर्मद्यंमरिच-

१ मद्यपानं द्विजातीनां गर्हितं पातकं महत् । प्रायश्चित्ती भवेत्स्पृष्ट्वा पीत्वा च नरकं व्रजेत् ॥
सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते । तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥
एकमासं तु यो वैद्या ब्रह्मचर्यं तपेन्नरः । एवमः सर्वपापानि मद्यपानं तपेन्नरः ॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥

कैःसह ॥ २१ ॥ विधिर्वसुमतामेषभविष्यद्भिवाश्रये । यथोपपत्तिकैर्मद्यंपातव्यंमात्रयाहितम् ॥ २२ ॥

देवताओंका पूजन कर आशीर्वाद ले मद्यमें थोडासा जल मिलाकर पृथ्वीपर डाले फिर वातप्रकृति मनुष्य शरीरमें तैलकी मालिशकर, उबटना लगा, स्नानकर उत्तम वस्त्र पहिने, फिर धूम्रपानकर चंदन लगा घृतयुक्त गर्म अन्नके साथ मद्यका सेवन करे। पित्तप्रधान मनुष्य अनेक प्रकारके शीतल उपचार कर-मधुर, स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथमें जलमिले मद्यका सेवन करे। एवं कफप्रधान मनुष्य उष्ण उपचार करनेके उपरांत यव और गेहूंसे बनेहुए भोजन और कालीमिर्च डालकर सिद्धकिये हुए जंगली जीवोंके मांसरसके साथ मद्यका सेवन करे। जो मनुष्य धनसंम्पन्न हैं अथवा आगेको धन सम्पन्न होने वालेहों वह मात्रानुसार इसी विधिसे ही मद्यका सेवन करें। (इस विधिको छोडकर पूर्वोक्त विधिसे मद्यके सेवन करनेवाले मनुष्योंका धनादि भी मद्यके साथ ही स्वाहा हो जाता है) ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

वातिकेभ्योहितंमद्यंप्रायोगौडिकपैष्टिकम् ।
कफपित्ताधिकेभ्यस्तुफालमाधवशार्करम् ॥ २३ ॥

वातप्रधान मनुष्यको गुडसे बना अथवा पैष्टिकमद्य पीना चाहिये। तथा कफ-पित्तप्रकृतिवालोंको फलोंसे बना मद्य और शहदसे बना अथवा खांडसे बना मद्य हितकारी होतीहै ॥ २३ ॥

मद्यके गुणदोष ।

बहुद्रवंबहुगुणंबहुकर्मप्रदात्मकम् । गुणैर्दोषैश्चतन्मद्यमुभयश्चोपलक्ष्यते ॥ २४ ॥ विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यःपिबेन्मद्यंतस्यस्यादमृतंयथा ॥ २५ ॥ यथोपेतंपुनर्मद्यंप्रसंगाद्येनपीयते । रूक्षव्यायामनित्येनविषवद्यातितस्यतत् ॥ २६ ॥ मद्यंहृदयमाविश्यस्वगुणैरोजसोगुणान् । दशभिर्दशसंक्षोभ्यचेतोनयतिविक्रियाम् ॥ २७ ॥

मद्य बहुत पतला और अनेक गुण कर्मोंवाला होताहै। अब उस मद्यके गुण और दोष दोनोंको दिखातेहैं। उचित समयमें ठीक मात्रासे विधिपूर्वक बल और कालके अनुसार प्रसन्न चित्त हो मद्यका सेवन करे तो अमृतके समान गुणोंको करनेवाला होताहै। तथा जो मनुष्य रूक्ष और परिश्रम नित्य करनेवाला होते हुए अकस्मात

अथवा अधिक मात्रासे उसे पीलेताहै अथवा जैसी कैसी प्रसंगवश मिले विना मात्राकाल सात्म्यादिका विचार किये विना मद्य पीताहै उसको वह विपके समान हानिकारक होतीहै। तथा वह हृदयमें प्रवेशकर अपने दशगुणोंसे ओजधातुके दश गुणोंको संक्षोभितकर चित्तमें विकारको उत्पन्न करतीहै ॥ २४-२७ ॥

मद्यके १० गुण।

लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुगमेवच।
रूक्षंविकाशिविशदंमद्यंदशगुणंस्मृतम् ॥ २८ ॥

लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, अम्ल, व्यवायी, शीघ्रगामी, रूक्ष, विकाशी और विशद, यह मद्यके दश गुण हैं ॥ २८ ॥

ओजके १० गुण।

गुरुशीतंमृदुश्लक्ष्णंवहलंमधुरंस्थिरम्।
प्रसन्नंपिच्छिलंस्निग्धमोजोदशगुणंस्मृतम् ॥ २९ ॥

भारी, शीतल, मृदु, श्लक्ष्ण, वहुल, मधुर, स्थिर, प्रसन्न, पिच्छिल और स्निग्ध यह दश गुण ओज धातुके हैं ॥ २९ ॥

मद्यसे ओजके गुण नष्ट होकर मदकी उत्पत्ति।

गुरुत्वंलाघवाच्छैत्यश्चौष्ण्यादम्लस्वभावतः। माधुर्य्यमार्दवंतैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात् ॥ ३० ॥ रौक्ष्यात्स्नेहंव्यवायित्वात्स्थिरत्वंश्लक्ष्णतामपि। विकासिभावात्पैच्छिल्यंवैशद्यात्सान्द्रतां तथा ॥ ३१ ॥ सौक्ष्म्यान्मद्यंनिहन्त्येवमोजसःस्वगुणैर्गुणान्। सत्त्वंतदाश्रयश्चाशुसंक्षोभ्यजनयेन्मदम् ॥ ३२ ॥

मद्यकी लघुतासे ओजकी गुरुता, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुरता, तीक्ष्णतासे मृदुता शीघ्रगामितासे प्रसन्नता रूक्षतासे स्निग्धता,व्यवायी होनेसे स्थिरता, विकाशी होनेसे श्लक्ष्णता, विशदतासे पिच्छिलता और सूक्ष्मतासे वहुलता (सान्द्रता) इस प्रकार मद्य अपने दश गुणोंसे ओजके दश गुणोंको नष्ट करतीहै। मद्य सूक्ष्म होनेसे अपने गुणों द्वारा ओजके गुणोंको नष्टकर मन और तदाश्रय ओजको संक्षोभित कर मद (नशा) को उत्पन्न करतीहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

रसधात्वादिमार्गाणांसत्त्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम्। प्रधानस्यौजसश्चैवहृदयंस्थानमुच्यते ॥ ३३ ॥ अतिपीतेनमद्येनविहतेनौजसाचतत्। हृदयंयातिवैकृत्यंतत्रस्थायेचधातवः ॥ ३४ ॥

रस और धातु आदिकोंके मार्गोंका तथा सत्त्वसंज्ञक मन, बुद्धि, इन्द्रियज्ञान आत्मा और ओजधातुका प्रधान स्थान हृदय ही है। अति मद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट होकर हृदय और हृदयस्थ संपूर्ण धातु विकृत होजाते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मदके भेद।

ओजस्यविहतेपूर्वोहृदिचप्रतिबोधिते।
मध्यमोविहतेऽल्पेचविहतेतूत्तमोमदः ॥ ३५ ॥

मद्यके पीनेसे ओजधातु नष्ट न होकर हृदयमें चैतन्यता रहतेहुए जो मद होताहै उसको पूर्वमद कहतेहैं और जिस मद्यके पीनेसे ओजधातु किंचित् विहत होकर चंचलता (शरारत) उत्पन्न हो उसको मध्यमद्य कहतेहैं। ओजधातुके अत्यंत विहत होजानेसे जब मनुष्य उन्मत्त होजाताहै तब उसको उत्तम मद्य कहते हैं ॥ ३५ ॥

नैवंविघातंजनयेन्मद्यंपैष्टिकमोजसः।
विकाशरूक्षविशदागुणास्तत्रहिनोल्वणाः ॥ ३६ ॥

पैष्टिकमद्य ओजधातुमें अधिक विकार उत्पन्न नहीं करता क्योंकि इसमें विकाशी, रूक्ष और विशदता यह गुण प्रबल नहीं हैं ॥ ३६ ॥

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्तर्षोरतिःसुखम् ॥ ३७ ॥

जब मद्यके गुण हृदयमें प्रवेश करते हैं तब हर्ष, इच्छा, रति और सुख यह भाव प्रगट होजातेहैं ॥ ३७ ॥

विकाराश्चयथासत्त्वंचित्राराजसतामसाः। जायन्तेमोहनिद्रार्त्ता मद्यस्यातिनिषेवणात्। समद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते॥३८॥

मद्यके अधिक सेवनसे जैसा मनुष्यका स्वभाव होताहै उसके अनुसार राजस *अथवा तामस अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होतेहैं तथा मोह निद्रासे व्याकुलता* आदि दोष प्रगट होते हैं। इस मदको मद्यविभ्रम कहते हैं ॥ ३८ ॥

मदके ३ भेद।

पीयमानस्यमद्यस्यविज्ञातव्यास्त्रयोमदाः।
प्रथमोमध्यमोऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रचक्षते ॥ ३९ ॥

मद्यके पीनेसे तीन प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं। जैसे प्रथम मद, मध्यम मद और अन्त्य मद। अब इन तीनोंके लक्षणोंको कहते हैं ॥ ३९ ॥

---

१ मनो हिनस्ति सर्वं मिथ्या प्रजल्पति हि विकल्पया बुद्ध्या। मातरमपि कामयते साऽश्लं मद्यपान-मत्तः सन्॥ वैकल्य धरणीपातमयथोचितजल्पनम्। सन्निपातस्य चिह्नानि मद्यं सर्वाणि दर्शयेत्॥

प्रथममदके लक्षण।

प्रहर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः। वाद्यगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः ॥ ४० ॥ नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेषुनचाक्षमः। सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःसुखदोमदः ॥ ४१ ॥

प्रथम मद हर्षकारक, प्रीतिवर्द्धक, अन्नपानके गुणोंको दिखानेवाला (रुचिकारक) वाजा, गीत, परिहास और अनेक प्रकारकी वार्त्ताओंका प्रवर्त्तक होताहै। इससे बुद्धि और स्मृति नष्ट नहीं होती और न विषयमें शिथिलता होती है। तथा सुखसें निद्रा और सुखपूर्वक प्रबोध (जागरण) यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

मध्यममदके लक्षण।

मुहुःस्मृतिर्मुहुर्मोहोऽव्यक्तासज्जतिवाङ्मुहुः। युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रपलायनमेवच ॥ ४२ ॥ स्थानपानान्नसांकथ्येयोजनासविपर्य्यया। लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे ॥ ४३ ॥

वारंवार स्मरण और मोहका होना, मुखसे अस्पष्ट अक्षरोंका निकलना, कभी स्पष्ट शब्दोंका बोलना, कभी कण्ठका रुकजाना, कभी युक्त कभी अयुक्त अण्टसण्ट वकना, चलायमान होना, कभी स्थिर होजाना, खानेपीनेकी चेष्टा करना, कहनेमें विपरीतता होना, यह मध्य मदविशिष्ट पुरुषके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

मध्यमंमदमुत्क्रम्यमदमप्राप्यचोत्तमम्।
नकिञ्चिन्नाशुभंकुर्य्युर्नराराजसतामसाः ॥ ४४ ॥

राजस, तामस प्रकृतिवाले मनुष्योंको यदि उत्तम मद (वेहोशी निद्रा) न हो तो वह मध्य मदको प्राप्त होकर अनुचित कर्मोंको करने लगते हैं। ऐसा कोई अशुभ (खोटा) कर्म नहीं जिसको यह मदातुर मनुष्य न करडाले ॥ ४४ ॥

कोमदंतादृशंविद्वानुन्मादमिवदारुणम्।
गच्छेदध्वानमस्वन्तंवहुदोषमिवाध्वगः ॥ ४५ ॥

इस प्रकारके दारुण उन्मादके समान मदकारक मद्यको बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे। जैसे–वहु दोषयुक्त जिसमें अनेक उपद्रवोंका भय हो ऐसे प्राणनाशक मार्गको बुद्धिमान् पथिक त्याग देताहै उसी प्रकार इस उन्मादकेसे लक्षणोंवाले मध्य मदको त्याग देना चाहिये ॥ ४५ ॥

अंत्य मद।

तृतीयन्तुमदंप्राप्यभग्नदार्विवनिष्क्रियः। मदमोहावृतमनाजीव-

ह्यपिमृतैःसमः ॥ ४६ ॥ रमणीयान्सविषयान्नवेत्तिनसुहृज्जनम् । यदर्थंपीयतेमद्यंरतिंताञ्चनविन्दति ॥ ४७ ॥ कार्य्याकार्यंसुखंदुःखंलोकेयच्चहिताहितम् । यदवस्थोनजानातिकोऽवस्थांतांव्रजेद्बुधः ॥ ४८ ॥ सदूष्यःसर्वभूतानांनिन्द्यश्चाग्राह्यएवच । व्यसनित्वाद्दुदर्केचसदुःखंव्याधिमश्नुते ॥ ४९ ॥

अन्त्यमदके होनेसे मनुष्य कटीहुई लकडीके समान निष्क्रिय होकर गिरजाताहै वह मद और मोहसे आवृत हुआ जीताहुआ भी मरेके समान पडारहताहै । उस समय उसको किसी प्रकारके रमणीय विषय अथवा सुहृदजन कुछ भी नहीं जान पडते और न किसीको किसी प्रकार जानने पहिचाननेका ज्ञान रहताहै । जिस मतलबके लिये वह मद्य पीताहै उसका भी उसको कुछ ज्ञान नहीं रहता । कार्य, अकार्य, सुख, दुःख और हित और अहित आदि जो कुछ भी जगत्में है उस किसीको भी उस अवस्थामें वह नहीं जानसकता । इस अवस्थाका नाम अन्त्य मद है । ऐसी अवस्थाको कौन मनुष्य है जो प्राप्त होना चाहताहो । इस प्रकार मद्य पीनेवाला मनुष्य प्राणिमात्रकी दृष्टिमें दूषित निन्दाके योग्य और किसी प्रकार भी ग्रहण करने योग्य नहीं होताहै । और अन्तमें इस व्यसनसे दुःख तथा रोगोंसे पीडित होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मद्यकी निंदा ।

प्रेत्यचेहचयच्छ्रेयःश्रेयोमोक्षश्चयत्परम् । मनःसमाधौतत्सर्वमायत्तंसर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥ मद्येनमनसश्चास्यसंक्षोभःक्रियतेमहान् । महामारुतवेगेनतटस्थस्यैवशाखिनः॥५१॥ मद्यप्रसङ्गमज्ञात्वामहादोषंमहागदम् । सुखमित्यधिगच्छन्तिरजोमोहपराजिताः ॥ ५२ ॥ मद्योपहतविज्ञानावियुक्ताःसात्त्विकैर्गुणैः । श्रेयोनिर्विप्रयुज्यन्तेमदान्धामदलालसाः ॥ ५३ ॥

इस लोकका सुख और पारलौकिक स्वर्गादि सुख तथा मोक्ष यह सब मनुष्योंके मनकी समाधिके आधीन हैं । और जिसप्रकार आंधी, तूफान आदिसे नदीके किनारेके वृक्ष संक्षोभित होतेहैं उसी प्रकार मद्यके पीनेसे मनुष्योंका मन संक्षोभित होजाताहै । मद्यके पीनेसे ज्ञान नष्ट होकर अनेक दोष और रोग उत्पन्न होतेहैं परन्तु रजोगुण और तमोगुणके मोहसे पराजित हुए मूर्ख फिर भी मद्यके पीनेमें

१ पेयं मद्यं पलं खाद्य समालोक्याः परस्त्रियः । इत्येव श्रेष्ठमाचारं पामराः प्रवदन्ति हि ॥

सुख मानतेहैं। मद्यके पीनेसे मदांध और मदकी लालसावाला मनुष्य हतज्ञान होकर संपूर्ण सात्विक गुणोंसे हीन और कल्याणसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ ५०-५३ ॥

मद्येमोहोभयंशोकःक्रोधोमृत्युश्चसंश्रितः।
सोन्मादमदमूर्च्छाद्याःसापस्मारापतानकाः ॥ ५४ ॥

मद्यके पीनेसे बेहोशी, भय, शोक, क्रोध, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक आदि महाव्याधियें अथवा मृत्यु भी होजातीहै ॥ ५४ ॥

यत्रैकःस्मृतिविभ्रंशस्तत्रसर्वमसाधुवत्।
इत्येवमद्यदोषज्ञामद्यंगर्हन्तियत्नतः ॥ ५५ ॥
सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः।
अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यविधिवर्जनम् ॥ ५६ ॥

जिस मद्यके पीनेसे मनुष्यकी स्मृति ही नष्ट होजाय उसमें और बाकी दुर्गुण क्या रहे अर्थात् संपूर्ण निन्दनीय दोष मद्यसे प्राप्त होतेहैं। इसलिये दोषके जाननेवाले बुद्धिमान् (द्विजाती) मद्यकी यत्नपूर्वक निन्दा करतेहैं। अर्थात् मद्यका स्पर्श करना भी पाप[1] मानते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

किन्तुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथास्मृतम्। अयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तंयथामृतम् ॥ ५७ ॥ प्राणाःप्राणभृतामन्नंतदयुक्त्यानिहन्त्यसून्। विषंप्राणहरंतच्चयुक्तियुक्तंरसायनम् ॥ ५८ ॥

मद्यके पीनेवाले मनुष्य भी यदि युक्तिके विना अहित और अधिक मात्रासे मद्यको पीते हैं तो निश्चय ही उनको भी यह महाव्याधियें और दोष अवश्य प्राप्त होते हैं। जैसे अन्न स्वभावसे ही हितकारक होतेहुए भी विधिको त्यागकर अधिक मात्रासे अथवा अयुक्तिसे सेवन किया जाय तो रोगोंको उत्पन्न करनेवाला होताहै और युक्तियुक्त होनेसे अमृतके समान होताहै, उसी प्रकार मद्यसात्म्य मनुष्य भी यदि अहित मात्रासे मद्यपान करे तो उसके प्राणोंको विषके समान नष्ट करदेताहै। और युक्तिपूर्वक पीनेसे अमृतके समान होताहै। देखिये मनुष्योंके प्राणोंका आधार अन्न ही है, वह ही अहित रीतिसे सेवन किया प्राणोंको नष्ट कर देताहै। और विष प्राणोंको नष्ट करनेवाला है परन्तु वही विधिवत् सेवन किये जानेसे अमृतके समान रसायन होकर प्राणोंको चिरकालस्थायी बनानेवाला होजाताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

---

[1] वेदत्यागान्मद्यपानाच्छूद्रदारनिषेवणात्। तत्क्षणाज्जायते विप्रश्चाण्डालादपि गर्हितः ॥
वेदमार्गपरित्यागी कैवल्येच्छाविवर्जितः। सिद्धिकामी वाममार्गी ब्राह्मणो नारकी भवेत् ॥
अज्ञानाद् वारुणीं पीत्वा संस्कारेणैव शुद्ध्यति। मतिपूर्वमनिर्देश्यं प्राणान्तिकमिति स्थितिः॥

युक्तियुक्त मद्यके गुण ।

हर्षमूर्जोमदंपुष्टिमारोग्यंपौरुषंपरम् । युक्त्यापीतंकरोत्याशुमद्यंमदसुखावहम् ॥ ५९ ॥ रोचनंदीपनंहृद्यंस्वरवर्णप्रसादनम् । प्रीणनंबृंहणंबल्यंभयशोकश्रमापहम् ॥ ६० ॥ स्वापनंनष्टनिद्राणां मूकानांवाग्विबोधनम् । बोधनश्चातिनिद्राणांविबद्धानांविबन्धनुत् ॥ ६१ ॥ वधबन्धपरिक्लेशदुःखानाञ्चावमोहनम् । मद्योत्थानाञ्चरोगाणांमद्यमेवप्रबाधकम् ॥ ६२ ॥ रतिविषयसंयोगेप्रीतिसंयोगवर्द्धनम् । अतिप्रवयसांमद्यमुत्सवामोदकारकम् ॥ ६३ ॥

मद्यसात्म्य मनुष्य यदि युक्तिपूर्वक उचित मात्रासे मद्यका सेवन करे तो उस पुरुषको हर्ष, बल, मद, पुष्टि, आरोग्यता और पुरुषार्थको उत्पन्न करताहै । इस प्रकारके मद्यके मदसे शीघ्र सुख प्रतीत होने लगताहै । तथा युक्तियुक्त सेवन किया मद्य रुचिकारक, अग्निवर्द्धक, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको प्रसन्न करनेवाला शरीरको पुष्ट करनेवाला, बृंहण, बलकारक, भय और शोकको दूर करनेवाला, थकावटको हरनेवाला, नींद न आनेवालोंको सुन्दर नींद लानेवाला, मूकोंको (गूगोंको) वाणीका देनेवाला, अतिनिद्रावालोंको प्रबोधन करनेवाला, मलमूत्रादिकोंके विबंधको खोलनेवाला, आघात, बन्धन, क्लेशन और दुःखोंको भुलानेवाला होताहै । मद्यके उत्पन्न हुए रोगोंको मद्य ही दूर करताहै तथा युक्तियुक्त मद्य रतिविषयमें प्रवृत्त करनेवाला, प्रीतिजनक, वृद्धमनुष्योंको भी रतिउत्सवका आनंद देनेवाला होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

पञ्चस्वर्थेषुकान्तेषुयारातिःप्रथमेमदे । यूनांयास्थविराणांवातस्य नास्त्युपमाभुवि ॥ ६४ ॥ बहुदुःखकृतस्यास्यशोकेनोपहतस्यच । विश्रामोजीवलोकस्यमद्यंयुक्त्यानिषेवितम् ॥ ६५ ॥

प्रथम मदसे (युक्तियुक्त) युवा पुरुष तथा वृद्ध अवस्थावालोंको भी पांचों विषयोंमें जो आनन्द प्राप्त होताहै उसकी पृथ्वीपर कोई भी उपमा नहीं । बहुतसे दुःखों और शोकसे उपहत हुए मनुष्योंको युक्तियुक्त मद्य पीना ही जीवलोकका विश्राम है अर्थात् दुःख और शोकको भुलाकर शान्तिदायक होताहै ॥६४॥६५॥

अन्नपानवयोव्याधिबलकालत्रिकाणिषट् । त्रीन्दोषांस्त्रिविधंसत्त्वं ज्ञात्वामद्यंपिबेत्सदा ॥ ६६ ॥ तेषांत्रिकाणामष्टानांयोजनायुक्तिरु-

च्यते । यथायुक्त्यापिवेन्मद्यंमद्यदोषैर्नयुज्यते ॥ ६७ ॥ मद्यस्य चगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते । धर्मार्थयोरपीडार्थैर्नरःसत्त्वगुणोच्छ्रितः ॥ ६८ ॥

अन्न, पान, वय, व्याधि, बल और काल इन छहोंकी त्रिविध अवस्था, त्रिविध दोष और त्रिविध सत्त्व इन आठ त्रिकोंका विचार कर मद्यका सेवन करना चाहिये । इन आठ त्रिकोंका विचार करके मद्यके प्रयोगको करना ही युक्ति कही जाती है । सो जिस प्रकार दोषोंका संयोग न होनेपावे उस युक्तिसे मद्यका सेवन करना चाहिये । जो सात्म्य मनुष्य मद्यको युक्तिपूर्वक पीताहै वह मद्यके संपूर्ण गुणोंको प्राप्त होताहै । इस प्रकारके मद्यसे सुरापी पुरुषोंका धर्म, अर्थ, नष्ट नहीं होता और मनके गुणोंकी वृद्धि होतीहै ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

सत्त्वानितुप्रबुध्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे । द्वितीयेऽव्यक्ततांयान्तिमदे चोत्तममध्ययोः ॥ ६९ ॥ सत्त्वसंबोधकंहर्षमोहप्रकृतिदर्शकम् । हुताशःसर्वसत्त्वानांमद्यन्तूभयकारकम् ॥ ७० ॥ प्रधानावरमध्यानांरुक्माणांव्यक्तिसाधकः ।यथाग्निरेवं सत्त्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥ ७१ ॥

उत्तम और मध्यम मनुष्यके प्रथम मदमें मनके सब भाव प्रगट होने लगते हैं और मध्यम मदमें वह सब स्पष्ट अर्थात् जो मनुष्य जिस प्रकृतिका हो मद्यके पीनेसे उसके स्वभावके सब गुण प्रथम मदमें जाग्रत होने लगते और मध्यम मदमें वह अपने सब भावोंको प्रगटरूपसे बकने और दिखाने लगताहै । जैसे अग्नि सुवर्णका प्रकृतिज्ञान (भलाबुरापन) दिखाने लगतीहै ऐसे मद्य भी पुरुषोंके मनको प्रबोधन करनेवाला, हर्षको बढानेवाला और उसके स्वभावोंको स्पष्टरूपसे दिखानेवाला होताहै, जैसे-अग्नि सुवर्णकी उत्तमता, मध्यमता और अधमता इन तीनों ही प्रकारके गुणोंको प्रकाश करदेतीहै मद्य भी उसी प्रकार मनुष्यके भले और बुरे स्वभावको प्रकाशकर दिखादेतीहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सात्त्विकमद्यपान ।

सुगन्धिमाल्यगन्धैर्वासुप्रणीतमनाकुलम् । मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥ ७२ ॥ सुखप्रपानंसुमदंहर्षप्रीतिविवर्द्धनम् । स्वन्तंसात्त्विकमापानंनचोत्तममदप्रदम् ॥ ७३ ॥

सुगंधी फूलमाला और गंधके साथ उचित मात्रासे उत्तम बनेहुए मद्यको मधुर अन्नपानके साथ मृदुभाषण करता हुआ और सुखप्रमाण सेवन करे तो सुखकारक मद हर्ष और प्रीति बढाताहै । जिस मद्यके पीनेसे मनमें विकार पैदा न होकर सुख, हर्ष, प्रीति आदि शुभ भाव बनेरहें उसको सात्विक मद्यपान कहते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोषैर्न सात्विकाः ।
मद्यंहिबलवत्सत्त्वंगृह्णातिसहसानतु ॥ ७४ ॥

इस प्रकार सात्विक मद्यपानसे विगुणता उत्पन्न न होकर सात्विकता प्रगट होतीहै । बलवान् सत्त्ववाले मनुष्यको मद्य शीघ्र ही पराजित नहीं कर सकता॥७४॥

राजसी मद्यपान ।

सौम्यासौम्यकथाप्रायंविशदाविशदंक्षणात् । चित्रंराजसमापन्नं प्रायेणास्वन्तकाकुलम् ॥ ७५ ॥ हर्षप्रीतिकथोपेतमदुष्टंपान-भोजने ॥ ७६ ॥

राजस मद्यके पीनेसे कभी सौम्य, कभी असौम्य भाषण करनेलगे, कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट भाषण करे । स्वभावमें अनेक प्रकारकी विचित्रता उत्पन्न हो । इस मद्यके पीनेसे अन्तमें प्रायः अशुभ परिणाम होताहै । इस राजसमद्य (मध्य) पान करनेसे बहुतसी स्मरणशक्तिका होना, अण्ट सण्ट बकना चित्तमें अत्यंत हर्ष होना, खाने पीनेमें रुचि होना, यह लक्षण (मध्यम मात्रा मद्य पीनेसे) होतेहैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

तामस मद्यपान ।

सम्मोहक्रोधनिद्रान्तमापानंतामसंस्मृतम् । आपानेसात्विका-न्बुद्धातथाराजसतामसान् । जह्यात्सहायान्यैःपीत्वासहदोषानु-पाश्नुते ॥ ७७ ॥

अति मद्य पीनेसे संमोह, क्रोध और अत्यंत निद्रा होतीहै । इस प्रकारके मद्य पीनेको तामसमद्य कहतेहैं । अथवा सात्विक, राजस, तामस इन तीन प्रकारकी प्रकृतिवाले मनुष्योंके मद्य पीनेसे यह उपरोक्त तीन प्रकारके गुण होतेहैं । सो इन सात्विक, राजस और तामस मद्य पीनेवालोंका विचारकरके मद्यपान करनेके स्थानमें जिनके साथ मद्य पीनेसे दुर्गुण प्रगट हों उनको त्याग देना चाहिये ॥ ७७ ॥

सुखशीलाःसुसम्भाषाःसुमुखाःसम्मताःसताम् । कलासुवाक्य-

विशदाविषयप्रवणाश्रये ॥ ७८ ॥ परस्परविधेयायेयेपामैक्यं सुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्य्यैरापानंवर्द्धयन्तिये ॥ ७९ ॥ उत्सवादुत्सवतरंयेपामन्योन्यदर्शनम् । तेसहायाःसुखाःपानेतैः पिवन्सहमोदते ॥ ८० ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः । पिवन्तिसुसहायायेतेवैसुकृतिभिःसमाः ॥ ८१ ॥ पञ्चभिर्विपयैरिष्टैरुपेतैर्मनसःप्रियैः । देशेकालेपिवेन्मद्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना॥८२॥

जो सुन्दर स्वभाववाले, शुभ भापण करनेवाले, सुमुख, श्रेष्ठसंमत, सब कलाओंमें चतुर, बोलनेमें चतुर, विपयप्रवीण, परस्पर एक दूसरेसे स्नेह रखनेवालें, ऐक्यता गुणयुक्त, सौहृद्य संपन्न, हर्प, प्रीति और मधुरतासे पीनेके स्थानको उत्सवसे भी अधिक मानें, एक दूसरेको देखकर परम प्रसन्नताको प्राप्त हों ऐसे सहधर्मियोंके साथ मिलकर मद्य पीना चाहिये। ऐसे समान गुणवालों, मद्यसात्म्य मित्रों संयुक्त रूपरसगंध शब्द और स्पर्श इन पांचों इन्द्रियोंके पांच विपयोंका आनन्द लेतेहुए मद्यपायी मनुष्य पुण्यात्माओंके समान सुखी होतेहैं। मनके प्यारे इच्छित पंच विपयोंसंयुक्त प्रसन्नमन हुआ देश, काल विचारकर मद्यका पान करे ॥ ७८-८२ ॥

मद्य पीनेयोग्य मनुष्य।

स्थिरसत्त्वशरीरायेपुराणामद्यपान्वयाः।
वहुमद्योचितायेचमाद्यन्तिसहसानते ॥ ८३ ॥

जिन मनुष्योंका मन और शरीर वलवान् हो, जिनके वंशमें सदासे मद्य पानकरनेकी प्रथा हो जिनको सदासे मद्यपान करनेका अभ्यास हो, जो मद्यके मदका सहन कर सकते हों जिनको शीघ्र मद न होसकताहो उनको ही मद्यपान करना चाहिये ॥ ८३ ॥

मद्यके अयोग्य मनुष्य।

प्राङ्मद्यात्क्षुत्पिपासार्त्तादुर्वलावातपैत्तिकाः।
रूक्षाल्पप्रमिताहाराविस्तब्धाःसत्त्वदुर्वलाः ॥ ८४ ॥
क्रोधिनोऽनुचिताःक्षीणाःपरिश्रान्तामदक्षताः।
स्वल्पेनापिमदंशीघ्रंयान्तिमद्येनमानवाः ॥ ८५ ॥

जिनको मद्य पीनेसे पहिले भूख और प्यास लगरहीहो तथा जो अत्यंत दुर्वल हों जो वात पित्तके स्वभाववाले हों, जो रूक्ष, अल्प और प्रमित भोजन करनेवाले हों जो

विस्तब्ध हों, जिनका मन दुर्बल हो, जिनका क्रोधी स्वभाव हो जिनकी जातिमें मद्य पीना निषिद्ध हो अथवा जिन्होंने कभी मद्य पीया न हो, जो क्षीण हों, जो परिश्रम कर थके हों और जिनको क्षतरोग हो ऐसे मनुष्य थोडासा मद्य पीनेसे भी शीघ्र मदातुर होजातेहैं ॥ ८४ । ८५ ॥

ऊर्द्ध्वंमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् ।
अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥ ८६ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम यथाक्रम मदात्ययरोगकी उत्पत्ति और लक्षण तथा चिकित्साको कहतेहैं ॥ ८६ ॥

वातप्रधान मदात्यय ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्मभिर्योऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशीवा यःपिबत्यतिमात्रया ॥ ८७ ॥ रूक्षंपरिणतंमद्यंनिशिनिद्रांविहत्य च । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातप्रायंमदात्ययम् ॥ ८८ ॥

जो मनुष्य स्त्रीसंग, शोक, भय, भार उठाना, मार्ग चलने तथा इसी प्रकार अन्य कर्मोंके करनेसे अत्यंत कर्षित होगयाहो तथा सदा ही रूक्ष, अल्प और एकरसका भोजन करनेवाला हो यदि ऐसा मनुष्य अत्यंत मद्य पीवे तो वह मद्य परिपाकके समय अत्यंत रूक्षताको प्रगटकर रात्रिमें निद्राको नष्ट कर देताहै । फिर शीघ्र ही वातप्रधान मदात्यय रोगको नष्ट करताहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम् ॥ ८९ ॥

हिचकी, श्वास, सिरका, कांपना, पार्श्वशूल, निद्रानाश और बहुत बकवाद करना यह वातज मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ८९ ॥

पित्तप्रधान मदात्यय ।

तीक्ष्णोष्णंमद्यमम्लंवायोऽतिमात्रंनिषेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ ९० ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेण मदात्ययः । सतुवातोल्बणस्याशुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥ ९१ ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्धरितवर्णस्यपित्तप्रायंमदात्ययम् ॥ ९२ ॥

अथवा जो मनुष्य, तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल मद्यको अत्यंत सेवन करताहै तथा सदा ही

खटाई उष्ण और तीक्ष्ण भोजन करे तथा स्वभावका क्रोधी हो, अग्नि और धूपका अत्यंत सेवन करनेवाला हो उसके पित्तकी विशेषतासे मदात्ययरोग उत्पन्न होताहै । यदि वह वातप्रधान मनुष्यको होजाय तो शीघ्र शान्त होजाताहै अथवा उस मनुष्यको मार डालताहै । पित्तप्रधान मदात्ययके यह लक्षण होते हैं । जैसे प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मूर्च्छा, अतिसार, अत्यंत भ्रम और हरावर्ण होना यह पित्तप्रधान मदात्ययके लक्षण होते हैं ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

कफप्रधान मदात्यय ।

तरुणंमधुरप्रायंगौडंपैष्टिकमेववा । मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिवत्यतिमात्रया ॥ ९३ ॥ अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः । मदात्ययंकफप्रायंसशीघ्रमधिगच्छति ॥ ९४ ॥ छर्घरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः । विद्याच्छीतपरीतस्यकफप्रायंमदात्ययम् ॥ ९५ ॥

जो मनुष्य नवीन और मधुरप्राय गौड़ी मद्य तथा पैष्टिक मद्यको अधिक पीता है और मधुर, स्निग्ध तथा भारी पदार्थोंका सेवन करताहै और व्यायाम नहीं करता, दिनमें अधिक सोताहै, शय्या, आसन, आदिके सुखमें मस्त रहताहै उस मनुष्यको कफप्रधान मदात्यय रोग उत्पन्न होताहै । उसके ये लक्षण होते हैं । जैसे-छर्दि, अरुचि, हृल्लास, तंद्रा, स्तैमित्य, भारीपन और शीतलता यह कफप्रधान मदात्ययके लक्षण हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

विपस्ययेगणादृष्टाःसन्निपातप्रकोपणाः । तएवमद्येदृश्यन्तेविपेतु वलवत्तराः ॥९६॥ हन्त्याशुहिविपंकिञ्चित्किञ्चिद्रोगायकल्पते । यथा विपंतथैवान्त्योज्ञेयोमद्यकृतोगदः ॥ ९७ ॥ तस्मात्रिदोपजंलिङ्गं सर्वत्रापिमदात्यये । दृश्यतेरूपवैशेष्यात्पृथक्त्वञ्चास्यलक्ष्यते ॥९८॥

तीनों दोषोंके कुपित करनेवाले जितने दोष विपके हैं मद्यमें भी वह सब दिखाई देते हैं । जैसे-विपके बलवान् दोप शीघ्र मनुष्यको मारडालते हैं और थोडे विपके दोप रोगोंको उत्पन्न करनेवाले होतेहैं वैसे ही विपके समान अत्यंत मद्यके पीनेसे अन्त्यमद जानना-इसलिये मदात्ययरोगमें सर्वत्र ही त्रिदोषके चिह्न दिखाई देते हैं । केवल दोषोंके लक्षणोंकी विशेपताके भेदसे वातादिभेद दिखाई पडते हैं॥९६॥९७॥९८॥

मदात्ययके लक्षण ।

शरीरदुःखंवलवत्सम्मोहोहृदयव्यथा । अरुचिःप्रततातृष्णाज्वरः

शीतोष्णलक्षणः ॥ ९९ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवेदना । जायतेऽतिवलाजृम्भास्फुरणंवेपनंश्रमः ॥ १०० ॥ उरोविवन्धःकासश्चहिक्काश्वासःप्रजागरः । शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुखरोगत्रिकग्रहः ॥ १०१ ॥ छर्द्यतीसारमुत्क्लेशोवातपित्तकफात्मकः । भ्रमःप्रलापोरूपाणामसताञ्चैवदर्शनम् ॥ १०२ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रान्तचेताःसमन्यते ॥ ॥ १०३ ॥ व्याकुलानामशस्तानांस्वप्नानांदर्शनानिच । मदात्ययस्वरूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ॥ १०४ ॥

अत्यंत शारीरिक कष्ट, वेहोशी, हृदयमें व्यथा, अरुचि, प्यासकी अधिकता, शीत अथवा उष्ण लक्षणोंवाला ज्वर, शिरमें पीडा, पार्श्वशूल, हड्डी और जोडोंमें विजली चमकनेकीसी पीडा, वेगपूर्वक जंभाई अंगोंका फडकना, शरीरका कांपना, थकावट, छातीका रुकाहुआसा होना, खांसी, हिचकी, श्वास, निद्रानाश, शरीरका कांपना, कान नेत्र और मुखके रोग, त्रिकस्थानमें पीडा, छर्दि, अतिसार, वात, पित्त और कफका उत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, अविद्यमान भयंकर रूपोंका दिखाई देना, सब आकाश, तृण, भस्म, लता, पत्र, धूल आदिसे भरा दिखाई देना । अपने आपको विहंगमों (पक्षियों) से पीडित होतेहुए प्रतीत होना, चित्तमें भ्रम होकर ऐसे २ असत्य लक्षणोंका दिखाई देना, भयकारक दुःस्वप्नोंका देखना यह सब (त्रिदोषोल्वण) मदात्यय रोगके रूप जानने ॥ ९९ ॥१००॥१०१ ॥१०२॥१०३॥१०४ ॥

मदात्ययका चिकित्साक्रम ।

सर्वंमदात्ययंविद्यात्रिदोषमधिकन्तुयत् । दोषंमदात्ययेपश्येत्तस्यादौप्रतिकारयेत् ॥ १०५ ॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्य्यामदात्यये । पित्तमारुतपर्य्यंतःप्रायेणहिमदात्ययः ॥ १०६ ॥

संपूर्ण मदात्यय त्रिदोषज ही होतेहैं परन्तु उनमें जिस दोषकी अधिकता देखे पहिले उसके शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । मदात्यय रोगमें कफस्थान (आमाशय) पित्तस्थान (ग्रहणी) वातस्थान (मलाशय) यह आनुपूर्विक क्रमसे एकके अनन्तर दूसरा. दूसरेके अनन्तर तीसरा मदात्ययरोगसे आक्रमित होता है । इसलिये यदि किसी दोषकी विशेषरूपसे प्रधानता न हो तो त्रिदोषज मदात्ययमें पहिले कफ, फिर पित्त, फिर वायुकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोऽव्याधिरुपजायते । समपीतेनतेनैवसमद्येनोपशाम्यति ॥ १०७ ॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् । प्रकांक्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥ १०८ ॥ सौवर्च्चलानुसंविद्धंशीतंसविडसैन्धवम्‌मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ॥१०९॥

मद्य मिथ्यायोगसे अथवा अधिक या हीन मात्रासे पीयेजानेपर जो विकार पैदा होतेहैं उन रोगांकी शान्ति मद्यकी सममात्रा पीनेसे होसकती है मदात्यय रोगमें मद्यजनित आमदोष जीर्ण होनेपर जब हलकापन प्रतीत होने लगे तो उसको हितमात्रासे हितकारी मद्य, काला निमक, विडलवण, सेंधानमक, बिजौरेका रस, अदरखका रस, जल तथा शीतवीर्य द्रव्य मिलाकर हितकारी मात्रासे प्रमाणको जाननेवाला वैद्य मद्यपान करावे ।(तदनन्तर अन्य उचित चिकित्सा भी करे)१०७–१०९

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना । मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धःक्षारतांगतः ॥ ११० ॥ अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमं मदम् । जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमेवप्रदापयेत् ॥ १११ ॥ क्षारोहियातिमाधुर्यंशीघ्रमम्लोपसंस्कृतः । श्रेष्ठमम्लेषुमद्यञ्चयैर्गुणैस्तान्परंशृणु ॥ ११२ ॥

तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और विदाही मद्योंकी अधिक मात्रा पीनेसे अन्नका खट्टा रस बनकर उसका उत्क्लेद हो विदग्ध होजाताहै । उसमें क्षारता प्राप्त होजातीहै । उससे अन्तर्दाह, ज्वर, प्यास, मोह (बेहोशी) विभ्रम, मद यह लक्षण शीघ्र प्रगट होजातेहैं । इसलिये इनके शान्त करनेको उचित रीतिसे मद्यका पान कराना ही श्रेष्ठ है । क्योंकि अम्लरस (खटाई) के मिलनेसे क्षार रस फिर मधुरताको प्राप्त होजाताहै । जिन गुणोंसे सब अम्लरसोंमें मद्यको श्रेष्ठता है उन गुणोंको श्रवण करो ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठत्व ।

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसाःस्मृताः । मधुरश्चकषायश्च तिक्तःकटुकएवच ॥ ११३ ॥ गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैश्चतुर्दशभिर्गुणैः । सर्वेषांमद्यमम्लानामुपर्य्युपरितिष्ठति ॥ ११४ ॥

अम्लस्वभाव मद्यके अनुयायी मधुर, कषाय, तिक्त और कटु यह चार अनुरस होतेहैं । और दश गुण मद्यके पहिले कह आयेहैं । उनमें यह चार मिलानेसे १४ गुणयुक्त मद्य होताहै । इसलिये सब अम्लरसोंमें यह परमोत्तम मानाहै ॥११३॥११४॥

शीतोष्णलक्षणः ॥ ९९ ॥ शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवेदना । जायतेऽतिवलाजृम्भास्फुरणंवेपनंश्रमः ॥ १०० ॥ उरोविचन्धःकासश्चहिक्काश्वासःप्रजागरः । शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुखरोगत्रिकग्रहः ॥ १०१ ॥ छर्द्यतीसारमुत्क्लेशोवातपित्तकफात्मकः । भ्रमःप्रलापोरूपाणामसताञ्चैवदर्शनम् ॥ १०२ ॥ तृणभस्मलतापर्णपांशुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रान्तचेताःसमन्यते ॥ ॥ १०३ ॥ व्याकुलानामशस्तानांस्वप्नानांदर्शनानिच । मदात्ययस्वरूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ॥ १०४ ॥

अत्यंत शारीरिक कष्ट, वेहोशी, हृदयमें व्यथा, अरुचि, प्यासकी अधिकता, शीत अथवा उष्ण लक्षणोंवाला ज्वर, शिरमें पीडा, पार्श्वशूल, हड्डी और जोडोंमें बिजली चमकनेकीसी पीडा, वेगपूर्वक जंभाई अंगोंका फडकना, शरीरका कांपना, थकावट, छातीका रुकाहुआसा होना, खांसी, हिचकी, श्वास, निद्रानाश, शरीरका कांपना, कान नेत्र और मुखके रोग, त्रिकस्थानमें पीडा, छर्दि, अतिसार, वात, पित्त और कफका उत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, अविद्यमान भयंकर रूपोंका दिखाई देना, सब आकाश, तृण, भस्म, लता, पत्र, धूल आदिसे भरा दिखाई देना । अपने आपको विहंगमों (पक्षियों) से पीडित होतेहुए प्रतीत होना, चित्तमें भ्रम होकर ऐसे २ असत्य लक्षणोंका दिखाई देना, भयकारक दुःस्वप्नोंका देखना यह सब (त्रिदोपोल्वण) मदात्यय रोगके रूप जानने ॥ ९९ ॥१००॥१०१ ॥१०२॥१०३॥१०४ ॥

मदात्ययका चिकित्साक्रम ।

सर्वंमदात्ययंविद्यात्त्रिदोषमधिकन्तुयत् । दोषंमदात्ययेपश्येत्तस्यादौप्रतिकारयेत् ॥ १०५ ॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्य्यामदात्यये । पित्तमारुतपर्य्यंतःप्रायेणहिमदात्ययः ॥ १०६ ॥

संपूर्ण मदात्यय त्रिदोपज ही होतेहैं परन्तु उनमें जिस दोपकी अधिकता देखे पहिले उसके शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । मदात्यय रोगमें कफस्थान (आमाशय) पित्तस्थान (ग्रहणी) वातस्थान (मलाशय) यह आनुपूर्विक क्रमसे एकके अनन्तर दूसरा. दूसरेके अनन्तर तीसरा मदात्ययरोगसे आक्रमित होता है । इसलिये यदि किसी दोपकी विशेपरूपसे प्रधानता न हो तो त्रिदोपज मदात्ययमें पहिले कफ, फिर पित्त, फिर वायुकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोऽव्याधिरुपजायते । समपीतेनतेनैवसमद्ये-नोपशाम्यति ॥ १०७ ॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् । प्रकांक्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत् ॥ १०८ ॥ सौवर्चलानुसंवि-द्धंशीतंसविडसैन्धवम्मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ॥१०९॥

मद्य मिथ्यायोगसे अथवा अधिक या हीन मात्रासे पीयेजानेपर जो विकार पैदा होतेहैं उन रोगोंकी शान्ति मद्यकी सममात्रा पीनेसे होसकती है मदात्यय रोगमें मद्यजनित आमदोष जीर्ण होनेपर जब हलकापन प्रतीत होने लगे तो उसको हित-मात्रासे हितकारी मद्य, काला निमक, विडलवण, सेंधानमक, विजौरेका रस, अदर-खका रस, जल तथा शीतवीर्य द्रव्य मिलाकर हितकारी मात्रासे प्रमाणको जानने-वाला वैद्य मद्यपान करावे । (तदनन्तर अन्य उचित चिकित्सा भी करे)१०७–१०९

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना । मद्येनान्नरसक्लेदो विदग्धःक्षारतांगतः ॥ ११० ॥ अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमं मदम् । जनयत्याशुतच्छान्त्यै मद्यमेवप्रदापयेत् ॥ १११ ॥ क्षारो-हियातिमाधुर्यंशीघ्रमम्लोपसंस्कृतः । श्रेष्ठमम्लेपुमद्यञ्चयैर्गुणैस्ता-न्परंशृणु ॥ ११२ ॥

तीक्ष्ण, उष्ण, अम्ल और विदाही मद्योंकी अधिक मात्रा पीनेसे अन्नका खट्टा रस बनकर उसका उत्क्लेद हो विदग्ध होजाताहै । उसमें क्षारता प्राप्त होजातीहै । उससे अन्तर्दाह, ज्वर, प्यास, मोह (बेहोशी) विभ्रम, मद यह लक्षण शीघ्र प्रगट होजातेहैं । इसलिये इनके शान्त करनेको उचित रीतिसे मद्यका पान कराना ही श्रेष्ठ है । क्योंकि अम्लरस (खटाई) के मिलनेसे क्षार रस फिर मधुरताको प्राप्त होजाताहै । जिन गुणोंसे सब अम्लरसोंमें मद्यको श्रेष्ठता है उन गुणोंको श्रवण करो ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मद्यके अनुरस और मद्यको अम्लरसोंमें श्रेष्ठत्व ।

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसाःस्मृताः । मधुरश्चकपायश्च तिक्तःकटुकएवच ॥ ११३ ॥ गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैश्चतुर्दशभि-र्गुणैः । सर्वेपांमद्यमम्लानामुपर्य्युपरितिष्ठति ॥ ११४ ॥

अम्लस्वभाव मद्यके अनुयायी मधुर, कपाय, तिक्त और कटु यह चार अनुरस होतेहैं । और दश गुण मद्यके पहिले कह आयेहैं । उनमें यह चार मिलानेसे १४ गुणयुक्त मद्य होताहै । इसलिये सब अम्लरसोंमें यह परमोत्तम मानाहै ॥११३॥११४॥

मद्योत्क्लिष्टेनदोषेणरुद्धःस्रोतःसुमारुतः ।करोतिवेदनांतीव्रांशिरस्यस्थिषुसन्धिषु ॥ ११५ ॥ दोषविष्यंदनार्थंहितस्मैमद्यंविशेषतः । व्यवायितीक्ष्णोष्णतयादेयमम्लेपुसत्स्वपि ॥ ११६ ॥ स्रोतोविबन्धसुन्मथ्यमारुतस्यानुलोमनम् । रोचनंदीपनञ्चाग्नेरभ्यासात्सात्म्यमेवच ॥ ११७ ॥ रसस्रोतःस्वरुद्धेषुमारुतेचानुलोमिते । निवर्त्तन्तेविकाराश्चशाम्यन्त्यस्यमदोदयाः ॥ ११८ ॥

मद्यसे उत्क्लेशित हुए दोषों द्वारा स्रोतसमूहोंके रुकजानेपर वायु रुकाहुआ शिर, हड्डियों और संधियोंमें तीव्र पीडाको उत्पन्न करदेताहै । दोषोंको अभिष्यंदन करनेके लिये विशेषकर मद्य पिलाना ही हितकारक होताहै । क्योंकि मद्य व्यवायी, तीक्ष्ण और उष्ण होनेसे अम्ल होतेहुए भी श्रोतोंके विबंध (रुकावट) उन्मथितकर वायुको अनुलोमन करदेताहै तथा रोचन और अग्निको दीपन करनेवाला एवं मद्यपान करनेवालोंको सात्म्य होताहै । जब रसवाही स्रोतोंके मार्ग खुलजाते हैं और वायु अनुलोमन हो जाताहै तब सब विकार निवृत्त होजाते हैं और मदात्यय (उन्मत्तता) रोग भी शान्त होजाताहै । (इसलिये मद्यविकारकी शान्तिके लिये प्रथम मद्यद्वारा ही शान्तिका उपाय करना श्रेष्ठ है) ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

वातमदात्यय नाशक यत्न ।

बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् । यमानीहपुषाजाजीशृंगवेरावचूर्णितम् ॥ ११९ ॥ सस्नेहैःसक्तुभिर्युक्तमर्द्धदंशैश्चिरोत्थितम् । दद्यात्सलवणंमद्यंपैष्टिकंवातशांतये ॥ १२० ॥

बिजौरेका रस, इमली, वेत, अनारका रस, अजवायन, हाउबेर, काला जीरा और अदरख इन सबका रस और चूर्ण मिलाकर प्रयोग करे । अथवा स्नेहयुक्त सत्तुओंमें मिलाकर खिलावे और नमकयुक्त पुराना पैष्टिक मद्य पिलावे तो मदात्ययमें वात शान्त होताहै ॥ ११९ ॥ १२० ॥

दृष्ट्वावातोल्वणंलिङ्गंरसैश्चैनमुपाचरेत् । लावतित्तिरदक्षाणांस्निग्धाम्लैःशिखिनामपि ॥ १२१ ॥ पक्षिणांमृगमत्स्यानामानूपानाञ्च संस्कृतैः । भूशयप्रसहानाञ्चरसैश्शाल्योदनेनच ॥ १२२ ॥ स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्चवेशवारैसुखप्रियैः । चित्रैर्गोधूमिकैश्चान्नैर्वारुणीमण्डसंयुतैः ॥ १२३ ॥ पिशितार्द्रकगर्भाभिःस्निग्धाभिर्धूपवर्त्ति-

भिः। माषपूपलिकाभिश्चवातिकंसमुपाचरेत् ॥ १२४ ॥ नातिस्निग्धंनचाम्लेनयुक्तसमरिचार्द्रकम्। मध्येप्रागुदितंमांसंदाडिमस्वरसेनवा ॥ १२५ ॥ पृथक्त्रिजातकोपेतसधान्यमरिचार्द्रकम्। रसप्रलेपिसंपूपैःसुखोष्णैःसम्प्रदापयेत् ॥ १२६ ॥

जिस मदात्ययमें वायुके बढेहुए लक्षण प्रतीत होतेहों उस रोगीकी मांसरसके प्रयोग द्वारा चिकित्सा करे और लवा, तीतर, मुर्गा, मोर इनका मांसरस स्निग्ध करके अथवा अन्य पक्षी वा अनूपसंचारी, अथवा भूशय, प्रसह मृगादिक जीवोंका मांसरस वा मछलियोंका मांसरस शालीचावलोंके भातके साथ देवे तथा-स्निग्ध, उष्ण, लवण, अम्ल, और अनेक सुस्वादु मसालेयुक्त भोजन, वारुणीमण्ड, अनेक विधिसे वनेहुए गेहूंके भोजन, मांस और अदरखकी पिट्टी भरी हुई स्निग्ध धूमवर्ती उडदोंकी पूडियें यह सब वातप्रधान मदात्ययमें हितकारक हैं। पूर्वोक्त सब द्रव्योंको किंचित् स्निग्ध और किंचित् अम्लरसयुक्त करके काली मिर्च और अदरख मिलाकर अथवा अनार (दाडिम) मिलाकर सेवन करावे अथवा तेजपत्र, इलायची, दालचीनी, धनियां, मिर्च और अदरख यह अलग मिलाकर प्रलेपी, पूडी आदि बनाकर सुखोष्ण मांसरसके साथ देवे ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

भक्तेनवारुणीमण्डंदद्यात्पातुंपिपासवे। दाडिमस्यरसंवाथजलंवा पाञ्चमूलिकम् ॥ १२७ ॥ धान्यनागरतोयश्चदधिमंडमथापिवा। अम्लकाञ्जिकमण्डंवाशुक्तोदकमथापिवा ॥ १२८ ॥ कर्मणानेन सिद्धेनविकारउपशाम्यति।मात्राकालप्रयुक्तेनबलंवर्णश्चवर्धते १२९॥

मदात्ययमें प्यासकी अधिकताहो तो शालिचावलोंके भातके साथ वारुणी मण्ड पिलावे अथवा अनारका रस। या पंचमूलसे सिद्ध किया हुआ जल पिलावे। अथवा धनियां और सोंठसे सिद्ध किया जल या दधिमंड। अथवा खट्टी कांजीका पानी, या शुक्तोदक (सिरका मिला जल) पिलावे। इस विधिसे मात्रा काल विचार कर उपरोक्त कर्म (औषधादि) के प्रयोग करनेसे मद्यके विकार शांत होकर बल वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

रागषाडवसंयोगैर्विविधैर्भक्तरोचनैः। पिशितैर्बहुपिष्टान्नैर्यवगोधूमशालिभिः ॥ १३० ॥ अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरुष्णैःप्रावरणैर्घनैः। घनैरगुरुपङ्कैश्चधूपैश्चागरुजैर्घनैः ॥ १३१ ॥ नारीणांयौवनोष्णानां निर्दयैरवगूहनैः। श्रोण्यूरुकुचभारैश्चसंरोधोष्णसुखावहैः॥ १३२॥

शयनाच्छादनैरुष्णैरूक्षैश्चान्तर्गृहैःसुखैः । मारुतप्रबलःशीघ्रंप्रशाम्यतिमदात्ययः ॥ १३३ ॥

वातप्रधान मदात्ययमें विविध प्रकारके रुचिकारक भोजन रागखाण्डवके योगसे अथवा मांस, अनेक प्रकारके पिष्टान्न, यव, गेंहू शाली आदिसे बने विविध भोजन तथा अभ्यंग, उत्सादन, स्नान, ओढनेके लिये गर्म और भारी वस्त्र, अगरका गाढा लेप, अगरका घनीभूत धूपन, जवानीकी गर्मीसे युक्त युवतीस्त्रियों द्वारा गाढ आलिंगन, तथा उन युवती स्त्रियोंके नितम्ब, ऊरुस्थल (जांघों) और कुचोंके भारसे रुकीहुई गर्मी, सुखदायक गरम शय्या और गरम वस्त्र, सुखदाई क्लेद आदि रहित पवित्र सूखा अन्तर्गृह इनका सेवन करना वातप्रबल मदात्ययको शान्त करताहै ॥१३०–१३३॥

पित्तप्रधान मदात्ययकी चिकित्सा।

भव्यंखर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम् । सदाडिमरसंशीतंसक्तुभिः स्ववचूर्णितम् ॥ १३४ ॥ सशर्करंशार्करंवामाध्वीकमथवापरम् । दद्याद्बहूदकंकालेपातुंपित्तमदात्यये ॥ १३५ ॥

भव्यफल, खजूर, द्राक्षा, फालसेका रस, और अनारका रस मिलाकर सत्तू खाना अथवा मिसरीयुक्त मद्य वा शर्करामद्य अथवा बहुतसा जल मिला अन्य किसी प्रकारके मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर पीना पित्तप्रधान मदात्ययको शान्त करता है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

शशान्कपिञ्जलानेणाँल्लावानसितपुच्छकान् । मधुराम्लान्प्रयुञ्जीतभोजनेशालिषष्टिकान् ॥ १३६ ॥ पटोलयूषमिश्रंवाच्छागलं कल्पयेद्रसम् । सतीनमुद्गमिश्रंवादाडिमामलकान्वितम् ॥ १३७ ॥

खरगोश, कपिंजल, एण, लवा, कालपुच्छ हरिण, इनका मांसरस मधुराम्ल करके उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजनके लिये देवे अथवा पटोलका यूप वा बकरेका मांसरस अथवा मटर या मूंगका यूप अनारका रस और आँवलोंकी खटाईसे अम्लकर उसके साथ शालिचावलोंका भात भोजन करावे ॥१३६॥१३७॥

द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकरसेनवा । कल्पयेत्तर्पणान्यूषान्रसांश्चविविधात्मकान् ॥ १३८ ॥

द्राक्षा (अंगूर) आँवले, खजूर, और फालसेके रससे अनेक प्रकारके तर्पण (शरवत आदि) यूप अथवा मांसरस सेवन करावे । यह पित्तप्रधान मदात्ययमें हितकारी होतेहैं ॥ १३८ ॥

कफपित्तप्रबलमदात्ययचिकित्सा।

आमाशयस्थमुत्क्लिष्टकफपित्तमदात्यये।विज्ञायवहुदोषस्यदह्यमानस्यतुष्यते॥ १३९ ॥ मद्यंद्राक्षारसंतोयंदत्त्वातर्पणमेववा। निःशेषंवामयेच्छीघ्रमेवंरोगाद्विमुच्यते ॥ १४० ॥

यदि बहुदोषयुक्त कफपित्त मदात्ययवाले रोगीके आमाशयमें स्थित आमदोष उत्क्लेशित होकर वमन होनेके लिये प्रतीत होनेलगे और रोगीको उस आमाशयस्थ दोषजनित दाह और प्यासकी अधिकता हो तो उस रोगीको दाखका रस और जल मिलाकर मद्य अथवा अन्य तर्पण आदि पिलाकर शीघ्र वमनद्वारा संपूर्ण दोष निकाल डाले। ऐसा करनेसे मनुष्य शीघ्र रोगसे छूट जाताहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

कालेपुनस्तर्पणाद्यंक्रमंकुर्यात्प्रकांक्षिते।
तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ॥ १४१ ॥

इसके अनन्तर रोगीको क्षुधाकी इच्छा होनेपर समयानुसार तर्पण आदि पिला अनारके रसयुक्त उचित पेयाका पान करावे जिससे उसकी अग्नि चैतन्य हो दोषकी शान्तिहोवे और अन्नका यथोचित परिपाक होनेलगे ॥ १४१ ॥

मदात्ययोंकी विशेष चिकित्सा।

कासेसरक्तनिष्ठीवेपार्श्वस्तनरुजोस्तथा। तृष्यतेसविदाहेचसोत्क्लेशे हृदयोरासि ॥ १४२ ॥ गुडूचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिषक्। रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४३ ॥

यदि खांसीके साथ रुधिर निकलताहो और पार्श्वभाग तथा स्तनस्थानमें पीडा होतीहो और प्यास, विदाह, हृदय तथा छातीमें उत्क्लेश होताहो तो गिलोय और भद्रमोथेका क्वाथ अथवा पटोलका क्वाथ ठंढा करके सोंठका चूर्ण मिलाकर देवे। औरक्षुधा लगनेपर तीतरका मांसरस अथवा इस मांसरसके साथ भोजन करावे॥१४२॥१४३॥

तृष्यतेचातिवलवद्वातपित्तसमुद्धते।
दद्याद्द्राक्षारसंपातुंशीतंदोषानुलोमनम् ॥ १४४ ॥

मदात्ययमें वातपित्तजनित अत्यंत प्यास हो तो द्राक्षारस (दाखका क्वाथ) ठंढा कर पिलावे तो दोषोंका अनुलोमन होताहै ॥ १४४ ॥

जीर्णेसमधुराम्लेनच्छागमांसरसेनतम्।भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्षेच्चपाययेत् ॥ १४५ ॥ अनुतर्षस्यमात्रासाययानोहन्यतेमनः। तृ-

ष्यतेमद्यमल्पाल्पंप्रदेयंस्याद्बहूदकम् ॥१४६॥ तृष्णायेनचसंशाम्ये-न्मदंयेनचनाप्नुयात् । परूपकाणांपीलूनांरसंशीतमथापिवा॥१४७॥

भूख लगनेपर मधुराम्ल मांसरसके साथ भोजन और अनारका रस तथा जल मिला मद्य पिलावे । और वह मद्य (जो भोजनके अनन्तर अनुपान कियाजाय) ऐसी मात्रासे देना चाहिये जिससे वह मनमें किसी प्रकार मद्यका विकार उत्पन्न न करे । और प्यासके समय भी थोडा २ मद्य बहुतसा जल मिलाकर पीनेको देवे । जिससे प्यासकी शान्ति हो और मदको प्राप्त न हो । अथवा फालसेका शरबत अथवा पीलु फलाके रसका बना शर्वत पिलावे ॥ १४५ ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

पर्णिनीनांचतसृणांपिवेद्वाशिशिरंजलम् । मुस्तदाडिमलाजानांतृ-ष्णाघ्नंवापिवेद्रसम् ॥१४८॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकार-सः । पञ्चाम्लकोमुखालेपःसद्यस्तृष्णांनियच्छति ॥ १४९ ॥

अथवा चारों पर्णियोंसे सिद्ध किया शीतल जल अथवा मोथा, दाडिम और धानकी खीलोंसे सिद्ध किया शीतल जल प्यासकी शान्तिके लिये देवे । अथवा बेर, अनार, इमली और चूकेका रस इस पंचाम्लको मुखमें लेप करना (या मुखमें भरकर कुल्ले करना) शीघ्र प्यासको शान्त करताहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

पित्तमदात्ययमें सेवनीय वस्तु ।

शीतलान्यन्नपानानिशीतशय्यासनानिच । शीतवातजलस्पर्शाः शीतान्युपवनानिच ॥ १५० ॥ क्षौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्ति-कस्यच । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशुशीतलाः ॥ १५१ ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणांशीतवारिभिः पूर्णानांहिमपूर्णानांहता-नांपवनाहताः ॥ १५२ ॥ संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणांनारीणाञ्चसमा-रुताः । चन्दनानाञ्चमुख्यानांशस्ताःपित्तमदात्यये ॥ १५३ ॥

शीतल अन्नपान, शीतल शय्या, आसन, शीतल पवन, शीतल जलका स्पर्श, शीतल बगीचे, शीतल रेशमी वस्त्र, शीतल जलमें भिगोयेहुए कमलोंके फूल, शीतल जल भरेहुए सुवर्ण, चांदी अथवा कांसेके पात्रोंका स्पर्श, शीतल पवनसे ताडित शीतल जलयुक्त वायुकी फुआरेका स्पर्श, पवित्र वायुयुक्त स्थानमें चंदनसे चर्चित अंगोंवाली स्त्रियोंका स्पर्श और चंदनका लेपन यह सब पित्तमदात्ययमें हितकारक होतेहैं ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥ १५३ ॥

मदात्ययका दाहनाशकयत्न ।

कुमुदोत्पलपत्राणांसिक्तानांचन्दनाम्बुना ।
हिताःस्पर्शामनोज्ञानांदाहेमद्यसमुत्थिते ॥ १५४ ॥

कुमुद और कमलोंके फूलोंको चंदन और शीतल जलमें भिगो स्पर्श करना अथवा इनके मनोहर पत्रोंको चंदन और शीतल जलमें भिगो स्पर्श करना मदात्ययकी दाहको शान्त करताहै ॥ १५४ ॥

कथाश्वविविधाःशस्ताःशब्दाश्चशिखिनांशिवाः।तोयदानाञ्चशब्दा हिशमयान्तिमदात्ययम् ॥ १५५ ॥ जलयन्त्राभिवर्षीणिवातयन्त्र-वहाणिच । कल्पनीयानिभिषजादाहेधारागृहाणिच ॥ १५६ ॥

अनेक प्रकारकी मनको हरण करनेवाली कथायें, मयूरोंके श्रेष्ठ शब्द, बादलोंका गरजना फव्वारोंके जलकी फुंवार तथा पवनकारक यंत्रों युक्त धारागृहमें निवास यह सब मदात्ययरोगके दाहको शान्त करनेवाले हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

फलिनीसेव्यलोध्राम्बुहेमपत्रंकुटन्नटम् ॥
कालीयकरसोपेतंदाहेशस्तंप्रलेपनम् ॥ १५७ ॥

प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रवाला, हेमपत्र, केवटीमोथा, अगर इन सबको शीतल जलमें पीसकर लेप करनेसे मदात्ययका दाह शान्त होताहै ॥ १५७ ॥

वदरीपल्लवोत्थाश्चतथैवारिष्टकोद्भवाः ।
फेनिलायाश्चयःफेनस्तैर्दाहेलेपनंशुभम् ॥ १५८ ॥

बेरीके पत्रोंकी झाग अथवा नीमके पत्तोंकी झाग अथवा रीठोंकी झाग (फेन) का देहपर लेप करना भी दाहको शान्त करताहै ॥ १५८ ॥

सुरासमण्डादध्यम्लंमातुलुङ्गरसोमधु ।
सेकप्रदेहेशस्यन्तेदाहघ्नाःसाम्लकाञ्जिकाः ॥ १५९ ॥

सुरामण्ड, दहीका खट्टा पानी, बिजौरेका रस, शहद और खट्टी कांजी इनका देहपर सेचन करना अथवा लेपन करना दाहको शान्त करताहै ॥ १५९ ॥

परिषेकावगाहेपुव्यञ्जनानाञ्चसेवने ।
शस्यतेशिशिरंतोयंदाहतृष्णाप्रशान्तये ॥ १६० ॥

शीतल जलके तरडे देना, शीतल जलमें प्रवेश कर स्नान करना, शीतल जलसे भिगेहुए पंखेकी पवन और शीतल जलका पीना यह सब मदात्ययके दाह और तृषाको शान्त करतेहैं ॥ १६० ॥

मात्राकालप्रयुक्तेनकर्मणानेनशाम्यति ।
धीमतोवैद्यवश्यस्यशीघ्रंपित्तमदात्ययम् ॥ १६१ ॥

मात्रा और कालके अनुसार इन उपरोक्त सब कर्मोंके करनेसे वैद्यके वशमें रहनेवाले रोगीका पित्त मदात्यय शान्त होताहै ॥ १६१ ।

कफप्रधानमदात्ययकी चिकित्सा ।

उल्लेखनोपवासाभ्यांजयेत्कफमदात्ययम् । तृष्यतेसलिलंचास्मैद्-व्याघ्रीवेरसाधितम् ॥ १६२ ॥ वलायाःपृश्निपर्ण्यावाकण्टकार्य्या-थवाशृतम् । सनागराभिःसर्वाभिर्जलंवाशृतशीतलम् ॥ १६३ ॥ दुःस्पर्शितेनमुस्तेनमुस्तपर्पटकेनवा । जलंमुस्तैःशृतंवापिदद्याद्दो-षविपाचनम् ॥ १६४ ॥

कफप्रधान मदात्ययको उल्लेखन (वमन) और उपवास (लंघन) द्वारा जीतना चाहिये । कफप्रधान मदात्ययमें प्यासकी शान्तिके लिये नेत्रवालासे सिद्ध किया जल पिलावे अथवा बला, पृश्निपर्णी और कटेलीसे सिद्धकिया हुआ जल या इन्हींमें सोंठ मिला इन औषधियोंसे सिद्ध किया जल शीतलकर पिलावे । अथवा जवासा और नागरमोथा या नागरमोथा और पित्तपापडासे सिद्ध किया जल अथवा केवल मोथा डालकर सिद्ध किया जल प्यासकी शान्तिके लिये और दोष पाचन कर-नेके लिये देना चाहिये ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

एतदेवचपानीयंसर्वत्रापिमदात्यये ।
निरत्ययंपीयमानंपिपासाज्वरनाशनम् ॥ १६५ ॥

यह उपरोक्त जल सब प्रकारके मदात्ययोंमें ही हितकारक होतेहैं । इस पानीके पीनेसे किसी प्रकारका विकार न होकर प्यास और ज्वरकी शांति होतीहै ॥ १६५ ॥

निरामंकांक्षितंकालेसक्षौद्रंपाययेद्धुतम् । शार्करंमधुवाजीर्णमारिष्टं-शीधुमेववा ॥ १६६ ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तंयमानीनागरान्वितम् । यवगोधूमिकंचान्नंरूक्षयूषेणभोजयेत् ॥ १६७ ॥ कुलत्थानांसुशु-ष्काणांमूलकानांरसेनवा । तनुनाल्पेनलघुनाकट्वम्लेनाल्प-सर्पिषा ॥ १६८ ॥

कफके मदात्ययमें आमदोष शान्त होनेपर जब भूखकी इच्छा हो उस समय रोगीको शहद मिलाकर शर्करामद्य अथवा पुराना शहद वा अरिष्ट अथवा शीधु पान

करावे। कफ मदात्ययमें अजवायन और सोंठ डालकर रूक्ष तर्पण कराना चाहिये। तथा घृतरहित यूपके साथ यव और गेहूँका अन्न भोजन करावे। अथवा कुलथीका यूप वा अत्यंत सूखी मूलियोंका यूप, पतला और थोडा हलका कटु, अम्ल औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए अल्प घृतको मिलाकर देवे ॥ १६६ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

व्योषयूपमथाम्लंवायूपंवासाम्लवेतसम्। छागमांसरसंरूक्षमम्लं वाजाङ्गलंरसम् ॥ १६९ ॥ स्थाल्यांवाथकपालेवाभृष्टंनिर्द्रववर्त्तितम्। कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्चृणुयान्मधु ॥ १७० ॥ व्यक्तमारीचकंमांसंमातुलुङ्गरसान्वितम्। भृष्टंदाडिमसाराम्लसुष्णयूपोपवेष्टितम् ॥ १७१ ॥ यथाग्निभक्षयेत्कालेप्रभूतार्द्रकपेशितम्। पिवेच्चनिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥ १७२ ॥

अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ मिलाकर अम्लयूप वा अम्लवेतयुक्त यूप अथवा छागका रूक्ष मांसरस या जांगलजीवोंका रूक्ष मांसरस देवे। अथवा पतीले या मट्टीके पात्रमें त्रिकटु, छाछ और नमक डालकर धीरे २ भुनाहुआ रसरहित मांसका प्रयोग करे। इसके अनन्तर माध्वीक (शहतसे बना मद्य) पान करे। अथवा भूख लगनेपर मिर्चके चरचराहटयुक्त बिजौरेके रससे खट्टा किया हुआ अनारदाना मिला भूनकर उष्ण अम्लयूपके साथ अग्निबल विचारकर समयानुसार भक्षण करे। और इसमें बहुतसा अदरख मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। इसके ऊपर शहदसे बना मद्यका पान करे तो कफप्रधान मदात्यय शांत होताहै ॥१६९॥१७०॥१७१॥१७२॥

अष्टांगलवण।

सौवर्चलमजाजीचवृक्षाम्लंसाम्लवेतसम्। त्वगेलामारिचार्द्धांशशर्कराभागयोजितम् ॥ १७३ ॥ एतल्लवणमष्टांङ्गमग्निसन्दीपनंपरम्। मदात्ययेकफप्रायेदद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ १७४ ॥ एतदेवपुनर्युक्त्यामधुराम्लैर्द्रवीकृतम्। गोधूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चातिरोचनम् ॥ १७५ ॥

संचरनमक, कालाजीरा, इमली, अम्लवेत, यह सब सम भाग लेवे। दालचीनी, इलायची और मिर्च यह आधा भाग लेवे। खांड एक भाग लेवे इन सबका चूर्ण बना लेवे। यह अष्टांग लवण नामक चूर्ण अग्निको अत्यंत दीपन करनेवाला, स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला कफप्रधान मदात्ययमें प्रयोग करना चाहिये। और यही अष्टांग लवणमधुर और अम्ल द्रव्योंके योगसे पतलाकर गेंहू और यवोंसे बनेहुए अनेक

प्रकारके भोजनोंके साथ तथा मांसके साथ भोजनमें देनेसे अत्यंत रुचिको देनेवाल है ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

पेषयेत्कटुकैर्युक्तांश्वेतांबीजविवर्जिताम् ।
मृद्वीकांमातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ॥ १७६ ॥

अथवा मिर्च आदि चरपरे द्रव्योंको मिलाकर सफेद दूब, बीज रहित दाख, अथवा बिजौरा वा अनारके रसके साथ पीसकर पीनेसे कफप्रधान मदात्यय नष्ट होताहै ॥ १७६ ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः ।
सरागःक्षौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥ १७७ ॥

संचरनमक, इलायची, मिर्च, जीरा, दालचीनी, अजवायन इनका चूर्ण रागखाण्डव और शहतमें मिला सेवन करे तो यह अत्यंत रुचिको करनेवाला तथा अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ १७७ ॥

मृद्वीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।
युक्तमत्स्याण्डिकोपेतंरागंदीपनपाचनम् ॥ १७८ ॥

विधिपूर्वक द्राक्षा और सौंफका मिसरी मिलाकर राग (रायके समान चटनी) बनाया हुआ सेवन करनेसे अग्निदीपन और पाचन होताहै ॥ १७८ ॥

आम्रामलकपेशीनांरागान्कुर्य्यात्पृथक्पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीमरिचान्वितान् ॥ १७९ ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ताम्ललवणीकृतान् । तैरन्नंरोचतेदिग्धंसम्यग्भुक्तंविजीर्य्यति॥ १८० ॥

आम और आँवलोंका गूदा अलग २ लेकर धनियां, संचरनमक, काला जीरा, सौंफ और मिर्च मिलाकर गुड और शहतके योगसे रागखाण्डव बनावे । इन व्यक्त (चरपरी) खटाई नमक युक्त रागोंसे भोजन करे तो यह रुचिको उत्पन्न करतेहैं तथा भलीप्रकार भोजनको पचा देतेहैं ॥ १७९ ॥ १८० ॥

रूक्षोष्णेनान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच । व्यायामलंघनाभ्यांच युक्ताभ्यांजागरेणतु ॥ १८१ ॥ कालयुक्तेनरूक्षेणस्नानेनोद्वर्त्तनेन च । स्नानवर्णकवासानांप्रहर्षाणाश्चसेवया ॥ १८२ ॥ सेवनंवमनानाञ्चगुरूणामगुरोरपि । सकामोष्णसुखाङ्गीनामङ्गनानाश्चसेवया ॥ १८३ ॥ सुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसंवाहनेनच । मदात्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ॥ १८४ ॥

रूक्ष और उष्ण अन्नपान, गरम जलसे स्नान, व्यायाम, लंघन, निद्रा न लेना स्नानके समय कालानुसार, रूक्ष औषधियोंके क्वाथसे स्नान, रूक्ष उबटना, रूक्ष औषधियोंका लेपन, रूक्ष वस्त्रोंका धारण करना, हर्षोत्पादक कर्म, वमन कराना, गाढे अगरके लेपनसे चर्चित अंगोंवाली पुष्ट अंगोंयुक्त, सकामा युवावस्थाकी गर्मीयुक्त सुखस्पर्श अंगोंवाली स्त्रियोंका सेवन, सुशिक्षित हाथोंवाली स्त्रियोंके हाथोंसे संवाहन (शरीर दबवाना) इन कर्मोंके करनेसे कफप्रधान मदात्यय शीघ्र शान्त होजाताहै ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

सन्निपातज मदात्ययमें चिकित्सानिर्देश।

यदिदंकर्मनिर्दिष्टंपृथग्दोषबलंप्रति । सन्निपातेदशविधेतद्विकल्पं भिषग्विदा ॥ १८५ ॥ यस्तुदोषविकल्पज्ञोयश्चौषधिविकल्पवित् । ससाध्यान्साधयेद्व्याधीन्साध्यासाध्यविभागवित् ॥ १८६ ॥

यह जो वातादि दोषोंकी प्रधानतासे मदात्यय रोगमें अलग २ चिकित्साका निर्देश किया है दोषोंके पृथक् २ विकल्पको जाननेवाला वैद्य दशविध कल्पनासे सन्निपात मदात्ययमें चिकित्सा प्रयोग करे। जो वैद्य दोष और विकल्पका जाननेवाला है तथा औषधीकी विधि, कल्पना और व्याधिके विकल्प तथा उसकी साध्य, असाध्यके विभागकी जाननेवाला है वह ही साध्यमदात्ययोंको साधन (अच्छा) कर सकताहै ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

मदात्ययनाशक योग।

वनानिरमणीयानिसपद्माःसलिलाशयाः । विशदान्यन्नपानानि सहायाश्चप्रहर्षणाः ॥ १८७ ॥ माल्यानिगन्धयोगाश्चवासांसिविमलानिच । गान्धर्वशब्दाःकान्ताश्चगोष्ठ्यश्चहृदयप्रियाः ॥ १८८ ॥ सङ्कथाहास्यगीतानांविशदाश्चैवयोजनाः । प्रियाश्चानुगतानार्यो नाशयन्तिमदात्ययम् ॥ १८९ ॥

रमणीय वन, कमलोंसे शोभायमान सरोवर, स्वच्छ अन्नपान, हर्षके उत्पन्न करनेवाले सहचारी, सुगंधित पुष्पमाला, निर्मल वस्त्र, उत्तम गानेवालोंका गाना, सुशीला स्त्री, हृदयको प्यारी लगनेवाली गोष्ठी, हास्य, कथा और गीतोंका श्रवण, स्पष्ट वार्ताओंका कथन, प्यारी और अपने अनुकूल स्त्रियें यह सब मदात्ययरोगको नष्ट करनेवाले हैं ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

नाक्षोभ्यंहिमनोमद्यंशरीरमवहत्यच ।
कुर्य्यान्मदात्ययंतस्मादेष्टव्याहर्षणीक्रिया ॥ १९० ॥

क्योंकि मनमें क्षोभको उत्पन्न किये विना और शरीरमें व्याप्तहुए विना मद्य मदात्यय रोगको नहीं करता अर्थात् मनको क्षुभित कर और शरीरमें व्याप्त होकर ही मदात्ययको उत्पन्न करताहै इसलिये इस रोगमें चित्तको हर्षित करनेवाली क्रियाका प्रयोग करना चाहिये ॥ १९० ॥

क्षीरप्रयोग ।

आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिःशमंयातिमदात्ययः ।
नचेन्मद्यविधिं हित्वाक्षीरमस्यप्रयोजयेत् ॥ १९१ ॥

इन संपूर्ण सिद्ध क्रियाओंके करनेसे यदि मदात्यय रोगकी शान्ति न हो तो मद्यविधिको छोडकर दूधका प्रयोग करे अर्थात् इस रोगकी नीचे लिखे दूधों द्वारा चिकित्सा करे ॥ १९१ ॥

लंघनैःपाचनैश्चैवदोपसंशोधनैरपि । विमद्यस्यकफेक्षीणेजातेदौर्बल्यलाघवे ॥ १९२ ॥ तस्यमद्यविदग्धस्यवातपित्ताधिकस्यवा । ग्रीष्मोपतप्तस्यतरोर्यथावर्षंतथापयः ॥ १९३ ॥ पयसाभिहतेरोगे बलेजातेनिवर्त्तयेत् । क्षीरप्रयोगंमद्यश्चक्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ ॥ १९४ ॥ विच्छिन्नमद्यःसहसायोऽतिमद्यंनिपेवते । ध्वंसकोविक्षयश्चैवरोगस्तस्योपजायते ॥ १९५ ॥

पहिले लंघन, पाचन और संशोधन क्रियाओं द्वारा शरीरको शोधन कर तथा जब शरीरसे मद्यका अपगम होकर कफ क्षीण होजानेपर शरीरमें हलकापन और दुर्बलता उत्पन्न होजाय उस समय उस मद्य विदग्ध अथवा वातपित्तप्रबल मनुष्यको दूधका प्रयोग इस प्रकार गुणकारक होताहै जैसे गर्मीसे मुर्झाये हुए वृक्षको वर्षाका जल हरा करदेताहै । दूध द्वारा रोगकी निवृत्ति होकर जब रोगीके शरीरमें चैतन्यता प्राप्त हो बल आजाय तो क्रमपूर्वक दूधके प्रयोगको बन्दकर मद्यसात्म्य मनुष्योंको किंचित् २ मद्यका सेवन करावे । क्योंकि जिस मनुष्यका एक बार मद्य छूट चुका है यदि वह एकाएकी अधिक मद्यका पान करलेवे तो उसको ध्वंसक और विक्षय रोग उत्पन्न होजाते हैं ॥ १९२ ॥ १९३ ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

व्याध्युपक्षीणदेहस्यदुश्चिकित्स्यतमौमतौ ।
तयोर्लिङ्गंचिकित्साञ्चयथावदुपदेक्ष्यते ॥ १९६ ॥

जिस मनुष्यका व्याधिसे देह क्षीण हो उसके यह दोनों रोग दुश्चिकित्स्य होतेहैं । अब इन दोनों (ध्वंसक, विक्षय) के लक्षण और चिकित्साको कहतेहैं ॥ १९६ ॥

ध्वंसकके लक्षण।

श्लेष्मप्रकोपःकण्ठस्यशोपःशब्दासहिष्णुता ।
तन्द्रानिद्राभियोगश्चज्ञेयंध्वंसकलक्षणम् ॥ १९७ ॥

कफका प्रयोग, कण्ठशोप, किसी भी शब्दका अच्छा न लगना, तंद्रा और निद्राकी अधिकता यह ध्वंसकरोगके लक्षण हैं ॥ १९७ ॥

विट्क्षयके लक्षण।

हृत्कण्ठरोगःसम्मोहश्छर्दिरङ्गरुजाज्वरः ।
तृष्णाकासःशिरःशूलमेतद्विट्क्षयलक्षणम् ॥ १९८ ॥

हृद्रोग, कण्ठरोग, बेहोशी, वमन, अंगोंमें पीडा, ज्वर, प्यास, खांसी, मस्तकपीडा यह विट्क्षयके लक्षण हैं ॥ १९८ ॥

इन दोनोंकी चिकित्सा।

तयोःकर्म्मतदेवेष्टंवातिके यन्मदात्यये । तौहिप्रक्षीणदेहस्यजायेतेदुर्वलस्यवा ॥ १९९ ॥ वस्तयःसर्पिषःपानंप्रयोगःक्षीरसर्पिषोः । अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्नानान्यनुपानश्चवातनुत् ॥ २०० ॥ ध्वंसकोविट्क्षयश्चैवकर्मणानेनशाम्यति । युक्तमद्यस्यमद्योत्थोनव्याधिरुपजायते ॥ २०१ ॥

जो वातप्रधान मदात्ययमें चिकित्सा कहआयेहैं वही चिकित्सा इन दोनों रोगोंमें भी हितकारी होतीहै क्योंकि यह दोनों दुर्वल और क्षीणदेह मनुष्यको होतेहैं । इन ध्वंसक और विट्क्षय दोनों रोगोंमें वस्तिकर्म, घीका पीना, दूध और घृतमिला पीना स्नेहाभ्यंग, उद्वर्त्तन, स्नान तथा अन्य वातनाशक अन्नपानोंका सेवन करना इन क्रियाओंसे ध्वंसक और विट्क्षय यह दोनों शांत होतेहैं । जो मनुष्य युक्तिपूर्वक मद्यपान करताहै उसको मद्यसे उत्पन्न होनेवाले रोग नहीं होसकते ॥१९९॥२००॥ २०१ ॥

मद्य न पीनेके गुण।

निवृत्तःसर्वमद्येभ्योनरोयःस्याज्जितेन्द्रियः ।
शरीरमानसैर्धीमान्विकारैर्नसयुज्यते ॥ २०२ ॥

जो मनुष्य सब प्रकार मद्योंमे निवृत्त है अर्थात् मद्यको ग्रहण नहीं करता वह बुद्धिमान् जितेन्द्रिय मनुष्य शारीरिक और मानसिक विकारोंसे ग्रस्त नहीं होता ॥ २०२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

यत्प्रभावाभगवतीसुरापेयायथाचसा । यद्द्रव्यायस्ययाचेष्टायोगश्चापेक्षतेयथा ॥ २०३ ॥ यथायथामदयतेयैश्चयुक्तामहागुणैः । योमदोमदभेदाश्चयेत्रयःस्वस्वलक्षणाः ॥ २०४ ॥ येचमद्यकृतादोषागुणायेचमदात्मकाः । यच्चत्रिविधमापानंयथासत्त्वश्चलक्षणम् ॥ २०५ ॥ येसहायाःसुखायेचचिरक्षिप्रमदानराः । मदात्ययस्ययोहेतुर्लक्षणंयच्चयथाचयत् ॥ २०६ ॥ मद्यंमद्योत्थितान्रोगान्हन्तियश्चक्रियाक्रमः । सर्वंतदुक्तमखिलंमदात्ययचिकित्सिते ॥ २०७ ॥

चरक० चि० मदात्ययचिकित्सितंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें महाभाग मद्यका प्रभाव और पीनेके प्रकार, मद्यके द्रव्य, जिनको मद्य पीना चाहिये मद्योंके भिन्न २ भेद युक्त गुण, मदके तीन भेद और लक्षण, मद्यके पीयेहुए दोष, मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मद्यालय, तीन प्रकारके सत्त्वोंका लक्षण, मद्यपान योग्य सहचारी, मद्यपान करनेपर विलंबसे मद होना, शीघ्र उन्मत्त होजाना मदात्ययके कारण और लक्षण, मदात्यय रोगकी निवृत्तिके लिये मद्यका प्रयोग मदात्ययकी चिकित्साक्रम यह सब विधिवत् वर्णन कियाहै ॥ २०३-२०७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प्र० आयुर्वेदीय स० चि० स्थाने ट० नि० रा० वै०वि० प्र० भा० टी० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम द्विव्रणीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

परावरज्ञमात्रेयंगतमानमदव्यथम् । अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादि-

दमुक्तवान् ॥ १ ॥ भगवन्! पूर्वमुद्दिष्टौद्वौव्रणौरोगसंग्रहे। तयो-र्लिङ्गंचिकित्साञ्चवक्तुमर्हसिशर्म्मद ॥ २ ॥

भूत भविष्यत्के जाननेवाले अभिमानरहित तथा विगतमद और संतापसे बैठेहुए गुरुके समीप यथासमय विनयपूर्वक अग्निवेश इस प्रकार पूछने लगे कि हे भगवन्। रोगसंग्रह (सूत्रस्थान) में निज और आगन्तुक इन दो व्रणोंको पहिले कहचुकेहैं हे कल्याणप्रद! उनके लक्षण और चिकित्साका यथावत् वर्णन कीजिये ॥१॥ २ ॥

इत्यग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्रवीत्। यौव्रणौपूर्वमुद्दिष्टौनिज-श्चागन्तुरेवच। श्रूयतांविधिवत्सौम्यतयोर्लिङ्गञ्चभेषजम् ॥ ३ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर भगवान् आत्रेयजी कहने लगे कि हे सौम्य! पहिले जो निज और आगन्तुक भेदसे दो प्रकारके व्रणोंको कह आयेहैं उनके लक्षण और औषधियोंको विधिवत् सुनो ॥ ३ ॥

द्विविध व्रण।

निजःशरीरदोषोत्थआगन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥ ४ ॥

शारीरिक दोषसे हुए व्रण (घाव) को निजव्रण कहतेहैं। और बाहरी हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रणको आगन्तु व्रण कहतेहैं ॥ ४ ॥

आगंतु व्रणोंके हेतु।

वधबन्धप्रपतनादंष्ट्रादन्तनखक्षतात्। आगन्तवोव्रणास्तद्वद्विषस्प-र्शाग्निशस्त्रजाः ॥ ५ ॥ मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्चते। लिङ्गै-कदेशैर्निर्दिष्टाविपरीतानिजैर्व्रणाः ॥ ६ ॥

उनमें चोट आदि आघात, बंधन, पतन, दंत (दाढ)का लगना, नखका लगना अथवा अन्य किसी प्रकार कटजाना, विषका स्पर्श होना, अग्निका स्पर्श होना वा किसी प्रकारके शस्त्रका लगना, इनसे जो घाव होताहै अथवा मंत्र वा औषधियोंके योगसे वा किसी अगदके लेपआदिसे जो व्रण उत्पन्न होतेहै उन सबको आगन्तु व्रण कहतेहैं यह आगन्तु व्रण हेतुविशेषसे और लक्षणभेदसे अनेक प्रकारके होतेहैं। उनके लक्ष-णोंके एक देशसे यहांपर दिखाया गयाहै। इससे विपरीत वातादि दोषोंके द्वारा प्रकट होनेवाले निजव्रण होतेहैं। निजव्रणोंमें प्रथम वातादि दोषोंका कोप होकर पीछे व्रणोंकी उत्पत्ति होतीहै और आगन्तु व्रण पहिले व्रण होकर पीछे वातादि दोष कुपित होतेहैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

व्रणानांनिजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम्।
कुर्य्याद्दोषबलापेक्षीनिजानामौषधंयथा ॥ ७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

यत्प्रभावाभगवतीसुरापेयायथाचसा । यद्द्रव्यायस्ययाचेष्टायोगश्चापेक्षतेयथा ॥ २०३ ॥ यथायथामदयतेयैश्चयुक्तामहागुणैः । योमदोमदभेदाश्चयेत्रयःस्वस्वलक्षणाः ॥ २०४ ॥ येचमद्यकृतादोषागुणायेचमदात्मकाः । यच्चत्रिविधमापानंयथासत्त्वश्चलक्षणम् ॥ २०५ ॥ येसहायाःसुखायेचचिरक्षिप्रमदानराः । मदात्ययस्ययोहेतुर्लक्षणंयद्यथाचयत् ॥ २०६ ॥ मद्यंमद्योत्थितान्रोगान्हन्तियश्चक्रियाक्रमः । सर्वंतदुक्तमखिलंमदात्ययचिकित्सिते ॥ २०७ ॥

चरक० चि० मदात्ययचिकित्सितंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें महाभाग मद्यका प्रभाव और पीनेके प्रकार, मद्यके द्रव्य, जिनको मद्य पीना चाहियें मद्योंके भिन्न २ भेद युक्त गुण, मदके तीन भेद और लक्षण, मद्यके पीयेहुए दोष, मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मद्यालय, तीन प्रकारके सत्त्वोंका लक्षण, मद्यपान योग्य सहचारी, मद्यपान करनेपर विलंबसे मद होना, शीघ्र उन्मत्त होजाना मदात्ययके कारण और लक्षण, मदात्यय रोगकी निवृत्तिके लिये मद्यका प्रयोग मदात्ययकी चिकित्साक्रम यह सब विधिवत् वर्णन कियाहै ॥ २०३–२०७ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प्र० आयुर्वेदीय सं० चि० स्थाने ट० नि० रा० वै०नि० प्र० भा० टी० मदात्ययचिकित्सितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम द्विव्रणीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

परावरज्ञमात्रेयंगतमानमदव्यथम् । अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादि-

कफव्रणके लक्षण।

वहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफव्रणः ॥ १३ ॥

अत्यन्त पिच्छिलता, भारीपन, स्निग्धता, स्तैमित्य, मन्द मन्द पीडा, पाण्डु वर्ण, थोडा २ क्लेद निकलना, व्रणका बहुत देरमें पकना यह कफव्रणके लक्षण होतेहैं ॥ १३ ॥

कफव्रणमें चि०।

कषायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिषेचनैः ।
कफव्रणंप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः ॥ १४ ॥

कफव्रणको कषाय, कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्यों द्वारा लेपन और परिसेचन करे। तथा लंघन और पाचनों द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

व्रणोंके भेदादि।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः । तेषांपरीक्षात्रिविधाप्रदुष्टाद्वादशस्मृताः ॥ १५ ॥ स्थानान्यष्टौतथागन्धाःपरिस्रावाश्चतुर्दश । षोडशोपद्रवादोषाश्चत्वारोविंशतिस्तथा ॥ १६ ॥ तथाचोपक्रमाःसिद्धाःषट्त्रिंशत्समुदाहृताः । विभाव्यमानाःशृणुतान्सर्वानेवयथेरितान् ॥ १७ ॥

निज और आगन्तु भेदसे यह दोनों व्रण बीसप्रकारके होतेहैं। उनकी तीन प्रकारकी परीक्षा होतीहै। दूषित होनेसे प्रत्येक व्रणके बारह भेद होजातेहैं व्रणोंके आठ स्थान हैं और आठ ही प्रकारके गंध हैं। चौदह प्रकारके स्राव हैं । सोलह प्रकारके उपद्रव हैं। चौबीस प्रकारके दोष हैं और छत्तीसप्रकारकी सिद्धचिकित्सा है। अब इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥

व्रणके २० प्रकार।

कृत्योत्कृत्यस्तथादुष्टस्तथामर्मस्थितोनवः। संवृतोदारुणःस्रावीसविषोविषमस्थितः ॥ १८ ॥ त्वक्संग्युत्सन्नएषाश्चव्रणान्विद्याद्विपर्य्ययात् । इतिनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः ॥ १९ ॥

कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्मस्थित, नवीन, संवृत्त, दारुणस्रावी, सविष, विषमस्थित, उत्संगी, उत्सन्न, अकृत्योत्कृत्य (जो चिरता फटता न हो) अदुष्ट, अमर्मस्थित,

निज हेतुओंसे उत्पन्न हुए व्रण और आगन्तु व्रणकी यदि स्वयं शान्ति होते प्रतीत न हो तो दोष और बलको जाननेवाला वैद्य विचारपूर्वक आगे कहीहुई निज व्रणोंमें औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७ ॥

निजव्रणोंकी संप्राप्ति ।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम् ।
बहिर्मार्गसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान्त्रणान् ॥ ८ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वात, पित्त, कफ मनुष्योंके शरीरमें त्वचाका आश्रय ले निजव्रणों (जखमों) को उत्पन्न करतेहैं ॥ ८ ॥

वातव्रणके लक्षण ।

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्त्रावोतितीव्ररुक् ।
तुद्यते स्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः ॥ ९ ॥

जो व्रण स्तब्ध, स्पर्शमें कठोर, मन्द २ स्रावयुक्त, अत्यंत पीडावाला, सूईके चुभानेकीसी पीडायुक्त फडकनेवाला, और श्यामवर्ण हो वह वायुसे उत्पन्न हुआ जानना ॥ ९ ॥

वातव्रणमें चिकित्सा निर्देश ।

संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः ।
प्रदेहैःपरिषेकैश्चवातव्रणमुपाचरेत् ॥ १० ॥

वायुसे उत्पन्न हुए व्रणमें संपूरण, (वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग अथवा व्रणपूरक) स्नेह पान, स्निग्ध स्वेद, स्निग्ध उपनाह, स्निग्ध प्रलेप और स्निग्ध परिषेकों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १० ॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

तृष्णामोहज्वरस्वेददाहदुष्टावदारणैः ।
व्रणंपित्तकृतंविद्याद्गन्धस्त्रावैःसपूतिकैः ॥ ११ ॥

प्यास, मोह, ज्वर, पसीने, दाह, दुष्ट, अवदारण (घावका बुरीतरहसे फटना) दुर्गंधयुक्त स्राव होना और राधका निकलना यह पित्तव्रणके लक्षण जानना ॥ ११ ॥

पित्तव्रणमें चिकित्सानिर्देश ।

शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिषेचनैः ।
सर्पिःपानैर्विरेकैश्चपैत्तिकंशमयेद्व्रणम् ॥ १२ ॥

शीतल, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे लेपन, सेचन, घृतपान और विरेचन आदिसे पित्तव्रणको शान्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

कफव्रणके लक्षण।

वहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफव्रणः॥ १३॥

अत्यन्त पिच्छिलता, भारीपन, स्निग्धता, स्तैमित्य, मन्द मन्द पीडा, पाण्डु वर्ण, थोडा २ क्लेद निकलना, व्रणका बहुत देरमें पकना यह कफव्रणके लक्षण होतेहैं॥ १३॥

कफव्रणमें चि०।

कषायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिषेचनैः।
कफव्रणंप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः॥ १४॥

कफव्रणको कषाय, कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्यों द्वारा लेपन और परिसेचन करे। तथा लंघन और पाचनों द्वारा शान्त करे॥ १४॥

व्रणोंके भेदादि।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः। तेषांपरीक्षात्रिविधाप्रदुष्टाद्वादशस्मृताः॥ १५॥ स्थानान्यष्टौतथागन्धाःपरिस्रावाश्चतुर्दश। षोडशोपद्रवादोषाश्चत्वारोविंशतिस्तथा॥ १६॥ तथाचोपक्रमाःसिद्धाःषट्त्रिंशत्समुदाहृताः। विभाज्यमानाःशृणुतान्सर्वानेवयथेरितान्॥ १७॥

निज और आगन्तु भेदसे यह दोनों व्रण बीसप्रकारके होतेहैं। उनकी तीन प्रकारकी परीक्षा होतीहै। दूषित होनेसे प्रत्येक व्रणके बारह भेद होजातेहैं व्रणोंके आठ स्थान हैं और आठ ही प्रकारके गंध हैं। चौदह प्रकारके स्राव हैं। सोलह प्रकारके उपद्रव हैं। चौवीस प्रकारके दोष हैं और छत्तीसप्रकारकी सिद्धचिकित्सा है। अब इनका विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो॥ १५॥ १६॥ १७॥

व्रणके २० प्रकार।

कृत्योत्कृत्यस्तथादुष्टस्तथामर्मस्थितोनवः। संवृतोदारुणःस्रावीसविषोविषमस्थितः॥ १८॥ त्वक्संग्युत्सन्नएषाश्चव्रणान्विद्याद्विपर्य्ययात्। इतिनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिर्व्रणाः॥ १९॥

कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्मस्थित, नवीन, संवृत्त, दारुणस्रावी, सविष, विषमस्थित, उत्संगी, उत्सन्न, अकृत्योत्कृत्य (जो चिरता फटता न हो) अदुष्ट, अमर्मस्थित,

पुराचीन, असंवृत, अल्पस्रावी, निर्विष, अविषमस्थित, अनुत्संगी और अनुत्सन्न यह व्रणोंके वीस भेद कहेहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥

त्रिविध परीक्षा ।

दर्शनप्रश्नसंस्पर्शैःपरीक्षात्रिविधास्मृता । वयोवर्णशरीराणामिन्द्रियाणाञ्चदर्शनात् ॥ २० ॥ हेत्वर्त्तिसात्म्याग्निबलंपरीक्ष्यंवचनाद्बुधैः । स्पर्शान्मार्दवशैत्येचपरीक्ष्येसविपर्य्यये ॥ २१ ॥

व्रणोंको देखना, हाथसे स्पर्श करना और रोगीसे पूछना यह तीन प्रकारकी परीक्षा है । इनमें रोगीकी अवस्था, वर्ण, शरीर और इन्द्रियोंको देखकर परीक्षा करना रोगके कारण,पीडा,सात्म्य, अग्नि बल इनकी पूछकर परीक्षा करना,मृदुता, शीतलता, कठोरता और उष्णता आदि स्पर्शद्वारा परीक्षा करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

दुष्ट व्रणोंके भेद ।

श्वेतोपसन्नवर्त्मातिस्थूलवर्त्मातिपिञ्जरः । नीलःश्यावोऽतिपिडकोरक्तकृष्णोऽतिपूतिकः ॥ २२ ॥ रौप्यःकुम्भीमुखश्चेतिप्रदुष्टाद्वादशव्रणाः । कल्पेनानेनदोषाणांचतुर्विंशतिरुच्यते ॥ २३ ॥

श्वेतवर्त्मा, उपसन्नवर्त्मा, स्थूलवर्त्मा,अत्यंत पिंजर, अतिनील, अतिश्याम, अत्यंत पिडिकायुक्त, अतिरक्तवर्ण, अत्यंत कृष्णवर्ण, अत्यंत दुर्गंधयुक्त, रौप्य और कुंभीमुख यह व्रणोंके दुष्ट होनेसे बारह प्रकारके भेद होतेहैं । इन बारहोंकी उपरोक्त प्रकारसे कल्पना कीजाय तो इनके चौबीस भेद होजातेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

व्रणके आठ स्थान ।

त्वक्शिरामांसमेदोऽस्थिस्नायुमर्मान्तराश्रयाः ।
व्रणस्थानानिनिर्दिष्टान्यष्टावेतानिसंग्रहे ॥ २४ ॥

त्वचा, सिरा, मांस, मेद, अस्थि, स्नायु, मर्म और अंतर (अंतडी) यह संग्रहमें आठ व्रणोंके स्थान कहेहैं ॥ २४ ॥

व्रणोंकी ८ प्रकारकी गंध ।

सर्पिस्तैलवसापूयरक्तश्यावाम्लपूतिकाः ।
व्रणानांव्रणगन्धज्ञैरष्टौगन्धाःप्रकीर्त्तिताः ॥ २५ ॥

घृतसमान, तैलके समान, चर्बीके समान, पूय (राध) के समान, रुधिरके समान, मुर्देके समान, खटाईके समान, सडीहुई दुर्गंध यह आठ प्रकारकी व्रणकी गंध होतीहै ॥ २५ ॥

१४ प्र० स्राव।

लसीकाजलपूयासृक्हरितारुणपिंजराः। कषायनीलहरितस्निग्ध-रूक्षसितासिताः। इतिरूपैःसमुद्दिष्टैर्व्रणस्रावाश्चतुर्दश ॥ २६ ॥

लसीका, जल, पूय, रुधिर, हरितवर्ण, अरुण, पीतवर्ण, कषायवर्ण, नीलवर्ण, हारिद्रवर्ण, स्निग्ध, रूक्ष, श्वेत और कृष्ण यह १४ प्रकारके व्रणोंमेंसे स्राव होतेहैं ॥ २६ ॥

व्रणके १६ उपद्रव।

विसर्पःपक्षघातश्चशिरास्तम्भोपतानकाः ॥ २७ ॥ मोहोन्मादव्रणरुजोज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः। कासश्छर्दिरतीसारोहिक्काश्वासःसवेपथुः। षोडशोपद्रवाःप्रोक्ताव्रणानांव्रणचिन्तकैः ॥ २८ ॥

विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह उन्माद, व्रणपीडा, ज्वर, प्यास, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप, यह व्रणकें १६ उपद्रव व्रणोंक ज्ञाताओंने कहेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

व्रण शांत न होनेके कारण।

स्नायुक्लेदाच्छिराक्लेदाद्गाम्भीर्यात्क्रिमिदर्शनात् ॥ २९ ॥ अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वाच्चसर्पणात्। नखकाष्ठप्रभेदाच्चचर्मलोमातिघट्टनात् ॥ ३० ॥ मिथ्याबन्धादतिस्नेहादतिभैषज्यकर्षणात्। अजीर्णादतिभुक्ताच्चविरुद्धासात्म्यभोजनात् ॥ ३१ ॥ शोकात्क्रोधाद्दिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा। व्रणानप्रशमंयान्तिनिष्क्रियत्वाच्चदेहिनाम् ॥ ३२ ॥

स्नायुओंमें क्लेदता आजानेसे, शिराओंमें क्लेदता होनेसे, व्रणके गंभीर होनेसे, व्रणमें कृमि पडजानेसे, व्रणमें हड्डी निकलकर घावमें लगते रहनेसे, व्रणके अंदर शल्य रहनेसे, विषयुक्त व्रण होनेसे, व्रणमें घसीट लगजानेसे, व्रणमें नख काष्ठ आदि लगजानेसे, चर्म और केशादिसे व्रणको रगडनेसे, व्रणपर अनुचित बंध लगानेसे, अतिस्नहके प्रयोगसे, औषधीयोग द्वारा अत्यंत कर्षण किये जानेसे, व्रणवाले रोगीको अजीर्ण होनेसे, अथवा अत्यंत भोजन करनेसे या विरुद्ध वा असात्म्य भोजन करनेसे, अत्यंत शोकसे, क्रोध करनेसे, दिनमें सोनेसे, व्यायाम करनेसे तथा मथुन करनेसे एवं व्रणकी चिकित्सा न करनेसे, मनुष्योंके व्रण (घाव, जख्म,) शांत (आरोग्य) नहीं होते ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

व्रणोंमें साध्यासाध्यता ।

परिस्रावाच्चगन्धाच्चदोषश्चोपद्रवैःसह ।
व्रणानांबहुदोषाणांकृच्छ्रत्वञ्चोपजायते ॥ ३३ ॥

बहुदोषयुक्त व्रणोंमें सर्वतः स्राव और दुर्गंध होनेसे तथा दोषोंके उपद्रवोंसे युक्त होनेसे कृच्छ्रता (कष्ट साध्यता) होजातीहै अर्थात् वह कृच्छ्रतासे शांत होतेहैं ॥ ३३ ॥

त्वङ्मांसजःसुखेदेशेतरुणस्यानुपद्रवः । धीमतोऽभिनवःकालेसुखसाध्यःस्मृतोव्रणः ॥ ३४ ॥ गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततःकृच्छ्रतमः स्मृतः । सर्वैर्विहीनोविज्ञेयस्त्वसाध्योनिरुपक्रमः ॥ ३५ ॥

जो व्रण त्वचा और मांसमें ही आश्रित हों तथा मर्मादिस्थानोंमें उत्पन्न न होकर आरोग्य होने योग्य स्थानमें पैदाहुये हों बहुत दिनके पुराने न हों (नये हों) एवं उपद्रवरहित हों और बुद्धिमान्के शरीरमें हों तो यथाकाल शीघ्र चिकित्सा कियेजाने पर वह व्रण सुखसाध्य जानने इन उपरोक्त लक्षणोंमें किसी गुणके न होनेसे वह व्रण कृच्छ्रसाध्य होतेहैं उपरोक्त सुखसाध्यवाले संपूर्ण गुण न होनेसे व्रणोंको असाध्य और अचिकित्स्य जानना ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

चिकित्सानिर्देश ।

व्रणानामादितःकार्य्यंयथासन्नंविशोधनम् । ऊर्द्धभागैरधोभागैः शस्त्रैर्बस्तिभिरेवच ॥३६॥सद्यःशुद्धशरीराणांप्रशमंयान्तिहिव्रणाः। यथाक्रममतश्चोर्द्ध्वंशृणुसर्वानुपक्रमान् ॥ ३७ ॥

व्रणोंकी चिकित्सा करनेमें प्रथमही व्रणको शोधन करना चाहिये और वह शोधन यथासन्न समीपवर्ती होना चाहिये जैसे कफजनित व्रणमें वमन पित्तमें विरेचन वातव्रणमें वस्तिकर्म कराना तथा बाहरी त्वचामें होनेवाले दुष्टव्रणोंका दूषित रुधिर आदि निकालकर स्वच्छ करना चाहिये इसप्रकार शुद्ध शरीर होनेसे व्रण बहुत शीघ्र शान्त होजातेहैं अब यथाक्रम उन व्रणोंकी चिकित्सा श्रवणकरो ॥३६॥३७॥

व्रणोंकी ३६ प्रकारकी चिकित्सा ।

शोफघ्नंषड्विधञ्चैवशस्त्रकर्मावपीडनम् । निर्वापणंससन्धानंस्वेदः शमनमेषणा ॥ ३८ ॥ शोधनोरोपणीयौच्कषायौसप्रलेपनौ । द्वौग्तेहौतहणौपत्रच्छेदनेद्वेचवन्धने ॥ ३९ ॥ भोज्यमुत्सादनंदाहो द्विविधःसावसादनः । काठिन्यमार्दवकरेधूपनेलेपनेशुभे ॥ ४० ॥

व्रणावचूर्णनंव्रण्यंलेपनंलोमरोपणम् । इतिषट्त्रिंशदुद्दिष्टाव्रणानां समुपक्रमाः ॥ ४१ ॥

शोथ (सूजन) नाशक चिकित्सा, छः प्रकारका शस्त्रकर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेदन, शमन, एषण (एषणीयंत्र द्वारा घावकी गहराई देखना), शोधन कषाय, रोपणकषाय, शोधनप्रलेपन, रोपणप्रलेपन, शोधनस्नेह, रोपणस्नेह, दो प्रकारके उपरोक्त गुणोंवाले पत्रप्रच्छादन, दो प्रकारके बंधन, भोज्यविधि, उत्सादन, दो प्रकारके दाह, अवसादन, काठिन्यकारक और मृदुताकारक, धूपन तथा लेपन, व्रणावचूर्णन व्रणोपयोगी लेपन और लोमरोपणं यह व्रणोंके छत्तीस प्रकारके उपक्रम (उपाय) कथन किये हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पूर्वरूपंभिषग्बुद्ध्वाव्रणानांशोफमादितः । रक्तावसेचनंकुर्य्यादजातव्रणशान्तये ॥ ४२ ॥ शोधयेद्बहुदोषांस्तुस्वल्पदोषान्विलङ्घयेत् । पूर्वंकषायैःसर्पिर्भिर्जयेद्वामारुतोत्तरम् ॥ ४३ ॥

वैद्यको उचित है कि जब व्रणके उत्पन्न होनेसे पहिले सूजन प्रतीत होनेलगे तब ही व्रणशोथकी जगहका रक्तस्राव करा देवे, जिससे अजातव्रण उत्पन्न न होने पावे। यदि रोगी बहुदोषयुक्त हो तो उसको वमन, विरेचन द्वारा शोधनकरे । अल्पदोषवाले-रोगीके दोषोंको लंघन द्वारा शान्त करे । वातप्रधान व्रणको कषाय और घृत पिलाकर शान्त करे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

शोथनाशक लेप ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलाः ।
ससर्पिष्कःप्रलेपःस्याच्छोफनिर्वापणंपरम् ॥ ४४ ॥

वड, गुल्लड, पीपल, पिलखन और वेतसके वल्कलोंको पीसकर घृतयुक्त कर किंचित् गरम २ लेपन करनेसे सूजन दूर होतीहै ॥ ४४ ॥

विजयामधुकंवीराविसग्रन्थिःशतावरी ।
नीलोत्पलंनागपुष्पंप्रदेहःस्यात्सचन्दनः ॥ ४५ ॥

हरड, मुलैठी, काकोली, कमलकी जड, शतावर, नीलकमल, नागकेशर और लाल चंदन इनको पीसकर लेप करनेसे सूजन दूर होतीहै ॥ ४५ ॥

सक्तवोमधुकंसर्पिःप्रदेहःस्यात्सशर्करः ।
अविदाहीनिचान्नानि शोफेभेषजमुत्तमम् ॥ ४६ ॥

अथवा यवके सत्तू, मुलैठी, घी और खांडका लेप करनेसे सूजन दूर होतीहै

एवं अविदाही अन्नपानका सेवन करना भी शोथरोगको शान्त करनेवाली उत्तम औषधी है ॥ ४६ ॥

सचेदेवमुपक्रान्तःशोथोनप्रशमंव्रजेत् ।
तस्योपनाहैःपक्वस्यपाटनंहितमुच्यते ॥ ४७ ॥

जो इन उपरोक्त लेपोंसे शोथ (सूजन) शान्त न हो तो उसको पुलटिस बांधकर पकावे । पकजानेपर शस्त्रद्वारा चीर डालना हितकारक कहाहै ॥ ४७ ॥

तैलेनवासर्पिषावाताभ्यांवासक्तुपिण्डिका ।
सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहःप्रशस्यते ॥ ४८ ॥

वायुके व्रणमें तेलके साथ, पित्तके व्रणमें घृतके साथ, रक्तपित्तव्रणमें दोनोंके साथ यवके सत्तुओंकी पिण्डीसे बनाकर गरम करके व्रणशोथपर लगावे तो यह पकानेके लिये उत्तम उपनाह (पुलटिस) है ॥ ४८ ॥

सतिलासातसीबीजदध्यम्लासक्तुपिण्डिका ।
सकिण्वकुष्ठलवणाशस्तास्यादुपनाहने ॥ ४९ ॥

तिल, अलसी, दही, कांजी, यवके सत्तू सुराबीज, कूठ और नमक इन सबका कल्क बना गर्मकर लेपकरनेसे शोथ पककर फूटजाताहै ॥ ४९ ॥

दग्ध और पक्व शोथकेल० ।

रुग्दाहरागतोदैश्चविदग्धंशोफमादिशेत् । जलवस्तसमस्पर्शसंपक्वं पिण्डितोन्नतम् ॥ ५० ॥ उमाथोगुग्गुलुःसौधंपयोदक्षकपोतयोः । विट्पलाशभवःक्षारोहेमक्षीरीमकूलकः ॥ ५१ ॥ इत्युक्तोभेषजगणःपक्वशोथप्रभेदनः। सुकुमारस्यकृच्छ्रस्यशस्त्रन्तुपरमुच्यते॥५२॥

जिस सूजनमें पीडा, दाह, ललाई और तोद हो उसको विदग्ध सूजन कहते हैं जिस सूजनमें छूनेसे पानीसे भरी मसकके समान प्रतीत हो और गोल तथा उन्नत हो उसको पक्व सूजन कहते हैं पकीहुई सूजनको फोडनेके लिये गुगुल, थोहरका दूध अथवा चूना, मुर्गा और कबूतरकी बीट, बिडनमक, ढाकका क्षार, सत्यानासी की जड और दंती इन सबको रगडकर लेप करे तो यह गण सब प्रकारकी पकीहुई सूजनोंको भेदन कर देता है यदि सूजन कोमल और कष्टसाध्य प्रतीत होतीहो अर्थात् लेपोंद्वारा न फूटसकती हो तो शस्त्र कर्मका प्रयोग करे ॥५०॥५१॥५२॥

६ प्रकारके शस्त्रकर्म ।

पाटनंव्यधनञ्चैवछेदनंलेखनंतथा ।
प्रोच्छनंसीवनञ्चैवषड्विधंशस्त्रकर्मतत ॥ ५३ ॥

वह शस्त्रकर्म पाटन, व्यधन, छेदन, लेपन, पछन और सीवन यह छः प्रकारके होतेहैं ॥ ५३ ॥

पाटनयोग्य सूजन ।

नाडीव्रणाःपक्वशोथास्तथाक्षतगुदोदरम् ।
अन्तःशल्याश्चयेशोफाःपाट्यास्तेतद्विधाश्चये ॥ ५४ ॥

नाडीव्रण, पक्वशोथ, क्षतज, गुदोदर, अन्तःशल्य (जिसके भीतर किसी प्रकारका कांटा आदि रहगयाहो) इतने प्रकारके शोथ शस्त्रद्वारा काटने योग्य हैं ॥ ५४ ॥

वेधनयोग्य रोग ।

दकोदराणिसंपक्वागुल्मायेयेचरक्तजाः ।
व्यध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः ॥ ५५ ॥

जलोदर, पकाहुआ गुलम, रक्तगुलम, विसर्प और पिडिका आदिक व्यधन (भीतरसे छिद्रयुक्त सूचीद्वारा वेधनकर सूचीके भीतरके छिद्रद्वारा मवाद निकालदेना) करनेयोग्य हैं ॥ ५५ ॥

छेदनीय रोग ।

उद्वृत्तान्स्थूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान्व्रणान् ।
अर्शःप्रभृत्यधीमांसंछेदनेनोपपादयेत् ॥ ५६ ॥

उद्वृत, स्थूलपर्यंत उठाहुआ, कठोर व्रण तथा सब प्रकारके अर्श (मस्से) तथा आधीमांस यह छेदन करने (काटने) के योग्य हैं ॥ ५६ ॥

लेखनीय रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेल्लेख्यानिबुद्धिमान् ॥ ५७ ॥

किलास और कुष्ठको बुद्धिमान् वैद्य संपूर्ण रूपसे लेखनकरे ॥ ५७ ॥

वातासृग्ग्रन्थिपिडकाःसकोठारक्तमण्डलाः ।
कुष्ठान्यभिहतश्चाङ्गंशोथांश्चप्रच्छयेद्भिषक् ॥ ५८ ॥

वातरक्त, ग्रंथी, पिडिका, कोठरोग, रक्तमण्डल, कुष्ठ, चोट लगकर हुई सूजन तथा अन्य सूजन इनको वैद्य पाछ (पछने) लगावे ॥ ५८ ॥

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटितम् ।
इतिषड्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्ममनीषिभिः ॥ ५९ ॥

कुक्षि और उदरमें जो गहरा उत्पाटन (फटना) होगयाहो तो उसको सीना चाहिये । इन छः प्रकारके शस्त्रकर्मोको मुनियोंने कथन किया है ॥ ५९ ॥

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेव्रणास्तान्प्रपीडयेत् ।
जिस व्रणका मुख छोटासा हो और भीतरसे पककर भराहुआ हो उसको पीडनकरे.

पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः ।
कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने ॥ ६० ॥

मटर, मसूर, गेहूं और हरेणुके कल्कको विना चिकनाईके व्रणके ऊपर लेपकरे तो वह सूखकर व्रणको पीडनकर मवाद बाहर निकाल देताहै ॥ ६० ॥

शाल्मलीत्वग्बलामूलंतथान्यग्रोधपल्लवाः । न्यगोधादिकमुद्दिष्टं बलादिकमथापिवा ॥ ६१ ॥ आलेपनंनिर्वपणंतद्विधान्यैश्चसेचनम् । सर्पिषाशतधौतेनपयसामधुकाम्बुना ॥ ६२ ॥ निर्वापयेत्सुशीतेनर-क्तपित्तोत्तरान्व्रणान् ॥ ६३ ॥

सीमलकी छाल, बलाकी जड, वडके पत्ते, न्यग्रोधादिगण अथवा बलादिगण या इसी प्रकारके अन्य गणोंका लेपन अथवा सेचन करनेसे व्रणोंका मवाद बाहर निकल जाताहै और व्रण शुद्ध होजातेहैं । तथा सौवारके धोयेहुए घृतको अथवा दूध या मुलैठीके क्वाथको रक्तपित्तोल्वण व्रणोंमें उपयोग करे तो व्रणोंकी शान्ति होती है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

लम्बानिव्रणमांसानिप्रलिप्यमधुसर्पिषा । संदधीतसमंवैद्योबन्धनै-श्चोपपादयेत् । तान्समान्सुस्थिताञ्ज्ञात्वाफलिनीलोध्रकट्फलैः ॥६४॥ समङ्गाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत् । पञ्चवल्कलचूर्णैर्वाशुक्ति-चूर्णसमायुतैः ॥ ६५ ॥ धातकीलोध्रचूर्णैर्वातथारोहन्तितेव्रणाः ६६

व्रणोंसे यदि मांस लटकपडे तो शहद और घृतका लेपकर उनको बराबर करके बांधदेवें व्रण, समान एकसा और सुस्थिर हो तो प्रियंगु, लोध, कायफल, समंगा, धावेके फूल इनका बारीक चूर्णकर व्रणको घृतसे चुपडकर ऊपरसे यह चूर्ण बुर-का देवे अथवा पंचवल्कल और सीपीका समान भाग सूक्ष्म चूर्ण बुरकावे या धावेके फूल और पठानीलोधका चूर्ण कर व्रणोंपर बुरकावे तो व्रण शीघ्र भरकर अच्छे होजातेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अस्थिभग्नंच्युतंसन्धिसंदधीतसमंपुनः । समेनसममङ्गेनकृत्वान्ये-नविचक्षणः । स्थिरैःकवलिकाबन्धैःकुशिकाभिश्चसंस्थितम् । पट्टैः

प्रभूतसर्पिष्कैर्वध्नीयादबलंसुखम् । अविदाहिभिरन्नैश्चपैष्टिकैस्तमु-पाचरेत् । ग्लानिर्हिनहितातस्यंसन्धिविश्लेषकारिका ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

यदि हड्डी टूटगई हो अथवा जोड खुलगया हो तो उसको विधिपूर्वक जोडकर कवलिकानामक बंधनसे बांध देवे अथवा कुशाके पत्रोंको घृत लगा विना जोरसे धीरे २ लपेटकर ऊपरसे घीमें भिगोई कपडेकी पट्टी विधिपूर्वक बांधदेवे और इसको अविदाही अन्न और पिष्टक अन्न विधिपूर्वक सेवन करावे यदि रोगीको विदाही अन्न दिया जायगा तो उससे विदाह होकर अथवा किसी प्रकार ग्लानि उत्पन्न होनेसे उसकी संधिमें ढीलापन आजाता है इसलिये उसको विदाही और हानिकारक पदार्थ नहीं देना चाहिये ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

विच्युताभिहताङ्गानांविसर्पादीनुपद्रवान् । उपाचरेद्यथाकालंकालज्ञःस्वचिकित्सितात् ॥ ६९ ॥

अंग विच्युत होनेसे रोगीको विसर्प आदि होजांय तो कालको जाननेवाला वैद्य समयानुसार उन उपद्रवोंकी चिकित्सा करे ॥ ६९ ॥

शुष्कामहारुजःस्तब्धायेव्रणामारुतोत्तराः । स्वेद्याःसङ्करकल्पेनते स्युःकृसरपायसैः ॥ ७० ॥ ग्राम्यवैलाम्बुजानूपैर्वेशवारैश्चसंस्कृतैः। उत्कारिकाभिरुष्णाभिःसुखीस्याद्व्रणितस्तदा ॥ ७१ ॥

जो व्रण सूखेहुये अत्यंत पीडायुक्त स्तब्ध और वातप्रधान हो उनको संकरस्वेद विधिसे खिचडी, खीर, तथा औषधियोंसे संस्कार कियेहुए ग्राम्य, विलेशय, जलचर और अनूपचारी जीवोंके मांसकी टिकिया बना स्वेदन करे तो व्रणवाले रोगीको सुख प्राप्त हो ॥ ७० ॥ ७१ ॥

सदाहवेदनावन्तोयेव्रणामारुतोत्तराः । येषांतिलानुमाश्चैवभृष्टा-न्पयसिनिर्वृतान् ॥ ७२ ॥ तेनैवपयसापिष्ट्वाकुर्य्यादालेपनंभिषक्। वलागुडूचीमधुकंपृश्निपर्णीशतावरी ॥ ७३ ॥ जीवन्तीशर्करा क्षीरंतैलमत्स्यवसाघृतम् । संसिद्धासमधूच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहश-र्करा ॥ ७४ ॥

वातप्रधान दाहयुक्त और पीडायुक्त व्रणोंमें तिल, अलसी इनको घीमें भून और दूधमें पकालेवे फिर उसी दूधमें पीसकर लेपन करे । अथवा खरेटी, गिलोय, मुलैठी, पृष्ठपर्णी,शतावर, जीवन्ती, खांड, दूध, तेल,मछलीकी चर्बी घी और मोम इन सबको पकाकर व्रणपर लेप करनेसे व्रणकी पीडा दूर होतीहै ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

द्विपञ्चमूलक्कथितेनाम्भसापयसाथवा ।
सर्पिषावासतैलेनकोष्णेनपरिषेचयेत् ॥ ७५ ॥

किंचित् गर्म दशमूलका क्वाथ अथवा दशमूलसे सिद्ध किया दूध अथवा इनमें तेल या घृत मिलाकर व्रणोंका परिसेचन करे तो पीडा शान्त हो ॥ ७५ ॥

यवचूर्णंसमधुकंसतैलंसहसर्पिषा ।
दद्यादालेपनंकोष्णंदाहशूलोपशान्तये ॥ ७६ ॥

यवोंका चूर्ण, मुलैठी और घृत इनका सुखोष्ण लेप करनेसे व्रणकी पीडा और दाह शान्त होताहै ॥ ७६ ॥

उपनाहश्चकर्त्तव्यःसतिलोमद्गपायसः ।
रुग्दाहयोःप्रशमनोव्रणेष्वेषुविधिर्हितः ॥ ७७ ॥

दूधके साथ तिल और मूंगका कल्क करके उसका सुखोष्ण लेप करनेसे दाह और पीडा शान्त होतीहै ॥ ७७ ॥

एषणीय व्रण ।

सूक्ष्माननावहुस्रावाःकोपवन्तश्चयेव्रणाः । नचमर्माश्रितास्तेषामेषणंहितमुच्यते ॥७८॥ द्विविधामेषणींविद्यान्मृद्वीश्चकठिनामपि । उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लौहानांवाशलाकया ॥ ७९ ॥ गम्भीरमांसगेदेशेपार्श्वेलौहशलाकया । एष्यंविद्याद्व्रणंनालैर्विपरीतमतोभिषक् ८०॥

जो व्रण, सूक्ष्म, मुखवाला अनेक प्रकारके स्रावयुक्त और कोपयुक्त हो किंतु वह मर्मस्थानमें न हो तो उसको एषणीयन्त्र (सलाई) द्वारा देखे कि वह कहां तक है अथवा उसमें सलाई डालना ही हित होताहै एषणीयन्त्र दो प्रकारका होताहै १ मृदु और २ कठिन इनमें उद्भिद नर्मनाल (दूबका डका) आदि मृदु और लोहेका कठिन एषणा सलाका यन्त्र होताहै जिस स्थानमें व्रण गहरा हो और मांस वहुत हो वहांपर लोहेकी सलाईका प्रवेश करना चाहिये । जिस स्थानमें मास गहरा न हो उसमें मृदु सलाईका प्रवेश करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शोधनयोग्यव्रण ।

पूतिगन्धान्विवर्णांश्चवहुस्रावान्महारुजः ।
व्रणानशुद्धान्विज्ञायशोधनैःसमुपाचरेत् ॥ ८१ ॥

जिन व्रणोंमें दुर्गंध विवर्णता, अधिक स्राव और अत्यंत पीडा हो तथा वह अशुद्ध हो तो उनको प्रथम शोधन करना चाहिये ॥ ८१ ॥

शोधनयोग।

त्रिफलाखदिरोदार्वीन्यग्रोधादिर्बलाकुशः ।
निम्बकोलकपत्राणिकषायाःशोधनामताः ॥ ८२ ॥

त्रिफला, खैरसार, दारुहलदी, बडका छिलका, अतिबला, कुशाकी जड, नीमके पत्ते, बेरीके पत्ते इन सबका क्वाथ कर उस क्वाथसे व्रणको शुद्ध करदेवे ॥ ८२ ॥

तिलकल्कःसलवणोद्वेहरिद्रेत्रिवृद्घृतम् ।
मधुकंनिम्बपत्राणिप्रलेपोव्रणशोधनः ॥ ८३ ॥

तिलोंका कल्क, सेंधानमक, हलदी, दारुहलदी, निसोथ, घृत, मुलैठी और नीमके पत्तोंका कल्क कर लेपन करनेसे व्रण शुद्ध होताहै ॥ ८३ ॥

रोपणीय व्रण ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावोनचातिरुक् ।
नचोत्सन्नोनचोत्सङ्गीशुद्धोरोप्यःपरंव्रणः ॥ ८४ ॥

जो व्रण अधिक लाल न हो और अधिक पीला न हो तथा अधिक कालाभी न हो, उसमें अत्यंत पीडा न होतीहो जो बहुत ऊंचा न हो, जिसमें क्लेदादि दोष न हों ऐसा शुद्ध व्रण रोपण करनेयोग्य है ॥ ८४ ॥

रोपणकर्त्ता द्रव्य ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः ।
करवीरार्ककुटजाःकषायारोपणाःस्मृताः ॥ ८५ ॥
चन्दनंपद्मकिञ्जल्कंदार्वीत्वङ्नीलमुत्पलम् ।
मेदामूर्वासमङ्गाश्वयष्ट्याह्वांव्रणरोपणम् ॥ ८६ ॥

बड, गूलर, पीपल, कदम्ब, पिलखन, वेतस (ब्यूंस), कनेरकी छाल, आककी छाल, कुडाकी छाल इनका क्वाथ रोपणकारक होताहै । अथवा लालचन्दन, कमलकी केशर, दारुहलदी, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, समंगा और मुलैठी यह सब व्रणके रोपणकरनेवाले हैं ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

प्रपौण्डरीकंजीवन्तींगोजिह्वां धातकींबलाम् ।
रोपणंसतिलंदद्यात्प्रलेपंसघृतंव्रणे ॥ ८७ ॥

प्रपौण्डरीक (पुंडयारा), जीवंती, जंगली गोभी (गोजिह्वा बूटी), धावेके फूल, बला और तिल इन सबका कल्क कर घृतयुक्त कर लेप करे तो व्रणोंका रोपण होय ॥ ८७ ॥

कम्पिल्लकंविडङ्गानिवत्सकंत्रिफलांबलाम् । पटोलंपिचुमर्दञ्चलोध्रं मुस्तंप्रियंगुकम् ॥ ८८ ॥ खदिरंधातकींसर्जमेलामगुरुचन्दने । पिष्ट्वासाध्यंभवेत्तैलंतत्परंव्रणशोधनम् ॥ ८९ ॥

कमीला, वायविडंग, इंद्रजव, त्रिफला, बला, पटोलकी जड, नीमके पत्ते, पठानी लोध, मोथे, फूलप्रियंगु, खैरसार, धावेके फूल, राल, इलायची, अगर, लालचंदन इन सबका कल्क और क्वाथ मिलाकर तेल सिद्ध करले यह तेल व्रणोंका अत्यंत रोपण और शोधन करनेवाला है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंकाकोल्यौद्वेचचन्दने ।
सिद्धमेतैःसमैस्तैलंतर्पणंव्रणरोपणम् ॥ ९० ॥

प्रपौण्डरीक, मुलैठी, दोनों काकोली, लालचंदन इनके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल तर्पण और व्रणोंको रोपण करनेवाला है ॥ ९० ॥

दूर्वास्वरससिद्धंवातैलंकम्पिल्लकेनवा ।
दार्वीत्वचश्चकल्केनप्रधानंव्रणरोपणम् ॥ ९१ ॥

दूबके स्वरसमें अथवा कमीलेमें या दारुहल्दीकी छालके कल्कमें सिद्ध किया तैल व्रणोंको रोपण करनेमें प्रधान है ॥ ९१ ॥

येनैवविधिनातैलंघृतंतेनैवसाधयेत् ।
रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वारोपणीयंघृतंतथा ॥ ९२ ॥

जिन २ द्रव्योंसे जिस प्रकार तैल सिद्ध किये जातेहैं उन्हीं द्रव्योंसे उसी प्रकार घृतोंको साधन करना चाहिये । रक्तपित्तप्रधान व्रणोंमें रोपणी औषधोंसे सिद्ध किये घृतद्वारा ही रोपणी क्रिया करनी चाहिये ॥ ९२ ॥

कदम्बार्जुननिम्बानांपाटल्याःपिप्पलस्यच ।
व्रणप्रच्छादनेविद्वान्पत्राण्यर्कस्यचादिशेत् ॥ ९३ ॥

कदम्ब, अर्जुन नीम, पाटला, पीपल और आकके पत्ते व्रणोंपर बांधनेके लिये हितकारी हैं ॥ ९३ ॥

राङ्कोऽथवादरश्चैवपट्टोव्रणहितःस्मृतः ।
बन्धश्चद्विविधःशस्तोव्रणानांसव्यदक्षिणः ॥ ९४ ॥

साबर आदि नरम मृगोंके चर्म, रूईसे बना वस्त्र या ऊनसे बना वस्त्र अथवा वृक्षकी छालसे बना वस्त्र लेकर उसकी पट्टी बांधना चाहिये । यह पट्टी व्रणके बायें और दहिने दोनों ओर लपेटकर बांधना चाहिये ॥ ९४ ॥

व्रणमें पथ्याऽपथ्य ।

लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीनिगुरूणिच ।
वर्जयेदन्नपानानिव्रणीमैथुनमेवच ॥ ९५ ॥

लवण, अम्ल, कटु और विदाही पदार्थ तथा भारी अन्नपान और मैथुन इन सब कर्मोंको व्रणरोगवाला मनुष्य त्याग देवे ॥ ९५ ॥

नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम् ।
अन्नपानंव्रणहितंहितश्चास्वपनंदिवा ॥ ९६ ॥

जो अत्यंत शीतल न हो, अत्यंत भारी न हो, अत्यंत स्निग्ध तथा विदाही न हो ऐसा अन्नपानका सेवन करना हित है । एवं दिनमे सोना भी व्रणरोगियोंके लिये अत्यंत अहित करता है ॥ ९६ ॥

स्तन्यानिजीवनीयानिबृंहणीयानियानिच ।
उत्सादनार्थंनिम्नानांव्रणानांतानिकल्पयेत् ॥ ९७ ॥

जो व्रण निम्न (नीचेको गढेके समान) हों उनको उन्नत (भरकर बराबर) करनेके लिये स्तन्यवर्धकगणकी औषधियों, जीवनीय औषधियों और बृंहणीय द्रव्योंके प्रयोग (घृतादिके संयोगसे लेपन, क्वाथसे प्रक्षालन और इन्हींसे सिद्ध घृतका पान) करे ॥ ९७ ॥

भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधोभागानिगुग्गुलुः ।
व्रणावसादनंतद्वत्कलविङ्ककपोतविट् ॥ ९८ ॥

भोजपत्रकी गाठ, पाषाणभेद, हीराकसीस यह क्रमसे एक दूसरेसे आधा लेवे । एक भाग गूगल लेवे इन सबको मिलाकर लेपकरनेसे व्रण भर आताहै इसी प्रकार कलविक (मुर्गा या चिडा) की और कबूतर की बीटका लेप करनेसे भी यही गुण होताहै ॥ ९८ ॥

अग्निकर्मका निर्देश ।

रुधिरेऽतिप्रवृत्तेतुच्छिन्नेच्छेद्येऽधिमांसके । कफग्रन्थिपुगण्डेपुवातस्तम्भानिलार्त्तिपु ॥ ९९ ॥ गूढपूयलसीकेपुगम्भीरेपुस्थिरेपु च । क्लिन्नेपुचाङ्गदेशेपुकर्माग्नेःसंप्रशस्यते ॥ १०० ॥

छेदन योग्य अधिमांस (मस्से) आदिके काटनेपर यदि रुधिरकी अतिप्रवृत्ति होय तब उस स्थानको तथा कफग्रंथि, गलगड, वातस्तंभ, वातपीडा, गूढपूय, (जिसमें पीव छिपी हुई हो) और गूढलसीकायुक्त व्रण, गंभीर, स्थिर और क्लेदित अंगदेशोंमें अग्निकर्म (दागना) श्रेष्ठ होताहै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

मधूच्छिष्टेनतैलेनमज्जाक्षौद्रवसाघृतैः । तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्दा-
हविशेषवित् ॥ १०१ ॥ रूक्षाणांसुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोत्त-
रान् । दहेत्स्नेहैर्मधूच्छिष्टैर्लोहैःक्षौद्रैस्ततोन्यथा ॥ १०२ ॥

मोम, तेल, मज्जा, शहद, चर्वी, घृत अथवा लोहा आदि धातुओंको तपा २ कर व्रणको दग्ध करना चाहिये । विशेषरूपसे सब क्रियाको जाननेवाला वैद्य रूक्ष, नम्र और गंभीर तथा वातप्रधान व्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्तप्रधान व्रणको लोहद्वारा दग्ध करे । और कफप्रधानको शहदसे दग्ध करना चाहिये ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

अग्निकर्मके अयोग्यमनुष्य ।

वालदुर्वलवृद्धानांगर्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । तृष्णाज्वरपरीतानाम-
वलानांविषादिनाम् ॥१०३॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंस्नायुमर्मव्रणेषुच ।
सविषेषुचशल्येषुनेत्रकुष्ठव्रणेषुच ॥ १०४ ॥

वालक, दुर्वल, वृद्ध, गर्भवती स्त्री, रक्तपित्त रोगी, तृषातुर, ज्वरवाला, क्षीण और विषादयुक्त मनुष्योंके व्रणोंमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये। तथा स्नायुगत व्रण, मर्मगत व्रण, सविष व्रण, शल्ययुक्त व्रण और नेत्रव्रणमें तथा कोष्ठव्रणमें अग्निकर्म नहीं करना चाहिये ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

रोगदोषवलापेक्षीमात्राकालाग्निकोविदः ।
शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ १०५ ॥

रोग, दोष, वल, मात्रा, काल और अग्निकर्मको जाननेवाला वैद्य शस्त्रकर्म और अग्निकर्म साध्य व्रणोंमें क्षार (तेजाव आदि) के प्रयोग द्वारा भी दग्ध कर सक्ताहै ॥ १०५ ॥

कठिनत्वंव्रणायान्तिगन्धैःसारैश्चधूपिताः ।
सर्पिर्मज्जावसाधूपैःशैथिल्यंयान्तिहिव्रणाः ॥ १०६ ॥

गंधद्रव्य और राल आदि वृक्षोंके सारोंकी धूनी देनेसे व्रण कठोर (सख्त) होजाताहै । एवं घृत, मज्जा और वसा (चर्वी) की धूनी देनेसे व्रण शिथिल (नरम) पडजाताहै ॥ १०६ ॥

रुजःस्त्रावाश्चगन्धाश्चक्रिमयश्चव्रणाश्रिताः ।
शैथिल्यंमार्दवंचापिधूपनेनोपशाम्यति ॥ १०७ ॥

धूनी देनेसे व्रणकी पीडा, स्राव, दुर्गंध, कृमि, शिथिलता और मृदुता यह सब दूर होजातेहैं ॥ १०७ ॥

लोध्रन्यग्रोधशुङ्गानिखदिरंत्रिफलाघृतम् ।
प्रलेपोव्रणशैथिल्यंसौकुमार्य्यप्रबोधनः ॥ १०८ ॥

पठानी लोध, बडके अंकुर, कत्था, त्रिफला और घृत इनको मिला मिलाकर लेप करनेसे व्रणमें शिथिलता और नम्रता प्रकट होतीहै ॥ १०८ ॥

सरुजःकठिनाःस्तब्धानिरास्रावाश्चयेव्रणाः ।
यवचूर्णैःससर्पिष्कैर्बहुशस्तान्प्रलेपयेत् ॥ १०९ ॥

जो व्रण कठोर, स्तब्ध, पीडायुक्त और स्रावयुक्त हों उनपर बहुतसा घृत मिलाकर जवोंके उत्तम चूर्णका लेप करे ॥ १०९ ॥

मुद्गषष्टिकशालीनांपायसैर्वायथाक्रमम् ।
सघृतैर्जीवनीयैर्वातर्पयेत्तानभीक्ष्णशः ॥ ११० ॥

मूंग, साठी चावल, शालि चावल इनमेंसे किसी एकको या सबको दूधमें पकाकर लेप करनेसे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणोंका तर्पण होताहै ॥ ११० ॥

ककुभोदुम्बराश्वत्थलोध्रजाम्ववकट्फलैः ।
त्वचमाश्वेवगृह्णन्तित्वक्चूर्णैश्चूर्णिताव्रणाः ॥ १११ ॥

अर्जुन वृक्षकी छाल, गूलरकी छाल तथा पीपल, लोध, जामन, कायफल इन सबकी छालका बारीक चूर्ण व्रणोंपर बुरकानेसे व्रण शीघ्र त्वचायुक्त होजातेहैं॥१११॥

मनःशिलैलामञ्जिष्ठालाक्षाचरजनीद्वयम् ।
प्रलेपःसघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः ॥ ११२ ॥

मनशिल, इलायची, मंजीठ, लाख, हलदी, दारुहलदी घृत और शहद इनको मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजातेहैं ॥ ११२ ॥

सफेद त्वचाको सर्वदेहसमकारक लेप ।

अयोरजःसकासीसंत्रिफलाकुसुमानिच ।
करोतिलेपःकृष्णत्वंसद्यएवनवत्वचि ॥ ११३ ॥

लोहचूर्ण, हीराकसीस, त्रिफलाके फूल (या फल) इनका लेप करनेसे व्रण दूर होनेपर रहीहुई त्वचाकी सफेदी दूर होजातीहै ॥ ११३ ॥

कालीयकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः ।
लेपःसगोमयरसः सवर्णीकरणःपरः ॥ ११४ ॥

कालीयक (काली अगर), नत (तगर), आमकी गुठली, नागकेशर, कांतिसार, लोहका चूर्ण इनको गोवरके रसमें घोटकर लेप करनेसे नई त्वचाकी सफेदी दूर होकर सब त्वचाके समान वर्ण होजाताहै ॥ ११४ ॥

ध्यामकाश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगैरिका ।
सहेमश्चामृतासंगाकासीसश्चेतिवर्णकृत् ॥ ११५ ॥

रोहिषतृण, पीपलवृक्षकी त्वचा, निचुल (हिंजल) की जड, लाख, गेरु, नागकेशर, हरड, मुरदासंग, हीराकशीश, इन सबको मिलाकर लेप करनेसे नई त्वचा सब शरीरके वर्णकीसी होजातीहै ॥ ११५ ॥

व्रणोंकी त्वचापर बाल जमानेकी क्रिया ।

चतुष्पदानांत्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना ।
तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेल्लोमवतीपुनः ॥ ११६ ॥

चतुष्पद जानवरोंकी त्वचा, लोम, खुर, सींग और हड्डीकी भस्म कर तेलमें मिला व्रणकी त्वचापर लेप करनेसे बाल उत्पन्न होजातेहैं ॥ ११६ ॥

षोडशोपद्रवायेचव्रणानांपरिकीर्त्तिताः ।
तेषांचिकित्सानिर्दिष्टायथास्वेस्वेचिकित्सिते ॥ ११७ ॥

इस प्रकार व्रणोंके जो सोलह उपद्रव कहेगएथे उनकी यथाक्रम अलग २ चिकित्सा कीगई ॥ ११७ ॥

तत्रश्लोकौ ।

द्वौव्रणौव्रणभेदाश्चपरीक्षादुष्टिरेवच । स्थानानिगन्धाःस्रावश्चसोपसर्गाःक्रियाश्चयाः ॥ ११८ ॥ व्रणाधिकारेसप्रश्नमेतन्नवकमुक्तवान् । मुनिर्व्याससमासाभ्यामग्निवेशायधीमते ॥ ११९ ॥

इति चरक०द्विव्रणीयचिकित्सितंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं कि इस द्विव्रणीय चिकित्सिताध्यायमें दो प्रकारके व्रण, व्रणोंके भेद, परीक्षा, दुष्टता, स्थान, गंध, स्राव, उपसर्ग और चिकित्सा यह सब भगवान् पुनर्वसुजीने बुद्धिमान् अग्निवेशके प्रति संक्षेप और विस्तारसे विधिवत् वर्णन कियेहैं ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति श्री च० चि० स्थाने प्र० भा० टी० द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथात उन्मादचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम उन्मादचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

बुद्धिस्मृतिज्ञानतपोनिवासःपुनर्वसुःप्राणभृतांशरण्यः । उन्मादहेत्वाकृतिभेषजानिकालेऽग्निवेशायप्रशंसपृष्टः ॥ १ ॥

बुद्धि, स्मृति, ज्ञान, और तपके निवासभूमि प्राणधारियोंको शरण्य भगवान् पुनर्वसुजी अग्निवेशके पूछनेपर उन्माद रोगके हेतु, लक्षण और चिकित्साका यथासमय वर्णन करनेलगे ॥ १ ॥

उन्मादके हेतु ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानिप्रधर्षणंदेवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वोमनोऽभिघातेविषमाश्चचेष्टाः ॥ २ ॥

विरुद्ध, दूषित और अपवित्र भोजनका सेवन, देव, गुरु और ब्राह्मणोंका धर्षण (ताडन), अधिक भय या हर्षसे मनमें विकार होना और विषम चेष्टा यह सब उन्माद रोगके कारण होतेहैं ॥ २ ॥

उन्मादकी संप्राप्ति ।

तैरल्पसत्त्वस्यमलाःप्रदुष्टाबुद्धेर्निवासंहृदयंप्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठायमनोवहानिप्रमोहयन्तीहनरस्यचेतः ॥ ३ ॥

इन कारणोंसे अल्पसत्त्व (कमजोर दिल) वाले मनुष्योंके वातादि दोष दुष्ट होकर बुद्धिके निवासस्थान दिमाग (मस्तिष्क) और हृदयको प्रदूषित कर मनोवाहक स्रोतोंमें स्थित हो मनुष्यके चित्तको प्रमोहित करदेतेहैं ॥ ३ ॥

उन्मादके सामान्य लक्षण ।

धीविभ्रमःसत्त्वपरिप्लवश्चपर्याकुलादृष्टिरधीरताच ।
अबद्धवाक्त्वंहृदयंचशून्यंसामान्यमुन्मादगदस्यलिङ्गम् ॥ ४ ॥

बुद्धिका विभ्रम, चित्तमें चंचलता, अकुलाई हुई दृष्टि, अधीरता, अंटसंट असंबद्ध भाषण, हृदयमें शून्यता यह सब उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

समूढचेतानसुखंनदुःखंनाचारधर्मौकुतएवशान्तिम् ।
विन्दत्यपास्तस्मृतिबुद्धिसंज्ञोभ्रमत्ययंचेतइतस्ततश्च ॥ ५ ॥

इस प्रकार उन्माद रोगसे मूढचित्त हुआ वह मनुष्य किसी प्रकारका सुख, दुःख, आचार, धर्मको नहीं जानता और न शांतिको प्राप्त होसकताहै वह बुद्धि, स्मृति और संज्ञारहित हुआ इधर उधर घूमता फिरता है ॥ ५ ॥

उन्मादकी निरुक्ति व भेद ।

समुद्भ्रमंबुद्धिमनःस्मृतीनामुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः ।
तस्योद्भवंपञ्चविधस्यभूयोवक्ष्यामिलिङ्गानिचिकित्सितञ्च ॥६॥

बुद्धि मन और स्मृतिके समुद्भ्रम (बिगडकर उद्भ्रान्त) होनेको ही उन्माद कहतेहैं । वह उन्माद निज और आगंतु भेदोंसे दो प्रकारका है । इसकी पांच प्रकारसे उत्पत्ति है । अब उन पांच प्रकारके उन्मादरोगोंके लक्षण और चिकित्सा कहतेहैं ॥ ६ ॥

वातज उन्मादके हेतु ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।
चिन्तादिजुष्टंहृदयंप्रदूष्यबुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्तिशीघ्रम् ॥ ७ ॥

रूक्ष, अल्प और शीतल अन्नके सेवनसे, अधिक विरेचनसे, धातुओंके क्षयसे तथा उपवास करनेसे वायु अत्यंत बढकर चिंतासे दुःखित हुए, हृदयको और भी दूषित करके मनुष्यकी बुद्धि और स्मृतिको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ ७ ॥

वातज उन्मादके लक्षण ।

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागङ्गविक्षेपणरोदनानि । पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताचजीर्णेबलञ्चानिलजस्यरूपम् ॥ ८ ॥

तब विना कारण हँसना, मुसकुराना, नाँचना, गानेलगजाना, बकना, हाथ पांवोंको इधर उधर चलाना, रोना, देहमें कठोरता, कृशता, लाल वर्ण होना, और अन्नके परिपाक होजानेपर रोगकी अधिक वृद्धि होना यह सब लक्षण वातजनित उन्मादमें होतेहैं ॥ ८ ॥

पित्तोन्मादके हेतु ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् । उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्यहृदिश्रितंपूर्ववदेवकुर्य्यात् ॥ ९ ॥

अजीर्णकारक भोजन करनेसे कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण अन्नपानके सेवनसे

संचितहुआ पित्त उदीर्ण हो वेगको धारण करताहै, तब अजितात्मा मनुष्यके हृदयमें आश्रित हो चित्तको विगाड देताहै, फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर उन्माद रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ९ ॥

पित्तोन्मादके लक्षण।

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाःसन्तर्जनाभिद्रवणौष्ण्यरोषाः। प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषःपीताचभाःपित्तकृतस्यलिङ्गम् ॥ १० ॥

क्रोध, घबडाहट, नंगा होजाना, संतर्जन(झिडकना) भागना, शरीरमें गरमी होना, रोप, छायाकी इच्छा और शीतल अन्नजलकी अभिलाषा करना, नेत्रोंका और शरीरका वर्ण पीला होना यह पित्त उन्मादके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफोन्मादके हेतु।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टनैश्चसोष्माकफोमर्मणिसम्प्रवृद्धः। बुद्धिंस्मृतिश्चाप्युपहत्यचित्तंप्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

अधिक भोजन करनेसे, शारीरक चेष्टा न करने (आलसी बना रहने) से, ऊष्माके साथ मिला कफ हृदयमें प्रविष्ट होकर वृद्धिको प्राप्त होताहै फिर बुद्धि और स्मृतिको नष्टकर चित्तको विगाडताहुआ उन्माद रोगको उत्पन्न करताहै ॥ ११ ॥

कफोन्मादके लक्षण।

वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियतातिनिद्रा। छर्दिश्चलालाचवलश्चभुङ्क्तेनखादिशौक्ल्यश्चकफात्मकेस्यात् ॥ १२ ॥

वाणी और चेष्टाका मंद होना, अरुचि, स्त्रियोंसे प्रेम, एकांत वासकी इच्छा, अतिनिद्रा, वमन और लारका गिरना, भोजन करते ही रोग पहिलेसे अधिक बढजाना नख, नेत्र और मूत्र पुरीषादिकोंको श्वेत होना यह कफजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातज उन्माद।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरःसर्वैःसमस्तैःसतुहेतुभिःस्यात्। सर्वाणिरूपाणिविभर्तितादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

जो उन्माद सन्निपातसे उत्पन्न होताहै वह अतिघोर उन्माद तीनों दोषोंके कारणोंसे उत्पन्न होताहै, इसमें तीनों दोषोंके समान संपूर्ण लक्षण होतेहैं यह चिकित्सामें विरोधी होनेसे अचिकित्स्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ १३ ॥

आगंतुजोन्माद।

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितॄणामभिधर्षणानि। आगन्तुहेतुर्नियमव्रतादिमिथ्याकृतंकर्मचपूर्वदेहे ॥ १४ ॥

देवता, ऋषि, गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणोंके शापसे व्रतादिकोंमें विधिभंग होनेसे, अथवा व्रतादिकोंमें अनुचित व्यवहार करनेसे वा पूर्वजन्मके पापोंके फलसे आगंतु उन्माद होताहै ॥ १४ ॥

भूतोन्मादके लक्षण।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्य्यः। उन्मादकालोऽनियतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १५ ॥

जिस उन्मादमें वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा, ज्ञान, विज्ञान और बल यह सब अमानुषीय हों अर्थात् मनुष्यके समान न हों और इस उन्मादके वेग होनेका कोई नियत समय नहीं हो उसको भूतोन्माद (भूतावेशसे उत्पन्न हुआ) जानना ॥ १५ ॥

शरीरमें देवादिकोंका आवेश।

अदूषयन्तःपुरुषस्यदेहंदेवादयःस्वैश्चगुणप्रभावैः। विशन्त्यदृश्यास्तरसायथैवच्छायातपौदर्पणसूर्य्यकान्तौ ॥ १६ ॥

देवता आदि मनुष्योंके शरीरको वातादिदोषोंसे दूषित न करतेहुए अपने गुणोंके प्रभावसे अलक्षितरूप हो मनुष्योंके देहमें प्रवेश करते हैं जैसे सूर्यकान्त मणि और दर्पणमें सूर्यकी किरणें अपने गुणप्रभावसे शीघ्र प्रवेश करलेतीहैं उसी प्रकार देवता आदि भी अलक्षित हो, शरीरमें प्रवेश करलेते हैं ॥ १६ ॥

आयातकालोहिसपूर्वरूपःप्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंसुराद्यैः। उन्मादरूपाणिपृथङ्निबोधकालश्चगम्यान्पुरुषांश्चतेषाम् ॥ १७ ॥

निदानस्थानमें देवताआदिकोंके प्रवेश होनेका काल और उन्मादरोगके पूर्वरूप कह आयेहैं अब सब प्रकारके उन्मादोंके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवणकरो तथा उन्मादोंका काल और देवताआदिकोंसे आविष्टहुए मनुष्योंके लक्षण श्रवण करो ॥ १७ ॥

देवोन्मादके लक्षण।

तद्यथा—सौम्यदृष्टिंगम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्वप्नमभोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरीषवातंशुभगन्धंफुल्लपद्मवदनमितिदेवोन्मत्तंविद्यात् ॥ १८ ॥

वह इसप्रकार हैं. देवताकृत उन्मादमें मनुष्यकी सौम्य दृष्टि, गंभीरता, अनिन्दनीय, क्रोधरहित, निद्राहीन, भोजनकी इच्छा न होना, स्वेद, मूत्र और पुरीष इनका अल्प होना बहुत थोडा बोलना देहसे सुगंध आना, मुखका प्रफुल्लित कमलके समान होना यह लक्षण देवोन्माद युक्त मनुष्योंके होतेहैं ॥ १८ ॥

शापोन्मादके लक्षण।

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिशापाभिचाराभिध्यानानुरूपाहा-
रचेष्टाव्याहारंतैरुन्मत्तंविद्यात् ॥ १९ ॥

गुरू, वृद्ध, सिद्ध और ऋषियोंके अभिचार अथवा शाप या अभिध्यानसे जो उन्माद उत्पन्न होताहै वह उन्हीं (अभिचार, शाप, आदि) के अनुरूप आहार चेष्टा और व्यवहार द्वारा जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पितृकृतोन्मादके लक्षण।

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तंनिद्रालुंप्रतिहतवाचमनन्नाभिलापारोचका-
विपाकपरीतंपितृभिरुन्मत्तंविद्यात् ॥ २० ॥

कलुषित दृष्टि होना, देखनेमें असमर्थता, अधिक निद्रा, वाणीका प्रतिहत होना, अन्नकी अभिलाषा न होना, अरोचक और अविपाक (अन्नका पाक न होना) यह सब लक्षण पितृगणके कोपसे उत्पन्नहुए उन्मादके होतेहैं ॥ २० ॥

गंधर्वाविष्टोन्मादके ल०।

चण्डंसाहसिकंतीक्ष्णंगम्भीरमप्रधृष्यंसुखवाद्यनृत्यगीतान्नपानस्ना-
नपानमाल्यधूपगन्धरक्तवस्त्रबलिकर्महास्यकथायोगप्रियंशुभगन्ध-
मितिगन्धर्वोन्मत्तंविद्यात् ॥ २१ ॥

स्वभावका प्रचण्ड होना, साहस, स्वभावमें तीक्ष्णता, गंभीरता, अप्रधृष्य, मुखसे बाजे बजाना, नृत्यगीतादि प्रिय होना, अन्न पान और स्नानमें प्रेम होना माला, धूप और गन्धादिकोंमें स्नेह होना, लाल वस्त्र, बलिकर्म और हास्य कथा आदिक प्रिय लगना, शरीरसे अति उत्तम गन्धका आना यह गन्धर्वाविष्ट उन्मादके लक्षण जानना ॥ २१ ॥

यक्षोन्मादके लक्षण ।

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यगीतवाद्यकथान्नपानस्नानमाल्यधूपग-
न्धरतिंरक्तविप्लुताक्षंद्विजातिवैद्यपरिवादिनंरहस्यभाषिणामितिय-
क्षोन्मत्तंविद्यात् ॥ २२ ॥

बारम्वार सोना, रोदन करना और हँसना तथा नाचना, गाना, मुखसे बाजे बजाना, बकना और अन्नपान, स्नान, फूलमाला, धूप और गंधधारणमें इच्छा होना, नेत्रोंका अत्यंत लाल होना, ब्राह्मण और वैद्योंकी निन्दा करना, अपनी तथा अन्य पुरुषोंकी गुह्य बातोंका प्रकाश करना यह यक्षोन्मादयुक्तके लक्षण जानने ॥ २२ ॥

राक्षसोन्मादके लक्षण ।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमप्रतिबलिनंशस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिलाषिणंसन्तर्जकमितिराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ॥ २३ ॥

निद्रानाश, अन्नपानमें द्वेष, भोजन न करना, अत्यन्त बल होना तथा शस्त्र, रुधिर, मांस और लाल फूलोंकी मालाकी अभिलाषावाला होना, ताडन करनेवाला होना यह सब लक्षण राक्षसोन्मादसे उन्मत्त पुरुषके होतेहैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मराक्षसजनितोन्मादके ल० ।

प्रहासनृत्यप्रधानंदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभिष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैःकाष्ठादिभिरात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ॥ २४ ॥

अत्यन्त हँसना, नाँचना, तथा देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखना, अवज्ञापूर्वक स्तुति, वेदमंत्र और शास्त्रोंके उदाहरण देना, अपनी देहको लकडी आदिसे पीडन करना यह सब ब्रह्मराक्षजनित उन्मादरोगीके लक्षण हैं ॥ २४ ॥

पैशाचिक उन्मादके लक्षण ।

अस्वस्थचित्तंस्थानमलभमानंनृत्यगीतहासिनंबद्धावद्धप्रभाषिणंसङ्कटकूटमलिनरथ्याचेलतृणेष्वारोहणरतिंसंभिन्नवर्णरूक्षस्वरंनग्नंविधावन्तंनैकत्रतिष्ठन्तंदुःखान्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिंपिशाचोन्मत्तंविद्यात् ॥ २५ ॥

चित्तका स्वास्थ्य न होना, किसी स्थानमें स्थिर होकर न बैठना, नाचना, गाना, हँसना, उचित और अनुचित अथवा संगत और असंगत बातोंको बकना, कष्टदायक स्थानोंमें, अथवा पर्वतादिकोंके शिखरपर वा मलिन मार्गमें, अथवा कुचैले वस्त्रोंके ढेरपर चलना, घासके ढेरपर चढना और उन विकट स्थानोंमें बैठकर सुख मानना, वर्णका विगडजाना, स्वरका रूक्ष होना, नंगा होजाना, इधर उधर भागते फिरना, एक स्थान पर नहीं ठहरना, दुःखोंको कहना, स्मरणशक्तिका नष्ट होना यह पिशाचावेशजनित उन्मादके लक्षण हैं ॥ २५ ॥

देवादिआवेशके समय।

तत्रशौचाचारंतपःस्वाध्यायकोविदंनरंप्रायःशुक्लप्रतिपदित्रयोदश्याश्चदेवाधर्षयन्ति ॥ २६ ॥

शौच, आचार, तप और स्वाध्याययुक्त मनुष्यको प्रायः शुक्लपक्षकी प्रतिपदा अथवा त्रयोदशीको छिद्र पाकर देवता अपना आवेश करतेहैं ॥ २६ ॥

स्नानशुचिविविक्तसेविनंधर्मशास्त्रश्रुतिकाव्यकुशलंप्रायःषष्ठीनवम्योर्ऋषयो धर्षयन्ति ॥ २७ ॥

जो मनुष्य नित्य स्नान, पवित्रता, एकांतवास करता है और धर्मशास्त्र, श्रुति, काव्यके जाननेमें कुशल है, उस मनुष्यमें षष्ठी और नवमीके दिन छिद्र पाकर ऋषियोंका आवेश होताहै ॥ २७ ॥

मातृपितृगुरुवृद्धसिद्धाचार्य्योपसेविनंप्रायोदशम्याममावस्यायाश्च पितरो धर्षयन्ति ॥ २८ ॥

जो मनुष्य माता, पिता, गुरू, वृद्ध, सिद्ध और आचार्योंका सेवक होताहै उसके शरीरमें प्रायः दशमी १० और अमावस्या ३० को समय पाकर पितृगण अपना असर (आवेश) करतेहै ॥ २८ ॥

गन्धर्वास्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिंपरदारगन्धमाल्यंप्रियंशौचाचारं द्वादश्यांचतुर्दश्याश्चधर्षयन्ति ॥ २९ ॥

जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाना, बजाना, आदिमें तत्पर हो अथवा परस्त्रीगमन करताहो या गंध, सुगन्धितमाला धारण कियेहुए हो, शौचाचारसे स्नेह रखताहो, उसके शरीरमें द्वादशी १२ अथवा चतुर्दशीको १४ गन्धर्व समय पाकर आवेश करतेहैं ॥ २९ ॥

सत्त्वबलरूपगर्वशौर्य्ययुक्तंमाल्यानुलेपनंहास्यप्रियमतिवाक्करणंप्रायःशुक्लैकादश्यांसप्तम्याश्चयक्षाधर्षयन्ति ॥ ३० ॥

जो मनुष्य सत्त्व, बल, रूप, गर्व और शौर्य युक्त हो, माला और चन्दनादिलेपन धारण कियेहुए हो, हास्यप्रिय और अत्यन्त बोलनेवाला और सर्वेन्द्रिय संपन्न हो उसके शरीरमें शुक्लपक्षकी एकादशी ११ अथवा सप्तमी ७ को छिद्र पाकर यक्ष प्रवेश करतेहैं ॥ ३० ॥

स्वाध्यायतपोनियमोपवासव्रतचर्य्यादेवयतिगुरुपूजारतिंभ्रष्टशौ-

चंब्राह्मणमब्राह्मणंवाब्रह्मवादिनंशूरमानिनंदेवतागारसलिलक्रीड-नरतिंप्रायःशुक्लपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मराक्षसाधर्षयन्ति॥३१॥

जो मनुष्य स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या और देव, यति तथा गुरुकी पूजामें रत हो वह भ्रष्टशौच (अशुद्ध), ब्राह्मणनिन्दक, शूरवीरताका अभिमानी, देवस्थानमें जलक्रीडा करताहो तो उस मनुष्यके शरीरमें पंचमी ५ अथवा पूर्णिमा १५ तिथिको छिद्र पाकर ब्रह्मराक्षस प्रवेश करतेहैं ॥ ३१ ॥

रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिशुनस्त्रैणलुब्धंप्रायोद्वितीयातृतीयाष्टमीषुपुरुषंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्ति । इत्यपरिसंख्येयानांग्रहाणामाविष्कृततयाह्यष्टावेतेव्याख्याताः ॥ ३२ ॥

जो मनुष्य हीनसत्व, पिशुन और स्त्रीलंपट तथा लोभी हो, उस मनुष्यके शरीरमें द्वितीया, तृतीया, अथवा अष्टमीके दिन छिद्र पाकर राक्षस और पिशाच अपना आवेश करतेहैं सब प्रकारके ग्रहोंमे यह आठ अत्यंत बलवान् होनेसे इनका वर्णन इस स्थानमें कियागयाहै ॥ ३२ ॥

सर्वेष्वपितुखल्वेषुयोहस्तावुद्यम्यरोपसंरम्भान्निःसंज्ञमन्येष्वात्मनिवापातयेत्सह्यसाध्योज्ञेयस्तथायःसाश्रुनेत्रोमेढ्रप्रवृत्तरक्तःक्षतजिह्वःप्रस्रुतनासिकश्छिद्यमानमर्माप्रतिहन्यमानपाणिःसततंविकूजन्दुर्वर्णस्तृषार्त्तःपूतिगन्धिश्चहिंसार्थ्युन्मत्तोज्ञेयस्तंपरिवर्जयेत्॥३३॥

इन सब प्रकारके उन्मादग्रस्त रोगियोंमें जो उन्मादरोगी दोनों हाथोंको उठाकर क्रोधसे भ्रुकुटियोंको चढाताहुआ, एकाएकी अचेत होकर स्वयं अपने अथवा अन्यके शरीरपर दोनों हाथोंको पटक देवे और संज्ञारहित होजावे वह रोगी असाध्य जानना जिस उन्मादरोगीके नेत्रोंसे आंसुओंका स्राव, शिश्नेन्द्रियसे रुधिरस्राव, होताहो और जिह्वा फटकर घावयुक्त होगई हो, नासिकासे स्राव होता हो, हृदयमें छेदनकीसी पीडा होतीहो, वारंवार हाथोंको पटकताहो, निरन्तर कण्ठकूजन हो, शरीरका वर्ण बिगड जावे, प्याससे व्याकुल हो, और शरीरसे दुर्गन्ध आतीहो, जो हिंसा करनेके लिये उद्यत हो ऐसा उन्मादरोगी असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ३३ ॥

रत्यर्चनकामोन्मादिनोतुभिषगभिचाराभिशापाभ्यांवुद्धातदङ्गोपहारबलिश्रमेणमन्त्रभैषज्यविधिनाउपक्रमेन ॥ ३४ ॥

जो उन्माद किसी स्त्रीके किये हुए अभिचार (जादूटोना) से उत्पन्न हुआ हो वह उन्मादवाला रोगी रतिप्रिय होताहै, और किसी इष्ट देवताके पूजनमें व्यतिक्रम

होनेसे जो उन्माद होताहै उसमें पूजन प्रियके लक्षण होतेहैं इसलिये वैद्य अभिशाप और अभिचारसे उत्पन्न हुए इन दोनों प्रकारके उन्मादोंमें बलिदान, उपहार पूजन आदि तथा अभिमंत्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ३४ ॥

तत्रद्वयोरपिनिजागन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोःसमासविस्ताराभ्यांभेषजविधिंव्याख्यास्यामः ॥ ३५ ॥

अब हम उन निज और आगंतु निमित्तक उन्मादोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साका वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥

उन्मादोंमें शोधनका निर्देश ।

उन्मादेवातजेपूर्वंस्नेहपानंविशेषवित् । कुर्य्यादावृतमार्गेतुसस्नेहं मृदुशोधनम् ॥ ३६ ॥ कफपित्तभवेप्यादौवमनंसविरेचनम् । स्निग्धस्विन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः ॥ ३७ ॥ निरूहणस्नेहवस्तीशिरसश्चविरेचनम् । ततःकुर्य्याद्यथादोषंतेषांभूयस्त्वमाचरेत् ॥ ३८ ॥

वातजनित उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना चाहिये. यदि उसमें छिद्र रुकेरहेंतो मृदु शोधन करना हितकारी होताहै कफसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन और स्वेदन करनेके अनन्तर वमन कराना चाहिये पित्तसे उत्पन्न हुए उन्मादमें स्नेहन स्वेदन कराके विरेचन कराना चाहिये फिर विधिवत् पेयादि क्रमका प्रयोग करे उसके अनन्तर निरूहण वस्ति और शिरोविरेचन कराना हित है इसके अनन्तर यदि दोष शेष हो और शोधनकर्म योग्य हो तो फिर भी यथाक्रम वमनादिका प्रयोग करतारहे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

शोधनके गुण ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठसंशुद्धेवमनादिभिः ।
मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिंसंज्ञाश्चविन्दति ॥ ३९ ॥

वमन विरेचनादि द्वारा हृदय, इन्द्रिय, मस्तक और कोष्ठ शुद्ध होनेपर मन प्रसन्न होताहै और प्रसन्नता होनेसे स्मरण और संज्ञाज्ञानका संचार होने लगताहै ॥ ३९ ॥

स्मृतिकारक यत्न ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशेतीक्ष्णंनावनमञ्जनम् ।
ताडनञ्चमनोबुद्धिदेहसंत्तर्जनंहितम् ॥ ४० ॥

वमनादि द्वारा शुद्ध काय होनेपर भी यदि रोगी आचारविभ्रंश (वेहोशी, भ्रष्टता आदि) के लक्षण दिखावे तो उसको तीक्ष्ण नस्य अंजन और ताडना आदिका प्रयोग करे । ऐसे समय मन, बुद्धि और देहको तर्जन (ताडन) करनेवाले उपाय हितकारी होतेहैं ॥ ४० ॥

यःशक्तोविनयेत्पट्टैःसंयम्यसुदृढैःसुखैः । अपेतलोष्टकाष्ठाद्यैःसंरोध्यश्चतमोगृहे ॥ ४१ ॥ तर्जनंत्रासनंदानंसान्त्वनंहर्षणंभयम् । विस्मयोविस्मृतेर्हेतोर्नयन्तिप्रकृतिंमनः ॥ ४२ ॥

यदि रोगी बलवान् हो उसको दृढ नरम रेशमी रस्सोंसे अथवा कपडेसे दृढ बांधकर जिस प्रकार उसके शरीरमें चोट आदि न लगे ऐसी रीतिसे बांधे और कंकड, लकडी आदिसे रहित अंधेरे घरमें बन्द करदेवे ऐसे रोगीको ताडना, त्रास देना, उसके इच्छित पदार्थ देना, शान्तिदायक वाक्योंसे समझाना, प्रसन्न करना, भय दिखाना और अनेक बातोंमें भुलाये रखना इन सब कर्मोंसे उस स्मृतिरहित मनुष्यमें फिर स्मरणशक्तिका प्रबोध होजाताहै और मन पहिलेके समान स्वस्थ होजाताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमपानश्चसर्पिषः । प्रयोक्तव्यंमनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ ४३ ॥ सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यतेविधिः । अतःसिद्धतमान् योगाञ्छृणून्मादविनाशनान् ॥४४॥

औषधियोंका प्रलेप, उत्सादन, अभ्यंग, धूम्रपान और घृत पान इन सबके करनेसे मन, बुद्धि, स्मृति और संज्ञा इनका प्रबोध होताहै । आगंतुज उन्मादमें मंत्रादिकोंसे अभिमंत्रित कियेहुए और भूतनाशक औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंका पान कराना तथा मंत्रप्रयोग करना हितकारक होताहै । अब उन्मादनाशक सिद्ध (अनुभव कियेहुए) योगोंको श्रवण करो ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

उन्मादनाशक घृत ।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणेगवांमूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ४५ ॥

हींग, संचरनमक, पीपल, मिरच, सोंठ यह प्रत्येक दो २ पल लेकर कल्क बनावे, इनका कल्क और चारगुना जल मिलाकर एक आढक घृतको शुद्ध करे यह घृत उन्मादरोगको दूर करताहै ॥ ४५ ॥

कल्याण घृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम् । स्थिरानन्तारजन्यौ-

द्वेशारिवेद्वेप्रियंगुकम् ॥ ४६ ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेशरम् । तालीशपत्रंबृहतीमालत्याःकुसुमंनवम् ॥ ४७ ॥ विडङ्गंपृश्निपर्णीचकुष्ठंचन्दनपद्मकौ । कल्कैः कर्षसमैरेतैर्विंशत्यष्टाभिरेवच ॥ ४८ ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वाघृतप्रस्थंविपाचयेत् । अपस्मारे ज्वरेकासेश्वासेमन्देऽनलक्षये ॥ ४९ ॥ वातरोगेप्रतिश्यायेतृतीयकचतुर्थके । छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेचविसर्पोपहतेपुच ॥ ५० ॥ कण्डुपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगदेषुच । भूतोपहतचित्तानांगद्गदानामचेतसाम् ॥ ५१ ॥ शस्तंस्त्रीणाञ्चवन्ध्यानांधन्यमायुर्बलप्रदम् । अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नंसर्वग्रहविनाशनम् । कल्याणकमिदंसर्पिःश्रेष्ठंपुंसवनेषुच ॥ ५२ ॥

इन्द्रायण, हरड, बहेडा, आँवला, रेणुका, देवदारु, एलवालुक, शालपर्णी, हलदी, दारुहलदी, दोनों शारिवा, फूलप्रियंगु, नील कमल, इलायची, मजीठ, दन्ती, दाडिम, नागकेशर, तालीशपत्र, बडी कटेली, मालतीके नवीन फूल, वायविडंग, पृष्ठपर्णी, कूठ, चन्दन और पद्माक, इन २८ औषधियोंको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे ४ चार प्रस्थ लेवे इन सबको मिलाकर अग्निपर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रमें भरलेवे । इस घृतके सेवनसे अपस्मार, ज्वर, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, वातरोग, प्रतिश्याय, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विषविकार, प्रमेह, दूषीविष, भूतावेशसे उपहतचित्त, गद्गदभाषणरोग, शुक्रनाश और स्त्रियोंका वांझपन यह सब दूर होतेहैं यह घृत आयु और बलको बढाताहै तथा अलक्ष्मी, पाप, राक्षस और सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करताहै यह कल्याण नामक घृत पुंसवन कर्ममें भी परम श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वैकविंशतिम् । रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणे ॥ ५३ ॥ वीराद्विमाषकाकोलीस्व (यं) गुप्तर्षभकर्द्धिभिः । मेदयाचसमैःकल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकंमहत् । बृंहणीयं विशेषेणसन्निपातहरंपरम् ॥ ५४ ॥

शालपर्णीसे लेकर उपरोक्त (कल्याणघृत) की २१ इक्कीस औषधियें एक एक कर्ष लेकर दशगुने जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर छानलेवे इस क्वाथमें परिलोन

ब्याईहुई गौका दूध चार ४ प्रस्थ, पुराना घृत एक १ प्रस्थ मिलावे और क्षीरकाकोली, उडद, राजमाष, काकोली, कौंचके बीजोंकी गिरि, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन सब औषधियोंका कल्क मिलावे सबको विधिपूर्वक पकाकर घृत सिद्ध होनेपर छानलेवे इस घृतको महाकल्याणघृत कहतेहैं यह घृत शरीरको बृंहण करनेवाला और विशेषकर सन्निपातके उन्मादको नष्ट करनेवाला है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

महापैशाचिकघृत ।

जटिलांपूतनांकेशींचारटींमर्कटीं वचाम् । त्रायमाणांजयांवीरां-चोरकंकटुरोहिणीम् ॥ ५५ ॥ कायस्थांशूकरींछत्रामतिच्छत्रां पलंकपाम् । महापुरुषदन्ताञ्चवयःस्थांनाकुलीद्वयम् ॥ ५६ ॥ कटम्भरांवृश्चिकालींस्थिराञ्चाहृत्यतैर्घृतम् । सिद्धंचातुर्थकोन्मा-दग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ५७ ॥ महापैशाचिकंनामघृतमेतद्यथा-मृतम् । बुद्धिस्मृतिकरञ्चैवबालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम् ॥ ५८ ॥

जटामांसी, हरड, भूतकेशी, भूमिआमलकी, कौंचके बीज, वच, त्रायमाण, हरी दूर्वा, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, गिलोय, वाराहीकंद, छत्रा [धनियां] सौंफ, गूगल, शतावरी, बहेडा, गन्धनाकुली, सफेद कटेरी, कटंभरा, वृश्चिक-पत्री, शालपर्णी इन सबका कल्क बनाकर चारगुना दूध मिला पुराने घृतको सिद्ध-करे यह घृत तत्काल फल दिखानेवाला है इससे चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह और अपस्मार यह सब नष्ट होतेहैं यह महापैशाचिक घृत अमृतके समान गुणकारी है बुद्धि और स्मृतिको बढानेवाला है तथा बालकोंके अंगोंको बढाताहै ॥ ५५-५८ ॥

लशुनादिघृत ।

लशुनानांशतंत्रिंशदभयात्र्यूषणात्पलम् । गवांचर्ममसीप्रस्थो द्वयाढकंक्षीरमूत्रयोः ॥ ५९ ॥ पुराणसर्पिषःप्रस्थमेभिःसिद्धंप्रयो-जयेत् । हिंगुचूर्णपलंशीतेदत्त्वाचमधुमाणिकाम् ॥ ६० ॥ तद्दो-षागन्तुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान् । अपस्मारांश्चहन्त्याशुपा-नाभ्यञ्जननावनैः ॥ ६१ ॥

लहसुन, नग १००, हरड ३०, मिर्च पीपल सोंठ यह सब मिलाकर १ पल गोदुग्ध १ आढक, गोमूत्र १ आढक, पुराना घृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर सिद्ध करे फिर इस घृतको ठंढा करके इसमें भुनी और पिसीहुई हींग एक पल और शहद आठ पल मिलावे इस घृतको पीने, मालिश करने और नस्यकर्ममें प्रयोग करनेसे आगन्तु उन्माद, विषमज्वर और अपस्मार यह सब दूर होतेहैं ॥ ५९-६१ ॥

द्वितीयलशुनादि घृत।

लशुनस्याविनष्टस्यतुलार्द्धंनिस्तुषीकृतम्। तदर्द्धंदशमूलस्यद्वथाढकेऽपांविपाचयेत् ॥ ६२ ॥ पादशेषेघृतप्रस्थंलशुनस्यरसंतथा। कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकैरसैः ॥ ६३ ॥ दाडिमाम्लसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्द्धिकैः। साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ६४ ॥ यमानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्चपलार्द्धिकैः। सिद्धमेतत्पिबेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ६५ ॥ ब्रध्नपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषज्वरक्रिमीन्। वातश्लेष्मामयान्सर्वानुन्मादश्चापकर्षति ॥ ६६ ॥

छिलकारहित उत्तम लहसुनके कंद ५० पचास पल, दशमूल २५ पल इन सबका दो आढक जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर छान लेवे फिर इसमें घृत एक मस्थ, लहसुनका रस एक मस्थ, वेर मूली, निंतिडीक, विजौरा, अदरक और अनारदानेका रस, सुरा, मस्तु, काँजी यह सब आधा २ मस्थ लेवे। हरडे, आँवले, वहेडे, दारुहलदी, सेंधालवण, मिरच, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, चव्य, हींग, अम्लवेत इन प्रत्येकको आधा २ पल लेवे, इन सबको विधिवत् मिलाकर घृत सिद्ध करे इस घृतके सेवनसे शूल, गुल्म, ववासीर, उदररोग, ब्रध्मरोग, पाण्डुरोग, प्लीहारोग, योनिदोष, ज्वर, क्रिमिरोग, वात, कफरोग तथा अन्य उन्माद आदि रोग सब दूर होतेहैं ॥ ६२-६६ ॥

अन्यादि घृत।

हिंगुनाहिंगुपर्ण्याचसकायस्थावयःस्थया। सिद्धंसर्पिर्हितंतद्वद्वयःस्थाहिंगुरोचकैः ॥ ६७ ॥ केवलंसिद्धमेभिर्वापुराणंपाययेद्घृतम्। पाययित्वोत्तमांमात्रांश्वभ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा ॥ ६८ ॥

हींग, वेणुपत्री, आमला, हरडे इनके कल्कोंके साथ सिद्ध कियाहुआ पुराना घृत अथवा वयस्था, हींग और राजपलांडुमे सिद्ध कियाहुआ घृत उत्तममात्रा पिलाकर निर्वातक स्थानमें रक्खे यह दोनों घृत उन्माद रोगको दूर करनेवाले हैं ॥६७॥६८॥

पुराने घृतके गुण।

विशेषतःपुराणञ्चघृतंतंपाययेद्भिषक्। त्रिदोषघ्नंपवित्रत्वाद्विशेषाद्ग्रहमोक्षणम् ॥ ६९ ॥ गुणकर्माधिकंस्थानादास्वादात्कटुतिक्त-

कम् । उग्रगन्धंपुराणंस्याद्दशवर्षस्थितंघृतम् ॥ ७० ॥ लाक्षारसनिभंशीतंतद्धिसर्वग्रहापहम् । मेध्यंविरेचनेष्वग्र्यंप्रपुराणमतःपरम् ॥ ७१ ॥ नासाध्यंनामतस्यास्तियत्स्याद्वर्षशतस्थितम् । दृष्टं स्पृष्टमथाघ्रातंतद्धिसर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादवतांशस्तं विशेषतः ॥ ७२ ॥

उन्माद रोगमें विशेषकर वैद्य पुराना घृत पिलावे । पुराना घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होनेसे विशेषकर ग्रहनाशक होताहै । जो घृत बहुत दिनका पुराना होनेसे चर्परा, कडवा, उग्रगंधयुक्त और दश वर्षका पुराना हो तथा लाखके समान लालवर्णका और शीतल होताहै वह सब प्रकारके ग्रहोंको दूर करनेवाला है । दस वर्षसे भी अधिक पुराना घी मेधावर्धक, उत्तम विरेचनकारक, होताहै दस वर्षसे अधिक घृत ही पुराना घृत कहागया है । एक सौ वर्षसे पुराने घृतसे जो नष्ट न हो ऐसा कोई भी रोग नहीं विशेषकर अपस्मार और भूतोन्मादवाले रोगीको परम हितकारक है यह घृत देखनेसे स्पर्श करनेसे और सूंघने मात्रसे ही सब ग्रहोंको दूर कर देताहै । अथवा ऐसे समझिये कि, आँखोंमें अंजन शरीरपर मालिश और नस्य कर्ममें प्रयोग करनेसें यह घृत सब ग्रहोंको दूर करता है ॥ ६९-७२ ॥

उन्मादनाशक नस्य और अञ्जन ।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वंसगच्छति । अञ्जनोन्मादनालेपान्नावनादींश्चयोजयेत् ॥ ७३ ॥ शिरीषोमधुकंहिंगुलशुनंतगरंवचाम् । कुष्ठञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टंस्यान्नावनाञ्जनम् ॥ ७४ ॥

इन नीचे लिखीहुई औषधियोंसे अंजन, उत्सादन, आलेपन और नस्यकर्म करनेसे उन्मादरोग शान्त होजाताहै । वे यह हैं जैसे शिरसके बीज, मुलैठी, हींग, लहसुनका रस, तगर, वच और कडुआ कूट, इन औषधियोंमेंसे किसी एक अथवा सबको बकरीके मूत्रमें घोटकर नस्य और अंजन करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

तद्वद्व्योषंहरिद्रेद्वेमञ्जिष्ठाहिंगुसर्षपाः ।
शिरीषबीजञ्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ७५ ॥

इसीविधिसे सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, आवा हलदी, मँजीठ, हींग, सफेद सरसों और सिरसके बीज इन सबके चूर्णको बकरीके मूत्रमें घोटकर अंजन और नस्य कर्ममें प्रयुक्त करनेसे उन्माद, ग्रह और अपस्मार रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ७५ ॥

पिष्ट्वातुल्यमपामार्गंहिंगुलंहिंगुपत्रिकाम् । वर्त्तिःस्यान्मरिचार्द्धांशापित्ताभ्यांगोश्रृगालयोः ॥ ७६ ॥ तथाञ्जयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरार्दितान् । भूतार्त्तानमरार्त्तांश्चनरार्त्तांश्चैवगोमये ॥ ७७ ॥ मरिचश्चातपेमासंसपित्तंस्थितमञ्जनम् । वैकृतंपश्यतःकार्य्यंदोषभूतहतस्मृतेः ॥ ७८ ॥

अपामार्गके वीज, हिंगुल (सिंगरफ) हिंगुपत्री इन सबको समानभाग लेकर इन सबसे आधी काली मिर्च मिला गोघृत और श्रृगालके पित्तमें मिलाकर वत्ती बनावे इस बत्तीको आग लगाकर इसके नीचे कांसीके पात्र रख देवे । इस वत्तीके जलते समय इसमेंसे जो स्नेह उस पात्रमें टपके उस स्नेहका अंजन करनेसे अपस्मार, भूतोन्माद, विषमज्वर, भूतावेश, देवताओंका आवेश यह सब दूर होतेहैं अथवा कालीमिर्चको गोबरके रस और गीदडके पित्तमें मिलाकर एक महीना धूपमें रक्खे । फिर इसका अंजन करे तो भूतोन्मादसे हुई विकृत दृष्टि और उन्मादका स्मृतिभ्रंश यह दूर होतेहैं ॥ ७६-७८ ॥

सिद्धार्थकादि अगद ।

सिद्धार्थकोवचाहिंगुकरञ्जेदेवदारुच । मञ्जिष्ठात्रिफलाश्वेताकटभीत्वक्कटुत्रिकम् ॥ ७९ ॥ समांशानिप्रियंगुश्चशिरीषोरजनीद्वयम् । वस्तमूत्रेणपिष्टोऽयमगदः पानमञ्जनम् ॥ ८० ॥ नस्यमालेपनञ्चैवस्नानमुद्वर्त्तनंतथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहः ॥ ८१ ॥ भूतेभ्यश्चभयंहन्तिराजद्वारेचशस्यते । सर्पिरेतेनसिद्धंवासगोमूत्रंतदर्थकृत् ॥ ८२ ॥

सफेद सरसों, हींग, करंजुएके फल, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, श्वेता, कटभीकी छाल, त्रिकुटा, फूलप्रियंगु, शिरसकी छाल, हलदी और दारुहलदी इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसलेवे तो इसको अगद कहतेहैं इस अगदको पीनेमें, अंजनमें, लेपनमें, नस्यमें, स्नानमें तथा उद्वर्तनमें प्रयोग करनेसे अपस्मार, विषदोष, उन्माद, अलक्ष्मी और ज्वर यह सब नष्ट होतेहैं । इसके प्रभावसे भूतादिकोंसे भय नहीं रहता । इसका अंजन कर राजद्वारमें जानेसे सिद्धि होतीहै, इन्हीं औषधियोंमें गोमूत्र डालकर सिद्ध कियाहुआ घृत भी उपरोक्त संपूर्ण गुणोंको करताहै ॥ ७९-८२ ॥

धूमवर्त्ती ।

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्त्तिंकृतांपिबेत् । वैरेचनिकधूमोक्तैःश्वेता-

निक्रूरकर्मच ॥ ९८ ॥ सर्पिष्पानादितस्येहमृदुभैषज्यमाचरेत् । पूजांवल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनविधींस्तथा ॥ ९९ ॥ शान्तिकर्मेष्टिहोमांश्चजप्यस्वस्त्ययनानिच । वेदोक्तान्नियमांश्चापिप्रायश्चित्तानि चाचरेत् ॥ १०० ॥

भूतादियोंके आवेशसे उत्पन्न हुए उन्मादमें और वातादिजनित निज उन्मादमें देश, अवस्था, सात्म्य, दोष, काल और बलाऽबल इन सबको जानकर चिकित्सा करना चाहियें । देवता, ऋषि, पितृगण और गंधर्वोंसे उत्पन्न हुए उन्मादमें बुद्धिमान् वैद्य तीक्ष्ण अंजन और ताडनादि क्रूर कर्म न करे । किंतु घृतपानादि मृदु औषधप्रयोग और पूजा, बलिदान, उपहार, मंत्र, पवित्र अंजन, शांतिकर्म वैदविधिसे यज्ञ, होम, जप, स्वस्तिकर्म करे तथा वेदोक्त नियमोंका पालन करे और प्रायश्चित्तादि शुभ आचरण करे ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

भूतानामधिपंदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम् ।
पूजयन्प्रयतोनित्यंजयत्युन्मादजंभयम् ॥ १०१ ॥

जो मनुष्य गण गणेशादि सहित भूतोंके पति, महेश, जगत्के स्वामी महादेवको नित्य यतचित्त हो पूजन करताहै वह उन्मादसे होनेवाले भयसे छूट जाताहै ॥१०१॥

रुद्रस्यप्रमथानामगणालोकेचरन्तिये ।
तेषांपूजाश्चकुर्वाणउन्मादेभ्योविमुच्यते ॥ १०२ ॥

महादेवजीके प्रमथ नामक गण जो संसारमें विचरतेहैं उनका पूजन करनेवाला मनुष्य भूतोन्माद रोगसे छूट जाताहै ॥ १०२ ॥

बलिभिर्मङ्गलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः । सत्याचारतपोज्ञानप्रदाननियमव्रतैः ॥ १०३ ॥ देवगुह्यकविप्राणांगुरूणांपूजनेनच । आगन्तुःप्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ॥ १०४ ॥

बलिदान, मंगलकर्म और होम करनेसे, पवित्र औषध और अगदके धारणसे, सत्य आचार, तप, ज्ञान, दान, नियम और व्रत करनेसे; देवता, गुह्यक, ब्राह्मण और गुरुजनोंके पूजनसे आगंतु उन्माद शांत होजातेहैं । तथा सिद्धमंत्रों और औषधियोंसे भी शांत हो जातेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

यच्चोपदेक्ष्यतेकिञ्चिदपस्मारेचिकित्सिते ।
उन्मादेतच्चकर्त्तव्यंसामान्याद्धेतुदृष्ययोः ॥ १०५ ॥

अपस्मार रोग चिकित्सामें जो विधि वर्णन करेंगे हेतु, दूष्योंमें समानता होनेसे उन्मादरोगमें भी उस विधिका आचरण करना चाहिये ॥ १०५ ॥

पवित्रजनोंको उन्माद न होना।

निवृत्तामिषमद्योयोहिताशीप्रयतःशुचिः।

निजागन्तुभिरुन्मादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते ॥ १०६ ॥

जो मनुष्य मांस मद्यका स्पर्श भी नहीं करते और पवित्र हित भोजन करतेहैं तथा जितेन्द्रिय और पवित्र रहतेहैं उनको निज या आगतु उन्माद होता नहीं ॥ १०६ ॥

उन्मादमुक्तके लक्षण।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा।

धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम् ॥ १०७ ॥

इंद्रिय, बुद्धि, आत्मा और मन इनकी प्रसन्नता होनी और सब धातुओंका प्रकृतिस्थ होना यह उन्मादयुक्त होनेके लक्षण हैं ॥ १०७ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्रश्लोकः।

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसचिकित्सितम्।

निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भिषगुत्तमः ॥ १०८ ॥

इति चरक० चि० उन्मादचिकित्सितंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इसे उन्मादचिकित्सित, अध्यायमें निज और आगंतु उन्मादोंके कारण लक्षण और चिकित्साको वैद्यशिरोमणि आत्रेयजीने वर्णन किया ॥ १०८ ॥

इति श्रीचर० चिकित्सितस्थाने प्र० भा० टी० उन्मादचिकित्सित नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः।

अथातोऽपस्मारचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अब हम अपस्मार (मृगी) चिकित्सानामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

स्मृतेरपगमंप्राहुरपस्मारंभिषग्विदः ।
तमःप्रवेशबीभत्सचेष्टंधीसत्त्वसंप्लवात् ॥ १ ॥

स्मरणशक्तिके नष्ट होनेको वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले अपस्मार कहतेहैं । इसमें स्मृतिके नष्ट होनेसे बुद्धि और मन उपहत होकर मनुष्य अंधकारमें प्रवेश करताहै तब इसकी भयानक चेष्टा होजातीहै ॥ १ ॥

अपस्मारके कारण ।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजिनाम् । रजस्तमोभ्यांविहतेसत्त्वेदोषावृतेहृदि ॥ २ ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा । मनस्यभ्याहतेनृणामपस्मारःप्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

जिनका चित्त विभ्रांत हो, जिनके शरीरमें दोषोंकी अधिकता हो, जो अहित और अपवित्र भोजन करतेहों, जिनका सत्त्वगुण, रज और तमसे नष्ट हो गयाहो, जिनका हृदय दोषोंसे ढका जाय उन मनुष्योंको तथा चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक, और उद्वेग आदिकोंसे मनुष्योंका मन अभिहत होकर अपस्मार (मृगी) रोगकी प्रवृत्ति होतीहै ॥ २ ॥ ३ ॥

अपस्मारके लक्षण ।

धमनीभिःश्रितादोषाहृदयंपीडयन्तिहि । सम्पीडयमानोऽव्यथते मूढोभ्रान्तेनचेतसा ॥ ४ ॥ पश्यत्यसन्तिरूपाणिपततिप्रस्फुरत्यपि । जिह्माक्षिभ्रूस्रवल्लालोहस्तौपादौचविक्षिपन् । दोषवेगेचविगतेसुप्तवत्प्रतिबुद्ध्यते ॥ ५ ॥

वातादिदोष, हृदयमूला, धमनियोंमें प्रवेश कर हृदयको पीडन करतेहैं तब यह पीडित हृदयवाला मनुष्य व्यथित होताहै और चित्तके विभ्रांत होनेसे मूढ (बेहोश) होजाताहै । उस समय इसको असत् रूप दिखाई देवें तथा बेहोश होकर पृथ्वीपर गिरपडे, फडकने लगे इसके नेत्र और भृकुटियें टेढीसी होजांय, मुखसे लार गिरे हाथपांवोंको इधर उधर पटके, दोषोंका वेग शान्त होनेपर आरोग्य मनुष्यके समान उठकर स्वस्थ अवस्थामें होजाय । यह अपस्मार रोगके रूप हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

अपस्मारके ४ भेद ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चवक्ष्यतेसचतुर्विधः ॥ ६ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे अपस्मार रोग चार प्रकारका कहाहै । अब उनके लक्षणोंको कहतेहैं ॥ ६ ॥

वातापस्मारके लक्षण।

कम्पतेदशतेदन्तान्फेनोद्वामीश्वसित्यपि।
परुषाणिचकृष्णानिपश्येद्रूपाणिचानिलात्॥ ७॥

शरीरका कॉपना, दाँतोंका घिसना वा कटकटाना, मुखसे झाग गिरना, श्वास होना, तथा रोगीको कठोर और काले वर्णके रूप दिखाई देना। यह वातजनित अपस्मारके लक्षण हैं॥ ७॥

पित्तापस्मारके लक्षण।

पीतफेनाङ्गवक्राक्षःपीतासृग्रूपदर्शनः।
सतृष्णश्चानलव्याप्तलोकदर्शीचपैत्तिकः॥ ८॥

पित्तके अपस्मारमे मुखसे पीले रंगकी झाग गिरना, अंग, मुख, और नेत्रोका पीला होना रोगीको पीले और लाल रूपोंका दिखाई पडना, प्याससे व्याकुल होना और संपूर्ण जगत्मे अग्नि प्रज्वलित हुईसी दिखाई पडना यह लक्षण होतेहैं॥ ८॥

कफके अपस्मारके लक्षण।

शुक्लफेनाङ्गवक्राक्षःशीतहृष्टाङ्गजोगुरुः।
पश्यञ्छुक्लानिरूपाणिश्लैष्मिकोमुच्यतेचिरात्॥ ९॥

मुखसे सफेद झाग गिरना, अंग, मुख, नेत्र यह सफेद होना, सब अंगोंका शीतल रोमांचयुक्त और भारी होना, सफेद रूपोका दिखाई देना तथा अपस्मारका वेग बहुत देरमें दूर होना यह कफजनित अपस्मारके लक्षण हैं॥ ९॥

सन्निपातके अपस्मारके लक्षण।

सर्वैरेतैःसमस्तैस्तुलिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।
अपस्मारःसचासाध्योयःक्षीणस्यानवश्चयः॥ १०॥

जिस अपस्मारमे तीनो दोषोंके लक्षण हो उसको सन्निपातजनित अपस्मार जानना। सन्निपातके सब लक्षणोंवाला अपस्मार तथा क्षीण मनुष्योका एकदोषज अपस्मार भी असाध्य होताहै और बहुत दिनोका पुराना अपस्मार भी असाध्य होजाताहै॥ १०॥

अपस्मारके वेगका समय।

पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वामासाद्वाकुपितामलाः। अपस्मारायकुर्वन्तिवेगंकिञ्चिदथान्तरम्॥ ११॥

कुपितहुए वातादि दोष बारहवें दिन अथवा पंद्रहवें दिन या एक महीनेमें अपस्मार रोगके वेग (दौरा) को करतेहैं अथवा कभी इस नियममें अन्तर भी होजाताहै अर्थात् पुराना होनेपर या किसी अन्य कारणसे नित्य या आगे पीछे भी होने लगताहै ॥ ११ ॥

चिकित्साक्रम ।

तैरावृतानांहृत्स्रोतोमनसांसंप्रबोधनम्। तीक्ष्णैरादौभिषक्कुर्य्यात्कर्मभिर्वमनादिभिः ॥ १२ ॥ वातिकंवस्तिभूयिष्ठैःपैत्तंप्रायोविरेचनैः । श्लैष्मिकंवमनप्रायैरपस्मारंसमाचरेत् ॥ १३ ॥ सर्वतःसुविशुद्धस्यसम्यगाश्वासितस्यच । अपस्मारविमोक्षार्थंयोगान्संशमनाञ्छृणु ॥ १४ ॥

अपस्मार रोगमें दोषोंसे आवृत हुए हृदय और मनको वहन करनेवाले स्रोतोंको स्वच्छ तथा मनको चैतन्य करनेके लिये वैद्य प्रथम तीक्ष्ण वमनादि द्वारा शोधन करावे । वातसे उत्पन्नहुए अपस्मारमें वस्तिकर्म द्वारा, पित्तसे उत्पन्न हुएमें विरेचन द्वारा, कफजनितमें वमन द्वारा, प्रायः शरीर शुद्ध करना चाहिये । इस प्रकार सर्वतः शुद्धकाय होनेपर रोगीको उत्तम दृढ वार्तों द्वारा आश्वासन (दिलासा) देवे । फिर नीचे लिखी औषधियोंका प्रयोग करे उन अपस्मार नाशक संशमन योगोंको श्रवण करो ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

पञ्चगव्य घृत ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैःसमैर्घृतम् । सिद्धंपिबेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम् ॥ १५ ॥

गोबरका रस, दही, दूध, गोमूत्र और गोघृत इन पांचोंको समभाग लेकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर छानकर रखलेवे । इस घृतके पीनेसे अपस्मार (मृगी) रोग, कामला और ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ १५ ॥

महापञ्चगव्य घृत ।

द्वेपञ्चमूलेत्रिफलारजन्यौकुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गंनीलिनींकटुरोहिणीम् ॥ १६ ॥ सम्पाकंफल्गुमूलञ्चपौष्करंसदुरालभम् । द्विपलानिजलद्रोणेपक्त्वापादावशेषिते ॥ १७ ॥ भार्गींपाठांत्रिकटुकांत्रिवृतांनिचुलानिच । श्रेयसीमाढकींमूर्वांदन्तींभूनिम्बचित्रकौ ॥ १८ ॥ द्वेशारिवेरोहिषञ्चभूतीकंमदयन्तिकाम् । क्षिपेत्पिष्ट्वा-

क्षमात्राणितेनप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ १९ ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्चतत्समैः । पञ्चगव्यमितिख्यातंमहत्तदमृतोपमम् ॥ २० ॥ अपस्मारेतथोन्मादेश्वयथावुदरेषुच । गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषुकामलासुभगन्दरे । अलक्ष्मीग्रहरोगघ्नंचातुर्थिकविनाशनम् ॥ २१ ॥

लघुपंचमूल, बृहत्पंचमूल, त्रिफला, हलदी, दारुहलदी, कुडाकी छाल, सप्तपर्ण (सतौना) की छाल, अपामार्ग, नीलिनी, कुटकी, अमलतासका गूदा, कठूमर पोहकरमूल और जवासा इन सबको दो २ पल लेकर एकद्रोण जलमें पकावे चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इसमें भारंगी, पाढ, त्रिकुटा, निशोथ, निचुल (वेतस), गजपीपल, आढकी (अरहर), मूर्वा, दंती, चिरायता, चित्रक, दोनों शारिवा, रोहिषतृण, अजवायन और मल्लिका इन सबका एक २ अक्ष (२ तोले) लेकर बारीक पीसकर मिलावे । घृत एक प्रस्थ, गोबरका रस एक प्रस्थ, गोमूत्र १ प्रस्थ, दही १ प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे जब सब पानी आदि जलकर घृत मात्र शेष रहे तो इसको छानकर पात्रमें भरलेवे । यह महापञ्चगव्य नामक घृत अमृतके समान गुणकारी है । इसके सेवनसे अपस्मार (मृगी), उन्माद, सूजन, उदररोग, गुलमरोग, बवासीर, पाण्डु, कामला, भगंदर, अलक्ष्मी, ग्रहदोष और चौथैया ज्वर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १९-२१ ॥

अन्य घृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच । पुराणंघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित् ॥ २२ ॥

ब्राह्मीका स्वरस, वच, कूठ और शंखपुष्पीसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करनेसे उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप दूर होतेहैं ॥ २२ ॥

घृतंसैन्धवहिंगुभ्यांवार्षेवास्तेचतुर्गुणे । मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशम् ॥ २३ ॥

सेंधानमक और हींगका कल्क १ पाव, घृत एक सेर, बैल और बकरेका मूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर सिद्धकिया हुआ घृत अपस्मार, हृदयविकार और ग्रहदोषको दूर करताहै ॥ २३ ॥

वचासम्पाककैटर्य्यवयःस्थाहिंगुरोचकैः । सिद्धंपलङ्कपायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मकेघृतम् ॥ २४ ॥

वच, अमलतास, कायफल, बहेडा, हींग, राजपलाण्डु और गूगल इनके कल्कसे सिद्ध कियेहुए घृतको सेवन करनेसे वातापस्मार और कफापस्मार दूर होतेहैं ॥२४॥

तैलप्रस्थंघृतप्रस्थंजीवनीयैःपलोन्मितैः । क्षीरद्रोणेपचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् ॥ २५ ॥

पुराना घृत १ प्रस्थ, जीवनीयगणकी सब औषधियें एक एक पल, दूध १ द्रोण इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेह (घृत, तेल) मात्र शेष रहनेपर छानकर पात्रमें भरलेवे । इस यमकस्नेहको पीने और मालिश करनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ २५ ॥

कंसेक्षीरेक्षुरसयोःकाश्मर्य्येऽष्टगुणेरसे । कार्पिकैर्जीवनीयैश्चघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ २६ ॥ वातपित्तोद्भवंक्षिप्रमपस्मारंनियच्छति । तद्वत्काशविदारीक्षुकुशकाथशृतंघृतम् ॥ २७ ॥

दूध १ आढक, ईखका रस १ आढक, काश्मरी (कंभारी) का क्वाथ ८ प्रस्थ, जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधी एक एक कर्ष इन सबको मिलाकर पकावै । घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे वातज अपस्मार और पित्तज अपस्मार शान्त होते हैं । अथवा किसी प्रकार कांसकी जड, विदारीकंद, ईखकी जड, कुशाकी जड, इन सबको जवकूट कर क्वाथ बनावे । उस क्वाथसे और जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कसे सिद्धकिया घृत भी पूर्वोक्त गुणको करताहै ॥ २६ ॥२७॥

मधुकद्विपलेकल्केद्रोणेचामलकीरसात् । तद्वत्सिद्धोघृतप्रस्थःपित्तापस्मारभेपजम् ॥ २८ ॥

मुलेठी २ पल लेकर उसको बारीक पीसकर कल्क बनावे । आंवलेका रस २ द्रोण, पुराना घी १ प्रस्थ इन सबको पकाकर घृतमात्र शेप रहनेपर सेवन किया जाय तो पित्तज अपस्मारको दूर करताहै ॥ २८ ॥

अभ्यङ्गःसार्षपंतैलंबस्तमूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धंस्याद्गोशकृन्मूत्रेस्नानोत्सादनमेवच ॥ २९ ॥

सरसोंका तेल १ भाग, बकरेका मूत्र ४ भाग इन दोनोंको मिलाकर पकावे । जब मूत्र जलकर तेलमात्र शेप रहे तो उसको छानकर ठण्डा करलेवे । इस तेलकी मालिश कर गौके गोबरको उबटनेके समान मल गोमूत्रसे स्नान करडाले तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ २९ ॥

कटभीनिम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचांरसे । सिद्धंमूत्रसमंतैलमभ्यङ्गार्थे प्रशस्यते ॥ ३० ॥

कटभी, नीमकी छाल, सोनापाठेकी छाल, मुलैठी, और सहजनेकी छाल इन सबका क्वाथ करके वह क्वाथ और गोमूत्र तथा समान भाग तेल इन सबको मिलाकर सिद्ध करे सिद्ध होनेपर इस तैलकी मालिश करे तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ ३० ॥

पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः । जटिलापूतनाकेशीनाकुलीहिंगुचोरकैः ॥ ३१ ॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्चपक्षिणाम् । मांसाशिनांयथालाभंवस्तमूत्रेचतुर्गुणे ॥ ३२ ॥ सिद्धमभ्यञ्जनंतैलमपस्मारविनाशनम् । एतैश्चैवौषधैःकार्य्यंधूपनंसम्प्रलेपनम् ॥ ३३ ॥

पलंकषा (गूगुल या लाव) वच, हरड, वृश्चिकपत्नी, आक, सफेद सरसों, पूतना हरड, जटामांसी, रास्ना, हींग, राजपलाण्डु, लहसन, अतिरसा, चित्रक, कूठ और मांसाहारी पक्षियोंकी विष्ठा और मूत्र जितना मिलसके, इन सबको लेकर तेल और तेलसे चारगुना बकरेका मूत्र मिला तेल सिद्धकरे इस तेलकी मालिश करनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै । इन्हीं औषधियोंकी धूप देनेसे अथवा लेप करनेसे भी अपस्मार दूर होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पिप्पलींलवणंशिग्रुंहिंगुहिंगुशिवाटिकाम् । काकोलींसर्षपान्काकनासांकैटर्य्यचन्दने ॥ ३४ ॥ शुनःस्कन्धास्थिनखरान्पर्शुकांश्चेति पेषयेत् । वस्तमूत्रेणपुष्यर्क्षेप्रदेहःस्यात्सधूपनः ॥ ३५ ॥

पीपल, सेंधानमक, हींग, सहजना, वंशपत्री, काकोली, पीली सरसों, काकनासा, कायफल, लालचंदन, कुत्तेके कंधेकी हड्डी और नख तथा पसवाडेकी अस्थिको पुष्यनक्षत्रमें लाकर इन सबको बकरीके मूत्रमें पीस लेपकरने और धूनी देनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः । उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ३६ ॥

काली तुलसी, हरड, कूठ, बालछड और चोरक इनको गोमूत्रमें रगडकर शरीरपर मले और गोमूत्रमें घोलकर सेचनकरे तो अपस्मार रोग दूर हो ॥ ३६ ॥

जलौकाशकृतातद्वद्गधैर्वावस्तलोमभिः । खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथागोपुच्छलोमभिः ॥ ३७ ॥

जलौकाकी विष्ठाका लेप अथवा बकरेके बालोंकी भस्म, गधेकी हड्डी, हाथीके नख तथा गोपुच्छके बाल इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अपस्मार दूर होताहै ॥ ३७ ॥

कपिलानांगवांमूत्रंनावनंपरमंहितम् । श्वशृगालविडालानांसिंहादीनाञ्चशस्यते ॥ ३८ ॥

कपिला गौके मूत्रकी नस्य लेनां अपस्मार रोगमें परम हितकारी है तथा कुत्ते, गीदड, बिल्ली और सिंह आदिके मूत्रोंकी नस्य लेना भी गुणकारी है ॥ ३८ ॥

भार्गीवचानागदन्तीश्वेताश्वेताविषाणिका । ज्योतिष्मतीनागदन्तीपादोत्थामूत्रपेषिताः ॥ ३९ ॥ योगास्त्रयोऽतःषड्बिन्दून्पञ्चवा नावयेद्भिषक् ॥ ४० ॥

१ भारंगी, वच और नागदन्ती; २ श्वेत अपराजिता, सेफद दूब और मेढासिंगी, ३ मालकांगुनी और नागदंती; इन तीनों योगोंमेंसे किसी एकको गोमूत्रमें पीसकर अपस्मार रोगीके नाकमें पांच या छः बूंद टपकावे तो अपस्मारका वेग दूर हो ॥ ३९ ॥ ४० ॥

त्रिफलाव्योपपीतद्रुयवक्षारफणिज्झकैः । श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रेऽथवस्तजे । साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ४१ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहलदी, जवाखार, फणिज्झक, तुलसी, फूलप्रियंगु, पुठकण्डेके बीज, करंजुएके फल इन सबको बकरेके मूत्रमें पीसकर सिद्ध किये तैलकी नस्य देनेसे अपस्मार रोग दूर होताहै ॥ ४१ ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठञ्चलवणानिच । भार्गीचचूर्णितंनस्तःकार्य्यंप्रधमनंपरम् ॥ ४२ ॥

पीपल, वृश्चिकपत्री, कूठ, सेंधानमक इन सबका बारीक चूर्णकर नस्य (सूंघनी लेवे तो अपस्मारका वेग (मूर्छा) दूर हो ॥ ४२ ॥

कायस्थाञ्छारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा । सव्योपान्वस्तमूत्रेणपिष्ट्वावर्त्तीःप्रकल्पयेत् ॥ ४३ ॥ अपस्मारेतथोन्मादेसर्पदष्टेतथार्दिते । विषपीतेजलमृतेचैताःस्युरमृतोपमाः ॥ ४४ ॥

काली तुलसी, मुद्गपर्णी (वा शरद् ऋतुके मूंग) नागरमोथा और त्रिकुटा इन सबको बकरीके मूत्रमें रगडकर छोटी २ वत्तियें बनालेवे । इस वत्तीको नेत्रोंमें अंजन

करनेसे अपस्मार उन्माद, सापका विष अर्दित रोग, विषविकार और जलमें डूबनेसे उत्पन्नहुई वेहोशी यह सब दूर होतेहैं । यह बत्ती अमृतके समान गुणकारी है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मुस्तंवयःस्थांत्रिफलांकायस्थांहिंगुशाद्वलम् । व्योषंमाषान्यवान्मूत्रैर्वस्तमेषर्षभैस्त्रिभिः ॥ ४५ ॥ पिष्ट्वाकृत्वाचतांवर्त्तिमपस्मारेप्रयोजयेत् । किलासेपुतथोन्मादेज्वरेषुविषमेषुच ॥ ४६ ॥

नागरमोथा, गिलोय, त्रिफला, काली तुलसी, हींग, दून, त्रिकुटा, उड़द और यव इनको बकरे, मेढे तथा बैलके मूत्रमें पीसकर बत्ती बनावे । इस बत्तीका अंजन करनेसे अपस्मार, किलास, उन्माद और विषमज्वर यह दूर होतेहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

पुष्योद्धृतशुनःपित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
तदेवसर्पिषायुक्तंधूपनंपरमंमतम् ॥ ४७ ॥

पुष्य नक्षत्रमें निकालाहुआ कुत्तेका पित्ता नेत्रोंमें आंजनेसे अपस्मार दूर होताहै । अथवा इस पित्तेको घृतमें मिलाकर धूप देनेसे अपस्मार अवश्य दूर होताहै ॥ ४७ ॥

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैःपक्षैःपुरीषैश्चधूपनंकारयेद्भिषक् ॥ ४८ ॥

नेवला, उल्लू, बिल्ला, गीध, कीटाही तथा कौवेकी चोंच, पंख और बीटकी धूनी देनेसे अपस्मारकी मूर्च्छा दूर होतीहै ॥ ४८ ॥

आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्हृदयंसंप्रबुध्यते ।
स्रोतांसिचापिशुध्यन्तिततःसंज्ञांसविन्दति ॥ ४९ ॥

इन उपरोक्त सिद्ध क्रियाओंके करनेसे हृदयमें चैतन्यता और स्रोतोंकी शुद्धि होकर वेहोशी दूर होतीहै ॥ ४९ ॥

यस्यानुबन्धस्त्वागन्तुर्दोषलिङ्गाधिकाकृतिम् ।
पश्येत्तस्यभिषक्कुर्यादागन्तून्मादभेषजम् ॥ ५० ॥

जिस अपस्मारवाले रोगीमें आगन्तु अनुबंधके लक्षण (आकार) दिखाई देवें उसकी आगन्तु उन्मादके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ ५० ॥

महागदका वर्णन ।

अनन्तरमुवाचेदमग्निवेशःकृताञ्जलिः । भगवन् ! प्रागसत्समुद्दिष्ट-

श्लोकस्थानेमहागदः ॥ ५१ ॥ अतत्त्वाभिनिवेशश्चतस्यव्याकिरिहोच्यताम् । शुश्रूषवेवचःश्रुत्वाशिष्यायाहपुनर्वसुः । महागदं सौम्य ! शृणुसहेत्वाकृतिभेषजम् ॥ ५२ ॥

इसके अनन्तर अग्निवेश हाथ जोडकर पूछने लगे कि हे भगवन् ! पहिले आपने सूत्रस्थानमें महागदका कथन किया है। वह महागद मनसे संबंध रखनेवाला अर्थात् ज्ञानके नष्ट होनेसे मनोमय विकारको महागद कहाहै सो उसके विषयमें कृपाकर स्पष्ट रूपसे वर्णन कीजिये। यह सुनकर भगवान् पुनर्वसुजी सुननेकी इच्छावाले अपने शिष्य अग्निवेशसे कहनेलगे कि हे सौम्य ! महागदके हेतु, लक्षण और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

मलिनाहारशीलस्यवेगान्प्राप्तान्निगृह्णतः । शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्हेतुभिश्चातिसेवितैः ॥ ५३ ॥ हृदयंसमुपाश्रित्यमनोबुद्धिवहाः शिराः । दोषाःसंदूष्यतिष्ठन्तिरजोमोहावृतात्मनः ॥ ५४ ॥ रजस्तमोभ्यांवृद्धाभ्यांबुद्धौमनसिचावृते । हृदयेव्याकुलेदोषैरथमूढोऽल्पचेतनः ॥ ५५ ॥ करोतिविषमांबुद्धिंनित्यानित्येहिताहिते। अतत्त्वाभिनिवेशंतमाहुराप्तामहागदम् ॥ ५६ ॥

जो मनुष्य नित्य मलिन अथवा मलकारक अन्नका सेवन करताहै और मलमूत्रादि आयेहुए वेगोंको रोकताहै तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि हेतुओंका अत्यंत सेवन करताहै उस मनुष्यके कुपितहुए दोष हृदयका आश्रय ले मन और बुद्धिकी वहन करनेवाली शिराओंको दूषितकर स्थित होजाते हैं तब रजोगुण और तमोगुण बढकर बुद्धि और मनको ढक लेतेहैं उस समय इसके हृदयमें व्याकुलता होतीहै तब यह मनुष्य अल्प चेतना युक्त और जड होजाताहै। हित और अहितमें इसकी विषम बुद्धि होजातीहै। इसको आप्तपुरुष "अतत्त्वाभिनिवेश" नामक महागद कहतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

महागदकी चिकित्सा।

स्नेहस्वेदोपपन्नंतंसंशोध्यवमनादिभिः ।
कृतसंसर्जनंमेध्यैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ ५७ ॥

इस महागद रोगमें स्नेहन और स्वेदन करके वमनादि संशोधन द्वारा शुद्ध शरीर कर पेयादि विधिका सेवन करावे और मेधाजनक अन्नपानोंका सेवन करावे ॥ ५७ ॥

ब्राह्मीस्वरससंयुक्तंपञ्चगव्यमुदाहृतम्।
तत्सेव्यंशंखपुष्पीचयच्चसेव्यंरसायनम्॥ ५८ ॥

तथा पूर्वोक्त ब्राह्मीरससंयुक्त घृत, पंचगव्य घृत, महापंचगव्य घृत, शंखपुष्पीका रस- और रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ५८ ॥

अपस्मार रोगीकी रक्षा।

सुहृदश्चानुकूलास्तंस्वाप्तधर्मार्थवादिनः।
संयोजयेयुर्विज्ञानधैर्य्यस्मृतिसमाधिभिः॥ ५९ ॥

उसके हितकारी सुहृद् तथा धर्म, अर्थके जाननेवाले प्रामाणिक योग्य पुरुष ज्ञान, धैर्य और स्मरण शक्तिको स्थापन करनेवाले वाक्योंसे उसको बुद्धिसम्पन्न करें ॥५९॥

प्रयुञ्ज्यात्तैललशुनंपयसावाशतावरीम्।
ब्राह्मीरसंकुष्ठरसंवचांवामधुसंयुताम्॥ ६० ॥

तथा तैलके साथ लहसुन अथवा दूधके साथ शतावरका रस एवं शहतके साथ ब्राह्मीका रस अथवा कूठका रस सेवन करावे तो अतत्वाभिनिवेश (विपरीतबुद्धि) नामक महागद दूर होताहै ॥ ६० ॥

दुश्चिकित्स्योह्यपस्मारश्चिरकारीकृतास्पदः।
तस्माद्रसायनैरेनंप्रायशःसमुपाचरेत्॥ ६१ ॥

अपस्मार रोग दुश्चिकित्स्य होताहै यह रोग बहुत कालतक रहनेवाला और बद्धमूल होताहै। इसलिये इसमें प्रायः सदाही रसायन प्रयोगोंका सेवन कराना चाहिये ॥ ६१ ॥

जलाग्निद्रुमशैलेभ्योविषमेभ्यश्चतंसदा।
रक्षेदुन्मादिनश्चैवसद्यःप्राणहराहिते॥ ६२ ॥

अपस्मार रोगीको और उन्माद रोगीको जल, अग्नि, वृक्ष और विषमस्थानोंसे सदा ही बचाकर रखना चाहिये। क्योंकि यह सब अपस्मार रोगवाले मनुष्यके शीघ्र प्राणोंको हरनेवाले होतेहैं ॥ ६२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ।

हेतुंकुर्वन्त्यपस्मारंदोषाःप्रकुपिता यथा। सामान्यतःपृथक्त्वाच्चलिङ्गं

तेषाञ्चभेपजम् ॥ ६३ ॥ महागदस्समुत्थानंलिङ्गञ्चोवाचमौषधम् । मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्मारचिकित्सिते ॥ ६४ ॥

इति चरक० चि० अपस्मारचिकित्सितंनामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस अपस्मार चिकित्सितनामक अध्यायमें भगवान् आत्रेयजीने अपस्मारके हेतु तथा जिस प्रकार दोष कुपित होकर अपस्मारको करतेहैं, अपस्मारके सामान्य और पृथक् २ लक्षण, उनकी औषधी, महागदके कारण, लक्षण और उपाय यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किये हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसहितायां चिकित्सास्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसाद वैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकाया मपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अथातः क्षतक्षीणचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम क्षतक्षीणचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

उदारकीर्त्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयःपरमार्थवित् ।
क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाहचिकित्सितम् ॥ १ ॥

उदारकीर्ति परमार्थके जाननेवाले ब्रह्मर्षि आत्रेयजीने क्षतक्षीणकी चिकित्साके लिये इस प्रकार चिकित्सा वर्णन की ॥ १ ॥

क्षतरोगके कारण ।

धनुपायस्यतोऽत्यर्थभारमुद्वहतोगुरुम् । पततोविषमोच्चेभ्योयुध्यमानस्यचाधिकैः ॥ २ ॥ वृषंहयंवाधावन्तंदम्यंचान्यंनिगृह्णतः । शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतोनिघ्नतःपरान् ॥ ३ ॥ अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरंवाव्रजतोद्रुतम् । महानदींवातरतोगजैर्वासहधावतः ॥ ४ ॥ सहसोत्पततोदूरंतूर्णञ्चातिप्रनृत्यतः ॥ तथान्यैःकर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्यवा । विक्षतेवक्षसिव्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥ ५ ॥

धनुष्यको अत्यंत जोरसे खेंचना अधिक, भारी बोझको उठाना, विषमस्थानसे गिरपडना, अपनेसे अधिक बलवालेसे कुश्ती करना, दौडतेहुए बैल, घोडे आदिको बलपूर्वक पकडना। शिला, लकडी, पत्थर, गदा आदिको अत्यंत जोरसे वेगपूर्वक फेंकना। या शिला, मुद्गर आदिकोंसे बलपूर्वक शत्रुओंपर प्रहार करना, बहुत जोरसे ऊंचे २ स्वरसे पढते रहना, अत्यंत वेगसे दौडना, बडी भारी नदीको बलपूर्वक तैरजाना, हाथी, घोडे, आदिके साथ भागना, वेगपूर्वक उछलकर कलांच मारना, बहुत देरतक वेगपूर्वक नॉचना तथा ऐसे ही अन्यान्य क्रूरकर्म करना। इन सब कारणोंसे अथवा अन्य किसी प्रकार छातीमें चोट पहुँचनेसे मनुष्योंकी छातीमें क्षत (घाव) होजाताहै। उससे बलवान् रोग उत्पन्न होजाताहै ॥ २॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

क्षीणके हेतु।

स्त्रीषुचातिप्रसक्तस्यरूक्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ ६ ॥

अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे तथा रूक्ष, अल्प और मित भोजन करनेसे मनुष्य क्षीण रोगको प्राप्त होताहै ॥ ६ ॥

क्षतक्षीणके लक्षण।

उरोनिरुज्यतेतस्यभिद्यतेऽथविदह्यते । प्रपीडयतेततःपार्श्वेशुष्यत्यङ्गंप्रवेपते । क्रमाद्वीर्य्यंबलंवर्णोरुचिरग्निश्चहीयते ॥ ७ ॥ ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविड्भेदोग्निवधस्तथा । दुष्टःश्यावःसदुर्गन्धः पीतोविग्रथितोबहुः ॥ ८ ॥ कासमानस्यचश्लेष्मासरक्तःसंप्रवर्त्तते । सक्षतःक्षीयतेऽत्यर्थंतथाशुक्रौजसोःक्षयात् ॥ ९ ॥

क्षत और क्षीण दोनों रोगोंमे छातीमे भेदनेकी सी पीडा होना और विदाह (छातीमें जलन) होना, पार्श्वमें पीडा होना, अंगोंका सूखने लगना, शरीरका कांपना यह सब लक्षण होते हैं। फिर बल, वर्ण, रुचि और जाठराग्नि यह क्रमसे धीरे २ क्षीण होने लगतेहैं फिर ज्वर, व्यथा, मनमें दीनता, मलका फटकर आना, अग्निका मंद होना, खॉसी और खॉसीके साथ २ दूषित हुआ काला, पीला, दुर्गंधयुक्त और गांठदार रुधिर मिला, बलगम आना यह लक्षण होते हैं ॥ इसप्रकार क्षतवाला रोगी अत्यंत क्षीण होजाताहै एवं स्त्रीप्रसंगादिके कारण वीर्य और ओजके क्षय होनेसे क्षीणरोगी अत्यंत क्षीण होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

क्षतक्षीणका पूर्वरूप।

अव्यक्तंलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ १० ॥

क्षत और क्षीणके सब लक्षण स्पष्टरूपसे प्रकट न होनेपर अव्यक्त लक्षण होना क्षतक्षीणका पूर्वरूप कहा जाताहै ॥ १० ॥

क्षतक्षीणमें विशेषता ।

उरोरुक्शोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकःक्षते ।
क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ११ ॥

क्षत और क्षीण रोगमें विशेषता (फरक) केवल इतनाही है कि क्षतरोगके प्रकट होनेके समय छातीमें पीडा, रुधिरका वमन और खाँसी यह विशेष लक्षण होतेहैं। और क्षीणरोगमें मूत्रका वर्ण लाल होना अथवा रक्तयुक्त होना पार्श्वभागमें और पीठमें तथा कमरमें अत्यंत पीडा होना अथवा जकडेसे रहना यह लक्षण होतेहैं॥११॥

साध्याऽसाध्य ।

अल्पलिंगस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतोनरः ।
गतेसंवत्सरेयाप्यःसर्वलिंगन्तुवर्जयेत् ॥ १२ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि चैतन्य हो और शरीरमें बल हो तथा रोगके लक्षण अल्प हों उसका क्षतक्षीण रोग साध्य होताहै । एक वर्ष व्यतीत होनेपर याप्य-साध्य होजाताहै । और संपूर्ण लक्षणोंवाला क्षतक्षीण असाध्य समझ त्याग देना चाहिये ॥ १२ ॥

क्षतकी चिकित्सा ।

उरोमत्वाक्षतंलाक्षांपयसामधुसंयुताम् । सद्यएवपिबेज्जीर्णेपयसा-द्यात्सशर्करम् । पार्श्वबस्तिरुजश्चाल्पपित्ताग्निस्तांसुरायुताम् ॥१३॥
भिन्नविट्कःसमुस्तातिविषांपाठांसवत्सकाम् ॥ १४ ॥

यदि छातीमें क्षत (घाव) प्रतीत हो तो लाखको बारीक पीसकर दूध और शहदमें मिलाकर पिलावे । इसके पचजानेपर जब भूख लगे तो दूध और शुद्ध चीनीके साथ भातका भोजन करे । यदि पार्श्वभागमें पीडा हो और जठराग्नि मंद हो तो धुली हुई लाखके चूर्णको सुरामें मिलाकर पिलावे । परन्तु इस रोगमें रक्तपित्त होनेसे सुरा देना उचित नहीं यदि रोगीको दस्त आते हों तो नागरमोथा, अतीश, पाठा और इन्द्रयवका काथ पिलावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

लाक्षांसर्पिर्मधूच्छिष्टंजीवनीयगणंसिताम् । त्वक्क्षीरीसम्मितंक्षीरेपक्वादीप्तानलःपिबेत् । इक्ष्वालिकबिसग्रन्थिपद्मकेशरचन्दनैः ॥
॥ १५ ॥ शृतंपयोमधुयुतंसन्धानार्थंपिबेत्क्षती ॥ १६ ॥

जिस क्षत रोगीकी जठराग्नि बलवान् हो वह क्षतरोग निवृत्तिके लिये धूलि, लाखका चूर्ण, घृत, मोम, जीवनीयगणकी सब औषधियें, मिसरी और वंशलोचन इन सबको समान भाग ले दूधमें पकाकर पानकरे । अथवा तालमखाने, मृणाल (भिस) पीपलामूल, कमलकी केशर और चंदन इन सबसे सिद्ध किया दूध सहद मिलाकर पीवे तो छातीका घाव संधान होजाता है । इसका यह क्रम है कि कुटीहुई सब औषधियें दो तोला लेवे दूध १६ तोला पानी ६४ तोला ले सबको मिलाकर पकावे दूधमात्र शेष रहनेपर छानकर ठंडा कर फिर इसमें शहद मिलाकर पीवे ॥१५॥१६॥

यवानांचूर्णमादायक्षीरसिद्धंघृतप्लुतम् । ज्वरदाहेसिताक्षौद्रसक्तून्वापयसापिवेत् । कासीपर्वास्थिशूलीचलिह्यात्सघृतमाक्षिकाः । मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीवलाः ॥ १७ ॥

यदि क्षतरोगमें ज्वर और दाह हों तो जवोंके चूर्णको दूधमें सिद्धकर घृत मिलाकर पीवे । अथवा जवोंके सत्तुओंको शहद मिसरी और दूध मिलाकर पीवे । जिस रोगीके खाँसी तथा पर्व और अस्थियोंमें पीडा हो उसको महुएके फल, मुलैठी, पिंड खजूर, मुनक्का इनको बारीक पीसकर शहद और घृतमें मिला नित्य प्रातःकाल ४ तोला चटाना चाहिये ॥ १७ ॥

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्द्धाक्षाःपिप्पल्यर्द्धपलंतथा । सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्चपलोन्मिताः ॥ १८ ॥ संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंप्रकल्पयेत् । अक्षमात्रांततश्चैकांभक्षयेन्नादिनेदिने ॥ १९ ॥ कासंश्वासंज्वरंहिक्कांछर्दिमूर्च्छांमदंभ्रमम् । रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरोचकम् ॥ २० ॥ शोषप्लीहाढ्यवातांश्चस्वरभेदंक्षतंक्षयम् । गुलिकातर्पणीवृष्यारक्तपित्तश्चनाशयेत् ॥ २१ ॥

छोटी इलायची, तेजपत्र, दालचीनी यह प्रत्येक ६ माशे, पीपल दो तोला, मिसरी, मुलैठी, छुवारे और बीजरहित मुनक्का यह सब चार २ तोला लेवे । इन सबको बारीक पीसकर शहदमें मिला एक २ तोलेकी गोली बनावे । अथवा चटनीसी बनाले इसमेंसे एक तोला नित्य दूधके साथ अथवा जीवनीय औषधियोंके अर्कके साथ या अन्य योग्य अनुपानसे खावे अथवा विना किसी अनुपानके ही खावे तो खाँसी, श्वास, हिचकी, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रुधिरका थूकना, प्यास, पार्श्वशूल, अरोचक, शोष, प्लीहा, अफारा, स्वरभेद, क्षत और क्षय यह सब रोग नष्ट

होतेहैं । यह गोली तर्पणीय और शरीरको पुष्ट करती हैं तथा रक्तपित्तको दूर करने वालीहैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

रक्तेऽतिवृत्तेदक्षाण्डंयूषैस्तोयेनवापिवेत् ।
चटकाण्डरसंवापिरक्तंवाछागजाङ्गलम् ॥ २२ ॥

रक्तके अत्यंत निकल जानेपर मुर्गेके अण्डोंसे बनाया हुआ यूष अथवा चिड़ियोंके अण्डोंसे बनायाहुआ यूष, या बकरेका रक्त अथवा जंगली जीवोंका जलयुक्त मांस-यूष पीनेको देवे ॥ २२ ॥

चूर्णंपौनर्नवंरक्तशालितण्डुलशर्करम् ।
रक्तष्ठीवीपिवेत्सिद्धंद्राक्षारसपयोघृतैः ॥ २३ ॥

पुनर्नवाका चूर्ण, लाल शाली चावल, शर्करा और द्राक्षाका रस, दूध और घीमें मिलाकर पीनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्ति होना बंद होजाताहै ॥ २३ ॥

मधूकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम् ।
मूढवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टंससैन्धवम् ॥ २४ ॥

महुएके फल और मुलहठीको दूधमें पकाकर अथवा चौलाईकी जड धूपमें पका पीवे तो रक्तकी प्रवृत्ति बन्द हो और मूढवातवाला मनुष्य बकरेकी मेदको सुरामें मिला उसको सेंधेनमकयुक्त कर गर्म करके पीवे ॥ २४ ॥

क्षामःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वनिद्रःसवलेऽनिले ।
शृतक्षीररसेनाद्यात्सक्षौद्रघृतशर्करम् ॥ २५ ॥

जिस क्षतरोगीको वायुकी अधिकतासे कृशता और क्षीणता होजाय तथा निद्रा जाती रहे उसको दूधमें मांसरस मिला पकाकर उसमें शहद, घृत और मिसरी मिलाकर पिलावे ॥ २५ ॥

शर्कराश्वयवक्षौद्रजीवकर्षभकोमधु । शृतक्षीरानुपानंवालिह्यात्क्षीणःक्षतःकृशः ॥ २६ ॥ क्रव्यादमांसनिर्य्यूहंघृतभृष्टंपिवेच्चसः । पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्द्धनम् ॥ २७ ॥

और उस क्षतक्षीणसे कृशहुए मनुष्यको मिसरी, यवके सत्तू, जीवक, ऋषभकका चूर्ण और शहद यह सब मिलाकर चटावे और ऊपरसे गर्म दूध पिलावें अथवा मांस खानेवाले जीवोंके मांसरसको घीमें भूनकर पीपलका चूर्ण शहद मिलाकर सेवन करनेसे मांस और रक्तकी वृद्धि होतीहै ॥ २६ ॥ २७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः । तालमस्तकजम्बूत्व-
विप्रयालैश्चसमञ्जकैः ॥ २८ ॥ साश्वकर्णैःशृतात्क्षीरादद्याज्जातेन
सर्पिषा । शाल्योदनंक्षतोरस्कः क्षीणशुक्रश्चमानवः ॥ २९ ॥

वड, गूलर, पीपल, पिलखन, शाल, प्रियंगु ताडकी कोंपल, जामुनकी छाल, चिरौंजी, पद्माख और अश्वकर्ण इन सबसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकाला हुआ घृत शालीचावलोंके साथ भोजन करनेके लिये देवे तो उरःक्षत और क्षीणशुक्रवाला मनुष्य शीघ्र आरोग्य हो ॥ २८ ॥ २९ ॥

यष्ट्याह्वानागबलयोःक्वाथेक्षीरसमंघृतम् ।
पयस्यापिप्पलीवांशीकल्कसिद्धंक्षतेशुभम् ॥ ३० ॥

मुलैठी और नागबलाका क्वाथ ४ भाग, घी और दूध दोनों एक एक भाग इन सबको मिलाकर क्षीरकाकोली, पीपल और वंशलोचनका कल्क डालकर घृत सिद्ध करे । इस घृतके पीनेसे क्षतरोग दूर होताहै ॥ ३० ॥

कोललाक्षारसेतद्वत्क्षीराष्टगुणसाधितम् ।
कल्कैःकट्वङ्गदार्वीत्वग्वरसकत्वक्फलैर्घृतम् ॥ ३१ ॥

बेर (बेरकी गुठलीकी गिरी), लाखका रस इन दोनोंको समान भाग ले,आठ गुणा दूध मिला पूर्ववत् घृत सिद्ध करके सेवन करे अथवा सोनापाठा दारुहलदीकी छाल, कुडाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके कल्क और आठगुने दूधसे सिद्ध किया घृत क्षतरोगको दूर करताहै ॥ ३१ ॥

अमृतप्राश घृत ।

जीवकर्षभकौवीराजीवन्तीनागरंशटीम् । चतस्रःपर्णिनीर्मेदेकाको-
ल्यौद्वेनिदिग्धिके ॥ ३२ ॥ पुनर्नवेद्वेमधुकेसात्मगुप्तांशतावरीम् ।
ऋद्धिपरूपकंभार्गीमृद्वीकांबृहतींतथा ॥ ३३ ॥ शृङ्गाटकींतामल-
कींपयस्यांपिप्पलींबलाम् । बदराक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाण्यपि॥
॥ ३४ ॥ फलानिचैवमादीनिकल्कान्कुर्वीतकार्षिकान् । धात्रीरस-
विदारीक्षुच्छागमांसरसंपयः ॥ ३५ ॥ कुर्य्यात्प्रस्थोन्मितंतेनघृ-
तप्रस्थंविपाचयेत् । प्रस्थार्द्धमधुनःशीतेशर्करार्द्धतुलांतथा ॥ ३६ ॥
द्विकार्षिकाणिपत्रैलाहेमत्वङ्मरिचानिच । चूर्णितानिविनीयास्मा-
ल्लिह्यान्मात्रांसदा नरः ॥ ३७ ॥ अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं

घृतम् । सुधामृतरसंप्राश्यक्षीरमांसरसाशिना ॥ ३८ ॥ नष्टशुक्र-क्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान् । स्त्रीप्रसक्तान्कृशान्वर्णस्वरहीनांश्चबृंहयेत् ॥ ३९ ॥ कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णाम्लपित्तनुत् । पुत्रदंवमिमच्छोह्वयोनिमूत्रामयापहम् ॥ ४० ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, जीवंती, सोंठ, कचूर, शालपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पृष्ठपर्णी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी और बडी कटेरी, रक्तपुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, मुलैठी, कौंचके बीज, शतावर, ऋद्धि, फालसा, भारंगी, मुनक्का, बडी कटेली, सिंघाडा, भूमिआँवला, क्षीरविदारी, पीपल, बला, बेर, अखरोट, खजूर, बादाम, पिस्ता तथा अन्य ऐसे ही फल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । आँवलेका रस, विदारीकंदका रस, ईखका रस, बकरेके मांसका रस और दूध यह एक एक प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे । घृत सिद्ध होनेपर इसको छानलेवे । फिर इस घृतमें ठण्डा होनेपर शहद आधा प्रस्थ, मिसरी आधी तुला (२॥ सेर) और तेजपत्र, इलायची, दालचीनी और कालीमिर्च यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर चूर्णकर मिला देवे । यह अमृतप्राशघृत मात्रानुसार सेवन करनेवाले मनुष्यको अमृतके समान गुण करताहै । इस घृतको पानकर दूध या मांसरसका अनुपान करना चाहिये जिस मनुष्यका वीर्यक्षय हुआहो अथवा क्षतक्षीणसे पीडित हो अथवा दुर्बल या व्याधिसे कृश हो उसको अमृतके समान गुण करताहै । यह घृत स्त्री प्रसंगसे कृश हुए मनुष्यको बलदायक, वर्णकारक, स्वर-भंगनाशक तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, दाह, प्यास, रक्तपित्त, छर्दि, मूर्च्छा, योनि-रोग और मूत्ररोग इन सबको दूर करताहै और संतानको देनेवाला है ॥ ३२–४० ॥

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्य्यकत्तृणम् । दर्भमूलंपृथक्पर्णीप-लाशर्षभकौस्थिराम् ॥ ४१ ॥ पालिकंसाधयेत्तेषांरसेक्षीरचतुर्गुणे । कल्कैःस्वगुप्ताजीवन्तीमेदर्षभजीवकैः ॥ ४२ ॥ शतावर्य्यृद्धिमृ-द्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः । प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातपित्तहृदद्रवशूल-नुत् ॥ ४३ ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः । धनुःस्त्रीम-द्यभाराध्वखिन्नानांबलमांसदः ॥ ४४ ॥

गोखरू, खस, मजीठ, बला, कुम्भेर, कत्तृण, ४ कुशाकी जड, पृश्नपर्णी, ढाक, ऋषभक, शालपर्णी यह प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्वाथ करे घृत १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, कौंचके बीज, जीवन्ती, मेदा, ऋषभक, जीवक, शतावर, ऋद्धि, मुनक्का, खांड, मुण्डी, कमलकंद इन सबको मिलाकर एक कुडव लेवे । फिर

इनका कल्क कर क्वाथ और घृतमें मिला पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर छान लेवे । इस घृतके सेवनसे वात, पित्त, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, खांसी, शोष और क्षय यह सब नष्ट होतेहैं । तथा धनुषके खींचनेसे: अथवा स्त्रीसंग, मद्यपान, भार और मार्गके श्रमसे जो क्षीणं होगयेहों उनके वल और मांसकी वृद्धि होती है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

सक्तूप्रयोग ।

मधुकाष्टपलंद्राक्षाप्रस्थक्वाथेघृतंपचेत् । पिप्पल्यष्टपलेकल्केप्रस्थंसिद्धेचशीतले ॥ ४५ ॥ पृथगष्टपलंक्षौद्रंशर्कराभ्यांविमिश्रयेत् । समं सक्तुक्षतक्षीणेरक्तगुल्मेपुताद्धितम् ॥ ४६ ॥

मुलैठी ८ पल, मुनक्का १ प्रस्थ इनको १६ सेर जलमें पकावे । ४ सेर बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें १ प्रस्थ घृत, ८ पल पीपलका कल्क, मिलाकर सिद्धकरे । सिद्ध होनेपर छानकर ठण्डा करलेवे । इसमें ८ पल शहद और ८ पल मिसरी मिलावे तथा १ प्रस्थ यवोंके सत्तू मिलावे । इन सत्तुओंको क्षतक्षीण, रोगी तथा रक्तगुल्मवालेको सेवन कराना परम हितकारी है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

धात्री आदि घृत ।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात् । छागगोपयसोश्चैवसतप्रस्थान्पचेद्भिपक् ॥ ४७ ॥ सिद्धशीतेसिताक्षौद्रद्विप्रस्थंविनयेत्ततः । यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमोहक्षयापहम् ॥ ४८ ॥ वयःस्थापनमायुष्यंमांसशुक्रबलप्रदम् ॥ ४९ ॥

आँवलेका रस १ प्रस्थ, विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, ईखका रस १ प्रस्थ, जीवनीय गणकी दश औषधियोंका क्वाथ १ प्रस्थ, घृत १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ गौका दूध १ प्रस्थ इन सातोंको लेकर वैद्य घृतपाक विधिसे पकावे जब सब जलकर घृतमात्र शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे । इस घृतमें ठण्डा होनेपर १ प्रस्थ मिसरी और एक प्रस्थ (१ सेर) शहद मिलावे । इसके सेवनसे राजयक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी प्रमेह और क्षय यह सब नष्ट होते हैं । तथा यह घृत अवस्थास्थापन करनेवाला, आयुवर्द्धक, मांस, वीर्य और बलको पैदा करनेवाला है. ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

घृतन्तुपित्तेऽभ्यधिकेलिह्याद्वातेऽधिकेपिबेत् । लीढंनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धन्तिनानिलम् । आक्रामत्यनिलंपीतमूष्माणंनिरुणद्धिच ॥ ५० ॥

क्षतक्षीण रोगमें पित्त अधिक हो तो घृत चटाना चाहिये । और वायुकी अधिकतामें घृत पिलाना चाहिये । क्योंकि चाटाहुआ घृत पित्तको शान्त करताहै और अल्प होनेके कारण वायुको हनन नहीं करता इसी प्रकार पीयाहुआ घृत वायुको शान्त करताहै और शरीरकी ऊष्माको नहीं रोकता ॥ ५० ॥

क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येवघृतानिच ।
त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैःपानानियोजयेत् ॥ ५१ ॥

दुर्वल, क्षीण और कृशशरीरवाले मनुष्योंको यह संपूर्ण घृत वंशलोचन, मिसरी और लाजा (खील) का चूर्ण मिला चाटना चाहिये ॥ ५१ ॥

सर्पिर्गुडान्समध्वंशाञ्जग्ध्वादद्यात्पयोनुच ।
रेतोवीर्य्यंवलंपुष्टिंतैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

आगे जो सर्पिर्गुड कथन किये हैं उनमें जहां शहदका प्रक्षेप नहीं किया तो चौथा भाग शहद मिलाकर चटावे और ऊपरसे दूध पिलावे तो क्षतक्षीण रोगी शीघ्र ही वल, वीर्य और पुष्टीको प्राप्त होताहै ॥ ५२ ॥

सर्पिगुड ।

वलांविदारींह्रस्वाञ्चपञ्चमूलींपुनर्नवाम् । पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणां शुङ्गांमुष्ट्यंशकामपि ॥ ५३ ॥ एषांकषायेद्विक्षीरेविदार्य्याजरसांशिके । जीवनीयैःपचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥५४॥ सितापलानिपूतेऽस्मिञ्छीतेद्वात्रिंशतंक्षिपेत् । गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णंशृङ्गाटकस्यच ॥ ५५ ॥ सक्षौद्रंकुडवांशेनतत्सर्वंखजमूर्च्छितम् । स्त्यानं सर्पिर्गुडान्कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् ॥ ५६ ॥ ताञ्जग्ध्वापलिकान्क्षीरं मद्यंवानुपिवेत्कफे । शोषेकासेक्षतेक्षीणेश्रमस्त्रीभारकर्षिते ॥५७॥ रक्तनिष्ठीवनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते । शस्ताःपार्श्वशिरःशूले विभेदेस्वरवर्णयोः ॥ ५८ ॥

वला, विदारीकंद, लघु पंचमूलकी पांचो औषधियें, पुनर्नवा, वड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेतस इन पांचों वृक्षोंके अंकुर, कोंपलें यह प्रत्येक एक एक पल लेकर क्वाथ करे । फिर इस क्वाथमें वकरीका दूध, गायका दूध और घृत तथा विदारीकंदका रस और वकरीका मांसरस यह सब एक एक आढक मिलावे । जीवनीय गणकी दश औषधियोंको एक एक तोला लेकर कल्क वना इसीमें मिलादेवे । इस

घृतको पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर इसमें ठण्डा होने पर मिसरी बत्तीस पल, गेहूंके सत्तू, पीपल, वंशलोचन, सिंघाडेका चूर्ण और शहत एक एक कुडव मिलाकर आगपर चढा कडछीसे हिलाताजावे और गुडपाक विधिसे पकावे । जब सब एकजीव होजांय तो उतारकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेट लपेट कर रखताजावे । यह सर्पिर्गुड उचित मात्रासे सेवनकर ऊपरसे दूध पीवे. और कफकी अधिकतामें मद्यका अनुपान करे । इसके सेवनसे क्षतक्षीण, स्त्रीसेवन और भार उठानेसे उत्पन्न हुई कृशता और रुधिरका थूकना, ताप, पीनस, वक्षःस्थलकी पीडा, पार्श्वशूल, मस्तकपीडा, स्वरभेद और विवर्णता यह सब दूर होतीहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

द्वितीय सर्पिगुड ।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वर्षभजीवकैः । वीरर्द्धिक्षीरकाकोलीबृहतीकपिकच्छुभिः ॥ ५९ ॥ खर्जूरफलमेदाभिःक्षीरपिष्टैःफलोन्मितैः । धात्रीविदारीक्षुरसप्रस्थैःप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ ६० ॥ शर्करार्द्धतुलांशीतेक्षौद्रार्द्धप्रस्थमेवच । क्षिप्त्वासर्पिर्गुडान्कुर्यात्कासहिक्काज्वरापहान् ॥ ६१ ॥ यक्ष्माणंतमकंश्वासंरक्तपित्तं हलीमकम् । शुक्रनिद्राक्षयंतृष्णांहन्युःकार्श्यंसकामलम् ॥६२॥

वंशलोचन, गोरखमुण्डी, मुनक्का, मूर्वा, ऋषभक, जीवक, पृष्ठपर्णी, ऋद्धि क्षीरकाकोली, बडी कटेली, कौंचके बीज, खजूर, भिस, मेदा यह सब एक एक पल लेकर दूधमें घोटकर अलग२कल्क करे । आँवलेका रस १ प्रस्थ, विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, ईखका रस १ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, सबको घृतपाक विधिसे पकाकर घृतमात्र शेष रहनेपर छानलेवे इसमें मिसरी आधा तुला, शहत आधा प्रस्थ मिलाकर गोलेसे बना भोजपत्रमें लपेटकर रखदेवे । इनको सेवन करनेसे खांसी, हिचकी, ज्वर, यक्ष्मा, तमकश्वास, श्वास, रक्तपित्त, हलीमक, वीर्यक्षय, निद्रानाश, कृशता,प्यास और कामला यह सब दूर होते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

तृतीय सर्पिगुडक ।

द्राक्षांनवामामलकीमात्मगुप्तांपुनर्नवाम् । शतावरींविदारीश्चसमांशांपिप्पलींतथा ॥ ६३ ॥ पृथग्दशपलान्भागान्पलान्यष्टौच नागरात् । यष्ट्याह्वसौवर्चलयोर्द्विपलंमरिचस्यच ॥ ६४ ॥ क्षीरतैलघृतानाञ्चत्र्याढकेशर्कराशते । क्वथितेतानिचूर्णानिदत्त्वावि-

त्वसमान्गुडान् ॥ ६५ ॥ कुर्य्यात्तान्भक्षयेत्क्षीणःक्षतशुष्कश्चमानवः । तेनसद्योरसादीनांवृद्ध्यापुष्टिंसविन्दति ॥ ६६ ॥

मुनक्का, नवीन आँवले, कौंचके बीजोंकी गिरि, पुनर्नवा, शतावर, विदारीकंद और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण, दस दस पल लेवे । सोंठका चूर्ण ८ पल, मुलैठी,कालानमक, और मिर्च इनका चूर्ण दो दो पल, गौका दूध एक आढक, तेल आढक, घृत एक आढक, मिसरी १०० पल लेवे । प्रथम घृत, तेल, दूध और मिसरी मिलाकर पकावे, जब दूध जलजाय तब उतारकर इसमें उपरोक्त द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर एकजीव करदेवे इसके चार २ तोलाके लड्डू बनावे, एक गुडक (लड्डुवा) में एक तोला शहद मिलाकर खावे । इनके सेवनसे मनुष्य क्षतक्षीण और कृशतासे रहित होजाता है । तथा रसादिक धातुकी वृद्धि होकर पुष्टताको प्राप्त होजाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

चौथासर्पिर्गुड़ ।

गोक्षीराद्द्व्याढकंसर्पिःप्रस्थमिक्षुरसाढकम् । विदार्य्याःस्वरसात्प्रस्थंरसात्प्रस्थश्चतैत्तिरात् ॥ ६७ ॥ दद्यात्सिध्यतितस्मिंस्तुपिष्टानिक्षुरसैरिमान् । मधूकपुष्पंकुडवंपियालकुडवंतथा ॥ ६८ ॥ तुगाक्षीर्य्यर्द्धकुडवांखर्जूराणिचविंशतिम् । पृथग्विभीतकानक्षः पिप्पल्याश्चचतुर्थिकाम् ॥ ६९ ॥ त्रिंशत्पलानिखण्डाच्चमधुकात्कर्षमेवच । तथार्द्धपलिकान्यत्रजीवनीयानिचावपेत् ॥ ७० ॥ सिद्धेऽस्मिन्कुडवंक्षौद्रंशीतेक्षिप्त्वाथमोदकान् । कारयेन्मरिचाजाजीपलचूर्णावचूर्णितान् ॥ ७१ ॥ वातासृक्पित्तरोगेषुक्षतकासक्षयेषुच । शुष्यतांक्षीणशुक्राणांरक्तेचोरसिसंस्थिते ॥ ७२ ॥ कृशदुर्बलवृद्धानांपुष्टिवर्णबलार्थिनाम् । योनिदोषक्षतस्रावहतानाञ्चापियोषिताम् ॥ ७३ ॥ गर्भार्थिनीनांगर्भश्चस्रवेद्यासांम्रियेतवा । धन्यावल्याहितास्ताभ्यःशुक्रशोणितवर्द्धनाः ॥ ७४ ॥

गौका दध १ आढक (४ सेर), घृत १ प्रस्थ, (१ सेर), ईखका रस १ आढक, विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, तीतरका मांसरस १ प्रस्थ, गोघृत १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे, फिर इसमें जब पकते २ सब रस जलनेपर आवें तो इसमें महुएके फूल १ कुडव, चिरोंजी १ कुडव (१ पाव) वंशलोचन आधा कुडव, छुहारे बीस,

बहेडेका छिलका और पीपलका चूर्ण एक एक पल, मिसरी ३० पल मुलैठी १ कर्ष तथा जीवनीयगणकी औषधियें आधा २ पल इन सबको ईखके रसमें पीसकर कल्क बना उपरोक्त पकतेहुए घृतमें मिलादेवे । सिद्ध होनेपर उतारकर रखदे जब शीतल होजाय तो इसमें १ कुडव शहद मिलाकर कालीमिर्च और जीरेका १ पल चूर्ण मिलाकर चार चार तोलेके गुडक (गोला) बनावे । इसके खानेसे वातरक्त, पित्तके विकार, क्षत, खांसी, क्षय, शोष, क्षीणता, वीर्यक्षय, छातीसे रक्तका आना अथवा छातीमें दूषित रक्तका स्थित होना यह सब दूर होते हैं । यह कृश, दुर्बल और वृद्ध मनुष्योंको पुष्टि, वर्ण और बलकी वृद्धिके लिये सेवन करना चाहिये । इसके सेवनेसे स्त्रियोंके योनिदोष, वंध्यापन, गर्भस्राव और मृतवत्सादोष दूर होते हैं । तथा रजवीर्यकी शुद्धि होती है ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

स्त्रीसंगसे कृशहुयेके यत्न ।

बस्तिदेशेविकुर्वाणेस्त्रीप्रसक्तस्यमारुते ।
वातघ्नान्बृंहणान्वृष्यान्योगांस्तस्यप्रयोजयेत् ॥ ७५ ॥

अधिक स्त्रीसंगके करनेसे मनुष्यके वीर्य क्षय होनेसे वायु, बस्तिस्थानमें प्राप्त होकर विकृत हो जाती है इसलिये उस मनुष्यकी चिकित्सा वातनाशक, बृंहण और वृष्य प्रयोगोंसे करना चाहिये ॥ ७५ ॥

शर्करापिप्पलीचूर्णैःसर्पिषामाक्षिकेणवा ।
संयुक्तंवाशृतंक्षीरंपिबेत्कासज्वरापहम् ॥ ७६ ॥

जिस क्षीण मनुष्यको खांसी और ज्वर हो उसको पीपल डालकर औटायाहुआ दूध मिसरी मिला अथवा घी, शहद मिला पिलाना चाहिये ॥ ७६ ॥

फलाम्लंसर्पिषाभृष्टंविदारीक्षुरसेशृतम् ।
स्त्रीप्रक्षीणःपिबेद्यूषंजीवनंबृंहणंपरम् ॥ ७७ ॥

मांसयूष अथवा उडदोंका यूष वा मूंग आदिका यूष ले उसमें समान भाग विदारीकंदका रस और ईखका रस मिलाकर पकावे । फिर उसको अनारका रस मिला घृतमें भूनकर पिलावे तो यह जीवनदायक और बृंहणकर्त्ता योग है ॥ ७७ ॥

सक्तूनांवस्त्रपूतानांमन्थंक्षौद्रघृतान्वितम् ।
यावन्नसात्म्योदीप्ताग्निःक्षतक्षीणःपिबेन्नरः ॥ ७८ ॥

कपडेमें छानेहुए यवके सतुओंको घृत, शहत और जल मिलाकर जिसको यवसात्म्य हो और अग्नि चैतन्य हो ऐसा क्षतक्षीणवाला रोगी पीवे ॥ ७८ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवाघृतभृष्टन्तुजाङ्गलम् ।
रसंप्रयोजयेत्क्षीणोव्यञ्जनार्थेसशर्करम् ॥ ७९ ॥

जीवनीयगणके क्वाथमें जंगली जीवोंके मांसको पकाकर घीमें भूनकर शर्करा-युक्त कर क्षीणरोगीको भातके साथ व्यंजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥

गोमहिष्याश्वनागाजैःक्षीरैर्मांसरसैस्तथा ।
यथाग्निभोजयेद्यूपैःफलाम्लैर्घृतसंस्कृतैः ॥ ८० ॥

गौ, भैंस, घोडी, हथनी, बकरी, इनके दूधके साथ क्षीण रोगीको भोजन करावे अथवा जंगली जीवोंके मांसोंके रसके साथ, अथवा अनारके रससे अम्लकिये मूंग आदिके यूष घृत मिलाकर क्षुधानुसार अग्नि बल विचारकर सेवन करे ॥ ८० ॥

विशेष ज्ञातव्य ।

दीप्तेऽग्नौविधिरेषस्यान्मन्देदीपनपाचनः ।
यक्ष्मिणांविहितोग्राहीभिन्नेशकृतिचेष्यते ॥ ८१ ॥

यह उपरोक्त बृंहण और वृष्य योग दीप्ताग्निवाले मनुष्योंको ही देना चाहिये । और मंदाग्निवाले मनुष्योंको दीपन और पाचन द्रव्य ही देना चाहिये । क्षतक्षीण-वाले रोगियोंको यदि दस्त लगने लगें तो जो राजयक्ष्मामें दस्त रोकनेको संग्राहि-द्रव्य कहेहैं उनका प्रयोग करे ॥ ८१ ॥

सैंधवादि चूर्ण ।

पलिकंसैन्धवंशुण्ठीद्वेचसौवर्चलात्पले । कुडवांशानिवृक्षाम्लंदा-डिमंपत्रसर्जकात् ॥ ८२ ॥ एकैकंमरिचाजाज्योर्धान्यकाद्वेचतु-र्थिके । शर्करायाःपलान्यत्रदशद्वेचप्रदापयेत् ॥ ८३ ॥ कृत्वाचूर्ण-मतोमात्रामन्नपानेप्रयोजयेत् । रोचनंदीपनंबल्यंपार्श्वार्त्तिश्वासका-सनुत् ॥ ८४ ॥

सैंधानमक एक पल, सोंठ, एक पल, संचर नमक दो पल और अमलबेत, अनारदाना, वनतुलसी, पत्रज, यह प्रत्येक एक २ पल । मिर्च और जीरा एक पल, धनियां दो चौथाई (२ पल), शर्करा बारह पल, इन सबका बारीक चूर्णकर इस चूर्णको अन्नपानादिमें प्रयुक्त करे । यह सैंधवादिचूर्ण रुचिकारक, दीपन, बलवर्द्धक, तथा पार्श्वपीडा, श्वास और खांसीको दूर करताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

खांडव चूर्ण ।

एकापोडशिकाधान्याद्विदेऽजाज्यजमोदयोः । ताभ्यांदाडिमवृक्षाम्लद्विर्द्विःसौवर्चलात्पलम् ॥ ८५ ॥ शुण्ठ्याःकर्षंदधित्थस्यमध्यात्पञ्चपलानिच । तच्चूर्णंषोडशपलेशर्करायाविमिश्रयेत् । षाडवोऽयंप्रदेयःस्यादन्नपानेषुपूर्ववत् ॥ ८६ ॥

धनियां एक पल, जीरा दो पल, अजमोद दो पल, अनारदाना चार पल, अम्लवेत चार पल, संचर नमक एक पल, सोंठ एक कर्ष, कैथका गूदा पांच पल, शर्करा सोलह पल, इन सबका चूर्ण कर अन्नपानादिमें सेवनकरे तो यह खांडवचूर्ण पूर्व (सैंधवादिचूर्ण) के समान गुण करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नागबला प्रयोग ।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्द्धकर्षविवर्द्धनम् । पलंक्षीरयुतंमासंक्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥ ८७ ॥ एषप्रयोगःपुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरःपरः । मण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽथशुण्ठीमधुकयोस्तथा ॥ ८८ ॥

नागबलाकी जडकी छाल प्रथमदिन आधा कर्ष लेकर दूधमें घोलकर पीवे, दूसरे दिन एक कर्ष, तीसरे दिन १॥ डेढ कर्ष पीवे, इस प्रकार नित्य आधा कर्ष वढाता २ एक पल तक वढावे, फिर बराबर एक महीने तक पीताजाय। इसका सेवन करते हुए एक महीना तक दूध ही पीवे और अन्न न खावे। यह योग पुष्टि, आयु, बल और आरोग्यताको वढानेमें परमोत्तम है। इसी प्रकार ब्राह्मीका एक माह सेवन कियाजाताहै तथा मुलैठी या सोंठ भी इसी प्रकार सेवनसे यही गुण करतीहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

क्षतक्षीणमें पथ्य ।

यद्यदसन्तर्पणंशीतमविदाहिहितंलघु । अन्नपानंनिषेव्यंतत्क्षतक्षीणैःसुखार्थिभिः ॥ ८९ ॥ यच्चोक्तंयक्ष्मिणांपथ्यंकासिनांरक्तपित्तिनाम् । तच्चकुर्य्यादपेक्ष्याग्निव्याधिसात्म्यबलांस्तथा ॥ ९० ॥

जो जो अन्न पान संतर्पण, अविदाहि, हित और हलके हैं क्षतक्षीण रोगीको आरोग्यताकी इच्छाके लिये उन २ का ही सेवन करना चाहिये। राजयक्ष्मावाले रोगियोंके लिये और खांसी तथा रक्तपित्तवाले रोगियोंके लिये जो पथ्य कहे हैं क्षतक्षीणवालोंको भी जठराग्नि, व्याधि और सात्म्य तथा बल विचार कर उन्हींका सेवन करावे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

कपडेमें छानेहुए यवके सतुओंको घृत, शहत और जल मिलाकर जिसको यवसात्म्य हो और अग्नि चैतन्य हो ऐसा क्षतक्षीणवाला रोगी पीवे ॥ ७८ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवाघृतभृष्टन्तुजाङ्गलम् ।
रसंप्रयोजयेत्क्षीणोव्यञ्जनार्थेसशर्करम् ॥ ७९ ॥

जीवनीयगणके क्वाथमें जंगली जीवोंके मांसको पकाकर घीमें भूनकर शर्करायुक्त कर क्षीणरोगीको भातके साथ व्यंजनके लिये देवे ॥ ७९ ॥

गोमहिष्याश्वनागाजैःक्षीरैर्मांसरसैस्तथा ।
यथाग्निभोजयेद्यूपैःफलाम्लैर्घृतसंस्कृतैः ॥ ८० ॥

गौ, भैंस, घोडी, हथनी, बकरी, इनके दूधके साथ क्षीण रोगीको भोजन करावे अथवा जंगली जीवोंके मांसोंके रसके साथ, अथवा अनारके रससे अम्लकिये मूंग आदिके यूप घृत मिलाकर क्षुधानुसार अग्नि बल विचारकर सेवन करे ॥ ८० ॥

विशेष ज्ञातव्य ।

दीप्तेऽग्नौविधिरेपस्यान्मन्देदीपनपाचनः ।
यक्ष्मिणांविहितोग्राहीभिन्नेशकृतिचेष्यते ॥ ८१ ॥

यह उपरोक्त बृंहण और वृष्य योग दीप्ताग्निवाले मनुष्योंको ही देना चाहिये । और मंदाग्निवाले मनुष्योंको दीपन और पाचन द्रव्य ही देना चाहिये । क्षतक्षीणवाले रोगियोंको यदि दस्त लगने लगें तो जो राजयक्ष्मामें दस्त रोकनेको संग्राहि-द्रव्य कहेहैं उनका प्रयोग करे ॥ ८१ ॥

सैंधवादि चूर्ण ।

पलिकंसैन्धवंशुण्ठीद्वेचसौवर्चलात्पले । कुडवांशानिवृक्षाम्लंदाडिमंपत्रसर्जकात् ॥ ८२ ॥ एकैकंमरिचाजाज्योर्धान्यकाद्वेचतुर्थिके । शर्करायाःपलान्यत्रदशद्वेचप्रदापयेत् ॥ ८३ ॥ कृत्वाचूर्णमतोमात्रामन्नपानेप्रयोजयेत् । रोचनंदीपनंवल्यंपार्श्वार्त्तिश्वासकासनुत् ॥ ८४ ॥

सेंधानमक एक पल, सोंठ, एक पल, संचर नमक दो पल और अमलबेत, अनारदाना, वनतुलसी, पत्रज, यह प्रत्येक एक २ पल । मिर्च और जीरा एक पल, धनियां दो चौथाई (२ पल), शर्करा बारह पल, इन सबका बारीक चूर्णकर इस चूर्णको अन्नपानादिमें प्रयुक्त करे । यह सैंधवादिचूर्ण रोचनकारक, दीपन, बलवर्द्धक, तथा पार्श्वपीडा, श्वास और खांसीको दूर करताहै ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

खांडव चूर्ण ।

एकापोडशिकाधान्याद्विद्वेऽजाज्यजमोदयोः । ताभ्यांदाडिमवृक्षाम्लद्विर्द्विःसौवर्चलात्पलम् ॥ ८५ ॥ शुण्ठ्याःकर्षंदधित्थस्यमध्यात्पञ्चपलानिच । तच्चूर्णंषोडशपलेशर्करायाविमिश्रयेत् । षाडवोऽयंप्रदेयःस्यादन्नपानेषुपूर्ववत् ॥ ८६ ॥

धनियां एक पल, जीरा दो पल, अजमोद दो पल, अनारदाना चार पल, अम्लवेत चार पल, संचर नमक एक पल, सोंठ एक कर्ष, कैथका गूदा पांच पल, शर्करा सोलह पल, इन सबका चूर्ण कर अन्नपानादिमें सेवनकरे तो यह खांडवचूर्ण पूर्व (सैंधवादिचूर्ण) के समान गुण करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

नागबला प्रयोग ।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्द्धकर्षविवर्द्धनम् । पलंक्षीरयुतंमासंक्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥ ८७ ॥ एषप्रयोगःपुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरःपरः । मण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽथशुण्ठीमधुकयोस्तथा ॥ ८८ ॥

नागबलाकी जडकी छाल प्रथमदिन आधा कर्ष लेकर दूधमें घोलकर पीवे, दूसरे दिन एक कर्ष, तीसरे दिन १॥ डेढ कर्ष पीवे, इस प्रकार नित्य आधा कर्ष बढाता २ एक पल तक बढावे, फिर बराबर एक महीने तक पीताजाय । इसका सेवन करते हुए एक महीना तक दूध ही पीवे और अन्न न खावे । यह योग पुष्टि, आयु, बल और आरोग्यताको बढानेमें परमोत्तम है । इसी प्रकार ब्राह्मीका एक माह सेवन कियाजाताहै तथा मुलैठी या सोंठ भी इसी प्रकार सेवनसे यही गुण करतीहै ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

क्षतक्षीणमें पथ्य ।

यद्यत्सन्तर्पणंशीतमविदाहिहितंलघु । अन्नपानंनिषेव्यंतत्क्षतक्षीणैःसुखार्थिभिः ॥ ८९ ॥ यच्चोक्तंयक्ष्मिणांपथ्यंकासिनांरक्तपित्तिनाम् । तच्चकुर्य्यादपेक्ष्याग्निंव्याधिसात्म्यबलांस्तथा ॥ ९० ॥

जो जो अन्न पान संतर्पण, अविदाहि, हित और हलके हैं क्षतक्षीण रोगीको आरोग्यताकी इच्छाके लिये उन २ का ही सेवन करना चाहिये । राजयक्ष्मावाले रोगियोंके लिये और खांसी तथा रक्तपित्तवाले रोगियोंके लिये जो पथ्य कहे हैं क्षतक्षीणवालोंको भी जठराग्नि, व्याधि और सात्म्य तथा बल विचार कर उन्हींका सेवन करावे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

उपेक्षितोभवेत्तस्मिन्ननुबन्धोहियक्ष्मणः ।
प्रागेवागमनात्तस्यतस्मात्तंत्वरयाजयेत् ॥ ९१ ॥

क्षतक्षीणरोगकी शीघ्र चिकित्सा न करनेसे राजयक्ष्मा रोग होजाताहै इसलिये राजयक्ष्मा होनेसे प्रथम ही क्षतक्षीणकी किचित्सा कर रोग दूर करदेना चाहिये ॥ ९१ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

[illegible]पृथगाकृतिम् । असाध्ययाप्यसाध्यत्वं साध्यानांसिद्धिमेवच ॥ ९२ ॥ उक्तवाञ्ज्येष्ठशिष्यायक्षतक्षीणचिकित्सिते । तत्त्वार्थविद्वीतरजस्तमोदोपःपुनर्वसुः ॥ ९३ ॥

इति चरक० चि० क्षतक्षीणचिकित्सितंनामपोडशोऽध्यायः ॥१६॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस क्षतक्षीणचिकित्सिताऽध्यायमें रजतमसे रहित तत्त्वार्थवेत्ता पुनर्वसुजीने क्षतक्षीणके हेतु सामान्य लक्षण, पृथक् २ भेद, असाध्य, याप्यसाध्य और साध्यता तथा साध्योंकी चिकित्सा यह सब शिष्यशिरोमणि अग्निवेशसे कथन कियाहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

इति श्रीच० चिकि० स्थाने भा० टी० क्षतक्षीणचिकित्सितं नाम पोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम श्वयथुचिकित्सितकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

भिषग्वरिष्ठंसुरसिद्धजुष्टंमुनीन्द्रमत्र्यात्मजमग्निवेशः। महागदस्यश्वयथोर्यथावत्प्रकोपरूपप्रशमानपृच्छत् ॥ १ ॥

वैद्योंमें श्रेष्ठ, देवता और सिद्धोंसे सेवित, मुनीश्वर अत्रिनंदन पुनर्वसुजीसे, अग्निवेश पूछने लगे कि हे भगवन् ! श्वयथु (सूजन) महारोगके कारण, लक्षण और प्रशमनोपाय कृपया यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

तस्मैजगादागदवेदसिन्धुप्रवर्त्तनाग्निप्रवरोऽत्रिजस्तान् । वातादिभेदांस्त्रिविधस्यसम्यङ्निजानिजैकाङ्गजसर्वजस्य ॥ २ ॥

यह सुनकर आयुर्वेदके समुद्र, ऋषिप्रवर, आत्रेयजी अग्निवेशसे निज, आगंतु, एकांगज और सर्वांगज तथा वातादिभेदसे त्रिविध शोथका वर्णन करनेलगे ॥ २ ॥

निजशोथके कारण ।

शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । दध्यामसृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणञ्च ॥ ३ ॥ अर्शांस्यचेष्टानचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविषमाप्रसूतिः । मिथ्योपचारःप्रतिकर्मणाञ्चनिजस्यहेतुः श्वयथोःप्रदिष्टः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य संशोधनसे अथवा रोगसे या उपवाससे कृश और दुर्बल होगयेहैं उनको क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और भारी पदार्थोंके सेवनसे तथा दही,कच्चे पदार्थ, शाक, विरुद्ध भोजन तथा दूषित भोजनके अधिक सेवनसे, गर (विष) युक्त भोजन करनेसे, अर्शरोगसे, व्यायाम न करनेसे देहकी अशुद्धिसे, मर्मस्थानमें चोट लगनेसे, स्त्रियोंके प्रसूतमें विषमता होनेसे, शोधन क्रियाका, मिथ्याउपचार होनेसे मनुष्योंको शोथ (सूजन) रोग उत्पन्न होताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥

आगंतुज शोथ ।

बाह्यास्त्वचोदूषयिताभिघातः काष्ठाश्मशस्त्राग्न्यशनीविषाद्यैः । आगन्तुहेतुस्त्रिविधोनिजश्चसर्वार्द्धगात्रावयवाश्रितत्वात् ॥ ५ ॥

लकडी, पत्थर, शस्त्र, अग्नि, अशनीके लगनेसे और विषैले जानवरके काटनेसे अथवा भिलावाआदि विष त्वचापर लगने आदिसे अथवा अन्य किसी प्रकारकी चोट लगनेसे जो सूजन बाह्यत्वचामें उत्पन्न होतीहै उसको आगन्तु शोथ कहतेहैं । आगन्तु शोथ और वात, पित्त, कफ इन तीनोंके हेतुओंसे कोपसे उत्पन्न हुआ तीन प्रकारका निजशोथ यह सबही सर्वांगमें अथवा अर्धांग वा किसी अंगावयवमें आश्रित हो प्रकट होतेहैं ॥ ५ ॥

शोथकी संप्राप्ति ।

बाह्याःशिराःप्राप्ययदाकफासृक्पित्तानिसंदूषयतीहवायुः । तैर्बद्धमार्गःसतदापिसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयथुंकरोति ॥ ६ ॥

वायु बाहरकी शिराओंमें प्राप्त होकर जब कफ, रक्त और पित्तको दूषित करताहै तो उनसे शरीरके मार्ग बन्द होजातेहैं । फिर वह वायु शरीरमें सर्पण करताहुआ

शोयको उत्पन्न करताहै । शरीरकी त्वचाका ऊपरको फूलजाना ही शोथका लक्षण है ॥ ६ ॥

उरःस्थितैरूर्द्धमधस्तुवायोःस्थानस्थितैर्मध्यगतैस्तुमध्ये । सर्वाङ्गगैःसर्वगतैःक्वचित्स्थैर्दोषैःक्वचित्स्याच्छ्वयथुस्तदाख्यः ॥ ७ ॥

यदि शोथकारक दोष शरीरके ऊपरी भागमें स्थितहों तो ऊपरके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करतेहैं । और मलाशय आदि वायुके स्थानोंमें अर्थात् शरीरके आधोभागमें स्थित होनेसे नीचेके अंगोंमें सूजन उत्पन्न करतेहैं । तथा शरीरके मध्यभागमें स्थित होनेसे शरीरके मध्यभागमें सूजनको प्रगट करतेहैं । और संपूर्ण शरीरमें प्राप्त होनेसे सर्वांगगत शोथको करतेहैं । यदि शरीरके किसी एक अंगमें व्यापक हों तो उसी अंगविशेषमें उसी नामवाली सूजनको प्रकट करतेहैं ॥ ७ ॥

ऊष्मातथास्याद्दवथुःशिराणामायासइत्येवचपूर्वरूपम् । सर्वस्त्रिदोषोऽधिकदोषलिङ्गैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिषग्जितश्च ॥ ८ ॥

शोथके प्रगट होनेसे प्रथम शोथ होनेवाले स्थानमें गरमी, दाह और शिराओंका फूलना यह लक्षण होतेहैं । सब प्रकारकी सूजनोंमें जिस दोषकी अधिकता प्रतीत हो वैद्य उस सूजनको उसीके नामकी कहे और उसी दोषका लक्ष्य रखकर चिकित्सा करे ॥ ८ ॥

शोथके सामान्य लक्षण ।

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वंसोत्सेधमुष्णोथशिरातनुत्वम् । सलोमहर्षोङ्गविवर्णताचसामान्यलिंगंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥ ९ ॥

सूजन होनेवाले स्थानका भारी होना, चंचल होना और उस स्थानका ऊंचा होना, उस स्थानमें गरमी प्रतीत होना, शिराओंका पतला प्रतीत होना, रोमांच और शोथ होनेवाले स्थानकी विवर्णता यह शोथरोगके सामान्य लक्षण कहे हैं ॥ ९ ॥

वातज शोथ ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोसितः सुप्तिहर्षार्त्तियुतोऽनिमित्ततः । प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितोदिवाबलीचश्वयथुःसमीरणात् ॥१०॥

वातसे उत्पन्न हुई शोथ एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चलनेवाली, पतली, रूक्ष, लाल, काली होतीहै । शोथस्थान सोया हुआसा और हर्षयुक्त और पीडासहित होताहै । इस शोथके हेतुओंके न मिलनेसे यह शान्त होजातीहै । शोथस्थानको दबाकर छोड देनेसे फिर उन्नत होजातीहै । यह सूजन दिनमें बलवान् होतीहै ॥१०॥

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः। यउ-ष्यतेस्पर्शसहोऽक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ॥ ११ ॥

जो सूजन मृदुस्पर्शवाली, गंधयुक्त, काली, पीली अथवा लालवर्णकी हो, सूजनका स्थान उष्ण हो, स्पर्श करनेसे पीडा प्रतीत होतीहो रोगीके नेत्र लालवर्णके हों, शोथमें अत्यंत दाह और पाक हो वह पित्तसे उत्पन्न हुई सूजन जानना ॥ ११ ॥

गुरुःस्थिरःपाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् । सुकृच्छ्रजन्मप्रशमोनिपीडितोनचोन्नमेद्रात्रिवलीकफान्वितः१२॥

जो सूजन, भारी, स्थिर, पाण्डुवर्णकी हो तथा जो देरमें उत्पन्न और देरमें ही शान्त होनेवाली हो, सूजनमें अंगुली दबानेसे गढासा पडजाय रात्रिके समय सूजनका अधिक वल हो उसको कफकी सूजन जानना ॥ १२ ॥

अक्षाध्य शोथके लक्षण।

कृशस्यरोगैरवलस्ययोभवेदुपद्रवैर्वावमिपूर्वकैर्युतः । महार्त्तिमर्मानुगतोऽथराजिमान्परिस्रवन्भीमवलश्चसर्वशः ॥ १३ ॥

कृश और रोगसे दुर्वल हुए मनुष्यकी सूजनमें यदि वमनादि उपद्रव हों अथवा हृदयादि मर्म स्थानकी सूजन अत्यंत पीडायुक्त हो वह तथा कृश और दुर्वल रोगीकी रेखा और परिस्रावयुक्त सूजन असाध्य होतीहै ॥ १३ ॥

साध्यसूजन ।

अहीनमांसस्ययएकदोषजोनवोवलस्तस्यसुखःससाधने । निदानदोषर्त्तुविपर्य्ययक्रमैरुपाचरेत्तंवलदोषकालवित् ॥ १४ ॥

जिस रोगीका मांस क्षीण न हुआ हो, सूजन केवल एक ही दोषजनित हो, पुरानी न हो और वलवान् रोगीके शरीरमें हो तो वह सूजन साध्य होती है उसको निदान, दोष, ऋतु, विचारकर वल, काल और दोषको जाननेवाला वैद्य कारणादि विपरीत चिकित्सा द्वारा शान्त करे ॥ १४ ॥

शोथकी चिकित्सा।

अथामजंलङ्घनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्वणदोषमादितः। शिरोगतंशीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वजम् ॥ १५ ॥

जो सूजन आमदोषसे हुई हो उसको लंघन और पाचन द्वारा शान्त करना चाहिये जिसमें दोष अधिक वढेहुए हों उसमें संशोधन कराना चाहिये । शिरोगत शोथमें विरेचनीय नस्य द्वारा दोषको शान्त करे । अधोगत शोथमें विरेचन करावे । ऊर्द्धगत शोथमें वमन करावे ॥ १५ ॥

उपाचरेत्स्नेहगतंविरूक्षणैःप्रकल्पयेत्स्नेहविधिश्चरूक्षजे । विबद्ध-
विट्केऽनिलजेनिरूहणंघृतन्तुपित्तानिलजेसतिक्तकम् ॥ १६ ॥

अधिक स्नेहसे उत्पन्न हुई शोथमें रूक्षणक्रिया करै । रूक्षकारणोंसे उत्पन्न हुई सूजनको स्नेहक्रिया द्वारा जीते । वात और पित्तसे उत्पन्न हुई शोथमें तिक्तकघृतों-द्वारा चिकित्सा करे ॥ १६ ॥

पयश्चमूर्च्छारतिदाहतर्षितेविशोधनीयेतुसमूत्रमिष्यते । कफोत्थि-
तंक्षारकटूष्णसंयुतैःसमूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥ १७ ॥

मूर्च्छा, अरति, दाह और तृषायुक्त सूजनमें औषध सिद्ध दूध पिलावे । यदि ऐसे रोगीको शोधन कराना उचित समझे तो दुध और गोमूत्र मिलाकर पिलावे । कफसे उत्पन्न हुई सूजनमें क्षार, कटु और उष्ण द्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्र और तक्र मिलाकर अथवा गोमूत्र और आसव मिलाकर विधिवत् पिलावे तो कफकी सूजन शान्त होतीहै ॥ १७ ॥

शोथरोगमें त्याज्यवस्तु ।

ग्राम्यानूपंपिशितलवणंशुष्कशाकंनवान्नंगौडंपिष्टंदधितिलकृतंवि-
ज्जलंमद्यमम्लम् । धानावल्लूरमशनमथोगुर्वसात्म्यंविदाहिस्वप्नं
रात्रौश्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनञ्च ॥ १८ ॥

शोथरोगवाले मनुष्यको जलसंचारी जीवोंका मांस और अनूप संचारी जीवोंका मांस, लवण, नवीन अन्न, सूखे साग, गुडके पदार्थ, पिष्टपदार्थ, दही, तिलकल्कादि, खिचडी, गाढे द्रवयुक्त द्रव्य, मद्य, खटाई भुने गेहूं आदि धान्य सूखा मांस समशन (अधिक भोजन) भारी पदार्थ, असात्म्य भोजन, विदाही अन्न, दिनमें सोना और स्त्रीसंग इन सबको त्यागदेना चाहिये ॥ १८ ॥

कफज शोथकी चिकित्सा ।

व्योषंत्रिवृच्चित्रकरोहिणीचसायोरजस्कात्रिफलारसेन ।
पीतंकफोत्थंशमयेत्तुशोफंमूत्रेणगव्येनहरीतकीवा ॥ १९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, निशोथ, कुटकी, लोहभस्म इनको त्रिफलेके क्वाथके साथ पीवे तो कफजनित शोथ दूर हो अथवा हरडोंके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीवे तो कफजनित सूजन दूर हो ॥ १९ ॥

हरीतकीनागरदेवदारुसुखाम्बुयुक्तंसपुनर्नवंवा ।
सर्वंपिबेत्पिप्पलिमूत्रयुक्तंस्नातश्चजीर्णेपयसान्नमद्यात् ॥ २० ॥

या हरड, सोंठ, देवदारू और पुनर्नवा इनके चूर्णको सुखोष्ण गरमजलके साथ पीवे। अथवा इन सबको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे तो तीनों प्रकारकी सूजन दूर होतीहै। औषध जीर्ण होनेपर स्नानकर दूधके साथ भोजन करे ॥ २० ॥

वातजशोथके यत्न।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान्प्रस्थेनधीरःपयसोऽक्षमात्रान्।
मयूरकंमागधिकांसमूलांसनागरांवाप्रपिवेत्सवाते ॥ २१ ॥

पुनर्नवा, सोंठ, नागरमोथा इनके एक एक तोला कल्कको लेकर एक सेर दूधमें पकावे। आधा दूध शेप रहनेपर रोगीको पिलावे। अथवा अपामार्गकी जड, पीपल पीपलामूल और सोंठके कल्कको इसी प्रकार दूधमें पकाकर पीवे तो वातकी सूजन दूर होतीहै ॥ २१ ॥

दन्तीत्रिवृद्व्यूपणचित्रकैर्वापयःशृतंदोषहरंपिवेन्ना।
द्विप्रस्थमात्रश्चपलार्द्धिकैस्तैरर्द्धावशिष्टंपवनेसपित्ते ॥ २२ ॥

दन्ती, निशोथ, सोंठ, पीपल, मिर्च और चित्रक, यह प्रत्येक २ तोला, दूध २ सेर मिलाकर पकावे। जब १ सेर दूध बाकी रहे तो इसको पीनेसे विरेचन होकर दोष दूर हों और उस मनुष्यके वात तथा पित्तजनित सूजन दूर हो ॥ २२ ॥

सशुण्ठिपीतद्रुरसंपयोऽयंश्यामोरुवूकोपणसाधितंवा।
त्वग्दारुवर्षाभुमहौपधैर्वागुडूचिकानागरदन्तिभिर्वा ॥ २३ ॥

सोंठ और दारुहलदीके क्वाथको दूध मिलाकर पीवे अथवा निशोथ, एरंडकी जड और काली मिर्चसे सिद्ध किया दूध पीवे अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्नवा और सोंठसे सिद्ध कियाहुआ दूध अथवा गिलोय, सोंठ और दन्तीसे सिद्ध किया हुआ दूध वात तथा पित्तकी सूजनको दूर करताहै ॥ २३ ॥

सप्ताहमौष्ट्रंयदिवापिमासंपयःपिवेद्भोजनवारिवर्जी।
गव्यंसमूत्रंमहिषीपयोवाक्षीराशनंमूत्रमथोगवांवा ॥ २४ ॥

सात दिन पर्यन्त अथवा १ महीने तक केवल ऊंटनीका दूध पीवे सिवाय इस दूधके और अन्न जल किसी प्रकारका कुछ न खाय तो वात और पित्तकी सूजन दूर होतीहै। अथवा भैंसका दूध और गोमूत्र मिला सेवन करे। अथवा १ महीने पर्यन्त गोमूत्रका सेवन करे और गौके दूधका ही पथ्य करे तो वात और पित्तकी सूजन दूर होतीहै ॥ २४ ॥

तक्रंपिवेद्वागुरुभिन्नवर्चाःसव्योषसौवर्चलमाक्षिकंवा ।
गुडाभयांवागुडनागरांवासदोपभिन्नामविवद्धवर्चाः ॥ २५ ॥

जिस मनुष्यको शोथरोगमें दस्त आनेलगें या भारी और अधिक मल आवे तो उसको त्रिकुटा, काला नामक और शहद मिलाकर तक्र पिलावे । यदि मल आमदोपयुक्त तथा वद्ध (कवजयुक्त) हो तो उसको गुडके साथ हरड या सोंठ और गुड मिलाकर देवे ॥ २५ ॥

विड्वातसङ्गेपयसारसैर्वाप्राग्भुक्तमद्यादुरुवूकतैलम्। स्रोतोविवन्धेऽग्निरुचिप्रणाशेमद्यान्यरिष्टांश्चपिवेत्सुजातान् ॥ २६ ॥

यदि शोथरोगीका मल और अधोवायु बद्ध होजाय तो उसको भोजनसे प्रथम उचित द्रव्योंके क्वाथमें या मांसरसमें अथवा दूधमें मिलाकर एरंडतैल पिलावे । यदि स्रोतोंका विवंध हो, मंदाग्नि और अरुचि हो तो उचित मद्य अथवा उत्तम अरिष्टोंका पान करावे ॥ २६ ॥

कण्डीरादि अरिष्ट।

कण्डीरभल्लातकचित्रकांश्चव्योपंविडङ्गंवृहतीद्वयञ्च । द्विप्रस्थिकं गोमयपावकेनद्रोणेपचेत्कूर्चिकमस्तुनस्तु ॥ २७ ॥ त्रिभागशेपञ्चसुपूतशीतंद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुनाच । सितोपलायाश्चशतेनयुक्तंलिप्तेघटेचित्रकपिप्पलीनाम् ॥२८॥ वैहायसेस्थापितमादशाहात्प्रयोजयंस्तद्विनिहन्तिशोफान् । भगन्दरार्शःक्रिमिकुष्ठमेहान्वैवर्ण्यकार्श्यानिलहिक्कनञ्च ॥ २९ ॥

कण्डीर (अपामार्ग या काण्डवेल), भेलावे, चित्रक, त्रिकुटा, वायविडंग, कटेली वडी कटेली इन सबको मिलाकर दो प्रस्थ लेवे । तथा कूर्चिक मस्तु (दूधमें आधा पानी मिला गरमकर उसमें खट्टी दही डालदेनेसे दूध फटकर जो पानी निकले) १ द्रोण लेवे । इन सबको मिलाकर गौके जंगली उपलोंकी अग्निसे पकावे । जब १ भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तब उसको अच्छी तरहसे छानकर फिर इसमें १द्रोण दहीका पानी मिलावे । १०० पल मिसरी मिलावे और चित्रक तथा पीपलके कल्कसे लिपेहुए घडेमें रखकर बन्द करदे । इस घडेको रस्सीके छीकेमें बांधकर जिस स्थानमें धूप लगतीहो किसी वृक्षसे अथवा अन्य किसी वस्तुसे बांधकर आकाशमें लटकावे । फिर १० दिनके पीछे उतारकर रोगीको उचित मात्रासे पिलावे । इसके सेवनसे सूजन, भगन्दर, अर्शरोग, कृमिरोग, कुष्ठ, प्रमेह, विवर्णता, कृशता, वातरोग और हिचकी यह सब दूर होतेहैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

काश्मर्यादि अरिष्ट ।

काश्मर्य्यधात्रीमरिचाभयानांद्राक्षाफलानाञ्चसपिप्पलीनाम् । शतंशतंजीर्णगुडात्तुलाञ्चसंक्षुद्यकुम्भेमधुनाप्रलिप्ते ॥ ३० ॥ सप्ताहमुष्णेद्विगुणन्तुशीतेस्थितंजलद्रोणयुतंपिबेत्ता । शोफान्विबन्धान्कफवातजांश्चसहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोऽग्निकृच्च ॥ ३१ ॥

कुंभेरके फल, आँवले, मिर्च, हरड, बहेडे, द्राक्षा, पीपल यह प्रत्येक सौ सौ पल लेवे, पानी १ द्रोण इन सबको मिलाकर आग पर गरम करे। जब जल १ भाग जलकर तीन भाग शेष रहे तो उसको उतारकर १ तुला (५ सेर) पुराना गुड मिलावे। इन सबको घोलकर शहत लिपेहुए घडेमें भरकर बन्द करदेवे। यदि गर्मीकी ऋतु हो तो इसको ७ दिन धरा रहनेदे और शीतकालमें १४ दिन तक रक्खे फिर इसको छानकर सेवन करनेसे सूजन, कफ और वायुका विबंध तथा मंदाग्नि यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचबलेसपाठेदन्तींगुडूचीमथचित्रकञ्च । निदिग्धिकाञ्च त्रिपलानिपक्त्वाद्रोणार्द्धशेषेसलिलेततस्तम् ॥ ३२ ॥ पूत्वारसंद्वे चगुडात्पुराणात्तुलेमधुप्रस्थयुतंसुशीतम् । मासंनिदध्याद्घृतभाजनस्थंपलेयवानांपरितस्तुमापान् ॥ ३३ ॥ चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तंपत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः । गन्धान्वितंक्षौद्रघृतप्रदिग्धैर्जीर्णेपिबेद्व्याधिबलंसमीक्ष्य ॥ ३४ ॥ हृत्पाण्डुरोगंश्वयथुंप्रवृद्धंप्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् । भगन्दरंपङ्जठराणिकासंश्वासंग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ ३५ ॥ शाखानिलंवद्धपुरीषताञ्चहिक्कांकिलासञ्चहलीमकञ्च । क्षिप्रंजयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोन्वितोमांसरसान्नभोक्ता ॥ ३६ ॥

लाल पुनर्नवा, श्वेतपुनर्नवा, बला, अतिबला, पाठा, सोनापाठा, दंती, गिलोय, चित्रक और कटेरी इन प्रत्येकको तीन तीन पल लेकर १ द्रोण जलमें पकावे। आधा जल बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे। शीत होनेपर इसमें २ तुला पुराना गुड मिलादेवे और १ प्रस्थ शहत मिलावे। फिर घृतसे चिकने पात्रमें भरकर बन्द करदेवे। फिर इसको यवोंके आटेसे संपुटकर उडदोंके ढेरमें दवाकर १ महीना

रखदेवे १ महीने बाद इसको निकालकर इसमें तेजपत्र, दालचीनी, छोटी इलायची, कालीमिर्च और नेत्रवाला इनका दो दो तोला बारीक चूर्ण मिलाकर सुगंधित करे। (इसमें २ तोला लोहभस्म मिलावे) सबको हिलाकर किसी पात्रमें भरलेवे । (फिर नित्य शहत और घृतयुक्त भोजन करे । तथा भोजनके जीर्ण होनेपर इस अरिष्टको अग्निबल और व्याधि विचारकर मात्रानुसार पीवे) अथवा इस अरिष्टको पहिले दिनका किया भोजन जीर्ण होनेपर नित्य प्रातःकाल शहत और घृत मिला व्याधि, बल विचारकर पीवे तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, बढीहुई सूजन, प्लीहरोग (तिल्लीका बढना) भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, छः प्रकारका उदररोग, खांसी, श्वास, ग्रहणी विकार, कोढ, खुजली, शाखागत वात मलका विबंध, हिचकी, किलास और हलीमक यह सब रोग नष्ट होतेहैं । इसके सेवनसे वर्ण बल, आयु, ओज और तेजकी वृद्धि होतीहै । इसके सेवनमें मांसरस और भातका भोजन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्रिफला अरिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौचसपिप्पलीलोहरजोविडङ्गम् । चूर्णीकृतं कौडविकंद्विरंशंक्षौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य । मासंनिदध्याद्घृतभाजनस्थंयवेपुतानेवनिहन्तिरोगान् ॥ ३७ ॥

त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहचूर्ण और वायविडंग यह प्रत्येक एक एक कुडव लेकर बारीक चूर्ण कर लेवे । शहद २ कुडव पुराना गुड १ तुला, पहिले शहत और गुडके सिवाय सब औषधियोंको १ द्रोण जलमें पकावे आधा भाग शेष रहनेपर नीचे उतारकर ठण्डा करलेवे फिर इसमें शहद और गुड मिलाकर घीके चिकने पात्रमें डाल यवोंके ढेरमें गाडकर १ महीना रक्खे । फिर छानकर किसी शुद्ध पात्रमें भरे । इसके सेवनसे उपरोक्त पुनर्नवारिष्टके समान गुण होतेहैं ॥ ३७ ॥

येचार्शसाम्पाण्डुविकारिणाश्चप्रोक्ताःशुभाःशोफिपुतेऽप्यरिष्टाः॥३८॥

इसके सिवाय और भी जो अरिष्ट अर्शरोग और पाण्डुरोगमें कथन किये हैं वह सब शोथरोगमें हितकारक होतेहैं ॥ ३८ ॥

पिप्पली आदि चूर्ण ।

कृष्णासपाठागजपिप्पलीचानिदिग्धिकाचित्रकनागरेच । सपिप्पलीमूलरजन्यजाजीमुस्तश्चचूर्णसुखनोयपीतम् । हन्याग्निदोपंचिरजश्शोफंवल्कश्चभूनिम्बमहौषधस्य ॥ ३९ ॥

पीपल, पाढ, गजपीपल, कटेली, चित्रक, सोंठ, पीपलामूल, हलदी, जीरा, नागरमोथा इन सबका चूर्णकर सुखोष्ण जलके साथ पीनेसे तीनों दोषोंके शोथ, बहुत दिनके पुराने शोथ दूर होतेहैं। इसी प्रकार चिरायता और सोंठके कल्कको गरम जलके साथ पीनेसे भी तीनों दोषोंका शोथ दूर होताहै ॥ ३९ ॥

अयोरजरुयूपणयावशूकंचूर्णश्चपीतंत्रिफलारसेन ॥ ४० ॥

लोहकी रज (लोहभस्म अथवा मण्डूरभस्म) सोंठ, मिर्च, पीपल और जवाखार इनको त्रिफलाके क्वाथके साथ पीवे तो तीनों दोषोंकी पुरानी सूजन भी दूर होतीहै ॥ ४० ॥

क्षारादि गुटिका।

क्षारद्वयंस्याल्लवणानिचत्वार्य्ययोरजोव्योपफलात्रिकञ्च । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारंमुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम्। कलिङ्गकाश्चित्रकमूलपाठंसयष्टिकश्चातिविषंपलांशम्॥ ४१ ॥ सहिंगुकर्षन्त्वनुसूक्ष्मचूर्णंद्रोणंयथामूलकशुण्ठिकानाम्।स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेनसाध्यमालोड्ययावद्घनमप्रदग्धम् ॥ ४२ ॥ स्त्यानंततःकोलसमान्तु मात्रांकृत्वासुशुष्कांविधिनाभजेत । प्लीहोदरश्वित्रहलीमकांस्तु पाण्ड्वामयारोचकशोषशोकान् । विषूचिकागुल्मगराश्मरीश्चसश्वासकासाःप्रणुदेरसकुष्ठाः ॥ ४३ ॥

जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, संचरनमक, सांभरनमक, विडनमक, लोहभस्म, पीपल, मिर्च, सोंठ, हरड, बहेडे, आँवले, पीपलामूल, वायविडंगके चावल, नागरमोथा, अजमोद, देवदारू, बेलगिरि, इन्द्रयव, चित्रककी छाल, पाठा, मुलैठी और अतीस इन सबको एक एक पल लेवे। भुनीहुई हींग एक कर्ष लेवे । इन सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे। फिर मूली और सोंठकी भस्म जल मिलाकर १ द्रोण लेकर पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस छनेहुए जलमें ऊपरकी सब औषधियोंका चूर्ण मिलाकर पकावे और हिलाताजावे। जब गाढा होजाय तब नीचे उतारकर जंगली बेरके समान गोलियां बनावे। जब यह सूखजांय तो इनका सेवन करनेसे प्लीहा, उदररोग, श्वेतकुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोषरोग, शोथरोग, विषूचिका, गुल्म, अश्मरी, श्वास, खांसी और कुष्ठ यह सब रोग नष्ट होतेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

गुडार्द्रक योग ।

प्रयोजयेद्वार्द्रकनागरंवातुल्यंगुडेनार्द्धपलाभिवृद्ध्या । मात्रापलंपञ्चपलानिमासंजीर्णेपयोयूषरसान्नभोक्ता ॥ ४४ ॥ गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहाञ्श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् । सकामलांशोपमनोविकारान्कासंकफञ्चैवजयेत्प्रयोगः ॥ रसस्तथैवार्द्रकनागरस्यपेयोऽथजीर्णेपयसान्नमद्यात् ॥ ४५ ॥

अदरख अथवा सोंठको बराबरके गुडमें मिलाकर सेवनकरे । इसका यह क्रम है कि पहिले दिन आधा पल, दूसरे दिन एक पल, तीसरे दिन डेढ पल इसी प्रकार आधा २ पल बढाते हुए पांच पल पर्यन्त पहुंचावे फिर १ महीने तक पांच पल बराबर खाताजाय मात्रा जीर्ण होनेपर दूध, मूंगका यूप, अथवा मांसरसके साथ चावलोंका भोजन करे तो गुल्म, उदररोग, बवासीर, शोथ, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अन्नका न पचना, कामला, शोप, मनकें विकार, खांसी और कफ यह सब दूर होतेहैं । इसी प्रकार अदरखका रस वा सोंठका रस आधे पलसे आरम्भकर पांच पल पर्यन्त क्रमशः बढा १ महीने पर्यन्त सेवनकरे और दूध चावलका पथ्य करे तो भी उपरोक्त गुण होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

शिलाजतु प्रयाग ।

जत्वश्मजञ्चत्रिफलारसेनहन्यात्रिदोपंश्वयथुंप्रसह्य ॥ ४६ ॥

शिलाजीतको त्रिफलाके क्वाथके साथ सेवन किया जाय तो तीनों दोपोंके शोथको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कपायेकंसेऽभयानाञ्चशतंगुडस्य । लेहेसुसिद्धेचविनीयचूर्णंव्योपंत्रिसौगन्ध्यमुपांस्थितेच ॥ ४७ ॥ प्रस्थार्द्धमात्रंमधुनःसुशीतेकिञ्चिच्चचूर्णादपियावशूकात् । एकाभयांप्राश्यततश्चलेहाच्छुक्तिंनिहन्तिश्वयथुंप्रवृद्धम् ॥ ४८ ॥ श्वासज्वरारोचकमेहहिक्काप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् । कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तंवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोपान् ॥ ४९ ॥

दशमूलकी औपधियें १ कंस (आढक, ४ सेर), बडी २ उत्तम हरडे १००, हरडोंको एक कपडेमें ढीलीसी बांधकर १६ सेर जलमें डालकर उसी जलमें दश-

मूलकी औषधियें मिला क्काथ बनावे। जब ४ सेर पानी बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे और हरडोंको क्वाथमें मिलावे और उसी क्वाथमें गुड (४ सेर) मिलाकर पकावे। जब वह पककर गाढा होजाय तो इसको नीचे उतार शीतल-कर आधा सेर शहद मिलावे और मिर्च, पीपल, सोंठ, इलायची, दालचीनी और तेजपत्र यह एक एक पल बारीक चूर्ण कर मिलावे। इसमेंसे एक हरड खाकर ऊपरसे यह अवलेह १ तोला चाटलेवे। इस प्रकार १०० दिनमें इन १०० हरडोंको खावे। इस प्रयोगसे अत्यंत वढीहुई सूजन, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष और वीर्यदोष यह सब दूर होतेहैं ॥ ४७-४९ ॥

पटोलमूलादि घृत।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्पल्यभयाविशालाः। यष्टया-
ह्विकातिक्तकरोहिणीचसचन्दनास्यान्निचुलानिदार्वी ॥ ५० ॥
कर्षोंस्थितैस्तैःक्वथितःकषायोघृतस्यपेयःकुडवेनयुक्तः। विसर्पदा-
हज्वरसन्निपातांस्तृष्णांविषाणिश्वयथुंनिहन्ति ॥ ५१ ॥

पटोलकी जड, देवदारू, दंती, त्रायमाण, पीपल, हरड, इन्द्रायणकी जड, मुलैठी, कुटकी, लालचंदन, निचुल (समुद्रफल) और दारुहलदी यह सब एक एक कर्ष लेवे। इनको सोलह गुने जलमें पकाकर चौथा भाग रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस क्वाथसे एक कुडव घृत सिद्धकरे इस घृतके पीनेसे विसर्प, दाह, ज्वर सन्निपात, प्यास, विषदोष और सूजन यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥

चित्रकादि घृत।

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजीसौवर्चलंत्र्यूषणवेतसाम्लम्। बिल्वा-
त्फलंदाडिमयावशूकौसपिप्पलीमूलमथोऽपिचव्यम् ॥ ५२ ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेनपक्त्वाघृतप्रस्थमथोप्रयुंज्यात्। अर्शां-
सिगुल्मंश्वयथुञ्चदुःखंतद्धन्तिवह्निञ्चकरोतिदीप्तम् ॥ ५३ ॥

चित्रक, धनियां, अजवायन, जीरा, संचरनमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, अमलवेत, बेलगिरि, अनारका छिलका, जवाखार, पिपलामूल और चव्यको एक एक कर्ष लेकर १ आढक जलमें पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस क्वाथमें १ प्रस्थ घी डालकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारलेवे। इस घृतके सेवनसे ववासीर, गुल्म, सूजन और मूत्रकृच्छ्र, यह सब विकार दूर होतेहैं। यह घृत अग्निको भी चैतन्य करताहै ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पिबेद्धृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धंसचित्रकक्षारमुदारवीर्य्यम् । कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यंतिक्तंमहद्वाप्यथतिक्तकंवा ॥ ५४ ॥

अथवा चित्रक और जवाखारके कल्कको मिलाकर आठगुना जल डाल घृतको सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे वढीहुई शोथ भी दूर होतीहै । एवं कल्याणकघृत अथवा पंचगव्यघृत या महातिक्तक घृत अथवा तिक्तघृतके सेवनसे भी शोथरोग दूर होताहै ॥ ५४ ॥

क्षीरंघटेचित्रककल्कलिप्तेदध्यागतंसाधुविमथ्यतेच । तज्जंघृतंचित्रकमूलगर्भंतक्रेणसिद्धंश्वयथुघ्नमग्र्यम्॥ ५५ ॥ अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहांश्चैतन्निहन्त्यग्निवलप्रदश्च । तक्रेणवाद्यात्सघृतेनतेनभोज्यानिसिद्धामथवायवागूम् ॥ ५६ ॥

चित्रककी जडकी छालको जलके संयोगसे वारीक पीस, घडेमें लेपकरै । जब वह लेप सूखजाय उसमें दूधको गर्मकर दही जमा देवे । फिर इसमें विलोकर घी निकाल लेवे । उस घृतमें आठवां भाग चित्रकका कल्क मिलाकर और चारगुना तक्र मिला पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस घृतके सेवनसे वढीहुई सूजन, अर्श, अतिसार, वातगुल्म, प्रमेह यह सब दूर होतेहैं और जठराग्निका वल वढताहै । मात्रा पचनेपर घृत और तक्रके साथ भोजन करावे । अथवा घृत और तक्र मिलाकर सिद्ध कीहुई यवागू पान करावे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

शोथहरयवागू ।

जीवन्त्यजाजीशटिपुष्कराह्वैःसकारवीचित्रकविल्वमध्यैः । सयावशूकैर्बदरप्रमाणैर्वृक्षाम्लयुक्ताघृततैलभृष्टाः ॥ ५७ ॥ अर्शोऽतिसारानिलगुल्मशोफहृद्रोगमन्दाग्निहितायवागूः । यापञ्चकोलैर्विधिनैवतेनसिद्धाभवेत्साचसमातथैव ॥ ५८ ॥

जीवंती, जीरा, कचूर, पोहकरमूल, कलौंजी, चित्रक, वेलकी गिरि और जवाखार यह प्रत्येक एक एक तोला लेकर क्वाथ वनावे । उस क्वाथको छानकर उसमें यवागू सिद्धकरे । इस यवागूको इमलीकी खटाईसे खट्टा वना घृतमें भूनकर सेवन करे तो अर्शरोग, अतिसार, वातगुल्म, सूजन, हृद्रोग और मंदाग्नि इन सबमें हित होता है । अथवा इसी प्रकार पंचकोलसे सिद्ध कीहुई यवागू भी इसीके समान गुणवाली है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

कुलत्थयूषश्चसपिप्पलीकोमौद्गश्चसत्र्यूषणयावशूकः। रसस्तथाविष्किरजाङ्गलानांसकूर्मगोधाशिखिशल्लकानाम् ॥ ५९ ॥ सुवर्चिकागृञ्जनकंपटोलंसवायसीमूलकनेत्रनिम्बम् । शाकार्थिनांशाकमतिप्रशस्तंभोज्यंपुराणश्चयवःसशालिः ॥ ६० ॥

पीपलके क्वाथसे सिद्ध किया कुलथीका यूप अथवा पीपल, मिर्च, सोंठ और जवाखार इनसे सिद्ध किया मूंगका यूप सूजनको शान्तकारक है। और विष्किर पक्षियोंका मांसरस अथवा जांगलजीवोंका मांसरस या कूर्म, गोह,मोर और सेहका मांसरस शोथरोगीके लिये हितकारी है। तथा हुलहुलका साग, सलजम, पटोल, मकोह कच्ची मूली, वेतकी कोंपल, नीम इनके शाक पुराने शालीचावलोंका भात यह सब शोथरोगमें पथ्य हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥

आभ्यन्तरंभेषजमुक्तमेतद्बहिर्हितंयच्छृणुतद्यथावत् । स्नेहान्प्रदेहान्परिषेचनानिस्वेदांश्चवातप्रबलांश्चकुर्य्यात् ॥ ६१ ॥

शोथरोगकी शान्तिके लिये आभ्यंतर (भीतरी) चिकित्साका वर्णन कियागयाहै। अब बाहर लेपनादिमें जो हितकारक औषधियें हैं उनको सुनो वायुके शोथमें स्नेहन, प्रलेपन, परिषेचन और स्वेदन कर्म करना हितकारक है ॥ ६१ ॥

वातशोथनाशक शैलेयादि तैल ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः । प्रियंगुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ ६२ ॥ श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिःस्पृक्कानखैश्चैवयथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्यङ्गमुपन्तितैलंसिद्धंसुपिष्टैरपिचप्रदेहम् ॥ ६३ ॥

शैलेय कूठ (भूरीं छरीला अथवा सेंधानमक) अगर, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, पद्मककाष्ठ, इलायची, नेत्रवाला, पलाश, नागरमोथा, प्रियंगु, गाठिवन, नागकेशर, जटामांसी, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपत्र, धनियां, श्रीवेष्टक, वीरणतृण, पिप्पली, स्पृक्का (असवर्ग) और नख इनमेंसे जो प्राप्त होसकें उनके कल्क और क्वाथ द्वारा सिद्धकिया तेल मालिश करनेसे और -हीं उपरोक्त औषधियोंको लेप करनेसे वातकी सूजन दूर होतीहै ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

जलैश्चवासार्ककरञ्जशिग्रुकाश्मर्य्यपत्रार्जकजैश्चसिद्धैः ।
स्विन्नोमृदूष्णोरवितसतोयस्नातश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥ ६४ ॥

वांसा, आककी जडका छिलका, करंजुआ, सोहांजना कुंभेर, और तुलसीके पत्र इन सबको जलमें पकाकर उस जलकी भाफ सूजनपर देना जब अच्छी तरह पसीना आलेवे फिर पसीना शान्त होनेपर धूपसे गर्म हुए जलमें स्नानकर गंधद्रव्योंका लेपन करे ॥ ६४ ॥

पित्तजशोथमें यत्न ।

सवेतसाःक्षीरवतांद्रुमाणांत्वचःसमञ्जिष्ठलताम्रृणालाः । सचन्दनाःपद्मकवालकौचपैत्तेप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ ६५ ॥ आक्तस्यतेनाम्बुरविप्रतप्तंसचन्दनंसाभयपद्मकञ्च । स्नानेमतंक्षीरवतांकपायःक्षीरोदकंचन्दनलेपनञ्च ॥ ६६ ॥

वेतसकी छाल और बड आदि वृक्षोंकी छाल, मजीठ, कमलकी डण्डी, चंदन, पद्माक, सुगंधवाला इन सबको रगडकर लेप करना और इन्हींसे सिद्ध किये तेलकी मालिश पित्तकी सूजनको दूर करताहै । पित्त शोथवाला रोगी इस तैलकी मालिशकर फिर चंदन, हरड और पद्माकको पीसकर जलमें मिलाकर कल्क करे । इसको धूपमें तपाकर शरीरपर लगावे और बड आदि क्षीरीवृक्षोंके क्वाथसे अथवा दूध मिले जलसे स्नानकर चंदनका लेपन करे यह कर्म पित्तकी सूजनको शान्त करताहै ॥६५॥६६॥

कफशोथनाशक यत्न ।

**कफेतुकृष्णासिकतापुराणपिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकश्चण्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ६७ ॥**

पीपलका चूर्ण, पुरानी खल, साहजनेकी छाल और राई इनको पीसकर लेप करना कफकी सूजनको दूर करताहै । तथा कुल्थी और सोंठके क्वाथसे गोमूत्र मिलाकर परिषेचन करना फिर चोर नामक गंधद्रव्य और अगरका लेपकरना कफकी सूजनको शान्त करताहै ॥ ६७ ॥

**विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेषुदाहार्त्तिहरःप्रलेपः ।
यष्टयाह्वमुस्तैःसकपित्थपत्रैःसचन्दनैस्तत्पिडकासुलेपः ॥ ६८ ॥**

बहेडेकी गुठलीको पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारकी सूजनोंकी दाह दूर होतीहै मुलैठी, नागरमोथा और कैथके पत्ते और लालचंदन इनको रगडकर लेप करनेसे शोथकी पिडका शान्त होतीहैं ॥ ६८ ॥

रास्नावृषार्कत्रिफलाविडङ्गशिग्रुत्वचोमूषिककर्णिकाच । निम्बार्जकौव्याघ्रनखःसदूर्वासुवर्चलातिक्तकरोहिणीच ॥ ६९ ॥

सकाकमाचीबृहतीसकुष्ठापुनर्नवाचित्रकनागरेच। उन्मर्दनंशोफिषु
मूत्रपिष्टंशस्तस्तथामूलकतोयसेकः ॥ ७० ॥

रासना, अडूसा, आककी जडका छिलका, त्रिफला, वायविडंग, सांहजनेकी छाल, मूषकपर्णी, नीमके पत्ते, तुलसीके पत्ते, व्याघ्रनखी, दूर्वा, हुलहुल, कुटकी, मकोय, वडी कटेली, कूठ, पुनर्नवा, चित्रक, सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर सूजनपर मर्दन करना और सूखी मूलीको जलमें पकाकर उस जलका तरडा देना सब प्रकारकी सूजनोंको दूर करताहै ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अंगावयवभेदसे शोफोंका वर्णन ।

शोफास्तुगात्रावयवाश्रितायेतेस्थानदूष्याकृतिनामभेदात् ।
अनेकसंख्याःकतिचिच्चतेषांनिदर्शनार्थंश्रृणुचोच्यमानान् ॥ ७१ ॥

जो सूजनें शरीरके अवयवोंमें होतीहैं वह स्थान दूष्य, आकृति और नामभेदसे अनेक प्रकारकी होतीहैं उनमेंसे उदाहरण मात्रके लिये कुछ सूजनोंको कहतेहै सो तुम श्रवण करो ॥ ७१ ॥

गल और शिरकी सूजन ।

दोषास्त्रयःस्वैःकुपितानिदानैःकुर्वन्तिशोफाञ्छिरसःसुघोरान् ।
अन्तर्गलेघुर्घुरिकान्वितश्वशालूकमुच्छ्वासनिरोधनानि ॥७२॥

तीनों दोष अपने २ हेतुओंसे कुपित होकर सिरमें घोर सूजनको उत्पन्न करतेहैं । तथा कुपितहुए दोष गलेमें श्वासको रोकनेवाली और घुरघुर शब्द करनेवाली शालूक नामक सूजनको उत्पन्न करतेहैं ॥ ७२ ॥

सुचोग्र और बिडालिका ।

गलस्यसन्धौचिबुकेगलेचसदाहरागश्वसनःसुचोग्रः ।
शोफोभृशार्त्तिस्तुबिडालिकास्याद्धन्याद्गलेचेद्वलयीकृतास्यात् ७३॥

गलेकी संधि, ठोढी, गला इनमें दाहयुक्त, लालवर्ण और श्वाससहित जो सूजन उत्पन्न होतीहै उसको सुचोग्र कहतेहैं । जो शोथ गलेमें गोलाकार उत्पन्न हो और उसमें अत्यंत पीडा होतीहो वह बिडालिका नामक सूजन मनुष्योंको मारडालतीहै ॥ ७३ ॥

तालुविद्रधि उपजिह्व, अधिजिह्व ।

स्यात्तालुविद्रध्यपिदाहरोगैर्युताभवेत्तालुनिसात्रिदोषात् ।
जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विकास्यात्कफादधस्तादधिजिह्विकाच ॥ ७४ ॥

दाह और लालवर्णयुक्त तालुवेमें होनेवाली विद्रधि त्रिदोषसे होतीहै । जीभके ऊपर उपजिह्वा नामक सूजन उत्पन्न होतीहै । जीभके नीचे कफजनित सूजन अधिजिह्विका नामकी होतीहै ॥ ७४ ॥

उपकुश और दंतविद्रधि।

योदन्तमांसेपुतुरक्तपित्तात्पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः ।
स्याद्दन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसञ्चयोत्थः॥७५॥

जो दांतोंके मांसमें रक्तपित्तसे पाक होताहै उसको उपकुश कहतेहैं । कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई दांतोंकी जडोंकी सूजन दंतविद्रधि (मसूडा) कही जातीहै ॥ ७५ ॥

गलगंड और गंडमाला।

गलस्यपार्श्वेगलगण्डएकःस्याद्गण्डमालाबहुभिस्तुगण्डैः।
साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः॥ ७६ ॥

गलेके पार्श्वमें, जो गांठकासा एक आकार प्रकट हो उसको गलगण्ड कहतेहैं । और बहुतसी ग्रंथियें हों तो उनको गण्डमाला कहतेहैं । यह दोनों साध्य होतेहैं । परन्तु इनमें प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमन यह सब उपद्रव होनेसे असाध्य माने जातेहैं ॥ ७६ ॥

उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्साक्रम।

तेषांशिराकायशिरोविरेकोधूमः पुराणस्यघृतस्यपानम् ।
सलंघनंवक्रभवेपुचापिप्रहर्षणंस्यात्कवलग्रहश्च ॥ ७७ ॥

इन संपूर्ण सूजनोंको शान्त करनेके लिये शिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान और पुराने घृतका पान करना तथा लंघन यह सब हितकारक हैं। मुखमें होनेवाली सूजनोंमें शोथनाशक चूर्णोंको मुखकी शोथपर मलना, शोथनाशक द्रव्योंके क्वाथको मुखमें धारणकर कुल्ले करना तथा लंघनकरना हितकारक होताहै ॥ ७७ ॥

ग्रंथियोंका वर्णन।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिःस्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःशिराभिः।
ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वनर्त्तिर्मेदोभवःस्निग्धतमश्चलश्च ॥ ७८ ॥

वातादि दोषोंसे शरीरके किसी देशमें जो सूजन होतीहै वह वातादिदोषोंके प्रत्यक्ष लक्षणोंयुक्त होतीहै । वह सूजन यदि शिराके बीचमें हो तो वह फडकतीहै इसको

शिराग्रंथि कहतेहैं। यदि सूजन मांसगत हो तो वह बडी गांठसी होतीहै उसमें पीडा नहीं होती। और मेदगत ग्रंथि अथवा मेदमें होनेवाली ग्रंथि अत्यंत चिकनी और चलायमान होनेवाली होतीहै ॥ ७८ ॥

ग्रन्थियोंकी चिकित्सा।

तंशोधितंस्वेदितमश्मकाष्ठैःसांगुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम्। विपाट्य-चोद्धृत्यभिषक्सकोपंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत् ॥ ७९ ॥ अद-ग्धईषत्परिशोषितश्चप्रयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम्। तस्मादशेषः कुशलैःसमन्ताच्छेद्योभवेद्वीक्ष्यशरीरदेशान् ॥ ८० ॥ शेषे कृते पाकवशेन शीर्य्येत्ततः क्षतोत्थः प्रसरेद्विसर्पः। उपद्रवं तंप्रतिवा-र्य्येतज्ज्ञःस्वैर्भेषजैःपूर्वतरैर्यथोक्तैः। ततःक्रमेणास्ययथाविधानंव्रणं व्रणज्ञस्त्वरयाचिकित्सेत् ॥ ८१ ॥

संपूर्ण ग्रंथियोंको पकनेसे पहिले ही शोधन तथा स्वेदन करना और पत्थर, काष्ठ, अंगूठा और दण्ड आदिसे सेककर नरम करना चाहिये। और शस्त्रद्वारा चीरकर कोपसमेत निकाल देना चाहिये। तथा ग्रंथिके स्थानको शस्त्रसे दाग देवे और व्रणके अनुसार चिकित्सा करे। यदि उसको शुद्ध करके दग्ध न करदियाजाय तो वह थोडासा दोष भी बाकी रहजानेसे ग्रंथि फिर होजातीहै। इसलिये यदि रक्तवाहिनी नाडीमें या मर्मस्थानमें न हो तो शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य उसको कोपसमेत निकाल डाले। क्योंकि शस्त्रद्वारा निकाल देनेके बाद भी यदि ग्रंथिका कुछ भाग शेष रहजाय तो वह फिर पककर फूटताहै। और बिगडकर क्षतजनित विसर्प उत्पन्न करताहै। ऐसा होनेपर बुद्धिमान् वैद्य उसके संपूर्ण उपद्रवोंको विसर्पमें कहे क्रमोंसे शान्तकरे। उसके अनन्तर व्रणचिकित्साकी विधिसे क्रमको जाननेवाला वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

त्याज्यग्रंथियें।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितश्चतथागलेमर्मणिसंश्रितश्च।
स्थूलःखरश्चापिभवेद्विवर्ज्योयश्चापिबालस्थविराबलानाम् ॥ ८२ ॥

कुक्षि, उदर, गला और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंको त्याग देना चाहिये। और जो ग्रंथि स्थूल, दृढ और रूक्ष हो उसमें भी शस्त्रक्रिया करना उचित नहीं, एवं बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्योंकी ग्रंथियें भी शस्त्रक्रियाके योग्य नहीं होतीं ॥ ८२ ॥

दाह और लालवर्णयुक्त तालुवोंमें होनेवाली विद्रधि त्रिदोषसे होतीहै । जीभके ऊपर उपजिह्वा नामक सूजन उत्पन्न होतीहै । जीभके नीचे कफजनित सूजन अधिजिह्विका नामकी होतीहै ॥ ७४ ॥

उपकुश और दंतविद्रधि ।

योदन्तमांसेपुतुरक्तपित्तात्पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः ।
स्याद्दन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसश्चयोत्थः॥७५॥

जो दांतोंके मांसमें रक्तपित्तसे पाक होताहै उसको उपकुश कहतेहैं । कफ और रक्तसे उत्पन्न हुई दांतोंकी जडोंकी सूजन दंतविद्रधि (मसूडा) कही जातीहै ॥ ७५ ॥

गलगंड और गंडमाला ।

गलस्थपार्श्वेगलगण्डएकःस्याद्गण्डमालावहुभिस्तुगण्डैः ।
साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः ॥ ७६ ॥

गलेके पार्श्वमें, जो गांठकासा एक आकार प्रकट हो उसको गलगण्ड कहतेहैं । और बहुतसी ग्रंथियें हों तो उनको गण्डमाला कहतेहैं । यह दोनों साध्य होतेहैं । परन्तु इनमें प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमन यह सब उपद्रव होनेसे असाध्य माने जातेहैं ॥ ७६ ॥

उपरोक्त सूजनोंकी चिकित्साक्रम ।

तेषांशिराकायशिरोविरेकोधूमः पुराणस्यघृतस्यपानम् ।
सलंघनंवक्रभवेपुचापिप्रहर्षणंस्यात्कवलग्रहश्च ॥ ७७ ॥

इन संपूर्ण सूजनोंको शान्त करनेके लिये शिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन, धूम्रपान और पुराने घृतका पान करना तथा लंघन यह सब हितकारक हैं । मुखमें होनेवाली सूजनोंमें शोथनाशक चूर्णोंको मुखकी शोथपर मलना, शोथनाशक द्रव्योंके क्वाथको मुखमें धारणकर कुल्ले करना तथा लंघनकरना हितकारक होताहै ॥ ७७ ॥

ग्रंथियोंका वर्णन ।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिःस्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःशिराभिः ।
ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वनार्त्तिर्मेदोभवःस्निग्धतमश्चलश्च ॥ ७८ ॥

वातादि दोषोंसे शरीरके किसी देशमें जो सूजन होतीहै वह वातादिदोषोंके प्रत्यक्ष लक्षणोंयुक्त होतीहै । वह सूजन यदि शिराके बीचमें हो तो वह फडकतीहै इसको

शिराग्रंथि कहतेहैं । यदि सूजन मांसगत हो तो वह बडी गांठसी होतीहै उसमें पीडा नहीं होती । और मेदगत ग्रंथि अथवा मेदमें होनेवाली ग्रंथि अत्यंत चिकनी और चलायमान होनेवाली होतीहै ॥ ७८ ॥

ग्रन्थियोंकी चिकित्सा ।

तंशोधितंस्वेदितमश्मकाष्ठैःसांगुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम् । विपाट्य- चोद्धृत्यभिषक्सकोषंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत् ॥ ७९ ॥ अद- ग्धईषत्परिशोषितश्चप्रयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम् । तस्मादशेषः कुशलैःसमन्ताच्छेद्योभवेद्वीक्ष्यशरीरदेशान् ॥ ८० ॥ शेषे कृते पाकवशेन शीर्य्येत्ततः क्षतोत्थः प्रसरेद्विसर्पः । उपद्रवं तंप्रतिवा- र्य्यतज्ज्ञःस्वैर्भेषजैःपूर्वतरैर्यथोक्तैः । ततःक्रमेणास्ययथाविधानंव्रणं व्रणज्ञस्त्वरयाचिकित्सेत् ॥ ८१ ॥

संपूर्ण ग्रंथियोंको पकनेसे पहिले ही शोधन तथा स्वेदन करना और पत्थर, काष्ठ, अंगूठा और दण्ड आदिसे सेककर नरम करना चाहिये । और शस्त्रद्वारा चीरकर कोषसमेत निकाल देना चाहिये । तथा ग्रंथिके स्थानको शस्त्रसे दाग देवे और व्रणके अनुसार चिकित्सा करे । यदि उसको शुद्ध करके दग्ध न करदियाजाय तो वह थोडासा दोष भी बाकी रहजानेसे ग्रंथि फिर होजातीहै । इसलिये यदि रक्तवाहिनी नाडीमें या मर्मस्थानमें न हो तो शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य उसको कोषसमेत निकाल डाले । क्योंकि शस्त्रद्वारा निकाल देनेके बाद भी यदि ग्रंथिका कुछ भाग शेष रहजाय तो वह फिर पककर फूटताहै । और बिगडकर क्षतजनित विसर्प उत्पन्न करताहै । ऐसा होनेपर बुद्धिमान् वैद्य उसके संपूर्ण उपद्रवोंको विसर्पमें कहे क्रमोंसे शान्तकरे । उसके अनन्तर व्रणचिकित्साकी विधिसे क्रमको जाननेवाला वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥

त्याज्यग्रंथियें ।

विवर्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितश्चतथागलेमर्मणिसांश्रितश्च । स्थूलःखरश्चापिभवेद्विवर्ज्योयश्चापिबालस्थविराबलानाम् ॥ ८२ ॥

कुक्षि, उदर, गला और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई ग्रंथियोंको त्याग देना चाहिये । और जो ग्रंथि स्थूल, दृढ और रूक्ष हो उसमें भी शस्त्रक्रिया करना उचित नहीं, एवं बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्योंकी ग्रंथियें भी शस्त्रक्रियाके योग्य नहीं होतीं ॥ ८२ ॥

अर्बुदकी चिकित्सा ।

ग्रन्थ्यर्बुदानाञ्चयतोऽविशेषःप्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानिविधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ८३ ॥

स्थान, हेतु, लक्षण, दोष और दूष्योंसे ग्रंथिरोगमें और अर्बुदमें कोई विशेषता नहीं है । इसलिये चिकित्साको जाननेवाला वैद्य अर्बुद (रसौली) रोगकी चिकित्सा ग्रंथिरोगके समान ही करै ॥ ८३ ॥

आलजीके लक्षण ।

ताम्रासशूलापिडकाभवेद्यासात्वालजीनामपरिस्रुताग्रा ॥ ८४ ॥

ताम्रवर्णवाली, शूलयुक्त और जिसके अग्रभागमें बहुत थोडा स्राव होताहै उस पिडिकाको आलजी कहतेहैं ॥ ८४ ॥

चिप्यक और विदारिका ।

शोफःकृतश्चर्मनखान्तरेस्यान्मांसास्रदूषीभृशशीघ्रपाकः । ज्वरान्वितावंक्षणकक्षजायावर्तिर्निरर्तिःकठिनायताच ॥ ८५ ॥ विदारिकासाकफमारुताभ्यांतेपांयथादोषमुपक्रमःस्यात् । विस्रावणं पिण्डिकयोपनाहःपक्वेषुचैवव्रणवच्चिकित्सा ॥ ८६ ॥

चर्म और नखोंके भीतर जो मास और रक्तको दूषित करनेवाला अत्यंत शीघ्रपाकी शोथ उत्पन्न होताहै (इसको चिप्य कहतेहैं) । वंक्षण और कक्षामें जो वर्त्तीके समान पीडारहित, कठोर, फैलीहुई, ज्वरयुक्त सूजन होतीहै उसको विदारिका कहतेहैं यह कफ और वायुसे उत्पन्न होतीहै । इन सब पिडिकाओंकी दोषानुसार चिकित्सा करना चाहिये । कच्ची अवस्थामें रक्तस्रावण और पिण्डिकाद्वारा उपनाह स्वेद, तथा पकने पर व्रणरोगके समान क्रिया करे ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

विस्फोटक और कक्षा ।

विस्फोटकाःसर्वशरीरजाःस्युःस्फोटास्तुरागज्वरतर्पयुक्ताः ।
यज्ञोपवीतप्रतिमाःप्रभूताःपित्तानिलाल्लाजनिभास्तुकक्षाः॥८७॥

जो संपूर्ण शरीरमें लालवर्णके ज्वर और तृषायुक्त फोडे हों उनको विस्फोटक कहते हैं ॥ यज्ञोपवीतके समान वातपित्तसे जो शरीरमें सूजन होतीहै उसको कक्षा (ब्रह्मसोंचली) कहतेहैं ॥ ८७ ॥

मसूरिका ।

याश्चापराःस्युःपिडकाःप्रकीर्णाःस्थूलाणुमध्याअपिपित्तजास्ताः ।

सर्वत्रगात्रेषुमसूरमात्र्योमसूरिकाःपित्तकफात्प्रदिष्टाः ॥ ८८ ॥

इनके सिवाय शरीरमें होनेवाली और जो पिडिकायें हैं उनमें कोई स्थूल, कोई प्रकीर्ण, कोई छोटी, कोई मध्यम होतीहैं यह सब पित्तसे उत्पन्न होतीहैं। कफ और पित्तसे संपूर्ण शरीरमें मसूरके समान फुन्सियें होतीहैं उनको मसूरिका कहते हैं ॥ ८८ ॥

विसर्पशान्त्यैविहिताक्रियायातांतासुकुष्ठेषुहितांविदध्यात् ॥ ८९ ॥

इन सबकी शान्तिके लिये विसर्प और कुष्ठरोगमें जो चिकित्सा कही है वह चिकित्सा करे ॥ ८९ ॥

अण्डवृद्धि ।

भ्रष्टानिलाद्यैर्वृषणेस्वलिङ्गैरन्त्राणिरेतिप्रविशेन्मुहुश्च । सूत्रेणपूर्णं मृदुमेदसातुस्निग्धश्चविद्यात्कठिनश्चशोथम् । विरेचनाभ्यङ्गनि-रूहलेपाःपक्वेषुचैवव्रणवच्चिकित्सा ॥ ९० ॥ स्यान्मूत्रसेकःकफजं विपाट्यविशोध्यसीव्यंव्रणवच्चपकम् ॥ ९१ ॥

वातादि दोष कुपित होकर अपने अपने लक्षणोंसे युक्त हो उदर स्थानोंकी नसोंमें पहुंचकर वारंवार वृषणोंमें प्रवेश करतेहैं उस समय फोतोंकी नसोंको बढादेतेहैं इसको अंत्रवृद्धि कहते हैं। दोषों द्वारा वृषणों (फोते) में मूत्रके परिपूर्ण होनेसे जो मृदु शोथ उत्पन्न होतीहै उसको मूत्रशोथ कहतेहैं। यदि दोष वृषणोंमें मेद पहुंचायें तो वह शोथ चिकनी और कठिन होतीहै। इससे अण्डकोश बढजातेहैं इसी रोगको अण्डवृद्धि कहतेहैं। इस रोगमें अपक्व अवस्थामें विरेचन, अभ्यंग, निरूहण और लेपन क्रिया करे। इसके पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे। मूत्रवृद्धिमे शस्त्रद्वारा वेधनकर मूत्रको निकालदेवे। कफजनित मेदज वृद्धिमें शस्त्रसे चीरकर मेद निकालकर शुद्ध करके सींदेना चाहिये। और पकजानेपर व्रणके समान चिकित्सा करे ॥ ९० ॥ ९१ ॥

भगंदरका वर्णन ।

क्रिम्यस्थिसूक्ष्मक्षणनव्यवायप्रवाहनान्युत्कटकाश्वपृष्ठैः । गुदस्य-पार्श्वेपिडकाभृशार्तिःपक्वप्रभिन्नातुभगन्दरःस्यात्। विरेचनञ्चैषण-पाटनञ्चविशुद्धमार्गस्यचतैलदाहः ॥ ९२ ॥ स्यात्क्षारसूत्रेणसु-पाचितेनाच्छिन्नस्यचास्यव्रणवच्चिकित्सा ॥ ९३ ॥

गुदामें कृमियोंके होनेसे अस्थि, पैंडका आदि गुदाके किनारे चुभजानेसे, मैथुनसे,

विना वेगके जोर लगाकर मलत्याग करनेसे घोडेकी नंगी पीठर चढनेसे अथवा अन्य उत्कट सवारीपर बैठनेसे गुदाके किनारेपर पीडायुक्त पिडिका होजाती हैं। वह पककर फूटतीहैं उनको भगन्दर कहतेहैं। भगन्दररोगमें विरेचन एषणीयन्त्र (सलाई) द्वारा भगन्दरको देखकर उसमें रोपण औषधी पहुंचाना और चीरकर स्वच्छ करदेना चाहिये। फिर शुद्ध मार्ग होनेपर तेल आदि औषधीके साथ दाह करना अथवा क्षार और मूत्रद्वारा सिद्ध किये तेलसे दग्ध करना तथा स्वच्छ होनेपर व्रणके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

श्लीपदकी निदान चि० ।

जंघासुपिण्डीप्रपदोपरिष्टात्स्याच्छ्लीपदंमांसकफास्रदोषात् ।
शिराकफघ्नश्चविधिःसमग्रस्तत्रेष्यतेसर्षपलेपनञ्च ॥ ९४ ॥

जंघाकी पिण्डलियोंमें पीछेकी तरफ मांस, कफ और रक्तके दोपसे नसें फूलकर जो मोटापन होजाताहै उसको श्लीपद कहतेहैं। इस श्लीपदरोगमें शिरावेधन, कफनाशक चिकित्सा और कफनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलोंका लेपन हित होताहै९४॥

जालगर्दभका निदान चि० ।

मन्दास्तुपित्तप्रवलाःप्रदिष्टादोषाःसुतीव्रंतनुरक्तपाकम् । कुर्वन्ति शोथंज्वरतर्षयुक्तंविसर्पणंजालकगर्दभाख्यम् । विलंघनंरक्तविमोक्षणञ्चविरूक्षणंकायविरेचनञ्च ॥ ९५ ॥ धात्रीप्रयोगाञ्छिशिरान्प्रदेहान्कुर्य्यात्सदाजालकगर्दभस्य । एवंविधांश्चाप्यपरान्निशम्य शोथप्रकारानानिलादिलिङ्गैः । शान्तिंनयेद्दोपहरैर्यथास्वमालेपनच्छेदनभेददाहैः ॥ ९६ ॥

मंद, वात कफ और पित्तकी प्रवलतासे तीव्र दाह और पाकयुक्त पतली लालवर्णकी ज्वर और तृषासहित फैलनेवाली जालगर्दभ नामक सूजन होतीहै । इसमें लंघन, शिरामोक्षण, विरूक्षण, कायविरेचन, करना चाहिये । इसमें आमलोंका प्रयोग और शीतल लेपोंका करना हितकारी होताहै। और इसी प्रकारके पित्तप्रधान अन्य पिडिका तथा सूजनोंपर भी दोपोंके लक्षणोंको विचारकर उन्ही २ दोपोंके हरनेवाले लेप, छेदन, भेदन, दाह आदि क्रिया करना चाहिये ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

आगन्तु शोथ ।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तःशोथंसरागंप्रकरोतितत्र ।
वीसर्पवन्मारुतरक्तनुच्चकार्य्यंविपघ्नंविषजेचकर्म ॥ ९७ ॥

चोट आदि लगनेसे जो शोथ उत्पन्न होताहै उसमें प्रायः वायु और रक्त दूषित होकर लालवर्णकी सूजन उत्पन्न होतीहै, उसमें विसर्पनाशक तथा वायु और रक्तको शान्त करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये। विषसे उत्पन्न हुई सूजनमें विषनाशक क्रिया करना हित है ॥ ९७ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवतिचात्र। त्रिविधस्यदोषभेदात्सर्वार्द्धावयवगात्रभेदाच्च। श्वयथोर्द्विविधस्यतथालिङ्गानिचिकित्सितञ्चोक्तम् ॥ ९८ ॥

इति चरक० चि० श्वयथुचिकित्सितंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस अध्यायमें तीन प्रकारके दोषोंके भेदसे शोथ, सर्वागगत शोथ, अर्धांगशोथ और अवयव तथा स्थानभेदसे शोथ उनके निज और आगन्तु दो भेद, लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन किया गयाहै ॥९८॥

इति श्रीचर० प्र० आ० स० चि० श्वयथुचिकित्सितं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः।

अथात उदरचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम उदरचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे।

सिद्धविद्याधराकीर्णेकैलासेनन्दनोपमे। तप्यमानंतपस्तीव्रंसाक्षाद्धर्ममिवस्थितम् ॥ १ ॥ आयुर्वेदविदांश्रेष्ठंभिषग्विद्याप्रवर्त्तकम्। पुनर्वसुंजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ २ ॥ भगवन्नुदरैर्दुःखैर्दृश्यन्तेह्यर्दितानराः। शुष्कवक्त्राःकृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ ३ ॥ प्रनष्टाग्निबलाहाराःसर्वचेष्टास्वनीश्वराः। दीनाः प्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥ ४ ॥ तेषामायतनंसंख्यांप्राग्रूपाकृतिभेषजान्। यथावज्ज्ञातुमिच्छामिगुरुणासम्यगीरितम् ॥ ५ ॥

सिद्ध और विद्याधरोंसे पर्याप्त हुए नन्दनवनके समान कैलासपर्वतमें तीव्र तपको

तपतेहुए साक्षात् धर्मके समान स्थितहुए आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ वैद्यविद्याके प्रवर्तक जितात्मा पुनर्वसुजीके प्रति अग्निवेश कहनेलगे कि हे भगवन् ! मनुष्य उदररोगसे दुःखित हुए दिखाई देतेहैं और उदररोग होनेसे उनके मुख सूखेहुए, कृश-शरीर, उदर और कुक्षियोंमें अफारेयुक्त, मंदाग्नि, बलरहित, सब चेष्टाओंमें असमर्थ हुए, दीन अनाथोंके समान प्रतिक्रियारहित हुए प्राणोंका त्याग करतेहैं । इसलिये उदररोगके कारण, संख्या, पूर्वरूप, रूप और चिकित्साको कृपाकर कहिये मैं इस विषयमें यथार्थ जाननेकी इच्छा करताहूं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

सर्वभूतहितायर्षिःशिष्येणैवंप्रचोदितः । सर्वभूतहितंवाक्यंव्या-हर्त्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥

इस प्रकार शिष्यके पूछनेपर संपूर्ण मनुष्योंके हितके लिये सबके हितकारक वाक्यको महर्षि आत्रेयजी इस प्रकार कहनेलगे ॥ ६ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति ।

अग्निदोषान्मनुष्याणांरोगसङ्घाः पृथग्विधाः । मलवृद्ध्याप्रवर्त्त-न्तेविशेषेणोदराणितु ॥ ७ ॥ मन्देऽग्नौमलिनैर्भुक्तैरपाकाद्दोष-सञ्चयः । प्राणाग्न्यपानान्संदूष्यमार्गान्वद्धोत्तरोत्तरान् ॥ ८ ॥ त्वङ्मांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशम् । जनयत्युदरंतस्य हेतुंशृणुसलक्षणम् ॥ ९ ॥

जठराग्निके दोषसे मनुष्योंके शरीरमें अनेक प्रकारके रोगसमूह उत्पन्न होते हैं और विशेषकर अग्निके विकारसे मलकी वृद्धि होकर उदररोग उत्पन्न होतेहैं मंदाग्निमें मलकारक भोजन करनेसे उस भोजनका परिपाक नहीं होता उससे दोषोंका संचय होताहै । संचित हुए दोष प्राणवायु, जठराग्नि और अपानवायुको दूषितकर ऊपर नीचेके मार्गोंको बद्ध करदेतेहैं और त्वचा और मांसके मध्यमें प्राप्त होकर दोनों कुक्षियोंमें अफारा करतेहुए उदररोगको उत्पन्न करदेतेहैं उस उदररोगके कारण और लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

उदररोगके कारण ।

अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात् । मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्ष-विरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ १० ॥ प्लीहार्शोग्रहणीदोषकर्षणात्कर्म-विभ्रमात् । क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥ ११ ॥

स्रोतसांदूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात् । अर्शोबालिशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् ॥ १२ ॥ अतिसञ्चितदोषाणांपापंकर्मच कुर्वताम् । उदराण्युपजायन्तेमन्दाग्नीनांविशेषतः ॥ १३ ॥

अत्यन्त उष्ण, नमकीन, क्षार, विदाही और अम्लरसोंके अत्यंत सेवनसे विरेचनके अनन्तर पेयादि क्रमके बिगडजानेसे रूक्ष विरुद्ध और अपवित्र (भोजनोंके करनेसे प्लीहा, अर्श और) संग्रहणीके विकारसे शरीरके अत्यन्त कर्षण होनेसे वमन, विरेचनादिक कर्मोंमें विभ्रम होनेसे, कुष्ठरोगोंमें चिकित्सा न करनेसे, रूक्षता होनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको धारण करनेसे, स्रोतोंके दूषित होनेसे आमदोषसे मन और शरीरमें संक्षोभ होनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, अर्शरोगके मस्सों द्वारा मलद्वार रुककर अपानवायु और मलके रुकजानेसे किसी दुष्ट पदार्थके सेवन द्वारा आंतोंके(फटजानेसे अथवा आंतोंमें)फटनेकीसी पीडा होनेसे जिन मनुष्योंके दोष अति संचित हुए हों और पापाचारी मनुष्योंके तथा विशेषकर मंदाग्निवालोंको उदररोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १०-१३ ॥

उदररोगके पूर्वरूप ।

क्षुन्नाशःस्यादतिस्निग्धगुर्वन्नंपच्यतेचिरात् । भुक्तंविदाह्यतेसर्वंजीर्णाजीर्णंनवेत्तिच ॥ १४ ॥ सहतेनातिसौहित्यमीषच्छोफश्चपादयोः । शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपिव्यायामेश्वासमृच्छति ॥ १५ ॥ पुरीषनिचयोवृद्धिरुदावर्त्तकृताचरुक् । वस्तिसन्धौरुगाध्मानंवर्द्धतेपाट्यतेऽपिच ॥ १६ ॥ आतन्यतेचजठरमपिलघ्वल्पभोजनात् । राजीजन्मवलीनाशइतिलिङ्गंभविष्यताम् ॥ १७ ॥

भूख न लगना, मीठे, चिकने और भारी पदार्थोंका बहुत विलंबसे परिपाक होना भोजन किये अन्नका विदाही (छातीमें दाह उत्पन्न करनेवाला) परिपाक होना और भोजनका यथोचित परिपाक होगया या नहीं हुआ यह प्रतीत न होना, पेट भरकर भोजन करनेमें असमर्थ होना, दोनों पांवोंपर किंचित् सूजनसी प्रतीत होना बलका शीघ्र क्षय होना किंचित् परिश्रम करनेपर भी उदरमें मलका संचय होना, उदावर्तजनित पीडा होना, वस्तिकी संधियोंमें पीडा होना, अफारेकी वृद्धि होतीजाना, हलका और थोडासा भोजन करनेपर भी पेटका फटासा जाना और तनजाना, पेटमें रेखासी उत्पन्न होजाना और उदरके सलवट दूर होकर कपालके समान तनजाना यह उदररोगके पूर्वरूप हैं ॥ १४-१७ ॥

उदररोगकी संप्राप्ति ।

रुद्ध्वास्वेदाम्बुवाहानिदोषाःस्रोतांसिसञ्चिताः ।
प्राणापानान्हिसंदूष्यजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥ १८ ॥

संचित हुए वातादि दोष स्वेदवाही और जलवाही स्रोतोंको रोककर प्राण और अपान वायुको दूषित करदेतेहैं फिर मनुष्यको उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १८॥

उदररोगके सामान्य लक्षण ।

कुक्षेराध्मानमाटोपःशोफःपादकरस्यच ।
मन्दोऽग्निःश्लक्ष्णगण्डत्वंकार्श्यंश्चोदरलक्षणम् ॥ १९ ॥

कुक्षीमें अफारेका होना, पेटका फूलजाना, हाथ पैरोंमें सूजन, मंदाग्नि, कपोलोंमें चिकनाहट और कृशता यह उदररोगके साधारण लक्षण हैं ॥ १९ ॥

उदररोगके ८ भेद ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चप्लीहबन्धक्षतोदकैः ।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टतेषांलिंगंपृथक्शृणु ॥ २० ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे, त्रिदोषसे, प्लीहरोगसे, बद्ध, क्षत और जलके विकारसे उदररोग आठ प्रकारका होताहै । अब उनके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २० ॥

वातोदरका निदान ।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः । वायुःप्रकुपितःकुक्षिहृद्बस्तिगुदमार्गगः ॥ २१ ॥ हत्वाग्निंकफमुद्धूयतेनरुद्धगतिस्तथा । आचिनोत्युदरंजन्तोस्त्वङ्मांसान्तरमाश्रितः ॥ २२ ॥

रूक्ष और अल्प भोजनके करनेसे, अधिक परिश्रमसे, मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे, उत्पन्न हुए उदावर्त्तसे और शरीरके कृश होजानेसे कुक्षी, हृदय, वस्ति, गुदा और स्रोतगत वायु कोपको प्राप्त होकर जठराग्निको नष्ट कर देतीहै। फिर कफको बढाकर ऊपर और नीचेके मार्गोंको रोककर त्वचा और मांसके मध्यमें स्थित होकर वायु उदररोगको करतीहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

वातोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणिकुक्षिपाणिपादवृषणश्वयथूदरविपाटनमनियतौचवृद्धिह्रासौकुक्षिपार्श्वशूलोदावर्त्ताङ्गमर्दपर्वभेदशुष्ककासकार्श्यदौर्बल्यारोचकाविपाकाअधोगुरुत्वंवातवर्चोमूत्रसङ्गःश्यावारुणत्वंनख-

नयनवदनत्वङ्मूत्रवर्च्चसामपिचोदरंतनुअसितराजीशिरासन्ततमाहतमाध्मातदृतिशब्दवच्चभवति । वायुश्चोर्द्धमधस्तिर्य्यक्चसशूलशब्दश्चरतिएतद्वातोदरंविद्यात् ॥ २३ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे–कुक्षी, हाथ, पांव और फोतोंमें सूजन, पेटका फटनासा प्रतीत होना, कभी पेट फटना, कभी कम होना, कुक्षिशूल, पार्श्वपीडा, उदावर्त, अंगडाई, पर्वभेद, सूखी खांसी, शरीरका कृश होना, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, देहका अधोभाग भारी होना, अधोवायु, मल और मूत्रका बद्ध होना, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और मलका श्याम और लालवर्ण होना, पतली और काले रंगकी रेखा तथा नसोंका जालसा उदरपर दिखाई देना, उदरको बजानेसे फूलीहुई मसकके समान शब्द होना, तथा वायु ऊपर, नीचे और तिरछी तथा सब ओर शूल और शब्दके साथ विचरना । यह वातजनित उदररोगके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

पित्तज उदररोगके निदान ।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः ।
विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशुपित्तंसमाचितम् ॥ २४ ॥
प्राप्यानिलकफौरुद्ध्वामार्गमुन्मार्गमास्थितम् ।
निहत्यामाशयेवह्निंजनयत्युदरंततः ॥ २५ ॥

कटु, अम्ल, लवण, अत्यंत उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्योंके सेवनसे, अधिक काल तक धूपमें रहनेसे, विदाही भोजन करनेसे अधिक भोजन तथा अजीर्णकारी भोजनके करनेसे पित्त संचित होकर कफ और वायुके साथ मिलजाताहै उससे पित्तका मार्ग रुककर उन्मार्गगामी होजाताहै तब आमाशयकी अग्नि नष्ट होनेसे वह पित्त उदररोगको उत्पन्न करताहै ॥ २४ ॥ २५ ॥

पित्तज उदररोगका लक्षण ।

तस्यरूपाणि–दाहज्वरतृष्णामूर्च्छातीसारभ्रमाःकटुकास्यत्वं हारितहारिद्रत्वंनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्च्चसामपिचोदरंनीलपीतहारिद्रहरितताम्रराजीशिरावनद्धंदह्यतेधूप्यतेऊष्मायते स्विद्यते क्लिद्यतेमृदुस्पर्शंक्षिप्रपाकञ्चभवतिएतत्पित्तोदरंविद्यात् ॥ २६ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—दाह, ज्वर, प्यास, मूर्च्छा, अतिसार, भ्रम, मुखमें कडुआपन और मुख, नेत्र, नख, त्वचा, मूत्र यह सब हरे तथा हल्दीके समान पीले वर्णके हों और पेटके ऊपर नीली, पीली हल्दीके वर्णकी, हरी और ताम्रवर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना और दाह, क्लेश, धूंआसा निकलना, संताप, उष्णता, स्वेद, क्लेद, नम्र, स्पर्श और शीघ्र पाक यह पित्तके उदररोगके लक्षण जानने ॥ २६ ॥

कफज उदररोगका निदान ।

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः ।
दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चात्युपसेवितैः ॥ २७ ॥
क्रुद्धेनश्लेष्मणास्रोतःस्वाहतेष्वावृतोऽनिलः ।
तमेवपीडयन्कुर्य्यादुदरंबहिरन्त्रगः ॥ २८ ॥

कसरत न करनेसे, दिनमें सोनेसे, मधुर और अत्यंत चिकने तथा पिच्छिल द्रव्योंके अधिक सेवनसे दही, दूध और अनूपसंचारी जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे कफ कुपित होकर वायुसे मिले स्रोतोंको रोक देताहै तब उस कफसे मिलाहुआ वायु कफको ही पीडित करताहुआ पेटकी नाडियोंमें पहुंचकर कफके उदररोगको उत्पन्न करताहै ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफके उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणि-गौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्दसुप्तिपाणिपादमुष्कोरुशोफोत्क्लेशनिद्राकासश्वासाःशुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवसार्चंमपिचोदरंशुक्लराजीशिरासन्ततंगुरुस्तिमितस्थिरंकठिनञ्चभवति-एतच्छ्लेष्मोदरंविद्यात् ॥ २९ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—शरीरमें भारीपन, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, अंगमर्द, शरीरका सोयाहुआसा होना, हाथ, पांव, अण्डकोश और छातीमें सूजन होना, कफका उत्क्लेश होना, निद्रा, खांसी और श्वासका होना तथा नख, नेत्र, मूत्र और मलका श्वेत होना और सफेद रंगकी रेखा तथा नसोंके जालसे पेटका व्याप्त होना, पेटका भारी, आर्द्र, स्थिर और कठिन होना, यह सब कफजनित उदररोगके लक्षण हैं ॥ २९ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण ।

दुर्बलाग्नेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात् । स्त्रीदत्तैश्चरजोरोमविण्मू-

अस्थिनखादिभिः ॥ ३० ॥ विषैश्चमन्दैर्वाताद्याःकुपिताःसञ्चिताः स्त्रयः । शनैःकोष्ठेप्रकुर्वन्तोजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥ ३१ ॥

दुर्बल अग्निवाले मनुष्यके कुपथ्य, आमजनक, विरुद्ध और भारी भोजन करनेसे अथवा स्त्रीका दियाहुआ मासिकरज, रोम, विष्ठा, मूत्र, अस्थि और नख आदिके खानेसे अथवा बहुत देरमें असर करनेवाले (कानके मैल आदि) विषके खानेसे वातादि तीनों दोष संचित होकर धीरे धीरे कोष्ठमें कुपित हो सन्निपातके उदररोगको उत्पन्न करतेहैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

सन्निपातज उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणि—सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युपलभ्यन्तेवर्णाश्चनखादिषुउदरमपिनानावर्णराजीशिरासन्ततंभवतिएतत्सन्निपातोदरंविद्यात् ॥ ३२ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—वातादि तीनों दोषोंके सपूर्ण लक्षण दिखाई देना, नख नेत्रादिकोंके वर्ण अनेक प्रकारके होना, उदरमें अनेक वर्णकी रेखा और शिराओंका जाल दिखाई देना यह सन्निपातज उदररोगके लक्षण जानना ॥ ३२ ॥

प्लीहोदरका निदान ।

अशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचेष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्ववमनव्याधिकर्शनैः ॥ ३३ ॥ वामपार्श्वाश्रितःप्लीहाच्युतःस्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितंवारसादिभ्योविवृद्धंतंविवर्द्धयेत् ॥ ३४ ॥

भोजन करके अत्यंत क्षोभकारक ऊंट आदिकी सवारीपर चढना अथवा भोजन करते ही तुरंत बहुत हिलने जुलनेवाली चेष्टा करना, अत्यंत मैथुन करना, भार उठाना और मार्ग चलना तथा व्याधिसे शरीरका कृश होजाना । इन कारणोंसे बाई बगलमें रहनेवाली तिल्ली (प्लीहा) अपने स्थानसे अधिक बढजातीहै । अथवा रसादिकोंसे वृद्धिको प्राप्त हुआ रुधिर तिल्लीको बढा देताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इतितस्यप्लीहाकठिनोऽष्ठीलिवादौवर्द्धमानःकच्छपसंस्थानउपलभ्यते सचोपेक्षितःक्रमेणकुक्षिजठरमग्न्यधिष्ठानञ्चपरिक्षिपन्नुदरमभिनिर्वर्त्तयति ॥ ३५ ॥

कोई दुष्ट स्त्रियें पुरुषोंको वशमें करनेके लिये अज्ञानसे कानकी मैल और रज आदि खिला देतीहै यह विषके समान मनुष्योंके शरीरमें अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ।

फिर वह तिल्ली पहिले अष्ठीलाके समान कठोर होकर क्रमसे बढते २ कछुएकी पीठके समान प्रतीत होने लगतीहै फिर यह शीघ्र यत्न न किये जानेसे क्रमपूर्वक बढते २ कुक्षी, पेट, और अग्निके अधिष्ठानको धक्का पहुचाती हुई संपूर्ण उदरको बढा देतीहै ॥ ३५ ॥

प्लीहोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणि—दौर्बल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमःपिपासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छाङ्गसादकासश्वासमृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्यपर्वभेदकोष्ठवातशूलान्यपिचोदरमरुणवर्णंविवर्णंवानीलहारितहारिद्रराजिमद्भवतिएवमेवयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थंकुर्य्यात्तुल्यहेतुलिङ्गौपधत्वात्तस्यप्लीहजठरएवावरोधइत्येतद्यकृत्प्लीहोदरंविद्यात् ॥ ३६ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे—दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, मल मूत्रका रुकना, नेत्रोंके आगे अन्धकार प्रतीत होना, तृषा, अंगडाई, वमन, मूर्च्छा, अंगोंका सोना, खांसी, श्वास, मंदज्वर, अफारा, अग्निका नाश, कृशता, मुखका विरस होना, पर्वभेद, कोठमें वायुकी पीडा और पेटका लाल अथवा देहके समान वर्ण होना और नीले, हरे वा हल्दीके रंगकी रेखा और नसोंके जालसे पेटका घिरना यह प्लीहोदरके लक्षण होतेहैं । इसी प्रकार दाहिने बगलमें यकृत भी प्लीहाके समान बढकर उदररोगको प्रगट करताहै । परन्तु प्लीहा और यकृतके हेतु, लक्षण और औषधमें तुल्यता होनेसे यकृतजनित उदररोगको अलग वर्णन नहीं कियाहै ॥ ३६ ॥

बद्धोदरके निदान ।

पक्ष्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्बद्धायनेगुदे । उदावर्त्तैस्तथार्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेनवा ॥ ३७ ॥ अपानोमार्गसंरोधाद्धत्वाग्निंकुपितोऽनिलः । वर्चःपित्तकफान्रुद्ध्वाजनयत्युदरंततः ॥ ३८ ॥

भोजनके साथ पलकोंके बाल खाये जानेसे अथवा केशमिले भोजनके किये जानेसे अथवा उदावर्तके होनेसे या अर्शके मस्सों द्वारा गुदाके रुकजानेसे और अंतडियोंके संमूर्च्छन होनेसे मलद्वारा रुककर अपानवायुका मार्ग बन्द होनेसे वह वायु कुपित हो जठराग्निको हननकर मल, पित्त और कफको रोकदेतीहै । तब बद्धगुदोदर नामके उदररोगको उत्पन्न करताहै ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण।

तस्यरूपाणि–तृष्णादाहज्वरमुखतालुशोषोरुसादकासश्वासदौर्ब-ल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रसङ्गाध्मानच्छर्दिक्षवथुशिरोहृन्नाभिगुदशूलान्यपिचोदरंमूढवातंस्थिरमरुणंनीलराजिशिरावनद्धमराजिकंवाप्रायोनाभ्युपरिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्बद्धगुदोदरंविद्यात्॥ ३९ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं। जैसे-प्यास, दाह, ज्वर, मुख और तालुका शोष होना, दोनों जांघोंका रहसा जाना, खांसी, श्वास, दुर्बलता, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना, मलमूत्रका रुकना, अफारा, वमन, हिचकी, मस्तकपीडा, हृदय, नाभि और गुदामें शूल होना, अधोवायुका न निकलना, उदरका स्थिर होना तथा लाल और नीली रेखाओं तथा नसोंके जालसे व्याप्त होना, अथवा रेखाओंसे विना ही लाल और नीली नसोंसे व्याप्त होना, प्रायः नाभिका ऊर्द्धभाग गोपुच्छके समान होना, यह बद्धगुदोदरके लक्षण जानना॥ ३९ ॥

छिद्रोदर (क्षतोदर) का निदान।

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः। भिद्येतान्त्रंयदाभुक्तैर्जृम्भयात्यशनेनवा॥ ४०॥ इयात्पाकरसस्तेभ्यश्छिद्रेभ्यःप्रस्रवद्बहिः। पूरयन्गुदमन्त्रञ्चजनयत्युदरंततः॥ ४१॥

वालू, तृण, काष्ठ, हड्डी और कांटा आदि अन्नमें मिलकर खायेजानेसे यदि आंत छिलजाय अथवा जंभाई आदि वायुको वेगसे या अत्यंत भोजन करनेसे आंत फटजाय तो उस छिद्रद्वारा पाकरस बाहर निकलने लगजाताहै। इससे आंतें और गुदा परिपूर्ण होकर छिद्रोदर नामक उदररोग उत्पन्न होताहै। इसको क्षतोदर भी कहतेहैं॥ ४०॥ ४१॥

छिद्रोदरके लक्षण।

इतितदधोनाभ्याःप्रायोऽभिनिवर्त्तमानमुदकोदरस्यचयथाबलश्च दोषाणांरूपाणिदर्शयत्यपिचातुरःसलोहितनीलपीतपिच्छिलकुणपगन्धामवर्चउपवेशतेहिक्काश्वासकासतृष्णाप्रमेहारोचकाविपाकदौर्बल्यपरीतश्चभवतिएतच्छिद्रोदरंविद्यात्॥ ४२॥

छिद्रोदर प्रायः नाभीके अधोभागमें होताहै। इसमें बहुतसे लक्षण जलोदरके समान

और, वहुतसे वढेहुए दोषानुरूप होतेहैं । छिद्रोदरमें लाल, नीला, पीला, पिच्छिल, मुर्देकीसी गंधवाला और अपक्व मल निकलताहै । इस रोगीको हिचकी, श्वास, खांसी, प्यास, प्रमेह, अरुचि, अन्नका परिपाक न होना और दुर्वलतासे व्याकुल होना यह लक्षण होतेहैं ॥ ४२ ॥

जलोदरका निदान ।

स्नेहपीतस्यमन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्यवा । अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौ मारुतःक्लोम्निसंस्थितः ॥ ४३ ॥ स्रोतःसुरुद्धमार्गेपुकफश्चोदकमूर्च्छितः । वर्द्धयेतांतदेवाम्बुस्वस्थानादुदरायतौ ॥ ४४ ॥

स्नेहपान किया हुआ मनुष्य, मंदाग्नियुक्त, क्षीण, अतिकृश अवस्थामें अत्यंत जल पीवे तो उसकी जठराग्नि नष्ट होकर वायु क्लोममें स्थित होजातीहै जलसे मूर्च्छित कफ सव स्रोतांको रोकदेतीहै तव क्लोमस्थान (पिपासास्थान) के संरुद्ध होनेसे वढेहुए कफ और वायु पीयेहुए जलको अपने स्थानसे संचालित कर त्वचा और मांसके मध्यमें संचित कर जलोदरको उत्पन्न करतेहैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

जलोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाणि । अनन्नकांक्षापिपासागुदस्रावशूलश्वासकासदौर्वल्यान्यपिचोदरंनानावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिशोभसंस्पर्शंभवतिएतदुदकोदरंविद्यात् ॥ ४५ ॥

उसके ये लक्षण होतेहैं । अन्नकी इच्छा न होना, तृषा, गुदाद्वारा जलका निकलना, शूल, श्वास, खांसी, दुर्वलता, पेटपर अनेक वर्णकी रेखा तथा नसोंका जाल दिखाई देना । जलसे भरीहुई मशकके समान हिलानेसे पेटका वोलना अथवा हाथ लगानेसे जलकी भरीहुई मशकके समान प्रतीत होना । यह जलोदरके लक्षण जानना ॥ ४५ ॥

उदररोगमें शीघ्रचिकित्सा न करनेसे हानि ।

तत्रअचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकमप्रासमुदरंत्वरमाणश्चिकित्सेदुपेक्षितानांह्येषांदोषाः स्वस्थानादपावृत्ताअपरिपाकाद्द्रवीभूताःसन्धीन्स्रोतांसिचोपक्लेदयन्तिस्वेदश्चवाह्येषुस्रोतःसुप्रतिहतगातिस्तिर्य्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्यायति ॥ ४६ ॥

जो उदररोग नवीन, अर्थात् वहुत दिनोंका उत्पन्न हुआ न हो, उपद्रव रहित हो, जिसमें पानी न उतराहो उसकी अतिशीघ्र चिकित्सा करना चाहिये । उदररोगकी

शीघ्र चिकित्सा न करनेसे दोप अपने २ स्थानोंसे चलायमान हो अन्नका परिपाक न होनेसे पतले होकर संधियोंको और संपूर्ण स्रोतोंको क्लेदित (गीला) करदेतेहैं। फिर वाह्यस्रोतोंके छिद्र रुकजानेसे स्वेद वाहर न निकलकर तिरछी गतिसे रहकर जलकी ही वृद्धि करताहै ॥-४६ ॥

जलोदरकी संप्राप्ति।

तत्रपिच्छोत्पत्तौमण्डलमुदरंगुरुस्तिमितमाकोठितमशब्दंमृदुस्पर्शमपगतराजीकमाक्रान्तंनाभ्यांसर्पतीति। ततोऽनन्तरमुदकप्रादुर्भावः। तस्यरूपाणिकुक्षेरतिमात्रवृद्धिःशिरान्तर्द्धानगमनमुदकपूर्णदृतिसंक्षोभस्पर्शत्वञ्च ॥ ४७ ॥

फिर पेटमें जलकी उत्पत्ति होनेके पहिले ही पिच्छा (क्लेद) उत्पन्न होतीहै। उस पिच्छासे उदर गोल आकारवाला होजाताहै उस समय पेट भारी, स्तिमित, कोठयुक्त, शब्दरहित, मृदुस्पर्श और रेखा आदिसे रहित होकर, नाभीके चारों ओर दवानेसे इधर उधरको फिरताहै। अर्थात् एक ओर दवानेसे दूसरी ओर ऊंचापन प्रतीत होताहै। इसके अनन्तर उदरमें जल बढने लगताहै। तब यह लक्षण होतेहैं। जैसे कुक्षीका अत्यंत फूलजाना, नसोंका छिपजाना, जलसे भरीहुई मशकके समान हिलना और स्पर्श करनेसे प्रतीत होना, यह लक्षण होतेहैं ॥ ४७ ॥

जलोदरके उपद्रव।

तदातुरमुपद्रवाःस्पृशन्तिछर्द्यतीसारतमकतृष्णाश्वासकासहिक्कादौर्बल्यपार्श्वशूलारुचिस्वरभेदमूत्रसङ्गादयस्तथाविधमचिकित्स्यं विद्यादिति ॥ ४८ ॥

जब पेटमें जल वढताहै तो वमन, अतिसार, तमकश्वास, प्यास, खांसी, श्वास, हिचकी, दुर्वलता, पार्श्वपीडा, अरुचि, स्वरभंग, मूत्रका, रुकना आदिक उपद्रव होजातेहैं। इन उपद्रवोंवाला होनेसे इस रोगको असाध्य जानना ॥ ४८ ॥

उदररोगकी कृच्छ्रता।

भवतिचात्र। वातात्पित्तात्कफात्प्लीह्नःसन्निपातात्तथोदकात्।
परस्परंकृच्छ्रतरमुदरंभिषगादिशेत् ॥ ४९ ॥

वातोदर, पित्तोदर, प्लीहोदर, सन्निपातोदर और जलोदर इन सब उदररोगोंमें पहिलेकी अपेक्षा दूसरा, दूसरेकी अपेक्षा तीसरा इसी क्रमसे उत्तरोत्तर कष्टसाध्य जानने ॥ ४९ ॥

मृत्युकारक उदररोगकी अवधि ।

पक्षाद्बद्धगुदन्तूर्द्ध्वंसर्वंजातोदकंयथा ।
प्रायोभवत्यभावायच्छिद्रान्त्रञ्चोदरंनृणाम् ॥ ५० ॥

बद्ध उदोदर, जलोदर और छिद्रोदर यह तीन एक पक्षके उपरांत होनेसे मनुष्योंको नष्ट करनेवाले अर्थात् असाध्य होतेहैं ॥ ५० ॥

साध्याऽसाध्यता ।

शूनाक्षंकुटिलोपस्थमपक्लिन्नतनुत्वचम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्चसंत्यजेत् ॥ ५१ ॥

जिस उदररोगीके दोनों नेत्रोंपर सूजन आजाय और शिश्नेन्द्रिय टेढी होजाय, त्वचा क्लेदयुक्त और पतली पडजाय, बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण होजाय ऐसे रोगीको असाध्य समझ त्यागदेना चाहिये ॥ ५१ ॥

श्वयथुःसर्वमर्मोत्थःश्वासोहिक्कारुचिःसतृट् ।
मूर्च्छाछर्यतिसारश्चनिहन्त्युदरिणंनरम् ॥ ५२ ॥

जिस उदररोगीके मर्मस्थानोंमें सूजन, श्वास, हिचकी, अरुचि, प्यास, मूर्च्छा, छर्दी और अतिसार यह उपद्रव हों उसको उदररोग शीघ्र मारडालताहै ॥ ५२ ॥

जन्मनैवोदरंसर्वंप्रायःकृच्छ्रतमंमतम् ।
बलिनस्तदजाताम्बुयत्नसाध्यंनवोत्थितम् ॥ ५३ ॥

प्रायः सब प्रकारके उदररोग उत्पन्न होते ही अत्यंत कष्टसाध्य होतेहैं, परन्तु बलवान् रोगीको नवीन ही उत्पन्न हुआ उदररोग जिसमें जल प्रगट न हुआहो वह विधिवत् यत्न करनेसे साध्य होसकताहै ॥ ५३ ॥

अजातजल उदररोगके लक्षण ।

अशोथमरुणाभासंसशब्दंनातिभारिकम् । सदागुडगुडायन्तंशिराजालगवाक्षितम् ॥ ५४ ॥ नाभिंविष्टभ्यपायौतुवेगंकृत्वाप्रणश्यति । हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ॥ ५५ ॥ कर्कशंसृजतोवातंनातिमन्देचपावके । मूत्रेऽल्पेसंहतविपिलालयाविरसे मुखे ॥ ५६ ॥ अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः ॥ ५७ ॥

जिस रोगीका उदर सूजनरहित हो और लाल वर्णका हो तथा शब्दसहित, कुछ भारी, गुडगुडशब्दयुक्त हो और झरोखेके समान नसोंके जालसे व्याप्त हो और

नाभीको फुलाकर वेग धारण करे तो वायु गुदा पर्यन्त जाकर नष्ट होजाय, रोगीके हृदय, वंक्षण, कमर और गुदामें पीडा हो, कर्कश शब्द करतीहुई वायु निकले, सर्वथा अग्नि मंद न हुई हो, मूत्र, थोडा और मल अधिक निकले मुखसे लार वहे और मुख विरस हो तो यह विना जल प्रगटहुए उदररोगके लक्षण जानना ॥ ५४-५७॥

वातोदरकी चिकित्सा ।

उपक्रामेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित् । वातोदरेबलवतःपूर्वस्नेहै-रुपाचरेत् । स्निग्धायस्वेदिताङ्गायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ५८ ॥ हृतेदोषेपरिम्लानंवेष्टयेद्वाससोदरम् । तथास्यानवकाशत्वाद्वायु-र्नाध्मापयेत्पुनः ॥ ५९ ॥

दोष, बल, काल आदिका जाननेवाला चतुर वैद्य उदररोगकी शीघ्र चिकित्सा करे। वातज उदररोगमें बलवान् मनुष्यको पहिले स्नेहपान करावे। फिर स्निग्धको स्वेदितकर स्नेह विरेचन कराके दोषोंको निकाल डाले। जब उदरके दोष निकल-जानेसे पेट मुर्झाजाय तो पेटको कपडेसे लपेटकर बांधदेना चाहिये। ऐसा करनेसे पेटमें फिर वायु प्राप्त नहीं होसकेगी। और वायुके प्राप्त न होनेसे पेट भी नहीं फूलेगा ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतसांसन्निरोधनात् । सम्भवन्त्युदराण्ये-वमतोनित्यंविशोधयेत् ॥ ६० ॥ शुद्धंसंसृज्यचक्षीरंबलार्थंपायये-त्नुतम् । प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्यंश्चबलेलब्धेक्रमात्पयः ॥ ६१ ॥ यूषैरसैर्वामन्दाम्ललवणैरेधितानलम् । सोदावर्त्तंपुनःस्निग्धंस्वि-न्नमास्थापयेन्नरम् ॥ ६२ ॥

दोषोंका अत्यंत उपचय होनेसे और स्रोतोंके रुकजानेसे ही उदररोग उत्पन्न होतेहैं। इसलिये उदररोगमें स्नेहन, स्वेदन कराकर शोधन करना हित होताहै ॥ उदररोगीको शोधन करानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे बलवृद्धिके लिये दूध पिलावे। जिस प्रकार दोषोंका उत्क्लेश न होनेपावे अर्थात् वमन न होजाय उतनाही दूध पिलावे। मनुष्यके शरीरमें बल प्राप्त होनेपर दूध बंद कराना चाहिये। यदि रोगीकी अग्नि मंद होजाय या उदावर्त हो तो फिर स्नेहन और स्वेदन कर थोडा नमकयुक्त यूष अथवा मांसरससे आस्थापनवस्ति करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्त्तिषु ।
दीप्ताग्निबद्धविड्वातंरूक्षमप्यनुवासयेत् ॥ ६३ ॥

यदि वातोदर रोगीके शरीरमें फडकना और आक्षेप हो तथा संधिअस्थि, पार्श्व, पीठ और त्रिकस्थानमें पीडा हो, अग्नि चैतन्य हो, मल मूत्र बद्ध हों और रूक्षता हो तो उसको अनुवासन करना चाहिये ॥ ६३ ॥

तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्यान्निरूहोदाशमूलिकः ।
वातघ्नाम्लश्रृतैरण्डतिलतैलानुवासनः ॥ ६४ ॥

अथवा तीक्ष्ण औषधियों और दशमूलके क्वाथसे निरूहणवस्ति करे । अथवा वातनाशक अम्ल द्रव्योंसे एरंड तैलको सिद्धकर इस तैलसे अनुवासन कर्म करे॥६४॥

अविरेच्य रोगी ।

अविरेच्यन्तुयंविद्याद्दुर्वलंस्थविरंशिशुम् । सुकुमारंप्रकृत्याल्पदोषं वातोल्वणानिलम् ॥ ६५ ॥ तंभिषक्शमनैःसर्पिर्यूषमांसरसौदनैः । वस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः ॥ ६६ ॥

जो रोगी विरेचनके योग्य न हो तथा दुर्वल, वृद्ध, वालक, सुकुमार प्रकृतिका हो और अल्पदोषवाला हो तथा जिसके शरीरमें वायुकी प्रवलता हो उसको विरेचन न कराकर औषधियोंसे सिद्ध किये हुए घृत, यूष और मांसरस आदिसे तथा संशमन द्रव्योंसे चिकित्सा करे । और वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन तथा औषधसिद्ध दूधका प्रयोग करे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

पित्तज उदररोगचिकित्सा ।

पित्तोदरेतुवलिनंपूर्वमेवविरेचयेत् । दुर्वलन्त्वनुवास्यादौशोधयेत् क्षीरवस्तिना ॥ ६७ ॥ संजातवलकायाग्निंपुनःस्निग्धंविरेचयेत् ॥ ६८ ॥

वलवान् मनुष्यको पित्तजनित उदररोग हो तो पहिले विरेचन करावे। यदि रोगी दुर्वल हो तो पहिले अनुवासनकर क्षीरवस्ति द्वारा शोधन करे। फिर वल और जठराग्निके वढनेपर स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

पित्तोदरमें विरेचन योग ।

पयसासत्रिवृत्कल्केनोरुबूकश्रृतेनवा । सातलात्रायमाणाभ्यांश्रृतेनारग्वधेनवा । सकफेवासमूत्रेणसवातेतिक्तसर्पिषा ॥ ६९ ॥

पित्तजनित उदररोगमें वल और अग्नि संपन्न होनेपर विरेचनके लिये निशोथका कल्क मिलाकर दूध पिलावे । अथवा एरंडके वीजोंको दूधमें पकाकर पिलावे । या सातला (थोहरकी जाति) और त्रायमाणसे सिद्ध किया दूध पिलावे । यदि पित्तज

उदररोगमें कफका संसर्ग हो तो गोमूत्र मिलाकर पिलावे। यदि वायुका अनुबंध हो तो तिक्तकघृत पिलावे ॥ ६९ ॥

पुनःक्षीरप्रयोगश्चवस्तिकर्मविरेचनम्।
क्रमेणध्रुवमातिष्ठन्युक्तः पित्तोदरंजयेत् ॥ ७० ॥

पित्तके उदररोगमें वारवार क्षीरप्रयोग और वस्तिकर्म करता रहे फिर अग्निवल सम्पन्न होनेपर विरेचन करावे। इस प्रकार समयोचित चिकित्सा द्वारा चतुर वैद्य पित्तके उदररोगको जीते ॥ ७० ॥

कफजनित उदररोगकी चिकित्सा।

स्निग्धंस्विन्नंविशुद्धन्तुकफोदरिणमातुरम्। संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैःकफापहैः ॥ ७१ ॥ गोमूत्रारिष्टपानैश्चचूर्णायस्ततिभिस्तथा॥ सक्षारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुकफोदरम् ॥ ७२ ॥

कफके उदररोगमें स्नेहन और स्वेदन कर शोधन करावे। फिर वह कफनाशक चरपरे और क्षार द्रव्योंसे युक्तकर पेयादि क्रम सेवन करावे। कफके उदररोगीको गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार और चरपरे द्रव्योंसे सिद्ध किये तेल आदिकोंका प्रयोग करे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

सन्निपातके उदररोगकी चिकित्सा।

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्क्रियाः।
सोपद्रवन्तुनिर्वृत्तंप्रत्याख्येयंविजानता ॥ ७३ ॥

सन्निपातके उदररोगमें सब प्रकारसे यथोचित चिकित्सा करना चाहिये। यदि सन्निपातके उदररोगमें उपद्रव भी प्रगट होगये हों तो उसको त्याग देना चाहिये ॥ ७३ ॥

प्लीहोदरकी चिकित्सा।

उदावर्त्तरुगानाहैर्दाहमोहतृषाज्वरैः। गौरवारुचिकाठिन्यैश्चानिलादीन्यथाक्रमम् ॥ ७४ ॥ लिङ्गैःप्लीहोदरान्दृष्ट्वारक्तंवापिस्वलक्षणैः। चिकित्सांसंप्रकुर्वीतयथादोषंयथावलम् ॥ ७५ ॥

प्लीहजनित उदररोगमें उदावर्त्त, शूल, और अफारा हो तो दोष, वल विचारकर वातनाशक चिकित्सा करे। दाह, मोह, तृषा और ज्वर हो तो पित्तके उदररोगके समान चिकित्सा करे। गुरुता, अरुचि और कठिनता हो तो कफकी चिकित्सा करे। रुधिरके लक्षण प्रतीत हों तो रुधिरकी चिकित्सा करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

उदररोगमें चिकित्साक्रम ।

स्नेहंस्वेदंविरेकश्चनिरूहमनुवासनम् ।
समीक्ष्यकारयेद्बाहौवामेवाव्यधयेच्छिराम् ॥ ७६ ॥

संपूर्ण उदररोगोंमें दोषबलानुसार स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवासन कर्म करे । रक्तजनित प्लीहोदरमें स्नेहन, स्वेदनादि करा बाई भुजाकी शिराभेदन करावे । अर्थात् बाई भुजामेंसे फस्त लगाकर रक्त निकलवाडाले ॥ ७६ ॥

षट्पलंवापिबेत्सर्पिःपिप्पलीर्वाप्रयोजयेत् ।
सगुडामभयांवापिक्षारारिष्टगणांस्तथा ॥ ७७ ॥

उदररोगमें षट्पल घृत, पिप्पलादि रसायन और गुडके साथ हरड या क्षार और अरिष्टोंके गणोंका सेवन करावे ॥ ७७ ॥

प्लीहनाशक चूर्ण ।

पिप्पलीनागरंदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम् । विडंगांशयुतंचूर्णमेतदुष्णाम्बुनापिबेत् ॥ ७८ ॥ विडङ्गंचित्रकंशुण्ठींसघृतांसैन्धवंवचाम् । दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मप्लीहापहंभवेत् ॥ ७९ ॥

पीपल, सोंठ, दंती और चित्रक यह चारों एक एक भाग, हरड दो भाग, वायविडंग एक भाग इन सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीवे तो गुल्मरोग और प्लीहरोग दूर हो । अथवा वायविडंग, चित्रक, सोंठ, घृत, सेंधानमक, वच इनको कूटकर शरावसम्पुटमें फूकलेवे । फिर इसको चूर्ण बना दूधके साथ सेवन करे तो गोला और तिल्ली दूर हों ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

रोहीतकलतानान्तुकाण्डकाःसाभयाजले । मूत्रेवाश्रुतमेतच्चसप्तरात्रस्थितंपिबेत् ॥ ८० ॥ कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरक्रिमीन् । तद्धन्याज्जाङ्गलरसैर्जीर्णेस्याच्चात्रभोजनम् ॥ ८१ ॥

रोहितक घासकी लगरें कूटकर हरडोके काथमें अथवा गोमूत्रमें पकाकर सात दिन तक उत्तम पात्रमें बंदकर धरा रहनेदे फिर छानकर पीनेसे कामला, गुल्म, प्रमेह, बवासीर, प्लीहा, सब प्रकारके उदररोग और कृमिरोग यह सब नष्ट होतेहैं । इस औषधके पचनेपर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करना चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

रोहितक घृत ।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम् । कोलद्विप्रस्थसंयुक्तंकषायमुपकल्पयेत् ॥ ८२ ॥ पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्य-

या । रोहीतकत्वचापिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ ८३ ॥ प्लीहातिवृद्धिंशमयत्येतदाशुप्रयोजितम् । तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः ॥ ८४ ॥

रोहिततृण २५ पल और बेर (उन्नाव) २ प्रस्थ, लेकर काथ करे । इस काथमें पंचकोल (पीपल, पीपलामूल चव्य, चित्रक, सोंठ) का कल्क ५ पल, रोहिततृणका कल्क १० पल, घृत १ प्रस्थ सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके सेवनसे अत्यंत वढीहुई प्लीहा शीघ्र शान्त होतीहै तथा गुल्मरोग, उदररोग, श्वास, कृमि, पाण्डु और कामला यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

उदररोगोंमें विशेष कर्तव्य ।

अग्निकर्मचकुर्वीतभिषग्वातकफोल्वणे । पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पींषिक्षीरवस्तयः ॥ ८५ ॥ रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानश्चशस्यते । यूषैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमायुतैः ॥ ८६ ॥ लघून्यन्नानिसंसृज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः । स्विन्नायबद्धोदरिणेमूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ॥ ८७ ॥ सतैललवणंदद्यान्निरूहंसानुवासनम् । परिस्रंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैवविरेचनम् ॥ ८८ ॥ उदावर्त्तहरंकर्मकार्य्यं वातघ्नमेवच ॥ ८९ ॥

उदररोगमें वात, कफकी विशेषता हो तो अग्निकर्म (दागदेना) करना चाहिये । पित्तकी अधिकता हो तो जीवनीयगणकी औषधियें तिक्तक घृत, क्षीरबस्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्धपान कराना हित है । प्लीहोदरमें रक्तमोक्षण कराना, दीपनीय द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए यूष और मांस रसोंके साथ हलका भोजन कराना चाहिये । बद्धोदरमें स्वेदितकर गोमूत्रके साथ और तीक्ष्ण औषधियोंसे युक्तकर सिद्ध किया तैल सेंधानमक मिला निरूहण और अनुवासन कर्ममें प्रयोग करना चाहिये । तथा विरेचनकर्त्ता अन्न, तीक्ष्ण विरेचन, उदावर्त्त और वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८५–८९ ॥

छिद्रोदरकी असाध्यता ।

छिद्रोदरमृतेस्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् । जातंजातंजलंस्राव्यमेवं तत्पातयेद्भिषक् । तृष्णाकासज्वरार्त्तन्तुक्षीणमांसाग्निभोजनम् ॥ ॥ ९० ॥ वर्जयेच्छ्वासिनंतद्वच्छूलिनंदुर्वलेन्द्रियम् ॥ ९१ ॥

छिद्रोदरमें प्यास, खांसी, ज्वर तथा मांस अग्नि और भोजनकी क्षीणता एवं श्वास, शूल और इन्द्रियोंकी दुर्बलता होनेपर रोगीको असाध्य जानकर त्याग देना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

जलोदरकी चिकित्सा।

अपांदोषेग्रहण्यादौविदध्यादुदकोदरे। मूत्रयुक्तानितीक्ष्णानिविविधक्षारवन्तिच। दीपनीयैःकफघ्नैश्चतमाहारैरुपाचरेत् ॥ ९२ ॥ द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्योनियच्छेदनुपूर्वशः ॥ ९३ ॥

जलोदरमें और ग्रहणी आदिमें जलका दोष होनेपर गोमूत्र और तीक्ष्ण विरेचक औषधियें तथा अनेक प्रकारके क्षार गोमूत्रमें मिलाकर पिलावे। तथा दीपनकर्ता और कफनाशक आहारोंका सेवन करावे। तथा जल आदिक पतले पदार्थोंका सेवन बिलकुल बन्द करा देवे ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सर्वउदररोगोंमें कर्तव्य और पथ्य।

सर्वमेवोदरंप्रायोदोषसङ्घातजंमतम्। तस्मात्त्रिदोषशमनींक्रियांसर्वेपुकारयेत्। दोषैःकुक्षौहिसंपूर्णेवह्निर्मन्दत्वमृच्छति ॥ ९४ ॥ तस्माद्भोज्यानियोज्यानिदीपनानिलघूनिच। रक्तशालीन्यवान्मुद्गाञ्जाङ्गलांश्चमृगद्विजान् ॥ ९५ ॥ पयोमूत्रासवारिष्टान्मधुशीधूंस्तथासुराम्। यवागूमोदनंवापियूषैरद्याद्रसैरपि ॥ ९६ ॥ मन्दाम्लस्नेहकटुभिर्यच्चमूलोपसाधितैः ॥ ९७ ॥

प्रायः संपूर्ण उदररोग तीनों दोषोंके संघातसे ही उत्पन्न होतेहैं। इसलिये इनमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करना चाहिये। दोषोंके कोपसे कुक्षि परिपूर्ण होकर अग्नि मंद होजातीहै। इसलिये सब उदररोगोंमें हलका और दीपन भोजन कराना चाहिये तथा लाल शालीचावल, यव, मूंग, जांगल जीवोंका मांसरस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु और सुराका सेवन करावे और कटु द्रव्योंसे तथा पंचकोलसे सिद्ध कियेहुए यवागु, भात अथवा यूष वा मांसरस किंचित् अम्ल और स्नेहयुक्त कर अग्निबल विचारकर सेवन करावे ॥ ९४–९७ ॥

उदररोगमें कुपथ्य।

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलान्। व्यायामाध्वदिवास्वप्नंयानयानञ्चवर्जयेत्। तथोष्णलवणाम्लानिविदाहीनिगुरूणिच ॥ ॥ ९८ ॥ नाद्यादन्नानिजठरीतोयपानञ्चवर्जयेत् ॥ ९९ ॥

जल संचारी और अनूप संचारी जीवोंका मांस, शाक, पिष्टान्न, तिल, व्यायाम, भ्रमण, दिनमें सोना, सवारीपर चढना इन सबको त्याग देना चाहिये। तथा उष्ण, लवण, अम्ल, विदाही और भारी पदार्थ, पानीका पीना इन सबको त्याग देना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

उदररोगोंमें तक्र प्रयोग।

नातिसान्द्रंमतंपानेस्वादुतक्रमपेलवम्। त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी। वातोदरीपिवेत्तक्रंपिप्पलीलवणान्वितम् ॥ १०० ॥ शर्करामधुकोपेतंस्वादुपित्तोदरीपिवेत्। यमानीसैन्धवाजाजीव्योपयुक्तंकफोदरी ॥ १०१ ॥ पिवेन्मधुयुतंतक्रंव्यक्ताम्लंनातिपेलवम्। मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ १०२ ॥ युक्तंप्लीहोदरीजातंसव्योषन्तूदकोदरी। बद्धोदरीतुहवुपायमान्यजाजीसैन्धवैः। पिवेच्छिद्रोदरीतक्रंपिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥१०३॥

सब प्रकारके उदररोगोंमें सोंठ, मिर्च, पीपल और नमक मिलाकर जो बहुत गाढा न हो और बहुत पतला भी न हो ऐसा तक्र पीना चाहिये। वातके उदररोगमें पीपल और सेंधानमक मिला तक्र पीना चाहिये। पित्तके उदररोगमें खांड और मुलेठीका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये। कफके उदरोगमें सेंधानमक, अजवायन, जीरा और त्रिकुटा मिलाकर तथा शहतयुक्तकर खट्टा और गाढा तक्र पीना चाहिये प्लीहोदरमें शहद, तेल, बच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सेंधा नमक मिलाकर तक्र पिलावे। जलोदरमें त्रिकुटेका चूर्ण मिला तक्र पिलावे। बद्धोदरमें हाउबेर, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक मिला तक्र पिलाना चाहिये। छिद्रोदरमें पीपल और शहद मिला तक्र पिलाना चाहिये ॥ १००-१०३ ॥

गौरवारोचकार्त्तानांसमंदाग्न्यतिसारिणाम्।
तक्रंवातकफार्त्तानाममृतत्वायकल्पते ॥ १०४ ॥

जो रोगी गुरुता, अरुचि, मंदाग्नि, अतिसार और वातकफके रोगोंसे पीडित हों उनको तक्र अमृतके समान गुण करताहै ॥ १०४ ॥

दूध प्रयोग।

शोफानाहार्तितृण्मूर्च्छापीडितेकारभंपयः ॥
शुद्धानांक्षामदेहानांगव्यंछागंसमाहिषम् ॥ १०५ ॥

सूजन, अफारा, शूल, तृषा, मूर्च्छा और अतिक्षीणनामें शोधन करनेके अनन्तर गौ, बकरी अथवा भैंसका दूध, पिलाना चाहिये ॥ १०९ ॥

उदरपर लेपनादि योग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वगन्धैःसगोमूत्रैःप्रदिह्यादुदरंसमैः ॥ १०६ ॥

देवदारू, ढाककी छाल, आककी जडकी छाल, गजपीपल, सोंहांजना और असगंध इनको गोमूत्रमें पीसकर लेपकरे ॥ १०६ ॥

वृश्चिकालींवचांकुष्ठंपञ्चमूलांपुनर्नवाम् ॥ १०७ ॥ भूतीकांनागरंधान्यंजलेपक्त्वावसेचयेत् । पलाशंकतृणंरास्नातद्वत्पक्त्वावसेचयेत् ॥ १०८ ॥

वृश्चिक पत्रिका, वच, कूठ, पंचमूल, पुनर्नवा, अजवायन, सोंठ और धनियां इनको जलमें पकाकर सुहाता २ तरडा देवे । अथवा पलाश, रोहिषतृण और रासनाके क्वाथका तरडा देवे ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

मूत्राष्टक प्रयोग ।

मूत्राण्यष्टावुदरिणांसेकेपानेचयोजयेत् ॥ १०९ ॥

सब प्रकारके उदररोगियोंके लिये आठ प्रकारके मूत्र सेचन करनेमें और पिलानेमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १०९ ॥

रूक्षाणांबहुवातानांतथासंशोधनार्थिनाम् ।
दीपनीयानिसर्पींषिजठरघ्नानिवक्ष्यते ॥ ११० ॥

जो उदररोगी रूक्ष और वायुसे पीडित तथा संशोधनके योग्य हों उनके लिये उदररोगनाशक स्नेहन घृतोंका कथन करतेहैं ॥ ११० ॥

पंचकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । सक्षारैरर्द्धपलिकैर्द्विप्रस्थंसर्पिषःपचेत् । कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्यरसेनच ॥ १११ ॥ दधिमण्डातकोपेतंतत्सर्पिर्जठरापहम् । श्वयथुंवातविष्टम्भंगुल्मार्शांसिचनाशयेत् ॥ ११२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ और जवाखार यह प्रत्येक दो दो तोला लेकर कल्क करे । घी १ सेर, दशमूलका क्वाथ २॥ सेर, दहीका पानी ९ सेर

इन सबका मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छान लेवे । इसके सेवन करनेसे उदररोग, सूजन, वायुका विष्टंभ, गुल्म और अर्शरोग दूर होते हैं ॥ १११ ॥ ११२ ॥

नागरादि घृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थंघृततैलात्तथाढकम् ।
मस्तुनःसाधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।
कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥ ११३ ॥

सोंठ, पीपल, त्रिफला यह दोनों मिलाकर १ सेर ले । घी और तेल ४ सेर ले । दहीका तोड ८ सेर सबको पकाकर घृतमात्र शेप रहनेपर सेवन करे तो सब प्रकारके उदररोग और वातकफसे उत्पन्न हुए गुल्म शान्त होतेहैं ॥ ११३ ॥

चित्रक घृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकात्पले ।
कल्केसिद्धंघृतप्रस्थंसक्षारंजठरीपिबेत् ॥ ११४ ॥

चित्रकी जडकी छाल ४ तोला, जवाखार ४ तोला इनका कल्क कर घी १ सेर, जल ४ सेर, गोमूत्र २ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेप रहनेपर उदररोगवाला रोगी पीवे ॥ ११४ ॥

यवादि घृत ।

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच ।
सुरासौवीरकाभ्याञ्चसिद्धंवापिपिबेद्घृतम् ॥ ११५ ॥

जौ, बेर, (उन्नाभ) कुलथी, यह प्रत्येक ४ तोला, बृहत्पंच मूलका क्वाथ, सुरा और सौवीरक यह सब मिलाकर ४ सेर, घृत १ सेर, सबको पकाकर घृतमात्र शेप रहनेपर सेवनकरे तो उदररोग शान्त हो ॥ ११५ ॥

विरेचनका निर्देश ।

एभिःस्निग्धायसंजातेवलेशान्तेचमारुते ।
स्रस्तेदोषाशयेदद्यात्कल्पदृष्टंविरेचनम् ॥ ११६ ॥

इन उपरोक्त घृतोंसे जब उदररोगी स्निग्ध होजाय और वल, प्राप्त होजाय तथा वायु शमन होजाय तव दोषोंको शुद्ध करनेके लिये कल्पस्थानमें कहीहुई विधिसे विरेचन प्रयोग करे ॥ ११६ ॥

पटोलादि चूर्ण ।

पटोलमूलरजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् । काम्पिल्यकोनीलिनीच त्रिवृताचेतिचूर्णयेत् ॥ ११७ ॥ पडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्चद्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिंगवांमूत्रेणवापिवेत् ॥ ११८ ॥ विरिक्तोमृदुभुञ्जीतभोजनंजाङ्गलैरसैः । मण्डपेयाञ्चपीत्वावासव्योपपडहंपयः ॥ ११९ ॥ श्रृतंपिबेत्ततश्चूर्णपिबेदेवंपुनःपुनः । हन्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णजातोदकान्यपि । कामलांपाण्डुरोगञ्चश्वयथुञ्चापकर्षति ॥ १२० ॥

पटोलकी जड, हलदी, वायविडंग, हरडकी छाल, बहेडेकी छाल और आँवले यह छः द्रव्य एक एक कर्ष लेवे । कमीला २ कर्ष, नीलनी ३ कर्ष और निशोथ ४ कर्ष इन सबको वारीक कूटकर चूर्ण बनावे । इस चूर्णमेंसे एक पल[1] चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करे तो इससे खूब विरेचन होताहै । विरेचन होनेके अनन्तर जांगल जीवोंके मांसरसके साथ बहुत नरम बनाया चावलोंका भात खावे । अथवा मण्ड, और पेया क्रमपूर्वक सेवन करे । या त्रिकुटेका चूर्ण मिला पकाया हुआ दूध छः दिन तक सेवनकरे । इसके उपरांत बल प्राप्त होनेपर छः छः दिनके अनन्तर इस चूर्णका सेवन करे । और विरेचन होनेके अनन्तर पेयादि विधि सेवन करता रहै तो सब प्रकारके उदररोग, जलोदर, कामला, पाण्डु और सूजन आदि नष्ट होतेहैं ११७–१२०॥

गवाक्षादि चूर्ण ।

गवाक्षींशंखिनींदन्तींतिल्वकस्यत्वचंवचाम् ।
पिबेद्द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः ॥ १२१ ॥

इन्द्रायणी जड, शंखपुष्पी, दंती, लोध और वच इन सबका चूर्ण कर मुनक्काके क्वाथ या गोमूत्र अथवा वेरके क्वाथ या छोटे वेरके क्वाथ अथवा शीधुके साथ उपरोक्त विधिसे सेवनकरे तो उदररोग शान्त होताहै ॥ १२१ ॥

नारायण चूर्ण ।

यमानीहवुपाधान्यंत्रिफलाचोपकुञ्चिका । कारवीपिप्पलीमूलमजगन्धाशटीवचा ॥ १२२ ॥ शताह्वाजीरकंव्योपंस्वर्णक्षीरीससचि-

१ एक पलकी मात्रा अत्यन्त बलवान् और हष्टपुष्ट मनुष्यके लिये कही है । सामान्य मनुष्योंको २ तोला लेना चाहिये ।

त्रका । द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुष्ठंलवणपञ्चकम् ॥ १२३ ॥ विडङ्गस्य समांशानिदन्त्याभागास्त्रयस्तथा । त्रिवृद्विशालयोर्द्वौद्वौशातला-स्याच्चतुर्गुणा ॥ १२४ ॥ एतन्नारायणंनामचूर्णरोगगणापहम् । नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः ॥ १२५ ॥ तक्रेणोदरि-भिःपेयंगुल्मिभिर्बदराम्बुना । आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया ॥ १२६ ॥ दधिमण्डेनविट्सङ्गेदाडिमाम्बुभिरर्शसैः । परिकर्त्तेस-वृक्षाल्ममुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ १२७ ॥ भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासे कासेगलग्रहे । हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देनलेज्वरे ॥१२८॥ दंष्ट्रा-विषेमूलविषेसगरेकृत्रिमेविषे । यथार्हस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेच-नम् ॥ १२९ ॥

अजवायन, हाउबेर, धनिया, त्रिफला, काला, जीरा, कलौंजी, पीपलामूल, अज-मोद, कचूर, वच, सौंफ, सुफेद जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), चीता, जवाखार, सज्जीखार, पोहकरमूल, कूठ, पांचों नमक, वायविडंग यह प्रत्येक एक एक भाग, दंती ३ भाग, निशोथ और इन्द्रायणकी जड दो दो भाग, सातला ४ भाग इन सबको बारीक कर चूर्ण बनावे । यह नारायणचूर्ण सब रोगोंके मूलको नष्ट करताहै । इस चूर्ण सेवनसे इस प्रकार रोग नष्ट होजातेहैं जैसे विष्णुके तेजसे राक्षस नष्ट होजाते हैं । यह चूर्ण उदररोगीको तक्रके साथ, गुल्मरोगीको बेरके क्वाथके साथ, अफारेवालेको मद्यके साथ, वातरोगीको प्रसन्नाके साथ, मलके विबंधमे दधि-मण्डके साथ, अर्शरोगमें दाडिमके साथ, परिकर्तिका (पेचिश) मे इमलीके जलके साथ, अजीर्णमें गरम जलके साथ, सेवन करना चाहिये । यह चूर्ण विरेचक होनेसे भगन्दर, पाण्डु, खांसी, श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीविकार कुष्ठ, मंदाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष, (जो किसी जानवरके काटनेसे हो) मूलविष और कृत्रिम विष इन सबको नष्ट करताहै । रोगीको यथायोग्य स्निग्धकोष्ठ करके इस चूर्णको सेवन कराना चाहिये ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥ १२० ॥ १२६ ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

हबुषादि चूर्ण ।

हवुषाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी । नीलिनीत्रायमाणाचशा-तलात्रिवृतावचा ॥ १३० ॥ सैन्धवंकाललवणंपिप्पलीचेतिचूर्ण-येत् । दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ १३१ ॥ पेयोऽयंस-

चगुल्मेपुप्लीह्निसर्वोदरेपुच। कुष्ठेश्वित्रेसरुजकेसवातेविपमाग्निपु॥ ॥ १३२ ॥ शोथार्शःपाण्डुरोगेपुकामलासुहलीमके । वातंपित्तं कफञ्चाशुविरेकात्संप्रसाधयेत्॥ १३३ ॥

हाउबेर स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख), हरड, बहेडे, आँवले, कुटकी, नीलनी, त्रायमाण, सातला, निशोथ, वच, सेंधानमक, संचरनमक और पीपल इन सबका बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको दाडिमके रस अथवा त्रिफलाके क्वाथ या मांसरस अथवा गरम जल या गोमूत्रके साथ पीवे तो सब प्रकारके गुल्म प्लीहा, उदररोग, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, वातव्याधि, विपमाग्नि, सूजन, अर्श, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक और वातपित्त, कफको विरेचनद्वारा शीघ्र शान्त करताहै॥ १३०-१३३॥

नीलिन्यादि चूर्ण।

नीलिनींनिचुलंव्योपंक्षौक्षारौलणानिच।
चित्रकञ्चपिवेच्चूर्णंसर्पिपोदरगुल्मनुत्॥ १३४॥

नीलिनीकी जड, निचुल (वेतस), त्रिकुटा, जवाखार सज्जीखार, पांचों नमक, चित्रककी छाल इन सबका चूर्णकर, घी मिला पीवे तो सब प्रकारके उदररोग और गुल्म नष्ट होतेहैं॥ १३४॥

सुधाक्षीर घृत।

क्षीरद्रोणंसुधाक्षीरप्रस्थार्द्धसहितंदधि । जातंविमथ्यतद्युक्त्यात्रिवृत्सिद्धंपिवेद्घृतम् ॥ १३५ ॥ तथासिद्धंघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेपिबेत्। स्नुक्क्षीरपलकल्केनत्रिवृताषट्पलेनच। गुल्मानांगरदोषाणामुदराणाञ्चशान्तये ॥ १३६ ॥

दूध १ द्रोण, थोहरका दूध आधा प्रस्थ इन दोनोको मिला गरमकर दही जमावे। इस दहीमेंसे मथकर घी निकाले। इस घृतको निशोथका चूर्ण मिलाकर पान करे। अथवा घी एक प्रस्थ, निशोथका कल्क छः पल थोहरका दूध १ पल, गौका दूध आठ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे। इन दोनों घृतोंमेंसे किसी एक घृतको सेवन करनेसे उदररोग, गुल्मरोग और गरदोप नष्ट होतेहैं॥ १३५॥१३६॥

दधिमण्डाढकेसिद्धात्स्नुक्क्षीरपलकल्कितात्।
घृतप्रस्थात्पिबेन्मात्रांतद्वज्जठरशान्तये॥ १३७॥

अथवा दधिमण्ड १ आढक, थोहरका दूध १ पल, निशोथका कल्क १ पल इन सबको मिला घृत सिद्धकरे। इस घृतको मात्रानुसार खानेसे उदररोग शान्त होताहै॥ १३७॥

एपाश्चानुपिवेत्पेयांपयोवास्वादुवारसम् । घृतेजीर्णेविरिक्तन्तुकोष्णनागरकैःशृतम् ॥ १३८ ॥ शुण्ठ्याःपिवेत्ततःपेयांयूषंकौलत्थकं ततः। पिवेद्रूक्षस्त्र्यहन्त्वेवंपयोवाप्रतिभोजितः॥१३९॥ पुनःपुनःपिवेत्सर्पिरानुपूर्व्यात्तथैवच । घृतान्येतानिसिद्धानिविदध्यात्कुशलोभिपक् ॥ १४० ॥ गुल्मानांगरदोपाणामुदराणाञ्चशान्तये ॥१४१॥

इन घृतोंको पीकर पेया, दूध अथवा मधुर मांसरसका अनुपान करे घृतकी मात्रा जीर्ण होनेपर जब दस्त होचुकें तो सोंठसे सिद्धकिया हुआ दूध अथवा सोंठसे सिद्ध की हुई पेया वा सोंठसे सिद्ध किया कुलथीका यूप पान करे और घृतका सेवन तीन दिन तक न करे। या तीन दिन तक केवल दूध ही पीया करे। तीन दिनके अनन्तर बुद्धिमान् वैद्य वारवार इसी क्रमसे सिद्ध किये घृतोको क्रमपूर्वक पिलावे। इन घृतोंके सेवनसे गुल्मरोग, उदररोग और गरदोप (दूषीविप) यह सब शान्त होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥ १४१ ॥

पीलुकल्कोपसिद्धंवाघृतमानाहभेदनम् । गुल्मघ्ननीलिनीसर्पिः स्नेहंवामिश्रकंपिवेत् । क्रमान्निर्हृतदोपाणांजाङ्गलप्रतिभोजिनाम् ॥ १४२ ॥

पीलूके कल्कके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत उदररोगीके अफारेको दूर करताहै। गुल्मरोगमें कहाहुआ नीलनीघृत और मिश्रकस्नेह भी उदररोगमें हितकारक है। जब विरेचनादि द्वारा उदररोगीके दोप शान्त होजांय तो क्रमपूर्वक जांगलजीवोंके मांसरस आदिका भोजन कराता रहे॥ १४२ ॥

संशमन योग।

दोपशेपनिवृत्त्यर्थंयोगान्वक्ष्याम्यतःपरम् । चित्रकामरदारुभ्यांकल्कंक्षीरेणनापिवेत् ॥ १४३ ॥ मांसयुक्तंतथाहस्तिपिप्पलीविश्वभेपजम्। विडङ्गंचित्रकंदन्तीचव्यंव्योपश्चतैःसमैः ॥ १४४ ॥ कल्कैःकोलसमैःपीत्वाप्रवृद्धमुदरंजयेत् । पिवेत्कपायंत्रिफलादन्तीरोहीतकैःशृतम् ॥ १४५ ॥ व्योपक्षारयुतंजीर्णेरसैर्वातसजाङ्गलैः मांसंवाभोजनंभोज्यंसुधाक्षीरघृतान्वितम् ॥ १४६ ॥

यदि उदररोगीके कुछ दोप वाकी रहगये हों तो उन दोपोंकी निवृत्तिके लिये संशमन योगोंको कथन करतेहैं। चित्रक और देवदारूका कल्क कर दूधके साथ

पीवे । अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दंती, चव्य, मिर्च, पीपल और सोंठ यह सब समभाग लेकर वारीक कल्क करे । इसको १ कर्पभर लेकर दूधके साथ खाय तो अत्यंत बढाहुआ उदररोग भी दूर होताहै । अथवा त्रिफला, दंती, रोहिततृणका क्वाथ त्रिकुटेका चूर्ण और जवाखार मिलाकर पीवे । मात्रा जीर्ण होनेपर जांगलजीवोंके मांसरसके साथ भोजन करे । अथवा थोहरके दूधसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाया घृत मांसरसके साथ सेवन करे ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५ ॥१४६॥

क्षीरानुपानंगोमूत्रेणाभयांवाप्रयोजयेत् । सप्ताहंमाहिषंमूत्रंक्षीरंचानन्नभुक्पिवेत् ॥ १४७ ॥

अथवा गोमूत्रके साथ हरडका सेवन करे और केवल दूधका ही सेवन करे । अथवा सर्वथा अन्नका परित्याग कर भैंसका मूत्र पीवे और अन्नकी जगह भैंसका दूध पीवे । इस प्रकार सात दिन करनेसे उदररोगका शेष विकार शान्त होताहै ॥१४७ ॥

मासमौष्ट्रंपयश्छागंत्रीन्मासान्व्योषसंयुतम् । हरीतकीसहस्रंवा क्षीराशीवाशिलाजतु ॥ १४८ ॥ शिलाजतुविधानेनगुग्गुलुंवाप्रयोजयेत् । शृङ्गवेरार्द्रकरसःपानेक्षीरसमोमतः ॥ १४९ ॥ तैलंरसेनतेनैवसिद्धंदशगुणेनवा । दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलंदूष्योदरेहितम् । शूलानाहविबन्धेषुसक्तुयूपरसादिभिः ॥ १५० ॥

अथवा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर ऊंटनीका दूध १ महीने तक पीवे या बकरीका दूध त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर तीन महीने तक पीवे अथवा १००० हरडोंको क्रमपूर्वक सेवन करे । अथवा १ महीने तक केवल दूध पीताहुआ शिलाजीतका सेवन करे । या शिलाजीतकी विधिसे ही शुद्ध गूगुलको सेवन करे अथवा समान भाग दूध और अदरखका रस मिलाकर पीवे । अथवा दश भाग अदरखके रससे एक भाग तैलको सिद्धकर पीवे अथवा मालिश करे । दंती और द्रवंतीके फलोंका तेल (पहाडी और दक्षिणी जमाल गोटेका तेल) युक्तिपूर्वक आधी रत्ती आधासेर दूधमें मिलाकर पिलावे तो दूषीविषसे उत्पन्न हुआ उदररोग विरेचन होकर शान्त होजायगा । शूल, अफारा, विबंधमें अदरखके रससे सिद्ध किया तैल सत्तू और यवागूमें मिलाकर सेवन करे ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥

---

१ एक एक हरडेसे लेकर दश दिन पर्यन्त बढाताहुआ दशवें दिन दश हरडे सेवन करे फिर दश दिनमें एक एक घटाता हुआ एक तक आजाय फिर इसी प्रकार बढाताहुआ दश तक सेवन करे फिर उसी प्रकार घटावे । इसी रीतिसे सहस्र हरडें खानी चाहिये ।

सरलामरशिग्रूणांबीजेभ्योमूलकस्यच ॥ १५१ ॥
तैलान्यभ्यङ्गपानार्थेशूलघ्नान्यनिलोदरे ॥ १५२ ॥

वायुके उदररोगमें पीडा शान्तिके लिये सरलके बीजोंका तेल और लाल सोहांजनेके बीजोंका तेल, तथा मूलीके बीजोंका तेल मालिशके लिये और पीनेमें प्रयोगकरे ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

स्तैमित्यारुचिहृल्लासेष्वल्पाग्निर्मद्यपस्तथा।
अरिष्टान्चापिबेत्क्षारान्कफस्त्यानस्थिरोदरः ॥ १५३ ॥

यदि कफके उदररोगमें ,पेटका तनना, कठोरता, स्तैमित्य, अरुचि, हृल्लास और मंदाग्नि हो तो कफनाशक अरिष्ट अथवा क्षार मिलाकर मद्य पिलावे ॥ १५३ ॥

पिप्पल्यादिक्षार।

पिप्पलींतिल्वकंहिङ्गुनागरंहस्तिपिप्पलीम् । भल्लातकंशिग्रुफलं त्रिफलांकटुरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेद्वेसरलातिविषेवचाम्॥१५४॥ कुष्टंमुस्तंतथापञ्चलवणानिप्रकल्प्यच । दधिसर्पिर्वसातैलमज्जयुक्तानिदाहयेत् ॥ १५५ ॥ अन्नादूर्द्धमतःक्षारान्बिडालकपदंपिबेत्। मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः ॥ १५६ ॥ हृद्रोगंश्वयथुंगुल्मंप्लीहार्शोजठराणिच । विषूचिकामुदावर्त्तंवाताष्ठीलाश्चनाशयेत् ॥ १५७ ॥

पीपल, लोध, हींग, सोंठ, गजपीपल, भिलावे, सोहांजनाके बीज, त्रिफला, कुटकी, देवदारु, हल्दी, दारूहल्दी, सरल, अतीस, वच, कूठ, नागरमोथा, पांचों नमक इन सबको समभाग लेकर कूटलेवे। फिर इनमें दही, घृत, वसा, तेल और मज्जा मिलाकर एक हांडीमें संपुट करे और गजपुटमें फूकदेवे। अथवा जिस प्रकार इस संपुटमेसे धूंआ बाहर न निकले उस रीतिसे हांडीको बन्दकर चूल्हेपर चढा नीचेसे आँच देकर सब द्रव्योंकी भस्म कर डाले। इस क्षारमेंसे एक कर्ष लेकर मद्य, दधिमण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव इनमेंसे किसी एकके साथ सेवन करे तो हृद्रोग, गुल्म, सूजन, प्लीहा, अर्श, उदररोग, विसूचिका, उदावर्त और वातष्ठीला यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १५४-१५७ ॥

क्षारश्चाजकरीपाणांस्नुतंमूत्रैर्विपाचयेत् । कार्षिकंपिप्पलीमूलंपञ्चैवलवणानिच ॥ १५८॥ पिप्पलींचित्रकंशुण्ठींत्रिफलांत्रिवृतांव-

चाम् । द्वौक्षारौशातलांदन्तींस्वर्णक्षीरींविषाणिकाम् ॥ १५९ ॥ कोलप्रमाणांवटिकांपिबेत्सौवीरसंयुताम् । श्वयथाववेिपाकेचप्रवृद्धेचोदकोदरे ॥ १६० ॥

बकरीकी मेंगनोंकी राखको आठगुने गोमूत्रमें पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छान लेवे फिर इसको दूसरे पात्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो फिर इसमें पीपलामूल, पांचों नमक, चित्रक, सोंठ त्रिफला, निशोथ, वच, जवाखार, सज्जीक्षार, सातला, दंती, स्वर्णक्षीरीकी जड और मेंडासिंगी इन सबका बारीक चूर्ण मिलाकर कोल (१ कर्ष या बेरके समान) प्रमाण गोलियें बनालेवे । १ गोलीको नित्य खाकर सौवीरके साथ अनुपान करे । इसके सेवनसे सूजन, अविपाक, बढाहुआ उदररोग और जलोदर यह शान्त होतेंहैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥१६०॥

भावितानांगवांमूत्रेषष्टिकानान्तुतण्डुलैः । यवागूंपयसासिद्धांप्रकामंभोजयेन्नरम् ॥ १६१ ॥ पिबेदिक्षुरसश्चानुजठराणांनिवृत्तये । स्वंस्वंस्थानंव्रजन्त्येषांतथापित्तकफानिलाः ॥ १६२ ॥

इसमें गोमूत्रमें भावना दियेहुए शाठीके चावल दूधमें पकाकर यवागूके समान बना इच्छापूर्वक भोजन करावे । और उसके ऊपर ईखका रस पिलावे तो वात, पित्त, कफ अपने २ स्थानोंमें पहुंच जायं और जठररोग शान्त हो ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

शंखिनीस्नुक्त्रिवृद्दन्तीचिरबिल्वादिपल्लवैः । शाकंगाढपुरीषाय प्राग्भक्तंदापयेद्भिषक् ॥ १६३ ॥ ततोऽस्मैशिथिलीभूतवर्चोदोषायशास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतंक्षीरंदोषशेषहरंशिवम् ॥ १६४ ॥

शंखिनी (यवतिक्ता), थोहर, निशोथ, दंती और कंजाके पत्रोंका शाक जिस उदररोगीको सूखीहुई विष्ठा आतीहो उसको भोजनके समय उपरोक्त शाक भातके साथ खिलावे जब देखे कि रोगीका मल शिथिल होगयाहै तो शास्त्रको जाननेवाला वैद्य दूध और गोमूत्र मिला पिलावे तो बाकी रहे दोष आसानीसे निकल जाते हैं ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

पार्श्वशूलमुपस्तम्भंहृद्ग्रहश्चापिमारुतम् ।
जनयेद्यस्यतैलंसबिल्वक्षारेणनापिबेत् ॥ १६५ ॥

जिस उदररोगीके वायुकी उग्रतासे पार्श्वशूल, ऊरुस्तम्भ और हृदयका जकडजाना होय उसको सरल, सुहांजने और मूलीके बीजोंका तेल अथवा अदरखसे सिद्ध किया तेल बिल्वक्षार मिलाकर पिलावे ॥ १६५ ॥

तथाग्निमन्थश्योनाकपलाशतिलनालजैः । बलाकदल्यपामार्गक्षारैः प्रत्येकशःस्रुतैः ॥ १६६ ॥ तैलंपक्काभिषग्दद्यादुदराणांप्रशान्तये । निवर्त्ततेचोदरिणांहृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः ॥ १६७ ॥

अथवा अग्निमंथ, सोनापाठा, ढाक, तिलोंकी नाल, बला, केलाका कंद, अपामार्ग इन सबका क्षार अलग २ लेकर टपकावे। उन सबसे सिद्ध किया तैल उदररोगियोंका वातज हृद्रोगको दूर करताहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

कफेवातेनपित्तेनताभ्यांवाप्यावृतेऽनिले ।
बलिनःस्वौषधयुतंतैलमैरण्डजंहितम् ॥ १६८ ॥

कफ और वायुसे अथवा कफ पित्तसे यदि वायु रुकजाय तो बलवान् उदररोगीको उदररोगनाशक द्रव्योंके साथ एरण्डतैल पिलाना चाहिये ॥ १६८ ॥

सुविरिक्तोनरोयस्तुपुनराध्मतीहतम् । सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैः समुपाचरेत् ॥ १६९ ॥ सोपस्तम्भोऽपिवावायुराध्मापयतियंनरम् । तीक्ष्णैःसक्षारगोमूत्रैर्बस्तिभिस्तमुपाचरेत् ॥ १७० ॥

यदि विरेचन द्वारा शुद्धकाय होजानेपर फिर हटकर उदररोग होजाय तो अम्ल और लवण मिलाकर स्निग्ध निरूहण वस्ति करे । और जिस रोगीको वायु उपस्तम्भ होकर अफारा प्रगटकर देवे । उसकी तीक्ष्ण क्षार और गोमूत्र मिलाकर वस्तिक्रिया द्वारा चिकित्सा करे ॥ १६९ ॥ १७० ॥

विशेष निर्देश ।

क्रियातीतेत्रिदोषेचजठरेचाप्रशाम्यति । ज्ञातीन्ससुहृदोदारान्ब्राह्मणान्नृपतीन्गुरून् ॥ १७१ ॥ अनुज्ञाप्यभिषक्कर्मविदध्यात् संशयंब्रुवन् । अक्रियायांध्रुवोमृत्युःक्रियायांसंशयोभवेत् । एवमाख्यायतस्येदमनुज्ञातःप्रयोजयेत् ॥ १७२ ॥

यदि त्रिदोषजन्य उदररोग इन सब क्रियाओंके करनेसे भी शान्त न हो तो रोगीके जातीय, बान्धव, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु आदिको बुलाकर कहे कि, मैंने यथोचित चिकित्सा की है परन्तु तब भी रोग शान्त नहीं हुआ १ अब यह (आगे कहीहुई) क्रिया बाकी है । इसके विना किये रोगीकी अवश्य मृत्यु होजायगी और इस क्रियाके करनेपर भी रोगी अच्छा होजायगा अथवा नहीं बचेगा इस विषयमें पूर्ण निश्चय नहीं है । यदि इस प्रकार वैद्यके कहनेपर सब लोग अनुमति दें तो वैद्य आगे कहीहुई क्रिया करे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

सार्पविषप्रयोग ।

पानभोजनसंयुक्तंविषमस्मैप्रदापयेत् ॥ १७३ ॥ यस्मिन्वाकुपितः सर्पोविसृजेद्धिफलेविषम् । तेनास्यदोषसंघातःस्थिरोलीनोविमार्गगः ॥ १७४ ॥ विषेणाशुप्रमाथित्वादाशुभिन्नःप्रवर्त्तते । विषेण हृतदोषंतंशीताम्बुपरिषेचितम् ॥ १७५ ॥ पाययेतभिषग्दुग्धंयवागूंवायथाबलम् । त्रिवृन्समण्डूकपर्ण्योश्चशाकंसयववास्तुकम् ॥ ॥ १७६ ॥ भक्षयेत्कालशाकंवास्वरसोदकसाधितम् । निरम्ललवणस्नेहंस्विन्नास्विन्नमनन्नभुक् ॥ १७७ ॥ मासमेकंततश्चैवतृषितः स्वरसंपिबेत् । एवंविनिर्हृतेदोषेशाकैर्मासात्परंततः ॥ १७८ ॥ दुर्बलायप्रयुञ्जीतप्राणभृत्कारभंपयः ॥ १७९ ॥

जो रोगी किसी प्रकार चिकित्सा करनेपर भी अच्छा न होसकता हो और उसकी उदररोगसे अवश्य मृत्यु होना प्रतीत होता हो तो उसको पान और भोजनमें सर्पका विष खिलावे । सर्प क्रुद्ध होकर जिस फलमें अपने विषको छोडे वह उस रोगीको खिलावे । इस विषके खानेसे रोगीके स्थिर, लीन और विमार्गगामी दोष विषके बलसे प्रमथित होकर शीघ्र फटकर निकलने लगतेहैं । जब वैद्य देखे कि विषसे सब दोष निकलचुके हैं तो रोगीको शीतल जलसे परिसेचन करे फिर यथाबल दूध अथवा यवागू पिलावे । दूसरे दिन निशोथके पत्र अथवा ब्राह्मी या यवतिक्ता, बथुआ, अथवा कालशाकको जलमें पकाकर नमक, खटाई और चिकनाईके ही विना भली प्रकार सिद्धकर अथवा थोडा सिद्धकर खिलावे और अन्न न देवे । रोगीको प्यास लगे तो इन्हीं शाकोंका जल पिलावे । इस प्रकार इन शाकोंके सेवनसे दोष निकलकर रोगी अत्यंत दुर्बल होजाताहै उस समय उसको हथनीका दूध पिलावे जिससे रोगीके प्राणोंमें बल आवे ॥ १७३–१७९ ॥

उदररोगमें शस्त्रकर्म ।

इदन्तुशल्यहर्तृणांकर्मस्याद्दृष्टकर्मणाम् । वामंकुक्षिमापयित्वा नाभ्यधश्चतुरंगुलम् । मात्रायुक्तेनशस्त्रेणपाटयेन्मतिमान्भिषक्॥ ॥ १८० ॥ विपाट्यान्त्रंततःपश्चाद्वीक्ष्यबद्धक्षतान्त्रयोः । सर्पिषाभ्यज्यकेशादीनवमृज्यविमोक्षयेत् ॥ १८१ ॥ मूर्च्छनायच्चसंमूढमन्त्रंतच्चविमोक्षयेत् । छिद्राण्यन्त्रस्यतुस्थूलैर्दंशयित्वापिपीलि-

कैः ॥ १८२ ॥ बहुशःसंगृहीतानिज्ञात्वाछित्त्वापिपीलिकान् । प्रतियोगैःप्रवेश्यान्त्रंप्रैषैःसीव्येद्व्रणंततः ॥ १८३ ॥

दृष्टकर्मा, सिद्धहस्त, शस्त्रक्रियामें कुशल वैद्य नाभिसे चार अंगुल नीचे बाईं कुक्षीकी ओर शस्त्रद्वारा चीरा लगावे और उदरकी बद्ध और क्षत अंतडियोंकी परीक्षा करे और अंतडियोंमें मधुयष्टि घृत चुपडकर उन अंतडियोंके अन्दरका बाल आदि शल्य निकालडाले । अंत्र संवद्ध या मूर्छित होनेपर भी शस्त्रद्वारा सब दोष निकलकर बद्ध खुल जायगा । आंतोंके समस्त छिद्र यदि मोटे हों तो बहुतसी बडी २ चींटियोंसे कटवावे । ऐसा करनेसे अंतडियोंके छिद्र इकट्ठे होकर आपसमें मिलजावेंगे फिर उन चींटियोंका छोडा आंतोंको उनके स्थानमें पहुंचाकर जखमको बाहरसे सींदेना चाहिये ॥ १८० ॥ १८१ ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

जलोदरमें नलिकायंत्रद्वारा जल निकालना ।

तथाजातोदकंसर्वमुदरंव्यधयेद्भिषक् । वामपार्श्वेत्वधोनाभेर्नाडीं दत्त्वाचगालयेत् ॥ १८४ ॥ निःस्राव्यचविमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससोदरम् । तथावस्तिविरेकाद्यैर्म्लानंसर्वेश्चवेष्टयेत् ॥ १८५ ॥

शस्त्रकर्मको जाननेवाला वैद्य जिस रोगीके पेटमें जल भरा हो उसके नाभिसे नीचे बाईं ओर नलिकाशस्त्र लगाकर पेटका जल निकालदेवे जल निकलजानेके अनन्तर पेट हलका होजानेपर नलिका शस्त्र निकालकर त्वचाको ठीक मिला कपडेसे संपूर्ण पेटको लपेट देवे । इसी प्रकार वस्ति और विरेचन आदिकोंसे शुद्ध होकर मुर्झाये हुए उदररोगीके पेटको वस्त्रसे लपेट देना चाहिये ताकि उदरमें फिर दोषका प्रवेश न होसके ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

निःसृतेलंघितःपेयामस्नेहलवणांपिवेत् । अतःपरञ्चषण्मासान्क्षीरवृत्तिर्भवेन्नरः ॥१८६ ॥ त्रीन्मासान्पयसापेयांपिवेत्त्रींश्चापिभोजयेत् । श्यामाकंकोरदूष्यंवाक्षीरेणलघुभोजनः । नरःसंवत्सरेणैवं जयेत्प्राप्तंजलोदरम् ॥ १८७ ॥

इस प्रकार उदररोगीके दोष निकलजानेपर लंघन करा लवण और चिकनाई रहित पेया पिलावे । फिर छः महीने पर्यंत रोगीको दूध ही पिलाना चाहिये । (पानी कभी न पिलावे) फिर तीन महीने तक दूधके साथ पेया पिलावे । तदनंतर श्यामाक चावल अथवा कोद्रव चावलका भात बहुत नरम बनाकर दूधके साथ सेवन करावे । इस प्रकार १ वर्ष तक जलोदर रोगीकी रक्षा करता रहे तो वैद्य जलोदर रोगको जीत सकता है ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

दूधकी प्रशंसा ।

प्रयोगाणाञ्चसर्वेषामनुक्षीरंप्रयोजयेत् ॥ १८८ ॥ दोषानुबन्धरक्षार्थंबलस्थैर्य्यार्थमेवच । प्रयोगापचिताङ्गानांहितंह्युदरिणांपयः । सर्वधातुक्षयार्त्तानांदेवानाममृतंयथा ॥ १८९ ॥

इन सब प्रयोगोंके अनन्तर दूधका पिलाना ही श्रेष्ठ है । दूधके पिलानेसे दोषोंका अनुबंध नहीं होता बल और स्थिरताकी रक्षा होतीहै । औषधि प्रयोगसे कृश हुए उदररोगियोंके लिये दूध इसप्रकार हितकारी है जैसे सर्वधातु क्षय होनेसे दुःखितहुए देवताओंको अमृतका पीना हितकारी होताहै ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

हेतुंप्राग्रूपमष्टानांलिङ्गंव्याससमासतः उपद्रवान्गरीयस्त्वंसाध्यासाध्यत्वमेवच ॥ १९० ॥ जाताजाताम्बुलिङ्गानिचिकित्साञ्चोक्तवानृषिः । समासव्यासनिर्देशैरुदराणांचिकित्सितम् ॥ १९१ ॥

इति चरक० चि० उदरचिकित्सितंनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस उदर चिकित्सित नामक अध्यायमें उदररोगके हेतु, पूर्वरूप, आठ प्रकारके उदररोगोंके लक्षण, उपद्रव, गुरुता साध्यासाध्य, जात और अजात जलके लक्षण,चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे महर्षि आत्रेयजीने कहाहै ॥ १९० ॥ १९१ ॥

इति श्रीमहर्षिचरक० प्र० आयुर्वेदीय स० चि० स्थाने उदरचिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रहणीचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ॥

अब हम ग्रहणीचिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान आत्रेयजी कहनेलगे ।

आयुआदिमें अग्निको कारणता ।

आयुर्वर्णोबलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयौप्रभा ।
ओजस्तेजोऽग्नयःप्राणाश्चोक्तादेहाग्निहेतुकाः ॥ १ ॥

आयु, वर्ण, बल, स्वास्थ्य, उत्साह, पुष्टि, कांति, ओज, तेज, क्षुधा और प्राण यह सब अग्निके ही अधीन हैं ॥ १ ॥

शान्तेऽग्नौम्रियतेयुक्तेचिरंजीवत्यनामयः । रोगीस्याद्विकृतेमूल-मग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥ २ ॥ यदन्नंदेहधात्वोजोबलवर्णादिपोष-कम् । तत्राग्निर्हेतुराहारान्नह्यपक्वाद्रसादयः ॥ ३ ॥

क्योंकि जठराग्निके शान्त होनेसे ही मनुष्य दीनहोकर मरजाताहै । यदि जठराग्नि उत्तम हो तो मनुष्य दीर्घायु और नीरोगी होताहै । अग्निके विकृत होनेसे ही मनुष्य रोगी होताहै । इसलिये मनुष्योंके जीवन और आरोग्यताका मूल कारण जठराग्निकी यथार्थता ही है । अन्नका अग्निद्वारा यथोचित परिपाक होकर देह, धातु, ओज और बल वर्णादिका पोषण करनेवाला होताहै उस अन्नके रसको यथोचित धातु, ओज आदिमें परिवर्त्तन करनेका कारण जठराग्नि ही है । क्योंकि जठराग्निके ठीक न होनेसे अन्नका यथोचित परिपाक होकर रस आदिक बन ही नहीं सकते ॥ २ ॥ ३ ॥

अन्नमादानकर्मातुप्राणःकोष्ठंप्रकर्षति । तद्द्रवैर्भिन्नसंघातंस्नेहेनमृ-दुतांगतम् ॥ ४ ॥ समानेनावधूतोऽग्निरुदर्य्यःपवनेनतु । कालेभुक्तं समंसम्यक्पचत्यायुर्विवृद्धये ॥ ५ ॥ एवंरसमलायान्नमाशयस्थ-मधःस्थितः । पचत्यग्निर्यथास्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डुलम् ॥६॥

प्राणवायु अन्नको ग्रहणकर कोष्ठमें लेजातीहै । क्योंकि अन्नको ग्रहण करके कोष्ठमें पहुंचा देना ही प्राणवायुका कर्म है।फिर वह अन्न आमाशयमें पहुंचकर कफकी द्रवतासे द्रवीभूत होकर स्नेहसे नम्र होजाताहै ! फिर समानवायुसे जठराग्नि उत्तेजित होकर उस अन्नको पाचन कर देतीहै । उसीसे मनुष्यकी आयु आदि बढतीहै । जैसे किसी पात्रमें चावल और जल मिलाकर आगपर चढादेनेसे नीचेकी अग्नि उसको भातके रूपमें परिणत कर देतीहै उसी प्रकार आमाशयमें स्थितहुए अन्नको पाचकाग्नि रस और मलके रूपमें परिणत कर देतीहै ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

भुक्तान्नसे तीनों दोषोंकी उत्पत्ति ।

अन्नस्यभुक्तमात्रस्यषड्रसस्यप्रपाकतः । मधुरात्प्राक्कफोद्भावात्फे-नभूतउदीर्य्यते ॥ ७ ॥ परन्तुपच्यमानस्यविदग्धस्याम्लभा-वतः । आशयाच्च्यावमानस्यपित्तमच्छमुदीर्य्यते ॥ ८ ॥ पक्वाश-

यन्तुप्राप्तस्यशोष्यमाणस्यवह्निना । परिपिण्डितपक्वस्यवायुः स्यात्कटुभावतः ॥ ९ ॥

छः रस युक्त भोजन किये अन्नका प्रथम परिपाक होकर मधुरतासे फेनभूत कफकी उत्पत्ति होतीहै । फिर पकेहुए अन्नके अम्लभावसे विदग्ध होकर आमाशयसे झरकर स्वच्छ पित्त प्रकट होताहै । फिर वह अन्न अग्निसे सूखकर पक्काशयमें प्राप्त हो कटुभावसे वायुको उत्पन्न करताहै तथा पिण्डाकार बनकर विष्ठारूपमें परिणत होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

आहारसे इंद्रियोंकी पुष्टि।

अन्नमिष्टंह्युपक्तमिष्टैर्गन्धादिभिःपृथक् । देहेप्रीणातिगन्धादीन्घ्राणादीनीन्द्रियाणिच ॥ १० ॥

जो अन्न उत्तम, प्रिय, गंधादियुक्त, आहार किया जाताहै वह शरीरमें स्थित घ्राणादि इन्द्रियोंमें गंधादि ग्रहणशक्तियोंको परिपुष्ट करताहै ॥ १० ॥

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपञ्चोष्माणःसनाभसाः । पञ्चाहारगुणान् स्वान्स्वान्पार्थिवादीन्पचन्तिहि ॥ ११ ॥ यथास्वंस्वञ्चपुष्यन्तिदेहद्रव्यगुणाःपृथक् । पार्थिवाःपार्थिवानेवशेषाःशेषांश्चकृत्स्नशः ॥ ॥ १२ ॥ सप्तभिर्देहधातारोद्विविधाश्चपुनःपुनः । यथास्वमग्निभिः पाकंयान्तिकिट्टप्रसादवत् ॥ १३ ॥

पृथिव्यादि पांचभौतिक अन्यके परिपाक करनेवाली पांच प्रकारकी ही पांचभौतिक शक्तियोंवाली पार्थिव, जलीय, आग्नेय, वायवीय और आकाशीय गुणोंवाली ऊष्मा (अग्नि) होती है । वह पांच प्रकारकी ऊष्मा पार्थिव आदि पांच प्रकारके गुणोंवाले आहारके अंशोंको परिपाक करतीहैं । और अपने २ महाभूतात्मक द्रव्यके अंशको लेकर शरीरमें अपने २ भागको पोषण करतीहैं। जैसे पार्थिव ऊष्मा आहारके पार्थिव भागको लेकर शरीरके पार्थिव भागको पोषण करतीहै । इसी प्रकार अन्य जलीय आदिक भी जानना । इस प्रकार पांचभौतिक आहारके परिपाक होनेसे यह पंचभूतात्मक शरीर संपूर्ण शारीरिक गुणोंसे संपन्न होताजाताहै। रसादिक सात धातुयें भी अपनी २ अग्निसे परिपाक होतेहुए मल और प्रसादरूपसे दो प्रकारके रूपमें परिणत होजातीहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥

रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच । अस्थ्नोमज्जाततः शु-

क्शुक्राद्गर्भःप्रजायते ॥ १४ ॥ रसात्स्तन्यंततोरक्तमसृजःकण्डराः शिराः । मांसाद्वसात्वचःपट्चमेदसःस्नायुसम्भवः ॥ १५ ॥

इस प्रकार उस पांचभौतिक आहारका जठराग्नि द्वारा परिपाक हो पहिले रस धातु बनताहै और किट्ट अलग होजाताहै फिर रससे रक्त, रक्तसे मांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थियोंसे मज्जा, मज्जासे शुक्र (वीर्य) और इस शुक्रसे ही गर्भ उत्पन्न होताहै । एवं रससे स्तन्य (दूध) दूधसे रक्त, रक्तसे कंडरा और शिरा उत्पन्न होतीहैं । मांससे वसा और सात प्रकारकी त्वचा होतीहैं । तथा मेदसे संपूर्ण स्नायु और संधियें पोषण होतीहैं ॥ १४ ॥ १९ ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

इत्युक्तवन्तमाचार्य्यंशिष्यस्त्विदमचोदयत् । रसाद्रक्तंविसदृशा-त्कथंदेहेऽभिजायते ॥ १६ ॥ रसस्यचनरङ्गोऽस्तिसकथंयातिरक्तता-म् । रसाद्रक्तात्स्थिरंमांसंकथंतज्जायतेनृणाम् ॥ १७ ॥ रसाद्र-क्तात्तथामांसान्मेदसःश्वेतताकथम् । श्लक्ष्णाभ्यांमांसमेदोभ्यां खरत्वंकथमस्थिषु ॥ १८ ॥ खरेष्वस्थिषुमज्जाचकेनस्निग्धोमृदु-स्तथा । मज्ज्ञश्चपरिणामेनयदिशुक्रंप्रवर्त्तते ॥ १९ ॥ सर्वदेहगतं शुक्रंप्रवदन्तिमनीषिणः । अथापिमध्येमज्ज्ञश्चशुक्रंभवतिदेहिना-म् ॥ २० ॥ छिद्रंनदृश्यतेऽस्थ्नाश्चतन्निःसरतिवाकथम् । एवमुक्त-स्तुशिष्येणगुरुःप्राहेदमुत्तरम् ॥ २१ ॥

इस प्रकार अपने गुरु भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछनेलगे कि हे भगवन् ! विपरीत वर्णवाले रससे शरीरमें रक्त कैसे होजाताहै क्योंकि रसमें तो लालवर्णका रंग नहीं होता वह कैसे लालवर्णका रक्त बनजाताहै । उस पतले रस और रक्तसे स्थिर मांस कैसे प्रकट होताहै और उस मांससे उत्पन्न होनेवाली मेद श्वेतवर्णकी किस प्रकार होजातीहै । नरम और चिकने मांस मेदसे खर और कठोर अस्थियें कैसे उत्पन्न होतीहैं । उन खरगुणवाली अस्थियोंसे चिकनी और नम्र मज्जा कैसे उत्पन्न होतीहै यदि मज्जाके परिणामसे ही शुक्रकी उत्पत्ति है तो शुक्रको बुद्धिमान संपूर्ण शरीरमें व्यापक मानतेहैं फिर उस मज्जाके मध्यमें उत्पन्न होनेवाले शुक्रको अस्थियोंसे बाहर निकलनेके लिये अस्थियोंमें कोई छिद्र तो प्रतीत होता ही नहीं फिर वह शुक्र अस्थियोंमेंसे किस प्रकार निकलताहै । इस प्रकार शिष्यके प्रश्नोंको सुनकर गुरू उत्तर देनेलगे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

आत्रेयजीका उत्तर (सात धातुओंके बननेका क्रम) ।

तेजोरसानांसर्वेषामनुजानांयदुच्यते । पित्तोष्मणःसरागेणरसो-रक्तत्वमृच्छति ॥ २२ ॥ वाय्वग्नितेजसारक्तमुष्मणाचाभिसंयुतम् । स्थिरतांप्राप्यशौक्ल्यञ्चमेदोदेहेऽभिजायते ॥ २३ ॥ पृथिव्यग्न्यानिलादीनांसंघातःश्लेष्मणावृतः । खरत्वंप्रकरोत्यस्यजायतेऽस्थिततोनृणाम् ॥ २४ ॥ करोतितत्रसौषिर्य्यमस्थ्नांमध्येसमीरणः । मेदसस्तानिपूर्य्यन्तेस्नेहोमज्जाततःस्मृतः ॥ २५॥ तस्मान्मज्ज्ञस्तुयःस्नेहःशुक्रंसञ्जायतेततः ॥ २६ ॥

सब मनुष्योंके आहारसे जो रस उत्पन्न होताहै उस रसमें जो तेज पदार्थ है वही रसको रक्त बनानेमें कारण है उस रसमें होनेवाले रागयुक्त तेज और पित्तकी गर्मीसे रस लालरूपमें परिणत हो रक्तताको प्राप्त होजाताहै। वही रक्त वायु और अग्निके तेजसे स्थिरताको प्राप्त होकर मांसरूपमें परिणत होजाताहै। इसी प्रकार मांस वायु, कफ और अग्निके तेजसे परिणत होकर श्वेत मेदके रूपमें प्राप्त होजाताहै। वह मेद कफसे आवृत हो पृथ्वी, अग्नि और वायुके संघातसे खरत्वको प्राप्त हो मनुष्योंकी अस्थियोंके रूपमें परिणत होजाताहै। उन अस्थियोंमें वायु छिद्रोंको प्रकट करदेताहै। जिससे वह हड्डियें मेदसे परिपूर्ण होकर मज्जाको उत्पन्न करतीहैं। उस मज्जाके स्नेहसे वीर्यकी उत्पत्ति होतीहै ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

शुक्र निकलनेका क्रम।

वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौषिर्य्यंजायतेऽस्थिषु । तेनस्रवतितच्छुक्रंनवात्कुम्भादिवोदकम् । स्रोतोऽभिष्यन्दतेदेहात्समन्ताच्छुक्रवाहिभिः ॥ २७ ॥ हर्षेणोदीरितंरागात्सङ्कल्पाच्चमनोभवात् । विलीनंघृतवद्व्यायामोष्मणास्थानविच्युतम् ॥ २८ ॥ वस्तौसंभृत्यनिर्य्यातिस्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥ २९ ॥

वायु, और आकाशके गुणसे हड्डियोंके सब भागोंमें सूक्ष्म छिद्र होतेहैं। उन छिद्रोंद्वारा वीर्य बाहर निकलताहै। जैसे नवीन मट्टीके घडेमें जल भरनेसे वह झरने लगताहै उसी प्रकार अस्थियोंके सूक्ष्म छिद्रोंसे शुक्र झरकर शुक्रवाही स्रोतों द्वारा कामचेष्टासे उत्पन्न हुए राग और संकल्पसे मैथुनादि व्यायामजनित गर्मीसे घृतके समान पिघल जाताहै और अपने स्थानसे चल वस्तिमें संचित होकर जैसे ऊंचे स्थानसे नीचे स्थानको जल निकलजाताहै उसीप्रकार यह भी निकल जाताहै॥२७॥२८॥२९॥

धातुओंके मल।

किट्टमन्नस्यविण्मूत्रंरसस्यचकफोऽसृजः। पित्तंमांसस्यचमलोमलः स्वेदस्तुमेदसः। स्यात्किट्टंकेशजालोमास्थ्नोमज्ज्ञःस्नेहोऽक्षिविट्-त्वचाम्॥ ३०॥ प्रसादकिट्टेधातूनांपाकादेवंविधःस्मृतः॥ ३१॥

आहारका किट्ट विष्टा और मूत्र होताहै। रसका किट्ट (मल) कफ (बलगम, थूक) होताहै। रक्तका किट्ट पित्त होताहै। मेदका मल पसीना। हड्डियोंका मल लोम। मज्जका मल शरीरगत स्नेह, त्वचाका मल नेत्रोंका कीच होताहै। इस प्रकार रससे रक्तादिकोंका बनना धातुओंका प्रसाद कहाजाताहै। और मलादिक किट्ट मल कहेजाते हैं॥ ३०॥ ३१॥

परस्परोपसंस्तम्भाधातुस्नेहपरम्परा। वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्णातिबलमाशुहि। षड्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्त्तनम्॥३२॥ सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिवृत्तिस्तुचक्रवत्॥ ३३॥

सब धातुयें आपसमें एक दूसरेको पुष्ट करती हैं और रसादि क्रमसे ही धातुओंका पोषण होकर वीर्यबलादि उत्पन्न होतेहैं। परन्तु वृष्य, वाजीकरणादि पदार्थ विना ही रसादिक्रमसे परिणत हुए शीघ्र बलको उत्पन्न करतेहैं यह इनका स्वाभाविक गुण है। कोई कहतेहैं कि एक धातु ६ दिन रात्रिमें दूसरी धातुके रूपमें परिणत होतीहै। परन्तु इस प्रकार धातुओंके परिवर्त्तनका चक्रके समान सदैव रूपान्तर होता जाताहै॥ ३२॥ ३३॥

व्यानेनरसधातुर्हिविक्षेपोचितकर्मणा। युगपत्सर्वतोऽजस्रंदेहेविक्षिप्यते सदा। क्षिप्यमाणस्तुवैगुण्याद्रसःसज्जतियत्रसः॥३४॥ करोतिविकृतिंश्चात्रखेवर्षमिवतोयदः। दोषाणामपिचैवंस्यादेकदेशप्रकोपणम्॥ ३५॥

संपूर्ण शरीरमें संचार करनेवाली व्यान वायुका विक्षेप करना ही कर्म है उससे रस एकसाथ संपूर्ण शरीरमें विक्षिप्त (फेंका हुआ) होताहै। वह रस इस प्रकार व्यानवायु द्वारा फेंकाहुआ जिस स्थानमें इकट्ठा होजाताहै उसी स्थानमें विकारभावको प्राप्त होजाताहै। जैसे आकाशमें मेघ इकट्ठे होकर वृष्टि करनेलगतेहैं उसी प्रकार दोष भी इकट्ठे होनसे उसी स्थानमें कुपित होजाते हैं॥ ३४॥ ३५॥

जठराग्निकी प्रधानता।

इति भौतिकधात्वन्नपक्तॄणांकर्मभाषितम्। अन्नस्यपक्तासर्वेषांप-

कृणामधिकोमतः ॥ ३६ ॥ तन्मूलास्तेहितद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः । तस्मात्तंविधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥ ३७ ॥ पालयेत्प्रयतस्तस्यस्थितौह्यायुर्बलस्थितिः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार संपूर्ण भौतिक धातु और अन्नके परिपाक करनेवाली अग्नियोंके कर्म वर्णन किये गये हैं । उन सब प्रकारकी पाचाग्नियोंमें अन्नका परिपाक करनेवाली अग्नि प्रधान मानी जातीहै । क्योंकि पाचकाग्नि ही और संपूर्ण अग्नियोंका मूल है । पाचकाग्निकी वृद्धि और क्षयसे अन्य रंजकादि अग्नियोंका भी वृद्धि और क्षय होताहै । इसलिये जठराग्नियोंको ही अनेक प्रकारके हित अन्न पान रूपी इंधनोंसे निरन्तर पालन करना चाहिये । पाचकाग्निके ठीक रहनेसे ही वायु और बल रह- सकतेहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

योहिभुङ्क्तेविधिंमुक्त्वाग्रहणीदोषजान्गदान् ।
सलौल्याल्लभतेशीघ्रंवक्ष्यन्तेऽतःपरन्तुये ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य विधिको छोडकर चपलता अथवा लोभके वश भोजन करतेहैं उन्हीं मनुष्योंकी ग्रहणी दोषसे उत्पन्न हुए रोग शीघ्र प्राप्त होतेहैं । अब उन रोगोंका वर्णन करतेहैं ॥ ३९ ॥

जठराग्नि दूषित होनेका हेतु ।

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात् । असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् । विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्व्याधिकर्षणात् ॥ ४० ॥ देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्चविधारणात् । दुष्यत्यग्निः सदुष्टोऽन्नंनतत्पचतिलघ्वपि ॥ ४१ ॥

आहार न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अत्यंत भोजन अथवा विषम भोजनके सेवनसे, असात्म्य, भारी, शीतल, अतिरूक्ष और विष आदिकोंसे दूषित भोजन करनेसे स्नेहन, वमन, विरेचन आदिकोंका अतियोग अथवा मिथ्यायोग होनेसे, रोगादिकोंसे, शरीरके कृश होनेसे, देश, काल और ऋतुके विपरीत भावसे, और मलमूत्रादि वेगोंके धारणसे जठराग्नि दूषित होजातीहै । वह दूषित हुई अग्नि हल्के अन्नका भी परिपाक नही कर सकती ॥ ४० ॥ ४१ ॥

अजीर्णके लक्षण ।

अपच्यमानंशुक्तत्वंयात्यन्नंविषताञ्चतत् । तस्यालिङ्गमजीर्णस्य विष्टम्भोऽङ्गञ्चसीदति ॥ ४२ ॥ शिरसोरुक्चमूर्च्छाचभ्रमःपृष्ठक-

टिग्रहः । जृम्भाङ्गमर्दस्तृष्णाचज्वरश्छर्दिःप्रवाहणम् ॥ ४३ ॥
अरोचकोऽविपाकश्चघोरमन्नविषश्चतत् ॥ ४४ ॥

अन्नका परिपाक न होनेसे वह अन्न अम्लताको प्राप्त होकर विषके समान हानिकारक होजाताहै । तब उस अजीर्णके यह लक्षण होतेहैं । जैसे विष्टम्भ, अंगोंमें शिथिलता, मस्तक पीडा, मूर्च्छा, भ्रम, पीठ और कमरमें पीडा, जँभाई, अंगडाई, प्यास, ज्वर, वमन, प्रवाहन, अरुचि और अन्नका अविपाक यह अजीर्ण अन्न विषके समान घोर उपद्रवोंको करताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

दोषसंसृष्ट अजीर्णसे रोग ।

संसृज्यमानंपित्तेनदाहंतृष्णांमुखामयान् । जनयत्यम्लपित्तंचपित्तजांश्चापरान्गदान् । यक्ष्मपीनसमेहादीन्कफजान्कफसङ्गतः॥४५॥
करोतिवातसंसृष्टंवातजांश्चगदान्बहून् । मूत्ररोगांश्चमूत्रस्थंकुक्षिरोगाञ्छकृद्गतम् ॥ ४६ ॥ रसादिभिश्चसंसृष्टंकुर्य्याद्रोगान्रसादिजान् ॥ ४७ ॥

वह अजीर्ण अन्न पित्तसे मिलकर दाह, प्यास, मुखरोग, अम्लपित्त तथा अन्न पित्तजनित विकारोंको उत्पन्न करताहै । वही विषरूप अजीर्ण अन्न कफके साथ मिलनेसे कफजनित राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय और प्रमेह आदिकोंको उत्पन्न करताहै । यदि वह वातके साथ मिलजाय तो वातजनित अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै । तथा वह अजीर्ण अन्नरूपी विष मूत्रस्थ होनेसे मूत्ररोग होताहै और मलगत होनेसे कुक्षिरोगोंको उत्पन्न करताहै । एवं रसादिके साथ मिलनेसे रसादिके रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

अग्निभेदसे परिपाक ।

विषमोधातुवैषम्यंकरोतिविषमंपचन् । तीक्ष्णोमन्देन्धनोधातून्विशोषयतिपावकः । युक्तंभुक्तवतोयुक्तोधातुसाम्यंसमंपचन् ॥ ४८ ॥
दुर्बलोविदहत्यन्नंतद्यात्यूर्द्ध्वमधोऽपिवा ॥ ४९ ॥

जठराग्नि विषम होनेसे अन्नका भी विषम परिपाक करके धातुओंमें विषमताको प्रकट करतीहै । और वही अग्नि अधिक चैतन्य होनेसे अल्प आहाररूपी ईंधन मिलनेपर उसको दग्धकर धातुओंका शोधन करतीहै । यदि ठीक चैतन्य अग्निमें उचित आहार मिले तो वह ठीक पाककर धातुओंमें साम्यताको पैदा करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो वह आहारको विदग्ध पाक करतीहै और वह विदग्ध

(अधपका) अन्न वमन द्वारा ऊपरके मार्गसे अथवा विरेचन द्वारा नीचेके मार्गसे निकलने लगताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ग्रहणी संप्राप्ति ।

अधश्चपक्कमामंवाप्रवृत्तंग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्य विदह्यते । अतिसृष्टंविबद्धंवाद्रवंतदुपवेश्यते ॥ ५० ॥

उनमें जो अपक्क अथवा पक्व अन्न अधोमार्गसे होकर निकले उसको ग्रहणीरोग कहतेहैं । ग्रहणी रोगमें प्रायः सब प्रकारके अन्न विदाही होजातेहैं । वही विबद्ध अन्न विबद्ध अथवा पतला होकर अत्यंत निकलने लगताहै ॥ ५० ॥

ग्रहणीके उपद्रव ।

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः । शूनपादकरःसास्थिपर्व- रुक्छर्दनंज्वरः॥लोहामगन्धिस्तिक्ताम्लउद्गारश्चास्यजायते॥ ५१ ॥

प्यास, अरुचि, मुखकी विरसता, लारका बहना, तमकश्वास, हाथ पांवमें सूजन, अस्थिभेद, पर्वभेद, वमन, ज्वर, लोहगंध, आमगंध, खट्टी और कडवी डकार यह ग्रहणीरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ ५१ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपन्तुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ५२ ॥

प्यास, आलस्य, बलक्षय, अन्नका विदाही परिपाक तथा अन्नका देरमें पाक होना और शरीरका भारी होना यह ग्रहणी रोगके पूर्वरूप है ॥ ५२ ॥

ग्रहणीकी निरुक्ति ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता ॥ ५३ ॥ नाभेरुपरिसा- ह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता । अपक्कंधारयत्यन्नंपक्कंसृजतिपार्श्वतः । दुर्बलाग्न्यबलादुष्टादाममेवविमुञ्चति ॥ ५४ ॥

जठराग्निका अधिष्ठान ग्रहणी है । अन्नको ग्रहण करनेसे उसको ग्रहणी कहतेहैं । नाभिके ऊपर इसका स्थान है । अग्निबल ही इसका उपस्तम्भ और पोषण करताहै । यह कच्चे अन्नको धारण करतीहै, और पकेहुए अन्नको पार्श्वकी ओर त्याग करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो ग्रहणी भी दुर्बल होतीहै । जठराग्निके दुर्बल अथवा दूषित होनेसे ही ग्रहणी विना पके अन्नको त्याग करने लगतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ग्रहणीके भेद।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वाद्ग्रहणीदोषउच्यते ।
हेतुंलिङ्गंचिकित्सांश्चशृणुतस्यपृथक्पृथक् ॥ ५५ ॥

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे ग्रहणीरोग चार प्रकारका होताहै । अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको अलग २ श्रवण करो ॥ ५५ ॥

वातज ग्रहणीके हेतु।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः ॥ ५६ ॥ प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः । करोतिकुपितोमन्दमग्निंसंछाद्य मारुतः ॥ ५७ ॥

चरपरे, कडुवे, कसैले, अत्यंतरूक्ष और अत्यंत शीतल पदार्थोंके निरन्तर खानेसे, अल्प भोजन करनेसे अथवा भोजन न करनेसे अधिक मार्ग चलनेसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे अधिक मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर जठराग्निको आच्छादन कर मंद करदेताहै ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

वातज ग्रहणीके लक्षण।

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंशुक्तपाकंखरांगता । कण्ठास्यशोषःक्षुत्तृष्णातिमिरंकर्णयोःस्वनः ॥ ५८ ॥ पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजोऽभीक्ष्णंविषूचिका । हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यंवैरस्यंपरिकर्त्तिका ॥ ५९ ॥ गृद्धिः सर्वरसानाञ्चमनसःसदनंतथा । जीर्णेजीर्य्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच ॥ ६० ॥ सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्कीचमानवः । चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कंतन्वामंशब्दफेनवत् ॥ ६१ ॥ पुनःपुनःसृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥ ६२ ॥

फिर उस मनुष्यका भोजन किया अन्न बडी कठिनतासे परिपाक हो तथा अम्ल परिपाक हो और अंगोंमें कठोरता, कण्ठ और मुखका शोष, वायुकी तृषा, वायुकी क्षुधा, नेत्रोंके आगे अंधकार, कानोंमें शब्द होना, पार्श्वपीडा ऊरू, वंक्षण और ग्रीवामें निरन्तर पीडा, विशूचिका, हृच्छूल, कृशता, दुर्बलता, मुखकी विरसता परिकर्तिका, संपूर्ण रसोंको ग्रहण करनेकी अभिलाषा, मनमें उदासी, अन्नके जीर्ण होनेपर अफारा, भोजन करतेही स्वस्थता प्रतीत होना, रोगीको वातगुल्मसा प्रतीत होना, हृद्रोग और प्लीहाके समान लक्षण प्रतीत होना तथा विलंब और कष्टके साथ

(अधपका) अन्न वमन द्वारा ऊपरके मार्गसे अथवा विरेचन द्वारा नीचेके मार्गसे निकलने लगताहै ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ग्रहणी संप्राप्ति ।

अधश्चपक्वमामंवाप्रवृत्तंग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्य विदह्यते । अतिसृष्टंविवद्धंवाद्रवंतदुपवेश्यते ॥ ५० ॥

उनमें जो अपक्क अथवा पक्च अन्न अधोमार्गसे होकर निकले उसको ग्रहणीरोग कहतेहैं । ग्रहणी रोगमें प्रायः सब प्रकारके अन्न विदाही होजातेहैं । वही विवद्ध अन्न विवद्ध अथवा पतला होकर अत्यंत निकलने लगताहै ॥ ५० ॥

ग्रहणीके उपद्रव ।

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः । शूनपादकरःसास्थिपर्व-रुक्छर्दनंज्वरः॥लोहामगन्धिस्तिक्ताम्लउद्गारश्चास्यजायते॥ ५१ ॥

प्यास, अरुचि, मुखकी विरसता, लारका वहना, तमकश्वास, हाथ पांवमें सूजन, अस्थिभेद, पर्वभेद, वमन, ज्वर, लोहगंध, आमगंध, खट्टी और कडवी डकार यह ग्रहणीरोगके उपद्रव होतेहैं ॥ ५१ ॥

ग्रहणीके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपन्तुतस्येदंतृष्णालस्यंवलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ५२ ॥

प्यास, आलस्य, बलक्षय, अन्नका विदाही परिपाक तथा अन्नका देरमें पाक होना और शरीरका भारी होना यह ग्रहणी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ ५२ ॥

ग्रहणीकी निरुक्ति ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता ॥ ५३ ॥ नाभेरुपरिसा-ह्यग्निवलोपस्तम्भबृंहिता । अपक्वंधारयत्यन्नंपक्वंसृजतिपार्श्वतः । दुर्बलाग्न्यवलाहुष्टादाममेवविसृजति ॥ ५४ ॥

जठराग्निका अधिष्ठान ग्रहणी है । अन्नको ग्रहण करनेसे उसको ग्रहणी कहतेहैं । नाभिके ऊपर इसका स्थान है । अग्निबल ही इसका उपस्तम्भ और पोषण करताहै । यह कच्चे अन्नको धारण करतीहै, और पकेहुए अन्नको पार्श्वकी ओर त्याग करतीहै । यदि जठराग्नि दुर्बल हो तो ग्रहणी भी दुर्बल होतीहै । जठराग्निके दुर्बल अथवा दूषित होनेसे ही ग्रहणी विना पके अन्नको त्याग करने लगतीहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

विमानस्थानके रोगानीक अध्यायमें जो चार प्रकारकी अग्नि कही हैं उनमें समानाग्निको छोडकर बाकी तीन प्रकारकी अग्नि ग्रहणीदोषमें ही सम्मिलित जाननी॥६९॥

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे।
त्रिदोषंनिर्दिशेत्तेषांभेषजंशृणवतःपरम्॥ ७० ॥

वातादि तीनों दोषोंके हेतु और लक्षण जिसमें सब हों उसको त्रिदोषज ग्रहणी रोग जानना। अब ग्रहणीरोगकी चिकित्साको श्रवणकरो ॥ ७० ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितंदोषंविदग्धाहारमूर्च्छितम्। सविष्टम्भप्रसेकार्त्तिविदाहारुचिगौरवम्। आमलिंगान्वितंदृष्ट्वासुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत्॥ ॥ ७१ ॥ फलानांवाकषायेणपिप्पलीसर्षपैस्तथा। लीनंपक्वाशयस्थंवाप्यामंस्राव्यंसदीपनैः ॥ ७२ ॥

आहार विदग्ध होनेसे दोष मूर्च्छित होकर ग्रहणीके आश्रित होजातेहैं। तब विष्टम्भ, मुखसे लार बहना, उदरपीडा, विदाह, अरुचि, भारीपन और अन्य भी आमके लक्षण प्रतीत होने लगतेहैं उस समय रोगीको सुखोष्ण जल पिलाकर अथवा मैनफल आदिका क्वाथ पिलाकर या पीपल और सरसोंका कल्क पिलाकर उत्क्लेशित हुए अजीर्ण अन्नको वमन द्वारा निकालदेना चाहिये। यदि दोष द्रवीभूत होकर पक्वाशयमें पहुंच, उद्वेग करें तो दीपन विरेचन द्रव्योंसे निकाल देना चाहिये॥७१॥७२॥

शरीरानुगतेसामेरसेलङ्घनपाचनम्। विशुद्धामाशयायास्मैपञ्चकोलादिभिर्युतम् ॥ ७३ ॥ दद्यात्पेयादिलघ्वन्नंपुनर्योगांश्चदीपनान् ॥ ७४ ॥

यदि ग्रहणीरोगमें आमरस शरीरमें फैलगयाहो तो लंघन करावे और पाचनद्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये। जब आमाशय शुद्ध होजाय तो पंचकोलादि दीपन पाचन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेयादि हलका अन्न भोजन करावे और उसके अनन्तर भी दीपन औषधियोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वातजग्रहणीकी चि०।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम्। दीपनीययुतंसर्पिःपाययेताल्पशोभिषक्। किंचित्सन्धुक्षितेत्वग्नौसक्तविण्मूत्रमारुतम् ॥७५॥

आम तथा शब्दके साथ झागदार मल वार वार आना, खांसी और श्वास होना यह वायुकी ग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

पित्तज ग्रहणीरोगके हेतु और लक्षण।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैःपित्तमुल्बणम् । अग्निमाप्लावयद्धन्तिजलंतप्तमिवानलम् । सोऽजीर्णनीलपीताभंपीताभःसार्य्यतेद्रवम् ॥ ६३ ॥ पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृषार्दितः ॥ ६४ ॥

चरपरे, अजीर्णकारी, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंके सेवनसे पित्त वृद्धिको प्राप्त होकर जठराग्निको इस प्रकार नष्ट कर देताहै जैसे गरम जल अग्निको-बुझा देताहै। तव अग्निके नष्ट होनेपर रोगीको कच्चा, नीला, पीला और पीले जलके समान पतला दस्त आनेलगताहै। उससे दुर्गंध आतीहै और रोगी खट्टी डकार, हृदय और कण्ठमें दाह, अरुचि तथा प्यास इनसे व्याकुल होताहै यह पित्तकी ग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

कफज ग्रहणीके हेतु लक्षण ।

गुर्वतिस्निग्धशीतान्नभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्यचस्वप्नाद्धन्त्यग्निंकुपितःकफः । तस्यान्नंपच्यतेदुःखंहृल्लासच्छर्द्यरोचकाः ॥ ॥ ६५ ॥ आस्योपदेहमाधुर्य्यकासष्ठीवनपीनसाः। हृदयंमन्यतेस्त्यानमुदरंस्तिमितंगुरु ॥ ६६ ॥ दुष्टोमधुरउद्गारःसदनंस्त्रीष्वहर्षणम् । भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ॥ ६७ ॥ अकृशस्यापिदौर्वल्यमालस्यश्चकफात्मके ॥ ६८ ॥

अति स्निग्ध और शीतल अन्नका सेवन करनेसे, अत्यंत भोजन करनेसे, भोजन करते ही तत्काल सोजानेसे कफ कुपित होकर जठराग्निको नष्ट करदेताहै । तव उसके अन्नका कठिनतासे परिपाक होना, हल्लास, वमन, अरुचि, मुखका लिपासा रहना, मुखका स्वाद मीठा होना, खांसी, कफका थूंकना, पीनस, हृदयका जकडासा होना, उदरका स्तिमित और भारी होना, मधुरतायुक्त दुष्ट उद्गार आना, अंगोंका सोना, स्त्रीसंगमें अनिच्छा होना और फटाहुआ आम और कफसे युक्त भारी मल उतरना, रोगीका शरीर कृश न होना, परन्तु दुर्वलता और आलस्य अधिक होना यह कफकी संग्रहणीके लक्षण हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

यश्चाग्निःपूर्वमुद्दिष्टोरोगानीकेचतुर्विधः ।
तस्यापिग्रहणीदोषंसमवर्जंप्रचक्ष्महे ॥ ६९ ॥

विमानस्थानके रोगानीक अध्यायमें जो चार प्रकारकी अग्नि कही हैं उनमें समानाग्निको छोडकर बाकी तीन प्रकारकी अग्नि ग्रहणीदोषमें ही सम्मिलित जाननी॥६९॥

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे।
त्रिदोषंनिर्दिशेत्तेषांभेषजंशृणुवतःपरम्॥ ७० ॥

वातादि तीनो दोषोंके हेतु और लक्षण जिसमें सब हों उसको त्रिदोषज ग्रहणी रोग जानना। अब ग्रहणीरोगकी चिकित्साको श्रवणकरो ॥ ७० ॥

ग्रहणीकी चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितंदोषंविदग्धाहारमूर्च्छितम्। सविष्टम्भप्रसेकार्त्तिविदाहारुचिगौरवम्। आमलिंगान्वितंदृष्ट्वासुखोष्णेनाम्बुनोद्धरेत्॥ ॥ ७१ ॥ फलानांवाकषायेणपिप्पलीसर्षपैस्तथा। लीनंपक्वाशयस्थंवाप्यामंस्राव्यंसदीपनैः ॥ ७२ ॥

आहार विदग्ध होनेसे दोष मूर्च्छित होकर ग्रहणीके आश्रित होजातेहैं। तब विष्टम्भ, मुखसे लार बहना, उदरपीडा, विदाह, अरुचि, भारीपन और अन्य भी आमके लक्षण प्रतीत होने लगतेहैं उस समय रोगीको सुखोष्ण जल पिलाकर अथवा मैनफल आदिका क्वाथ पिलाकर या पीपल और सरसोंका कल्क पिलाकर उत्क्लेशित हुए अजीर्ण अन्नको वमन द्वारा निकालदेना चाहिये। यदि दोष द्रवीभूत होकर पक्वाशयमे पहुंच, उद्वेग करें तो दीपन विरेचन द्रव्योंसे निकाल देना चाहिये॥७१॥७२॥

शरीरानुगतेसामेरसेलङ्घनपाचनम्। विशुद्धामाशयायास्मैपञ्चकोलादिभिर्युतम् ॥ ७३ ॥ दद्यात्पेयादिलघ्वन्नंपुनर्योगांश्चदीपनान्॥ ७४ ॥

यदि ग्रहणीरोगमें आमरस शरीरमें फैलगयाहो तो लंघन करावे और पाचनद्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये। जब आमाशय शुद्ध होजाय तो पंचकोलादि दीपन पाचन द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई पेयादि हलका अन्न भोजन करावे और उसके अनन्तर भी दीपन औषधियोंका प्रयोग करे॥ ७३ ॥ ७४ ॥

वातजग्रहणीकी चि०।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम्। दीपनीयसुतंसर्पिःपाययेताल्पशोभिषक्। किञ्चित्सन्धुक्षितेत्वग्नौसक्तविण्मूत्रमारुतम् ॥७५॥

द्वित्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरूहयेत् । ततएरण्डतैलेनसर्पिषातैलकेनवा । सक्षारेणानिलेशान्तेस्रस्तदोषंविरेचयेत् ॥ ७६ ॥

वातज ग्रहणीमें आमदोषका परिपाक होजानेपर दीपन औषधियोंयुक्त घृतको वैद्य थोडा २ कई वार पिलावे जब देखे कि अग्नि कुछ चैतन्य होगई और मल, मूत्र तथा अधोवातकी रुकावट है तो रोगीको दो तीन दिन स्नेहाभ्यक्त (शरीरपर तेलयुक्त) कर अथवा स्वेदित करके अथवा स्नेहन और स्वेदन दोनों करके तीन दिनके अनंतर निरूहण करे। जब निरूहणसे दोष अपने स्थानसे छूट जाय तब क्षार मिलाकर एरंडतैल पिलावे। अथवा रेचक घृत पिलावे या रेचक द्रव्योंसे सिद्धकिया तैल पिलाकर विरेचन करावे ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

शुद्धंरूक्षाशयंबद्धवर्चसश्चानुवासयेत् । दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेनमात्रया ॥ ७७ ॥ निरूढश्चविरिक्तश्चसम्यक्चैवानुवासितः । लघ्वन्नप्रतिसंभुक्तःसर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ ७८ ॥

यदि इस प्रकार संशोधन करनेसे पक्वाशयमें रूक्षता होकर मल बद्ध होजाय तो दीपनीय अम्ल और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेल द्वारा अनुवासनवस्ति करे इस प्रकार अच्छीरीतिसे निरूहण, विरेचन और अनुवासन होनेके अनंतर हलका भोजन करावे और नीचे लिखे घृतोंका अभ्यास करावे ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

दशमूलादिघृत ।

द्वेपञ्चमूलेसरलंदेवदारुसनागरम्।पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम्॥७९॥शणवीजंयवान्कोलान्कुलत्थान्सुरभींस्तथा।पाचयेदारनालेनदध्नासौवीरकेणवा॥८०॥ चतुर्भागावशेषेणपचेत्तेनघृताढकम् । स्वर्जिकायावशूकाख्यौक्षारौदत्त्वाच्चयुक्तितः ॥८१॥ सैन्धवौद्भिदसामुद्रविडानांरोमकस्यच । ससौवर्चलपाक्यानांभागान्द्विपलिकान्पृथक् ॥८२॥ विनीयचूर्णितान्सिद्धात्ततोद्वेद्वेपलेपिवेत् । करोत्यग्निबलंवर्णंवातघ्नंभुक्तपाचनम् ॥ ८३ ॥

लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, सरल, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चित्रक, गजपीपल, सणके वीज, जव, वेर, कुलथी और रास्ना, इन वाईस २२ औषधियोंको मिलाकर ८ आठ सेर लेवे फिर कूटकर चारगुणी कांजी, दही और सौवीर मिलाकर पकावे पकते २ चौथा भाग वाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस क्वाथमें

चार सेर घृत और जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, उद्भिदलवण, सामुद्रलवण, विडलवण, रोमकलवण, संचरलवण और वाक्यलवण यह प्रत्येक आठ २ तोला मिलावे सबको मिलाकर एकत्रकर पकावे जब पकते २ घृतमात्र शेप रहे तो उतार कर छान लेवे इस घृतको जठराग्निका बल विचारकर दो पल अथवा शरीरानुकूल सेवनकरे तो अग्निबलकी वृद्धि, वर्णकी वृद्धि और वायुका नाश तथा आहारका उत्तम परिपाक होताहै ॥ ७९-८३ ॥

त्र्यूषणादिघृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्केबिल्वमात्रेगुडात्पले । सर्पिषोऽष्टपलंपक्त्वामात्रांमन्दानलःपिबेत् ॥ ८४ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आँवले, प्रत्येक डेढ १॥ तोला, लेकर कल्क करे । गुड पांच तोला, घृत ४० तोला, पानी आठ सेर सबको विधिवत् मिलाकर पकावे घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानलेवे इस घृतके सेवनसे मंदाग्नि दूर होकर पाचन शक्ति बलवती होतीहै ॥ ८४ ॥

पञ्चमूलादि घृत ।

पञ्चमूलाभयाव्योपविडङ्गशटिभिर्घृतम् । शुक्तेनमातुलुङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच ॥ ८५ ॥ शुष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्य च । तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ॥ ८६ ॥ काञ्जिकेनच-तत्पक्वमग्निदीप्तिकरंपरम् । शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ॥ ८७ ॥ सबीजपूरकरसंसिद्धंवापाययेद्घृतम् । सिद्धमभ्यञ्जनार्थञ्चतैलमेतैः प्रयोजयेत् ॥ ८८ ॥

बेलगिरि, अरणी, सोनापाठा, कुंभेर, पाडला, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग और कचूर, इन सबका कल्क एक सेर, घी चार सेर, बिजौरेका रस चार सेर अदरखका रस चार सेर, सूखीमूली, बेर, नेत्रबाला, चूका और अनार इन सबका क्वाथ चार सेर, तक्र चार सेर, तथा दहीका जल, सुरामण्ड, सौवीरक और तुषोदक यह प्रत्येक एक २ सेर लेवे इन सबको मिलाकर विधिवत् पकावें घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छान लेवे यह घृत अत्यंत अग्निवर्द्धक है तथा शूल, गुल्म, उदररोग, खांसी, श्वास और वात कफको नष्ट करनेवालाहै ! अथवा उपरोक्त संपूर्ण द्रव्योंके कल्क और केवल बिजौरेके रससे सिद्ध किया घृत भी इन्हीं गुणोंको करताहै । और इन्हीं पंचमूलादिः द्रव्योंसे सिद्ध किया तेल मालिशके लिये परम हितकारी है ॥ ८५-८८ ॥

एतेषामौषधानांवापिबेच्चूर्णंसुखाम्बुना । वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते । दद्याच्चूर्णंपाचनार्थमग्निसन्दीपनंपरम् ॥ ८९ ॥

अथवा उपरोक्त पंचमूलादिघृतकी औषधियोंका चूर्ण कर सुहाते गरम जलसे सेवनकरे तो कफावृत वात, आमयुक्त कफ, और वायुसे उद्धत हुआ कफ दूर होतेहैं और इस चूर्णको अग्निसंदीपन और पाचनके लिये भी देना चाहिये ॥ ८९ ॥

साम और निराम मलकी परीक्षा ।

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विट्पक्वात्तूत्प्लवतेजले । विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ ९० ॥ परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम् । विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥ ९१ ॥

आमयुक्त (कच्चा) मल होय तो भारी होनेसे जलमें डूब जाताहै और पक्व मल जलमें डालनेसे ऊपर तिर आताहै । परंतु पक्व मल भी अत्यंत पतला, अतिगाढा, शीतल और कफदूषित होनेसे जलमें डूब जाताहै इस प्रकार साम और निराम तथा दूषित मलकी परीक्षा करके विधिपूर्वक पाचन द्रव्योंसे अथवा अन्य प्रकार चिकित्सा करना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

चित्रकादि गुटिका ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंद्वौक्षारौलवणानिच । व्योषंहिंग्वजमोदाश्चचव्यञ्चैकत्रचूर्णयेत् ॥ ९२ ॥ गुडिकामातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा । कृताविपाचयन्त्यामंदीपयन्त्याशुचानलम् ॥ ९३ ॥

चित्रक, पीपलामूल, जवाखार, सज्जीखार, पाचों लवण, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य, इन सबको एकत्र कर चूर्ण करे । इस चूर्णको बिजौरेके रसमें अथवा खट्टे अनारके रसमें खरल करके एक २ मासेकी गोली बनावे इन गोलियोंको सेवन करनेसे आमका पाचन होकर अग्नि चैतन्य होतीहै ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नागरातिविषामुस्तक्काथःस्यादामपाचनः । मुस्तान्तकल्कःपथ्यावानागरञ्चोष्णवारिणा ॥ ९४ ॥

सोंठ, अतीस और नागरमोथेका क्वाथ बनाकर पीनेसे आमका पाचन होताहै । अथवा इन तीनों द्रव्योंका कल्क गरम जलके साथ पीनेसे आम पचजातीहै एवं हरडका चूर्ण अथवा सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ लेनेसे भी आम पचजातीहै ॥ ९४ ॥

अन्य पाचनयोग।

देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः । वारुण्यामासुतास्तोयेकोष्णेवालवणंपिवेत् ॥ ९५ ॥ पिवरसपरिकर्त्तानेमलेवादाडिमाम्बुना ॥ ९६ ॥

देवदारु, वच, नागरमोथे, सोंठ, अतीस, और हरड इनको वारुणीमद्यमें भिगो- देवे। जब इनका सार मद्य ग्रहण कर ले तो इसको छानकर पीवे इससे आम पचकर निकल जातीहै। अथवा इन्हीं देवदारु आदि औषधोंके चूर्णको थोडा सेंधानमक डाल गरम जलके साथ सेवन करनेसे भी आम पचकर नष्ट होजातीहै और अग्नि चैतन्य होतीहै यदि आमके साथ परिकर्तिका अर्थात् कतरनेकीसी पीडा (पेचिश) होतीहो तो देवदार्वादि चूर्णको अनारके रसके साथ पीवे ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

विडेनलवणंपिष्टंविल्वंचित्रकनागरम्।
वर्चस्यामेसशूलेचपिवेद्वादाडिमाम्बुना ॥ ९७ ॥

वेलगिरि, चित्रक, सोंठ और विडनमक मिलाकर अनारके रस अथवा अनारके छिलकेके क्वाथके साथ पीवे तो शूलके साथ और आमयुक्त मल आनां, आम पचकर शान्त होजाताहै ॥ ९७ ॥

सामेचासकफेवातेकोष्ठशूलकरेपिवेत्।
कलिंगहिङ्ग्वतिविषावचासौवर्चलाभयाः ॥ ९८ ॥

यदि आम, कफ और वायुसे पेटमें पीडा होतीहो तो इन्द्रयव, हींग, अतीश, वच, संचरनमक और हरडेका चूर्ण गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९८ ॥

छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषुपिवेदुष्णेनवारिणा।
पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम् ॥ ९९ ॥

यदि छर्दी, ववासीर और गांठोंमें पीडा हो तो हरड, संचरनमक, जीरा और काली मिर्चका चूर्णकर गरम जलके साथ पिलावे ॥ ९९ ॥

अभयादि चूर्ण।

अभयांपिप्पलीमूलंवचांकटुकरोहिणीम् । पाठांवत्सकवीजानिचित्रकंविश्वभेषजम् ॥ १०० ॥ पिवेन्निष्काथ्यचूर्णानिकृत्वाकोष्णेन वारिणा । पित्तश्लेष्माभिभूतायांग्रहण्यांशूलनुद्धितम् ॥ १०१ ॥

हरड, पीपरामूल, वच, कुटकी, पाठा, इन्द्रयव, चित्रक, सोंठ इनका क्वाथ

अथवा इनका चूर्णकर गरम जलके साथ पीवे तो पित्त और कफसे अभिभृत ग्रहणी-रोगका शूल दूर होताहै ॥ १०० ॥ १०१ ॥

सामेसातिविषाव्योषलवणक्षारहिङ्गुवत् ।
निःक्वाथ्यपाययेच्चूर्णंकृत्वावाकोष्णवारिणा ॥ १०२ ॥

आमयुक्त पित्त और कफसे व्याप्त हुए ग्रहणीरोगमें त्रिकुटा, अतीस, संधानमक, जवाखार और हींग इनसबका चूर्ण क्वाथ करके पीवे अथवा चूर्णको फांककर ऊपरसे गरम जल पीवे तो आम पचकर अग्नि चैतन्य हो ॥ १०२ ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

पिप्पलींनागरंपाठांशारिवांबृहतीद्वयम् । चित्रकंकौटजंबीजंलव-णान्यथपञ्चच ॥१०३॥ तच्चूर्णंसयवक्षारंदध्युष्णाम्बुसुरादिभिः । पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थंकोष्ठवातहरंनरः ॥ १०४ ॥

पीपल, सोंठ, पाटला, शारिवा, बडी कटेली, छोटी कटेली, चित्रक इन्द्रयव । पांचों लवण और जवाखार इनके चूर्णको दही अथवा गरम जल या सुरा आदिके साथ पीवे तो जठराग्निकी वृद्धि हो और कोष्ठकी वायु शान्त हो ॥ १०३ ॥१०४ ॥

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चकाम्बष्ठावृक्षाम्लाःकुडवाःपृथक् । पलानिदशचाम्ल-स्यवेतसस्यपलार्द्धिकम् ॥ १०५ ॥ सौवर्चलंविडंपाक्यंयवक्षारःस-सैन्धवः । शटीपुष्करमूलानिहिङ्गुहिङ्गुशिराटिका ॥ १०६ ॥ तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मंचूर्णंकृत्वाप्रयोजयेत् । हितंवाताभिभूतायांग्र-हण्यामरुचौतथा ॥ १०७ ॥

मिर्च, काला जीरा, पाटला और इमली यह प्रत्येक एक एक पाव, अम्लवेत ४०तोला, संचरनमक, विडनमक, पांसुनमक, जवाखार, सेंधानमक, कचूर, पोहकर मूल, हींग, हिंगुपत्रिका यह सब दो दो तोला लेवे । इन सबको बारीक चूर्णकर लेवे । यह चूर्ण वातजग्रहणी और अरुचिको नष्ट करताहै ॥ १०५ ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

भोजनमें डालनेका चूर्ण ।

चतुर्णांप्रस्थमम्लानांत्र्यूषणाच्चपलत्रयम् । लवणानाञ्चचत्वारिशर्क-रायाःपलाष्टकम् ॥१०८॥ संचूर्ण्यशाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् । कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्ड्वामयगुल्मनुत् ॥ १०९ ॥

चार प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ, पीपल, मिर्च, सोंठ तीन पल, विड नमक, संचरनमक, सेंधानमक, और उद्भिद नमक यह चारों नमक ४ पल। मिसरी ८ पल इन सब चीजोंको एकत्र मिलाकर चूर्णकर किसी पात्रमें रक्खे। इसमेंसे थोडासा चूर्ण ले शाक, दाल, अन्न, राग आदिमें मिलाकर सेवन करनेसे खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृदयरोग, पाण्डुरोग और गुल्मरोग दूर होताहै ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

चव्यादि चूर्णयुक्त पंचविध यवागू।

चव्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योषचित्रकम्। कपित्थंबिल्वमम्ब-ष्ठांशाल्मलंहस्तिपिप्पलीम् ॥ ११० ॥ शिलोद्भेदंतथाजाजींपिष्ट्वाव-दरभागिकम्। परिभर्ज्यघृतेदध्नायवागूंसाधयेद्भिषक् ॥ १११ ॥ रसैःकपित्थचुक्रीकावृक्षाम्लैर्दाडिमस्यच। सर्वातिसारमन्दाग्निगु-ल्मार्शःप्लीहनाशिनी ॥ ११२ ॥

चव्य, दालचीनी, पीपलामूल, धावेके फूल, त्रिकुटा, चित्रक, कैथका गूदा, वेल-गिरि,पाठला, गजपीपल, मोचरस, शिलापुष्प और जीरा इन सबको पीसकर चूर्ण करे। पहिले चूकेके रससे अथवा (दहीसे या) इमलीके रससे अथवा अनारके रसकी खटाईसे अम्ल कीहुई यवागूको घीमें छोंककर उसमें १ तोला उपरोक्त चव्यादिचूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे सब प्रकारके अतिसार, ग्रहणीरोग, अर्शरोग और प्लीहा, यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

भोजनार्थ यूषादि।

पञ्चकोलकयूषश्चमूलकानाञ्चसोषणः। स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजा-ङ्गलःसंस्कृतोरसः ॥ ११३ ॥ क्रव्यादस्वरसःशस्तोभोजनार्थेसदी-पनः। तक्रारनालमद्यानिपानार्थेऽरिष्टएवच ॥ ११४ ॥

पंचकोलका चूर्ण डालकर सिद्ध किया मूंगका यूष, काली मिर्चयुक्त सूखी मूलीका यूष तक्रकी खटाई या अनारकी खटाईसे अम्ल किया हुआ जंगली जीवोंका मांसरस अथवा मांसाहारी जीवोंका मांसरस भातके साथ खिलावे और पीनेके लिये तक्र, कांजी, मद्य तथा आसवका प्रयोग करना हितकारी है ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

तक्रके गुण।

तक्रन्तुग्रहणीदोषेदीपनग्राहिलाघवात्। श्रेष्ठंमधुरपाकित्वान्नचपि-त्तंप्रकोपयेत् ॥ ११५ ॥ कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफेम-

---

१ इमली, अनार, अमड़ेरा और बिजौरा।

तम्। वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहितत्॥ ११६॥ तस्मा-त्तक्रप्रयोगायेजठराणांतथार्शसाम्। विहिताग्रहणीदोषेसर्वशस्तां-न्प्रयोजयेत्॥ ११७॥

तक्र दीपन, ग्राही और हलका होनेसे ग्रहणी रोगमें हितकारक है। यह मधुर-पाकी होनेसे पित्तको कुपित नहीं होने देता। स्वादु, अम्ल और सान्द्र होनेसे वायुको शान्त करताहै। एवं कषाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होनेसे कफमें भी हितकारक है। वह तक्र ताजा बनाहुआ होनेसे अविदाही होताहै। इसीलिये तक्रको उदररोगोंमें, अर्शरोगमें और ग्रहणीविकारमें सब प्रकार प्रयुक्त करना हितकारक है॥ ११५-११७॥

तक्रारिष्ट।

यमान्यामलकेपथ्यामरिचंत्रिपलांशिकम्। लवणानिपलांशानिपञ्च चैकत्रचूर्णयेत्॥ ११८॥ तक्रकंसासुतंजातंतक्रारिष्टंपिबेन्नरः। दीपनंशोथगुल्मार्शःक्रिमिमेहोदरापहम्॥ ११९॥

अजवायन, ऑवले, हरड और काली मिर्चे यह प्रत्येक तीन तीन पल लेवे। पांचों लवण, एक एक पल लेवे। इन सबको चूर्णकर आठसेर तक्रमें डाल और बन्दकर रख देवे। छः दिनके बाद निकालकर सेवनकरनेसे सूजन, गुल्म, बवासीर, कृमिरोग मेदरोग और उदररोग यह सब दूर होतेहैं। यह तक्रारिष्ट अग्निको दीपन करनेवाला है॥ ११८॥ ११९॥

पित्तज ग्रहणीकी चिकित्सा।

स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकंभिषक्। पित्तंज्ञात्वाविरेकेणनिर्हरेद्वमनेनवा॥ १२०॥ अविदाहिभिरन्नैश्चलघुभिस्तिक्तसंयुतैः। जाङ्गलानांरसैर्यूषैर्मुद्गादीनांखडैरपि॥ १२१॥ दाडिमाम्लैःससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः। तस्याग्निंदीपयेच्चूर्णैःसर्पिर्भिर्वासातिक्तकैः॥ १२२॥

जठराग्निको बुझानेवाला पित्त अपने स्थान (ग्रहणी) में उत्क्लेशित हुआ प्रतीत हो तो विरेचनद्वारा निकाल देना चाहिये। अथवा वमनद्वारा निकाल देवे। फिर अविदाही और हल्के अन्न तथा तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये हुये जांगलजीवोंके मांसरस वा मूंग आदिका यूप दाडिमकी खटाईसे अम्ल करके घृतयुक्तकर सेवन करावे तथा दीपन और संग्राही द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और अग्निसंदीपक चूर्ण और तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत सेवन कराता हुआ अग्निको चैतन्य करे॥ १२०-१२२॥

चंदनादिघृत ।

चन्दनंपद्मकोशीरंपाठांमूर्वांकुटन्नटम् । षड्ग्रन्थाशारिवास्फोतास-सपर्णाटरूषकान् ॥ १२३ ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतना-न् । कटुकरोहिणींमुस्तंनिम्बश्चद्विपलांशिकम् ॥ १२४ ॥ द्रोणेऽपां साधयेत्पादशेषेप्रस्थंघृतात्पचेत् । किराततिक्तेन्द्रयववीरामागधि-कोत्पलैः ॥ १२५ ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंतत्पित्तग्रहणीगदे । तिक्तकं यद्घृतश्चोक्तंकौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥ १२६ ॥

रक्तचंदन, पद्माक, खस, पाठा, मूर्वा, केवटीमोथा, वच, सारिवा, अपराजिता, सप्तपर्ण, अडूसा, पटोल, गुल्लड, पीपल, बड, पिलखन, अंबाडा, आमला, नागरमोथा और नीमकी छाल, ये प्रत्येक दो २ पल लेवे । इनको कूटकर १ द्रोण जलमें पकावे । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । घृत१प्रस्थ लेवे । चिरायता,इन्द्रयव,शालपर्णी, पीपल और नीलोफर यह प्रत्येक दोदोपल लेकर कल्क करे । यह कल्क, क्वाथ, घृत सब मिलाकर घृतपाकविधिसे पकावे । घृतमात्र शेषरहनेपर उतारकर छानले । यह घृत पित्तजग्रहणी रोगकी शान्तिके लिये पान करना चाहिये । तथा कुष्ठाधिकारमें कहाहुआ तिक्तक घृत भी पित्तकी ग्रहणीमें हितकारक है ॥ १२३–१२६ ॥

नागरादिचूर्ण ।

नागरातिविषेमुस्तंधातकींसरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलंबिल्वंपा-ठांकटुकरोहिणीम् ॥ १२७ ॥ पिबेत्समांशंतच्चूर्णंसक्षौद्रंतण्डुला-म्बुना । पैत्तिकेग्रहणीदोषेरक्तंयच्चोपवेश्यते ॥ १२८ ॥ अर्शांसिच गुदेशूलंजयेच्चैवप्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेणपूजि-तम् ॥ १२९ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धावेके फूल, रसोत, कुडाकी छाल, बेलगिरि, पाठा और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहत और तण्डुल जलके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीमें रक्तका आना, खूनीबवासीर, गुदाकी पीडा, प्रवाहिका यह सब दूर होतेहैं । इस नागरादि चूर्णको कृष्णात्रेयजीने श्रेष्ठ मानाहै ॥ १२७ ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

भूनिम्बादि चूर्ण ।

भूनिम्बंकटुकंव्योषंमुस्तमिन्द्रयवान्समान् । द्वौचित्रकाद्वत्सकत्व-

ग्भागान्षोडशचूर्णयेत् ॥ १३० ॥ गुडशीताम्बुनापीतंग्रहणीदोष-
गुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥ १३१ ॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, नागरमोथा और इन्द्रयव इन सबको एक एक भाग लेवे। चित्रककी छाल दो भाग लेवे। कुडाकी छाल १६ भाग लेवे। इन सबको मिला बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पीवे तो पित्तकी ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १३० ॥ १३१ ॥

वचादि चूर्ण।

वचामतिविषांपाठांसप्तपर्णरसाञ्जनम् । श्योणाकोदीच्यकट्वङ्गव-
त्सकत्वग्दुरालभा ॥१३२॥ दार्वींपर्पटकंमूर्वायमानींमधुशिग्रुकम्।
पटोलपत्रंसिद्धार्थान्यूथिकंजातिपल्लवान् ॥ १३३ ॥ जम्ब्वाम्रवि-
ल्वमध्यानिनिम्बशाकफलानिच । तद्रोगशर्ममान्विच्छन्भूनिम्बा-
द्येनयोजयेत् ॥ १३४ ॥

वच, अतीस, पाटला, सप्तपर्ण, रसौत, श्योनाक, नेत्रवाला, कट्वंग (श्योनाक), कुडाकी छाल, जवासा, दारुहलदी, पित्तपापडा, मूर्वा, अजवायन, मीठा सोहांजना, पटोलपत्र, सफेद सरसों, जूहीके पत्र, चमेलीके पत्र, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, बेलकी गिरि, नीमके पत्ते और निबोलियां, इन सबका बारीक चूर्णकर सेवन करनेसे भूनिम्बादि चूर्णके समान गुण होता है अथवा इस चूर्णको भूनिम्बादि चूर्णमें मिलाकर सेवन कियाजाय तो अधिक गुण होताहै ॥ १३२ ॥ १३३ ॥ १३४ ॥

किरातादि चूर्ण।

किराततिक्तंपड्ग्रन्थात्रायमाणाकटुत्रिकम् । चन्दनंपद्मकोशीरं
दार्वीत्वक्कटुरोहिणी ॥ १३५ ॥ कुटजत्वक्फलंमुस्तंयमानीदेवदा-
रुच । पटोलनिम्बपत्रैलासौराष्ट्रातिविषात्वचः ॥ १३६ ॥ मधुशि-
ग्रोश्चबीजानिमूर्वापर्पटकास्तथा । तच्चूर्णंमधुनालेह्यंपेयंमद्यै-
र्जलेनवा ॥ १३७ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान् ।
कामालांसन्निपातश्चमुखरोगांश्चनाशयेत् ॥ १३८ ॥

चिरायता, वच, त्रायमान, त्रिकुटा, चन्दन, पद्माक, खस, दारुहल्दीकी छाल, कुटकी, कुडाकी छाल, इन्द्रयव, नागरमोथा, अजवायन, देवदारु, पटोल,

नीमके पत्र, इलायची, सौराष्ट्रदेशकी मट्टी, अतीस, दालचीनी, मीठे सुहांजनेके बीज, मूर्वा और पित्तपापडाके चूर्णको शहत मिलाकर चाटे या मद्य अथवा जलके साथ पीनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुलमरोग, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला, सन्निपात और मुख रोग दूर होतेहैं ॥ १३५ ॥ १३६ ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

कफजनित ग्रहणीकी चिकित्सा।

ग्रहण्यांश्लेष्मदुष्टायांवमितस्ययथाविधि। कट्वम्ललवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निंविवर्द्धयेत्॥ १३९॥

कफसे दूषित ग्रहणीमें रोगीको विधिपूर्वक वमन कराना चाहिये। उसके अनन्तर कटु, अम्ल, लवण, क्षार और तिक्त द्रव्योंके प्रयोगसे अग्निको चैतन्य करे ॥१३९॥

पलाशंचित्रकंचव्यंमातुलुङ्गंहरीतकीम्। पिप्पलींपिप्पलीमूलंपाठांनागरधान्यकम्॥ १४० ॥ कार्षिकाण्युदकप्रस्थेपक्त्वापादावशेषितम्। पानीयार्थप्रयुञ्जीतयवागूंतैश्चसाधिताम्॥ १४१ ॥

पलाश, चित्रक, चव्य, बिजौरा, हरड, पीपल, पीपलामूल, पाटला, सोंठ, धनियां यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर १ प्रस्थ जलमें पकावे। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानले। यह क्वाथ कफकी संग्रहणीमें पानीके लिये देना चाहिये। अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध की हुई यवागू कफकी संग्रहणीमें देना हितकारक है॥१४०-१४१

शुष्कमूलकयूषेणकौलत्थेनाथवा पुनः। कट्वम्लक्षारपटुनालघून्यन्नानिभोजयेत् ॥ १४२ ॥ अम्लश्चानुपिबेत्तक्रंतक्रारिष्टमथापिवा। मदिरांमध्वरिष्टान्वानिगदंशीधुमेववा ॥ १४३ ॥

गोलमिर्च आदि तीक्ष्ण द्रव्योंसे, बिजौरा आदि अम्ल द्रव्योंसे, जवाखार आदि क्षार द्रव्योंसे, सिद्ध किया हुआ, सूखी मूलीका यूष अथवा कुल्थीके यूषके साथ हलके अन्नका भोजन करावे। और पीनेके लिये खट्टी छाछ, तक्रारिष्ट, मद्य अथवा मध्वारिष्ट, या निगद अथवा शीधुका प्रयोग करे ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

मध्वासव।

द्रोणंमधूकपुष्पाणांविडंगानांतथोऽर्द्धतः। चित्रकस्यततोऽर्द्धंस्यात् तथाभल्लातकाढकम्॥ १४४ ॥ मञ्जिष्ठात्रिपलञ्चैवत्रिद्रोणेऽपांविपाचयेत्। द्रोणशेषेतुतच्छीतंमध्वर्द्धाढकसंयुतम्॥ १४५ ॥ एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेनचरूषिते। कुम्भेमासस्थितंजातमासवंतं

प्रयोजयेत् ॥ १४६ ॥ ग्रहणीदीपयत्येपबृंहणःकफपित्तजित् । शोथंकुष्ठंकिलासश्चप्रमेहांश्चप्रणाशयेत् ॥ १४७ ॥

महुएके फूल (पकेहुए महुए) १ द्रोण, वायविडंग आधा द्रोण (दो आढक), चित्रक १ आढक, भिलावे १ आढक, मजीठ तीन पल, इन सबको ३ द्रोण पानीमें पकावे । जब १ द्रोण शेप रहे तो उसको उतारकर ठण्डा करे । फिर इसमें आधा आढक शहद मिलावे । फिर अगर, छोटी इलायची, खस और लालचंदनके कल्कसे लेप कियेहुए घृतके घडेमें भरकर विधिवत् बन्दकर १ महीनेतक रक्खा रहने देवे । महीनेके बाद छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे । इसमेंसे मात्रानुसार पीवे तो ग्रहणी-रोग दूर हो, शरीर पुष्ट हो, कफ और पित्त नष्ट हो और अग्नि चैतन्य हो । इस मध्वा-सवके सेवनसे शोप, कुष्ठ, किलास और प्रमेह यह सब नष्ट होतेहैं॥ १४४–१४७ ॥

द्वितीयमध्वासव ।

मधूकपुष्पस्वरसंश्रृतमर्द्धक्षयीकृतम् । क्षौद्रपादयुतंशीतंपूर्ववत्सन्निधापयेत् । तंपिबन्ग्रहणीदोषाञ्जयेत्सर्वान्हिताशनः ॥१४८॥

महुएके फूलोंका स्वरस लेकर पकावे जब आधा बाकी रहे तो उतारकर शीतल करे । इसमें चौथा भाग शहत मिलाकर पहिलेके समान इलायची, खस, अगर आदिसे लिपेहुए चिकने घडेमें भरकर, बन्दकर १ महीना रक्खे । फिर उचित मात्रासे इस मध्वासवको पीकर हित आहारका भोजन करतारहे तो सब प्रकारके ग्रहणीविकार दूर होकर अग्नि और बलकी वृद्धि होतीहै ॥ १४८ ॥

तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान्पिबेत् ॥ १४९ ॥

इसी प्रकार द्राक्षा, ईख और खजूरके स्वरसोंका आसव बनाकर पीवे तो वह भी उपरोक्त गुणोंको करतेहैं ॥ १४९ ॥

दुरालभाद्यासव ।

प्रस्थौदुरालभायाद्वौप्रस्थमामलकस्यच । मुष्टीचित्रकदन्त्योर्द्वेप्रत्यग्रश्चाभयाशतम् ॥ १५० ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्काशीतंद्रोणावशेषितम् । सगुडद्विशतंपूतंमधुनःकुडवायुतम् ॥ १५१ ॥ तद्वत्प्रियङ्गोःपिप्पल्याविडङ्गानाश्चचूर्णितैः । कुडवैर्घृतकुम्भस्थंपक्षाज्जातंततःपिबेत् ॥ १५२ ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत् । स्वरवर्णकरश्चैपरक्तपित्तकफापहः ॥ १५३ ॥

जवासा २ प्रस्थ, आँवले २ प्रस्थ, चित्तेकी जडकी छाल और दंती यह दोनों दो २ पल, उत्तम पकीहुई चोंचदार मोटी हरडें १०० लेवे। इन सबको चार द्रोण पानीमें पकावे। १ द्रोण बाकी रहनेपर उतारकर ठण्डाकरे। फिर इसमें गुड २०० पल, शहद १ कुडव मिलावे। तथा फूलप्रियंगु, पीपल, वायविडंग, एक एक कुडव लेकर इनका चूर्ण बना उसीमें मिलावे। फिर इसको किसी घीके चिकने घडेमें भरकर बन्दकर १५ दिन तक रक्खे फिर छानकर किसी उत्तम घडेमें भरलेवे। इसके सेवनसे ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, ववासीर, कुष्ठरोग, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त और कफ यह सब दूर होतेहैं, तथा स्वर और वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ १५०–१५३ ॥

मूलासव।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वेवीरकर्षभजीवकम्। एषांपञ्चपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ॥ १५४ ॥ द्रोणशेषेरसेपूतेगुडस्यद्विशतंभिषक् । चूर्णितान्कुडवार्द्धांशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षिकान् ॥ १५५ ॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविडङ्गमधुकप्लवान्। लोध्रंशावरकञ्चैवमासार्द्धंस्थापयेत्ततः ॥ १५६ ॥ एषमूलासवःसिद्धोदीपनोरक्तपित्तजित्। आनाहकफहृद्रोगपाण्डुरोगाङ्गसादनुत् ॥ १५७ ॥

हलदी, दशमूलकी दश औषधियें, क्षीरकाकोली, ऋषभक और जीवक इन १४ औषधियोंको पांच पांच पल लेवे। सबको कूटकर ४ द्रोण पानीमें पकावे। जब १ द्रोण शेष रहे तो उतारकर छान ले। ठण्डा होनेपर २०० पल गुड मिलावे। और शहत १ कुडव मिलावे। फिर प्रियंगु, नागरमोथा, मजीठ, वायविडंग, मुलैठी, केवटी मोथा, पठानी लोध यह सब आधा आधा कुडव लेकर वारीक चूर्ण करे। यह चूर्ण उपरोक्त द्रव्योंमें ही मिलादेवे। फिर इसको किसी घृतके चिकने घडेमें भरकर १५ दिन पर्यन्त वन्दकर रख देवे। फिर इसको छानकर उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे। यह मूलासव परम सिद्धयोग है। यह दीपन है। तथा रक्तपित्त, अफारा, कफ, हृद्रोग, पाण्डुरोग और अंगसाद इन सब रोगोंको दूर करताहै ॥१५४–१५७॥

पिंडासव।

प्रास्थिकंपिप्पलींपिष्ट्वागुडंमध्यंविभीतकात्। उदकप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत् ॥ १५८ ॥ तस्मात्पलंसुजातात्तुसलिलाञ्जलिसंयुतम्। पिबेत्पिण्डासवोह्येषरोगानीकविनाशनः ॥ १५९ ॥ स्वस्थोऽप्येनंपिबेन्मासंनरःसिद्धंरसायनम् । इच्छंस्तेषामनुत्पत्तिं रोगाणांयेप्रकीर्त्तिताः ॥ १६० ॥

पीपल १ प्रस्थ लेकर बारीक पीस लेवे। गुड १ प्रस्थ और बहेडे १ प्रस्थ इन सबको मिला एकजीव करे। इसमें १ प्रस्थ पानी मिलावे फिर इसको किसी चिकने पात्रमें भरकर किसी यवके ढेर या भूसेमें गाडकर १ महीने रक्खा रहने दे। फिर इसको निकालकर छानलेवे। इसमेंसे १ पल आसव लेकर १ पाव जलमें मिलाकर पीवे तो यह पिण्डासव संपूर्ण रोगोंको नष्ट करताहै। इस रसायन अरिष्टको आरोग्ययुक्त मनुष्य भी पीवे तो उसके शरीरमें किसी प्रकारके रोग उत्पन्न नहीं होते ॥ १५८ ॥ १५९ ॥ १६० ॥

मध्वरिष्टं ।

नवेपिप्पलिमध्वाक्तेकलशेऽगुरुधूपिते । मध्वाढकंजलसमंचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ १६१ ॥ कुडवार्द्धंविडङ्गानांपिप्पल्याःकुडवं तथा। चतुर्थकांशान्त्वक्क्षीर्याःकेशरंमरिचानिच ॥ १६२ ॥ त्वगेलापत्रकशटीक्रमुकातिविषावनम्। हरेण्वेलुंकतेजोह्वापिप्पलीमूलचित्रकान् ॥१६३॥ कार्षिकांस्तान्स्थितंमासमतऊर्द्ध्वंप्रयोजयेत्। मन्दंसन्दीपयत्यग्निंकरोतिविषमंसमम् ॥ १६४ ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान् । वातश्लेष्मामयांश्चान्यान्मध्वरिष्टोऽव्यपोहति ॥ १६५ ॥

एक नया मट्टीका घडा लेकर उसके भीतर पीपल और शहदका लेप करके अगरकी धूनी देवे। फिर इस घडेमें शहद १ आढक, पानी १ आढक, वायविडंगका चूर्ण आधा कुडव, पीपल १ कुडव, वंशलोचन १ पल और नागकेशर, मिर्च, दालचीनी, इलायची, तेजपत्र, कचूर, सुपारी, अतीश, रेणुका, एलवालुक, चव्य, पीपलामूल, चित्रक इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करे। यह चूर्ण भी उपरोक्त शहदवाले घडेमें मिलादेवे। इस घडेको विधिवत् बन्दकर १ महीना पर्यन्त रक्खा रहने दे। फिर छानकर किसी उत्तम पात्रमें भरे। यह मध्वरिष्ट विधिवत् सेवन कियाजाय तो मंदाग्निको चैतन्य करताहै और विषमाग्निको समाग्नि बनाताहै। तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी विकार, कुष्ठ, अर्श, सूजन, ज्वर, वात और कफके रोग और इसी प्रकारके अन्य भी सब रोगोंको दूर करताहै ॥ १६१-१६५ ॥

पिप्पलीमूलादि चूर्ण ।

समूलांपिप्पलींक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच । मातुलुङ्गाभयारास्नाशटीमरिचनागरम् ॥ १६६ ॥ कृत्वासमांशंतच्चूर्णंपिबेत्प्रातःसुखाम्बुना। श्लैष्मिकेग्रहणीदोषेबलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ १६७ ॥

पीपलामूल, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, पांचों लवण, बिजौरा, हरड, रासना, कचूर, मिर्च और सोंठ इन सबको बराबर लेकर चूर्णकर नित्य प्रातःकाल गर्मजलके साथ सेवन करनेसे कफजनित ग्रहणीविकार दूर होकर बल, वर्ण और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

घृत ।

एतैरेवौषधैःसिद्धंसर्पिःपेयंसमारुते ।
गौल्मिकेषट्पलंप्रोक्तंभल्लातकघृतञ्चयत् ॥ १६८ ॥

इस उपरोक्त पिप्पली मूलादि चूर्णकी संपूर्ण औषधियोंके कल्कसे सिद्ध किया हुआ, घृत वातयुक्त कफजनित संग्रहणीमें पिलाना चाहिये । तथा गुल्मरोगमें कहाहुआ षट्पलघृत और भल्लातक घृत भी वातयुक्त कफकी संग्रहणीमें हितकारक है॥ १६८ ॥

क्षारघृत ।

विडंकालोत्थलवणंसर्जिकायवशूकजम् ।
सप्तलाकण्टकारीचचित्रकश्चेतिदाहयेत् ॥ १६९ ॥
सप्तकृत्वःस्नुतस्यास्यक्षारस्यद्व्याढकेनतु ।
आढकंसर्पिषःपक्वापिबेदग्निविवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

विडनमक, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, सातलाकी भस्म और कटेलीकी भस्म और चित्रककी भस्म मिलाकर इन तीनों भस्मोंको २ आढक पानीमें घोलकर उस पानीको कपडेमें डालकर टपकावे । इस प्रकार उस पानीको सात बार कपडेसे छानले । फिर उपरोक्त लवण और खार तथा यह जल मिलाकर १ आढक घृत सिद्धकरे । इस घृतको सेवन करनेसे अग्नि चैतन्य होकर कफजनित ग्रहणीविकार दूर होताहै ॥ १६९ ॥ १७० ॥

पिप्पलीमूलादि क्षार ।

समूलांपिप्पलींपाठांचव्येन्द्रयवनागरम् । चित्रकातिविषेहिंगुश्वदंष्ट्रांकटुरोहिणीम् ॥ १७१ ॥ वचाञ्चकार्षिकंपञ्चलवणानांपलानिच । दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिषोःकुडवद्वये ॥ १७२ ॥ चूर्णीकृतानिनिष्क्वाथ्यशनैरन्तर्गतेरसे । अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णंकृत्वा घृताप्लुतम् ॥ १७३ ॥ पिबेत्पाणितलंतस्मिञ्जीर्णेस्यान्मधुराशनः । वातश्लेष्मामयान्सर्वान्हन्याद्विषगरांश्चसः ॥ १७४ ॥

पीपलामूल, पीपल, पाटला, चव्य, इन्द्रयव, सोंठ, चित्रक, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी, वच इन सबको एक एक कर्ष लेवे । पांचों लवण पांच पल लेवे । दही १ प्रस्थ, तैल १ कुडव, घृत १ कुडव, पहिले उपरोक्त औषधियोंके वारीक चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर आगपर पकावे । जब देखे कि दहीका पानी जलचुका है । तब इसको इस प्रकार बन्द करदेवे जिससे बाहर धूआं न निकलने पावे और भीतर ही भीतर सब द्रव्योंकी जलकर भस्म होजावे । इस भस्मको बारीक पीसकर १ कर्ष प्रमाण नित्य लेकर घृतमें मिला पीवे और भूख लगनेपर मधुर भोजनका सेवन करे तो वात और कफसे उत्पन्न हुए संपूर्ण रोग नष्ट होतेहैं और विष तथा गरविकार शान्त होतेहैं ॥ १७१ ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥

भल्लातकादिक्षार ।

भल्लातकंत्रिकटुकंत्रिफलांलवणत्रिकम् । अन्तर्धूमंद्विपलिकंगो-पुरीषाग्निनादहेत् ॥ १७५ ॥ सक्षारःसर्पिषापीतोभोज्योवाप्यथचू-र्णितः । हृत्पांडुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त्तशूलंनुत् ॥ १७६ ॥

भिलावे, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आमले, सेंधानमक, संचरनमक और विडनमक इनको दो दो पल लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको संपुटमें बन्दकर जंगली उपलोंकी अग्निमें फूंक देवे । स्वांग शीतल होनेपर इस भस्मको उचितमात्रासे घृतमें मिला पीवे अथवा भोजनके पदार्थोंमें मिला सेवन करे तो हृद्रोग, पाण्डु, ग्रहणीविकार, गुल्म, उदावर्त्त और शूलको नष्ट करताहै ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

दुरालभादि क्षार ।

दुरालभांकरञ्जौद्वौसप्तपर्णंसवत्सकम् । षड्ग्रन्थांमदनंमूर्वांपाठा-मारग्वधंतथा ॥ १७७ ॥ गोमूत्रेणसमांशानिकृत्वाचूर्णानिदाह-येत् । दग्ध्वाचतंपिबेत्क्षारंग्रहणीबलवर्द्धनम् ॥ १७८ ॥

जवासा, लताकरंज करंजवृक्ष, सप्तपर्ण, कुडाकी छाल, वच, मैनफल, मूर्वा, पाटला और अमलतास इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे । इस चूर्णको गोमूत्रमें घोटकर अन्तर्धूम (विधिसे संपुटकर) भस्म करे । इस भस्मको विधिवत् सेवनकरे तो ग्रहणीविकार दूर हो, बलकी वृद्धि होतीहै ॥ १७७ ॥ १७८ ॥

भूनिम्बादि क्षार ।

भूनिम्बंरोहिणींतिक्तांपटोलंनिम्बपर्पटम् । दहेन्माहिषमूत्रेणसार-षपोऽग्निवर्द्धनः ॥ १७९ ॥

१ शोरगुर् इति पाठान्तरम् ।

चरायत्ता, कुटकी, पटोल, निम्ब और पित्तपापडा इनके चूर्णको भैंसके मूत्रमें खरलकर संपुटमें फूक देवे। यह भस्म उचित मात्रासे सेवन कीजाये तो जठराग्निको वढातीहै ॥ १७९ ॥

हरिद्रादि क्षार।

द्वेहरिद्रेवचाकुष्ठंचित्रकःकटुरोहिणी। मुस्तश्चवस्तमूत्रेणसिद्धःक्षारोऽग्निवर्द्धनः॥ १८० ॥

हल्दी, दारूहल्दी, वच, कूठ, चित्रक, कुटकी, और नागरमोथा इन सबके चूर्णको वरावर ले वकरीके मूत्रमें घोटकर संपुटमें फूक देवे। स्वांग शीतल होनेपर निकालले। यह क्षार अत्यंत अग्निको चैतन्य करनेवाला है ॥ १८० ॥

क्षारगुटिका।

चतुष्पलंसुधाकाण्डात्रिपलंलवणत्रयात्। वार्त्ताकीकुडवश्चार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले॥ १८१॥ दग्धानिवार्ताकुरसेगुलिकाभोजनोत्तराः। भुक्तंभुक्तंपचत्याशुकासश्वासार्शसांहिताः। विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्चताः॥ १८२ ॥

वज्री थोहरके ऊपरऊपरके टुकडे ४ पल, सेंधानमक १ पल, संचरनमक १ पल, सांभरनमक १ पल, वडी कटेलीके फल १ कुडव, आककी जड आठ पल, चित्रक २ पल इन सवका वारीक चूर्णकर अन्तर्धूम रीतिसे भस्म करे। फिर इसको वडी कटेलीके फलोंके रसकी भावना देकर गोली चार २ रत्तीकी वनालेवे। इसमेंसे १ गोली भोजन करनेके अनन्तर नित्य खाया करे तो यह भोजनको शीघ्र पचादेतीहै। तथा खांसी, श्वास, अर्श, विशूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोगको शमन करनेवाली है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

वत्सकादि क्षार।

वत्सकातिविषपाठांदुःस्पर्शहिंगुचित्रकम्। चूर्णीकृत्यपलाशानांक्षारेमूत्रस्नुतेपचेत्॥ १८३ ॥ आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलंसुखाम्बुना। मद्यैर्वाग्रहणीदोषेशोथार्शःपाण्डुमान्पिवेत्॥ १८४ ॥

कुडकी छाल, अतीश, पाठा, जवासा, हींग और चित्रक इनके चूर्णको गोमूत्रसे सिद्धकिये पलाशके क्षारमें डालकर लोहेकी कडाहीमें पकावे। जव पकते २ गाढा होजाय तो उतारकर वेरके सम न गोलियें वनालेवे। १ गोली नित्य गरम

१-कोई १ तोलाकी गोली मानते हैं।

जलके साथ अथवा मद्यके साथ सेवनकरे तो ग्रहणीविकार, सूजन, अर्श और पाण्डुरोग यह सब शान्त होतेहैं ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

त्रिफलादि क्षार ।

त्रिफलांकटभींचव्यंविल्वमध्यमयोरजः । रोहिणींकटुकांमुस्तंकुष्टं पाठाश्चहिंगुच ॥ १८५ ॥ मधुकंमुष्ककयवक्षारौत्रिकटुकंवचाम् । विडङ्गंपिप्पलीमूलंस्वर्जिकांनिम्बचित्रकौ ॥ १८६ ॥ मूर्वाजमोदे-न्द्रयवान्गुडूचींदेवदारुच । कार्षिकंलवणानाञ्चपञ्चानांपलिकान्पृ-थक् ॥ १८७ ॥ भागान्दध्नित्रिकुडवेघृततैलेनमूर्च्छितान् । अन्तर्धू-मंशनैर्दग्ध्वातस्मात्पाणितलंपिवेत् । सर्पिषाकफवातार्शोग्रहणी-पाण्डुरोगवान् ॥१८८॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकासक्रिमिज्वरान् । शोषातिसारौश्वयथुंप्रमेहानाहहृद्ग्रहान् ॥ १८९ ॥ हन्यात्सर्वविष-ञ्चैवक्षारोऽग्निजननोवरः।जीर्णेरसैर्वामधुरैरन्नंस्यात्पयसापिवा॥१९०॥

त्रिफला, कटभी, चव्य, लोहचूर्ण (लोहभस्म), कुटकी, नागरमोथा, कूठ, पाटला, हींग, मुलैठी, मुश्कक (मोखावृक्ष), जवाखार, त्रिकुटा, वच, वायविडंग, पीपलामूल, सज्जीखार नीमका छिलका, चित्रक, मूर्वा, अजमोद, इन्द्रयव, गिलोय और देवदारू यह सब एक एक कर्ष लेवे । पांचों लवण, एक एक पल लेवे । दही तीन कुडव, घृत और तेल एक एक कुडव, उपरोक्त औषधियोंके चूर्णको दही, घृत और तेलमें मिलाकर कडाहीमें रख आगपर चढादेवे । जब दहीका पानी जलकर धूम निकले लगे तो ऊपरसे किसी पात्र द्वारा ढक देवे । जिससे धूम बाहर न निकलने पावे और नीचेसे तीक्ष्ण आंच देवे जिससे वह सब द्रव्य जलकर भस्म होजावे । सर्वांग शीतल होनेपर निकाल कर इस क्षारमेंसे एक कर्ष लेकर घृतमें मिला पीवे तो कफ, वायु, अर्शरोग, ग्रहणी, पाण्डु, प्लीहा, मूत्रकृच्छ, श्वास, हिचकी, कृमि, ज्वर, शोष, अतिसार, सूजन, प्रमेह, अफारा, हृद्रोग और सब प्रकारके विषदोष नष्ट होतेहैं । तथा जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । औषध जीर्ण होनेपर क्षुधा लगे तब मधुर रसोंसे अथवा दूधके साथ अन्न (भात) का सेवन करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥ १८९ ॥ १९० ॥

त्रिदोषज ग्रहणीकी चिकित्सा ।

त्रिदोषेविधिवद्वैद्यःपञ्चकर्माणिकारयेत् ।
घृतक्षारासवारिष्टान्दद्याच्चाग्निविवर्द्धनान् ॥ १९१ ॥

सन्निपातकी ग्रहणीमें चतुर वैद्य पंचकर्मद्वारा दोषोंका शोधन करे तथा अग्निको चैतन्य करनवाले घृत, क्षार, आसव और अरिष्टोंका सेवन करावे ॥ १९१ ॥

क्रियायाचानिलादीनांनिर्दिष्टाग्रहणींप्रति ।
व्यत्यासात्तांसमस्ताश्चकुर्य्याद्दोषविशेषवित् ॥ १९२ ॥

वातादिजनित ग्रहणियोंमें जो अलग २ चिकित्सा कथन की हैं, मिलेहुए दोषोंमें दोषकी विशेषता देखकर उसी दोषकी प्रबलताको शान्त करनेके लिये उन्हीं औषधियोंको कम ज्यादे कर दोषोंकी विशेषताको जाननेवाला वैद्य प्रयोग करे ॥ १९२ ॥

स्नेहनंस्वेदनंशुद्धिर्लङ्घनंदीपनञ्चयत् । चूर्णानिलवणक्षारमध्वरिष्ट-सुरासवाः ॥ १९३ ॥ विविधास्तक्रयोगाश्चदीपनानाञ्चसर्पिषाम् । ग्रहणीरोगिभिःसेव्याः क्रियाश्चावस्थिकींशृणु ॥ १९४ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीविकारमें स्नेहन, स्वेदन, शोधन, लंघन, दीपन, चूर्ण, लवण, क्षार, मध्वरिष्ट, सुरा, आसव, और अनेक प्रकारके तक्र तथा दीपन घृतोंकी दोषोंकी न्यूनाधिकता, अवस्थाविशेष, विचारकर क्रिया विशेष करनी चाहिये सो अब उस अवस्थानुरूप क्रियाका ही वर्णन करतेहैं सो श्रवणकरो ॥ १९३-१९४ ॥

ष्ठीवनंश्लैष्मिकेरूक्षंदीपनंतिक्तसंयुतम् । सकृद्रूक्षंसकृत्स्निग्धंकृ-शेवहुकफेहितम् । परीक्ष्यामंशरीरस्यदीपनंस्नेहसंयुतम् ॥ १९५॥ दीपनंवहुपित्तस्यतिक्तंमधुरसंयुतम् ॥ १९६ ॥

कफप्रबल त्रिदोषज ग्रहणीमें रूक्ष, दीपन और तिक्त द्रव्योंके क्वाथको पीकर अथवा मुखमें धारणकर कफको थूक देवे । और कफकी अधिकता होनेपर भी यदि रोगी अधिक कृश हो तो एक वार रूक्ष और एक वार स्निग्ध इस प्रकार वार वार क्रिया करनी चाहिये । जब देखे कि कफ क्षीण होगया तो स्नेहयुक्त दीपन औष-धियोंका प्रयोग करे । पित्तप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें तिक्त और मधुर द्रव्योंसे संयुक्त दीपन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

वहुवातस्यतुस्नेहलवणाम्लयुतंहितम् ।
सन्धुक्षतियदावह्निःपरेषांविधिनेन्धनैः ॥ १९७ ॥

वातप्रधान त्रिदोषज ग्रहणीमें स्नेह, लवण और अम्ल द्रव्योंसे युक्त दीपनीय चिकित्सा करना हितकारी है । जैसे-विधिवत् ईंधनके लगानेसे अग्नि प्रज्वलित होतीहै उसी प्रकार ग्रहणीविकारमें विधिपूर्वक दीपनीय औषधियोंका प्रयोग करनेसे जठराग्नि संदीपन होतीहै ॥ १९७ ॥

स्नेहमेवपरंविद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ।
नालंस्नेहसमिद्धस्यशमायान्नंसुगुर्वपि ॥ १९८ ॥

त्रिदोषज ग्रहणीवाला रोगी यदि दुर्बल हो तो उसके लिये दीपन औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेह ही परम उपकारी हैं । स्नेहके सेवनसे चैतन्य हुई जठराग्निको भारी भोजन कियाहुआ भी शमन नहीं कर सकता ॥ १९८ ॥

मन्दाग्निरपिपक्वन्तुपुरीषंयोऽतिसार्य्यते । दीपनीयौषधैर्युक्तांघृतमात्रांपिबेत्तुसः ॥ १९९ ॥ तयासमानःपवनःप्रसन्नोमार्गमाश्रितः । अग्नेःसमीपचारित्वादाशुप्रकुरुतेबलम् ॥ २०० ॥

जिस रोगीकी, अग्नि मन्द हो और पक्व मल अधिक निकालताहो तो उसको दीपन द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतका उचित मात्रासे सेवन कराना चाहिये । इस प्रकार दीपन घृत द्वारा अग्नि चैतन्य करनेसे समानवायु स्वच्छ होकर अपने मार्गमें यथोचित कार्य करने लगताहै और जठराग्निके बलको बढाती है ॥ १९९ ॥ २०० ॥

अग्निसंदीपनविधि ।

काठिन्याद्यःपुरीषन्तुकृच्छ्रान्मुञ्चतिमानवः । सघृतंलवणैर्युक्तंनरोऽन्नावग्रहंपिबेत् ॥ २०१ ॥ रौक्ष्यान्मन्देपिबेत्सर्पिस्तैलंवादीपनैर्युतम् । अतिस्नेहात्तुमन्देऽग्नौचूर्णारिष्टासवाहिताः ॥ २०२ ॥

ग्रहणीरोगमें मल कठोर होजाय तो रोगी बडे कष्टसे मलका त्याग करताहै । उस रोगीको सेंधानमकयुक्त अन्नके साथ पाचन घृत देना चाहिये,यदि ग्रहणी रोगमें रूक्षताके कारण अग्नि मन्द पडजाय तो दीपन औषधियोंसे सिद्ध किया घृत या तैल पिलाना चाहिये और अतिस्निग्धतासे अग्नि मन्द होजाय तो दीपन चूर्ण,अरिष्ट और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

भिन्नेगुदेऽवलेहास्तुविडतैलसुरासवाः ।
उदावर्त्तात्तुमन्देऽग्नौनिरूहाःस्नेहबस्तयः ॥ २०३ ॥

यदि मलभेदके कारण गुदा फटजाय अथवा बाहरको निकलने लगे तो अवलेह विडलवणादिसे सिद्धकिया तैल, सुरा और आसवोंका प्रयोग करना चाहिये । यदि उदावर्त होनेसे अग्नि मन्द होजाय तो निरूहण और स्नेहबस्ति करना चाहिये ॥ २०३ ॥

---

१ "अतिपक्वं" ऐसा मूल होनेसे बिना पका मल निकलना ऐसा अर्थ हो सकताहै परन्तु अधिक पुस्तकोंमें "अति पक्व" ही पाठ है ।

दोषवृद्ध्यातुमन्देऽग्नौशुद्धोदोषविधिंचरेत् ।
व्याधियुक्तस्यमन्देतुसर्पिरेवाग्निदीपनम् ॥ २०४ ॥

दोषोंकी वृद्धिके कारण यदि मंद अग्नि होजाय तो वमन और विरेचन द्वारा दोषोंको निकाल देना चाहिये । यदि किसी रोगके कारण अग्नि मन्द होगई हो तो संदीपन औषधियोंसे सिद्ध किये घृतोंका सेवन करना चाहिये ॥ २०४ ॥

उपवासाच्चमन्देऽग्नौयवागूभिःपिबेद्घृतम् ।
अन्नावपीडितेचालंदीपनंबृंहणश्चतत् ॥ २०५ ॥

उपवासके करनेसे यदि अग्नि मंद होजाय तो संदीपन घृत मिलाकर यवागू पिलावे । अन्नके पीडनसे उत्पन्न हुई मंदाग्निमें भी संदीपन घृतयुक्त यवागू ही दीपन और बृंहण होती है ॥ २०५ ॥

दीर्घकालप्रसङ्गात्तुक्षामक्षीणकृशान्नरान् । प्रसहानांरसैःसाम्लैः भोजयेत्पिशिताशिनाम् ॥ २०६ ॥ लघुतीक्ष्णोष्णशोधित्वाद्दीपयन्त्याशुतेऽनलम् । मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतरबृंहणाः ॥२०७॥

यदि बहुत कालसे रोग रहनेके कारण शरीर कृश होगयाहो और वह रोगी मांसका आहार करनेवाला हो तो उसको प्रसहजीवोंका मांसरस अनारकी खटाईसे अम्लकर देना हितकारी है । क्योंकि वह मांसरस हल्के, तीक्ष्ण, गरम और दोषोंके शोधन करनेवाले होनेसे जठराग्निको शीघ्र संदीपन कर देतेहैं और प्रसह (मांसाहारी) जीवोंका मांस, मांसद्वारा उपचित होनेके कारण शीघ्र शरीरको पुष्ट करनेवाला होताहै ॥ २०६ ॥ २०७ ॥

नाभोजनेनकायाग्निर्दीप्यतेनातिभोजनात् ।
यथानिरिन्धनोवह्निरल्पोवातीन्धनावृतः ॥ २०८ ॥

जैसे-ईंधनके विना अथवा अत्यंत ईंधन डालदेनेसे अल्प अग्नि प्रज्वलित नहीं होती उसी प्रकार बिल्कुल भोजन न करनेसे अथवा अधिक भोजनका भार पड-जानेसे जठराग्नि भी प्रदीप्त नहीं रहसकती ॥ २०८ ॥

स्नेहान्नविधिभिश्चित्रैश्चूर्णारिष्टसुरासवैः ।
प्रयुक्तैर्भिषजासम्यग्बलमग्नेःप्रवर्द्धते ॥ २०९ ॥

नाना प्रकारके स्नेह, अन्न, चूर्ण, अरिष्ट, सुरा और आसवोंका विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे जठराग्निका बल बढताहै ॥ २०९ ॥

जठराग्निकी समता और विषमताके गुण दोष ।

यथाहिसारदार्वग्निःस्थिरःसन्तिष्ठतेचिरम् । स्नेहान्नविधिभिस्तद्वदन्तरग्निर्भवेत्स्थिरः ॥ २१० ॥ हितंजीर्णेमितश्चाश्नंश्चिरमारोग्यमश्नुते । अवैषम्येनधातूनामग्निवृद्धौयतेततः ॥ २११ ॥

जैसे-पक्की वलवान् काष्ठकी अग्नि वहुत देर तक स्थिर भावसे रहसकतीहै उसी प्रकार स्नेह अन्नको विधिवत् भोजन करनेसे जठराग्नि स्थिर और वलवान् रहसकतीहै क्योंकि पहिला किया भोजन जीर्ण होजानेके उपरांत हित और प्रमाणका भोजन करनेसे मनुष्य आरोग्यताका लाभ उठा सकताहै । इसलिये जिस प्रकार धातुओंमें विषमता न हो उस प्रकार अग्निवृद्धिके लिये यत्न करना चाहिये ॥ २१०॥२११ ॥

समैर्दोषैःसमोमध्येदेहस्योष्माग्निसंस्थितः । पचत्यन्नंतदारोग्यपुष्ट्यायुर्वलवृद्धये ॥ २१२ ॥ दोषैर्मन्दोऽतिवृद्धोवाविषमैर्जनयेद्गदान् । पाच्यंमन्दस्यतत्रोक्तमतिवृद्धस्यवक्ष्यते ॥ २१३ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वातादि दोषोंकी साम्यावस्था रहनेसे ही पाचकाग्नि भी साम्यावस्थामें रहतीहै । जठराग्निकी साम्यावस्था रहनेसे ही अन्नका यथोचित परिपाक होकर ही मनुष्योंकी आयु, आरोग्यता, पुष्टि और वलकी वृद्धि होतीहै । इसी प्रकार दोषोंकी विषमता होनेसे अग्नि मंद या अति तीक्ष्ण होकर अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करतीहै । मंदाग्निकी चिकित्सा, औषध आदि कहचुकेहैं । अव अति वढीहुई अग्निकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

भस्मकाग्निनिदान ।

नरेक्षीणकफेपित्तंकुपितंमारुतानुगम् । स्वोष्मणापावकस्थानेवलमग्नेःप्रयच्छति ॥ २१४ ॥ तथालब्धवलोदेहेविरूक्षेसानिलोऽनलः । परिभूयपचत्यन्नंतैक्ष्ण्यादाशुमुहुर्मुहुः ॥ २१५ ॥ पक्त्वान्नंसततंधातूञ्छोणितादीन्पचत्यपि । ततोदौर्वल्यमातङ्कान्मृत्युंश्चोपनयेन्नरम् ॥ २१६ ॥ भुक्तेऽन्नेलभतेशान्तिंजीर्णमात्रे प्रताम्यति । तृट्श्वासदाहमूर्च्छाद्याव्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः ॥ २१७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें कफके क्षीण होनेसे पित्त वायुके साथ मिलकर अत्यंत कुपित हो जाताहै । तव अपनी गर्मीसे अग्निकेस्थानमें प्राप्त होकर अग्निको अत्यंत वलवान् करताहै । इस प्रकार कफरहित रूक्ष शरीरमें वायु सहित अग्नि वलवान् होकर

अन्नको पराभव करतीहुई अपनी तीक्ष्णतासे वारंवार जो भोजन किया जावे उसीको शीघ्र शीघ्र पाचन करती जातीहै। पहिले जब अन्नका परिपाक होलेताहै फिर वह अग्नि रक्तादिक धातुओंका परिपाक करने (जलाने) लगतीहै। इससे रोगीके शरीरमें दुर्बलता, अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करतीहै तथा मृत्युको प्राप्त कर देतीहै। इस भस्मक अग्निवाले रोगीको भोजन करते २ थोडी देर शान्ति प्रतीत होतीहै फिर अन्नके जीर्ण होनेपर कष्ट होने लगताहै। इस अत्यंत बढीहुई अग्निके कारण प्यास, श्वास, दाह और मूर्च्छादि अनेक रोग उत्पन्न होजातेहैं॥२१४॥२१५॥ ॥ २१६ ॥ २१७ ॥

भस्मक अग्निकी चिकित्सा।

तमत्यग्निंगुरुस्निग्धशीतैर्मधुरविज्जलैः। अन्नपानैर्नयेच्छान्तिंदी-प्तमग्निमिवाम्बुभिः ॥ २१८ ॥ मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपिभोज्यान्यस्योप-हारयेत्। निरिन्धनोऽन्तरंलब्ध्वायथैनंनविपादयेत् ॥ २१९ ॥

जिस प्रकार अत्यंत जलतीहुई अग्निमें जल डालकर उस अग्निको शान्त करतेहैं उसी प्रकार इस भस्मक अग्निमें भी भारी, चिकने, मधुर, गाढे, शीतल और स्थिर पदार्थोंके भोजन द्वारा बढीहुई जठराग्निको शान्त करना चाहिये। इस रोगीको वारवार अजीर्ण अवस्थामें भी भारी पदार्थोंका भोजन देते रहना चाहिये। जिससे वह अग्नि अपने आहारको पचाकर अवकाश प्राप्त कर इस मनुष्यके शरीरको नष्ट करने न पावे ॥ २१८ ॥ २१९ ॥

पायसंकृसरांस्निग्धंपैष्टिकंगुडवैकृतम्। अद्यात्तथौदकानूपपिशि-तानिघृतानिच ॥ २२० ॥ मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान्स्थिरतोयच-रांस्तथा। आविकंसघृतंमांसमद्यादत्यग्निनाशनम् ॥ २२१ ॥

जबतक इस रोगीके शरीरमें यथोचित बल न आवे तबतक इसको घृतयुक्त खिचडी, खीर और हलुआ पूडी आदि मैदेके बने पदार्थ, तथा मिठाई, पक्वान्न, जलसंचारी और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, भारी द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत, मछलियें विशेषकर तलाव, पुष्करणी, स्थिर जलोंमें रहनेवाली मछलियें, भेडका घृत, मांस, मद्य आदि पदार्थ बढीहुई अग्निको शान्त करनेके लिये देता रहे ॥ २२० ॥ २२१ ॥

यवागूंसमधूच्छिष्टांघृतंवाक्षुधितःपिबेत्।
गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिबेत् ॥ २२२ ॥

अथवा अत्यंत क्षुधामें मधूच्छिष्ट (मोम या तण्डुलभेद) मिलाकर यवागू पीवे

अथवा स्वच्छ घृतको पीवे अथवा ग्रहणीकी शिराको दहनी बांहमेंसे वेधन कर रक्त निकाले फिर गेहूंका चूर्ण मिला मीठा मंथ बना पीवे ॥ २२२ ॥

पयोवाशर्करासर्पिर्जीवनीयौषधैःशृतम् ।
फलानांतैलयोनीनामुत्क्रुश्चाश्वसशर्कराः ॥ २२३ ॥

अथवा घृत और मिसरी मिला दूध पीवे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंसे मिला घृत पीवे । या जिन फलोंमेंसे तेल निकलताहै (बादाम आदि) उनको कूटकर दूधमें मिला अथवा सर्वतके समान मिसरी और जलमें घोलकर पीवे ॥ २२३ ॥

मार्दवंजनयन्त्यग्नेःस्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिवेच्छीताम्बुनासर्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम् ॥ २२४ ॥ गोधूमचूर्णपयसाससर्पिष्कंपिवेन्नरः । आनूपरसासिद्धान्वात्रीन्स्नेहांस्तैलवर्जितान् ॥ २२५ ॥ गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत् । पयसासम्मिताश्वापिघनांत्रिस्नेहसंयुताम् ॥ २२६ ॥ नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिवेदौदुम्बरीं त्वचम् । आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये ॥ २२७ ॥

स्निग्ध मांसरसोंका पीना भी जठराग्निको नर्म बनाता है । अथवा शीतल जलमें सत्तु आदि घोलकर उसमें घी और मोम मिला पीवे या गेहूंका चूर्ण घृत मिला दूधमें घोलकर पीवे । अथवा अनूपसंचारी जीवोंका मांसरस, घृत, चर्वी और मज्जा मिला कर पीवे । अथवा पहले शिरावेधन कर फिर गेहूंके चूर्णका मंथ या गेहूंके चूर्णको दूधमें मिलाकर उसमे घृत और चर्वी (मज्जा) मिलाकर गाढा २ पीवे तो पित्त शान्त होकर अग्निभी शान्त होगी । या गूलरकी छाल स्त्रीके दूधमें घोलकर पीवे । अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालसे बनाई हुई खीर बढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये सेवन करे ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

भस्मकाग्निनाशक विरेचन ।

श्यामात्रिवृद्विपक्वंवापयोदद्याद्विरेचनम् । असकृत्पित्तशान्त्यर्थंपायसप्रतिभोजनम् । प्रसमीक्ष्यभिषक्प्राज्ञस्तस्मैदद्याद्विधानवित् ॥ २२८ ॥

काली निशोथके चूर्णके साथ सिद्ध किया दूध पिलाकर विरेचन करावे और ह विरचन कराकर पित्तकी शान्तिके लिये वारवार दूध और खीरका भोजन कराता है । सब विधिके जाननेवाला वैद्य यथोचित विचारकर ही विरेचनके अनन्तर ापसोंका सेवन करावे ॥ २२८ ॥

यत्किञ्चिन्मधुरंमेध्यंश्लेष्मलंगुरुभोजनम्।
तदत्यग्निहितंसर्वंभुक्त्वाप्रस्वपनंदिवा ॥ २२९ ॥

जितने प्रकारके भोजन मधुर, मेधाजनक, कफकारक और भारी हैं वढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये उन भोजनोंका सेवन कर दिनमें सोजाना चाहिये ॥ २२९ ॥

मेध्यान्यन्नानियोऽत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नुते। नतन्निमित्तंव्यसनंल-भतेपुष्टिमेवच ॥ २३० ॥ कफेवृद्धेजितेपित्तेमारुतेचानलःसमः। समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्वलवृद्धये इति ॥ २३१ ॥

जो मनुष्य बढीहुई अग्निकी शान्तिकी लिये मेधाजनक(घृत,मेदा आदि) अन्नोंको वारवार खाताजाताहै वह भस्मकाग्निजन्य विकारोंको प्राप्त न होकर पुष्टिको प्राप्त होताहै। जब इस प्रकार क्रिया करनेसे कफ बढजाय और वात, पित्त शान्त हो-कर जठराग्नि साम्यावस्थामें प्राप्त होजातीहै तव दोषोंकी साम्यावस्था होनेसे अन्नका उत्तम परिपाक होकर पुष्टि, आयु और वलकी वृद्धि होतीहै ॥ २३० ॥ २३१ ॥

तीन प्रकारके भोजनोंको व्याधियोंकी कारणता।

भवन्तिचात्र।

पथ्यापथ्यमिहैकत्रभुक्तंसमशनंमतम्। विषमंवहुवाल्पंवाप्यप्राप्ता-तीतकालयोः ॥ २३२ ॥ भुक्तंपूर्वान्नशेषेतुपुनरध्यशनंमतम्। त्रीण्यप्येतानिमृत्युंवाघोरान्व्याधीन्सृजन्तिवा ॥ २३३ ॥

अव यहां कहते हैं कि पथ्य और अपथ्य दोनोंको एकत्र मिलाकर समशन कहते हैं। वहुत भोजन करना अथवा थोडा भोजन करना वा भोजनके समयसे प्रथम भोजन करना अथवा भोजनका समय व्यतीत होकर वहुत देर होनेपर जो भोजन किया जाय उसको विषमाशन कहते हैं। पहिला किया भोजन पचा न हो उसके ऊपर दुवारा भोजन करलेनेको अध्यशन कहते हैं। यह तीन प्रकारके भोजनही मनुष्योंकी मृत्युके कारण हैं। यदि मृत्यु न हो तो घोर व्याधियोंको तो अवश्यही उत्पन्न करतेहैं ॥ २३२ ॥ २३३ ॥

प्रातः और सायंकालके भोजनमें विशेषता।

प्रातराशेत्वजीर्णेऽपिसायमाशोनदुष्यति। दिवाप्रवुध्यतेऽर्केणहृदयं पुण्डरीकवत् ॥ २३४ ॥ तस्मिन्विवुद्धेस्रोतांसिस्फुटत्वंयान्तिसर्व-शः। व्यायामाच्चविचाराच्चविक्षिप्तत्वाच्चचेतसः ॥२३५॥ उत्क्लेदम-

अथवा स्वच्छ घृतको पीवे अथवा ग्रहणीकी शिराको दहनी बांहमेंसे वेधन कर रक्त निकाले फिर गेहूंका चूर्ण मिला मीठा मंथ बना पीवे ॥ २२२ ॥

पयोवाशर्करासर्पिर्जीवनीयौषधैःश्रृतम् ।
फलानांतैलयोनीनामुत्क्रुश्चाश्वसशर्कराः ॥ २२३ ॥

अथवा घृत और मिसरी मिला दूध पीवे अथवा जीवनीयगणकी औषधियोंसे मिला घृत पीवे । या जिन फलोमेंसे तेल निकलताहै (बादाम आदि) उनको कूटकर दूधमें मिला अथवा सर्वतके समान मिसरी और जलमें घोलकर पीवे ॥ २२३ ॥

मार्दवंजनयन्त्यग्नेःस्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिवेच्छीताम्बुनासर्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम् ॥ २२४ ॥ गोधूमचूर्णपयसासस्सर्पिष्कंपिवेन्नरः । आनूपरससिद्धान्वात्रीन्स्नेहांस्तैलवर्जितान् ॥ २२५ ॥ गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत् । पयसासम्मिताश्चापिघनांत्रिस्नेहसंयुताम् ॥ २२६ ॥ नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिवेदौदुम्बरीं त्वचम् । आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये ॥ २२७ ॥

स्निग्ध मांसरसोंका पीना भी जठराग्निको नर्म बनाता है । अथवा शीतल जलमें सत्तु आदि घोलकर उसमें घी और मोम मिला पीवे या गेहूंका चूर्ण घृत मिला दूधमें घोलकर पीवे । अथवा अनूपसंचारी जीवोंका मांसरस, घृत, चर्वी और मज्जा मिला कर पीवे । अथवा पहले शिरावेधन कर फिर गेहूंके चूर्णका मंथ या गेहूंके चूर्णको दूधमें मिलाकर उसमें घृत और चर्वी (मज्जा) मिलाकर गाढा २ पीवे तो पित्त शान्त होकर अग्निभी शान्त होगी । या गूलरकी छाल स्त्रीके दूधमें घोलकर पीवे । अथवा स्त्रीके दूध और गूलरकी छालसे बनाई हुई खीर बढीहुई अग्निकी शान्तिके लिये सेवन करे ॥ २२४ ॥ २२५ ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

भस्मकाग्निनाशक विरेचन ।

श्यामात्रिवृद्विपक्वंवापयोदद्याद्विरेचनम् । असकृत्पित्तशान्त्यर्थंपायसप्रतिभोजनम् । प्रसमीक्ष्यभिषक्प्राज्ञस्तस्मैदद्याद्विधानवित् ॥ २२८ ॥

काली निशोथके चूर्णके साथ सिद्ध किया दूध पिलाकर विरेचन करावे और वह विरेचन कराकर पित्तकी शान्तिके लिये वारवार दूध और खीरका भोजन कराता रहे । सब विधिके जाननेवाला वैद्य यथोचित विचारकर ही विरेचनके अनन्तर पायसोंका सेवन करावे ॥ २२८ ॥

थावच्चग्रहणीदोपलक्षणम् ॥ २४३॥ पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंसचिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टंतथाचावस्थिकीक्रिया ॥ २४४ ॥ जायतेचयथात्यग्निर्यच्चतस्याचिकित्सितम् । उक्तवानिहतत्सर्वंग्रहणीदोपकेमुनिः ॥ २४५ ॥

इति चरक० चिकि० ग्रहणीचिकित्सितंनामैकोनविंशोध्यायः ॥१९॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस ग्रहणीचिकित्सिताऽध्यायमें-जठराग्निके गुण, जठराग्निद्वारा देहके धारणका क्रम, अन्नपरिपाकविधि, आहारकी क्रिया, अग्निके भेद, जिनको अग्नि पोपण करतीहै, जिनको जिस प्रकार पाचन करतीहै, रसादिक धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, उन धातुओंसे मलोत्पत्ति, तृष्णाको अशुकारी हेतुत्व, धातुओंकी उत्पत्ति, कालक्रम, जठराग्नि जिस प्रकार दुष्ट होनेसे रोगोंको करनेवाली होतीहै । जो ग्रहणी है, ग्रहणीका शब्दार्थ, दोपभेदसे ग्रहणीके लक्षण, पूर्वरूप, वातादिभेदसे पृच्छकता,ग्रहणीके लक्षण, चिकित्सा, चार प्रकारकी ग्रहणीकी अवस्थानुरूप क्रिया तथा जिस प्रकार अत्यग्नि (भस्मकाग्नि) होतीहै और उसकी चिकित्सा यह सब मुनि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २४०-२४५ ॥

इति श्रीच० चि० स्थाने प्र०भाषाटीकायां ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातःपांडुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम पाण्डुचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

पाण्डुरोगके भेद ।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः ।
चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, तीन तो यह हुए चौथा सन्निपातसे और पांचवां मट्टीके खानेसे ॥ १ ॥

---

१ यद्यपि मट्टीके खानेसे भी विना दोप कुपित हुए पाण्डु नहीं होता परन्तु मट्टीके खानेसे केवल पांडु ही विशेपरूपसे होताहै इसलिये इसको पांचवा माना है ।

पगच्छन्तिदिवातेनास्यधातवः । अक्लिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेषुन दुष्यति । अविदग्धइवक्षीरेक्षीरमन्यद्विमिश्रितम् ॥ २३६ ॥

प्रातःकालके किये हुए भोजनके यथोचित परिपाक हुए विना भी सायंकाल भोजन करनेमे विशेष हानि नही क्योंकि दिनमें सूर्यके तेजसे मनुष्यका हृदय कमलके समान खिलाहुआ रहताहै हृदयके विकसित रहनेसे शरीरके सब स्रोत खुले रहतेहैं और दिनभर काम काज परिश्रमादि करते रहनेसे तथा घूमने फिरने और चित्तके इधर उधर चलायमान रहनेसे शरीरके सब धातु क्लेदको त्याग करते रहते हैं। इस लिये आहारसे उत्पन्न हुआ रस भी जैसे विना फटे सुंदर दूधमें और दूध मिलकर बिगडता नही है उसी प्रकार सायंकालके भोजनसे विकृत नहीं होता ॥२३४–२३६॥

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृतेष्वयनेषुच । यान्तिकोष्ठेचविक्लेदंसंवृतेदेहधातवः ॥ २३७ ॥ क्लिन्नेष्वन्यदपक्केषुतेष्वासिक्तंप्रदुष्यति । विदग्धेषुपयःस्वन्वत्पयस्तत्सेष्विवार्पितम् ॥ २३८ ॥ नैशेष्वाहारजातेषुनाविपक्केषुवुद्धिमान् । तस्मादन्यत्समश्नीयात्पालयिष्यन्वलायुषी२३९

रातके समय हृदय मुदे हुए कमलके समान बन्द रहताहै इसीलिये संपूर्ण देहके छिद्र भी वन्द रहतेहैं और कोष्ठमें भी क्लेद जमा होजाताहै तथा देहकी धातुएं भी क्लेदसे भीगी रहतीहै इस प्रकार सबके क्लेदित होनेसे अजीर्ण आहार और मल दूषित होजाताहै इसके ऊपर आहार करनेस वह आहार भी इस प्रकार दूषित हो जाताहै जैसे फटेहुए दूधमे मिला हुआ अच्छा दूध भी विकृत होजाताहै इस लिये रातके अजीर्णमें प्रातः भोजन नहीं करना चाहिये । बुद्धिमान् मनुष्य वल और आयुकी पालना करताहुआ इस विधिको विचारकर ही भोजनका सेवन करे ॥ २३७ ॥ २३८ ॥ २३९ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

अन्तरग्निगुणोदेहंयथाधारयतेचसः । यथान्नंपच्यतेयांश्चयथाहारः करोत्यपि ॥ २४० ॥ येऽन्नगोयांश्चपुष्यन्तियावन्तोयेपचान्तियान् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यएवच ॥ २४१ ॥ तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भवक्रमः । रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तराग्निर्यथाधिकः ॥ ॥ २४२ ॥ सन्दुष्यतियथादुष्टोयात्रोगाञ्जनयत्यपि । ग्रहणीयाय-

थावच्चग्रहणीदोपलक्षणम् ॥ २४३॥ पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंसचिकित्सितम् । चतुर्विधस्यानिर्दिष्टंतथाचावस्थिकीक्रिया ॥ २४४ ॥ जायतेचयथात्यग्निर्यच्चतस्याचिकित्सितम् । उक्तवान्निहतस्सर्वंग्रहणीदोपकेमुनिः ॥ २४५ ॥

इति चरक० चिकि० ग्रहणीचिकित्सितंनामैकोनविंशोध्यायः ॥१९॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस ग्रहणीचिकित्सिताऽध्यायमें-जठराग्निके गुण, जठराग्निद्वारा देहके धारणका क्रम, अन्नपरिपाकविधि, आहारकी क्रिया, अग्निके भेद, जिनको अग्नि पोपण करतीहै, जिनको जिस प्रकार पाचन करतीहै, रसादिक धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, उन धातुओंसे मलोत्पत्ति, तृष्णाको अशुकारी हेतुत्व, धातुओंकी उत्पत्ति, कालक्रम, जठराग्नि जिस प्रकार दुष्ट होनेसे रोगोंको करनेवाली होतीहै । जो ग्रहणी है, ग्रहणीका शब्दार्थ, दोपभेदसे ग्रहणीके लक्षण, पूर्वरूप, वातादिभेदसे पृच्छकता,ग्रहणीके लक्षण, चिकित्सा, चार प्रकारकी ग्रहणीकी अवस्थानुरूप क्रिया तथा जिस प्रकार अत्यग्नि (भस्मकाग्नि) होतीहै और उसकी चिकित्सा यह सब मुनि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ २४०–२४५ ॥

इति श्रीच० चि० स्थाने प्र०भाषाटीकाया ग्रहणीचिकित्सितं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः ।

अथातःपांडुचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम पाण्डुचिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

पाण्डुरोगके भेद ।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः ।
चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै जैसे वातसे, पित्तसे, कफसे, तीन तो यह हुए चौथा सन्निपातसे और पांचवां मट्टीके खानेसे ॥ १ ॥

१ यद्यपि मट्टीके खानेसे भी बिना दोष कुपित हुए पाण्डु नहीं होता परन्तु मट्टीके खानेसे केवल पाडु ही विशेषरूपसे होताहै इसलिये इसको पांचवा माना है ।

पाण्डुरोगकी संप्राप्ति ।

दोषाःपित्तप्रधानास्तुयस्यकुप्यन्तिधातुषु । शैथिल्यंतस्यधातूनां गौरवञ्चोपजायते ॥ २ ॥ ततोवर्णबलस्नेहायेचान्येऽप्योजसोगुणाः। व्रजन्तिक्षयमत्यर्थंदोषदूष्यप्रदूषणात् ॥ ३ ॥ सोल्परक्तोऽल्पमेद-स्कोनिःसारःशिथिलेंद्रियः।वैवर्ण्यंभजतेतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥४॥

जिस मनुष्यके शरीरमें पित्त प्रधान दोष कुपित होकर धातुओंका आश्रय लेतेहैं उसकी धातुओंमें शिथिलता और भारीपन होजाताहै तब दोषों द्वारा दूषित हुए रुधिर, मांस, त्वचा आदि दूष्योंके दूषणसे शरीरका वर्ण, बल, स्नेह तथा अन्य जो ओजके गुण हैं यह सब अत्यंत क्षीण होजातेहैं तब उस रोगीका शरीर अल्परक्त और अल्प-मेद होनेसे निस्सार होजाताहै । सब इन्द्रियें शिथिल पडजातीहैं । उसके देहका वर्ण भी विकृत होजाताहै । अब उसके हेतु और लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

पाण्डुरोगका निदान ।

क्षाराम्ललवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पावमाषपि-ण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ ५ ॥ विदग्धेऽन्नेदिवास्वप्नाद्व्याया-मान्मैथुनात्तथा । प्रतिकर्मर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्चविधारणात् ॥ ६ ॥ कामचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदीर्णंयथापित्तंहृदये समवस्थितम् ॥ ७ ॥ वायुनाबलिनाक्षिप्तंस्रोतोभिर्दशभिःसृतम् । प्रपन्नंकेवलंदेहंत्वङ्मांसान्तरसाश्रितम् ॥ ८ ॥ प्रदूष्यकफवातासृ-क्त्वङ्मांसानिकरोतितत् । वर्णान्हरितहारिद्रान्पाण्डून्बहुविधां-स्त्वचि ॥ ९ ॥

क्षार, अम्ल, लवण, अति उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन करनेसे निष्पाव, उडद, पिण्याक, तिलतैल आदिके अधिक खानेसे, भोजन किये आहारका विदग्ध पाक होनेसे, दिनमें सोनेसे अधिक व्यायाम करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, वमन, विरेचनादि कर्मोंमें विषमता होजानेसे, मलमूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे तथा काम, चिन्ता, भय, क्रोध और शोकसे, अति व्याकुलचित्त होनेसे उदीर्ण हो हृदयमें स्थित हुआ पित्त बलवान् वायुके वेगसे फेंकाहुआ हृदया श्रित दश धमनियोंमें प्राप्त हो संपूर्ण शरीरमें व्यापक होजाताहै फिर त्वचा-और मांसके मध्यमें प्राप्त हो कफ, वात, रक्त, त्वचा और मांसको दूषित करदे ताहै । तब त्वचाके वर्णको हरित और हल्दीके समान बनाकर अनेक प्रकारके प्रगट करताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

पाण्डुके पूर्वरूप।

सपाण्डुरोगइत्युक्तस्तस्यलिङ्गंभविष्यतः।
हृदयस्पन्दनंरौक्ष्यंस्वेदाभावःश्रमस्तथा॥ १०॥

इस प्रकार उत्पन्न होकर वह पाण्डुरोग कहा जाताहै। उस पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेसे पहिले यह लक्षण होतेहैं। जैसे-हृदयका फडकना, शरीरमें रूक्षता, पसीनेका न आना और विना किसी परिश्रम किये भी शरीरमें अत्यंत थकावटसी प्रतीत होना (मट्टीखानेकी इच्छा होना) यह पाण्डुरोगके पूर्वरूप हैं॥ १०॥

पाण्डु रोगके सामान्य लक्षण।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेडोहतानलः। दुर्बलःसदनोन्निद्रश्र-भ्रमानिपीडितः॥ ११॥ गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमान्नरः। मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव॥ १२॥ शूनाक्षिकूटोहारितः शीर्णलोमाहतप्रभः। कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुःष्ठीवनोऽल्पवाक् ॥ १३॥ पिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानिच। भवन्त्यारोहणा-यासैर्विशेषश्चात्रवक्ष्यते॥ १४॥

अब पाण्डुरोगके प्रगट होजानेपर जो सामान्य लक्षण होतेहैं उनको कहते हैं। जैसे कर्णनाद (कानोंमें स्वयं शब्द होते रहना), मंदाग्नि, दुर्बलता, अंगोंका सुन्नसा होना, निद्रानाश, भ्रम, श्रम, शरीरमें पीडन, ज्वर, श्वास, शरीरका भारी होना, अरुचि यह तथा जैसे किसीने शरीरको मृदित (मीडन) किया हो ऐसा प्रतीत होना अथवा जैसे शरीरको कोई मथित करताहो ऐसा प्रतीत होना नेत्र-गोलकोंपर सूजन होना, शरीरका वर्ण हल्दीके समान होजाना, रोमांच होना अथवा रोमोंका गिरजाना, शरीरकी कांति नष्ट होजाना और स्वभावका अत्यंत क्रोधी होना, शीतल पदार्थोंसे द्वेष होना अथवा सर्दीसे द्वेष होना, सदैव निद्राकी इच्छा बनी रहना, मुखसे वारवार थूकते रहना, बहुत थोडा बोलना, दोनों पिण्डलियोंमें उद्वेष्टनसा होना, थोडा परिश्रम करनेपर अथवा चलने फिरने आदिसे विशेषकर कमर, उरुस्थल (जांघें) और पैरोंमें पीडा प्रतीत होना या उनका रहसा जाना यह लक्षण होतेहैं। अब वातादिभेदसे लक्षण विशेषोंका कथन करतेहैं॥११॥१२॥१३॥१४॥

वातज पाण्डुके हेतु लक्षण।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः। जनयेत्कृष्णपाण्डुत्वंत-थारूक्षारुणाङ्गताम्॥१५॥ अङ्गमर्दरुजंतोदंकम्पंपार्श्वशिरोरुजम्। शकृच्छोपास्यवैरस्यशोफानाहबलक्षयान्॥ १६॥

वायुकारक आहार और उपचारोंके करनेसे वायु कुपित होकर त्वचाको काली, पीली, रूक्ष और लाल वर्णयुक्त बनाकर कष्टसाध्य पाण्डुरोगको उत्पन्न करताहै । तब अंगमर्द, ज्वर, तोद, कंप, पार्श्वपीडा, मस्तकपीडा, मलकी शुष्कता, मुखका विरस होना, सूजन, अफारा और बलक्षय यह लक्षण होतेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

पित्तजपाण्डुके हेतु लक्षण ।

पित्तलस्याचितंपित्तंयथोक्तैःस्वैःप्रकोपनैः । दूषयित्वातुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते ॥ १७ ॥ सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमन्वितः । तृष्णामूर्च्छापरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः ॥ १८ ॥ स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमभिनन्दति । कटुकास्योनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा ॥ १९ ॥ उद्गारोऽम्लोविदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजायते । दौर्गन्ध्यंभिन्नवर्चस्त्वंदौर्बल्यंतमएवच ॥ २० ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें पित्तवर्द्धक आहारविहारके सेवनसे पित्त कुपित होकर रक्तादिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करताहै । पित्तजनित पाण्डुरोगवालेके शरीरका वर्ण पीला, और हरि होजाताहै । तथा ज्वर, दाह, प्यास और मूर्च्छासे रोगी व्याप्त होताहै । मूत्र, मल, पीलेवर्णके होना, गर्मी प्रतीत होना, शीतल वस्तुओंपर इच्छा होना, अन्नपर अरुचि, मुखमें कडुआपन, इसको खट्टी और गरम वस्तु अत्यंत हानिकारक होय, खट्टी डकार आना, अन्नका परीपाक होनेपर विदाह होना और अन्नका परिपाक भी खट्टा होना, तथा शरीरमें दाहका होना, शरीरसे दुर्गंध आना, मल पतला होना, शरीरमें दुर्बलता होना और अंधकारका प्रतीत होना ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

कफजपाण्डुके हेतु लक्षण ।

विवृद्धैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत् । करोतिगौरवंतन्द्रांछर्दिंश्वेतावभासताम् ॥ २१ ॥ प्रसेकंलोमहर्षंचसादंमूर्च्छांभ्रमंक्लमम् । श्वासकासौतथालस्यमरुचिंवाक्स्वरग्रहम् ॥ २२ ॥ शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरूक्षोष्णकामता । श्वयथुर्मधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वामयःकफात् ॥ २३ ॥

कफवर्द्धक पदार्थोंके सेवनसे वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ पूर्ववत् रक्त आदिकोंको दूषितकर पाण्डुरोगको उत्पन्न करताहै । तब उसके ये लक्षण होतेहैं । जैसे शरीरमें

भारीपन, तन्द्रा, व्रमन होना, शरीरका वर्ण सफेदसा प्रतीत होना, वारवार कफका थूकना, रोमाञ्च, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खांसी, आलस्य, अरुचि, वाणी और स्वरका रुकता जाना, मूत्र, नेत्र और मलका सफेद वर्ण होना, कडवे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंकी इच्छा होना शरीरपर अथवा मुखपर सूजन होना, मुखका मीठा स्वाद होना, यह कफजनित पाण्डुरोगके लक्षण हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

सन्निपातज पांडुके लक्षण ।

सर्वान्नसेविनःसर्वेदुष्टादोषास्त्रिदोषजम् ।
त्रिदोषलिङ्गंकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुःसहम् ॥ २४ ॥

वातादि संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले आहार विहारके सेवन करनेसे कुपित हुए तीनों दोष संपूर्ण लक्षणोंवाले दुःसह पाण्डुरोगको उत्पन्न करतेहैं । उसके तीनों दोषोंवाले लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

मृत्तिकाभक्षणजनित पाण्डु ।

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः । कषायामारुतंपित्तमूषरामधुराकफम् ॥ २५ ॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्याद्भुक्तंविरूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैवस्रोतांसिनिरुणद्धिच ॥ २६ ॥ इन्द्रियाणां वलंतेजओजोवीर्य्यंनिहन्त्यच । पाण्डुरोगंकरोत्याशुवलवर्णाग्निनाशनम् ॥ २७ ॥ शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूनाभिपादाग्रमेहनः । क्रिमिकोष्ठेतिसार्य्येतमलंसासृक्कफान्वितम् ॥ २८ ॥

मट्टी खानेवाले मनुष्यके शरीरमें तीनों दोषोंमेसे कोई एक दोष कुपित होजाताहै। जैसे कसैली मट्टीके खानेसे वायु कुपित होताहै । ऊषरें मट्टीके खानेसे पित्त और मीठी मट्टीके खानेसे कफका कोप होताहै । मट्टी रूक्ष होनेसे रसादि धातुओंको और भोजन किये हुए अन्नको रूक्ष करदेतीहै तथा विपाकको प्राप्त न होनेपर भी स्रोतोंको रोक देतीहै इसी कारण इन्द्रियोंका वल, तेज, वीर्य और ओजधातुको नष्टकर देतीहै । तथा वल, वर्ण और अग्निको नष्ट कर पाण्डुरोगको उत्पन्न करतीहै । अथवा यों कहिये कि वल, वर्ण और अग्निको नष्ट करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न कर देतीहै । तब इस मनुष्यके यह लक्षण होतेहैं जैसे–नेत्र गोलकोंपर सूजन, गण्डस्थल, भौंत्र, नाभि, पांवके आगे और शिश्नेन्द्रियपर सूजन होना, कोष्ठमें क्रिमियोंका होना अतिसार तथा अतिसारमें रक्त और कफका आना यह मृद्भक्षणजन्य पाण्डुके लक्षण होतेहैं ॥ २५–२८ ॥

असाध्यपाण्डु ।

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतोनसिध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनोना

यश्चपीतानिपश्यति ॥ २९ ॥ बद्धाल्पविट्कंसकफंहरितंयोतिसार्यते । दीनःश्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्च्छातृषार्दितः ॥ ३० ॥ सनास्त्यसृक्क्षयाद्यश्चपाण्डुःश्वेतत्वमाप्नुयात् । इतिपञ्चविधस्योक्तंपाण्डुरोगस्यलक्षणम् ॥ ३१ ॥

जो पाण्डुरोग बहुत दिनका पुराना होनेसे रोगीके शरीरमें कठोरता आजाय वह पाण्डुरोग असाध्य होताहै । जो पाण्डुरोग पुराना हो और उसके कारण शरीरमें सूजन होगई हो, रोगीको समस्त पदार्थ पीले वर्णके दिखाई देतेहों वह भी असाध्य जानना । जिस पाण्डुरोगमें मल बंधाहुआ थोडा २ हरे वर्णका और कफयुक्त आताहो, रोगी दीन होगयाहो, शरीरका वर्ण सफेद होजाय, वमन, मूर्च्छा और तृषासे व्याकुल हो उस रोगीको मृत्युवश जानना । जिस पाण्डुरोगीका रक्तक्षय होकर शरीका वर्ण श्वेत होजाय वह पुराना पाण्डुरोगी भी असाध्य जानना । इस प्रकार पांच प्रकारके पाण्डुरोगके लक्षणोंका कथन किया गया है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कामलाके लक्षण ।

पाण्डुरोगीतुयोऽत्यर्थंपित्तलानिनिषेवते । तस्यपित्तमसृङ्मांसंदग्ध्वारोगायकल्पते ॥ ३२ ॥ हारिद्रनेत्रःसुभृशंहारिद्रत्वङ्नखाननः । रक्तपीतशकृन्मूत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रियः ॥ ३३ ॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः । कामलाबहुपित्तैषाकोष्ठशाखाश्रयामता ॥ ३४ ॥

पाण्डुरोगी मनुष्यके अत्यंत पित्तकारक पदार्थोंके सेवनसे उस मनुष्यका पित्त बढकर रक्त और मांसको दग्ध करके कामला रोगको उत्पन्न करताहै । तब उस मनुष्यके नेत्र हल्दीके समान पीले होजातेहैं और त्वचा, नख, मुख यह सब हल्दीके समान पीले होजातेहैं । और रक्त, मूत्र, मल यह सब पीले वर्णके होजातेहैं । तथा संपूर्ण इन्द्रियोंका शक्तिहीन होजाना, शरीरमें दाह, अन्नका परिपाक न होना, दुर्बलता, अंगोंका रहसाजाना, अरुचि, शरीरका कृश होना यह लक्षण होतेहैं । यह कामला रोग अत्यंत पित्तके बढनेसे होताहै और कोष्ठ तथा शाखा (रक्तादि) में इसका आश्रयस्थान होताहै ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कुम्भकामला और उसकी असाध्यता ।

कालान्तरात्खरीभूतात्कृच्छ्रास्यात्कुम्भकामला । कृष्णपीतशकृन्मूत्रोभृशंशूनश्चमानवः ॥ ३५ ॥ संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रो-

यश्चताम्यति । दाहारुचितृपानाहतन्द्रामोहसमन्वितः ॥ ३६ ॥ प्रनष्टाग्निविसंज्ञश्चनियात्याशुसकामली । साध्यानामितरेषान्तु भेपजंसम्प्रवक्ष्यते ॥ ३७ ॥

यह कामला ही कालान्तरमें (बहुत दिनका पुराना) खरीभूत होकर कुम्भकामला नामसे उच्चारण किया जाताहै । यह कष्टसाध्य होताहै । जिस रोगीका मूत्र, मल और नेत्र काले और पीले हों सब अंगोंमें प्रकटरूपसे सूजन अथवा बहुत सूजन उत्पन्न होजाय या रोगीके नेत्र, मुख, छर्दि, मल, मूत्र यह सब लालवर्णके होजांय और पीडायुक्त हों तथा दाह, अरुचि, प्यास, अफारा, तन्द्रा और मोह हों, अग्नि और संज्ञा नष्ट होजाय तो उस कामला रोगीको असाध्य जानना चाहिये । वह रोगी शीघ्र मृत्युवश होजाताहै । अब साध्य पाण्डुरोगोंकी और कामलाकी औपधियोंका कथन करतेहैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पाण्डुरोगकी चिकित्सा ।

तत्रपाण्ड्वामयीस्निग्धस्तीक्ष्णैरूर्द्धानुलोमिकैः । संशोध्योमृदुभिस्तिक्तैःकामलीतुविरेचनैः ॥ ३८ ॥ ताभ्यांसंशुद्धकोष्ठाभ्यांपथ्यान्यन्नानिदापयेत् । शालयोयवगोधूमपुराणायूपसंस्कृताः ॥ ३९ ॥ मुद्गाढकमसूरैश्चजांगलैश्चरसैर्हिताः । यथादोषंविशिष्टश्चतयोर्भैपज्यमाचरेत् ॥ ४० ॥

प्रथम पाण्डुरोगीको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण वमन और विरेचन द्वारा शोधन करदेना चाहिये और कामला रोगीको स्निग्धकर मृदु और तिक्त द्रव्योंसे विरेचन करावे । उन पाण्डु और कामला रोगियोंको शुद्धकोष्ठ होनेपर हलका और पथ्य अन्न भोजन करावे । जैसे-पुराने शालिचावल, पुराने यव, पुराने गेहूं और पुराने मूंग, अरहर, तथा मसूर आदिका यूष, जंगली जीवोंके हितकारक मांसरस यह सब दोप विशेप विचारकर भोजनके लिये देवे तथा दोपानुसार विधिवत् औपधियोंका प्रयोग करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

स्नेहनार्थ घृत ।

पञ्चगव्यंमहातिक्तंकल्याणकमथापिवा ।
स्नेहनार्थंघृतंदद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे ॥ ४१ ॥

पाण्डुरोगी और कामलारोगीको स्नेहन करनेके लिये पंचगव्यघृत, महातिक्तक घृत और कल्याणघृत, पिलाना चाहिये ॥ ४१ ॥

दाडिमादि घृत ।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धपलंपलम् । चित्रकाच्छृंगवेराच्चपिप्पल्यष्टमिकातथा ॥ ४२ ॥ तैःकल्कैर्विंशतिपलंघृतस्यसलिलाढके । सिद्धंहृत्पाण्डुरोगार्शःप्लीहवातकफार्त्तिनुत् ॥ ४३ ॥ दीपनंश्वासकासघ्नंमूढवातेचशस्यते । दुःखप्रसविनीनाञ्चवन्ध्यानाञ्चैवगर्भदम् ॥ ४४ ॥

दाडिमका छिलका १ कुडव, धनियां २ पल, चित्रक १ पल, अदरख १ पल, पीपल आधा पल । इन सबको बारीक पीसकर कल्क बनावे । फिर यह कल्क बीस पल घृत और १ आढक जलमें मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस घृतके सेवन करनेसे हृद्रोग, पाण्डुरोग, अर्शरोग, प्लीहा और वातकफके रोग यह सब दूर होतेहैं । यह घृत दीपन है और श्वास, कासको दूर करताहै तथा मूढवातमें भी इसका प्रयोग करना हितकारी है । जिन स्त्रियोंको प्रसव अति कष्टसे होताहै उनको सुखपूर्वक प्रसव होने लगताहै और यह घृत वंध्या स्त्रियोंके गर्भको, करनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

कटुरोहिण्यादि घृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तंहरिद्रेवत्सकात्पलम् । पटोलंचन्दनंमूर्वात्रायमाणादुरालभा ॥ ४५ ॥ कृष्णापर्पटकोनिम्बोभूनिंबोदेवदारुच । तैःकार्षिकैर्घृतप्रस्थःसिद्धःक्षीरचतुर्गुणः ॥ ४६ ॥ रक्तपित्तंज्वरंदाहंश्वयथुंसभगन्दरम् । अर्शांस्यसृग्दरञ्चैवहन्तिविस्फोटकांस्तथा ॥ ४७ ॥

कुटकी, नागरमोथा, हल्दी, दारूहल्दी, इन्द्रयव, पटोलपत्र, लालचंदन, दूर्वा, त्रायमाण, जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता और देवदारू यह सब एक एक कर्ष लेवे । घी १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस घृतके सेवनसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, सूजन, भगन्दर, बवासीर, रक्तप्रदर और विस्फोटक और पाण्डु यह सब दूर होतेहैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

पथ्यादि घृत ।

पथ्याशतरसेपथ्यावृन्तार्द्धशतकल्कवान् ।
प्रस्थःसिद्धोघृतात्पेयःसपाण्ड्वामयगुल्मनुत् ॥ ४८ ॥

उत्तम पकी हुई १०० पल हरडोंके क्वाथमें ५० पल हरडोंकी डण्डियोंका कल्क मिलाकर १ प्रस्थ घीको सिद्धकरे। यह घृत पाण्डुरोगको और गुल्मको दूर करताहै ॥ ४८ ॥

दन्तीघृत।

दन्त्याश्चतुष्पलरसेपिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः।
तद्वत्प्रस्थोघृतात्सिद्धःप्लीहपाण्ड्वर्त्तिशोफजित् ॥ ४९ ॥

चार पल दंतीके कायमें एक पल कच्चे जमालगोटोंका कल्क बनाकर १ प्रस्थ घृतको सिद्ध करे। इस घृतको विधिवत् सेवन करनेसे गुल्म, प्लीहा, शोथ और पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ४९ ॥

द्राक्षाघृत।

पुराणसर्पिषःप्रस्थोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः।
कामलागुल्मपाण्ड्वर्त्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ ५० ॥

पुराना घी १ प्रस्थ, मुनक्काका कल्क आधा प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ इन सबको एकत्रकर सिद्ध किया घृत पीनेसे कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह और उदररोग दूर होताहै ॥ ५० ॥

हरिद्रादि घृत।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम्।
सक्षीरंमाहिषंसर्पिःकामलाहरमुत्तमम् ॥ ५१ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमका छिलका, बला, मुलैठी इन सबका कल्क एक २ पल, भैंसका घृत १ सेर, भैंसका दूध ४ सेर। सबको मिलाकर विधिवत् घृत सिद्धकरे। यह घृत कामला रोगको हरनेमें परम उत्तम है ॥ ५१ ॥

स्नेहन घृत।

गोमूत्रेद्विगुणेदार्व्याःकल्काक्षद्वयसाधितम्। दार्व्याःपञ्चपलक्वाथे कल्केकालीयकेपरः ॥ ५२ ॥ माहिषात्सर्पिषःप्रस्थःपूर्वःपूर्वेपरेपरः। स्नेहैरेभिरुपक्रम्यस्निग्धंमत्वाविरेचयेत् ॥ ५३ ॥ पयसामूत्रयुक्तेनवहुशःकेवलेनवा ॥ ५४ ॥

दारूहल्दीका कल्क २ तोला, भैंसका घृत ४० तोला, गोमूत्र, १ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा दारूहल्दीका पांच पल काथ उसमें १ पल अगरका कल्क मिलाकर भैंसका घृत १ प्रस्थ सिद्ध करे। इन दोनों प्रकारके

घृतोंसे कामलारोगी अथवा पाण्डुरोगीको स्निग्ध करे। जब देखे कि भली प्रकार स्निग्ध होगया है तो दूधमें बहुतसा गोमूत्र मिलाकर अथवा केवल गोमूत्रही पिलाकर विरेचन करावे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अन्ययोग ।

दन्तीफलरसेकोष्णेकाश्मर्य्याञ्जलिनाश्रृतम् । द्राक्षाञ्जलिंमृदित्वावादद्यात्पाण्ड्वामयापहम् । द्विशर्करंत्रिवृच्चूर्णंपलार्द्धंपैत्तिकः पिवेत् ॥ ५५ ॥

पहाडी जमालगोटेके २ सेर गरम क्वाथमें २० तोला कुम्भेरके फलोंका कल्क मिलावे । अथवा २० तोला दाखका रस मिलावे । इसमेंसे मात्रानुसार क्वाथ पीनेसे दस्त होकर पाण्डुरोग नष्ट होजाताहै । अथवा दुगुनी मिसरी मिला हुआ निशोथका चूर्ण २ तोला खाकर ऊपरसे जल पीवे तो विरेचन होकर पित्तका पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ५५ ॥

कफपाण्डुस्तुगोमूत्रक्लिन्नयुक्तांहरीतकीम् ।
आरग्वधंरसेनेक्षोर्विदार्य्यामलकस्यच ॥ ५६ ॥

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे कफका पाण्डुरोग दूर होताहै । अथवा अम्लतासका गुदा,ईखके रसके साथ अथवा विदारीकंदके रसके साथ या आँवलेके रसमें घोलकर पीनेसे कफका पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ५६ ॥

सत्र्यूषणंविल्वपत्रंपिवेन्नाकामलापहम् । दन्त्यर्द्धपलकल्कंवाद्विगुडंशीतवारिणा ॥ ५७ ॥ कामलीत्रिवृतांवापित्रिफलायारसैः पिवेत् । त्रिशालात्रिफलामुस्तकुष्ठदारुकलिङ्गकान् ॥ ५८ ॥ कार्षिकानर्द्धकर्षांशान्कुर्य्यादतिविषांतथा । कर्षौमधुरसायाद्वौसर्वमेतत्सुखाम्बुना ॥ ५९ ॥ मृदितंतंरसंपूतंपीत्वालिह्याच्चमध्वनु । कासंश्वासंज्वरंदाहंपाण्डुरोगमरोचकम् ॥ ६० ॥ गुल्मानाहामवातांश्चरक्तपित्तञ्चनाशयेत् ॥ ६१ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ और वेलके पत्तोंका कल्क बनाकर शीतल जलके साथ पीनेसे अथवा आँवलेके रसके साथ पीनेसे कामला रोग दूर होताहै । या दंतीकी जडका कल्क आधा पल लेकर १ पल गुडमें मिला शीतल जलके साथ सेवन करे तो विरेचन होकर कामला रोग दूर होजाताहै । अथवा निशोथके कल्कको त्रिफलाके

शीत कषायके साथ कामलारोगी पीवे तो विरेचन होकर कामला दूर हो अथवा इन्द्रायणकी जड, त्रिफला, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्रयव यह सब एक एक कर्ष लेवे और अतीस आधा कर्ष लेवे, मूर्वा २ कर्ष लेवे। सबका बारीक चूर्ण कर सुखोष्ण जलमें डालकर सायंकाल रखदेवे। प्रातःकाल मल छानकर पीवे। ऊपरसे थोडा शहद चाटे तो खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, पाण्डुरोग, अरोचक, गुल्म, अफारा, आमवात और रक्तपित्त यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५७-६१ ॥

त्रिफलायागुडूच्यावादार्व्यानिम्बस्यवारसम्। शीतंमधुयुतंप्रातः कामलार्त्तःपिवेन्नरः ॥ ६२ ॥

त्रिफला अथवा गिलोय या दारुहल्दी अथवा नीमका छिलका इनमेंसे किसी एकको कूटकर शामको भिगोदेवे प्रातःकाल छानकर उसमें शहद मिला पीलेवे तो कामला रोग दूर होताहै ॥ ६२ ॥

क्षीरमूत्रंपिवेत्पक्षंगव्यंमाहिषमेववा। पाण्डुर्गोमूत्रसिद्धंवासप्ताहं त्रिफलारसम्। तरुजाञ्ज्वलितान्मूत्रेनिर्वाप्यामृद्यचाङ्कुरान् ॥ ॥ ६३ ॥ मातुलुङ्गस्यतत्पूतंपाण्डुशोथहरंपिवेत्। स्वर्णक्षीरींत्रिवृ-च्छ्यामेभद्रदारुसनागरम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्राञ्जलिनापिष्टंमूत्रेवाक्व-थितंपिबेत्। क्षीरमेभिःश्रृतंवापिपिवेद्दोषानुलोमनम् ॥ ६५ ॥

पाण्डुरोगी मनुष्य १५ दिन तक गोमूत्र अथवा भैंसका मूत्र दूधमें मिलाकर पीया करे। अथवा गोमूत्रमें सिद्ध किये त्रिफलाके रसको सात दिन पर्यन्त पीवे तो पाण्डुरोग दूर हो। अथवा बिजौरे वृक्षके अंकुरोंको आगमें जलाकर गोमूत्रमें बुझावे फिर उनको गोमूत्रमें ही घोटकर वस्त्रमें छानलेवे। उसके पीनेसे पाण्डुरोगकी सूजन दूर होतीहै। अथवा सत्यानाशीकी जड, कालीनिशोथ, देवदारू और सोंठ इनको पीसकर २० तोला गोमूत्रके साथ पीवे। अथवा इनको गोमूत्रमें क्वाथकर पीवे या इन्हीं द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधोंको पीवे तो दोषोंका अनुलोमन होताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

हरीतकी प्रयोग।

**हरीतकींप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिबेत्।
जीर्णेक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा ॥ ६६ ॥**

हरडको गोमूत्रमें भिगोकर अथवा गोमूत्रके साथ सेवन करे। जब मात्रा पचजाय तो भोजनके समय दूध अथवा मधुर रसके साथ शालिचावलोंका भोजन करे तो पाण्डुरोग शान्त होताहै ॥ ६६ ॥

सप्तरात्रंगवांमूत्रेभावितंवाप्ययोरजः ।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थंपयसापाययेद्भिषक् ॥ ६७ ॥

अथवा लोहभस्मको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर फिर उस भस्मको २ रत्ती प्रमाण नित्य दूधके साथ सेवन करावे तो पाण्डुरोग शान्त होताहै ॥ ६७ ॥

नवायसचूर्ण ।

त्र्यूषणंत्रिफलामुस्तंविडङ्गंचित्रकाःसमाः । नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णंक्षौद्रसर्पिषा ॥ ६८ ॥ भयक्षेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् । नवायसमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ ६९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, और चित्रक इन सबको समभाग लेकर इन सबके बराबर लोहचूर्ण (लोहभस्म) मिलावे । इस चूर्णमेंसे १ माशा चूर्णको घृत और शहदमें मिलाकर सेवनकरे तो पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ठ, बवासीर और कामला यह सब नष्ट होतेहैं । इस नवायसचूर्णको कृष्णात्रेयजीने कथन कियाहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

गुडादिवटिका ।

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान् ।
पिप्पलीद्विगुणांकुर्याद्गुटिकांपाण्डुरोगिणे ॥ ७० ॥

गुड, सोंठ, मण्डूरभस्म और तिल, इन सबको एक एक भाग लेवे । पीपल दुगनी लेवे । सबको मिलाकर गोलियें बनावे । इन गोलियोंके सेवनसे पाण्डुरोग दूर होताहै ॥ ७० ॥

मंडूरवटक ।

त्रिफलात्र्यूषणंमुस्तंविडङ्गंचव्यचित्रकौ।दार्वीत्वङ्माक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकोदेवदारुच ॥ ७१ ॥ एतान्द्विपलिकान्भागांश्चूर्णान्कुर्य्यात्पृथक्पृथक् । मण्डूरंद्विगुणंचूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ७२ ॥गोमूत्रेऽष्टगुणेपक्त्वातस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमान्कृत्वावटकांस्तान्यथाग्निना ॥ ७३ ॥ उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णेच भोजनम् । मण्डूरवटकाह्येतेप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ ७४ ॥ कुष्ठान्यजीर्णकं शोथमूरुस्तम्भं कफामयान् । अर्शांसिकामलांमेहं प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ७५ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा, चव्य, चित्रक, देवदारू, दारुहल्दीकी छाल, सोनामक्खी, पिपलामूल और देवदारू इन सबको अलग दो दो पल लेकर चूर्ण करे। इन सबके चूर्णसे दोगुना शुद्ध अंजनके समान मण्डूरभस्म लेवे मण्डूरको ८ गुनें गोमूत्रमें पकावे। जब पकते २ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण भी इसीमें मिलाकर गूलर फलके समान गोलियें बनालेवे। इनमेंसे अग्निबल विचारकर उचित मात्राके साथ नित्य छाछमें घोलकर पीवे। जब औषध जीर्ण होकर क्षुधा लगे तो तक्रके साथ हितकारी भोजन करे। यह मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको प्राणदायक है तथा कुष्ठ, अजीर्ण, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफके विकार, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहरोग इन सबको शमन करताहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

ताप्यादि चूर्ण।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाःपञ्चपलाः पृथक्। चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैःपालिकैःसह ॥ ७६ ॥ शर्कराष्टदलोन्मिश्राचूर्णिता मधुनाप्लुताः। अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहि जीर्णेनियमिताशिना ॥ ७७॥ कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥ ७८ ॥

सोनामक्खी, शिलाजीत, रूपामक्खी और मण्डूर यह प्रत्येक पांच पांच पल लेवे। चित्रक, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग यह सब एक एक पल लेवे और मिसरी ८ पल लेवे। इन सबको मिलाकर बारीक चूर्ण बनावे। इस चूर्णको शहदमें मिलाकर १ तोला नित्य सेवन कियाकरे। जब औषध जीर्ण होकर भूखलगे तो हलका और पथ्य आहार मात्रानुसार सेवन करे तथा कुलथी, मकोय और कबूतरआदि गरम पदार्थोंको त्याग देवे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

योगराज वटक।

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्य च। भागाश्चित्रकमूलस्यविडङ्गानांतथैवच। पञ्चाश्मजतुनोभागास्तथारूप्यमलस्यच ॥७९॥ माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्यरजसस्तथा। अष्टौभागाः सितायाश्चतत्सर्वंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ८० ॥ माक्षिकेणाप्लुतंस्थाप्यमायसेभाजनेशुभे ॥ उदुम्बरसमांमात्रांततःखादेद्यथाग्निना ॥ ८१ ॥ दिनेदिनेप्रयुञ्जीतजीर्णेभोज्यंयदीप्सितम्। वर्जयित्वाकुलत्थानिकाकमाचीकपोतकम् ॥ ८२ ॥ योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोप-

मः । रसायनमिदंश्रेष्ठंसर्वरोगहरंशिवम् ॥ ८३ ॥ पाण्डुरोगंविषं कासंयक्ष्माणंविषमज्वरम् । कुष्ठान्यजीर्णकंमेहंशोषंश्वासमरोचकम् । विशेषाद्धन्त्यपस्मारंकामलांगुदजानिच ॥ ८४ ॥

त्रिफला ३ भाग, त्रिकुटा ३ भाग, चित्रककी जड और वायविडंग यह दोनों एक एक भाग, शिलाजीत ५ भाग, तथा रूप्यमल (रूपामक्खी या चांदीवाले पहाडकी शिलाजीत) ५ भाग, शुद्ध सोनामक्खी ५ भाग, लोहरज (लोहभस्म) ५ भाग, मिसरी ८ भाग इन सबका बारीक चूर्ण कर शहदमें मिला स्वच्छ लोहेके पात्रमें डालकर रखदेवे । इसमेंसे गूलरफलके समान अथवा अग्निबलानुसार नित्य प्रातःकाल सेवन करे । औषध जीर्ण हो क्षुधा लगनेपर इच्छानुसार पथ्य भोजन करे । परन्तु कुल्थी, मकोय और कपोत आदि उष्ण द्रव्योंको त्यागदे । यह योगराज नामक योग अमृतके समान गुण करनेवाला है । यह श्रेष्ठ रसायन कल्याणदायक और संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाला है । तथा पाण्डुरोग, विषविकार, खांसी, राजयक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, इन सबको दूर करताहै । विशेषकर अपस्मार, कामला और बवासीर आदि गुदाके रोगोंको नष्ट करताहै॥७९–८४॥

शिलाजतु गुटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः । भावितानिदशाहानिरसैर्द्वित्रिगुणानिवा ॥ ८५ ॥ शिलाजतुपलान्यष्टौतावतीसितशर्कराम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यापलोन्मिता ॥ ८६ ॥ निदिग्धाःफलमूलाभ्यांपलंयुक्त्यात्रिगान्धिकम् । चूर्णितंमधुरंकुर्यात्रिपलेनाक्षिकान्गुडान् ॥ ८७ ॥ दाडिमाम्बुपयःपक्षिरसतोयसुरासवान् । पिबेत्तुभक्षयित्वातान्निरन्नोभुक्तएववा ॥ ८८ ॥ पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरान् । पूतिहृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरान् ॥ ८९ ॥ कासासृग्दरपित्तासृक्शोथगुल्मगरामयान् । तेच सर्वव्रणान्हन्युःसर्वरोगहराःशिवाः ॥ ९० ॥

इन्द्रयव, त्रिफला, नीम, पटोलपत्र, नागरमोथा, और सोंठ इन सबके क्वाथमें दश दिन अथवा बीस दिन या तीस दिन तक शिलाजीतकी भावना देवे । फिर यह भावना शिलाजीत ८ पल, मिसरी ८ पल, वंशलोचन १ पल, पीपल १ पल और काकडासिंगी १ पल, कटेलीके फल और जड दोनों मिलाकर १ पल,

दालचीनी, इलायची और तेजपत्र यह तीनो मिलाकर १ पल, शहत ३ पल इन सबको विधिवत् मिला एक एक तोलेकी गोली बनालेवे। इनमेसे १ गोली अथवा अग्निबलानुसार भोजन करनेसे प्रथम अथवा भोजन करनेके अनन्तर सेवन करे। ऊपरसे अनारका रस अथवा दूध या पक्षियोंका मांसरस या केवल जल अथवा आसव पीवे। इसके सेवनसे पाण्डुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहरोग, तमकश्वास, अर्शरोग, भगन्दर, पूतीदोष, हृद्रोग, वीर्यके दोष, मूत्ररोग, जठराग्निदोष, शोषरोग, विषविकार, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, सूजन, गुल्म, गरविकार (दूषीविष) यह सब रोग नष्ट होतेहैं। तथा सब प्रकारके व्रण दूर होतेहैं। यह सब रोगोंको हरनेवाली कल्याणदायक शिलाजितु गुटिकाहै ॥ ८५ ॥ ८६॥ ८७ ॥ ८८॥८९॥९० ॥

पुनर्नवामंडूर गुटिका।

पुनर्नवात्रिवृद्व्योषविडङ्गंदारुचित्रकम्। कुष्ठंहारिद्रेत्रिफलादन्तीचव्यंकलिङ्गकाः॥ ९१ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तश्चेतिपलोन्मितम्। मण्डूरंद्विगुणंचूर्णाद्गोमूत्रेद्व्याढकेपचेत् ॥ ९२ ॥ कोलवद्गुडिकाः कृत्वातक्रेणालोडयनापिबेत्। ताःपाण्डुरोगान्प्लीहानमर्शांसिविषमज्वरम्। श्वयथुंग्रहणीदोषंहन्युःकुष्ठंक्रिमींस्तथा ॥ ९३ ॥

पुनर्नवा, निशोथ, त्रिकुटा, विडंग, देवदारू, चित्रक, कूठ, हल्दी, दारूहल्दी, हरड, बहेडा आँवला, दंती, चव्य, इन्द्रयव, पीपल, पीपलामूल और नागरमोथा इन सबको एक एक पल लेवे। मण्डूर सबसे दोगुना लेवे। पहिले मण्डूरभस्मको एक आढक गोमूत्रमें पकावे। जब पकते २ गाढा होजाय तो उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण मिलाकर बेरके समान गोलियां बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे बलानुसार १ गोली अथवा जितनी मात्रा उचित हो उतनी तक्रमें घोलकर पीजावे। क्षुधा लगनेपर पथ्य भोजन करे। यह पुनर्नवादिमण्डूरगुटिका पाण्डुरोग, प्लीहारोग, अर्शरोग, विषमज्वर, सूजन, ग्रहणीदोष, कुष्ठरोग और क्रमिरोगको दूर करतीहै ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

अन्ययोग।

दार्वीत्वक्त्रिफलाव्योषंविडङ्गमयसोरजः।
मधुसर्पिर्युतंलिह्यात्कामलापाण्डुरोगवान् ॥ ९४ ॥

दारुहल्दीकी छाल, हरड, बहेडे, आँवले, सोंठ, मिर्च, पीपल और वायविडंग, इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे। सबके समान लोहभस्म मिलावे। इसमेंसे मात्रानुसार लेकर शहद और घृतमें मिलाकर चाटे तो कामला और पाण्डुरोग दूर होतेहैं ॥ ९४ ॥

तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राःक्षौद्रसर्पिषा ।
चूर्णिताःकामलीलिह्याद्गुडक्षौद्रेणवाभयाः ॥ ९५ ॥

हरड, हल्दी, और इन दोनोंके समान लोहभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चाटे अथवा हरड और गुडको शहदमें मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर हो ॥९५॥

त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकटुरोहिण्ययोरजः ।
चूर्णितंक्षौद्रसर्पिभ्यांसलेहःकामलापहः ॥ ९६ ॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, लोहभस्म इन सबके बारीक चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे तो कामलारोग दूर होताहै ॥ ९६ ॥

धात्री अवलेह ।

द्विपलांशांतुगाक्षीरींनागरंमधुयष्टिकाम् । प्रास्थिकींपिप्पलींद्राक्षां शर्कराद्धतुलांशुभाम् ॥ ९७ ॥ धात्रीफलरसद्रोणेसुपिष्टंलेहवत्पचेत् । शीतांमधुप्रस्थयुतांलिह्यात्पाणितलंततः । हन्त्येषकामलां पित्तंपाण्डुंकासहलीमकम् ॥ ९८ ॥

वंशलोचन २ पल, सोंठ, मुलैठी, पीपल और द्राक्षा, यह सब एक एक प्रस्थ (एक एक सेर) लेवे । मिसरी आधी तुला (२॥ सेर) ले, आँवलेका रस १ द्रोण लेकर सब वस्तुओंको बारीक पीसकर इस रसमे मिला अवलेहकी भांति पकावे सिद्ध होनेपर नीचे उतार शीतलकरे । फिर इसमें १ पल शहद मिलावे । इसमेंसे नित्य १ तोला प्रमाण सेवन करे तो यह अवलेह कामला, पित्त, पाण्डुरोग, खांसी और हलीमकको दूर करताहै ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

मण्डूरवटक ।

त्र्यूपणंत्रिफलाचव्यंचित्रकोदेवदारुच । विडङ्गान्यथमुस्तानिवत्सकश्चेतिचूर्णयेत् ॥ ९९ ॥ मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णंगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् । शनैःसिद्धास्तथाशीताःकार्य्याःकर्पसमागुडाः ॥ १०० ॥ यथाग्निभक्षणीयास्तेह्रीहपाण्ड्वामयापहाः । ग्रहण्यर्शोनुदश्चैवतक्रवाटयाशिनःस्मृताः ॥ १०१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडे, आमले, चित्रक, चव्य, देवदारू, वायविडंग, नागरमोथा और इन्द्रयव इन सबको समभाग लेकर चूर्ण करे । सबके बराबर उत्तम मण्डूरभस्म लेवे । प्रथम मण्डूरको गोमूत्रमें पकावे । जब गाढा होजाय तो उपरोक्त

औषधियोंके चूर्ण मिलाकर एक एक तोलाकी गोलियें बनालेवे। इस मण्डूरवटकको अग्निबलानुसार सेवन करनेसे प्लीहरोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीविकार अर्शरोग यह सब दूर होतेहैं। इसको सेवन करते हुए तक्र और भुनेहुए यवोंके मण्डका भोजन करना चाहिये॥ ९९॥ १००॥ १०१॥

गौडारिष्ट।

मञ्जिष्ठारजनीद्राक्षाबलामूलान्ययोरजः।
लोध्रश्चैतेपुगौडःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणाम्॥ १०२॥

मजीठ, हल्दी, द्राक्षा, बलाकी जड, लोहचूर्ण, और पठानीलोध इन सबको समभाग लेवे। गुड सबसे चारगुना, और गुडसे चारगुना जल मिलावे। इनका विधिवत् अरिष्ट तैयार करे। यह गौड़अरिष्ट मात्रानुसार सेवन करनेसे पाण्डुरोगको दूर करताहै॥ १०२॥

बीजकारिष्ट।

वीजकात्षोडशपलंत्रिफलायाश्चविंशतिः। द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाः सप्तद्रोणेजलस्यतत्॥१०३॥ साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषेसमावपेत्। शर्करायास्तुलांप्रस्थंमाक्षिकस्यचकार्षिकम्॥ १०४॥ व्योषं व्याघ्रनखोशीरंक्रमुकंसैलवालुकम्। मधूकंकुष्ठमित्येतच्चूर्णितं घृतभाजने। यवेषुदशरात्रंतद्ग्रीष्मेद्विःशिशिरेस्थितम्॥ १०५॥ पिवेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःशोथगुल्मनुत्। मुत्रकृच्छ्राश्मरीमेहकामलासन्निपातनुत्। वीजकारिष्टएवैपआत्रेयेणप्रकीर्त्तितः॥ १०६॥

बिजैसार सोलह पल, त्रिफला बीस पल, द्राक्षा पांच पल, लाख सात, पल, इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे। चतुर्थांश शेप रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर इसमें मिसरी १ तुला, शहद १ प्रस्थ, और त्रिकुटा, व्याघ्रनखी, खस, सुपारी, एलवालुक, महुएके फूल यह सब एक एक कर्ष लेकर चूर्णकर मिलावे। इन सबको घृतके चिकने घडेमें बन्दकर यवोंके ढेरमें गर्मीकी ऋतुमें १० दिन और सर्दीमें २० दिन बन्दकर रक्खे। फिर छानकर सेवन करनेसे, ग्रहणी, पाण्डुरोग, बवासीर, सूजन, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, कामला और सन्निपात यह सब दूर होते हैं। यह बीजक अरिष्ट भगवान् आत्रेयजीने कथन कियाहै॥ १०३-१०६॥

धात्र्यरिष्ट।

धात्रीफलसहस्रेद्वेपीडयित्वारसन्तुतम्॥ क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तंकृ-

ष्णार्द्धकुडवेनच ॥ १०७ ॥ शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रंपक्षंस्निग्धघटेस्थितम् । प्रपिबेन्मात्रयाप्रातर्जीर्णेमितहिताशनः ॥ १०८ ॥ कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान् । कासहिक्कारुचिश्वासांश्चैषोऽरिष्टःप्रणाशयेत् ॥ १०९ ॥

अच्छे पकेहुए आँवलोंके फल २००० लेकर उनको कूटकर रस निचोड लेवे । इस रससे आठवां भाग शहद, दस तोला पीपल और २॥ सेर मिसरी मिलावे । इन सबको एकत्रकर अरिष्टकी विधिसे चिकने घडेमें भरकर बन्द कर १५ दिन रक्खा रहनेदे फिर निकालकर मात्रानुसार पीवे क्षुधा लगनेपर पथ्य भोजन कियाकरे तो कामला, पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि और श्वास यह सब नष्ट होतेहैं ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

पांडुरोगमें जल ।

स्थिरादिभिःशृतंतोयंपानाहारेप्रशस्यते ।
पाण्डूनांकामलार्त्तानांमृद्वीकामलकीरसः ॥ ११० ॥

पाण्डुरोगीको शालपर्ण्यादिगणमे सिद्धकिया जल पीने और आहारमें प्रयोग करना हित है । और कामलारोगीके लिये दाखका और आँवलेका रस अथवा इनसे सिद्ध किया हुआ जल हितकारी है ॥ ११० ॥

वैद्योंको उपदेश ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमितिप्रोक्तंमहर्षिणा ।
विकल्पमेतद्भिषजापृथग्दोषबलंप्रति ॥ १११ ॥
वातिकेस्नेहभूयिष्ठंपैत्तिकेतिक्तशीतलम् ।
श्लैष्मिकेकटुतिक्तोष्णंविमिश्रंसान्निपातिके ॥ ११२ ॥

इस प्रकार पाण्डुरोगकी शान्तिके लिये भगवान् आत्रेयजीने चिकित्साका कथन कियाहै । बुद्धिमान् वैद्यको पृथक् २ दोष, बल आदि विचारकर औषधकी मात्राकी कल्पना करना चाहिये । वातजनित पाण्डुमें स्नेहविशेषक्रिया करना चाहिये । पित्तके पाण्डुमें तिक्त और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करना चाहिये । कफजनित पाण्डुमें तिक्त, कटु और उष्णद्रव्योंसे प्रायः चिकित्सा करना चाहिये । और सन्निपातके पाण्डुमें सब प्रकार मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये ॥ १११ ॥ ११२ ॥

मृद्भक्षणजनित पाण्डुकी चिकित्सा ।

निष्पातयेच्छरीरात्तुमृत्तिकांभक्षितांभिषक् । युक्तिज्ञःशोधनैस्ती-

क्ष्णैःप्रसमीक्ष्यबलाबलम् ॥ ११३ ॥ शुद्धकायस्यसर्पींषिबलाधानानियोजयेत् ॥ ११४ ॥

मट्टीखानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगमें रोगीका बलाबल विचार युक्तिको जाननेवाला वैद्य तीक्ष्ण शोधनों द्वारा उसके शरीरसे मट्टीका विकार निकालडाले । जब देखे कि रोगीका शरीर शुद्ध होगया तो उसके शरीरमें बल प्राप्त करनेके लिये घृतोंका सेवन करावे ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

मृद्दोषनाशकघृत ।

व्योषंबिल्वंहरिद्रेद्वेत्रिफलाद्वेपुनर्नवे । मुस्तान्ययोरजःपाठाविडङ्गं देवदारुच । वृश्चिकालीचभार्गीचसक्षीरैस्तैःसमैर्घृतम् ॥ ११५ ॥ साधयित्वापिबेद्युक्त्यानरोमृद्दोषपीडितः । तद्वत्केशरयष्ट्याह्वपिप्पलीमूलशाद्वलैः ॥ ११६ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ बेलगिरी, हल्दी, दारूहल्दी, हरड, बहेडे, आँवले, दोनों प्रकारकी पुनर्नवा, नागरमोथा, लोहभस्म, पाटला, बायविडंग, देवदारु, वृश्चिकपत्रिका, और भार्ङ्गी इन सबका कल्क करके इस कल्कसे चारगुनी घृतसे चार-गुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करे । मृत्तिकाके दोषसे पीडित हुआ मनुष्य इस घृतके पीनेसे आरोग्यताको प्राप्त होताहै उसी प्रकार नागकेशर, मुलैठी, पीपल, पीपलामूल, और शाद्वल इनके कल्कसे पूर्वोक्त रीतिसे सिद्ध किया घृत मट्टीखानेसे उत्पन्न हुए पाण्डुरोगको दूर करताहै ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

पांडुमें देनेयोग्य मट्टी ।

मृद्भक्षणादातुरस्यलोभादविनिवर्त्तिनः । द्वेष्यार्थंभावितांकामंदद्यात्तद्दोषनाशनैः ॥ ११७ ॥ विडङ्गैलातिविषयानिम्बपत्रेणपाठया । वार्त्ताकैःकटुरोहिण्याकौटजैर्मूर्वयापिवा ॥ ११८ ॥

जो रोगी मट्टीको अत्यंत खाताहो और किसी प्रकार मट्टी खानेसे बन्द न हो तो उसको मृत्तिकादोष नाशक द्रव्योंकी भावना दीहुई मट्टी, मट्टीमें अनिच्छा उत्पन्न करनेके लिये उसको यथेच्छ खानेके लिये देवे । जिन द्रव्योंसे मट्टीको भावना देना चाहिये वह यह हैं । अतीस, नीम, बायविडंग, इन्द्रयव, बंडी कटेली, कुटकी, पाटला और मूर्वा ॥ ११७ ॥ ११८ ॥

यथादोषंप्रकुर्वीतभैषज्यंपाण्डुरोगिणाम् ।
क्रियाविशेषएषोऽस्यमतोहेतुविशेषतः ॥ ११९ ॥

पाण्डुरोगियोंकी दोष विचारकर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि कारण विशेषसे ही क्रियामें भी अन्तर (विशेष) होताहै ॥ ११९ ॥

तिलपिष्टनिभंयस्तुवर्चःसृजतिकामली ।
श्लेष्मणारुद्धमार्गतत्पित्तंकफहरैर्जयेत् ॥ १२० ॥

जो कामलावाला रोगी तिलोंकी पिट्ठीके समान मलको त्यागताहै उसके कफ-द्वारा शरीरके मार्ग बन्द होजातेहैं । इसीलिये उसके पित्तको कफनाशक द्रव्योंके, संयोगसे जीतना चाहिये ॥ १२० ॥

शाखाश्रित पित्तके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगनिग्रहैः । कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तंक्षिपेद्बली ॥ १२१ ॥ हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा-नरः । भवेत्साटोपविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच ॥ १२२ ॥ दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासारुचिज्वरैः । क्रमेणाल्पेनसज्येतपित्तेशाखासमाश्रिते ॥ १२३ ॥

रूक्ष, शीतल, भारी, और मीठे पदार्थोंको सेवन करनेसे, व्यायाम न करनेसे, मलादि वेगोंको रोकलेनेसे वायु कफ संयुक्त होकर पित्तको पित्तके स्थानसे निकाल देताहै । तब रोगीके नेत्र, मूत्र, त्वचा यह सब हल्दीके समान होजातेहैं । और मल सफेद वर्णका आने लगताहै । तथा अफारा, विष्टम्भ, हृदयमें भारीपन, दुवर्लता, मंदाग्नि, पार्श्वपीडा, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर यह उपद्रव जब पित्त शाखाश्रित होताहै तो शीघ्र उत्पन्न होजातेहैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

शाखाश्रितमें क्रम ।

बर्हितित्तिरिदक्षाणांरूक्षाम्लैःकटुकैरसैः । शुष्कमूलककौलत्थैर्यूषैश्चान्नानिभोजयेत् ॥ १२४ ॥ मातुलुङ्गरसंक्षौद्रंपिप्पलीमरिचान्वितम् । सनागरंपिबेत्पित्तंतथास्यैतिस्वमाशयम् ॥ १२५ ॥ वृक्षाम्लैः कटुरूक्षोष्णैर्लवणैश्चाप्युपक्रमः । आपित्तरोगाच्चकुतोवायोश्चाप्रशमाद्भवेत् ॥ १२६ ॥ स्वस्थानमागतेपित्तेपुरीषेपित्तरञ्जिते । निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वः कामलिकोविधिः ॥ १२७ ॥

मोर, तीतर, मुर्गेके मांसरसको रूक्ष, अम्ल और कटु द्रव्योंसे सिद्धकर अथवा सूखी मूली और कुल्थीके यूषके साथ भोजन करानेसे शाखाश्रित पित्त फिर अपने

स्थानमें आजाताहै । विजौरेके रसमें शहद, पीपल, मिर्च और सोंठ मिलाकर पीनेसे शाखाश्रित पित्त अपने स्थानमें आजाताहै । जब तक शाखाश्रित पित्तमें पित्तकी अरुणता न आवे और पित्त मिश्रित वायुकी शान्ति न हो तवतक इमली, कटु, रूक्ष, उष्ण और लवण द्रव्योंसे चिकित्सा करे । ऐसा करनेसे शाखागत पित्त कफ और वायुके शान्त होनेसे अपने स्थानमें आजाताहै । पित्तके अपने स्थानमें आनेसे जब मलमें पित्तकी लाली आजातीहै तो संपूर्ण उपद्रव भी शान्त होजातेहैं । जब इस प्रकार शाखाश्रित दोष निवृत्त होजांय तब पहिले कही विधिसे कामलाकी चिकित्सा करे । यह संपूर्ण विधि कफ वात, दूपित पित्तके शाखाश्रित होनेपर पित्तको चिकित्सासाध्य करनेके लिये ही कीजातीहै । अन्य स्थानमें यह उपक्रम हानिकारक होताहै ॥ १२४–१२७ ॥

हलीमकके लक्षण ।

यदातुपाण्डोर्वर्णःस्याद्धरितश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामन्दाग्नित्वंमृदुज्वरः ॥ १२८ ॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्चश्वासस्तृष्णारुचिर्भ्रमः । हलीमकंतदातस्यविद्यादनिलपित्ततः ॥ १२९ ॥

जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला, अथवा पीला होजाताहै । बल और उत्साहका क्षय होजाय । तन्द्रा, मंदाग्नि, मंदज्वर, स्त्रीसंगमें अनिच्छा, अंगडाई, श्वास, तृषा, अरुचि और भ्रम यह लक्षण होतेहैं तब उस मनुष्यको वातपित्तके कोपसे हलीमक रोग उत्पन्न होगया ऐसा जानना चाहिये ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

हलीमककी चिकित्सा ।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितंमाहिषंघृतम् । सपिबेत्त्रिवृतांस्निग्धरसेनामलकस्यतु ॥ १३० ॥ विरिक्तोमधुरप्रायंभजेत्पित्तानिलापहम्। द्राक्षालेहंचपूर्वोक्तंसर्पींपिमधुराणिच ॥ १३१ ॥ यापनान्क्षीरबस्तींश्चशीलयेत्सानुवासनान्। मार्द्वीकारिष्टयोगांश्चपिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये ॥ १३२ ॥ कासिकश्चाभयालेहंपिप्पलींमधुकंबलाम् । पयसा चप्रयुञ्जीतयथादोषंयथाबलम् ॥ १३३ ॥

गिलोयका स्वरस, दूध और भैंसका घृत इन सबको समभाग लेकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतसे हलीमक रोगीको स्निग्धकर निशोयके चूर्णको आँवलेके रसके साथ पिलावे जब अच्छी तरह विरेचन होचुके तो मधुरप्राय आहार और औषधका सेवन करे । तथा पूर्वोक्त द्राक्षावलेह और मधुर

द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और यापनवस्ति, क्षीरवस्ति, अनुवासनवस्ति इनका विधिवत् प्रयोग करे । और द्राक्षारिष्ट आदि हितकारक अरिष्टोंका विधिवत् जठराग्निकी वृद्धिके लिये पान करे । अथवा कासाधिकारमें कहेहुए अभयावलेह अथवा पीपल, मुलैठी और बलाको दोष बल विचार दूधके साथ प्रयोग करे तो हलीमक रोग शान्त होताहै ॥ १३०–१३३ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ ।

पाण्डोःपञ्चविधस्योक्तंहेतुलक्षणभेषजम् । कामलाद्विविधाचैवसाध्यासाध्यत्वमेवच ॥ १३४ ॥ तेषांविकल्पोयश्चान्योमहाव्याधिर्हलीमकः । तस्यचोक्तंसमासेनव्यञ्जनंसचिकित्सितम् ॥ १३५ ॥

इतिश्री चरक० चिकि० पाण्डु चिकित्सितंनामविंशोऽध्यायः ॥२०॥

अब अध्यायके उपसंहारमें यह दो श्लोक हैं । कि इस पाण्डुचिकित्सित अध्यायमें भगवान आत्रेयजीने पाण्डुरोगके हेतु, लक्षण, औषधियें, दो प्रकारके कामला उनकी साध्य असाध्यता, वातादिभेदसे पाण्डुके विकल्प और औषधी कल्पना तथा अन्य हलीमकआदि महाव्याधिके संक्षेपसे लक्षण और चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

इति श्रीच० चिकित्सा स्थाने प्र० भा० टी० पाण्डुचिकित्सितं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकाविंशोऽध्यायः ।

अथातो हिक्काचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम हिक्काश्वासचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान आत्रेयजी कहनेलगे ।

वेदलोकार्थतत्त्वज्ञमात्रेयमृषिमुत्तमम् । अपृच्छत्संशयंधीमानग्निवेशःकृताञ्जलिः ॥ १ ॥ यइमेद्विविधाःप्रोक्तास्त्रिदोषास्त्रिप्रकोपणाः । रोगानानात्मकास्तेषांकस्कोभवतिदुर्जयः ॥ २ ॥

लौकिक और वैदिक विषयोंके तत्त्वको जाननेवाले महर्षि आत्रेयजीसे बुद्धिमान अग्निवेशजी हाथ जोडकर इस संशयको पूछनेलगे कि हे भगवन् ! निज और आगंतुज अथवा शारीरिक और मानसिक भेदसे संपूर्ण रोग दो प्रकारके कहेगयेहैं तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकोपके कारण यह सब श्रीमान्ने कथन कर दियाहै ।

अब कृपया यह कहिये कि उन नानात्मक (अनेक) प्रकारके रोगोंमें जो जीतनेमें न आसकताहो ऐसा दुर्जय कौन २ सा रोग है ॥ १ ॥ २ ॥

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमतांवरः । उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयम् ॥ ३ ॥ कामंप्राणहरारोगावहवोनतुतेतथा । यथा श्वासश्चहिक्काचप्राणानाशुनिकृन्ततः ॥ ४ ॥ अन्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्विधैः । अन्तेसञ्जायतेहिक्काश्वासोवातीव्रवेदनः ॥ ५ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके प्रश्नको सुनकर बुद्धिवानोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी प्रीतिपूर्वक इस प्रकार निश्चयात्मक वाक्य कहनेलगे कि हे सौम्य ! यद्यपि प्राणोंको हरनेवाले अनेक प्रकारके दुर्जय रोग हैं परंतु उनमें जैसे श्वास और हिचकी हठात् प्राणोंका नाश करतीहै इस प्रकार अन्य रोग नहीं करते । अन्य अनेक रोगोंसे पीडित मनुष्योंको भी अंत (मरणासन्न) समयमें हिचकी उत्पन्न होजातीहै अथवा तीव्र कष्टदायक श्वास होजाताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ । हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ ॥ ६ ॥ तस्मात्साधारणावेतौमतौसमसुदुर्जयौ । मिथ्योपचरितौक्रुद्धौहतावाशीविषाविव ॥ ७ ॥ पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे । तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गञ्चसभिषग्जितम् ॥ ८ ॥

यह दोनों रोग कफ और वातात्मक हैं और पित्तस्थानसे उत्पन्न होतेहैं । यह दोनों हृदयस्थ रसादि धातुओंको सुखानेवाले हैं इसलिये साधारण रूपसेही दुर्जय हैं । हिचकी और श्वास मिथ्या उपचार होनेसे अर्थात् आहार विहारका अनुचित योग होनेसे कुपित होकर आशीविषके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेतेहैं । इन दोनोंके पांच २ भेद सूत्रस्थानमें कहचुकेहैं । अब इन दोनोंके कारण और लक्षणों और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

हिक्का और श्वासके हेतु ।

रजसाधूमवाताभ्यांशीतस्थानाम्बुसेवनात् । व्यायामाद्ग्राम्यधर्माध्वरूक्षान्नविषमाशनात् ॥ ९ ॥ आमप्रदोषादानाहाद्रौक्ष्यादत्यपतर्पणात् । दौर्बल्यान्मर्मणोघाताद्द्वन्द्वाच्छुद्ध्यतियोगतः ॥ १० ॥ अतीसारज्वरच्छर्दिप्रतिश्यायक्षतक्षयात् । रक्तपित्तादुदावर्त्ताद्वि-

पूच्यलसकादपि ॥ ११ ॥ पाण्डुरोगाद्विषाच्चैवप्रवर्तेतेगदाविमौ । निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ १२ ॥ पिष्टशालूकविष्टम्भिविदाहिगुरुभोजनात् । जलजानूपपिशितदध्यामक्षीरसेवनात् ॥ १३ ॥ अभिष्यन्दुपचाराच्चश्लेष्मलानाञ्चसेवनात् । कण्ठोरसोःप्रतीघाताद्विबन्धैश्चपृथग्विधैः ॥ १४ ॥ मारुतःप्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्यकुप्यति । उरःस्थःकफमुद्धूयहिक्काश्वासान्करोतिसः ॥ १५ ॥ घोरान्प्राणोपरोधायप्राणिनांपञ्चपञ्चच । उभयोः पूर्वरूपाणिशृणुवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ १६ ॥

गर्दा, धूम्र और विकृत वायुके लगनेसे, शीतल स्थानमें रहनेसे, अत्यंत शीतल जल पीनेसे, अति व्यायाम, मैथुन, मार्गश्रम, रूक्ष अन्नका सेवन, विषम भोजन करनेसे और आमदोषके बढनेसे, अफारा, रूक्षता, अनशन, दुर्बलता और मर्मस्थानमें किसी प्रकार उपघात पहुंचनेसे, वमन, विरेचनके अतियोगसे अतिसार, ज्वर, वमन, प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसूचिका,अलसक, पाण्डुरोग और विषविकार इनमेंसे किसी रोगके होनेसे हिचकी और श्वास यह दोनों रोग प्रवृत्त होतेहैं। तथा निष्पाव (सेम आदि) उडद, पिण्याक, तिल और तेलके अत्यंत सेवनसे, पिष्टअन्न, कमलकंद, विष्टम्भी पदार्थ, विदाही और भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन करनेसे तथा जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, दही और कच्चे दूधके अधिक सेवनसे, अभिष्यन्दी (क्लेदकारक) आहार विहारके करनेसे, कफकारी द्रव्योंके अधिक सेवनसे तथा कण्ठ और छातीमें किसी प्रकारका आघात पहुंचनेसे और किसी प्रकारके विबंधके होनेसे वायु प्राणवाही स्रोतोंमें प्राप्त होकर कुपित होजातीहै। तब वह वायु छातीमेंसे कफको उखाडकर मनुष्योंके प्राणोंको घोर कष्ट देनेके लिये अथवा रोक देनेके लिये पांच पांच प्रकारके घोर हिचकी और श्वासरोगको उत्पन्न करताहै। अब इन दोनोंके पूर्वरूपोंको कथन करतेहैं, सो श्रवण करे ॥ ९-१६ ॥

हिक्काके पूर्वरूप ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्चवदनस्यकषायता ।
हिक्कानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ १७ ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन प्रतीत होना, मुखमें कसैलापन, दोनों कुक्षियोंका फूलना यह हिचकी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्वासके पूर्वरूप।

आनाहःपार्श्वशूलश्वपीडनंहृदयस्यच ।
प्राणस्यचविलोमत्वंश्वासानांपूर्वलक्षणम् ॥ १८ ॥

अफारा, पार्श्वशूल, हृदयका पीडन होना, प्राणवायुका नीचेसे ऊपरको उलट आना यह श्वासरोगके पूर्वरूप हैं ॥ १८ ॥

प्राणोदकान्नवाहीनिस्रोतांसिसकफोनिलः ।
हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासांलिङ्गंपृथक्शृणु ॥ १९ ॥

कफयुक्त वायु प्राणवाही और जलवाही तथा अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिक्का (हिचकी) को उत्पन्न करताहै। उस हिक्कारोगके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १९ ॥

महाहिक्काके लक्षण।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः। गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्घोषवतीभृशम्। करोतिसततंहिक्कामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥ २० ॥ प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुध्योष्माणमेवच। संज्ञांमुष्णातिगात्रेच स्तम्भंसञ्जनयत्यपि ॥ २१ ॥ मार्गश्चैवान्नपानानांरुणद्ध्यपहत-स्मृतेः। साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतभ्रुवः ॥ २२ ॥ सक्त-जल्पप्रलापस्यनिर्वृतिंनाधिगच्छतः। महातेजामहावेगामहाशब्दामहाबला। महाहिक्केतिसानृणांसद्यःप्राणहरामता ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका किसी व्याधि आदिसे मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगयेहों उसके कण्ठको ग्रहण कर वायु और कफ सहसा ऊंचे शब्दवाली घोर हिचकीको उत्पन्न करताहै। वह हिचकी एक दो तीन बार घोर शब्दके साथ एकदम आतीहै। उससे रोगीके प्राणको वहन करनेवाले संपूर्ण छिद्र, मर्म, और ऊष्मा (जठराग्नि) तथा संज्ञाका अवरोध होताहै। और सब अंग गरम तथा स्तब्ध होजातेहै। एवं अन्नजलके मार्गका अवरोध, स्मृतिनाश, दोनों नेत्रोंका आँसुओंसे भरजाना, दोनों कनपटियोंका स्तब्ध होना, दोनो भौहोंका गिरजाजाना, बोलनेकी शक्ति बन्द होजाना और किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होना यह महावेगा, महातेजा, महाशब्दा और महाबला महाहिक्का मनुष्योंके प्राणोंको शीघ्र हरनेवाली है ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

पूच्यलसकादपि ॥ ११ ॥ पाण्डुरोगाद्विपाच्चैवप्रवर्तेतेगदाविमौ । निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ १२ ॥ पिष्टशालूकविष्टम्भिविदाहिगुरुभोजनात् । जलजानूपपिशितदध्यामक्षीरसेवनात् ॥ १३ ॥ अभिष्यन्दुपचाराच्चश्लेष्मलानाञ्चसेवनात् । कण्ठोरसोःप्रतीघाताद्विबन्धैश्चपृथग्विधैः ॥ १४ ॥ मारुतःप्राणवाहीनि स्रोतांस्याविश्यकुप्यति । उरःस्थःकफमुद्धूयहिक्काश्वासान्करोतिसः ॥ १५ ॥ घोरान्प्राणोपरोधायप्राणिनांपञ्चपञ्चच । उभयोः पूर्वरूपाणिशृणुवक्ष्याम्यतःपरम् ॥ १६ ॥

गर्दा, धूम्र और विकृत वायुके लगनेसे, शीतल स्थानमें रहनेसे, अत्यंत शीतल जल पीनेसे, अति व्यायाम, मैथुन, मार्गश्रम, रूक्ष अन्नका सेवन, विषम भोजन करनेसे और आमदोषके बढनेसे, अफारा, रूक्षता, अनशन, दुर्बलता और मर्मस्थानमें किसी प्रकार उपघात पहुंचनेसे, वमन, विरेचनके अतियोगसे अतिसार, ज्वर, वमन, प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त्त, विसूचिका, अलसक, पाण्डुरोग और विषविकार इनमेंसे किसी रोगके होनेसे हिचकी और श्वास यह दोनों रोग प्रवृत्त होतेहैं । तथा निष्पाव (सेम आदि) उडद, पिण्याक, तिल और तेलके अत्यंत सेवनसे, पिष्टअन्न, कमलकंद, विष्टम्भी पदार्थ, विदाही और भारी पदार्थोंका अत्यंत सेवन करनेसे तथा जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस, दही और कच्चे दूधके अधिक सेवनसे, अभिष्यन्दी (क्लेदकारक) आहार विहारके करनेसे, कफकारी द्रव्योंके अधिक सेवनसे तथा कण्ठ और छातीमें किसी प्रकारका आघात पहुंचनेसे और किसी प्रकारके विबंधके होनेसे वायु प्राणवाही स्रोतोंमें प्राप्त होकर कुपित होजाताहै । तब वह वायु छातीमेंसे कफको उखाडकर मनुष्योंके प्राणोंको घोर कष्ट देनेके लिये अथवा रोक देनेके लिये पांच पांच प्रकारके घोर हिचकी और श्वासरोगको उत्पन्न करताहै । अब इन दोनोंके पूर्वरूपोंको कथन करतेहैं, सो श्रवण करे ॥ ९–१६ ॥

हिक्काके पूर्वरूप ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्चवदनस्यकषायता ।
हिक्कानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ १७ ॥

कण्ठ और छातीमें भारीपन प्रतीत होना, मुखमें कसैलापन, दोनों कुक्षियोंका फूलना यह हिचकी रोगके पूर्वरूप हैं ॥ १७ ॥

श्वासके पूर्वरूप।

आनाहःपार्श्वशूलञ्चपीडनंहृदयस्यच।
प्राणस्यचविलोमत्वंश्वासानांपूर्वलक्षणम्॥ १८॥

अफारा, पार्श्वशूल, हृदयका पीडन होना, प्राणवायुका नीचेसे ऊपरको उलट आना यह श्वासरोगके पूर्वरूप हैं॥ १८॥

प्राणोदकान्नवाहीनिस्रोतांसिसकफोनिलः।
हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासांलिङ्गंपृथक्छृणु॥ १९॥

कफयुक्त वायु प्राणवाही और जलवाही तथा अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिक्का (हिचकी) को उत्पन्न करताहै। उस हिक्कारोगके पृथक् २ लक्षणोंको श्रवण करो॥ १९॥

महाहिक्काके लक्षण।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः। गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्घोषवतीभृशम्। करोतिसततंहिक्कामेकद्वित्रिगुणांतथा॥ २०॥ प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुध्योष्माणमेवच। संज्ञांमुष्णातिगात्रेच स्तम्भंसञ्जनयत्यपि॥ २१॥ मार्गंश्चैवान्नपानानांरुणद्ध्यपहतस्मृतेः। साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतभ्रुवः॥ २२॥ सक्तजल्पप्रलापस्यनिर्वृतिंनाधिगच्छतः। महातेजामहावेगामहाशब्दामहाबला। महाहिक्केतिसानॄणांसद्यःप्राणहरामता॥ २३॥

जिस मनुष्यका किसी व्याधि आदिसे मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगयेहों उसके कण्ठको ग्रहण कर वायु और कफ सहसा ऊंचे शब्दवाली घोर हिचकीको उत्पन्न करताहै। वह हिचकी एक दो तीन वार घोर शब्दके साथ एकदम आतीहै। उससे रोगीके प्राणको वहन करनेवाले संपूर्ण छिद्र, मर्म, और ऊष्मा (जठराग्नि) तथा संज्ञाका अवरोध होताहै। और सब अंग गरम तथा स्तब्ध होजातेहैं। एवं अन्नजलके मार्गका अवरोध, स्मृतिनाश, दोनों नेत्रोंका आँसुओंसे भरजाना, दोनों कनपटियोंका स्तब्ध होना, दोनो भौहोंका गिरजाना, बोलनेकी शक्ति बन्द होजाना और किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त न होना यह महावेगा, महातेजा, महाशब्दा और महाबला महाहिक्का मनुष्योंके प्राणोंको शीघ्र हरनेवाली है॥ २०॥ २१॥ २२॥ २३॥

गंभीराके लक्षण ।

हिक्कतेयःप्रवृद्धस्तुकृशोदीनमनानरः । जर्जरेणोरसाकृच्छ्रंगम्भीरमनुनादयन् ॥ २४ ॥ संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन् । पार्श्वेचोभेसमायम्यकूजन्स्तम्भरुगर्दितः ॥ २५ ॥ नाभेःपक्वाशयाद्वापिहिक्काचास्योपजायते । क्षोभयन्तीभृशंदेहंनामयन्तीवताम्यतः ॥ २६ ॥ रुणद्ध्युच्छ्वासमार्गन्तुप्रनष्टबलचेतसः । गम्भीरनामासातस्यहिक्काप्राणान्तिकीमता ॥ २७ ॥

जिस हिचकीके आनेमें मारे हिचकियोंके रोगी कृश और दीन होजाय, हृदयमें जर्जरता प्रतीतहो, हिचकीका गंभीर शब्द हो अथवा गंभीर स्थानसे आतीहो, अतिकष्टसे बाहर निकलती हो, रोगी जंभाईके साथ हिचकी आनेके कष्टसे हाथपावोंको फैलाफैलाकर पटकताहो एक वार एक पसुली, दूसरी वार दूसरी पसुली, फूलकर तनतीहो, रोगी कण्ठसे शब्द करताहुआ स्तम्भित और हिचकीकी पीडासे व्याकुल हो, हिचकी नाभि पक्वाशयसे आतीहो और रोगीके शरीरको अत्यन्त क्षोभित कर नवादेतीहै । रोगी उससे व्याकुल हो, श्वास लेनेके मार्गको हिचकी रोकदेवे । रोगीके बल और चैतन्यताको नष्ट करदेवे, उसको प्राणनाशक गंभीरानामक हिचकी कहतेहैं । यह गंभीरस्थानसे उत्पन्न होती है इसलिये इसको गंभीरा कहतेहैं वैसे तो महाहिक्काके समान ही प्राणनाशक है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

व्यपेताके लक्षण ।

व्यपेताजायतेहिक्कायान्नपानेचतुर्विधे । आहारपरिणामान्तेभूयश्च लभतेबलम् ॥ २८ ॥ प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्त्तस्यविचेतसः । सजृम्भस्यप्लुताक्षस्यशुष्कास्यस्यविनामिनः ॥ २९ ॥ पर्य्याध्मातस्यहिक्कायाजत्रुमूलादसन्तता । साव्यपेतेतिविज्ञेयाहिक्काप्राणोपरोधनी ॥ ३० ॥

जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चार प्रकारके अन्नपान करनेके अनन्तर जब आहारके परिपाकका समय आवे उस समय अधिक बलको प्राप्त हो उसमें प्रलाप, वमन, अतिसार, प्यास इनसे पीडित हुआ रोगी संज्ञाहीन होजाय और जंभाई, अश्रुस्राव, मुखका सूखना, शरीरका नवजाना, पेटमें अत्यंत अफारा हो तथा हिचकी जत्रुस्थानके मूलमे उत्पन्न होतीहो उस प्राणोंको उपरोध करनेवाली हिचकीको व्यपेता अथवा यमिका कहतेहैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

क्षुद्रहिक्काके लक्षण।

क्षुद्रवातोयदाकोष्ठाद्व्यायामपरिघट्टितः। कण्ठेप्रपद्यतेहिक्कांतदा- क्षुद्रांकरोतिसः॥ ३१॥ अतिदुःखानसाचोरःशिरोमर्मप्रबोधिनी। नचोच्छ्वासान्नपानानांमार्गमावृत्यतिष्ठति ॥ ३२ ॥ वृद्धिमाय- स्यतोयातिभक्तमात्रेचमार्दवम् । यतःप्रवर्त्ततेपूर्वंततएवनिव- र्त्तते ॥ ३३ ॥ हृदयंक्लोमकण्ठश्चतालुकश्चसमाश्रिता। मृद्वीसाक्षु- द्रहिक्केतिनृणांसाध्याप्रकीर्त्तिता ॥ ३४॥

जब क्षुद्रवायु अत्यंत परिश्रमके करनेसे परिघट्टित होकरं कण्ठमें प्राप्त होतीहै तब क्षुद्रानामक हिचकीको उत्पन्न करतीहै। यह हिचकी कष्टको देनेवाली नहीं होती। छाती, मस्तक और हृदयमें पीडाको करती है। श्वासके और अन्नपानके वहन करने- वाले मार्गको नहीं रोकती परिश्रमके करनेसे वृद्धिको प्राप्त होतीहै और भोजन करने- पर नरम पडजातीहै। जिस कारणसे पहिले उत्पन्न होतीहै उसीसे निवृत्त होतीहै। और यह हृदय, क्लोम, कण्ठ और तालुके आश्रित होतीहै। यह मृद्वी (हल्की) हिचकी क्षुद्रानामसे कहीजातीहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अन्नजाहिक्काके लक्षण।

सहसात्यभ्यवहृतैःपानान्नैःपीडितोनिलः। ऊर्ध्वंप्रपद्यतेकोष्ठान्मद्यै- र्वातिमदप्रदैः ॥ ३५ ॥ तथानिरोपभाष्याध्वभारातिपरिवर्त्तनैः । वायुःकोष्ठगतोधावन्पानभोज्यप्रपीडितः ॥ ३६ ॥ उरःस्रोतःस- माविश्यकुर्य्याद्धिक्कांततोऽन्नजाम् । तथाशनैरसम्बन्धंक्षुवंश्चापि सहिक्कते ॥ ३७ ॥ नमर्मबाधाजननीनेन्द्रियाणांप्रबाधिनी । हिक्कापीतेतथाभुक्तेशमंयातिचसान्नजा ॥ ३८ ॥

सहसा अन्नपानके करनेसे झट २ भोजन करनेसे अथवा अत्यंत मदको करनेवाली मद्यके पीनेसे पीडित हुआ कोष्ठ वायु ऊपरको गमनकर, अथवा क्रोधके समय या बोलतेहुए अथवा भार उठाकर या भागतेहुए अन्नपानको भक्षण करनेसे पीडित हुआ कोष्ठवायु छातीके स्रोतोंमें प्राप्त होकर अन्नजा नामक हिचकीको उत्पन्न करताहै। यह हिचकी कभी तो भोजन करते ही आने लगतीहै, कभी छींकके साथ आतीहै और भोजनके समय नहीं आती। इस हिचकीमें हृदय आदि मर्म-

१ अन्नवायु अथवा अल्पहेतुओंसे अल्प कुपित वायु।

स्थानमे किसी प्रकारकी पीडा नहीं होती न इन्द्रियोंमे किसी प्रकारकी बाधा होती है। यह अन्नजा हिचकी भोजनकरने और पानी पीनेसे ही शान्त होजाती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

हिक्काकी साध्यासाध्यता ।

अतिसञ्चितदोषस्यभक्तच्छेदकृशस्यच । व्याधिभिःक्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ ३९ ॥ आसांयासासमुत्पन्नाहिक्काहन्त्याशुजीवितम् । यमिकाचप्रलापार्त्तितृष्णामोहसमन्विता ॥ ४० ॥ अक्षीणश्चाप्यदीनश्चस्थिरधात्विन्द्रियश्चयः । तस्यसाधयितुंशक्या यमिकाहन्त्यतोन्यथा ॥ ४१ ॥

जिस रोगीके शरीरमे संपूर्ण दोप अत्यंत बढे हो और अन्नमे अरुचि हो भोजन न करनेसे कृश होगयाहो, अथवा रोगोंसे अत्यंत क्षीण होगयाहो और वृद्ध अथवा अत्यंत मैथुनमें आसक्त हो ऐसे मनुष्यको महाहिक्का आदि कोई एक प्रकारकी हिचकी उत्पन्न होजाय तो शीघ्र प्राणोको नष्ट करदेतीहै । और यमिका (व्यपेता) हिचकीमे यदि प्रलाप, शूल, प्यास और मोह हो तो वह भी असाध्य जानना। परन्तु जो रोगी क्षीण न हो और कृश न हुआ हो तथा बलवान् हो, संपूर्ण इन्द्रियें और धातु स्थिर हो तो यमिका हिचकी साध्य होसकती है अन्यथा असाध्य है ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

श्वासरोगकी संप्राप्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुध्यमारुतःकफपूर्वकः ।
विष्वग्व्रजतिसंरुद्धस्तदाश्वासान्करोतिसः ॥ ४२ ॥

जब कफसे युक्तहुई वायु प्राणवाही स्रोतोंको रोकदेतीहै तो रुकजानेसे कोपको प्राप्त होकर श्वासरोगको उत्पन्न करतीहे ॥ ४२ ॥

महाश्वासके लक्षण ।

उद्धूयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः । उच्चैःश्वसितिसंरुद्धोमत्तर्षभइवानिशम् ॥ ४३ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलोचनः । विकृताक्षाननोबद्धमूत्रवर्चाविशीर्णवाक् ॥ ४४ ॥ दीनः प्रश्वसितश्चास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् । महाश्वासोपसृष्टःसक्षिप्रमेवप्रपद्यते ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य ऊर्द्धगामी वायुके उद्धूयमान होनेसे कठिनतासे श्वास लेताहुआ मतवाले बैलके समान ऊंचे शब्दके साथ निरन्तर कष्टसे श्वास छोडताहै और संज्ञाहीन, ज्ञानहीन, विभ्रान्त और विकृत नेत्र और विकृत मुख हो तथा उसका मल और मूत्र रुकजाय, जबानसे कठिनतापूर्वक बिखरेहुए शब्द उच्चारण करे और अत्यंत दीन हो उसको वैद्य महाश्वासग्रस्त जानकर दूरसे ही त्याग देवे। यह महाश्वास रोगीको शीघ्र मारडालताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

ऊर्द्ध्वश्वासके लक्षण।

दीर्घंश्वसितियस्तूर्द्ध्वंनचप्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोतःक्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥४६॥ ऊर्द्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रान्ताक्षइतस्ततः। प्रमुह्यन्वेदनार्त्तश्चशुष्कास्योतिनिपीडितः ॥ ४७ ॥ उर्द्ध्वश्वासंप्रवृत्तेचयश्चाधःश्वासरोधभाक्। मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्द्ध्वश्वासस्तस्यैवहन्त्यसून् ॥ ४८ ॥

जिस रोगीका श्वास ऊर्द्धगति होजाय अर्थात् रोगी ऊपरको मुख करके बडे जोरसे लंबा श्वास निकाले और श्वासको भीतरकी ओर न खैंच सके, मुखस्रोत कफसे आवृत होजाय, मुखसे दुर्गंध युक्त कुपित पवन निकले रोगीकी दृष्टि ऊपरको चढजाय या रोगी उपरको देखताहुवा विभ्रान्तनेत्र हो व्याकुलतासे इधर उधर देखे, पीडासे व्याकुल होकर बेहोश होजाय, मुख सूखजाय, रोगी अत्यंत कष्टको प्राप्त हो, इस प्रकार ऊर्द्धश्वास चलतेहुए अधःश्वास (श्वासका भीतरको ग्रहण करना) रुकजाय इससे रोगी मोहको प्राप्त हो अत्यंत कष्टसे व्याकुल हो उसको ऊर्द्धश्वास कहतेहै। यह उर्द्धश्वास रोगीके प्राणोंको शीघ्र नष्ट कर देताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

छिन्नश्वासके लक्षण।

यस्तुश्वसितिविच्छिन्नंसर्वप्राणेनपीडितः । नवाश्वसितिदुःखार्त्तो मर्मच्छेदरुगार्दितः ॥ ४९ ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्त्तोदह्यमानेनबस्तिना। विप्लुताक्षःपरिक्षीणःश्वसन्रक्तैकलोचनः ॥५०॥ विचेताःपरिशुष्कास्योविवर्णःप्रलपन्नरः। छिन्नश्वासेनसंछिन्नःसशीघ्रंप्रजहात्यसून् ॥ ५१ ॥

जो रोगी विच्छिन्न (टूटाहुआ) श्वास लेवे, श्वास लेते समय संपूर्ण प्राण पीडित हों, अथवा मर्म (हृदय) के शूलसे दुःखित हुआ श्वास न लेसके या मारे कष्टके श्वास रुक २ कर आवे और हृदयमें पीडा होनीहो, तथा अफारा, पसीना, मूर्च्छा,

वस्तिमें अत्यंत दाह हो, नेत्र निकल आवे या पानीसे भरे रहें, श्वास क्षीण होजाय, एक नेत्र लाल होजांय, (अथवा दोनों नेत्र लाल हों) बेहोशी हो, मुख सूखजाय, वर्ण बिगडजाय, रोगी प्रलापकरे इन लक्षणोंयुक्तको छिन्नश्वास कहतेहैं छिन्नश्वाससे संच्छिन्न हुआ रोगी शीघ्र प्राणोंको त्याग देताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमंयदावायुःस्रोतांसिप्रतिपद्यते । ग्रीवांशिरश्चसंगृह्यश्लेष्माणंसमुदीर्यच ॥ ५२ ॥ करोतिपीनसंतेनरुद्धोघुर्घुरकंतथा । अतीवतीव्रवेगश्चश्वासंप्राणप्रपीडकम् ॥५३॥ प्रताम्यत्यतिवेगाच्चकासते सन्निरुध्यते । प्रमोहंकासमानश्चसगच्छतिमुहुर्मुहुः ॥५४॥ श्लेष्मण्यमुच्यमानेचभृशंभवतिदुःखितः । तस्यैवचाविमोक्षान्तेमुहूर्त्तंलभतेसुखम् ॥ ५५ ॥ अथास्योद्ध्वंसतेकण्ठःकृच्छ्राच्छक्नोतिभाषितुम् । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वासपीडितः ॥ ५६ ॥ पार्श्वेतस्यावगृह्णातिशयानस्यसमीरणः । आसीनोलभतेसौख्यमुष्णञ्चैवाभिनन्दति ॥ ५७ ॥ उच्छ्रिताक्षोललाटेनास्विद्यताभृशमार्तिमान् । विशुष्कास्योमुहुःश्वासोमुहुश्चैवावधम्यते ॥ ५८ ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्चाभिवर्द्धते । सयाप्यस्तमकःश्वासःसाध्योवास्यान्नवोत्थितः ॥ ५९ ॥

जब वायु प्रतिलोम होकर प्राणवाही स्रोतोंमें प्रवेश करलेताहै तब ग्रीवा और शिरको ग्रहण (प्रपीडित) करके कफको उदीर्ण (उखाड) कर प्रतिश्याय (जुकाम) को उत्पन्न करदेताहै और कफसे संरुद्ध होकर गलेमें घुर २ शब्दको करने लगताहै । तथा अत्यंत तीव्र वेगसे प्राणवायुको पीडन करताहुआ श्वास आता है । श्वासके वेगसे रोगी अत्यंत व्याकुल होजाय, खांसी वेगपूर्वक आवे और रुकजावे रोगी खांसते २ खांसीके रुक जानेसे बारबार मोहको प्राप्त हो, जब तक खांसीकी बल्गम (कफ) न निकलजाय तब तक रोगीको अत्यंत दुःख हो, उस कफके निकल जानेसे थोडी देरके लिये शांति प्रतीत हो, जब यह कफ रोगीके कण्ठमें प्राप्त हो तो रोगी बडे कष्टसे बोलसके और श्वासकी पीडासे व्याकुल हुआ लेटनेपर भी निद्राको प्राप्त न हो, यह जिस करवट लेटे उसी ओरसे वायु उठकर श्वासको उत्पन्न करे इसलिये रोगी किसी प्रकार लेट या सो नहीं सकता बैठनेसे इसको कुछ

आराम प्रतीत हो गरम पदार्थको खानेकी इच्छा करे, दोनों नेत्र बाहरको निकलेसे प्रतीतहों, मस्तकमें पसीना आवे, श्वासकी पीडासे निरंतर दुःखी रहे। मुख सूखजाय, वारवार श्वासका वेग उडे, किसी प्रकारकी शरीरमें हल चल होनेसे श्वासका वेग होजाय, बादल, शीतल जल, सरदी और पूर्वकी पवनसे कफकी वृद्धि होकर श्वासका वेग हो इन लक्षणोंसे युक्त श्वासरोगको तमक श्वास (दमा) कहते हैं यह याप्यसाध्य होताहै और नवीन उत्पन्न हुआ तो शीघ्र यत्न करनेसे साध्य होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

प्रतमक और सतमकश्वास।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्यविद्यात्प्रतमकन्तुतम् । उदावर्त्तरजोऽजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥६०॥ तमसावर्द्धतेऽत्यर्थंशीतैश्चाशुप्रशाम्यति । मज्जातस्तमसीवास्यविद्यात्सन्तमकन्तुतत् ॥ ६१ ॥

तमक श्वासयुक्त रोगीको ज्वर और मूर्छा होय तो उसको 'प्रतमक श्वास' कहतेहैं उदावर्तसे मुखनासिकामें धूलके पडनेसे अजीर्णके क्लेदसे और जठराग्निके निरोधसे उत्पन्न हो और अंधकारमे श्वास बढे, शीतल क्रियासे शात होजाय, रोगी श्वासके समय अपनेको अंधकारमें डूबाहुआ प्रतीतकरे उनको संतमक श्वास कहतेहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

रूक्षायासोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रवातउदीरयन् । क्षुद्रश्वासोनसोऽत्यर्थंदुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ ६२ ॥ निहन्तिनसगात्राणिनचदुःखीयथेतरे। नचभोजनपानानांनिरुणद्ध्युचितांगतिम् ॥ ६३ ॥ नेन्द्रियाणांव्यथांनापिकाञ्चिदुत्पादयेद्रुजम् ॥ ६४ ॥

रूक्ष अन्नपानके सेवन करनेसे और परिश्रमके करनेसे, अल्प कारणोंसे क्षुद्र (अल्प) वायु उदीर्ण होकर क्षुद्रश्वासको उत्पन्न करतीहै। यह क्षुद्रश्वास न तो अत्यंत दुःख देताहै और न अत्यंत अंगोंमें पीडाको करताहै। और श्वासोंके समान यह श्वास मनुष्योंके प्राणोंको हरनेवाला नहीं होता और न अन्य श्वासोंके समान शरीरको ही कष्ट देताहै। तथा अन्नपानकी उचित गतिको नहीं रोकता। इन्द्रियोंमें भी किसी प्रकारकी व्यथा उत्पन्न नहीं करता और किसी प्रकारके अन्य उपद्रवोंको भी प्रकट नहीं करता ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

---

१ जो रोग योग्य चिकित्सा करनेपर कुछ कालके लिये शांत होजाय परन्तु समूल नष्ट न हो हेतु पाकर फिर कोप करे उस रोगको याप्य कहतेहैं।

श्वासोंकी साध्यासाध्यता ।

ससाध्यउक्तोबलिनःसर्वेचाव्यक्तलक्षणाः । इतिश्वासाःसमुदिष्टा हिक्काश्चैवस्वलक्षणैः। एषांप्राणहरावर्ज्याघोरास्तेह्याशुकारिणः॥६५॥

इनमें क्षुद्रश्वास साध्य है और अन्य सब प्रकारके श्वास भी यदि बलवान् मनुष्यके शरीरमें प्रकट लक्षणवाले न हों तो साध्य होतेहैं । इस प्रकार श्वासरोगोंका तथा हिक्कारोगका उनके लक्षणों सहित वर्णन किया गयाहै । इनमें जो प्राणोंको हरनेवाले कहेहैं उनको त्याग देना चाहिये । क्योंकि वह आशुकारी अर्थात् शीघ्र ही प्राणोंको नष्ट करनेवाले होतेहैं ॥ ६५ ॥

भेषजैःसाध्ययाप्यांस्तुक्षिप्रंभिषगुपाचरेत् । उपेक्षितादहेयुर्हिशुष्कंकक्षमिवानलाः ॥ ६६ ॥ कारणस्थानमूलैक्यादेकमेवचिकित्सितम् । द्वयोरपियथादृष्टमृषिभिस्तन्निबोधत ॥ ६७ ॥

इनमें जो साध्य अथवा याप्यसाध्य हों उनकी वैद्य शीघ्र चिकित्सा करे । क्योंकि शीघ्र चिकित्सा न करनेसे जिस प्रकार सूखे घासमें पडी अग्नि घासको शीघ्र नष्टकर देतीहै उसी प्रकार शीघ्र यत्न न करनेसे श्वासरोग भी मनुष्यकी देहको नष्ट कर देताहै हिचकी और श्वास इन दोनोंके कारण, स्थान और मूल एक ही हैं । इसलिये ऋषियोंने इन दोनोंकी चिकित्सा भी एक ही कथन की है । सो तुम श्रवण करो ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

हिक्का और श्वासकी चिकित्सा ।

हिक्काश्वासार्दितंस्निग्धैरादौस्वेदैरुपाचरेत् । आक्तंलवणतैलेननाडीप्रस्तरसङ्करैः ॥ ६८ ॥ तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःस्वभिविलीयते । खानिमार्दवमायान्तिततोवातानुलोमता ॥ ६९ ॥ यथाद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तंविष्यन्दतेहिमम् । स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थःस्वेदैर्विष्यन्दतेतथा ॥ ७० ॥ स्विन्नंज्ञात्वाततस्तूर्णंभोजयेत्स्निग्धमोदनम् । मत्स्यानांसूकराणांवारसैर्दध्युत्तरेणवा ॥ ७१ ॥ ततःश्लेष्मणिसंरुद्धेवमनंपाययेत्तुतम् । पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तंवाताविरोधियत् ॥ ७२ ॥ निर्हृतेसुखमाप्नोतिसकफेदुष्टविग्रहे । स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यनिहतोऽनिलः ॥ ७३ ॥

हिचकी और श्वासरोगवाले मनुष्यको पहिले स्निग्ध कर नमकयुक्त तेलकी

शरीरपर मालिश करे फिर नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद अथवा शंकरस्वेदसे स्वेदन करे। इस प्रकार करनेसे स्रोतोंमें जमाहुआ कफ पिघलकर विलीन होजाताहै उससे छिद्र नरम होकर वायुका अनुलोमन (यथोचित गति) होताहै । जैसे पर्वतकी खोहमें जमाहुआ बर्फ सूर्यकी किरणोंसे सन्तप्त होकर पिघल जाताहै । उसी प्रकार रोगीके छिद्रोंमें जमाहुआ कफ भी स्वेदन करनेसे पिघलकर विलीन होजाताहै । स्वेदन करनेके अनंतर रोगीको स्निग्ध भोजन करावे तथा मछली, सूअरका मांस, अथवा दही, इनके साथ स्निग्ध भात खिलावे ऐसा करनेसे उसकी कफ बढकर आमाशयमें आ इस आहारमें आनमिलेगी फिर उसको वमनकारक द्रव्य पिलावे । जो वमन करानेके लिये काथ आदि पिलावे उसमें पीपल, सेंधानमक और शहद मिला लेना चाहिये और जो वमनकारक द्रव्य हो वह वातनाशक होना चाहिये । इसप्रकार औषध पिलाकर वमन करादेनेसे दुष्ट कफ निकलकर रोगीको आराम प्रतीत होताहै और स्रोतोंके शुद्ध होनेसे वायु अप्रतिहत हुई स्वच्छ होकर संचार करती है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

धूमप्रयोग ।

लीनश्चेद्दोषशेषःस्याद्धूमैस्तंनिर्हरेद्बुधः । हरिद्रापत्रमेरण्डमूलं लाक्षांमनःशिलाम् ॥ ७४ ॥ मांसींसदेवदार्वेलांपिष्ट्वावर्त्तिप्रकल्पयेत् । तांघृताक्तांपिबेद्धूमंयवैर्वाघृतसंयुतैः ॥ ७५ ॥

यदि इस प्रकार वमन करानेपर भी कुछ दोष शेष रहजांय तो बुद्धिमान् वैद्य उनको नीचे लिखे धूम प्रयोगों द्वारा शांत करे । जैसे-हलदी, तेजपात, एरंडकी जड, लाख, मनसिल, जटामांसी, देवदारु, इलायची,इन सबको पीसकर धूमवर्तीकी विधिसे बत्ती बनावे । उसको घीमें भिगोकर धूम्रपान करे अथवा यवोंको पीसर घीके साथ मिला बत्ती बनाकर विधिवत् धूमपान करे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतंमल्लकसंपुटे । कृत्वाधूमंपिबेच्छृङ्गंवालंवा स्नायुवागवाम् ॥७६॥ श्योनाकवर्द्धमानानांनाडीशुष्कांकुशस्यवा । पद्मकंगुग्गुलंलोध्रंशल्लकींवाघृताप्लुताम् ॥ ७७ ॥

अथवा मोम, राल और घीको एकत्र पीसकर मल्लक संपुट (लम्बीचिलम) में रखकर नाल लगाकर पीवे अथवा गौका सींग, पूछ और स्नायुके चूर्णका इसी विधिसे धूमपान करे । सोनापाठाके पत्रकी दण्डी अथवा एरंडका नल घीमें भिगो धूमपान करे । अथवा सूखी कुशाको घीमें भिगो धूमपान करे । या पद्मकाष्ठ, गूगुल, लोध, अथवा शल्लकीवृक्षकी छालके चूर्णको घृतमें भिगो बत्ती बना धूमपान करे ७६ । ७७ ॥

धूमपानके अयोग्य ।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान् ।
मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिक्काश्वासानुपाचरेत् ॥ ७८ ॥

यदि हिक्का और श्वासरोगीका स्वर क्षीण होगयाहो तथा रक्तपित्त और दाहका संसर्ग हो तो उसको धूमपान न कराकर मधुर, स्निग्ध और शीतल आदि द्रव्योंसे चिकित्सा करे ॥ ७८ ॥

स्वेदनके अयोग्य रोगी ।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्त्तारक्तस्वेदातिवर्त्तिनः ।
क्षीणधातुबलारूक्षागर्भिण्यश्चापिपित्तलाः ॥ ७९ ॥

जो रोगी पित्त, दाह, रक्त अथवा पसीनोंसे व्याप्त हो, जो क्षीणधातु अथवा क्षीणबल या अत्यंत रूक्ष मनुष्य गर्भवती स्त्री और पित्तप्रधान धातुवाला रोगी हो उसको स्वेदन करना उचित नहीं ॥ ७९ ॥

कोष्णैःकाममुरःकण्ठंस्नेहसेकैःसशर्करैः । उत्कारिकोपनाहैश्चस्वेद-
येन्मृदुभिःक्षणम् ॥ ८० ॥ तिलोमामापगोधूमचूर्णैर्वातहरैःसह ।
स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैःसक्षीरैर्वाकृताहिता ॥ ८१ ॥

यदि इन उपरोक्त रोगियोंको श्वास और हिचकी हो तथा उसमें स्वेदन कराना आवश्यक प्रतीत होताहो तो खांड मिलेहुए स्नेह द्रव्यों (हलवा आदि) से अथवा पूड़ियें या रोटियें बनाकर उनसे कण्ठ और छातीपर सुहाता सुहाता उपनाह स्वेदन करे । अथवा तिल, अलसी, उडद और गेहूंका चूर्ण वातनाशक द्रव्योंमें मिला स्नेहयुक्त उत्कारिका बनाकर उनको कांजी अथवा दूधमें डुबाकर सुहाता २ कण्ठ आदिपर स्वेदन करे । अथवा उपरोक्त तिल आदि द्रव्योंको घृत वा कांजीमें पकाकर वातनाशक स्नेह मिला गोलासा बनाकर उससे स्वेदन करे ॥ ८० ॥ ८१ ॥

नवज्वरामदोषेपुरूक्षस्वेदंविलङ्घनम् ।
समीक्ष्योल्लेखनंवापिकारयेल्लवणाम्बुना ॥ ८२ ॥

नवीन ज्वर और आमदोषयुक्त रोगीको रूक्ष स्वेदन और लंघन कराना चाहिये । यदि । उस समय हानिकारक न हो तो विचारकर नमकका जल पिलाकर वमन करावे ॥ ८२ ॥

अतियोगोद्धतंवातंदृष्ट्वावातहरैर्भिषक् ।
रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशमंनयेत् ॥ ८३ ॥

यदि वमनका अतियोग होकर वायु उद्धत होजाय तो जो अति शीतल और अति गरम न हों ऐसे वातनाशक रस आदिकोंसे अथवा अभ्यंगोंसे उस बढ़ीहुई वायुकी शान्ति करे ॥ ८३ ॥

उदावर्त्ततथाध्मानेमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
हिंगुपीलुविडैश्चान्नंयुक्तंस्यादनुलोमनम् ॥ ८४ ॥

उदावर्त्त, तथा अफारा युक्त श्वास, हिचकीरोगमें बिजौरेका रस, अम्लवेत, हींग, पीलूफल और बिडलवणके साथ भोजन करावे तो वायुका अनुलोमन होकर उदावर्त्त और अफारा शान्त होताहै ॥ ८४ ॥

हिक्काश्वासामयीह्येकोवलवान्दुर्वलोऽपरः । कफाधिकस्तथैवैको रूक्षवह्वनिलोऽपरः ॥ ८५ ॥ कफाधिकेवलस्थेचवमनंसविरेचनम्। कुर्य्यात्पथ्याशिनेधूमलेहादिशमनंततः ॥ ८६ ॥

हिचकी और श्वासवाले रोगी कोई बलवान्, कोई दुर्बल, कोई कफकी अधिकतावाले, कोई रूक्ष और कोई वायुकी अधिकतावाले होतेहैं । उनमें कफकी अधिकतावाला मनुष्य यदि बलवान् हो तो उसकी वमन, विरेचन करानेके अनन्तर पथ्य भोजन और धूमपान तथा लेह (चटनी) आदि शमन द्रव्योंका सेवन करावे८५।८६

वातिकान्दुर्वलान्वालान्वृद्धांश्चानिलसूदनैः ।
तर्पयेदेवशमनैःस्नेहयूपरसादिभिः ॥ ८७ ॥

जो रोगी वातप्रधान, दुर्बल, बालक और वृद्ध हो तो उसको वातनाशक संशमन स्नेह, यूप और रस आदिकोंसे तर्पित करे ॥ ८७ ॥

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्वलानांविशोधनात् ।
वायुर्लब्धास्पदोमर्मसंशुष्याशुहरेदसून् ॥ ८८ ॥

जब तक कफका उत्क्लेश होकर कफ बाहर निकलनेको गमनोन्मुख न हुई हो तब तक वमन कराना उचित नहीं तथा दुर्बल रोगीको भी वमन नहीं कराना चाहिये ऐसे समय वमन करानेसे वायु छिद्र पाकर मर्मस्थानमें प्राप्त हो मर्मोंको सुखाकर शीघ्र प्राणोंको नष्ट करदेतीहै ॥ ८८ ॥

दृढान्वहुकफांस्तस्माद्रसैरानूपवारिजैः ।
तृप्तान्विशोधयेत्स्विन्नान्वृंहयेदितरान्भिषक् ॥ ८९ ॥

जो रोगी बलवान् और बढ़ीहुई कफसे युक्त हों उनको स्नेहन और स्वेदन करके

अनूपसंचारी और जलसंचारी जीवोंके मांसरससे तृप्त कर वमन कराना चाहिये । और जो दुर्बल या वातप्रधान वृद्ध आदि रोगी हों उनकी बृंहण औषधियों द्वारा ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८९ ॥

बर्हितित्तिरिदक्षाश्चजाङ्गलाश्चमृगद्विजाः ।
दशमूलीरसेसिद्धाःकौलत्थेवारसेहिताः ॥ ९० ॥

हिक्का और श्वास रोगियोंको कुलथीके क्वाथमें अथवा दशमूलके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ मोर, तीतर, मुर्गा और अन्य जंगली जीवों अथवा पक्षियोंका मांसरस कृश रोगियोंको तर्पण करनेके लिये देवें ॥ ९० ॥

हिक्काश्वासमें यूष और अन्न ।

निदिग्धिकांबिल्वमध्यंकर्कटाख्यांदुरालभाम् ।
त्रिकण्टकंगुडूचींश्चकुलत्थांश्चसचित्रकान् ॥ ९१ ॥
जलेपक्कारसःपूतोपिप्पलीघृतभर्जितः ।
सनागरःसलवणःस्याद्यूषोभोजनेहितः ॥ ९२ ॥

कटेली, वेलगिरि, काकड़ासिंगी, जवासा, गोखरू, गिलोय, चित्रक इन द्रव्योंसे जलमें सिद्ध किया कुल्थीका यूष छानकर सेंधानिमक सोंठ और पीपलका चूर्ण बुरका घीमें छौंक लेवे । यह यूष कास और श्वासरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

रास्नांबलांपञ्चमूलंह्रस्वंमुद्गान्सचित्रकान् ।
पक्काम्भसिरसेतस्मिन्यूपःसाध्यश्चपूर्ववत् ॥ ९३ ॥

रासना, वला, लघु पंचमूल और चित्रक इनका पूर्ववत् क्वाथ कर उसमें मूंगका यूप बना सोंठ, पीपल लवण मिला घृतमें छोडकर भोजनमें सेवन करना हितकारक है ॥ ९३ ॥

पञ्चवान्मातुलुङ्गस्यनिम्बस्यकुलकस्यच । पक्कामुद्गांश्चसव्योपान्क्षारयूपान्विपाचयेत् ॥ ९४ ॥ दत्त्वासलवणंक्षारंशिग्रूणिमरिचानिच । युक्त्यासंसाधितोयूपोहिक्काश्वासविकारनुत् ॥ ९५ ॥

विजौरेके पत्र, नीमके पत्र और पटोलके पत्रोंको पानीमें पकाकर पानीको छान लेवे फिर उसमें त्रिकुटा, जवाखार, नमक, सोहांजनेकी फली और मूंग मिलाकर यूप बनावे । इस क्षारयूपके सेवन करनेसे हिचकी और श्वासरोग दूर होताहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

कासमर्दकपत्राणांयूषःशोभाञ्जनस्यच ।
शुष्कमूलकयूषश्च हिक्काश्वासनिवारणः ॥ ९६ ॥

कसौदीके पत्तोंका यूष बना अथवा सोहांजनेके पत्रोंका यूष बना अथवा सूखी मूलीका क्वाथ बनाकर उसको छानलेवे फिर उसमें मूंगका यूष बनाकर पीपल और सेंधानमक युक्त कर घृतमें छौंकके सेवन करे तो हिचकी और श्वास दूर होताहै ॥ ९६ ॥

सदधिव्योपसर्पिष्कोयूषोवार्त्ताकजोहितः ।
शालिषष्टिकगोधूमयवान्नान्यनवानिच ॥ ९७ ॥

दही, त्रिकुटा और घृत मिलाकर बैंगनका यूष भी हिक्का और श्वासमें हितकारी है । हिक्का और श्वास रोगमें शालिचावल और सांठी चावल, गेहूं तथा यव यह अन्न हितकारी हैं ॥ ९७ ॥

हिक्काश्वासमें यवागू ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविडपौष्करचित्रकैः ।
सकर्कटाह्वयैःसिद्धायवागूःश्वासहिक्किनाम् ॥ ९८ ॥

हींग, संचरनमक, कालाजीरा, विडनमक, पोहकर मूल, चित्रक, काकडासिंगी इनसे सिद्ध कीहुई यवागू हिक्का और श्वास रोगके लिये हितकारी है ॥ ९८ ॥

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीमलपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीगु-
डूचीनागराम्बुभिः ॥ ९९ ॥ यवागूंविधिनासिद्धांकषायंवापिबेन्नरः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्त्तिहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ १०० ॥

दशमूल, कचूर, रासना, पीपलामूल, पोहकर मूल, काकडासिंगी, भूमिआँवला, भारंगी, गिलोय और सोंठके जलसे सिद्ध की हुई यवागूके सेवनसे अथवा इन्हीं द्रव्योंका क्वाथ बनाकर पीनेसे खांसी, हृद्रोग, पार्श्वशूल, हिचकी और श्वासरोग दूर होताहै ॥ ९९ ॥ १०० ॥

पुष्कराह्वशटीव्योपमातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
योजयेदन्नपानानिससर्पिर्विडहिंगुभिः ॥ १०१ ॥

पोहकरमूल, कचूर, त्रिकुटा, बिजौरा और अमलवेतके क्वाथमें सिद्ध कियेहुए अन्नपान, घृत, विडनमक और भुनीहुई हींग मिलाकर सेवन करनेसे हिचकी और श्वास दूर होतेहैं ॥ १०१ ॥

दशमूलस्यवाक्वाथमथवादेवदारुणः ।
तृषितोमदिरांवापिहिक्काश्वासीपिबेन्नरः ॥ १०२ ॥

हिक्का और श्वासरोगीको प्यास लगे तो दशमूलका क्वाथ अथवा देवदारूका क्वाथ पिलावे । अथवा इन्हीं क्वाथोंमें या अन्य जलमें पुरानी मद्य मिलाकर पीवे ॥ १०२ ॥

पाठांमधुरसांरास्नांसरलंदेवदारुच । प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यसुरामण्डे निधापयेत् ॥ १०३ ॥ तंमन्दलवणंकृत्वाभिषक्प्रसृतसम्मितम् । पाययेत्ततोहिक्काश्वासश्चैवोपशाम्यति ॥ १०४ ॥

पाटला, मूर्वा, रासना, सरलकाष्ठ और देवदारुको कूटकर कपडेमें छान सुरामण्डमें पिलावे । फिर उसमें थोडासा नमक मिलाकर वैद्य २ पलकी मात्रासे पिलावे तो हिचकी और श्वास शान्त होजातेहैं ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

हिंगुसौवर्चलंकोलंसमङ्गांपिप्पलींबलाम् । मातुलुंगरसेपिष्टमारनालेनवापिबेत् ॥ १०५ ॥ सौवर्चलंनागरश्चभार्ङ्गींद्विशर्करायुतम् । उष्णाम्बुनापिबेदेतद्धिक्काश्वासविकारनुत् ॥ १०६ ॥

हींग, संचरनमक, वेर, (समंगा) पीपल, बला, इन सबको बिजौरेके रसमें पीसकर कांजीके साथ सेवन करे तो श्वास और हिक्काको शान्त करे । अथवा संचर निमक, सोंठ और भारंगी इनके चूर्णको दुगुनी खांड मिला फँकी लेवे । ऊपरसे गरम जल पीवे तो हिचकी और श्वास दूर होतेहैं ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

भार्ङ्गीनागरयोःकल्कंमरिचक्षारयोस्तथा ।
पीतद्रुचित्रकास्फोतामूर्वाणांचाम्बुनापिबेत् ॥ १०७ ॥

भारंगी और सोंठका कल्क अथवा गोल मिर्च और जवाखार कल्क अथवा सरल काष्ठ, चित्रक, आसफोता और मूर्वा इनका कल्क करके गर्म जलके साथ पीवे तो हिक्का और श्वास रोग शान्त हो ॥ १०७ ॥

पित्तादिदोषानुबंधीश्वासोंके यत्न ।

मधूलिकातुगाक्षीरीनागरंपिप्पलीतथा ।
उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे ॥ १०८ ॥

मधूलिका (मूर्वा या गेहूंका मैदा) वंशलोचन, सोंठ और पीपल इनके घृतमें उत्कारिका बनाकर पित्तानुबंधी श्वासरोगमें देना हित है ॥ १०८ ॥

श्वाविधःशशमांसश्चशल्लकस्यचशोणितम् ।
पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्धजे ॥ १०९ ॥

हिक्का और श्वासमें वातका अनुबंध हो तो सेहका मांस अथवा शशेका मांस और सेहका रुधिर पीपलका चूर्ण मिला घृतमें सिद्धकर सेवन करावे ॥ १०९ ॥

सुवर्चलारसोदुग्धंघृतंत्रिकटुकायुतम् ।
शाल्योदनस्यानुपानंवातपित्तानुगेहितम् ॥ ११० ॥

यदि श्वास हिक्कामें वात और पित्तका अनुबंध हो तो सूर्यमुखीका रस, दूध, घृत त्रिकुटाके चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करावे और शालिचावलोंके भातका पथ्य देवे ॥ ११० ॥

शिरीषपुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्यवापुनः ।
पिप्पलीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः ॥ १११ ॥

यदि हिक्का श्वासमें कफ और पित्तका अनुबंध हो तो सिरसके फूलोंका रस अथवा सप्तपर्णका रस पीपल और शहद मिला पिलावे ॥ १११ ॥

मधुकंपिप्पलीमूलंगुडोगोऽश्वशकृद्रसः ।
घृतंक्षौद्रंहिक्काकासश्वासाभिष्यन्दिनांशुभम् ॥ ११२ ॥

मुलैठी, पीपलामूल और गोवर तथा घोडेकी लीदका रस घी और शहद मिला चाटे। इससे हिचकी, खांसी, श्वास, और शरीरमें अभिष्यंद होना (क्लेदसे शरीरका लिप्त रहना) यह सब दूर होते हैं ॥ ११२ ॥

खराश्वोष्ट्रवराहाणांमेषस्यचगजस्यच । शकृद्रसंवहुकफेचैकैकं मधुनापिवेत् ॥ ११३ ॥ क्षारश्चाप्यश्वगन्धायालेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा । मयूरपादंनालंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ ११४ ॥

गधा, घोडा, ऊंट, सूअर, बकरी और हाथीकी लीदका रस शहदमें मिलाकर चाटनेसे कफानुबंधी श्वास और हिचकी शान्त होतीहै अथवा असगंधका क्षार शहद और घृत मिलाकर चाटे या मोरके पैर और पंखोंकी डण्डियें, सेहके कांटे इन सबकी भस्म करके शहद घृत मिला चाटे तो कफानुबंधी श्वास और हिक्का दूर होतीहै ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

श्वाविज्जाण्डकचापाणांरोमाणिकुररस्यवा । शृंग्येकद्विशफानां

वाचर्मास्थीनिक्षुरांस्तथा ॥ ११५ ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वा क्षौद्रघतान्विताम्। चूर्णलीढ्वाजयेत्कासंहिक्कांश्वासश्चदारुणम् ११६

सेह, जाण्डक, चाक और कुरर पक्षीके पंखोंकी भस्मकर अथवा सींगवाले, एक खुरवाले (गदहा आदि) दो खुरवाले (सूअर आदि) जानवरोंके चर्म, हड्डी और खुरोंकी भस्मको शहद और घृतमें मिलाकर, अथवा सबकी भस्म मिलाकर या इनमेंसे किसी एक की भस्म मिला चाटनेसे खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूर होताहै ११५-११६॥

एतेहिकफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ।

तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थंसेकालेहाननिष्कफे ॥ ११७ ॥

यह सब चूर्ण सेक और अवलेह जब कफसे प्राणवायुकी गति संरुद्ध होगई हो तब प्राणवायुके मार्गकी शुद्धिके लिये सेवन कराने चाहिये । कफका संयोग न होनेपर इन सेक और अवलेहोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ११७ ॥

कासिनेच्छर्दनंदद्यात्स्वरभंगेचबुद्धिमान् । वातश्लेष्महरैर्युक्तंतमकेतुविरेचनम् ॥ ११८ ॥ उदीर्य्यतेभृशतरंमार्गरोधाद्वहज्जलम् । यथातथानिलस्तस्यमार्गनित्यंविशोधयेत् ॥ ११९ ॥

हिचकी और श्वासमें खांसी और स्वरभेद हो तो वात और कफनाशक वमन द्रव्योंसे वमन करावे । यदि तमकश्वासमें खांसी और स्वरभंग हो तो वात और कफनाशक द्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये। जैसे वहतेहुए जलका मार्ग रोक देनेसे वह जल ऊपरको बढता चला आताहै उसी प्रकार कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजानेसे हिक्का और श्वास बढता जाताहै इसलिये वायुके मार्गको शुद्ध कर देना चाहिये ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

शट्यादिचूर्ण ।

शटीचोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तंपुष्कराह्वयम्। सुरसंतामलक्येलापिप्पल्यगुरुनागरम् ॥ १२० ॥ वालकञ्चसमंचूर्णंकृत्वाष्टगुणशर्करम्। सर्वथातमकेश्वासेहिक्कायाञ्चप्रयोजयेत् ॥ १२१ ॥

कचूर, चोरक, जीवन्ती, दालचीनी, नागरमोथे, पोहकर मूल, सुरसा, तुलसी, भूमिआँवला, इलायची, पीपल, अगर, सोंठ और सुगंधवाला इन सबका वारीक चूर्ण कर चूर्णमें आठ गुनी खांड मिलावे । यह चूर्ण तमकश्वास और हिचकीको दूर करताहै ॥ १२० ॥ १२१ ॥

मुक्तादिचूर्ण।

मुक्ताप्रवालवैडूर्य्यशंखस्फटिकमञ्जनम् । ससारगन्धकाचार्कसूक्ष्मैलालवणद्वयम् ॥ १२२ ॥ ताम्रायोरजसीरूप्यंससौगन्धिकशेरुकम् । जातीफलंशणाद्बीजमपामार्गस्यतण्डुलाः ॥ १२३ ॥ एषांपाणितलंचूर्णतुल्यानांक्षौद्रसर्पिषा । हिक्काश्वासश्चकासश्चलीढमाशुनियच्छति ॥ १२४ ॥

मोती, मूंगा, वैडूर्य, शंख, स्फटिक, अंजन, ससार, शुद्ध गंधक, आकको जड, छोटी इलायची, सेंधानमक, संचरनमक, ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, सौगंधिक कमल, कसेरु, जायफल, सणके बीज और अपामार्गके बीज इन सबको समान भाग लेकर विधिवत् बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णमेंसे १ तोला अथवा उचित मात्रासे शहद और घृत मिला चाटे तो हिचकी, श्वास और खांसी शीघ्र दूर होती है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

अञ्जनात्तिमिरंकाचंनीलिकंपुष्पकंतमः ।
पैल्यंकण्डुमभिष्यन्दमन्दश्चतत्प्रणाशयेत् ॥ १२५ ॥

यदि इसी मुक्तादि चूर्णका अंजन नेत्रोंमें लगायाजाय तो तिमिर, काच, नीलिका, फोला, पैल्ल, खाज, क्लेद, मंददृष्टि यह सब नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १२५ ॥

अन्य योग।

शटीपुष्करमूलानांचूर्णमामलकस्यच ।
मधुनासंयुतंलेह्यंचूर्णवाकाललोहजम् ॥ १२६ ॥

कचूर, पोहकरमूल और आँवलेका चूर्ण शहदमें मिलाकर अथवा कृष्ण लोंहभस्मको सहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास और हिचकी दूर होती है ॥ १२६ ॥

सशर्करांतामलकींद्राक्षांगोऽश्वशकृद्रसम् ।
तुल्यंगुडंनागरश्चप्राशयन्नावयेत्तथा ॥ १२७ ॥

खांड, भूमिआँवला, द्राक्षा, गोबरका रस और घोडेकी लीदका रस, गुड, सोंठ इन सबको मिलाकर चटानेसे अथवा सुंघानेसे हिचकी और श्वास दूर होती है ॥ १२७ ॥

हिचकीनाशक योग।

लशुनस्यपलाण्डोर्वामूलंगृञ्जनकस्यवा ।
नावयेच्चन्दनंवापिनारीक्षीरेणसंयुतम् ॥ १२८ ॥

लहसुन, अथवा प्याज या सलजमका रस अथवा लालचंदन स्त्रीके दूधमें मिलाकर नास लेनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १२८ ॥

सुखोष्णंघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् । नावयेन्मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेनवा ॥१२९॥ स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि । पीतंनस्तोनिषिक्तंवासद्योहिक्कांनियच्छति ॥ १३० ॥ सकृदुष्णं सकृच्छीतंव्यत्यासाद्धिक्किनांपयः । पानेनस्तःक्रियायांवाशर्करामधुसंयुतम् ॥ १३१ ॥

सेंधे नमकको सुखोष्ण घृतमण्डमें मिला नस्य लेना अथवा मक्खीकी विष्ठाको लाखके रसमें मिलाकर नस्य लेवे अथवा स्त्रीकी दूधका नस्य लेवे अथवा मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये घृतको पीवे या नस्य लेवे तो हिचकी दूर होती है । अथवा एक वार गर्म और एक वार शीतल दूध पीवे तो भी हिचकी शीघ्र नष्ट होजाती है, अथवा मिसरी और शहद दूधमें मिला नस्य लेवे तो हिचकी शान्त होजातीहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अधोभागेघृतंसिद्धंसद्योहिक्कांनियच्छति ।
पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः ॥ १३२ ॥

अथवा विरेचनकारक द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीवे तो तत्काल हिचकी दूर होजाती है। अथवा पीपल और शहदके साथ आँवलेका रस या कैथका रस पीनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १३२ ॥

लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ।
लिह्यात्कोलंमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा ॥ १३३ ॥

लाजा (खील), लाख, शहद, द्राक्षा, पीपल, घोडेके लीदका रस इनको मिलाकर चाटे अथवा उन्नावका छिलका, शहद, द्राक्षा, पीपल और सोंठको मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ १३३ ॥

हिचकीनाशक कर्म ।

शीताम्बुसेकःसहसात्रासोविस्मापनंभयम् ।
क्रोधहर्षप्रियोद्वेगाहिक्काप्रच्यवनामताः ॥ १३४ ॥

अकस्मात् शीतल जल शरीरपर गेरदेना या सहसा त्रास देना, भुलादेना, भय, क्रोध, हर्ष, प्यारी वस्तुका उद्वेग यह सब हिचकीको दूर करनेवाले हैं ॥ १३४ ॥

निदानवर्जन ।

हिक्काश्वासविकाराणांनिदानंयत्प्रकीर्त्तितम् ।
वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासविकारिभिः ॥ १३५ ॥

हिक्का और श्वास रोगको उत्पन्न करनेवाले जो कारण कहे हैं उनको आरोग्यताकी इच्छावाला हिक्का और श्वास रोगी त्याग देवे ॥ १३५ ॥

हिक्काश्वासानुवन्धायेशुष्कोरःकण्ठतालुकाः ।
प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ॥ १३६ ॥

हिचकी और श्वासके होनेसे छाती, कण्ठ और तालुका शोष हो तथा रोगी रूक्ष हो तो उसकी घृतों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३६ ॥

दशमूलादि घृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् । कृष्णासौवर्चलक्षारवयः-स्थाहिंगुचोरकैः । कायस्थयाचसंसिद्धंहिक्काश्वासौप्रणाशयेत् १३७॥

दशमूलका क्वाथ और दहीमण्ड यह दोनों घृतसे चौगुने ले, पीपल, संचरनमक, जवाखार, हरड, हींग, गठौना, आँवले इन सबका कल्क घृतसे चौथा भाग, इनसे सिद्ध किया घृत हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ १३७ ॥

तेजोवत्यादि घृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्ठंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतीकंपौष्करंमूलंपला-शश्चित्रकःशटी ॥ १३८ ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका । तालीशपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसम्मितैः ॥ १३९ ॥ हिंगुपादैर्घृत-प्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे । एतद्यथावलंपीत्वाहिक्काश्वासौजयेन्नरः । शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुजएववा ॥ १४० ॥

तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, पलाश, चित्रक, संचरनमक, भूमिआँवला, सेंधानमक, बिल्वके कोमल पत्र या कच्चे फल, तालीशपत्र, जीवन्ती और वच । यह सब एक एक कर्ष लेवे । हींग १ टंक लेवे, घृत १ प्रस्थ ले, पानी ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतको यथाबल पीवे तो हिचकी, श्वास, सूजन, वायुकी बवासीर, ग्रहणी, हृद्रोग, और पार्श्व-पीडा यह सब दूर होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

लहसुन, अथवा प्याज या सलजमका रस अथवा लालचंदन स्त्रीके दूधमें मिलाकर नास लेनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १२८ ॥

सुखोष्णंघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम् । नावयेन्मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेनवा ॥१२९॥ स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि । पीतंनस्तोनिषिक्तंवासद्योहिक्कांनियच्छति ॥ १३० ॥ सक्टदुष्णंसकृच्छीतंव्यत्यासाद्धिक्किनांपयः । पानेनस्तःक्रियायांवाशर्करामधुसंयुतम् ॥ १३१ ॥

सेंधे नमकको सुखोष्ण घृतमण्डमें मिला नस्य लेना अथवा मक्खीकी विष्ठाको लाखके रसमें मिलाकर नस्य लेवे अथवा स्त्रीकी दूधका नस्य लेवे अथवा मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये घृतको पीवे या नस्य लेवे तो हिचकी दूर होती है । अथवा एक वार गर्म और एक वार शीतल दूध पीवे तो भी हिचकी शीघ्र नष्ट होजाती है, अथवा मिसरी और शहद दूधमें मिला नस्य लेवे तो हिचकी शान्त होजातीहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥ १३१ ॥

अधोभागेघृतंसिद्धंसद्योहिक्कांनियच्छति ।
पिप्पलीमधुयुक्तोवारसोधात्रीकपित्थयोः ॥ १३२ ॥

अथवा विरेचनकारक द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीवे तो तत्काल हिचकी दूर होजातीहै । अथवा पीपल और शहदके साथ आँवलेका रस या कैथका रस पीनेसे हिचकी दूर होती है ॥ १३२ ॥

लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ।
लिह्यात्कोलंमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा ॥ १३३ ॥

लाजा (खील), लाख, शहद, द्राक्षा, पीपल, घोडेके लीदका रस इनको मिलाकर चाटे अथवा उन्नावका छिलका, शहद, द्राक्षा, पीपल और सोंठको मिलाकर चाटे तो हिचकी दूर होती है ॥ १३३ ॥

हिचकीनाशक कर्म ।

शीताम्बुसेकःसहसात्रासोविस्मापनंभयम् ।
क्रोधहर्षप्रियोद्वेगाहिक्काप्रच्यवनामताः ॥ १३४ ॥

अकस्मात् शीतल जल शरीरपर गेरदेना या सहसा त्रास देना, भुलादेना, भय, क्रोध, हर्ष, प्यारी वस्तुका उद्वेग यह सब हिचकीको दूर करनेवाले हैं ॥ १३४ ॥

निदानवर्जन ।

हिक्काश्वासविकाराणांनिदानंयत्प्रकीर्त्तितम् ।
वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासविकारिभिः ॥ १३५ ॥

हिक्का और श्वास रोगको उत्पन्न करनेवाले जो कारण कहे हैं उनको आरोग्यताकी इच्छावाला हिचा और श्वास रोगी त्याग देवे ॥ १३५ ॥

हिक्काश्वासानुबन्धायेशुष्कोरःकण्ठतालुकाः ।
प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्तानुपाचरेत् ॥ १३६ ॥

हिचकी और श्वासके होनेसे छाती, कण्ठ और तालुका शोप हो तथा रोगी रूक्ष हो तो उसकी घृतों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३६ ॥

दशमूलादि घृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् । कृष्णासौवर्चलक्षारवयःस्थाहिंगुचोरकैः । कायस्थयाचसंसिद्धंहिक्काश्वासौप्रणाशयेत् १३७॥

दशमूलका क्वाथ और दहीमण्ड यह दोनो घृतसे चोगुने ले, पीपल, संचरनमक, जवाखार, हरड, हींग, गठौना, आँवले इन सबका कल्क घृतसे चौथा भाग, इनसे सिद्ध किया घृत हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ १३७ ॥

तेजोवत्यादि घृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्ठंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतीकंपौष्करंमूलंपलाशश्चित्रकःशटी ॥ १३८ ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका । तालीशपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसम्मितैः ॥ १३९ ॥ हिंगुपादैर्घृतप्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे । एतद्यथाबलंपीत्वाहिक्काश्वासौजयेन्नरः । शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुजएववा ॥ १४० ॥

तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पोहकरमूल, पलाश, चित्रक, संचरनमक, भूमिआँवला, सेंधानमक, बिल्वके कोमल पत्र या कच्चे फल, तालीशपत्र, जीवन्ती और वच । यह सब एक एक कर्ष लेवे । हींग १ टंक लेवे, घृत १ प्रस्थ ले, पानी ४ प्रस्थ इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतको यथाबल पीवे तो हिचकी, श्वास, सूजन, वायुकी बवासीर, ग्रहणी, हृद्रोग, और पार्श्वपीडा यह सब दूर होतेहैं ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

मनःशिलादि घृत ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपद्मकैः ।
मञ्जिष्ठैलैश्चकर्षांशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्धितः ॥ १४१ ॥

मनसिल, राल, लाख, हल्दी, पद्मकाष्ठ, मजीठ और इलायची यह एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे सिद्ध किया घृत शीघ्र श्वास और हिचकीको दूर करताहै ॥ १४१ ॥

जीवनीयोपसिद्धंवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम् ।
त्र्यूषणंदार्विकंवापिपिबेद्वासाघृतंतथा ॥ १४२ ॥

अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत शहतमें मिला चाटे या वासाघृत अथवा दार्वी घृत या त्रिकुटादिघृत शहदमें मिलाकर चाटे तो हिचकी और श्वास दूर होतेहैं १४२॥

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णंवातानुलोमनम् ।
भेषजंपानमन्नंवातद्धितंश्वासहिक्किने ॥ १४३ ॥

वात और कफनाशक तथा उष्ण और वायुके अनुलोमन करनेवाले जितने द्रव्य, औषध, अन्न पान आदि हैं वह सब हिचकी और श्वासमें हितकारक हैं॥१४३॥

विशेष ज्ञातव्य ।

वातकृद्वाकफहरंकफकृद्वानिलापहम् ।
कार्य्यंनैकान्तिकंताभ्यांप्रायःश्रेयोऽनिलापहम् ॥ १४४ ॥

जो द्रव्य वायुको करनेवाला और कफको हरनेवाला हो अथवा कफको करनेवाला और वायुको हरनेवाला हो इन दोनोंमेंसे किसी एकका भी श्वास और हिक्कामें अकेला प्रयोग करना उचित नहीं । परन्तु इनमें वातनाशक द्रव्य प्रायः अच्छा माना जाताहै ॥ १४४ ॥

सर्वेषांबृंहणेह्यल्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत् । नात्यर्थंशमनोपायोभृशोऽशक्यश्चकर्शने ॥ १४५ ॥ तस्माच्छुद्धानशुद्धांश्चशमनैर्बृंहणैरपि । हिक्काश्वासार्दिताञ्जन्तून्प्रायशःसमुपाचरेत् ॥ १४६ ॥

श्वास और हिचकीमें बृंहण द्रव्योंसे उपचार करते यदि कुछ अपचार होजाय तो अति अल्प हानि होसकतीहै । और शमन द्रव्योंसे भी विशेष हानिकी संभावना नहीं । परंतु कर्षण द्रव्योंसे अत्यंत हानिकी संभावना है । इसलिये हिक्का और श्वासमें रोगीको शोधन करके अथवा विनाही शोधन किये बृंहण और शमन द्रव्योंसे ही चिकित्सा करना चाहिये ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्रश्लोकः, ।

दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौक्रियैकत्वेचकारणम् ।
लिंगंपथ्यश्चहिक्कानांश्वासानाश्चेहदर्शितम् ॥ १४७ ॥

इति-चरक० चिकि० हिक्काश्वास चिकित्सितंनामैकविंशोध्यायः॥२१॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि हिक्का और श्वास की दुर्जयता, समान उत्पत्ति, हेतुओंकी एकता और समान चिकित्सा तथा लक्षण और पथ्य यह सब इस हिक्काश्वास चिकित्सिताध्यायमें वर्णन कियाहै ॥ १४७॥

इति श्रीच०चि०स्थाने प्र०भा०टी० हिक्काश्वासचिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातःकासचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कासचिकित्सित आध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

तपसायशसाधृत्याधियाचपरयान्वितः ।
आत्रेयःकासशान्त्यर्थंसिद्धंप्राहचिकित्सितम् ॥ १ ॥

तपसे, यशसे, धारणासे और श्रीसे सर्वोत्कृष्टताको प्राप्त हुए आत्रेयजी कास (खांसी) की शांतिके लिये सिद्ध चिकित्साको कहनेलगे ॥ १ ॥

खांसीके भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोयेचक्षतजःक्षयजस्तथा ।
स्युःपश्चैतेनृणांकासावर्द्धमानाःक्षयप्रदाः ॥ २ ॥

यह खांसी वात, पित्त, कफ इनसे तीन प्रकारकी और एक क्षतसे तथा एक क्षयसे इस प्रकार सब खांसिएं पांच प्रकारकी होतीहैं। खांसी वृद्धिको प्राप्त होनेसे क्षय रोगको उत्पन्न कर देतीहै ॥ २ ॥

कासके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपंभवेत्तेषांशूकपूर्णगलास्यता ।
कण्ठेकण्डूश्चभोज्यानामवरोधश्चजायते ॥ ३ ॥

गला और मुख शूकों (सूक्ष्मकांटों) से भराहुआसा प्रतीत हो, कंठमें खुजली हो; जो पदार्थ खाया पीया जाय वह कंठमें रुककर जाताहुआ प्रतीत हो, यह खांसीके पूर्वरूप हैं ॥ ३ ॥

कासकी संप्राप्ति ।

अधःप्रतिहतोवायुरूर्द्ध्वस्रोतःसमाश्रितः। उदानभावमापन्नःकण्ठे सक्तस्तथोरसि ॥ ४ ॥ आविश्यशिरसःखानिसर्वाणिप्रतिपूरयन् । आभञ्जन्नाक्षिपन्देहंहनुमन्येतथाक्षिणी। नेत्रेपृष्ठमुरःपार्श्वेनिर्भुज्य स्तम्भयंस्ततः ॥ ५ ॥

जब समान वायु नीचेसे प्रतिहत होकर ऊपरके स्रोतोंमें आश्रित होजाताहै तब उदानवायुसे मिलकर कंठ और छातीमें अटक जातीहै फिर शिरके संपूर्ण छिद्रोंको पूर्ण करके शरीरमें तोडन और विक्षेपण करतीहुई हनु, मन्या और दोनों नेत्रोंको, विकलसे कर देतीहै तथा नेत्र, पीठ, छाती और पार्श्वभागमें तोडनेकीसी व्यथा और स्तंभको करती हुई खांसीको करतीहै अर्थात् खांसीके रूपसे उठतीहै ॥४॥ ५॥

कासशब्दकी निरुक्ति ।

शुष्कोवासकफोवापिकसनात्कासउच्यते ॥ ६ ॥

वह खांसी सूखी हो अथवा कफयुक्त हो, यह कसन करनेसे कास कही जातीहै अर्थात् खांसनेसे इसको खांसी कहतेहैं ॥ ६ ॥

प्रतिघातविशेषेणतस्यवायोःसरंहसः ।
वेदनाशब्दवैषम्यंकासानामुपजायते ॥ ७ ॥

खांसीमें वायुका वेग नीचेसे प्रतिहत होकर ऊर्द्ध्वको जाताहै इसलिए खांसीमें पीडायुक्त विषम शब्द होताहै ॥ ७ ॥

वातजकासके हेतु ।

रूक्षशीतकषायाल्पप्रमितानशनंस्त्रियः ।
वेगधारणमायासोवातकासप्रवर्त्तकाः ॥ ८ ॥

रूक्ष, शीतल, कषैले पदार्थोंके सेवनसे अल्प भोजन और मितभोजनके करनेसे, उपवास करनेसे, मैथुन करनेसे, मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे और अति परिश्रम करनेसे वातज खांसी उत्पन्न होती है । अथवा यों कहिये यह सब वातज कासके प्रवृत्त करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

वातजकासके लक्षण।

हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम्। शुष्कोरःकण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नःप्रताम्यतः ॥ ९ ॥ निर्घोषदैन्यक्षामस्यदौर्बल्यक्षयमोहकृत्। शुष्ककासःकफंशुष्कंकृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतांव्रजेत् ॥ १० ॥ स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्चभुक्तमात्रेप्रशाम्यति। उर्द्ध्ववातस्यजीर्णेऽन्नेवेगवान्मारुतोभवेत् ॥ ११ ॥

हृदय, पार्श्व, छाती, और शिरमें पीडा, स्वरका फटा हुआ सा होना, वक्षःस्थल (छाती), कंठ और मुखमें शोष होना, रोमांच होना, ग्लानि, खांसते २ अंधकारसा प्रतीत होने लगना, खांसीका प्रबलशब्द होना, रोगीका दीन होजाना तथा कृशता, दुर्बलता और मोह होना, खाँसी सूखी होना, सूखीहुईसी कफका कठिनतासे निकलना फिर कुछ कालके लिये हलकी होजाना। इस खांसीमें चिकने, नमकीन, खट्टे और गर्म पदार्थोंको खानेसे शांति होना तथा भोजनकरनेपर शांतिका प्रतीत होना, अन्नके जीर्ण होनेपर फिर ऊर्द्ध्ववात (खांसी) का वेग बलपूर्वक उठना यह वातज खांसीके लक्षण हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

पित्तजकासके हेतु।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम्।
पित्तकासकरंक्रोधःसन्तापश्चाग्निसूर्य्यजः ॥ १२ ॥

कटु, उष्ण, विदाही, अम्ल और क्षार पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे, तथा क्रोध, अग्निका संताप और धूपके अधिक सेवनसे पित्तकी खांसी उत्पन्न होतीहै १२॥

पित्तकासके लक्षण।

पीतनिष्ठीवनाक्षत्वंतिक्तास्यत्वंस्वरामयः। उरोधूमायनंतृष्णादाहो मोहोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १३ ॥ प्रततंकासमानश्चज्योतींषीवचपश्यति। श्लेष्माणंपित्तसंसृष्टंनिष्ठीवतिचपैत्तिके ॥ १४ ॥

पीले वर्णका कफ थूकना, नेत्रोंका पीला होना, मुखमें कडुआहट, स्वरभंग, छातीमें धूआंसा उठना, प्यास, दाह, मोह, अरुचि, भ्रम, अत्यंत खांसी होनेके समय नेत्रोंके आगे तारेसे चमकना, पित्त मिलेहुए कफका निकलना यह पफकी खांसीके लक्षण हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफकासके हेतु।

गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः।
वृद्धःश्लेष्मानिलंरुद्ध्वाकफकासंकरोतिहि ॥ १५ ॥

भारी, अभिष्यंदी, मीठे और चिकने पदार्थोंके अधिक सेवनसे, दिनमें सोनेसे, परिश्रम न करनेसे वृद्धिको प्राप्तहुआ कफ वायुको रोकर कफकी खांसीको उत्पन्न करताहै ॥ १५ ॥

कफकासके लक्षण

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोत्क्लेशगौरवैः । लोमहर्षास्यमाधुर्य्यक्लेदसंसदनैर्युतम् ॥ १६ ॥ बहुलंमधुरंस्निग्धंनिष्ठीवतिघनंकफम् । कासमानोऽतिरुग्वक्षःसम्पूर्णमिवमन्यते ॥ १७ ॥

मंदाग्नि, अरुचि, वमन, प्रतिश्याय, कफका उत्क्लेश, शरीरका भारीपन, लोमहर्ष, मुखमें मधुरता, क्लेद, अंगोंका अवसाद, मीठा, चिकना, गाढा और बहुतसा कफ निकलना, खांसतेहुए छाती कफसे भरीहुई प्रतीत होना, यह कफकी खांसीके लक्षण हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

क्षतज कासके हेतु ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः ।
रूक्षस्योरःक्षतंवायुर्गृहीत्वाकासमावहेत् ॥ १८ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अधिक भार उठानेसे, अत्यंत मार्गके चलनेसे बलपूर्वक हाथी, घोडे आदिको रोकनेसे युद्ध करनेसे, रूक्ष मनुष्योंके छातीमें क्षत (घाव) होताहै । उससे वायुका पीडन होकर क्षतज खांसी उत्पन्न होती है ॥ १८ ॥

क्षतजकासके लक्षण ।

सपूर्वंकासतेशुष्कंततःष्ठीवेत्सशोणितम् । रुजमानेनकण्ठेनविरुग्णेनैवचोरसा ॥ १९ ॥ सूचीभिरिवतीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेनशूलिना । दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥ २० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः । पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥ २१ ॥

इस क्षतज कासमें पहिले तो मनुष्यको सूखी खांसी होतीहै फिर रुधिर मिली कफ आने लगतीहै और कंठमें अत्यन्त पीडा तथा हृदयमें पीडा होतीहै तथा छातीमें सुई चुभानेकी सी पीडा प्रतीत होती है । मारे शूलके और भेदनकीसी पीडाके छातीका स्पर्श करना सहन नहीं होसकता तथा पर्वभेद, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरका बिगडना इनमें पीडा होती है । खांसते हुए कबूतरके कूंजनेकासा शब्द होताहै । यह क्षतज कासके लक्षण हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

क्षयजकासके हेतु ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनांशोचतांन-णांव्यापन्नेऽग्नौत्रयोमलाः ॥ २२ ॥ कुपिताःक्षयजंकासंकुर्य्युर्देह-क्षयप्रदम् ॥ २३ ॥

विषम और असात्म्य भोजनके अतिसेवनसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, किसी प्रकारके घृणा और शोकके अत्यंत होजानेसे मनुष्योंकी अग्नि व्यापन्न (खिन्न, मन्द) होजानेसे तीनों दोष कुपित होकर धातुओंका क्षय करके क्षयज खांसीको उत्पन्न करतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

क्षयजकासके लक्षण ।

दुर्गन्धंहारितंरक्तंष्ठीवेत्पूयोपमंकफम् । स्थानादुत्कासमानश्चहृदयंम-न्यतेच्युतम् । अकस्माद्दुष्णशीतार्त्तोवह्वाशीदुर्बलःकृशः ॥ २४ ॥ स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक्श्रीमद्दर्शनलोचनैः । पाणिपादतलैःश्लक्ष्णैःसततासूयकोघृणी ॥ २५ ॥ ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्यपार्श्वरु-क्पीनसोऽरुचिः । भिन्नसङ्घातवर्चस्त्वंस्वरभेदोऽनिमित्ततः ॥२६॥ इत्येपक्षयजःकासःक्षीणानांदेहनाशनः ॥ २७ ॥

तब दुर्गंधयुक्त हरित, लाल और राधके समान कफ खांसीमें आने लगताहै । खांसते समय ऐसा प्रतीत हो कि हृदय अपने स्थानसे गिरासा जाताहै । रोगीको अकस्मात् अत्यंत शीत या अत्यंत गर्मी प्रतीत हो, वहुतसा भोजन करनेपर भी शरीर दुर्बल और कृश होताजाय, मुख चिकना और स्वच्छ प्रतीत हो, त्वचा और नेत्र सुन्दर दिखाई पडें, हाथों और पांवोंके तलुवे नर्म, चिकने होजांय, निरन्तर सबकी निन्दा करे और सबसे घृणा करने लगजाय रोगीका स्वर तीनों दोषोंकी मिली आकृतिवाला हो, तथा पार्श्वपीडा, प्रतिश्याय, अरुचि, मलका फटा हुआसा आना, अकस्मात् स्वरभंग होना यह क्षयज कासके लक्षण हैं । यह कास क्षीण पुरुषोंकी देहको नष्ट करनेवाला है ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

खांसीकी साध्यासाध्यता ।

याप्योवलवतांवास्याद्याप्यस्त्वेवंक्षतोत्थितः । कदाचिदपिसिध्येता-मेतौपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वोयाप्यः प्रकीर्त्तितः ॥ २८ ॥ त्रीन्साध्यान्साधयेत्पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्चयापयेत् । चिकि-त्सामतऊर्द्धन्तुशृणुकासनिर्बर्हिणीम् ॥ २९ ॥

(१) 'श्रीमद्दर्शनलोचनैः' कहीं ऐसा पाठहै कि दांत और नेत्र चमकीले सुन्दरसे हों ।

बलवान् मनुष्योंकी क्षयज और क्षतज खांसी याप्यसाध्य होती है। चिकित्सकके चारों पाद संपन्न होनेपर क्षयज और क्षतजकास साध्य भी हो जातीहै । वृद्ध मनुष्योंकी बुढापेकी खांसी सब प्रकारकी ही याप्य होतीहै। वातज, पित्तज, और कफज खांसी साध्य होतीहै। इनमें वातादि तीन प्रकारकी खांसियोंको औषध द्वारा शान्त करे और याप्यसाध्य खांसियोंमें पथ्य द्वारा अथवा सर्वगुणसंपन्न होनेपर पथ्य और औषध द्वारा यापन करता रहे। अब इसके उपरांत खांसीके दूर करनेवाली चिकित्साका श्रवण करो ॥ २८ ॥ २९ ॥

वात कास (खांसी) की चिकित्सा ।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत् । सर्पिर्भिर्वस्तिभिःपेयायूपक्षीररसादिभिः ॥ ३० ॥ वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यैर्धूमैर्लेहैश्चयुक्तितः । अभ्यङ्गैःपरिषेकैश्चस्निग्धैःस्वेदैश्चबुद्धिमान् ॥ ३१ ॥

रूक्ष मनुष्योंकी वातज खांसीमें स्नेहों द्वारा चिकित्सा करना चाहिये तथा घृत, स्निग्धवस्ति, पेया, क्षीर, यूष और रसादिकोंका प्रयोग करना चाहिये । और वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृत तैलादिकोंसे तथा धूम लेहादिकोंसे युक्तिपूर्वक चिकित्सा करे और बुद्धिमान् वैद्य अभ्यंग, परिषेक, स्निग्धस्वेदका प्रयोग करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

वस्तिभिर्वद्धविड्वातंशुष्कोर्द्ध्वोर्द्धभक्तिकैः ।
घृतैःसपित्तंसकफंजयेत्स्नेहविरेचनैः ॥ ३२ ॥

यदि मल और अधोवायु बद्ध होगई हो तो वस्तिकर्म करे । ऊर्द्ध्वभागमें वायुके शुष्क होजानेसे उत्तरभक्तिक (भोजनोत्तर घृतपान) घृतपान करावे । यदि वातज खांसीमें पित्त और कफका भी अनुबंध हो तो स्निग्ध विरेचन करावे ॥ ३२ ॥

कण्टकारिघृत ।

कण्टकारीगुडूचीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे ।
प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ॥ ३३ ॥

कटेली ३० पल, गिलोय ३० पल, इनका क्वाथ कर उस क्वाथमें १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे । यह घृत वातज खांसीको नष्ट करनेवाला और अग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ३३ ॥

पिप्पलीघृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । धान्यपाठावचारास्नाय-

पृथ्याह्वक्षारहिंगुभिः ॥ ३४ ॥ कोलमात्रैर्घृतप्रस्थाद्दशमूलीरसाढके । सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयामण्डंपिबेदनु ॥ ३५ ॥ तच्छ्वासकासहृत्पार्श्वग्रहणीदोषगुल्मनुत् । पिप्पल्याद्यंघृतश्चैतदात्रेयेणप्रकीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, धनिया, पाठा, वच, रासना, मुलैठी, जवाखार और हींग यह प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे । घृत १ प्रस्थ, दशमूलका क्वाथ १ आढक । इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत नित्य ४ तोला प्रमाण पीयाकरे । ऊपरसे पेयामण्डका अनुपान करे तो श्वास, खांसी, हृत्शूल, पार्श्वपीडा और ग्रहणीदोष यह सब नष्ट होते हैं । यह पिप्पलादिघृत आत्रेयजीका - कथन किया है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्र्यूषणादि घृत ।

त्र्यूषणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्मर्य्याणिपरूषकम् । द्वेपाठेदेवदार्व्वृद्धिंस्वगुप्तांचित्रकंशटीम् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मींतामलकींमेदांकाकनासांशतावरीम् । त्रिकण्टकांविदारीश्चपिष्ट्वाकर्षसमंघृतात् ॥ ३८ ॥ प्रस्थं चतुर्गुणक्षीरंसिद्धंकासहरंपिबेत् । ज्वरगुल्मारुचिप्लीहशिरोहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ३९ ॥ कामलार्शोऽनिलाष्ठीलाक्षतशोषक्षयापहम् । त्र्यूषणंनामविख्यातमेतद्धृतमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, द्राक्षा, कुम्भेर, फालसा, पाठा, सोनापाठा, देवदारु, ऋद्धि, कौंचके बीज, चित्रक, कचूर, ब्राह्मी, भूमिआँवला, मेदा, काकनासा, शतावर, गोखुरू, विदारीकंद इन सबको एक एक कर्ष लेवे । इनमें त्रिफला और त्रिकुटा तीन २ कर्ष लेना चाहिये । घी १ प्रस्थ, दूध ४ प्रस्थ, सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । इस घृतके पान करनेसे खांसी नष्ट होतीहै तथा ज्वर, गुल्म, अरुचि, प्लीहरोग, शिर, हृदय और पार्श्वकी पीडा, कामला, अर्श, वातष्ठीला, क्षत, शोष और क्षयरोग यह सब नष्ट होतेहैं । यह परमोत्तम त्र्यूषण नामसे विख्यात घृत है ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

रास्नादि घृत ।

द्रोणेऽपांसाधयेद्रास्नांदशमूलींशतावरीम् । पलिकान्माणिकांशांस्तु कुलत्थान्बदरान्यवान् ॥ ४१ ॥ तुलार्द्धञ्चाजमांसस्यपादशेषेणतेनच । घृताढकंसमक्षीरंजीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ४२ ॥ सिद्धंतद-

शभिःकल्कैर्नस्यपानानुवासनैः । समीक्ष्यवातरोगेषुयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥ पञ्चकासाञ्छिरःकम्पंशूलंवंक्षणयोनिजम् । सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्चसप्लीहोर्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥ ४४ ॥

रासना, दशमूलकी दश औषधियें और शतावर इन १२ द्रव्योंको एक एक पल लेवे । कुल्थी, बेर और यव इनको एक एक पल लेवे । बकरेका मांस आधा तुला लेवे । इन सबको मिलाकर आठगुने जलमें पकावे । जब चौथा भाग रहे उतारकर छान लेवे । घी १ आढक, दूध १ आढक, जीवनीयगणकी दश औषधियें एक एक पल लेकर चूर्ण करे । फिर सबको एकत्र मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । यह घृत वातरोगोंमें बल अवस्था आदि विचारकर पीनेमें, नस्यादि कर्मोंमें प्रयुक्तकरे । इसके सेवनसे पांच प्रकारकी खांसी, शिरका कांपना, वंक्षणोंकी पीडा, योनिशूल, सर्वांगरोग, एकांगरोग और प्लीहरोग तथा ऊर्द्ध्वजत्रुगत वायुकी शान्ति होतीहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

विडंगादि चूर्ण ।

विडङ्गनागररास्नापिप्पलीहिंगुसैन्धवैः । भार्ङ्गीक्षारश्चतच्चूर्णंपिबेद्वाघृतमात्रया ॥४५॥ सकफेऽनिलजेकासेश्वासहिक्काहताग्निषु॥४६॥

वायविडंग, सोंठ, रासना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भारंगी और जवाखार इनका चूर्ण बनाकर ४ गुने घृतके साथ सेवनकरे तो कफमिश्रित वातजनित खांसी तथा श्वास, हिचकी और मंदाग्नि यह सब दूर होते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

द्विक्षारादि चूर्ण ।

द्वौक्षारौपञ्चकोलानिपञ्चैवलवणानिच । शटीनागरकोदीच्यकल्कंवावस्त्रगालितम् । पाययेत्घृतोन्मिश्रंवातकासनिवर्हणम् ॥ ४७ ॥

जवाखार, सज्जीखार, पंचकोल, पांचों नमक, कचूर, सोंठ और नेत्रवाला इन सबका बारीक कल्क कर वस्त्रमें छानलेवे । फिर घृतमें मिला पानकरे तो वातकी खांसी दूर होतीहै ॥ ४७ ॥

अन्य प्रयोग ।

दुरालभांशटींद्राक्षांशृङ्गवेरंसितोपलाम् । लिह्यात्कर्कटशृङ्गीश्चकासेतैलेनवातजे ॥ ४८ ॥

जवासा, कचूर, द्राक्षा, अदरख और काकडसिंगी तथा मिसरी इन सबको बारीक पीसकर वातनाशक तेलमें मिला पानकरे तो वायुकी खांसी दूर होवेहै॥४८॥

दुःस्पर्शांपिप्पलींमुस्तंभार्गींकर्कटकींशटीम् । पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितंवापिलेहयेत्॥४९॥विडङ्गंसैन्धवंकुष्ठंव्योषंहिङ्गुमनःशिलाम्। मधुसर्पिर्युतंकासहिक्काश्वासंजयेल्लिहन् ॥ ५० ॥

जवासा, पीपल, नागरमोथा, भांर्गी, काकडासिंगी, कचूर इन सबके चूर्णको पुराने गुड और तेलमें मिला चाटे । अथवा बायबिडंग, सेंधानमक, कूठ, त्रिकुटा, हींग, मनसिल इन सबका चूर्ण बनाकर घृत और शहदमें मिला चाटे तो खांसी, हिचकी और श्वासको दूर करताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

चित्रकादि अवलेह ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंव्योषंहिंगुदुरालभाम् । शटींपुष्करमूलञ्चश्रेयसींसुरसांवचाम् ॥ ५१ ॥ भार्गींछिन्नरुहांरास्नांशृङ्गींद्राक्षाञ्चकार्षिकान् । कल्कानर्द्धतुलाक्वाथेनिदिग्ध्याःपञ्चविंशतिम् ॥ ५२ ॥ दत्त्वामत्स्याण्डिकायाश्चघृताच्चकुडवंपचेत् । सिद्धंशीतंप्रियक्षौद्रपिप्पलीकुडवान्वितम् ॥ ५३ ॥ चतुष्पलंतुगाक्षीर्य्याश्चूर्णितंतत्रदापयेत् । लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम् ॥ ५४ ॥

चित्रक, पीपलामूल, सोंठ, मिर्च, पीपल, हींग, जवासा, कचूर, पोहकरमूल, गजपीपल, तुलसी, वच, भारंगी, गिलोय, रासना, काकडासिंगी, मुनक्का इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे । कटेलीका क्वाथ आधा तुला, मिसरी २० पल, घी १ कुडव इन सबका पाक करे । जब पकते २ गाढा होजाय तो नीचे उतारकर ठण्ढा करे । फिर इसमें १ कुडव शहद, १ कुडव पीपलका चूर्ण, और चार पल वंशलोचनका चूर्ण मिलावे । इसमेंसे एक एक तोला दोनों समय चाटनेसे खांसी, हृद्रोग, श्वास और गुल्म नष्ट होतेहैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अगस्त्यहरीतकी ।

दशमूलींस्वयंगुप्तांशंखपुष्पींशटींबलाम् । हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ५५ ॥ भार्गींपुष्करमूलञ्चद्विपलांशंयवाढकम् । हरीतकीशतञ्चैकंजलपञ्चाढकेपचेत् ॥ ५६ ॥ यवेस्विन्ने कषायंतंपूतंतञ्चाभयाशतम् । पचेद्गुडतुलांदत्त्वाकुडवञ्चपृथग्घृतात् ॥ ५७ ॥ तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीतेचमाक्षिकात् । लिह्याद्द्वेचाभयेनित्यमतःखादेद्रसायनात् ॥ ५८ ॥ तद्वलीपलितं

हन्तिवर्णायुर्बलवर्द्धनम् । पञ्चकासान्क्षयंश्वासंहिक्कांसविषमज्वराम् ॥ ५९ ॥ हन्यात्तथार्शोग्रहणीहृद्रोगारुचिपीनसान् । अगस्त्यविहितंश्रेष्ठंरसायनमिदंशुभम् ॥ ६० ॥

दशमूलकी दश औषधियें, कौंचके वीज, शंखपुष्पी, कचूर, बला, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चित्रक, भारंगी, पोहकरमूल यह सब दो दो पल लेवे । यव १ आढक, इन सबको ५ आढक जलमें पकावे । और इसमें उत्तम पकीहुई १०० हरडोंको पतलेसे वस्त्रमें ढीलासा बांधकर छोड देवे । जब पकते २ यव भलीप्रकार गलजांय और पानी चौथा भाग रहजाय तो उतारकर छानलेवे और उन हरडोंको अलग निकाल लेवे । इस क्वाथमें १ तुला गुड, १ कुडव घृत और १ कुडव तैल मिलाकर पकावे । उन १०० हरडोंको भी सूई आदिसे सर्वतः छेदकर उस गुडकी चासनीमें मिला देवे । और जब पकते २ गाढा होजाय तो इसको उतारकर शीतल करे । इसमें पीपलका चूर्ण १ कुडव और शहद १ कुडव मिलावे । फिर इसको उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । इसमेंसे दो हरडे खाकर ऊपरसे अग्निबल विचारकर यह अवलेह चाटे । इस रसायनके नित्य सेवन करनेसे वलीपलित दूर हो वर्ण आयु और बलकी वृद्धि हो तथा पांच प्रकारकी खांसी, क्षय, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, ववासीर, ग्रहणी विकार, हृद्रोग, अरुचि और पीनस इन सबको नष्ट करतीहै । यह अगस्त्यऋषिकी कहीहुई अगस्त्यहरीतकी नामक रसायन है ॥ ५९-६० ॥

अन्य योग ।

सैन्धवंपिप्पलींभार्ङ्गींशृङ्गवेरंदुरालभाम् । दाडिमाम्लेनकोष्णेन भार्ङ्गींनागरमम्बुना ॥६१॥ पिबेत्खदिरसारंवामदिरादधिमस्तुभिः। अथवापिप्पलीकल्कंघृतभृष्टंससैन्धवम् ॥ ६२ ॥

सेंधानमक, पीपल, भारंगी, सोंठ और जवासेका चूर्ण दाडिमके रसके साथ पीवे अथवा भारंगी और सोंठके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे या खैरसारको मद्य अथवा दहीके जलके साथ पीवे या पीपलके कल्कको सेंधानमक मिला घीमें भूनकर सेवन करे तो वातज खांसी दूर होवे ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

धूम्रप्रयोग ।

शिरसःसदनेस्रावेनासायाह्वदितास्यति । कासप्रतिश्यायवतांधूमं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ ६३ ॥ दशांगुलोन्मितांनाडीमथवाष्टांगुलोन्मिताम् । शरावसंपुटच्छिद्रेकृत्वाजिह्मांविचक्षणः ॥ ६४ ॥ वैरेचनं

मुखेनैवकासवान्धूममापिवेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तंसुखेनैवोद्धमेत्पुनः ॥ ६५ ॥ सह्यस्यतैक्ष्ण्याद्विक्षिप्यश्लेष्माणमुरसिस्थितम् । निष्कृष्यशमयेत्कासंवातश्लेष्मसमुद्भवम् ॥ ६६ ॥

यदि खांसी और प्रतिश्यायमें मस्तकपीडा, नासास्राव और हृदयकी पीडासे रोगी व्याकुल हो तो वैद्य उसको धूमपान करावे । धूमपानका नल दश अंगुल लम्बा अथवा आठ अंगुल किंचित् टेढा होना चाहिये । दो शरावोंके अन्दर औषधियें रखकर उन दोनों शरावोंका संपुट कर और शरावमें छिद्र कर उस छिद्रमें धूमपानकी नाल लगाना चाहिये । फिर उस नाल द्वारा शरावके अन्दरसे वातनाशक विरेचक द्रव्योंका धूआं खांसीवाला रोगी नालको मुख लगाकर पीवे । फिर उस धूएंको मुखसे छाती तक पहुंचा मुखद्वारा ही निकालदे । इस प्रकार पीयाहुआ धूम छातीमें चिपटीहुई कफको निकालकर कफयुक्त वायुकी खांसीको दूर करदेताहै ॥६३–६६॥

मनःशिलासमधुकमांसीमुस्तेंगुदैःपिवेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंसुखोष्णंसगुडंपिवेत् ॥ ६७ ॥ एषकासान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवाञ्जयेत् । प्रसह्यापरिसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥ ६८ ॥

मनसिल, मुलैठी, जटामांसी, नागरमोथा, और गोंदनीके फूलका धूआं उपरोक्त विधिसे पीवे । धूमपानके अनन्तर गुड मिला सुखोष्ण दूध पीवे । यह योग वातादि पृथक् २ दोषोंसे उत्पन्न हुई खांसीको तथा सन्निपातसे उत्पन्नहुई खांसीको बलात्कारसे दूरकर देताहै । जो खांसी अन्य अनेक योगोंके सेवनसे भी शान्त न हुईहो उसको यह योग अपने बलसे दूर करदेताहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

प्रपौण्डरीकंमधुकंशार्ङ्गेष्टांसमनःशिलाम् । मरिचंपिप्पलींद्राक्षामेलांसुरसमञ्जरीम् ॥ ६९ ॥ कृत्वावर्त्तिंपिवेद्धूमंक्षौमचेलानुवर्त्तिताम् । घृताक्तामनुचक्षीरंगुडोदकमथापिवा ॥ ७० ॥

पंडयारेकी छाल, मुलैठी, महाकरंज, मनसिल, मिर्च, पीपल, मुनक्का, छोटी इलायची, तुलसीकी मंजरी इन सबको बारीक पीसकर कौशेय वस्त्रमें लपेटकर वत्ती बनावे । इस वत्तीको घृतमें भिगो धूमपान करे । ऊपरसे दूध अथवा गरम किया गुडोदक पीवे ॥ ६९ ॥ ७० ॥

मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः । वंशलोचनशैवालक्षौमालक्तकरोहिषैः ॥७१॥ पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते । आलं

मनःशिलातद्धत्पिप्पलीनागरैःसह॥ ७२ ॥ त्वगैङ्गुदीबृहत्यौद्वेताल- मूलंमनःशिला । कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥७३॥

मनसिल, इलायची, मिर्च, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, पानीकी काई, अलसी, लाख, रोहिषतृण इन सबको वारीक पीसकर पूर्वोक्त विधिसे धूमपान करे । फिर गरम दूध और गुडका पान करे । अथवा मनसिल, हरताल, पीपल, सोंठ इन सबके चूर्णकी वत्ती बना धूमपान करे । अथवा गोंदनीकी छाल, कटेली, वडी कटेली, मुसली, मनसिल, कपासके बीज और असगंध इन सबको वारीक कूटकर उपरोक्त विधिसे धूमपान करे तो उपरोक्त गुण होतेहैं तथा वात और कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

वातज खांसीमें पथ्य ।

ग्राम्यानूपौदकैःशालियवगोधमषष्टिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानांयूषै- र्वादापयेद्धितान् ॥ ७४ ॥

बकरी आदि ग्राम्यजीव, अनूपसंचारी जीव और जलज जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावल, यवान्न, गोधूम और शाठीके चावलोंका अन्न देवे । अथवा कौंचके बीजोंसे सिद्ध किये यूपके साथ देवे ॥ ७४ ॥

कासनाशक पेया ।

यमानीपिप्पलीबिल्वमध्यनागरचित्रकैः । रास्नाजाजीपृथक्पर्णी- पलाशशटिपौष्करैः ॥ ७५ ॥ स्निग्धाम्ललवणांसिद्धांपेयामनिलजे- पिबेत् । कटीहृत्पार्श्वकोष्ठार्त्तिश्वासहिक्काप्रणाशनीम् ॥ ७६ ॥

अजवायन, पीपल, बेलगिरी, सोंठ, चित्रक, जीरा, रासना, पृष्ठपर्णी, ढाकके खगे, कचूर और पोहरमूल इन सबका क्वाथकर उस क्वाथमें अनारकी खटाई, सेंधानमक और घृत मिला सिद्ध कीहुई पेया वातजनित खांसी, कमर, छाती और पार्श्वकी पीडा, कोष्ठशूल, श्वास और हिचकीको नष्ट करतीहै ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

दशमूलरसेतद्वत्पञ्चकोलगुडान्विताम् । सिद्धांसमतिलांदद्यात्क्षी- रेवापिससैन्धवाम् ॥ ७७ ॥

दशमूलके क्वाथमें पंचकोल और गुड डालकर सिद्ध कीहुई पेया अथवा तिल और सेंधानमकके साथ दूधमें सिद्ध कीहुई पेया सेवन करनेसे वातज खांसी दूर होतीहै ॥ ७७ ॥

मत्स्यकुक्कुटवाराहैरामिषैर्वाघृतान्वितैः । सिद्धांससैन्धवांपेयांवात- कासीपिबेन्नरः ॥ ७८ ॥

मछली, मुर्गा और सूअरके मांसके साथ सिद्ध कीहुई पेया घृत और संधा-नमक युक्तकरके वातज खांसीवाला मनुष्य पीवे ॥ ७८ ॥

वातज खांसीमें शाकादि ।

वास्तुकंवायसीशाकंमूलकंसुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयोभक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ ७९ ॥ दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नापानमेवच । शस्यतेवातकासेतुस्वाद्वम्ललवणानिच ॥ ८० ॥

वाथुका साग, मकोयका साग, मूली, चौपतिया साग, तैलादि स्नेह, दूध, ईखका रस और गुडके बने पदार्थ, दही, कांजी, बिजौरा, अनार, प्रसन्ना, तथा मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ यह वातकी खांसीमें हितकारक द्रव्य हैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

पित्तजकासकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेसकफेकासेवमनंसर्पिषाहितम् । तथामदनकाश्मर्य्यमधूककथितैर्जलैः ॥ ८१ ॥ यष्ट्याह्वफलकल्कैर्वाविदारीक्षुरसायुतैः । हृतदोषस्ततःशीतंमधुरश्चक्रमंभजेत् ॥ ८२ ॥

पित्तजनित, खांसीमें जो कफ प्रबल हो तो घृतके योगसे वमन कराना चाहिये । तथा मैनफल, कुंभेरके फल और मुलैठीके क्वाथसे वमन कराना हितहै । या मुलैठीकी जडका कल्क विदारीकंदका रस और ईखका रस मिला पिलाकर वमन करावे । वमन द्वारा दोषोंके निकलजानेपर शीतल और मधुर द्रव्योंद्वारा चिकित्सा करे ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

पैत्तेतनुकफेकासेत्रिवृतांमधुरैर्युताम् । दद्याद्घनकफेतिक्तैर्विरेकार्थेयुतांभिषक् ॥८३॥ स्निग्धशीतस्तनुकफेरूक्षशीतः कफेघने । क्रमः कार्य्यःपरंभोज्यैःलेहैर्लेहैश्चशस्यते ॥ ८४ ॥

जिस पित्तकी खांसीमें कफका पतलापन होय तो मधुर द्रव्यके साथ निशोथका चूर्ण मिला पिलावे उससे विरेचन करावे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी हो तो निशोथके चूर्णको तिक्त द्रव्योंके साथ सेवन करावे । यदि कफ पतली और थोडी हो तो स्निग्ध और शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । यदि पित्तज खांसी कफ गाढी और अधिक हो तो रूक्ष, शीतल द्रव्योंसे चिकित्सा करे । इसी प्रकार अल्प कफ युक्त पित्तज खांसीमें स्निग्ध और शीतल लेहादिकोंका विरेचन करावे । यदि कफ अधिक और गाढा हो तो पित्तज खांसीमें रूक्ष और शीतल लेह आदि सेवन करावे ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

श्रृङ्गाटकंपद्मबीजंनीलीसाराणिपिप्पली। पिप्पलीमुस्तयष्ट्याह्वद्राक्षामूर्वामहौषधम् ॥ ८५ ॥ लाजामृतफलाद्राक्षास्त्वक्क्षीरीपिप्पलीसिता। पिप्पलीपद्मकोद्राक्षाबृहत्याश्चफलाद्रसः ॥ ८६ ॥ खर्जूरंपिप्पलीवांशीश्वदंष्ट्राचेतिपञ्चते । घृतक्षौद्रयुतालेहाःश्लोकार्द्धैः पित्तकासिनाम् ॥ ८७ ॥

१ सिंघाडा, कमलगट्टा, नीलिनी, प्रसारिणी और पीपल । २ पीपल, नागरमोथा, मुलैठी, मुनक्का, मूर्वा और सोंठ । ३ लाजा, आमले, मुनक्का, वंशलोचन, पीपल और मिसरी। ४ पीपल, पद्माख, मुनक्का और बडी कटेलीके फलोंका रस । ५ खजूर, पीपल, वंशलोचन और गोखरू । यह पांच योग आधे २ श्लोकोंमें कहे गये हैं। इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शहत और घृत मिला चाटनेसे पित्तकी खांसी दूर होतीहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः । पैत्तेसमुस्तमरिचःसकफे सघृतोऽनिले ॥ ८८ ॥

केवल पित्तकी खांसीमें लालचंदन, द्राक्षा, आँवले और नीलकमलका चूर्ण करके खांड और शहत मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें कफका संबंध हो तो नागरमोथा और मिरच इसी उपरोक्त चटनीमें मिला चाटे । यदि पित्तकी खांसीमें वातका अनुबंध हो तो इसी चटनीमें घी मिला चाटे ॥ ८८ ॥

मृद्वीकार्द्धशतंत्रिंशत्पिप्पलीशर्करापलम् ।
लेहयेन्मधुनागौर्वाक्षीरपस्यशकृद्रसम् ॥ ८९ ॥

उत्तम, काबुली द्राक्षा ५०, पीपल ३०, खांड १ पल इन सबका चूर्ण कर शहतमें मिला चाटे अथवा गोबरके रसमें या दूध पीते बछडेके गोबरके रसमें उपरोक्त चूर्ण इसमें मिला पीवे ॥ ८९ ॥

त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः । लाजामुस्तशटीरास्नाधात्रीफलविभीतकैः ॥ ९० ॥ शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहःकासविनाशनः । श्वासंहिक्कांक्षयश्चैवहृद्रोगश्चप्रणाशयेत् ॥ ९१ ॥

दालचीनी, इलायची, त्रिकुटा, द्राक्षा, पीपलामूल, पोहकरमूल, धानकी खील, नागरमोथा, कचूर, रासना, आँवले और बहेडे इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णमें मिसरी, शहद और घृत मिलाकर चाटनेसे खांसी, श्वास, हिचकी, क्षय और हृद्रोग दूर होवें ॥ ९० ॥ ९१ ॥

पिप्पल्यामलकंद्राक्षांलाक्षांलाजान्सितोपलाम् ।
पिवेद्वामधुसंयुक्तंपित्तकासहरंपरम् ॥ ९२ ॥

पीपल, आँवले, मुनक्का, धुला लाखदाना, धानोंकी खील और मिसरी इन सबके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटै ॥ ९२ ॥

विदारीक्षुमृणालानांरसान्क्षीरंसितोपलम् ।
पिवेद्वामधुसंयुक्तंपित्तकासहरंपरम् ॥ ९३ ॥

विदारीकंदका रस, ईखका रस, कमलकी कंदका रस, दूध और मिसरी इनको शहद मिला पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होतीहै ॥ ९३ ॥

पित्तजखांसीमें पथ्य ।

मधुरैर्जाङ्गलरसैःश्यामाकयवकोद्रवाः। मुद्गादियूपैःशाकैश्चतिक्तकै-र्मात्रयाहिताः ॥ ९४ ॥ घनश्लेष्मणिलेहास्तुतिक्तकामधुसंयुताः। शालयःस्युस्तनुकफेपष्टिकाश्चरसादिभिः ॥९५॥ शर्कराम्भोऽनुपा-नार्थेद्राक्षेक्षूणांरसान्पयः। सर्वञ्चमधुरंशीतमविदाहिप्रशस्यते ॥९६॥

जांगलजीवोंका मधुर मांसरस, श्यामाक (शौंकके चावल) यव, कोद्रव, मूंग आदिके यूष और तिक्त द्रव्योंके साथ मात्रानुसार सेवन करना पित्तकी खांसीमें हित है। पित्तकी खांसीमें यदि कफ अधिक और गाढी हो तो तिक्त और मधुर द्रव्योंसे युक्त रस, अवलेह अथवा तिक्त द्रव्योंके चूर्णको शहदमें मिला चाटै और मधुर रसोंके साथ शालिचावलके भातका पथ्य करे। यदि कफ अल्प होय अथवा पतली होय तो मधुर रसोंके साथ शाठीके चावलोंका पथ्य दे पीनेके लिये खांडका शरवत, दाखका रस, ईखका रस, दूध और सब प्रकारके मधुर, शीतल, अविदाही, अनुपान हितकारक हैं ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

काकोलीबृहतीमेदायुग्मैःसवृषनागरैः ।
पित्तकासेरसान्क्षीरंयूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ ९७ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, बडी कटेली, छोटी कटेली, मेदा, महा मेदा, अडूसा और सोंठ डालकर सिद्ध किया यूष अथवा मांसरस पित्तकी खांसीमें हितकारी है९७

शरादिपञ्चमूलस्यपिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।
कपायेणशृतंक्षीरंपिवेत्समधुशर्करम् ॥ ९८ ॥

अथवा शरादिपंचमूल, पीपल और दाखके साथ सिद्धकिया दूध शीतल होनेपर शहद और खांड मिलाकर पीना हितकारी है ॥ ९८ ॥

महिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैःसमैः
सर्पिःसिद्धंपिवेद्युक्त्यापित्तकासनिवर्हणम् ॥ १०५ ॥

भैंस, बकरी, भेड और गौ इन सबके दूध आँवलेका रस इन सबकों बराबर लेवे । इनसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक पीनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ १०५ ॥

कफकासचिकित्सा ।

वलिनंवमनैरादौशोधयेत्कफकासिनम् । यवान्नैःकटुरूक्षोष्णैःकफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १०६॥ पिप्पलीक्षारिकैर्यूषैःकौलत्थैर्मूलकस्यच । लघून्यन्नानिभुञ्जीतरसैर्वाकटुकान्वितैः ॥ १०७ ॥ धान्ववैल्वररसैर्लेहैस्तिलसर्षपबिल्वजैः । मध्वम्लोष्णाम्बुतक्रंवामद्यंवानिगदं पिवेत् ॥ १०८ ॥

कफकी खांसीवाला रोगी यदि बलवान् हो तो पहिले वमन द्वारा कफका शोधन करे । फिर वमन द्वारा कफ निकलनेके अनन्तर भोजनके लिये कफनाशक कटु, रूक्ष और उष्ण द्रव्योंसे सिद्धकिया यवान्न देना चाहिये । अथवा पीपल और जवाखारके साथ सिद्ध किये कुल्थीके यूप और सूखी मूलीके यूपके साथ हलका अन्न भोजनके लिये देना चाहिये । अथवा धन्वज और विलेशय जीवोंके मांसरसको पीपल मिरच आदि कटु द्रव्योंसे सिद्धकर उस रसके साथ हलका अन्न भोजन करावे । या तिल, सरसों और बेलके बीजोंके तेलसे स्निग्ध किये रसोंके साथ भोजन करावे । पीनेके लिये शहत और बिजौरेकी खटाई मिला जल, गरमजल, तक्र अथवा मद्य या निगद देना चाहिये ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥

पौष्करारग्वधंमूलंपटोलान्तंनिशास्थितम् ।
जलंमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिपु ॥ १०९ ॥

पोहकरमूल, अम्लतासकी झड, पटोलकी जड इन सबको पानीमें भिगोकर रात्रिभर धरा रहनेदे प्रातःकाल शहद मिला पीवे अथवा जब जब भोजन करे उस समय सेवन किया करे । (इसी जलको निगद कहतेहैं) ॥ १०९ ॥

कफकासनाशक अनेक योग ।

कट्फलंकतृणंभार्गींमुस्तंधान्यंवचाभया । शुण्ठीपर्पटकःशृङ्गीसुराह्वश्चशृतंजले ॥ ११० ॥ मधुहिङ्गुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके । कण्ठरोगेमुखेशूलेश्वासहिक्काज्वरेपुच ॥ १११ ॥

वृश्चिकपत्रिका, वडी कटेली, हरड, अजवायन, अनारका छिलका, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा, चव्य, जवासा, अम्लवेतस, काकडासिंगी, भूमिआमला, भारंगी, रासना और गोखरू इन सवको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इस कल्कको उपरोक्त क्वाथ और घी मिलाकर पकावे । घृत मात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो यह कण्टकारि घृत सब प्रकारकी खांसी, हिचकी, श्वास और कफके रोगोंको दूर करताहै ॥ १२३–१२६ ॥

कुलत्थादिघृत ।

कुलत्थरसयुक्तंवापञ्चकोलश्रृतंघृतम् ।
पाययेत्कफजेकासेहिक्काश्वासेचशस्यते ॥ १२७ ॥

कुलथीके क्वाथ और पंचकोलसे सिद्धकिया घृत कफकी खांसी और हिचकी दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥

कफनाशक धूम ।

धूमांस्तानेवदद्याच्चयेप्रोक्तावातकासिनाम् ।
कोशातकीफलान्मध्यंपिवेद्वासमनःशिलम् ॥ १२८ ॥

कफकी खांसीको दूर करनेके लिये जो धूम वातकी खांसीमें कहे हैं उनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा कोशातकी (काली तोरी) के मध्यके गुदामें मनसिल मिला धूमपानविधिसे धूमपान करे ॥ १२८ ॥

कफजकासमें अन्यअनुबन्धोंके यत्न ।

तमकःकफकासेतुस्याच्चेत्पित्तानुवन्धजे ।
पित्तकासक्रियांतत्रयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

पित्तानुबंधी कफकी खांसीमें यदि तमकश्वास होजाय तो पित्तकी खांसीमें कही-हुई क्रिया अवस्थानुसार करना चाहिये ॥ १२९ ॥

वातेकफानुवन्धेतुकुर्य्यात्कफहरींक्रियाम् ।
पित्तानुवन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशिनीम् ॥ १३० ॥

कफ प्रबल वातकी खांसीमें कफको नष्ट करनेवाली क्रिया करना चाहिये। तथा वात कास और कफकासमें यदि पित्त प्रबल हो तो पित्तको हरण करनेवाली क्रिया करना चाहिये ॥ १३० ॥

आर्द्रेविरूक्षणंशुष्केस्निग्धंवातकफात्मके ।
कासेऽन्नपानंकफजेसपित्तेतिक्तसंयुतम् ॥ १३१ ॥

कफ और वातकी खांसीमें यदि कफ सूखी हो तो स्निग्ध औषध, अन्नपानका प्रयाग करना चाहिये। यदि कफ गीली हो तो रूक्ष अन्नपानका प्रयोग करना हित है। एवं कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध होनेसे तिक्तरसयुक्त अन्नपानका सेवन कराना चाहिये ॥ १३१ ॥

क्षतजकासकी चिकित्सा।

कासमात्ययिकंमत्वाक्षतजंत्वरयाजयेत्।
मधुरैर्जीवनीयैश्चबलमांसविवर्द्धनैः ॥ १३२ ॥

क्षतज खांसीको आत्ययिक समझकर मधुर जीवनीय और बलमांसविवर्द्धक द्रव्योंसे शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३२ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह।

पिप्पलीमधुकंपिष्टंकार्षिकंससितोपलम्। प्रास्थिकंगव्यमाजन्तु-क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ १३३ ॥ यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकीरसः। तैलञ्चप्रसृतांशानितत्सर्वंमृदुनाग्निना ॥ १३४ ॥ पचेल्लेहंघृतक्षौद्र-युक्तःसक्षतकासनुत्। श्वासहृद्रोगकासेषुहितोवृद्धाल्परेतसे॥१३५॥

पीपल, मुलैठी और मिसरी यह एक एक कर्ष, गौका दूध १ प्रस्थ, बकरीका दूध १ प्रस्थ और ईखका रस १ प्रस्थ, यव, गेहूं और दाखका कल्क तथा आँवलेका रस और तेल यह सब एक एक प्रसृति (दो दो पल) इन सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे अवलेह बनावे। इसको घृत और शहत मिला सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हृद्रोग, खांसी दूर होतीहै तथा वृद्ध मनुष्यों और अल्प वीर्यवालेके लिये परम हितकारी है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

क्षतकासाभिभूतानांवृत्तिःस्यात्पित्तकासिकी।
क्षीरसर्पिर्मधुप्रायासंसर्गेतुविशेषणम् ॥ १३६ ॥

क्षतज कासवाले रोगीको पित्तकी खांसीमें कहेहुए पथ्योंका सेवन करना चाहिये। तथा दूध, घृत और शहतका अधिक सेवन करना हितकारी है ॥ १३६ ॥

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गोगात्रभेदेघृतैर्हितः।
तैलैर्मारुतरोगघ्नैःपीड्यमानेचवायुना ॥ १३७ ॥

यदि क्षतज कासमें वातपित्तकी पीडा, अंगोंमें भेद होय तो वायुकी प्रधानता होनेसे वातनाशक तेलोंकी मालिश करनी चाहिये और पित्तकी प्रधानता होनेसे पित्तनाशक घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

कायफल, वीरणतृण (कांस), भारंगी, नागरमोथा, धनियां, वच, हरड, सोंठ, पित्तपापडा, काकडासिंगी, देवदारू, इनसे पकाये जलको शीतलकर हींग और शहद मिला पीनेसे वातयुक्त कफकी खांसी, कण्ठरोग, मुखरोग, शूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होतेहैं ॥ ११० ॥ १११ ॥

पाठांशुण्ठींशटींमूर्वांगवाक्षींमुस्तपिप्पलीम् ।
पिष्ट्वाघर्माम्बुनाहिङ्गुसैन्धवाभ्यांयुतांपिबेत् ॥ ११२ ॥

पाठा, सोंठ, कचूर, मूर्वा, इन्द्रायणकी जड, नागरमोथा और पीपल इनको पीसकर हींग और सेंधा नमक मिला गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीहै११२

नागरातिविषामुस्तशृङ्गीकर्कटकस्यच ।
हरीतकींशटीश्चैवतेनैवविधिनापिबेत् ॥ ११३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, काकडासिंगी, हरड, कचूर, इन सबके बारीक चूर्णको हींग और सेंधे नमकसे युक्त कर गरम जलके साथ पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११३ ॥

तैलभृष्टश्चपिप्पल्याःकल्काक्षंससितोपलम् ।
पिबेद्वाश्लेष्मकासघ्नंकुलत्थरससंयुतम् ॥ ११४ ॥

पीपलके कल्कको तेलमें भूनकर मिसरी मिला १ तोला भर खाकर ऊपरसे कुल्थीका रस पीवे तो कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११४ ॥

कासमर्दाश्वविट्भृङ्गराजोवार्त्ताकजारसाः ।
सक्षौद्राःकफकासघ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ ११५ ॥

कसौंदीका रस, घोडेकी लीदका रस, भृंगराजका रस और बडी कटेलीके फलोंका रस अथवा सुरसा तुलसी या काली तुलसीके पत्रोंका रस शहद मिला पीनेसे कफकी खांसी दूर होतीह ॥ ११५ ॥

देवदारुशटीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा । पिप्पलीनागरंमुस्तंपथ्या धात्रीसितोपलाः ॥ ११६ ॥ मधुतैलयुतावेतौलेहौवातानुगेकफे । पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली ॥ ११७ ॥ पथ्यातामलकीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली । देवदार्वभयामुस्तंपिप्पलीविश्वभेपजम् ॥ ११८ ॥ विशालापिप्पलीमुस्तंत्रिवृताचेतिलेहयेत् । चतुरोमधुनालेहान्कफकासहरान्भिषक् ॥ ११९ ॥

देवदारू, कचूर, रासना, काकडासिंगी और जवासेका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे अथवा पीपल, सोंठ, नागरमोथा, हरड, आँवला और मिसरी इनका चूर्ण शहद और तेलमें मिला चाटे तो वातानुबंधी कफकी खांसी दूर होतीहै। अथवा १ पीपल, पीपलामूल, चित्रक और गजपीपल। २ हरड, भूमिआँवला, भद्रमोथा और पीपल। ३ देवदारू, हरड, नागरमोथा, पीपल और सोंठ। ४ इन्द्रायणकी जड, पीपल, नागरमोथा और निशोथ। इन आधे २ श्लोकोंमें कहेहुए चार योगोंमेंसे किसी एक योगका चूर्ण वैद्य रोगीको शहत मिला चटावे तो कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ ११६-११९ ॥

सौवर्चलाभयाधात्रीपिप्पलीक्षारनागरम्।
चूर्णितंसर्पिषावातकफकासहरंपिबेत् ॥ १२० ॥

संचरनमक, हरड, आँवले, पीपल, जवाखार, सोंठ इन सबके चूर्णको घीमें मिला पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी दूर होतीहै ॥ १२० ॥

दशमूलादिघृत।

दशमूलाढकेप्रस्थंघृतस्याक्षसमेपचेत्। पुष्कराह्वशटीबिल्वसुरसैर्व्योषहिङ्गुभिः ॥ १२१ ॥ पेयंपेयानुपानंतत्कासेवातकफात्मके। श्वासरोगेषुसर्वेषुकफवातात्मकेषुच ॥ १२२ ॥

दशमूलका काथ १ आढक, घृत १ प्रस्थ, पोहकरमूल, कचूर, बिल्व, सुरसा, तुलसी, सोंठ, मिरच, पीपल और हींग यह सब एक एक कर्ष लेवे। इन सबसे सिद्ध किया घृत पीकर ऊपरसे पेयाको पीवे तो वातयुक्त कफकी खांसी, श्वास तथा सब प्रकारके कफ और वातात्मक रोग दूर होतेहैं ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

कंटकारिघृत।

समूलफलपत्रायाःकण्टकार्य्यारसाढके। घृतप्रस्थंबलाव्योषविडङ्गशटिचित्रकैः ॥ १२३ ॥ सौवर्चलयवक्षारपिप्पलीमूलपौष्करैः। वृश्चीकवृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्द्धिभिः ॥ १२४ ॥ द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालभाम्लवेतसैः। शृङ्गीतामलकीभार्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ १२५ ॥ कल्कैस्तत्सर्वकासेषुहिक्काश्वासेषुशस्यते। कण्टकारिघृतंह्येतत्कफव्याधिनिषूदनम् ॥ १२६ ॥

कटेरीके पंचाङ्गका क्वाथ १ आढक, घी १ प्रस्थ, बला, सोंठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, कचूर, चित्रक, संचरनमक, जवाखार, पीपल, पीपलामूल, पोहकरमूल,

वृश्चिकपत्रिका, बडी कटेली, हरड, अजवायन, अनारका छिलका, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा, चव्य, जवासा, अम्लवेतस, काकडासिंगी, भूमिआमला, भारंगी, रासना और गोखरू इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इस कल्कको उपरोक्त क्वाथ और घी मिलाकर पकावे । घृत मात्र शेष रहनेपर सेवन करे तो यह कण्टकारि घृत सब प्रकारकी खांसी, हिचकी, श्वास और कफके रोगोंको दूर करताहै ॥ १२३-१२६ ॥

कुलत्थादिघृत ।

कुलत्थरसयुक्तंवापञ्चकोलश्रृतंघृतम् ।
पाययेत्कफजेकासेहिकाश्वासेचशस्यते ॥ १२७ ॥

कुलथीके क्वाथ और पंचकोलसे सिद्धकिया घृत कफकी खांसी और हिचकी दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १२७ ॥

कफनाशक धूम ।

धूमांस्तानेवदद्याच्चयेप्रोक्तावातकासिनाम् ।
कोशातकीफलान्मध्यंपिबेद्वासमनःशिलम् ॥ १२८ ॥

कफकी खांसीको दूर करनेके लिये जो धूम वातकी खांसीमें कहे हैं उनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा कोशातकी (काली तोरी) के मध्यके गुदामें मनसिल मिला धूमपानविधिसे धूमपान करे ॥ १२८ ॥

कफजकासमें अन्यअनुबन्धोंके यत्न ।

तमकःकफकासेतुस्याच्चेत्पित्तानुबन्धजे ।
पित्तकासक्रियांतत्रयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

पित्तानुबंधी कफकी खांसीमें यदि तमकश्वास होजाय तो पित्तकी खांसीमें कही-हुई क्रिया अवस्थानुसार करना चाहिये ॥ १२९ ॥

वातेकफानुबन्धेतुकुर्य्यात्कफहरींक्रियाम् ।
पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशिनीम् ॥ १३० ॥

कफ प्रबल वातकी खांसीमें कफको नष्ट करनेवाली क्रिया करना चाहिये। तथा वात कास और कफकासमें यदि पित्त प्रबल हो तो पित्तको हरण करनेवाली क्रिया करना चाहिये ॥ १३० ॥

आर्द्रेविरूक्षणंशुष्केस्निग्धंवातकफात्मके ।
कासेऽन्नपानंकफजेसपित्तेतिक्तसंयुतम् ॥ १३१ ॥

कफ और वातकी खांसीमें यदि कफ सूखी हो तो स्निग्ध औषध, अन्नपानका प्रयाग करना चाहिये। यदि कफ गीली हो तो रूक्ष अन्नपानका प्रयोग करना हित है। एवं कफकी खांसीमें पित्तका अनुबंध होनेसे तिक्तरसयुक्त अन्नपानका सेवन कराना चाहिये ॥ १३१ ॥

क्षतजकासकी चिकित्सा।

कासमात्ययिकंमत्वाक्षतजंत्वरयाजयेत्।
मधुरैर्जीवनीयैश्चबलमांसविवर्द्धनैः ॥ १३२ ॥

क्षतज खांसीको आत्ययिक समझकर मधुर जीवनीय और बलमांसविवर्द्धक द्रव्योंसे शीघ्र चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३२ ॥

पिप्पल्याद्यवलेह।

पिप्पलीमधुकंपिष्टंकार्षिकंससितोपलम्। प्रास्थिकंगव्यमाजन्तु-क्षीरमिक्षुरसस्तथा ॥ १३३ ॥ यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकीरसः। तैलञ्चप्रसृतांशानितत्सर्वंमृदुनाग्निना ॥ १३४ ॥ पचेल्लेहंघृतक्षौद्र-युक्तःसक्षतकासनुत्। श्वासहृद्रोगकासेषुहितोवृद्धाल्परेतसे॥१३५॥

पीपल,मुलैठी और मिसरी यह एक एक कर्ष,गौका दूध १प्रस्थ,बकरीका दूध १प्रस्थ और ईखका रस १ प्रस्थ, यव, गेहूं और दाखका कल्क तथा आँवलेका रस और तेल यह सब एक एक प्रसृति (दो दो पल) इन सबको मिलाकर मंद मंद अग्निसे अवलेह बनावे। इसको घृत और शहत मिला सेवन करनेसे क्षतज खांसी, श्वास, हृद्रोग, खांसी दूर होतीहै तथा वृद्ध मनुष्यों और अल्प वीर्यवालेके लिये परम हितकारी है ॥ १३३ ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

क्षतकासाभिभूतानांवृत्तिःस्यात्पित्तकासिकी।
क्षीरसर्पिर्मधुप्रायासंसर्गेतुविशेषणम् ॥ १३६ ॥

क्षतज कासवाले रोगीको पित्तकी खांसीमें कहेहुए पथ्योंका सेवन करना चाहिये। तथा दूध, घृत और शहतका अधिक सेवन करना हितकारी है ॥ १३६ ॥

वातपित्तार्दितेऽभ्यङ्गोगात्रभेदेघृतैर्हितः।
तैलैर्मारुतरोगघ्नैःपीड्यमानेचवायुना ॥ १३७ ॥

यदि क्षतज कासमें वातपित्तकी पीडा, अंगोंमें भेद होय तो वायुकी प्रधानता होनेसे वातनाशक तेलोंकी मालिश करनी चाहिये और पित्तकी प्रधानता होनेसे पित्तनाशक घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १३७ ॥

हृत्पार्श्वार्त्तिषुपानंस्याजीवनीयस्यसर्पिषः। सदाहंकासिनोरक्तंष्ठीवतःसवलेऽनले ॥ १३८ ॥ मांसोचितेभ्यःकासिभ्योलावादीनांरसाहिताः। तृष्णार्त्तानांपयश्छागंशरमूलादिभिःश्रृतम् ॥ १३९ ॥ रक्तेस्रोतोभ्यआस्याद्वाप्यागतेक्षीरजंघृतम् । नस्यंपानंयवागूर्वाश्रान्तेक्षामेहतानले ॥ १४० ॥

यदि हृदय और पार्श्वमें पीडा होती हो तो जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया घृत पिलाना चाहिये। यदि खांसीमें दाह हो और कफके साथमें रक्त निकलता हो और रोगीकी जठराग्नि वलवान् हो तो मांस, सात्म्य और क्षीण खांसी रोगवालोंको लवा आदि पक्षियोंका मांसरस पिलाना हितकारी है। क्षतज खांसीमें प्यासकी अधिकता हो तो शरमूलादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ दूध पिलाना चाहिये। यदि नासिका आदि द्वारोंसे अथवा मुखसे रुधिर आवे तो शरादि पंचमूलसे सिद्धकिये दूधका मक्खन पिलाने और नस्य देनेमें प्रयो करना चाहिये यदि रोगी कृश और श्रान्त (थकित) होगया हो और जठराग्नि मंद पडजाय तो उसको बृंहण और दीपनीय यवागू पिलाना चाहिये ॥ १३८ ॥ १३९ ॥ १४० ॥

स्तम्भायासेषुमहतींमात्रांवासर्पिषःपिबेत् ।
कुर्य्याद्वावातरोगघ्नंपित्तरक्ताविरोधियत् ॥ १४१ ॥

क्षतज खांसीमें देहका स्तम्भ होजाय और रोगी थकित होजाय तो उसको घृतकी उत्तम मात्रा पिलाना चाहिये। अथवा वार्तनाशक और रक्तपित्तसे अविरोधी क्रिया करना चाहिये ॥ १४१ ॥

धूमप्रयोग।

निवृत्तेक्षतदोषेतुकफेवृद्धउरःक्षते ।
दाल्यतेकासिनोयस्यसधूमान्नापिबेदिमान् ॥ १४२ ॥

उरःक्षतमें क्षतज दोषोंके निवृत्ति होकर यदि कफ वहुत वढजाय और कफके वेगसे छाती फटीसी जातीहो तो उसको यह नीचे लिखे धूमपान कराने चाहिये ॥ १४२ ॥

द्वेमेदेमधुकंद्वेचबलेतैःक्षौमलक्तकैः ।
वर्त्तितैर्धूममापीयजीवनीयघृतंपिबेत् ॥ १४३ ॥

मेदा, महामेदा, मुलैठी, वला, नागवला, इन सबको चूर्ण कर अलसीके वस्त्रमें

लाखके रसके योगसे लपेटकर वत्ती बनावे। इस वत्तीका धूमपान विधिसे धूमपान करे। ऊपरसे जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध घृत पान करे ॥ १४३ ॥

मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरिनागरैः ।
भावयित्वापिवेत्क्षौमंशर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ १४४ ॥

मनसिल, ढाकके बीज, अजवायन, वंशलोचन, सोंठ इनसबको लाखके रसकी भावना देकर रेशमी या अलसीके कपडेमें लेपटकर धूम्रपान करे। धूमपानके पश्चात् खांडका शरवत वा ईखका रस अथवा गुडका शरवत पीवे ॥ १४४ ॥

पिष्ट्वामनःशिलांतुल्यामार्द्रयावटशुंगया ।
ससर्पिष्कंपिवेद्धूमंतित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४५ ॥

मनसिल और गीले वडके अंकुर दोनोंको वरावर लेकर पीस लेवे। इनको घृतमें मिलाकर धूमवर्त्ती वना धूमपान करे। धूमपानके अनन्तर तीतरके मांसरसके साथ भोजन करे ॥ १४५ ॥

भावितंजीवनीयैर्वाकुलिंगाण्डरसायुतः ।
क्षौमंधूमंपिवेत्क्षीरंशृतश्चायोगुडैरनु ॥ १४६ ॥

अथवा जीवनीय औषधियोंके क्वाथसे या कुलिंगके अण्डोंके रससे रेशमके कपडेको अथवा अलसीके कपडेको भिगोकर धूमवर्त्ती बनावे। इस वत्तीका धूमपान करनेके पश्चात् गर्मकिया दूध अथवा लोहेके गोलेको गर्मकर उससे वुझा दूध या मण्डूरसे वुझा दूध पानकरे। तो उरःक्षत रोगीकी बढीहुई कफ दूर होकर हृदयमें शान्ति आती है ॥ १४६ ॥

क्षयजचिकित्सा ।

सम्पूर्णरूपंक्षयजंदुर्वलस्यविवर्जयेत् । नवोत्थितंवलवतःप्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम् ॥ १४७ ॥ तस्यैवंहणमेवादौकुर्यादग्नेश्चवर्द्धनम् । वहुदोषायसस्नेहंमृदुदद्याद्विरेचनम् ॥ १४८ ॥

जो क्षयज खांसीवाला रोगी क्षयके संपूर्ण लक्षणोंयुक्त हो और दुर्वल हो तो उसको वैद्य असाध्य जानकर त्यागदेवे। यदि रोगी वलवान् हो और रोग नवीन उत्पन्नहुआ हो तो उसको तुम्हारा रोग असाध्य है यह कहकर चिकित्सा करना चाहिये। उसको प्रथमही वल और मांसके वढानेवाले तथा अग्निको चैतन्य करनेवाले योगोंसे साधन करे। यदि वह वढेहुए दोषोंसे युक्त हो तो पहिले उसको स्नेहन करके मृदु विरेचन देवे ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

शम्पाकेनत्रिवृतयामृद्वीकारसयुक्तया । तिल्वकस्यकषायेणविदारी-स्वरसेनच ॥ १४९॥ सर्पिःसिद्धंपिवेद्युक्त्याक्षीणदेहोविशोधनम् । हितंतद्देहवलयोरस्यसंरक्षणंमतम् ॥ १५० ॥

अमलतास और निशोथका कल्क, द्राक्षाका रस, पठानी लोधका क्वाथ,विदारीकन्दका स्वरस इन सवसे सिद्ध किया घृत युक्तिपूर्वक क्षीणदेहवालोंको शोधन करनेके लिये पिलाना चाहिये । यह घृत रोगीके देह और बलकी रक्षा करताहुआ मृदु विरेचन करनेवाला है । इसलिये क्षयरोगियोंको हितकारक है॥ १४९ ॥१५०॥

पित्तेकफेचसंक्षीणेपरिक्षीणेपुधातुपु ।
घृतंकर्कटकीक्षीरद्विवलासाधितंपिवेत् ॥ १५१ ॥

पित्त और कफ क्षीण हो तथा अन्य सब धातुयें भी क्षीण हों तो काकडासिंगी, वला, नागवला इनका कल्क बनाकर इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध मिलाकर घृत सिद्ध करके इस घृतका प्रयोग करे ॥ १५१ ॥

विदारीभिःकदम्वैर्वातालशस्यैस्तथाशृतम् ।
घृतंपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्यैकृच्छ्रनिर्गमे ॥ १५२ ॥

विदारीकंदका कल्क अथवा कदम्बका कल्क या ताडवृक्षके अंकुरोंका कल्क करके सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे क्षीणरोगीके मूत्रकी विवर्णता और मूत्रका कृच्छ्रतासे आना यह दूर होतेहैं ॥ १५२ ॥

शूनेसतोदनेमेढ्रेपायौसश्रोणिवंक्षणे ।
घृतमण्डेनमधुनाऽनुवास्योमिश्रकेणवा ॥ १५३ ॥

क्षयरोगीको यदि लिंगेन्द्रिय, गुदा, श्रोणी और वंक्षणमें सूजन हो अथवा पीडा हो तो उसको शहद मिला घृतमण्डके साथ अनुवासन वस्ति करे । अथवा घृत और तेल इन दोनोंमें शहद मिला अनुवासन वस्ति करे ॥ १५३ ॥

जाङ्गलैःप्रतिभुक्तस्यवर्त्तकाद्याविलेशयाः । क्रमशःप्रसहाश्चैवप्रयोज्याःपिशिताशिनः ॥ १५४ ॥ औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्रोतोभ्यश्च्यावयन्तिते । कफंशुद्धैश्चतैःपुष्टिंकुर्य्यात्सम्यग्वहन्रसः॥१५५॥

फिर क्रमपूर्वक जांगल जीवोंका मांसरस अथवा वटेर और विलेशय आदिकोंका मांसरस भोजनके साथ सेवन करावे।अथवा मांससात्म्य मनुष्योंको क्रमपूर्वक प्रसहजीवोंका मांसरस सेवन करावे । क्योंकि यह रस उष्णतासे और प्रमाथीभावसे स्रोतोंके

मार्गोंसे कफको च्यवन करदेतेहैं । उससे कफके शुद्ध होनेपर शरीरमें उत्तम रीतिसे रसका संचार करतेहुए शरीरको पुष्ट करदेतेहैं ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

चविकादिघृत ।

चविकात्रिफलाभार्ङ्गीदशमूलैःसचित्रकैः। कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले ॥ १५६ ॥ शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशटिपौष्करैः । कल्कैःकर्कटशृङ्ग्याचसमैःसर्पिर्विपाचयेत् ॥ १५७ ॥ सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौक्षारौद्वौपश्चलवणानिच । दत्त्वायुक्त्यापिबेन्मात्रांक्षयकासनिपीडितः ॥ १५८ ॥

चव्य, हरड, बहेडे, आंवले भारंगी, दशमूलकी दश औषधियें, चित्रक, कुलथी, पीपलामूल, पाटला, कोल (उन्नाव) और यव इनका क्वाथ ८ सेर, सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पोहकरमूल और काकडासिंगी इन सबका कल्क आधा सेर, घृत दो सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर इसमें सज्जीखार, जवाखार और पांचों लवण इन सबका चूर्ण आठ तोला मिलावे । इस घृतको युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे क्षयजनित खांसी दूर होतीहै ॥ १५६ ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

गुडूच्यादिघृत ।

गुडूचींपिप्पलींमूर्वांहरिद्रांश्रेयसींवचाम् । निदिग्धिकांकासमर्दं पाठांचित्रकनागरम् ॥ १५९ ॥ जलेचतुर्गुणेपक्त्वापादशेषेणतत्समम् । सिद्धंसर्पिःपिबेद्गुल्मश्वासार्तिक्षयकासनुत् ॥ १६० ॥

गिलोय, त्रिफला, मूर्वा, हल्दी, गजपीपल, वच, कटेली, कसौंदी, पाटला, चित्रककी छाल और सोंठ इन सबको चौगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस क्वाथसे सिद्ध किया घृत गुल्म, श्वास और अत्यंत क्षयकी खांसीको दूर करताहै ॥ १५९ ॥ १६० ॥

कासमर्दादिघृत ।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकट्फलनागरैः । पिप्पल्याकटुकाद्राक्षाकाश्मर्य्यैःसुरसेनच ॥ १६१ ॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थंक्षीरद्राक्षारसाढके । पचेच्छोपज्वरप्लीहसर्वकासहरंशिवम् ॥ १६२ ॥

कसौंदी, हरड, नागरमोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, मुनक्का, कुंभेर और तुलसी इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । घृत १ प्रस्थ, दूध

१ आढक, द्राक्षाका रस १ आढक, इन सबको मिला घृत सिद्ध करे । इस पवित्र घृतका पान करनेसे शोष, ज्वर, प्लीहरोग और सब प्रकारकी खांसी दूर होती है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

अन्य योग ।

धात्रीफलैःक्षीरसिद्धैःसर्पिर्वाप्यवचूर्णितम् । द्विगुणेदाडिमरसेविपक्वंव्योषसंयुतम् ॥ १६३ ॥ पिबेदुपरिभक्तस्ययवक्षारघृतंनरः । पिप्पलीगुडसिद्धंवाच्छागक्षीरयुतंघृतम् ॥ १६४॥ एतान्यग्निविवृद्ध्यर्थं सर्पींषिक्षयकासिनाम् । स्युर्दोषबन्धकोष्ठोरःस्रोतसांचविशुद्धये१६५॥

आँवलोंके फलोंको घीमें सिद्धकर उन आँवलोंकी गुठलियें निकाल कल्क बनाकर घृतमें घोलकर पान करे । अथवा त्रिकुटेका चूर्ण घृतसे चौथा भाग, अनारका रस घृतसे दोगुना घृतमें मिला पानकरे । अथवा भातका भोजन कर ऊपरसे जवाखार मिला घृत पीवे । या पीपल और गुड तथा बकरीका दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत पानकरे । यह सब घृत क्षयजनित खांसीवाले रोगियोंकी अग्निको बढातेहैं और दोषोंसे विबद्धकोष्ठ तथा छातीके स्रोतोंको शुद्ध करतेहैं ॥ १६३ ॥ १६४ ॥१६५ ॥

हरीतकीअवलेह ।

हरीतकीर्यवक्वाथद्व्याढकेविंशतिंपचेत् । स्विन्नामृदित्वातास्तस्मिन्पुराणंगुडषट्पलम् ॥ १६६ ॥ दद्यान्मनःशिलाकर्षकर्षार्द्धंचरसाञ्जनात् । कुडवार्द्धंचपिप्पल्याःसलेहःश्वासकासनुत् ॥ १६७ ॥

यवोंका क्वाथ २ आढक लेकर उसमें उत्तम निर्दोष बडी बीस २० हरडोंको पकावे । जब पकते २ हरडें नरम पडजायँ तो हरडोंको निकालकर उनकी गुठलियोंको दूरकर हरडोंको पीसलेवे । उनमें पुराना गुड ६ पल मिलाकर उसी यवोंके क्वाथसे अवलेह पकावे । जब गाढा होजाय तो १ तोला शुद्ध मनसिल १ तोला, रसौत, पीपलका चूर्ण ८ तोला यह सब मिलाकर अवलेह (चटनी) बनावे । इसके सेवनसे श्वास और खांसी दूर होतीहै ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

अन्य योग ।

श्वाविधःसूचयोदग्धाःसघृतक्षौद्रशर्कराः ।
श्वासकासहरावर्हिपादौवाक्षौद्रसर्पिषा ॥ १६८ ॥

सेहके कांटोंको जलाकर घी, और शहद और खांड मिलाकर चाटे । अथवा मोरके पैर जलाकर उसकी भस्म शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होतीहै ॥ १६८ ॥

एरण्डपत्रक्षारंवाव्योषंतैलंगुडान्वितम् । लिह्यादेतेनविधिनासुरसैरण्डपत्रजम् ॥ १६९ ॥ द्राक्षापद्मकवार्त्ताकपिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा । लिह्यात्त्र्यूपणचूर्णंवापुराणं गुडसर्पिषा ॥ १७० ॥ चित्रकं त्रिफलाजाजीकर्कटाख्यंकटुत्रिकम् । द्राक्षाश्चक्षौद्रसर्पिर्भ्यां लिह्याद्याद्गुडेन वा ॥ १७१ ॥

एरण्डके पत्तोंका क्षार अथवा त्रिकुटा तेल और गुडमें मिला विधिवत् चाटे । या तुलसी और एरण्डके पत्रोंकी भस्म तेल और गुड मिला चाटे अथवा मुनक्का, पद्मकाष्ठ, वडी कटेलीके फल और पीपलके चूर्णको शहद और घृत मिलाकर चाटे । अथवा सोंठ, मिर्च, पीपलके चूर्णको पुराने गुड और घृतमें मिला चाटे । या चित्रक त्रिफला, जीरा, काकडासिंगी त्रिकुटा, और द्राक्षा इन सबको वारीक पीस शहद और घृतके साथ सेवन करे अथवा गुडके साथ सेवन करे तो सब प्रकारकी खांसी दूर हो ॥ १६९ ॥ १७० ॥ १७१ ॥

पद्मकाद्यवलेह ।

पद्मकं त्रिफलांव्योपं विडङ्गंसुरदारु च । बलांरास्नाश्चतुल्यानिसूक्ष्मं चूर्णानि कारयेत् ॥ १७२ ॥ सर्वैरेभिः समं चूर्णंपृथक्क्षौद्रघृतंसिताम् । विमथ्यलेहयेल्लेहंसर्वकासहरंशिवम् ॥ १७३ ॥

पद्माख, हरड, वहेडे, आमले, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, देवदारू, वला, रासना इन सबको बराबर लेकर वारीक चूर्ण बनावे । इस चूर्णको शहद, घृत और मिसरीमें मिला चाटे तो यह अवलेह सव प्रकारकी खांसियोंको दूर करनेवाला और कल्याणप्रद है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

जीवंत्याद्यवलेह ।

जीवन्तींमधुकंपाठांत्वक्क्षीरींत्रिफलांशटीम् । मुस्तैलेपद्मकंद्राक्षां द्वेबृहत्यौवितुन्नकम् ॥ १७४ ॥ शारिवांपौष्करंमूलंकर्कटाख्यंरसाञ्जनम् ॥ पुनर्नवांलोहरजस्त्रायमाणांयमानिकाम् ॥ १७५ ॥ भार्ङ्गींतामलकींमृद्धिंविडङ्गंधन्वयासकम् । क्षारचित्रकचव्याम्लवेतसव्योपदारु च ॥ १७६ ॥ चूर्णीकृत्यसमांशानिलेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा । चूर्णंपाणितलंपश्चकासानेपव्यपोहति ॥ १७७ ॥

जीवन्ती, मुलैठी, पाटला, वंशलोचन, हरड, बहेड, आँवले, कचूर, नागरमोथा, इलायची, पद्माख, द्राक्षा, कटेली, बडी कटेली, धनियां, सारिवा, पोहकरमूल, काकडासिंगी, रसौत, पुनर्नवा, लोहभस्म, त्रायमाण, अजवायन, भारंगी, भूमिआँवला, ऋद्धि, वायविडंग, धनियां, जवाखार, चित्रक, चव्य, अमलबेत, त्रिकुटा, देवदारु यह सब बराबर लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहद और घृतमें मिलाकर १ तोला नित्य चाटनेसे पांच प्रकारकी खांसी दूर होतीहै ॥ १७४॥१७५॥ १७६ ॥ १७७ ॥

लिह्यान्मरिचचूर्णंवासघृतक्षौद्रशर्करम् । सर्वकासहरंश्रेष्ठंलेहंकासा-र्दितोनरः ॥ १७८ ॥ बदरीपत्रकल्कंवाघृतभृष्टंससैन्धवम् । स्वरभे-देचकासेचलेहमंतत्प्रयोजयेत् ॥ १७९ ॥

मिर्चका चूर्ण घृत, शहद और मिसरी मिलाकर चाटे तो सब प्रकारकी खांसी दूर हो अथवा बेरीके पत्तोंका कल्क सेंधानमक युक्तकर घृतमें भूनलेवे । इसको चाटनेसे स्वरभेद और खांसी दूर होतीहै ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पत्रकल्कंघृतैर्भृष्टंतिल्वकस्यसशर्करम् ।
पेयाचोत्कारिकाच्छर्दिस्तृट्कासामातिसारनुत् ॥ १८० ॥

पठानी लोधके पत्तोंका कल्क मिसरी मिला घृतमें भूनलेवे । इसको पीनेसे अथवा इसका हलुआसा बना सेवन करनेसे वमन, तृषा, खांसी और आमातिसार नष्ट होतेहैं ॥ १८० ॥

यवागूसर्पपादि ।

वातघ्नौषधनिष्क्वाथंक्षीरंयूषान्नरसानपि ।
वैष्किरप्रतुदादीनांदापयेत्क्षयकासिने ॥ १८४ ॥

वातनाशक औषधियोंके क्वाथ, दूध, यूष, अन्न, रस तथा विष्किर और प्रतुद पक्षियोंके तथा विलेशय जीवोंके मांसरसोंका सेवन करना क्षयकी खांसीमें हितकारी है ॥ १८४ ॥

क्षतकासेचयेधूमाःसानुपानानिदर्शिताः । क्षयकासेऽपितानेवयथावस्थंप्रयोजयेत् ॥ १८५ ॥ दीपनंबृंहणञ्चैवस्रोतसाञ्चविशोधनम् । व्यत्यासात्क्षयकासिभ्योबल्यंसर्वंमितंहितम् ॥ १८६ ॥

क्षतज खांसीमें कहेहुए सब प्रकारके धूम और अनुपान क्षयजनित खांसीमें अवस्था आदि विचारकर प्रयुक्त करने चाहिये तथा दीपन, बृंहण, छिद्रोंको शुद्ध करनेवाली और बलकारक क्षयज दोषोंको शान्त करनेवाली औषधियें क्षयकी खांसीमें हितकारी होतीहैं ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

सन्निपातभवोऽप्येपक्षयकासःसुदारुणः ।
सन्निपातहितंतस्मात्सदाकार्य्यंभिषग्जितम् ॥ १८७ ॥

यह दारुण क्षयज खांसी सन्निपातसे उत्पन्न होतीहै इसलिये वैद्यको सब प्रकार सन्निपातनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ १८७ ॥

दोषानुबलयोगाच्चहरेद्रोगबलाबलम् ।
कासेष्वेपुगरीयांसंजानीयादुत्तरोत्तरम् ॥ १८८ ॥

दोष और दोषोंके अनुबलके योगसे ही रोगमें बलाबल होताहै । खाँसीमें दोषोंका बलाबल उत्तरोत्तर बलवान् होता जाताहै । ऐसा विचारकर वैद्य क्रमपूर्वक दोषोंका हरण करे ॥ १८८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

भोज्यंपानानिसर्पींपिलेहाःपाचनकानिच । क्षीरंसर्पिर्गुडाधूमाः कासभेपज्यसंग्रहः ॥ १८९ ॥ संस्थानिमित्तंरूपाणिसाध्यसाध्यत्वमेवच । कासानांभेपजंप्रोक्तंगरीयस्त्वञ्चकासिनः ॥ १९० ॥

इतिश्री चरक० चिकि० कासचिकित्सितंनामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस कासचिकित्साध्यायमें खांसीवाले

रोगियोंके लिये भोज्य, पान, घृत, अवलेह, पाचन द्रव्य, दूध, सर्पि, गुड, धूम, खांसीकी औषधियें, खांसीकी संख्या, हेतु, लक्षण, साध्यासाध्यता और खाँसियोंकी चिकित्सा तथा खांसियोंकी उत्तरोत्तर गुरुता यह सब वर्णन किया है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

इति श्रीच० चिकित्सास्थाने सं० भा० टी० कासचिकित्सितं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातश्छर्दिचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम छर्दिचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

यशस्विनंब्रह्मतपोद्युतिभ्यांज्वलन्तमग्न्यर्कसमप्रभावम् । पुनर्वसुं भूतहितेनिविष्टंपप्रच्छशिष्योऽत्रिजमग्निवेशः ॥ १ ॥ याश्छर्दयः पञ्चपुरात्वयोक्तारोगाधिकारेभिषजांवरिष्ठ । तासांचिकित्सांसनिदानलिङ्गांयथावदाचक्ष्वनृणांहितार्थम् ॥ २ ॥

यशस्वी, ब्रह्मज्ञान और तपोबलकी कांतिसे अग्निके समान तेजस्वी तथा सूर्यके समान प्रकाशयुक्त संपूर्ण प्राणियोंके हित करनेवाले महर्षि आत्रेयजीसे उनके शिष्य अग्निवेश पूछनेलगे कि हे वैद्योंमें श्रेष्ठ जो आपने पहिले सूत्रस्थानमें रोगसंग्रहाध्याय (अष्टोदरीय) में छर्दियोंका कथन कियाहै अब कृपाकरके उनकी चिकित्सा, निदान और लक्षणोंको मनुष्योंके हितके लिये यथावत् कहिये ॥ १ ॥ २ ॥

तदग्निवेशस्यवचोनिशम्यप्रीतोभिषक्श्रेष्ठइदंजगाद । याश्छर्दयः पञ्चपुरामयोक्तास्ताविस्तरेणब्रुवतोनिबोध ॥ ३ ॥

इस प्रकार अग्निवेशके वचनको सुनकर प्रसन्न हुए वैद्यशिरोमणि आत्रेयजी कहने लगे कि हमने पहिले जो पांच प्रकारकी छर्दियोंका कथन कियाहै अब उसको विस्तारपूर्वक श्रवण करो ॥ ३ ॥

वमनके भेद ।

दोषैःपृथक्त्रिप्रभवाश्चतस्रोद्विष्टार्थयोगादपिपञ्चमीस्यात् ।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे छर्दि चार प्रकारकी होतीहै तथा पांचवीं द्विष्टार्थ अर्थात् मनको बिगाडनेवाले दुर्गंध आदिकोंके योगसे होतीहै ।

वमनकेपूर्वरूप।

तासांहृदुत्क्लेशकफप्रसेकोद्वेषोऽशनेचैवंहिपूर्वरूपम् ॥ ४ ॥

हृदयका उत्क्लेश (जी मचलाकर छर्दी होनेके लिये ऊपरको आना), मुखसे कफका गिरना या पानी भरकर आना और अन्नसे द्वेष होना यह वमनके पूर्वरूप हैं ॥४॥

छर्दिके हेतु, संप्राप्ति।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासाद्यतिकर्षितस्य । क्रुद्धो-महास्रोतसिमातरिश्वादोषान्समुत्क्लिश्यतदूर्द्ध्वमस्यन् ॥ ५ ॥ आमाशयोद्रेककृताश्चमर्मप्रपीडयञ्छर्दिमुदीरयेच्च ॥ ६ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक, रोग, भय और उपवास आदि हेतुओंसे अतिकृश हुए मनुष्योंके महास्रोत (मुखसे गुदा तक आहार आदि जानेवाली मोटी आंतडी) में वायु कुपित होकर दोषोंको उत्क्लेशित कर ऊपरको उठा मर्मस्थानको पीडन करताहुआ आमाशयसे उद्रेक करतीहुई वातजनित छर्दिको उत्पन्न करताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातजछर्दिके लक्षण।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषमूर्द्धनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः।उद्गारशब्द-प्रबलंसफेनंविच्छिन्नकृष्णंतनुकंकषायम् । कृच्छ्रेणचाल्पंमहताच वेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीहदुःखम् ॥ ७ ॥

हृदयमें पीडा, पार्श्वशूल, मुखका सूखना, नाभिके ऊपरकी ओर पीडा, खांसी, स्वरभेद, तोद, उबकायी आतेहुए प्रबल शब्दका होना अथवा प्रबल शब्दवाली डकार आना और झागदार, फटीहुई, काले वर्णकी, थोडी कसैली छर्दि अत्यंत कष्टके साथ आवे तथा छर्दिके महावेगसे रोगी दुःखित हो यह वातजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

पित्तजवमनके हेतु और संप्राप्ति।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्युष्णैरामाशयेपित्तमुदीर्णवेगम् । रसायनी-भिर्विसृतंप्रपीड्यमर्मोर्द्ध्वमागम्यवमिंकरोति ॥ ८ ॥

पित्तजनित अजीर्णसे तथा कटु, अम्ल, विदाही और उष्ण पदार्थोंके अति सेवनसे, आमाशयमें पित्त बढकर और उदीर्ण होकर अपने वेगसे रसवाही छिद्रोंमें विस्तारको प्राप्त होतीहुई हृदयको पीडनकर ऊपरको आकर वमनको उत्पन्न करतीहै ॥ ८ ॥

पित्तज छर्दिके लक्षण ।

मूर्च्छापिपासामुखशोपमूर्द्धताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्त्तः । पित्तंभृशोष्णंहरितंसतिक्तंधूम्रञ्चपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥ ९ ॥

मूर्च्छा, प्यास, मुखशोप, मस्तक और दोनों नेत्रोंका तपायमान होना, नेत्रोंके आगे अंधकार प्रतीत होना, वमनका वर्ण पीला, हरा होना तथा अत्यंत गरम, तिक्त, धूम्रवर्ण और दाहयुक्त वमन होना यह पित्तजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

कफजछर्दिके हेतु, संप्राप्ति ।

स्निग्धातिगुर्वामविदाहिभोज्यैःस्वापादिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः। उरःशिरोमर्मरसायनीश्चसर्वाःसनावृत्यवमिंकरोति ॥ १० ॥

चिकने, भारी, अविदाही भोजनोंका अत्यंत सेवन करनेसे और दिनमें सोने आदि कारणोंसे अत्यंत वृद्धिको प्राप्त हुआ कफ छाती सिर, हृदय और रसवाही - छिद्रोंमें फैलकर वमनको उत्पन्न करताहै ॥ १० ॥

कफजछर्दिके लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्य्यकफप्रसेकसन्तोपनिद्रारुचिगौरवार्त्तः । स्निग्धंघनंस्वादुकफंविशुद्धंसलोमहर्षोऽल्परुजंवमेत्तु ॥ ११ ॥

तन्द्रा, मुखमें मधुरता, मुखसे कफका गिरना, विना भोजन किये भी तृप्ति प्रतीत होना, निद्रा, अरुचि और शरीरमें भारीपन होना तथा छर्दि चिकनी, गाढी, मीठी, कफयुक्त और सफेद वर्णकी होना तथा वमनके समय रोमहर्ष और अल्प पीडा होना यह कफजनित छर्दिके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

सान्निपातिक वमनके हेतु ।

समश्नतःसर्वरसान्प्रसक्तमामप्रदोपर्त्तुविपर्य्ययैश्च । सर्वेप्रकोपंयुगपत्प्रपन्नाश्छर्दिंत्रिदोपांजनयन्तिदोपाः ॥ १२ ॥

सब प्रकारके रसोंका अत्यंत सेवन करनेसे, बढेहुए आमदोपके होनेसे, ऋतुओंकी विपरीततासे एकबार ही वातादि तीनों दोप कुपित होकर छर्दिको उत्पन्न करते हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातकी छर्दिके लक्षण ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तम् । छर्दिस्त्रिदोपाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तंवमतांनृणांस्यात् ॥ १३ ॥

शूल, अविपाक. अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह, इन सबकी प्रबलता होना

तथा प्रबल वमनका होना और वह वमन तीनां दोषोंके लक्षणोंयुक्त नमकीन, खट्टी, नीलवर्ण, सान्द्र, उष्ण, रक्तसहित अथवा रक्तवर्णकी हो यह सान्निपातिक छर्दिके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

प्राणनाशक छर्दिके लक्षण।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानिवायुःस्रोतांसिसंरुध्ययदोर्द्ध्वमेति। उत्सन्नदोषस्यतदाचितंतंदोषंसमुद्धूयनरस्यकोष्ठात् ॥ १४ ॥ विण्मूत्रयोस्तत्समवर्णगन्धंतृट्श्वासहिक्कार्त्तियुतंप्रसक्तम् । प्रच्छर्दयेदुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशुविनाशमेति ॥ १५ ॥

त्रिदोषमिश्रित वायु-विष्ठा, स्वेद, मूत्र और जलवाही स्रोतोंको रोककर जब ऊपरको गमन करतीहै तथा उत्पन्न हुए कोष्ठाश्रित संचित दोषोंको कोष्ठसे उठाकर निकालतीहै। तब वमनकी गंध और वर्ण विष्ठा और मूत्रके समान होतीहै। रोगी श्वास, प्यास, हिचकी, शूलसे व्याकुल होताहै। रोगी इस दुष्ट वमनके वेगसे व्याकुल और भयार्त्त हो। इन लक्षणोंवाली छर्दि मनुष्योंके प्राणको शीघ्र नष्ट करदेतीहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

द्विष्टार्थसंयोगज छर्दि।

द्विष्टप्रतीपाशुचिपूत्यमेध्यबीभत्सगन्धाशनदर्शनैश्च। यच्छर्दयेत्तसमनामनोघ्नैर्द्विष्टार्थसंयोगभवामतासा ॥ १६ ॥

जिन पदार्थोंसे द्वेष या ग्लानि हो तथा अपवित्र, दुर्गंधित, अमेध्य और बीभत्स गंधवाले पदार्थ हों उनके भोजन करनेसे अथवा गंध लेनेसे या देखनेसे तथा अन्य जो मनके बिगाडनेवाले पदार्थ हैं उनके संयोगसे जो मनमें घबराहट होकर छर्दि होजातीहै उसको द्विष्टार्थसंयोगजनित छर्दि कहतेहैं ॥ १६ ॥

छर्दिकी साध्यासाध्यता।

क्षीणस्यचाछर्दिरतिप्रवृद्धासोपद्रवाशोणितपूययुक्ता । सचन्द्रिकं तांप्रवदन्त्यसाध्यांसाध्यांचिकित्सेदनुपद्रवाञ्च ॥ १७ ॥

जो छर्दि क्षीण मनुष्यको अत्यंत वेग और उपद्रवोंसे युक्त हो अथवा रक्त, राध और मोरके पंखोंकीसी चमकयुक्त हो वह असाध्य जानना। जो छर्दि उपद्रवोंसे रहित हो और साध्य हो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १७ ॥

छर्दिकी चिकित्सा।

आमाशयोत्क्लेशभवाहिसर्वाश्छर्द्योमतालंघनमेवतस्मात्। प्राक्कारयेन्मारुतजांविमुच्यसंशोधनंवाकफपित्तहारि ॥ १८ ॥

सब प्रकारकी छर्दियें आमाशयमें उत्क्लेश होनेसे ही उत्पन्न होतीहैं इसलिये छर्दि रोगमें प्रथम लंघन कराना चाहिये । लंघन करानेके अनन्तर कफ और पित्तनाशक वमन, विरेचन करावे । परन्तु वातजनित छर्दिमें लंघन और शोधन कराना उचित नहीं है किसीका मत है कि वातज छर्दिमें यदि वैद्य उचित समझे तो लंघन करावे पर वमन, विरेचन न करावे ॥ १८ ॥

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानांहृद्यानिवायानिविरेचनानि । मद्यैः पयोभिश्चयुतानियुक्त्यानयन्त्यधोदोपमुदीर्णमूर्द्धम् ॥ १९ ॥

पित्त तथा कफकी छर्दिमें हरडोंका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटे तथा अन्य हृद्य विरेचन आदि करावे । अथवा युक्तिपूर्वक मद्य या दूधके योगसे शोधन द्रव्योंका उपयोग कर ऊपरके ऊठेहुए दोषोंको वमन द्वारा निकाल देवे और नीचेके दोषोंका विरेचन द्वारा शोधन करे ॥ १९ ॥

वल्लीफलाद्यैर्वमनंपिबेद्वायोदुर्वलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनोज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विविधैश्चपानैः ॥ २० ॥

अथवा कडवी तोरई आदि फलोंको पीकर वमन करे यदि रोगी दुर्वल हो तो हलके प्रिय लगनेवाले सूखे अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पान और संशमन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वातजछर्दिकी चिकित्सा ।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिबर्हिलावरसाव्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्ताम् । छर्दि तथाकोलकुलत्थधान्यबिल्वादिमूलाम्लयवैश्चयूपः ॥ २१ ॥

वातसे उत्पन्न हुई छर्दिमें उत्तम रीतिसे संस्कार कियेहुए तीतर, मोर और लवाके मांसरसोंको पिलावे । तथा बेर, कुल्थी, धनियां और बिल्व आदि पंचमूल तथा यवोंसे सिद्ध कियाहुआ स्निग्ध और अम्ल यूप सेवन करावे ॥ २१ ॥

वातात्मकेहृद्रदकासयुक्तोनरः पिबेत्सैन्धववद्धृतंतु । सिद्धंतथा धान्यकनागराभ्यांदध्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ २२ ॥ व्योपेणयुक्तां लवणैस्त्रिभिश्चघृतस्यमात्रामथवाविदध्यात् । स्निग्धानिहृद्यानिचभोजनानिरसैःसयूपैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥ २३ ॥

यदि वायुकी छर्दिमें हृदय फडकता हो और खांसी भी हो तो वह मनुष्य घृतमें सेंधानमक मिला सेवन करे । अथवा धनियां, सोंठ, इन दोनोंका चूर्ण बनाकर दही और घृतके साथ अथवा दाडिमके रसके साथ पिलावे या त्रिकुटा, सेंधानमक,

संचर नमक, विडनमक, इनसे सिद्ध किया घृत विधिवत् पानकरे । और चिकने तथा हृद्य भोजन मांसरसों और दहीं तया दाडिमके रससे अम्ल किये यूषोंके साथ सेवन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थंद्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् । कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धंपित्तंहरेत्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥ २४ ॥

पित्तकी छर्दिमें पित्तके वेगको अनुलोमन करनेके लिये द्राक्षाका रस, विदारी कंदका रस या ईखका रस निशोथके चूर्णके साथ पिलाकर विरेचन करावे । यदि पित्त कफाशयमें वढाहुआ हो तो मधुर द्रव्योंसे वमन करा, निकाल देना चाहिये ॥ २४ ॥

शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यांलाजैश्चमन्थंयदिवापिपेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेनवापिशाल्योदनंजाङ्गलजैरसैर्वा ॥ २५ ॥

जब रोगी वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध होलेवे तो उसको शहद, मिसरी मिलाकर लाजामंथ पिलावे । अथवा पेया पिलावे या मूंगके यूषके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात खिलावे ॥ २५ ॥

सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिःकुल्मापलाजायवशक्तुगृञ्जान् । खर्जूरमांसान्यथनारिकेलंद्राक्षामथोवावदराणिलिह्यात् ॥ २६ ॥

अथवा कुल्माष, लाजा या यवोंके सत्तूमें गाजर और पीपलका चूर्ण मिलाकर मिसरी शहतके साथ सेवन करावे । अथवा खजूरका छिलका अथवा नारियल और द्राक्षा तथा वेरकी त्वचा इन सबको वारीक पीस मिसरी और शहद मिला चटावे ॥ २६ ॥

स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयाञ्च । कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविट्लाजासितामागधिकाकणावा ॥ २७ ॥

स्रोतोज (रसौत या स्रोतोञ्जन), धानकी खील, नीलकमल, वेरकी मींगी इन सबके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे । अथवा वेरकी मींगी (गुठलीके भीतरकी गिरि), रसौत, खील, मिसरी, इलायची और पीपल शहद मिलाकर चाटे ॥२७॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतंमृद्भृष्टलोष्टप्रभवंचजलंवा । जम्ब्वाम्रयोः पल्लवजंकपायंपिवेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ २८ ॥

पित्तज छर्दिमें दाखका रस पीवे । अथवा आगमें भुनाहुआ मट्टीका डला जलमें

सब प्रकारकी छर्दियें आमाशयमें उत्क्लेश होनेसे ही उत्पन्न होतीहैं इसलिये छर्दि रोगमें प्रथम लंघन कराना चाहिये । लंघन करानेके अनन्तर कफ और पित्तनाशक वमन, विरेचन करावे । परन्तु वातजनित छर्दिमें लंघन और शोधन कराना उचित नहीं है किसीका मत है कि वातज छर्दिमें यदि वैद्य उचित समझे तो लंघन करावे पर वमन, विरेचन न करावे ॥ १८ ॥

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानांहृद्यानिवायानिविरेचनानि । मद्यैः पयोभिश्चयुतानियुक्त्यानयन्त्यधोदोपमुदीर्णमूर्द्धम् ॥ १९ ॥

पित्त तथा कफकी छर्दिमें हरडोंका चूर्ण शहदमें मिलाकर चाटे तथा अन्य हृद्य विरेचन आदि करावे । अथवा युक्तिपूर्वक मद्य या दूधके योगसे शोधन द्रव्योंका उपयोग कर ऊपरके उठेहुए दोषोंको वमन द्वारा निकाल देवे और नीचेके दोषोंका विरेचन द्वारा शोधन करे ॥ १९ ॥

वल्लीफलाद्यैर्वमनंपिवेद्वायोदुर्वलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनोज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विविधैश्चपानैः ॥ २० ॥

अथवा कडवी तोरई आदि फलोंको पीकर वमन करे यदि रोगी दुर्वल हो तो हलके प्रिय लगनेवाले सूखे अनेक प्रकारके भक्ष्य, भोज्य, पान और संशमन औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥ २० ॥

वातजछर्दिकी चिकित्सा ।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिबर्हिलावरसाव्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्ताम् । छर्दिं तथाकोलकुलत्थधान्यविल्वादिमूलाम्लयवैश्चयूपः ॥ २१ ॥

वातसे उत्पन्न हुई छर्दिमें उत्तम रीतिसे संस्कार कियेहुए तीतर, मोर और लवाके मांसरसोंको पिलावे । तथा वेर, कुल्थी, धनियां और विल्व आदि पंचमूल तथा यवोंसे सिद्ध कियाहुआ स्निग्ध और अम्ल यूप सेवन करावे ॥ २१ ॥

वातात्मकेहृद्दकासयुक्तोनरः पिवेत्सैन्धववद्घृतंतु । सिद्धंतथा धान्यकनागराभ्यांदध्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ २२ ॥ व्योषेणयुक्तां लवणैस्त्रिभिश्चघृतस्यमात्रामथवाविदध्यात् । स्निग्धानिहृद्यानि-चभोजनानिरसैःसयूपैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥ २३ ॥

यदि वायुकी छर्दिमें हृदय फडकता हो और खांसी भी हो तो वह मनुष्य घृतमें सेंधानमक मिला सेवन करे । अथवा धनियां, सोंठ, इन दोनोंका चूर्ण बनाकर दही और घृतके साथ अथवा दाडिमके रसके साथ पिलावे या त्रिकुटा, सेंधानमक,

संचर नमक, विडनमक, इनसे सिद्ध किया घृत विधिवत् पानकरे। और चिकने तथा हृद्य भोजन मांसरसों और दहीं तथा दाडिमके रससे अम्ल किये यूषोंके साथ सेवन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थंद्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात्। कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धंपित्तंहरेत्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥ २४ ॥

पित्तकी छर्दिमें पित्तके वेगको अनुलोमन करनेके लिये द्राक्षाका रस, विदारीकंदका रस या ईखका रस निशोथके चूर्णके साथ पिलाकर विरेचन करावे। यदि पित्त कफाशयमें वढाहुआ हो तो मधुर द्रव्योंसे वमन करा, निकाल देना चाहिये ॥ २४ ॥

शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यांलाजैश्चमन्थंयदिवापिपेयाम्। प्रदापयेन्मुद्गरसेनवापिशाल्योदनंजाङ्गलजैरसैर्वा ॥ २५ ॥

जब रोगी वमन, विरेचन द्वारा शुद्ध होलेवे तो उसको शहद, मिसरी मिलाकर लाजामंथ पिलावे। अथवा पेया पिलावे या मूंगके यूषके साथ अथवा जंगली जीवोंके मांसरसके साथ शालिचावलोंका भात खिलावे ॥ २५ ॥

सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिःकुल्माषलाजायवशक्तुगुञ्जान्। खर्जूरमांसान्यथनारिकेलंद्राक्षामथोवाबदराणिलिह्यात् ॥ २६ ॥

अथवा कुल्माष, लाजा या यवोंके सत्तूमें गाजर और पीपलका चूर्ण मिलाकर मिसरी शहदके साथ सेवन करावे। अथवा खजूरका छिलका अथवा नारियल और द्राक्षा तथा वेरकी त्वचा इन सबको वारीक पीस मिसरी और शहद मिला चटावे ॥ २६ ॥

स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्जचूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयाश्च। कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविट्लाजासितामागधिकाकणावा ॥ २७ ॥

स्रोतोज (रसौत या स्रोतोञ्जन), धानकी खील, नीलकमल, वेरकी मींगी इन सबके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे। अथवा वेरकी मीगी (गुठलीके भीतरकी गिरि), रसौत, खील, मिसरी, इलायची और पीपल शहद मिलाकर चाटे ॥२७॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतंमृद्भृष्टलोष्टप्रभवंजलंवा। जम्ब्वाम्रयोःपल्लवजंकषायंपिवेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ २८ ॥

पित्तज छर्दिमें दाखका रस पीवे। अथवा आगमें भुनाहुआ मट्टीका ढला जलमें

बुझा फिर उस जलको शीतल कर पीवे । अथवा जामुन और आमके पत्तोंके क्वाथको शीतलकर जल मिला पीवे ॥ २८ ॥

निशिस्थितंवारिसमुद्गकृष्णंसोशीरधान्यंचणकोदकंवा । गवेधुकामूलजलंगुडूच्याजलंपिबेदिक्षुरसंपयोवा ॥ २९ ॥ सेव्यंपिबेत्काञ्चनगैरिकंवासवालकंतण्डुलधावनेन । धात्रीरसेनोत्तमचन्दनंवा तृष्णावमिघ्नानिसमाक्षिकाणि ॥ ३० ॥ कल्कंतथाचन्दनचव्यमांसीद्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम् । शीताम्बुनागैरिकशालिचूर्णं मूर्वांतथातण्डुलधावनेन ॥ ३१ ॥

या रात्रिको जलमें मूंग, पीपल, भिगोकर अथवा खस और धनियां भिगोकर रख देवे । या चनोंके जलमें खस और धनियां भिगोवे फिर प्रातःकाल उस शीतल जलको छानकर या इसी प्रकार गेहूं भिगोये जलको पीवे । अथवा गिलोयको सायंकाल भिगोकर प्रातःकाल छानकर पीवे । या ईखका रस पीवे । अथवा खसको भिगोकर उस जलको पीवे । अथवा सोनागेरू या गेरू और कमलके केशरका चूर्ण कर तण्डुलजलके साथ पीवे । अथवा आंवलेके रसके साथ सफेद चंदन घिसकर पीवे । इन उपरोक्त सब योगोंके जलोंमें शहद मिला पीना चाहिये । इनके पीनेसे पित्तकी प्यास और वमन दूर होतीहै । अथवा चंदन, चव्य, जटामासी, द्राक्षा, दूर्वा, सुगन्धवाला और गेरूका चूर्ण शीतल जलके साथ सेवन करे । अथवा गेरू और शालिचावलोंका चूर्ण तथा मूर्वा चावलोंके धोवनके साथ पीवे ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

कफकी छर्दिका यत्न ।

कफात्मिकायांवमनंप्रशस्तंसपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः । पिण्डीतकैःसैन्धवसम्प्रयुक्तैर्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥ ३२ ॥ गोधूमशालीन्सयवान्पुराणान्यूषैःपटोलामृतचित्रकाणाम् । व्योषस्य निम्बस्यचतक्रसिद्धैर्यूषैःफलाम्लैःकटुभिस्तथाद्यात् ॥ ३३ ॥

कफकी छर्दिमें आमाशय और कफाशयको शोधन करनेके लिये सरसों, पीपल और नीमके जलमें सेंधानमक तथा मैनफलका कल्क मिलाकर वमन करावे । फिर पुराने गेहूं शालिचावल और यवोंके अन्नको पटोल, गिलोय और चित्रकके यूषके साथ सेवन करावे । अथवा त्रिकुटा, मीठी नीम और तक्रके साथ सिद्ध किया यूष अनारके रसमें अम्लकर पीपल और मिर्चका चूर्ण बुरकाकर सेवन करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

रसांश्चशूल्यानिसजाङ्गलानांमांसानिजीर्णान्मधुशीध्वरिष्टान् ।
रागांस्तथाषाडवपानकानिद्राक्षाकपित्थैःफलपूरकैश्च ॥ ३४ ॥

जंगली जीवोंके मांसरस, सींखचे, पुराना शहत, शीधु अरिष्ट, राग द्राक्षा, कपित्थ, और बिजौरेके रसके साथ बनायेहुए खाण्डव और पानकका सेवन करावे ॥ ३४ ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कलायान्भृष्टान्युतान्नागरमाक्षिकाभ्याम् लिह्यात्तथैवत्रिफलाविडङ्गचूर्णंविडंगप्लवयोरसंवा ॥ ३५ ॥ सजाम्ब्वबंवाबदरस्यचूर्णंमुस्तायुतांकर्कटकस्यशृंगीम् । दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तांलिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ ३६ ॥ मनःशिलायाः फलपूरकस्यरसैःकपित्थस्यचपिप्पलीनाम् । क्षौद्रेणचूर्णंमरिचैश्च युक्तंलिहञ्जयेच्छर्दिमुदीर्णवेगाम् ॥ ३७ ॥

अथवा मूंग, मसूर, चना और मटरके यूषोंको घृतमें भूनकर सोंठ और शहद मिला सेवन करे अथवा त्रिफला और विडंगके चूर्णको शहद मिला चाटे । या विडंग और केवटीमोथेके चूर्णको शहद मिला चाटे । अथवा जामुन, आमकी गुठलीका चूर्ण या बेरकी गुठलीका चूर्ण या काकडासिंगी और नागरमोथेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे । अथवा जवासेका चूर्ण शहद मिलाकर चाटे तो कफकी छर्दि दूर होतीहै । अथवा शुद्ध मनसिलका चूर्ण आधी रत्ती प्रमाण लेकर बिजौरेके रसके साथ और कैथके रसके साथ सेवन करे । या पीपल और मिर्चके चूर्णको शहदके साथ चाटे तो कफजनित बलवान् छर्दि भी दूर होतीहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

सन्निपातकी छर्दिकी चि० ।

यैषापृथक्त्वेनमयाक्रियोक्तातांसन्निपातेऽपिसमीक्ष्यबुद्ध्या ।
दोषर्त्तुरोगाग्निबलान्यवेक्ष्यप्रयोजयेच्छास्त्रविदप्रमत्तः ॥ ३८ ॥

जो यह वातादि दोषोंकी छर्दियोंमें दोषभेदसे पृथक् २ चिकित्सा हमने कथन की है । दोष, ऋतु, देह, अग्निबल, विचारकर शास्त्रको जाननेवाला अप्रमत्त वैद्य सन्निपातमें भी अपनी बुद्धिसे दोषोंका बलाबल विचार उसी चिकित्साको मिलाजुला करे ॥ ३८ ॥

द्विष्टार्थजछर्दिका यत्न ।

मनोऽभिघातेतुमनोऽनुकूलावाचःसमाश्वासनहर्षणानि । लोक-

प्रसिद्धाःश्रुतयोवयस्याःशृंगारिकाश्चैवहिताविहाराः॥ ३९ ॥ गन्धा विचित्रामनसोऽनुकूलामृत्पुष्पशुक्ताम्लफलादिकानाम् । शाकानि भोज्यान्यथपानकानिसुसंस्कृताःषाडवरागलेहाः ॥ ४० ॥

मनमें ग्लानि उत्पन्न होकर जो छर्दि होतीहै उसमें मनके अनुकूल वाक्य, आश्वासन और हर्षादि उत्पन्नकरे तथा लोक प्रसिद्ध मनके लगानेवाली आख्यायिका सुनावे। और बराबरकी उमरवाले शृंगाररसमें चतुर मित्रोंकी मण्डलीमें विहार करे । तथा विचित्र गंध आदिक मनको हरण करनेवाले सुंघावे । एवं मनोनुकूल मृत्तिका, पुष्प, कागजी नींबू आदिक सुंघावे । और खाने पीनेके लिये उत्तम संस्कार किये हुए शाक भोज्य पदार्थ और पानक, खाण्डव, राग तथा लेहादिकोंका सेवन करावे ॥ ३९ ॥ ४० ॥

यूपारसाकाम्बलिकाखडाश्चमांसानिधानाविविधाश्चभक्ष्याः । फलानिमूलानिचगन्धवर्णैरसैरुपेतानिवमिंजयन्ति ॥ ४१ ॥

और यूप, रस, काम्बलिक यूप, खडयूप, मांस, धाना, अनेक प्रकारके भक्ष्य, फल, मूल यह सब गंध, वर्ण और रससे संपन्न होने चाहिये । इनके सेवन करानेसे भी वमन दूर होतीहै ॥ ४१ ॥

गन्धंरसंस्पर्शमथापिशब्दंरूपञ्चयद्यत्प्रियमप्यसात्म्यम् । तदेव कुर्य्यात्प्रशमायतस्यास्तज्जोहिरोगःसुखमेवजेतुम् ॥ ४२ ॥

वमनके रोगीको जो गंध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप प्रिय मालूम होताहो और जिस पदार्थकी वह इच्छा करताहो वह उसको असात्म्य होनेपर भी सेवन करानेसे घृणा, ग्लानि आदिसे उत्पन्न हुई वमन दूर होतीहै ॥ ४२ ॥

वमनमें विशेषज्ञातव्य ।

छर्द्युत्थितानाञ्चचिकित्सितास्त्वाचिकित्सितंकार्य्यमुपद्रवाणाम् । अतिप्रवृत्तासुविरेचनस्यकर्मातियोगैर्विहितंविधेयम् ॥ ४३ ॥

वमनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जो चिकित्सा वमनको दूर करनेके लिये कहीहै वह चिकित्सा वमनके दूर करनेके लिये भी करना चाहिये । यदि वमनका अतियोग होजाय अर्थात् वमनके वेग बहुत बढनेसे रोगी व्याकुल होजाय तो जो चिकित्सा विरेचनके अतियोगमें कहीहै वही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४३ ॥

वमिप्रसंगात्पवनोऽप्यवश्यंधातुक्षयाद्वृद्धिमुपैतितस्मात् । चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानिकार्य्याण्युपस्तम्भनबृंहणानि ॥ ४४ ॥

वमनके अतिप्रसंगसे धातुओंका क्षय होताहै इसलिये वायुकी अवश्य वृद्धि होतीहै सो बहुत दिनसे उत्पन्नहुई वमनमें वातनाशक स्तम्भन और बृंहणक्रिया करनी चाहिये ॥ ४४ ॥

सर्पिर्गुडाः क्षीरविधिर्घृतानिकल्याणकत्र्यूषणजीवनानि । वृष्यास्तथामांसरसाःसलेहाश्चिरप्रसक्ताश्चवमिंजयन्ति इति ॥ ४५ ॥

घृत, गुड, खीरविधि, कल्याण घृत, त्र्यूषणघृत, जीवनीय घृत, वृष्ययोग, मांसरस और अवलेह बहुत दिनकी वमनको दूर करतेहैं ॥ ४५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

संख्याहेतुंलक्षणमुपद्रवान्साध्यताञ्चयोगांश्च ।
छर्दीनांप्रशमार्थंप्राहचिकित्सितंमुनिवर्य्यः ॥ ४६ ॥

इति चरक० चिकि० छर्दि चिकित्सितंनामत्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस छर्दिचिकित्सित अध्यायमें वमनरोगकी संख्या, हेतु, लक्षण, उपद्रव, साध्य, असाध्य और छर्दिनाशक योग इन सबको मुनियोंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजीने कथन कियाहै ॥ ४६ ॥

इति श्रीचर० चि० स्थाने प्र० आ० सं० छर्दिचिकित्सितनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातस्तृष्णाचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम तृष्णाचिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

ज्ञानप्रशमतपोभिःख्यातोऽत्रिसुतोजगद्धितेऽभिरतः ।
तृष्णानांप्रशमार्थंचिकित्सितंप्राहपञ्चानाम् ॥ १ ॥

ज्ञान, तप और शांतिमें विख्यात अत्रिसुत पुनर्वसुजी जगत्के हितमें तत्परहुए पांच प्रकारकी तृष्णा (प्यास) की शांतिके लिये चिकित्साका कथन करनेलगे ॥ १ ॥

प्यासके कारण और संप्राप्ति ।

क्षोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलंघनान्मद्यात् । क्षाराम्ल-

लवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः ॥ २ ॥ धातुक्षयगदकर्षण-वमनाद्यतियोगसूर्य्यसन्तापैः । पित्तानिलौप्रवृद्धौसौम्यान्धातूंश्च शोषयतः ॥ ३ ॥ रसवाहिनीश्चनाडीजिह्वामूलेगलेतालुक्लोम्नः । संशोष्यनृणांदेहेकुरुतस्तृष्णांमहाबलावेतौ ॥ ४ ॥ पीतंपीतंहिजलंशोषयतस्तमतोनयातिशमम् । घोरव्याधिक्लशानांप्रभवत्युपसर्गभूतासा ॥ ५ ॥

क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध और लंघनसे, मद्य पीनेसे, खारे, खट्टे, नमकीन चरपरे, गरम, रूखे और सूखे अन्नोंके सेवनसे तथा धातुक्षय होनेसे, रोगसे, कर्षणसे, वमनादिकोंके अतियोगसे और सूर्यकी धूपसे पित्त और वायु बढकर सौम्यधातुओंको शोषण करते हुए जीभके मूलमें तथा गल, तालु और क्लोमको शोषण करके बलवान् वात पित्त मनुष्योंको प्यासरोग करतेहैं। तब मनुष्य बारंबार भी जल पीता रहे तब भी जिह्वा आदिको वात पित्त सुखाए ही जातेहैं इसी लिए प्यास शांत नहीं होती। जो प्यास किसी घोर व्याधिसे पीडित मनुष्यको होतीहै वह उस घोर रोगका उपद्रव भूत होतीहै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

पूर्वरूप और रूप।

प्राग्रूपंमुखशोषंस्वलक्षणंसर्वदाम्बुकामित्वम् ।
तृष्णानांसर्वासांलिङ्गानांलाघवमपायः ॥ ६ ॥

मुखका सूखना, तृष्णा (प्यास) का पूर्वरूप है और सर्वदा जलकी इच्छा रहना तृष्णाका रूप है। सब प्रकारकी तृष्णाओंमें तृष्णाके लक्षणोंका लाघव होना अपाय कहाजाताहै ॥ ६ ॥

तृषाके सामान्य लक्षण।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान् । ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतांचित्तनाशश्च ॥ ७ ॥ जिह्वानिर्गममरुचिंबाधिर्य्यंमर्मदूयनंसादम् । तृष्णोद्भूताकुरुतेपश्चविधालिङ्गतःशृणुताम् ॥ ८ ॥

मुखका सूखना, स्वरभेद, भ्रम, संताप, बकवाद, संस्तम्भ, तालु, होठ, कण्ठ और जीभमें रूक्षता, चित्तकी व्याकुलता अथवा मोह, जीभका बाहर निकलना, अरुचि, बहरापन, मर्मोंका संताप, वा हृदयका फडकना और सुनसा होजाना यह बलवान् तृषाके उपद्रव होतेहैं। अब पांच प्रकारकी तृषाके अलग २ लक्षण श्रवणकरो ॥ ७ ॥ ८ ॥

वातजतृषाकी संप्राप्ति।

अब्धातुंदेहस्थंकुपितःपवनोयदाविशोषयति ।
तस्मिञ्छुष्केशुष्यत्यबलस्तृष्यत्यथविशुष्यन् ॥ ९ ॥

जब वायु अपने कारणोंसे कुपित होकर शरीरस्थ जलधातुको शोषण कर देतीहै तो उसके शोषण होनेसे दुर्बल हुआ मनुष्य शुष्कताको प्राप्त होकर प्यासयुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥

वातजतृषाके लक्षण।

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरसमुखताच।
स्रोतोऽवरोधइतिचस्याल्लिङ्गंवाततृष्णायाः ॥ १० ॥

निद्रानाश, मस्तकका इधर उधर पटकना, भ्रम होना, मुखका विरस और सूखा होना, स्रोतोंका अवरोध होना यह वातजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १० ॥

पित्तजतृषाकी संप्राप्ति।

पित्तंमतंकुपितमाग्नेयंकुपितंतापयत्यपांधातुम्।
सन्तप्तःसहिजनयेत्तृष्णांदाहोल्बणांनृणाम् ॥ ११ ॥

उत्तप्त आग्नेय पित्त कुपित होकर जलधातुको करताहै फिर उससे उत्तप्त हुए मनुष्योंको दाहोल्बण तृषा उत्पन्न होतीहै ॥ ११ ॥

पित्तजतृषाका लक्षण।

तिक्तास्यत्वंशिरसोदाहःशीताभिनन्दतामूर्च्छा।
पीताक्षिमूत्रवर्चस्त्वमाकृतिःपित्ततृष्णायाः ॥ १२ ॥

मुखका कडुआ होना, मस्तकमें दाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और मलका पीले रंगका होना यह पित्तजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

आमदोषज तृषाके लक्षण।

तृष्णायामभवासाप्याग्नेय्यामपित्तजनितत्वात्।
लिङ्गंतस्याश्चारुचिराध्मानकफप्रसेकौच ॥ १३ ॥

जो प्यास आमसे प्रगट होतीहै यह आग्नेयी तृषा है क्योंकि यह तृषा आममिश्रित पित्तसे ही उत्पन्न होतीहै। अरुचि, अफारा, मुखसे कफका गिरना यह आमजनित तृषाके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

तृषाका कारण ।

देहोरसजोऽम्बुभवोरसश्चतस्यक्षयाच्चतृष्येत्तु ।
दीनस्वरःप्रताम्यन्संशुष्कहृदयगलतालुः ॥ १४ ॥

संपूर्ण मनुष्योंका शरीर रससे उत्पन्न होताहै । अर्थात् गर्भवर्ती स्त्री जो आहार करती है उसके रससे शरीरकी उत्पत्ति है और वह रस जलसेही बनताहै । इसलिये रसधातुके क्षय होनेसे मनुष्यको तृषारोग होताहै । उससे स्वरकी क्षीणता, दीनता, ग्लानि, हृदय कष्ट और तालुका शोष होताहै ॥ १४ ॥

कष्टसाध्य और असाध्य तृषा ।

भवतिखलुसोपसर्गातृष्णासाशोषिणीकष्टा । ज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥१५॥ सर्वास्वतिप्रसक्तारोगकृशानांवमिप्रसक्तानाम् । घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणायविज्ञेयाः ॥ १६ ॥

इस शोषणकारी तृषामें ज्वर, प्रमेह, क्षय, शोष, श्वास, आदि उपद्रवोंके होनेसे मनुष्योंकी यह तृषा कष्टसाध्य होतीहै । अत्यंत प्रसक्त होनेसे सब प्रकारकी तृषा ही कष्टसाध्य होतीहै । तथा कृशरोगियोंकी और वमनयुक्त मनुष्योंकी तृषाभी कष्टसाध्य ही होतीहै । जिस तृषामें अत्यंत घोर उपद्रव हों वह तृषा मनुष्योंके प्राणोंको नष्ट करनेवाली होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

नाग्निंविनाहितर्षःपवनाद्वातौहिशोषणेहेतू ।
अब्धातोरतिवृद्धावपांक्षयेतृष्यतेनरोहि ॥ १७ ॥

सब प्रकारकी तृषाएँ अग्नि अथवा वायुके विना उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि अग्नि और वायु ही जलधातुके शोषण करनेवाले हैं । सो यह अग्नि और वायु अत्यंत बढकर जलका क्षय करते हैं । जलके क्षय होनेसे ही मनुष्योंको तृषा लगतीहै ॥१७॥

अन्नजतृषाके लक्षण ।

गुर्वन्नपयःस्नेहैःसंमूर्च्छन्द्रिर्विदाहकालेच ।
यस्तृष्येद्धृतमार्गेतत्राप्यनिलानलौहेतू ॥ १८ ॥

भारी अन्न, दूध और घृत आदिकोंके परिपाकके समय जो प्यास लगतीहै उसका भी अग्नि और वायु ही कारण है क्योंकि भारी अन्नादिकोंके संमूर्च्छन होकर परिपाकके समय वायु और अग्नि रुककर प्रबल होतेहैं इसलिये तृषा लगतीहै ॥१८॥

मद्यजतृषा ।

तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यंपित्तानिलौप्रकोपयति । शोषयतोऽपांधा-

तुंतावेवमद्यशीलानाम् ॥ १९ ॥ तप्तास्विवसिकतासुहितोयमाशुप्यतिक्षिप्तम् । तेपांसन्तप्तानांहिमजलपानाद्भवतिशर्म ॥ २० ॥

मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष होनेसे पित्त और वायुका प्रकोप करताहै फिर कुपित हुए पित्त और वायु मद्य पीनेवाले मनुष्योंके जलधातुको शोषणकर तृषाको उत्पन्न करतेहैं । जैसे तपेहुए वालूमें जल छिडकनेसे वह जल शीघ्र सूखजाताहै उसीप्रकार मद्यसे संतप्त मनुष्योंका शीतल जल पिया हुआ भी तत्काल सूखजाताहै ॥१९।२०॥

अकालस्नानज तृषा ।

शिशिरस्नातस्योष्मारुद्धःकोष्ठंप्रपद्यतर्पयति ।
तस्मान्नोष्णक्लान्तोभजेतसहसाजलंशीतम् ॥ २१ ॥

गर्मायाहुआ मनुष्य शीतल जलमें एकाएकी स्नान करे तो उसके शरीरकी गर्मी रुककर कोष्ठमें प्राप्त हो तृषाको उत्पन्न करतीहै । इसलिये गर्मीसे गर्मायाहुआ मनुष्य और मार्गचलने आदिसे क्लान्त हुआ मनुष्य शीतल जलमें सहसा स्नान न करे । अर्थात् जबतक शरीरकी गर्मी न सूखजाय और शरीर ठण्डा न होजाय तब तक स्नान नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

लिङ्गंसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभवत्यथतु । पृथगागमाच्चिकित्सितमतःप्रवक्ष्यामितृष्णानाम् ॥ २२ ॥

भारी अन्न आदि तथा मद्यपान और गर्मायेहुए स्नान करनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै उसमें वायुके क्षयसे पित्तके ही अधिक लक्षण होतेहैं । अब तृषारोगकी अलग २ चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ २२ ॥

तृषाकी चिकित्सा ।

अपांक्षयाद्धितृष्णासंशोष्यनरंप्रणाशयेदाशु ।
तस्मादैन्द्रंतोयंसमधुपिबेत्तद्गुणंवान्यत् ॥ २३ ॥

जलधातुके क्षय होनेसे ही तृषा मनुष्यको सुखाकर प्राणोंको शीघ्र नष्टकर देतीहै । अतएव तृषाकी शान्तिके लिये आकाशका जल शहद मिला पिलाना चाहिये अथवा उसीके समान गुणवाला अन्य जल पिलाना हित है ॥ २३ ॥

वात और पित्तकी तृषानाशक अनेक योग ।

किञ्चित्तुवरानुरसंतत्रलघुशीतलंसुगन्धिसुरसम् ।
अनभिष्यन्दिचयत्तत्क्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्ञेयम् ॥ २४ ॥

पृथ्वीके जलोंमें किंचित् कषायानुरस, हलका, शीतल, सुगंधित, सुरस और अनभिष्यंदी जल आकाशके जलके समान गुणवाला है ॥ २४ ॥

शृतंशीतंससितोपलमथवाशरपूर्वपञ्चमूलेन ।
लाजासक्तून्सिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्थम् ॥ २५ ॥

जलको पकाकर ठण्डा करके अथवा शरादि पंचमूलसे सिद्ध किया जल मिसरी मिला पिलावे या खीलोंके सत्तू, मिसरी, शहद और आकाशका जल मिला मन्थ बनाकर पिलावे ॥ २५ ॥

वाट्यंवामयवानांशीतंमधुशर्करायुतंदद्यात् । पेयांवाशालीनांदद्या-द्वाकोरदूषाणाम् ॥ २६ ॥ पयसाशृतेनभोजनमथवामधुशर्करायुतं भोज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्यलवणाम्लैः ॥ २७ ॥

अथवा भुनेहुए जवोंके मण्डको शीतल कर छानलेवे । उसमें शहद और मिसरी मिलाकर पिलावे । या शालीचावलोंकी पेया वा कोद्रवकी पेयामें शहद मिसरी मिला पिलावे । अथवा औटाये हुए दूधमें शहद और मिसरी मिला उसके साथमें भोजन देवे । अथवा कबूतर आदि पक्षियोंके मांसरसको खटाई और नमकके विना घृतमें छौंक करके पिलावे ॥ २६ ॥ २७ ॥

तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैःपियालैश्चजाङ्गलाःसुकृताः ।
शस्तारसाःपयोवातैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥ २८ ॥

अथवा तृणपंचमूल, मुंजातक और चिरौंजीके जलके साथ सिद्ध किया जंगली जीवोंका मांसरस अथवा अन्य हितकारी रस या तृग पंचमूलादिसे सिद्ध किया दूध मिसरी और शहद मिलाकर पिलावे ॥ २८ ॥

शतधौतघृतेनाक्तःपयःपिबेच्छीततोयमवगाह्य ।
मुद्गमसूरचणकजारसास्तुभृष्टाघृतेदेयाः ॥ २९ ॥

अथवा १०० वार धुलाहुआ घृत संपूर्ण शरीरपर लेप करके शीतल जलमें बैठे और शीतल दूधको पीवे । या मूंग, मसूर और चनोंके यूपको घृतमें छौंककर पीवे ॥ २९ ॥

मधुरैःसंजीवनीयैःशीतैश्चसतिक्तकैःशृतंक्षीरम् । पानाभ्यञ्जनसे-केष्विष्टंमधुशर्करायुक्तम् ॥ ३० ॥ तज्जंवाघृतमिष्टंपानाभ्यङ्गेपुनं-स्यमपिचस्यात् । नारीपयःसशर्करमुष्ट्र्याअपिनस्यमिक्षुरसः॥३१॥

अथवा मधुरगण और जीवनीयगण अथवा अन्य सरस आदि शीतल द्रव्य या

तिक्तकगणसे सिद्ध कियाहुआ दूध शहद और मिसरी मिला तृपारोगीको पिलाना और परिसेचन करना हितकारी है। अथवा इन्हीं गणोंसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत पान, अभ्यंग और नस्यमें प्रयोग करनेसे तृपाकी शान्ति होतीहै। अथवा स्त्रीका दूध मिसरी मिला वा ऊंटनीका दूध ईखका रस मिलाकर नस्यकर्ममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाद्यैःक्षौद्रशीधुमाध्वीकैः।
वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूषास्तालुशोपघ्नाः ॥ ३२ ॥

दूध, ईखका रस, गुडका शरवत, मिसरीका शरवत, शहदका शरवत, शीधु, माध्वीक, इमली और बिजौरेका बनाया शरवत मुखमें धारण कर कुल्ले करनेसे तालुशोप दूर होताहै ॥ ३२ ॥

जाम्बाम्रातकबदरीवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्लाः।
हृन्मुखशिरःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृष्णाघ्नाः ॥ ३३ ॥

जामुन, अंबाडा, बेर, वेतस और पंचपल्लवोंको खटाई मिलाकर घृतके साथ हृदय, मुख और शिरपर लेपकरे तो मूर्च्छा, भ्रम और तृपा नष्ट होतीहै ॥ ३३ ॥

दाडिमदधित्थलोध्रैःसविदारीबीजपूरकैःशिरसः।
प्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्चहितः ॥ ३४ ॥

अनार, कैथ, लोध, विदारीकंद और बिजौरेका मस्तकपर लेप करनेसे मूर्च्छा आदि तृपाके उपद्रव दूर होतेहैं। तथा सफ़ेद सरसों, घृत, आँवले और कांजी मिलाकर मस्तकपर लेप करनेसे भी मूर्च्छा आदि दूर होतेहैं ॥ ३४ ॥

शैवलपङ्कजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चशक्तुभिर्लेपाः। मस्त्वारनालार्द्रवसनकमलमणिहारसंस्पर्शाः ॥ ३५ ॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्रस्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः। क्षौमार्द्रवसनानांवराङ्गनानांप्रियाणाञ्च ॥ ३६ ॥ हिमवद्दरीवनसरित्सरोऽम्बुजपवनेन्दुपादशिशिराणाम्। रम्यशिशिरोदकानांस्मरणञ्चकथाश्चतृष्णाघ्नाः ॥ ३७ ॥

तृपारोगमें मूर्च्छा आदि उपद्रवोंकी शान्तिके लिये पानीकी काई, कीच, कमल, अनार आदि खट्टे द्रव्य, घृत और सत्तू इनमेंसे किसी एकका लेप करना तथा मस्तु, शीतल कांजी, गीले वस्त्र, जलमें भिगोयेहुए कमल तथा शीतल मणियों और हारोंका स्पर्श करना हितकारी है। और शीतल जलसे भीगेहुए चंदनसे आर्द्र स्तनोंको हाथसे

स्पर्श करना तृषाको शान्त करताहै। तथा रेशमी अथवा गीले वस्त्रोंको पहिनेहुई खूबसूरत स्त्रियोंका हाथसे स्पर्श करना अथवा अन्य मणि, कमल आदि प्यारी वस्तुओंका स्पर्श करना, हिमालयकी शीतल चोटियें या हिमसे शीतल हुए कंदरा, वनं, नदियें, सरोवर, कमल, पवन, चंद्रमाकी किरणें शिशिर और मनोरम शीतल जलका स्मरण और शीतल जलकी बातें तृषाको शान्त करनेवाली हैं ॥३५॥३६॥३७॥

वातघ्नमन्नपानंमृदुलघुशीतञ्चवाततृष्णायाः ।
क्षतकासनुद्घृतक्षीरमूर्द्ध्वंवाततृष्णाघ्नम् ॥ ३८ ॥

वातनाशक, मृदु, हलके और शीतल अन्नपानोंके सेवनसे भी तृषाकी शान्ति होतीहै । क्षतकी खाँसीको नष्ट करनेवाले जो घृत कह आये हैं वह घृत पीकर ऊपरसे दूध पींवे तो वायुकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ३८ ॥

स्याज्जीवनीयसिद्धंक्षीरघृतंवातपित्तजेतर्षे ।
पैत्तेद्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतंतोयम् ॥ ३९ ॥

जीवनीयगणोंसे सिद्ध किया दूध और घृत वात, पित्तकी तृषाको शान्त करताहै । और दाख, चंदन, खजूर और खसका शीत कषाय शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ३९ ॥

लोहितकशालितण्डुलखर्जूरपरूपकोत्पलद्राक्षाः ।
मधुपक्लोष्टमेवचजलेश्रृतंशीतलंपेयम् ॥ ४० ॥

लालचंदन, शालिचावल, खजूर, फालसा, नील कमल, द्राक्षा इन सबको पकाकर अथवा इनके शीत कषायमें गरम किया मट्टीका ढेला बुझाकर उस जलको ठण्डा कर स्वच्छ नितरेहुए जलमें शहद मिला पींवे तो पित्तकी तृषा शान्त हो ॥ ४० ॥

लोहितशालितण्डुलप्रस्थःसलोध्रमधुकाञ्जनोत्पलः ।
पक्वामलोष्टमधुजलसमायुतोमृण्मयेपेयः ॥ ४१ ॥

अंजन, लाल शालिचावल १ प्रस्थ, लोध, मुलैठी, नीलकमल यह प्रत्येक एक एक पल इन सबको २ आढक जलमें औटावे । जब आधा जल रहे तो उतारकर छानले । अथवा इन उपरोक्त सब द्रव्योंको १ आढक जलमें भिगोदेवे । फिर प्रातःकाल उसमें गरम कियाहुआ लोहमिट्टिका टुकडा बुझावे । शीतल होनेपर शहद मिलाकर मिट्टीके बरतनमें डाल पींवे ॥ ४१ ॥

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट्याह्वैः ।
सिद्धेऽम्भस्यग्निनिभाःकृष्णमृदःकृष्णसिकतावा ॥ ४२ ॥

तप्तानिनरकपालान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छम् ।
अल्पपक्वशर्करामृतवल्ल्युदकंवातृषंहन्ति ॥ ४३ ॥

वट, बिजौरा और बेतकी कोंपल, कुशा और कांसकी जडें तथा मुलैठी इन सबसे सिद्ध किये जलमें काली मट्टीका ढेला या काले रेतको गरम करके बुझावे अथवा नवीन घडेके ठिकरेको गरमकर इस जलमें बुझावे । इस जलको शीतलकर नितार पीनेसे तृषा दूर होतीहै । अथवा गिलोयका जल थोडीसी खांड मिला पीनेसे पित्तकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

क्षीरवतांमधुराणांशीतानांशर्करामधुविमिश्राः ।
शीतकषायामृद्भृष्टसंयुताःपित्ततृष्णाघ्नाः ॥ ४४ ॥

वटादि क्षीरी वृक्षोंका अथवा मधुरगणकी औषधियोंका शीत कषाय गरम मट्टीसे बुझाकर शीतल व शहदयुक्त कर पीवे तो पित्तकी तृषा शान्त होतीहै ॥ ४४ ॥

आमजतृषाका यत्न ।

व्योषवचाभल्लातकतिक्तकषायास्तथामतृष्णायाम् । यच्चोक्तंकफजायांवम्यांतच्चैवकार्य्यंस्यात् ॥ ४५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, वच, भिलावा और तिक्त द्रव्योंका काथ आमजन्य तृषामें हितकारी है । तथा कफजनित वमननाशक योग भी आमजनित तृषाको दूर करतेहैं ॥ ४५ ॥

कफानुगत तृषाकी चिकित्सा ।

स्तम्भारुच्यविपाकालस्यच्छर्दिषुकफानुगांतृष्णाम् । ज्ञात्वादधिमधुतर्पणलवणोष्णजलैर्वमनमिष्टम् ॥ ४६ ॥ दाडिममदनफलंवाप्यन्यतमकषायमथलेहम् । पेयमथवाहरिद्राम्बुशर्कराक्षौद्रसंयुक्तम् ॥ ४७ ॥

यदि तृषामें स्तम्भ, अरुचि, अविपाक, आलस्य और वमन भी हो तो उस तृषाको कफानुगत समझ, दही, शहद, तर्पण, लवण और उष्ण जल मिलाकर वमन कराना हितकारक है । कफानुगत तृषामें अनार और मैनफलका काथ पिलाकर वमन कराना हितकारी है । अथवा अन्य वमनकारक काथ अवलेह हल्दीका काथ शहद और खांड मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

क्षयकासजतृषाकी चि० ।

क्षयकासेनतुतुल्याक्षयतृष्णायागरीयसीनृणाम् । क्षीणक्षतशोषहितैस्तस्मात्ताभेषजैःशमयेत् ॥ ४८ ॥

क्षयकी खांसीमें जो तृषा होतीहै वह तृषा क्षयके समान ही उत्कट होतीहै । क्षयकी खांसी और तृषाकी चिकित्सा भी तुल्य ही है । इसलिये क्षीण और क्षतज रोगीकी तृषा तथा शोषरोगीकी तृषामें उन उन रोगोंके लिये जो उपयोगी द्रव्य हों उनसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ ४८ ॥

मद्यपानजतृषाका यत्न ।

पानतृष्णार्त्तःपानन्त्वर्द्धोदकमम्ललवणगन्धाढ्यम् ।

मद्यपानसे उत्पन्न हुई तृषामें खटाई, लवण और सुगंध मिलाकर आधा जल मिली मद्यका ही पान कराना चाहिये ।

सहसा शीतजल स्नानजतृषाका यत्न ।

शिशिरस्नातः पानंमद्याम्बुगुडांबुवातृषितः ॥ ४९ ॥

गर्मायेहुए शीघ्र शीतल जलमें स्नान करलेनेसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें जलमिश्रित मद्य अथवा गुडोदक पीना चाहिये ॥ ४९ ॥

क्षुधाजनित और गुर्वन्नजतृषाका यत्न ।

भक्तोपरोधतृषितःस्नेहतृषार्थोथवातनुयवागूम् । प्रपिबेद्गुरुणातृषितोभुक्तेनोद्धरेद्भुक्तम् ॥ ५० ॥ मद्याम्बुवाम्बुचोष्णंबलवांस्तृषितः समुल्लिखेत्पीत्वा । मागधिकाविशदमुखःसशर्करंवापिबेन्मन्थम् ॥ ५१ ॥

भोजनके समय भोजन न करनेसे जो प्यास उत्पन्न हो अथवा जो प्यास स्नेहपान करनेसे उत्पन्न हो उसमें पतली यवागूका पीना तृषाको शान्त करताहै । और भारी अन्नके भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न हो तो भोजन किये अन्नको वमन द्वारा निकाल देना चाहिये । यदि रोगी बलवान्हो तो मद्य और जल पिलाकर अथवा गरम जल पिलाकर वमन करावे । वमनके अनन्तर पीपलको मुखमें चबावे । जिससे मुख स्वच्छ होजाय फिर शर्करायुक्त मंथ पिलावे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

तृषामें तालुशोषका यत्न ।

बलवांस्तुतालुशोषेपिबेद्घृतंवृष्यमनुमद्यम् । सर्पिर्भृष्टंक्षीरंमांसरसांश्चाबलःस्निग्धान् ॥ ५२ ॥

यदि बलवान् रोगीका प्यासमें तालुशोष हो तो उसको वृष्यघृत पिलाकर ऊपरसे मद्य पिलावे । यदि दुर्बल मनुष्यका तालुशोष हो तो उसमें घृतयुक्त दूध पिलावे अथवा स्निग्ध मांसरसोंका पान करावे ॥ ५२ ॥

अतिरूक्षकी तृषाका यत्न।

अतिरूक्षेदुर्बलानांतर्षंशमयेन्नृणामिहाशुपयः। छागोवाघृतभृष्टः शीतोमधुरोरसोहृद्यः॥ ५३॥

जो मनुष्य अतिरूक्ष और दुर्बल हो तो उसको दूध पिलाकर तृषाको शीघ्र शान्त करे अथवा बकरेके मांसका रस वा अन्य हृद्य, मधुर मांसरसोंको घृतमें छौंककर पिलावे॥ ५३॥

स्निग्धेऽन्नेभुक्तेयातृष्णास्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत्।
तर्षमूर्च्छाभिहतस्यरक्तपित्तापहैर्हन्यात्॥ ५४॥

स्निग्ध अन्नके भोजनसे जो तृषा उत्पन्न हो उसमें गुडका शरबत पीनेसे तृषा शान्त होती है। मूर्च्छायुक्त रोगीकी तृषामें रक्तपित्तनाशक योगोंका प्रयोग करना चाहिये५४

शीतमुष्णञ्चजलंकुत्रदेयंवर्ज्यंवाकुत्रेत्याह।

तृषामें कहीं शीतल, और कहीं गरम जल देना चाहिये। जिस स्थानमें जैसा जल देना चाहिये अथवा न देना चाहिये सो आगे कहतेहैं।

छर्द्यम्लदाहमूर्च्छातमःक्लमदात्ययास्रविषपित्ते।
शस्तंस्वभावशीतंश्रृतशीतंसन्निपातेऽम्भः॥ ५५॥

छर्दि, अम्लपित्त, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, मदात्यय, रक्तपित्त और विषविकारमें स्वाभाविक शीतल जल देना हितकारी है और सन्निपातमें जलको पकाकर शीतल कर देना चाहिये॥ ५५॥

हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे।
कफवातकृतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेहितमुष्णम्॥ ५६॥

हिचकी, श्वास, नवीन ज्वर, प्रतिश्याय रोगमें और घृतपानके अनन्तर प्यास लगे तो तथा पार्श्वशूल, गलरोग, कफ, वातके रोग, कफजनित अंगोंकी जकडन और वमन विरेचनादिसे सद्यः शुद्धहुए मनुष्यको गरम जल ही देना चाहिये॥५६॥

जलका निषेध

पाण्डूदरपीनसमेहगुल्ममन्दातिसारेषु।
प्लीह्निचतोयंहितंकाममशक्यंपिबेदल्पम्॥ ५७॥

पाण्डुरोग, उदररोग, पीनस, प्रमेह, गुल्म, मंदाग्नि, अतिसार और प्लीहरोगमें जलका पीना अहित है अर्थात् जल नहीं पीना चाहिये। यदि न रह सके तो बहुत थोडा पीना चाहिये॥ ५७॥

जलकी आज्ञा।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णार्दितोजलंकाङ्क्षन् ।
नलभेतसचेन्मरणमाश्वेवाप्नुयाद्दीर्घरोगंवा ॥ ५८ ॥
तस्माद्धान्याम्बुपिबेत्तृष्यन्रोगीसशर्कराक्षौद्रम् ।
यद्वातस्यान्यत्स्यात्सात्म्यंरोगस्यतच्चेष्टम् ॥ ५९ ॥

यदि रोगसे व्याकुल हुए दीन रोगीको तृषासे पीडित होनेपर जलकी इच्छा करते हुए भी जल न दिया जायगा तो वह रोगी शीघ्र मृत्युको प्राप्त होजायगा । अथवा किसी महारोगको प्राप्त होगा । इसलिये रोगीको तृषाके समय धनियेका जल अथवा शहद और मिसरीका जल वा उसके रोगानुकूल जिस प्रकारके द्रव्योंसे सिद्ध किया जल हित हो सो जल देना चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

तस्यांविनिवृत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखंजेतुम् ।
तस्मात्तृष्णांपूर्वंजयेद्बहुभ्योऽपिरोगेभ्यः ॥ ६० ॥

तृषाकी निवृत्ति होनेपर तृषाजेनित उपद्रव भी सुखपूर्वक शान्त हो सकते हैं । इसलिये बहुतसे उपद्रवोंमें पहिले तृषाको ही जीतना चाहिये ॥ ६० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

हेतुर्यथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवश्चपञ्चानाम् ।
तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासाध्यसाधनञ्चोक्तम् ॥ ६१ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०तृष्णाचिकित्सितंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक है कि इस तृष्णाचिकित्सित अध्यायमें तृष्णाके हेतु, जिस प्रकार अग्नि और पवन तृषाको उत्पन्न करतीहै । पांचों प्रकारकी तृषाओंके उपद्रवों सहित लक्षण, साध्य, असाध्यता और चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ ६१ ॥

इति श्रीच०चि०स्थाने प्र०भा०टी०तृष्णाचिकित्सित नाम चतुर्विशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातो विषचिकित्सितं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम विषचिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

प्रागुत्पत्तिंगुणान्योनिंवेगान्लिङ्गान्युपक्रमान् ।
विषस्यब्रुवतःसम्यगग्निवेशनिबोधमे ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! विषकी प्राक् उत्पत्ति, विषोंके गुण, विषोंकी योनि, विषोंके वेग, तथा पृथक् २ लक्षण और उपक्रम (चिकित्सा) को तुम मुझसे भले प्रकार श्रवण करो ॥ १ ॥

विषोत्पत्ति ।

अमृतार्थंसमुद्रेतुमथ्यमानेसुरासुरैः। जज्ञेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोघोर-दर्शनः ॥ २ ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रोहरित्केशोऽनलेक्षणः । जगद्वि-षण्णंतंदृष्ट्वातेनासौविषसंज्ञितः ॥ ३ ॥

जब देवता और राक्षसोंने अमृत निकालनेके लिये समुद्रका मथन कियाथा उस समय अमृत निकलनेके पहिले एक भयंकर रूपकी व्यक्ति निकली उसके चार दाढ, हरे बाल, आगके समान नेत्र थे और वह तेजसे दीप्तिमान् थी उस व्यक्तिको देखकर सब जगत् देव और राक्षस भी विषण्ण होगये इसलिये इसका विष नाम पडा ॥ २ ॥ ३ ॥

विषकी द्विविध योनि ।

जङ्गमस्थावरायांतयोनौब्रह्मान्ययोजयत् ।
तदम्बुसम्भवंतस्माद्द्विविधंपावकोपमम् ॥ ४ ॥

इस विषको ब्रह्माने स्थावर और जंगम इन दो योनियोंमें स्थापन किया इस लिये समुद्रसे निकल अग्निके समान यह विष दो प्रकारका हुआ ॥ ४ ॥

विषके वेगगुणादि ।

अष्टवेगंदशगुणंचतुर्विंशत्युपक्रमम् । तद्वर्षास्वम्बुयोनित्वात्सक्ले-दंगुडवद्गतम् ॥ ५ ॥ सर्पत्यम्बुधरापायेतदगस्त्योहिनस्तिच । प्रया-तिमन्दवीर्यत्वंविषंतस्माद्घनात्यये ॥ ६ ॥

विषके आठ वेग होतेहैं और दश गुण, तथा चौबीस प्रकारका उपक्रम (चिकित्सा) है । वह विष अम्बुयोनि होनेसे वर्षा ऋतुमें उसका क्लेद गुडकी समान पतला होकर फैलताहै । फिर अगस्त्यके उदय होनेपर वह क्लेद नष्ट होजाताहै इसीलिये शरद् ऋतु, आनेपर विष मंदवीर्य होजाताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

जंगमविषकी योनि ।

सर्पाःकीटोन्दुरालूतावृश्चिकागृहगोधिकाः। जलौकामत्स्यमण्डूकाः शलभाःसकृकण्टकाः ॥ ७ ॥ श्वसिंहव्याघ्रगोमायुतरक्षुनकुलादयः । दंष्ट्रिणोऽमीविषंतेषांदंष्ट्रोत्थंजङ्गमंमतम् ॥ ८ ॥

सांप, कीट, मूषक, मकडी, बिच्छू, छिपकली या कृकलास, जोंक, मछली, मेंडक, कलभ (भूंड) कृकंटक, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, गीदड, तरख और नकुल आदि दांतसे काटनेवाले जानवरोंकी डाढोंसे अर्थात् काटनेसे जो विष उत्पन्न होताहै उसको जंगम विष कहतेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

मुस्तकंपौष्करंक्रौञ्चंवत्सनाभंबलाहकम् । कर्कटंकालकूटेन्द्रकरवीरकसंज्ञकम् ॥ ९ ॥ गालवेन्द्रायुधंतैलंमेघकंकुशपुष्पकम् । रोहिषं पुण्डरीकाक्षंलाङ्गलव्यञ्जनाभकम् ॥ १० ॥ सङ्कोचंमर्कटंश्रृङ्गीविषंहालाहलंतथा । एवमादीनिचान्यानिमूलजानिस्थिराणिच॥११॥

मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ, बलाहक, कर्कट, कालकूट, इन्द्रकरवीरक, गालव, इन्द्रायुध, तैलविष, मेघक, कुशपुष्पक, रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगली, अंजनाभ, संकोच, मर्कट, श्रृंगी (सिंगिया), हालाहल तथा और भी इसी प्रकारके जो विष हैं उनको मूलज और स्थिर कहते हैं । शंखिया, हरताल आदि धातुविष हैं । इसी प्रकार अन्य भी कोई पुष्पविष, कोई फलविष, कोई त्वचाविष, कोई क्षीरविष आदि विष हैं । इन सबको स्थावर विष कहतेहैं ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

गराविष ।

गरंसंयोगजश्चान्यद्गरसंज्ञंगदप्रदम् ।
कालान्तरविपाकित्वान्नतदाशुहरत्यसून् ॥ १२ ॥

इनसे अलावा संयोगसे उत्पन्न हुआ और रोगोंको करनेवाला गरनामक विष होताहै । यह विष कालान्तरमें जाकर अपने विकारोंको करताहै, और विषोंके समान शीघ्र प्राणोंको नष्ट नहीं करता ॥ १२ ॥

जंगम विषके कार्य ।

निद्रांतन्द्रांक्लमंदाहंसपाकंलोमहर्षणम् ।
शोफंचैवातिसारञ्चजनयेज्जङ्गमंविषम् ॥ १३ ॥

निद्रा, तन्द्रा, क्लम, दाह, पाक, रोमहर्ष, सूजन और अतिसार यह जंगमविषके कार्य हैं ॥ १३ ॥

स्थावरविषके कार्य ।

स्थावरंतुज्वरंहिक्कांदन्तहर्षंगलग्रहम् ।
फेनवम्यरुचिश्वासमूर्च्छाश्चजनयेद्विषम् ॥ १४ ॥

ज्वर, हिचकी, दंतहर्ष, गलेका रुकजाना, मुखसे झाग गिरना, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा यह स्थावर विषके कार्य हैं अर्थात् इन उपद्रवोंको स्थावर विष करताहै ॥ १४ ॥

विषकी गति ।

जङ्गमंस्यादधोभागमूर्ध्वभागंतुमूलजम् ।
तस्माद्दंष्ट्रिविषंमौलंहन्तिमौलंचदंष्ट्रिजम् ॥ १५ ॥

जंगमविषकी गति नीचेको होतीहै और मूलजविषकी गति ऊपरको गमन करतीहै दंष्ट्रिविष अर्थात् जंगमविष मूलविषको नष्ट करताहै और मूलजविष दंष्ट्रिविषको नष्ट कर देताहै ॥ १५ ॥

विषके ८ वेग ।

तृण्मोहदन्तहर्षप्रसेकवमथुक्लमाभवन्त्यादौ । वेगेरसप्रदोषादसृक्प्रदोषाद्द्वितीयेच ॥ १६ ॥ वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भाङ्गचिमिचिमातमकाः । दुष्टपिशितात्तृतीयेमण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः ॥ ॥ १७ ॥ वातादिजाश्चतुर्थेछर्दिर्दाहाङ्गशूलमूर्च्छाद्याः । नीलादीनांतमसश्चदर्शनंपञ्चमेवेगे । षष्ठे हिक्काभङ्गःस्कन्धेस्यात्तुसप्तमेऽष्टमेमरणम् ॥ १८ ॥ नृणां—

विषके प्रथम वेगमें मनुष्योंका रसधातु प्रदूषित होकर प्यास, मोह, दंतहर्ष, मुखसे लार गिरना, वमन और क्लम यह होतेहैं । विषके द्वितीय वेगमें रुधिर दूषित होकर शरीरकी विवर्णता भ्रम, कंप, मूर्च्छा, जंभाई, अंगोंमें चिमचिमाहट और तमकश्वास होताहै । विषके तृतीय वेगमें मांस दूषित होकर शरीरपर मण्डल, खुजली, सूजन और चकत्तेसे उत्पन्न होजातेहैं । विष चौथे वेगमें पक्वाशयमें पहुंच जाताहै । उससे वातादि दूषित होकर छर्दि, दाह, अंगशूल और मूर्च्छा आदिक उपद्रव होतेहैं । विषके पांचवें वेगमें सब जगत् नीलवर्णका दिखाई देना और नेत्रोंके आगे अंधकार छाजाना यह लक्षण होतेहैं । छठे वेगमें हिचकी उत्पन्न होतीहै । सातवें वेगमें दोनों स्कंधोंका खुलकर ढीले पड़जाना और आठवें वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होजातीहै । यह आठ वेग स्थावर विषके कहेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

जंगमविषके वेग ।

चतुष्पदादेश्चतुर्थकेपक्षिणांत्रितये ॥ १९ ॥ सीदत्याद्येभ्रमति-चचतुष्पदोवेपतेततःशून्यः । मन्दाहारश्चततोम्रियतेश्वासेनहि-चतुर्थे ॥ २० ॥

चतुष्पद आदि जीवोंके विषसे चौथे वेगमें मृत्यु होजातीहै । पक्षियोंके विषसे तीसरे वेगमें मृत्यु होतीहे । चतुष्पादोंके विषके प्रथम वेगमें अंग सुन्नसे होजातेहैं । द्वितीय वेगमें भ्रम और कंप उत्पन्न होजाताहै । तीसरे वेगमें सूजन और आहारमें रुकावट होतीहै चौथेमें श्वास उत्पन्न होकर मृत्यु होजातीहै ॥ १९ ॥ २० ॥

ध्यायतिविहगःप्रथमेवेगेप्रभ्राम्यतिद्वितीयेतु ।
स्रस्तांगश्चतृतीयेविषवेगेयातिपञ्चत्वम् ॥ २१ ॥

पक्षियोंके प्रथम विषके वेगसे ध्यान बंध जाताहै, दूसरे वेगमें भ्रम और अंगोंकी शिथिलता होजातीहै तथा तीसरे वेगमें मनुष्यकी मृत्यु होजातीहै ॥ २१ ॥

विषके दश गुण ।

लघुरूक्षमाशुविशदंव्यवायितीक्ष्णंविकासिसूक्ष्मञ्च ।
उष्णमनिर्देश्यरसंदशगुणमुक्तंविषंतज्ज्ञैः ॥ २२ ॥

विषमें–लघु, रूक्ष, आशुकारी, विषद, व्यवायी, विकासी, सूक्ष्म, उष्ण तथा अनिर्देश्य रस यह दश गुण होतेहैं ॥ २२ ॥

रौक्ष्याद्वातमशैत्यात्पित्तंसौक्ष्म्यादसृक्प्रकोपयति । कफमव्यक्तरसत्वादन्नरसांश्चानुवर्त्ततेशीघ्रम् ॥ २३ ॥ शीघ्रंव्यवायिभावादाशु व्याप्नोतिकेवलंदेहम् । तीक्ष्णत्वान्मर्मघ्नंप्राणघ्नंतद्विकासित्वात् ॥ ॥ २४ ॥ दुरुपक्रमंलघुत्वाद्वैशद्यात्स्यादसक्तगतिदोषम् । दोषस्थानप्रकृतीःप्राप्यान्यतमंह्युदीरयति ॥ २५ ॥

विष–रूक्षतासे वायुको, उष्णतासे पित्तको और सूक्ष्मतासे रक्तको कुपित करताहै । अव्यक्त रस होनेसे कफको कुपित करताहै तथा अन्यरसका शीघ्र अनुगामी होजाताहै व्यवायी होनेसे संपूर्ण शरीरमें शीघ्र व्यापक होजाताहै । तीक्ष्ण होनेसे मर्मस्थानोंको हनन करताहै । विकाशी होनेसे प्राणोंको नष्ट करदेताहै । इन सब कारणोंसे दुरुपक्रम अर्थात् दुश्चिकित्स्य होताहै । लघु और विशद होनेसे अनिवार्यगति होताहै । वातादि दोषोंमें जिस दोषकी प्रकृतिवाला मनुष्य हो विष

उसी दोपके स्थान और प्रकृतिको प्राप्त होकर उसी दोपको उदीर्ण कर देताहै ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

वातादिस्थानमें विषके लक्षण ।

स्याद्वातिकस्यवातस्थानेकफपित्तलिङ्गमीषत्तु ।
तृण्मूर्च्छारुचिमोहगलग्रहच्छर्दिफेनादि ॥ २६ ॥

जैसे-विष वातप्रकृतिवाले मनुष्यके शरीरमें पहुंचकर अथवा वातके स्थानमें पहुंचकर वातजनित तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलेका रुकजाना, वमन और फेन आदिक उपद्रवोंको उत्पन्न करताहै तथा उस समय पित्त और कफके लक्षणोंको अल्प प्रकाशित करताहै ॥ २६ ॥

पित्ताशयस्थितंपैत्तिकस्यकफवातयोर्विषंतद्वत् ।
तृट्कासज्वरवमथुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ २७ ॥

पित्तप्रधान मनुष्यके शरीरमें विष पित्तस्थानमें पहुंचकर वात और कफके अन्य लक्षणोंको करताहै तथा प्यास, खांसी, ज्वर, वमन, क्लम, दाह, अंधकार और अति-सार आदिक पित्तके उपद्रवोंको करताहै ॥ २७ ॥

कफदेशगतश्चकफस्यदर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ।
लिंगंश्वासगलग्रहकण्डूलालाप्रमथ्वादि ॥ २८ ॥

इसी प्रकार कफस्थानमें प्राप्तहुआ विष वात और पित्तके अल्प लक्षणोंको दिखा-ताहै तथा श्वास, गलग्रह, खुजली, मुखसे लार गिरना और वमन आदि कफके लक्षणोंको उत्पन्न करताहै ॥ २८ ॥

दूषीविषके कर्म ।

दूषीविषंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्तलिंगश्च ।
विषमेकैकंदोषंसन्दूष्यहरत्यसूनेवम् ॥ २९ ॥

दूषीविष-रुधिरको दुष्ट करके किटिभकोठ आदि रक्तविकारोंके लक्षणोंको करताहै । विष इसप्रकार एक एक दोपको बिगाडकर प्राणोंको नष्ट कर देतेहैं ॥२९॥

क्षरतिविषतेजसासृक्तखानिनिरुध्यमारयतिजन्तुम् । पीतंमृत-स्यहृदितिष्ठतिदष्टविद्धयोर्दंशदेशेस्यात् ॥ ३० ॥

विषके तेजसे रक्त क्षरण होने लगताहै विष, छिद्रोंको रोककर जीवको मार-डालताहै । पीयाहुआ विष मरेहुए मनुष्यके भी हृदयमें टिका रहताहै । किसी जानव-रके काटनेसे अथवा विषैले तीर आदिसे वेधन होनेसे विष विशेषरूपसे दंशस्थानमें रहताहै ॥ ३० ॥

विषसे मनुष्यकी मृत्युके लक्षण ।

नीलौष्ठदन्तशैथिल्यकेशपतनाङ्गसङ्गविक्षेपाः । शिशिरैर्नलोमहर्षोनाभिहतेदण्डराजीच ॥ ३१ ॥ क्षतजंक्षतान्ननायात्युक्तान्येतानिमरणलिंगानि । एभ्योऽन्यथाचिकित्सातेषाञ्चोपक्रमाञ्शृणुमे ॥ ३२ ॥

होठोंका नीलवर्ण होना, दांतोंका शिथिल पडजाना, बालोंका गिरना, अंगोंकी संधियोंका ढीला पडजाना, अंगका जिधर तिधर अपने २ स्थानमें शिथिलरूपसे गिरजाना, बर्फ आदि शीतल पदार्थ डालनेपर भी रोमाञ्च न होना, तीक्ष्ण डण्डे आदिसे चोट मारनेसे भी चोटका दाग न पडना, शस्त्रद्वारा काट देनेपर भी क्षतस्थानसे रुधिर न निकलना इन लक्षणोंके होनेसे विषग्रस्त मनुष्यके मृत्युके लक्षण जानना । जिस मनुष्यके यह लक्षण न हों उसकी जिस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये सो श्रवणकरो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

विषके २४ उपक्रम ।

मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तननिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः । अवगाहनरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि ॥ ३३ ॥ हृदयावरणाञ्जननस्यधूमलेहौषधप्रशमनानि । प्रतिसारणंप्रतिविषंसंज्ञासंस्थापनंलेपः ॥ ॥ ३४ ॥ मृतसञ्जीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः । स्युरुपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतथातान् ॥ ३५ ॥

मंत्रद्वारा विष उतारना । दंशस्थानको दोनों ओरसे कसकर बांधदेना । जिस स्थानमें डसाहो उसको काटना । दबाकर रुधिर निकालदेना । मुख द्वारा या सिंगी आदिसे विषको चूसलेना । अग्निसे दागदेना । तथा परिसेचन, अवगाहन, रक्तमोक्षण, वमन, विरेचन, उपधान, हृदयावरण, अंजन, नस्य, धूम, लेह, औषध, प्रशमन, प्रतिसारण,प्रतिविष, संज्ञास्थापन, लेप तथा मृतसंजीवन यह चौबीस प्रकार विषोंकी चिकित्साके हैं । इन चौबीसोंमेंसे जो चिकित्सा जिस जगह करनी चाहिये उसका श्रवणकरो ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जंगमविषकी सामान्यचिकित्सा ।

दंशात्तुविषंदष्टस्यविसृतंवेलिकांभिषक्बद्ध्वा । निष्पीडयेद्भृशंदंशमुद्धरेन्मर्मवर्जंवा ॥ ३६ ॥ तंदंशंवाचूषेन्मुखेनयवचूर्णपांशुपूर्णेन । प्रच्छन्वेधजलौकःशृंगैःस्राव्यंततोरक्तम् ॥ ३७ ॥ रक्तेविषप्रदुष्टेदु-

ष्येरप्रकृतिंततस्त्यजेत्प्राणान् । तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्वर्त्तमानंप्रवर्त्यंस्यात् ॥ ३८ ॥

हाथ पांव आदि जिस स्थानमें किसी विषधर जंतुने काटाहो उस स्थानमें जहांतक विष फैलाहो उसके ऊपर नीचेसे विषस्थान छोडकर इधर उधर कसकर बांधदेवे। जिससे वह विष अधिक दूरतक न फैलसके। फिर दंशस्थानको चारोंओरसे पीडनकर शस्त्रद्वारा काटकर दंशको निकालदेवे। और पीडन करके उस स्थानका रुधिर भी निकाले। यदि हाथ पांवके सिवाय किसी अन्य स्थानमें काटाहुआ हो तो उस स्थानको थोडा २ चारों ओरसे काटकर विष निकालदेना चाहिये। परन्तु मर्मस्थानमें शस्त्रद्वारा काटकर दंश निकालना उचित नहीं क्योंकि मर्मस्थानमें शस्त्रद्वारा कर्त्तन करनेसे मनुष्यके शीघ्र प्राण नष्ट होजातेहैं। यदि दोनों ओरसे बंधन करनेमें और दंशस्थानको काटनेमें दंशका निकालना असम्भव प्रतीतहो वा उस स्थानमें शस्त्रका लगाना उचित नहीं तो मुखमें यवोंका चूर्ण अथवा बालू भरकर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसकर थूक देना चाहिये मुखसे काटेहुए स्थानके विषको चूसनेसे पंहिले चूसनेवाले मनुष्यके मुखमें घृत भरकर तमाम मुखमें फेर वह घृत पीलेना चाहिये। उसके अनन्तर काटेहुए स्थानको मुखद्वारा चूसे (यदि मुखमें कोई छाला, व्रण आदि हो तो उस मनुष्यके विषस्थानको चूसना उचित नहीं) विष चूसनेके अनन्तर पछने लगाकर जोंक और सिंगी आदिसें रक्तको निकाल देना चाहिये। क्योंकि विषसे दूषित हुआ रक्त मनुष्यकी प्रकृतिको बिगाड प्राणोंको नष्ट करदेताहै। इसलिये उस प्राणनाशक विषैले रक्तको निकालही देना चाहिये। यदि इस प्रकार रक्त यथोचित रीतिपर न निकले तो नीचे लिखेहुए द्रव्योंके प्रघर्षण द्वारा रक्तको निकाले ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्त्ताकाः ।
घर्षणमतिप्रवृत्तेवटादिभिःशीतलैर्लेपः ॥ ३९ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गृहधूम, हल्दी, पांचों लवण, बैंगन इन सबका चूर्ण कर काटेहुए स्थानपर घर्षण करे तो रक्त निकलने लगताहै। यदि रक्त अत्यंत निकलने लगे और वह बन्द न हो तो वटादि पंचवर्गका शीतल लेप करना चाहिये ॥ ३९ ॥

रक्तंहिविषाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदेहसेकैस्तत् ।
शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्कन्नेव्यपयातिविषवेगः ॥ ४० ॥

जैसे-वायु अग्निको चैतन्य कर सब जगह फैला देताहै। उसी प्रकार रक्तमें जब विष मिलजाताहै तो उस विषको रक्त भी संपूर्ण शरीरमें पहुंचा देताहै। क्योंकि

रक्त ही विषका आधान है विषके स्थानको शीतल लेप और अत्यंत शीतल द्रव्योंके परिसेचन करनेसे रक्त शीघ्र न फैलकर विष काटहुए स्थानमें ही टिका रहताहै ॥४०॥

विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाःप्रवर्त्तन्ते ।
शीतैर्निवर्त्तयेत्तान्नवीजयेल्लोमहर्षःस्यात् ॥ ४१ ॥

विषके वेगसे मद, मूर्च्छा, विषाद, हृदयका फडकना, अथवा गिरसा जाना यह लक्षण होतेहैं, इन सब उपद्रवोंको शीतल लेपकी क्रिया आदिकोंसे शान्ति होतीहै । काटेहुए स्थानमें शीतल लेप ही करने चाहिये । किन्तु पंखेकी पवन नहीं करनी चाहिये । अथवा पंखेकी पवन करनेसे रोमाञ्च खडे होकर विष नहीं ठहर सकता । इसलिये शीतल लेपोंका करना ही हित है ॥ ४१ ॥

तरुरिवमूलच्छेदाद्दंशच्छेदान्नवृद्धिमुपयाति । आचूपणमानयनं जलस्यसेतुर्यथातथारिष्टाः । त्वङ्मांसगतोदाहोदहतिविषंस्रा-वणंहरतिरक्तात् ॥ ४२ ॥

जैसे-जडके काटदेनेसे फिर वह वृक्ष वृद्धिको प्राप्त नहीं होता उसी प्रकार दष्ट-स्थानको काटकर दंश निकाल देनेसे विष वृद्धिको प्राप्त नहीं होसकता । दंशस्थानको चूसनेसे विष जडसे निकल जाताहै । काटेहुए स्थानको दोनों ओरसे किसी डोरी द्वारा कसकर बाँधदेनेसे वह विष इस प्रकार रुकजाताहै जैसे बाँध लगादेनेसे जल रुकजाताहै । जब विष त्वचा, मांसमें पहुँच जाय तो उसमें दाहकर्म करना विषको फूंकदेताहै । रक्त निकालदेनेसे रक्तगत विष निकल जाताहै ॥ ४२ ॥

पीयेहुये विषकी चिकित्सा ।

पीतंवमनैः सद्यो हरेद्विरेकैर्द्वितीयेतु ॥ ४३ ॥ आदौ हृदयं रक्ष्यंतस्यावरणंपिवेद्यथालाभम् । मज्जानं मधुघृतगैरिकमथगो-मयरसंवा ॥ ४४ ॥ इक्षुंसुपक्वमथवाकाकंनिष्पीड्यतद्रसंव-लदम् । छागादीनांवासृक्भस्ममृदंवापिवेदाशु ॥ ४५ ॥

जो विष तत्काल पीया गया हो उसको शीघ्र वमन कराकर निकालदेवे । विषके द्वितीय वेगमें विरेचन द्वारा उसे निकाल देना चाहिये । जिस मनुष्यने विष खायाहो अर्थात् विषयुक्त मनुष्यके हृदयकी पहिले रक्षा करना चाहिये । जिस प्रकार हृदया-वरण हो अर्थात् विषसे हृदय छिपसके ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये । हृदयको विषसे बचानेके लिये यथालाभ मज्जा, मधु, घृत, गेरू, गोबर, ईखका रस, पकेहुए गन्ने या मकोयका रस अथवा अन्य बलदायक द्रव्य या बकरे आदिका रक्त, भस्म

मट्टी जो कुछ मिलसके वह झटपट खालेना चाहिये। ताकि खाया पीया विष उस भुक्त पदार्थमें मिलजावे और शीघ्र असर न करनेपावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

क्षारोऽगदस्तृतीयेशोफहरैर्लेखनंसमध्वम्बु ।
गोमयरसश्चतुर्थेवेगेसकपित्थमधुसर्पिर्भिः ॥ ४६ ॥

विषका तीसरा वेग होनेसे क्षार अगद और शोफनाशक लेखनद्रव्य और शहद युक्त जल पिलाकर वमन करना चाहिये । विषके चौथे वेगमें कैथ, शहद और घृत मिलाकर गोबरका रस पिलाना चाहिये ॥ ४६ ॥

काकाण्डशिरीषाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतनमञ्जनेनस्यम् । स्यात्पञ्चमेऽथषष्ठेसंज्ञायाःस्थापनंकार्य्यम् । गोपित्तयुतारजनीमञ्जिष्ठामरिचपिप्पलीपानम् ॥ ४७ ॥

विषके पांचवें वेगमें काकाण्ड (महानिम्ब, बकायन) और सिरसका स्वरस नेत्रोंमें टपकाना चाहिये। तथा इसी रसकी नस्य (सूंघनी) लेना चाहिये। विषके छठे वेगमें संज्ञास्थापन (होश हवासमें रखने) का उपाय करना चाहिये। हल्दी, मजीठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण गोरोचनमें मिलाकर पीना, अंजन करना और नस्य लेना संज्ञाको स्थापन करताहै ॥ ४७ ॥

विषपानंदष्टानांविषपीतेदंशनश्चान्ते ॥ ४८ ॥

यदि किसी प्रकार उपाय करनेसे भी विषग्रस्त रोगीको शान्ति न होसके वा यदि रोगीने स्थावर विष खायाहो और उसको किसी प्रकार होश न आवे तो उसको बिच्छू या सांप आदि विषैले जानवरसे कटावे। और यदि कोई किसी विषधर जानवरके काटनेसे मरणासन्न हो और उसको किसी प्रकार शान्ति होना असम्भव प्रतीत हो तो उसको स्थावर विष पिलाना चाहिये ॥ ४८ ॥

शिखिपित्तार्द्धयुतंस्यात्पलाशबीजमगदोमृतेपुमतः ।
वार्त्ताकुफाणितागारधूमगोपित्तनिम्बंवा ॥ ४९ ॥

जब रोगी विषके आठवें वेगमें बिलकुल मृततुल्य होजाय तो उसको मोरका पित्त १ भाग और ढाकके बीज २ भाग मिलाकर पान, लेपन, अंजन आदिमें प्रयुक्त करे तो वह रोगी होशमें आसकताहै। अथवा छोटा बैंगन, फाणित, गृहधूम, गोपित्त अथवा गौका पुराना घृत, निम्बके पत्र इन सबको मिलाकर धूनी देना, अंजन करना, नस्य देना, पिलाना और लेप करना हितकारी है ॥ ४९ ॥

गोपित्तयुतैर्गुलिकाःसुरसाग्रन्थिद्विरजनीमधुककुष्ठैः ।
शस्तामूत्रेतनतुशिरीषपुष्पकाकाण्डकरसैर्वा ॥ ५० ॥

तुलसी, वच, हल्दी, दारुहल्दी, मुलैठी, कूठ इन सबको गौके पुराने घृतमें अथव गोपित्तमें घोलकर प्रयोग करना भी हितकारी है । अथवा शिरसके फूल और बकायनके रसमें उपरोक्त तुलसी आदि छः ओषधियोंको घोटकर पिलाना, अंजन करना नस्य देना और लेप करना विषके सांतवें वेगको दूर करताहै ॥ ५० ॥

काकाण्डसुरसगवाक्षीपुनर्नवावायसीशिरीषफलैः ।
उद्वद्धविषजलसूतेलेपौषधनस्यपानानि ॥ ५१ ॥

जिस रोगीको विषके वेगमें जल छिडकनेसे और बंधन आदि करनेसे भी चैतन्य प्राप्त न हो ऐसे रोगीको बकायन, तुलसी, इन्द्रायनकी जड, पुनर्नवा, काकमांची (मकोय) और सिरसके फलोंको बारीक पीसकर लेपन, अंजन, नस्य और पिलानेमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ५१ ॥

संजीवनअगद ।

पृक्काप्लवस्थौणेयकाकाक्षीशैलेयरोचनास्तगरम् । ध्यामककुंकुममांसीसुरसाग्रैलालकुष्ठघ्न्यः ॥ ५२ ॥ बृहतीशिरीषपुष्पंश्रीवेष्टकपद्मचारटिविशालाः । सुरदारुपद्मकेशरसावरकमनःशिलाकौन्त्यः ॥ ॥ ५३ ॥ जात्यर्कपुष्परसरजनीद्वयहिङ्गुपिप्पलीलाक्षाः । जलमुद्गपर्णिचन्दनमधुकमदनसिन्धुवाराश्च ॥ ५४ ॥ शम्पाकलोध्रमयूरकगन्धफलीनाकुलीविडङ्गाश्च । पुष्येसंहृत्यसमंपिष्ट्वागुलिकाविधेयाःस्युः॥५५॥ सर्वविषघ्नोजयकृद्विषमृतसंजीवनोज्वरनिहन्ता । घ्रेयविलेपनधारणधूमग्रहणैर्गृहस्थश्च ॥५६॥ भूतविषजन्त्वलक्ष्मीकार्मणमन्त्राग्न्यशन्यरीन्हन्यात् । दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणाम्बुचौरभयम् ॥ ५७ ॥ धनधान्यकार्य्यसिद्धिः श्रीपुष्ट्यायुर्विवर्द्धनोधन्यः । मृतसञ्जीवनएषप्रागमृताद्ब्रह्मणाविहितः ॥ ५८ ॥

असवर्ग, केवटी, मोथा, थूनेर, फिटकरी, छारछवीला, गोरोचन, तगर, रोहिषतृण, केसर, जटामांसी, तुलसीकी मंजरी, इलायची, कुष्ठघ्न (चोख, या पनवाडके बीज), बडी कटेली, सिरसके फूल, श्रीवास, पद्मचारटी, इन्द्रायणकी जड, देवदारु, पद्मकेसर, लाघ, मनसिल, रेणुका, चमेली और आकके फूलोंका रस, हल्दी, दारु-

हल्दी, हींग, पीपल, लाख, नेत्रवाला, मुद्गपर्णी, चन्दन, मैनफल, मुलैठी, सम्भालू, अमलतास, पठानी लोध, मयूरक (नीलाथोथा, या अपामार्ग), गंधप्रियंगु, लाकुलीकंद और वायविडंग, इन सबको पुष्य नक्षत्रमें लाकर इकट्ठे करे। सबको समभाग लेकर जलमें पीस, गोलियें बनावे। इन गोलियोंको पास रखनेसे, लेप करनेसे, जलमें विसकर पीनेसे, सूँघनेसे अथवा इनका धूम पीनेसे अथवा धूनी देनेसे सब प्रकारके विष नष्ट होकर रोगीको चैतन्यता प्राप्त होजाती है यह अगद विषसे मृतकप्राय मनुष्योंकोभी संजीवनस्वरूप है। इन अगदको घरमें रखनेसे भूत, विषधरजीव, अलक्ष्मी, अभिचार, मंत्र, अग्नि, वज्र, शत्रु, दुःस्वप्न, स्त्रीदोष, अकाल मृत्यु, पानीका भय और चोरभय, कोई भी असर नहीं करसकता। तथा धनधान्यकी वृद्धि, कार्यसिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टि, वर्ण और आयुकी वृद्धि होतीहै। इस धन्य मृतसंजीवन अगदको ब्रह्माजीने अमृतकी उत्पत्तिसे पहिले निर्मित किया था ॥ ५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥

विषके अन्य उपचार।

मन्त्रैर्धमनीवन्धोऽपामार्जनंकार्य्यमात्मरक्षाच।
दोषस्याविषयस्यस्थानेस्यात्तंजयेत्पूर्वम् ॥ ५९॥

जिस स्थानमें विषधर जीवने काटाहो उस स्थानको छोडकर उसके इधर उधर दोनों ओर कसकर बंध लगादेना चाहिये। बांधदेनेसे वह विष धमनियों द्वारा संपूर्ण शरीरमें नहीं फैलसकता बांधते समय विषनाशक मंत्रोंका उच्चारण करताहुआ बंध लगावे और मंत्रोंके साथ जलद्वारा रोगीकी आत्मरक्षाके लिये मार्जन करे यह तो हुई जंगमविषकी क्रिया और स्थावर विष जिस स्थानमें पहुंचा हो पहिले उस स्थानको जीतलेना चाहिये अर्थात् वातादि दोषोंमेंसे जिस दोषके स्थानमें विष पहुंचे पहिले उस दोषके जीतनेका यत्न करना चाहिये ॥ ५९ ॥

वातस्थानेस्वेदोदध्नानतकुष्ठकल्कपानञ्च। घृतमधुपयोऽम्बुपानावगाहसेकाश्चपित्तस्थे ॥ ६० ॥ क्षारागदःकफस्थानगतेस्वेदस्तथाशिराव्यधनम्। दूषीविषेऽथरक्तस्थितेशिराकर्मपञ्चविधम् ॥ ६१ ॥ भेषजमेवंकल्प्यंभिषग्विदासर्वदालक्ष्यम्। स्थानंजयेच्चपूर्वंस्थानस्थस्याविरुद्धञ्च ॥ ६२ ॥

यदि विष वातस्थान अर्थात् पक्वाशयगत हो तो पसीना देना तथा दहीके साथ कूठ और तगरका कल्क सेवन कराना चाहिये। यदि विष पित्तस्थानमें हो तो घृत शहद, दूध और जलका पान तथा अवगाहन और सेचन करना चाहिये। यदि विष कफस्थानमें पहुंच गया हो तो क्षारागदका प्रयोग और स्वेदन तथा शिरावेधन करना

उचित है। यदि दूषीविष रक्तगत हो तो शिरावेधन और पांच प्रकारके शोधनादि कर्म करना चाहिये। इस प्रकार वैद्यको संपूर्ण अवस्था विचारकर चिकित्साकी कल्पना करना चाहिये। पाहिले तो विषके स्थानको जीतलेना चाहिये। फिर जिसके स्थानमें विष पहुंचा हो अथवा जिस स्थानके जीतनेसे विष नष्ट होताहो उसकी चिकित्सा करे। परन्तु मर्मस्थानादिकों पर विरुद्ध असर नहीं होना चाहिये। अथवा स्थान विरुद्ध चिकित्सा नहीं करना चाहिये ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

विषदूषितकफमार्गःस्रोतःसंरोधरुद्धवायुश्च । मृतइवश्वसेन्मर्त्यः स्यादसाध्यलिङ्गैर्विहीनश्च ॥ ६३ ॥ चर्मकषायाःकल्कंबिल्वसमंमूर्भ्निकाकपदमस्य । कृत्वाकुर्य्यात्कटभींकटुकट्फलप्रधमनञ्च॥६४॥

विषसे कफके मार्ग दूषित होंजाय स्रोतोंके रुकजानेसे वायु रुद्ध होकर मनुष्य मरे-हुएके समान श्वासोंको त्यागदेवे। परन्तु उसमें और असाध्य लक्षण न हों तो उसके मस्तकमें काकके पदके समान चिह्न बनाकर अर्थात् काकके पावोंके सदृश तीन रेखा वाले शस्त्र द्वारा लेखनकर उसके ऊपर चर्मकषा (सातला) का कल बनाकर एक बिल्वके समान उस काकपदाकारके ऊपर लगावे। तथा कटभी, कट्फल और कायफलके चूर्णका नसवार देवे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

छागगव्यमाहिषाविककौक्कुटाजमांसम् । दद्यात्काकपदोपरिमत्ते विषेणैवसहसा ॥ ६५ ॥ घ्राणाक्षिकर्णजिह्वाकण्ठनिरोधेषुकर्म्मन-स्तःस्यात् । वार्त्ताकुबीजपूरकज्योतिष्मत्यादिभिःपिष्टैः ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य विषसे सहसा बेहोश होजाय तो उसके मस्तकपर काकपदाकार शस्त्र-द्वारा लेखन कर ऊपर बकरी, भैंस, मेढा, मुर्गा और जलसंचारी जीवोंका मांस पीसकर रखदेवे। अथवा गौके गोबरकी पिण्डी रखदे। यदि रोगीका कण्ठ रुकजाय तो नाक, कान, नेत्र और जिह्वामें बडी कटेलीके फलोंका रस और :बिजौरा, मालकांगुनी आदिका रस निकालकर टपकावे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अञ्जनमक्ष्युपरोधेकर्त्तव्यंबस्तमूत्रपिष्टैस्तु ।
दारुव्योषहरिद्राकरवीरकरञ्जसुरसैस्तु ॥ ६७ ॥

यदि विषग्रस्त रोगीके नेत्र बंद होजांय तो दारुहल्दी, त्रिकुटा, हल्दी, कनेर, करंज और तुलसी इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर अञ्जन करे ॥ ६७ ॥

गंधनामकअगदहस्ती।

श्वेतावचाश्वगन्धाहिंग्वामृताकुष्ठसैन्धवेलशुनम् । सर्षपकपित्थम-

ध्यंटुण्टुककरञ्जबीजानि ॥ ६८ ॥ व्योपंशिरीषपुष्पंद्वेरजनीवंशलोचनञ्चसमम् । पिष्टाह्यजस्यमूत्रेणगोऽश्वपित्तेनसप्तकृत्वः ॥ ६९ ॥ व्यत्यासभावितोऽयंनिहन्तिशिरसिस्थितंविपंक्षिप्रम् । सर्वज्वरभूतग्रहविषूचिकाजीर्णमूर्च्छार्त्तिम् ॥ ७० ॥ उन्मादापस्मारौकाचपटलनीलिकाशिरोदोषान् । शुष्काक्षिपाकपिल्लार्बुदार्मकण्डूतमोदोषान् ॥ ७१ ॥ क्षयदौर्बल्यमदात्ययपाण्डुगदांश्चाञ्जनात्तथामोहान् । लेपाद्दिग्धक्षतलीढदष्टविषपीतविषघाती ॥ ७२ ॥ अर्शःस्वारुद्धेषुचगुदलेपोयोनिलेपनंस्त्रीणाम् । मूढेगर्भेदुष्टेललाटलेपः प्रतिश्याये ॥ ७३ ॥ दद्रूकण्डूकिटिभेकुष्ठेश्वित्रेषुचविचर्चिकादिषुलेपः । गजइवतरून्निगदान्निहन्त्यगदगन्धहस्त्येषः ॥ ७४ ॥

श्वेत अपराजिता और वच असगंध, हींग, गिलोय, कूठ, सेंधानमक, लहसुन, सफेद सरसों, कैथका गूदा, सोनापाठा, करंजके बीज, सोंठ, मिर्च, पीपल, सिरसके फूल, हल्दी, दारुहल्दी और वंशलोचन। इन सबको समभाग लेकर गोमूत्र, बकरेके मूत्र और घोडेके पित्तमें सात सात बार भावना देवे। फिर इस औषधिको शिरपर रखनेसे या मस्तकमें लेप करनेसे सब प्रकारके विष दूर होते हैं। तथा सब प्रकारके ज्वर, भूतबाधा, ग्रहदोष, विषूचिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, उन्माद, अपस्मार तथा नेत्रोंके काचरोग, पटलरोग और नीलिका, शिरके विकार, नेत्रोंका सूखना, नेत्रपाक, पिल्लरोग, अर्बुद, अर्म, खुजली, तमोदोष, क्षय, दुर्बलता, मदात्यय और पाण्डुरोग तथा इसके अंजन करनेसे मोह (बेहोशी)। लेप करनेसे अग्निदग्धक्षत, लीढ और दंष्ट्र आदि विष दूर होतेहैं। इसके प्रयोगसे पीयेहुए विष भी असर नहीं करसकते। इसका गुदापर लेप करनेसे बवासीरके मस्से योनिपर लेप करनेसे स्त्रियोंके योनिरोग और मूढगर्भ दूर होतेहैं मस्तकपर लेप करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय दूर होताहै तथा इसके लेप करनेसे, दाद, खुजली, किटिभ, कुष्ठ श्वेतकुष्ठ, और विचर्चिका यह सब दूर होतेहैं। जैसे उन्मत्त हस्ती वृक्षको जडसे उखाडदेताहै उसी प्रकार यह गंधनामक अगदहस्ती विषोको जडसे उखाड देताहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

पत्रागुरुमुस्तैलानिर्यासःपञ्चचन्दनंतथापृक्का । त्वङ्नलदोत्पलवालकहरेणुकोशीरव्याघ्रनखाः ॥ ७५ ॥ सुरदारुकनककुंकुमध्यामककुष्ठप्रियङ्गुवस्तगरम् । पञ्चांगानिशिरीपाद्वयोपैलामनःशिला-

जाज्यः ॥ ७६ ॥ श्वेतकटभीकरञ्जौरक्षोघ्नीसिन्धुवारिकारजनी । सुरसरसाञ्जनगैरिकमञ्जिष्ठानिम्बनिर्यासाः ॥७७॥ वंशत्वगश्वगन्धाहिङ्गुदधित्थाम्लवेतसंलाक्षा । मधुमधूकसोमराजीवचारुहारोचनातगरान् ॥ ७८ ॥ अगदोऽयंवैश्रवणाख्यातस्त्र्यम्बकेणपृथग्क्षः । अप्रतिहतप्रभावःख्यातोमहागन्धहस्तीति ॥ ७९ ॥ पित्तेनगवांपेष्यागुलिकाःकार्य्यास्तुपुष्ययोगेन । पानाञ्जनप्रलेपैः प्रसाधयेत्सर्वकर्माणि ॥ ८० ॥ पैल्यंकण्डूंतिमिरंराज्यान्ध्यंकाचमर्बुदंपटलम् । हन्तिसततंप्रयोगाद्धितमितपथ्याशिनांपुंसाम्॥८१॥ विषमज्वरानजीर्णान्दद्रूंसविषूचिकाश्चहन्तिनृणाम् । विषंमूषिकलूतानांसर्वेषांपन्नगानाञ्च । आशुविषंनाशयतिसमूलजमथकन्दजंसर्वम् ॥ ८२ ॥ एतेनलिप्तगात्रःसर्पान्गृह्णातिभक्षयेच्चविषम् । कालपरीतोऽपिनरोजीवतिनित्यंनिरातङ्कः ॥ ८३ ॥ आनद्धेगुदलेपोयोनिलेपश्चमूढगर्भाणाम् । मूर्च्छार्त्तिपुन्नललाटेप्रलेपमाहुः प्रधानतमम् ॥ ८४ ॥ भेरीमृदङ्गपटहाश्छत्राण्यमुनातथाध्वजपताकाः । लिप्ताहिविषनिरस्तेप्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान् ॥ ८५ ॥ यत्रचसन्निहितोयंनतत्रबालग्रहानरक्षांसि । नचकार्मणवेताला वहन्तिनाथर्वणामंत्राः ॥ ८६ ॥ सर्वग्रहानतत्रप्रभवन्तिनचाग्निशस्त्रनृपचौराः । लक्ष्मीश्चतत्रभजतेयत्रसहागन्धहस्त्यस्ति ॥ ॥ ८७ ॥ पिष्यमाणइमश्चात्रसिद्धंमंत्रमुदीरयेत् । "ममपाताजयानामविजयोनाममेपिता ॥ ८८ ॥ सोऽहंजयोजयापुत्रोविजयोऽथजयामिच । नमःपुरुषसिंहायविष्णवेविश्वकर्मणे ॥ ॥ ८९ ॥ सनातनायकृष्णायभवायविभवायच । तेजोवृषाकपेः साक्षात्तेजोब्रह्मेन्द्रयोर्यमे ॥ ९० ॥ यथाहंनाभिजानामिवासुदेवपराजयम् । मातुश्चपाणिग्रहणंसमुद्रस्यचशोषणम् ॥ ९१ ॥ अनेनसत्यवाक्येनसिध्यतामगदोह्ययम् । हिलिमिलिसंस्पृष्टेरक्षसर्वभेषजेतुमे ॥ ९२ ॥"

तेजपत्र, अगर, नागरमोथा, इलायची, पंचनिर्यास, चंदन, पृक्का (असवर्ग), दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल, नेत्रवाला, रेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारू, धतूरा (अथवा नागकेशर) केशर, वीरणतृण, कूठ फूलप्रियंगु, तगर, सिरसका पंचांग, सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, मनसिल, जीरा, सफेद अपराजिता, कटभी, करंज, लताकरंज, सफेद सरसों, संभालू, हल्दी, तुलसी, रसौत, गेरू, मंजीठ, नीमका गोंद, वांसके ऊपरके छिलके, असगंध, हींग, कपित्थ, अमलवेत, लाख, मुलैठी, महुएके फूल, बावची, वच, रुहा (महासमंगा अथवा दूब), गोरोचन, तगर इन सबको समभाग लेवे इन ६० औषधियोंके अगदको महादेवजीने कुबेरसे कथन किया था यह अगद अप्रतिहतप्रभाव और महागन्धहस्ती नामसे विख्यात है । इन साठ औषधियोंको पुष्यनक्षत्रमें संग्रहकर बारीक चूर्ण बना और पुष्यनक्षत्रमें गोपित्तमें खरलकर गोलियें बनालेवे । इस महागंधहस्ती नामके अगदको अंजन और लेपमें प्रयुक्त करनेसे कार्यकी सिद्धि होतीहै । अर्थात् सब प्रकारके विष आदि दूर होकर मनुष्य आरोग्य रहताहै । जो मनुष्य हित मित और पथ्य भोजन करताहुआ इस अगदको नेत्रोंमें आंजे तो पैल्ल,खुजली, तिमिर, रतौंध, कांज, अर्बुद और पटोलरोग दूर होतेहैं तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, खुजली और विषूचिका यह सब दूर होतेहैं । तथा मौषिक विष वा अन्य प्रकारके विष लूताविष, सब प्रकारके सांपोंके विष, मूलजविष, कंदविष, तथा अन्य विष इन सबको शीघ्र नष्ट करताहै । इस औषधको शरीरमें लेपनकर मनुष्य सांपको पकडले अथवा विषको खाळेवे तो उसको किसी प्रकारका भी विष व्यापक नहीं होता । जिसके शरीरमें असर करगयाहो अथवा विषके कारण मृततुल्य होगयाहो इसके लेपन और अंजनसे वह भी शीघ्र निरोग होजाताहै । इस औषधका अफारेमें अथवा बवासीरमें गुदापर लेप करना चाहिये । मूढगर्भ हो तो स्त्रीकी योनिमें लेप करना चाहिये । और मूर्च्छा रोगमें मनुष्यके मस्तकपर लेप करना चाहिये । इस अगदको भेरी (नक्कारा), मृदंग, पटह (डफरा) आदिपर लेपकर बजानेसे उसका शब्द सुननेसे विष दूर होजाताहै । इसको छत्र, ध्वजा और पाताका आदिमें लेप कर उस ध्वजा पताका आदिकी वायुके स्पर्शसे और देखनेसे विष दूर होताहै । इसलिये विषग्रस्तको लेपन, अंजन, शब्द, वायु दर्शन इन सब जगह अगदका प्रयोग करनेसे विष दूर होजाताहै। जिस स्थानमें यह अगद रहे उस स्थानमें बालग्रह, राक्षसभय, जादू, टोना आदि किसी प्रकारका भय नहीं करसकते तथा उस स्थानमें किसी अथर्व्ववेदोक्त मंत्र वैरीके प्रयुक्त कियेहुए

---

१ राल, गूगुल, अफीम, शिलहक और लोहबान । २सिरसकी छाल, फूल, पत्र, बीज और जड । ३ गोपित्तकी जगह १० वर्षका गोवृत मिलावे तो अधिक गुणकारी है ।

अपना वल नहीं करसकते तथा उस घरमें किसी प्रकारके ग्रह, अग्नि, शस्त्र, राजा और चोर आदि कष्ट नहीं देसकते । जिस स्थानमें यह महागंधनामक अगदहस्ती हो उस स्थानमें लक्ष्मीकी वृद्धि होती है । जिस समय इस औषधिको बनावे उस समय 'मम माता जया नाम' आदिक ५॥ श्लोकका मंत्र जो ऊपर मूलम लिखा है पढताजाय ॥ ७९-९२ ॥

विषमें श्वासज्वरादिनाशक योग ।

ऋषभकजीवकभार्ङ्गीमधुकोत्पलधान्यकेशराजाज्यः । ससितगैरिकोलमध्याःपेयाःश्वासज्वरादिहराः ॥ ९३ ॥

ऋषभक, जीवक, भारंगी, मुलेठी, नीलकमल, धनियां, नागकेशर, जीरा, मिसरी, गेरू वेरकी गुठलीकी मींगी इन सवको घोटकर पीवे तो विषग्रस्त रोगीका श्वास और ज्वर दूर होताहै ॥ ९३ ॥

हिंगुचकृष्णायुक्तंकपित्थरसमुग्रलवणञ्च ।
समधुसितोपातव्योज्वरहिक्काश्वासकासघ्नौ ॥ ९४ ॥

हींग और पीपलका चूर्ण कैथके रसमें घोटकर उसमें समुद्रलवण तथा शहद और मिसरी मिला पीवे तो विषजनित ज्वर, हिचकी और श्वास तथा खांसी दूर होतेहैं ॥ ९४ ॥

लेहःकोलास्थ्यञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्वम्याम् ।
वृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्त्तिस्तुहिक्काघ्नी ॥ ९५ ॥

वेरकी गुठली, अंजन, (स्रोतोञ्जन या रसौत) खील और नीलकमल इनको घृतमें मिलाकर चाटनेसे विषजनित वमन दूर होताहै । और कटेली, वडी कटेली, अरहरके पत्र इनकी धूमवत्ती वनाकर धूमपान करनेसे विषजनित हिचकी दूर होती है ॥ ९५ ॥

शिखिवर्हिवलाकास्थीनिसर्षपाश्चन्दनंचघृतयुक्तम् ।
धूमोगृहशयनासनवस्त्रादिषुशस्यतेविषनुत् ॥ ९६ ॥

मोरपंख, वगुलेकी हड्डी, पीली सरसों और लालचंदन इनको वारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे घर, शय्या, आसन, वस्त्र, आदिकोंका विष दूर होताहै ॥९६॥

घृतयुक्तेनतकुष्ठभुजगपतिशिरःशिरीषपुष्पञ्च ।
धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविषघ्नःश्वयथुहञ्च ॥ ९७ ॥

तगर, कूठ, नागका सिर, सिरसके फूल इन सवको वारीक पीस घीमें मिला धूनी देनेसे यह धूमागद सव प्रकारके विष और विषजनित सूजन दूर करताहै॥९७॥

जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातककुभपष्पसर्जरसाः ।
श्वेताधूमाउरगाखुकीटवस्त्रकृमिहरांःस्युः ॥ ९८ ॥

लाख, खस, पत्रज, गूगल, भिलावे, अर्जुन वृक्षके फूल, सर्जरस (राल) और सफेद अपराजिता इन सबके चूर्णको पुराने घृतमें मिला धूनी देनेसे घरमेंसे सांप, विच्छू, कीट, मूसा और वस्त्रोंके कृमिं दूर होतेहैं ॥ ९८ ॥

क्षारागद ।

तरुणपलाशक्षारस्रुतंपचेच्चूर्णितैःसहसमांशैः । लोहितमृद्रजनीद्वयशुक्लसुरसमञ्जरीमधुकैः ॥ ९९ ॥ लाक्षासैन्धवमांसीहरेणुहिंगुद्विशारिवाकुष्ठैः । सव्योषैर्वाह्लीकैर्दर्वीलेपेनघट्टयेद्यावत् ॥ १०० ॥ सर्वविषशोथगुल्मत्वग्दोषार्शोभगन्दरप्लीह्नः । शोषापस्मारक्रिमिभूतस्वरभेदकण्डुपाण्डुगदान् ॥ १०१ ॥ मन्दाग्नित्वंकासंसोन्मादंनाशयेन्नृणामाशु । गुलिकाश्छायाशुष्ककोलसमास्ताःसमुपयुक्ताः ॥ १०२ ॥

नए ढाकके खारको विधिवत् चुआलेवे फिर इसमें गेरू, हलदी, दारुहलदी, सफेद तुलसीकी मञ्जरी, मुलैठी, लाख, सेंधानमक, जटामांसी, रेणुका, हींग, सारिवा, कृष्णसारिवा, कूठ, पीपल, मिर्च, सोंठ, वाल्हीक (हींग) इन सबका चूर्णकर उपरोक्त क्षारसे चौथा भाग लेवे इस चूर्ण और क्षारको मिलाकर पकावे जब पकते २ करछीसे लिपटने लगे तो उतारकर बेरके समान (या एक २ तोलाकी) गोलिएँ बना, छायामें सुखाले इन गोलियोंके प्रयोगसे सब प्रकारके विष, सूजन, गुल्म, त्वचाके दोष, अर्शरोग, भगंदर, प्लीहरोग, शोष, अपस्मार, कृमिरोग, भूतबाधा, स्वरभेद, खुजली, पाण्डुरोग, मन्दाग्नि, खाँसी, उन्माद यह सब नष्ट होतेहैं ९९-१०२

विषपीतदष्टविद्धेष्वेतद्दिग्धेचवाच्यमुद्दिष्टम् ।
सामान्यतःपृथक्त्वान्निर्देशमतःशृणुयथावत् ॥ १०३ ॥

इसमकार पीयेहुए विषकी और विद्धविष तथा दष्ट विषकी, एवं दूषीविष चिकित्साका सामान्यतासे कथन किया गयाहै अब विषभेदसे अलग २ चिकित्साका श्रवण करो ॥ १०३ ॥

रिपुयुक्तेभ्योनृभ्यःस्वेभ्यःस्त्रीभ्योथवाभयंनृपतेः ।
आहारविहारगतस्तस्मात्प्रेष्यान्परीक्षेत ॥ १०४ ॥

जो मनुष्य शत्रुओंसे मिलेहुए हों अथवा शत्रु या स्त्री आदि भोजनमें मिलाकर अथवा अन्य किसी प्रकार विष देसकतेहैं । इसलिये राजाको अपने आहारविहारकी परीक्षा करते रहना चाहिये ॥ १०४ ॥

विषदेनेवाले पुरुषके लक्षण ।

अत्यर्थशङ्कितःस्याद्बहुवागथवाल्पवाग्विगतलक्ष्मीः । प्राप्तःप्रकृतिविकारंविषप्रदातानरोज्ञेयः ॥ १०५ ॥

जो मनुष्य अन्न पान देताहुआ अत्यंत शंकितसा हो, अपने स्वभावसे विपरीत बनावटीसी अधिक बातें करताहो या बहुत बोलनेवाले स्वभावका होकर भी बहुत कम बोले, मुखकी कांति भयभीत और विकृतसी प्रतीत हो, हतश्री प्रतीत हो तथा अन्य तिनकेसे पृथ्वीको खोदना आदि प्रकृतिसे लक्षण प्रतीत हों ऐसे मनुष्यके दिये हुए अन्नपानमें विषकी सम्भावना होतीहै । अर्थात् ऐसे लक्षण होनेसे मनुष्यको विषको देनेवाला समझना चाहिये ॥ १०५ ॥

विषयुक्त भोजनकी परीक्षा ।

दृष्ट्वैवंनतुसहसाभोज्यंनस्येत्तदग्रमग्नौतु । सविषंहिप्राप्यान्नंवह्विवि-कारान्भजत्यग्निः ॥ १०६ ॥ शिखिबर्हविचित्रार्चिस्तीक्ष्णाल्परूक्ष-कुणपधूमश्च । स्फुटतिचसशब्दमशब्दमेकावर्त्तोविहितार्चिरपि-स्यात् ॥ १०७ ॥

यदि भोजनमें विषकी शंका हो तो उस भोजनको बिना अग्निमें हवन किये सहसा खालेना उचित नहीं । यदि विषयुक्त अन्नको अग्निमें हवन कियाजाय तो अग्नि बहुतसे विकारयुक्त होजातीहै । विषयुक्त अन्न अग्निमें डालनेसे अग्निके इस प्रकार वर्ण बदल जातेहैं । जैसे-अग्निकी लाट मोरके पंखके समान, हरी, नीली, चित्रितसी प्रतीत हो उसमें तीक्ष्णता, रूक्षता और मुर्देकीसी गंध आनेलगे, अथवा अन्य किसी विषकीसी गंध आवे, अनेक वर्णका धूम निकले उस अग्निमेंसे फटफट फटनेकासा शब्द प्रतीत हो, धूंएका एक आवर्त गोलासा निकले और शिखादार धूम न हो यह विषयुक्त अन्न होनेके लक्षण हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

पात्रस्थअन्नमें विषकी पहिचान ।

पात्रस्थश्चविवर्णभोज्यंस्यान्मक्षिकांश्चमारयति । क्षामस्वरांश्चकाकान्कुर्य्याद्द्विरजेचकोराक्षि ॥ १०८ ॥

जो भोजन पात्रमे पडापडा ही विवर्ण होजाय और उसके ऊपर जो मक्खी बैठे ।

सो मरजाय, जिस भोजनको देखकर काक अपने कांकां शब्दको त्याग देवे और जिस भोजनको देखकर चकोर अपने नेत्रोंको फेरलेवे ऐसे भोजनको विषयुक्त जानना चाहिये ॥ १०८ ॥

जलादिपेय पदार्थमें विषकी परीक्षा ।

पानेनीलाराजीवैवर्ण्यस्वाञ्चनेक्षतेच्छायाम् ।
विकृतामथवापश्यतिलवणाक्तेफेनमालास्यात् ॥ १०९ ॥

यदि जल आदि पेय पदार्थोंमें विष मिलाहुआ हो तो उसमें रेखासी, नीले २ वर्णकी तारसी प्रतीत होने लगतीहैं, उसका वर्ण बिगड जाताहै, उसमें मुख आदि शरीरका प्रतिबिंब दिखाई नहीं देता अथवा विकृत दिखाई देताहै। यदि उसमें नमक डाल दियाजाय तो झागकी तरंगेंसी उठने लगतीहैं ॥ १०९ ॥

विषयुक्त अन्नपान सेवनका विकार ।

पानान्नयोःसविषयोःशिरसोगन्धेनरुग्हृदिच । मूर्च्छास्यपाणिशोथःसुप्त्यंगुलिदाहतोदनखभेदाः ॥ ११० ॥ मुखताल्वोष्ठचिमिचिमाजिह्वाशूलवतीजडाविवर्णास्यात् । द्विजहर्षहनुस्तम्भास्यदाहलालागलविकाराः ॥ १११ ॥ आमाशयंप्रविष्टेवैवर्ण्यस्वेदसदनसुत्क्लेदः । दृष्टिर्हृदयोपरोधोबिन्दुशतैश्चीयतेचाङ्गम् ॥ ११२ ॥ पक्वाशयन्तुयातेमूर्च्छामदमोहदाहबलनाशाः । तन्द्राकार्श्यञ्चविषे पाण्डुत्वञ्चोदरस्थेस्यात् ॥ ११३ ॥

अन्नपानमें विष मिला होनेसे उसकी गंधसे मस्तकमें पीडा हृदयमें शूल, मूर्च्छा और हाथ लगानेसे हाथोंमें सूजन वा हाथका सुन्नसा होजाना, अंगुलियोंमें दाह, तोद, और नखोंका फटना सा प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं। विषयुक्त द्रव्यके खायेजानेसे मुख, तालु और फोठोंमें चिमचिमाहट, जिह्वामें पीडा, सूजन, जडता और विवर्णता हो, दाँत कुन्द होजायँ, ठोडी जकडजाय, मुखमें जल न हो और मुखसे लार बहनेलगे, गलेमें विकार पैदा हों—यह विषयुक्त अन्न पान आमाशयमें पहुंच जानेसे शरीरकी विवर्णता, पसीने अंगोंका अवसाद जीमचलाना, दृष्टि और हृदय बंधसे होजाना शरीरमें बिन्दुके समान सैकडों फुन्सियें होंजाय ॥ यदि यह विष पक्वाशयमें पहुंचजाय तो मूर्च्छा, मद, मोह, दाह, बलका नाश यह लक्षण होतेहैं । विषयुक्त अन्नपान यदि उदरमें स्थित हों तो तन्द्रा, कृशता और पाण्डु यह उपद्रव होते है ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

दतौनमें और शिरोभ्यंगमें विषके लक्षण ।

दन्तपवनस्यकूर्चोविशीर्य्यतेदन्तोष्ठमांसशोफश्च ।
केशच्युतिःशिरोग्रन्थयश्चसविषेशिरोभ्यङ्गे ॥ ११४ ॥

यदि विष दांतनकी कूचीमें हो तो दांतोंका मांस बिखरने लगे और सूजजाय, दांत उखडने लगें और दांतनकी कूची बिखरजाय यह लक्षण होतेहैं । यदि तेल आदिकोंमें विष मिला हो तो उसको शिरमें लगानेसे केशोंका गिरना, शिरमें गांठेंसी होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ११४ ॥

अंजनमें विषके लक्षण ।

दुष्टेऽञ्जनेऽक्षिदाहःस्रावाश्रुपदेहशोथरागाश्च ।
आद्यैरादौकोष्ठःस्पृश्यैस्त्वग्दूष्यतेदुष्टैः ॥ ११५ ॥

यदि अंजनमें विष मिला हो तो आंखोंमें दाह, जलका स्राव, अत्यंत क्लेदका होना, सूजन, लाली यह उपद्रव होतेहैं । जो विष खाये जातेहैं उनमें पहिले कोष्ठ दूषित होताहै । जो विष तेल आदि द्वारा या अन्य किसी प्रकार शरीरमें स्पर्श किये जांय तो उनसे पहिले त्वचा दूषित होतीहै ॥ ११५ ॥

स्नान अभ्यंगादिकोंमें विषके लक्षण ।

स्नानाभ्यङ्गोत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः ।
कण्ड्वार्त्तिलोमहर्षाःकोठपिडकाचिमिचिमाःशोथाः ॥ ११६ ॥

यदि स्नान, मालिश, उबटन, वस्त्र, अलंकार आदि विषयुक्त हों तो उनसे खुजली, पीडा, रोमहर्ष, शरीर पर चकत्ते पिडिका चिमचिमाहट और सूजन ये लक्षण होतेहैं ॥ ११६ ॥

सवारी, शय्या, भूमि, पादुका आदिमें विषके ल० ।

एतेकरचरणदाहतोदक्लमाङ्गविपाकाश्च ।
भूपादुकाश्वगजचर्मकेतुशयनासनैर्दुष्टैः ॥ ११७ ॥

यदि चलने फिरनेकी पृथ्वी, जूता, खडांऊ, घोडेकी जीन, हाथीके ऊपर मृगछाला, शय्या, आसन आदिमें विषका सम्पर्क हो तो हाथ पावोंमें दाह, सुई चुभनेकीसी पीडा, क्लम, अंगोंका पकना यह लक्षण होते हैं ॥ ११७ ॥

विषयुक्त माला और धूमके लक्षण ।

माल्यमगन्धंम्लायतिशिरसोरुजालोमहर्षकरम् ।
स्तम्भयतिखानिदर्शनमुपहन्तिचनासिकांधूमः ॥ ११८ ॥

यदि पुष्पमालामें विप लगाहुआ हो तो वह माला, गंधरहित, कुम्हिलाई, मस्तक-पीडा और रोमहर्षको करनेवाली होतीहै विषयुक्त धूमका स्पर्श हो तो वह धूम नाकमें जानेसे नाकके छिद्रोंको स्तब्ध करे नेत्रोंको और नाकको उपहनन करताहै ॥११८॥

कूप आदिमें विषके ल० ।

कूपतडागादिजलंदुर्गन्धंसकलुपंविवर्णञ्च ।
पीतंश्वयथुंकोठान्पिडकांश्चकरोतिमरणञ्च ॥ ११९ ॥

कुएं, तालाव आदिमें विप मिला हो तो जलमें दुर्गंध, कलुपता और विवर्णता होती है। उस जलके पीनेसे सूजन, शरीरपर चकत्ते, फुन्सियें अथवा मृत्यु होतीहै ॥ ११९ ॥

इन विषोंमें सामान्यचिकित्साक्रम ।

आदावामाशयगेवमनंत्वक्स्थेप्रदेहसेकादि ।
कुर्य्याद्विपक्चिकित्सांदोपवलञ्चैवहिसमीक्ष्य ॥ १२० ॥

यदि विप खाये जानेसे आमाशयमें पहुंचा हो तो शीघ्र वमन कराकर निकालदेना चाहिये। यदि त्वचा आदिमें विपका स्पर्श हुआ हो तो प्रदेह और प्रसेकादि द्वारा वैद्य दोप, वल, आदि विचारकर चिकित्सा करे ॥ १२० ॥

इतिमूलविपविशेपाःप्रोक्ताःशृणुजङ्गमस्यातः ।
सविशेपचिकित्सितमेवादौतत्रोच्यतेतुसर्पाणाम् ॥ १२१ ॥

इस प्रकार मूलविप विशेपोंका (और स्थावर विपोंका) वर्णन करचुके हैं । अब जंगमविपोंकी चिकित्साविशेपका कथन करते हैं उनमें प्रथम सर्पोंकी चिकित्साको कहतेहैं ॥ १२१ ॥

सर्पोंका और उनके विपोंका वर्णन ।

इहदर्वीकरःसर्पोमण्डलीराजिमानिति ।
त्रयोयथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः ॥ १२२ ॥

दर्वीकर, मडली और राजिमान् इन तीन प्रकारके सर्पोंके काटनेसे क्रमसे वात, पित्त, कफका प्रकोप होताहै। अर्थात् दर्वीकर सांपका विप वातप्रधान है । मंडली सर्पका विप पित्त प्रधान है और राजिमान् सर्पका विप कफप्रधान होता है ॥ १२२ ॥

दर्वीकरःफणीज्ञेयोमण्डलीमण्डलाःफणाः ।
विन्दुलेखोविचित्राङ्गःपन्नगःस्यात्तुराजिमान् ॥ १२३ ॥

कडछीके समान फनवाले सांप दर्वीकर कहेजातेहैं । (दर्वीकर सांपके सिरपर गौके खुरका आकारसा होताहै और मुख किंचित् लम्बा होताहै ।) मंडलीसर्पका फण मंडलके समान गोल होताहै । जिस सांपके शरीरपर चित्र विचित्र बूंदं रेखा और लकीरंसी होतीहैं उसको राजिमान् कहतेहैं ॥ १२३ ॥

विशेपाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम् ।
विपर्ययथाक्रमंतेषांतस्माद्वातादिकोपनम् ॥ १२४ ॥

दर्वीकर सांपका विप विशेपतासे रूक्ष और कटु होताहै । मंडली सर्पोका विप अम्ल और उष्ण होताहै । राजिमान् सांपोंका विप मधुर और शीतल होताहै । इसलिये यह यथा क्रम वातादि दोषोंको कुपित करनेवाले होतेहैं ॥ १२४ ॥

दर्वीकरके कटेहुएके ल० ।

दर्वीकरकृतोदंशःसूक्ष्मदंष्ट्रापदोशितः ।
निरुद्धरक्तःकूर्मभोवातव्याधिकरोमतः ॥ १२५ ॥

दर्वीकर सांपके काटेहुए स्थानमें दंशस्थान बहुत सूक्ष्म और काले वर्णका होताहै तथा रक्त नहीं निकलता वह स्थान कछुएकी समान फूलाहुआसा प्रतीत होताहै और संपूर्ण लक्षण तथा व्याधियें वातजनित होतीहैं ॥ १२५ ॥

मण्डली सापोंके दंशके ल० ।

पृथ्वर्पितःसशोथश्चदंशोमण्डलिभिःकृतः ।
पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥ १२६ ॥

मंडली सांपका काटाहुआ स्थान-स्थूल, सूजनयुक्त और पीले वर्णका होताहै । पीले वर्णका और लालवर्णका रक्त निकलने लगताहै । संपूर्ण लक्षण और व्याधियें पित्तजनित होतीहैं ॥ १२६ ॥

राजिमान् सांपके दंशके लक्षण ।

कृतोराजिमतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफकृत् ।
स्निग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्मव्याधिसमीरणः ॥१२७॥

राजिमान् सांपका काटाहुआ स्थान-पिच्छिल, स्थिर सूजनयुक्त चिकना और पाण्डुवर्णका होताहै । तथा गाढा और सान्द्र रक्त निकलताहै । लक्षण और व्याधि सब कफजनित होतीहैं ॥ १२७ ॥

सर्पोंके स्त्रीपुरुष जातिके दंशभेद ।

वृत्तभोगीमहाकायःश्वसन्मूर्द्धेक्षणःपुमान् । स्थूलमूर्द्धासमाङ्गश्च

स्त्रीत्वतःस्याद्विपर्य्ययात् ॥ १२८ ॥ क्लीवःस्रस्तस्त्वधोदृष्टिःस्वरहीनः प्रकम्पते । स्त्रियादष्टोविपर्य्यस्तैरेतैःपुंसोनरोमतः ॥ १२९ ॥ व्यामिश्रलिंगैरेतैस्तुक्लीवदष्टंनरंवदेत् । इत्येतदुक्तंसर्पाणांस्त्रीपुंक्लीवनिदर्शनम् ॥ १३० ॥

जिस सांपका फण गोल, सुंदर, वडा हो और शरीर भी वडा हो तथा जो ऊपरको नेत्रकर श्वास लेवे मस्तक वडा हो और सर्वांग सुडौल हो वह सांप पुरुपजातिका होताहै । इससे विपरीत अर्थात् जिसका शिर वडा न हो फणा चौडी न हो तथा शरीर भी बहुत वडा चमकीला और पुरुप जातिके सांपके समान नहो उसको जातिकी स्त्री (सांपनी) जानना चाहिये । इन दोनोंके मिलेजुले लक्षणोंवाला सांप जातिका नपुंसक होताहै । जिस मनुष्यको स्त्रीजातिका सांप काटे उसके सव अंग शिथिल होजांय दृष्टि नीची पडजाय, स्वर हीन होजाय और कांपने लगे । जिसको पुरुप जातिके सांपने काटाहो उसकी दृष्टि ऊपरको हो सव अंग कठोर हों तथा स्वर क्षीण और कंप न हो उसको पुरुपजातिके सांपने डसा (काटा) है ऐसा जानना । दोनोंके मिले जुले लक्षण हों तो नपुंसक का काटा हुआ जानना चाहिये । इस प्रकार सांपोंकी स्त्री, पुरुप, और क्लीव जातिका वर्णन किया गया ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥

पाण्डुवक्त्रस्तुगर्भिण्याशूनोष्ठोऽप्यसितेक्षणः ।
जृम्भाक्रोधोपजिह्वार्त्तःसूतयारक्तमूत्रवान् ॥ १३१ ॥

गर्भवती सांपनके काटेहुए मनुष्यके होठों पर सूजन, मुख पर पाण्डुवर्णकी सूजन, नेत्र काले वर्णके होना तथा जंभाई, क्रोध और उपजिह्विकासे पीडित होना यह लक्षण होतेहैं । सूईहुई सर्पिणीके काटे हुए मनुष्यके मुख तथा मूत्र द्वारा रक्त स्राव होताहै ॥ १३१ ॥

गोहके काटेहुएके लक्षण ।

सर्पोगौधेरकोनामगोधाख्यःस्याच्चतुष्पदः ।
कृष्णसर्पेणतुल्यःस्याद्नानाःस्युर्मिश्रजातयः ॥ १३२ ॥

गोधेरक नामक सांप चार पावोंवाला होताहै उसको गोधा (गोह) कहतेहैं । इसके काटेहुए पुरुपके कृष्ण सांप (दर्वीकर) के काटेहुएके समान लक्षण होतेहैं । इनके सिवाय बहुतसे वर्णसंकर जातिके सर्प होतेहैं ॥ १३२ ॥

भयानक दंश ।

गूढसम्पादितंवृत्तंपीडितंलम्बितार्पितम् ।
सर्पितश्चभृशाबाधंदंशायेऽन्येनतेभृशाः ॥ १३३ ॥

जो दंश (सांपका काटाहुआ स्थान) ऊपरसे अधिक न होनेपर भी भीतरसे गहरा हो, तथा गोल ऊपरको उठाहुआ हो, गिलटीके समान पिडित सा हो लंवायमान उठाहुआ हो, और शीघ्र सब ओर फैलगया हो वह दंश अत्यंत भयानक होताहै ऐसे अन्य दंश भयानक नहीं होते ॥ १३३ ॥

सर्पोंमें अवस्थाभेदसे विषकी प्रधानता ।

तरुणाःकृष्णसर्पास्तुगोनसाःस्थविरास्तथा ।
राजिमन्तोवयोमध्येभवन्त्याशीविषोपमाः ॥ १३४ ॥

तरुण कालासांप, आशीविषसा (शीघ्रप्राणनाशक) होताहै । तथा वृद्ध मण्डलीसांप और मौढ राजिमान् सांप आशीविषसा होताहै ॥ १३४ ॥

सांपके चार दांतोंके वर्ण ।

सर्पदंष्ट्राश्चतस्रस्तुतासांवामाधराःसिताः ।
पीतावामोत्तरादंष्ट्रारक्तश्यावाधरोत्तरा ॥ १३५ ॥

सांपके मुखमें चार दंष्ट्रा (दाढ) प्रधान होतीहैं । उनमें बाईं ओरकी नीचेकी दाढ सफेद और ऊपरकी पीली होतीहै तथा दहनी ओरकी नीचेकी दाढ लाल और ऊपरकी काली होतीहै ॥ १३५ ॥

दांतोंमें विषकी प्रबलता ।

यन्मात्रःपततेविन्दुर्गोवालात्सलिलोद्धृतात् । वामाधरायांदंष्ट्रायां-तन्मात्रंस्यादहेविषम् ॥ १३६ ॥ एकद्वित्रिचतुर्वृद्धिविषभागोत्तरोत्तराः । सवर्णास्तत्कृतादंशाबहूत्तरविषाभृशाः ॥ १३७ ॥

गोपुच्छके एक बालको पानीमें भिगोकर निकाले उस बालमेंसे जितनी पानीकी बूंद गिरतीहै सांपकी बाईं ओर नीचेकी दाढमें उतना विष होताहै और बाईं ओरकी ऊपरकी दाढमें उससे दुगुना विष होताहै । दहनी ओरकी नीचेकी दाढमें तिगुना और दहनी ऊपरकी दाढमें चौगुना विष होताहै । सांपका जो दांत मनुष्यके शरीरमें लगे उसी दांतके वर्णका दंशका भी वर्ण होताहै और बाईं ओरके नीचेके दांतसे आरंभकर क्रमसे चारों दंशोंमें पूर्वकी अपेक्षा उत्तरोत्तर विष भयानक भारी जानना ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सांपोंके मलजनित कीटोंके विषके लक्षण।

सर्पाणामेवविण्मूत्रात्कीटाःस्युःकीटसंमताः।
दूषीविषाःप्राणहराइतिसंक्षेपतोमताः ॥ १३८ ॥

सांपोंकी विष्ठा और मूत्रसे जो कीडे उत्पन्न होतेहैं उनको किट्टज कहतेहै। उनके दूषीविष और प्राणहारी यह संक्षेपसे दो भेद हैं ॥ १३८ ॥

गात्रंरक्तंसितंकृष्णंश्यावंवापिडकान्वितम्। सकण्डूदाहवीसर्पपाकिस्यात्कुथितंतथा ॥ १३९ ॥ कीटैर्दूषीविषैर्दष्टंलिंगंप्राणहरंशृणु। सर्पदष्टेतथाशोथेवर्द्धतेसोग्रगन्ध्यसृक् ॥ १४० ॥

दूषीविष कीटोंके दंशस्थान, लाल, श्वेत, कृष्ण, श्याव अथवा पीतवर्ण होतेहैं। तथा उनमें छोटी २ फुन्सियें, खुजली, दाह तथा विसर्पके समान पाक और सडन होतीहै। और प्राणहर कीटोंके काटनेसे सांपके काटेहुएके समान दंशस्थानमें सूजन होती है और रक्तमें अत्यंत गंध आतीहै। तथा सांपके विषके समान ही सूजन आदिकी वृद्धि होती जातीहै ॥ १३९ ॥ १४० ॥

दूषीविषोंके काटनेके लक्षण।

दंशोऽक्षिगौरवंमूर्च्छासरुगार्त्तःश्वसित्यपि।
तृष्णारुचिपरीतश्चभवेद्दूषीविषार्दितः ॥ १४१ ॥

दूषीविष कीटोंके काटनेसे नेत्रोंमें भारीपन, मूर्च्छा और अत्यंत पीडा, श्वास, तृषा, अरुचि हो यह दूषीविषयुक्त मनुष्यके लक्षण होतेहैं ॥ १४१ ॥

दूषीविषलूता (मकडी) के दंशके लक्षण।

दंशस्यमध्येयत्कृष्णंश्यावंवाजालकावृतम्। दग्धाकृतिभृशंपाकिक्लेदशोथज्वरान्वितम् ॥ १४२ ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तंदष्टमिति निर्दिशेत्। सर्वासामेवतासाञ्चदंशेलक्षणमुच्यते ॥ १४३ ॥

दूषीविष लूता (मकडी) के काटनेसे दंशस्थान बीचमेंसे काला, नीला और जालीसे युक्त दग्धहुएके समान आकारवाला, पाकयुक्त, क्लेद, सूजन हो और मनुष्य ज्वरयुक्त होताहै। लूता अनेक प्रकारकी होती हैं। अब उनके दंशोंके लक्षण कहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

लूतादष्ट मनुष्यके लक्षण।

शोफाः श्वेताःसितारक्ताःपीतावापिडकाज्वरः।
प्राणान्तिकोभवेच्छ्वासोदाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ १४४ ॥

जिस मनुष्यको लूता काटे उसके दंशस्थानमें सूजन काले लाल, सफेद अथवा पीले वर्णकी छोटी २ फुन्सियें ज्वर, प्राणनाशक श्वास, दाह, हिचकी, मस्तकमें अत्यंत पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ १४४ ॥

मूषकके काटेहुएके लक्षण ।

आदंशाच्छोणितंपाण्डुमण्डलानिज्वरोऽरुचिः ।
लोमहर्षश्चदाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ १४५ ॥

विषयुक्त चूहेके काटनेसे दंशमेंसे रक्तका निकलना, पीले वर्णके चकत्ते, ज्वर, अरुचि, रोमहर्ष और दाहसे व्याकुलत्ता यह लक्षण होतेहैं ॥ १४५ ॥

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ।
शिरोगुरुत्वंलालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषिकैः ॥ १४६ ॥

चूहेके काटेहुए मनुष्यको यदि मूर्च्छा, अंगोंमें सूजन, विवर्णता, क्लेद, कानोंसे न सुनना, ज्वर, शिरमें पीडा, मुखसे लार बहना, और रुधिरकी छर्दी, हो तो वह मूषकविष असाध्य होताहै ॥ १४६ ॥

कृकलासके विषके लक्षण ।

श्यावत्वमथकार्ष्ण्यंवानानावर्णत्वमेववा ।
मोहःपुरीषभेदोवादष्टेस्यात्कृकलासकैः ॥ १४७ ॥

गिरगट (किरला) के काटनेसे दंशस्थान काला, नीला वा अनेक वर्णका होताहै । गिरगटके काटेहुए मनुष्यको बेहोशी और दस्त होने लगतेहैं ॥ १४७ ॥

बिच्छूके काटनेके लक्षण ।

दहत्यग्निरिवादौतुभिनत्तीवोर्द्ध्वमाशुच । वृश्चिकस्यविषंयातिदंशेपश्चात्तुतिष्ठति ॥ १४८ ॥ दष्टोऽसाध्यस्तुहृग्घ्राणरसनोपहतोनरः । मांसैःपतद्भिरत्यर्थंवेदनार्त्तोजहात्यसून् ॥ १४९ ॥

बिच्छूके काटेहुए मनुष्यके दंशस्थानमें अग्निके समान काटतेही जलन होने लगतीहै फिर वह अग्निकी सी पीडा जल्दी २ ऊपरको चढतीहुई प्रतीत होतीहै तथा अन्तमें दंशस्थानमें ही आकर स्थित होजातीहै । जिस बिच्छूके काटेहुए मनुष्यकी दृष्टि,सूंघनेकी शक्ति और स्वादशक्ति नष्ट होजाय, जिस स्थानमें बिच्छूने काटा हो वह स्थान गल कर गिरने लगे अथवा दंशस्थान फटकर खिडजाय और अत्यन्त पीडाके मारे रोगी बेहोश हो जाय तो वह मनुष्य अपने प्राणोंको त्यागदेताहै ॥ १४८ ॥ १४९ ॥

कणभकदंशके लक्षण ।

विसर्पःश्वयथुःशूलंज्वरश्छर्दिरथापिवा ।
लक्षणंकणभैर्दष्टेदंशश्चैवविशीर्य्यते ॥ १५० ॥

कणभ (भूंडविशेष) के काटनेसे मनुष्यके शरीरमें विसर्प, शोथ, पीडा, ज्वर, वमन तथा दंशस्थानका फटतेहुए प्रतीत होना अथवा दंशस्थानका गलकर गिरना यह लक्षण होतेहैं ॥ १५० ॥

उच्चिटिंगके दंशके लक्षण ।

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेनस्तब्धलिंगोभृशार्त्तिमान् ।
दष्टःशीतोदकेनेवसिक्तान्यङ्गानिमन्यते ॥ १५१ ॥

उच्चिटिंगके काटेहुए मनुष्यके शरीरमें रोमांच, कटेहुए स्थानका टेढामा होकर अकड जाना, अत्यंत पीडा, संपूर्ण शरीर शीतल जलसे भिगेहुएके समान प्रतीत-होना यह लक्षण होतेहैं ॥ १५१ ॥

विषैलमेंडकका काटा ।

एकदंष्ट्रार्दितःशूनःसरुक्स्यात्पीतकःसतृट् ।
छर्दिर्निद्राचमण्डूकैःसविषैर्दष्टलक्षणम् ॥ १५२ ॥

विषयुक्त मेंडक एक दांतसे काटे और उस दंशस्थानमें अत्यंत पीडा, सूजन, पीलावर्ण होना, प्यास, वमन और निद्रा यह लक्षण होतेहैं ॥ १५२ ॥

मछलीके दंशके ल० ।

मत्स्यास्तुसविषाःकुर्य्युर्दाहंशोफरुजंतथा ।

विषयुक्त मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और पीडा होतीहै ।

जोंकके विषके लक्षण ।

कण्डूंशोथंज्वरंमूर्च्छांसविषास्तुजलौकसः ॥ १५३ ॥

विषयुक्त जोंकके काटनेसे खाज, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा होतीहै ॥ १५३ ॥

छिपकलीकेदंशके लक्षण ।

दाहतोदस्वेदशोथकरीतुगलगोडिका ।

छिपकलीके काटनेसे दाह सूई चुभानेकीसी पीडा, पसीना, और सूजन यह लक्षण होतेहैं ।

कनखजूरेके विषके लक्षण ।

दंशेस्वेदंरुजंदाहंकरोतिचशतापदी ॥ १५४ ॥

शतपदी (कनसजूराके) काटनेसे पसीना और अत्यंत दाह तथा शूल होताहै १५४

मच्छरके काटनेके लक्षण ।

कण्डूमान्मशकैरेतच्छोथःस्यान्मन्दवेदनः ।
असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ १५५ ॥

विषयुक्त मच्छरके काटेहुए स्थानमें सूजन, खुजली और मन्दमन्द पीडा होतीहै । असाध्य विषयुक्त मच्छरके काटनेसे असाध्य कीटके समान लक्षण होते है ॥ १५५ ॥

मक्खियोंके दंशके लक्षण ।

सद्यःप्रस्राविणीश्यावादाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।
पीडकामक्षिकादंशेनासान्तुस्थगिकासुहृत् ॥ १५६ ॥

स्थगिका (विंपल अण्डगल) नामक मक्खीके सिवाय और मधुमक्षिका आदि मक्खियोंके काटनेसे दंशस्थानमें सद्यःस्राव होना, दंशस्थानका श्यामवर्ण, होना तथा दाह, मूर्च्छा और ज्वरका होजाना यह लक्षण होतेहैं । परन्तु विषधर स्थगिकाके काटनेसे मनुष्यके प्राण नष्ट होजातेहै ॥ १५६ ॥

सांपके काटनेसे असाध्यता ।

श्मशानचैत्यवल्मीकयज्ञाश्रमसुरालये । पक्षसन्धिषुमध्याह्नेसार्द्ध-रात्रेऽष्टमीषुच ॥ १५७ ॥ नसिद्ध्यन्तिनरादष्टाःपाखण्डायतनेषु च । दृष्टिश्वासमलस्पर्शविषैराशीविषैस्तथा ॥ १५८ ॥ विनश्य-न्त्याशुसम्प्राप्तादष्टाःसर्वेषुमर्मसु । येनकेनापिसर्पेणसम्भवः सर्व-एवच ॥ १५९ ॥

श्मशान, चैत्य, वल्मीक, यज्ञस्थान, देवालय और दोनों पक्षोंकी संधियोंमें, मध्याह्नमें, अर्द्धरात्रिमें, अष्टमीके दिन, पापस्थानमें यदि आकर सांप काटे तो वह काटाहुआ मनुष्य असाध्य होताहै । तथा दृष्टिविष, श्वासविष, मलविष, स्पर्शविष और आशीविष सांपोंका काटाहुआ मनुष्य भी असाध्य होताहै । तथा मर्मस्थानमें चाहे किसी प्रकारके सर्पका काटाहुवा हो वह मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्यागदेता है ॥ १५७ ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

विषवृद्धिका समय ।

भीतमत्तावलोष्णक्षुत्तृषार्त्तेवर्द्धतेविषम् ।
विषंप्रकृतिकालौचतुल्यौप्राप्याल्पमन्यथा ॥ १६० ॥

भयातुर, मत्त, दुर्बल, उष्णतासे पीडित, क्षुधासे व्याकुल और प्यासयुक्त मनुष्यके शरीरमें विष वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तथा काल और प्रकृतिकी तुल्यता विषके साथ होनेसे विषका वेग बढताहै अन्यथा अल्प होताहै ॥ १६० ॥

मंदविष सांप।

वारिविप्रहताःक्षीणाभीतानकुलनिर्जिताः। वृद्धावालास्त्वचोमुक्ताःसर्पामन्दविषाःस्मृताः ॥ १६१ ॥ सर्वदेहाश्रितंक्रोधाद्विषंसर्पोविमुञ्चति । तदेवाहारहेतोर्वाभयाद्वान्नप्रमुञ्चति ॥ १६२ ॥

जलकी धारासे विशेषरूपसे हतहुआ, क्षीण, भयभीत, नेवलेसे हाराहुआ, वृद्ध बालक जिसके ऊपरसे उसी समय कांचुली उतरीहो ऐसे सांप मंदविष होतेहैं क्योंकि सांप अत्यन्त क्रोधातुर हो संपूर्ण देहके विषको छोडताहै। और भयभीत होनेसे उस संपूर्ण विषको नहीं छोड सकता और आहारके लिये भी विषको नहीं त्यागता ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

विषोंकी वातादिप्रकृति।

वातोल्वणविषाःप्रायउच्चिटिङ्गाःसवृश्चिकाः।
वातपित्तोल्वणाःकीटाःश्लैष्मिकाःकणभादयः ॥ १६३ ॥

उच्चिटिंग और बिच्छुओंका विष प्रायः वातोल्वण होताहै। और कीटोंका विष वातपित्तोल्वण होताहै। तथा कणभादिकोंका विष कफोल्वण होताहै ॥ १६३ ॥

यस्ययस्यहिदोषस्यलिङ्गाधिक्यानिलक्षयेत्।
तस्यतस्यौषधैःकुर्य्याद्विपरीतगुणैःक्रियाम् ॥ १६४ ॥

विषोंमें जिस जिस दोषके अधिक लक्षण देखे उसी उसी दोषके विपरीत गुणवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ १६४ ॥

वातप्रधान विषके लक्षण।

हृत्पीडोर्द्ध्वानिलस्तम्भःशिरायासोऽस्थिपर्वरुक्।
घूर्णनोद्वेष्टनंगात्रश्यावतावातिकेविषे ॥ १६५ ॥

हृदयमें पीडा, ऊर्द्धवात, स्तम्भ, नसोंका खिंचना, अस्थियों और पर्वोंमें पीडा, नेत्रोंका घूमना, शरीरमें उद्वेष्टन, शरीरका काला होना यह वातोल्वण विषोंके लक्षण हैं ॥ १६५ ॥

पित्तप्रधान विषके लक्षण।

संज्ञानाशोष्णनिश्वासौहृद्दाहःकटुकास्यता।
दंशावदारणंशोथोरक्तपीतश्चपैत्तिके ॥ १६६ ॥

संज्ञानाश, गरमश्वासका छोडना, हृदयमें दाह, मुखका कडुआ होना, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीडा होना अथवा दंशस्थानका गलना, लाल और पीलेवर्णकी सूजन होना यह पित्तप्रधान विषके लक्षण हैं ॥ १६६ ॥

कफप्रधान विषके लक्षण।

वम्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशगौरवैः ।
सशैत्यमुखमाधुर्य्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकंविषम् ॥ १६७ ॥

वमन, अरुचि, हुल्लास, मुखसे लारका बहना, जी मचलाना, भारीपन, शरीरमें ठंढक मुखमें मीठापन यह कफप्रधान विषके लक्षण हैं ॥ १६७ ॥

वातादिभेदसे विषोंविषोंमें चिकि० क्रम।

खण्डेनचव्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्चवातिके । स्वेद्योनाडीपुलाकाद्यैर्बृंहणश्चविधिर्हितः ॥ १६८ ॥ सुशीतैःस्तम्भयेत्सेकैःप्रदेहैश्चापिपैत्तिकम्। लेखनच्छेदनस्वेदवमनैःश्लैष्मिकंजयेत् ॥ १६९ ॥

वातप्रधान विषोंमें खांडके साथ दंशस्थानमें लेप करना तथा तेलकी मालिश, नाडीस्वेद, और पुलाक आदिके साथ स्वेदन करना तथा बृंहण कर्म करना हितकारी है पित्तप्रधान विषमें शीतल द्रव्योंका लेपन और सेचन, प्रदेह तथा स्तम्भनक्रिया करना चाहिये। और कफप्रधान विषोंमें लेखन, छेदन, स्वेदन और वमन कराना हितकारी है ॥ १६८॥ १६९ ॥

विषेष्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच ।
अवृश्चिकोच्चिटिङ्गेषुप्रायःशीतोविधिर्हितः ॥ १७० ॥

संपूर्ण विषोंमें चाहे वह किसी स्थानमें गयेहुए हों प्रायः शीतल क्रिया हितकारी होतीहै। परन्तु उच्चिटिंग और विच्छूके विषमें शीतल क्रिया करना हित नहीं है ॥ १७० ॥

बिच्छूके विषमें क्रिया।

वृश्चिकेस्वेदमभ्यङ्गंघृतेनलवणेनच ।
सेकांश्चोष्णान्प्रयुञ्जीतभोज्यंपानञ्चसर्पिषः ॥ १७१ ॥

बिच्छूके विषमें नमकयुक्त घृतसे स्वेदन और अभ्यंग करना हितकारक तथा गरम सेक और घृतका पीना तथा भोजनके साथ सेवन करना हितकारी होताहै ॥ १७१ ॥

उच्चिटिकाके विषमें चिकित्साक्रम।

एतदेवोच्चिटिङ्गेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः । उद्वर्तनंसुखाम्भश्चूर्णैस्त-

थावच्छादनंघनैः ॥ १७२ ॥ स्यात्रिदोषप्रकोपात्तुतथाधातुविपर्य्ययात् । शिरोऽभितापोलालास्राव्यधोवक्त्रस्तथाभवेत् ॥ १७३ ॥

उच्चिटिंगके विषमें भी बिच्छूके समान ही चिकित्सा करना चाहिये तथा वालू और मट्टी आदिसे ऊपरको उद्वर्त्तन करना अर्थात चारों ओरसे दंशके स्थानकी ओरको मालिश करना, सुखोष्ण जलमें वस्त्रादि भिगोकर दंशस्थानको पूर्णरूपसे ढकदेना चाहिये । उच्चिटिंगके विषमें तीनों दोषोंका कोप होनेसे और सब धातुओंकी विपरीततासे, शिरमें पीडा लारका वहना और नीचेको मुख होजाताहै ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

अन्येप्येवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोपणाः ।
हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छाकरामताः ॥ १७४ ॥

इसी प्रकारके अन्य भी जो सर्पादिक कफ, वातके कुपित करनेवाले हैं उनके काटनेसे हृदयमें शूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा और मूर्च्छा उत्पन्न होतीहै ॥ १७४ ॥

सविष और निर्विष शरीरके लक्षण ।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदोपशोषणम्। विदाहरागरुक्पाकाःशोफाग्रन्थिनिकुञ्चनम् ॥ १७५ ॥ दंशावदारणंस्फोटाःकर्णिकामण्डलानिच । ज्वरश्चसविषेलिङ्गंविपरीतन्तुनिर्विषे ॥ १७६ ॥

खुजली, सूई चुभानेकीसी पीडा, विवर्णता, अंगोंका सुन्न होजाना, क्लेद, उपशोषण, अत्यंत दाह, रक्तवर्ण, शूल, पाक, सूजन, गांठसी होना, संकोच, दंशस्थानमें फटनेकीसी पीडा होनी, फोडे, कर्णिका, मण्डल, ज्वर यह सब विषयुक्त शरीरके लक्षण हैं । इन सब लक्षणोंके न होनेसे मनुष्यका शरीर निर्विष जानना ॥ १७५ ॥ १७६ ॥

विषोंमें चिकित्सा ।

तत्रसर्वेयथावस्थंप्रयोज्याःस्युरुपक्रमाः ।
पूर्वोक्तंविधिमन्यञ्चयथावद्ब्रुवतःशृणु ॥ १७७ ॥

विषयुक्त शरीरमें अवस्था आदि विचारकर विषनाशक क्रिया करना चाहिये । उनमें कुछ पहिले कहचुके हैं वाकी अब कथन करतेहैं सो श्रवण करो ॥ १७७ ॥

हृद्विदाहेप्रसेकेवाविरेकवमनंभृशम् ।
यथावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः ॥ १७८ ॥

यदि विषयुक्त मनुष्यके मुखसे लार बहै और हृदयमें दाह होता हो तो उसको अवस्थानुसार तीक्ष्ण वमन या विरेचन करावे। फिर शुद्ध शरीर होनेपर यथाक्रम पेयादिक प्रयोग करना चाहिये ॥ १७८ ॥

स्थानादि भेदसे विष नाशकयोग ।

शिरोगतेविषेनस्तःकुर्य्यान्मूलानिबुद्धिमान् ।
बन्धुजीवस्यभार्ग्याश्चसुरसस्यासितस्यच ॥ १७९ ॥

यदि विष शिरोगत हो तो बन्धुजीवक, भारंगी और काली तुलसीकी जडकी नसवार देवे ॥ १७९ ॥

दक्षकाकमयूराणांमांसासृङ्मस्तकेक्षते ।
मूर्ध्निदेयमथोदष्टस्योर्द्धदष्टस्यपादयोः ॥ १८० ॥

यदि मस्तकमें काटा हो तो दंशस्थानमें मुर्गा, कौआ और मोरका मांस तथा रक्त लगाना चाहिये । यदि पावोंके तलवेमें काटा हो तो भी उपरोक्त द्रव्योंका मस्तकपर ही लेप करना चाहिये ॥ १८० ॥

पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिग्रुकाः ।
पिष्टारोहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमञ्जनात् ॥ १८१ ॥

पीपल, मिरच, जवाखार, बच सेंधानमक और सहँजनेके बीज इन सबको रोंही मछलीके पित्तेमें पीस आंखोंमें अंजन करनेसे नेत्रगत विष नष्ट होताहै ॥१८१॥

कपित्थमांसंसितंक्षौद्रंकण्ठगतेविषे ।
लिह्यादामाशयगतेताभ्यांचूर्णपलंनतात् ॥ १८२॥

कैथका गुदा, खांड और शहद मिलाकर चाटनेसे कण्ठगत विष दूर होताहै । तगरका १ पल चूर्ण खांड और शहद मिला पीनेसे आमाशयगत विष दूर होताहै ॥ १८२ ॥

विषेपक्वाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ।
मंजिष्ठाचसमंपिष्ट्वागोपित्तेननरःपिबेत् ॥ १८३ ॥

पीपल, हल्दी, दारुहल्दी और मजीठ सबको समभाग लेकर गोपित्त अथवा गौके पुराने घीमें मिलाकर पीनेसे पक्वाशयमें प्राप्तहुआ विष शान्त होताहै ॥ १८३ ॥

मांसंरक्तंचगोधायाःशुष्कंचूर्णीकृतंहितम् ।
विषेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम् ॥ १८४ ॥

गोधा (गोह) का मांस और रक्त सुखाकर चूर्ण करलेवे। इस चूर्णको कैथके रसमें मिलाकर पीनेसे रसगत विष दूर होताहै ॥ १८४ ॥

शेलुमूलत्वगग्राणिवादरौदुम्वराणिच । कटभ्याश्चपिवेद्रक्तगतेमांसगतेपिवेत् ॥ १८५ ॥ सक्षौद्रंखदिरारिष्टंकौटजंमूलमम्भसा । सर्वेपुंचबलेद्वेतुमधूकंमधुकंनतम् ॥ १८६ ॥

लसौढेकी जडका छिलका बेरकी कोंपल, गूलर और अपराजिताकी कोंपलें जलमें घोटकर पीनेसे रक्तगत विष शान्त होताहै। शहद और खदिरारिष्ट मिलाकर पीनेसे अथवा कुडाकी जडकी छालको जलमें पीसकर पीनेसे मांसगत विष दूर होताहै। बला, अतिबला, महुआ और मुलैठी तथा तगरको जलमें मिलाकर पीनेसे सर्व धातुगत विष दूर होताहै ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

पिप्पलींनागरंक्षारंनवनीतेनमूर्छितम् ।
कफेभिपगुदीर्णेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८७ ॥

पीपल, सोंठ और जवाखार मक्खनमें मिलाकर प्रतिसारण करनेसे विषमें कफका प्रकोप शान्त होताहै ॥ १८७ ॥

विषोंके शोथनाशक योग।

मांसीकुंकुमपत्रत्वक्रजनीनतचन्दनैः । मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेपितैः ॥ १८८ ॥ पाननस्याञ्जनालेपाःसर्वशोथविषापहाः ॥१८९॥

जटामांसी, केशर, तेजपत्र, दालचीनी, हल्दी, तगर, चंदन, मनसिल, व्याघ्रनखी और तुलसी इन सबको जलमें पीसकर पीना, नस्य लेना, अंजन करना और लेप करना सब प्रकारके विषोंकी सूजनको दूर करताहै ॥ १८८ ॥ १८९ ॥

सर्वविषनाशक योग।

चन्दनंतगरंकुष्ठंहरिद्रेद्वेत्वगेवच। मनःशिलातमालश्चरसःकैशरएवच । शार्दूलस्यनखश्चैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना ॥ १९० ॥ हन्तिसर्वविपाण्येववज्रिवज्रमिवासुरान् ॥ १९१ ॥

लालचंदन, तगर, कूठ, हल्दी, दारूहल्दी और दालचीनी, मनसिल, तमालपत्र, बोल, नागकेशर और व्याघ्रनखी इन सबको तण्डुलजलमें पीसकर पीनेसे सब प्रकारके विष इस प्रकार नष्ट होजातेहैं जैसे इन्द्रके अमोघ वज्रसे दैत्य नष्ट होजाते हैं ॥ १९० ॥ १९१ ॥

सापके विषनाशक योग ।

रसेशिरीषपुष्पस्यसप्ताहंमरिचंसितम् । भावितंसर्पदष्टानांनस्यपानाञ्जनेहितम् । द्विपलंनतकुष्ठाभ्यांघृतक्षौद्रचतुष्पलम् । अपितक्षकदष्टानांपानमेतत्सुखप्रदम् ॥ १९२ ॥

सिरसके फूलोंके रसमें सफेद मिर्चोंको घोटकर सात बार भावना देवे फिर इनका अंजन, नस्य और पानमें प्रयोग करनेसे सांपका विष दूर होताहै । अथवा तगर १ पल, कूठ १ पल, घी और शहद ४ पल इन सबको मिलाकर यदि तक्षकके काटेहुएको पिलादे तो उसका भी विष दूर होजाताहै ॥ १९२ ॥

दर्वीकरसांपके काटेकी चिकित्सा ।

सिन्धुवारस्यमूलश्चश्वेताचगिरिकर्णिका ।
पानंदर्वीकरैर्दष्टेनस्यंमधुसपाकलम् ॥ १९३ ॥

संभालूकी जडका छिलका और सफेद अपराजिताकी जड इन दोनोंको जलके संयोगसे पीसकर पीवे तथा कूठ और शहद मिलाकर अंजन करे तो दर्वीकर सांपका विष दूर होताहै ॥ १९३ ॥

मण्डलीसांपके काटेका यत्न ।

मंजिष्ठामधुयष्टयाह्वांजीवकर्षभकौसिता ।
काश्मर्य्यंवटशुङ्गानिपानंमण्डलिनांविषे ॥ १९४ ॥

मजीठ, मुलैठी, जीवक, ऋषभक, मिसरी, कुम्भेरका छिलका, बडका छिलका इन सबको पानीमें घोट शहद मिला पीनेसे मण्डली सांपका विष दूर होताहै १९४॥

राजिमान्के काटेकी चिकित्सा ।

व्योषंसातिविषंकुष्ठंगृहधूमोहरेणुका ।
तगरंकटुकाक्षौद्रंहन्तिराजीमतांविषम् ॥ १९५ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अतीस, कूठ, गृहधूम, रेणुका, कुटकी और तगरको पीस शहद मिलाकर पीनेसे राजिमान सर्पोंका विष दूर होताहै ॥ १९५ ॥

गृहधूमंहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम् ।
अपिवासुकिनादष्टःपिबेद्दधिघृताप्लुतम् ॥ १९६ ॥

गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी, चौलाईकी जड इन सबको दही और घृतमें मिलाकर पीनेसे वासुकी नागका काटाहुआ मनुष्य भी विषरहित होजाताहै ॥१९६॥

कीटादिकोंके विषकी चिकित्सा ।

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धेकीटविषापहः ।
मुक्तालेपोवरःशोथदाहतोदज्वरापहः ॥ १९७ ॥

कीटादिकोंके काटेहुए मनुष्यको पहिले वमन विरेचन द्वारा शुद्ध करके दंशस्थानमें वड आदि क्षीरी वृक्षोंका लेप करनेसे कीटविष दूर होताहै । तथा मोतियोंको जलमें पीसकर लेप करनेसे कीटविषकी सूजन, दाह, तोद और ज्वर नष्ट होतेहै ॥ १९७ ॥

लूताविषनाशक योग ।

चन्दनंपद्मकोशीरंपाटलिःसिन्धुवारिका । क्षीरशुक्लानतंकुष्ठंशिरीषोदीच्यशारिवाः ॥ १९८ ॥ श्लेलुस्वरसपिष्टोऽयंलूतानांसार्वकार्मिकः । मधूकंमधुकंकुष्ठंशारिवोदीच्यपाटलैः ॥ सनिम्बशारिवाक्षौद्रं पानंलूताविषापहम् ॥ १९९ ॥

लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस, पाढ, सिरसका छिलका संभालूकी जडका छिलका, क्षीरशुक्ला (विदारीकंद), तगर, कूठ, शारिवा, सुगंधवाला इन सबको लसोढेके रसमें पीस लेपन करनेसे तथा उद्वर्तन, सेचन आदिमें प्रयुक्त करनेसे लूता (मकडी) का विष दूर होताहै । अथवा महुएके फूल, मुलैठी, कूठ, शारिवा, नेत्रवाला, पाढ, नीम और कृष्ण शारिवा इन सबको शहद मिला पीनेसे लूताका विष दूर होताहै ॥ १९८ ॥ १९९ ॥

कुसुम्भपुष्पगोदन्तास्वर्णक्षीरीकपोतविट् ।
दन्तीत्रिवृत्सैन्धवैलाकर्णिकापातनंतयोः ॥ २०० ॥

कुसुम्भेके फूल गोदन्ती हरताल (अथवा गोदंत), स्वर्णक्षीरीकी जड (चोख) जंगली कबूतरकी बीट, दंती, निशोथ, सेंधानमक, इलायची, अपराजिता इन सबको बारीक पीसकर लेप करनेसे लूताविष और कीटविष दूर होताहै ॥ २०० ॥

कटभ्यर्जुनशैरीषशेलुक्षीरिद्रुमत्वचम् ।
कषायकल्कचूर्णाःस्युःकीटलूताव्रणापहाः॥ २०१ ॥

कटभी, अर्जुन, सिरस, लसोढा और वड आदि क्षीरी वृक्षोंकी छालका क्वाथ कल्क और चूर्ण कीट और लूताके विषजनित जखमोंको लेपन, सेचन, अवचूर्णन आदि करनेसे शीघ्र दूर करताहै ॥ २०१ ॥

चूहेके विषका यत्न ।

त्वचश्चनागरश्चैवसमांशंश्लक्ष्णपेषितम् ।
पेयमुष्णाम्बुनासर्वमूषिकाणांविषापहम् ॥ २०२ ॥

दालचीनी, सोंठ इन दोनोंको समान भाग लेकर वारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको गरम जलके साथ पीनेसे सब प्रकारके मूषकोंका विष दूर होताहै ॥ २०२ ॥

बिच्छू, कृकलास, मेंडक, मछली आदिकोंके विषनाशक योग ।

कुटजस्यफलंपिष्टंतगरंजालमालिनी । तिक्तेक्ष्वाकुकयोगोऽयंपान-प्रधमनादिभिः ॥ २०३ ॥ वृश्चिकोन्दुरलूतानांसर्पाणाश्चविषाप-हम् । समानममृतेनेदंगराजीर्णश्चनाशयेत् ॥ २०४ ॥

इन्द्रयव, तगर, कडवी तोरी, वरुणवृक्षकी छाल, कडवी तुंबी, इन सबको वारीक पीसकर पीने और नस्य लेनेसे तथा लेप करनेसे विच्छू, लूता, मूषक और सर्पोंका भी विष दूर होताहै यह योग अमृतके समान, गुणकारी है । इससे सर्पकी गरल और अजीर्णका भी विष दूर होताहै ॥ २०३ ॥ २०४ ॥

सर्वेऽगदायथादोषंप्रयोज्याःस्युस्त्रिकण्टके ॥ २०५ ॥

सब प्रकार रोगीकी अवस्था आदि विचारकर ऊपर कही क्रिया अनुसार गिर-गिटके विषकी भी चिकित्सा करना चाहिये ॥ २०५ ॥

कपोतविट्मातुलुङ्गंशिरीषकुसुमाद्रसः । शंखिन्यार्कपयःशुण्ठी-करञ्जमधुवार्श्चिके । शिरीषस्यफलंपिष्टंस्नुहीक्षीरेणदार्दुरे ॥ २०६ ॥

कबूतरकी बीट, विजौरेका रस, सिरसके फूलोंका रस, शंखपुष्पी, आकका दूध, सोंठ और करंजुएके फल इन सबको समान भाग ले शहद मिलाकर लेप करे तो विच्छूका विष दूर हो थोहरके दूधमें सिरसके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे मेंडकका विष दूर होताहै ॥ २०६ ॥

मूलानिश्वेतभण्डीनांव्योपसर्पिश्चमत्स्यजे ।
कीटदष्टक्रियाःसर्वाःसमानाःस्याज्जलौकसाम् ॥ २०७ ॥

श्वेत अपराजिताकी जड, सोंठ, मिर्च, पीपल, इन सबको घृत मिलाकर लेप करनेसे और पीनेसे मछलीका विष दूर होताहै । कीटाके दंशमें जो क्रिया कह आयेहैं वही जोंकके विष दूर करनेके लिये करना चाहिये ॥ २०७ ॥

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते ।
वार्श्चिकस्योच्चिटिङ्गस्यकणभस्येन्दुरोऽगदः ॥ २०८ ॥

विच्छू, उच्चिटिंग, कणभ, मूषकके विषपर प्रायः वातपित्तनाशक क्रिया करना चाहिये ॥ २०८ ॥

कीटादिविषनाशक अगद ।

वचांवंशत्वचंपाठांनतंसुरसमञ्जरीम् । द्वेवलेनाकुलीकुष्ठंशिरीषंरजनीद्वयम् ॥ २०९ ॥ गुहामतिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु । कत्तृणंकटभींक्षारंगृहधूमंमनःशिलाम् ॥ २१० ॥ रोहीतकस्यपित्तेनपिष्ट्वातुपरमोऽगदः । नस्याञ्जनाद्यलेपेषुहितोविश्वम्भरादिषु२११

वच, वांसका छिलका, पाटला, तगर, तुलसीकी मंजरी, बला, नागबला, नाकुलीकंद, कूठ, सिरसके बीज, हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, श्वेत अपराजिता, अजमोद, शिलाजीत, गंधतृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम और मनशिल इन सबको समभाग लेकर मछलीके पित्तमें खरल करे । यह परमोत्तम अगद, नस्य, अंजन और लेपनमें प्रयुक्त करना चाहिये । इसके प्रयोगसे सब प्रकारके कीटादिकोंका विश्वम्भर आदि कीटोंका विष दूर होताहै ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥

कनखजूरेकें विषका यत्न ।

स्वर्जिकाजशकृत्क्षारःसुरसोऽथाक्षिपीडकः ।
मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे ॥ २१२ ॥

सज्जीखार, बकरीकी मेंगनोंका खार, तुलसीके पत्र और शंखपुष्पी इनको सुरामण्डमें पीसकर दंशस्थानपर लेप करनेसे शतपदी (कनखजूरे) का विष नष्ट होजाताहै ॥ २१२ ॥

छिपकलीविषनाशक योग ।

कपित्थमक्षिपीडोऽर्कबीजंत्रिकटुकंतथा ।
करञ्जोद्वेहरिद्रेचगलगोध्याविषंजयेत् ॥ २१३ ॥

कैथ, शंखिनी, आकके बीज, पीपल, मिरच, सोंठ, लताकरंजके फल, हल्दी, दारुहल्दी इन सबको पीसकर लेप करनेसे तथा अंजन करनेसे वा पीनेसे छिपकलीका विष दूर होताहै ॥ २१३ ॥

काकाण्डरससंयुक्तोविषाणांतण्डुलीयकः ।
सर्वेषांबर्हिपित्तेनतद्वद्वायसपीलुकः ॥ २१४ ॥

काली सेमका रस, कूठ और चौलाई इन सबको पीसकर पीना और लेपन करना परम विषनाशक योग तथा काकजंघा और पीलू मोरके पित्तमें मिला प्रयोग करना भी संपूर्ण विषोंको दूर करताहै ॥ २१४ ॥

पञ्चशिरीषक अगद ।

शिरीषफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः ।
श्रेष्ठःपञ्चशिरीषोऽयंविषाणांप्रवरोवधे ॥ २१५ ॥

सिरसकी छाल, मूल, पत्र, फूल और फल, यह समान भाग लेकर घृतमें मिला, लेपन, और पान आदिमें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके विष दूर होतेहैं ॥ २१५ ॥

चतुष्पदोंके विषकी चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतन्तुयत् ।
शूयतेपच्यतेवापिस्रवतेज्वरयत्यपि ॥ २१६ ॥

चार पैरोंवाले और दो पैरोंवाले जीवोंके नख और दांतोंमें विष होताहै । सो नख और दांतोंके विषसे काटेहुए स्थानमें सूजन, पाक, स्राव होताहै तथा ज्वर भी होताहै ॥ २१६ ॥

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्चगोजिह्वाहंसपद्यपि ।
रजन्यौगैरिकंलेपोनखदन्तविषापहः ॥ २१७ ॥

सोमवल्कल (सफेद कत्था या करंजुआ), अश्वकर्ण (शालविशेष), गोभी, हंसपदी, हल्दी, दारुहल्दी और गेरू इन सबका लेप, नख और दांतके विषको दूर करताहै ॥ २१७ ॥

शंकाजनित अज्ञातविषका यत्न ।

दुरन्धकारेदष्टस्यकेनचिद्विषशङ्कया । विषोद्वेगाज्ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छा-दाहोऽपिवाभवेत् ॥ २१८ ॥ ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छङ्काविषंमतम् । चिकित्सितमिदंतस्यकुर्य्यादाश्वासनंबुधः ॥ २१९ ॥ सितांविगन्धिकांद्राक्षांपयस्यांमधुकंमधु । पानंसमन्त्रपूताम्बुप्रोक्षणंसान्त्वहर्षणम् ॥ २२० ॥

कभी अंधकारमें किसी चींटी आदिके काटनेसे अथवा कोई चीज चुभजानेसे मनुष्यके चित्तमें सांपके काटनेकी शंका उत्पन्न होजातीहै उस शंकासे ही ज्वर, वमन, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार तक होजातेहैं । यह शंका ही एक प्रकारसे विषके रूपको धारण करलेतीहै ऐसे समय वैद्यको उचित है कि उस मनुष्यको धैर्य आदि देकर उसके चित्तके भयको दूर करदेवे । तथा खांड, हाउबेर, दाख, क्षीरकाकोली, मुलेठी और शहद मिलाकर पिलावे । मंत्रोंयुक्त जलके छींटे देवे । तथा धीरज आदि देकर उसके चित्तको प्रसन्न करे ॥२१८॥२१९॥२२०॥

विषरोगमें पथ्य ।

शालयःषष्टिकाश्चैवकोरदूषाःप्रियंगवः । भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलवणार्थेचसैन्धवम् ॥ २२१ ॥ तण्डुलीयकजीवन्तीवार्त्ताकुसुनिषण्णकाः । चुच्चुर्मण्डूकपर्णीचशाकश्चकुलकंहितम् ॥ २२२ ॥ धात्रीदाडिममम्लार्थेयूषामुद्गहरेणुभिः । रसाश्चैणाशिखिश्चाविलावतैत्तिरिपार्षताः ॥ २२३ ॥ विषघ्नौषधसंयुक्तारसायूषाश्चसंस्कृताः । अविदाहीनिचान्नानिविषार्त्तानांभिषग्जितम् ॥ २२४ ॥

सब प्रकारके विषविकारोंमें शालिचावल, शाठीचावल, कोद्रव, और कांगुनी भोजनके लिये और नमकीन बनानेके लिये सेंधानमक तथा शाकके लिये चौलाई, जीवंती, बैंगन, चौपतिया शाक अम्ललोनिया शाक, मण्डूकपर्णी, पटोल और नाडीशाक देने चाहिये । यूषके लिये मटर और मूंग हितकारी हैं, खटाईके लिये आँवले और अनार श्रेष्ठ हैं । तथा हिरन लवा, तीतर तथा पार्षत हिरनका मांस विषनाशक औषधियोंसे सिद्धकर मांसरस और यूषका प्रयोग करना चाहिये । और अविदाही अन्नपान देना विषरोगियोंके लिये हितकारक है ॥ २२१–२२४ ॥

विषरोगमें कुपथ्य ।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमैथुनम् ।
वर्जयेद्विषमुक्तोऽपिदिवास्वप्नंविशेषतः ॥ २२५ ॥

विरुद्ध भोजन-भोजन कियेपर फिर भोजन करना, क्रोध, भूखके वेगमें भोजन न करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिनमें सोना इन सबको विषरोगी विषसे मुक्त होनेपर भी त्यागदेवे ॥ २२५ ॥

चौपाये जीवोंके विषके लक्षण ।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोथः स्रस्तौष्ठकर्णता । ज्वरस्तब्धाक्षिगात्रत्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दनम् ॥ २२६ ॥ रोमापगमनंग्लानिररतिर्वेपथुर्ग्रहः । चतुष्पदांभवत्येतद्दष्टानामिहलक्षणम् ॥ २२७ ॥

चौपाये जीवोंके काटनेसे शिरका बार बार उठाना और फेंकना अथवा शिरका अवरोध होजाना, सूजन, होठोंका और कानोंका ढीलासा पडजाना या सूजनयुक्त होना, ज्वर, नेत्रोंका और अंगोंका टेढासा होजाना, अकडजाना, ठोडीका कांपना, अंगडाई, रोमोंका गिरना या रोमांच होना, ग्लानि, चित्तका स्थिर न होना शरीरका काँपना और जकडसा जाना या कण्ठका रुकना यह लक्षण होतेहैं ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

उनकी चिकित्सा ।

देवदारुहरिद्रेद्वेसरलंचन्दनागुरु । रास्तागोरोचनाजातीगुग्गुलिक्षुरसोनतम् ॥ २२८ ॥ चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम् । चतुष्पदानांदष्टानामगदः सार्वकार्मिकः ॥ २२९ ॥

देवदारू, हल्दी, दारूहल्दी, तुलसी, लालचंदन, अगर, रासना, गोरोचन, चमेलीके फूल, गूगुल, ईखका रस, तगर, सेंधानमक, शारिवा, इनका चूर्ण गौके पुराने घृत (या गोपित्त) तथा शहदमें मिलाकर चाटनेसे तथा लेप आदि करनेसे चतुष्पद जानवरोंके काटेहुएका विष दूर होताहै ॥ २२८ ॥ २२९ ॥

गरविषके हेतु, लक्षण ।

सौभाग्यार्थंस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ २३० ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रधमनाध्मानहस्तपच्छोथलक्षणाः ॥ ॥ २३१ ॥ जठरंग्रहणीदोषयक्ष्माणंश्वयथुंक्षयम् । एवंविधस्यचान्यस्यव्याधेर्लिङ्गानिदर्शयेत् ॥ २३२ ॥

अपने वशमें करनेके लिये स्त्री आदि अपने स्वामीको पसीना वा मासिक रज अथवा और अपने अंगोंसे उत्पन्नहुई मैलको खिलादेतीहै । अथवा किसी शत्रु आदिका भोजनमें मिलाकर दियाहुआ कालान्तरमें हानि करनेवाला विष गरविष कहाजाताहै । इस गरविषसे ग्रसित मनुष्यके शरीरमें पाण्डु, कृशता, मंदाग्नि, ज्वर, हृदय आदि मर्मस्थानोंका फडकना हाथपावोंमें सूजन, ग्रहणीरोग, उदररोग, यक्ष्मा और शोथरोग, क्षय तथा इसी प्रकारके अनेक लक्षणोंवाली व्याधियें उत्पन्न होतीहैं ॥ २३० ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुव्यालान्सनकुलान्कपीन् । प्रायः पश्यतिनद्यादीञ्शुष्कांश्चसवनस्पतीन् ॥ २३३ ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्वप्नेगौरश्चकालकम् । विकर्णनासिकंवापिपश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ॥ २३४ ॥

गररोगीको स्वप्नमें बिलाव, गीदड, सांप, नकुल, बन्दर, सूखीहुई नदियें, सूखे वृक्ष, वनस्पति आदि दिखाई देतेहैं तथा वह रोगी यदि गौरवर्णका हो तो अपनेको स्वप्नमें काला देखे और काला हो तो स्वप्नमें गौर देखे तथा कानोंसे ही और नासिकारहित अपना शरीर उसको स्वप्नमें दिखाईदेवे तथा अन्य इन्द्रियें भी हत हुई दिखाई देवें अथवा इस गरविषके विकारसे ही उसकी इन्द्रियें हीन पडजांय ॥ २३३ ॥ २३४ ॥

गरविषकी चिकित्सा ।

तमवेक्ष्यभिषक्प्राज्ञःपृच्छेत्किंकैः कदासह । जग्धमित्यवगम्याशु प्रदद्याद्वमनंभिषक् ॥ २३५ ॥ सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृदि-शोधनम् । शुद्धेहृदिततः शाणंहेमचूर्णस्यदापयेत् ॥ २३६ ॥ हेमसर्वविषाण्याशुगरांश्चविनियच्छति । हेमपस्यसजत्यङ्गेनहि पद्मेऽम्बुवद्विषम् ॥ २३७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य इस प्रकार गरदोषसे व्याकुल हुए मनुष्यको देखकर उस रोगीसे पूछे कि तुमने कब, किसके साथ, कैसे, क्या खाया है इत्यादि विषय भली भांति अनेक रीतिसे पूछकर रोगका यथोचित निश्चय करके जब जानलेवे कि इसने गरविष खायाहै तो पहिले उसको तीक्ष्ण वमन करावे अथवा शहद और सूक्ष्म ताम्रचूर्ण (ताम्र भस्म) खिलाकर वमन करावे वमन द्वारा हृदय शुद्ध होजानेपर उसको तीन माशे सुवर्णका चूर्ण अथवा स्वर्णभस्म शहद और घृतमें मिलाकर चटावे सुवर्णके सेवन करनेसे मनुष्यके शरीरमें इस प्रकार विष नहीं ठहर सकता जिस प्रकार कमलके पत्तेपर जल नहीं ठहरसकता, सुवर्ण सब प्रकारके गर विषोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै॥२३५-२३७॥

नागदंतीआदिघृत ।

नागदन्तीत्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीस्नुक्पयःफलैः । साधितंमाहिषंसर्पिःस-गोमूत्राढकंहितम् । सर्पकीटविषार्त्तानांगरार्त्तानाञ्चशान्तये ॥२३८॥

नागदन्ती (हस्तिशुंडी), निशोथ,दंती,द्रवंती,थोहरका दूध और मैनफल इन सबको मिलाकर १ पाव लेवे भैंसका घृत १ सेर और गोमूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध किया घृत सांप, कीडे आदिकोंके विषसे पीडित मनुष्योंको तथा गरविषवाले मनुष्योंको विषरहित कर देताहै ॥ २३८ ॥

अमृत घृत ।

शिरीषत्वक्त्रिकटुकत्रिफलाचन्दनोत्पले । द्वेबलेशारिवास्फोतासु-रभीनिम्बपाटलाः २३९ ॥ बन्धुजीवाढकीमूर्वावासासुरसवत्स-कान् । पाठाङ्कोठाश्वगन्धार्कमूलयष्ठ्याह्वपद्मकान् ॥ २४० ॥ विशालांबृहतींलाक्षांकोविदारंशतावरीम् । कटभीदन्त्यपामा-र्गान्पृश्निपर्णीरसाञ्जनम् ॥ २४१ ॥ श्वेतभण्डाश्वखुरकौकुष्ठदारुप्रि-यङ्गुकान् । विदारीमधुकंसारंकरञ्जस्यफलंवचाम् ॥ २४२ ॥

रजन्यौलोध्रमक्षांशंपिष्ट्वासाध्यंघृताढकम्। तुल्याम्बुच्छागगोमूत्राढकेतत्तुविषापहम् ॥ २४३ ॥ अपस्मारक्षयोन्मादभूतग्रहगरोदरम्। पाण्डुरोगान्क्रिमीन्गुल्मान्प्लीहोरुस्तम्भकामलाः ॥ २४४ ॥ हनुस्कन्धग्रहादींश्चपानाभ्यञ्जननावनैः । हन्यात्सञ्जीवयेच्चापिविषोद्वन्धमृतान्नरान् । नाम्नेदममृतंसर्वविषाणांस्याद्घृतोत्तमम्॥२४५॥

सिरसकी छाल,सोठ,मिर्च,पीपल, हरड,वहेडा,आँवला,लालचंदन,नील कमल, वला, नागबला, शारिवा, श्वेत अपराजिता,मुरा, नीम,पाटला, वन्धुजीव (दुपहरिया),अरहर, मूर्वा,वांसा,तुलसी, इन्द्रयव, पाढ,अंकोट,असगंध,आककी जड, मुलैठी,पद्मकाष्ठ, इन्द्रायणकी जड, वडी कटेली , लाख, कोविदार (लाल कचनार), शतावर,कटभी, दंती, अपामार्ग, पृष्ठपर्णी, रसौत, सफेद कोयल, नखनामक गंधद्रव्य,कूट, देवदारु, प्रियंगु, विदारीकंद, महुआ, विजैसार, लताकरंजके फल, वच, हल्दी, दारुहल्दी, लोध इन सवको एक एक तोला लेवे इनका कल्कवनाकर घृत४सेर, जल ४ सेर बकरीका मूत्र ४ सेर, गोमूत्र४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे घृतमात्र शेप रहनेपर उतारकर छान लेवे यह घृत पीने नस्यलेने अंजन और अभ्यंग आदिमें प्रयुक्त करना चाहिये । इसके सेवनसे सब प्रकारके विपविकार, क्षय, उन्माद, भूतबाधा, ग्रहदोष, उदररोग, पांडुरोग, कृमिरोग, गुल्म, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, कामला, हनुस्तम्भ और ग्रहादिविकार यह सब नष्ट होते हैं,विपके वेगसे मृतप्राय मनुष्यको भी यह आरोग्य करनेवाला है यह संपूर्ण विपोंको नष्ट करनेवाला अमृतनामक घृत है ॥ २३९-२४५ ॥

मनुष्यकी रक्षार्थ आचार ।

तत्र श्लोकाः ।

छत्रीझर्झरपाणिश्चचरेद्रात्रौतथा दिवा ।
तच्छायाशब्दवित्रस्ताःप्रणश्यन्त्याशुपन्नगाः ॥ २४६ ॥

यहां पर यह श्लोक हैं कि मनुष्यको अपनी शारीरिक रक्षाके लिये रात्रि तथा दिन छत्री जूता आदि धारण किये रहना चाहिये । तथा झन झनाहट शब्दयुक्त छडी आदि हाथमें रखकर उससे खडका करतेहुए चलना चाहिये उस छाया और शब्द आदिसे सांप आदि जानवर डरकर इधर उधर भागजाते हैं ॥ २४६ ॥

दष्टमात्रंदशेदाशुतंसर्पंलोष्टमेववा ।
उपर्य्यरिष्टांबध्नीयाद्दंशंछिन्द्याद्दहेत्तथा ॥ २४७ ॥

यदि मनुष्यको सांप काट लेवे तो उसी समय सांपको पकडकर अपने दांतोंसे

काट लेना चाहिये। यदि सर्प काटकर चलागयाहो तो वह डसाहुआ मनुष्य मट्टीके डले आदि किसी पदार्थको झटपट काट लेवे और कटेहुए स्थानके ऊपर और नीचे कसकर बंध लगाके दंशस्थानको चक्कू, छूरी आदिसे छेदन कर दंशको निकालदेवे तथा अग्नि आदिसे जलादेवे ॥ २४७ ॥

वज्रंमरकतंसारंपिचुकीविषमूषिका । कर्कोटकमणिःसर्पाद्वैदूर्य्यं-गजमौक्तिकम् ॥२४८॥ धार्य्यंगरमणिर्य्याश्चवरौषध्योविषापहाः । खगाश्चशारिकाक्रौञ्चशिखिहंसशुकादयः ॥ २४९ ॥

हीरा, मरकत, सार, पिचुकी, विषमुष्टिका, कर्कोटक, सर्पमणि, वैडूर्य, गजमुक्ता आदि तथा इसी प्रकारके और भी उत्तम २ विषनाशक द्रव्योंको तथा विषनाशक अगदोंको धारण किये रहना चाहिये। तथा मैना, क्रौंच पक्षी, मोर, हंस, तोता आदि पक्षी अपने घरमें रखने चाहिये ॥ २४८ ॥ २४९ ॥

अध्यायका उपसंहार।

इतीदमुक्तंद्विविधस्यविस्तरैर्बहुप्रकारंविषरोगभेषजम् । अधीत्यविज्ञायतथाप्रयोजयेद्व्रजेद्विषाणामविषह्यतांबुधः॥ २५० ॥

इतिश्रीचर०चिकि०विषचिकित्सितंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५॥

इस प्रकार स्थावर और जंगम विषोंका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेक प्रकारकी विषरोगनाशक औषधियें वैद्यको पढ़कर भले प्रकार जानकर प्रयुक्त करनी चाहिये। जो वैद्य इस प्रकार विधिवत् जानकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करताहै वह विषोंको जीतनेमें समर्थ होताहै ॥ २५० ॥

इति श्रीच० चिकित्सास्थाने भा० टी० विषचिकित्सित नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातस्त्रिमर्मीयचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम त्रिमर्मीय चिकित्सित नामके अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सप्तोत्तरंमर्मशतंयदुक्तंशरीरसंख्यामधिकृत्यतेभ्यः। मर्माणिबस्तिं हृदयंशिरश्चप्रधानभूतानिवदन्तितज्ज्ञाः ॥ १ ॥ प्राणाश्रयान्ता-

न्परिपीडयन्तिवातादयोसूनपिपीडयन्ति । तत्संश्रितानामनुपालनार्थंमहागदानांश्रृणुसौम्यरक्षाम् ॥ २ ॥

शारीरस्थानमें १०७एक सौ सात मर्मोका कथन कर आएहैं उन सब मर्मोंमें वस्ति हृदय, शिर यह तीन मर्मस्थान आयुर्वेदके जाननेवालोंने प्रधान माने हैं । वातादि दोष इन तीन प्राणाशयोंको पीडितकर प्राणोंतकको नष्ट कर देतेहैं । सो हे सौम्य ! उनकी रक्षाके लिये उन मर्मोंमें होनेवाले महारोगोंके निदान और चिकित्साको सुनो१–२

उदावर्तकी संप्राप्ति, लक्षण और उपद्रव ।

कषायतिक्तोषणरूक्षभोज्यैःसन्धारणाभोजनमैथुनैश्च । पक्वाशयेकुप्यतिचेदपानःस्रोतांस्यधोगानिबलीसरुद्ध्वा । करोतिविण्मारुतमूत्रसङ्गंक्रमादुदावर्त्तमतःसुघोरम् ॥ ३ ॥

कषाय, तिक्त, चरपरे और रूक्ष पदार्थोंके अधिक सेवनसे, मलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे, उपवास करनेसे, मैथुन करनेसे, जब अपानवायु पक्काशयमें कुपित होतीहै तो वह बलवान् वायु अधोभागके स्रोतोंको रोकदेतीहै फिर क्रमसे मल, अधोवायु और मूत्रको रोककर घोर उदावर्तको उत्पन्न करदेतीहै ॥ ३ ॥

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभीक्ष्णंसपृष्ठपार्श्वेष्वतिदारुणास्यात् ॥ ४ ॥ आध्मानहृल्लासविकर्त्तिकाश्चतोदोऽविपाकश्चसवस्तिशोथः । वर्चोऽप्रवृत्तिर्जठरेचगण्डान्यूर्द्ध्वश्चवायुर्विहतोगुदेस्यात् ॥ ५ ॥ कृच्छ्रेणशुक्रस्यचिरात्प्रवृत्तिः स्याद्गात्रतनुःस्यात्खररूक्षशीता । ततश्चरोगाज्वरमूत्रकृच्छ्रप्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः ॥ ६ ॥ वम्यान्ध्यंवाधिर्य्यशिरोऽभितापवातोदराष्ठीलमनोविकाराः । तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकासश्वासप्रतिश्यार्दितपार्श्वरोगाः ॥ ७ ॥ अन्येचरोगा बहवोऽनिलोत्थाभवन्त्युदावर्त्तकृताःसुघोराः । चिकित्सितञ्चास्ययथावदूर्द्ध्वंप्रवक्ष्यतेतच्छृणुचाग्निवेश ॥ ८ ॥

उससे वस्ति हृदय,कुक्षि और उदरमें तथा पीठ और दोनों पार्श्वोंमें निरन्तर दारुण पीडाका होना, अफारा, हृल्लास, कतरनेकीसी पीडा, तोद, अन्नका परिपाक न होना, वस्तिमें सूजन, विष्ठा न आना, पेटमें गाठेंसी चुभना, अधोवायुका बंद होकर ऊपरकी

१ अधोगमनशील वायुकी गति चक्करखाकर ऊपरकी ओरको गमन करे उसको उदावर्त कहते हैं मल मूत्रादिको लानेवाली वायुका ऊर्द्ध्वगमन होनेसे यह मलादिभी अपने मार्गसे नहीं निकलसकते ।

ओर चलना, यदि मलत्याग करनेके लिये बडी देरतक जोर लगायाजाय तो कष्टके साथ वीर्य निकलने लगे परन्तु विष्ठा न आवे, यदि विष्ठा उतरे भी तो बहुत थोडी कठोर रूखी और शीतल हो इस प्रकार उदावर्त्तके होनेसे ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, हृद्रोग, ग्रहणीविकार, वमन, आंखोंके आगे अंधकार होना, बधिरता, शिरमें पीडा, वातोदर, वातष्ठीला, मनके विकार, प्यास, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, अर्दितरोग और पार्श्वरोग तथा इनके सिवाय अन्य बहुतसे वातजनित घोर रोग उदावर्त्तसे उत्पन्न होतेहैं। (उदावर्त प्रायः वेगोंको रोकनेसे होनेवाले रोगका नाम है अर्थात् वेगोंके रोकनेसे वायुका प्रतिघात होकर वह अपने मार्गसे रुकजाय तथा उलटा होकर ऊपरको गमन करनेलगे उसको उदावर्त्त कहतेहैं। वह उदावर्त्त मल, मूत्र, वीर्य, वायु, छींक आदि जितने वेग हैं उन सबके रोकनेसे उन्हीं २ प्रकारके होते हैं।) अब इसके उपरांत इस उदावर्त्त रोगकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं हे अग्निवेश! इसका यथावत् श्रवण करो॥ ४॥ ५॥ ६॥ ७॥ ८॥

उदावर्तकी चिकित्सा।

तैस्तैलशीतज्वरनाशनोक्तैस्स्वेदैर्यथोक्तैः प्रविलीनदोषम्।
उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहबस्तिस्नेहैर्विरेकैरनुलोमनान्नैः॥ ९॥

उदावर्त्त रोगमें पहिले शीतज्वरनाशक तेलोंकी मालिश कर यथोचित रीतिसे स्वेदन करना चाहिये। जब देखे कि दोष लीन होनेलगे तो बत्ती, निरूहणवस्ति, स्नेह और अनुलोमन अन्नोंद्वारा मलका अनुलोमन कर विरेचन करावे॥ ९॥

उदावर्त्तनाशक वर्तिप्रयोग।

श्यामात्रिवृन्मागधिकाग्निचूर्णंगोमूत्रपिष्टंदशभागमाषम्।
सनीलिकांद्विलवणांगुडेनवर्त्तिकराङ्गुष्ठनिभांविदध्यात्॥ १०॥

काली निशोथ, पीपल, चित्रक और नीलिका, प्रत्येक दश दश माशे लेवे। सेंधानमक २० माशे इन सबको गोमूत्रके संयोगसे पीसकर गुड मिला अगूंठेके बराबर और लम्बी बत्ती बनावे। इस बत्तीको विरेचन घृतमें भिगोकर अथवा अण्डीके तेलमें भिगोकर गुदामें प्रवेश करना चाहिये॥ १०॥

पिण्याकसौवर्चलहिंगुभिर्वासर्षपत्र्यूषणयावशूकैः।
क्रिमिघ्नकम्पिल्लकशंखिनीभिःसुधार्कजक्षीरगुडैर्युताभिः॥ ११॥

तिलोंका कल्क, संचरनमक, हींग, सफेद सरसों, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवाखार इनकी बत्ती उपरोक्त विधिसे बनाकर प्रयुक्त करे। अथवा बायविडंग, कमीला,

शंखिनी, थोहरका दूध, आकका दूध और गुड मिलाकर वत्ती बनावे फिर उसे एरण्डके तेलमें भिगोकर गुदामें डाले, फिर थोडी देरके वाद निकालले ॥ ११ ॥

स्यात्पिप्पलीसर्पपराठवेश्मधूमैःसगोमूत्रगुडैश्चवर्त्तिः ॥ १२ ॥

पीपल, सफेद सरसों, गृहधूम, गोमूत्र और गुडसे उपरोक्त रीतिपर वत्ती बना प्रयोग करनेसे उदावर्त्त दूर होताहै ॥ १२ ॥

उदावर्त्तनाशकचूर्णप्रधमनयोग ।

श्यामाफलेक्ष्वाकुसपिप्पलीकंनाडयाथत्रातत्प्रधमेत्तुचूर्णम् । रक्षोघ्नतुम्बीकरहाटकृष्णाचूर्णंसजीमूतकसैन्धवंवा । स्निग्धेगुदेतान्यनुलोमयन्तिनरस्यवर्च्चोऽनिलमूत्रसङ्गम् ॥ १३ ॥

अथवा काली निशोथ, मैनफल, कडुवे तुंबेका गुद्दा और पीपल इन सवका चूर्ण वना नलमें रखकर वह नल गुदामें डालकर वाहरसे धोंकनी द्वारा वा जोरसे फूंक मारकर नलके भीतरका चूर्ण गुदामें पहुंचाकर नलको निकाल लेवे । अथवा सरसों, कडवी तुंबी, मैनफल, पीपल, कडवी तोरी और सेंधानमक इन सवका वारीक चूर्ण कर इसी विधिसे गुदामें प्रधमन करे । परन्तु जव वत्ती अथवा चूर्णका प्रवेश करना हो तो पहिले गुदाको घृत अथवा एरण्डके तैलसे चुपडलेना चाहिये । पीछे वत्ती अथवा चूर्णका प्रयोग करना चाहिये । ऐसा करनेसे मल,वायु और मूत्रका बंध खुलजाताहै ॥ १३ ॥

तेषांविघातेतुभिषग्विदध्यात्स्वभ्यक्तसुस्विन्नतनोर्निरूहम् । ऊर्द्धानुलोमौषधमूत्रतैलक्षाराम्लवातघ्नयुतंसुतीक्ष्णम् ॥ १४ ॥

यदि वत्ती और चूर्णसे रोगीका बंध खुलकर मलादिकोंकी यथोचित प्रवृत्ति न हो तो वैद्य रोगीको अच्छी तरह स्निग्ध, अभ्यक्त और स्वेदन करके निरूहण वस्तिका प्रयोग करे । यह निरूहण वस्ति तीक्ष्ण, ऊर्द्धानुलोमनद्रव्य, गोमूत्र, तेल, जवाखार, खटाई और वातनाशक द्रव्योंसे प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १४ ॥

वातेऽधिकेऽम्लंलवणंसतैलंक्षीरेणपित्तेतुकफेसमूत्रम् । समूत्रवर्चोनिलसंगमाशुगुदंशिराश्चप्रगुणीकरोति ॥ १५ ॥

यदि उदावर्त्त वायुकी अधिकता प्रतीत हो तो अम्ल, लवण और तेलकी अधिकतायुक्त निरूहणवस्ति करना चाहिये । यदि पित्तकी प्रधानता हो तो दूध पिलाकर निरूहण करना चाहिये । और कफकी अधिकतामें गोमूत्र मिलाकर निरूहणकर्म करे । इस प्रकार निरूहण करनेसे गुदाकी विगुणना दूर होकर मल, मूत्र और

वायुका बंध शीघ्र दूर हो होजाताहै। तथा शिरा और मलद्वारा शुद्ध और विगुणता रहित होजाताहै ॥ १५ ॥

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकंग्राम्यौहकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्यैश्चसृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात्प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥ १६ ॥

निशोथ और थोहरके पत्ते और तिल आदिका शाक तथा ग्राम्य और जलज जीवोंका मांसरस और यवोंका अन्न तथा अन्य मलमूत्रके निकालनेवाले और वायुको स्वच्छ करनेवाले अन्न पान, प्रसन्ना और गुडकी शीधु पीना हितकारी होताहै ॥ १६ ॥

भूयोऽनुबन्धेतुभवेद्विरेच्योमूत्रप्रसन्नादधिमण्डयुक्तैः ।
स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तंरौक्ष्याद्विसंगोनिलवर्चसोश्चेत् ॥ १७ ॥

यदि इस प्रकार उपाय करनेसे एक वार आराम होकर दूसरीवार फिर बंध पडजावे तो गोमूत्र, प्रसन्ना और दधिमण्डके योगसे विरेचनद्रव्य पिलाकर विरेचन करावे। फिर स्वास्थ्य होनेपर यदि रूक्षतासे वायु और मलका बंध प्रतीत हो तो अनुवासन करावे ॥ १७ ॥

उदावर्तनाशक चूर्ण।

द्विरुत्तरंहिंगुवचाग्निकुष्ठंसुवर्च्चिकाचैवविडंगचूर्णम् ।
सुखाम्बुनानाहविसूचिकार्त्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्धसमीरणघ्नम् ॥ १८ ॥

हींग, वच, चित्रक, कूठ, जवाखार और वायविडंग यह क्रमसे एक दूसरेसे दुगुने लेना चाहिये। जैसे हींग १ तोला, वच २ तोला, चित्रक ४ तोला, कूठ ८ तोला, जवाखार १६ तोला और वायविडंग ३२ तोला इन सबको बारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ लेवे तो विसूचिकाकी पीडा, हृद्रोग, गुल्म और ऊर्द्धवातकी शान्ति होतीहै ॥ १८ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान्सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान् ।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वाजयेदाशुरसौदनाशी ॥ १९ ॥

वच, हरड, चित्रक, जवाखार, पीपल, अतीश और कूठ इन सबको बारीक पीसकर गरम जलके साथ लेनेसे अफारा, विमूढवात (उदावर्त्त), यह दूर होते हैं। इस औषधके सेवन करतेहुए मांसरस और यवोंका ओदन (अथवा शालीचावलोंका भात) सेवन करना चाहिये ॥ १९ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।
यथोत्तरंभागविवृद्धमेतत्प्लीहोदराजीर्णविसूचिकासु ॥ २० ॥

हींग १ भाग, वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हरड ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग । इन सबका चूर्ण बना गरम जल अथवा प्रसन्नाके साथ सेवन करनेसे प्लीहरोग, उदररोग, अजीर्ण और विसूचिका दूर होतीहै ॥ २० ॥

उदावर्तनाशक घृत ।

स्थिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाःश्यामाकपूतीककरञ्जयोश्च ।
सिद्धःकषायेद्विपलांशिकानांप्रस्थोघृतास्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥ २१ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूल,पुनर्नवा, श्यामाक (सौंक) और पूतिकरंज इन सबको दो-दो पल लेकर क्वाथ बनावे । इनके क्वाथसे १ प्रस्थ घृत सिद्ध करे। इस घृतके सेवन करनेसे उदावर्त्त रोग दूर होताहै ॥ २१ ॥

उदावर्तनाशक क्षार ।

फलञ्चमूलञ्चविरेचनोक्तंहिंग्वर्कमूलंदशमूलमग्र्यम् । स्नुक्चित्रकौचैवपुनर्नवाचतुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥ २२ ॥ स्नेहैः समूत्रैः सहजर्जराणिशरावसन्धौविपचेत्सुलिप्ते । पक्वंसुपिष्टंलवणंतदन्नैः पानैस्तथानाहरुजाघ्नमद्यात् ॥ २३ ॥

विरेचनवर्गमें कहेहुए सब प्रकारके फल और मूल, हींग, आक, दशमूल, चिता, थोहर, पुनर्नवा इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे । सबके समान पांचों नमकोंका चूर्ण मिलावे । फिर सब प्रकारके स्नेह और सब प्रकारके मूत्र मिलाकर उपरोक्त चूर्णको संपुटमें रख संपुटकी संधियोंको भलेप्रकार बन्द करके कपडमट्टीकर गजपुटमें फूंक देवे । शीतल होनेपर निकालकर संपुटमेंके द्रव्यको पीस लेवे । इस लवणको (क्षार) अन्नपानके साथ सेवन करनेसे अफारा और पेटकी पीडा दूर होतीहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

वमनद्वारा जीतनेयोग्य रोग ।

हृत्स्तम्भमूर्द्धामयगौरवार्त्तंचोद्गारसंगेनसपीनसेन ।
आनाहमामप्रभवंजयेत्तुप्रच्छर्दनैर्लङ्घनपाचनैश्च ॥ २४ ॥

हृदयका स्तम्भन होना, मस्तकका भारीपन और मस्तकपीडा, डकार आते २ रुकजाना, पीनस तथा अफारा और आमसे उत्पन्नहुए रोगोंको वमन तथा लंघनों द्वारा जीतना चाहिये ॥ २४ ॥

एरंडतैलद्वारा विरेच्य रोग ।

गुल्मोदरब्रध्नार्शःप्लीहोदावर्त्तयोनिशुक्रगदे । मेदःकफसंसृष्टेमारु-

तरक्तेऽवगाढेच ॥ २५ ॥ गृध्रसिपक्षवधादिपुविरेचनार्हेपुवातरोगेषु । वातेविवद्धमार्गेमेदःकफपित्तरक्तेन ॥ २६ ॥ पयसामांसरसैर्वात्रिफलारसयूपमूत्रमदिराभिः । दोपानुबन्धयोगात्प्रशस्तमैरण्डजंतैलम् ॥ २७ ॥ तद्वाततनुस्वभावात्संयोगवशाद्विरेचनाच्चजयेत् । मेदोऽसृक्पित्तकफान्मिश्रानिलरोगजित्स्यात् ॥ २८ ॥

गुल्म, उदरोग, ब्रघ्न (वध), ववासीर, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्रविकार, मेद अथवा कफयुक्त वातरक्त, गंभीर वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात आदि विरेचन योग्य वातरोगोंमें और मेद, कफ तथा पित्त रक्तद्वारा विवद्धवातमें दोषोंका अनुबंध विचारकर दूध अथवा मांसरस या त्रिफलेके क्वाथ अथवा अन्य रस और यूप वा गोमूत्रके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पिलाना अर्थात् उपरोक्त दूध आदि अनुपानोंमें एरंड तेल पिलाकर विरेचन कराना हितकारक होताहै। क्योंकि एरण्ड तैल स्वभावसेही वातनाशक है वह संयोगवश विरेचन द्वारा मेद, रक्तपित्त और कफसे मिश्रित वातरोगोंको जीतलेता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

**वलकोष्ठव्याधिवशादापञ्चपलाभवेन्मात्रा ।
मृदुकोष्ठवलानांसहभोज्यंतत्प्रयोज्यंस्यात् ॥ २९ ॥**

शरीरवल, कोष्ठवल, व्याधि आदि विचारकर एरण्डतैलकी मात्रा ५ पलतक होसकतीहै। मृदुकोष्ठ और दुर्बल मनुष्योंको एरण्डतैल भोजनमें मिलाकर और अल्प मात्रासे देना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

मूत्रकृच्छ्रके हेतु ।

व्यायामतीक्ष्णौपधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् । आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ ॥ ३० ॥

अत्यंत व्यायाम करनेसे, तीक्ष्ण औषध, रूक्ष मद्य, अति स्त्रीसंग और नित्य अत्यंत वेगवाले घोडे आदिकी सवारी करना तथा आनूपजीवोंका और मछलीका मांस अधिक सेवन करना। फिर भोजन करना और अजीर्णसे मनुष्योंके शरीरमें आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होतेहैं ॥ ३० ॥

---

१ वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मलाभिघातज, अस्मरीजनित, शुक्राभिघातज और शर्कराजनित, यह ८ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होतेहैं ।

मूत्रकृच्छ्रकी संप्राप्ति ।

पृथङ्मलाःस्वैःकुपितानिदानैःसर्वेऽथवाकोपमुपेत्यवस्तौ ।
मूत्रस्यमार्गंपरिपीडयन्तियदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥ ३१ ॥

अपने २ कारणोंसे कुपितहुए वातादि दोष पृथक् पृथक् अथवा सब मिलकर वस्तिमें प्राप्त हो जब मूत्रमार्गको पीडन करतेहैं तब मनुष्य अत्यन्त कष्टके साथ मूततांहै ॥ ३१ ॥

तीव्राहिरुग्वङ्क्षणवस्तिमेढ्रेस्वल्पंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ।
पीतंसरक्तंसरुजंसदाहंकृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥ ३२ ॥

वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें-वंक्षण, वस्ति और लिंगमें तीव्र पीडा होकर थोडा २ मूत्र वार वार आताहै । पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें-पीला, लाल मूत्र अत्यंत पीडा और दाहके साथ कष्टसे वारवार थोडा २ आताहै ॥ ३२ ॥

वस्तेःसलिङ्गस्यगुरुत्वशोथौमूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ।
सर्वाणिरूपाणितुसन्निपाताद्भवन्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥ ३३ ॥

वस्ति और लिंगमें भारीपन तथा सूजन हो, मूत्र गाढा और सफेद, चिकना कठिनतासे उतरे यह कफजनित मूत्रकृच्छ्रके लक्षण हैं । तीनों दोषोंके संपूर्ण लक्षण जिस मूत्रकृच्छ्रमें हो उसको सन्निपातका मूत्रकृच्छ्र जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

अश्मरीका निदान ।

विशोपयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनःकफंवा ।
यदातदाश्मर्य्युपजायतेतुक्रमेणपित्तेष्विवरोचनागोः ॥ ३४ ॥

किसी कारणसे वस्तिमें प्राप्तहुए वीर्य और मूत्रको वायु सुखादे तो उस वीर्य और मूत्रसे पथरी उत्पन्न होजातीहै । फिर वह क्रमसे वढने लगतीहै अथवा कफ और पित्तको वस्तिस्थानमें वायु सुखादेवे तो भी पथरी उत्पन्न होजातीहै । यह पथरी गोरोचनके समान होतीहै ॥ ३४ ॥

अश्मरीजनित मूत्रकृच्छ्र ।

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्याश्लक्ष्णात्रिपुट्यप्यथवापिमृद्वी । मूत्रस्य चेन्मार्गमुपैतिरुद्ध्वामूत्रंरुजंतस्यकरोतिवस्तौ ॥ ३५ ॥ ससीवनीमेहनवस्तिशूलंविशीर्णधारञ्चकरोतिमूत्रम् । मृद्नातिमेढ्रन्तुवेदनार्त्तोमुहुः शकृन्मुञ्चतिमेहतेच ॥ ३६ ॥ क्षोभात्क्षतेमू-

त्रयतीहसासृवतस्याःसुखंमेहतिचव्यपायात् । एषाऽश्मरीमारुतभिन्नमूर्तिः स्याच्छर्करामूत्रपथात्क्षरन्ती ॥ ३७ ॥

पथरी (अश्मरी) कदंबके फूलके समान अथवा पत्थरके समान या चिकनी टी हुई अथवा तिकोनी या मृदु तथा अनेक प्रकारकी होतीहै । जब पथरी मूत्र-र्गके द्वारपर आजातीहै तो मूत्रको रोककर वस्तिमें अत्यंत पीडा करतीहै तथा वन, लिंग और वस्तिमें विदीर्ण होनेके समान अत्यंत शूल होने लगताहै । मूत्रकी र टूट टूटकर आतीहै रोगी मारे पीडाके वारंवार लिंगेन्द्रियको दवाताहै और रवार मल और मूत्रका त्याग करताहै उस समय मूत्रके अत्यंत क्षोभ होनेसे पथरी रा जखम होकर मूत्रमें रक्त आने लगताहै,जब पथरी निकलजाय अथवा मूत्रमार्गसे टजाय तो मूत्र सुखपूर्वक आने लगताहै । यह पथरी वायुसे भेदन होकर रेतके समान त्रद्वारसे खरने लगतीहै ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शुक्राभिघातज मूत्रकृच्छ्र ।

रेतोऽभिघाताभिहतस्यपुंसःप्रवर्त्तयेत्तस्यतुमूत्रकृच्छ्रम् । स्याद्वेदनावंक्षणवस्तिमेढ्रेतस्यातिशूलेवृषणातिवृत्ते ॥३८॥ शुक्रेणसंरुद्धगतिः प्रवाहोमूत्रंसकृच्छ्रेणविमुञ्चतीह । तमण्डयोःस्तब्धमितिब्रुवन्तिरेतोऽभिघातेप्रवदन्तिकृच्छ्रम् ॥ ३९ ॥

शुक्रके अभिघातसे मूत्रकृच्छ्र केवल पुरुषोंको ही होताहै । बालक और स्त्रियोंको नहीं होता । शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण, वस्ति, लिंगेन्द्रिय और वृषणोंमें अत्यंत शूल तथा पीडा होने लगतीहै और मूत्रका मार्ग शुक्रसे रुकाहुआ होनेसे मूत्रका प्रवाह रुकरुककर और कष्टके साथ थोडा २ मूत्र उतरताहै, और अण्डकोशोंको स्तब्ध कर देताहै उसको शुक्राभिघातजनित मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

शुक्रंमलाश्चैवपृथक्पृथग्वामूत्राशयस्थाःप्रतिवारयन्ति । तद्वयाहतंमेहनवस्तिशूलंमूत्रंसशुक्रंहिकरोतिवद्धम् । स्तब्धश्चशूनोभृशवेदनश्चतुधेतवस्तिर्वृषणौचतस्य ॥ ४० ॥

जब वातादि दोष पृथक् २ अथवा सब मिलकर मूत्राशयमें स्थित होकर शुक्रको रोक देतेहैं तो उसके रुकनेसे लिंगेन्द्रिय और वस्तिमें शूल उत्पन्नकर वीर्यके साथ ही मूत्रको भी रोकदेतेहैं । उससे वस्ति और वृषणोंमें स्तब्धता, सूजन, अत्यंत पीडा सूई चुभनेकासा तोद होने लगताहै ॥ ४० ॥

क्षतज मूत्रकृच्छ्र ।

क्षताभिघातात्क्षतजंक्षयाद्वाप्रकोपितंवस्तिगतंविवद्धम् ॥ ४१ ॥ तीव्रार्त्तिमूत्रेणसहाश्मरीत्वमायातितस्मिन्नतिसञ्चितेच । आध्मा-ततांविन्दतिगौरवञ्चवस्तेर्लघुत्वञ्चविनिःसृतेऽस्मिन् ॥ ४२ ॥

किसी प्रकारके क्षत (उपदंश आदि) से अथवा चोट आदि लगनेसे वा रस आदि धातुक्षय होनेसे क्षतज रक्तादि कुपित होकर वस्तिमें प्राप्त हो बद्ध होजातेहैं तब पथरीके समान कठोरपनको प्राप्त हो मूत्र आनेके समय मूत्रसे मिलकर भारी पीडाको करतेहैं । यदि क्षतज दोष अति संचित होजायँ तो वस्तिमें अफारा और भारीपनको करतेहैं । दोष (क्षतज दोषकी बनीहुई ग्रंथी) के निकल जानेसे वस्ति हल्की होजातीहै । यह क्षतज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

वातज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्नेहोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् । स्थिरादि-भिर्वातहरैश्चसिद्धान्युञ्ज्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ ४३ ॥

वायुके मूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंग, स्नेहवस्ति, निरूहणवस्ति, स्नेहयुक्त उपनाह, स्वेद, उत्तरवस्ति, वातनाशक क्वाथोंका परिसेचन, शालपर्णी आदि वातनाशक सिद्ध किये मांसरसोंका प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

पुनर्नवैरण्डशतावरीभिःपत्तूरवृश्चीरवलाश्मभिद्भिः । द्विपञ्चमूलेन कुलत्थकोलंयवैश्चतोयोत्क्वथितेकषाये ॥ ४४ ॥ तैलंवराहर्क्षवसा-घृतञ्चतैरेवकल्कैर्लवणैश्चसाध्यम् । तन्मात्रयाशुप्रतिहन्तिपीतंशू-लान्वितंमारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

पुनर्नवा, एरण्डका जडका छिलका, शतावर, शालिञ्च शाक, सफेद पुनर्नवा, बला, पाषाण भेद, दशमूल, कुलथी बेर और यव इन सबके कल्क और क्वाथ तथा पांचों नमक मिलाकर सिद्ध किये तेल सूअरकी चर्वी,रीछकी चर्वी और घृतकी उचितमात्रा सेवनकरनेसे वातजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

एतानिचान्यानिवरौषधानिसर्वाणिशस्तान्यपिचोपनाहे । स्थूलाभतस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥ ४६ ॥

यह उपरोक्त सिद्ध कियेहुए तैल चर्वी आदि तथा अन्यान्य वातनाशक उत्तम द्रव्योंसे उपनाह करना वा तेल, फल, स्नेह, खटाईमें मिलाकर वातनाशक द्रव्योंको गमकर उससे उपनाह स्वेद करना वातजनित मूत्रकृच्छ्रको दूर करताहै ॥ ४६ ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सेकावगाहाःशिशिराःप्रदेहाग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविरेकाः ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्चकृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेषुकार्य्याः ॥ ४७ ॥

पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें-शीतलद्रव्योंसे सेचन, शीतल लेपन, शीतल अवगाहन तथा ग्रीष्मऋतुमें करनेयोग्य शीतलविधि, दूधयुक्त वस्तिकर्म, शीतल विरेचन अथवा दाख, विदारीकंद और ईखके रसमें घृत और दूध मिलाकर अथवा इन्हींसे सिद्ध किये घृत और दूध वस्ति और विरेचन कर्ममें प्रयोग करने चाहिये ॥ ४७ ॥

शतावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् ।
क्वाथंसुशीतंमधुशर्कराभ्यांयुक्तंपिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ ४८ ॥

शतावर, कांसकी जड, कुशाकी जड, गोखरू, विदारीकंद, शालीधान्यकी जड ईखकी जड और कसेरू इन सबका क्वाथ बना शीतलकर शहद और मिसरी मिला पीवे तो पित्तजनित मूत्रकृच्छ्र दूर हो ॥ ४८ ॥

पिबेत्कषायंकमलोत्पलानांशृङ्गाटकानामथवाविदार्य्याः ।
दण्डोत्पलानामथवापिमूलंपूर्वेणकल्पेनतथासुशीतम् ॥ ४९ ॥

नीलकमल, लालकमल अथवा सिंघाडे या विदारीकंद वा दण्डोत्पलकी जडका क्वाथ शीतलकर शहद और मिसरी मिला पिलावे अथवा इनका शीतकषाय बना पिलावे ॥ ४९ ॥

एर्वारुबीजंत्रपुषात्कुसुम्भात्सकुंकुमःस्याद्वृषकश्चपेयः ।
द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासुसर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तएषः ॥ ५० ॥

ककडीके बीज, खीरेके बीज, कुसुंभेके बीज, केशर, (अथवा कुशबूटी) औ बांसा इन सबका द्राक्षाके रसमें शर्बत बना मिसरी मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होतेहैं । और पित्तके मूत्रकृच्छ्रमें विशेष रूपसे हित हैं ॥ ५० ॥

एर्वारुबीजंमधुकंसदार्विपैत्तेपिबेत्तण्डुलधावनेन ।
दार्वींतथैवामलकीरसेनसमाक्षिकांपित्तकृतेतुकृच्छ्रे ॥ ५१ ॥

ककडीके बीज,मुलैठी और दारुहल्दीके कल्कको तण्डुलजलमें घोलकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । अथवा दारुहल्दी, आँवलेका रस और शहद मिलाकर पीवे तो पित्तका मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५१ ॥

कफजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानंस्वेदोयवान्नंवमनंनिरूहाः ।
तक्रंसतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५२ ॥

कफजनित मूत्रकृच्छ्रमें क्षार,उष्ण और तीक्ष्ण औषधी तथा उष्णतीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, यवान्न, वमन और निरूहण तथा तक्रप्रयोग एवं तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तेल, अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

व्योषंश्वदंष्ट्रात्रुटिसारसास्थिकोलप्रमाणंमधुमूत्रयुक्तम् ।
पिबेत्त्रुटिंक्षौद्रयुतांकदल्यारसेनकैटर्य्यरसेनवापि ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टे इन सबका चूर्ण १ तोला लेकर शहदमें मिला पिलावे । अथवा छोटी इलायची, और केलेके जडका रस शहद मिला पिलावे या केवटीमोथेकी जडका स्वरस शहद और छोटी इलायची मिला पिलावे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५३ ॥

तक्रेणयुक्तंशितिसारकस्यबीजंपिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।
पिबेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५४ ॥

अथवा तेंदूके बीजोंको छांछके साथ पीवे वा तण्डुलजलके साथ प्रवालभस्मका सेवन करे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५४ ॥

सप्तच्छदारग्वधकेत्रुकैलाधवंकरञ्जंकुटजंगुडूचीम् ।
पक्त्वाजलेतेनपिबेद्यवागूंसिद्धंकषायंमधुसंयुतंवा ॥ ५५ ॥

अथवा सप्तपर्ण, अमलतासका गूदा, छोटी इलायची, केत्रुक (केत्रुआवृक्ष) धव, करंज, कुडाकी छाल और गिलोय इसके जलमें सिद्ध कीहुई यवागू वा इनके क्वाथको शहद मिला पीनेसे कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५५ ॥

सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

सर्वंत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्यकार्य्यम् ।
त्रिभ्योधिकेप्राग्वमनंकफेस्यात्पित्तेविरेकःपवनेतुबस्तिः ॥ ५६ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें वायुका पूर्वापर विचार कर क्रमानुसार तीनों दोषोंकी मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये । यदि वातादि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और पित्तकी अधिकता हो तो प्रथम विरेचन कराना चाहिये और वायुकी अधिकतामें बस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अश्मरी (पथरी) की चिकित्सा।

क्रियाहितास्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम्।
कार्य्याश्मरीभेदनपातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम्॥ ५७॥

कफ और वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें जो चिकित्सा कहीहै अश्मरी (पथरी) और शर्करा रोगमें भी उसी चिकित्साका प्रयोग करना हितकारक है। पथरीको भेदन और पातन करनेकेलिये जिस विशेष कर्मका प्रयोग करना चाहिये उस अनुभूत कर्मको सुनो॥ ५७॥

पथरी और शर्करानाशक योग।

पाषाणभेदंवृषकंश्वदंष्ट्रापाठाभयाव्योपशटीनिकुम्भाः।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाणामेर्वारुकाणांत्रपुषस्यवीजम्॥ ५८॥
उत्कुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लंस्याद्द्वेबृहत्यौहवुषावचाच।
चूर्णंपिवेदश्मरिभेदपक्वंसर्पिश्चगोमूत्रचतुर्गुणंतैः॥ ५९॥

पाषाणभेद, अडूसा, गोखरू, पाठा, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, दन्ती, हींसके वीज, अजमोद, शालिचशाकके वीज, ककडीके वीज, खीरेके वीज, उत्कुंचिका (कालाजीरा,) हींग, अम्लवेत, कटेली, वडी कटेली, हाऊवेर और वच, इन सबका चूर्ण कर गरम जल या दूधके साथ सेवन करे अथवा इनके कल्क और काथसे गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्धकरे। इस घृतके पीनेसे भी पथरीका भेद होकर पथरी और शर्करा दूर होतेहैं॥ ५८॥ ५९॥

मूलंश्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्क्षीरेणपिष्टंबृहतीद्वयश्च।
आलोड्यदध्नामधुरेणपेयंदिनानिसप्ताश्मरिभेदनाय॥ ६०॥

गोखरू तालमखाना, एरण्डकी जड इनको दूधमें पीसकर सेवन करे अथवा छोटी और वडी कटेलीकी जडको बारीक पीसकर मीठे दहीमें मिला पीवे तो सात दिनमें अश्मरीका भेदन होताहै॥ ६०॥

पुनर्नवायोरजनीश्वदंष्ट्राफल्गुप्रवालाश्चसदर्भपुष्पाः।
क्षीराम्बुमद्येक्षुरसैःसुपिष्टंपेयंभवेदश्मरिशर्करासु॥ ६१॥

पुनर्नवा, लोहभस्म, हल्दी, गोखरू, गूलर, मूंगेकी भस्म, दाभके फूल इन सबको पीसकर दूध, जल, मद्य और ईखके रसमें मिलाकर पीवे तो पथरी और शर्करा दूर होतीहै॥ ६१॥

त्रटिंसुराह्वंलवणानिपञ्चयवाग्रजंकुन्दुरुकाश्मभेदौ। कम्पिल्लकंगो-

कफजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानंस्वेदोयवान्नंवमनंनिरूहाः ।
तक्रंसतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५२ ॥

कफजनित मूत्रकृच्छ्रमें क्षार,उष्ण और तीक्ष्ण औषधी तथा उष्णतीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, यवान्न, वमन और निरूहण तथा तक्रप्रयोग एवं तिक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तैल, अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ५२ ॥

व्योषंश्वदंष्ट्रात्रुटिसारसास्थिकोलप्रमाणंमधुमूत्रयुक्तम् ।
पिबेत्त्रुटिंक्षौद्रयुतांकदल्यारसेनकैटर्य्यरसेनवापि ॥ ५३ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टे इन सबका चूर्ण १ तोला लेकर शहदमें मिला पिलावे। अथवा छोटी इलायची, और केलेके जडका रस शहद मिला पिलावे या केवटीमोथेकी जडका स्वरस शहद और छोटी इलायची मिला पिलावे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५३ ॥

तक्रेणयुक्तंशितिसारकस्यबीजंपिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।
पिबेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५४ ॥

अथवा तेंदूके बीजोंको छांछके साथ पीवे वा तण्डुलजलके साथ प्रवालभस्मका सेवन करे तो कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५४ ॥

सप्तच्छदारग्वधकेबुकैलाधवंकरञ्जंकुटजंगुडूचीम् ।
पक्त्वाजलेतेनपिबेद्यवागूंसिद्धंकषायंमधुसंयुतंवा ॥ ५५ ॥

अथवा सप्तपर्ण, अमलतासका गूदा, छोटी इलायची, केबुक (केबुआवृक्ष) धव, करंज, कुडाकी छाल और गिलोय इनके जलमें सिद्ध कीहुई यवागू वा इनके क्वाथको शहद मिला पीनेसे कफजनित मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै ॥ ५५ ॥

सन्निपातजमूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा।

सर्वंत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्यकार्य्यम् ।
त्रिभ्योधिकेप्राग्वमनंकफेस्यात्पित्तेविरेकःपवनेतुबस्तिः ॥ ५६ ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें वायुका पूर्वापर विचार कर क्रमानुसार तीनों दोषोंकी मिलीजुली चिकित्सा करना चाहिये। यदि वातादि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और पित्तकी अधिकता हो तो प्रथम विरेचन कराना चाहिये और वायुकी अधिकतामें बस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ५६ ॥

अश्मरी (पथरी) की चिकित्सा।

क्रियाहितास्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम्।
कार्य्याश्मरीभेदनपातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम् ॥ ५७ ॥

कफ और वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें जो चिकित्सा कहीहै अश्मरी (पथरी) और शर्करा रोगमें भी उसी चिकित्साका प्रयोग करना हितकारक है। पथरीको भेदन और पातन करनेकेलिये जिस विशेष कर्मका प्रयोग करना चाहिये उस अनुभूत कर्मको सुनो ॥ ५७ ॥

पथरी और शर्करानाशक योग।

पाषाणभेदंवृषकंश्वदंष्ट्रापाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाणामेर्वारुकाणांत्रपुषस्यबीजम् ॥ ५८ ॥
उत्कुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लंस्याद्द्वेबृहत्यौहवुषावचाच।
चूर्णंपिवेदश्मरिभेदपक्वंसर्पिश्चगोमूत्रचतुर्गुणंतैः ॥ ५९ ॥

पाषाणभेद, अडूसा, गोखरू, पाठा, हरड, सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, दन्ती, हींसके बीज, अजमोद, शालिचशाकके बीज, ककडीके बीज, खीरेके बीज, उत्कुञ्चिका (कालाजीरा,) हींग, अम्लवेत, कटेली, बडी कटेली, हाऊवेर और वच, इन सबका चूर्ण कर गरम जल या दूधके साथ सेवन करे अथवा इनके कल्क और क्वाथसे गोमूत्र मिलाकर घृत सिद्धकरे। इस घृतके पीनेसे भी पथरीका भेद होकर पथरी और शर्करा दूर होतेहैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

मूलंश्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्क्षीरेणपिष्टंबृहतीद्वयस्य।
आलोड्यदध्नामधुरेणपेयंदिनानिसप्ताश्मरिभेदनाय ॥ ६० ॥

गोखरू तालमखाना, एरण्डकी जड इनको दूधमें पीसकर सेवन करे अथवा छोटी और वडी कटेलीकी जडको बारीक पीसकर मीठे दहीमें मिला पीवे तो सात दिनमें अश्मरीका भेदन होताहै ॥ ६० ॥

पुनर्नवायोरजनीश्वदंष्ट्राफल्गुप्रवालाश्चसदर्भपुष्पाः।
क्षीराम्बुमद्येक्षुरसैःसुपिष्टंपेयंभवेदश्मरिशर्करासु ॥ ६१ ॥

पुनर्नवा, लोहभस्म, हल्दी, गोखरू, गूलर, मूंगेकी भस्म, दाभके फूल इन सबको पीसकर दूध, जल, मद्य और ईखके रसमें मिलाकर पीवे तो पथरी और शर्करा दूर होतीहै ॥ ६१ ॥

त्रुटिंसुराह्वंलवणानिपथ्यवाग्रजंकुन्दुरुकाश्मभेदौ। कम्पिल्लकंगो-

क्षुरकस्यवीजमेर्वारुवीजंत्रपुपस्यवीजम् ॥ ६२ ॥ चूर्णीकृतंचित्रकहिंगुमांसीयमानितुल्यंत्रिफलाद्विभागम् । अम्लैःसशुक्तैरसमद्ययूपैःपेयंहिगुल्माश्मरिभेदनार्थम् ॥ ६३ ॥

छोटी इलायची, देवदारु, पांचों लवण, जवाखार, कुन्दरुगोंद, पाषाणभेद, कमीला, गोखरू, ककडीके बीज, खीरेके बीज, चित्रक, हींग, जटामांसी और अजवायन इनको समभाग लेकर चूर्ण करे और हरड, बहेडे और आँवलेका चूर्ण पहिले चूर्णसे दुगुना लेवे। सबको मिलाकर अम्लरस, सिरका, मद्य, मांसरस और यूषके साथ पीवे तो गुल्म और पथरीका भेदन होकर वह दूर होतेहैं॥६२॥६३॥

शिग्रोस्तुयूपोमृदुमूलकल्काद्विल्वप्रमाणोघृततैलभृष्टः ।
शीतोऽश्मभित्स्याद्दधिमण्डयुक्तःपेयःप्रकामंलवणेनयुक्तः ॥ ६४ ॥

सुहांजनेकी नरम जडके दो तोला कल्कसे सिद्ध किया हुआ यूप घी और तेलमें भूनकर शीतल होनेपर दधिमण्ड मिला नमकयुक्त करे । इसके पीनेसे पथरी दूर होतीहै ॥ ६४ ॥

जलेनशोभाञ्जनमूलकल्कःशीतोहितश्चाश्मरिशर्कराभ्याम् ।
सितोपलावासमयावशूकाःकृच्छ्रेषुसर्वेष्वपिभेषजंस्यात् ॥ ६५ ॥

सुहांजनेकी जडकी कल्कको जलमें घोलकर शीतल ही पीवे तो अश्मरी और शर्करा दूर होतीहै अथवा मिसरी और जवाखार मिलाकर जलके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्र दूर होते हैं ॥ ६५ ॥

पीत्वाचमद्यंनिगदंरथेनहयेनवाशीघ्रजवेनयायात् ।
तैःशर्कराप्रच्यवतेऽश्मरीतुशाम्येन्नचेच्छल्यविदुद्धरेत्ताम् ॥ ६६ ॥

निगद नामक मद्यको पीकर शीघ्र २ गमन करनेवाला रथ अथवा घोडे आदिकी सवारीपर चढ़कर नित्य घूमाकरे तो पथरीका भेदन होकर वह निकल जातीहै । यदि इन सब उपायोंके करनेसे भी पथरी शान्त न हो तो शल्यतंत्रका जाननेवाला वैद्य युक्तिपूर्वक पथरीको शस्त्रद्वारा निकाल देवे ॥ ६६ ॥

रेतोविघातप्रभवेतुकृच्छ्रेसमीक्ष्यदोपंप्रतिकर्मकुर्यात् ॥ ६७ ॥

शुक्राभिघातसे उत्पन्नहुए मूत्रकृच्छ्रमें यथोचित दोषोंकी परीक्षा करके उनकी शान्तिका उपाय करे ॥ ६७ ॥

वातादिमूत्रभेदसे मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा ।

कार्पासमूलंवृषकाश्मभेदौवलास्थिरादीनिगवेधुकाच । वृश्चीरऐन्द्री-

चपुनर्नवाचशतावरीमध्वशनाखुपर्ण्यौ । तत्क्वाथसिद्धंपवनेनरस्य-पित्तेऽधिकेक्षीरमथापिसर्पिः ॥ ६८ ॥ कफेचयूपादिकमन्नपानंसं-सर्गजे सर्वहितःक्रमःस्यात् । एवंनचेच्छाम्यतितस्ययुञ्ज्यात्सुरां-पुराणां मधुकासवंवा ॥ ६९ ॥

कपासकी जड, अडूसा, पाषाणभेद, खैरेटी, शालिपर्णी आदि गणकी औषधियें, गवेधुका, सफेद पुनर्नवा, इन्द्रायणकी जड, लाल पुनर्नवा, शतावर, मुलैठी, विजैसार और मूषिकपर्णी इन सब द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ दूध सेवन करनेसे वातप्रधान मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै और इन्हीं सब द्रव्योंसे सिद्ध किया घृत पीनेसे पित्तप्रधान मूत्रकृच्छ्र दूर होताहै । एवं कफकी अधिकतामें इन्हीं द्रव्योंके क्वाथसे सिद्ध किये यूष और अन्नपान आदिका सेवन करना चाहिये। सब दोषोंके संसर्गमें सब प्रकार मिली जुली क्रिया करनी चाहिये । यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी मूत्रकृच्छ्र शान्त न हो तो उसको पुरानी मद्य और मध्वासव सेवन करावे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

विहङ्गमांसानिचबृंहणायबस्तींश्वशुक्राशयशोधनार्थम् ।
शुद्धस्यतृप्तस्यचवृष्ययोगैःप्रियानुकूलाःप्रमदाविधेयाः ॥ ७० ॥

बृंहण करनेके लिये रोगीको पक्षियोंका मांसरस सेवन करावे और शुक्राशयकी शुद्धिके लिये बस्तिकर्मका (मूत्रमार्ग द्वारा नलीप्रवेश करना) प्रयोग करे । फिर शुद्ध हुए मनुष्यको वृष्य योगोंद्वारा तृप्त कर प्यारी और अनुकूल स्त्रियोंसे गमन करावे ॥ ७० ॥

रक्तोद्भवेतूत्पलनालतालकाशेक्षुवालेक्षुकशेरुकाणि ।
पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानिखादेदिक्षुंविदारींत्रपुषाणिचैव ॥ ७१ ॥

यदि किसी उपदंशादिके दोषसे अथवा अन्य रक्तजनित विकारसे मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न हुआ हो तो कमलनाल, नालमूली (मुसली), कांसकी जड, ईखकी जड, तालमखाना और कसेरू इन सबको मिसरी और शहदमें मिलाकर पीवे अथवा ईखकी जड, विदारीकंद और खीरेके बीज इनके क्वाथमें शहद और मिसरी मिलाकर पीवे ॥ ७१ ॥

घृतंश्वदंष्ट्रास्वरसेनसिद्धंक्षीरेणचैवाष्टगुणेनपेयम् ।
स्थिरादिकानांकतकादिकानामेकैकशोवाविधिनैवतेन ॥ ७२ ॥

अथवा गोखरूका रस ८ सेर, दूध ८ सेर, घी १ सेर इन सबको पकाकर घृत-मात्र शेष रहनेपर उचित मात्रासे सेवन करे अथवा शालपर्णी आदि पंचमूलके

क्वाथसे अथवा निर्मलीके फलके रससे, पूर्वोक्त विधिसे सिद्ध कियाहुआ घृत सेवन करे ॥ ७२ ॥

क्षीरेणवस्तिर्मधुरौषधैःस्यात्तैलेनवास्वादुफलोत्थितेन ।
यन्मूत्रकृच्छ्रेविहितन्तुपैत्तेकार्य्यन्तुतच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ ७३ ॥

रक्तविकारजनित मूत्रकृच्छ्र (क्षतज) में दूध अथवा मधुरगणोंसे वा मीठे फलोंके तैलसे वस्तिकर्म करे और पित्तजनित मूत्रकृच्छ्रमें कहेहुए सब प्रकारके योगोंका प्रयोग करे ॥ ७३ ॥

मूत्रकृच्छ्रमें कुपथ्य ।

व्यायामसन्धारणशुष्कभक्ष्यपिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान् ।
खर्जूरशालूककपित्थजम्बूविषंकषायश्चरसंभजेन्ना ॥ ७४ ॥

मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोगमें व्यायाम आदि शारीरिक परिश्रम और मलमूत्रके वेगोंका रोकना, सूखे अन्नपानका सेवन करना, पिष्ट पदार्थोंका सेवन, पवन, धूप, स्त्रीसंग, खजूर, शालूक, कैथ, जामुन, विष और कषायरसका सेवन करे ॥७४॥

हृद्रोगके कारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्तिचिन्ताभयत्रासमदातिचाराः ।
छर्द्यामसन्धारणकर्षणानिहृद्रोगकर्तॄणितथाभिघातः ॥ ७५ ॥

व्यायाम, तीक्ष्ण विरेचन, तीक्ष्ण वस्ति, वमन, मलके वेगका रोकना, उपवास आदि, कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, मद्यका अत्यंत सेवन या उन्मत्तता और अभिचार (टोना, शाप आदि) का होना यह सब हृद्रोगके उत्पत्तिके कारण होतेहैं ॥ ७५ ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्काश्वासास्यवैरस्यतृषाःप्रमोहाः ।
छर्दिःकफोत्क्लेशरुजोऽरुचिश्चहृद्रोगजाःस्युर्विविधास्तथान्ये ॥ ७६ ॥

विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास,मुखका स्वाद, बिगडजाना, तृषा, प्रमेह, वमन,कफके उत्क्लेशमें वेदना, अरुचि तथा और भी इसी प्रकारके अन्य उपद्रव हृद्रोगसे उत्पन्न होतेहैं ॥ ७६ ॥

वातभेदजहृद्रोगके लक्षण ।

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेदस्तम्भाःसमोहाःपवनाद्विशेषः ।

हृदयकी शून्यता, धुकधुकी, शोष, हृदयमें भेदनकीसी पीडा, स्तम्भता और मोह यह वातजनित हृद्रोगके लक्षण हैं ।

पित्तजहृद्रोगके लक्षण।

पित्तात्तमोदूयनदाहमोहाःसन्त्रासतापज्वरपीतभावाः ॥ ७७ ॥

नेत्रोंके आगे अंधकार, ग्लानि, दाह, मोह, संत्रास, संताप, ज्वर और नेत्र आदिकोंका पीतवर्ण होना यह पित्तज हृद्रोगके लक्षण हैं ॥ ७७ ॥

कफजहृद्रोगके लक्षण।

स्तब्धंगुरुस्यात्स्तिमितश्चमर्मकफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः।

हृदयकी स्तब्धता, भारीपन, स्तैमित्य, मर्मस्थानमें कफका लिपायमानसा प्रतीत होना, मुखसे लार बहना, ज्वर, खांसी और तन्द्रा यह कफजनित हृद्रोगके लक्षण हैं।

सन्निपातज और कृमिज हृद्रोगके लक्षण।

विद्यात्त्रिदोषन्त्वपिसर्वलिङ्गंतीव्रार्त्तितोदंकृमिजंसकण्डूम् ॥ ७८ ॥

सन्निपातके हृद्रोगमें सब दोषोंके लक्षण होतेहैं तथा तीव्र वेदना होतीहै। एवं कृमिज हृद्रोगमें सूई चुभनेकीसी पीडा और खुजली होतीहै ॥ ७८ ॥

वातज हृद्रोगकी चिकित्सा।

तैलंससौवीरकमस्तुतक्रंवातेप्रपेयंलवणंसुखोष्णम्।

सूत्राम्बुसिद्धंलवणैश्चतैलमानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ ७९ ॥

वातज हृद्रोगमें-सौवीरक, दहीका जल और तक्रके साथ सिद्ध किया तैल पीना चाहिये। तथा सैंधानमक, गोमूत्र और जलके साथ सिद्ध करके शीतगरम रहनेपर सेवन करे। अथवा पंचलवणसे सिद्ध किये तेलका सेवन करे तो वातज हृद्रोग, अफारा और गुल्मरोग दूर होताहै ॥ ७९ ॥

पुनर्नवांदारुसपञ्चमूलेरास्नांयवान्बिल्वकुलत्थकोलम्।

पक्त्वाजलेतेनविपाच्यतैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदेऽयम् ॥ ८० ॥

पुनर्नवा, देवदारू, लघु पंचमूल, रासना, यव, कच्चे बेलकी गिरि, कुलथी और बेर इनके क्वाथमें सिद्धकिये तैलके अभ्यंग और पान करनेसे वातजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ८० ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वयःकयस्थालवणैश्चकल्कैः।

सहिङ्गुभिःसाधितमघ्यसर्पिर्गुल्मेसहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ ८१ ॥

हरड, सोंठ, पुहकरमूल, काकोली, छोटी इलायची, सैंधानमक और हींगके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत गुल्म, पार्श्वपीडा और वातजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ८१ ॥

सपुष्कराह्वफलपूरमूलंमहौषधंशव्यभयाचकल्काः ।
क्षाराम्बुसर्पिर्लवणैर्विमिश्राःस्युर्वातहृद्रोगविकर्त्तिकाघ्नाः ॥ ८२ ॥

पुहकरमूल, बिजौरेकी जड, सोंठ, कचूर और हरडका कल्क, जवाखार तथा संधानमकके जलसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातजनित हृद्रोग और विकर्तिकाको नष्ट करताहै ॥ ८२ ॥

क्राथःकृतःपौष्करमातुलुङ्गपलाशभूतीशकटीसुराह्वैः ।
सशुण्ठ्यजाजीद्विवचायमानीसक्षारउष्णोलवणश्चपेयः ॥ ८३ ॥

पोहकरमूल, बिजौरेकी जड ढाककी फली, अजवायन, कचूर, देवदारूका क्वाथ, सोंठ, जीरा, वच, सफेद वच, अजवायन, जवाखार और संधानमक मिला पीवे तो वातजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ८३ ॥

पथ्याशटीपुष्करपञ्चकोलान्समातुलुङ्गायमकेनकल्कः ।
गुडप्रसन्नालवणैश्चभृष्टोहृत्पार्श्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥ ८४ ॥

हरड, कचूर, पोहकरमूल, पंचकोल और बिजौरेकी जडका कल्क बना गुड प्रसन्ना और मद्य मिलाकर घृत और तेलमें भूनकर सेवन करे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा, गुल्म, उदररोग और योनिशूल नष्ट होतेहैं ॥ ८४ ॥

त्र्यूषणादि घृत ।

स्यात्त्र्यूषणंद्वेत्रिफलेसपाठेनिदिग्धिकागोक्षुरकौवलेद्वे । ऋद्धिस्त्रुटिस्तामलकीस्वगुप्तामेदेमधूकंमधुकंस्थिराच ॥ ८५ ॥ शतावरीजीवकपृश्निपर्ण्यौद्रव्यैरिमैरक्षसमैःसुपिष्टैः । प्रस्थंघृतस्येहपचेद्विधिज्ञःप्रस्थेनदध्नस्त्वथमाहिषस्य ॥ ८६ ॥ मात्रांपलंचार्द्धपलंपिचुंवाप्रयोजयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् । श्वासेसकासेत्वथपाण्डुरोगेहलीमकेहृद्ग्रहणीप्रदोषे ॥ ८७ ॥

पीपल, मिरच, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, द्राक्षा, कुम्भेरके फल, फालसा, कटेली, गोखरू, बला, नागबला, ऋद्धि, इलायची, बडी इलायची, भूमि आंवला, कौंचके बीज, मेदा, महामेदा, महुआ, मुलैठी, शालपर्णी, शतावर, जीवक, पृष्ठपर्णी इन सबको एक एक तोला लेकर बारीक पीसलेवे फिर इसको १ सेर घी, १ सेर दही और १ सेर भैंसका दूध तथा २ सेर जल मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको ४ तोला अथवा २ तोला या १ तोला शहदमें मिला-

कर नित्य सेवन कियाकरे तो श्वास, खाँसी, पाण्डुरोग, हलीमक, हृद्रोग और ग्रहणी रोग नष्ट होताहै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

पित्तजहृद्रोगकी चिकित्सा।

शीताःप्रदेहाःपरिषेचनश्चतथाविरेकोहृदिपित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैःस्याच्छुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम् ॥ ८८ ॥

पित्तजनित हृद्रोगमें शीतल लेप परिषेचन और विरेचन देना हितकारक है। विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होनेके अनन्तर द्राक्षा, मिसरी, शहद और फालसेके रसके साथ अन्नपानका सेवन करना चाहिये ॥ ८८ ॥

यष्ट्याह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यांकल्कंपिबेच्चापिसिताजलेन।
क्षतेपुसर्पींषिहितानिसर्पिर्गुडाश्चयेतान्प्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥ ८९ ॥
दद्याद्विपक्वधन्वरसांश्चगव्यक्षीराशिनांपित्तहृदामयेषु ।
तैरेवसर्वेप्रशमंप्रयान्तिपित्तामयाःशोणितसंश्रयाये ॥ ९० ॥

मुलेठी और कुटकीका कल्क करके मिसरीके शरबतके साथ सेवन करे तो पित्त-जनित हृद्रोग दूर होताहै। अथवा उरःक्षतरोगमें कहेहुए घृत और सर्पिर्गुडोंको भले प्रकार विचारकर सेवन करावे और जंगली जीवोंके मांसरस तथा गौका दूध पिलाना पित्तज हृद्रोगमें हितकारी होताहै और इन्हीं प्रयोगोंसे रक्ताश्रित सब प्रकारके पित्तरोग शान्त होतेहैं ॥ ८९ ॥ ९० ॥

द्राक्षाबलाश्रेयसिशर्कराभिःखर्जूरवीरर्षभकोत्पलैश्च ।
काकोलिमेदायुगजीवकैश्चक्षीरेचसिद्धंमाहिषीघृतंस्यात् ॥ ९१ ॥

द्राक्षा, बला, गजपीपल और मिसरी। अथवा खजूर, क्षीरकाकोली, ऋषभक और नीलोफर। या काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक। इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके कल्कके साथ अथवा सबको मिलाकर चौगुने दूधके साथ भैंसके घृतको सिद्ध करे। इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९१ ॥

कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकंमधुकंबिसस्य ।
ग्रन्थिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रान्वितंपित्तहृदामयघ्नम् ॥ ९२ ॥

कसेरु, जलकी काई, सोंठ, पंडयारेका छिलका, मुलेठी और भिस इन सबका कल्क कर कल्कसे चारगुना घृत, घृतसे चारगुना दूध मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। इस घृतको शीतल होनेपर चौथाई भाग शहद मिलाकर नित्य ४ तोला चाटाकरे तो पित्तका हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९२ ॥

स्थिरादिकल्कैःपयसाचसिद्धंद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि ।
सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्चरसाःसुशीताहृदिपित्तदुष्टे ॥ ९३ ॥

शालपर्ण्यादि पंचमूलका कल्क वीस तोला, घृत, १ सेर, दूध अथवा ईखका रस या दाखका रस ४ सेर मिलाकर घृत सिद्धकरे । इस घृतके सेवन करनेसे पित्तजनित हृद्रोग दूर होताहै तथा द्राक्षा आदि मीठे फलोंका रस अथवा ईखका रस वा अन्य मधुर रस पित्तज हृद्रोगमें हितकारक होतेहैं ॥ ९३ ॥

कफजनितहृद्रोगकी चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्तस्यविलङ्घितस्यक्रियाकफघ्नीकफमर्मरोगे ।
कौलत्थधान्यैश्चरसैर्यवान्नैःपानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि ॥ ९४ ॥

कफके हृद्रोगमें स्वेदन, वमन और लंघन, करानेके अनन्तर कफनाशक द्रव्योंका प्रयोग . तथा कफनाशक आहार विहारका सेवन करना चाहिये और कुल्थी-तथा धनियेंके क्वाथके साथ यवान्न सिद्धकर सेवन कराना और तीक्ष्ण अन्न पानोंका शर्कराके साथ प्रयोग कराना हितकारी होताहै ॥ ९४ ॥

मूत्रेश्रृताःकट्फलश्रृङ्गवेरपीतद्रुपथ्यातिविषाःप्रदेयाः ।
कृष्णाशटीपुष्करमूलरास्नावचाभयानागरचूर्णकञ्च ॥ ९५ ॥

कायफल, सोंठ, सरलवृक्षकी छाल, हरड और अतीश इन सबको गोमूत्रमें पकाकर पीना कफजनित हृद्रोगको दूर करताहै । अथवा पीपल, कचूर, पोहकरमूल, रासना, वच, हरड और सोंठ इन सबका चूर्ण कर गोमूत्र अथवा गरम जलके साथ सेवन करना कफजनित हृद्रोगको दूर करताहै ॥ ९५ ॥

उदुम्बराश्वत्थवटार्जुनाख्येपलाशरोहीतकखादिरेच ।
क्वाथेत्रिवृत्त्र्यूषणचूर्णसिद्धोलेहःकफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः ॥ ९६ ॥

गूलर, पीपल, वड, अर्जुन, ढाक इन सबके छिलके रोहितघासकी जड और खैरका छिलका इन सबके क्वाथमें निशोथ, सोंठ, मिर्च और पीपलका चूर्ण डालकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको गरम जलके साथ सेवन किया जाय तो कफजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९६ ॥

शिलाह्वयंवाभिषगप्रमत्तःप्रयोजयेत्कल्पविधानदृष्टम् ।
प्राश्यात्तथागस्त्यहरीतकीचरसायनंब्राह्ययमथामलक्याः ॥ ९७ ॥

बुद्धिमान् वैद्य शिलाजतु, रसायन अथवा अगस्त्यहरीतकी या ब्राह्मरसायन अथवा आमलकीरसायन कल्पस्थानमें कहीहुई विधिके अनुसार वमन विरेच-

नादि द्वारा रोगीको शुद्धकाय कर फिर इन रसायनोंका प्रयोग करावे तो कफजनित हृद्रोग दूर होताहै ॥ ९७ ॥

सन्निपातज हृद्रोगकी चिकित्सा ।

त्रिदोषजेलङ्घनमादितःस्यादन्नञ्चसर्वत्रहितंविधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्यचैवकार्य्यंत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ ९८ ॥

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुए हृद्रोगमें दोषोंकी हीनता, अधिकता और मध्यावस्था आदि विचारकर दोषानुसार लंघन आदि क्रिया और दोषानुसार हितकारक अन्नपानका सेवन कराना चाहिये । एवं दोषोंकी हीनता और अधिकता विचारकर यथाक्रम चिकित्सा करे ॥ ९८ ॥

अवस्थाविशेषसे हृद्रोगकी चिकित्सा ।

भुक्तेऽधिकञ्जीर्य्यतिशूलमल्पंजीर्णेस्थितंचेत्सुरदारुकुष्ठम् ।
सतिल्वकंद्वेलवणेविडङ्गमुष्णाम्बुनासातिविषंपिबेत्सः ॥ ९९ ॥

यदि त्रिदोषज हृद्रोगमें भोजन करते ही हृदयमें अधिक पीडा होनेलगे और भोजनके जीर्ण होते समय पीडा भी अल्प होजाय तथा भोजनके पाचन होजानेके अनन्तर पीडा भी बन्द होजाय तो ऐसी अवस्थामें देवदारू, कूठ, पठानी लोध, सेंधानमक, संचरनमक, वायविडंग और अतीशका चूर्ण कर गरमजलसे सेवन कराना चाहिये ॥ ९९ ॥

जीर्णेऽधिकेस्नेहविरेचनंस्यात्फलैर्विरच्योयदिजीर्य्यमाणे ।
त्रिष्वेवकालेष्वधिकेतुशूलेतीक्ष्णंहितंमूलविरेचनंस्यात् ॥ १०० ॥

यदि भोजनके जीर्ण होजानेपर शूलकी अधिकता हो तो उस मनुष्यको स्नेह विरेचन कराना चाहिये और जो भोजनके परिपाक होते समय पीडाकी अधिकता हो तो हरीतकी आदि फलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये । एवं सब समयमें शूलकी साम्यावस्था रहतीहो तो इन्द्रायणकी जड आदि मूलद्रव्योंसे विरेचन कराना चाहिये ॥ १०० ॥

कृमिजन्य हृद्रोगकी चि० ।

प्रायोऽनिलोरुद्धगतिःप्रकुप्यत्यामाशयेशोधनमेवतस्मात् ।
कार्य्यंतथालङ्घनपाचनञ्चसर्वंकिमिघ्नंकृमिहृद्गदेच ॥ १०१ ॥

कृमियोंसे होनेवाले हृद्रोगमें प्रायः वायु रुद्धगति होकर आमाशयमें कोपको प्राप्त होतीहै । इसलिये कृमिजन्य हृद्रोगमें प्रथम शोधन कराना चाहिये तथा लंघन और पाचन प्रयोग करनेके अनन्तर कृमिनाशक क्रिया करना हितकारी है ॥ १०१ ॥

पीनसादिनासारोगनिदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्याक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः । प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्यया मैथुनवाष्पधूमैः । संस्त्यानदोषेशिरसिप्रवृद्धोवायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ॥ १०२ ॥

मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, अजीर्ण, धूल आदिका मुख नासिकामें पडना, अत्यंत जोरसे बोलना, क्रोध, ऋतुओंका बदलना, शिरकी पीडा, अत्यंत जागना, अधिक सोना, अधिक जल पीना, मैथुन, पृथ्वीकी भाफ और धूमका लगना आदि कारणोंसे मस्तकके दोष घनीभूत हो वायुको बढाकर प्रतिश्यायको उत्पन्न करतेहैं ॥ १०२ ॥

वातजप्रतिश्यायके लक्षण ।

घ्राणार्तितोदैःश्वयथुर्जलाभःस्रावोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥ १०३ ॥

नाकमें पीडा, सूई चुभनेकेसे चमके, सूजन, जलके समान नाक, मुख और आंखोंसे स्राव होना, स्वरभंग और मस्तकमें पीडा यह वातजनित प्रतिश्याय (जुलाम) के लक्षण हैं ॥ १०३ ॥

पित्तज प्रतिश्यायके लक्षण ।

नासाग्रपाकज्वरवक्त्रशोषतृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात् ।

नाकके अग्रभागका पकजाना, ज्वरसा प्रतीत होना, मुखका सूखना, प्यास, पीले वर्णका तथा उष्ण स्राव होना, पित्तजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं ।

कफज प्रतिश्यायके लक्षण ।

कासारुचिस्रावघनप्रसेकाःकफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्डूः ॥ १०४ ॥

खांसी, अरुचि, नाकसे गाढा स्राव होना, मुखसे कफका निकलना, शरीर भारी होना और मस्तक आदिमें तथा नाकमें खुजली होना यह कफजनित प्रतिश्यायके लक्षण हैं ॥ १०४ ॥

सन्निपातज प्रतिश्यायके ल० ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्स्युः पीनसेतीव्ररुजेऽतिदुःखे ।

संपूर्ण प्रतिश्यायोंके लक्षणोंवाला तीव्रवेदनायुक्त कष्टकारी सन्निपातज प्रतिश्याय होताहै ।

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण ।

सर्वोऽतिवृद्धोऽहितभोजनात्तुदुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥ १०५ ॥

सब प्रकारके प्रतिश्याय ही अत्यंत बढजानेपर कुपथ्य सेवन करनेसे और चिकित्सा न करनेसे दुष्ट प्रतिश्याय होजाते हैं ॥ १०५ ॥

ततश्चरोगाःक्षवथुः सनासाशोषः प्रतीनाहपरिस्रवौच। घ्राणस्यपूतित्वमपीनसश्चसपाकशोथार्बुदपूयरक्ताः ॥ १०६ ॥ अरूंषिमूत्रश्रवणाक्षिरोगखालित्यहर्य्यर्जुनलोमभावाः। तृट्श्वासकासज्वररक्तपित्तवैस्वर्य्यशोपाश्चततोभवन्ति ॥ १०७ ॥

दुष्ट प्रतिश्यायसे छींक आना, नाकका सूखना, नाकका बन्द होजाना, मुख और नासिकासे अनेक प्रकारका स्राव होना तथा दुर्गंध आना, अपीनस, (गाढा, चर्वीके समान, पीला कफका स्राव होना) मुख, नाकका पकजाना, सूजन, अर्बुद, राध और रक्तका स्राव होना, अरूंपिकानामक फुंसियें होना, मूत्रस्राव, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य (गंजापन), रोमोंका कपिल अथवा श्वेत होना, प्यास, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभंग, तथा शोपरोग उत्पन्न होताहै ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

रोधाभिघातस्रवशोपपाकैर्घ्राणंयुतंयश्चनवेत्तिगन्धम् ।
दुर्गन्धिचास्यंबहुशः प्रकोपिदुष्टप्रतिश्यायमुदाहरेत्तम् ॥ १०८ ॥

जिस प्रतिश्यायमें नाकका बन्द होजाना, नाकमें जखमसे प्रतीत होना तथा स्राव, नाकका सूखना, नासापाक और गंधज्ञानका नष्ट होना तथा मुखसे अत्यंत दुर्गंधका आना, प्रतिश्यायका दुष्ट वेग होना और वारंवार कोप होना यह सब दुष्ट प्रतिश्यायके लक्षण हैं ॥ १०८ ॥

छींक और नासाशोप।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्निविष्वक्पथस्थः क्षवथुंकरोति ।
क्रुद्धःससंशोष्यकफन्तुनासाशृङ्गाटकाघ्राणविशोपणश्च ॥ १०९ ॥

हृदय और मस्तकके संपूर्ण मार्गोंको स्पर्शकर मस्तमें स्थित हुआ वायु मस्तकस्थ मार्गमें स्थित हो क्षवथु (छींक) नामक रोगको उत्पन्न करताहै। वही वायु कफको सुखाकर नासिका और घ्राणमार्गमें शोपको उत्पन्न करताहै ॥ १०९ ॥

प्रतिनाह और परिस्राव।

उच्छ्वासमार्गन्तुकफःसवातोरुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ।
घ्राणाद्धनःपीतसितस्तनुर्वादोपःस्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ ११० ॥

कफ वायुके साथ मिलकर उच्छ्वास मार्गको रोक देवे उसको प्रतिनाह कहतेहैं। अर्थात् कफ,वायु नाकके द्वारा श्वास प्रतिश्वासका बन्द होजाना प्रतिनाह कहाताहै। नाकके मार्गमे गाढा, पीला अथवा सफेद स्राव होनेको परिस्राव कहतेहैं ॥ ११० ॥

अपीनस और पूतिनासा।

योमस्तुलुङ्गाद्घनपीतपक्वःकफःस्रवेद्वाढमपीनसःसः ।
वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयातुस्यात्पूतिनस्यंश्वयथुर्भ्रमश्च ॥ १११ ॥

नाकद्वारा चिकना, भारी, मस्तुलुंग समान पीला, पकाहुआ, गाढा, स्राव हो उसको अपीनस कहतेहैं। प्रतिश्यायका यत्न न करनेसे नाककी विवर्णता, दुर्गंध, सूजन और भ्रम होनेको पूतिनासा कहतेहैं ॥ १११ ॥

आनह्यतेयस्यविशुष्यतेचप्रक्लिद्यतेधूप्यातियस्यनासा ।
नवेत्तियोगन्धरसांश्चजन्तुर्जुष्टंव्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ ११२ ॥

जिसके नाकमें अनाह (नाकबन्द होजाना) शोप, क्लेद, धूआंसा निकलना तथा संताप हो और नाकसे किसी प्रकारकी गंधका ज्ञान न हो उसको अपीनस रोगसे ग्रसाहुआ जानना चाहिये ॥ ११२ ॥

घ्राणपाक और नासाशोथ।

सदाहरागःश्वयथुःसपाकःस्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपित्तात् ।
घ्राणाश्रितासृक्प्रभृतीन्प्रदूष्यकुर्वन्तिनासाश्वयथुंमलाश्च ॥११३॥

नाकमें दाह, अरुणता, सूजन और पाक हो उसको घ्राणपाक कहतेहैं यह घ्राणपाक रोग रक्तपित्तसे उत्पन्न होताहै। वातादि दोष घ्राणाश्रित रक्त आदिको दूषित कर नाकमें सूजनको उत्पन्न करतेहैं। ११३ ॥

नासार्बुद और पूयरक्त।

घ्राणेतथोच्छ्वासगतिंनिरुध्यमांसास्त्रदोषादपिचार्बुदानि ।
घ्राणात्स्रवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वापित्ताक्तमस्रन्त्वपिपूयरक्तम् ॥११४॥

वातादि दोष रक्तको दूषितकर नाकमें श्वासकी गतिको रोकनेवाली गांठसी उत्पन्नकर दें उसको नासार्बुद कहतेहैं। नाकसे अथवा कानोंसे या मुखसे पित्त मिले हुये रक्तका स्राव हो उसको पूयरक्त कहतेहैं ॥ ११४ ॥

अरुंषिका और नासादीप्त।

कुर्य्यात्सपित्तःपवनस्त्वगादीन्संदूष्यचारूंपिसपाकवन्ति ।
नासाप्रदीप्तेवनरस्ययस्यदीप्तंतुतंरोगमुदाहरन्ति ॥ ११५ ॥

पित्तयुक्त वायु त्वचा आदिको दूषितकर पाकयुक्त छोटी २ फुन्सियोंको उत्पन्न करे उसको अरुंषिका कहतेहैं। जिसका नाक गरम अग्निके समान प्रज्वलित रहे उसको नासादीप्तरोग कहतेहैं ॥ ११५ ॥

वातजप्रतिश्याय (पीनस, जुकाम) की चिकित्सा ।

वातात्सकासवैस्वर्य्यंसक्षारंपीनसेघृतम् ।
पिबेद्रसंपयश्चोष्णंस्नैहिकंधूममेववा ॥ ११६ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें खांसी और स्वरभेद हो तो जवाखार मिलाकर घृतपान करे तथा गर्म मांसरस और गर्मगर्म दूध एवं स्नैहिक धूमपान करना हितकारीहै ॥११६॥

शताह्वात्वग्वलामूलंश्योणाकैरण्डविल्वजम् ।
सारग्वधांपिबेद्वर्त्तिंमधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥ ११७ ॥

सोंठ, दालचीनी और खरैटीकी जड अथवा सोनापाठा, एरण्डकी जड और बेलकी जडका छिलका अथवा अमलतासकी जड इन तीन योगोंमेंसे किसी एकको मोम, चर्वी और घृतके साथ बत्ती बनाकर धूमपान करे तो वातजनित प्रतिश्याय (जुकाम) दूर होता है ॥ ११७ ॥

अथवासघृतान्सक्तून्कृत्वामल्लकसम्पुटे ।
नवप्रतिश्यायवतांधूमंवैद्यःप्रकल्पयेत् ॥ ११८ ॥

अथवा घृत मिलेहुए यवके सत्तुओंको मल्लीके संपुटमें रख धूमपान करे तो नवीन प्रतिश्याय दूर होताहै ॥ ११८ ॥

शंखमूर्द्धललाटार्त्तौपाणिस्वेदोपनाहनम् ।
स्वभ्यक्तेक्षवथुस्रावरोधार्दौसङ्करादयः ॥ ११९ ॥

यदि कनपटी, शिर और ललाटमें पीडा होतीहो तो हाथोंको अग्निपर सेककर, मस्तक और कनपटियोंको उन गर्म गर्म हाथोंसे स्वेदन करे तथा गर्म चिकने हलुवे आदिसे उपनाह स्वेद करे । यदि छींक और स्रावका अवरोध होकर मस्तक आदिकोंमें पीडा हो तो तैलादिकोंकी मालिश कर शंकर आदि स्वेदका प्रयोग करे॥ ११९ ॥

घ्रेयाश्चरौहिषाजाजीवचातर्कारिचोरकाः ।
त्वक्पत्रमरिचैलानांचूर्णैर्वासोपकुञ्चिकैः ॥ १२० ॥

रोहिषतृण, कालाजीरा, वच, आणी, चोरक इन सबका चूर्ण बना नस्य लेवे । अथवा दालचीनी, तेजपत्र, कालीमिर्च, छोटी इलायची और काले जीरेका चूर्णकर सूंघे ॥ १२० ॥

अणुतैल ।

स्रोतःशृंगाटनासाक्षिशोषेतैलंसनावनम् । प्रभाव्याजेतिलान्क्षीरे

१ दो शरावोंके सम्पुटमें रख नाल लगाकर धूमपान करनेको मल्लकसंपुट कहते है ।

तेनपिष्टांस्तदूष्मणा ॥ १२१ ॥ मन्दस्विन्नान्सयष्ट्याह्वचूर्णास्तेनै-वपीडयेत् । दशमूलस्यनिष्काथैरास्नामधुककल्कवत् ॥ १२२ ॥ सिद्धंससैन्धवंतैलंदशकृत्वोऽणुतत्स्मृतम् । स्निग्धस्यास्थापनैर्दो-षंनिर्हरेद्वातपीनसे ॥ १२३ ॥

स्रोत, कण्ठ, काक और नासिका तथा नेत्रोंमें शोष प्रतीत हो तो नीचे लिखे तेल की नावन (नसवार) लेना चाहिये । काले तिलोंको बकरीके दूधमें भावना देकर दूधमें घोटलेवे । फिर बकरीके दूधको हांडीमें चढाकर हांडीके मुखपर कपडा बांध उन तिलोंकी पीठीको उस कपडेपर रख देवे । फिर नीचेसे आग जलावे । जब दूधकी भाफसे वह तिलोंकी पीठी धीरे धीरे स्वेदित होजाय तो उस तिलोंकी पीठीमें मुलैठीका चूर्ण मिलाकर उसमें बकरीके दूधका छिडका दे पीठीको जोरसे कपडेमें डालकर निचोडे । उस निचोडनेसे जो तेल निकले उस तेलसे चारगुना दशमूलका क्वाथ मिलावे तथा तेलसे चौथा भाग रासना, मुलैठी और सेंधेनमकका कल्क मिला पकावे । जब पककर ठीक होजाय तो उसमें फिर दशमूलका क्वाथ और बकरीका दूध तथा रासना, मुलैठी और सेंधे नमकका कल्क मिला पकावे इस प्रकार दशबार पकावे । इस तेलको अणुतैल कहते हैं ॥ इस तेलको वातजनित प्रतिश्यायमें नस्य देना परम हितकारी है । तथा वातजप्रतिश्यायमें प्रथम रोगीको स्निग्धकर आस्थापनद्वारा दोषको हरण करना चाहिये ॥ १२१ । १२२ । १२३ ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नंग्राम्यादीनांरसैर्हितम् । उष्णाम्बुनास्नान-पानेनिवातोष्णप्रतिश्रयः ॥ १२४ ॥ चिन्ताव्यायामवाक्चेष्टाव्य-वायविरतोभवेत् । वातजेपीनसेधीमानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥ १२५ ॥

वातजनित प्रतिश्यायमें ग्राम्यादि जीवोंका मांसरस स्निग्ध, अम्ल और उष्ण करक हलके अन्नके साथ सेवन कराना हितकारक है । तथा स्नान और पानमें गर्मजलका प्रयोग एवं निर्वात और गर्मस्थानमें निवास करना हितकारी है। तथा वातज प्रतिश्यायमें चिन्ता, व्यायाम, अधिक बोलना, अधिक चेष्टा और मैथुनको अपने हितकी इच्छावाला बुद्धिमान् मनुष्य त्याग देवे ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

पैत्तेसर्पिःपिवेत्सिद्धंशृङ्गवेरशृतंपयः ।
पाचनार्थंपिवेत्पक्केकार्य्यंमूर्द्धविरेचनम् ॥ १२६ ॥

पित्तजनित पीनसमें तिक्तक आदि घृत और सोंठसे सिद्धकिया दूध पीनसको

पकानेके लिये पीव और पीनसके पकजानेपर मूर्धविरेचन अर्थात् नस्यद्वारा मस्तकका दोष निकाल देना हितकारी है ॥ १२६ ॥

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्याचसाधितंतैलंनस्यंसम्पक्वपीनसे ॥ १२७ ॥

पाटला, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दंती इन सबके कल्कसे तेलको सिद्ध करे। पकीहुई पीनसमें इस तेलकी नस्य लेना परम हितकारी है ॥ १२७ ॥

पूयास्रेरक्तपित्तघ्नःकषायानावनानिच ।
पाकदाहाद्यरूक्षेपुशीतालेपाःससेचनाः ॥ १२८ ॥

पीव और लोहूमें रक्तपित्तनाशक क्वाथ और सुंघनी हितकारक हैं। नासिकाके दाह और पाकमें तथा रूक्षतामें शीतल लेप और सेचन करना हितकारीहै ॥१२८॥

स्नेहनस्योपचाराश्चकषायाःस्वादुशीतलाः ।
मन्दपित्तेप्रतिश्यायेस्निग्धैःकुर्याद्विरेचनम् ॥ १२९ ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें स्निग्ध नस्य तथा मीठे और शीतल क्वाथोंका प्रयोग करना हितकारी होताहै। यदि पित्तकी अधिकता न हो तो स्निग्ध विरेचन करना चाहिये ॥ १२९ ॥

घृतंक्षीरंयवाःशालिर्गोधूमाजाङ्गलारसाः ।
शीताम्लास्तिक्तशाकानियूषामुद्गादिभिर्हिताः ॥ १३० ॥

पित्तजनित प्रतिश्यायमें घृत, दूध, शालीचावल, गेंहूं तथा बकरेका मांसरस और जंगली जीवोंका मांसरस शीतल अम्ल और तिक्त शाक तथा मूंग आदिके यूप हितकारक होतेहैं ॥ २३० ॥

कफजनित प्रतिश्यायकी चिकित्सा ।

गौरवारोचकेष्वादौलंघनंकफपीनसे ।
स्वेदाःसेकाश्चपाकार्थंलिप्तेशिरसिसर्पिषा ॥ १३१ ॥

कफजनित प्रतिश्यायमें भारीपन और अरुचि हो तो प्रथम लंघन कराना चाहिये। फिर मस्तकको घृतसे चिकना कर कफको पकानेके लिये स्वेदन करे १३१

लशुनंमुद्गचूर्णेनव्योपक्षारघृतैर्युतम् ।
देयंकफघ्नंवमनमुत्क्लिष्टश्लेष्मणेहितम् ॥ १३२ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफका उत्क्लेश हो तो मूंगका चूर्ण, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और घृतके साथ लहसुनका प्रयोग करे तथा कफनाशक द्रव्योंसे वमन करावे ॥ १३२ ॥

अपीनसेपूतिनस्येघ्राणस्रावेसकण्डुके।
धूमः शस्तोऽवपीडश्चकटुभिःकफपीनसे ॥ १३३ ॥

कफजनित पीनसमें अपीनस, पूतीनस, घ्राणस्राव और खुजली हो तो धूमपान और चरपेरे द्रव्योंकी सुंघनी लेना चाहिये ॥ १३३ ॥

मनःशिलावचाव्योषंविडङ्गंहिङ्गुगुग्गुलुः।
चूर्णैःप्रायःप्रधमनंकटुभिश्चफलैस्तथा ॥ १३४ ॥

मनशिल, वच, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, हींग और गूगलको वारीक पीसकर नलकीमें डालकर नाकमें प्रधमन करे। अथवा सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, वहेडा, आँवला इन सबको चूर्णकर नाकमें प्रधमन करे तो कफजनित प्रतिश्याय और अपीनस, पूतीनस्यादि विकार दूर होतेहैं ॥ १३४ ॥

भार्गीमदनतर्कारीसुरसादिविपाचितम्।
तैलंसर्षपजंवल्यंकफपीनसशान्तये ॥ १३५ ॥

भारंगी, मैनफल, जयंती और सुरसादिगणमें सिद्ध कियाहुआ सरसोंका तेल कफ जनित प्रतिश्यायको शान्त करताहै और मस्तकको वल देताहै ॥ १३५ ॥

आर्त्तकालवचालंवाविडङ्गंकुष्ठपिप्पली। कृत्वाकल्कंकरञ्जश्चतैलं तैःसार्षपंपचेत्। पाकान्मुक्तेघनेनस्यमेतन्मेदोऽन्वितेकफे ॥१३६॥

कूठ, काला अगर, वच, मैनशिल, वायविडंग, कूठ, पीपल और कांजुएके फलोंका कल्ककर सरसोंके तेलको सिद्ध करे। जब कफका प्रतिश्याय पकजाय तथा घन और मेदयुक्त दोष निकले तो इस तेलकी नस्य देना चाहिये ॥ १३६ ॥

स्निग्धस्यव्याहतेवेगेछर्दनंकफपीनसे।
वमनीयश्रृतक्षीरतिलमाषयवागुभिः ॥ १३७ ॥

यदि कफजनित प्रतिश्यायमें कफ बद्ध होकर रुकजाय तो रोगीको स्निग्धकर वमन करादेना चाहिये। वमनीयगणके साथ सिद्ध किया दूध, तिल, उडद और यवोंका यवागू आदि पिलाकर वमन कराना चाहिये ॥ १३७ ॥

वार्त्ताककुलकव्योषकुलत्थाढकिमुद्गजाः।
यूषाःकफघ्नमन्नश्चशस्तमुष्णाम्बुसेचनम् ॥ १३८ ॥

कफके प्रतिश्यायमें बैंगन, पटोल, त्रिकुटा, कुलथी, अरहर और मूंगका यूष तथा कफनाशक अन्न और गरमजलका सेचन हितकारी है ॥ १३८ ॥

सन्निपातज और दुष्टप्रतिश्यायादिनासारोगोंकी चिकित्सा ।

सर्वजित्पीनसेदुष्टेकार्य्यशोफेचशोफजित् ।
क्षारोऽर्बुदाधिमांसेषुक्रियाःसर्वेष्ववेक्ष्यच ॥ १३९ ॥

सन्निपातज और दुष्ट प्रतिश्यायमें सर्वदोषनाशक क्रिया और सूजनमें शोथनाशक क्रिया तथा नासार्बुद और नासाधिमांसमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर उचित रीतिसे चिकित्सा करना चाहिये ॥ १३९ ॥

शिरोरोगका निदान ।

भृशार्त्तिशूलंस्फुरतीहवातात्पित्तात्सदाहार्त्तिकफाद्गुरुःस्यात् ।
सर्वैस्त्रिदोषंक्रिमिभिस्तुकण्डूदौर्गन्ध्यतोदार्तियुतंशिरःस्यात् १४०॥

वातजनित शिरोरोग (मस्तकपीडा) में अत्यंत पीडा, शूल और मस्तकका फडकना यह लक्षण होतेहैं । पित्तजनित शिरोरोगमें दाह और पीडा होतीहै । कफके शिरोरोगमें मस्तक अत्यंत भारी होताहै । सन्निपातके शिरोरोगमें सब दोषोंके मिले जुले लक्षण होतेहैं । कृमिजन्य शिरोरोगमें मस्तकमें अत्यंत खाज, दुर्गंध, सूई चुभनेकीसी पीडा और शूल होताहै ॥ १४० ॥

वातज शिरोरोगकी चिकित्सा ।

वातिकेशिरसोरोगेस्नेहान्स्वेदान्सनावनान् ।
पानान्नमुपनाहांश्चकुर्य्याद्वातामयापहान् ॥ १४१ ॥

वातजनित शिरोरोगमें स्नेहन, स्वेदन, नस्यकर्म तथा वातनाशक अन्नपान और उपनाहस्वेदका प्रयोग करना चाहिये ॥ १४१ ॥

तैलभृष्टैरगुर्वाद्यैःसुखोष्णैश्चोपनाहनम् ।
जीवनीयैःसुमनसामत्स्यैर्मांसैश्चशस्यते ॥ १४२ ॥

ज्वरचिकित्साध्यायमें जो अगर आदि तैल कहआये हैं उन तेलोंके द्रव्योंका कल्क तेलमें भूनकर उस गरम गरम कल्कसे मस्तकको स्वेदन करे । तथा इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंके कल्कको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको उपनाहस्वेद करे । अथवा मालती आदि पुष्पोंके कल्कसे इसी प्रकार उपनाह करे । या मछलीके मांसको तेलमें भूनकर उससे मस्तकको स्वेदन करे ॥ १४२ ॥

---

१ सूर्यावर्त्त आदि शिरोरोगोंका वर्णन सिद्धिस्थानके ९ वें अध्यायमें आयेगा ।

रास्नास्थिरादिभिःसिद्धंसक्षीरंनरयमर्त्तिनुत् ।
तैलंरास्नाद्विकाकोलीशर्कराभिरथापिवा ॥ १४३ ॥

रासना और लघुपंचमूलके कल्कसे तथा दूधमें सिद्ध कियेहुए तेलकी नस्य लेना वातजनित मस्तक पीडाको दूर करता है । तथा रसना, काकोली, क्षीरकाकोली, शर्करा और दूध मिलाकर सिद्ध किया हुआ तेल वातजन्य मस्तक पीडाको दूर करताहै ॥ १४३ ॥

बलादि तैल ।

वलामधूकयष्ट्याह्वविदारीचन्दनोत्पलैः ।
जीवकर्षभकद्राक्षाशर्कराभिश्चसाधितः ॥ १४४ ॥
प्रस्थस्तैलस्यसक्षीरोजाङ्गलार्द्धतुलारसे ।
नस्यंसर्वोर्द्धजत्रूत्थवातपित्तामयापहम् ॥ १४५ ॥

बाला, महुआ, मुलैठी,बिदारी कंद, लालचन्दन,नीलोफर, जीवक, ऋषभक,द्राक्षा और शर्करा का कल्क १ पांव, तेल १ सेर, दूध २॥ सेर जंगली जीवोंका मांसरस २॥ सेर इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ तेल नस्यकर्मोंमे प्रयुक्त करनेसे उर्द्धजत्रुगत संपूर्ण वातापित्तके रोग नष्ट होतेहै ॥ १४४ ॥ १४५ ॥

मायूरघृत ।

दशमूलवलारास्नात्रिफलामधुकैःसह । मायूरंपक्षपित्तान्त्रशकृत्तुण्डांघ्रिवर्जितम् ॥ १४६ ॥ जलेपक्त्वाघृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत्। मधुरैःकार्षिकैःकल्कैःशिरोरोगार्दितापहम् ॥ १४७ ॥ कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाताल्वास्यगलरोगनुत्। मायूरमितिविख्यातमूर्द्धजत्रुगदापहम् ॥ १४८ ॥

दशमूल, बला, रासना, त्रिफला और मुलैठी इन १६ औषधियोंको १ सेर लेवे । और पंख, पित्त, आंत, मल और तुण्डके विना मोरका मांस १ सेर १ लेवे । इन सबको ३२ सेर पानीमें पकाकर ४ सेर पानी शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इस रसमें १ सेर घृत ४ सेर दूध और मधुरगणकी प्रत्येक औषधी एक एक तोला लेकर बारीक पीस मिलावे । सबको एकत्रकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । यह शिरोरोगको दूर करनेवाला है तथा कान, नेत्र, नासिका, जिह्वा, तालु और गलेके रोगाको नष्ट करताहै । यह घृत ऊर्द्धजत्रुओंके रोगोंको हरनेवाला मायूरघृतक नामसे प्रसिद्ध है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥

महामायूर घृत।

एतेनैवकषायेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । चतुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्च कार्षिकैः ॥ १४९ ॥ जीवन्तीत्रिफलामेदामधुकर्द्धिपरूषकैः। समङ्गाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ १५० ॥ आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः । मृणालविसशालूकशृंगीजीवकपद्मकैः ॥ १५१ ॥ शतावरीविदारीक्षुबृहतीशारिवायुगैः । मूर्वाश्वदंष्ट्रर्षभकशृंगाटककशेरुकैः ॥ १५२ ॥ रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशटिपुष्करैः । पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः ॥ १५३ ॥ मधूकाक्षोटवातामसुञ्जाताभिपुकैरपि । द्रव्यैरेभिर्य्यथालाभंपूर्वकल्केनसाधितम् ॥ १५४ ॥ तत्पक्वंनावनेऽभ्यंगेपानेवस्तौप्रयोजयेत् । शिरोरोगेपुसर्वेषुकासेश्वासेचदारुणे ॥ १५५ ॥ मन्यापृष्ठग्रहेशोषेस्वरभेदेतथार्दिते। योऽन्यसृक्शुक्रदोषेपुशस्तंवन्ध्यासुतप्रदम् ॥ १५६ ॥ ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रंप्रसूयते। महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥ १५७ ॥

उपरोक्त दशमूल आदि औषधियोंका और मोरके मांसका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, घृत १ सेर तथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, मुलैठी, ऋद्धि, फालसा, बाराहक्रांता, चव्य, भारंगी, कुम्भेर, देवदारु, कौंचके बीज, महामेदा, ताडवृक्ष और खजूरकी कोपल, कमलकी जड, कमलकी डंडी, कमलका कन्द, काकडीसिंगी, जीवक, पद्माख, शतावर, विदारीकन्द, ईखकी जड, वडी, कटेली, दोनों शारिवा, मूर्वा, गोखरू, ऋषभक, सिंघाडे, कसेरू, रासना, शालपर्णी, भूमिआँवला, छोटी इलायची, कचूर, पोहकरमूल, पुनर्नवा, वंशलोचन, काकोली, जवासा, महुएके फल, अखरोट, वादाम, मुंजातक और अभिपुक इन सब द्रव्योंको अथवा इनमेंसे जितने मिलसकें एक एक तोला लेकर कल्क करे। इस कल्कको उपरोक्त क्वाथ घृत, दूध आदिमें मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहे तब उतारकर छान लेवे इस घृतको नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिमें प्रयुक्त करनेसे सब प्रकारके शिरोरोग, खांसी, दारुण श्वास, मन्यास्तम्भ, पीठका जकडना, शोष, स्वरभंग, अर्दित, योनिदोष, रक्तदोष और शुक्रदोष दूर होते हैं। तथा इसके सेवनसे वंध्यापन नष्ट

१ फलविशेष।

होता है एवं ऋतुस्नानसे शुद्ध हुई स्त्री इसके सेवन करनेसे गर्भवती होकर पुत्रको उत्पन्न करती है इस महामायूर घृतकी महर्षि आत्रेयजीने अत्यंत प्रशंसा की है॥ १४९-१५७॥

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिबुद्धिमान् ।
कल्पेनानेनविपचेत्सर्पिरूर्द्ध्वगदापहम् ॥ १५८ ॥

अथवा उपरोक्त विधिसे मूषक, मुर्गा, हंस, शशा इनमेंसे किसी एकके मांसको लेकर उपरोक्त मायूर घृतके द्रव्योंके साथ घृत सिद्ध करे तो यह घृतभी ऊर्द्ध्वजत्रुगत रोगोंको दूर करते हैं ॥ १५८ ॥

पित्तजशिरोरोगकी चिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः ।
जीवनीयानिसर्पींषिपानान्नञ्चापिपित्तनुत् ॥ १५९ ॥

पित्तजनित शिरोरोगमें घृत, दूध, शीतल द्रव्योंसे सेचन, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय द्रव्योंसे सिद्ध किये घृत और पित्तनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १५९ ॥

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्याच्छृतैर्वापरिषेचनम् ॥ १६० ॥

चन्दन, खस, मुलैठी बला, व्याघ्रनखी और नीलोफरको दूधमें पीसकर मस्तकपर लेप करे अथवा इन्हीं द्रव्योंको दूध या जलमें पकाकर शीतल कर मस्तकपर धारा देवे ॥ १६० ॥

त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपिष्टस्तण्डुलाम्बुना ।
कार्य्योऽवपीडसर्पिश्चनस्यंतत्स्यात्तुपैत्तिके ॥ १६१ ॥

दालचीनी, तेजपत्र और खांडको चावलोंके जलमें पीसकर पोटली बनावे । उस पोटलीका रस नाकमें टपकावे । उसके अनन्तर घृतकी नसवार देवे तो पित्तजनित शिरोरोग दूर होता है ॥ १६१ ॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् ।
नावनंशर्कराद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥ १६२ ॥

मुलैठी, लालचंदन और शारिवाका कल्क १ पाव, घी १ सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्धकरे इस घृतकी नस्य लेना पित्तज शिरोरोगको दूरकरता है। तथा शर्करा, दाख और मुलैठीसे सिद्ध कियेहुए घृतका भी नस्य पित्तज शिरोरोगको दूर करताहै ॥ १६२॥

कफजशिरोरोगकी चिकित्सा।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः।
शुद्धंप्रलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥ १६३ ॥

कफजनित शिरोरोगमें प्रथम स्वेदन करके फिर धूम नस्य और प्रधमनादि द्वारा शिरोविरेचन करावे तथा कफनाशक प्रलेपन और अन्नपानका प्रयोग करावे॥ १६३ ॥

अन्य शिरोरोगोंमें क्रिया।

पुराणसर्पिषः पानैस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरेवच।
कफानिलोत्थितेदाहःशोषयोरक्तमोक्षणम् ॥ १६४ ॥

पुराने घीके पीनेसे और तीक्ष्ण वस्ति करनेसे कफ और वायुसे उत्पन्न हुआ शिरोरोग दूर होता है। दाग देनाभी कफवातके शिरोरोगको दूर करताहै और सन्निपातज तथा कृमिजन्य शिरोरोगोंमें रक्तमोक्षण करना हितकारक है ॥ १६४ ॥

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुल्वगुरुचन्दनैः।
धूमवर्त्तिपिबेद्गन्धैःसकुष्टतगरैस्तथा ॥ १६५ ॥

एरण्डकी जड, खस, गूगुल, अगर और लाल चंदनका चूर्ण कर धूमवर्त्तिका प्रयोग करे अथवा काली अगर, कूठ और तगरको पीसकर धूमवर्त्ती बनावे। इन दोनों प्रकारकी धूमवर्त्तियोंके प्रयोग करनेसे कफजनित शिरोरोग दूर होता है ॥ १६५ ॥

सन्निपातभवेकार्य्यासन्निपातहिताक्रिया।
क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णंमूर्द्धविरेचनम् ॥ १६६ ॥

सन्निपातके शिरोरोगमें सन्निपातनाशक क्रिया करना चाहिये। कृमिजन्य शिरोरोगमें तीक्ष्ण मूर्द्धविरेचन कराना हितकारक है ॥ १६६ ॥

त्वग्दन्तीव्याघ्रकरजविडंगनवमालिका। अपामार्गफलंबीजंनक्तमालशिरीषयोः। क्षवकोश्मन्तकोबिल्वंहरिद्राहिंगुयूथिका॥१६७॥ फणिज्झकश्चतैस्तैलमविमूत्रेचतुर्गुणे। सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णश्चैषां प्रधमनंहितम् ॥ १६८ ॥

दालचीनी, दंती, व्याघ्रनखी, वायविडंग, नवमालिका (वनमालती) अपामार्गके बीज, कंजुएके फल, सिरसके बीज, क्षवक (नकछिकनी या राई), अश्मंतक, बिल्वकी गिरी, हलदी, फूलप्रियंगु, जही और फणिज्झकतुलसी इन सब

द्रव्यांके कल्क और चारगुणे भेडके मूत्रसे सिद्धकिये हुए तेलके नस्य लेनेसे सन्निपातज और कृमिजन्य शिरोरोगको दूर करताहै। अथवा इन्हीं द्रव्योंके बारीक चूर्णको दोनों नथनोंमें प्रधमन करना (नली द्वारा फूंकना) भी कृमिजन्य मस्तकपीडाको दूर करताहै ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

फलंशिग्रुकरञ्जाभ्यांसव्योषश्चावपीडकम् । कषायःस्वरसःक्षारश्चूर्णकल्कोऽवपीडकः । शुक्ततिक्तकटुक्षौद्रकषायैःकवलग्रहः॥१६९॥

मुहांजनेके बीज और करंजके बीजोंके चूर्णको त्रिकुटेके चूर्णमें मिलाकर जलके संयोगसे पोटली बना दोनों नथनोंमें टपकाना तथा इन्हीं द्रव्योंके काथ, स्वरस, क्षार, चूर्ण, कल्क और अवपीडन करना शिरोरोगमें हितकारी है। एवं कटु तिक्त द्रव्योंके काथमें शहद मिलाकर मुखमें धारणकर कुल्ला करना भी शिरोरोगको शान्त करताहै ॥ १६९ ॥

वातज मुखरोगके लक्षण।

मुखामयेमारुतजेतुशोपकार्कश्यरौक्ष्याणिचलारुजश्च ।
कृष्णारुणंनिष्पतनंसशीतंप्रस्रंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥ १७० ॥

वातजनित मुखरोगमें मुखमें सूखापन, कठोरता, रूक्षता, चंचल पीडा, काला, लाल और कुछ २ शीतल मुखसे स्राव होना, दांतोंका हिलजाना मुखमें फडकनसी प्रतीत होना तोद और भेद यह लक्षण होतेहैं ॥ १७० ॥

पित्तज मुखरोगके लक्षण।

तृष्णाज्वरस्फोटकतालुदाहाधूमायनश्चाप्यवदीर्णताच ।
पित्तास्रमूर्च्छाविविधारुजश्चवर्णाश्चशुक्लारुणवर्णवर्ज्याः ॥ १७१ ॥

पित्तजनित मुखरोगमें प्यास, ज्वर, मुखमें छाले वा पकनेवाले फोडे, तालुमें दाह, मुखमें धूमके समान उठना प्रतीत हो, मुखका अवदारण (दांतोंका निकलना वा हिलना अथवा जखमोंका फटना), मूर्च्छा अनेक प्रकारकी पीडा तथा सफेद और लालवर्णके सिवाय अन्य काले, पीले आदि अनेक प्रकारके वर्ण होना यह लक्षण होतेहैं ॥ १७१ ॥

कफज मुखरोगके लक्षण।

कण्डूर्गुरुत्वंसितविज्जलत्वंस्नेहोऽरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ ।
उत्क्लेशमन्दानलताचतन्द्रारुजश्चमन्दाः कफवक्त्ररोगे ॥ १७२ ॥

कफजनित मुखरोगमें खुजली, भारीपन, श्वेतवर्ण, गाढा और चिकना स्राव,

अरुचि, जडता, कफका निकलना, कफका उत्क्लेश, मंदाग्नि, तन्द्रा और मन्दमन्द पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ १७२ ॥

सन्निपातज मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुवक्ररोगेभवन्तियस्मिन्सतुसर्वजःस्यात् ।
संस्थानदूष्याकृतिनामभेदाच्चैतेचतुःषष्टिविधाभवंति ॥ १७३ ॥

सन्निपातज मुखरोगमें तीनों दोषोंके मिले जुले लक्षण होतेहैं । संस्थान दूष्य और आकृति तथा नामभेदसे मुखरोग चौंसठ प्रकारका होताहै ॥ १७३ ॥

शालाक्यतन्त्रेविहितानितेषांनिमित्तरूपाकृतिभेषजानि ।
यथाप्रदेशन्तुचतुर्विधस्यक्रियांप्रवक्ष्यामिमुखामयस्य ॥ १७४ ॥

इन मुखरोगोंके निदान और लक्षण आदिका शालाक्यतंत्र अर्थात् शस्त्रचिकित्सामें विशेषरूपसे वर्णन कियाहै । अब हम केवल वातादिभेदसे चार प्रकारके मुखरोगोंकी चिकित्साका वर्णन करतेहैं ॥ १७४ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

धूमःप्रधमनंशुद्धिरधश्छर्दनलङ्घनम् ।
भोज्यश्चमुखरोगेषुयथास्वंदोषनुद्धितम् ॥ १७५ ॥

मुखरोगमें शिरका, तिक्त कसैले और मधुरग्सोंसे कवल धारणकरना तथा धूमप्रयोग, प्रधमन, विरेचन द्वारा मलाशयकी शुद्धि, वमन, लंघन और दोषानुसार अन्नपानक्रम द्वारा उपचार करना चाहिये ॥ १७५ ॥

पिप्पल्यादि कवल ।

पिप्पल्यगुरुदार्वीत्वग्यवक्षारोरसाञ्जनम् । पाठांतेजोवतींपथ्यांसमभागंसुचूर्णितम् ॥ १७६ ॥ मुखरोगेषुसर्वेषुसक्षौद्रंतद्विधारयेत् ।
शीधुमाधवमाध्वीकैः श्रेष्ठोऽयंकवलग्रहः ॥ १७७ ॥

पीपल, अगर, दारुहलदी, दालचीनी, जवाखार, रसौत, पाटला, तेजवल, हरड इन सबको समभाग लेकर चूर्णकरे । इस चूर्णको शहद, शीधु, माध्वीक मद्य अथवा मध्वासवमें मिलाकर मुखमें कवल धारण करना सब प्रकारके मुखरोगोंको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

तेजोवत्यादि चूर्ण ।

तेजोह्वामभयामेलांसमङ्गांकटुकांघनम् । पाठांज्योतिष्मतींलोध्रंदा-

---

१ शालाक्यतन्त्र सुश्रुतमें देखो ।

वींकुष्ठश्चचूर्णयेत् ॥ १७८ ॥ दन्तानांघर्षणाद्रक्तस्रावकण्डूरुजापहम् ॥ १७९ ॥

तेजोवती (तेजबल या चव्य),हरड, छोटी इलायची,मंजीठ, कुटकी, नागरमोथा, पाठा, मालकांगुनी, पाठानी लोध, दारुहल्दी और कूट इन सबको समान भाग ले चूर्ण करे इस चूर्णको दांतोंकी जडोंमें मलनेसे रक्तस्राव, खुजली और पीडा दूर होतीहै ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

पंचकोलादिगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः । पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्चचूर्णिताः । गुडेपुराणेद्विगुणेक्वथितेगुडिकाः कृताः ॥ १८० ॥ कर्कन्धुमात्राःसताहंस्थितामुष्ककभस्मनि । कण्ठरोगेपुसर्वेपुधार्याःस्युरमृतोपमाः ॥ १८१ ॥

पंचकोल, तालीशपत्र, इलायची, मिर्च, दालचीनी, पलाशका क्षार, मोपावृक्षका क्षार, जवाखार इन सबका चूर्ण कर सबसे दुगुने गुडमें पका बेरके समान गोलियें बनावे । इन गोलियोंको सात दिन तक मोपा (घंटापाढर) की भस्ममें दबाकर रक्खे फिर १ गोली नित्य मुखमें रखनेसे सब प्रकारके मुखरोग और कण्ठरोगोंको दूर करनेमें अमृतके समान है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कालकचूर्ण ।

गृहधूमोयवक्षारपाठाव्योपंरसाञ्जनम् । तेजोह्वात्रिफलालोध्रंचित्रकश्चेतिचूर्णितम् ॥ १८२ ॥ सक्षौद्रंधारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् । कालकंनामतच्चूर्णंदन्तास्यगलरोगनुत् ॥ १८३ ॥

घरका धूआं, जवाखार, पाठला, सोंठ, मिर्च, पीपल, रसौत, तेजोहर्ल, हरड, बहेडे, आँवले, लोध और चित्रकको बराबर लेकर चूर्ण करे । इस चूर्णको शहदमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे सब प्रकारके कुष्ठरोग दूर होतेहैं । यह कालकनामका चूर्ण दंतरोग, मुखरोग और गलरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

पीतकचूर्ण ।

मनःशिलायवक्षारोहरितालंससैन्धवम् । दार्वीत्वक्चेतितच्चूर्णं माक्षिकेणसमायुतम् ॥ १८४ ॥ मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेपुधारयेत् । मुखरोगेपुचश्रेष्ठंपीतकंनामकीर्त्तितम् ॥ १८५ ॥

मनशिल, जवाखार, हरताल, सेंधानमक, दारुहल्दी, दालचीनी इन सबके चूर्णको

शहद और घृतमण्डमें मिलाकर मुखमें धारण करे तो यह पीतक चूर्ण कण्ठरोग और मुखरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

मृद्वीकादिचूर्ण ।

मृद्वीकाकटुकाव्योषंदार्वीत्वक्त्रिफलाघनम् ।
मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेषुधारयेत् ॥ १८६ ॥

मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मिर्च, पीपल, दारुहल्दी, हरड, बहेडे, आँवले और नागर मोथेका चूर्ण कर घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो मुखरोग दूर होताहै ॥ १८६ ॥

पाठांरसाञ्जनंमूर्वांतेजोह्वेतिचचूर्णितम् । क्षौद्रयुक्तंविधातव्यंगल-
रोगेभिषग्जितम् । योगास्त्वेतेत्रयःप्रोक्तावातपित्तकफापहाः ॥१८७॥

पाटला, रसौत, मूर्वा और तेजोवतीको समान भाग लेकर शहद और घृतमण्डमें मिला मुखमें धारण करे तो सब प्रकारके कण्ठरोग दूर होतेहैं । यह तीन योग अर्थात् कालकचूर्ण वातजनित मुखरोगको, पीतकचूर्ण पित्तजनित मुखरोगको और मृद्वीकादिचूर्ण कफजनित मुखरोगको दूर करताहै ॥ १८७ ॥

कटुकातिविषापाठादार्वीमुस्तकलिङ्गकाः ।
गोमूत्रक्वथिताःपेयाःकण्ठरोगविनाशनाः ॥ १८८ ॥

कुटकी, अतीश, पाटला, दारुहल्दी, मोथा और इन्द्रजौको गोमूत्रमें मिला क्वाथ कर पीवे तो कण्ठरोगको दूर करताहै ॥ १८८ ॥

स्वरसःक्वथितोदार्व्याघनीभूतोरसक्रिया ।
सक्षौद्रमुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ १८९ ॥

दारुहल्दीका क्वाथ शहद मिला मुखमें धारण करनेसे मुखरोग, रक्तविकार और नाडीव्रण नष्ट होतेहैं ॥ १८९ ॥

तालुशोषेसतृष्णास्यसर्पिषोत्तरभक्तिकम् ।
नावनंमधुराःस्निग्धाःशीताश्चैवरसाहिताः ॥ १९० ॥

तालुके शोष और प्यासमें उत्तर भक्तिक घृतका सेवन करना हितकारी है । तथा मधुर, स्निग्ध और शीतल मांसरस भी गुणकारक होताहै ॥ १९० ॥

मुखपाकका यत्न ।

मुखपाकेशिराकर्म्मशिरःकायविरेचनम् ।
मूत्रतैलघृतक्षौद्रक्षीरैश्चकवलग्रहः ॥ १९१ ॥

मुखपाकमें शिरामोक्षणं, शिरोविरेचन, और काय विरेचन करना तथा गोमूत्र, तेल, घृत शहद और दूधका कवल धारण करना हितकारी है ॥ १९१ ॥

सक्षौद्रास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
कषायतिक्तकाःशीताःक्वाथश्चमुखधावनाः ॥ १९२ ॥

त्रिफला, पाटला, मुनक्का, चमेलीके पत्ते इन सबके क्वाथसे शहद मिलाकर कुल्ले करना तथा कसैले और कषायतिक्त और शीतल द्रव्योंके क्वाथसे कुल्ले करना मुखपाकको दूर करता है ॥ १९२ ॥

खदिरादिगुटिका तथा तेल ।

तुलांखदिरसारस्यद्वितुलामरिमेदसः । प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ॥ १९३ ॥ द्रोणशेषंकषायंतंपक्त्वाभूयःपचेच्छनैः । ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागिकम् ॥ १९४ ॥ चन्दनंपद्मकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकीघनम् । प्रपौण्डरीकंयष्ट्याह्वत्वगेलापद्मकेशरम् ॥ १९५ ॥ लाक्षारसाञ्जनंमांसीत्रिफलालोध्रवालकम् । रजन्यौफलिनीमेलांसमङ्गांकट्फलंवचाम् ॥ १९६ ॥ यवासागरुपत्तङ्गगैरिकाञ्जनमावपेत् । लवङ्गलखकक्कोलजातिकोशान्पलोन्मितान् ॥ १९७ ॥ कर्पूरकुडवश्चापिपुनःशीतेऽवतारिते । ततस्तुगुलिकाःकार्य्याःशुष्काश्चास्येनधारयेत् ॥ १९८ ॥ तैलश्चानेनकल्केनकषायेणचसाधयेत् । दन्तानांचलनंभ्रंशंसौषिर्य्यक्रिमिरोगनुत् ॥ १९९ ॥ मुखपाकास्यदौर्गन्ध्यजाड्यारोचकनाशनम् । स्रावोपलेपपैच्छिल्यवैस्वर्य्यगलरोगनुत् । दन्तास्यगलरोगेषुसर्वेषांतत्परायणम् ॥ २०० ॥

खैरसार ५ सेर, अरिमेद (विडखदिर), खैरका सार १०सेर इन दोनोंको धोकर ऊपरका गर्दा दूर कर ६४ सेर जलमें पकावे । जब १६ सेर बाकी रहे तो उतारकर छानले फिर इस छनेहुए पानीको मंदमंद अग्निसे पकावे । जब पकने २ गाढा होजाय तो उसमें लालचन्दन, पद्माख, खस, मंजीठ,धावेके फूल,नगरमोथे,पंडयारेके छिलके, मुलैठी, दालचीनी, इलायची, कूठ, नागकेशर,लाख, रसौत, जटामांसी, हरड, बहेडे, आँवले, पठानी लोध, नेत्रवाला, हल्दी,दारुहल्दी,प्रियंगु बडी इलायची, मंजीठ, कायफल, वच जवासा, अगर, पतंग और गेरू तथा अंजन यह प्रत्येक एकएक तोला लेक

बारीक चूर्ण बना उपरोक्त खैरसारकी चासनीमें मिलावे फिर उतारकर शीतल होने-पर लौंग,नखीनामक गंधद्रव्य,कंकोल,जावित्री यह४चार चार तोला ले बारीक चूर्णकर मिलावे तथा १पाव शुद्ध कपूर मिलावे फिर इसकी तीन तीन मासेकी गोलियें बनाकर सुखालेवे। १ गोली नित्य मुखमें धारण करे। अथवा इन्हीं उपरोक्त द्रव्योंके कल्क और क्काथसे सिद्ध कियाहुआ तैल मुखमें धारणकरे तो दांतोंका हिलना, दांतोंका गिरना, दांतोंमें छिद्र होना, दंतकृमि, मुखपाक, मुखदुर्गंध, मुखकी जडता. अरुचि, मुखस्राव उपलेप, पिच्छिलता स्वरभंग और कण्ठरोग यह सब दूर होतेहै। यह खदिरादि गुटिका, दांत, मुख और गलेके संपूर्ण रोगोंको दूर करनेमें परमोत्तम है ॥ १९३-२०० ॥

अरुचिके ५ भेद।

वातादिभिःशोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः।

वातसे, पित्तसे, कफसे और सन्निपातसे चार प्रकारकी अरुचि उत्पन्न होतीहै।

वातज अरुचिके लक्षण।

अरोचकाःस्युःपरिहृष्टदन्तकषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन ॥ २०१ ॥

और पांचवीं भय, शोक, अत्यंत लोभ, क्रोध, मनके बिगाडनेवाले भोजन, गंध और रूपसे उत्पन्न होतीहै। वातजनित अरुचिमें दंतहर्ष और मुखका स्वाद कसैला होताहै ॥ २०१ ॥

पित्तज अरुचि।

कट्वम्लमुष्णंविरसञ्चपूतिपित्तेनविद्याल्लवणञ्चवक्त्रम्।

पित्तज अरुचिमें, मुखका स्वाद कटु, अम्ल, गरम और विरस दुर्गंधयुक्त तथा नमकीन होताहै।

कफज अरुचिके लक्षण।

माधुर्य्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबन्धसंबद्धयुतंकफेन ॥ २०२ ॥

कफजनित अरुचिमें मुख मीठा, लवावदार, भारी और शीतल होताहै, तथा मलका विबंध होताहै ॥ २०२ ॥

मनोविकार जन्य और त्रिदोषज अरुचि।

अरोचकेशोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशयगन्धजेस्यात्।
स्वाभाविकश्चास्यरसोऽरुचिश्चत्रिदोषजेनैकरसंभवेत्तु ॥ २०३ ॥

जो अरुचि-शोक, भय, अतिलोभ अथवा हृदयके बिगाडनेवाले अन्न, गंध तथा रूपसे उत्पन्न होतीहै उस अरुचिमें मुखका स्वाद स्वाभाविक रहताहै। और

सन्निपातकी अरुचिमें तीनों दोषोंके अनेक प्रकारके रसोंवाला मुखका स्वाद होताहै ॥ २०३ ॥

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ।
मनोज्ञमन्नपानञ्चहर्षणाश्वासनानिच ॥ २०४ ॥

अरुचिमें कवल धारण, धूमपान, कुल्ले करना, मनोज्ञ अन्न पान हर्ष उत्पन्न करनेवाली और धीरज देनेवाली वार्तालाप करना हितकारक है ॥ २०४ ॥

अरुचिनाशक योग ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंविडम् । धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम् ॥ २०५ ॥ लोध्रंतेजोवतीपथ्यात्र्यूषणंसयवाग्रजम् । आर्द्रादाडिमनिर्य्यासाश्चाजाजीशर्करायुताः ॥ २०६ ॥ सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः । चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ २०७ ॥

कूठ, संचरनमक, काला जीरा, खांड, मिर्च, और बिडलवणका चूर्ण कर तेल और शहदके साथ मिलाकर मुखमें धारण करनेसे वातजनित अरुचि दूर होतीहै । आँवले, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, नील कमल और लालचंदनके तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे पित्तजनित अरुचि दूर होतीहै । पठानीलोध, तेजोवती, हरड, त्रिकुटा और जवाखारके चूर्णको उसी प्रकार तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे कफकी अरुचि दूर होतीहै । एवं अदरखका रस, अनारका रस, काला जीरा और खांडको तेल और शहदमें मिला मुखमें धारण करनेसे सन्निपातकी अरुचि दूर होतीहै ॥ २०५–२०७ ॥

कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलंगुडंक्षौद्रंसर्वारोचकनाशनम् ॥ २०८ ॥

कलौंजी, काली मिर्च, काला जीरा, द्राक्षा, अम्लवेत, अनारदाना, संचरनमक, गुड और शहद इन सबको मिलाकर मुखमें कवल धारण करनेसे सब प्रकारकी अरुचि दूर होतीहै ॥ २०८ ॥

वस्तिःसमीरणेपित्तेविरेकंवमनंकफे ।
कुर्य्याद्धृद्यानुकूलानिहर्षणञ्चमनोघ्नजे ॥ २०९ ॥

वायुकी अरुचिमें वस्तिकर्म, पित्तकी अरुचिमें विरेचन और कफकी अरु-

चिमें वमन कराना चाहिये । तथा मनके विकारसे उत्पन्न हुई अरुचिमें मनके अनुकूल और हृदयको प्रसन्न करनेवाली अन्नपान क्रिया आदि करना चाहिये ॥ २०९ ॥

वातजकर्णरोगके लक्षण ।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषःस्रावस्तनुश्चाश्रवणञ्चवातात् ।

वातजनित कर्णरोगमें-कानोंमें शब्द होना, कानोंमें तीव्र पीडा, कानके मैलका सूखजाना, पतला स्राव होना तथा सुनाई न देना यह लक्षण होतेहैं ।

पित्तजकर्णरोगके लक्षण ।

शोफःसरागोदरणंविदाहःसपीतपूतिश्रवणञ्चपित्तात् ॥ २१० ॥

पित्तजनित कर्णरोगमें-सूजन, लालवर्ण, कानमें फटनेकीसी पीडा होना, दाह और दुर्गंधयुक्त पीले वर्णका स्राव होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१० ॥

कफजकर्णरोगके लक्षण ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लस्निग्धास्रुतिःश्लेष्मभवेऽल्परुक्च ।

कफके कर्णरोगमें वैश्रुत्य अर्थात् कुछका कुछ सुनाई देना या न सुनना खुजली स्थिर सूजन, सफेद और चिकना स्राव होना तथा मंद मंद पीडा होना यह लक्षण होतेहैं ।

सन्निपातज कर्णरोग ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्स्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः ॥ २११ ॥

जिस कर्णरोगमें तीनो दोषोंके लक्षण प्रतीत हों उसको सन्निपातका कर्णरोग जानना । तथा सन्निपातके कर्णरोगमें जो स्राव होताहै वह अनेक प्रकारका और अधिक तथा नानावर्णवाला होताहै ॥ २११ ॥

कर्णरोगकी चिकित्सा ।

कर्णशूलेतुवातघ्नीहितापीनसवत्क्रिया ।
प्रदेहाःपूरणंनस्यंपाकस्रावेव्रणक्रियाः ॥ २१२ ॥

कानके शूलमें पीनसरोगके समान वातनाशक क्रिया, प्रलेप, कर्णपूरण और नस्यक्रिया हितकारक है । कानके पकनेपर और कर्णस्रावमें व्रणरोगके समान चिकित्सा करना चाहिये ॥ २१२ ॥

भोज्यानिचयथादोषंकुर्य्यात्स्नेहांश्चपूरणान् । हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभि-
स्तैलंचसार्षपंपचेत् । एतद्धिपूरणंश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥ २१३ ॥

कर्णरोगमें दोषानुसार भोजन और स्नेहों द्वारा कर्णपूरण करना चाहिये जैसे-

हींग, नेपाली धनियां और सोंठके कल्कसे पकायाहुआ सरसोंका तेल कानमें भरनेसे कानका शूल दूर होताहै ॥ २१३ ॥

देवदारुवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । तैलंसिद्धंबस्तमूत्रेकर्णशूलनिवारणम् ॥ २१४ ॥ वराटकान्समाहृत्यदहेन्मृद्भाजनेनवे । तद्भस्मच्योतयेत्तेनगन्धतैलंविपाचयेत् । रसाञ्जनस्यशुण्ठ्याश्च कल्काभ्यांकर्णशूलनुत् ॥ २१५ ॥

देवदारू, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ और सैंधे नमकके कल्कसे बकरीका मूत्र मिलाकर तेलको सिद्ध करे। इस तेलको कानमें डालनेसे कानकी पीडा नष्ट होतीहै पीली कौडियोंको इकट्ठी कर नवीन मट्टीके बरतनमें भर फूक देवे। फिर कौडियोंकी भस्म निकाल आठगुने जलमें घोलकर इकीस बार छान लेवे। इस जलसे और रसौत तथा सोंठके कल्कसे तेलको पकावे। सिद्ध होनेपर इस तेलको कानमें टपकावे तो कानकी पीडा दूर होतीहै ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

क्षारतैल।

शुष्कमूलकशुण्ठीनांक्षारोहिंगुमहौषधम् ॥ २१६ ॥ शतपुष्पावचा कुष्ठंदारुशिग्रुरसाञ्जनम् । सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैंधवम् ॥ २१७ ॥भूर्जग्रन्थिविडंमुस्तंमधुशुक्तंचतुर्गुणम् । मातुलुङ्गरसश्चैवकदल्यारसएवच ॥२१८॥ सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैःक्षारतैलंविपाचयेत् । बाधिर्य्यंकर्णनादश्चपूयस्रावश्चदारुणः ॥ २१९ ॥ क्रिमयःकर्णशूलश्चपूरणादस्यनश्यति। मुखकर्णाक्षिरोगेषुयथोक्तंपीनसेविधिम्। कुर्य्याद्भिषक्समीक्ष्यादौदोषकालबलाबलम् ॥ २२० ॥

सूखी मूलीका क्षार, सोंठका क्षार, हींग, सोंठ, सौंफ, वच, कूठ, दारुहल्दी, सोहांजनेकी छाल, रसोत, संचर नमक, जवाखार, सज्जीखार, उद्भिदनमक, सेंधानमक, भोजपत्रकी गांठ, विडनमक और नागरमोथा कल्क करके पावभर शहदसे बना सिरका ४ सेर, बिजौरेका रस, केलेका रस प्रत्येक ४ सेर, तेल १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलको कानमें टपकानेसे बधिरता, कर्णनाद, कानसे राधका दारुणस्राव, कानके कृमि और कर्णशूल यह सब दूर होतेहैं। यह क्षारतैल दोष, बल और काल विचारकर वैद्य मुखरोग, कर्णरोग, अक्षिरोग और पीनसरोगमें प्रयुक्त करे ॥ २१६-२२० ॥

नेत्ररोगनिदान।

वातजनेत्ररोगके ल०।

अल्पाश्रुरागाऽनुपदेहताचप्रस्पन्दतोदार्तिरुजश्चवातात्।

वातजनित, नेत्ररोगमें अल्प अश्रुपात होना, नेत्र लाल होना, नेत्रोंका चिपकेहुए न होना, नेत्र फडकना, चीटीके काटनेकेसे चमके लगना और पीडा होना, यह लक्षण होतेहैं॥

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण।

पित्तात्तुदाहार्त्तिरुजोऽतिरागाःपीतोपदेहःसुभृशोष्णमस्त्रम्॥२२१॥

पित्तजनित नेत्ररोगमें दाह, पीडा, यातना, अत्यंत लाली, पीले वर्णकी चिपचिपाहट और गरम तथा पीतवर्ण अश्रुओंका स्राव होना यह लक्षण होतेहैं॥ २२१॥

कफजनेत्ररोगके लक्षण।

शुक्लोपदेहोवहुपिच्छिलास्त्रनेत्रस्यखेटाद्गुरुतासकण्डूः।

कफजनित नेत्ररोगमें-सफेदवर्णका क्लेद, बहुत और गाढा कीच नेत्रोंमें भरा हुआ होना और गाढे क्लेदका स्राव होना, नेत्रोंमें भारीपन और खुजली यह लक्षण होतेहैं॥

सन्निपातजनेत्ररोग।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातान्नेत्रामयाःषण्णवतिस्तुभेदात्॥२२२॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें तीनों दोषोंके मिलेजुले लक्षण होतेहैं। संपूर्ण नेत्ररोगोंके९६ भेद हैं॥ २२२॥

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालाक्यतन्त्रेषुचिकित्सितञ्च। पराधिकारेतुनविस्तरोक्तिःशस्तेतितेनात्रननःप्रयासः॥ ३२३॥

उन सब प्रकारके नेत्ररोगोंका विशेष वर्णन और चिकित्सा शालाक्यतंत्रोंमें वर्णन की है अर्थात् शालाक्य शास्त्रके जाननेवालोंने विशेष वर्णन कियाहै परन्तु हमने अपने शास्त्रमें पराई युक्तिका विशेषकर वर्णन करना वृथा प्रयास समझाहै इसलिये वह क्रिया उन्हीं (सुश्रुत, वाग्भट) शास्त्रोंमे देखना चाहिये॥ २२३॥

नेत्ररोगचिकित्सा।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः।
कार्य्योदाहोपदेहाश्रुशोफरागनिवारणः॥ २२४॥

नेत्ररोगोंमें उत्पन्न होते ही विडालनामक लेपके करनेसे दाह, क्लेद, अश्रुपात, सूजन और लाली दूर होजातीहै॥ २२४॥

वातजनेत्ररोगकी चिकित्सा ।

नागरंसैन्धवंसर्पिर्मण्डेनचरसक्रिया । निघृष्टंवातिकेतद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ २२५ ॥ तथाशावरकंलोध्रंघृतभृष्टंविडालकः । कार्य्याहरीतकीतद्वद्धृतभृष्टारुजापहा ॥ २२६ ॥

वातज नेत्ररोगमें सोंठ, और सेंधानमकको घृतमें मिलाकर अथवा सेंधानमक, गेरू और नागरमोथेको घृतमें मिला टिकियासी बना नेत्रोंपर रखनेसे वातजनित नेत्ररोग दूर होताहै । यह दोनों उत्तम विडालक योग है अथवा सफेद लोधके कल्कको घीमें सिद्धकर गरम २ टिकियासी नेत्रपर रक्खे या हरडके कल्कको घीमें भूनकर नेत्रोंपर लगावे तो यह रसक्रिया वातजनित नेत्ररोगको दूर करनेके लिये उत्तम योग है ॥ २२५ ॥ २२६ ॥

पित्तजनेत्ररोगकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्विडालकः । कार्य्यःपद्मकयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा । गैरिकंसैन्धवंमुस्तंरोचनाचरसक्रिया॥२२७॥

पित्तके नेत्ररोगमें लाल चंदन, शारिवा और मंजीठके कल्कसे नेत्रोंपर विडालक अर्थात् बाहरी गाढालेप करे । अथवा पद्माख, मुलैठी, जटामांसी और काली अगर लेकर नेत्रोंपर गाढा लेप करे । पित्तजनित नेत्ररोगमें गेरू, सेंधानमक, नागरमोथा और गोरोचनकी रसक्रिया करना हितकारक है ॥ २२७ ॥

कफजनित नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

कफेकार्य्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुःसमनःशिलः ॥ २२८ ॥

कफजनित नेत्ररोगमें शहद, प्रियंगु और मनसिलका नेत्रोंपर विडालक नामका लेप करना चाहिये ॥ २२८ ॥

सन्निपातजनित नेत्ररोगकी चि० ।

सन्निपातेतुसर्वैःस्याद्बहिरक्ष्णोःप्रलेपनम् ।
पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पाकेत्वञ्जनंत्र्यहात् ॥ २२९ ॥

सन्निपातके नेत्ररोगमें तीनों दोषोंके नाश करनेवाले बाहरी लेप करने चाहिये । संपूर्ण नेत्ररोगोंमें तीन दिन तक किसी, प्रकारका भी नेत्रोंके भीतर डालनेका अंजन प्रयुक्त नहीं करना चाहिये । तीन दिनके अनन्तर दोषोंके पकजाने पर नेत्रोंको खोलकर नेत्रोंके भीतर अंजन डाले । परन्तु पलकोंपर न लगावे ॥ २२९ ॥

वातजनेत्ररोगमें आश्चोतन।

आश्च्योतनंमारुतजेक्काथोबिल्वादिभिःशुभः।
कोष्णःसैरण्डतर्कारीबृहतीमधुशिग्रुभिः॥ २३०॥

वातजनित नेत्ररोगमें बिल्वादि पंचमूल, एरण्डकी जड, अरणी, बडी कटेली, सुहांजनेके छिलके इन सबका क्वाथ बनाकर नेत्रों पर आश्चोतन (सेचन) करे॥ २३०॥

रक्तपित्तजनित नेत्ररोगपर सेचन।

द्राक्षादार्वीसमञ्जिष्ठालाक्षाद्विमधुकोत्पलैः।
क्काथःसशर्करःशीतःपूरणंरक्तपित्तनुत्॥ २३१॥

द्राक्षा, दारुहल्दी, मंजीठ, लाख, महुएके फूल, मुलैठी और नीलोफरका मिसरीयुक्त क्वाथ शीतल करके नेत्रोंपर सेचन करे तो रक्तपित्तजनित नेत्ररोग दूर होताहै॥ २३१॥

कफज और सन्निपातजनेत्ररोगपर सेचन।

नागरंत्रिफलामुस्तनिम्बवासारसःकफे।
कोष्णमाश्च्योतनंमिश्रैरौषधैःसन्निपातके॥ २३२॥

सोंठ, हरड, बहेडे, आँवले, नागरमोथा, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका क्वाथ गरम गरम नेत्रोंपर सेचन करे तो कफजनित नेत्ररोग शान्त हो। सन्निपातके नेत्ररोगोंमें त्रिदोषनाशक योगोंके क्वाथसे सेचन करे॥ २३२॥

वातजनेत्ररोगहर वर्ति।

बृहत्येरण्डमूलत्वक्शिग्रोःपुष्पंससैन्धवम्।
अजाक्षीरेणपिष्टंस्याद्वर्त्तिर्वाताक्षिरोगनुत्॥ २३३॥

बडी कटेलीकी जडका छिलका, एरण्डकी जडका छिलका, सुहांजनेके फूल, सेंधानमक इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर वत्ती बनावे। इस वत्तीको जलमें घिसकर नेत्रमें लगानेसे वातजनित नेत्ररोग दूर होताहै॥ २३३॥

पित्तजनेत्ररोगहर वर्ति।

सुमनःक्षारकाःशंखास्त्रिफलामधुकंबला।
पित्तरक्तापहावर्त्तिःपिष्टादिव्येनवारिणा॥ २३४॥

मालतीके फूलोंकी भस्म, शंखभस्म, त्रिफला, मुलैठी और बलाकी जडको आकाशके जलमें घोटकर वत्ती बनावे। यह वत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे रक्तपित्तजनित नेत्ररोगको दूर करतीहै॥ २३४॥

कफजनेत्ररोगहर वर्ति ।

सैन्धवंत्रिफलाव्योषंशंखनाभिःसमुद्रजः ।
फेनःशैलेयकंसर्जोवर्त्तिःश्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥ २३५ ॥

सेंधानमक, त्रिफला, त्रिकुटा, शंखकी नाभि, समुद्रफेन, शैलज और राल इन सबको पीसकर बत्ती बनावे । यह बत्ती कफजनित नेत्ररोगको दूर करती है ॥२३५॥

दृष्टिप्रसादनी वर्ति ।

प्रपौण्डरीकंयष्ट्याह्वंदार्वीञ्चाष्टपलांशिकाम् । जलेपक्त्वारसेपूतेपुनः पक्वेरसेघने ॥ २३६ ॥ कर्षश्चश्वेतमरिचाद्रोणीपुष्पानवोत्पलम् । चूर्णंक्षिप्त्वाकृतावर्त्तिःसर्वघ्नीदृक्प्रसादनी ॥ २३७ ॥

पंडचारेकी छाल, मुलैठी और दारुहल्दीको आठ आठ पल लेकर १६ गुने जलमें पकावे । चतुर्थांश शेप रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इस क्वाथको पकावे । जब पकते २ गाढा होजाय तो इसमें सुहांजनेके बीजोंका चूर्ण १ कर्ष दडगल (गुम्मा) के फूल १ कर्ष, नवीन नीलकमलके फूल १ कर्ष, इनको बारीक पीसकर उपरोक्त पाकमे मिलाकर बत्ती बनावे । यह बत्ती सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करनेवाली तथा नेत्रोंको प्रफुल्लित करनेवाली है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

दृष्टिप्रसादनी वर्त्ति ।

अमृतामधुकंनिम्बपटोलंछागलंशकृत् । वासाप्रपौण्डरीकञ्चदार्वी-कालानुसारिणी ॥ २३८ ॥ एषामष्टपलान्भागान्सुधौताञ्जर्जरी-कृतान् । तोयेपक्त्वारसेपूतेभूयःपक्वेघनेरसे ॥ २३९ ॥ सितामरिचयोःकर्षंजातिपुष्पान्नवोत्पलम् । चूर्णंकृत्वाकृतावर्त्तिःसर्वघ्नी दृक्प्रसादनी ॥ २४० ॥

अमृता (हरड), मुलैठी, नीम, पटोलपत्र, बकरीकी मेंगन, वांसा, पंडचारेकी छाल, दारुहल्दी और तगर इनको आठ आठ पल लेकर जलसे धोडाले । फिर कूटकर १६ गुने जलमें पकावे । चतुर्थांश शेप रहनेपर उतारकर छानले । इस छने-हुए जलको फिर पकावे । जब गाढा होनेपर आवे तो मिसरी, सफेद मिर्च, चमेलीके फूल, नवीन नीलकमल यह सब एक एक कर्ष लेकर बारीक पीस उपरोक्त पाकमें मिलावे । फिर इसकी वत्तियें बनाकर रक्खे । इस बत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होवेंहैं । और दृष्टि प्रसन्न रहतीहै ॥ २३८ ॥ २३९ ॥ २४० ॥

शंखनाभ्यादिवर्त्ति ।

शंखप्रवालवैडूर्य्यलौहताम्रप्लवास्थिभिः ।
स्रोतोऽजश्वेतमरिचैर्वर्त्तिःसर्वाक्षिरोगनुत् ॥ २४१ ॥

शंखकी नाभी, मूंगेकी भस्म, वैडूर्यभस्म, लोहभस्म और ताम्रभस्म, मेढककी हड्डी, काला सुरमा, सफेद मिर्च इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर वत्ती बनावे। इस वत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर होतेहैं ॥ २४१ ॥

चूर्ण अंजन ।

शाणार्द्धंमरिचाद्द्वौचपिप्पल्यर्णवफेनयोः । शाणार्द्धंसैन्धवाच्छाणं नवसौवीरकाञ्जनात् ॥ २४२ ॥ पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णाञ्जनमिदंशुभम् । कण्डूकाचकफार्त्तानांमलानाञ्चविशोधनम् ॥ २४३ ॥

सफेद मिर्च, पीपल, समुद्रझाग चार चार माशे सेंधानमक २ माशे, सफेद सुरमा ४ माशे इन सबको चित्रा नक्षत्रमें पीसकर सिरसके रसमें भावना देकर अंजन बनावे । यह अंजन नेत्रोंमें आंजनेसे काच, खुजली, क्लेद, कफविकार और नेत्रोंके मलको दूर करताहै । यह परमोत्तम चूर्णाजन है । किसीके मतमें इसको सिरस के रसकी भावना दिये ही विना चित्रानक्षत्रमें सूक्ष्म चूर्णकर लेना चाहिये२४२-२४३

एलांजन ।

वस्तमूत्रेत्र्यहंस्थाप्यमेलाचूर्णंसुभावितम् ।
चूर्णाञ्जनञ्चतैमिर्य्यक्रिमिपैल्यमलापहम् ॥ २४४ ॥

बकरीके मूत्रमें इलायचीके चूर्णको तीन दिन भावना देवे । फिर सूक्ष्म चूर्ण कर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, नेत्रकृमि और नेत्रोंका मल दूर होताहै ॥ २४४ ॥

चक्षुष्यअंजन ।

सौवीरमञ्जनंतुत्थंताप्योधातुर्मनःशिला ।
चक्षुष्यंमधुकंलोहमणयःपौष्पमञ्जनम् ॥ २४५ ॥

सफेद सुरमा, नीला थोथा, सोनामक्खी, मैनशिल, मुलैठी, लोहभस्म, और मोती, वैडूर्य आदि मणियें और चमेलीके फूलोंको बारीक पीस अंजन करे तो नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ २४५ ॥

सैन्धवादि अंजन ।

सैन्धवंशौकरीदंष्ट्राकतकश्चाञ्जनंशुभम् ।
तिमिरादिपुचूर्णंचावर्त्तिर्वेयमनुत्तमा ॥ २४६ ॥

सेंधानमक, सूअरका दांत, निर्मलीके बीज इन तीनोंको पीसकर बत्ती बनावे यह बत्ती तिमिररोगको दूर करनेमें परमोत्तम है । अथवा इन्ही तीनों द्रव्योंका सूक्ष्म चूर्ण बना नेत्रोंमें अंजन करे ॥ २४६ ॥

सुखावती वर्त्ति ।

कतकस्यफलंशंखःसैन्धवंत्र्यूषणंसिता । फेनोरसाञ्जनंक्षौद्रंविडङ्गानिमनःशिला ॥ २४७ ॥ कुक्कुटाण्डकपालञ्चवर्तिरेषाव्यपोहति । तिमिरंपटलंकाचंमलञ्चाशुसुखावती ॥ २४८ ॥

निर्मलीके फल, शंखकी नाभि, सेंधानमक, त्रिकुटा, मिसरी, समुद्रझाग, रसौत, शहद, वायविडंग मैनसिल मुर्गेके अण्डेका छिलका इन सबको बारीक पीसकर चूर्णांजन अथवा बत्ती बनावे । इसको नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, पटलरोग, कांच और नेत्रोंका मल दूर होताहै । यह सुखावती वत्तीं नेत्रोंको परम हितकारी है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

दृष्टिप्रदा वर्त्ति ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः । नीलोत्पलंविडङ्गानिफेनश्चसरितांपतेः ॥ २४९ ॥ आजेनपयसापिष्ट्वाभावयेत्ताम्रभाजने । सप्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् । एषादृष्टिप्रदावर्त्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ॥ २५० ॥

हरड, वहेडे, आँवले, मुर्गेके अण्डोंका सफेद छिलका, कशीश, लोहरज (लोहभस्म), नीलकमल, वायविडंग, समुद्रझाग इन सबको तॉबेकी खरलमें बकरीके दूधमें घोट बकरीके दूधकी सात दिन तक भावना देतारहे । फिर सात दिनके बाद बकरीके दूधसे ही वत्तियें बनावे । यह वत्ती नेत्रोंमें आंजनेसे अंधे और फूटी आखोंवालोंको भी ज्योति देनेवाली है ॥ २४९ ॥ २५० ॥

तिमिररोगनाशक अंजन ।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् । ततस्तस्मात्समुद्धृत्यसशुष्कंचूर्णयेद्बुधः ॥ २५१ ॥ सुमनःक्षारकैःशुष्कैरर्द्धांशैःसैन्धवेनच । एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥ २५२ ॥

एक काले सांपको मारकर उसके मुखमें अंजनकी डली रख १ महीना रक्खा रहनेदे । महीनेके बाद उस अंजनको निकालकर सुखालेवे और उसका बारीक चूर्ण करे । यह अंजन १ तोला, चमेलीके फूलोंकी भस्म आधा तोला और सेंधानमक

आधा तोला मिलाकर सूक्ष्म चूर्ण बनावे । इसको नित्य नेत्रोंमें आंजनेसे घोर तिमिररोग भी दूर होताहै ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

रसायन अंजन।

पिप्पल्यःकिंशुकरसोवसासर्पस्यसैन्धवम् ।
जीर्णघृतश्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपक्रिया ॥ २५३ ॥

पीपलका चूर्ण, ढाकका रस, काले सांपकी चर्बी, सेंधानमक और पुराना घृत, इन सबको मिलाकर बारीक पीसकर अंजन करे तो यह रसायन अंजन सब प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करताहै ॥ २५३ ॥

रसक्रिया।

कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसोधात्र्यारसक्रिया ।
शस्तासर्वाक्षिरोगेषुकाचार्बुदमलेषुच ॥ २५४ ॥

काले सांपकी चर्बी, शहद और आँमलेके रसको उत्तम रीतिसे मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग, काच और नेत्रार्बुद तथा नेत्रोंका मल दूर होताहै ॥ २५४ ॥

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया ।
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैमिर्य्यपटलापहा ॥ २५५ ॥

आँवलेका रस, रसौत, शहद और घृतको विधिवत् मिला नेत्रोंमें अंजन करे तो पित्त और रक्तजनित नेत्ररोग, तिमिर और पटलरोग नष्ट होतेहैं ॥ २५५ ॥

धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःसमाः ।
क्षौद्रयुक्तानिहन्त्यान्ध्यंपटलञ्चरसक्रिया ॥ २५६ ॥

आँवले, सेंधानमक और पीपल एक एक तोला, सफेद मिरच तीन माशे इन सबको बारीक पीस शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजे तो यह रसक्रिया अंधता और पटलरोगको दूर करतीहै ॥ २५६ ॥

खालित्यरोगका निदान।

तेजोऽनिलाद्यैःसहकेशभूमिंदग्ध्वाशुकुर्य्यात्खलितंनरस्य ।
किञ्चित्तुदग्ध्वापलितानिकुर्य्याद्धरिप्रभत्वञ्चशिरोरुहाणाम् २५७

तेज (पित्त) वायुके साथ मिलकर केशभूमि (शिर) में प्राप्त होकर केशोंकी जडोंको दग्धकर खालित्य (गंजापन) को उत्पन्न करतीहै । यदि केशभूमिको वातयुक्त तेज संपूर्ण रूपसे दहन न करे तो सफेद अथवा पीले वर्णके केशोंको बना देता है ॥ २५७ ॥

खालित्यकी चिकित्सा ।

इत्यूर्द्धजत्रूत्थगदैकदेशःप्रोक्तश्चिकित्सान्तुपरांनिबोध ।
विस्तारतःसंग्रहतश्चसम्यग्यथाक्रमंसौम्यमयोच्यमानाम्२५८-

हे सौम्य ! इस प्रकार उर्द्धजत्रुगत रोगोंको अर्थात् शिरोरोग, मुखरोग, कर्णरोग आदि रोगोंका एक एक देशसे संक्षेप और विस्तारपूर्वक वर्णन करचुके हैं । अब यथाक्रम खालित्य और पलित आदि रोगोंकी चिकित्साको सुनो ॥ २५८ ॥

खालित्येपलितेवल्यांहरिलोम्निचशोधितम् ।
नस्यैस्तैलैःशिरोवक्त्रप्रलेपैश्चाप्युपाचरेत् ॥ २५९ ॥

खालित्य (शिरके बाल उडजाना), पलित (बालोंका सफेद होजाना), वली (शरीरमें सलवट पडना) और बालोंके पीले होजानेमें रोगीको प्रथम शोधन कराके फिर नस्य, तेल, शिर प्रलेप और मुखलेप आदि क्रिया करे ॥ २५९ ॥

सिद्धंविदारीगन्धाद्यैर्जीवनीयैरथापिच । नस्यंस्यादणुतैलंवाखालित्यपलितापहम् ॥ २६० ॥

शालपर्ण्यादिगणसे और जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए तैल अथवा पूर्वोक्त अणुतैलकी नस्य लेना, वा जीवनीय आदि गणसे सिद्ध किये तैलकी मालिश करना खालित्य और पलित रोगोंको दूर करताहै ॥ २६० ॥

नस्यंस्याद्भिपजासम्यग्योजितंपलितापहम् । क्षीरात्सहचराद्भृङ्गराजाच्चसुरसाद्रसात् ॥ २६१ ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्तैलाद्यष्ट्याह्वपलकल्कितः । सिद्धःशैलासनेभाण्डेमेपशृङ्गेचसंस्थितः ॥ २६२ ॥

दूध, सहचर, भांगरेका रस और तुलसीका रस एक एक सेर, तेल एक पाव, मुलैठीका कल्क ४ तोला इन सबको मिलाकर पकावे । तेल सिद्ध होनेपर किसी पक्के पत्थरके पात्रमें वा मेढेके सींगमें भरकर रक्खे । इस तेलकी नस्य लेनेसे पलित रोग दूर होताहै ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

भिपजाक्षीरपिष्टौवादुग्धिकाकरवीरकौ ।
उत्पाट्यपलितंदेयौतावुभौपलितापहौ ॥ २६३ ॥

सफेद बालोंको उखाडकर उनकी जडोंके स्थानमें दूधीको दूधमें पीसकर अथवा कनेरकी छालको दूधमें पीसकर लेप करे तो आगेको सफेद बाल नहीं होते ॥२६३॥

मार्कवस्वरसात्क्षीराद्द्विप्रस्थंमधुकात्पलम् ।
तैःपचेत्कुडवंतैलात्तन्नस्यंपलितापहम् ॥ २६४ ॥

भांगरेका रस १ सेर, दूध १ सेर, मुलैठीका कल्क ४ तोला, तेल १ पाव इन सबको मिलाकर पकावे। तेल मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस तेलकी नस्य लेनेसे पलितरोग दूर होताहै ॥ २६४ ॥

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्यच । सुरसस्यचपत्राणिपत्रंकृष्णशणस्यच ॥ २६५ ॥ मार्कवंकाकमाचीचमधूकंदेवदारुच । पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ २६६ ॥ प्रपौण्डरीकंमञ्जिष्ठालोध्रंकृष्णागुरूत्पलम् । आम्रास्थिकर्दमःकृष्णोमृणालीरक्तचन्दनम् ॥ २६७ ॥ नीलीभल्लातकास्थीनिकासीसमदयन्तिकाः । सोमराज्यसनःशस्तंकृष्णापिण्डीतचित्रकौ ॥ २६८ ॥ पुष्कराह्वर्जुनकाश्मर्य्याण्याम्रजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशानितैःपिष्टैराढकंपचेत् ॥ २६९ ॥ वैभीतकस्यतैलस्यधात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्य्यादादित्यपाकंवायावच्छुष्कोभवेद्रसः ॥ २७० ॥ लोहपात्रेततःपूतंसंशुद्धमुपयोजयेत् । पानेनस्तःक्रियायाश्चंशिरोऽभ्यङ्गेतथैवच ॥ २७१ ॥ एतच्चक्षुष्यमायुष्यंशिरसः सर्वरोगनुत् । महानीलमितिख्यातंपलितघ्नमनुत्तमम् ॥ २७२ ॥

हुलहुल (आदित्यभक्तालता) की जड काले बांसेकी जट, काली तुलसीके पत्ते, काले फूलोंके सणके पत्ते, भांगरे, मकोय, मुलैठी और देवदारूके दश दश पल। पीपल, हरड, बहेडे, आँवले, रसौत, पंडचारेका छिलका, मंजीठ, लोध, काली अगर, नील कमल, आमकी गुठली, काली मट्टीका कीच, कमलकी डण्डी, लाल चन्दन, नीलके पत्ते, भिलावेकी गुठली, कसीस, मल्लिका, बावची, बिजैसार, लोहचूर्ण, मैनफल, चित्ते की छाल, पोहकरमूल, अर्जुन वृक्षकी छाल, कुम्भेरके फल, कच्चे आम, जामुन इन सब को पांच पांच पल लेवे। इन सब औषधियोंका कल्क बना बहेडेका तेल ४ सेर, आमलेका रस १६ सेर इन सबको मिलाकर लोहेके पात्रमें भर नित्य धूपमें रख दिया करे। जब संपूर्ण रस सूखकर तेलमात्र शेष रहे तो इस तेलको छानकर लोहपात्रमें भरकर रक्खे। फिर रोगीके वमन विरेचन और शिरोविरेचन करके शुद्ध देह होनेपर यह तेल पीने और नस्य कर्म तथा शिरमें मालिशके लिये प्रयुक्त करे तो नेत्रोंकी ज्योतिको और आयुको बढ़ावे तथा सब प्रकारके शिरोरोगको नष्ट करे। यह महानील तैल पलितरोग दूर करनेमें परमोत्तम कहा है ॥ २६५–२७२ ॥

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः। कार्षिकैस्तैलकुडवोद्विगुणामलकीरसः। सिद्धःसप्रतिमर्शःस्यात्सर्वमूर्द्धगदापहाः ॥२७३॥

पंडयारीकी छाल, मुलैठी, पीपल, लालचन्दन, नीलकमल यह सब एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे। तेल १ कुडव ऑवलेका रस २ कुडव सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलकी नस्य और शिरपर मालिशसे सब प्रकारके शिरोरोग दूर होतेहैं२७३

क्षीरंपियालयष्ट्याह्वेजीवकाद्योगणस्तिलाः।
कृष्णावक्रेप्रलेपःस्याद्धारिल्लोमनिवारणः ॥ २७४ ॥

दूध, चिरौंजी, मुलैठी, जीवनीयगणकी दश औषधि और काले तिलोंको पीसकर लेप करनेसे बालोंका हरापन और पीलापन दूर होताहै ॥ २७४ ॥

यष्ट्याह्वतिलकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानिच।
बृंहयेद्रञ्जयेच्चैतत्केशान्मूर्द्धप्रलेपनम् ॥ २७५ ॥

मुलैठी, काले तिल. कमलकी केसर,शहद आर आँवले इन सबको पीसकर केशों- में लेप करनेसे केश बढने तथा काले होते हैं॥ २७५ ॥

पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयश्चूर्णंसतण्डुलम् ॥ २७६ ॥ तेनालिप्तंशिरःशुद्धमस्निग्धमुषितंनिशि। तत्प्रातस्त्रिफलाधौतंस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम्। अतश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः ॥ २७७ ॥

सेंधानमक, सिरका, कांजी, लोहचूर्ण और चॉवलोंको मिलाकर पकावे। पहिले शिरको स्वच्छ कर धो डाले परन्तु चिकनाई न लगावे फिर इस पकायेहुए द्रव्यका लेप करे। दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिफलेके जलसे शिरको धो डाले तो शिरके बाल, काले और नर्म होजातेहैं। इसके उपरांत लोहचूर्ण और त्रिफलेको कांजीमें पीसकर शिरपर लेप किया जावे तो केश उत्तम काले वर्णके होजाते हैं॥ २७६। २७७ ॥

अथ स्वरभेदचिकित्सा।

वातजस्वरभंगकी चिकित्सा।

सर्पींष्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके।
तैलैश्चतुष्प्रयोगैश्चबलारास्नामृताह्वयैः ॥ २७८ ॥

वातजनित स्वरभंगमें भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये और बला तेल अथवा रासना, तेल या गुडूची आदि तेल अथवा बला, रासना और गिलोयका तेल या अवलेह अथवा चूर्ण या घृतका प्रयोग करनेसे वातजनित स्वरभंग दूर होता है॥ २७८ ॥

वर्हितित्तिरिदक्षाणांपञ्चमूलश्रृताम्रसान् ।
मायूरंक्षीरसर्पिर्वापिवेत्र्यूषणमेववा ॥ २७९ ॥

वातजनित स्वरभंगमें मोर तीतर और मुर्गेका मांसरस लघुपंचमूलके क्वाथमें सिद्धकर पिलाना हितकारी है । तथा मायूरघृत वा क्षीरघृत तथा त्र्यूषणादिघृत पिलाना हितकारक है ॥ २७९ ॥

पित्तजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

पैत्तिकेतुविरेकःस्यात्पयश्चमधुरैःश्रृतम् ।
सर्पिर्गुडाजीवनीयंवासासिद्धंघृतंतथा ॥ २८० ॥

पित्तज स्वरभंगमें-विरेचन द्वारा शुद्धकर मधुरगणसे सिद्ध किया दूध पिलाना हितकारक है तथा सर्पिर्गुड और जीवनीयगणसे सिद्ध किया घृत और वासा आदि घृतका प्रयोग करना भी पित्तजनित स्वरभंगको दूर करताहै ॥ २८० ॥

कफजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

कफजेस्वरभेदेतुतीक्ष्णंमूर्द्धविरेचनम् ।
विरेकोवमनंधूमोयवान्नकटुसेवनम् ॥ २८१ ॥

कफके स्वरभंगमें तीक्ष्ण, मूर्द्ध विरेचन और कायविरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न तथा पीपल आदि चरपरे द्रव्योंका सेवन हितकारक है ॥ २८१ ॥

चव्यभार्ग्यभयाव्योपक्षारमाक्षिकचित्रकान् ।
लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णंमद्यंपिवेच्चसः ॥ २८२ ॥

चव्य, भारंगी, हरड, सोंठ, मिरच, पीपल, जवाखार और चित्रकके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे अथवा पीपल और हरडको शहदमे मिलाकर चाटे तथा तीक्ष्ण मदका सेवन करे तो कफजनित स्वरभंग दर होताहै ॥ २८२ ॥

रक्तजस्वरभंगकी चिकित्सा ।

रक्तजेस्वरभेदेतुसघृताजाङ्गलारसाः । द्राक्षाविदारीक्षुरसाःसघृत-क्षौद्रशर्कराः ॥ २८३ ॥ यच्चोक्तंक्षयकासघ्नंतच्चसर्वंचिकित्सितम् । पित्तजस्वरभेदघ्नंशिरावेधश्चरक्तजे ॥ २८४ ॥

रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए स्वरभेदमें घृतके साथ जंगली जीवोंका मांसरस पिलाना चाहिये । तथा दाखका रस विदारी कंदका रस या ईखका रस घी, शहद और खांड मिला पिलावे । और क्षयकी खांसीको नष्ट करनेवाली सब प्रकारकी चिकित्सा करे । तथा पित्तके स्वरभेदमें कहीहुई चिकित्साको करे । यदि रक्त दूपित हो तो फस्त खुलावे ॥ २८३ ॥ २८४ ॥

सन्निपातके स्वरभेदका यत्न।

सन्निपातेहिताःसर्वाःक्रियानतुशिराविधिः ॥ २८५ ॥

सन्निपातके स्वरभेदमें सब प्रकारकी मिली जुली चिकित्सा करनी चाहिये। परन्तु शिरामोक्षण कराना हितकारी नहीं ॥ २८५ ॥

कुर्य्याच्छेषेपुरोगेपुक्रियांस्वांस्वांचिकित्सिताम्।
शेषेष्वादौचनिर्दिष्टासिद्धौचान्याप्रवक्ष्यते ॥ २८६ ॥

ऊर्द्धजत्रुगत जो और रोग हैं उनमें दोषादि विचारकर बुद्धिपूर्वक चिकित्सा करना चाहिये। ऊर्द्धजत्रुगत रोगोंमेंसे कुछ पहिले कहचुकेहैं, वाकीको सिद्धिस्थानमें कहेंगे॥ २८६ ॥

अध्यायका उपसंहार।

भवन्ति चात्र।

वातपित्तकफानणांवस्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः।
तस्मात्तुस्थानसामीप्याद्धर्त्तव्यावमनादिभिः॥ २८७ ॥

मनुष्योंके शरीरमें वात, पित्त और कफका प्रधान आश्रय-वस्ति, हृदय और मस्तक होताहै। इसलिये स्थान, सामीप्य, आदि विचारकर उनके वमनादि द्वारा शुद्धकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २८७ ॥

अध्यात्मलोकेवाताद्यैर्लोकावातरवीन्दुभिः।
पीड्यतेधार्य्यतेचैवविकृताविकृतैस्तथा ॥ २८८ ॥

जैसे-इस बाहरी जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाके विकृत होनेसे जगत् पीडित होताहै और अविकृत होनेसे सौम्यावस्थामें रहताहै। इसी प्रकार इस अध्यात्मलोक अर्थात् शरीरके भीतर भी वात, पित्त, कफ विकृत होनेसे शरीरको पीडित करतेहैं और सौम्यावस्थामें रहनेसे शरीरको धारण और पालन करतेहैं ॥ २८८ ॥

विरुद्धैरपिनत्वेतेगुणैर्घ्नन्तिपरस्परम्।
दोषाःसहजसात्म्यत्वाद्विषंघोरमहीनिव ॥ २८९ ॥

जैसे-सांपका विष दूसरे सांपको व्यापक होकर नष्ट नहीं कर सकता उसी प्रकार वातादि दोष विरुद्ध गुणवाले होतेहुए भी परस्परके सात्म्य होनेसे एक दूसरेको नष्ट नहीं करता ॥ २८९ ॥

त्रिमर्मजानांरोगाणांनिदानाकृतिभेषजम्।
विस्तरेणपृथग्दिष्टंत्रिमर्मीयेचिकित्सिते॥ २९० ॥

इति श्रीचरक०चिकित्सि०त्रिमर्मीयचिकित्सितं नामपड्विंशोऽध्यायः२६

इस त्रिमर्मीयचिकित्सा नामक अध्यायमें वस्ति हृदय और मस्तक इन तीन प्रधान मर्मोंमें होनेवाले रोगोंके निदान, लक्षण, औषधि; पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन कीगई हैं ॥ २९० ॥

इति श्रीच० आ० स० चिकित्सास्थाने प्र० भा० टी० त्रिमर्मीयचिकित्सित नाम षट्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातऊरुस्तम्भचिकित्सितंवाख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे।

श्रियापरमयाब्राह्म्यापरयाचतपःश्रिया । अहीनंचन्द्रसूर्य्याभ्यांसुमेरुमिवपर्वतम् ॥ १ ॥ धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्त्तिक्षमालयम् । अग्निवेशोगुरुंकालेसंशयंपरिपृष्टवान् ॥ २ ॥ भगवन् पञ्च कर्माणिसमस्तानिपृथक्तथा । निर्दिष्टान्यामयानान्तुसर्वेषामेवभेषजम् ॥ ३ ॥ दोषजोऽस्त्यामयःकश्चिद्यस्यैतानिभिषग्वर । नस्युः शक्तानिशमनेसाध्यस्यक्रिययाततः ॥ ४ ॥

जैसे प्रबल तेजयुक्त सूर्य और चन्द्रमासे सुमेरु पर्वत प्रबल कांतियुक्त होताहै उसी प्रकार ब्रह्म तेज और तपके तेजसे परमकांतियुक्त बुद्धि, धारण, स्मृति, ज्ञान, विज्ञान, कीर्ति और क्षमाके घर भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश समय पाकर इस प्रकार अपने संशयको पूछने लगे कि हे भगवन् ! वमन, विरेचनादि पंचकर्म और उनसे रोगोंकी शान्ति तथा व्याधिविनाशक चिकित्सा श्रीमान्ने विस्तारपूर्वक प्रथम वर्णन कर दी है। परन्तु हे भिषग्वर ! जो साध्य होनेपर पंचकर्मादि सब क्रियाओंके करनेसे भी साध्य न होसके ऐसा कोनसा रोग है॥ १। २। ३। ४॥

अस्त्यूरुस्तम्भइत्युक्तेगुरुणातस्यकारणम् ।
सलिङ्गभेषजंभूयःपृष्टस्तेनाब्रवीद्गुरुः ॥ ५ ॥

यह सुनकर गुरु कहने लगे कि, ऐसा ऊरुस्तम्भ रोग है जो पंच कर्मोंद्वारा शान्त नहीं होसकता फिर इसके विषयमें प्रश्न करनेपर ऊरुस्तम्भ निदान, लक्षण और औषधिको भगवान आत्रेयजी इस प्रकार वर्णन करने लगे ॥ ५ ॥

ऊरुस्तंभके हेतु और संप्राप्ति ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णेसमश्नतः । द्रवशुष्कदधिक्षीरग्राम्यानूपौदकामिषैः ॥ ६ ॥ पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नप्रजागरैः । लङ्घनाध्यशनायासभयवेगविधारणैः ॥ ७ ॥ स्नेहाच्चामंचितंकोष्ठे वातादीन्मेदसासह । रुद्ध्वाशुगौरवादूरूयात्यधोगैःशिरादिभिः ॥८॥ पूरयेत्सक्थिजङ्घोरुदोषोमेदोवलोत्कटः । अविधेयंपरिस्पन्दंजनयत्यल्पविक्रमम् ॥ ९ ॥ महासरसिगम्भीरेपूर्णेऽम्बुस्तिमितंयथा । तिष्ठतिस्थिरमक्षोभ्यंतद्वदूरुगतःकफः ॥ १० ॥

चिकने, गर्म, भारी और शीतल द्रव्योंका अधिक सेवन करनेसे विषम, भोजन, तथा भोजनपर भोजन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, द्रव, शुष्क, दही, दूध तथा ग्राम्य, आनूप और जलसंचारी जीवोंके अत्यन्त सेवनसे, पिष्ट पदार्थके अत्यंत खानेसे, दूषित मद्यके पीनेसे दिनमें सोनेसे, रातको जागनेसे, अत्यंत लंघन करनेके अनन्तर एकदम अधिक भोजन करनेसे, अधिक परिश्रम, भय और वेगोंको रोकनेसे, और अत्यंत स्नेहपान करनेसे, कोष्ठमें आम संचित होकर मेदयुक्त हो वात, पित्त, कफके मार्गको रोकनेसे भारी होजातीहै फिर वह मेदसंयुक्त आम नीचेको गमनकर अधोगत शिराओं द्वारा ऊरु अर्थात् जांघोंमें प्रवेश होकर मेदसे बलवान् हुए दोष घोररूपसे नितम्ब, जंघा और ऊरुओंमें स्थित होजातेहैं । फिर नितम्ब, जांघें और ऊरु, हिलने डुलनेसे रहित होकर क्रियाहीन और दुर्बल होजातीहैं जैसे महासरोवर परिपूर्ण होनेसे उसका जल स्थिरभावसे टिका रहताहै उसी प्रकार ऊरुगत कफ स्थिरभावसे परिपूर्ण होकर टिका रहताहै । ऊरुस्तम्भ आमदोष और मेदमिश्रित होनेसे प्रायः कफप्रधानही होताहै ॥ ६॥७॥८॥९॥१० ॥

गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः ।
भेदस्फुरणतोदैश्चयुक्तोदेहंनिहन्त्यसून् ॥ ११ ॥

ऊरुस्तम्भमें शरीरका भारीपन, थकावट प्रतीत होना, जंघाका संकोच, दाह, ऊरुओंमें तीव्र पीडा, जांघोंका सुन्नसा होना, कम्पन, भेदनकीसी पीडा, फडकन और तोद यह लक्षण होतेहैं । यह रोग बलवान् होनेसे प्राणोंको नष्ट करदेताहै॥११॥

ऊरूश्लेष्मासमेदस्कोदोषौद्वावभिभूयतु ।
स्तम्भयेत्स्थैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तुसः ॥ १२ ॥

ऊरुस्तम्भ रोगमें कफ और मेदकी मबलता होनेसे वात और पित्त हीन होजाताहै। कफ और मेदकी स्थिरता और शीतलताके कारण ऊरुओंका स्तम्भ होजाताहै । इस लिये इस रोगको ऊरुस्तम्भ कहतेहैं ॥ १२ ॥

ऊरुस्तंभके पूर्वरूप ।

प्रागरूपंध्याननिद्रातिस्तैमित्यारोचकज्वराः ।
लोमहर्षश्चछर्दिश्चजङ्घोर्वोःसदनंतथा ॥ १३ ॥

ध्यान सा लगा रहना, निद्रा, स्तैमित्य, अरोचक, ज्वर, लोमहर्ष, छर्दी, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होजाना यह ऊरुस्तम्भके पूर्वरूप हैं ॥ १३ ॥

वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्यस्यात्स्नेहनात्पुनः ।
पादयोःसदनंसुप्तिःकृच्छ्रादुद्धरणंतथा ॥ १४ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें वातव्याधि वा आमवातकी शंकासे अज्ञानवश मूर्खवैद्य वातनाशक स्नेहन द्रव्योंका प्रयोग करतेहैं जिससे कफकी वृद्धि होकर भी रोग बढजाताहै । तथा ऊरु और पांव सुन्नसे होजातेहैं । रोगी अपने पावों और जांघोंको वडे कष्टसे हिला सकताहै ॥ १४ ॥

ऊरुस्तंभके लक्षण ।

जङ्घोरुग्लानिरत्यर्थंशश्वच्चादाहवेदना । पदञ्चव्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शंनवेत्तिच ॥ १५ ॥ संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः । अन्यनेयोहिसंभग्नावूरुपादौचमन्यते ॥ १६ ॥

जंघा और ऊरुओंमें अत्यंत ग्लानि, सर्वदा दाह, पीडा, पैरके उठाने धरनेमें अत्यंत व्यथा मतीत होनी, शीतल स्पर्शका अनुभव न होना, रोगी पांवको स्थिरभावसे रख न सके और दवा न सके पांवोंकी गति स्थिर न रहे, रोगी चलनेमें असमर्थ हो ॥ १५ ॥ १६ ॥

ऊरुस्तंभमें साध्याऽसाध्य ।

यदादाहार्त्तितोदार्त्तिवेपनःपुरुषोभवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथानवम् ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भ अधिक दिनका होनेसे वल पाकर दाह, पीडा, तोद और कम्पन आदि उपद्रवों सहित होनेसे रोगीकी मृत्यु करताहै । अर्थात् ऊरुस्तम्भ असाध्य होजाताहै और उपद्रवरहित नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होताहै ॥ १७ ॥

ऊरुस्तम्भमें स्नेहनविरेचनादिकां निषेध ।

तस्यनस्नेहनंकार्य्यंनवस्तिर्नविरेचनम् ।
नचैववमनंयस्मात्तन्निबोधतकारणम् ॥ १८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें स्नेहन, वस्तिकर्म, विरेचन और वमन कभी भी नहीं कराने चाहियें । जिन हेतुओंसे स्नेहन आदि नहीं कराने चाहिये उन कारणोंको सुनो १८॥

वृद्धयेश्लेष्मणोनित्यंस्नेहनंवस्तिकर्मच ।
तत्स्थस्योद्धरणेचैवनसमर्थंविशोधनम् ॥ १९ ॥

स्नेहन और वस्तिकर्म करनेसे अवश्यही कफकी वृद्धि होतीहै, और वमन विरेचनके करानेसे उरुस्तम्भका दोष उखडकर निकल नहीं सकता । इसलिये विना आवश्यकता वमन विरेचन कराना वृथा होताहै ॥ १९ ॥

कफंकफस्थानगतंपित्तञ्चवमनात्सुखम् । हर्त्तुमामाशयस्थौचस्रंसनात्तावुभावपि ॥ २० ॥ पक्वाशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्मूलनिर्जयात् । शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धाजंघोरुसंस्थिताः ॥ २१ ॥

यदि कफ अपने स्थान आमाशयमें हो और पित्त अपने स्थानमें हो तो यह वमन विरेचन द्वारा दोनों सुखपूर्वक निकल सकतेहैं । आमाशयमें स्थितहुए कफ और पित्त स्रंसन द्वारा सुखपूर्वक निकल सकतेहैं और पक्वाशयमें स्थितहुए वायु अथवा वातादि तीनों दोष वस्ति कर्मद्वारा सुखपूर्वक जडसे निकल जातेहैं । परन्तु ऊरुस्तम्भ रोगमें जंघा और ऊरु-आम और मेदसे स्तम्भित होनेसे उनमें स्थित वात, पित्त, कफ, इन वमन, विरेचन, स्नेहन और वस्ति आदि उपायोंसे निकल नहीं सकते । इसलिये ऊरुस्तम्भमें वमनादि शोधनक्रिया निष्फल होतीहै । और स्नेहनक्रिया कफ-मेदवर्द्धक होनेसे हानिकारक होती हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

वातस्थानेहितेशैत्याद्वयोःस्तम्भाश्चतद्गताः ।
नशक्याःसुखमुद्धर्त्तुंजलंनिम्नादिवस्थलात् ॥ २२ ॥

ऊरु और जंघा वायुका स्थान है । वायुकी शीतलताके कारण ही ऊरु और जंघाओंका स्तम्भ होताहै । जैसे-नीचे गढेमेंसे विना परिश्रम जल नहीं निकाला जासकता, इसी प्रकार ऊरु और जंघा देहके नीचे भागमें हैं, उनमें स्थित हुए दोष भी सहज ही नहीं निकाले जासकते ॥ २२ ॥

---

१ जो द्रव्य आम और कच्चे पक्के मलको निकालनेवाला हो उसको स्रंसन कहतेहैं ।

ऊरुस्तंभकी चिकित्साका निर्देश।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा। युक्त्यपेक्षीभिषक्कुर्य्यादधिकत्वारकफामयोः ॥ २३ ॥

ऊरुस्तम्भमें संशमन क्रिया करना ही हितकारक है इसमें जिस प्रकार दोषका क्षय और शोषण हो वही ऊरुस्तम्भमें संशमनीय चिकित्सा है। इसलिये वैद्यको युक्तिपूर्वक कफ और आमकी अधिकताको जीतना चाहिये ॥ २३ ॥

ऊरुस्तंभमें पथ्य।

सदारूक्षोपचारायवश्यामाककोद्रवान्। शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः ॥ २४ ॥ सुनिषण्णकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः। वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः ॥ २५ ॥ क्षारारिष्टप्रयोगाच्चहरीतक्यास्तथैवच। मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भविनाशनाः ॥ २६ ॥

ऊरुस्तम्भमें सदा ही रूक्ष उपचार करना चाहिये। इसलिये रोगीको यवके सत्तू शौंक (सांवा) के चावलोंका भात और कोद्रवका अन्न सेवन कराना चाहिये। और व्यंजनके लिये लवण रहित जल और तेलमें पकाये हुए शाक देना चाहिये। चौपतिया शाक, निम्बशाक, आकके पत्तोंका शाक तथा बेत, अमलतासके पत्र, मकोय, बथुवा, परवल और कडुवे शाक तथा क्षार, अरिष्ट, हरड, शहद मिश्रित जल, पीपल यह सब हितकारक और ऊरुस्तम्भनाशक होतेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥

ऊरुस्तंभनाशक योग।

समङ्गांशाल्मलींविल्वंमधुनासहनापिबेत्। तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि। चन्दनंधातकींकुष्ठंतालीशंनलदंतथा ॥ २७ ॥

वाराहक्रान्ता, सेमलकी छाल और बिल्वकी छालके क्वाथको शहदके साथ पीवे अथवा सरलका गोंद, नेत्रवाला, देवदारु और तगरका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे। या लालचंदन, धावेके फूल, कूठ, तालीशपत्र और खसका क्वाथ शहद मिलाकर पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ २७ ॥

मुस्तंहरीतकींलोध्रंपद्मकंतिक्तरोहिणीम्। देवदारुहरिद्रेद्वेवचांकटुकरोहिणीम् ॥ २८ ॥ पिप्पलापिप्पलींमूलंसरलंदेवदारुच। चव्यचित्रकमूलानिदेवदारुहरीतकीम् ॥ २९ ॥ भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलींपञ्चतान्पिबेत्। सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कानूरुग्रहापहान् ॥३०॥

१ नागरमोथा, हरड, लोध, पद्मकाष्ठ और कुटकी । २ देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, वच और कुटकी । ३ पीपल, पीपलामूल, सरलकाष्ठ और देवदारु ।४ चव्य चित्रककी जड, देवदारु और हरड । ५ भिलावा पीपलामूल और पीपल । इन आधे २ श्लोकोंमें कहे पांच योगोंमेंसे किसी एक योगके कल्कको शहद मिलाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

शार्ङ्गष्टांमदनंदन्तींवत्सकस्यफलंवचाम् । मूर्वांमारग्वधांपाठांकरञ्जंकुलकंतथा ॥ ३१ ॥ पिबेन्मधुयुतंतुल्यंचूर्णंवावारिणाप्लुतम् । सक्षौद्रंदधिमण्डंवाप्यूरुस्तम्भविनाशनम् ॥ ३२ ॥

करंजके फल, मैनफल, दंती, इन्द्रयव और वच । मूर्वा, अमलतास, पाटला, करंजुएके फल और परवल । इन दोनों योगोंमेंसे किसी एक योगका क्वाथ बना शहदमिला पीवे । अथवा इनका चूर्ण बना शहदयुक्त जलके साथ अथवा शहदयुक्त दधिमण्डके साथ पीवे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

मूर्वामतिविषांकुष्ठंचित्रकंकटुरोहिणीम् ।
पूर्ववद्वापिबेत्तोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥ ३३ ॥

मूर्वा, अतीश, कूठ, चित्रककी छाल और कुटकीका चूर्ण कर शहदमिले जलके साथ या इनका क्वाथ बना शहदमिला पीवे । अथवा इन सब औषधियोंको सायंकाल जलमें भिगोदे और प्रातःकाल उस जलको छान शहद मिला पीवे ॥ ३३ ॥

स्वर्णक्षीरीमतिविषांमुस्तंतेजोवतींवचाम् । सुराह्वंचित्रकंकुष्ठंपाठां कटुकरोहिणीम् ॥ ३४ ॥ लेहयेन्मधुनाचूर्णंसक्षौद्रंवाजलान्वितम् । फलींव्याघ्रनखंहेमपिबेद्वामधुसंयुतम् ॥ ३५ ॥ त्रिफलांपिप्पलींमुस्तंचव्यंकटुकरोहिणीम् । लिह्याद्वामधुनाचूर्णमूरुस्तम्भार्दितोनरः ॥ ३६ ॥

स्वर्णक्षीरी, अतीश, नागरमोथा, चव्य, वच, देवदारु, चित्रक, कूठ, पाटला और कुटकीका चूर्ण शहद मिला चाटे अथवा शहदयुक्त जलके साथ पीवे या प्रियंगु, व्याघ्रनखी और नागकेशरके चूर्णको शहद मिला पीवे । अथवा त्रिफला, पीपल, नागरमोथा, चव्य और कुटकीका चूर्ण बना शहद मिला चाटे तो ऊरुस्तंभ रोग दूर होताहै ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अपतर्पणजश्चेत्स्यादोषःसन्तर्पयेद्धितम् ।
यत्तयाजाङ्गलैर्मांसैःपराणैश्चैवशालिभिः ॥ ३७ ॥

. ऊरुस्तम्भमें अपतर्पण करनेसे यदि रूक्षता उत्पन्न होजाय तो रोगीको संतर्पण करना चाहिये । जंगली जीवोंके मांसरसके साथ पुराने शालिचावलोंका भात सेवन करावे तो संतर्पण हो ॥ ३७ ॥

रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्त्तिपूर्वकः ।
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकार्य्योवातामयापहः ॥ ३८ ॥

यदि रूक्षताके कारण ऊरुस्तम्भवाले रोगीकी निद्राका नाश होजाय और वायुका कोप होकर पीडा होने लगे तो स्नेह द्रव्योंसे वातनाशक स्वेदन करना चाहिये । अथवा वातनाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया करना चाहिये ॥ ३८ ॥

पिलुपर्णीपयस्याचराल्लागोक्षुरकोवचा। सरलागुरुपाठाश्चतैलमे-
भिर्विपाचयेत् । सक्षौद्रात्प्रसृतंतस्मादञ्जलिंवापिनापिवेत् ॥३९॥

मूर्वा, क्षीरकाकोली रासना, गोखरू, वच, सरलकाष्ठ, अगर और पाठाके कल्कसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको शहद मिलाकर दो पल प्रमाण पीवे तो ऊरुस्तम्भ रोगीकी रूक्षता दूर हो और ऊरुस्तम्भ भी शान्त हो ॥ ३९ ॥

कुष्ठंश्रीवेष्टकोदीच्यसरलंदारुकेशरम् । अजगन्धाश्वगन्धाचतैलंतैः
सार्षपंपचेत् ॥ ४० ॥ सक्षौद्रंमात्रयातच्चाप्यूरुस्तम्भार्दितःपिवेत् ।
रौक्षान्मुक्तऊरुस्तम्भात्ततश्चसविमुच्यते ॥ ४१ ॥

कूठ, श्रीवेष्टक, सुगंधवाला, देवदारु, नागकेशर, अजवायन, और असगंध इन सबके कल्कसे सरसोंके तेलको सिद्धकर उस तेलमें शहद मिला उचित मात्रासे पीवे इसके पीनेसे ऊरुस्तम्भकी रूक्षता और ऊरुस्तम्भ दोनों दूर होतेहैं ॥ ४० ॥ ४१ ॥

सैन्धवादितैल ।

द्वेपलेसैन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्रकात् । द्वेद्वेभल्लातकास्थीनि
विंशतिर्द्वेतथाढके ॥४२॥ आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यैतैरपत्यदम् ।
गृध्रस्यूरुग्रहाशोंर्ऽर्त्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४३ ॥

सेंधानमक २ पल, सोंठ ५ पल, वच २ पल, चित्रक २ पल, भिलावेकी गिरियां २०, कांजी २ आढक, तेल १ प्रस्थ, इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । यह तेल संतानको देनेवाला तथा गृध्रसी ऊरुस्तम्भ, बवासीर और सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अष्टकट्वरतैल ।

पलाभ्यांपिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरः ।
तैलप्रस्थःसमोदध्नागृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ ४४ ॥

पीपलामूल १ पल, सोंठ १ पल, मलाईयुक्त दहीका घोल ८ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दही १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर तेल सिद्ध करे। इस तेलके पान करनेसे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भ नष्ट होताहै ॥ ४४ ॥

इत्याभ्यन्तरमुद्दिष्टमूरुस्तम्भस्यभेषजम् ।
श्लेष्मणःक्षपणंत्वन्यद्बाह्यंशृणुचिकित्सितम् ॥ ४५ ॥

इस प्रकार यह ऊरुस्तम्भरोगमें आभ्यंतर अर्थात् खानेकी औषधियोंका वर्णन कियाजाचुका अब ऊरुस्तम्भके कफको नष्ट करनेवाले बाहरी स्वेद लेपादिको सुनो ॥ ४५ ॥

वल्मीकमृत्तिकामूलंकरञ्जस्यफलंत्वचम् । इष्टकानांततश्चूर्णैःकुकुर्य्यादुत्सादनंभृशम् ॥ ४६ ॥ मलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैरर्कस्यवाभिषक् । पिचुमर्दस्यवामूलैरथवादेवदारुणः ॥ ४७ ॥ क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतैर्भिषक् । गाढमुत्सादनंकुर्य्यादूरुस्तम्भेप्रलेपनम् ॥ ४८ ॥

सांपकी वम्बीकी मट्टी, करंजकी जड और फल तथा त्वचा, ईटका चूर्ण इन सबको पीसकर ऊरुस्तम्भमें जंघा और ऊरुओंपर खूब मालिश करे। अथवा असगंधकी जडका चूर्ण या पाढकी जडका चूर्ण अथवा देवदारुकी जडका चूर्ण या नीमकी जडका चूर्ण शहद, सफेद सरसों और सर्पकी वम्बीकी मिट्टी मिला मिट्टी खूब मले तथा लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्षपैश्चापिबुद्धिमान् । तर्कारीशिग्रुसुरसनिम्बवत्सकनिम्बजैः ॥ ४९ ॥ पत्रमूलफलैस्तोयंश्रृतमुष्णश्चसेचनम् । पिष्ट्वासर्षपंमूत्रेऽभ्युषितंस्यात्प्रलेपनम् ॥ ५० ॥

दंती, द्रवंती, काली, तुलसी और सफेद सरसोंको पीसकर शहदमें मिला ऊरुस्तम्भमें मर्दन करे तथा लेप करे। अथवा अरणी, सोंठ, काली तुलसी, साहजनेके बीज, इन्द्रयव और नीमके पत्तोंका ऊरुस्तम्भमें जांघों और ऊरुओं पर लेप करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंको मूल, पत्र और फलों सहित लेकर क्वाथ करे । उस गरम

गरम क्वाथसे जंघाओं और ऊरुओंको सेचन करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंके पत्र, मूल, फलोंको और सफेद सरसोंको गोमूत्रमें भिगोकर रात्रिभर रहने दे। प्रातःकाल उसी गोमूत्रमें घोटकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर हो ॥ ४९ ॥ ५० ॥

वत्सकःसुरसंकुष्ठंगन्धास्तुम्बुरुशिग्रुकौ । हिंस्रार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाःसकुठेरुकाः ॥ ५१ ॥ दधिसैन्धवसंयुक्तंकार्य्यमेतैःप्रलेपनम् । ऊरुस्तम्भविनाशायभिषजाजानताक्रमम् ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, काली तुलसी, कूठ, असगंध, नैपाली धनियां, सुहांजनेके बीज, हींसकी जडका छिलका, आंककी जडका, छिलका सांपकी बम्बीकी मट्टी और वनतुलसी इन सबको सेंधानमक युक्तकर दहीमें पीस क्रमपूर्वक लेप करे तो ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

श्योणाकंखदिरंबिल्वंबृहत्यौसरलासनौ । शोभाञ्जनकतर्कारीश्वदंष्ट्रासुरसार्जकान् ॥ ५३ ॥ अग्निमन्थकरञ्जौचजलेनोत्क्वाथ्यसेचयेत् । प्रलेपोमूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ॥ ५४ ॥

सोनापाठाकी छाल, खैरका छिलका, बेलकी जडका छिलका, बडी कटेलीकी दड, सरल काष्ठ, विजैसार सुहांजनेकी छाल, अरणी, गोखरू, सुरसा तुलसी, अर्जक तुलसी, अग्निमन्थ, करंजुएके बीज इन सबका जलमें क्वाथकर उस गर्म क्वाथ द्वारा जांघोंका सेचन करे। अथवा इन्हीं द्रव्योंको गोमूत्रमें पीसकर गर्म गर्म लेप करे तो ऊरुस्तम्भ दूर होताहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

कफक्षयार्थंसह्येपुव्यायामेष्वनुयोजयेत् । स्थलान्याक्रामयेत्कालेंशर्कराःसिकतास्तथा ॥ ५५ ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्रोतांनदींशीतजलांशिवाम् । सरश्चविमलंशीतंस्थिरतोयंपुनःपुनः ॥ ५६ ॥

कफके क्षीण करनेके लिये और रोगी सहनशक्तिवाला हो इसलिये रोगीको इधर उधर फिरने तुरनेका यथासमय परिश्रम कराना चाहिये। अथवा रोगीको ऊंचे स्थान पर या कंकरोंके अथवा बालुके ढेर पर चढावे। यदि उचित हो तो बल काल आदि विचारकर निर्मल जलवाली नदीकी धाराके आगेको तैरावे अथवा निर्मल, शीतल स्थिर जलवाले तालावमें बारबार तैरावे तो जंघा खुलकर ऊरुस्तम्भ दूर होता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

तथाविशुष्केऽस्यकफेशान्तिमूरुग्रहोव्रजेत् ।
श्लेष्मणःक्षपणंयत्स्यान्नचमारुतमावहेत् ॥ ५७ ॥

तथा जिस प्रकार कफ शोषण होकर ऊरुस्तम्भकी शान्ती हो उस प्रकार चिकित्सा करना चाहिये । जिस क्रियासे कफका क्षय हो और वायु बढने न पावे वही ऊरुस्तम्भरोगकी चिकित्सा है ॥ ५७ ॥

तत्सर्वंसर्वदाकार्य्यमूरुस्तम्भस्यभेषजम् ।
शरीरंबलमग्निश्चकार्य्यंवारक्षताक्रिया ॥ ५८ ॥

ऊरुस्तम्भरोगमें सदा ही सब प्रकार कफनाशक और वातको शमन करनेवाली चिकित्सा शरीर, बल और अग्निकी रक्षा करतेहुए करना चाहिये ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ।

हेतुःप्राग्रूपलिङ्गानिकर्मायोग्यत्वमेवच ।
द्विविधंभेषजञ्चोक्तमूरुस्तम्भचिकित्सिते ॥ ५९ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०ऊरु०चिकित्सितंनामसप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

यहांअध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस ऊरुस्तम्भचिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भके हेतु पूर्वरूप, लक्षण, पंचकर्मकी अयोग्यता तथा आभ्यंतर और बाह्य दोनों प्रकारकी चिकित्साका वर्णन कियाहै ॥ ५९ ॥

इति श्रीचर० चिकि० प्र० भा० टी० ऊरुस्तम्भचिकित्सित नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातो वातव्याधिचिकित्सितं नामाध्यायं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वातव्याधिचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

वायुकी उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्बलंवायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् ।
वायुर्विश्वमिदंसर्वंप्रभुर्वायुश्चकीर्त्तितः ॥ १ ॥

प्राणियोंके शरीरमें वायु ही आयु है । वायु ही बल और वायु ही संपूर्ण विश्व है, और वायु ही प्रभुनामसे उच्चारण कियाजाता है ॥ १ ॥

अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः ।
वायुःस्यात्सोऽधिकंजीवेद्वीतरोगःसमाःशतम् ॥ २ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अव्याहतगति होकर अपने स्थानमें और प्रकृतिस्थ वायु रह-ताहै वह मनुष्य रोगरहित और बलसंपन्न होकर १०० वर्षकी आयुको प्राप्त होताहै २

वायुके ५ भेद।

प्राणोदानसमानाख्यव्यानापानैःसपञ्चधा ।
देहंतन्त्रयतेसम्यक्स्थानेष्वव्याहतश्चरन् ॥ ३ ॥

प्राण, उदान, समान, व्यान, और अपान इन भेदोंसे वायु पांच प्रकारका होताहै । यह पांच प्रकारके वायु ही अपने २ स्थानोंमें अव्याहतगतिसे रहतेहुए देहका पालन, पोषण और रचनाको करते हैं ॥ ३ ॥

प्राणवायुके स्थान और कर्म।

स्थानंप्राणस्यशीर्षोरःकर्णजिह्वाक्षिनासिकाः ।
ष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासाहारादिकर्मच ॥ ४ ॥

प्राणवायु-शिर, छाती, कण्ठ, जिह्वा, मुख और नासिकामें रहताहै, थूकना, छींक, उद्गार, श्वास और आहारका ग्रहण करना आदि प्राणवायुके कर्म हैं ॥ ४ ॥

उदानवायुके स्थान व कर्म।

उदानस्यपुनःस्थानंनाभ्युरःकण्ठएवच ।
वाक्प्रवृत्तिःप्रयत्नौजोबलवर्णादिकर्मच ॥ ५ ॥

उदानवायु-नाभि, हृदय, और कण्ठमें निवास करताहै और बोलना, शरीरकी चेष्टा आदि प्रयत्न तथा ओज, बल और वर्ण आदिकोंकी वृद्धिकरना इसका कर्म है ॥ ५ ॥

समानवायुके स्थान व कर्म।

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्रोतांसिसमधिष्ठितः ।
अन्तरग्नेश्चपार्श्वस्थःसमानोऽग्निबलप्रदः ॥ ६ ॥

स्वेदवाही दोषवाही और जलवाही स्रोत समानवायुके स्थान हैं। पांच प्रकारकी अग्निके समीप रहकर अग्निके बलको बढाना यह समानवायुके कर्म हैं ॥ ६ ॥

व्यानवायुका स्थान व कर्म।

देहंव्याप्नोतिसर्वन्तुव्यानःशीघ्रगतिर्नृणाम् ।
गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रियासदा ॥ ७ ॥

व्यानवायु-संपूर्ण देहमें व्याप्त है और शीघ्रगमनशील है । इस वायुसे ही मनुष्योंकी गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेष आदि क्रिया होतीहैं ॥ ७ ॥

उदानवायुके स्थान व कर्म ।

वृषणौवस्तिमेढ्रञ्चनाभ्यूरूवंक्षणौगुदम् ।
अपानस्थानयन्त्रस्थःशुक्रमूत्रशकृन्तिसः ॥ ८ ॥
सृजत्यार्त्तवगर्भौचयुक्ताःस्थानस्थिताश्चते ।
स्वकर्मकुर्वतेदेहोधार्य्यतेतैरनामयः ॥ ९ ॥

दोनों वृषण, वस्ति, मेढ्र (लिंग) नाभि, ऊरु, वंक्षण और गुदा यह अपानवायुके स्थान हैं । तथा मलाशयकी अंतडी अपानवायुका प्रधान स्थान है । वीर्य, मूत्र, मल और वायुका त्याग करना तथा मासिक ऋतु और गर्भका परित्याग करना इसका काम है यह पांचों वायु अपने २ स्थानमें स्थित, और यथाप्रमाण रहतेहुए अपने २ कार्यको करते रहते हैं । यह वायु ही प्रकृतिस्थ रहनेसे शरीरको नीरोग और धारण करतेहैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

विकृतवायुके कर्म ।

विमार्गस्थाह्ययुक्तावारोगैःस्वस्थानकर्मजैः ।
शरीरंपीडयन्त्येतेप्राणानाशुहरन्तिवा ॥ १० ॥

यह पांचों वायु विमार्गगामी होने, अर्थात् अपने २ स्थानको छोडकर अन्यस्थानमें गमन करनेसे, अथवा विहतगति होनेसे अपने २ स्थानोंमें अपने २ कर्मों द्वारा अनेक रोगोंको उत्पन्न कर शरीरका पीडन करते हैं तथा शरीरका नाश करते हैं ॥ १० ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानांतज्जानांहिप्रधानतः । अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाःसूत्रेनिदर्शिताः ॥ ११ ॥ तानुच्यमानान्पर्य्यायैःसहेतूपक्रमाञ्शृणु । केवलंवायुमुद्दिश्यस्थानभेदात्तथावृतम् ॥ १२ ॥

सूत्रस्थानमें वातजनित असंख्य रोगोंमें अस्सी प्रकारके प्रधान रोगोंका नख आदि भेदसे वर्णन कर आयेहैं । अब पर्यायक्रमसे उन वातव्याधियोंके हेतु और चिकित्साका वर्णन करतेहैं । केवल वायुका उद्देश कर स्थानभेदसे और आवृत्तवायुके विषयको जिस प्रकार हम कहतेहैं उसे सुनो ॥ ११ ॥ १२ ॥

वातव्याधियोंके हेतु ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचाराच्चदोषा-

सूक्ष्त्रवणादति ॥ १३ ॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ १४ ॥ दुःखशय्यासनात्क्रोधाद्दिवास्वप्नाद्भयादपि । वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्माघाताद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानावतंसनात् ॥ १५ ॥ देहेस्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोबली । करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रितान् ॥ १६ ॥

रूक्ष, शीतल, अल्प और हलके अन्न पानके सेवनसे; मैथुन, रात्रिमें अधिक जागरण, वमनादि पांच कर्ममें विषम उपचार होना, अत्यंत मल, रक्तस्राव, अत्यंत लंघन, अत्यंत जलमें तैरना, अधिक भ्रमण, अधिक व्यायाम, अत्यंत शारीरिक चेष्टा, धातुओंका क्षय, चिन्ता, शोक, व्याधि आदिसे; अत्यंत कृश होना, वेगोंका धारण करना, अजीर्ण, अभिघात, भोजन न करना, मर्मस्थानमें चोट लगना, हाथी, ऊंट और घोडा आदि शीघ्र गमन करनेवाली सवारी पर चढना, या इन हाथी, घोडे आदिको रोकनेका यत्न करना अथवा इनके साथ भागना या इनके ऊपरसे गिरजाना आदि कारणोंसे देहके संपूर्ण स्रोत खाली होजातेहैं उस समय बढाहुआ वायु अवकाशको पाकर उन छिद्रोंमें प्रवेश कर सर्वांगसंस्थित रोग अथवा एकांगगत अनेक प्रकारकी व्याधियोंको उत्पन्न करताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

पूर्वरूप और अपाय ।

अव्यक्तंलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ।
आत्मरूपन्तुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ॥ १७ ॥

वातव्याधियोंके अव्यक्त अर्थात् अप्रगट लक्षणोंको उनके पूर्वरूप कहतेहैं और व्यक्तलक्षण होनेसे वही रूप कहेजातेहैं । उनकी लघुताको अपाय कहते हैं अर्थात् कुपित वायुका अल्प होजाना ही रोगका नाश कहाजाताहै ॥ १७ ॥

कुपितवायुके कर्म ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभेदोऽस्थिपर्वणामपि । लोमहर्षःप्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ १८ ॥ खाञ्ज्यपाङ्गुल्यकुब्जत्वंशोषोऽङ्गानामनिद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनंगात्रसुप्तता ॥ १९ ॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणांग्रीवायाश्चापिहुंडनम् । भेदस्तोदार्त्तिराक्षेपोमोहश्चायासएवच ॥ २० ॥ एवंविधानिरूपाणिकरोतिकुपितोनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्चभवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २१ ॥

कुपित वायुके यह लक्षण होतेहैं । जैसे-संधियोंका संकोच, स्तम्भ, हडफूटन, पर्वभेद, रोमहर्ष, अण्टसण्ट बकना, पाणिग्रह, पीठका जकडजाना, शिरोग्रह, लंज, पंगुता, कुबडापन, अंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, शुक्रनाश, रजोनाश, कडकना, अंगोंका सुन्न होजाना, मस्तकविकृति, नासा, नेत्र, ऊर्द्धजत्रु और गरदनका टेढा होजाना, भेद, तोद, शूल, आक्षेप, मोह, श्रम प्रतीत होना और इसी प्रकारके अन्यान्य उपद्रव होना यह कुपित वायुके कर्म हैं । हेतु और स्थानविशेषसे वातव्याधियोंमें भिन्नता होतीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

कोष्ठाश्रितकुपितवातके कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहोमूत्रवर्चसोः ।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शपार्श्वशूलश्चमारुते ॥ २२ ॥

मूत्र और मलका विबंध, ब्रध्नरोग, हृद्रोग, गुल्मरोग, बवासीर और पार्श्वपीडा यह कोष्ठाश्रित कुपित वायुके लक्षण हैं ॥ २२ ॥

सर्वांगगत कुपित वायु व लकवा ।

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणभञ्जनम् ।
वेदनाभिःपरीतश्चस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ॥ २३ ॥

सर्वांगस्थित वायु कुपित हो तो अंगोंमें स्फोटन, सब अंगोंका कडकना, भेदनकीसी पीडा, संपूर्ण संधियोंका वेदनासे फटनासा, प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २३ ॥

गुदस्थ कुपित वातके लक्षण ।

ग्रहोविण्मूत्रवातानांशूलाध्मानाश्मशर्कराः ।
जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषागुदेस्थिते ॥ २४ ॥

गुदामें स्थित वायु कुपित होजाय तो मल, मूत्र तथा अधोवायुका विबंध, शूल, अफारा, पथरी, शर्करा और जंघा, ऊरु, त्रिकस्थान, पैर तथा पीठमें अत्यंत पीडा और शोष यह लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

आमाशयस्थ कुपित वातके लक्षण।

हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्तृष्णोद्गारविषूचिकाः ।
कासःकण्ठास्यशोषश्चश्वासश्चामाशयस्थिते ॥ २५ ॥

आमाशयस्थ वायु कुपित होय तो हृदय, नाभि, पार्श्व और उदरमें पीडा, प्यास, उद्गार, विषूचिका, खांसी, कण्ठ और मुखका सूखना तथा श्वास यह लक्षण होतेहैं ॥ २५ ॥

पक्वाशयस्थ कुपित वायुके लक्षण ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच ।
कृच्छ्रमूत्रपुरीपत्वमानाहंत्रिकवेदनाम् ।

पक्वाशयगत वायु कुपित होय तो अंत्रकूंजन, शूल, आटोप, मूत्रकृच्छ्र, मलकी कठोरता, अफारा और त्रिकस्थानमें पीडा यह लक्षण होतेहैं ।

श्रोत्रादिइंद्रियगत कुपित वातके कर्म ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधंकुर्य्याद्दुष्टसमीरणः ॥ २६ ॥

यदि श्रोत्रादि इन्द्रियगत वायु कुपित हो तो इन्द्रियोंका नाश करताहै ॥ २६ ॥

त्वचागत कुपित वातके लक्षण ।

त्वग्रूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकृष्णाचतुद्यते ।
आतन्यतेसरागाचपर्वरुक्त्वक्स्थितेऽनिले ॥ २७ ॥

त्वचागत वायु कुपित होय तो त्वचा रूक्ष, फटीहुईसी, सुन्न, कृश, काली, तोदयुक्त, तनीहुईसी या लालवर्णकी होतीहै । तथा पर्वोंमें पीडा होतीहै ॥ २७ ॥

मांसमेदगत कुपित वातके लक्षण ।

रुजस्तीव्राःससन्तापाविवर्ण्यकृशताऽरुचिः ।
गात्रेचारूंषिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृग्गतेनिले ॥ २८ ॥

रुधिरगत वायुके कुपित होनसे-तीव्र पीडा, संताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, शरीरमें अरूपिकानामक छोटी २ फुन्सियोंका होना, भोजनके अनन्तर शरीरका स्तब्धसा होजाना यह लक्षण होतेहै ॥ २८ ॥

मांसमेदगतके लक्षण ।

गुर्वङ्गंतुद्यतेऽत्यर्थंदण्डमुष्टिहतंयथा ।
सरुक्श्रमितमत्यर्थंमांसमेदोगतेऽनिले ॥ २९ ॥

मांस और मेदगत कुपित वायुके होनेसे-अंगोंमें भारीपन, दण्डों और मुक्कोंके मारनेकी सी पीडा प्रतीत होना, अत्यंत शूल और अधिक थकावट प्रतीत होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २९ ॥

मज्जागत कुपित वातके लक्षण ।

भेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसबलक्षयः ।
अस्वप्नःसन्ततारुक्चमज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ ३० ॥

मज्जागत वायुके कुपित होनेसे अस्थि, पर्व और संधियोंमें शूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रानाश, निरन्तर पीडा होतीहै । यही अस्थिगत कुपित वायुके भी लक्षण हैं ॥ ३० ॥

क्षिप्रंमुञ्चतिबध्नातिशुक्रंगर्भमथापिवा ।
विकृतिंजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः ॥ ३१ ॥

शुक्रगत कुपित वायु होनेसे वीर्य शीघ्र २ निकल जाताहै तथा गर्भ गिरजाताहै, अथवा विकृत गर्भ होताहै, या शुक्र और गर्भ रुकजातेहैं यह लक्षण होतेहैं ॥ ३१ ॥

स्नायुगत वातके लक्षण ।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्चकुर्य्यात्स्नायुगतोऽनिलः ।
बाह्याभ्यन्तरमायामंखल्लिंकुब्जत्वमेवच ॥ ३२ ॥

स्नायुगत कुपित वायुसे सर्वांगोंका जकडजाना अथवा पक्षावात आदि एकांगरोग होना, बाह्यायाम, या अन्तरायाम खल्ली और कुबडापन यह रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ३२ ॥

शिरागत कुपित वातके लक्षण ।

शरीरंमन्दरुक्शोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपिवा ।
सुप्तास्तन्व्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते ॥ ३३ ॥

शिरागत वायुके कुपित होनेसे शरीरमें मंद मंद पीडा, सूजन, शरीरका सूखजाना, फडकना और संपूर्ण शिराओंका सुन्न पतली अथवा मोटी होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ ३३ ॥

संधिगत वातके लक्षण ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शःशोथःसन्धिगतेऽनिले ।
प्रसारणाकुञ्चनयोरप्रवृत्तिःसवेदना ॥ ३४ ॥

संधिगत कुपित वायुसे संपूर्ण संधिमें वायुसे पूर्ण मसकके समान स्पर्शमें प्रतीत हो और सूजीहुई हो तथा संधियोंका फैलना और संकोच बन्द होजाय तथा संधियोंमें अत्यन्त पीडा हो ॥ ३४ ॥

अर्द्धांगगत (अर्दित) वातके लक्षण ।

अतिवृद्धःशरीरार्द्धमेकंवायुःप्रपद्यते । यदातदोपशोष्यासृक्वाहुंपादञ्चजानुच ॥ ३५ ॥ तस्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धेमुखंजिह्मंकरोतिच । वक्रीकरोतिनासाभ्रूललाटाक्षिहनूस्तथा ॥ ३६ ॥ ततोवक्रंव्रजत्या-

स्येभोजनंवक्रनासिकम् । स्तब्धंनेत्रंकथयतःक्षवथुश्चनिगृह्यते ॥ ३७ ॥ दीनाजिह्वासमुत्क्षिप्ताऽवलासज्जातिचास्यवाक् । दन्ताश्चलन्तिवाध्यंतेश्रवणौभिद्यतेस्वरः॥ ३८ ॥ पादहस्ताक्षिजङ्घोरुशंखश्रवणगण्डरुक् । अर्द्धेतस्मिन्मुखार्द्धेवाकेवलेस्यात्तदर्दितम्॥३९॥

जब वायु अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हो शरीरके वाम अथवा दक्षिण आधे अंगमें प्रवेश करतीहै तब उस आधे अंगका रक्त भुजा, पांव और घुटनेको संकुचित कर उसी ओरके आधे मुखको भी टेढा कर देता है उससे नासा, भ्रू (भौंहें) ललाट, नेत्र और ठोडी भी टेढी होजातीहैं, जब वह मनुष्य भोजन करने लगता है तो मुखमें भोजन डालते समय उसका मुख और नाक विशेषरूपसे टेढा प्रतीत होताहै । बोलते समय नेत्र स्तब्ध होजाते हैं और यह मनुष्य छींक नहीं ले सकता । जीभ दीन और बाहर निकलीसी प्रतीत होने लगती है । तथा इसकी वाणी दुर्बल अथवा बन्द होजाती है । दांत अपने आप चलायमान अर्थात् शब्द करने लगते हैं । कान सुननेसे बन्द होजाते हैं स्वर भिन्न होजाता और पांव, हाथ, नेत्र, जंघा, ऊरू कनपटी और गुह्य स्थानमें पीडा होने लगतीहै । यह रोग संपूर्ण शरीरके आधे भागमें अथवा केवल आधे मुखमेंही होताहै इसको अर्दित रोग (लोकमें फालिज तथा लकवा) कहते हैं ॥ ३५-३९ ॥

मन्यास्तंभ ।

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाडीःप्रपद्यते ।
मन्यास्तम्भंतदाकुर्य्यादन्तरायामसंज्ञितम् ॥ ४० ॥

मन्या (गलेके दोनों ओरके पार्श्वभाग) में कुपितहुआ वायु मन्याकी नाडियोंके भीतर प्राप्त हो मन्याको नीचे जकड देता है इसको अन्तरायाम मन्यास्तम्भ कहतेहैं ॥४०॥

अंतरायाम और बहिरायामक लक्षण ।

अन्तरायस्यतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम् । दन्तानांदंशनंलालापृष्ठाक्षेपःशिरोग्रहः ॥ ४१ ॥ जृम्भावदनसङ्गश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् । इत्युक्तस्त्वन्तरायामोवहिरायामउच्यते ॥ ४२ ॥

गर्दन भीतरकी ओरको खिचकर स्तब्ध होजाय, ऊपरके दांत नीचेके दांतोंसे जुटजांय, लार गिरनेलगे, पीठके भीतर फडकनसी प्रतीत हो, मस्तकका स्तम्भ होजाय, जँभाई और मुखका बन्द होजाना यह अन्तरायामके लक्षण हैं । अब बहिरायामके लक्षणको कहतेहैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

धनुस्तंभके लक्षण ।

पृष्ठमन्याश्रितावाह्याः शोषयित्वाशिरावलीः । श्रितःकुर्य्याद्धनुस्तम्भंवहिरायामसंज्ञकम् ॥ ४३ ॥ चापवन्नाम्यमानस्यपृष्ठतोनीयते शिरः । उरउत्क्षिप्यतेमन्यास्तब्धाग्रीवाचमृच्यते ॥ ४४ ॥ दन्तानां दंशनं जृम्भालालास्रावश्चवाग्ग्रहः । जातवेगोनिहन्त्येषवै कल्यं वाप्रयच्छति ॥ ४५ ॥

पृष्ठाश्रित वायु मन्याश्रित बाहरकी शिराओंको सुखाकर बहिरायाम नामक धनुस्तम्भ रोगको प्रकट, करताहै । उसके ये लक्षण होतेहै । जैसे–शरीर पीठकी ओरको धनुपके समान टेढा होजाय, मस्तक पीठकी ओर झुकजाय, छाती ऊपरको उठआवे, दोनों ओरकी मन्या जकडजावे, गर्दन मलीहुईके समान प्रतीत हो, दोनों ओरके दांत आपसमें मिलजांय जंभाई, लारका बहना, वाणीका रुकजाना, यह लक्षण होतेहैं । यह रोगविशेष बलवान् होनेसे रोगीको मारडालताहै, अथवा पूर्णबलवान् होनेसे अंगोको विकल करदेताहै ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

हनुस्तंभ ।

हनुमूलेस्थितेवन्धात्स्रंसयत्यनिलोहनुम् । विवृतास्यत्वमथवाकुर्य्यात्संवृतमाननम् ॥ ४६ ॥ हनुग्रहश्चसंस्तभ्यहनुसंवृतवक्त्रताम् । हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिवहुकष्टदम् ॥ ४७ ॥

हनु (ठोडी)की जडमें प्राप्त हुआ कुपित वायु ठोडीके बंधनोंको शिथिल करके मुखको खुला या बन्द ही रखकर हनुको स्तब्ध करदेताहै । ठोडी स्तब्ध होजाय, मुख भिचाहुआ बन्द रहजाय गलेकी नसें तनजांय तथा अत्यंत पीडा हो इत्यादि कष्टकारक लक्षण होतेहैं । इस रोगको हनुस्तम्भ अथवा हनुग्रह कहतेहैं ॥ ४६।४७॥

आक्षेपकके लक्षण ।

मुहुराक्षिपतिक्रुद्धोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः ।
पाणिपादश्चसंशोष्यशिराःसस्नायुकण्डराः ॥ ४८ ॥

वायु संपूर्ण शरीरमें कुपित होकर अंगोको इधर उधर वारंवार फेंके या भीतरी कंपन सा प्रतीत हो हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा सूखजावें । यह आक्षेप वायुके लक्षण है ॥ ४८ ॥

दण्डापतानकके लक्षण ।

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तभ्नातिमारुतः ।
दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽनुपक्रमः ॥ ४९ ॥

कुपितहुआ वायु हाथ, पांव, मस्तक, पीठ और नितम्बोंको जकडकर रोगीको डण्डेके समान तानकर जकड देवे। उसको दण्डापतानक अथवा दण्डक कहते हैं ४९

इसकी असाध्यता।

स्वस्थःस्याददिंताद्यानांमुहुर्वेगागमेगते।
पीड्यतेपीडनैस्तैस्तैर्भिषगेतान्विवर्जयेत् ॥ ५० ॥

अर्दित आदि संपूर्ण वातव्याधियोंमे रोगोंका वेग वारंवार बलपूर्वक आना और वारंवार शान्त होजाना, रोगका वेग चलेजानेपर संपूर्ण शरीर स्वस्थ (नीरोग) प्रतीत होना और फिर वेग आनेपर अत्यन्त पीडित होना इस प्रकार जिसरोगी पर वारवार वातव्याधिका दौरा होता हो वैद्य उस रोगीको त्याग देवे ॥ ५० ॥

पक्षाघात, एकांग और सर्वांग वातव्याधिके लक्षण।

हत्वैकंमारुतःपक्षंदक्षिणंवाममेववा। कुर्य्याच्चेष्टानिवृत्तिंहिरुजंवा-क्स्तम्भमेवच ॥ ५१ ॥ गृहीत्वावाशरीरार्द्धंशिराःस्नायुंर्विशोष्यच। पादंसंकोचयत्येकंहस्तंवातोदशूलनुत्। एकाङ्गरोगंतंविद्यात्सर्वा-ङ्गंसर्वदेहजम् ॥ ५२ ॥

वायु कुपित होकर शरीरके दक्षिण अथवा वाम ओरके आधे भागको स्तब्ध अथवा निश्चेष्ट कर देवे जिससे उस आधे पक्षमे पीडा भी प्रतीत न हो तो इसको पक्षाघात कहते हैं। अथवा आधे शरीरकी शिरा और स्नायुओंको सुखाकर एक पांवको अथवा एक हाथको शूलरहित और सुन्न बनादेवे। अथवा सुखा देवे तो उसको एकांगरोग कहते हैं और संपूर्ण शरीरमे कुपित वायु सर्वांगोको आहत करदेवे, तो उसको सर्वांग रोग कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

गृध्रसीरोगके लक्षण।

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात् ॥ ५३ ॥ गृध्रसीःस्तम्भ-रुक्तोदैर्गृह्णातिस्पन्दतेमुहुः। वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचका-न्विता ॥ ५४ ॥

वायु प्रथम दोनों नितम्बोंमें शूल, स्तम्भ और तोदको उत्पन्न करे फिर क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जांघ और पांवोंमें प्राप्त होकर स्तम्भ, शूलादि उत्पन्न करे उसको गृध्रसी रोग कहतेहै। गृध्रसी रोग वायुसे अथवा वात कफसे उत्पन्न होताहै। इसमें तन्द्रा, भारीपन और अरुचि यह लक्षण होते हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

खल्लीरोगके लक्षण।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटनी।
स्थानानामनुरूपैश्चलिङ्गैःशेषान्विनिर्दिशेत् ॥ ५५ ॥

पांव, जंघा, ऊरु हाथों पहुंचोंमें तोडनेकीसी पीडा, अथवा मरोडसा उत्पन्नकर उसको खल्ली रोग कहतेहैं। इसी प्रकार अन्य २ स्थानोंमें भी जो वातव्याधि उत्पन्न हो उसको स्थान, लक्षण आदि विचारकर जिस अंगमें वह व्याधि हो उस अंगानुसार और व्याधिके लक्षणानुसार उसका नाम रक्खे ॥ ५५ ॥

सर्वेष्वेतेषुसंसर्गंपित्ताद्यैरुपलक्षयेत्।
वायोर्धातुक्षयात्कोपोमार्गस्यावरणेनच ॥ ५६ ॥

इन संपूर्ण वातव्याधियोंमें वायु अत्यंत प्रबल होताहै और कफ पित्तका संसर्ग भी जानना चाहिये धातुओंके क्षय होनेके कारण अथवा मार्गोंके अवरोध होनेसे वायुका कोप होताहै ॥ ५६ ॥

वातपित्तकफादेहेसर्वस्रोतोऽनुसारिणः। वायुरेवहिसूक्ष्मत्वाद्द्वयोस्तत्राप्युदीरणः॥५७॥ कुपितस्तौसमुद्धूयतत्रतत्राक्षिपन्गदान्।
करोत्यावृतमार्गत्वाद्रसादींश्चोपशोषयन् ॥ ५८ ॥

शरीरके संपूर्ण स्रोतोंमें वात, पित्त, कफ यह तीनों दोष अनुसरण अर्थात् गमन करते हैं, परन्तु इनमें वायु सूक्ष्म होनेसे छिद्रोंके मध्यमें प्राप्त होताहुआ दिखाई नहीं देता। वायु कफ और पित्तको उदीर्ण करताहै। वायु ही कफ और पित्तको उठाकर, स्रोतोंमें प्राप्तकर छिद्रोंको रोकदेताहै। जब कफ और पित्त द्वारा छिद्रोंके रुकजानेसे वायुका अवरोध होताहै तो वह रसादिक धातुओंको शोषण करताहुआ अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

पित्तावृतवातके लक्षण।

लिङ्गंपित्तावृतेदाहस्तृष्णाशूलंभ्रमःक्लमः।
कट्वम्ललवणोष्णैश्चविदाहःशीतकामिता ॥ ५९ ॥

वायुका मार्ग पित्तके द्वारा रुकजानेसे दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति उत्पन्न होतीहै उस समय कटु, अम्ल, लवण और उष्ण पदार्थोंके सेवन करनेसे विदाह तथा शीतल वस्तुओंकी इच्छा उत्पन्न होतीहै ॥ ५९ ॥

कफावृतवातके लक्षण।

शीतगौरवशूलानिकट्वाद्युपशयोऽधिकम्।
लंघनायासरूक्षोष्णकामिताचकफावृते ॥ ६० ॥

यदि कफवाही स्रोतोंमें कफद्वारा वायुका मार्ग रुकजाय तो शीत लगना, भारीपन और शूल उत्पन्न हो, तथा चरपरे आदि कफनाशक पदार्थोंके सेवनसे शान्ति प्रतीतहो और लंघन, परिश्रम तथा रूक्ष और उष्ण द्रव्योंके सेवनकी इच्छा उत्पन्न होतीहै ॥ ६० ॥

रक्तावृतवात ।

रक्तावृतेसदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसान्तरजोभृशम् ।
भवेत्सरागःश्वयथुर्जायन्तेमण्डलानिच ॥ ६१ ॥

रक्तवाही स्रोतोंमे रक्तद्वारा वायुका मार्ग रुकजानेसे दाह, पीडा, त्वचा और मांसमें लाल रंगकी पीडायुक्त सूजन तथा मण्डल (गोल २ चकत्ते) उत्पन्न होतेहैं ॥ ६१ ॥

मांसावृतवात ।

कठिनाश्वविवर्णाश्वपिडकाःश्वयथुस्तथा ।
हर्षःपिपीलिकानाञ्चसञ्चारइवमांसगे ॥ ६२ ॥

मांसवाही स्रोतोंमें मांसद्वारा वायुके रुकजानेसे कठोर और विवर्ण, पिडिका (फुंसियां) सूजन, मांसमें सरसराहट और चींटियोंके चलनेकासा संचार प्रतीत होताहै ॥ ६२ ॥

मदावृतवातके ल० ।

चलःस्निग्धोमृदुःशीतःशोफोऽङ्गेष्वरुचिस्तथा ।
आढ्यवातइतिज्ञेयःसकृच्छ्रोमेदसावृतः ॥ ६३ ॥

मेदवाही स्रोतोंमें मेदद्वारा वायुके रुकजानेसे अंगोंका चलायमान होना, अंगोंमें, चिकनी, नरम और शीतल सूजन तथा अरुचि होतीहै । यह आढ्यवात नामवाला कष्टसाध्य रोग होताहै ॥ ६३ ॥

अस्थिगत आवृतवात ।

स्पर्शमस्थ्यावृतेतूष्णंपीडनञ्चाभिनन्दति ।
संभज्यतेसीदतिचसूचीभिरिवतुद्यते ॥ ६४ ॥

हड्डियोंमें-वायुके रुकजानेसे गरम स्पर्श और दबानेसे आराम प्रतीतहो संपूर्ण शरीरमें भेदन करनेकीसी पीडा प्रतीतहो हड्डियें सुन्नसी होजांय और सूई चुभनेकासा तोद होताहै ॥ ६४ ॥

मज्जावृत वात ।

मज्जावृतेविनामःस्याज्जृम्भणंपरिवेष्टनम् ।
शूलन्तुपीड्यमानेचपाणिभ्यांलभतेसुखम् ॥ ६५ ॥

मज्जास्थानमें-मज्जाद्वारा वायुके आवृत होनेसे शरीरका नमजाना, जंभाई, परिवेष्टन (लपेटनेकीसी पीडा) और शूल यह लक्षण होतेहैं। इसमें हाथोंद्वारा शरीरको दवानेसे सुख प्रतीत होताहै ॥ ६५ ॥

शुक्रावृत वात ।

शुक्रावेगेऽतिवेगोवानिष्फलत्वञ्चशुक्रगे ।

शुक्रवाही स्रोतोंमें शुक्रद्वारा वायुके अवरोध होनेसे वीर्यका अवरोध अथवा अति वेग और शुक्र निष्फल होताहै ॥

अन्नावृत वात ।

भुक्तेकुक्षौचरुग्जीर्णेशाम्यत्यन्नावृतेऽनिले ॥ ६६ ॥

अन्नवाही स्रोतोंमें अन्नद्वारा वायुके आवृत्त होनेसे कुक्षिमें शूल, उत्पन्न होताहै और अन्नके जीर्ण होजानेपर वह शूल भी शान्त होजाताहै ॥ ६६ ॥

मूत्रावृतवात ।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानंवस्तौमूत्रावृतेनिले ॥ ६७ ॥

मूत्रमार्गमें-मूत्रद्वारा वायुके आवृत होनेसे मूत्रका रुकजाना और वस्तिका फूलना यह लक्षण होतेहैं ॥ ६७ ॥

मलावृतवात ।

वर्चोवृतेविबन्धोऽधःस्वेस्थानेपरिकृन्तति । व्रजत्याशुजरांस्नेहोभु-
क्तेचानह्यतेनरः । चिरात्पीडितमन्येनदुःखंशुष्कंशकृत्सृजेत् ॥६८॥
श्रोणीवंक्षणपृष्ठेपुरुग्विलोमश्चमारुतः । अस्वस्थंहृदयञ्चैवसचव-
र्चोवृतेऽनिलः ॥ ६९ ॥

मलवाही स्रोतमें-मलद्वारा वायुके रुकजानेसे मलका विबंध, मलाशयमें कतरने-कीसी पीडा उत्पन्न हो, स्नेहपदार्थ तत्काल जीर्ण होजाय, भोजन करनेसे अफारा उत्पन्न हो, दूसरा मनुष्य इस रोगीके पेटको दवावे तो कष्टके साथ सूखा थोडासा मल आवे, नितम्ब, वंक्षण और पीठमें शूल हो, वायुकी गति उलटी होजाय हृदय, अस्वस्थ हो, यह लक्षण होतेहै ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

इन रोगोंकी साध्याऽसाध्यता ।

सन्धिच्युतिर्हनुस्तम्भःकुञ्चनंकुब्जतार्दितम् । पक्षाघातोऽङ्गसंशो-

पःपंगुत्वंखुडवातता ॥ ७० ॥ स्तम्भनश्चाढयवातश्चरोगामज्जा-स्थिगाश्रये । एतेस्थानस्यगाम्भीर्य्याद्यत्नात्सिध्यन्तिवानवा॥७१॥ नवान्वलवतान्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् । क्रियामतःसिद्धतमां वातरोगापहांश्रृणु ॥ ७२ ॥

संधिभ्रंश (संधियोंका ढीला पडजाना), हनुस्तम्भ, आकुंचन, कुवडापन, अर्दितवायु, पक्षाघात, अंगशोष, पंगुपन, खुडवात, स्तम्भन, आढ्यवात, मज्जागतवात, यह सब रोग स्थानकी गंभीरता होनेसे विधिवत् यत्न कियाजाय तो साध्य होजाते हैं। और इनके नहीं भी होते। संपूर्ण वातव्याधियें वलवान् मनुष्यके शरीरमें नवीन और उपद्रवरहित हों तो साध्य हो सकते हैं। अन्यथा असाध्य होतेहैं। अव इन वातव्याधियोंकी सिद्धचिकित्साको श्रवण करो ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

वातव्याधिमें सामान्य चिकित्सा।

केवलंनिरुपस्तम्भमादौस्नेहैरुपाचरेत्।
वायुंसर्पिर्वसातैलमज्जापानैर्नरंततः ॥ ७३ ॥

यदि वातजनित व्याधि कफ और पित्तसे आवृत न हो तो प्रथम स्नेहन द्वारा चिकित्सा करे। वातव्याधिवाले रोगीको घृत, वसा, तेल और मज्जा पिलाके वायुको जीते ॥ ७३ ॥

स्नेहक्लान्तंसमाश्वास्यपयोभिःस्नेहयेत्पुनः ।
यूषैर्ग्राम्याम्वुजानूपैरसैर्वास्नेहसंयुतैः ॥ ७४ ॥

यदि रोगी स्नेहके अधिक सेवन करनेसे क्लान्त होजाय अर्थात् स्नेहपान न करसके तो उसको दूधके योगसे स्निग्ध करना चाहिये। अथवा स्नेहयुक्त यूप, ग्राम्य, जलज और अनूप देशज जीवोंका मांसरस स्नेह मिलाकर पानकरावे ॥ ७४ ॥

पायसैःकृसरैरम्ललवणैःसानुवासनैः ।
नावनैस्तर्पणैश्चान्नैःसुस्निग्धंस्वेदयेत्ततः ॥ ७५ ॥

तथा रोगीको खीर, खटाई और नमकके विना घृतयुक्त खिचडी मिला खिलावे और तेलकी नस्य तथा तर्पण और अन्नोंद्वारा तृप्त और स्निग्ध करके स्वेदन करे ॥ ७५ ॥

स्नेहस्वेदनके गुण।

स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ।
तथान्यैर्विविधैःस्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत् ॥ ७६ ॥

स्नेहार्द्रस्विन्नमङ्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापिवा ।
शनैर्नमयितुंशक्यंयथेष्टंशुष्कदारुवत् ॥ ७७ ॥

भलीप्रकार तैल आदि शरीरपर मलकर स्नेहयुक्त नाडी स्वेद अथवा प्रस्तरस्वेद वा संकरस्वेद अथवा अन्य अनेक प्रकारके स्वेदोंद्वारा रोगीकी प्रकृति आदि विचार कर विधिवत् स्वेदन करे । स्नेहन और स्वेदन करनेसे नरम हुए अंग अथवा मुख इस प्रकार नम्र और ठीक हो सकतेहैं । जैसे सूखी लकडीको स्निग्ध और स्विन्न करके जिस प्रकार चाहे मनुष्य धीरे धीरे नवा सकताहै ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

हर्षतोदरुगायासशोथस्तम्भग्रहादयः ।
स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्तिमार्दवञ्चोपजायते ॥ ७८ ॥

वातव्याधिमें स्नेहनकिये रोगीको स्वेदन करनेसे उसके शरीरकी वातजनित सर-सराहट, तोद, शूल, आयाम, सूजन स्तम्भ और जकडन आदि सब दूर होकर शरीर नम्र और हलका होजाताहै ॥ ७८ ॥

स्नेहश्चधातून्संशुष्कान्पुष्णात्याशुप्रयोजितः । बलमग्निबलंपुष्टिंप्राणांश्चाप्यभिवर्द्धयेत् ॥ ७९ ॥ असकृत्तंपुनःस्नेहैःस्वेदैश्चाप्युपपादयेत् । तथास्नेहमृदौकोष्ठेनतिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥ ८० ॥

स्नेहकर भली प्रकार प्रयोग कियाहुआ वायुसे सूखीहुई धातुओंको पुष्ट करताहै तथा जठराग्निके बल, पुष्टि और प्राणोंकी वृद्धि करता है । इसलिये वातरोगीको वारंवार स्नेह और स्वेदोंद्वारा उपपन्न करना चाहिये । स्नेहपानसे नम्रहुए कोष्ठमें वातजनित रोग ठहर नहीं सकते ॥ ७९ ॥ ८० ॥

वातव्याधिमें विरेचनक्रम ।

यद्यनेनसदोषत्वात्कर्मणानप्रशाम्यति ।
मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैरौषधैस्तंविशोधयेत् ॥ ८१ ॥

यदि दोषोंकी अधिकताके कारण वारवार स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी वात-व्याधिकी शान्ति न हो तो उस रोगीको स्नेहयुक्त मृदु विरेचन करावे ॥ ८१ ॥

घृतंतिल्वकसिद्धंवासातलासिद्धमेववा ।
पयसैरण्डतैलंवापिवेद्दोषहरंशिवम् ॥ ८२ ॥

लोध, अथवा सातलासे सिद्ध किये घृतद्वारा विरेचन करावे । अथवा गरम दूधमें एरण्ड तैल मिला पिलाना भी वातव्याधिमें उत्तम योग है ॥ ८२ ॥

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हिमलश्चितः ।
स्रोतोवद्धानिलंरुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ ८३ ॥

स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्ण आदि पदार्थोंको अधिक प्रमाणसे खावे तो संचित हुआ मल ऊपरसे स्रोतोंको रोककर वायुको भी रोकदेताहै इसलिये वह आहार वायुको अनुलोमन करनेवाला होताहै। अर्थात् स्निग्ध आदि आहार रूक्ष स्रोतोंमें फिरतेहुए वायुको रोककर अनुलोमनकर देताहै ॥ ८३ ॥

दुर्वलोयोविरेच्यःस्यात्तंनिरूहैरुपाचरेत् ।
पाचनैर्दीपनीयैर्वाभोज्यैर्वातयुतंनरम् ॥ ८४ ॥

जो दुर्वल वात रोगी विरेचन करानेके योग्य न हो और उसका मल निकालनाही उस समय हितकारक हो तो उसको निरूहण वस्ति प्रयोग करे । तथा पाचन और दीपन द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे ॥ ८४ ॥

शुद्धस्यचोत्थितेचाग्नौस्नेहस्वेदौपुनर्हितौ । स्वाद्वम्ललवणस्निग्धैराहारैःसततंपुनः ॥ ८५ ॥ नावनैर्धूमपानैश्चसर्वानेवोपपादयेत् ।
इतिसामान्यतःप्रोक्तंवातरोगचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

विरेचन और वस्तिकर्मद्वारा शुद्ध देह होनेके अनन्तर जब अग्नि बलवान् होजाय तो फिर स्नेहन और स्वेदन करना चाहिये । सब प्रकारके वातरोगमें स्वादु, अम्ल, नमकीन और स्निग्ध आहारोंका निरन्तर सेवन करना और स्निग्ध नस्य तथा स्निग्ध धूमपानोंका सेवन करना सदैव हितकारी है । इस प्रकार वातव्याधियोंकी सामान्य चिकित्सा कथन कीगई है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

वातव्याधियोंकी विशेषचिकित्सा ।

विशेषतस्तुकोष्ठस्थेवातेक्षारंपिवेन्नरः । पाचनैर्दीपनीयैस्तैरम्लैर्वापाचयेन्मलान् । गुदपक्वाशयस्थेतुकर्मोदावर्त्तनुद्धितम् ॥ ८७ ॥

अब वातव्याधिकी विशेष चिकित्साको कथन करतेहैं । यदि वायु कोष्ठमें आश्रित हो तो क्षार पिलाना तथा दीपन,पाचन और अम्लद्रव्यों द्वारा मलोंको पाचन करना चाहिये । यदि गुदा अथवा पक्वाशयमें वायु स्थित हो तो उदावर्त्तनाशक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८७ ॥

आमाशयस्थेशुद्धस्ययथादोषहराःक्रियाः ।
सर्वांगकुपितेऽभ्यङ्गोवस्तयःसानुवासनाः ॥ ८८ ॥

आमाशयमें स्थित वायु हो तो प्रथम स्निग्ध वमन, विरेचन करा फिर दोषोंके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये । यदि सर्वांगमेंही वायुका कोप हो तो वातनाशक तेलोंका अभ्यंग, निरूहणवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये॥८८॥

स्वेदाभ्यङ्गनिवातानिहृद्यश्चान्नंत्वगाश्रिते ।
शीताःप्रदेहारक्तस्थेविरेकोरक्तमोक्षणम् ॥ ८९ ॥

त्वचामें आश्रित वायु हो तो वातनाशक तेलोंका अभ्यंग, स्वेद, निर्वातस्थानमें निवास तथा हृद्य और स्निग्ध अन्नोंका सेवन करना चाहिये । रक्तमें स्थित वायु हो तो शीतललेप, विरेचन और रक्तमोक्षण कराना हितकारक है ॥ ८९ ॥

विरेकोमांसमेदःस्थेनिरूहाःशमनानिच ।
वाह्याभ्यन्तरतःस्नेहैरस्थिमज्जगतंजयेत् ॥ ९० ॥

मांस और मेदगतवायु हो तो विरेचन, निरूहण और शमन औषध प्रयोग करना चाहिये । अस्थि और मज्जागत वायु हो तो बाह्य और अभ्यंतर स्नेहोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥

हर्षोऽन्नपानंशुक्रस्थेवलशुक्रकरंहितम् । विवद्धमार्गदृष्ट्वाशुक्रं दद्याद्विरेचनम् । विरिक्तप्रतिभुक्तस्यपूर्वोक्तांकारयेत्क्रियाम् ॥९१॥

वीर्यगत वायु हो तो हर्षकारक, बल और वीर्यको उत्पन्न करनेवाले अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये । यदि शुक्रका मार्ग रुकगया हो तो प्रथम विरेचन करावे तद्-नन्तर बल और शुक्रके बढानेवाले अन्नपानोंका सेवन करे ॥ ९१ ॥

गर्भेशुष्केतुवातेनवालानाञ्चापिशुष्यताम् ।
सिताकाश्मर्य्यमधुकैर्हितमुत्थापनेपयः ॥ ९२ ॥

यदि वायुद्वारा गर्भ सूखजाय अथवा वायुसे बालकोंका शरीर सूखजाय तो उनके पुष्ट करनेके लिये मिसरी, कुंभेरके फल (कुंभेरके अभावमें द्राक्षा) और मुलैठीके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत मिला पिलाना चाहिये ॥ ९२ ॥

हृदिप्रकुपितेसिद्धमंशुमत्यापयोहितम् ।
मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थेसिद्धान्विल्वशलाटुभिः ॥ ९३ ॥

हृदयस्थवायु कुपित होय तो शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध पिलाना हितकारक है। नाभिस्थानमें कुपित वायु होय तो वेलकी गिरी और मछलीका मांस सिद्धकर खिलावे ॥ ९३ ॥

वायुनावेष्ट्यमानेतुगात्रेस्यादुपनाहनम् ॥ ९४ ॥

वायुसे सब अंग वेष्टयमान हों तो उपनाहस्वेद कराना हितकारी है ॥ ९४ ॥

तैलंसंकुचितेऽभ्यङ्गोमाषसैन्धवसाधितम् । बाहुशीर्षगतेनस्यंपानञ्चोत्तरभक्तिकम् । वस्तिकर्मत्वधोनाभेःशस्यतेचावपीडकः॥९५॥

यदि वातके कोपसे अंग संकुचित होजाय तो उडद और सेंधानमकसे सिद्ध कियेहुए तैलसे मालिश करना चाहिये। बाहुगत और शिरोगत वायु कुपित हो तो नस्य कर्म और उत्तर भक्तिक घृतपान- कराना हितकारक है। नाभिके अधोगत वायुका कोप हो तो वस्तिकर्म तथा अवपीडन नस्य प्रयोग करना हितकारक है ॥ ९५ ॥

अर्दितेनावनंमूर्ध्नितैलंतर्पणमेवच ।
नाडीस्वेदोपनाहाश्चाप्यानूपपिशितैर्हिताः ॥ ९६ ॥

अर्दितरोगमें नस्य, मस्तकपर तेलका मलना, तर्पण, और आनूपसंचारी जीवोंके मांससे नाडीस्वेद तथा उपनाहस्वेद करना हितकारी है ॥ ९६ ॥

स्वेदनंस्नेहसंयुक्तंपक्षाघातेविरेचनम् ।
अन्तराकण्डराङ्गुल्योःशिरावस्त्यग्निकर्मच ॥ ९७ ॥

पक्षाघातमें स्नेहन, स्वेदन तथा स्निग्ध विरेचन कराना हितकारक है। तथा कन्डरा और अंगुलियोंके मध्यमें शिरावस्ति (नसमें पिचकारी लगाना) और अग्निकर्म करना हितकारक है ॥ ९७ ॥

गृध्रसीषुप्रयुञ्जीतखल्ल्यान्तूष्णोपनाहनम् ।
पायसैःकृसरैश्चैवशस्तंतैलघृतान्वितैः ॥ ९८ ॥

गृध्रसी रोगमें भी कन्डरा और अंगुलियोंके मध्यभागमें शिरावस्ति तथा अग्निकर्म करना हितकारक है। और खल्लीरोगमें तैल और घृतमिली खीर तथा खिचडीसे उपनाहस्वेद करना चाहिये ॥ ९८ ॥

व्यात्ताननेहनुंस्विन्नामङ्गुष्ठाभ्यांप्रपीड्यच । प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नाम्य चिबुकोन्नामनंहितम् ॥ ९९ ॥ स्रस्तांसङ्गमयेत्स्थानंस्तब्धांस्विन्नां विनामयेत् । प्रत्येकंस्थानदूष्यादिक्रियावैशेष्यमाचरेत् ॥ १०० ॥

हनुस्तम्भरोगमें यदि मुख खुला रहगया हो तो ठोडीको आनूपसंचारी जीवोंके मांससे स्वेदन करके अंगूठेसे दबाकर तर्जनीसे ठोडीको ऊपरकी ओर ढकेले जिससे खुलाहुआ मुख बन्द होसके। यदि ठोडी पीछेको हटी हो तो उसको आगेको लाये, सुस्त होगई हो तो ठीक स्थानपर पहुंचावे। कठोर होगई हो वो स्वेदनद्वारा हो नम्र

करे। इस प्रकार वातरोगोंमें स्थान दूष्य आदि विचारकर विशेष क्रियाको करना चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

वातव्याधिनाशक अनेक योग।

सर्पिस्तैलवसामज्जसेकाभ्यञ्जनबस्तयः। स्निग्धाःस्वेदानिवातश्च-स्थानंप्रावरणानिच ॥ १०१ ॥ रसाःपयांसिभोज्यानिस्वाद्वम्ललवणानिच । बृंहणंयच्चतत्सर्वंप्रशस्तंवातरोगिणाम् ॥ १०२ ॥

वातव्याधिमें घृत, तैल, वसा, मज्जा, सेक, अभ्यंग, वस्तिकर्म स्निग्ध स्वेद, वात-रहित स्थानमें निवास, गर्मवस्त्रोंसे शरीरको लपेटना, मांसरस, दूध तथा मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थोंका सेवन करना चाहिये। और जितने प्रकारके बृंहण द्रव्य हैं वह सब वातरोगियोंके लिये हितकारक हैं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

बलायाःपञ्चमूलस्यदशमूलस्यवारसे। अजशीर्षाम्बुजानूपमांसाद-पिशितैः पृथक् ॥ १०३ ॥ साधयित्वारसान्स्निग्धान्दध्यम्लव्योषसंस्कृतान् । भोजयेद्वातरोगार्त्तंस्तैर्व्यक्तलवणैर्नरम् ॥ १०४ ॥

वातरोगीको बृंहण करनेके लिये बला अथवा शालपर्ण्यादि पंचमूल या दशमूलके क्वाथमें बकरेका मस्तक अथवा जलज जीवोंका मांस वा आनूपसंचारी जीवोंका मांस तथा मांसखानेवाले जीवोंका मांस पकाकर वह रस सेवन करावे। इन रसोंको घृतयुक्त तथा दहीकी खटाई त्रिकुटेका चूर्ण और सेंधानमक मिला(संस्कार)कर पिलाना चाहिये। अथवा इन्हीं मांसरसोंको लवणयुक्तकर भोजनके साथमें देना चाहिये ॥ १०४ ॥

एतैरेवोपनाहांश्चपिशितैःसंप्रकल्पयेत् ।
घृततैलयुतैःसाम्लैःक्षुण्णस्विन्नैरनस्थिभिः ॥ १०५ ॥

इन्हीं उपरोक्त मांसोंसे वात रोगियोंको उपनाह स्वेद करना चाहिये। परन्तु इन मांसोंको अस्थि रहितकर घृत, तैल, खटाईयुक्तकर पकालेवे। फिर गर्म गर्मसे उपनाह स्वेद करे ॥ १०५ ॥

पत्रोत्क्वाथःपयस्तैलद्रोण्यःस्युरवगाहने ।
स्वभ्यक्तानांप्रशस्यन्तेसेकाश्चानिलरोगिणाम् ॥ १०६ ॥

वातरोगियोंको प्रथम तैलाभ्यक्त करके फिर वातनाशक पत्रोंके क्वाथमें अथवा दोषानुसार दूध या तेलकी द्रोणीमें बिठावे। और दोषानुसार क्वाथ, दूध और तेलों द्वारा परिसेचन करे ॥ १०६ ॥

आनूपौदकमांसानिदशमूलंशतावरीम्। कुलत्थान्बदरान्माषांस्ति-

लान्राम्लांयवान्वलाम् । वसादध्यारनालाम्लैःसहकुम्भ्यांविपाचयेत् ॥ १०७ ॥ नाडीस्वेदंप्रयुञ्जीतपिष्टैश्चैवोपनाहनम् । तैश्चसिद्धंघृततैलमभ्यङ्गःपानमेवच ॥ १०८ ॥

अनूप संचारी जीवोंका मांस, जलसंचारी जीवोंका मांस, दशमूल, शतावर, कुल्थी, बेर, उडद, तिल, रासना, यव, बला इन सब द्रव्योंको वसा, दही, कांजी और सिरका मिलाकर कुंभी (घडामें) में पकावे। और उसके मुखपर नाल लगाकर चारों ओरसे बन्दकर देवे । उस नालद्वारा जो भाफ निकले उससे वातरोगीको स्वेदन करे । अथवा इन्हीं द्रव्योंको पीसकर उससे उपनाह स्वेद करे या इन्हीं द्रव्योंके साथ सिद्ध किया हुआ घृत और तेल पीने तथा अभ्यंगमें प्रयुक्त करे तो वातव्याधि दूर होतीहै॥ १०८।

सुरसांकिण्वंतिलाःकुष्ठंसुराह्वंलवणंनतम् ।
दधिक्षीरचतुःस्नेहैःसिद्धंस्यादुपनाहनम् ॥ १०९ ॥

नागरमोथा, सुराबीज, तिल, कूठ, देवदारू, सेंधानमक, तगर, दही, दूध, तेल, घृत, वसा और मज्जा इन सबको मिलाकर पकावे । इससे उपनाह करे तो वातव्याधि शान्त होती है ॥ १०९ ॥

उत्कारिकावेशवारक्षीरमाषतिलौदनैः । एरण्डबीजगोधूमयवकोलस्थिरादिभिः ॥ ११० ॥ सस्नेहैःसरुजंगात्रमालिप्यबहुलंभिषक् । एरण्डपत्रैःप्रच्छाद्यरात्रौकल्येविमोक्षयेत् ॥ १११ ॥ क्षीराम्बुनाततःसिक्तंपुनश्चैवोपनाहितम् । मुञ्चेद्रात्रौदिवाबद्धंचर्मभिश्चसलोमभिः ॥ ११२ ॥

उत्कारिका (मांसकी वनाईहुई पूडियें) वेसवार (मसालेयुक्त पालर, कांजी विशेष) दूध, उडद, तिल, भात, एरण्डके बीज, गेहूं, यव, बेर और शालपर्ण्यादि पंचमूल इनसबको बारीक पीस चतुःस्नेह मिलाकर बहुतसा ले जिस अंगपर वातव्याधि हो गर्मगर्म लेप करे । ऊपरसे एरण्डकेपत्तोंको लपेटकर रात्रिभर रहने देवे प्रातःकाल लेपको उतार देवे । फिर उपरोक्त क्षीरादि अथवा शालपर्ण्यादि काथ द्वारा परिसेचन कर उपरोक्त उपनाहस्वेद करे । फिर रात्रिको वातनाशक तैलकी मालिश कर यही लेप करे । लेपके ऊपर एरण्डके पत्र लपेट ऊपरसे रोमयुक्त चमडेकी पट्टी बाँधे । इस प्रकार रात्रिके किये लेपको प्रातःकाल उतार देवे और प्रातःकालके किये लेपको सायंकाल उतारे । इस प्रकार करनेसे आवृत और कफ पित्तादिसे युक्त वातव्याधि शान्त होती हैं ॥ ११० ॥ १११ ॥ ११२ ॥

फलानांतैलयोनीनामम्लपिष्टानशीतलान् । प्रदेहानुपनाहांश्चगन्धैर्वातहरैरपि । पायसैःकृसरैश्चैवकारयेत्स्नेहसंयुतैः ॥ ११३ ॥

जिन फलोंमेंसे तेल निकलते हैं उन संपूर्ण फलोंको पीसकर इकट्ठे करके गर्मगर्म लेप तथा उपनाहस्वेद करे । एवं वातनाशक गंध, खीर, खिचडी आदिको स्नेहयुक्त, कर प्रदेह और उपनाह करे ११३ ॥

रूक्षशुद्धानिलार्त्तानामतःस्नेहान्प्रचक्षते ।
विविधाविविधव्याधिप्रशमायामृतोपमान् ॥ ११४ ॥

अब पित्त, कफादि रहित रूक्ष शुद्ध (केवल) वायुसे पीडित मनुष्योंके रोगकी शान्तिके लिये अनेक प्रकारकी वातव्याधि नाशक अमृतके समान स्नेहोंका वर्णन करते हैं ॥ ११४ ॥

वातव्याधिनाशक घृत ।

द्रोणेऽम्भसःपचेद्भागान्दशमूलाच्चतुष्पलान् । यवकोलकुलत्थानां भागैःप्रस्थोन्मितैःसह ॥ ११५ ॥ पादशेषेरसेपिष्टैर्जीवनीयैःसशर्करैः । तथाखर्जूरकाश्मर्य्यद्राक्षावदरफल्गुभिः ॥ ११६ ॥ सक्षीरैः सर्पिषःप्रस्थःसिद्धः केवलवातनुत् । निरत्ययःप्रयोक्तव्यःपानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ११७ ॥

दशमूलकी संपूर्ण औषधियें चार चार पल, यव, वेर, कुलथी, एकएक प्रस्थ इन सबको १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाई भाग शेष रहे तो उतारकर छानले । फिर जीवनीयगणकी दश औषधियें खांड, खजूर, कुंभेर, द्राक्षा, बेर और गूलर इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । घृत १ सेर लेवे, दूध ४ सेर इनसबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानले । इस घृतको पीने और मालिश करने तथा वस्तिकर्ममें प्रयोग करनेमे वातविकार शान्त होतेहैं ॥ ११५ ॥ ११६ ॥ ११७ ॥

चित्रकादिघृत ।

चित्रकंनागरंरास्नांपौष्करंपिप्पलींशटीम् ।
पिष्ट्वाविपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरम्परम् ॥ ११८ ॥

चित्रक, सोंठ, रासना, पोहकरमूल, पीपल और कचूर इन सबके कल्कमे सिद्ध किया घृत वातरोगोंके दूर करनेमें परमोत्तम कहा है ॥ ११८ ॥

ऊर्द्धगत वातनाशक घृत ।

बलाबिल्वशृतेक्षीरेघृतमण्डंविपाचयेत् ।
तस्यशुक्तिःप्रकुञ्चोवानस्यंमूर्द्धगतेऽनिले ॥ ११९ ॥

बला और बेलकी गिरीसे सिद्ध कियेहुए दूधमें पकायाहुआ घृतमण्ड २ तोला अथवा ४ तोला लेकर पीवे अथवा नाकद्वारा पीवे तो ऊर्द्ध्वजत्रुगत वायुके रोग दूर होतेहैं ॥ ११९ ॥

वातनाशक स्नेह।

ग्राम्यानूपौदकानान्तुभित्त्वास्थीनिपचेज्जले । तंस्नेहंदशमूलस्यकषायेणपुनःपचेत् ॥ १२० ॥ जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपिकच्छुभिः । वातघ्नैर्जीवनीयैश्चकल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् ॥ १२१ ॥ तत्सिद्धंनावनाभ्यङ्गात्तथापानानुवासनात् । शिरापर्वास्थिकोष्ठस्थंप्रणुदत्याशुमारुतम् ॥१२२॥ येस्युःप्रक्षीणमज्जानःक्षीणशुक्रौजसश्चये । बलपुष्टिकरंतेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ १२३ ॥

ग्राम्यसंचारी, जलज और अनूपसंचारी जीवोंकी हड्डियोंको कूटकर जलमें पकावे जब पकते २ उन हड्डियोंमेंसे चिकनाई निकलकर पानी पर तैरने लगे तो उस चिकनाईको उतारकर उसमें दुगना दूध चौगुना दशमूलका क्वाथ और उस स्नेहसे चौथा भाग जीवक, ऋषभक, सारिवा, विदारीकन्द, कौंचके बीज अथवा अन्य वातनाशक द्रव्य या जीवनीयगणका कल्क मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस स्नेहके नस्य, अभ्यंग, पान और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे शिरा जोड, हड्डी और कोष्ठमें स्थितहुई वायु शीघ्र नष्ट होजाती है । जो मनुष्य क्षीणमज्जा और क्षीणवीर्य तथा क्षीणओज हैं उनके लिये यह स्नेह बल और पुष्टिको करनेवाला तथा अमृतके समान गुणकारी है ॥ १२०–१२३ ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमत्स्यकूर्मचुलूकजाः ।
प्रत्यग्राविधिनानेननस्यपानेप्रशस्यते ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार नक्र (मगर मच्छ) मछली, कच्छू और सूसकी हड्डियोंमेंसे पूर्वोक्त विधि द्वारा स्नेह (मज्जा) निकालकर और उपरोक्त, द्रव्योंसे सिद्ध कर नस्य, पान आदिमें प्रयोग करनेसे वातव्याधियें शान्त होती हैं ॥ १२४ ॥

महास्नेह।

प्रस्थःस्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम् । कृष्णगन्धात्वगाढकयोःपृथक्पञ्चपलंभवेत् ॥ १२५ ॥ रास्नाचित्रकयोर्द्वेद्वेदशमूलंपलोन्मितम् । जलद्रोणेपचेत्पादशेषेप्रस्थोन्मितंपृथक् ॥ १२६ ॥ सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् । कोलदाडिमवृक्षाम्लरसंतैलं

वसावृतम् ॥ १२७ ॥ मज्जानश्चपयश्चैवजीवनीयपलानिषट् । कल्कंदत्त्वामहास्नेहंसम्यगेनंविपाचयेत् ॥ १२८ ॥ शिरामज्जास्थिगेवातेसर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु । वेपनाक्षेपशूलेपुतदभ्यङ्गेप्रयोजयेत् ॥ १२९ ॥

त्रिफला १ प्रस्थ, कुलथी २ कुडव, सुहांजनेकी छाल और अरहरकी जड पांच-पांच पल, रासना और चित्रक दो दो पल, दशमूलकी औषधियें एक एक पल लेकर सबको कूटलेवे और १ द्रोण जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस क्काथमें सुरा, कांजी, दही, दहीका जल, सौवीरक, तुषोदक, बेरका रस, दाडिमका रस, इमलीका रस, तेल, वसा, घृत, मज्जा और दूध यह सब एक एक प्रस्थ लेवे । जीवनीयगणकी प्रत्येक औषधी छः छः पल लेकर कल्क बनावे इन सबको मिला पकावे जब स्नेहमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे । इस स्नेहको मालिश करनेसे शिरागतवात, मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत और कम्पनवात तथा आक्षेप और शूल यह सब वातविकार नष्ट होतेहैं । इसको महास्नेह कहतेहैं ॥ १२५–१२९ ॥

निर्गुण्डीतैल ।

निर्गुण्डयामूलपत्राभ्यांगृहीत्वास्वरसंततः । तेनसिद्धंसमंतैलंनाडीकुष्ठानिलार्त्तिषु । हितंपामापचीनाञ्चपानाभ्यञ्जनपूरणम्॥१३०॥

संभालूकी जड और पत्तोंका स्वरस निकालकर उसके बराबरका तैल मिला पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतार लेवे । इस तैलकी मालिश करनेसे नाडीव्रण, कुष्ठ, वातव्याधि, पामा, (खुजली) और अपची रोग नष्ट होताहै । यह तैल-पान, अभ्यंग और पूरणमें प्रयोग कियाजाताहै ॥ १३० ॥

कार्पासास्थिकुलत्थानांरसेसिद्धश्चवातनुत् ॥ १३१ ॥

कपासके बीज और कुलथीके रससे सिद्ध किया तैल वातरोगको दूर करताहै ॥ १३१ ॥

मूलकादि तैल ।

मूलकस्वरसेक्षीरसमेस्थाप्यंत्र्यहंदधि । तस्याम्लस्यत्रिभिःप्रस्थैस्तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ १३२ ॥ यष्ट्याह्वशर्करारास्नालवणार्द्रकनागरैः । सुपिष्टैःपलिकैःपानात्तदभ्यङ्गाच्चवातनुत् ॥ १३३ ॥

मूलीका स्वरस और दूध इन दोनोंको एक समान लेकर उसमें थोडासा दही

मिला तीन दिन रक्खा रहनेदे जब जमकर दहींके समान होजाय और खटाई आजाय तो यह अम्ल द्रव्य तीन प्रस्थ और तेल १ प्रस्थ तथा मुलैठी, खांड, रासना, सेंधानमक, अदरख और सोंठ इन सबको एक एक पल लेकर कल्क बनावे। इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे। इस तेलके पीने और मालिश करनेसे संपूर्ण वातरोग नष्ट होतेहैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

पंचमूलादि तैल।

पञ्चमूलकषायेणपिण्याकंबहुवार्षिकम् । पक्त्वातस्यरसंपूत्वातैल-प्रस्थंविपाचयेत् ॥ १३४ ॥ पयसाष्टगुणेनैतत्सर्ववातविकारनुत् । संसृष्टेश्लेष्मणाचैतद्वातेशस्तंविशेषतः ॥ १३५ ॥

पंचमूलका क्वाथ और बहुत पुरानी तिलोंकी खलको पकाकर उसके रसको छान लेवे। यह रस ४ प्रस्थ और पंचमूलका क्वाथ ४ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। यह तेल सब प्रकारके वातविकारोंको नष्ट करताहै। तथा कफके संसर्गवाले वातरोगमें विशेष हितकारक है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

शरीरकी शीततानाशक तेल।

यमकोलकुलत्थानांश्रेयस्याःशुष्कमूलकात् । बिल्वाचाञ्जलिमेकैकं द्रवैरम्लैर्विपाचयेत् ॥ १३६ ॥ तेनतैलंकषायेणफलाम्लैःकटुभि-स्तथा। पिष्टैःसिद्धंमहावातैरार्त्तःशीतेप्रयोजयेत् ॥ १३७ ॥

यव, बेर, कुल्थी, रासना, कच्चे बेलकी गिरी यह प्रत्येक सोलह सोलह तोला, दहीका जल इन सबसे आठगुना मिलाकर पकावे। चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। अनारका रस, बिजौरेका रस, कांजी यह प्रत्येक एकएक प्रस्थ, सोंठ, मिर्च, पीपलका कल्क बीस तोला, तेल १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस तेलकी महावातसे शीतलहुए शरीरपर मालिश करे तो यह तेल अत्यंत गुणको करताहै ॥ १३६ ॥ १३७ ॥

सर्ववातविकाराणांतैलान्यन्यान्यतःशृणु । चतुष्प्रयोगाण्यायुष्य-बलवर्णकराणिच ॥ १३८ ॥ रजःशुक्रप्रदोषघ्नान्यपत्यजननानिच । निरत्ययानिसिद्धानिसर्वदोषहराणिच ॥ १३९ ॥

अब हम सब प्रकारके वातविकारोंको शान्त करनेवाले तैलोंका वर्णन करतेहैं। जो नस्य, पान, अभ्यंग और बस्ति, इन चार प्रकारसे प्रयोग किये जा सक्तेहैं।

इन तैलोंके प्रयोगसे आयु, बल, वर्णकी वृद्धि, रज और वीर्यविकारोंकी शांति, होतीहै तथा यह तैल संतानके उत्पन्न करनेवाले संपूर्ण दोषोंको हरनेवाले और अनुभव कियेहुए सिद्ध हैं सो तुम श्रवण करो ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

सहाचरादितैल।

सहाचरतुलायाश्चरसेतैलाढकंपचेत्।मूलकल्काद्दशपलंपक्त्वाक्षीरेचतुर्गुणम् ॥ १४० ॥ सिद्धेऽस्मिञ्शर्कराचूर्णादष्टादशपलंभिषक्। विनीयदारुणेष्वेतद्वातव्याधिषुयोजयेत् ॥ १४१ ॥

पीली कटसरईया (पीला बांसा) की जडका रस (क्वाथ) ५ सेर, तेल ४ सेर, दूध १६ सेर, पीलेबांसेकी जडका कल्क ४० तोला इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उसमें १८ पल मिसरीका चूर्ण मिलावे। इस तेलको नस्य, पान आदिमें प्रयोग करनेसे दारुण वातव्याधियें भी दूर होतीहैं ॥ १४० ॥ १४१ ॥

श्वदंष्ट्रादितैल।*

श्वदंष्ट्रास्वरसप्रस्थौद्वौसमौपयसासह। षट्पलंशृङ्गवेरस्यगुडस्याष्टपलंतथा ॥ १४२ ॥ तैलप्रस्थंविपक्वंतैर्दद्यात्सर्वानिलार्त्तिषु। जीर्णेतैलेचदुग्धेनपेयाकल्पःप्रशस्यते ॥ १४३ ॥

गोखरूका स्वरस २ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, सोंठका कल्क ६ पल, कपासके बीजोंका कल्क ८ पल, तेल १ प्रस्थ इन सबको मिलाकर तैल सिद्ध करे। इस तैलको उचित मात्रासे पान आदिमें प्रयोग करे। तेलके जीर्ण होनेपर दूधसे बनाईहुई पेया पान करे तो वातव्याधि शान्त होतीहै और बल वर्णकी वृद्धि होतीहै ॥ १४२ ॥ १४३ ॥

बलातैल।

बलाशतंगुडूच्याश्चपादंरास्नाष्टभागिकम्। जलाढकशतेपक्त्वादशभागस्थितेरसे ॥१४४॥ दधिमस्त्विक्षुनिर्य्यासशुक्तैस्तैलाढकंसमैः। पचेत्साजपयोऽर्द्धांशैःकल्कैरेभिःपलोन्मितैः ॥१४५॥ शटीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः। पद्मकातिविषामुस्तसूर्पपर्णीहरेणुभिः ॥१४६॥ यष्टयाह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभैकजीवकैः। पलाशरसकस्तूरीनलिकाजातिकोषकैः ॥ १४७ ॥ स्पृक्काकुंकुमशैलेयजातीकटुफलाम्बुभिः। त्वक्कुन्दुरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः ॥ १४८ ॥

लवङ्गनखकक्कोलकुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः । स्थौणेयतगरध्यामवचा-मदनपल्लवैः ॥ १४९ ॥ सनागकेशरैःसिद्धेक्षिपेच्चात्रावतारिते । प-त्रकल्कंततःपूतंविधिनातत्प्रयोजयेत् ॥ १५० ॥ श्वासंकासंज्वरं हिक्कांछर्दिंगुल्मान्क्षतंक्षयम् । प्लीहशोषावपस्मारमलक्ष्मीञ्चप्रणाश-येत् ॥ १५१ ॥ बलातैलमिदंश्रेष्ठंवातव्याधिविनाशनम् । अग्निवेशा-यगुरुणाकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ १५२ ॥

बला १०० पल, गिलोय २५ पल, रास्ना १२॥ पल, इन सबको १०० आढक (१० मन) जलमें पकावे । दशवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । फिर इस जलमें दही १ आढक, दहीका जल १ आढक, ईखका रस १ आढक, कांजी १ आढक, तेल ४ आढक, बकरीका दूध २ प्रस्थ और इन नीचे लिखे द्रव्योंके एकएक पल लेकर कल्क करे । वह ये हैं—कचूर, सरलकाष्ठ, देवदारु, बड़ी इला-यची, मंजीठ, अगर, चंदन, पद्मकाष्ठ, अतीश, नागरमोथा, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, रेणुका, मुलैठी, तुलसी, व्याघ्रनखी, ऋषभक, जीवक, ढाकका गोंद, कस्तूरी, वॅलिका, जावित्री, स्पृक्का, केशर, छारछबीला, जायफल, कायफल, सुगंधवाला, दालचीनी, कुन्दरू, कपूर, सिल्हक वृक्षका गोंद, सरल वृक्षका गोंद, लौंग, नख, कंकोल, कूठ, जटामांसी, प्रियंगु, गठौना, तगर, ध्यामकतृण, वच, मदन (मौलसरीके फूल अथवा मोम) केवटी, मोथा इन सबको एकएक पल लेकर कस्तूरी, केशर, कपूर आदि सुगंध द्रव्योंके सिवाय सब द्रव्योंको पीसकर कल्क बनालेवे । यह कल्क और उपरोक्त बलादि क्काथ आदि संपूर्ण द्रव्योंको मिलाकर पकावे । जब संपूर्ण द्रव्य जल कर तेलमात्र शेष रह जावै तो इसमें कस्तुरी आदि गन्धद्रव्योंको भी पीसकर डालदेवे। इस तैलको स्वच्छकर किसी उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । यह बला तैल-अभ्यंग, नस्य और पान आदि कर्मोंमें प्रयुक्त करनेसे श्वास, खांसी, ज्वर, हिचकी, छर्दी, गुल्म, क्षत, क्षय, प्लीहा, शोष, अपस्मार और अलक्ष्मीको दूर करताहै । यह बला-तैल वातव्याधियोंको नष्ट करनेमें सर्वोत्तम माना है । इसको भगवान् कृष्णात्रेयजीने अग्निवेशके प्रति कथन कियाहै ॥ १४४–१५२ ॥

अमृतादितैल ।

तुलाःपञ्चगुडूच्यास्तुद्रोणेष्वष्टस्वपांपचेत् । पादशेषेसमंक्षीरंतैलस्य द्व्याढकंपचेत् ॥ १५३ ॥ एलामांसीनतोशीरशारिवाकुष्टचन्दनैः । बलातामलकीमेदाशतपुष्पर्द्धिजीवकैः । १५४ ॥ काकोलीक्षीरका-

कोलीश्रावण्यतिबलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीविदारीकपिकच्छुभिः ॥ १५५ ॥ शतावरीसहामेदाकर्कटाख्याहरेणुभिः । वचागोक्षुरकैरण्डरास्नाकालासहाचरैः ॥ १५६ ॥ वीराशल्लकिमुस्तत्वक्पत्रर्षभकवालकैः।महैलाकुंकुमस्पृक्कात्रिदशाह्वैश्चकार्षिकैः ॥१५७॥ मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेणमधुकाष्टपलेनच । कल्कैस्तत्क्षीणवीर्याग्निचलसंमूढचेतसः ॥ १५८ ॥ उन्मादारत्यपस्मारैरार्त्तांश्चप्रकृतिंनयेत्। वातव्याधिहरंश्रेष्ठंतैलाग्र्यममृताह्वयम् । कृष्णात्रेयेणगुरुणाभापितंवैद्यपूजितम् ॥ १५९ ॥

गिलोय २० सेर लेकर १२८ सेर पानीमें पकावे । ३२ सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इसमें ८ सेर दूध, ८ सेर तैल मिलावे । तथा इलायची, जटामांसी, तगर, खस, शारिवा, कूठ, लालचंदन, भूमिआमला, मेदा, सौंफ, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली, गोरखमुंडी, अतिवला, नखी, महामुण्डी, जीवन्ती, विदारीकंद, कौंचके वीज, शतावर, महामेदा, काकडासिंगी, रेणुका, वच, गोखरू, एरण्डकी जड, रास्ना, असगंध, पीलेफूलकी कठसरइया, शालपर्णी, शल्यकीवृक्षका गोंद, नागरमोथा, दालचीनी, पत्रज, ऋषभक, नेत्रवाला, वडी इलायची, केशर, असवर्ग और देवदारु यह सब एकएक कर्ष लेवे । मजीठ तीन कर्ष, मुलैठी आठ पल इन सबका कल्क बनाकर उपरोक्त क्वाथ तेल, दूध इन सबको मिलाकर पकावे। तैलमात्र शेप रहनेपर उतारकर छान ले । इस तैलके प्रयोगसे क्षीणवीर्य, क्षीणवल, क्षीणाग्नि, उन्माद, चित्तका विगडना, अपस्मार यह सब विकार दूर होकर मनुष्य बल, वीर्य, अग्नि सम्पन्न होजाताहै। यह अमृतादिनामक तैल वातव्याधियोंको दूर करनेमें सर्वश्रेष्ठ मानाहुआ है और भगवान् कृष्णात्रेयजीने वैद्योंके पूजित इस तैलको कथन कियाहै ॥ १९३–१५९ ॥

रास्नादितैल।

रास्नासहस्रनिर्य्यूहेतैलद्रोणंविपाचयेत्।
गन्धैर्हैमवतैःपिष्टैरेलाद्यैश्चानिलार्त्तिनुत् ॥ १६० ॥

रासनाका काथ १००० पल (६४ सेर) तैल १ द्रोण (१६ सेर) और उपरोक्त अमृतादि काथमें कहेहुए इलायची आदि संपूर्ण द्रव्योंका कल्क तथा हिमवान् पर्वतमें होनेवाले उत्तम गंधद्रव्य इन सबको मिलाकर पकावे । इस तैलके नस्य, अभ्यंग आदिके प्रयोगसे संपूर्ण वातरोग दूर होतेहैं ॥ १६० ॥

बलादि चार प्रकारके तैल ।

एषकल्पस्तुबलयोःप्रसारण्यश्वगन्धयोः । कल्पोऽयमष्टगन्धायांप्र- सारण्यांबलाद्वयेक्वाथकल्कपयोभिर्वाबलादीनांपचेत्पृथक् ॥१६१॥

इसी रासना तेलके समान बला, अतिबला, प्रसारिणी, असगंधका तेल बनाकर वातरोगोंमें प्रयोग कियाजाताहै । यहांपर बला अथवा नागबला, प्रसारिणी वा असगंधका क्वाथ रास्नाके समान लेना चाहिये । तथा कल्क और दूध आदिक भी पृथक् २ अमृता तेलके समान ही लेना चाहिये । यह बलातेल नागबला तेल, प्रसारिणी तेल और असगंधादि तेल अमृततेलके समान गुण करनेवालेहैं ॥ १६१ ॥

मूलकादितैल ।

मूलकस्वरसंक्षीरंतैलंदध्यम्लकाञ्जिकम् । तुल्यंविपाचयेत्कल्कैर्ब- लाचित्रकसैन्धवैः ॥ १६२ ॥ पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुशि- ग्रुकैः । भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ १६३ ॥ पुष्कराह्व- शटीबिल्वशताह्वानतदारुभिः । तत्सिद्धंपीतमत्युग्रान्हन्तिवाता- त्मकान्गदान् ॥ ॥ १६४ ॥

मूलक (सलजम) का स्वरस, दूध, तेल, दहीका जल, कांजी इन सबको समान भाग लेवे और तेलसे चौथाई भाग नीचे लिखे द्रव्योंका कल्क मिलावे । जैसे बलाकी जड, चित्रक, सेंधानमक, पीपल, अतीश, रास्ना, चव्य, अगर, सुहांजनेकी जड, भिलावेकी गिरी, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलकी गिरी, सौंफ, तगर और देवदारु इन सबको पीसकर कल्क बनावे । यह कल्क उपरोक्त रस, तेल आदिमें मिलाकर तैल सिद्ध करे । इस तैलको पीने और नस्य आदि कर्मोंमें प्रयोग करनेसे बढेहुए वातरोग भी शान्त होतेहैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

वृषमूलादितैल ।

वृषमूलगुडूच्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अश्वगन्धाचित्रकयोःक्वाथे तैलाढकंपचेत् ॥ १६५ ॥ सक्षीरंवायुनाभग्नेदद्याज्जर्जरितेतथा । प्राक्तैलाच्चापसिद्धश्चस्यादेतद्विगुणोत्तरम् ॥ १६६ ॥

बांसेकी जड २०० पल, गिलोय २०० पल, असगंध १०० पल, चित्रक १००पल इन सबको कूटकर आटगुने जलमें पकावे । चौथाई भाग शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इसमें १ आढक तेल तथा १ आढक दूध मिलाकर पकावे । यदि इसमें उपरोक्त अमृततैलमें कहेहुए द्रव्योंका कल्क भी मिलावे तो दोगुना गुणकारक होजाताहै ।

और कल्कके अभावमें ऐसेही सिद्ध किया तैल भी वातरोगोंको दूर करताहै ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रास्नादितैल।

रास्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः। श्योणाकदारुसम्याकाहयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ १६७ ॥ एषांदशपलान्भागान्कषायमुपकल्पयेत्। ततस्तेनकषायेणसर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ १६८ ॥ दध्यारनालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैःशुभैः। पृथक्प्रस्थोन्मितैःसार्द्धंतैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ १६९ ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत्। एतन्मूलकतैलाद्ध्यंवर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

रास्ना, सिरसकी छाल, मुलैठी, सोंठ, कालावांसा, गिलोय, सोनापाठा, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू यह सब दशदश पल लेवे। इनको आठगुने जलमें पकाय चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर दही, कांजी, उडदोंका क्काथ, मूलीका रस, यह एकएक प्रस्थ लेवे। सर्व गंधद्रव्य एकएक कर्ष लेवे, इन सबको एक प्रस्थ तैलमें मिलाकर पकावे। इस तैलके मलनेसे तथा अन्य प्रकारसे प्रयोग करनेसे या वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे मूत्राघात, खांसी, श्वास और सब प्रकारके वायुके रोग नष्ट होतेहैं। यह तेल मूलकतेलसे भी श्रेष्ठ है तथा बल, वर्ण और आयुको बढानेवाला है ॥ १६७–१७० ॥

यवक्काथादितैल।

यवकोलकुलत्थानांमत्स्यानांशिग्रुविल्वयोः। रसेनमूलकानाञ्चतैलंदधिपयोऽन्वितम् ॥१७१॥ साधयित्वाभिषग्दद्यात्सर्ववातामयापहम्। लशुनस्वरसेसिद्धंतैलमेभिश्चवातनुत् ॥ १७२ ॥

यव, बेर, कुलथी, मछली, सुहांजना, बेलकी गिरी और मूली इन सबके अलग २ क्काथ एकएक सेर लेवे। दही १ सेर, दूध १ सेर और तेल १ सेर सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। यह तेल संपूर्ण वातरोगोंको दूर करताहै। इसी प्रकार लहसुनके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ तेल भी वातरोगोंको नष्ट करताहै ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

इन तैलोंसे संतानकी उत्पत्ति।

तैलान्येतान्यृतुस्नातामङ्गनांपाययेतच।
पीत्वान्यतममेषांहिवन्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥ १७३ ॥

यदि ऋतुस्नाता स्त्री इन बला आदिक तेलोंमेंसे किसी एक तेलका पान करे तो वंध्या भी पुत्रको उत्पन्न करनेवाली होजातीहै ॥ १७३ ॥

अन्यतैलोंका निर्देश ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् ।
अनेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत् ॥ १७४ ॥

शीतज्वरमें जो अगरू आदिक तैलोंका कथन कर आयेहैं वह अनेक वार पकाकर प्रयोग करनेसे वातव्याधियोंको दूर करतेहैं । अथवा यों कहिये कि वह अगरू आदि तेल जो शीतज्वरोंमें पहले कहेहैं उन्हें वातरोगोंको दूर करनेमें हमने सैकडों वार आजमायाहै ॥ १७४ ॥

वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच ।
तानिचानिलशान्त्यर्थंसिद्धिकामःप्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

आगे जो वातरक्त रोगमें तैलोंका कथन करेंगे यशकी इच्छावाला वैद्य अथवा आरोग्यताकी इच्छावाला रोगी वातरोगोंकी शान्तिके लिये उन तैलोंका प्रयोग करे ॥ १७५ ॥

वातरोगोंमें तेलोंकी प्रधानता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम् । व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्बलवत्तरम् ॥ १७६ ॥ गणैर्वातहरैस्तस्माच्छतशोऽथसहस्रशः । सिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥ १७७ ॥

तैलके समान वातव्याधियोंको दूर करनेवाली और कोई औषधि नहीं है क्योंकि तैल-व्यवायी, उष्ण, भारी और स्निग्ध होनेसे वायुके गुणोंसे विरोधी होताहै । इसलिये वायुको शान्त करताहै । यदि तैलको वातनाशक द्रव्योंद्वारा संस्कार कियाजाय तो यह और भी विशेषरूपसे वातव्याधियोंको नष्ट करताहै इसलिये वातनाशक गणोंसे तैलोंको १०० वार अथवा १००० वार या सैकडों प्रकारसे सिद्ध करके वातव्याधियोंमें प्रयोग करे । यह सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश होजानेवाला होनेसे सूक्ष्म मार्गोंके रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते ।
वातपित्तादिभिःस्रोतःस्वावृतेषु विशेषतः ॥ १७८ ॥

यह साधारणी क्रिया जिस प्रकार केवल वातव्याधिमें हितकारक है वैसेही वायुके साथ पित्त और कफका संसर्ग होनेपरभी है । अब पित्तादिसे आवृत वायुकी विशेष रूपसे चिकित्साका कथन करतेहैं ॥ १७८ ॥

और कल्कके अभावमें ऐसेही सिद्ध किया तैल भी वातरोगोंको दूर कर ताहै ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

रास्नादितैल।

रास्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः। श्योणाकदारुसम्याका हयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ १६७ ॥ एषांदशपलान्भागान्कषायमुपकल्पयेत्। ततस्तेनकषायेणसर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ १६८ ॥ दध्यारनालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैःशुभैः। पृथक्प्रस्थोन्मितैःसार्द्धंतैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १६९ ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत्। एतन्मूलकतैलाग्र्यंवर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥ १७० ॥

रास्ना, सिरसकी छाल, मुलैठी, सोंठ, कालावांसा, गिलोय, सोनापाठा, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू यह सब दशदश पल लेवे। इनको आठगुने जलमें पकाय चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। फिर दही, कांजी, उडदोंका क्काथ, मूलीका रस, यह एकएक प्रस्थ लेवे। सर्व गंधद्रव्य एकएक कर्ष लेवे, इन सबको एक प्रस्थ तैलमें मिलाकर पकावे। इस तैलके मलनेसे तथा अन्य प्रकारसे प्रयोग करनेसे या वस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे मूत्राघात, खांसी, श्वास और सब प्रकारके वायुके रोग नष्ट होतेहैं। यह तेल मूलकतेलसे भी श्रेष्ठ है तथा बल, वर्ण और आयुको बढानेवाला है ॥ १६७-१७० ॥

यवक्काथादितैल।

यवकोलकुलत्थानांमत्स्यानांशिग्रुबिल्वयोः। रसेनमूलकानाञ्चतैलंदधिपयोऽन्वितम् ॥१७१॥ साधयित्वाभिषग्दद्यात्सर्ववातामयापहम्। लशुनस्वरसेसिद्धंतैलमेभिश्चवातनुत् ॥ १७२ ॥

यव, बेर, कुलथी, मछली, सुहांजना, बेलकी गिरी और मूली इन सबके अलग २ क्काथ एकएक सेर लेवे। दही १ सेर, दूध १ सेर और तेल १ सेर सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। यह तेल संपूर्ण वातरोगोंको दूर करताहै। इसी प्रकार लहसुनके स्वरससे सिद्ध कियाहुआ तेल भी वातरोगोंको नष्ट करताहै ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

इन तैलोंसे संतानकी उत्पत्ति।

तैलान्येतान्यृतुस्नातामङ्गनांपाययेतच।
पीत्वान्यतममेषांहिवन्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥ १७३ ॥

यदि ऋतुस्नाता स्त्री इन चला आदिक तेलोंमेंसे किसी एक तेलका पान करे तो वंध्या भी पुत्रको उत्पन्न करनेवाली होजातीहै ॥ १७३ ॥

अन्यतैलोंका निर्देश ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् ।
अनेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत् ॥ १७४ ॥

शीतज्वरमें जो अगरू आदिक तैलोंका कथन कर आयेहैं वह अनेक वार पकाकर प्रयोग करनेसे वातव्याधियोंको दूर करतेहैं । अथवा यों कहिये कि वह अगरू आदि तेल जो शीतज्वरोंमें पहले कहेहैं उन्हें वातरोगोंको दूर करनेमें हमने सैकडों वार आजमायाहै ॥ १७४ ॥

वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच ।
तानिचानिलशान्त्यर्थंसिद्धिकामःप्रयोजयेत् ॥ १७५ ॥

आगे जो वातरक्त रोगमें तैलोंका कथन करेंगे यशकी इच्छावाला वैद्य अथवा आरोग्यताकी इच्छावाला रोगी वातरोगोंकी शान्तिके लिये उन तैलोंका प्रयोग करे ॥ १७५ ॥

वातरोगोंमें तेलोंकी प्रधानता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम् । व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात्सं-स्काराद्बलवत्तरम् ॥ १७६ ॥ गणैर्वातहरैस्तस्माच्छतशोऽथसह-स्रशः । सिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥ १७७ ॥

तैलके समान वातव्याधियोंको दूर करनेवाली और कोई औषधि नहीं है क्योंकि तैल-व्यवायी, उष्ण, भारी और स्निग्ध होनेसे वायुके गुणोंसे विरोधी होताहै । इसलिये वायुको शान्त करताहै । यदि तैलको वातनाशक द्रव्योंद्वारा संस्कार कियाजाय तो यह और भी विशेषरूपसे वातव्याधियोंको नष्ट करताहै इसलिये वात-नाशक गणोंसे तैलोंको १०० वार अथवा १००० वार या सैकडों प्रकारसे सिद्ध करके वातव्याधियोंमें प्रयोग करे । यह सूक्ष्म मार्गोंमें प्रवेश होजानेवाला होनेसे सूक्ष्म मार्गोंके रोगोंको शीघ्र नष्ट करदेताहै ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते ।
वातपित्तादिभिःस्रोतःस्वावृतेषु विशेषतः ॥ १७८ ॥

यह साधारणी क्रिया जिस प्रकार केवल वातव्याधिमें हितकारक है वैसेही वायुके साथ पित्त और कफका संसर्ग होनेपरभी है । अब पित्तादिसे आवृत वायुकी विशेष रूपसे चिकित्साका कथन करतेहैं ॥ १७८ ॥

पित्तावृतवातकी चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतथाक्रियाम् ।
व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयञ्चशस्यते ॥ १७९ ॥

यदि पित्तद्वारा वायुका मार्ग आवृत होगया हो तो विपरीतक्रमसे शीतल और उष्णक्रिया करनी चाहिये तथा जीवनीयगणसे सिद्ध किए घृतका प्रयोग करना हितकारी है ॥ १७९ ॥

धन्वमांसंयवाःशालिर्यापनाःक्षीरवस्तयः ।
विरेकःक्षीरपानञ्चपञ्चमूलीबलाश्रितम् ॥ १८० ॥
मधुयष्टिबलातैलघृतक्षीरैश्चसेचनम् ।
पञ्चमूलकषायेणकुर्य्याद्वाशीतवारिणा ॥ १८१ ॥

पित्तावृत वायुमें जंगली-जीवोंका मांसरस, शालिचावल, यापन वस्ति, क्षीरवस्ति, विरेचन पंचमूल और बलासे सिद्ध किए दूधका पान करना तथा मुलैठीका क्वाथ, बला तैल, वातनाशक घृत, वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये दूध पंचमूलका क्वाथ अथवा शीतल जल इनसे सेचन करना हितकारक है ॥ १८० ॥ १८१ ॥

कफावृतवातकी चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नानिजाङ्गलामृगपक्षिणः । स्वेदास्तीक्ष्णानिरूहाश्च वमनंसविरेचनम् ॥ १८२ ॥ जीर्णसर्पिस्तथातैलंतिलसर्षपजंशुभम् । संसृष्टेकफपिताभ्यांपित्तमादौविनिर्जयेत् ॥ १८३ ॥

कफद्वारा वायुका अवरोध होनेसे यवान्न जंगली जीवोंका मांसरस, स्वेदन, तीक्ष्ण, निरूहण, वमन और विरेचन कराना हितकारक है । तथा पुराना घृत और सरसोंका तेलका प्रयोग करना भी हितकारक है । कफ और पित्तके संसर्गमें पहिले पित्तको जीत लेना चाहिये ॥ १८२ ॥ १८३ ॥

आमाशयगतंमत्वाकफंवमनमाचरेत् ।
पक्वाशयेविरेकन्तुपित्तेसर्वत्रगेतथा ॥ १८४ ॥

यदि कफ आमाशयमें हो तो वमन करादेना चाहिये और यदि कफका संसर्ग पक्वाशयमें हो तो विरेचन कराना चाहिये और पित्त चाहे किसी स्थानमें हो तो उसमें विरेचन करानाही हितकारक है । अथवा सर्व शरीरगत पित्तमें विरेचन करानाही हितकारक है ऐसा मानना चाहिये ॥ १८४ ॥

स्वेदैर्विष्यन्दितःश्लेष्मायदापक्वाशयाच्च्युतः।
पित्तंवादर्शयेल्लिङ्गंवस्तिभिस्तौविनिर्हरेत् ॥ १८५ ॥

स्वेदप्रयोगोंसे यदि कफ इधर उधरसे पिघलकर अपने स्थानसे पतित होकर पक्काशयमें पहुंचजाय और साथमें पित्तके भी चिह्न दिखाई पडे तो उनको वस्ति-कर्मद्वारा निकाल टालना चाहिये ॥ १८५ ॥

श्लेष्मणाऽनुगतंवातमुष्णैर्गोमूत्रसंयुतैः। निरूहैःपित्तसंसृष्टंनिर्हरे-त्क्षीरसंयुतैः ॥ १८६ ॥ मधुरौषधसिद्धैश्चतैलैस्तमनुवासयेत्। शिरोगतेतुसकफेधूमनस्यादिकारयेत् ॥ १८७ ॥

कफसंयुक्त वातमें उष्ण द्रव्योंमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करना चाहिये। और पित्तसंयुक्त वातमें गोमूत्रके बदले दूध मिलाकर निरूहणवस्ति करना चाहिये। निरूहण वस्तिद्वारा दोषोंके निकलजानेपर मधुरगण (जीवनीयगण) से सिद्ध किये-हुए तैलद्वारा अनुवासन करे। यदि कफयुत वायु शिरोगत हो तो धूमप्रयोग और नस्य आदि प्रयोग करना चाहिये ॥ १८६ ॥ १८७ ॥

उरस्थवातमें क्रिया।

हृतेपित्तेकफेयःस्यादुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः।
सशेषःस्यात्क्रियातत्रकार्य्याकेवलवातिकी ॥ १८८ ॥

कफपित्तके निकलजानेपर भी यदि छातीके स्रोतोंमें वातका अनुबंध हो तो केवल वातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८८ ॥

रक्तादिधातुओंसे आवृतवातकी पृथक् २ चिकित्सा।

शोणितेनावृतेकुर्य्याद्वातशोणितकींक्रियाम्।
प्रमेहवातमेदोघ्नीमामवातेप्रयोजयेत् ॥ १८९ ॥

रक्तावृत वातमें वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये। आमसंयुक्त वातमें प्रमेह, वात और मेदनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १८९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गरसाःक्षीरंस्नेहामांसावृतेमताः।
महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थेपूर्ववद्रेतसावृते ॥ १९० ॥

मांसावृत वातमें स्वेद, अभ्यंग, मांसरस, दूध और स्नेह द्रव्योंका प्रयोग हितका-रक होताहै। अस्थि और मज्जागत वातमें पूर्वोक्त महास्नेहका प्रयोग करना हित-कारक है। और शुक्रावृत वातमें शुक्रगत वायुकी जो चिकित्सा कही है सो करनी चाहिये ॥ १९० ॥

अन्नावृतेतुवमनंपाचनंदीपनंलघु ।
मूत्रलानितुमूत्रस्थेस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥ १९१ ॥

अन्नावृत वातमें वमन कराना तथा पाचन और दीपन एवं हलके द्रव्योंका प्रयोग करना हितकारक है । मूत्रावृत वातमें मूत्रके लानेवाली औषधियें, स्वेद और उत्तर-वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९१ ॥

एरण्डतैलंवर्चःस्थेस्निग्धोदावर्त्तवत्क्रिया ॥ १९२ ॥

मलावृत वातमें स्निग्ध और उदावर्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा एरण्ड-तैलका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९२ ॥

स्वस्थानस्थोवलीदोषःप्रोक्तंस्वैरौषधैर्जयेत् । वमनैर्वाविरेकैर्वावस्तिभिःशमनेनवा । इत्युक्तमावृतेवातेपित्तादिभिर्यथायथम्१९३॥

यदि दोष अपने २ स्थानमेंही कुपित हों तो उन्हें, उन्हींके अनुसार चिकित्सा और औषधियों द्वारा जीतना चाहिये । जैसे—अपने स्थानमें कफका कोप हो तो वमन कराना चाहिये । पित्तका कोप हो तो विरेचन और अपने स्थानमें वायुका कोप हो तो वस्तिकर्म कराना हित है । इस प्रकार पित्तादिकोंसे आवृत वायुकी यथोचित चिकित्साका वर्णन कियागया है ॥ १९३ ॥

पांचों वायुओंके परस्पर आवरण ।

मारुतानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु । लिङ्गंव्याससमासाभ्यामुच्यमानंमयाऽनघ । प्राणोवृणोत्यपानादीन्प्राणंवृण्वन्तितेऽपिच । उदानायास्तथान्योऽन्यंसर्वएवयथाक्रमम् ॥ १९४ ॥

पांचों वायु परस्पर जब मार्गको रोक लेतीहैं तो उनके जो लक्षण होवेहैं संक्षेप और विस्तारसे कहे जातेहुए उनको हे अनघ ! श्रवण करो । प्राणवायु जब अपान आदि वायुओंको रोक लेतीहै और वे अपानादि वायुमें प्राणवायुको रोक लेतीहैं तथा उदानादि वायुएँ भी आपसमें परस्पर जिस प्रकार १ दूसरेको यथाक्रम आवृत करलेतीहैं उनको यथाक्रम श्रवण करो ॥ १९४ ॥

वायुओंके परस्पर आवरणके २० भेद ।

विंशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम् ।
मारुतानांहिपञ्चानांतानिसम्यक्प्रतर्कयेत् ॥ १९५ ॥

उल्वण इन पांचों वायुओंके परस्पर आवरणसे जो बीस भेद होतेहैं उनको बुद्धिमान भली प्रकार तर्कना करे अर्थात् जाने ॥ १९५ ॥

प्राणावृतव्यान वायुके लक्षण और चि० ।

सर्वेन्द्रियाणांशून्यत्वंज्ञात्वास्मृतिबलक्षयम् ।
व्यानेप्राणावृतेलिङ्गंकर्मतत्रोर्द्धजत्रुकम् ॥ १९६ ॥

जब व्यानवायुसे प्राणवायु आवृत होजातीहै तो संपूर्ण इन्द्रियोंमें शून्यता तथा ज्ञान, स्मृति और बलका क्षय होताहै । इसमें ऊर्द्ध्वजत्रुगत रोगोंकी जो चिकित्सा है सो करना हितकारक है ॥ १९६ ॥

व्यानावृत प्राणवात ।

स्वेदोऽत्यर्थंलोमहर्षस्त्वग्दोषःसुप्तगात्रता ।
प्राणेव्यानावृतेतत्रस्नेहयुक्तंविरेचनम् ॥ १९७ ॥

प्राणवायु व्यानवायुसे आवृत होय तो देहमें अत्यंत पसीने, रोमहर्ष, त्वचाके विकार, शरीरका सुन्नसा होना यह लक्षण होतेहैं । इसमें स्नेहयुक्त विरेचन करना हितकारक है ॥ १९७ ॥

प्राणावृत समानके ल० ।

प्राणावृतेसमानेस्युर्जडगद्गदमूकताः ।
चतुष्प्रयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रसयापनाः ॥ १९८ ॥

समानवायु प्राणवायु द्वारा आवृत हो तो बोलनेमें जडता, गद्गद शब्द, मूकता यह लक्षण होतेहैं । इसमें पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य इन चार प्रकारोंसे स्नेहका प्रयोग करना चाहिये । तथा यापनवस्ति करना भी हितकारक है ॥ १९८ ॥

समानावृत्त प्राणके लक्षण, चिकित्सा ।

समानेनावृतेऽप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना ।
शूलेचामाशयेतत्रदीपनंसर्पिरिष्यते ॥ १९९ ॥

समान वायुसे प्राणवायु आवृत होय तो ग्रहणी रोग, पार्श्वपीडा, आमाशयमें शूल, यह लक्षण होतेहैं । इसमें दीपन घृतोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १९९ ॥

प्राणावृत उदान० ।

शिरोग्रहःप्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः । हृद्रोगोमुखशोष-
श्चाप्युदानेप्राणसंवृते। ततोर्द्धभागिकंकर्म्मकार्य्यमाश्वासनंतथा२००

बलवान् प्राण वायुसे उदान वायु आवृत होजाय तो शिरोग्रह, प्रतिश्याय, निःश्वास और उच्छ्वासकी रुकावट, हृद्रोग, मुखशोष यह लक्षण होतेहैं । इसमें उर्द्ध्वदैहिक चिकित्सा अर्थात् वमन, नस्य आदि शरीरके उपरले भागकी चिकित्सा और आश्वासन करना हितकारक है ॥ २०० ॥

उदानावृत प्राण० ।

कर्मौजोबलवर्णानांनाशोमृत्युरथापिवा । उदानेनावृतेप्राणेतंशनैः शीतवारिणा । सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवसुखञ्चैवोपपादयेत् ॥ २०१ ॥

उदान वायुसे प्राण वायु रुकजाय तो कर्म, शक्ति, ओज और बल, वर्णका नाश होताहै अथवा मृत्यु ही होजातीहै । इसमें धीरे २ शीतल जलसे मुख आदि स्थानोंको सिंचन करे और आश्वासन देवे तथा अन्य उपकारी उपायोंको करे ॥ २०१ ॥

प्राणावृत अपान ।

ऊर्द्धगेनावृतेऽपानेच्छर्दिश्वासादयोगदाः ।
स्युर्वातेतत्रवस्त्यादिभोज्यञ्चैवानुलोमनम् ॥ २०२ ॥

बलवान् प्राणवायुसे अपान वायु रुकजाय तो वमन और श्वास आदिक रोग उत्पन्न होतेहैं । इसमें वस्तिकर्म और अनुलोमनकर्त्ता भोजनोंका सेवन करना हित कारक है ॥ २०२ ॥

आपानावृत प्राणवा० ।

मोहोऽल्पोऽग्निरतीसारऊर्ध्वगेऽपानसंवृते ।
वातेस्याद्वमनंतत्रदीपनंग्राहिचाशनम् ॥ २०३ ॥

यदि बलवान् अपान वायुसे प्राण वायु आवृत होजाय तो मोह, अग्निकी मंदता और अतिसार होतेहैं । इसमें वमन कराना तथा दीपन और संग्राही आहारका सेवन कराना हित है ॥ २०३ ॥

व्यानावृत अपान० ।

वम्याध्मानमुदावर्त्तगुल्मार्त्तिपरिकर्त्तिकाः ।
लिङ्गंव्यानावृतेऽपानेतंस्निग्धैरनुलोमयेत् ॥ २०४ ॥

व्यानवायुसे अपानवायु आवृत होजाय तो वमन, अफारा, उदावर्त्त, गुल्म और कतरनेकीसी पीडा होतीहै । इसमें स्निग्ध और अनुलोमन क्रिया हित-कारक है ॥ २०४ ॥

अपानावृतवा० ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विण्मूत्ररेतसाम् ।
अतिप्रवृत्तिस्तत्रापिसर्वंसंग्रहणंमतम् ॥ २०५ ॥

बलवान् अपानवायुद्वारा व्यानवायु लपेटमें आजाय तो विष्ठा, मूत्र और वीर्यकी अत्यंत प्रवृत्ति होने लगतीहै । इसमें भी संग्राही चिकित्सा करना हित कारक है ॥ २०५ ॥

समानावृत व्यान ।

मूर्च्छातन्द्राप्रलापोऽङ्गसादोऽग्न्योजोवलक्षयः ।
समानेनावृतेव्यानेव्यायामोलघुभोजनम् ॥ २०६ ॥

वलवान् समान वायुद्वारा व्यान वायु आवृत होजाय तो मूर्च्छा, तंद्रा, प्रलाप, अंगोंका सुन्नसा होजाना तथा जठराग्नि, ओज और वलका क्षय होताहै । इसमें व्यायाम और हलके भोजनका कराना हितकारक होताहै ॥ २०६ ॥

उदानावृत व्यान ।

स्तब्धताल्पाग्नितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ।
उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यंमितंलघु ॥ २०७ ॥

उदानवायुसे व्यानवायु आवृत होजाय तो शरीरका जडकना अग्निकी अल्पता पसीनेका न आना, चेष्टाकी हानि और नेत्रोंका मिचासा जाना यह लक्षण होतेहैं । इसमें थोडा और हलका भोजन करना हितकारी है ॥ २०७ ॥

इतरआवरणोंका उपसंहार ।

पञ्चान्योन्यावृतानेवंवातान्बुध्येतलक्षणैः । एषांस्वकर्मणांहानिर्वृ-द्धिर्वावरणेमता ॥ २०८ ॥ यथास्थूलंससुद्दिष्टमेतदावरणेपृथक् । सलिङ्गभेषजंसम्यक्शृणुत्वंवुद्धिवृद्धये ॥ २०९ ॥

इन पांचों वायुओंके परस्पर आवृत होनेसे इस प्रकारके लक्षणोंको जानना चाहिये । इनके परस्पर आवृत होनेसे इनके अपनेअपने कर्मोंकी हानि अथवा वृद्धि होनाही आवरण कहाजाताहै । स्थूल रूपसे इन आठ प्रकारके आवरणोंका कथन कियाहै । वैद्यकी बुद्धिकी वृद्धिके लिये इन आठ प्रकारके आवरणोंके लक्षण और चिकित्साका निर्देश भी करदियाहै । सो वैद्योंको बुद्धिपूर्वक जानना चाहिये ॥ २०८ ॥ २०९ ॥

अन्य १२ आवरणोंका निर्देश ।

स्थानान्यवेक्ष्यवातानांवृद्धिंहानिंचकर्मणाम् । द्वादशावरणान्यन्या-न्यभिलक्ष्यभिषग्जितम् ॥२१०॥ कुर्यादभ्यञ्जनस्नेहंपानवस्त्या-दिसर्वशः । क्रमसुष्णमनुष्णंवाव्यत्यासादवचारयेत् ॥ २११ ॥

वारह प्रकारके और वायुओंके आवरणको निर्देश करतेहैं, उनमें दोषोंके स्थान और उनके अपने २ कर्मोंकी वृद्धि और हानिके विचारसे वारह प्रकारके आवरणोंको जानकर उनमें अभ्यंजन, स्नेहन, नस्य और पान तथा वस्तिआदि क्रमको उनकी शांतिके लिये करना चाहिये । तथा विपरीत भावसे उष्ण और शीतल क्रियाको करना हितकारक होताहै ॥ २१० ॥ २११ ॥

उदानेयोजयेदूर्द्ध्वमपानश्चानुलोमयेत् ।
समानंशमयेच्चैवत्रिधाव्यानन्तुयोजयेत् ॥ २१२ ॥

उदान वायु आवृत होय तो वमन और नस्य आदि ऊर्ध्व क्रिया करना चाहिये । अपान वायु आवृत हो तो वस्तिकर्म विरेचन और अनुलोमन क्रिया करना चाहिये । समान वायु आवृत हो तो शमन क्रिया करना हितकारक है । व्यान वायु आवृत हो तो संशोधन अनुलोमन वस्ति और संशमन यह सब प्रकारकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २१२ ॥

प्राणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपिस्थानेह्यस्यस्थितिर्ध्रुवा ।
स्वंस्थानंगमयेदेवंवृतानेतान्विमार्गगान् ॥ २१३ ॥

प्राण वायुकी उदानादि अन्य चार वायुओंकी अपेक्षा प्रथम चिकित्सा करनी चाहिये । क्योंकि प्राण वायुका अपने स्थानमें स्थित रहना ही मनुष्यके जीवनके लिये अत्यावश्यक है और इन सब विमार्गगामी वायुओंको प्राण वायुकी स्थितिकी रक्षापूर्वक अपने २ स्थानमें पहुंचा देना चाहिये ॥ २१३ ॥

पित्तावृतप्राण ।

मूर्च्छादाहोभ्रमःशूलंविदाहःशीतकामिता ।
छर्दनञ्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ॥ २१४ ॥

यदि प्राण वायु पित्तसे आवेष्टित होजाय तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल वस्तुओंकी इच्छा तथा विदग्ध अन्नका वमन यह लक्षण होतेहैं ॥ २१४ ॥

कफावृतप्राणवायुके लक्षण ।

ष्ठीवनंक्षवथूद्गारनिश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ।
प्राणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ॥ २१५ ॥

यदि प्राण वायु कफसे आवृत होय तो मुखसे कफका गिरना, छींक, डकार, श्वास और प्रतिश्वासका रुकना, अरुचि और वमन यह लक्षण होतेहैं ॥ २१५ ॥

पित्तावृत उदानके लक्षण ।

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोःक्लमः ।
ओजोभ्रंशश्चसादश्चाप्युदानेपित्तसंवृते ॥ २१६ ॥

उदान वायु पित्तसे आवेष्टित हो तो मूर्च्छा, दाह, भ्रम, शूल, विदाह, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, विदग्ध अन्नका वमन, नाभि और वक्षस्थलमें दाह, क्लान्ति, ओजका नाश तथा शरीरका सुस्तसा होजाना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१६ ॥

कफावृत उदानके लक्षण।

आवृतेश्लेष्मणोदानेवैवर्ण्यवाक्स्वरग्रहः।
दौर्बल्यंगुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ॥ २१७ ॥

उदान वायु कफसे आवृत हो तो विवर्णता, वाणी और स्वरका रुकना, दुर्बलता, अंगोंमें भारीपन, अरुचि यह लक्षण होतेहैं ॥ २१७ ॥

पित्तावृत समानके लक्षण।

अतिस्वेदस्तृषादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच।
पित्तावृतेसमानेस्यादुपघातस्तथोष्मणः ॥ २१८ ॥

समान वायु पित्तसे आवृत हो तो अत्यंत स्वेदका आना, प्यास, दाह, मूर्च्छा, अरुचि और अग्निका भ्रंश यह लक्षण होतेहैं ॥ २१८ ॥

कफावृत समानके लक्षण।

अस्वेदोवह्निमान्द्यञ्चलोमहर्षस्तथैवच।
कफावृतेसमानेस्याद्गात्राणाञ्चातिशीतता ॥ २१९ ॥

समान वायु कफसे आवृत हो तो पसीनेका न आना, मंदाग्नि, रोमहर्ष, अंगोंका अत्यंत शीतल होना यह लक्षण होतेहैं ॥ २१९ ॥

पित्तावृतव्यानके लक्षण।

व्यानेपित्तावृतेतुस्याद्दाहःसर्वाङ्गगःक्लमः।
गात्रविक्षेपसङ्गश्चससन्तापःसवेदनः ॥ २२० ॥

व्यान वायु पित्तसे आवृत हो तो सब अंगोंमें दाह, क्लम, अंगोंका इधर उधर फेंकना, वाणीका रुकना, संताप और पीडा यह लक्षण होतेहैं ॥ २२० ॥

कफावृत व्यानके लक्षण।

गुरुतासर्वगात्राणांसर्वसन्ध्यस्थिजारुजाः।
व्यानेकफावृतेलिङ्गंगतिसङ्गस्तथाधिकः ॥ २२१ ॥

व्यान वायु कफसे आवृत हो तो सब अंगोंमें भारीपन, संपूर्ण शरीरकी संधियोंमें और अस्थियोंमें पीडा और गतिका अवरोध यह लक्षण होतेहैं ॥ २२१ ॥

पित्तावृत अपानके लक्षण।

हारिद्रमूत्रवर्चस्त्वक्तापश्चगुदमेढ्रयोः।
लिङ्गंपित्तावृतेऽपानेरजसःसंप्रवर्त्तनम् ॥ २२२ ॥

अपान वायु पित्तसे आवृत हो तो मल और मूत्र तथा त्वचा हल्दीके समान वर्ण-वाले हों, गुदा और लिंगेन्द्रिय तपायमान हो यदि यह स्त्रियोंको होय तो अत्यंत रजकी प्रवृत्ति होने लगती है ॥ २२२ ॥

कफावृत अपानके लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् ।
श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः ॥ २२३ ॥

अपान वायु कफसे आवृत हो तो फटाहुआ, कफमिश्रित, आममिश्रित और भारी मल आने लगताहै तथा कफजनित प्रमेह होताहै ॥ २२३ ॥

पित्तकफमिश्रितावरण ।

लक्षणानान्तुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच ।
उपलक्ष्यभिषग्विद्वान्मिश्रमावरणंवदेत् ॥ २२४ ॥

कफ और पित्तके मिलेहुए लक्षण होंय तो विद्वान् वैद्य दोनोंसे मिश्रित आवरण कहे ॥ २२४ ॥

यद्यस्यवायोर्निर्दिष्टंस्थानंतत्रेतरौस्मृतौ ।
दोषौबहुविधान्व्याधीन्दर्शयेतांयथानिजान् ॥ २२५ ॥

वायुके जो २ स्थान कथन किये हैं उन उन स्थानोंमें पित्त और कफका आवरण होय तो यह कफ और पित्त उस स्थानानुसार अपने लक्षणोंवाली व्याधियोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ २२५ ॥

प्राण और उदानकी गुरुता ।

आवृतंश्लेष्मपित्ताभ्यांप्राणश्चोदानमेवचं । गरीयस्त्वेनपश्यन्ति भिषजःशास्त्रचक्षुषः ॥ २२६ ॥ विशेषाज्जीवितंप्राणेउदानेसंश्रितं बलम् । स्यात्तयोःपीडनाद्धानिरायुषश्चबलस्यच ॥ २२७ ॥

कफ और पित्तसे आवृत प्राण वायु तथा उदान वायुको शास्त्रके जाननेवाले वैद्य गुरुतर कथन करतेहैं क्योंकि मनुष्योंका जीवन प्राण वायुके आश्रय और बल उदान वायुके आश्रयसे होताहै । इसलिये प्राण और उदानके पीडन होनेसे आयु और बलकी हानि होतीहै ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

आवृत वायुओंके यत्न न करनेसे हानि ।

सर्वेऽप्येतेपरिज्ञेयाःपरिसंवत्सरात्तथा ।
उपेक्षणादसाध्याःस्युरथवादुरुपक्रमाः ॥ २२८ ॥

संपूर्ण वायुओंके आवृत होनेसे सावधान रहना चाहिये क्योंकि इनका यत्न न करनेसे १ वर्षकी होजानेपर यह असाध्य होजातीहैं अथवा दुश्चिकित्स्य होजातीहैं ॥ २२८ ॥

हृद्रोगोविद्रधिःप्लीहागुल्मातीसारएवच । भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥ २२९ ॥ तस्मादावरणंवैद्यःपवनस्योपलक्षयेत् । पञ्चात्मकस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा ॥ २३० ॥ भिषग्जितैरतःसम्यगुपलक्ष्यसमाचरेत् । अनभिष्यन्दिभिःस्निग्धैः स्रोतसांशुद्धिकारिभिः ॥ २३१ ॥

आवृत वायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् शीघ्र यत्न न करनेसे हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा, गुल्म और अतिसार उत्पन्न होजातेहैं । इसलिये वैद्यको पंचात्मक वायुके तथा कफ और पित्तके आवरणको जानकर अनभिष्यंदी, स्निग्ध और स्रोतोंको शुद्ध करनेवाली क्रियाद्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२९-२३१ ॥

सर्वस्थानगत आवृत वायुओंकी चिकित्सा ।

कफपित्ताविरुद्धंयच्चवातानुलोमनम् ।
सर्वस्थानावृतेऽप्याशुतत्कार्यंमारुतेशुभम् ॥ २३२ ॥

यदि वायु सर्व स्थानोंमें आवृत हो तो कफ और पित्तके अविरुद्ध तथा वातको अनुलोमन करनेवाली शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिये । अथवा सब स्थानोंमें आवृत वायुकी चिकित्सा अनुलोमन और कफ वातसे अविरोधी तथा शीघ्र करनी हितकारक है ॥ २३२ ॥

यापनावस्तयःप्रायोमधुराःसानुवासनाः । प्रसमीक्ष्यबलाधिक्यंमृदुवास्रंसनंहितम् ॥ २३३ ॥ रसायनानांसर्वेषामुपयोगःप्रशस्यते । शैलस्यजतुनोऽस्यर्थंपयसागुग्गुलोस्तथा ॥ २३४ ॥ लेहंवाभार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुङ्नरः । अभयामलकीयोक्तानेकादशमिताशनः ॥ २३५ ॥

सर्वस्थानगत आवृत वायुमें क्षीरवस्ति, मधुमाय वस्ति, अनुवासन वस्ति और बलाबल विचारकर मृदु विरेचन करना हितकारक है तथा सब प्रकारके रसायनोंका प्रयोग करना अथवा शिलाजीतका निरन्तर दूधके साथ सेवन करना या गूगुलके साथ सेवन करना हितकारक है । अथवा भार्गवके कथन कियेहुए च्यवनप्राशका सेवन करे और

केवल दूधका ही आहार करे या अभयामलकीय अध्यायमें कहीहुई ११प्रकारकी रसा-यनोंमेंसे किसी एक रसायनका सेवन करे और मित भोजन किया करे॥२३३-२३५॥

अपानेनावृतेसर्वंदीपनंग्राहिभेषजम् ।
वातानुलोमनंयच्चपक्वाशयविशोधनम् ॥ २३६ ॥

यदि प्राणादि वायुएं अपान वायुसे आवृत हों तो सब प्रकारके दीपन और ग्राही तथा वातको अनुलोमन करनेवाले औषध अन्नपानका प्रयोग और पक्वाशयका शोधन करनेवाले द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २३६ ॥

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमावृतानांचिकित्सितम् । प्राणादीनांभिषक्कुर्या-द्वितर्क्यस्वयमेवतत् ॥ २३७ ॥ पित्तावृतेतुपित्तघ्नैर्मारुतस्याविरो-धिभिः । कफावृतेकफघ्नैस्तुमारुतस्यानुलोमनैः ॥ २३८ ॥

इस प्रकार प्राणादि आवृत वायुओंकी चिकित्साका संक्षेपसे वर्णन कियागया है इन्हें वैद्य अपनी बुद्धिसे ही विस्तार पूर्वक तर्कनाकर औषधियोंकी कल्पना करे । पित्तावृत वायुमें वायुसे अविरोधी और पित्तनाशक द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करे तथा कफावृत वातमें वातसे अविरोधी कफनाशक अनुलोमन आदि औषधों द्वारा चिकित्साकरे२३७-२३८

लोके वाय्वर्कसोमानांदुर्विज्ञेयायथा गतिः । तथाशरीरेवातस्य पित्तस्यच कफस्य च ॥ २३९ ॥ क्षयंवृद्धिसमत्वञ्चतथैवावरणं भिषक् । विज्ञायपवनादीनांनप्रमुह्यतिकर्मसु ॥ २४० ॥

जैसे जगत्में वायु, सूर्य और चन्द्रमाकी गति दुर्विज्ञेय है उसी प्रकार शरीरमें भी वात, पित्त, कफकी गति भी दुर्विज्ञेय है । जो वैद्य इन वातादि दोषोंकी क्षय वृद्धि समता और आवरणताको जान लेता है वह चिकित्साके समय इन वातादि दोषोंको जानकर इनकी चिकित्साके क्रममें मोहको प्राप्त नहीं होता ॥ २३९ ॥ २४० ॥

अध्यायका उपसंहार

तत्रश्लोकौ ।

पञ्चात्मनःस्थानवशाच्छरीरेस्थानानिकर्माणिचदेहधातोः । प्रकोप-हेतुःकुपितश्चरोगानस्थानेषुचान्येषुवृतोऽवृतश्च ॥ २४१ ॥ प्राणेश्व-रः प्राणभृतांकरोतिक्रियाचतेषामखिलानिरुक्ता । तान्देशसात्म्य-र्तुबलान्यवेक्ष्यप्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारी ॥ २४२ ॥

इतिश्रीचर०चिकि० वातचिकित्सितंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस वातचिकित्सितनामक अध्यायमें पंचात्मक वायुके स्थान स्थानवशसे शरीरमें वायुके स्थान और देहधातुके कर्म प्रकोप के कारण कुपित वायु जिस प्रकार अपने स्थानमें या अन्य स्थानमें रोगोंको उत्पन्न करती है तथा आवृत वायु और अनावृत वायु जिस प्रकार रोगोंको उत्पन्न करती है यह प्राणेश्वर वायु जिस प्रकार जिन २ स्थानोंमें मनुष्योंके शरीरमें क्रिया करती है उन सबका वर्णन किया गयाहै। वैद्यजन उन संपूर्ण क्रियाओंको देश, सात्म्य, ऋतु. और बल आदि विचारकर शास्त्रानुसारी चिकित्साको करे ॥ २४१ ॥ २४२ ॥

इति श्रीच० सं० चिकि० प्र० भा० टी० वातचिकित्सित नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

जानत जो नर वातके, स्थान ज्ञान विधि भेद ॥
करहि चिकित्सा सिद्ध सो, वात व्याधि उच्छेद ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोवातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः

अब हम वातशोणितचिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् अत्रेयजी कहनेलगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्येपुनर्वसुम् । पृष्टवान्गुरुमेकाग्रमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् ॥ १ ॥ अग्निमारुततुल्यस्यसंसर्गस्यानिलासृजोः । हेतुलक्षणभैषज्यान्यथास्मैगुरुरब्रवीत् ॥ २ ॥

अग्निहोत्र कर चुकनेके अनन्तर आनन्दसे ऋषिगणोंके मध्यमें एकाग्रचित्त बैठेहुए अग्निके समान प्रकाशमान अपने गुरु पुनर्वसुजीसे अग्निवेशने अग्नि और वायुके समान तीव्र स्वभाववाले वातरक्तके विषयमें प्रश्न किया और भगवान् पुनर्वसुजी इस प्रकार वातरक्तके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

वातरक्तके हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ ३ ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ ४ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः। प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्याहारविहारिणाम् ॥५॥ अचंक्रमणशीलानांकुप्यतेवातशोणितम् । अभिघातादशुद्ध्याचप्रदुष्टेशोणितेनृणाम् ॥ ६ ॥ कषायकटुतिक्ताल्परूक्षा-

हारादभोजनात् । हयोष्ट्रखरयानाम्बुक्रीडाप्लवनलङ्घनात् ॥ ७ ॥ उष्णेचात्यध्वगमनाद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् । वायुर्विवृद्धोवृद्धेनरक्ते-नावारितःपथि ॥ ८ ॥ कृत्स्नंसंदूषयेद्रक्तंतज्ज्ञेयंवातशोणितम् । खुडंवातबलासाख्यमाढ्यवातञ्चनामभिः ॥ ९ ॥

नमकीन, खट्टे,चरपरे, खारे, स्निग्ध, गर्म और अजीर्णकर्त्ता द्रव्योंके अत्यंत सेवन-से, क्लेदित, सूखे,जलसंचारी और अनूपसंचारी जीवोंके मांसोंका अत्यंत सेवन करनेसे पिण्याक और मूलीका अत्यंत सेवन करनेसे कुलथी, उडद, सेम, शाक, पलल और ईखके अत्यंत सेवन करनेसे दही, कांजी, सौवीरक,सिरका, तक्र, सुरा और आसवोंको अधिक प्रमाण अत्यंत सेवन करनेसे विरुद्ध भोजन और भोजनके ऊपर भोजन करनेसे तथा क्रोध, दिनमें सोना, अत्यंत जागना और हरसमय निष्प्रयास बैठेही रहना आदि मिथ्या आहार विहारके करनेसे मनुष्योंके शरीरमें और विशेषकर सुकुमार मनुष्योंके शरीरमें वात रक्तका कोप होता है तथा चोट आदि लगनेसे और संचित मलोंको शोधन न करनेसे, रक्तके दूषित होनेसे और उसमें कसैले, कटु, तिक्त, अल्प तथा रूक्ष आहारोंके सेवन करनेसे अथवा निराहार रहनेसे, घोडा, ऊंट, आदि शीघ्र गमन करनेवाले यानपर सवारी करनेसे, बलपूर्वक जलक्रीडा करनेसे, जलमें अत्यंत तैरनेसे अथवा वेगयुक्त जलकी धाराक आगेको बलपूर्वक लंघन करनेसे गर्मऋतुमें अत्यंत मार्ग चलनेसे अधिक मैथुन करनेसे, मूलमूत्रादि वेगोंको रोकनेसे बढीहुई वायु वृद्धिको प्राप्तहुए रक्तसे मार्गमें अवरुद्ध होकर संपूर्ण रक्तको दूषित करदेतीहै इसीको वात-रक्त रोग कहते हैं इसीको खुड्वात और बलास तथा आढ्यवात भी कहते हैं ॥३-९॥

वातरक्तके स्थान ।

तस्यस्थानंकरौपादावङ्गुल्यःपर्वसन्धयः ।
कृत्वादौहस्तपादेषुमूलंदेहेविधावति ॥ १० ॥

हाथ, पांव, अंगुलियें, पर्व और संधियें वातरक्तके स्थान हैं यह रोग पहिले हाथ, पावोंमें प्राप्त होकरही अपनी जडको बांधता है फिर संपूर्ण शरीरमें फैलजाताहै ॥१०॥

वातरक्तकी संप्राप्ति ः

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छञ्शिरायणैः । पर्वस्वभिहतंक्षुब्धंव-क्रत्वादवतिष्ठते ॥ ११ ॥ स्थितंपित्तादिसंसृष्टंतास्ताःसृजतिवे-दनाः । करोतिदुःखंतेष्वेवतस्मात्प्रायेणसन्धिषु । भवन्तिवेदना-स्तास्ताअत्यर्थंदुःसहानृणाम् ॥ १२ ॥

वातरक्त वायुकी सूक्ष्मता और रुधिरकी सर्वगामिता होनेसे शिरामार्गद्वारा संपूर्ण देहमें गमन करता है परन्तु पर्वोंमें उपस्थित होनेसे पर्वोंको टेढा करदेताहै। फिर उन पर्वोंसे अभिहत और क्षुब्ध होकर पर्वस्थानमेंही टिका रहताहै इस प्रकार स्थितहुआ वातरक्त पित्तादिसे मिलकर पित्तादि संसृष्ट अनेक प्रकारकी पीडाओंको उत्पन्न करता है वह पित्तादिसंसृष्ट वातरक्त संधियोंमें स्थित होनेसे प्रायः संधियोंमेंही अनेक प्रकारकी दुःसह पीडाओंको उत्पन्न करता है। यह पीडा मनुष्योंके लिये दुःसह होतीहै॥१२॥

वातरक्तके पूर्वरूप।

स्वेदोऽत्यर्थंनवाकार्ष्ण्यंस्पर्शाज्ञत्वंक्षतेऽतिरुक्। सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनंपिडकोद्गमः॥ १३॥ जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु। निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वंसुप्तिरेवच॥ १४॥ कण्डूःसन्धिषुरुग्भूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत्। वैवर्ण्यमण्डलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम्॥ १५॥

अत्यंत पसीनोंका आना अथवा पसीनेका सर्वथा न आना, देहका वर्ण काला होना स्पर्शका ज्ञान न रहना, घावमें अत्यंत पीडा होना, जोड ढीलेसे पडजाना, आलस्य, अंगोंका सुन्नसा होना, जानु, जंघा, ऊरु, कमर, हाथ, पांव और संधियोंमें फुंसियोंका होना तथा इन्हीं अवयवोंमें सूई चुभनेकीसी पीडा, फडकन, भेदनकीसी पीडा, भारीपन और सुन्नसा होजाना तथा संधियोंमें खुजली और वार वार संधियोंमें पीडा होना तथा शान्त होजाना, विवर्णता, शरीरमें चकत्तेसे पडजाना यह वातरक्तके पूर्वरूपमें होतेहैं॥ १३॥ १४॥ १५॥

उत्तान और गम्भीर वातरक्तके भेद।

उत्तानमथगम्भीरंद्विविधंतत्प्रचक्षते।
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानंगम्भीरन्त्वन्तराश्रयम्॥ १६॥

वह वातरक्त उत्तान और गंभीर भेदसे दो प्रकारका होताहै। त्वचा और मांसके आश्रित वातरक्तको उत्तानवातरक्त कहतेहैं। और आभ्यंतर अर्थात् शिराओंमें आश्रित हुए वातरक्तको गंभीरवातरक्त कहतेहैं॥ १६॥

उत्तानवातरक्तके लक्षण।

कण्डूदाहरुगायासतोदस्फुरणकुञ्चनैः।
अन्विताश्यावरक्तात्वग्बाह्येताम्रातथेष्यते॥ १७॥

खुजली, दाह, पीडा, श्रम, तोद, फडकन और कुंचन होना तथा त्वचाका रंग काला या ताम्रवर्णका होना यह उत्तान वातरक्तके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

गंभीरवातरक्तके ल० ।

गम्भीरेश्वयथुःस्तब्धःकठिनोऽन्तर्भृशार्तिमान् ।
श्यावस्ताम्रोऽथवादाहतोदस्फुरणपाकवान् ॥ १८ ॥

गंभीर वातरक्तमें सूजन, संधियोंका स्तम्भ, कठोरता, भीतर अत्यंत पीडा होना, श्याम और ताम्रवर्णकी सूजन होना तथा दाह, तोद, फडकन और पाक यह लक्षण होतेहैं ॥ १८ ॥

रुग्विदाहान्वितोऽभीक्ष्णंवायुःसन्ध्यस्थिमज्जसु । छिन्दन्निवचरत्यन्तर्वक्रीकुर्वंश्चवेगवान् ॥ १९ ॥ करोतिखञ्जंपंगुंवाशरीरेसर्वतश्चरन् । सर्वैर्लिङ्गैश्चविज्ञेयंवातासृगुभयाश्रयम् ॥ २० ॥

रक्तयुक्त वातशूल और दाह करतीहुई, सदैव संधि, अस्थि और मज्जामें छेदनकीसी पीडा करतीहुई विचरती है और वेगपूर्वक हाथोंकी अंगुलियोंकी संधियोंको अत्यंत टेढी बना देती है। यदि यह वातरक्त संपूर्ण शरीरमें गमन करे तो सर्वत्र विचरतीहुई खंजता और पंगुपनको उत्पन्न करती है। यदि इस वातरक्तमें उत्तान और गंभीरके सब प्रकारके लक्षण हों तो इसको उभयाश्रित जानना ॥ १९ ॥ २० ॥

वातरक्तके वातादिभेद ।

तत्रवातेऽधिकेवास्याद्रक्तेपित्तेकफेऽपिवा ।
संसृष्टेपुसमस्तेपुयच्चतच्छृणुलक्षम् ॥ २१ ॥

दोनों प्रकारके वातरक्त, वाताधिक, रक्ताधिक, पित्ताधिक और कफाधिक तथा द्विदोषाश्रित वा सर्वदोषाश्रित इन भेदोंसे सात प्रकारके होतेहैं। अब उनके पृथक्२ लक्षणोंको सुनो ॥ २१ ॥

वाताधिक वातरक्तके लक्षण ।

विशेषतःशिरायामशूलस्फुरणतोदनम् । शोथस्यकार्ष्ण्यरौक्ष्यञ्च श्यावतावृद्धिहानयः ॥ २२ ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनांसङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । कुञ्चनस्तम्भनेशीतप्रद्वेषश्चानिलेऽधिके ॥ २३ ॥

वाताधिक वातरक्तमें विशेषरूपसे नसोंका मोटापन अथवा संकोच, शूल, तोद-स्फुरण, शरीरमें रूक्षता, कालापन अथवा श्यामवर्णयुक्त सूजन, कभी रोगकी वृद्धि, कभी हीनता, धमनी और अंगुलियोंकी संधिका संकोच, अंगोंका जकडना,

अत्यंत शूल, नसोंका संकुचित होना, स्तम्भ, शीतसे अत्यन्त द्वेष, यह लक्षण होतेहैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

रक्ताधिक वातरक्त०।

श्वयथुर्भृशरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ।
स्निग्धरूक्षैःशमंनैतिकण्डूक्लेदान्वितोऽसृजि ॥ २४ ॥

रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यंत पीडा और तोद होताहै तथा वह सूजन ताम्रवर्णकी और चिमचिमाहटयुक्त होतीहै। स्निग्ध अथवा रूक्ष किसी प्रकारकी क्रिया करनेसे भी पीडाकी शांति न हो सूजनमें खुजली और पसीने अधिक आवें यह लक्षण होतेहैं ॥ २४ ॥

पित्ताधिक वातरक्त०।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृष्णामदोभ्रमः ।
रागःपाकश्चभेदश्चशोकेचोक्तानिपैत्तिके ॥ २५ ॥

पित्ताधिक वातरक्तमें विदाह, वेदना, मूर्च्छा, पसीना, प्यास, मद, भ्रम, लाली, पाक, भेदनकीसी पीडायुक्त सूजन यह लक्षण होतेहैं ॥ २५ ॥

कफाधिक, द्वंदज, सन्निपातज वातरक्त०।

स्तैमित्यंगौरवंस्नेहःसुप्तिर्मन्दाचरुक् कफे ।
हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वंत्रिदोपजम् ॥ २६ ॥

कफाधिक वातरक्तमें-स्तैमित्य, भारीपन, चिकनाहट, शून्यता और मंद पीडा यह लक्षण होतेहैं। दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज और तीन दोषोंके हेतु लक्षण हों तो त्रिदोपज वातरक्त जानना ॥ २६ ॥

वातरक्तकी साध्याऽसाध्यता।

एकदोपानुगंसाध्यंनवंयाप्यंद्विदोपजम् ।
त्रिदोपजमसाध्यंस्यायस्यचस्युरुपद्रवाः ॥ २७ ॥

एकदोषानुयायी वातरक्त यदि नवीन हो तो साध्य होताहै। द्विदोषज वातरक्त याप्य होताहै और त्रिदोषज असाध्य होताहै, तथा अत्यन्त उपद्रवोंसे युक्त वातरक्तभी असाध्य जानना ॥ २७ ॥

अस्वप्नारोचकाश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः। मूर्च्छाचमदरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ॥२८॥ हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः।

अंगुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ २९ ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यं-मोहेनैकेनवापियत् । संप्रस्राविविवर्णश्वस्तब्धमर्बुदकृच्चयत्॥३०॥

निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मत्तता, प्यास, ज्वर, मोह, कम्प, हिचकी, पंगुता, विसर्प, पाक, तोद, भ्रम, क्लम, अंगुलियोंका टेढापन, फोडे, दाह, मर्मोंका रुकना अथवा मर्मोंमें पीडा, अर्बुद इन सब उपद्रवों-युक्त वातरक्त त्याज्य अर्थात् असाध्य समझकर त्याग देने योग्य होताहै । अथवा वातरक्तमें अन्य उपद्रव न होनेपर भी वेहोशी होय तो असाध्य जानना । जिस वातरक्तमें स्राव, विवर्णता, अंगोंकी स्तब्धता, शरीरमें आर्बुदोंकी उत्पत्ति हो उसको भी असाध्य जानना ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

वर्जयेच्चैवसङ्कोचकरमिन्द्रियतापनम् ।
अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥ ३१ ॥

तथा जिसमें संकोच, हाथ और इन्द्रियोंमें निरन्तर ताप रहे वह भी असाध्य होताहै । यदि उपरोक्त उपद्रव वातरक्तमें संपूर्ण रूपसे न हो तो वह वातरक्त याप्य, साध्य होताहै । और यदि वातरक्तमें उपद्रव बिल्कुल हो ही नहीं तो उसको साध्य जानना ॥ ३१ ॥

रक्तमार्गंनिहंत्याशुशाखासन्धिषुमारुतः ।
निवेश्यान्योन्यमावाध्यवेदनाभिर्हरेदसून् ॥ ३२ ॥

जब वायु वातरक्तमें शाखा संधियोंमें पहुंचकर रक्तके मार्गको हनन कर देतीहै अर्थात् हाथपावोंकी संधियोंमें पहुंचकर रक्तकी गतिको रोक देतीहै उस समय वायु और रक्त परस्पर वेदनाको उत्पन्न कर वातरोगीके प्राणोंको नष्ट कर देताहै ॥ ३२ ॥

वातरक्तके चिकित्साका क्रम ।

तत्रमुञ्चेदसृक्शृङ्गजलौकःसूच्यलावुभिः ।
प्रच्छनैर्वाशिराभिर्वायथादोषंयथाबलम् ॥ ३३ ॥

वातरक्तमें यथादोष, सिंगी, जोंक, सूची, तुंबी, पछना अथवा फस्त द्वारा जिस समय जैसा उचित हो रक्त निकालना चाहिये ॥ ३३ ॥

रुग्दाहशूलतोदार्त्तादसृक्स्राव्यंजलौकसा । शृङ्गैस्तुवैहरेत्सुप्ति-कण्डूचिमिचिमायनात् । देशाद्देशंव्रजरस्राव्यंशिराभिप्रच्छने-नवा ॥ ३४ ॥

यदि वातरक्तमें वेदना, दाह, शूल और तोद हो तो जोंकके द्वारा रक्त निकालना चाहिये। यदि वातरक्तमें सुप्ति, खाज़ और चिमचिमाहटयुक्त पीडा हो तो सिंगी द्वारा रक्त निकालना चाहिये। यदि वातरक्त एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गमन करे तो शिरावेधन और पछने द्वारा रक्त निकालना चाहिये ॥ ३४ ॥

रक्तस्रावके अयोग्य वातरक्त।

अङ्गग्लानौनतुस्राव्यंरूक्षेवातोत्तरश्चयत् ॥ ३५ ॥ गम्भीरंश्व-यथुंस्तम्भंकम्पंस्नायुशिरामयान् । ग्लानिश्चापिससङ्कोचांकु-र्य्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ ३६ ॥ खाञ्ज्यादीन्वातरोगांश्चमृत्युंवास्य-पसेचनात् । कुर्य्यात्तस्मात्प्रमाणेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥३७॥

यदि वातरक्तमें अंगग्लानि हो और रूक्ष मनुष्यके शरीरमें वातोल्बण वातरक्त हो तो रक्तका निकालना उचित नहीं क्योंकि ऐसे वातरक्तमें रक्त निकालनेसे रक्तक्षयके कारण वायु गम्भीर सूजन, स्तम्भ, कम्प, स्नायुरोग, ग्लानि और संकोच तथा खंज आदि वातजनित रोगोंको उत्पन्न करताहै। बल्कि ऐसे रोगीका अधिक रक्त निकलजानेसे मृत्यु ही होजातीहै। इसलिये पहिले वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर प्रमाणसे रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वामृदुभिःशस्तम-सकृद्वस्तिकर्मच ॥ ३८ ॥ सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदा-हिनः । वातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषन्तुनिबोधमे ॥ ३९ ॥

वातरक्तके रोगीको स्निग्ध करके फिर स्नेहयुक्त अथवा रूक्ष मृदु विरेचन करावे। और वारंवार वस्तिकर्मका प्रयोग करता रहे। तथा स्नेहपान, सेक, लेप और अविदाही अन्नका प्रयोग करना चाहिये। अब इन सब कर्मोंको विशेषरूपसे वर्णन करतेहैं सो सुनो ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वातरक्तकी विशेष चिकित्सा।

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः ।
विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ ४० ॥

बाह्य (उत्तान) वातरक्तमें तैलाभ्यंग, परिषेक और उपनाह स्वेदका प्रयोग करना चाहिये। गंभीर वातरक्तमें विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान कराना हितकारक है ॥ ४० ॥

वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः ।
सुखोष्णैरुपनाहैश्चवातोत्तरमुपाचरेत् ॥ ४१ ॥

वातोल्बण वातरक्तमें घृत, तेल, वसा और मज्जा, पीने तथा अभ्यंग और वस्तिकर्ममें प्रयुक्त करने चाहिये । तथा सुखोष्ण उपनाह स्वेदोंका प्रयोग करना वाताधिक वातरक्तको शान्त करताहै ॥ ४१ ॥

रक्तपित्तोत्तर वातरक्तकी चि० ।

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैःसेकैःसवस्तिभिः ।
शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोत्तरंजयेत् ॥ ४२ ॥

रक्तपित्ताधिक वातरक्तमें विरेचन, घृत दूधका पान, सेचन तथा वस्तिकर्म करना चाहिये । तथा शीतल और दाहनाशक द्रव्यों द्वारा रोगको जीते ॥ ४२ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चि० ।

वमनंमृदुनाऽत्यर्थंस्नेहसेकादिलङ्घनम् ।
कोष्णलेपाश्चशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥ ४३ ॥

कफाधिक वातरक्तमें अत्यंत मृदु वमन, स्नेह, सेक और लंघन तथा किंचित् उष्ण लेपोंका करना हितकारक होताहै ॥ ४३ ॥

कफवातोत्तरेशीतैःप्रलिप्तेवातशोणिते । विदाहशोथरुक्कण्डूविवृद्धिः स्तम्भनाद्भवेत् ॥ ४४ ॥ वातपित्तोत्तरेदाहः क्लेदोऽवदारणंभवेत् । उष्णैस्तस्माद्भिषग्दोषबलंबुद्ध्वाचरेत्क्रियाम् ॥ ४५ ॥

कफवातोत्तर वातरक्तमें शीतल द्रव्योंका लेप करनेसे स्तम्भन होकर सूजन, विदाह, पीडा और खुजलीकी वृद्धि होतीहै । वातपित्तोत्तर वातरक्तमें शीतल लेपके करनेसे दाह, क्लेद और अवदारणकीसी पीडा होतीहै । इसलिये इनमें वैद्य दोष बल विचार कर उष्ण लेपोंका ही प्रयोग करे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वातरक्तमें त्याज्य वस्तु ।

दिवास्वप्नंससन्तापंव्यायामंमैथुनंतथा ।
कटूष्णंगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लञ्चवर्जयेत् ॥ ४६ ॥

वातरक्तके रोगीको दिनमें सोना, संताप, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यंदी, नमकीन और अम्ल पदार्थोंका त्याग करदेना चाहिये ॥ ४६ ॥

वातरक्तमें पथ्य।

पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिषष्टिकाः। भोजनार्थेरसार्थेवाविष्किरप्रतुदाहिताः ॥ ४७ ॥ आढक्यश्चणकामुद्गामसूराःसमुकुष्ठकाः। यूषार्थेबहुसर्पिष्काःप्रशस्तावातशोणिते ॥ ४८ ॥ सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाचीशतावरीः। वास्तुकोपोदिकाशाकंशाकंसौवर्चलंतथा ॥ ४९ ॥ घृतमांसरसेभृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत्। व्यञ्जनार्थं तथागव्यंमाहिषाजंपयोहितम् ॥ ५० ॥

वातरक्तमें-भोजनके लिये पुराने यव, गेहूं, नीवार, शालि और षष्टिक चावल देना चाहिये। रसके लिये विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हितकारी है तथा यूषके लिये अरहर, चना, मूंग, मसूर और मोंठका, यूष बनाकर बहुत सा घृत मिला सेवन करावे। शाकके लिये चौपतिया, शाक, बेतकी कोंपल, मकोह, शतावर, बथुआ, पोई, हुलहुल इनका साग देना चाहिये। परन्तु यह संपूर्ण शाक अथवा मांसरस, बहुतसे घीमे भूनकर यथासात्म्य देना चाहिये। पीनेके लिये गौ अथवा भैंसका दूध देना चाहिये ॥ ४७-५० ॥

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तंवातरक्तचिकित्सितम्।
एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥ ५१ ॥

इस प्रकार संक्षेपसे वातरक्तकी चिकित्साका वर्णन किया गया अब उसीको विस्तारपूर्वक सुनो ॥ ५१ ॥

श्रावण्यादिघृत।

श्रावणीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकैःसमैः।
सिद्धंसमधुकैःसर्पिःसक्षीरंवातरक्तनुत् ॥ ५२ ॥

गोरखमुण्डी, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक और मुलैठीको समभाग लेकर कल्क बनावे इस कल्कसे चारगुना घृत और घृतसे चारगुना दूध लेवे, सबको मिलाकर पकावे, घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छानलेवे। इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त रोग दूर होताहै ॥ ५२ ॥

बलादिघृत।

बलामतिबलांमेदामात्मगुप्तांशतावरीम्। काकोलींक्षीरकाकोलीं राम्नामृद्धिश्चपेषयेत् ॥ ५३ ॥ घृतंचतुर्गुणक्षीरंतैःसिद्धंवातरक्तनुत्। हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलाज्वरनाशनम् ॥ ५४ ॥

बला, अतिवला, मेदा, कौंचके वीज, शतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना, और ऋद्धिका कल्क कर उससे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहने पर उतारकर छानले । इस घृतके सेवन करनेसे वातरक्त, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और ज्वर नष्ट होतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

भूम्यामलकीघृत ।

तामलक्याद्धिकाकोल्याःपिप्पलीत्रायमाणयोः ।
कशेरुकाकषायेणकल्कैरेभिःपचेद्घृतम् ॥ ५५ ॥

भूमिआमलकी, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरूके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत वातरक्तको शान्त करता है ॥ ५५ ॥

पारुषकघृत ।

दत्त्वापरूषकद्राक्षाकाश्मर्य्येक्षुरसान्समान् । पृथग्विदार्य्याश्चरसं तथाक्षीरंचतुर्गुणम् ॥ ५६ ॥ एतत्प्रयोगिकंसर्पिःपारूषकमितिस्मृतम् । वातरक्तेक्षतेक्षीणेवीसर्पेपैत्तिकेज्वरे ॥ ५७ ॥

फालसेका रस, द्राक्षाका रस, कुम्भेरके फलोंका रस और ईखका रस एक एक सेर । विदारीकंदका रस ४ सेर, दूध ४ सेर, घृत एक सेर इन सबको मिलाकर पकावे घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे इस पारूषक घृतके सेवनसे वातरक्त, क्षत, क्षीण, वीसर्प और पित्तज्वर दूर होतेहैं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

द्विपञ्चमूलीघृत।

द्वेपञ्चमूलेवर्षाभूमेरण्डंसपुनर्नवम् । मुद्गपर्णींमहामेदांमाषपर्णींशतावरीम् ॥ ५८ ॥ शङ्खपुष्पीमवाक्पुष्पींरास्नामतिवलांवलाम् । पृथग्द्विपलिकंकृत्वाजलद्रोणेविपाचयेत् ॥ ५९ ॥ पादशेषेसमंक्षीरं धात्रीक्षुच्छागलात्रसान् । घृताढकेनसंयोज्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत् ६० कल्कानावाप्यमेदेद्वेकाश्मर्य्यफलमुत्पलम् । त्वक्क्षीरींपिप्पलींद्राक्षांपद्मबीजंपुनर्नवाम् ॥ ६१ ॥ नागरंक्षीरकाकोलींसमङ्गांबृहतीद्वयम् । वीरांशृङ्गाटकंभव्यमुरुबालंनिकोचकम् ॥ ६२ ॥ वदराक्षोटवातामसुञ्जातामिषुकांस्तथा । एतैर्घृताढकेसिद्धेक्षौद्रंशीतेप्रदापयेत् ॥ ६३ ॥ सम्यक्सिद्धञ्चविज्ञायसुगुप्तंसन्निधापयेत् । कृतरक्षाविधिंतच्चप्राशयेदक्षसम्मितम् ॥ ६४ ॥ पाण्डुरोगंज्वरंहिक्कांस्वर-

भेदंभगन्दरम् । पार्श्वशूलंक्षयंकासंप्लीहानंवातशोणितम् ॥ ६५ ॥ क्षतशोषमपस्मारमश्मरींशर्करास्तथा । सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्चमूत्रसङ्गञ्चनाशयेत् ॥ ६६ ॥ बलवर्णकरंधन्यंवलीपलितनाशनम् । जीवनीयमिदंसर्पिर्वृष्यंवन्ध्यासुतप्रदम् । अग्निवेशायगुरुणाकृष्णात्रेयेणभाषितम् ॥ ६७ ॥

लघु पंचमूल, बृहत्पंचमूल, श्वेत पुनर्नवा, एरण्डकी जड,लाल पुनर्नवा,मुद्गपर्णी,महामेदा, मापपर्णी, शतावर, शंखपुष्पी, सौंफ, रास्ना, अतिवला और वलाको दो दो पल लेकर कूटले फिर एक द्रोण जलमें पकावे चौथाई भाग शेष रहने पर उतारकर छानले । फिर इस क्वाथमें दूध, आँवलेका रस, ईखका रस, बकरेके मांसका रस यह सब एक एक आढक, घृत १ आढक और नीचे लिखेहुए कल्क द्रव्य १ प्रस्थ, जैसे मेदा, महामेदा, कुंभेरके फल, नील कमल, वंशलोचन, पीपल, द्राक्षा, कमलगट्टा, पुनर्नवा, सोंठ,क्षीरकाकोली,वाराहक्रान्ता,बडी कटेली,छोटी कटेली,काकोली, सिंवाडे भव्यफल, उरुमाल (फांसके बीज), निचोक, बेर, अखरोट, बादाम, मुंजातक फल और अभिपुक फलका कल्क मिलाकर घृत सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर उतारकर छानलेवे फिर इस घृतमें घृतसे चौथाई भाग शहद मिलावे । फिर इसको किसी उत्तम पात्रमें विधिवत् ढककर रक्खे । इसमेंसे नित्य १ तोला घृत सेवन करनेसे पाण्डुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग,भगन्दर, पार्श्वशूल,क्षय,खांसी, प्लीहा, वातरक्त, क्षत, शोष,अपस्मार पथरी, शर्करा, सर्वांगवात, एकांगवात, मूत्राघात रोग नष्ट होतेहैं तथा बल और वर्णकी वृद्धि करनेवाला वली और पलितको नष्ट करनेवाला तथा धन्य जीवनदायक, वीर्यवर्द्धक और वंध्या स्त्रीको संतान देनेवाला यह द्विपंचमूलादिघृत अग्निवेशके प्रति गुरुदेव कृष्णात्रेयजीने कहाहै ॥ ९८–६७ ॥

द्राक्षाघृत ।

द्राक्षामधुकतोयाभ्यांसिद्धंवासासितोपलम् ॥ ६८ ॥

द्राक्षा और मुलैठीके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध कियाहुआ घृत मिसरी मिला सेवन करनेसे वातरक्त दूर होताहै ॥ ६८ ॥

गुडूचीघृत ।

पिबेद्घृतंतथाक्षीरंगुडूचीस्वरसेश्रृतम् ॥ ६९ ॥

गिलोयके क्वाथ और कल्कसे सिद्ध किया हुआ घृत अथवा दूध मिसरी मिला सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट होताहै ॥ ६९ ॥

जीवकादिस्नेह ।

जीवकर्षभकौमेदामृष्यप्रोक्तांशतावरीम् । मधुकंमधुपर्णीश्चकाकोलीद्वयमेवच ॥ ७० ॥ मुद्गमाषाख्यपर्णिन्यौदशमूलंपुनर्नवाम् । बलामृताविदार्य्यश्वसाश्वगन्धाश्मभेदकाः ॥ ७१ ॥ एषांकषायकल्काभ्यांसर्पिस्तैलश्चसाधयेत् । लाभतश्चवसामज्जाधन्वप्रतुदवैष्किरान् ॥ ७२ ॥ चतुर्गुणेनपयसातत्सिद्धंवातशोणितम् । सर्वदेहाश्रितंहन्तिव्याधीन्घोरांश्चवातजान् ॥ ७३ ॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, कौंचके बीज, शतावर, मुलैठी, कुंभेरके फल, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, मूषकपर्णी, दशमूलकी दश औषधियें, पुनर्नवा,बला,गिलोय, विदारीकन्द, असगंध और पाषाणभेदके क्वाथ और कल्क द्वारा घृतको सिद्ध करे। इस घृतमें पकते समय घृतसे चारगुना दूध और यदि मिल सके तो मतुद और विष्किर पक्षियोंकी चर्बी और मज्जा भी घृतके समान मिलावे। पकते २ जब संपूर्ण जल,दूध आदि द्रव्य जलकर स्नेहमात्र शेष रहे तो उतारकर छानले। इस स्नेहके सेवन करनेसे संपूर्ण प्रकारकी सर्व देहगत वातव्याधियें और वातरक्त दूर होतेहैं॥७०–७३॥

स्थिरादिस्नेह मंथ ।

स्थिराश्वदंष्ट्राबृहतीशारिवासशतावरी। काश्मर्य्याण्यात्मगुप्ताचवृश्चीरंद्वेवलेतथा ॥ ७४ ॥ एषां काथेचतुःक्षीरेपृथक्तैलंपृथग्घृतम् । मेदाशतावरीयष्टिजीवन्तीजीवकर्षभैः ॥ ७५ ॥ पक्कामात्राततः क्षीरंत्रिगुणाद्धर्द्धशर्करा।खजेनमथितापेयावातरक्तेत्रिदोषजे ॥७६॥

शालपर्णी, गोखरू, बडी कटेली, शारिवा, शतावर, कुंभेरके फल, कौंचके बीज सफेद पुनर्नवा, बला और अतिबलाका क्वाथ ८ सेर, दूध ८ सेर तथा मेदा, शतावर मुलैठी, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक इनका कल्क आधसेर, घृत अथवा तेल १ से दोनों मिलाकर या सबको मिलाकर सिद्ध करे। सिद्ध होजाने पर यह घृत अथव तेल छानकर किसी उत्तम पात्रमें रक्खे। इस स्नेहमें तीनगुना दूध, आधा भाग खांड मिलाकर मथनीसे खूब मथडाले। इसके सेवनसे तीनों दोषोंका वातरक्त दूर होताहै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वातरक्तनाशक दूध ।

तैलंपयःशर्कराश्चपाययेद्वासुमूर्च्छिताम् ।
सर्पिस्तैलसिताक्षौद्रैर्मिश्रंवापिपिबेत्पयः ॥ ७७ ॥

सर्वदोषज वातरक्तमें तेल, दूध, मिसरीको मथकर पीवे अथवा घी, तेल, मिसरी, शहद और दूध मिलाकर मंथनकर पीवे तो सर्वदोषज वातरक्त शांत होताहै ॥ ७७ ॥

अंशुमत्याश्रृतःप्रस्थःपयसःससितोपलः ।
पानेप्रशस्यतेतद्वत्पिप्पलीनागरैःश्रृतः ॥ ७८ ॥

शालपर्णीसे सिद्ध किये दूधको मिसरी मिलाकर पीवे । अथवा पीपल और सोंठसे सिद्ध कियेहुए दूधको मिसरी मिला पीवे तो वातरक्त शांत होताहै ॥ ७८ ॥

वलाशतावरीरास्नादशमूलैःसपीलुभिः ।
श्यामैरण्डस्थिराभिश्चवातार्त्तिघ्नंश्रृतंपयः ॥ ७९ ॥

वला, शतावर, रास्ना, दशमूल, पीलूफल, शारिवाकी जड, एरण्डकी जड और शालपर्णीसे सिद्ध किया दूध वातरक्तकी पीडाको शांत करताहै ॥ ७९ ॥

पित्ताधिक वातरक्तकी चिकित्सा ।

धारोष्णंमूत्रयुक्तंवाक्षीरंदोषानुलोमनम् ।
पिवेद्वासत्रिवृच्चूर्णंपित्तरक्तावृतानिलः ॥ ८० ॥

धारोष्ण दूधको गोमूत्र मिलाकर पीवे तो वातरक्तमें दोषोंका अनुलोमन होताहै । यदि पित्तरक्तसे आवृत वायु हो तो धारोष्ण दूधके साथ निशोथका चूर्ण पीना चाहिये ॥ ८० ॥

क्षीरेणैरण्डतैलंवाप्रयोगेणपिवेन्नरः । वहुदोषोविरेकार्थंजीर्णेक्षीरौदनाशनः ॥ ८१ ॥ कषायमभयानांवाघृतभृष्टंपिवेन्नरः । क्षीरानुपानंत्रिवृताचूर्णंद्राक्षारसेनवा ॥ ८२ ॥

वहुदोषयुक्त वातरक्तमें एरण्डतैल दूधमें मिलाकर पीना चाहिये । इससे विरेचन होनेके अनंतर क्षुधा लगने पर दूध भातका सेवन करे । अथवा हरडके काथको घीमें छोंककर पीवे और दूधका अनुपान करे । अथवा निशोथके चूर्णको द्राक्षाके रसके साथ पीवे तो विरेचन द्वारा दोषकी शांति होतीहै ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

काश्मर्य्यत्रिवृतांद्राक्षांचूर्णंद्राक्षारसेनवा । काश्मर्यंत्रिवृतांद्राक्षां त्रिफलांसपरूपकाम् ॥ ८३ ॥ श्रृतांपिवेद्विरेकायलवणक्षौद्रसंयुताम् । त्रिफलायाःकषायंवापिवेत्क्षौद्रेणसंयुतम् ॥ ८४ ॥

कुम्भेरके फल, निशोथ और द्राक्षाके चूर्णको द्राक्षाके रससे पीवे । अथवा कुंभेरके फल, निशोथ, द्राक्षा, त्रिफला और फालसेका काथ सेंधानमक और शहद मिलाकर पीवे या त्रिफलाका काथ शहद मिला पीवे तो पित्तप्रधान वातरक्त अथवा पित्तरक्तावृत वात शांत होताहै ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

कफाधिक वातरक्तकी चि० ।

धात्रीहरिद्रमुस्तानांकषायंवाकफाधिके ॥ ८५ ॥

आँवले, हल्दी और नागरमोथेका क्वाथ कफाधिक वातरक्तको शांत करताहै॥८५॥

मलावृत वातरक्तकी चि० ।

योगैश्चकल्पविहितैरसकृत्तंविरेचयेत् । मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वावा-तंमलावृतम् । निर्हरेद्वामलंतस्यसघृतैः क्षीरवस्तिभिः । नहिवस्ति-समंकिञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ ८६ ॥

मलावृत वातरक्तमें कल्पस्थानमें कहे योगानुसार वारवार मृदुविरेचन तथा स्नेह-योग द्वारा विरेचन कराकर मल निकाले अथवा घृतयुक्त क्षीरवस्ति द्वारा मलको निकाले । वातरक्तमें वस्तिकर्मके समान और कोई चिकित्सा नहीं है ॥ ८६ ॥

वस्तिवंक्षणपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरार्त्तिषु ।
उदावर्त्तेचशस्यन्तेनिरूहाःसानुवासनाः ॥ ८७ ॥

वस्ति, वंक्षण, पार्श्व, ऊरु, पर्व, अस्थि और उदरमें पीडा होय अथवा उदावर्त होय तो प्रथम निरूहणवस्ति करके फिर अनुवासनका प्रयोग करे ॥ ८७ ॥

नस्याभ्यञ्जनसेकेचदाहशूलोपशान्तये ।
दद्यात्तैलानिचेमानिवस्तिकर्मणिबुद्धिमान् ॥ ८८ ॥

बुद्धिमान् वैद्यको नीचे लिखे तेलोंको वातरक्तके दाह तथा शूलकी शान्तिके लिये वस्तिकर्ममें नस्यमें अभ्यंगमें और सेचनमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ८८ ॥

मधुयष्टी तैल ।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तुकषायेपादशेषिते ॥ ८९ ॥ तैलाढकंसमक्षी-रंपचेत्कल्कैःपलोन्मितैः । शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः॥९०॥ स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः । काकोलीक्षीरकाकोली-तामलक्यृद्धिपद्मकैः । जीवकर्षभजीवन्तीत्वक्पत्रनखवालकैः॥९१॥ प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठासारिवैन्द्रीवितुन्नकैः । चतुःप्रयोगात्तद्धन्तितैलं मारुतशोणितम् ॥ ९२ ॥ सोपद्रवंसाङ्गशूलंसर्वगात्रानुगंतथा । वातासृक्पित्तदाहार्त्तिज्वरघ्नंबलवर्द्धनम् ॥ ९३ ॥

५ सेर मुलेठीको चालीस सेर जलमें पकावे दश सेर जल शेष रहनेपर उतारकर छानले इस क्वाथमें तेल ४ सेर, दूध ४ सेर और सौंफ, शतावर, मूर्वा पयस्या, अगरु

चन्दन, शालपर्णी, हंसपादी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भूमिआँवला, ऋद्धि, पद्माख, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, पत्रज, नख, नेत्रवाला, पंडचारेकी छाल, मंजीठ, शारिवा, इन्द्रायणकी जड और धनियांको एक एक पल लेकर कल्क बनावे और उपरोक्त तैलादिकोंमें मिला पकावे। तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तैलके नस्य, अभ्यंग, वस्ति और पानमें उपयोग किये जानेसे संपूर्ण देहमें व्याप्त उपद्रवयुक्त वातरक्त, अंगशूल पित्तजनित दाह, पीडा, ज्वर यह सब दूर होतेहैं और बलकी वृद्धि होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

सुकुमार तैल।

मधुकस्यशतंद्राक्षाखर्जूराणिपरूषकम्। मधुकौदनपाक्यौचप्रस्थंमुञ्जातकस्यच ॥ ९४ ॥ काश्मर्य्याढकमित्येतच्चतुर्द्रोणेपचेदपाम्। शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलाढकंपचेत् ॥ ९५ ॥ तथामलककाश्मर्य्याविदारीक्षुरसैःसमैः। चतुर्गुणेनपयसाकल्कंदत्त्वापलोन्मितम् ॥ ॥ ९६ ॥ कदम्बामलकाक्षोटपद्मवीजकशेरुकम्। शृङ्गाटकंशृङ्गवेरंलवणंपिप्पलींसिताम् ॥ ९७ ॥ जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेन संसृजेत्। नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोजयेत् ॥ ९८ ॥ वातव्याधिषुसर्वेषुमन्यास्तम्भेहनुग्रहे। सर्वाङ्गैकाङ्गवातेचक्षतक्षीणे क्षतज्वरे ॥ ९९ ॥ सुकुमारकमित्येतद्वातास्रामयनाशनम्। स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥१०० ॥

मुलैठी १०० पल, द्राक्षा १प्रस्थ, खजूर १प्रस्थ, फालसे १ प्रस्थ, महुएके फूल १प्रस्थ, बला १ प्रस्थ, मुंजातक १ प्रस्थ, कुंभेरके फल १ आढक इन सबको ४ द्रोण जलमें पकावे। आठवां भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस छनेहुए क्वाथमें १आढक तेल मिलावे। तथा भूमि आँवलेका रस कुंभेरके फलोंका क्वाथ विदारीकन्दका रस और ईखका रस यह सब एक एक आढक, दूध ४ आढक तथा कदंबकी छाल, आँवले, अखरोट, कमलगट्टे, कसेरू, सिंघाडे, सोंठ, सेंधानमक, पीपल, मिसरी और जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियें एक एक पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त, तेल, क्वाथ, रस और दूध सब मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलका नस्य, पान, अभ्यंग और वस्ति कर्ममें प्रयोग करनेसे सब प्रकारके वातरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, सर्वांगगत वातरोग, एकाङ्गगत वात रोग, क्षत, क्षीण, क्षतजनित ज्वर और संपूर्ण वातरक्तके विकारोंको नाश करता है तथा अवस्था-

स्थापक, वर्ण, बल, आरोग्यता और पुष्टिको बढानेवाला है इसको सुकुमार लेप कहते हैं ॥ ९४-१०० ॥

अमृतादितैल।

गुडूचींमधुकंहृस्वंपञ्चमूलंपुनर्नवाम् । रास्नामैरण्डमूलञ्चजीवनीयानिलाभतः ॥ १०१ ॥ पलानांशतकैर्भागैर्बलापञ्चशतंतथा । कोलबिल्वंयवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान् ॥ १०२ ॥ काश्मर्याणांसुशुष्काणांद्रोणंद्रोणशतेऽम्भसि । साधयज्जर्जरंधौतंचतुर्द्रोणञ्चशेषयेत् ॥ १०३ ॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनदत्त्वापञ्चगुणंपयः । पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चैवंचन्दनोशीरकेशरान् ॥ १०४ ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानितगरंमधुयष्टिकाम् । मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चैवतत्सिद्धंसार्वयौगिकम् ॥ १०५ ॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेभारार्त्तेक्षीणरेतसि । वेपनाक्षिप्तभग्नानांसर्वाङ्गैकांगरोगिणाम् ॥ १०६ ॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादं खञ्जपंगुताम् । हन्यात्पुंसवनंचैतत्तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥ १०७ ॥

गिलोय, मुलैठी, लघु पंचमूल, पुनर्नवा, एरण्डकी जड, रास्ना और जीवनीयगणकी जो औषधियें मिलसकें यह प्रत्येक औषधी सौ सौ पल लेवे और बला ५०० पल लेवे तथा बेर, बेलकी गिरी, यव, उडद, कुलथी यह प्रत्येक एक एक आढक लेवे कुंभेरके सूखे फल १ द्रोण लेवे। इन सबको स्वच्छ करकरके १०० द्रोण जलमें पकावे। ४ द्रोण जल शेष रहनेपर उतारकर क्वाथको छानलेवे। फिर इसमें तेल १ द्रोण, दूध ५ द्रोण और लाल चन्दन, खस, नागकेशर, तेजपत्र, छोटी इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलैठी इन सबको तीन तीन पल और मंजीठ आठ पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त दूध, तैल, क्वाथ यह सब मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस सार्वयौगिक तैलके चतुर्विध प्रयोग करनेसे वातरक्त, क्षत, क्षीण बोझेके उठानेसे उत्पन्न हुई पीडा, शुक्रकी क्षीणता, आक्षेप, कंप, चोट आदि लगनेसे उत्पन्न हुई पीडा, सर्वांग वात, एकांग वात, योनिदोष, अपस्मार, खंजता और पंगुपन इन सबको नाश करताहै तथा यह तेल वंध्यादोष निवृत्तकर संतान पैदा करनेमें परमोत्तम मानागयाहै। इसको अमृततैल कहतेहैं ॥ १०१-१०७ ॥

महापद्म तैल।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः । पृथक्पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥ १०८ ॥ जलेशृतैःपचेत्तैलप्रस्थंसौवीरसम्मितम् ।

लोध्रकालीयकोशीरजीवकर्षभकैःसमैः ॥ १०९ ॥ मदयन्तीलतापत्रपद्मकेशरपद्मकैः । प्रपौण्डरीककाश्मर्य्यमांसीमेदाप्रियङ्गुभिः॥ ॥ ११० ॥ कुंकुमस्यपलार्द्धेनमञ्जिष्ठायाःपलेनच । महापद्ममिदंतैलंवातासृग्ज्वरनाशनम् ॥ १११ ॥

कमल, वेतस, मुलैठी, बेर, पद्माख, नीलकमल यह सब पांचपांच पल लेवे। सबको कूटकर अठगुने जलमें पकावे चौथाई भाग शेप रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस काथमें तेल १ प्रस्थ, सौवीरक (कांजी) १ प्रस्थ तथा लोध, अगर, खस, जीवक, ऋषभक, मालतीके पत्र, माधवीके पत्र, कमलकी केशर, पद्मकाष्ठ, पंडरीकेका छिलका, कुंभेरके फल, जटामांसी, मेदा और प्रियंगु इन सबको एक एक कर्ष लेवे केशर आधा पल और मंजीठ एक पल, लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और उपरोक्त क्वाथ, तैलादि मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस महापद्मनामक तैलके प्रयोगसे वातरक्त और ज्वर दूर होताहै ॥ १०८–१११ ॥

महाखुड्डाक तैल।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम् । स्यात्पिष्टैः सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः ॥११२॥ खुड्डाकपद्मकमिदंतैलंवातास्रदाहनुत् । आत्रेयेणाग्निवेशायभाषितंहितकाम्यया ॥ ११३ ॥

पद्माक, खस, मुलैठी और हल्दीका क्वाथ ४ सेर, तेल १ सेर और राल, मंजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, चंदन यह सब एकएक पल लेकर कल्क करे। इन सबको मिलाकर पकावे। तेलमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानले। इस खुड्डाकपद्म तैलके प्रयोगसे वातरक्त और दाह दूर होताहै। यह तैल जगत्के हित चाहनेवाले भगवान् आत्रेयजीने अग्निवेशसे कथन किया है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

मधुयष्टि तैल।

शतेनयष्टिमधुकात्साध्यंदशगुणंपयः ।
तस्मिंस्तैलेचतुर्द्रोणेमधुकरस्यपलेनतु ।
सिद्धंमधुककाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥ ११४ ॥

मुलैठी १०० पल लेकर ४ द्रोण जलमें पकावे। आठवां भाग शेप रहनेपर उतारकर छान लेवे। इसमें २ प्रस्थ तेल और २० प्रस्थ दूध मिलावे तथा मधुरगणके संपूर्ण द्रव्योंको एक एक पल लेकर कल्क बनावे। फिर इसको तैलपाकविधिसे

पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । अथवा मुलैठीके क्वाथ और कुंभेरके क्वाथसे इसी प्रकार तैलको सिद्धकरे । यह दोनों प्रकारके तेल वातरक्तको दूर करतेहैं ॥ ११४ ॥

शतपाकमधुपर्णी तैल ।

मधुपर्ण्याःपलंपिष्ट्वातेलप्रस्थंचतुर्गुणे । क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतैः ॥११५॥ सिद्धंदेयंत्रिदोषेस्याद्वातास्रश्वासकासनुत् । हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥ ११६ ॥

मधुपर्णी (कुंभेरके फल या गिलोय) १ पल, लेकर पीस लेवे । तेल १ प्रस्थ और दूध४प्रस्थ मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तेलमें फिर १ पल मधुपर्णीका कल्क और ४ प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इसीप्रकार १०० वार एक एक पल मधुपर्णीके कल्कसे पकाता रहे फिर इस तेलको छानकर प्रयोग करे तो तीनों दोषोंका वातरक्त, श्वास, खाँसी, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह नष्ट होतेहैं ॥ ११५॥ ११६ ॥

सहस्रपाकी तैल ।

बलाकषायकल्काभ्यांतैलंक्षीरसमंतथा । सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत् ॥ ११७ ॥ रसायनंश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांप्रसादनम्। जीवनंबृंहणंस्वर्य्यंशुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ११८ ॥

बलाका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, बलाका कल्क ४ तोला और तेल १ सेर (८० तोला) इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे । इसी प्रकार १०० वार या सहस्रवार बला (खरेटी) से पकाया हुआ तेल वातव्याधि और वातरक्तको नष्ट करताहै तथा यह तेल श्रेष्ठ रसायन इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला जीवनदायक पुष्टिकारक और शुक्रविकारनाशक है ॥ ११७॥ ११८ ॥

अन्य तैल ।

गुडूचीरसदुग्धाभ्यांतैलंद्राक्षारसेनवा ।
सिद्धंमधुककाश्मर्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥ ११९ ॥

गिलोयके क्वाथ और दूधसे सिद्ध कियाहुआ तैल अथवा द्राक्षाके रस और दूधसे सिद्धकिया तेल अथवा मुलेठी और कुंभेरके रससे सिद्ध किया तैल वातरक्तको दूर करताहै ॥ ११९ ॥

१ मुलैठी बना भी ठीक है.

आरनाल तैल ।

आरनालाढकेतैलंपादंसर्जरसंघृतम् ।
प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्त्तिनुत्परम् ॥ १२० ॥

कांजी १ आढक, तेल १ प्रस्थ, राल १ कुडव इन सबको मिलाकर एकत्र पकावे । इस तैलको अधिकांश जलमें मथकर शरीरपर मालिश करनेसे वातरक्तका ज्वर, दाह और पीडा शान्त होतीहै ॥ १२० ॥

पिण्ड तैल ।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्ठंससर्जरसशारिवम् ।
पिण्डतैलंतदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ १२१ ॥

मोम, मंजीठ, राल, शारिवा इन सबके कल्कसे सिद्ध कियाहुआ तेल मालिश करनेसे वातरक्तकी पीडा दूर होतीहै ॥ १२१ ॥

पित्ताधिक वातरक्तके यत्न ।

दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् ।
परिषेकोऽनिलप्रायेतद्वत्कोष्णेनसर्पिषा ॥ १२२ ॥

दशमूलसे सिद्धकिये हुए दूधका परिसेचन करना अथवा दशमूलसे सिद्ध घृतका परिसेचन वातरक्तकी पीडाको शीघ्र दूर करदेताहै । परन्तु वह सेचन सुहाते २ गरम द्रव्यसे करना चाहिये ॥ १२२ ॥

स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुर्भिःपरिषेचयेत् ।
स्तम्भाक्षेपकशूलार्त्तंकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः ॥ १२३ ॥

घृत, तैल, वसा, मज्जा इन चार स्नेहोंको मधुरगणके द्रव्योंसे सिद्धकर वातरक्त रोगीके शरीरपर गरम गरम सेचन करे तो शरीरका स्तम्भ, आक्षेप, शूल और पीडा दूर होतीहै यदि शीतलकर सेचन करे तो वातरक्तकी दाह दूर होतीहै ॥ १२३ ॥

तद्वद्गव्याविकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।
निःक्वाथैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्यवाभिषक् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार गौ, भेड, बकरीके दूधसे सिद्ध किया तैल, जीवनीयगणके क्वाथके साथ मिलाकर अथवा पंचमूलके क्वाथके साथ मिलाकर सेचनकरे तो वातरक्तकी पीडा शान्त होतीहै ॥ १२४ ॥

दाहनाशक यत्न ।

द्राक्षेक्षुरसमद्यादिदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकम् । सेकार्थेतण्डुलक्षौद्र-

शर्कराम्बुचशस्यते ॥ १२५ ॥ कुमुदोत्पलपद्माद्यैर्मणिहारैः सच-न्दनैः । शीततोयानुगैर्दाहेप्रोक्षणंस्पर्शनंहितम् ॥ १२६ ॥ चन्द्र-पादाम्बुसंसिक्तेक्षौमपद्मदलच्छदे । शयनेपुलिनस्पर्शेशीतमारुत-वीजिते ॥ १२७ ॥ चन्दनार्द्रस्तनकराःप्रियानार्य्यःप्रियंवदाः । स्पर्शशीताःसुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहंरुजंक्लमम् ॥ १२८ ॥

वातरक्तमें दाहशांतिके लिये द्राक्षाका रस, ईखका रस, मद्य, दही, दहीका जल, खट्टी कांजी, तण्डुलजल, शहद और खांड मिलाकर परिसेचन करना हितकारक है । तथा कुमुद, नील कमल, लाल कमल आदि शीतल फूलों और मणियोंका हार, चंदनका लेप, शीतल जलका स्पर्श और छींटे देना हितकारक है । एवं चन्द्रमाकी किरण और शीतल जलके फुंआरोंसे शीतल स्थान, रेशमी वस्त्र और कमलके फूलोंसे तथा पत्रोंसे बिछीहुई शीतल शय्या, नदीका किनारा, शीतल जलसे भिंगेहुए पंखेकी वायु, शीतल चंदनसे चर्चित शीतलांगी स्त्रियोंका स्पर्श, मधुर २ बातोंका सुनना, शीतल और सुखदायक वस्त्रोंका स्पर्श पित्तप्रधान वातरक्तकी दाह, पीडा और क्लान्तिको नष्ट करताहै ॥ १२५-१२८ ॥

लाली, दाह, शूल, नाशक अन्य यत्न ।

सरागेसरुजेदाहेरक्तंमुक्त्वाप्रलेपयेत् । मधुकाश्वत्थत्वङ्मांसीवीरोदु-म्बरशाद्वलैः ॥ १२९ ॥ जलजैर्यवचूर्णैर्वासयष्ट्याह्वपयोघृतैः । स-र्पिषाजीवनीयैर्वापिष्टैर्लेपोऽर्त्तिदाहनुत् ॥ १३० ॥

यदि वातरक्तमें लाली, पीडा और दाह हो तो पहिले रक्त निकालकर फिर मुलैठी पीपलवृक्षकी छाल, जटामांसी, काकोली, गूलरकी छाल और शाद्वल नामक घास अथवा कमलके फूल और यव या मुलैठी, दूध और घृत अथवा जीवनीयगणका कल्क और घृत इनमेंसे किसी एकको बारीक पीसकर लेप करे तो पीडा और दाह शान्त होतीहै ॥ १२९ ॥ १३० ॥

एलाःपियालंमधुकंबिसंमूलञ्चवेतसात् । आजेनपयसापिष्ट्वाप्रलेपोदाहरागनुत् ॥ १३१ ॥

इलायची, चिरौंजी, मुलैठी, कमलकी डण्डी, वेतसकी जड इन सबको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करे तो वातरक्तकी दाह और लाली दूर होतीहै ॥ १३१ ॥

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठादार्वीमधुकचन्दनैः । सितोपलैरकासक्तुमसूरो-

शीरपद्मकैः ॥ १३२ ॥ लेपोरुग्दाहवीसर्परुक्शोफविनिवारणः । पित्तरक्तोत्तरेस्त्वेतलेपान्वातोत्तरेश्रृणु ॥ १३३ ॥

पंडचारेकी छाल, मंजीठ, दारूहल्दी, मुलैठी, लाल चंदन, मिसरी, हरपतेकी जड, यवोंके सत्तू, मसूर, खस और पद्मकाष्ठ इन सबको वारीक पीसकर लेप करनेसे वातरक्तका शूल, दाह, विसर्प, लाली और सूजन नष्ट होतीहैं। यह जितने उपरोक्त लेप और सेचनादि है, पित्ताधिक वातरक्तमें करने चाहिये। वाताधिक वातरक्तकी चिकित्सा आगे सुनो ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

वाताधिक वातरक्तके यत्न ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःसक्षीरमुद्गपायसैः । तिलसर्षपपिण्डैर्वाप्युपनाहरुजापहाः ॥ १३४ ॥ औदकप्रसहानूपवेशवाराःसुसंस्कृताः । जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहने ॥ १३५ ॥ स्तम्भतोदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः । जीवनीयौषधैःस्नेहःसपयस्कोरसोऽपि वा ॥ १३६ ॥

वाताधिक वातरक्तमें वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए चिकनाईयुक्त खीर, खिचडी, मूंग, तिल, सरसों आदिके पिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो वायुकी पीडा शान्त होतीहै। अथवा जलज, प्रसह और आनूप जीवोंके मांसको हल्दी आदि मिलाकर तथा जीवनीयगणकी औषधियोंसे युक्तकर घृत, तेलकी चिकनाई मिला सिद्धकरे। फिर इस मांसपिण्डसे उपनाहस्वेद करे तो स्तम्भ, तोद, शूल, परिश्रम, सूजन और अंगोंका जकडना यह सब नष्ट होतेहैं। तथा जीवनीयगणसे सिद्ध कियाहुआ घी और दूध गर्म गर्म सेचन कियाजाय तो वह भी हितकारी है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीच्छागलंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाःपयसिनिर्वृताः ॥ १३७ ॥ क्षीरपिष्टमुमालेपमेरण्डस्यफलानि च । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थंशताह्वांवानिलेऽधिके ॥ १३८ ॥

घी, काले बांसेकी जड, जीवन्ती और बकरीके दूधको मिलाकर गर्म कर लेप करना अथवा तिलोंके कल्कको घीमें भूनकर और दूधमें घोटकर गर्म कर लेप करे या अलसी अथवा एरण्डके बीजोंको दूधमें पीस गर्मकर लेप करे अथवा सौंफको दूधमें पीस गर्म गर्म लेप करे तो वाताधिक वातरक्तकी शूल दूर होतीहै॥१३७॥१३८॥

समूलाग्रच्छदैरण्डक्वाथेद्विप्रस्थिकंपृथक । घृतंतैलंवसामज्जाचानपे

मृगपक्षिणाम् ॥ १३९ ॥ कल्कार्थेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजक-म् । हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताह्वाश्वहनच्छदान् ॥ १४० ॥ विल्व-मात्रंपृथक्पुष्पंकाकुभञ्चापिसाधयेत् । मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्या-च्छीतेऽवतारिते ॥ १४१ ॥ शूलेनैवार्दिताङ्गानांलेपःसन्धिगतेऽ-निले । वातरक्तेस्रुतेभग्नेखञ्जेकुब्जेचशस्यते ॥ १४२ ॥

एरण्डकी जड, कोंपल, पत्र इन सबका क्वाथ आठ प्रस्थ, घृत, तैल, अनूपसंचारी जीवोंका मेद और मज्जा एक एक प्रस्थ, गौका दूध ४ प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ तथा जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियें हल्दी, नीलकमल, कूठ, इलायची, सौंफ, कनेरके पत्ते और अर्जुन वृक्षकी छाल यह सब एक एक पल इन सबको मिलाकर स्नेह सिद्धकरे । फिर उतारकर इसमें आठ पल मोम मिलावे । इस स्नेहका लेपन और सेचन करनेसे शूलसे पीडित अंग, संधिगत वायु, वायुरक्त, भग्न, खंज, कुबडापन, स्रावयुक्त वातरक्त यह सब रोग दूर होतेहैं ॥ १३९-१४२ ॥

कफाधिक वातरक्तमें चिकित्सा ।

शोफगौरवकण्डाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे । मूत्रक्षारसुरापक्वघृत-मभ्यञ्जनेहितम् ॥ १४३ ॥ पद्मकंत्वक्समधुकंशारिवाचेतितैर्घृ-तम् । सिद्धंसमधुशुक्तंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे ॥ १४४ ॥

कफाधिक वातरक्तमें भारीपन, सूजन और खुजली होय तो गोमूत्र, क्षार और मद्य मिलाकर पकायाहुआ घृत मालिश करना चाहिये । अथवा पद्मकाष्ठ, दालचीनी, मुलैठी, शारिवा इन सबका कल्क और ईखके रसका सिरका मिलाकर सिद्ध किया घृत सेचन और लेपन करनेसे कफप्रधान वातरक्तकी खुजली और सूजन आदि दूर होतीहै । कोई इस घृतमें सिरकेके साथ शहदका डालना भी कहते हैं ॥ १४३ ॥ १४४ ॥

क्षीरंतैलंगवांमूत्रंजलञ्चकटुकैःशृतम् । परिषेकाःप्रशस्यन्तेवातर-क्तेकफोत्तरे ॥ १४५ ॥ लेपःसर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षीरतिलैर्हितः । श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःससक्तुभिः ॥ १४६ ॥

दूध, तेल, गोमूत्र और जलको त्रिकुटेके चूर्णसे सिद्धकर कफाधिक वातरक्तमें सेचन करना चाहिये । सफेद सरसों, नीमकी छाल, आककी जडकी छाल, हींसकी जडकी छाल, दूध और तिल इन सबको मिलाकर लेप करना अथवा कैथका गूदा, दालचीनी, घी और दूध मिलाकर लेप करना कफाधिक वातरक्तमें हितकारी है ॥१४५॥१४६॥

वातकफाधिक वातरक्तका यत्न ।

द्वेहरिद्रेवचागौरधूमकुष्ठशताह्विकाः ।
प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे ॥ १४७ ॥
तगरंत्वक्शताह्वैलाकुष्ठंमुस्तंहरेणुका ।
दारुव्याघ्रनखंचाम्लपिष्टंवातकफार्तिनुत् ॥ १४८ ॥

कफवाताधिक वातरक्तमें हल्दी, दारुहल्दी, वच, सफेद सरसों, घरका धूम, कूठ और सौंफको मिलाकर लेप करना हितकारी है । अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ, इलायची, कूठ, नागरमोथा, रेणुका, देवदारु और व्याघ्रनखीको कांजी अथवा सिरकेमें मिलाकर लेप करनेसे वातकफाधिक वातरक्तकी पीडा दूर होतीहै।१४७-१४८॥

मधुशिग्रोर्हितंतद्वद्वीजंधान्याम्लसंयुतम् ।
मुहूर्त्तलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरे ॥ १४९ ॥

मीठे सुहांजनेके बीज, धानोंकी कांजीमें पीसकर लेपकरे दो घडीके अनन्तर गरम कांजीसे सेचन करे तो कफवाताधिक वातरक्तकी पीडा शान्त होतीहै ॥ १४९ ॥

त्रिदोषज वातरक्तमें यत्न ।

त्रिफलाव्योपपत्रैलास्त्वक्क्षीरींचित्रकंवचाम् । विडङ्गंपिप्पलीमूलं लोमशंवृपकत्वचम् ॥ १५० ॥ ऋद्धिंतामलकींचव्यंसमभागानि पेपयेत् । कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्याह्नेभक्षयेत्ततः ॥ १५१ ॥ वर्जयेद्दधिशुक्तानिक्षारंवैरोधकानिच । वातास्रेसर्वदोषेऽपिहितंशूलार्दितेपरम् ॥ १५२ ॥

त्रिफला, त्रिकुटा, पत्रज, इलायची, वंशलोचन, चित्रक, वायविडंग, वच, पीपलामूल जटामांसी, अडूसा, दालचीनी, ऋद्धि, भूमि आँवला और चव्य इन सबको सम भाग लेकर बारीक पीसले । इस कल्कको जलके संयोगसे लोहेके पात्रमें लेप करे । लेप सूखनेपर मध्याह्नमें इस पात्रमेंसे उस औषधको निकालकर मात्रानुसार खावे तथा दही, सिरका, क्षार और विरुद्ध भोजनका त्याग रक्खे तो सर्वदोषजनित वातरक्तकी पीडा भी शान्त होती है ॥ १५० ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चवलावलम् ।
चिकित्सितमिदंकुर्य्यादूहापोहविकल्पवित् ॥ १५३ ॥

दोषोंके स्थानविशेष, बलाबल और विकल्पको तर्क वितर्क द्वारा निश्चय करके उनके अनुसार ही औषधियोंका घटाव बढाव आदि करताहुआ बुद्धिमान् वैद्य चिकित्सा करे ॥ १५३ ॥

कुपितेमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा । अतिवृद्ध्यानिलेनादौशस्तंस्नेहनबृंहणम् ॥ १५४ ॥ व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्विरेचनैः। तक्राभयाप्रयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥ १५५ ॥

यदि मेद अथवा कफद्वारा मार्ग रुकजानेसे वायु अत्यंत कुपित होकर बढजाय तो पहिले स्नेहन और बृंहण क्रिया करना हितकारी नहीं इसलिये ऐसे समय पहिले कफ और मेदको क्षीण करना हितकारक है । उस कफ और मेदके क्षय करनेके लिये व्यायाम, शोधन, अरिष्ट और गोमूत्रका प्रयोग करना तथा विरेचन कराना और तक्र तथा हरडका प्रयोग करना हितकारक होता है ॥ १५४ ॥ १५५ ॥

बोधिवृक्षकषायन्तुपिबेत्तंमधुनासह ।
वातरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥ १५६ ॥

बोधिवृक्ष (पीपल) के छिलकेका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे त्रिदोषज दारुण वातरक्तकी शीघ्र शान्ति होती है ॥ १५६ ॥

पुराणयवगोधूमसध्वरिष्टासवैस्तथा ।
शिलाजतुप्रयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यच ॥ १५७ ॥

पुराने यव, गेहूं, शीधु, अरिष्ट,आसव तथा शिलाजीत, गूगुल और शहदका प्रयोग करनेसे कफ, मेदकी शान्ति होतीहै तथा त्रिदोषज वातरक्तभी शान्त होताहै ॥१५७॥

पश्चाद्वातेक्रियांकुर्याद्वातरक्तप्रसादनीम् ।
गम्भीरेरक्तमाक्रान्तंस्याच्चेद्वातद्विवर्जयेत् ॥ १५८ ॥

जब कफ और मेद शान्त होजाय तो वातरक्तनाशक स्नेहादिकी क्रिया करना हितकारक होताहै । गंभीरस्थानरक्तमें यदि वायुद्वारा रक्त अत्यंत आक्रान्त होजाय तो उस रोगीको त्याग देना चाहिये ॥ १५८ ॥

रक्तपित्तातिवृद्ध्यातुपाकमाशुनियच्छति । भिन्नंस्रवतिवारक्तंविदग्धंपूयमेववा ॥१५९॥ तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणैः। कुर्य्यादुपद्रवाणाञ्चक्रियांस्वात्स्वाच्चिकित्सितात् ॥ १६० ॥

रक्तपित्तकी अत्यंत वृद्धि होनेसे वातरक्त शीघ्र पाकको प्राप्त होजाताहै उस समय

-त्वाचा फटकर विदग्ध रक्त तथा राध निकलने लगतीहै। ऐसे समय पाके और स्रावकी शान्तिके लिये व्यधन, शोधन और रोपण क्रिया करना हितकारी है। और वात -रक्तमें जो उपद्रव होतेहैं उनकी उपद्रवानुसार स्वतंत्र चिकित्सा करना चाहिये॥१६०॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्रश्लोकः।

हेतुस्थानानिमूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धिषु। कुप्यतिप्राक्चतद्रूपंद्विविधस्यचलक्षणम् ॥ १६१ ॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्यमुपद्रवाः। साध्यंयाप्यमसाध्यञ्चक्रियासाध्यस्यचाखिला ॥ १६२ ॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टाःसमासव्यासतस्तथा। महर्षिणाग्निवेशायतथैवावस्थिकीक्रिया ॥ १६३ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०वातर०चिकित्सितंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें श्लोक है कि इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्यायमें वातरक्तके हेतु, स्थान, मूल, जिस लिये इसका कोप संधियोंमे होताहै, पूर्वरूप, उत्तान और गंभीर दो भेद, उनके लक्षण, विशेषरूपसे भिन्न २ लक्षण, दोषोंकी अधिकता के भेदसे उपद्रव, साध्य, याप्य साध्य,असाध्य,क्रियासाध्य यह सब तथा समयानुसार अवस्थाभेदसे चिकित्सा महर्षि आत्रेयजीने संक्षेप और विस्तारसे अग्निवेशके प्रति वर्णन कियीहै ॥ १६१ ॥ १६२॥ १६३ ॥

इति श्रीचर० चिकित्सास्थाने प्र० भा० टी० वातरक्तचिकित्सितं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथातो योनिव्यापच्चिकित्सितं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम योनिव्यापत् चिकित्सितनामके अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

दिव्यौषधिजलस्रावद्धातुचित्रशिलावति। पुण्येहिमवतःपार्श्वेसुरसिद्धनिषेविते ॥ १ ॥ विहरन्तंतपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम्। कृष्णात्रेयंजितात्मानमग्निवेशोऽथपृष्टवान् ॥ २ ॥

दिव्य औषधियोंसे, शीतल, मधुर जल, चित्र विचित्र धातु और शिलाओंसे शोभायमान तथा देवता, सिद्ध और ऋषियोंसे सेवन किये हुए पुण्यजनक हिमवान् पर्वतके पार्श्वमें तप, योगके बलसे, तत्त्वज्ञान और परमार्थदर्शी विहार करते हुए जितात्मा कृष्ण आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे ॥ १ ॥ २ ॥

भगवन् ! यदपत्यानांमूलंनार्य्यःपरंनृणाम्। तद्विघातोगदैश्चासां क्रियतेयोनिमाश्रितैः॥ ३ ॥ तस्मात्तेषांसमुत्पत्तिमुत्पन्नानाञ्च लक्षणम्। औषधंश्रोतुमिच्छामिप्रजानुग्रहकाम्यया ॥ ४ ॥

कि हे भगवन् ! संपूर्ण मनुष्योंकी रति और संतानकी उत्पत्तिका मूलस्वरूप स्त्रियें ही हैं उन स्त्रियोंकी योनिमें रोगोंके उपस्थित होनेसे संतान आदि सुखका भी विघात होताहै इसलिये उन योनियोंमें होनेवाली रोगोंकी उत्पत्ति और उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण ओर उनकी चिकित्सा प्रजागणके हितके लिये कृपाकर कथन कीजिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

इतिशिष्येणपृष्टस्तुप्रोवाचर्षिवरोऽत्रिजः। विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे ॥ ५ ॥ मिथ्याचारेणताःस्त्रीणांप्रदुष्टेनार्त्तवेनच । जायन्तेवीजदोषाच्चदैवाच्चशृणुताःपृथक् ॥ ६ ॥

शिष्यके इस प्रकार पूछनेपर महर्षि आत्रेयजी कहने लगे कि रोग संग्रह अर्थात् "सूत्रस्थानके अष्टोदरीय अध्यायमें" बीस प्रकारके योनिरोगोंका कथन कर आये हैं वह रोग स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहारसे और मासिक ऋतुके दुष्ट होनेसे तथा बीजदोषसे और दैवसे उत्पन्न होतेहैं। उन सबके पृथक् २ वर्णनको श्रवण करो ॥ ५ ॥ ६ ॥

वातदूषित योनिके लक्षण।

वातलाहारचेष्टायावातलायाःसमीरणः । विवृद्धोयोनिमाश्रित्य योनेस्तोदंसवेदनम् ॥ ७ ॥ स्तम्भंपिपीलिकासृप्तिमिवकर्कशतांतथा । करोतिसुप्तिमायासंवातजांश्चापरान्गदान् ॥ ८ ॥ सास्यात्सशब्दरुक्फेनतनुरूक्षार्त्तवानिलात् ॥ ९ ॥

वातप्रधान स्त्रीके वातकारक आहार और चेष्टादिकोंके सेवनसे वायु विकृत होकर योनिमें आश्रित हो पीडा, तोद, स्तम्भ, चींटियोंके चलनेकीसी सरसराहट, कर्कशता, सुप्ति (शून्यता) तथा थकावट और वातजनित रोगोंको करती है। उस वातयुक्त योनिवाली स्त्रीको झागदार, शूल और शब्दयुक्त रूक्ष तथा थोडा २ मासिक रज आताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

दूषितापित्तयोनिके लक्षण ।

व्यापत्तथाम्ललवणक्षाराद्यैःपित्तजाभवत्।दाहपाकज्वरोष्णार्त्तानीलपीतसितार्त्तवा । भृशोष्णकुणपस्रावायोनिःस्यात्पित्तदूषिता॥१०॥

उसी प्रकार पित्तप्रधान स्त्रीके खटाई, नमक और क्षार आदि उष्ण पदार्थोंके अत्यंत सेवनसे पित्तजनित योनिरोग उत्पन्न होताहै । पित्तजनित योनिरोगमें-दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, नील, पीत और असितवर्णका मासिकऋतु आता है तथा मासिक ऋतुका स्राव-गर्म और मुर्देकी सी गंधवाला होता है यह पित्तदूषित योनिके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफदूषितयोनिके लक्षण ।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धोयोनिश्चेद्दूषयेत्स्त्रियाः ॥
सशीतांपिच्छिलांकुर्य्यात्कण्डूग्रस्ताल्पवेदनाम् ॥
पाण्डुवर्णांतथापाण्डुपिच्छिलार्त्तववाहिनीम् ॥ ११ ॥

कफप्रधान स्त्रियोंके शरीरमें कफकारक और अभिष्यन्दी पदार्थोंके सेवनसे कफ अत्यंत बढकर योनिको अत्यंत दूषित कर देतीहै । फिर उससे योनि किंचित् शीतल पिच्छिल, खुजलीयुक्त होतीहै तथा मंदमंद पीडा और पाण्डुवर्णयुक्त होजाती है उस योनिसे पाण्डुवर्ण और पिच्छल मासिकरज आताहै ॥ ११ ॥

त्रिदोषदूषितयोनिके लक्षण ।

समश्नत्यारसान्सर्वान्दूषयित्वात्रयोमलाः ॥ १२ ॥ योनिगर्भाशयस्थाःस्वैर्योनिंयुञ्जन्तिलक्षणैः । साभवेद्दाहशूलार्त्ताश्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥ १३ ॥

स्त्रियोंके त्रिदोषकारक आहार विहारके सेवन करनेसे तीनों दोष कुपित होकर उनकी योनि और गर्भाशयमें प्राप्त हो अपने लक्षणोंयुक्त योनिरोगको उत्पन्न करतेहैं जिससे योनि-दाह और शूलसे पीडित होजातीहै तथा उसमेंसे सफेद और पिच्छिल स्राव होने लगताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

रक्तपित्तदूषितयोनि०

रक्तपित्तकरैर्नार्य्यारक्तंपित्तेनदूषितम् ।
अतिप्रवर्त्ततेयोन्यांलब्धेबीजेऽपिसाऽप्रजा ॥ १४ ॥

स्त्रियोंको रक्तपित्तकर्त्ता पदार्थोंके सेवन करनेसे रक्तपित्त दूषित योनिरोग होताहै उससे योनिद्वारा रक्तका अत्यंत स्राव होने लगताहै रक्तपित्तदूषित योनिवाली स्त्री

यदि बीजको ग्रहणकर भी लेवे तो भी गर्भ नहीं रहसकता अर्थात् स्राव ही होजाताहै कोई ऐसा मानतेहैं कि इस स्त्रीको गर्भ होजानेपर भी ऋतु स्राव बन्द नहीं होता ॥ १४ ॥

अरजस्का योनि ।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तंसंदूषयेदसृक् ।
सारजस्कामताकार्श्यवैवर्ण्यजननीभृशम् ॥ १५ ॥

यदि योनि और गर्भाशयस्थ पित्त आर्तवको दूषित करे तो, उस योनिको अरजस्का कहतेहैं । क्योंकि इस योनिसे रजका स्राव नहीं होता । इस योनिवाली स्त्री विवर्णतायुक्त और अत्यंत कृश होजातीहै ॥ १५ ॥

अचरणा योनि ।

योन्यामधावनात्कण्डूंजाताःकुर्वन्तिजन्तवः ।
सास्यादचरणाकण्ड्वातयातिनरकाङ्क्षिणी ॥ १६ ॥

योनिको न धोनेसे योनिमें सूक्ष्म कीडे उत्पन्न होकर खुजलीको करतेहैं । उस अत्यंत खाजके होनेसे स्त्रीको हरसमय पुरुषके संभोग करनेकी अत्यंत पीडा होतीहै ॥ १६ ॥

अतिचरणा योनि ।

पवनोऽतिव्यवायेनशोफसुप्तिरुजःस्त्रियाः ।
करोतिकुपितोयोनौसाचातिचरणामता ॥ १७ ॥

अत्यंत मैथुनके करनेसे वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनिमें सूजन सुप्ति और पीडाको उत्पन्न करताहै उस योनिको अतिचरण कहतेहैं ॥ १७ ॥

प्राक्चरणा योनि ।

मैथुनादतिबालायाःपृष्ठजङ्घोरुवंक्षणम् ।
रुजयन्दूषयेद्योनिंवायुःप्राक्चरणाहिसा ॥ १८ ॥

अति छोटी अवस्थामें स्त्री यदि मैथुन करे तो उसके वायु कुपित हो पीठ, कमर, ऊरू, और वंक्षणमें पीडा उत्पन्न कर योनिको दूषित कर देताहै । इसको प्राक्चरणा योनि कहते हैं ॥ १८ ॥

उपप्लुता योनि ।

गर्भिण्याःश्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिश्वासविनिग्रहात् । वायुःक्रुद्धःकफं योनिमुपनीयप्रदूषयेत् ॥ १९ ॥ पाण्डुंसतोदमास्रावंश्वेतंस्रवतिवाकफम् । कफवातामयव्याप्तासास्याद्योनिरुपप्लुता ॥ २० ॥

यदि गर्भवती स्त्री अत्यंत कफकारी पदार्थोंका सेवन करे तथा वमन और श्वासके वेगको रोक लेवे तो उस वमन और श्वासके रोकनेसे कुपित हुआ वायु बढे हुए कफको योनिमें लेजाकर उसको दूषित करदेताहै उससे गर्भकी अवस्थामें ही पाण्डुवर्ण, तोदयुक्त, सफेद वर्णका स्राव योनिद्वारा होने लगता है । अथवा केवल कफका ही स्राव होता है । इस प्रकार वात और कफकी पीडासे व्याकुल योनिको उपप्लुता कहतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥

परिप्लुता योनि।

पित्तलायानृसंवासेक्षवथूद्गारधारणात् । पित्तसंमूर्च्छितोवायुर्योनिंदूषयतिस्त्रियाः ॥ २१ ॥ शूनास्पर्शाक्षमासार्त्तिर्नीलपीतमसृक्स्रवेत् । श्रोणिवंक्षणपृष्ठार्त्तिज्वरार्त्तायाःपीरुप्लुता ॥ २२ ॥

पित्तप्रधान प्रकृतिवाली स्त्री यदि मैथुनके समय हिचकी और डकारके वेगको रोकलेवे तो उसके शरीरमें पित्तयुक्त वायु कुपित होकर योनिको दूषित कर देताहै, उससे योनिमें सूजन, स्पर्शका न सहना और पीडा यह लक्षण होतेहैं, तथा नीले और पीले वर्णका रक्तस्राव होताहै और उस स्त्रीके नितम्ब वंक्षण और पीठमें पीडा उत्पन्न होजातीहै और ज्वर भी होताहै । इन लक्षणोंवाली योनिको परिप्लुता योनि कहतेहैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

उदावृता योनि।

वेगोदावर्त्तनाद्योनिमुदावर्त्तयतेऽनिलः । सारुगार्त्तारजःकृच्छ्रेणोदावृत्तांविमुञ्चति ॥२३॥ आर्त्तवेसाविमुक्तेतुतत्क्षणंलभतेसुखम् । रजसोगमनादूर्द्ध्वंज्ञेयोदावर्त्तिनीबुधैः ॥ २४ ॥

अधोवेगोंके रोक लेनेसे कुपित हुआ वायु योनिका वेग ऊपरकी ओर कर देता है वह योनि बडे कष्टके साथ थोडेसे रुधिरको त्याग करतीहै और योनिमें अत्यंत शूल होताहै उसको उदावृता योनि कहतेहैं । उदावृता योनिसे मासिक ऋतुका रज निकल चुकनेपर उसको शान्ति प्राप्त होतीहै । मासिक रजका वेग ऊपरकी ओर होनेसे उसको बुद्धिमान् उदावर्त्तनी योनि कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

कर्णिनी योनि।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः । कर्णिकांजनयेद्योनौश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः । रक्तमार्गावरोधिन्यासातयाकर्णिनीमता २५

छोटी अवस्थामें अथवा बेसमय गर्भ धारण करनेसे गर्भद्वारा पीडित हुआ वायु

योनिमें कर्णिका उत्पन्न कर देताहै । यह कर्णिका कफ और रक्तसे संसृष्ट होतीहै और रक्तके मार्गको रोकनेवाली होती है । इस योनिको कर्णिनी कहतेहैं ॥ २५ ॥

पुत्रघ्नी योनि ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत् ।
दुष्टशोणितजंनार्य्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥ २६ ॥

जिस स्त्रीके दूषित रजसे उत्पन्न हुए गर्भको रूक्षतासे कुपितहुआ वायु नष्ट करदे और जबजब गर्भ उत्पन्न हो तब तब ऐसे ही नष्ट कर दिया करे तो उस स्त्रीकी योनिको पुत्रघ्नी योनि कहतेहैं ॥ २६ ॥

अंतर्मुखीयोनिके ल० ।

व्यवायमतितृप्ताया भजन्त्यास्तत्रपीडितः । वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गायायोनिस्रोतसिसंस्थितः॥२७॥ वक्रयत्याननंयोन्याःसास्थिमांसानिलार्त्तिभिः॥२८॥ भृशार्त्तिर्मैथुनासक्तायोनिरन्तर्मुखीमता॥२९॥

अत्यंत भोजनके अनन्तर यदि मूर्खता पूर्वक विकृतरूपसे शयनकर मैथुन करावे तो योनिके बीचमें रहनेवाला वायु योनिके मुखको टेढा कर देताहै । तब योनिके अस्थि और मांसमें वायुकी पीडा और योनिमें भी अत्यंत पीडा करताहै । फिर वह स्त्री मैथुन करनेमें असमर्थ होजातीहै । इस योनिको अंतर्मुखी योनि कहते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥

सूचीमुखी ।

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिंप्रदूषयन् ।
मातृदोषादणुद्वारांकुर्य्यात्सूचीमुखीतुसा ॥ ३० ॥

माताके दोषसे रूक्ष वायु गर्भमें स्थित कन्याकी योनिको दूषित कर देताहै । उससे उस कन्याकी योनि बहुत सूक्ष्म छिद्रवाली होतीहै उस योनिको सूचीमुखी योनि कहतेहैं ॥ ३० ॥

शुष्का योनि ।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगात्प्रकुपितोऽनिलः ।
कुर्य्याद्विण्मूत्रसङ्गार्त्तिशोषंयोनिमुखस्यच ॥ ३१ ॥

मैथुनके समय जो स्त्री मलमूत्रोंके वेगोंको रोकलेतीहै उससे कुपित हुआ वायु योनिको सूखी बना देताहै । इस योनिको शुष्का योनि कहतेहैं ॥ ३१ ॥

वामिनी।

षडहात्सप्तरात्राद्वाशुक्रंगर्भाशयंगतम्।
सरुजंनीरुजंवापियास्रवेत्साचवामिनी ॥ ३२ ॥

जिस स्त्रीकी योनि गर्भाशयमें प्राप्तहुए वीर्यको पीडाके साथ अथवा विना ही पीडासे छः या सात दिनके बाद निकाल डाले उसको वामिनी योनि कहतेहैं ॥ ३२ ॥

षण्डीके लक्षण।

बीजदोषात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया।
नृद्वेषिण्यस्तनीचैवषण्डीस्यादनुपक्रमा ॥ ३३ ॥

वीर्यके दोषके कारण वायु गर्भमें स्थितहुई कन्याके गर्भाशयको हनन कर देताहै। वह कन्या स्तन रहित और योनि रहित तथा पुरुषसे द्वेष करनेवाली होतीहै। इस स्त्रीको षण्डी कहतेहैं। यह असाध्य होतीहै अर्थात् उसकी कोई चिकित्सा नहीं ॥ ३३ ॥

महायोनिके ल०।

विषमादुःखशय्यायांमैथुनात्कुपितोऽनिलः।
गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखंविष्टम्भयेत्स्त्रियाः ॥ ३४ ॥
असंवृतमुखीसार्त्तीरूक्षफेनास्रवाहिनी।
मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्ववंक्षणशूलिनी ॥ ३५ ॥

विकृत शय्या पर शयन करके मैथुन करनेसे वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिके मुखको विष्टब्ध कर देताहै जिससे योनिका मुख खुलासा रहजाताहै। इससे झागदार मासिक ऋतुका स्राव होताहै। और योनिका अन्तर्वर्ती मांस उन्नत रहताहै स्त्रीके संधि और पेंडूमें शूल रहताहै। इस योनिको महायोनि कहतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

इत्येतैर्लक्षणैःप्रोक्ताविंशतिर्योनिजागदाः। नशुक्रंधारयत्येभिर्दोषै- र्योनिरुपद्रुता ॥ ३६ ॥ तस्माद्गर्भनगृह्णातिस्त्रीगच्छत्यामयान्बहून्। गुल्मार्शःप्रदरादींश्चवाताद्यैश्चातिपीडनम् ॥ ३७ ॥

इस प्रकार इन लक्षणोंसे वीस प्रकारके योनिरोग होतेहैं। इन रोगोंसे विगडीहुई योनि वीर्यको धारण नहीं कर सकती। इसलिये इन वीस प्रकारके योनिरोगोंवाली स्त्रियें गर्भको धारण न करके गुल्म, बवासीर और प्रदरादिक तथा वातजनित बहुतसे रोगोंसे पीडित रहतीहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

आसांषोडशयास्तासामाद्येद्वेपित्तदोषजे। परिप्लुतावामिनीचवात-पित्तात्मिकेमते ॥३८॥ कर्णिन्युपप्लुतेवातकफाच्छेषास्तुवातजाः। देहंवातादयस्तासांतैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि ॥ ३९ ॥

इन बीस प्रकारके योनिरोगोंमें चार पहिलेके साधारण छोडकर बाकी सोलह योनिरोगोंमें रक्तपित्तज योनि और अरजस्का यह दो योनिरोग पित्तज होतेहैं। परिप्लुता और वामनी योनि वातपित्तात्मक होतीहै। कर्णिनी और उपप्लुता वातकफात्मक होतीहै। इनके सिवाय अचरणा, अतिचरणा, प्राक्चरणा, उदावर्त्तिनी, पुत्रघ्नी, अंतर्मुखी, सूचीमुखी, शुष्का, षंडी और महायोनि यह सब वातात्मिका होतीहैं। इनमें वातादि दोष अपने २ लक्षणोंसे शरीरको पीडित करतेहैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

वातज योनिरोगोंकी चिकित्सा।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्वनिलापहम् । कारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतं पित्तकृतासुच ॥ ४० ॥ श्लेष्मलासुचरूक्षोष्णंकर्मकुर्याद्विचक्षणः। सन्निपातेविमिश्रन्तुसंसृष्टासुचकारयेत् ॥ ४१ ॥

वातजनित योनिरोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, वस्तिकर्म आदि वातनाशक चिकित्सा करना चाहिये। और पित्तजनित योनिरोगोंमें रक्तपित्तनाशक शीतल क्रिया करना चाहिये और कफजनित योनिरोगमें रूक्ष और उष्ण क्रिया करना हितकारक है तथा चतुरवैद्य त्रिदोषज और द्वन्द्वज योनिरोगोंमें दोषानुसार मिलीजुली चिकित्सा करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

स्निग्धस्विन्नांतथायोनिंदुःस्थितांस्थापयेत्पुनः । पाणिनानामयेज्जिह्मांसंवृतांवर्द्धयेत्पुनः ॥ ४२ ॥ प्रवेशयेन्निःसृतांश्चविवृतांपरिवर्त्तयेत्। योनिःस्थानापवृत्ताहिशल्यभूतास्त्रियामता ॥ ४३ ॥

वातज योनिरोगोंमें योनिको स्नेहन और स्वेदन करके यदि वह विषमस्थ हो तो उसको ठीक स्थानमें स्थापित करदेना चाहिये। टेढी योनिको हाथसे नँवाकर सीधी करदेना चाहिये। संकीर्ण योनिको यथोचित विवृत करदेवे। बाहर निकलीहुई योनिको भीतरकी ओर करदेवे। विवृत योनिको यथोचित रीतिपर समवृत्त करदेना चाहिये। क्योंकि अपने स्थानसे पतितहुई योनि स्त्रियोंको शल्यकी समान दुःखदाई होतीहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

सर्वाव्यापन्नयोनिन्तुकर्मभिर्वमनादिभिः। मृदुभिःपञ्चभिर्नारींस्नि-

ग्धास्विन्नामुपाचरेत् ॥ ४४ ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषंकर्मविधीयते । वातव्याधिहरंकर्मवातार्त्तानांसदाहितम् ॥ ४५ ॥

सब प्रकार व्यापन्नयोनियोंमें प्रथम स्नेहन और स्वेदन करके वमनादि पंचकर्मोको मृदुरीतिसे प्रयुक्त करे। जब स्त्री सब प्रकार शुद्ध होजाय तो बाकी रहे कर्मको विधिवत् करना चाहिये। अर्थात् योनि विकृत हो तो उसको उचित रीति पर ठीक करदेना चाहिये। यदि योनिं वायुसे व्यापन्न हो तो वातनाशक क्रिया करना चाहिये ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

औदकानूपजैर्मांसैःक्षीरैःसतिलतण्डुलैः। सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ ४६ ॥ युक्तांलवणतैलेनसाश्मप्रस्तरसङ्करैः। स्विन्नांकोष्णाम्बुसिक्ताङ्गींवातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ॥ ४७ ॥

वातजनित योनिरोगमें जलज और आनूप जीवोंके मांस, दूध, तिल, चावल और वातनाशक औषधियें इन सबको मिलाकर नाडीस्वेद और कुम्भीस्वेद करना चाहिये। तथा ऐसी स्त्रीको नमक और तैलके योगसे अश्मघनस्वेद प्रस्तरस्वेद और संकरस्वेदके प्रयोग द्वारा स्वेदन करे,फिर गर्म जलके साथ सेचन करै और गर्म जलसे स्नान करा वातनाशक मांसरसोंके साथ भोजन करावे ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बलादितैल या घृत ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथेघृततैलाढकंपचेत्। स्थिरापयस्याजीवन्तीवीरर्षभकजीवकैः ॥ ४८ ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमाषाख्यपर्णिभिः। शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेवच ॥ ४९ ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरसिद्धंपेयंयथाबलम् । वातपित्तकृतान्रोगान्हत्वागर्भंदधाति तत् ॥ ५० ॥

बलाका क्वाथ २ द्रोण लेकर इस क्वाथमें १ आढक घृत अथवा तैल मिलावे और नीचे लिखीहुई शालपर्ण्यादि औषधियोंका कल्क मिलावे। जैसे शालपर्णी, पयस्या (दुग्धिका वा क्षीरविदारी), जीवन्ती, काकोली, ऋषभक, जीवक, गोरखमुण्डी, पीपलामूल, पीलुपर्णी, माषपर्णी, खांड, क्षीरकाकोली और काकनासा । यह प्रत्येक एक२पल लेकर कल्क बनावे। यह कल्क और४आढक दूध उपरोक्त घृत और क्वाथमें मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर या तैल हो तो तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे। यह घृत मात्रानुसार पीनेसे वात और पित्तजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करतीहै। यदि उन्हीं औषधियोंसे तैल

सिद्ध कियाहो तो उसको वस्तिकर्म, अभ्यंग, नस्य और पीनेमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

काश्मर्य्यादि घृत ।

काश्मर्य्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूषकैः । पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासह्वाचरैः ॥ ५१ ॥ शतावर्य्यागुडूच्याश्चप्रस्थमक्षसमैर्घृतात् । साधितंयोनिवातघ्नंगर्भदंपरमंपिवेत् ॥ ५२ ॥

कुंभेर, त्रिफला, द्राक्षा, कसौंदीकी जडका छिलका, फालसे, पुनर्नवा, हलदी, दारुहल्दी, काकनासा, काला बांसा, शतावर और गिलोय इन सबको एक एक तोला लेकर कल्क बनावे । घी १ सेर, दूध ४ सेर, पानी ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको पीनेसे संपूर्ण वातजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भको धारण करतीहै ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

पिप्पलादि कल्क ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकंसैन्धवंवचाम् । यवक्षाराजमोदेच शर्करांचित्रकंतथा ॥ ५३ ॥ पिष्ट्वासर्पिषिभृष्टानिपाययेतप्रसन्नया । योनिपार्श्वार्त्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ५४ ॥

पीपल, कलौंजी, कालाजीरा, बांसा, सेंधानमक, वच, जवाखार, अजमोद, खांड और चित्रक इन सबके कल्कको घीमें भूनकर प्रसन्नाके साथ पीवे तो योनिशूल, पार्श्वशूल, हृच्छूल, गुल्म और बवासीर यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

वृषकादि योग ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूलानिमदयन्तिकाम् ।
पिबेत्सलवणैर्मद्यैःपिप्पलीकुञ्चिकेतथा ॥ ५५ ॥

अड्सेकी जडका छिलका, बिजौरीकी जड, मालतीके पत्र इन सबको पीसकर सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे अथवा पीपल और कलौंजीके चूर्णको सेंधानमक और मद्यके साथ पीवे तो वातजनित योनिशूल दूर होताहै ॥ ५५ ॥

श्वदंष्ट्रावृषकंरास्नांपिबेच्छूलेपयःशृतम् ।
गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्चपरिषेचयेत् ॥ ५६ ॥

गोखुरू, बांसेकी जड और रासनासे सिद्ध कियेहुए दूधको पीनेसे वातजनित योनिशूल दूर होताहै । तथा गिलोय, त्रिफला और दंतीके क्वाथसे योनिको सेचन करे तो योनिशूल दूर होताहै ॥ ५६ ॥

सैन्धवंतगरंकुष्ठंबृहतीदेवदारुच ।
समांशैःसाधितंकल्कैस्तैलंधार्य्यंरुजापहम् ॥ ५७ ॥

सेंधानमक, तगर, कूठ, वडी कटेली और देवदारु इन सबको समान भाग लेकर कल्क बनावे । इस कल्कसे सिद्ध कियेहुए तैलमें भिगोयाहुआ रुईका फाहा योनिमें रक्खे तो वातजनित योनिशूल दूर होताहै ॥ ५७ ॥

गुडूचीमालतीरास्नाबलामधुकचित्रकैः । निदिग्धिकादेवदारुयूथिकाभिश्चकार्षिकैः ॥ ५८ ॥ तैलप्रस्थंगवांमूत्रेक्षीरेचद्विगुणेपचेत् । वातार्त्तानाञ्चयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ५९ ॥

गिलोय, मालतीके पत्र, रासना, बला, मुलैठी, चित्रक, कटेली, देवदारु, जूहीके फूल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे । तेल १ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ और दूध दो प्रस्थ मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहने पर उतारकर छानलेवे । इस तेलमें भिगोयाहुआ फाहा योनिमें रखनेसे वातजनित योनिपीडा दूर होतीहै ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

वातार्त्तायाःपिचुंदद्याद्योनौचप्रणयेत्सदा ।
हिंस्राकल्कन्तुवातार्त्ताकोष्णमभ्यज्यधारयेत् ॥ ६० ॥

हींसकी जडके कल्कको घृतमें भीसकर गर्म करे फिर योनिको वातनाशक तैलद्वारा स्निग्ध कर उसमें हींसकी जडके कल्कमें भिगोयाहुआ फाहा धारण करे तो वातजनित योनिपीडा दूर होतीहै ॥ ६० ॥

पित्तजयोनिरोगोंकी चिकित्सा ।

पञ्चवल्कस्यपित्तार्त्ताश्यामादीनांकफातुरा ।
पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ ६१ ॥

पित्तज योनिरोगोंमें वड, पीपल, गूलर, पिलखन और वेतसके छिलकोंका कल्क और कफका संसर्ग हो तो शारिवाकी जड, आदिका कल्क योनिमें धारण करना चाहिये । पित्तजनित योनिरोगोंमें योनिका सेचन, अभ्यंग, और पिचु (फाहा) धारण करना हितकारक होताहै ॥ ६१ ॥

शीताःपित्तहराःकार्य्याःस्नेहनार्थंघृतानिच ।
पित्तघ्नौषधसिद्धानिकार्य्याणिभिषजातथा ॥ ६२ ॥

तथा शीतल; पित्तनाशक क्रिया करना चाहिये और स्नेहनके लिये पित्तनाशक द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए घृतोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६२ ॥

बृहत शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रःसंप्रपीडयेत् । रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेन घृताढकम् ॥ ६३ ॥ जीवनीयैःशतावर्य्यामृद्वीकाभिःपरूषकैः । पियालैश्चाक्षकैःपिष्टैर्द्वियष्टिमधुकैःपचेत् ॥ ६४ ॥ सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् । सितादशपलोन्मिश्रांल्लिह्यात्पाणितलं ततः । योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नंवृष्यंपुंसवनञ्चतत् ॥ ६५ ॥ क्षतंक्षयं रक्तपित्तंकासंश्वासंहलीमकम् । कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पंहृच्छिरोग्रहम् । [1]उन्मादायासमदापस्मारंवातपित्तात्मकंजयेत् ॥ ६६ ॥

शतावरकी २० सेर जडोंको कूटकर उसका रस निचोड लेवे । यह रस और रसके समान दूध तथा ४ सेर घृत मिलाकर पकावे और इसमे नीचे लिखेहुए द्रव्योंका कल्क मिलावे । जैसे जीवनीयगणकी दशऔषधियें, शतावर, मुनक्का,फालसे, चिरौंजी, मुलैठी और जलज मुलैठी इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे । यह कल्क भी उपरोक्त घृतमें मिलावे और पकावे । जब पकते२ घृतमात्र शेष रहे तो उतारकर छानले जब यह घृत शीतल होजाय तो इसमे आठ पल शहद ८ पल पीपलका चूर्ण और आठ पल मिसरी मिला किसी उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे । इसमेसे दो तोला प्रमाण नित्य खाया करे तो योनि विकार, रक्तविकार, शुक्रविकार, दूर होते हैं यह घृत वीर्यवर्द्धक और सन्तानको देनेवाला है तथा क्षत,क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, मस्तकपीडा, उन्माद, श्रम, मदात्यय और वातपित्तात्मक रोगोंको नष्ट करताहै ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

एवमेवक्षीरसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।
गर्भदंपित्तलानाञ्चयोनीनांस्याद्भिषग्जितम् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ दूध और घृत अथवा दूधसे निकाला हुआ घृत जीवनीयगणके साथ सिद्धकर पीनेसे पित्तजनित योनिरोग दूर होकर स्त्री गर्भवती होजाती है ॥ ६७ ॥

कफजनित योनिरोगकी चिकित्सा ।

योन्याःश्लेष्मप्रदुष्टायावर्त्तिःसंशोधनीहिता ।
वाराहेवहुशःपित्तेभावितैर्नक्तकैःकृता ॥ ६८ ॥

---

[1] आयाम (आयामनामकवात व्याधि) इति पुस्तकान्तरे ।

कफजनित योनिरोगोंमें संशोधनी वर्त्तीका प्रयोग करना हितकारक है। तथा सूअरके पित्तमें और करंजुके बीजोंके कल्कमें वारवार भिगोईहुई वर्त्तीका प्रयोग करना हितकारक है ॥ ६८ ॥

भावितंपयसार्कस्यमाषचूर्णससैन्धवम्।
वर्तिःकृतामुहुर्धार्य्याततःसेव्यासुखाम्बुना ॥ ६९ ॥

उडदोंके चूर्णको सेंधानमकयुक्त कर आकके दूधमें भावना दे और वर्त्ती बनावे इस वर्त्तीको योनिमें वारंवार धारण करे और वर्त्ती निकालनेके अनन्तर गर्मजलसे योनिको सेचन कर धोता रहे तो कफदूषित योनि शुद्ध होती है ॥ ६९ ॥

पिप्पल्यामरिचैर्मापैःशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः।
वर्त्तिस्तुल्याप्रदेशिन्याधार्य्यायोनिविशोधनी ॥ ७० ॥

पीपल, मिर्च, उडद, सौंफ, कूठ, सेंधानमक इन सबको समभाग लेकर छोटी अंगुलीके समान मोटी बत्ती बनावे। यह बत्ती योनिमें धारण करनेसे योनिको शोधन करती है ॥ ७० ॥

उदुम्बरशलाटूनांद्रोणमब्द्रोणसंयुतम् । सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम् ॥ ७१ ॥ निशांस्थाप्यजलेतस्मिंस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्। लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैःशाल्मलेनच ॥ ७२ ॥ पिष्टैःसिद्धश्वतत्तैलंपिचुयोनौनिधापयेत्। सशर्करैःकषायैश्वशीतैः कुर्वीतसेचनम् ॥७३॥ पिच्छिलाविवृताकालदुष्टायोनिश्चदारुणा। सप्ताहाच्छुध्यतिक्षिप्रमपत्यश्चापिविन्दति ॥ ७४ ॥

गूलरके कच्चे फल और पंचवल्कल, पटोल, निंब और मालतीके पत्र यह सब मिलाकर १ द्रोण लेवे। इन सबको कूटकर १ द्रोण जलमें भिगोवे। फिर प्रातःकाल मसलकर निचोड लेवे। इस निचोडे हुए रसमें धव, खैर, ढाक और सेंमलका गोंद तथा लाख मिलावे। और १ प्रस्थ तेल मिलाकर पकावे। जब सब पानी जलकर तैलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान लेवे। इस तेलमें रूईका फाहा भिगोकर योनिमें रक्खे और उपरोक्त गूलर आदि ९ द्रव्योंके क्राथमें खांड मिलाकर शीतल होनेपर योनिका सेचन करे। अर्थात् इस जलका योनिपर तरडा देवे तो पिच्छिला योनि, विवृता योनि, कालदुष्टा योनि और दारुणायोनि सात दिनमें शुद्ध होजातीहैं और वह स्त्री उत्तम संतानको उत्पन्न करतीहै ॥ ७१–७४ ॥

उदुम्बरस्यदुग्धेनपट्कृत्वोभावितांस्तिलान्।
तैलंक्राथेचतस्यैवसिद्धंधार्य्यश्वपूर्ववत् ॥ ७५ ॥

गूलरके दूधमें तिलोंकी ६ भावना देकर सुखालेवे । फिर इन तिलोंका तेल निकालकर इस तेलको गूलरके कल्क और क्वाथसे सिद्ध करे। इसमें भिगोकर फाहा योनिमें रखनेसे उपरोक्त पिच्छिलादि विकार दूर होतेहैं ॥ ७५ ॥

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः । जम्ब्वाम्रमध्यकासीस-लोध्रकट्फलतिन्दुकैः ॥ ७६ ॥ सौराष्ट्रिकादाडिमत्वगुदुम्बरशलाटुभिः । अक्षमात्रैरजामूत्रेक्षीरेचाद्विगुणेपचेत् ॥ ७ ॥ तैलप्रस्थं पिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्ततः । कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गस्नेहवस्तिश्च दापयेत् ॥७८॥ पिच्छिलस्राविणीयोनिर्विप्लुतोपप्लुतातथा । उत्तानाचोन्नताशूनासिध्येत्सस्फोटशूलिनी ॥ ७९ ॥

धावेके फूल, आँवले, पत्रज, स्रोतोज, काला सुरमा या शंखनाभि, मुलैठी, नील कमल, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, हीराकसीस, लोध,कायफल, तिन्दुक, सोरठ मिट्टी, अनारका छिलका, गूलरके कच्चे फल इन सबको एक एक कर्ष लेकर कल्क करे। तेल १ प्रस्थ, बकरीका मूत्र दो प्रस्थ, बकरीका दूध २ प्रस्थ इन सबको मिलाकर पकावे । तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। इस तेलमें फोहा भिगोकर योनिमें रक्खे तथा कमर, पीठ और त्रिकस्थानमें इस तेलकी मालिश करे, उचित हो तो वस्तिकर्म भी करे इससे पिच्छिला, स्रावणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना, उन्नता तथा सूजन, फोडे और शूल आदि युक्त योनिविकार शान्त होतेहैं ॥ ७६–७९ ॥

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः । जिङ्गिनीवृषमूलानांक्वाथैर्मार्द्वीकशीधुभिः॥८०॥सशुक्तैर्धावनंमिश्रैर्योन्यास्रावविनाशनम् । कुर्य्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः ॥ ८१ ॥

करीर, धव, निम्ब, खैर, आँक,वांस, कोशाम्र, जामुन, जींगन और अड़्सा इनकी जडोंको लेकर काथ करे इस क्वाथमें अंगूरोंकी मद्य शीधु और सिरका मिलाकर योनिको धोवे तो योनिका स्राव बन्द होताहै अथवा छाछ, गोमूत्र और सिरका मिलाकर धोवे या केवल त्रिफलाके क्वाथसे ही धोवे तो योनिका स्राव दूर होताहै ॥ ८० ॥ ८१

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः ॥ ८२ ॥

पीपल, लोहभस्म और हरडका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटे तो योनिस्राव दूर होताहै ॥ ८२ ॥

तीनों दोषोंमें क्रियाक्रम ।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः ।

पित्तेसमधुरक्षीरावातेतैलाम्लसंयुताः ।
सन्निपातसमुत्थायाःकर्म्मसाधारणंमतम् ॥ ८३ ॥

कफकी योनिस्रावमें वटुद्रव्योंसे युक्तकर गोमूत्र द्वारा वस्तिकर्म करना हितकारक है, पित्तजनित योनिविकारमें मधुरद्रव्योंसे युक्त दूध द्वारा वस्तिकर्म करना चाहिये और वातजनित योनिविकारमें तेल और अम्लद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है और सन्निपातजनित योनिविकारोंमें सब प्रकारकी मिली जुली चिकित्सा करना चाहिये ॥ ८३ ॥

प्रदरकी चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धंसमीक्ष्यच ।
ततःकुर्य्याद्यथादोषंरक्तस्थापनमौषधम् ॥ ८४ ॥

जिस योनिमें बराबर रक्तका स्राव होतारहे उसमें रक्तके वर्णको देखकर जिस दोषका अनुबंध हो उस दोषकी चिकित्सा करे और दोषानुसार रक्तको स्थापन करनेवाली औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८४ ॥

वातप्रदरका यत्न ।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंसौकरीवसा ।
क्षौद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम् ॥ ८५ ॥

तिलोंका चूर्ण, दही, घृत, फाणित और सूअरकी चर्बी, शहद मिलाकर पीनसे वातजनित प्रदर (योनिसे रक्तस्राव) दूर होताहै ॥ ८५ ॥

वराहस्यरसोमेध्यःसकौलत्थोऽनिलाधिके ।
शर्करातैलयष्ट्याह्वनागरैर्वायुतंदधि ॥ ८६ ॥

कुल्थीके क्वाथमें वराहके मांसका रस सिद्ध करके पीवे अथवा खांड, तेल, मुलैठी और सोंठ दहीमें मिला पीवे तो वातजनित प्रदर दूर होताहै ॥ ८६ ॥

पित्तजनित प्रदरकी चिकित्सा ।

पयस्योत्पलशालूकबिसकालीयकाम्बुजान् ।
सपयःशर्करांक्षौद्रंपैत्तिकेऽसृग्दरेपिवेत् ॥ ८७ ॥

क्षीरविदारी, नीलकमल, शालूक, मृणाल, अगर और लाल कमलको अथवा इनमेसे किसी एकका कल्क कर दूध मिसरी और शहद मिला पीवे तो पित्तजनित प्रदर दूर होताहै ॥ ८७ ॥

पुष्यानुग चूर्ण ।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्येशिलोद्भेदंरसाञ्जनम्। अम्बष्ठाशाल्मलीवेष्टंसमङ्गावत्सकत्वचम् ॥ ८८ ॥ वाह्लीकातिविषेविल्वंमुस्तंलोध्रंसगैरिकम् । कट्फलंमरिचंशुण्ठींमृद्वीकांरक्तचन्दनम् ॥ ८९ ॥ कट्वङ्गवत्सकानन्तांधातकींमधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धृत्यतुल्यानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ ९० ॥ तानिक्षौद्रेणसंयोज्यपिवेन्नातण्डुलाम्बुना । अर्शःसुचातिसारेपुरक्तंयचोपवेश्यते ॥ ९१ ॥ दोपागन्तुकृतायेचवालानांतांश्चनाशयेत् । योनिदोषंरजोदोषंश्वेतंनीलंसपीतकम् ॥९२॥ स्त्रीणांश्यावारुणंयचप्रसह्यविनिवर्त्तयेत् । चूर्णंपुष्यानुगंनामाहितमात्रेयपूजितम् ॥ ९३ ॥

पाटला, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, पाषाणभेद, रसौत, पाढ, मोचरस, वाराहक्रांता, कुडाकी छाल, हींग, अतीश, बेलगिरी, नागरमोथा, लोध, गेरू, कायफल, मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लालचंदन, सोनापाठा, इन्द्रयव, शारिवा, धावेके फूल, मुलैठी, अर्जुनवृक्षकी छाल समभाग ले पुष्यनक्षत्रमें इकट्ठा कर बारीक चूर्ण करे । इस चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चावलोंके जलके साथ पीवे तो बवासीर और अतिसारका रक्त, पित्तातिसार, बालकोंको होनेवाले आगन्तुक दोष, योनिदोष, रजोदोष, योनिसे सफेद, नीला, पीला, काला और लाल स्राव होना यह सब नष्ट होताहै । इस पुष्यानुग चूर्णको महर्षि आत्रेयजीने श्रेष्ठ माना है ॥ ८८-९३ ॥

तण्डुलीयकमूलञ्चसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना ।
रसाञ्जनञ्चलाक्षाञ्चछागेनपयसापिवेत् ॥ ९४ ॥

चौराईकी जडका चूर्ण शहद और तण्डुलजलके साथ पीवे अथवा रसौत और लाखको बकरीके दूधके साथ पीवे तो पित्तज प्रदरकी शांति होतीहै ॥ ९४ ॥

पत्रकल्कौघृतेभृष्टौराजादनकपित्थयोः ।
पित्तानिलहरौपैत्तेसर्वथैवास्रपित्ताजित् ॥ ९५ ॥

अमलतासके पत्रोंका और कैथके पत्रोंका कल्क कर घीमें भून सेवन करे तो वातपित्तजनित प्रदर और रक्तपित्त दूर होताहै ॥ ९५ ॥

कफजनित प्रदरकी चिकित्सा ।

मधुकंत्रिफलांलोध्रंमुस्तंसौराष्ट्रिकांमधु ।
मद्यैर्निम्वगुडूच्यौतुकफजेऽसृग्दरेपिवेत् ॥ ९६ ॥

मुलैठी, त्रिफला, लोध, नागरमोथा, फिटकिरी इन सबका काथ कर शहद मिला पीवे तो .कफजनित प्रदर दूर होताहै । अथवा नीमकी छाल और गिलोयको मद्यके साथ सेवन करे तो कफजनित प्रदर दूर होताहै ॥ ९६ ॥

पित्तज प्रदरपर योग ।

विरेचनंमहातिक्तंपित्तजेऽसृग्दरेपिवेत् ।
हितंगर्भपरिस्रावेयच्चोक्तंतच्चकारयेत् ॥ ९७ ॥

पित्तजनित प्रदरमें कुष्ठाधिकारमें कहाहुआ महातिक्तक घृत पिलाकर विरेचन कराना चाहिये तथा जातिसूत्रीयाध्यायमें जो गर्भस्रावकी चिकित्सा कहआयेहैं उसका प्रयोग करना भी पित्तजप्रदरको दूर करताहै ॥ ९७ ॥

योनिरोगमें अन्य कर्म ।

काश्मर्य्यकुटजक्वाथेसिद्धमुत्तरवस्तिना ।
रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चहितंघृतम् ॥ ९८ ॥

कुंभेरके फल और कुडाकी छालका क्वाथ लेकर उसमें सिद्ध कियाहुआ घृत लेकर उससे रक्तयोनि, अरजस्का योनि और पुत्रघ्नी योनिमें उत्तरवस्ति करना चाहिये ॥ ९८ ॥

मृगाजाविवराहासृग्दध्यम्लक्षौद्रसर्पिषा ।
अरजस्कापिबेत्सिद्धंजीवनीयैःपयोऽपिवा ॥ ९९ ॥

हिरन, बकरी, भेड और वराहका रुधिर, दही, खटाई, शहद और घी मिला पीवे । अथवा जीवनीय गणसे सिद्ध कियाहुआ दूध पीवे तो अजरस्का योनिका विकार दूर होताहै ॥ ९९ ॥

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणासुच ।
कफवातेचदातव्यंतैलमुत्तरवस्तिना ॥ १०० ॥

कर्णिनी, अचरणा, शुष्का और प्राक्चरणा योनिमें तथा कफवातोंसे दूषित योनिमें वातनाशक तैलोंसे उत्तरवस्ति करना हितकारक है ॥ १०० ॥

गोपित्तेमत्स्यपित्तेवाक्षौमंत्रिःसप्तभावितम् ।
मधुनाकिण्वचूर्णंवादद्यादचरणापहम् ॥ १०१ ॥

रेशमी कपडेको गोपित्तमें अथवा मछलीके पित्तमें इक्कीस वार भावना देकर योनिमें स्थापित करे । अथवा सुराबीजको शहदमें मिलाकर योनिमें स्थापन करे

तो अचरणा योनिका विकार दूर होताहै। तथा स्रोतोंका शोधन, खुजली, क्लेद और सूजनको दूर करताहै ॥ १०१ ॥

स्रोतसांशोधनंकण्डूक्लेदशोफहरश्चतत् । वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलैः प्रागतिचारणी ॥ १०२ ॥ आस्थाप्याचानुवास्याचस्वेद्याश्चानिलसूदनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहैश्चयुक्तितः ॥ १०३ ॥

वातनाशक द्रव्योंसे शतपाक किया तैल प्राक्चरणा और अतिचरणा योनिमें आस्थापन और अनुवासनके लिये प्रयोग करना चाहिये। तथा वातनाशक स्नेहद्रव्योंसे स्वेदन करना और वातनाशक चिकने द्रव्योंका आहार तथा युक्तिपूर्वक उपनाह स्वेद कियाजाय तो प्राक्चरणा और अतिचरणा योनिके विकार दूर होतेहैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

शताह्वयवगोधूमकिण्वकुष्ठप्रियङ्गुभिः ।
वालाखुपर्णिकाश्वाह्वैःसंयावोधारणःस्मृतः ॥ १०४ ॥
वामिन्याप्लुतयोन्योश्चकर्त्तव्यःस्वेदनोऽपिवा ।
क्रमःकार्य्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्तर्पणंभवेत् ॥ १०५ ॥

सौंफ, यव, गेहूं, सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, वला मूषकपर्णी और असगंधके कल्ककर घृतमें मिला गरम करे इसको वामनी योनि और उपप्लुता योनिमें धारण करे अर्थात् इस उपरोक्त कल्क द्वारा इन दो प्रकारके योनिविकारोंमें उपनाह स्वेद करे। फिर स्नेहमें भिगोयाहुआ फोहा योनिमें रक्खे। ऐसा करनेसे योनिका संतर्पण होताहै ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

शल्लकीजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चवल्कलैः ।
कषायैःसाधितःस्नेहःपिचुःस्याद्विप्लुतापहः ॥ १०६ ॥

शल्लकी वृक्ष, जींगन, जामुन, धव इन सबकी छाल और बड आदि पांच वृक्षोंकी छाल इन सबके काथमें साधित किये हुए तेलका फोहा योनिमें धारण करनेसे विप्लुतायोनिका विकार शान्त होताहै ॥ १०६ ॥

कर्णिन्यांवर्त्तिकाकुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ।
वस्तमूत्रकृताधार्य्यासर्वंचश्लेष्मनुद्धितम् ॥ १०७ ॥

कूठ, पीपल, आककी कोंपल, सेंधानमक इन सबको बकरीके मूत्रमें पीसकर पोटली बना योनिमें धारण करे तो कर्णिनी योनि और कफजनित योनिके विकार दूर होतेहैं ॥ १०७ ॥

त्रैवृतंस्नेहनंस्वेदोग्राम्यानूपौदकारसाः । दशमूलपयोवस्तिश्चोदा-वर्त्तानिलार्त्तिषु ॥ १०८ ॥ त्रैवृतेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः। तदेवचमहायोन्यांस्रस्तायाश्चविधीयते ॥ १०९ ॥

उदावृत योनिमें वातजनित पीडा हो तो निशोथके चूर्णको स्नेहमें मिलाकर योनिमें धारण करना. स्नेहन करना, स्वेदन करना अथवा निशोथके चूर्णसे विरेचन कराना तथा ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांसरस और दशमूलसे सिद्ध किये दूध द्वारा वस्तिकर्म करना हितकारक है, तथा निशोथके साथ सिद्ध कियेहुए स्नेहकी वस्ति और उत्तरवस्ति करना भी हितकारक है। और यही क्रिया स्रस्त अर्थात् शिथिल योनिमें और महायोनिमें हितकारक है ॥ १०८ ॥ १० ॥

वसाऋक्षवराहाणांघृतश्चमधुरःशृतम् ।
पूरयित्वामहायोनिंबध्नीयारक्षौमलक्तकैः ॥ ११० ॥

रीछ और वराहकी चर्बी तथा जीवनीयगणसे सिद्ध किया हुआ घृत महायोनिमें भरकर ऊपरसे रेशमी कपडा और लाखका रंगा कपडा बांधे ॥ ११० ॥

प्रसुतांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेश्यच ।
बध्नीयाद्वेशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः ॥ १११ ॥

यदि योनि सुन्न पडगई हो और बाहर निकल आई हो तो उसको घृतसे चिकना कर और दूधसे स्वेदनकर भीतरको प्रवेश करके उसके ऊपर हल्दीकी पिण्डी बांध देवे। मूत्र आनेपर पिण्डीको खोल देना चाहिये और फिर उसी प्रकार बांध देना चाहिये ॥ १११ ॥

यच्चवातविकाराणांकर्मोक्तंतच्चकारयेत् ।
सर्वव्यापत्सुमतिमान्महायोन्यांविशेषतः ॥ ११२ ॥

जो क्रिया वातविकारोंको शान्त करनेवाली है वह वातनाशक क्रिया सब प्रकारके योनिरोगोंमें प्रयुक्त करनी हितकारक है और महायोनिमें तो विशेषकर हित करनेवाली होतीहै ॥ ११२ ॥

नहिवाताद्दतेयोनिर्नारीणांसंप्रदुष्यति ।
शमयित्वातमन्यस्यकुर्य्याद्दोषस्यभेषजम् ॥ ११३ ॥

वायुके विना स्त्रियोंकी योनि दूषित नहीं होती, इसलिये मिलेजुले दोषोंमें भी प्रथम वायुको शान्त करके फिर अन्य दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥ ११३ ॥

पाण्डुरवर्ण प्रदरकी चिकित्सा ।

मूलकल्कन्तुरोहीतात्पाण्डुरेप्रदरेपिवेत् । जलेनामलकाद्बीजंकल्कं वाससितामधुम् ॥ ११४ ॥ मधुनामलकाच्चूर्णरसंवालेहयेच्चताम्। न्यग्रोधत्वक्कषायेणलोध्रकल्कंतथापिवेत् ॥ ११५ ॥ आस्रावेक्षौम-पट्टंवाभावितंतेनधारयेत् । प्लक्षत्वक्चूर्णपिंडंवाधारयेन्मधुनाक्त-तम् ॥ ११६ ॥

पाण्डुवर्णका प्रदर होय तो रोहितत्रणकी जडको जलमें पीसकर पीवे अथवा आँव-लेकी गुठलीको पीसकर शहद और मिसरी मिलाकर चाटे । अथवा शहदके साथ आँवलेका चूर्ण या आँवलेका रस पीवे। अथवा वडके छिलकेके क्वाथमें लोधका कल्क मिलाकर पीवे । अथवा रेशमके वस्त्रको वडकी छाल और लोधके क्वायमें भिगोकर योनिमें रक्खे । अथवा पिलखनकी छालके चूर्णको शहदमें मिला एक बारीक वस्त्रमें पोटली वना योनिमें धारण करे ॥ ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥

योन्यास्नेहाक्तयालोध्रप्रियंगुमधुकस्यच ।
धार्य्यामधुयुतावर्त्तिःकषायाणाञ्चसर्वशः ॥ ११७ ॥

पहिले योनिको स्नेहसे चिकनी कर फिर लोध, फूलप्रियंगु और मुलैठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर वत्ती वना योनिमें धारण करे । और संपूर्ण कषाय द्रव्योंके क्वाथसे योनिमें वस्ति करे तो योनिस्राव वन्द होताहै ॥ ११७ ॥

स्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः ।
सरलागुग्गुलुयवैःसतैलकटुमत्स्यकैः ॥ ११८ ॥

योनिस्राव वन्द करनेके लिये पहिले योनिको चिकनी कर फिर सरलका गोंद, गूगल, यव, तेल, कडू और मछलीकी चर्वी इन सबको पीसकर योनिको धूपित करे ॥ ११८ ॥

कासीसत्रिफलाकाक्षीसाम्राजम्ब्वस्थिधातकी ।
पैच्छिल्येक्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णोवैशद्यकारकः ॥ ११९ ॥

कसीस, त्रिफला, सौराष्ट्रमृत्तिका, आम और जामुनकी गुठली, धावेके फूल इन सबका चूर्ण कर शहद मिला योनिमें धारण करनेसे योनिकी पिच्छिलता दूर होकर योनि स्वच्छ होजातीहै ॥ ११९ ॥

पलाशसर्जजम्बुत्वक्समङ्गामोचधातकीः ।
सपिच्छिलापरिक्लिन्नास्तस्भनःकल्कइष्यते ॥ १२० ॥

पलाशकी छाल, राल, जामुनकी छाल, वाराहीक्रान्ता, मोचरस और धावेके फूलोंको पीसकर कल्क बनावे। यह कल्क बारीक मलमलमें बांध योनिमें धारण करे तो योनिकी पिच्छिलता, क्लेद और स्राव दूर होताहै ॥ १२० ॥

स्तब्धानांकर्कशानाञ्चपिण्डोमादेवकारकः।
धारयेद्वेशवारंवापायसंकृसरंतथा ॥ १२१ ॥

वेसवार (धनियां, सरसों और सेंधानमक मिलाकर पीसाहुआ,) अथवा खिचडी या खीरका पिण्ड बनाकर योनिमें रखनेसे योनिकी कठोरता और स्तब्धता दूर होतीहै ॥ १२१ ॥

दुर्गन्धानांकषायःस्यात्तौवरःकल्कएववा।
चूर्णवासर्वगन्धानांपूतिगन्धापकर्षणम् ॥ १२२ ॥

योनिकी दुर्गंध दूर करनेके लिये सुगंधित द्रव्योंका क्वाथ, धनियेका कल्क और उत्तम सुगंधित तैल तथा सर्वगंधेका चूर्ण धारण करना चाहिये ॥ १२२ ॥

एवंयोनिषुशुद्धासुगर्भंविन्दन्तियोषितः।
अदुष्टेप्राकृतेबीजेजीवोपाक्रमणेसति ॥ १२३ ॥

इस प्रकार योनि शुद्ध होनेपर स्त्रियें विकाररहित वीर्यको ग्रहणकर गर्भको धारण करतीहैं। और रज, वीर्य शुद्ध होनेसे स्वाभाविक ही जीवका संचार होकर गर्भ रहजाताहै ॥ १२३ ॥

पुरुषचिकित्सानिर्देश।

पञ्चकर्मविशुद्धस्यपुरुषस्यापिचेन्द्रियम्।
परीक्ष्यवर्णैर्दोषाणांदुष्टंतद्घ्नैरुपाचरेत् ॥ १२४ ॥

इसी प्रकार यदि पुरुषका वीर्य दूषित हो तो उसको वमन, विरेचनादि पंच कर्म द्वारा शुद्ध कर फिर वीर्यके वर्णको देख उसीके दोषानुसार चिकित्सा करे ॥ १२४ ॥

योनिरोगोंका उपसंहार।

भवन्ति चात्र।

सलिङ्गाव्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सिताः।
उक्ताविस्तरशःसम्यङ्मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥ १२५ ॥

यहां पर कहतेहैं कि तत्त्वदर्शी महर्षि आत्रेयजीने इस प्रकार योनिव्यापक भिन्न २

१ दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र, नागकेशर, कक्कोल, लौंग, अगर और छारछबीला।

व्यापत्ति, लक्षण, निदान और चिकित्साका उत्तम रीतिसे विस्तार पूर्वक वर्णन किया है ॥ १२५ ॥

इति योनिरोगचिकित्सितम् ॥

अग्निवेशका वीर्यदोषमें प्रश्न ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपप्रच्छभिषजांवरम् । आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोषास्त्वयानघ ॥ १२६ ॥ रोगाध्यायेससुद्दिष्टाह्यष्टौपुंसामशेषतः । तेषांहेतुंभिषक्श्रेष्ठ ! दुष्टादुष्टस्यचाकृतिम् ॥ १२७ ॥ चिकित्सितञ्चकार्त्स्न्येनक्लैब्यंयच्चचतुर्विधम् । उपद्रवेषुयोनीनांप्रदरोयश्च कीर्त्तितः ॥ १२८ ॥ तेषांनिदानंलिङ्गञ्चचिकित्साञ्चैवतत्त्वतः । समासव्यासभेदेनप्रब्रूहिभिषजांवर ॥ १२९ ॥

इसके अनन्तर वैद्योंमें श्रेष्ठ महर्षि आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि हे निष्पाप वैद्यवर ! आपने सूत्रस्थानके अष्टोदरीय नामक रोगसंग्रहाध्यायमें वीर्यके आठ प्रकारके विकारोंका कथन कियाथा । हे भिषक् श्रेष्ठ ! उन आठ प्रकारके वीर्यदोषोंके हेतु, दुष्ट और अदुष्ट-वीर्यके लक्षण, संपूर्ण रूपसे उनकी चिकित्सा और चार प्रकारकी नपुंसकता और योनिरोगोंमें जो प्रदर रोग कहाहै उसका विशेषरूपसे निदान और चिकित्सा इन सबको संक्षेप और विस्तारसे यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १२६-१२९ ॥

तस्मैशुश्रूषमाणायप्रोवाचमुनिपुङ्गवः । बीजंयस्माद्व्यवायेषुहर्षयोनिसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तंतस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु ॥१३०॥

सुननेकी इच्छावाले उस अग्निवेशसे आत्रेयजी कहने लगे कि हर्ष और योनिस्पर्शसे उठने वाला वीर्य ही पुरुषार्थका मूल है यह तो पहिले ही कहचुके । अब इस वीर्यमें होनेवाले विकारोंको सुनो ॥ १३० ॥

दूषितवीर्यको गर्भमें असमर्थता ।

यथाबीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् । नविरोहतिसन्दुष्टंतथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥ १३१ ॥

जैसे अकालवृष्टि कृमि, कीट और अग्नि आदिसे, दूषितहुआ बीज पैदा नहीं होता उसी प्रकार दोषोंसे दूषित हुआ मनुष्योंका वीर्य भी गर्भको उत्पन्न नहीं करता ॥ १३१

वीर्य दूषित होनेके कारण ।

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानाञ्चसेवनात् । अकालेवाप्ययो-

नौवामैथुनंनचगच्छतः ॥ १३२ ॥ रूक्षतिक्तकषायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् । नारीणामरसज्ञानांस्त्रवणाज्जरयातथा ॥ १३३ ॥ चिन्ताशोकादविस्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् । भयात्क्रोधादतीसाराद्व्याधिभिःकर्षितस्यच ॥ १३४ ॥ वेगाघातात्क्षताच्चापिधातूनां संप्रदूषणात् । दोषाःपृथक्समस्तावाप्राप्यरेतोवहाःशिराः । शुक्रंसंदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिविभागशः ॥ १३५ ॥

अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यंत व्यायाम करनेसे, असात्म्य आहार विहारके सेवनसे, अकालमें मैथुन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, बिलकुल मैथुन न करनेसे तथा रूक्ष तिक्त और कषाय रसोंका अत्यंत सेवन करनेसे अकामा और अनभिज्ञ स्त्रीसे संगम करनेसे, प्रमेहसे, वृद्धावस्थासे, चिन्ता और शोकसे, अविश्रंभ अर्थात् मैथुनके समय किसी प्रकारका भय होनेसे, शस्त्र, क्षारकर्म और अग्निकर्मका मिथ्या प्रयोग होजानेसे, भयसे, क्रोधसे, अतिसारसे अथवा किसी अन्य व्याधि द्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, क्षतसे और किसी प्रकार वीर्यवाही नसके बिगडजानेसे और धातुओंके दूषित होनेसे दोष कुपित होकर पृथक् २ अथवा सब मिलकर वीर्यवाही नसोंमें प्राप्त हो वीर्यको दूषित करदेतेहैं । उनको आगे पृथक् २ कहतेहैं ॥ १३२–१३५ ॥

दूषित शुक्रके आठ भेद ।

फेनिलंतनुरूक्षंचविवर्णपूतिपिच्छिलम् ।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादितथाष्टमम् ॥ १३६ ॥

झागदार, अत्यंत पतला, रूक्ष, विवर्ण, दुर्गंधयुक्त, पिच्छिल मल, मूत्रादि वा रस रक्तादि धातुओंसे मिलाहुआ और अवसादि (गांठदार) यह आठप्रकारका शुक्र दूषित होताहै ॥ १३६ ॥

वातदूषित शुक्रके ल० ।

फेनिलंतनुरूक्षंचकृच्छ्रेणाल्पंचमारुतात् ।
भवत्युपहतंशुक्रंनतद्गर्भायकल्पते ॥ १३७ ॥

वातदूषित शुक्र झागदार, पतला, थोडा, रूक्ष तथा कष्टके साथ बहुत थोडा २ निकले । यह शुक्र वायुसे उपहत होनेके कारण गर्भकारक नहीं होसकता ॥ १३७ ॥

पित्तदूषित शुक्रके ल० ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगन्धिच ।
दहल्लिङ्गंविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ॥ १३८ ॥

पित्तदूषित वीर्य-नीलवर्णयुक्त, पीला; अत्यंत गरम, दुर्गंधयुक्त होताहै। यह निकलते समय लिंगेन्द्रियमें अग्निके समान दाह करताहुआ निकलता है ॥ १३८ ॥

कफदूषित शुक्र० ।

श्लेष्मणाबद्धमार्गन्तुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ॥ १३९ ॥

कफदूषित वीर्य-कफसे बद्धमार्ग होनेसे पिच्छिल (गाढा, गिलगिला) होताहै ॥ १३९ ॥

अन्यधातूपसंसृष्ट ।

स्त्रीणामत्यर्थगमनादभिघातात्क्षतादपि ।
शुक्रंप्रवर्त्ततेजन्तोःप्रायेणरुधिरान्वयम् ॥ १४० ॥

अत्यंत स्त्रीगमन करनेसे, अभिघातसे और क्षयके कारण वीर्य रुधिरसे मिलाहुआ निकलताहै इसेको अन्यधातुसंश्लिष्ट कहतेहैं ॥ १४० ॥

अवसादि शुक्रके ल० ।

वेगसन्धारणाच्छुक्रंवायुनाविहतंपथि । कृच्छ्रेणयातिग्रथितमवसादितथाष्टमम् । इतिदोपाःसमाख्याताःशुक्रस्याष्टौसलक्षणाः१४१

वीर्यके वेगको रोकलेनेसे वीर्यके मार्गमें वायु प्राप्त होकर वीर्यको ग्रंथित कर देता है। फिर वह गांठदार वीर्य बडी कठिनतासे निकलता है। उसको अवसादित वीर्य कहते हैं। इस प्रकार वीर्यके आठ दोषोंको लक्षण सहित कहाहै ॥ १४१ ॥

शुद्धशुक्रके ल० ।

स्निग्धंघनंपिच्छिलञ्चमधुरञ्चाविदाहिच ।
रेतःशुद्धंविजानीयाच्छ्वेतंस्फटिकसन्निभम् ॥ १४२ ॥

जो वीर्य चिकना, घना, पिच्छिल, अविदाही और स्फटिकमणिके समान सफेद हो उसको शुद्धवीर्य जानना ॥ १४२ ॥

दूषितवीर्यकी सामान्यचिकित्सा ।

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैःसुखैर्हितैः । रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापदिकैस्तथा । दुष्टंयथाभवेद्रेतस्ततस्तत्समुपाचरेत् ॥ १४३ ॥

दूषित शुक्रकी चिकित्सा वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए सुखकारी योगोंसे रक्तपित्त नाशक योगोंसे और योनिदोषनाशक योगोंसे करना चाहिये ॥ १४३ ॥

घृतञ्जीवनीयंयच्च्यवनप्राशएवच ।
गिरिजस्यप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥ १४४ ॥

जीवनीयघृत, च्यवनप्राश और शिलाजीतका प्रयोग करनेसे वीर्यके दोप दूर होते हैं ॥ १४४ ॥

वातदूषित वीर्यकी चि० ।

वातान्वितेहिताःशुक्रेनिरूहाःसानुवासनाः ॥ १४५ ॥

वातदूषित वीर्यमें निरूहण और अनुवासन वस्ति करना हितकारी है ॥ १४५ ॥

पित्तदूषित वीर्यकी चि० ।

अभयामलकीयश्चपैत्तेशस्तंरसायनम् ।
मागध्यमृतलोहानांत्रिफलायारसायनम् ॥ १४६ ॥

पित्तदूषित वीर्यमें अभयामलकीयाध्यायमें कहेहुए रसायनोंका प्रयोग करना हितकारक है । तथा पिप्पली रसायन, अमृतालोह और त्रिफलारसायनोंका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १४६ ॥

कफदूषित वीर्यमें चि० ।

कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच ॥ १४७ ॥

कफदूषित वीर्यमें भल्लातक रसायनका प्रयोग करना हितकारक है ॥ १४७ ॥

अन्यधातूपसृष्टवीर्यकी चि० ।

अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रंवीक्ष्यभिषक्क्रियाम् ।
यथादोषंप्रयोज्यंस्याद्दोषधातुभिषग्जितम् ।

अन्यधातुसे सम्मिलित शुक्र हो तो वैद्य दोषानुसार उचित चिकित्सा करे। दूषित शुक्रोंमें दोष, धातु आदि विचारकर उनके अनुसार ही चिकित्सा करना चाहिये ॥

सर्पिःपयोरसाःशालिर्यवगोधूमषष्टिकाः । प्रशस्ताःशुक्रदोषेषुवस्तिकर्म्मविशेषतः । इत्यष्टशुक्रदोषाणांमुनिनोक्तंचिकित्सितम् १४८

सब प्रकारके शुक्रदोषोंमें घृत, दूध, मासरस, शालीचावल, जौ, गेहूं और शाठी चावल, हितकारक होतेहै । विशेषकर वीर्य विकारोंमें वस्तिकर्मका प्रयोग श्रेष्ठ होताहै । इस प्रकार शुक्रदोषोंकी चिकित्साको आत्रेयजीने कहाहै ॥ १४८ ॥

क्लैब्यरोगका वर्णन ।

रेतोदोषोद्भवंक्लैब्यंयस्माच्छुद्ध्यैवासिद्ध्यति ।
ततोवक्ष्यामितेसम्यगग्निवेश ! यथायथम् ॥ १४९ ॥

वीर्यके दोषसे ही मनुष्योंको नपुंसकता उत्पन्न होतीहै और वीर्यके शुद्ध होनेपर नपुंसकता भी दूर होजातीहै। हे अग्निवेश ! अब क्लैब्य (नपुंसकता) का वर्णन करतेहैं सो तुम यथार्थरूपसे सुनो ॥ १४९ ॥

४ प्रकारसे नपुंसकताकी प्राप्ति।

बीजध्वजोपघाताभ्यांजरयाशुक्रसंक्षयात्।
क्लैब्यंसम्पद्यतेतस्यशृणुसामान्यलक्षणम् ॥ १५० ॥

नपुंसकता चार प्रकारके कारणोंसे होतीहै। जैसे बीजके उपघात होनेसे, लिंगेन्द्रियकी नसमें किसी प्रकारकी चोट लगजानेसे, बुढापेसे और वीर्यके क्षय होनेसे। अब नपुंसकताके लक्षणोंको सुनो ॥ १५० ॥

नपुंसकताके सामान्य लक्षण।

सङ्कल्पप्रवणोनित्यंप्रियांवश्यामपिस्त्रियम्। नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्यातिवायदि ॥ १५१ ॥ श्वासार्त्तःस्विन्नगात्रश्चमोघसंकल्पचेष्टितः। म्लानशिश्नश्चनिर्बीजःस्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम्। सामान्यलक्षणंह्येतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ॥ १५२ ॥

जो पुरुष स्त्री गमनकी इच्छा रखतेहुए भी अपनी प्यारी और वश्यस्त्रीसे भी लिंगकी शिथिलताके कारण मैथुन न करसके अथवा किसी प्रकार स्त्री गमनकरनेमें प्रयास भी करे तो श्वास चढजाय, अंगोंमें पसीने आजाय, संकल्प निष्फल होजाय और चेष्टाहीन होजाय, लिंगेन्द्रिय शिथिल, सिकडी हुई और निर्बीज हो यह नपुंसकताके सामान्य लक्षण हैं। अब विशेष लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

बीजोपघातक्लैब्यके हेतु, लक्षण।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात्। शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणाञ्चात्यर्थसेवनात् ॥ १५३ ॥ अभिचारादविस्रम्भाद्रसादीनाञ्चसंक्षयात्। वातादीनाञ्चवैषम्यात्तथैवानशनाच्छ्रमात् ॥१५४॥ नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्म्मापचारतः। बीजोपघाताद्भवतिपाण्डुवर्णःसुदुर्बलः ॥ १५५ ॥ अल्पप्राणोऽल्पहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः। हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः ॥१५६॥ छर्द्यतीसारशूलार्त्तः कासज्वरनिपीडितः। बीजोपघातजंक्लैब्यंध्वजभङ्गकृतंशृणु ॥१५७॥

शीतल, रूक्ष, अल्पसंश्लिष्ट, विरुद्ध और अजीर्णमें भोजन करनेसे शोक, चिन्ता, भय और त्राससे, स्त्रियोंका शक्तिसे वढकर सेवन करनेसे, अविचार और अविश्रम्भसे रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंकी विषमतासे, उपवास करनेसे, श्रमसे, अज्ञ और अवस्थाहीन स्त्रीसे गमन करनेसे और बीजमें किसी प्रकारका उपघात होनेसे मनुष्य पाण्डुवर्ण और अत्यंत दुर्बल होजाताहै। वह मनुष्य अल्पप्राण और अल्पहर्ष-वाला होनेसे यदि स्त्रीगमन करे तो उसको हृद्रोग (हृदयमें धडकन या पीडा) तमक-श्वास, कामला, व्यथा, थकावट, वमन, अतिसार, शूल, खांसी और ज्वरसे दुःख होताहै। यह बीजोपघात नपुंसकके लक्षण होते हैं अब ध्वजभंगके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १५३-१५७ ॥

ध्वजभंग नपुंसकताके हेतुलक्षण।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विषमा-त्पिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १५८ ॥ दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिक-र्षणात् । कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि ॥ १५९ ॥ दीर्घरो-मांचिरोत्सृष्टांतथैवचरजस्वलाम् । दुर्गन्धांदुष्टयोनिञ्चतथैवचपरि-स्नुताम् ॥ १६० ॥ ईदृशींप्रमदांमोहाद्योगच्छेत्कामहर्षितः। चतुष्प-दाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १६१ ॥ अधावनाद्वामेढ्रस्यश-स्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेषाच्छूकानाञ्चातिसेवनात् । रेतसश्चप्रतीघाताद्ध्वजभङ्गःप्रवर्त्तते ॥ १६२ ॥

अत्यंत खटाई, नमक, क्षार पदार्थोंके सेवनसे, विरुद्ध भोजन तथा अजीर्णमें भोजन करनेसे अत्यंत जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न, भारी पदार्थ, दही, दूध और अनूप मांसका अत्यंत सेवन करनेसे, रोगद्वारा शरीरके कर्षित होनेसे, बारह वर्षसे कम अव-स्थावाली कन्यासे गमन करनेसे, अयोनि मैथुन करनेसे, जिस स्त्रीकी योनिपर अत्यंत बडे २ बाल हों, बहुत देरमें स्खलित होतीहो, जो रजस्वला हो, जिसकी योनिसे दुर्गंध आतीहो, जिसकी योनिमें सदैव पानीका बहाव रहाकरे ऐसी स्त्रियोंमें कामसे हर्षितहो मोह-वश गमन करनेसे, चौपायोंसे मैथुन करनेसे, इन्द्रियमें किसी प्रकार चोट आदि आघात लगनेसे, इन्द्रीको सदैव विना धोये रखनेसे, शस्त्र, दांत, नख, आदिका घाव होनेसे इन्द्रीमें काष्ठ आदिका प्रहार होनेसे, इन्द्रीके पिसजानेसे, इन्द्रीको अत्यंत स्थूलकारक प्रयोगोंके करनेसे और वीर्यके प्रतिघात होनेसे ध्वजभंगनामक नपुंसकता उत्पन्न होतीहै ॥ १५८-१६२ ॥

ध्वजभंगके लक्षण ।

भवन्तियानिरूपाणितस्यवक्ष्याम्यतःपरम् । श्वयथुर्वेदनामेढ्रेरागश्चैवोपलक्ष्यते । स्फोटाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि॥ १६३ ॥ मांसवृद्धिर्भवेच्चास्यव्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि । पुलाकोदकसङ्काशःस्रावः श्यावारुणप्रभः ॥ १६४ ॥ वलयीकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहः । ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ १६५ ॥ रक्तं कृष्णंस्रवेच्चापिनीलमाविललोहितम् । अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रोदाहःसवेदनः ॥ १६६ ॥ वस्तौवृषणयोर्वापिसीवन्यांवंक्षणेषु च । कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्रावश्चजायते ॥ १६७ ॥ श्वयथुश्च भवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिराच्चपाकंव्रजतिशीघ्रंवाथ प्रमुच्यते ॥ १६८ ॥ जायन्तेक्रिमयश्चापिक्लिद्यतेपूतिगन्धिच । विशीर्य्यतेमणिश्चास्यमेढ्रंमुष्कावथापिच ॥ १६९ ॥ ध्वजभङ्गकृतंक्लैब्यमित्येतत्समुदाहृतम् । एवंपञ्चविधंकेचिद्ध्वजभङ्गंवदन्त्यपि ॥ १७० ॥

ध्वजभंग नंपुसकताके जो लक्षण होते हैं अब उनका कथन करते हैं । जैसे लिंगेन्द्रियमें सूजन, पीडा लालवर्ण होना, तीव्र फोडोंका होना, लिंगका पकजाना, लिंगका मांस बढजाना और लिंगमें झटपट घावोंका होजाना लिंगमेंसे चावलोंके मांडके समान स्राव होना, स्राव काला अथवा लालवर्णका होना, लिंगमें वल पडजाना, लिंग के ऊपरका मांस कठोरसा होजाना तथा उस मनुष्यको ज्वर, प्यास भ्रम मूर्च्छा और छर्दी हो यदि इसमें पित्तकी अधिकता हो, लाल, काला, नीला, आविलरूप (गदला) और ताम्रवर्णका स्राव हो, वस्ति दोनों वृषणों और सीवन तथा वंक्षणमें अग्निदग्धके समान तीव्र दाह और पीडा हो। यदि इसमें कफकी अधिकता हो तो पिच्छिल अथवा पाण्डुवर्णका स्राव होना,सूजन,मंदमंद पीडायुक्त गिलगिलाहटदार थोडासा स्राव होना देरमें पकना कभी शीघ्रतासे चिकित्सा करनेपर आराम प्रतीत हो और इसके व्रणोंमें कृमि, क्लेद, दुर्गंधि उत्पन्न होजाती है। यदि इसका उपाय शीघ्र न कियाजाय तो इन्द्रियकी सुपारी और अण्डकोश गलगलकर झिरने लगते हैं। यह ध्वजभंग नपुंसकके लक्षण हैं। कोई इस ध्वजभंगको पांच प्रकारका मानते हैं । चरकमें फिरंग और उपदंश ध्वजभंगके अन्तर्गत ही माना है ॥ १६३–१७० ॥

जरासंभव नपुंसकताके कारण और लक्षण।

क्लैब्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु। जघन्यमध्यप्रवरंवयस्त्रिविधमुच्यते ॥ १७१ ॥ अथप्रवयसांशुक्रंप्रायशःक्षीयतेनृणाम्। रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात् ॥ १७२ ॥ वलवीर्य्येन्द्रियाणाञ्चक्रमेणैवपरिक्षयात्। परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ १७३ ॥ जरासम्भवजंक्लैब्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम्। जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसुदुर्वलः ॥ १७४ ॥ विवर्णोविह्वलो दीनःक्षिप्रंव्याधिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थंक्षयजं शृणु ॥ १७५ ॥

अब हम जरासंभव नपुंसकोंके लक्षणोंको कहतेहैं सो श्रवणकरो। मनुष्यकी वाल्य, मध्य और वृद्ध यह तीन प्रकारकी अवस्था होतीहैं। वृद्धअवस्थामें स्वभावसे ही मनुष्योंका वीर्य क्षीण होजाताहै। रसादि धातुओंके क्षय होनेसे और वृष्य पदार्थोंका सेवन न करनेसे वल, वीर्य और इन्द्रियोंका क्रमपूर्वक क्षय होता जाताहै। तथा वल वीर्य आदिकोंके क्षय होनेसे आयुका क्षय, आहारमें अशक्ति, श्रम और क्लम यह सब वृद्धावस्थामें मनुष्योंके वीर्यक्षय, तथा जरासंभव नपुंसकताके कारण होतेहैं। इन कारणोंसे क्षीणधातु और दुर्वलहुआ मनुष्य विवर्ण, विह्वल, दीन और शीघ्र व्याधियोंसे पीडित होजाता है। इसको जरासंभव नपुंसक कहते हैं। अव क्षयज, क्लैब्य (नपुंसकता) के लक्षणोंको श्रवण करो ॥ १७१–१७५ ॥

क्षयजक्लीबताके हेतु लक्षण।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि। ईर्ष्योत्कण्ठादथोद्वेगान्सदाविशतियोनरः ॥ १७६ ॥ कृशोवासेवतेरूक्षमन्नपानमथौषधम्। दुर्वलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्यदि ॥ १७७ ॥ असात्म्यभोजनाच्चापिहृदयेयोव्यवस्थितः । रसःप्रधानधातुर्हिक्षीयेताशुनरस्ततः ॥ १७८ ॥ रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्तस्यदेहिनः । शुक्रावसानास्तेभ्योहिशुक्रंधामपरंमतम् ॥ १७९ ॥ चेतसोवातिहर्षेण व्यवायंसेवतेतुयः । शुक्रन्तुक्षीयतेतस्यततःप्राप्नोतिसक्षयम् । घोरंव्याधिमवाप्नोतिमरणंवासगच्छति ॥ १८० ॥

जो अत्यन्त चिन्ता, शोक, क्रोध, भय, ईर्षा और उत्कंठा अथवा उद्वेगके कारण सदा ध्यानपरायणसा रहताहै और जो मनुष्य कृशशरीर होनेहुए भी रूक्ष अन्नपान और रूक्ष औषधका सेवन करताहै, जो स्वभावसे ही दुर्बल मनुष्य अत्यन्त उपवास करताहै वा असात्म्य भोजन करे। उसका हृदयस्थ प्रधान रसधातु क्षीण होजाताहै। उस रसधातुके क्षीण होनेसे मनुष्यकी रक्तसे वीर्यपर्यन्त संपूर्ण धातुएं क्षीण होजातीहैं। क्योंकि संपूर्ण धातुओंका परमधाम अर्थात् तेज वीर्य ही होताहै। जो मनुष्य अति हर्षपूर्वक अत्यंत मैथुन करताहै उसका वीर्य भी अत्यन्त क्षीण होजाताहै। इन कारणोंसे मनुष्यका वीर्य और शारीरिक धातुएं क्षीण होजातीहैं तथा उसको क्षयजनित नपुंसकता उत्पन्न होतीहै उससे मनुष्यको क्षय होजाता तथा उसके शरीरमें अनेक प्रकारकी घोर व्याधियें उत्पन्न होतीहैं अथवा इस प्रकार धातुओंके क्षय होनेसे मनुष्य मृत्युको प्राप्त होताहै ॥ १७६–१८० ॥

शुक्रंतस्माद्विशेषेणरक्ष्यमारोग्यमिच्छता ।
एतन्निदानलिङ्गाभ्यामुक्तंक्लैब्यंचतुर्विधम् ॥ १८१ ॥

इसलिये आरोग्यताकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषतापूर्वक शुक्रकी रक्षामें सावधान रहना चाहिये। इस प्रकार चार प्रकारकी क्लैब्यताके निदान और लक्षणोंको कहाहै ॥ १८१ ॥

केचित्क्लैब्येत्वसाध्येद्वेध्वजभङ्गक्षयोद्भवे ।
वदन्तिशेफसश्छेदाद्वृषणोत्पाटनेनवा ॥ १८२ ॥

कोई इनमें ध्वजभंग और क्षयज इन दो प्रकारकी क्लीवताको असाध्य मानतेहैं और लिंगके गिरजानेसे अथवा लिंगकी नसके कटजानेसे तथा फोतोंके फटकर झरजानेसे जो नपुंसकता होतीहै वह भी असाध्य होतीहै ॥ १८२ ॥

मातृपितृदोषज नपुंसकता ।

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चाकृतात्मनः । गर्भस्थस्ययदादोषाः प्राप्यरेतोवहाःशिराः । शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥ ॥ १८३ ॥ तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान् । एतेत्वसाध्या व्याख्याताःसन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ १८४ ॥

मातापिताके वीर्यदोषसे और पूर्वजन्मके कियेहुए अशुभकर्मोंसे गर्भस्थ मनुष्यकी वीर्यवाही नसोंमें वातादि दोष प्राप्त होकर उनको सुखादेतेहैं। वीर्यवाही नसोंके सूखनेसे वीर्य भी नष्ट होजाताहै। इसलिये वह मनुष्य सर्वांगसंपूर्ण होतेहुए भी पुरुषत्वहीन होताहै अर्थात् नपुंसक होताहै। यह लिंगभेदजनित नपुंसक और वृषणोत्पाटन तथा मातृपितृदोषज नपुंसक सन्निपातसमुच्छ्रित होनेसे असाध्य होतेहैं ॥ १८३ ॥ १८४ ॥

क्लैब्य (नपुंसकता) रोगकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमतस्तूर्ध्वंसमासव्यासतःशृणु । शुक्रदोषेषुनिर्दिष्टंभेषजंयन्मयानघ । क्लैब्योपशान्तयेकुर्य्यात्क्षीणक्षतहितञ्चयत्॥१८५॥ वस्तयःक्षीरसर्पींषिवृष्ययोगाश्चयेमताः । रसायनप्रयोगाश्चसर्वानेतान्प्रयोजयेत् । समीक्ष्यदेहदोषाग्नीन्बलभेषजकालवित्॥१८६॥

अब साध्य नपुंसकोंकी संक्षेप और विस्तारसे चिकित्साको कहतेहैं सो सुनो। हे अनघ ! शुक्रदोषकी शांतिके लिये जिन औषधियोंका हम वर्णन करआये हैं। क्लैब्यदोषकी शांतिके लिये भी उन्हीं औषधोंका प्रयोग करना चाहिये । तथा क्षतक्षीण रोगमें जो चिकित्सा औषधि आदि कहीहै उसका प्रयोग करना भी हितकारक है तथा वैद्य रोगीका देह, दोष, अग्निबल विचार और औषधकालकी परीक्षा करके वस्तिकर्म, औषधियोंसे सिद्ध किये घृत तथा वृष्य योग और रसायन प्रयोगोंका सेवन करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

व्यवायहेतुजंक्लैब्यंयत्स्याद्धेतुविपर्य्ययात् । दैवव्यपाश्रयैश्चैवभेषजैश्चाभिचारजम् । समासेनैतदुद्दिष्टंभेषजंक्लैब्यशान्तये ॥१८७॥

जो अत्यन्त मैथुन करनेसे नपुंसक हुआहो उसको मैथुनका परित्याग करा वृष्य योगोंका सेवन करावे । अभिचार अर्थात् किसी मंत्रतंत्रादिसे उत्पन्नहुई क्लीबतामें दैवव्यपाश्रय अर्थात् अभिमंत्रित औषधियोंका प्रयोग करे । संक्षेपसे नपुंसकताकी शांतिके लिये औषध चिकित्साका कथन करदियाहै ॥ १८७ ॥

बीजोपघातज क्लैब्यकी चिकित्सा ।

विस्तरेणप्रवक्ष्यामिक्लैब्यानांभेषजंपुनः । सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्य स्नेहयुक्तंविरेचनम् । अनुवासनंततःकुर्य्यादथवास्थापनंपुनः॥१८८॥ प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत् । पलाशैरण्डमुस्ताद्यैः पश्चादास्थापयेत्ततः ॥ १८९ ॥

अब विशेषतासे क्लैब्यरोगसे पीडित मनुष्योंकी चिकित्साको कहतेहैं। प्रथम क्लैब्यरोगी, स्वेदन और स्नेहन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवे । फिर बुद्धिमान् वैद्य उस रोगीको अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे । पीछे ढाकका छिलका एरंडकी जडका छिलका और नागरमोथा आदि द्रव्योंके क्वाथसे आस्थापनवस्ति करे॥१८८॥१८९॥

वाजीकरणयोगाश्चपूर्वयेसमुदाहृताः ।
भिषजातेप्रयोज्याःस्युःक्लैब्येबीजोपघातजे ॥ १९० ॥

इस प्रकार वस्तिकर्म आदि करनेके अनन्तर वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए वाजीकरण योगोंका वैद्य विधिवत् प्रयोग करे तो बीजोपघातजनित नपुंसकता दूर होतीहै ॥ १९० ॥

ध्वजभंगकी चिकित्सा ।

ध्वजभङ्गकृतंक्लैब्यंज्ञात्वातस्याचरेत्क्रियाम् । प्रदेहान्परिषेकांश्च कुर्य्याद्वारक्तमोक्षणम् । स्नेहपानश्चकुर्वीतसस्नेहंवाविरेचनम्॥१९१॥ अनुवासंततःकुर्य्यादथवास्थापनंपुनः । व्रणवच्चक्रियाः सर्वास्तत्र कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ १९२ ॥

ध्वजभंगजनित नपुंसकतामें-प्रलेप, परिषेक और दुष्ट रुधिरका निकालना हितकारक है । तथा स्नेहपान और स्नेहयुक्त विरेचन कराना फिर अनुवासन, उसके अनन्तर आस्थापन क्रिया करना हितकारक है। ध्वजभंगके घावोंमें चतुर वैद्य संपूर्ण क्रिया व्रणरोगके समान करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

जरासंभव और क्षयज क्लैब्यकी चि० ।

जरासम्भवजेक्लैब्येक्षयजेचैवकारयेत् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहं शोधनंहितम् ॥ १९३ ॥ क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः । रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥ १९४ ॥

जरासंभव और क्षयज नपुंसकतामें स्नेहन और स्वेदन करके उचित रीतिपर मृदु, स्निग्ध, शोधन क्रिया करना चाहिये । तथा इन दोनों प्रकारके क्लैब्योंमें वृष्ययोगोंसे सिद्ध किये हुए घृत और दूध, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग करना चाहिये ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैब्यानांभेषजंमया ॥ १९५ ॥

इस प्रकार विस्तारपूर्वक हमने नपुंसकोंके लिये औषध चिकित्साका कथन कियाहै ॥ १९५ ॥

प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् । यात्यर्थंसेवतेनारीलवणाम्लगुरूणिच । कटून्यथविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच॥१९६॥

आन्यौदकानिमेध्यानिकृसरंपायसंदधि । शुक्तमस्तुसुरादीनिभ-जन्त्याःकुपितोऽनिलः ॥ १९७॥ रक्तंप्रमाणमुत्क्रम्यगर्भाशयगताः शिराः । रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः । यस्माद्विवर्द्धयत्याशुरक्तपित्तंसमारुतम् ॥ १९८ ॥ तस्मादसृग्दरंप्राहुरेतत्तन्त्र-विशारदाः । रजःप्रदीर्य्यतेयस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥ १९९ ॥

पहिले प्रदररोगको कह आयेहैं अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको सुनो। जो स्त्री अत्यंत नमक, खटाई, भारी पदार्थ, चरपरे पदार्थ, विदाही अन्नपान, स्निग्ध द्रव्य, मांस, ग्राम्य और जलजजीवोंके मांस, अभिष्यन्दी पदार्थ, खिचडी, खीर, दही, सिरका, दधिमण्ड और सुरा आदिका निरन्तर और अत्यंत सेवन करतीहैं उनके शरीरमें वायुका कोप होताहै और रक्त अत्यन्त बढजाताहै उस समय कुपित हुआ वायु रक्तमें मिलकर गर्भस्थ मासिक रजवाहिनी शिराओंमें आश्रित होकर रजकी वृद्धि करता है वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले इस वायुयुक्त रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहते हैं । क्योंकि इस रोगमें स्त्रीके रजका प्रदरण (स्रवण) होताहै इसलिये इस रोगको प्रदर कहते हैं ॥ १९६-१९९ ॥

प्रदररोगके चार भेद।

सामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणंलिङ्गमेवच ।
चतुर्विधंव्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः ।
अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिषग्जितम् ॥ २०० ॥

संक्षेपसे प्रदररोगके कारण और लक्षणोंको कथन कर दियाहै और विशेषतासे प्रदररोग चार प्रकारका होताहै । जैसे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज । अब इन चार प्रकारके प्रदरोंके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करतेहैं ॥ २०० ॥

वातजप्रदरके हेतु, लक्षण।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् । कुपितःप्रदरंकुर्य्याल्लिङ्गंतस्यचमेशृणु ॥ २०१ ॥ फेनिलंतनुरूक्षञ्चश्यावमारुणमेवच । किंशुकोदकसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥ २०२ ॥ कटीवंक्षणहृत्पार्श्वपृष्ठश्रोणिपुमारुतः । कुरुतेवेदनांतीव्रामेतद्वातात्मकंविदुः ॥२०३॥

रूक्ष आदि वातकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु कुपित होकर रक्तमें प्राप्त हो रक्तकी प्रवृत्ति कर देताहै अर्थात् वातजनित प्रदररोगको उत्पन्न करताहै उसके ये लक्षण होते

वाजीकरणयोगाश्चपूर्वंयेसमुदाहृताः ।
भिषजातेप्रयोज्याःस्युःक्लैब्येबीजोपघातजे ॥ १९० ॥

इस प्रकार वस्तिकर्म आदि करनेके अनन्तर वाजीकरणाध्यायमें कहेहुए वाजीकरण योगोंका वैद्य विधिवत् प्रयोग करे तो बीजोपघातजनित नपुंसकता दूर होतीहै ॥ १९० ॥

ध्वजभंगकी चिकित्सा ।

ध्वजभङ्गकृतंक्लैब्यंज्ञात्वातस्याचरेत्क्रियाम् । प्रदेहान्परिषेकांश्च कुर्य्याद्वारक्तमोक्षणम् । स्नेहपानञ्चकुर्वीतसस्नेहंवाविरेचनम्१९१॥ अनुवासंततःकुर्य्यादथवास्थापनंपुनः । व्रणवच्चक्रियाः सर्वास्तत्र कुर्य्याद्विचक्षणः ॥ १९२ ॥

ध्वजभंगजनित नपुंसकतामें-प्रलेप, परिषेक और दुष्ट रुधिरका निकालना हितकारक है । तथा स्नेहपान और स्नेहयुक्त विरेचन कराना फिर अनुवासन, उसके अनन्तर आस्थापन क्रिया करना हितकारक है। ध्वजभंगके घावोंमें चतुर वैद्य संपूर्ण क्रिया व्रणरोगके समान करे ॥ १९१ ॥ १९२ ॥

जरासंभव और क्षयज क्लैब्यकी चि० ।

जरासम्भवजेक्लैब्येक्षयजेचैवकारयेत् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहं शोधनंहितम् ॥ १९३ ॥ क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगाबस्तयश्चैवयापनाः । रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥ १९४ ॥

जरासंभव और क्षयज नपुंसकतामें स्नेहन और स्वेदन करके उचित रीतिपर मृदु, स्निग्ध, शोधन क्रिया करना चाहिये । तथा इन दोनों प्रकारके क्लैब्योंमें वृष्ययोगोंसे सिद्ध किये हुए घृत और दूध, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग करना चाहिये ॥ १९३ ॥ १९४ ॥

विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैब्यानांभेषजंमया ॥ १९५ ॥

इस प्रकार विस्तारपूर्वक हमने नपुंसकोंके लिये औषध चिकित्साका कथन कियाहै ॥ १९५ ॥

प्रदररोगके सामान्य हेतु और संप्राप्ति ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् । यात्यर्थंसेवतेनारीलवणाम्लगुरूणिच । कटून्यथविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच॥१९६॥

ग्राम्यौदकानिमेध्यानिकृसरंपायसंदधि । शुक्तमस्तुसुरादीनिभ-जन्त्याःकुपितोऽनिलः ॥ १९७॥ रक्तंप्रमाणमुत्क्रम्यगर्भाशयगताः शिराः । रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः । यस्माद्विवर्द्धय-त्याशुरक्तपित्तंसमारुतम् ॥ १९८ ॥ तस्मादसृग्दरंप्राहुरेतत्तन्त्र-विशारदाः । रजःप्रदीर्य्यतेयस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥ १९९ ॥

पहिले प्रदररोगको कह आयेहैं अब उसके हेतु, लक्षण और चिकित्साको सुनो । जो स्त्री अत्यंत नमक, खटाई, भारी पदार्थ, चरपरे पदार्थ, विदाही अन्नपान, स्निग्ध द्रव्य, मांस, ग्राम्य और जलजजीवोंके मांस, अभिष्यन्दी पदार्थ, खिचडी, खीर, दही, सिरका, दधिमण्ड और सुरा आदिका निरन्तर और अत्यंत सेवन करतीहैं उनके शरीरमें वायुका कोप होताहै और रक्त अत्यन्त बढजाताहै उस समय कुपित हुआ वायु रक्तमें मिलकर गर्भस्थ मासिक रजवाहिनी शिराओंमें आश्रित होकर रजकी वृद्धि करता है वैद्यक शास्त्रके जाननेवाले इस वायुयुक्त रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहते हैं । क्योंकि इस रोगमें स्त्रीके रजका प्रदरण (स्रवण) होताहै इसलिये इस रोगको प्रदर कहते हैं ॥ १९६-१९९ ॥

प्रदररोगके चार भेद ।

सामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणंलिङ्गमेवच ।
चतुर्विधंव्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः ।
अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिषग्जितम् ॥ २०० ॥

संक्षेपसे प्रदररोगके कारण और लक्षणोंको कथन कर दियाहै और विशेषतासे प्रदररोग चार प्रकारका होताहै । जैसे वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज । अब इन चार प्रकारके प्रदरोंके हेतु, लक्षण और चिकित्साको कथन करतेहैं ॥ २०० ॥

वातजप्रदरके हेतु, लक्षण ।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् । कुपितःप्रदरंकुर्य्याल्लिङ्गंत-स्यचमेशृणु ॥ २०१ ॥ फेनिलंतनुरूक्षञ्चश्यावमारुणमेवच । किं-शुकोदकसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥ २०२ ॥ कटीवंक्षणहृत्पार्श्व-पृष्ठश्रोणिषुमारुतः । कुरुतेवेदनांतीव्रामेतद्वातात्मकंविदुः ॥२०३॥

रूक्ष आदि वातकारक पदार्थोंके सेवनसे वायु कुपित होकर रक्तमें प्राप्त हो रक्तकी प्रवृत्ति कर देताहै अर्थात् वातजनित प्रदररोगको उत्पन्न करताहै उसके ये लक्षण होते

हैं । वातजनित प्रदरका रक्त झागदार, पतला, रूक्ष, श्याम, अरुण और केसुओंके जलके समान होताहै । वह पीडाके साथ अथवा विनाही पीडासे भी स्रवताहै । और उस स्त्रीके कमर, वंक्षण (पेडू) हृदय, पार्श्व, पीठ और नितम्बोंमें वातजनित तीव्र पीडा उत्पन्न होती है । इन लक्षणोंवाला वायुका प्रदर जानना ॥ २०१–२०३ ॥

पित्तज प्रदरके हेतु, लक्षण ।

अम्लोष्णलवणक्षारैःपित्तंप्रकुपितंयदा । पूर्ववत्प्रदरंकुर्य्यात्पैत्तिकंलिङ्गतःशृणु ॥ २०४ ॥ सनीलमथवापीतमत्युष्णमसितंतथा । नितान्तरक्तंस्रवतिमुहुर्मुहुरथार्त्तिमत् ॥२०५॥ विदाहरागतृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम्।असृग्दरंपैत्तिकंतुश्लैष्मिकंतुप्रवक्ष्यते ॥२०६॥

खट्टे, गर्म, नमकीन और खारे पदार्थोंके अत्यंत सेवन करनेसे कुपितहुआ पित्त मासिक रजवाहनी शिराओंमें प्राप्त होकर रक्तकी वृद्धिकर पित्तज प्रदरको उत्पन्न करताहै उसके लक्षणोंको श्रवण करो । पित्तजनित प्रदरमें रक्तका वर्ण नीला, पीला और काले वर्णका होताहै तथा यह रक्त अत्यंत गरम और वारंवार पीडाके साथ निरन्तर स्राव होता रहताहै । इसमें विदाह, राग, प्यास, ज्वर और भ्रम यह लक्षण होतेहैं । इसको पित्तजनित प्रदर कहतेहैं । अब कफजनित प्रदरके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ २०४ ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

कफज प्रदरके हेतु ल० ।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्चपूर्ववत्कुपितःकफः। प्रदरंकुरुतेतस्यलक्षणंतत्त्वतःशृणु ॥ २०७ ॥ पिच्छिलंपाण्डुवर्णञ्चगुरुस्निग्धञ्चशीतलम् । स्रवत्यसृक्श्लेष्मलञ्चतथामन्दरुजाकरम् । छर्द्यरोचकहृल्लासश्वासकाससमन्वितम् ॥ २०८ ॥

भारी पदार्थोंके खानेसे तथा कफके उपकारक आहारविहारके सेवनसे कुपित हुआ कफ पूर्वके समान रजवाही नसोंमें प्रवेश हो कफजनित प्रदरको दूर करताहै । उसके यह लक्षण होतेहैं । कफजनित प्रदरका रक्त पिच्छिल, पाण्डुवर्ण,भारी,चिकना, शीतल और कफयुक्त रुधिरका स्राव होताहै । इसमें मंद पीडा,वमन, अरुचि,हृल्लास, श्वास और खांसी यह लक्षण होतेहैं ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

त्रिदोषज प्रदर हेतु, लक्षण ।

वक्ष्यतेक्षीरदोषाणांसामान्यमिहकारणम् ।
यत्तदेवत्रिदोषस्यकारणंप्रदरस्यतु ॥ २०९ ॥

इसके आगे स्तन्यदोषोंके जो सामान्य कारण कहेंगे वही त्रिदोषजनित प्रदरके कारण जानना चाहिये । त्रिदोषज लक्षणोंमे युक्त प्रदर एक अवस्थावाला नहीं होता उसमें त्रिदोषजनित अनेकरूप होतेहैं ॥ २०९ ॥

त्रिलिङ्गसंयुतंविद्यान्नैकावस्थमसृग्दरम् । नारीत्वतिपरिक्लिष्टायदाप्रक्षीणशोणिता । सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तदानिलः॥२१०॥ रक्तमार्गेणसृजतिप्रत्यनीककरंकफम् । दुर्गन्धंपिच्छिलंपीतंविदग्धंपित्ततेजसा ॥ २११॥ वसांमेदश्चयावद्धिसमुपादायवेगवान् । सृजत्यपत्यमार्गेणसर्पिर्मज्जावसोपमम् ॥ २१२ ॥ शश्वत्स्रवत्यथास्रावंतृष्णादाहज्वरान्विताम् । क्षीणरक्तांदुर्बलाश्चतामसाध्यांविवर्जयेत् ॥ २१३ ॥

रक्तस्राव होनसे स्त्री क्रमपूर्वक अत्यंत परिक्लिष्ट और क्षीणरक्त होर्तीहै । उस समय संपूर्ण दोषोंको कुपित करनेवाले हेतुओंके आचरण करनेसे वृद्धिको प्राप्तहुए वात, पित्त, कफ कोपको प्राप्त हो रक्तमार्गमे रजवाहिनी नसोंमें प्राप्त होकर योनिद्वारा रक्तको साध्य असाध्य कफको निकालतेहैं । उस त्रिदोषजनित प्रदरका रक्त पित्तके तेजसे दुर्गंधित पिच्छिल और विदग्ध होताहै । वेगवान् वायु शरीरकी चर्बी और मेदको लेकर घृत, मज्जा और वसाके समान वर्णवाला स्राव योनिमार्गसे निरन्तर कराताहै। इस प्रकार त्रिदोषजनित प्रदरमे स्त्रीको प्यास, दाह और ज्वर होताहै इस क्षीणरक्ता दुर्बला स्त्रीको असाध्य जानकर त्यागदेना चाहिये ॥ २१०-२१३ ॥

शुद्ध रजके लक्षण ।

मासान्निष्पिच्छदाहार्तिपञ्चरात्रानुबन्धिच । नैवातिबहुलात्यल्पमार्त्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ २१४ ॥ गुञ्जाफलसवर्णञ्चपद्मालक्तकसन्निभम् । इन्द्रगोपकसङ्काशमार्त्तवंशुद्धमेवतत् ॥ २१५ ॥

जिस स्त्रीका महीनेर ऋतुधर्मवती होकर पांचरात्रिपर्यन्त पिच्छिलता और दाहरहित तथा पीडारहित न बहुत ज्यादा न बहुत कम ठीक समयानुसार मासिक ऋतुका रुधिर गिरे उसको शुद्ध रज जानना । यह रक्त गुंजाफलके समान लालवर्णका, लाल कमलके समान अथवा लाखके रसके समान या बीरबहूटीके समान लालवर्णका होताहै उसको शुद्ध रज जानना चाहिये ॥ २१४ ॥ २१५ ॥

प्रदररोगकी चिकित्साका निर्देश ।

योनीनांवातलाद्यानांयदुक्तमिहभेषजम् ।
चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वंकारयेद्भिषक् ॥ २१६ ॥

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज योनिरोगोंमें जो चिकित्साका कथन कियाहै वही चिकित्सा चार प्रकारके प्रदररोगमें भी वैद्य करे ॥ २१६ ॥

रक्तातिसारिणांयच्चतथाशोणितपित्तिनाम् ।
रक्तार्शसाञ्चयत्प्रोक्तंभेषजंतच्चकारयेत् ॥ २१७ ॥

रक्तातिसार और रक्तपित्तमें तथा रुधिरकी ववासीरमें जो औषधि प्रयोग कथन कियेहै वही प्रदररोगको दूर करनेके लिये सेवन कराने चाहिये ॥ २१७ ॥

अथ स्तन्यदोषचिकित्सा ।

धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतः पुरा । स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम् ॥ २१८ ॥ वातादिदुष्टेलिंगञ्चक्षीणस्यचचिकित्सितम् । तत्सर्वमुक्तंयेत्वष्टौक्षीरदोषाःप्रकीर्त्तिताः ॥ २१९ ॥ वातादिष्वेवतान्विद्याच्छास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः । त्रिविधास्तुयतःशिष्यास्ततोवक्ष्यामिविस्तरम् ॥ २२० ॥

पहिले धाईके स्तन्य अर्थात् स्त्रीके स्तनोंके दूधका वर्णन जातिसूत्रीयाध्यायमें विशेष रूपसे कहचुकेहैं तथा उसी अध्यायमें दूधके बढानेवाली और दूधके दोषोंको शोधन करनेकी चिकित्सा भी कहचुकेहैं । और वातादिदोषोंसे दूषितहुए स्तनोंके दूधके लक्षण और चिकित्सा भी कही जा चुकीहै तथा अष्टोदरीय अध्यायमें आठ प्रकारके क्षीरदोषोंका वर्णन भी किया जा चुकाहै । शास्त्रको जाननेवाला बुद्धिमान् वैद्य वातादि दोषोंके लक्षण देखकर जैसा विकार हो वैसी चिकित्सा करे । परन्तु मध्यम और हीन बुद्धिके वैद्य उस प्रकार वर्णन कियेहुए निदान, चिकित्सा द्वारा यथोचित लाभ नहीं उठा सकते । उनके लिये अब फिर स्थूलरूपसे वर्णन करतेहैं क्योंकि शिष्य उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भेदोंसे तीन प्रकारके होतेहैं २१८–२००

स्तन्यदोषोंके हेतु ।

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् । लवणाम्लकटुक्षारप्रक्लिन्नानाञ्चसेवनात् ॥ २२१ ॥ मनःशरीरसन्तापादस्वप्नान्निशिचिन्तनात् । प्राप्तवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेनच ॥ २२२ ॥

परमान्नंगुडकृतंकृशरंदधिमत्स्यकम् । अभिष्यन्दीनिमांसानिग्राम्यानूपौदकानिच ॥ २२३ ॥ भुक्त्वाभुक्त्वादिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात् । अनायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्शनैः ॥ २२४ ॥ दोषाःक्षीरवहाःप्राप्यशिराःस्तन्यंप्रदूष्यच । कुर्युरष्टविधंभूयो दोषास्तान्मेनिबोधत ॥ २२५ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे, अथवा अजीर्णसे असात्म्य, विषम, विरुद्ध और अत्यंत भोजनके करनेसे, नमकीन, खट्टे, चरपरे, खारे और क्लेदकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे, मानसिक संताप और शारीरिक संतापसे, रात्रिमें न सोनेसे, अत्यंत चिन्ता होनेसे, आयेहुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, वेग विना ही मलमूत्रादिके त्याग करनेका यत्न करनेसे, गुडसे बनेहुए पक्वान्न, खिचडी, दही, मछली, अभिष्यंदी, ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंका मांस अधिक सेवन करनेसे, नित्यप्रति भोजन करतेही दिनमें सोजानेसे अथवा विना भोजन कियेही दिनमें सोजानेसे, अत्यन्त मद्यके पीनेसे किसी प्रकारका प्रयास न कर आलसी बैठे रहनेसे किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, क्रोधसे और रोगद्वारा शरीरके कृश होजानेसे वातादि दोष कुपित होकर क्षीरवाही शिराओंमें प्राप्त हो स्तनोंके दूधको दूषित कर आठ प्रकारके स्तन्यदोषोंको करतेहैं। उनको मुझसे श्रवण करो ॥ २२१-२२५ ॥

वातादिभेदसे उनके लक्षण।

वैरस्यंफेनसंघातंरौक्ष्यञ्चेत्यनिलात्मके । पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्नेहपैच्छिल्यगौरवम् । कफाद्भवतिरूक्षाद्यैरनिलःस्वैःप्रकोपनैः ॥ ॥ २२६ ॥ क्रुद्धःक्षीराशयंप्राप्यरसंस्तन्यस्यदूषयेत् । विरसंवातसंसृष्टंकृशीभवतितत्पिबन् । नचास्यस्वदतेक्षीरंकृच्छ्रेणचविवर्द्धते ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके स्तनोंका दूध विरस, झागदार और रूक्ष होताहै। पित्तदूषित स्तन्य विवर्ण और दुर्गंधित होताहै। कफदूषित स्तन्य स्निग्ध, पिच्छल और भारी होताहै। वायु अपने रूक्ष आदि कारणोंसे कोपको प्राप्त हो दुग्धाशयमें प्राप्त होजाताहै। तब स्तन्य रसको दूषित करदेताहै। उस वातसंसृष्ट विरस दूधके पीनेसे बालक कृश होजाताहै। और दूध पीनेमें बालककी रुचि नहीं रहती, वह बालक बडी कठिनतासे कुछ कुछ वृद्धिको प्राप्त होताहै ॥ २२६ ॥ २२७ ॥

वातदूषित स्तन्यके दोष ।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन् । करोतिफेनसंघाततंतत्तु-कृच्छ्रात्प्रवर्तते ॥ २२८ ॥ तेनक्षामस्वरोबालोबद्धविण्मूत्र-मारुतः । वातिकंशीर्षरोगंवापीनसंवाधिगच्छति ॥ २२९ ॥ पूर्वव-त्कुपितःस्तन्येस्नेहंशोषयतेऽनिलः । रूक्षंतत्पिबतोरौक्ष्याद्बलह्रास-श्चजायते ॥ २३० ॥

जब वही वायु कुपित होकर स्तनोंके भीतर प्राप्त हो दूधको मन्थन करताहै उससे दूध झागदार और थोडा २ निकलताहै । उसके पीनेसे बालकको स्वरभंग, मलमूत्रका विबंध, वातजनित शिरोरोग और प्रतिश्याय होताहै । वही वायु कुपित होकर स्तन्यके स्नेहभागको शोषण करडाले तो उससे दूध रूक्ष होजाताहै । उस रूक्ष दूधको पीनेसे रूक्षताके कारण बालकके बलका ह्रास होताहै ॥ २२८–२३० ॥

पित्तदूषित स्तन्यके लक्षण ।

पित्तमुष्णादिभिःक्रुद्धंस्तन्याशयमभिप्लुतम् ।करोतिस्तन्यवैवर्ण्य-नीलपीतासितादिकम् ॥ २३१ ॥ विवर्णगात्रःस्विन्नःस्यात्तृष्णालु-र्भिन्नविट्शिशुः। नित्यमुष्णशरीरश्चनाभिनन्दतितस्तनम्॥२३२॥ पूर्ववत्कुपितेपित्तेदौर्गन्ध्यंक्षीरमृच्छति । पाण्ड्वामयस्तत्पिबतःका-मलाचभवेच्छिशोः ॥ २३३ ॥

उष्ण आदि पित्तकारक हेतुओंसे कुपितहुआ पित्त स्तनोंमें प्राप्त होकर दूधके रसको विगाड देताहै । जिससे दूध विवर्ण, नीला, पीला और काला आदि वर्णोंवाला होजाताहै । इस पित्तदूषित दूधके पीनेसे बालक विवर्ण, सदैव स्वेदयुक्त और तृषातुर रहताहै तथा इस बालकको पतले दस्त लगते हैं शरीर गर्म रहताहै और वह दूध पीनेकी इच्छा नहीं करता । जब वह पित्त उसी प्रकार कुपित हो दूधको विगाडताहै तब दूधमेंसे दुर्गंध आने लगतीहै । इस दूधके पीनेसे बालकको पाण्डुरोग और कामलारोग उत्पन्न होताहै २३१–२३३ ॥

कफदूषित स्तन्यके लक्षण ।

क्रुद्धोगुर्वादिभिःश्लेष्माक्षीराशयगतःस्त्रियाः । स्नेहान्वितत्वात्त-त्क्षीरमतिस्निग्धंकरोतितु ॥ २३४ ॥ छर्दनःकुन्थनस्तेनलालालु-र्जायतेशिशुः । नित्योपदिग्धैःस्रोतोभिर्निद्राक्लमसमन्वितः । श्वा-

सकासपरीतस्तुप्रसेकतमकान्वितः ॥ २३५ ॥ अभिभूयकफःस्तन्यंपिच्छिलंकुरुतेयदा । लालालुःशूनवक्त्राक्षिर्जडःस्यात्तुपिबञ्छिशुः ॥ २३६ ॥ कफःक्षीराशयगतोगुरुत्वात्क्षीरगौरवम् । अतिस्नेहान्वितंपीत्वावालोहृद्रोगमृच्छति । अन्यांश्चविविधान्रोगान्कुर्यात्क्षीरसमाश्रितान् ॥ २३७ ॥

भारी पदार्थोंके सेवन आदि कारणोंसे कुपितहुआ कफ स्तन्याशयमें प्राप्त होकर दूधको चिकनाईयुक्त अथवा अत्यंत चिकना बना देताहै । इस दूधके पीनेसे बालकको वमन, कुन्थन, लारका बहना तथा कफद्वारा बालकके स्रोत लिहसजानेसे उसको अत्यंत निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी, लारका बहना और तमकश्वास उत्पन्न होता है जब वह कफ दूधको विगाडकर पिच्छिल बना देताहै तो उसके पीनेसे बालकके मुखसे लार बहे, मुख और नेत्र सूजनयुक्त हों तथा शरीरमें जडता होतीहै । कफ दुग्धाशयमें प्रवेश कर दूधमें भारीपन उत्पन्न कर देताहै । उससे दूध भारी और अत्यंत चिकना होताहै । उसके पीनेसे बालकको हृद्रोग तथा दूधसम्बन्धी कफजनित अनेक रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ २३४-२३७ ॥

त्रिदोषदूषित स्तन्य ।

क्षीरेवातादिभिर्दुष्टेसम्भवन्तितदात्मकाः ।

सन्निपातदूषित दूधमें अनेक प्रकारके वातादिजनित मिले जुले लक्षण होतेहैं ।

दूषित स्तन्यकी चिकित्सा ।

तत्रादौस्तन्यशुद्ध्यर्थंधात्रींस्नेहोपपादिताम् ।

संस्वेद्यविधिवद्वैद्योवमनेनोपपादयेत् ॥ २३८ ॥

स्तन्यदोषमें दूधकी शुद्धिके लिये प्रथम धायको स्नेहन करे । फिर भले प्रकार स्वेदन करके वैद्य विधिपूर्वक वमन करावे ॥ १३८ ॥

वचाप्रियङ्गुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानांक्वाथैः सलवणैर्वमेत् ॥ २३९ ॥ सम्यग्वान्तांयथान्यायंकृतसंसर्जनांततः । दोषकालबलापेक्षीस्नेहयित्वाविरेचयेत् ॥ २४० ॥

वच, फूलप्रियंगु, मुलैठी, मैनफल, इन्द्रयव और सफेद सरसों इन सबका कल्क कर सेंधानमक मिला गर्म जलसे पीवे अथवा नीमकी छाल और पटोलकी जडका क्वाथ नमक मिलाकर गर्मगर्म पीवे । इससे वमन होतीहै । जब देखे कि

भली प्रकार वमन होगईहै तो फिर विधिवत् पेयादि सेवन करावे । फिर उचित रीतिसे स्नेहन और स्वेदन कर दोष, काल और बल आदि विचारकर विरेचन करावे ॥ २३९ ॥ २४० ॥

त्रिवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम् ।
पाययेन्मधुसंयुक्तामभयाञ्चापिकेवलाम् ।
पाययेन्मूत्रसंयुक्तांविरेकार्थञ्चशास्त्रवित् ॥ २४१ ॥

निशोथ अथवा हरडका कल्क त्रिफलेके क्वाथके साथ अथवा केवल त्रिफलेका क्वाथ शहद मिला गोमूत्रके साथ शास्त्रको जाननेवाला वैद्य विरेचनके लिये पिलावे ॥ २४१ ॥

अथसम्यग्विरिक्ताश्चकृतसंसर्जनांपुनः ।
ततोदोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ २४२ ॥

जब इस धायको यथोचित विरेचन होजाय तो पेयादि क्रमसे उसकी रक्षा करे। और बाकी रहे दोषको दोषनाशक अन्नपानोंद्वारा हरण करे ॥ २४२ ॥

शालयोयष्टिकावास्युःश्यामाकाभोजनेहिताः ।
प्रियङ्गवःकोरदूषायवावेणुयवास्तथा ॥ २४३ ॥

तथा शालीचावल, साठीचावल, श्यामाकचावल, कांगुनी, कोद्रव, यव, वेणुयव यह सब भोजनके लिये हितकारी हैं ॥ २४३ ॥

वंशवेत्रकलायाश्चसस्नेहायूपसंस्कृताः ।
मुद्गान्मसूरान्यूपार्थेकुलत्थांश्चप्रकल्पयेत् ॥ २४४ ॥

बाँस और बेतकी कोंपल, मटर, मूंग, मसूर और कुलथी इन सबका स्नेहयुक्त यूष (दाल) बनाकर यूषके लिये कल्पना करे ॥ २४४ ॥

निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैःश्रृतान् ।
सव्योपसैन्धवान्यूषान्दापयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ २४५ ॥

नीमके पत्र, बेतकी कोंपल, पटोल, बेंगन और आमलेके साथ सिद्ध किये यूष, त्रिकुटेका चूर्ण और सेंधानमक मिलाकर सेवन करे तो स्तन्यदोषकी शुद्धि होतीहै ॥ २४५ ॥

शशान्कपिञ्जलनेणान्संस्कृतांश्चप्रकल्पयेत् ।
शार्ङ्गष्टासप्तपर्णत्वगश्वगन्धाश्रृतंजलम् ॥ २४६ ॥

पाययेताथवास्तन्यशुद्धयेकटुरोहिणीम् । अमृतासप्तपर्णत्वक्काथञ्चैवसनागरम्॥ २४७ ॥किराततिक्तकक्काथंश्लोकपादेरितान्पिवेत् । त्रीनेतान्स्तन्यशुद्धयर्थमितिसामान्यभेपजम्। कीर्त्तितंस्तन्यदोषाणांपृथगन्यंनिवोधत ॥ २४८ ॥

खरगोश, सफेद तीतर और एणका मांसरस, विधिवत् संस्कार करके सेवन करावे तथा करंज, सतवनकी छाल और असगंधसे सिद्ध किया जल पिलावे। या कुटकीका क्वाथ पिलावे। अथवा गिलोय और सप्तवर्णकी छालका क्वाथ सोंठका चूर्ण मिला पिलावे तो स्तन्यदोप दूर होकर दूध शुद्ध होजाताहै। अथवा चिरायतेके काथको स्तन्यदोपकी शुद्धिके लिये पीवे। यह आधे २ श्लोकमें कहे तीन प्रकारके काथ स्तन्यदोपको शुद्ध करतेहैं। सामान्यरूपसे स्तन्यदोपोंकी चिकित्साको कथन करदियाहै। अब विशेषरूपसे श्रवण करो ॥ २४६ ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

स्तन्यदोषोंकी विशेष चिकित्सा।

पाययेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः । श्लक्ष्णपिष्टांपयस्याश्चसमालोड्यसुखाम्बुना॥ २४९॥ पञ्चकोलकुलत्थैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ। शुष्कौप्रक्षाल्यनिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुध्यति ॥ २५० ॥

धायका दूध यदि विरस हो तो उसको मुनक्का, मुलैठी और शारिवा तथा क्षीरविदारी या क्षीरकाकोली इन सबको बारीक पीस सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे पंचकोल और कुलथीको वारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करे जब सूखजाय तो उतारकर धोयदेय। इस प्रकार बारबार लेप करनेसे भी स्तन्यदोपकी शुद्धि होतीहै ॥ २४९ ॥ २५० ॥

फेनसङ्घातवत्क्षीरंयस्यास्तांपाययेतच ।
पाठानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाःपिष्ट्वासुखाम्बुना ॥ २५१ ॥

जिस धायका दूध अत्यन्त झागदार हो उसको पाढ, सोंठ, करंजकी छाल और मूर्वाके कल्कको सुखोष्ण जलमें घोलकर पिलावे ॥ २५१ ॥

अञ्जनंतगरंदारुविल्वमूलंप्रियङ्गवः ।
स्तनयोःपूर्ववत्कार्य्यंलेपनंक्षीरशोधनम् ॥२५२ ॥

रसांजन, तगर, देवदारु, वेलगिरी और फूलप्रियंगु इन सबको पीसकर स्तनोंपर लेपन करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होताहै ॥ २५२ ॥

किराततिक्तकंशुण्ठीसामृताक्वाथयेद्भिषक् ।
तंक्वाथंपाययेद्धात्रींस्तन्यदोषनिवर्हणम् ॥ २५३ ॥

चिरयता, सोंठ और गिलोयका क्वाथकर वैद्य धायको पिलावे तो दूधके दोष दूर होते है ॥ २५३ ॥

स्तनौचालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः । षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैःस्तन्यशोधनैः ॥ २५४ ॥ रूक्षक्षीरापिवेत्क्षीरंतैर्वासिद्धंघृतंपिवेत् । पूर्ववज्जीवकाद्यश्चपञ्चमूलंप्रलेपनम् । स्तनयोःसंविधातव्यं सुखोष्णंस्तन्यशोधनम् ॥ २५५ ॥

यव, गेहूं और सफेद सरसोंका कल्ककर स्तनोंपर लेप करे अथवा षड्विरेचन शताश्रितीय अध्यायमें कहीहुई स्तन्यशोधक औषधियोंसे सिद्ध किये हुए दूध और घृतको रूक्ष दूधवाली स्त्री पान करे। अथवा जीवक आदिगण वा लघुपंचमूलके कल्कको सुखोष्ण कर दोनों स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होजाताहै और रूक्षता दूर होतीहै ॥ २५४ ॥ २५५ ॥

यष्टिमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिकाः । शीताम्बुनापिवेत्कल्कं क्षीरवैवर्ण्यनाशनम् ॥ २५६ ॥ द्राक्षामधुककल्केनस्तनौवास्याः प्रलेपयेत् । प्रक्षाल्यवारिणाचैवनिर्दुह्यात्तौपुनःपुनः ॥ २५७ ॥

मुलैठी, मुनक्का, क्षीरकाकोली और संभालूकी जडका छिलका शीतलजलमें घोटकर पीवे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होतीहै तथा मुनक्का और मुलैठीके कल्कको स्तनोंपर लेप करे। लेपके सूखजानेपर जलके साथ धोदेवे। इस प्रकार वारवार लेप करे तो स्तनोंके दूधकी विवर्णता दूर होतीहै ॥ २५६ ॥ २५७ ॥

विषाणिकाजशृङ्गौचत्रिफलांरजनींवचाम् ।
पिवेत्क्षीराम्बुनापिष्टाक्षीरदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ २५८ ॥

काकडासिंगी, सिंगी, हरड, बहेडे, आमले, हल्दी और वच इन सबको दूधमें पकाकर अथवा दूधके साथ पीसकर पीनेसे स्तनोंके दूधकी दुर्गन्ध दूर होतीहै ॥२५८॥

लिह्याद्वाप्यभयाचूर्णंसव्योषंमाक्षिकप्लुतम् ।
क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थधात्रीपथ्याशिनीतथा ॥ २५९ ॥

हरड और त्रिकुटेके चूर्णको शहद मिलाकर चाटे और पथ्य भोजनका सेवन करती रहे तो धायके दूधकी दुर्गंध दूर होतीहै ॥ २५९ ॥

शारिवोशीरमञ्जिष्ठाश्लेष्मातकसचन्दनैः ।
पत्राम्बुचन्दनोशीरैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६० ॥

शारिवा, खस, मंजीठ, लसोढेकी जडका छिलका और चंदन अथवा पत्रज, नेत्रवाला, लालचन्दन और खस इनको बारीक पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे दूधकी दुर्गंध दूर होतीहै ॥ २६० ॥

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाःपिष्टांसुखाम्बुना ।
पीत्वाससैन्धवाःक्षिप्रंक्षीरशुद्धिमवाप्नुयात् ॥ २६१ ॥

देवदारु, नागरमोथा, पाटला और सेंधा नमक इन सबको बारीक पीसकर सुखोष्ण जलके साथ पीवे तो स्तनोंके दूधकी स्निग्धता (कफजनित दोष) दूर होकर स्तनोंका दूध शीघ्र शुद्ध होजाताहै ॥ २६१ ॥

पाययेत्पिच्छिलक्षीरांशार्ङ्गेष्टामभयांवचाम् ।
मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्यविशोधनाः ॥ २६२ ॥

यदि स्तनोंका दूध पिच्छिल हो तो महाकरंजका छिलका या हरड अथवा वच या नागरमोथा, सोंठ और पाठ इनका क्वाथ कर पीवे तो स्तनोंका दूध शुद्ध होवाहै ॥ २६२ ॥

तक्रारिष्टमपिपिबेदर्शसांयन्निदर्शितम् ।
विदारीविल्वमधुकैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६३ ॥

अर्शरोगचिकित्सिताध्यायमें जो तक्रारिष्ट कथनकर आयेहैं उसके पीनेसे कफज- नित स्तन्यदोष दूर होजातेहैं । तथा विदारीकंद, विल्वकी जडका छिलका और मुलेठी इनको पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे स्तनोंके दूधकी पिच्छिलता दूर होतीहै ॥२६३॥

त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् । गुरुक्षीरापिबेदेतत्स्तन्य-
दोषविशुद्धये । पिबेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ॥ २६४ ॥

त्रायमाण, गिलोय, निम्ब, पटोलपत्र और त्रिफलेका क्वाथ पीनेसे स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होताहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चित्रक और सोंठका क्वाथ बनाकर पीवे तो स्तनोंके दूधका भारीपन दूर होताहै ॥ २६४ ॥

बलानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ ।
पृश्निपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥ २६५ ॥

बला, सोंठ, महाकरंजकी छाल और मूर्वाका कल्क कर स्तनोंपर लेप करे अथवा

पृष्ठपर्णी और क्षीरकाकोलीके कल्कका स्तनोंपर लेप करे तो स्तनोंके दूधकी गुरुता दूर होतीहै ॥ २६५ ॥

अष्टावेतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेषजैः ।
निर्दिष्टाःक्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताःकेचिदामयाः ॥ २६६ ॥

इस प्रकार आठ प्रकारके स्तन्यदोषोंके हेतु लक्षण और औषधोंका कथन करदियाहै । अब दूधके दोषसे होनेवाले बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंको कथन करतेहैं ॥ २६६ ॥

क्षीरदोषज बालरोगोंकी चिकित्सा ।

दोषदूष्यमलाश्चैवमहतांव्याधयश्चये ।
तएवसर्वेबालानांमात्रात्वल्पतरामता ॥ २६७ ॥

बालकोंके शरीरमें दोष, दूष्य, मल और व्याधि यह सम्पूर्ण युवा मनुष्योंके समानही होतेहैं । परन्तु बालकोंके लिये औषधिकी मात्रा अत्यन्त अल्प होतीहै ॥ २६७ ॥

निवृत्तिर्वमनादीनांमृदुत्वंपरतन्त्रता । वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यंवीक्ष्य बालेषुशास्त्रवित् । भेषजञ्चाल्पमात्रन्तुयथाव्याधिप्रयोजयेत्२६८॥ मधुराणिकषायाणिक्षीरवन्तिमृदूनिच । प्रयोजयेद्भिषग्बालेमति-मानप्रमादतः ॥ २६९ ॥

बुद्धिमान् वैद्य बालकोंको वमन, विरेचनादि न करावे । क्योंकि बालक एक तो स्वभावसेही कोमल होतेहैं दूसरे पराधीन होतेहैं और बोलचालकर अथवा अन्य चेष्टासे भी अपने कष्टको समझानेमें असमर्थ होतेहैं इसलिये बालकोंको उनकी व्याधि आदि विचारकर अल्पमात्रासे औषधि देनी चाहिये और मीठे कषाय अथवा दूधके साथ मिलाकर आसानीसे पीजानेवाली औषधि अथवा मीठी औषधि वा मीठेमें मिलाकर उनके रोगानुसार अप्रमत्त अर्थात् सावधान होकर देनाचाहिये॥२६८॥२६९॥

अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लंकटुविपाकिच ।
गुरुचौषधपानान्नमेतद्बालेषुगर्हितम् ॥ २७० ॥

अत्यन्त चिकनी, अत्यन्त रूक्ष, अति गर्म तथा खट्टी, कटुपाकी और भारी औषधि तथा अन्नपान बालकोंको देना अहितकारक होताहै ॥ २७० ॥

समासात्सर्वरोगाणामेतद्बालेषुभेषजम् ।
निर्दिष्टंशास्त्रविद्वैद्यःप्रविविच्यप्रयोजयेत् ॥ २७१ ॥

संक्षेपसे बालकोंके संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साका वर्णन करदियाहै। शास्त्रको जाननेवाला वैद्य बुद्धिपूर्वक बालरोगोंकी मीमांसा कर तदनुसार औषधि प्रयोग करे ॥ २७१ ॥

सलिङ्गव्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सिताः ।
उक्ताविस्तरशःसम्यङ्मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥ २७२ ॥

इस प्रकार संपूर्ण योनिरोगोंका निदान और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तत्त्वदर्शी महात्मा आत्रेयजीने वर्णन कियाहै ॥ २७२ ॥

स्थानका उपसंहार ।

इतिसर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम् । स्थानमेतद्धितन्त्रस्य रहस्यंसारमुत्तमम् ॥ २७३ ॥ अस्मिन्सप्तदशाध्यायाःकल्पासिद्धयएवच । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्यतन्त्रेचरकसंस्कृते ॥ २७४ ॥ तानेतान्कापिलबलःशेषान्दृढबलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्यमहार्थस्यपूरणार्थंयथातथम् ॥ २७५ ॥

अब इस चिकित्सास्थानका उपसंहार करतेहैं कि, इसप्रकार संपूर्ण रोगोंकी चिकित्साको भलेप्रकार इस स्थानमे वर्णन करदिया है। इस आयुर्वेदीय संहिताका रहस्य और उत्तम सार यह चिकित्सास्थानही है। इस चरकतंत्रमे चिकित्सास्थानके अंतिम १७ अध्याय तथा कल्प और सिद्धिस्थान अग्निवेशके संग्रह कियेहुए नहीं मिलते। परन्तु अग्निवेशके मूलतंत्रमें इनका संग्रह है फिर चिकित्साके १७ अध्यायोंको कापिल बलने इस चरकतंत्रमें जोडदिया और सिद्धि तथा कल्पस्थानके बारह बारह अध्यायोंको दृढबलने इस ग्रंथको पूर्ण करनेके लिये यथा तथा संग्रह कर इस चरकतंत्रमें मिलादियाहै ॥ २७३ ॥ २७४ ॥ २७५ ॥

उक्तानुक्तरोगोंमें चिकित्साका निर्देश ।

रोगायेऽप्यत्रनोद्दिष्टाबहुत्वान्नामरूपतः ।
तेषामप्येतदेवस्याद्दोषादीन्वीक्ष्यभेषजम् ॥ २७६ ॥

इस चिकित्सास्थानमें जिन रोगोंका नामरूपसे विशेष वर्णन नहीं कियागया उन संपूर्ण रोगोंको वैद्यजन वात, पित्त और कफके लक्षणोंद्वारा उन रोगोंकी कल्पना कर उनके अनुसार औषधि कल्पना करे ॥ २७६ ॥

दोषदूष्यनिदानानांविपरीतंहितंध्रुवम् ।
उक्तानुक्तान्गदान्सर्वान्सम्यग्युक्तंनियच्छति ॥ २७७ ॥

इस स्थानमें कहेहुए अथवा विना कहे संपूर्ण रोगोंमें दोष, दूष्य और रोगोत्पादक कारणोंसे विपरीत चिकित्सा करना चाहिये। ऐसा करनेसेही सम्पूर्ण रोगोंकि शांति होतीहै ॥ २७७ ॥

देशकालप्रमाणानांसात्म्यासात्म्यस्यचैवहि ।
सम्यग्योगोऽन्यथान्येषांपथ्यमप्यन्यथाभवेत् ॥ २७८ ॥

देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और असात्म्यका विचार करके जो हितकारक अन्नपानका प्रयोग कियाजाताहै उसको पथ्य कहतेहैं। इससे विपरीत अन्नपानका सेवन कुपथ्य होताहै ॥ २७८ ॥

आस्यादामाशयस्थान्हिरोगान्नस्तःशिरोगतान् ।
गुदात्पक्वाशयस्थांश्चहन्त्याशुतरमौषधम् ॥ २७९ ॥

जो रोग मुखसे लेकर आमाशय पर्यन्त और नाकसे लेकर मस्तकपर्यन्त, तथा गुदासे लेकर पक्वाशयपर्यन्त आश्रित होतेहैं उन संपूर्ण रोगोंमें आभ्यन्तर औषधियोंका प्रयोग करनेसे वह रोग शीघ्र शान्त होजातेहैं ॥ २७९ ॥

शरीरावयवोत्थेषुवीसर्पपिडकादिषु ।
यथादेशंप्रदेहादिशमनंस्याद्विशेषतः ॥ २८० ॥

शरीरके बाहरी भागमें होनेवाले सम्पूर्ण विसर्प पिडिका आदि रोगोंमें स्थानादि विचारकर प्रायः लेपोंद्वारा चिकित्सा करनेसे वह रोग शान्त होतेहैं ॥ २८० ॥

अनेकविध चिकित्सासंबंधी विचार ।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिङ्गर्त्ववेक्षणम् । कालंविद्याद्दिनापेक्षः पूर्वाह्णेवमनंतथा ॥ २८१ ॥ रोग्यवेक्ष्ययथाप्रातर्निरन्नोबलवान्पिबेत् । भेषजंलघुपथ्यान्नैर्युक्तमद्यात्तुदुर्बलः ॥ २८२ ॥

दिन, रोगी, औषध, व्याधि, जीर्ण, लक्षण, ऋतु और काल विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये। इनमें दिनविचार उसको कहतेहैं जैसे वमनकारक औषध दिनके पूर्वभागमें पीना चाहिये। रोगविचार उसको कहतेहैं जैसे रोगकी अवस्था देखकर बलवान् रोगीको प्रातःकाल खालीपेट औषध सेवन कराना चाहिये और हलका तथा पथ्य भोजनके साथ दुर्बल रोगीको औषध सेवन कराना चाहिये यह रोगी विचार है ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

भैषज्यकालोभक्तादौमध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः ।
सामुद्गंभक्तसंयुक्तंग्रासग्रासान्तरेदश ॥ २८३ ॥

अब औषधविचारको कहते हैं जैसे औषधसेवनके दश काल हैं १ भोजनके प्रथम। २ भोजनके मध्यमें। ३ भोजनके अन्तमें। ४ वारंवार। ५ यूपमें मिलाकर। ६ भातमें मिलाकर। ७ ग्रासमें मिलाकर। ८ ग्रास ग्रासके अनन्तर। ९ प्रातःकाल। १० सायंकाल यह औषधके दश काल हैं॥ २८३॥

अपानेविगुणेपूर्वंसमानेमध्यभोजनम्। व्यानेतुप्रातरशितमुदानेभोजनोत्तरम्॥ २८४॥ वायौप्राणेप्रदुष्टेतुग्रासेग्रासान्तरिष्यते। श्वासकासपिपासासुत्ववचार्य्यंमुहुर्मुहुः॥ २८५॥ सामुद्गंहिक्किनेदेयंलघुनान्नेनसंयुतम्। सम्भोज्यन्त्वौषधंभोज्यैर्विचित्रैररुचौहितम्॥ २८६॥

अपानवायु विगुण हो तो भोजनके प्रथम औषधका सेवन करना चाहिये। समान वायु दूषित हो तो भोजनके मध्यमें औषध सेवन करना चाहिये। व्यानवायु दूषित हो तो प्रातःकाल औषध सेवन करना चाहिये। उदानवायु दूषित हो तो भोजनके अन्तमें और प्राणवायु दूषित हो तो ग्रास ग्रासके अन्तमें अथवा ग्रासमें मिलाकर औषध सेवन करना हितकारक है। स्वास खांसी और प्यासमें वारवार औषध सेवन कराना हितकारक है। हिचकी रोगमें हल्के अन्नके साथ मूंगके यूपमें मिली औषधका सेवन कराना चाहिये अरुचिमें भोजनके साथ मिलाकर औषध सेवन करना चाहिये॥२८४–२८६॥

ज्वरेपेयाःकपायाश्चक्षीरसर्पिर्विरेचनम्।
पडहेपडहेदेयंकालंवीक्ष्यामयस्यतु॥ २८७॥

अब व्याधिविचारको कहते हैं जैसे ज्वरमें छःछः दिनके वाद समयका विचार कर पेया, कपाय, दूध और घृतका प्रयोग कियाजाताहै अर्थात् प्रथम छदिन, लंघन करानेके अनन्तर पटोल आदि यूप पेयाका सेवन करावे फिर क्वाथ ज्वरके जीर्ण होनेपर दूध इस प्रकार समयको देखकर व्याधिकालानुसार औपधका सेवन करना कहाजाता है॥ २८७॥

क्षुद्वेगमोक्षौलघुताविशुद्धिर्जीर्णलक्षणम्।
तदाभेपजमादेयंस्याद्धिदोपवदन्यथा॥ २८८॥

अत्यंत क्षुधाका वढना मलमूत्रादि वेगोंका स्वच्छ रीतिसे त्याग होना शरीरमें हल्कापन, शुद्ध डकार आना अथवा जिह्वा आदि लक्षणोंका शुद्ध होना यह जीर्णके लक्षण हैं। जीर्ण कालमें औपधका सेवन कराना चाहिये अन्यथा दोपकारक होताहै। यह जीर्ण लक्षणका विचार कहागया॥ २८८॥

चयादयश्चदोपाणांवर्ज्यंसेव्यञ्चयत्रयत् ।
ऋतावपेक्ष्यंयत्कर्मपूर्वंसर्वमुदाहृतम् ॥ २८९ ॥

अब ऋतुविचारको कहते हैं । जैसे वर्षादिकालमें दोषोंका संचय, अपचय आदि होना जैसे कि सूत्रस्थानमें कह आये हैं । तथा जिस ऋतुमें जो पदार्थ वर्जनीय है जैसे वसन्त ऋतुमें कफकारक पदार्थोंका सेवन नहीं करना इत्यादि तस्याशितिय अध्यायमें पहिले वर्णन कर आये हैं ऐसा विचारकर औषध अन्न विहारका सेवन करना ऋतु विचार कहाजाता है ॥ २८९ ॥

उपक्रमाणांकरणंप्रतिषेधेचकारणम् । व्याख्यातमबलानांसविकल्पानामवेक्षणे ॥ २९० ॥ मुहुर्मुहुश्चरोगाणामवस्थाआतुरस्यच । अवेक्षमाणस्तुभिषक्चिकित्सायांनमुह्यति ॥ २९१ ॥ इत्येवंषड्विधंकालमनपेक्ष्याभिषग्जितम् । प्रयुक्तमहितायस्याच्छस्यस्याकालवर्षवत् ॥ २९२ ॥

ऐसे समय चिकित्सा करना चाहिये । ऐसे कालमें चिकित्सा करनेसे यह हानि होती है । दुर्बल रोगियोंकी अवस्था काल विचारकर चिकित्सा करना चाहिये । इस प्रकार चिकित्सकको चिकित्साकालका विचार करना चाहिये । वारंवार रोगोंकी और अवस्था काल, विचारकर जो वैद्य चिकित्सा करताहै वह चिकित्सामें मोहको प्राप्त नहीं होता इस प्रकार षड्विधकालकी विना अपेक्षा किये जो वैद्य चिकित्सा करताहै वह खेतीमें विना समय पडीहुई वर्षाके समान हानिकारक होतीहै इसको काल विचार कहते हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसांभोजनस्यतु ।
विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसउच्यते ॥ २९३ ॥

व्याधियोंमें ऋतु, दिन, रात्रि, अवस्था और भोजनकी उपेक्षा करके जो विशेष समयका भेद दिखानेवाला समयविशेष है उसीको कालविचार कहते हैं ॥ २९३ ॥

वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः । वर्षासुवातजाश्चैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि । निशान्तेदिवसान्तेचवयोन्तेवातजागदाः२९४ प्रातःक्षपादौकफजास्तयोर्मध्येतुपित्तजाः । जीर्णान्तेवातजारोगा जीर्यमाणेतुपित्तजाः ।: श्लेष्मजाभुक्तमात्रेतुलभन्तेप्रायशोबलम् ॥ २९५ ॥

वसन्तऋतुमें कफजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । शरदऋतुमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । वर्षाऋतुमें प्रायः वातजनित रोग उत्पन्न होतेहैं तथा रात्रिके अन्तमें दिनके अन्तमें और अवस्थाके अन्तमें वातजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । प्रातःकाल, रात्रिके प्रथम भागमें और अवस्थाके प्रथम भागमें कफके रोग उत्पन्न होतेहैं दिनके मध्यभागमें रात्रिके मध्यभागमें और अवस्थाके मध्यभागमें प्रायः पित्तजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । इसीप्रकार भोजन जीर्ण होनेके अनन्तर वातजनित रोग भोजन जीर्ण होनेके समय अर्थात् परिपाककालमें पित्तजनित रोग और भोजन करतेही कफजनित रोग प्रायः बलको प्राप्त होते हैं ॥ २९४ ॥ २९५ ॥

नाल्पंहन्त्यौषधंव्याधिंयथापोऽल्पामहानलम् ।
दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्यस्यात्युदकंयथा ॥ २९६ ॥
सम्प्रधार्य्यवलंतस्मादामयस्यौषधस्य च ।
नैवातिबहुलात्यल्पंभैषज्यमवचारयेत् ॥ २९७ ॥

प्रबल व्याधिमें अल्प औषधि इस प्रकार गुण नहीं करसकती जैसे-प्रचण्ड अग्निमें थोडेसे जलका छींटा उसके बुझानेके लिये काम नहीं आसकता और अल्प व्याधिमें अधिक मात्रासे औषधि देना इस प्रकार हानि करताहै जैसे अल्प अंकुरित खेतीमें अत्यंत वेगयुक्त वृष्टि खेतीको समूल नष्ट कर देतीहै । इसलिये रोग, औषध और रोगीका बलाबल विचार न बहुत अल्प, न बहुत अधिक मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

औचित्याद्यस्ययत्सात्म्यंदेशस्यपुरुषस्य च ।
अपथ्यमपिनैकान्तात्तत्त्यजल्लँभतेसुखम् ॥ २९८ ॥

जिस देशमें जो द्रव्य उचित हो अर्थात जो द्रव्य जिस देशके मनुष्योंको सात्म्य हो और वह उस देशमें प्रचलित है तथा उन लोगोंको प्रकृतिके अनुसार उपयोगी है वह यदि शास्त्रानुसार कुपथ्य भी प्रतीत हो तो एकाएकी छुडादेना हानिकारक होताहै इसलिये यदि वह छुडानाही उचित हो तो धीरे २ घटाते २ युक्तिपूर्वक छुडानेसे स्वास्थ्य नहीं बिगाडता ॥ २९८ ॥

वाह्लीकाःपह्लवाश्चीनाःशूलीकायवनाःशकाः । मांसगोधूममाध्वी-कशस्त्रवैश्वानरोचिताः ॥२९९॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्यामत्स्य-सात्म्याश्चसैन्धवाः । अश्मकावान्तिकानान्तुतैलाज्यंसात्म्यमुच्यते ॥ ३०० ॥

वाल्हीकदेश (वलख बुखारा) पह्लवदेश (काबुल आदिदेश) चीन, शूलिक (तिब्बत) यवन, और शक (तुर्किस्थान) देश आदि देशोंमें मांस, गेहूं,माध्वीक, शस्त्र और अग्नि यह सब सात्म्य होतेहैं अर्थात् इनके प्रकृतिके अनुकूल होतेहैं। पूरवके रहनेवाले मनुष्योंको दूध पीना सात्म्य है । और सिन्धुनदी आदि दरयावके किनारे रहनेवालोंको मछली सात्म्य है । अश्मकदेश अर्थात् पत्थरोंवाले देशमें और अवन्ती देश (मालवा प्रान्त) के मनुष्योंको तेल और घृत सेवन करना सात्म्य है ॥ २९९ ॥ ३०० ॥

कन्दंमूलंफलंसात्म्यंविद्यान्मलयवासिनाम् ।
सात्म्यंदक्षिणतःपेयामन्थश्चोत्तरपश्चिमे ॥ ३०१ ॥

मलयाचल आदि पहाडी मनुष्योंको कन्द, मूल, फल सात्म्य होतेहैं । दक्षिण देशवालोंको पेयाका सेवन करना सात्म्य होताहै । उत्तर और पश्चिमके लोगोंको मन्थ सात्म्य होताहै ॥ ३०१ ॥

मध्यदेशेभवेत्सात्म्यंयवगोधूमगोरसाः । तेषांतत्सात्म्ययुक्तानिभैषजान्यवचारयेत् ॥३०२॥ सात्म्यंह्याशुबलंधत्तेनातिदोषञ्चबह्वपि। योगैरेवंचिकित्सन्हिदेशाद्यज्ञोऽपराध्यति ॥ ३०३ ॥

मध्य देशके मनुष्योंको यव और गेहूंसे बने पदार्थ,दूध, दही, मक्खन यह सात्म्य होतेहैं । इस प्रकार इन सब देशके मनुष्योंका सात्म्य आदि विचार पथ्य और औषधका सेवन कराना चाहिये । क्योंकि सात्म्य भोजन, अत्यंत सेवन किया जानेपर भी अधिक दोष नहीं करता और उचित रीतिपर सेवन किया जानेसे शीघ्र बलको देनेवाला होताहै । जो वैद्य-देश, काल, सात्म्य आदि विचार किये विनाही किताबोंमें लिखे योगोंसे चिकित्सा करने लगताहै वह मूर्ख अपराधका भागी होताहै ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥

वयोबलशरीरादिभेदाहिबहवोमताः । तथान्तःसंधिमार्गाणांदोषाणांगूढचारिणाम् ॥ ३०४ ॥ भवेत्कदाचित्कार्य्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया । अन्तर्गतंगूढपित्तंस्वेदसेकोपनाहनैः ॥ ३०५ ॥ नीयन्तेबहिरुष्णैर्हितथोष्मंशमयन्तितम् । बाह्यैश्चशीतैःसेकाद्यैरुष्मान्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढंकफंहन्तिशीतंशीतैस्तथाजयेत् ॥ ३०६ ॥

रोगियोंकी अवस्था, बल और शरीर आदि भेद अनेक प्रकारके होतेहैं तथा उसी प्रकार संधिगत, मार्गगत और गूढसंचारी दोषोंके भी अनेक प्रकारके भेद होतेहैं। इसलिये कभी २ विरुद्ध क्रिया भी हितकारक होजातीहै। जैसे पित्तमें उष्ण क्रियाका करना हानिकारक होताहै। परन्तु फोडे आदिमें गूढरूपसे दाहादि लक्षण-वाले पित्त होते हुए भी स्वेदन, सेक और उपनाह आदि उष्ण क्रिया करनेसे फोडेके अन्दरका छिपाहुआ पित्त बाहर निकलजानेसे दाह आदिकी शान्ति होतीहै। यहांपर पित्तरोगमें उष्णक्रिया भी हितकारक होतीहै यदि ऐसे स्थानमें शीतल लेप और शीतल सेचन आदि पित्तनाशक क्रिया कीजाय तो पित्त फोडेके भीतर रहकर पीडाकी वृद्धिको करताहै। तथा जब व्रणमें राध आदि लक्षणयुक्त कफ व्रणके भीतर हो तो उसमें घृत आदिका शीतल लेप करना भी कफ को नष्टकर व्रणको सुखा देताहै। यहांपर शीतल क्रिया भी शीतस्वभाव कफको नष्ट करदेतीहै ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥ ३०६ ॥

श्लक्ष्णपिष्टोघनोलेपश्चन्दनस्यापिदाहकृत् ॥ ३०७ ॥ त्वग्गतस्योष्मणोरोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरोः। छर्दिघ्नामक्षिकाविष्टामक्षिकैव-तुवामयेत् ॥ ३०८ ॥ द्रव्येषुस्विन्नदग्धेषुचैवतेष्वेवविक्रिया। तस्माद्दोषौषधादीनिपरीक्ष्यदशतत्त्वतः। कुर्याच्चिकित्सितंप्राज्ञो न योगैरेवकेवलैः ॥ ३०९ ॥

इसीप्रकार चन्दन शीतलस्वभाव होतेहुए भी उसको उत्तम रीतिसे रगडकर बहुत गाढा लेप कर दियाजाय तो वह त्वचाकी गर्माईको भीतरही रोककर दाहके करने-वाला होजाता है और यदि अगरको घिसकर पतलासा लेप किया जाय तो यह गर्म स्वभाववाला होनेपरभी पित्तजनित दाहकी शान्ति करताहै। इसी प्रकार मक्खीके खानेसे छर्दि उत्पन्न होतीहै परन्तु मक्खीकीही विष्ठा छर्दिको नष्ट करतीहै। इसप्रकार संपूर्ण द्रव्य स्विन्न अथवा दग्ध किये जानेपर उनमें अलग २ विकृत अथवा अन्य प्रकारके गुण उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये वैद्य दोष और औषध आदिकोंकी पूर्वोक्त-रीतिसे दश विधि परीक्षणीय विषयका विचारकरके चिकित्साकरे और केवल ग्रंथमें लिखीहुई किसी एक औषधिके गुणोंको देखकर विना विचारेही उस औषधिका प्रयोग करने न लगजाय ॥ ३०७ ॥ ३०८ ॥ ३०९ ॥

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना। क्षीणेमार्गीकृतेदेहेशे-पःसूक्ष्मइवानलः। तस्मात्तमनुबध्नीयात्प्रयोगेणानपायिना॥३१०॥

रोग निवृत्त होनेपरभी उसका सूक्ष्म अंश रहाहुआ अल्पकारणसे ही वह व्याधिको फिर उत्पन्न करदेताहै । जैसे सूक्ष्म अग्नि शेष रहनेपर थोडेसे ईंधनको पाकर भी बलवान् होजाताहै उसीप्रकार रोग निवृत्त होनेपरभी क्षीण शरीरमें अल्प हेतुसे फिर व्याधि उत्पन्न होजाती है । इसलिये रोग निवृत्त होनेपर भी कुछ कालतक रोगनाशक औषधका सेवन कराते रहना चाहिये ॥ ३१० ॥

सिद्धयर्थंप्राक्प्रयुक्तस्यसिद्धस्याप्यौषधस्यतु ॥ ३११ ॥ काठिन्या-दूनभावाद्वादोषोऽन्तःकुपितोमहान् । पथ्यैर्मृद्वल्पतांनीतोमृदुदो-षकरोभवेत् ॥ ३१२ ॥ पथ्यमप्यश्नतस्तस्माद्योऽव्याधिरुपजायते । ज्ञात्वैवंवृद्धिमभ्यासमथवान्यस्यकारयेत् ॥ ३१३ ॥

किसी मनुष्यके आभ्यंतर दोष अत्यन्त कुपित हो और उनमें उनकी शांतिके लिये किसी सिद्ध औषधिका प्रयोग करनेसे वह व्याधि शान्त होजायायदि उस समय औषधकी कठोरतासे अथवा औषधकी अल्पतासे रोगका अनुबंध रहजाय उस समय रोगी हितकारक पथ्यका सेवन करता रहे तो रोगहीन होकर रहताहुआ अधिक विकारको नहीं करता अर्थात् पथ्यसेवन करनेसे धीरे २ शान्त होजाताहै । यदि पथ्य सेवन करतेहुएभी रोगकी वृद्धि होय तो अन्य प्रकारसे पथ्यका अभ्यास करना चाहिये ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥ ३१३ ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वापथ्यंद्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तै-स्तैःप्रियत्वंगमयेत्पुनः ॥ ३१४ ॥ मनसोऽर्थानुकूल्याद्धितुष्टिरो-जोरुचिर्बलम् । सुखोपभोगताचस्याद्व्याधेश्चातोबलक्षयः॥३१५॥

यदि निरन्तर एकही प्रकारका पथ्य सेवन करनेसे अथवा पथ्य स्वादु न होनेसे रोगीको पथ्यमे अरुचि होजाय तो उसको अन्य प्रकारसे जिस प्रकार रोगीको वह पथ्य प्रिय प्रतीत होनेलगे उस प्रकार बनाकर सेवन करावे । क्योंकि मनके अनुकूल अर्थात् मनोभिलपित पथ्यके सेवन करनेसेही तुष्टि, ओज, सुखकी रुचि, बल बढतेहैं । तथा सुखपूर्वक औषधका सेवन किया जासकताहै इसलिये व्याधिका बलभी क्षीण होजाताहै ॥ ३१४ ॥ ३१५ ॥

लौल्याद्दोषक्षयाद्व्याधेर्वैधर्म्याच्चापियारुचिः ।
तासुपथ्योपचारःस्याद्योगेनार्च्यंविकल्पयेत् ॥ ३१६ ॥

जीभकी लोलुपतासे अर्थात् दोषोंके क्षय होनेसे अथवा व्याधिके वैधर्म्यसे जो अरुचि उत्पन्न होतीहै उसमेंभी पहिलेके समान मनोभिलपित पथ्यद्वारा शान्त करे ।

अथवा जिस प्रकारके भोजनोंसे अरुचि उत्पन्न हुई हो उससे अन्य प्रकार अन्नपानकी कल्पना कर पथ्यका सेवन करावे ॥ ३१६ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निदानंलिङ्गमेवच । चिकित्साचापिनिर्दिष्टा शिष्याणांहितकाम्यया ॥ ३१७ ॥ शुक्रदोषास्तथाचाष्टौनिदानाकृतिभेषजैः । क्लैब्यान्युक्तानिचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥३१८॥ तेषांनिदानलिङ्गञ्चभैषज्यञ्चैवकीर्त्तितम् । क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहेतुलिंगभिषग्जितैः ॥ ३१९॥ तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यासतोमया । रेतसोरजसश्चैवकीर्त्तितंशुद्धिलक्षणम् ॥ ३२० ॥ उक्तानुक्तचिकित्साचसम्यग्योगस्तथैवच । देशादिगुणशंसाचकालः षड्विधएवच ॥ ३२१ ॥ देशेदेशेचयत्सात्म्यंयथावैद्योऽपराध्यति । चिकित्साचापिनिर्दिष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ॥ ३२२ ॥

अब इस अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस योनिव्याधि चिकित्सितीयाध्यायमें वीस प्रकारके योनिरोग, उनके निदान, लक्षण और चिकित्साका वर्णन किया गयाहै । आठ प्रकारके वीर्यदोष, उनके निदान लक्षण ओर चिकित्साका वर्णव कियाहै । चार प्रकारके क्लैब्यरोग तथा चार प्रकारके प्रदर और उनके निदान, लक्षण तथा चिकित्साका कथन कियाहै । आठ प्रकारके क्षीरदोष उनके हेतु, लक्षण और चिकित्सा यह सब संक्षेप और विस्तारसे वर्णन कियाहै । वीर्य और रजकी चिकित्सा उनकी शुद्धिके लक्षण कथन कियेहैं । उक्त रोगोंकी और अनुक्त रोगोंकी चिकित्साकाक्रम औषध योगोंके प्रयोगका विधान, देश आदिकोके गुण, छः प्रकारके काल, जिस २ देशमें जो २ द्रव्य सात्म्य है जिस प्रकार चिकित्सा करनेसे वैद्य अपराधी होताहै । गूढचारी दोषोंकी चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ ३१७-३२२ ॥

योहिसम्यङ्नजानातिशास्त्रंशास्त्रार्थमेवच ।
नकुर्यात्सक्रियांचित्रमचक्षुरिवचित्रकृत् ॥ ३२३ ॥

इतिश्रीचर०चिकि०योनिचिकित्सितंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जो वैद्य शास्त्र और शास्त्रके विषयको विधिवत् नहीं जानता वह अन्धे चित्रकारके समान संपूर्ण चिकित्साक्रियामें हानिकारक होताहै ॥ ३२३ ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते।
चिकित्सितमिदंस्थानंषष्ठंपरिसमापितम् ॥ १ ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए और चरकके प्रतिसंस्कार कियेहुए इस चरक संहिता-नामक ग्रंथमें चिकित्सास्थाननामक छठा स्थान समाप्त हुआ ॥ १ ॥

दोहा।

यद्यपि आयुर्वेदको, कियो समयने ह्रास।
तदपि चिकित्सित चरकमें, है पूरण परकाश ॥ १ ॥
अगणित व्याधिनके विषय, स्थूल सूक्ष्म दरशाय।
भरे चिकित्सित स्थानमें, विलखो बुद्धि लगाय ॥ २ ॥
यथा भगन्दर शोथमें, ध्वजभंगे उपदंश।
अम्लपित्त ग्रहणीविषे, कह्यो सूक्ष्म सरवंश ॥ ३ ॥
चरकरचित यह तंत्रको, इहि विधि जाने भेद।
भिषक् शिरोमणि सिद्ध सो, हरहि जगतको खेद ॥ ४ ॥
नाना रोग विवेकसों, कल्प सकहि सत भाय।
रामप्रसाद प्रसादनी, जे पढ़िहैं मनलाय ॥ ५ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां चिकित्सास्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि-रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकायां योनिव्यापच्चिकित्सितं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

इति चिकित्सास्थानं समाप्तम् ॥ ६ ॥

कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः ।

अथातोमदनकल्पं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम मदनकल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अथखलुवमनविरेचनार्थंमदनफलादित्रिवृतादीनांवमनविरेचनद्रव्याणांसुखोपभोग्यतमैः सहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैस्तद्योगानाञ्चक्रियाविधेःसुखोपायस्यसम्यगुपकल्पनार्थंकल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश ! ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब हम वमन विरेचनके लिये मैनफल और निशोथ आदि वमन विरेचन द्रव्योंकी इस प्रकार कल्पना करतेहैं । जिससे वह संपूर्ण द्रव्य सुखोपभोग्य द्रव्योंके साथ मिलाये जाकर सुखपूर्वक वमन विरेचनादि क्रियायें भले प्रकार कर सकें । इस प्रकार कल्पनाके लियेही इस कल्पस्थानका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

वमन विरेचनकी निरुक्ति ।

तत्रदोषहरणमूर्द्धभागंवमनसंज्ञकमधोभागंविरेचनसंज्ञकमुभयंवा शरीरमलविरेचनाद्विरेचनशब्दंलभते ॥ २ ॥

उनमें मुखद्वारा जो दोष निकाले उसको वमन कहतेहैं और अधोमार्गसे दोषोंका निकालना विरेचन कहाजाताहै । अथवा शरीरके मलको रेचन करनेसे उर्द्ध विरेचन और अधोविरेचन इस प्रकार दोनोंको ही विरेचन कहना चाहिये ॥ २ ॥

वामकरेचकद्रव्योंका कर्म ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीनिऔषधानिस्ववीर्य्येणहृदयमुपेत्यधमनीरनुसृत्यसम्यग्युक्त्यास्थूलानुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतंदोषसङ्घातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयन्तितैक्ष्ण्याद्विच्छिदन्ति ॥ ३ ॥

यह दोनों प्रकारके विरेचन द्रव्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी गुणोंवाले होनेसे अपने वीर्यके प्रभावसे हृदयमें प्राप्त हो फिर धमनियोंका आश्रय लेकर भली प्रकार योगके किये जानेसे स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंमेंसे आग्नेय स्वभाववाले

होनेके कारण केवल शरीरगत दोषोंको पतले बनाकर चलायमान करदेतेहैं . और तीक्ष्ण स्वभाववाले होनेसे उनको अपने २ स्थानसे छुडा देतेहैं ॥ ३ ॥

सविच्छिन्नःपरिप्लवःस्नेहभावितेकायेस्नेहाक्तभाजनस्थमिवक्षौद्रमसज्जन्प्रवणभावादामाशयमागत्यउदानप्रणुन्नोऽग्निवाय्वात्मकत्वादूर्द्ध्वभागप्रभावादौषधस्यऊर्द्ध्वमुत्क्षिप्यते । सलिलपृथिव्यात्मकत्वादधोभागप्रभावाच्चऔषधस्यअधःप्रवर्त्तते, उभयतश्चउभयगुणत्वादितिलक्षणोद्देशः ॥ ४ ॥

यदि वमन, विरेचनसे प्रथम मनुष्यके शरीरको स्निग्धकर लिया हो तो वह वमन अथवा विरेचन द्रव्यसे छुडाये हुए दोष शरीरमें इस प्रकार नहीं चिपट सकते जैसे चिकने पात्रमें शहद नहीं चिपटता । वह दोष चलायमान होकर आमाशयमें ढलकर आजातेहैं । फिर विरेचन द्रव्यके अग्निवायुआत्मक होनेसे वह द्रव्य अपने प्रभावसे दोषोंको मुखद्वारा बाहर निकाल देताहै और जलात्मक तथा पृथिव्यात्मक गुणसे वह विरेचक द्रव्य दोषोंको विरेचन द्वारा अधोमार्गसे निकाल देतेहैं । जिन द्रव्योंमें उभयात्मक गुण हैं अर्थात् जो द्रव्य वामक और रेचक दोनों गुणोंवाले हैं वह मलोंको उखाडकर उर्द्धभाग और अधोभाग इन दोनों मार्गोंसे निकाल देतेहैं । इस प्रकार वमन, विरेचन द्रव्योंके लक्षणोंका कथन कियाहै ॥ ४ ॥

वामक और विरेचकद्रव्य ।

तत्रफलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनानां, श्यामात्रिवृच्चतुरङ्गुलतिल्वक-महावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाञ्च, नानाविध-देशकाल-सम्भव-स्वादुरसवीर्य्यविपाकप्रभावग्रहणानां, देहदोषप्रकृतिवयोबलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनांनानात्मकत्वाच्च, विचित्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येसंयोगानामपिचसतांद्रव्याणां, विकल्पमार्गोपदर्शनार्थंषड्विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्यामः ॥ ५ ॥

इनमें मैनफल, जीमूतक (देवदाली लता), इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी), धामार्गव (बडी कडवी तोरी), कुडाके बीज और कृतवेधन (छोटी कडवी तोरी) यह छः द्रव्य वमनकारक होतेहैं । काली निशोथ, अमलतास, तिल्वक (लोध अथवा गुलाचीन), महावृक्ष (थोहर), सातला, शंखिनी, दंती और द्रवंती ये नौ द्रव्य विरेचनमें

प्रधान हैं। यह दोनों प्रकारके वमन, विरेचन द्रव्य भारतके सब देशोंमें समयपर मिलतेहैं अथवा सब समय मिल सकतेहैं। इनको मीठे रसवाले द्रव्यमें मिला सेवन करनेसे इनके वीर्य, विपाक और प्रभावमें किसी प्रकारका फर्क नहीं पडता। इन द्रव्योंसे असंख्य योग वामक और विरेचक बनतेहैं। क्योंकि मनुष्योंके देह, दोष, प्रकृति, अवस्था, अग्नि, बल, भोजन, सात्म्य, रोग और रोगकी अवस्था आदि भेदसे मनुष्य भी अनेक प्रकारके होतेहैं। तथा इन वमन, विरेचन द्रव्योंकी योग कल्पना, विचित्र गंध, वर्ण, रस और स्पर्श आदिमें सुखपूर्वक प्रयोग कियाजाय इस प्रकारकी असंख्य कल्पनायें होतेहुए भी उनमसे निदर्शनके लिये छःसौ प्रकारके योगोंका वर्णन करतेहैं ॥ ५ ॥

तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्पद्वीर्य्यबलाधानात्क्रियासमर्थतमानिभवन्ति ॥ ६ ॥

इन द्रव्योंको देश, काल, गुण और आधारकी संपदा अर्थात् उत्तमता होनेसे यह वीर्यबलसम्पन्न होतेहैं। इसलिये क्रिया करनेमें भी उत्तम रीतिसे अर्थात् विशेषरूपसे समर्थ होतेहैं ॥ ६ ॥

जांगलदेशके लक्षण।

त्रिविधःखलुदेशोजाङ्गलोऽनूपःसाधारणश्चेति। तत्रजाङ्गलःपर्य्याकाशभूयिष्ठः। तरुभिरपिकदरखदिरासनाश्वकर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमवल्क-वदरीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकविनगहनः, अनेकशमीककुभशिंशपाप्रायःस्थिरशुष्कपवनबलाविधूयमानप्रनृत्यत्तरुणाविटपः, प्रततमृगतृष्णाकूपोपगूढस्तनुखरपरुपसिकताशर्करावहुलः, लावातित्तिरिचकोरानुप्रचितभूमिभागोवातपित्तबहुलः स्थिरकठिनमनुष्यप्रायोजाङ्गलोज्ञेयः ॥ ७ ॥

देश तीन प्रकारके होतेहैं। जैसे जांगलदेश, आनूपदेश और साधारणदेश। इनमें जांगलदेशके ऊपर सुविस्तृत आकाश रहताहै और उस देशमें खैरके वृक्ष, सफेद खैरके वृक्ष, विजैसार, अश्वकर्ण, धव, तिनिश, शल्लकी, शाल, सोमवल्कल, वेर, तेन्दू, पीपल, बड और आमला इन वृक्षोंके घनघोर वन होतेहैं तथा अनेक शमी (जांड) के वृक्ष, ककुभ (अर्जुनवृक्ष) और शीशोके वृक्ष अधिक होतेहैं। वृक्षोंकी शाखा, स्थिर, सूखी, पवनके वेगसे विधूयमान होकर मानो तरुण वृक्ष नाच रहे हैं ऐसा प्रतीत होताहै। और किसी विस्तृत भूमि जलकी समान पृथ्वीकी रेती चमकती

प्रतीत होतीहै । जगह २ छिपेहुए कुएँ होतेहैं तथा थोडा, खर्दरा, कठोर, अधिक चमकीली, ककरीली रेती होतीहै । इस भूमिमें लवा, तीतर, चकोर अधिक होतेहैं यह जांगल देशके लक्षण हैं । जांगल देश वातपित्त प्रधान होताहै । इस देशके रहनेवाले मनुष्य दृढ और कठोर प्रायः होतेहैं ॥ ७ ॥

अपनूदेशके लक्षण ।

अथानूपोहिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः, सरित्समुद्रपर्यन्तप्रायःशिशिरपवनबहुलोवञ्जुलवानीरोपशोभिततीराभिःसरिद्भिरुपगतभूमिभागः, अक्षितिधरनिकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवीजितःक्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनोभूमिभागः स्निग्धतरुप्रतानोपगूढहंसचक्रवाकवलाकानन्दीमुखपुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्तकोकिलमुदिततरुणविटपः, सुकुमारपुरुषःपवनकफप्रायोज्ञेयः ॥ ८ ॥

अनूपदेशमें हिंताल (ताडवृक्ष), तमाल, नारियल और केलाके बहुत सघन वन होतेहैं । इस देशके चारोंओर प्रायः नदी, समुद्र होतेहैं और शीतल पवन अधिक आताहै । तथा वेत और वानीरके वनोंसे सुशोभित नदियोंके किनारे अथवा समुद्रके किनारे या पृथ्वीके भाग दिखाई देतेहैं । इस देशमें पर्वत और पर्वतोंके निकुंजोंसे शोभायमान पृथ्वी नहीं होती परन्तु मन्दमन्द पवनसे हिलाये हुए और जीवन प्राप्त वृक्षोंका गहन वन तथा अनेक पुष्प आदिकोंसे सुशोभित वगीचोंसे पृथ्वीके भाग शोभायमान होतेहैं । इस देशमें चिकने वृक्ष और प्रतानोंमें छिपेहुए हंस, चकवा, वगुला, नन्दीमुख, पुण्डरीक, कादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र आदिकोंसे शोभायमान जलाशय होतेहैं तथा मतवाली कोकिलाओंके मनोहर शब्दोंसे तरुण वृक्ष शोभायमान दिखाई देतेहैं । इस देशके मनुष्योंका शरीर कोमल और सुकुमार होताहै यह देश वातकफ प्रधान होताहै । इस देशको आनूपदेश कहतेहैं ॥ ८ ॥

साधारण देश ।

अनयोरेवद्वयोर्देशयोर्वीरुद्वनस्पतिवानस्पत्यशकुनिमृगगणयुतस्थिरसुकुमारवर्णसंहननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषःसाधारणोज्ञेयः ॥ ९ ॥

जिस देशमें जांगलदेश और अनूपदेशके मिलेजुले लक्षण हों उसको साधारण देश कहतेहैं । इस देशमें वनस्पति, वीरुध और आम्र, वट आदि अनेक प्रकारके वान-

स्पत्य होतेहैं तथा दोनों देशोंमें होनेवाले पक्षी और मृगगण इस देशमें होतेहैं। इस देशके पुरुषोंका शरीर दृढ, सुकुमार, बलयुक्त और हृष्टपुष्टांग होताहै तथा इन मनुष्योंकी प्रकृति साधारण होतीहै इसलिये इस देशको साधारण अथवा धन्वदेश भी कहतेहैं ॥ ९ ॥

औषधिग्रहणयोग्य उत्तम भूमि।

तत्रदेशेजाङ्गलेसाधारणेवायथाकालंशिशिरातपपवनसलिलसेविते समेशुचौप्रदक्षिणेश्मशानचैत्यदेवयजनागारश्वभ्रारामवल्मीकोषरविरहितेकुशरोहिषास्तीर्णेस्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिकेमृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमैरौषधयोजाताःप्रशस्यन्ते ॥ १० ॥

इनमें जांगल और साधारण देशकी औपधियें गुणमें उत्तम होती हैं इसलिये यथासमय इन देशोंमेंसे औषधियोंको ग्रहण करना चाहिये। जिस स्थानमें भूमि समतल, पवित्र और उत्तम हो तथा उसमें श्मशान, मंदिर, पूज्यवृक्ष, देवमंदिर, यज्ञस्थान, गढा, वगीचा, सांपकी बम्बी और ऊपरमट्टी यह न हों। जिस स्थानमें कुशा, रोहिपतृण आच्छादित हों और मट्टी चिकनी, काली, सुवर्णके समान अथवा पीलेरंगकी मीठी और मृदु हो तथा वह पृथ्वी हलसे जोती न जाती हो, कीडे आदिकोंसे उपहत न हो, बलवान् वृक्षोंसे दवीहुई न हो उस पृथ्वीमें यथासमय सर्दी, धूप, पवन, जल आदिका संचार होता हो ऐसी भूमिसे जांगल अथवा साधारण देशमें औपधीको ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकारकी भूमिमेंसे ग्रहण की हुई औपधी श्रेष्ठ होती है ॥ १० ॥

औषधग्रहणप्रकार।

तत्रयानिकालजातानिउपगतसम्पूर्णप्रमाणरसवीर्यगन्धानिकालातपाग्निसलिलपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्शप्रभावाणिप्रत्यग्राणिउदीच्यांदिशिस्थितानितेपांशाखापलाशमचिरप्ररूढंवर्षावसन्तयोर्ग्राह्यंग्रीष्मेमूलानिशिशिरेवाशीर्णप्ररूढपर्णानांशरदित्वक्कन्दक्षीराणिहेमन्तेसाराणिपुष्पफलमितिमङ्गलाचारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसंपूज्यदेवतामश्विनौगोब्राह्मणांश्चकृतोपवासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृह्णीयात् ॥ ११ ॥

ऐसी भूमिमें उत्पन्न हुई औषधी जो अपने ठीक ऋतुमें उत्पन्न हुई हो तथा संपूर्ण रूपसे प्रमाणयुक्त रस वीर्य संपन्न, गंधादियुक्त, काल, धूप, अग्नि, जल, वायु और कीडे आदिसे जिस औषधका गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव विकृत न हुआ हो जो संपूर्ण औषधोंमें श्रेष्ठ, उत्तम अग्रभागयुक्त, सर्वाङ्गसंपन्न और उत्तर दिशामें स्थित हो उस औषधको ग्रहण करना चाहिये। जब मनुष्य औषधी ग्रहण करनेके लिये जाय तो शुद्ध होकर मंगलाचरण कर पवित्र और श्वेतवस्त्रोंको धारण करे, तथा देवता अश्विनीकुमार और ब्राह्मणोंका पूजनकर पूर्व अथवा उत्तरकी ओर मुखकरके औषधीको ग्रहण करना चाहिये। जिस औषधीके डाली और पत्ते ग्रहण करने हों तो वर्षा और वसन्त ऋतुमें ग्रहण करना चाहिये क्योंकि उस समय शाखा और पत्र सुन्दर सर्वगुण संपन्न होते हैं ग्रीष्म और शीतकालमें औषधियोंके मूल अर्थात् जड लेनी चाहिये उस समय पत्रोंके झडजानेसे जडमें विशेषगुण रहता है। शरद ऋतुमें वृक्षोंके छिलके, कन्द और दूध लेना चाहिये हेमन्त ऋतुमें वृक्षोंका गोंद, फूल और फल ग्रहण करना चाहिये इस प्रकार ग्रहण किये यह सब द्रव्य अपने २ गुणोंसे संपन्न होतेहैं ॥ ११ ॥

औषधरक्षणविधि।

गृहीत्वा चानुरूपगुणवद्भाजनेसंस्थाप्यागारेषु प्रागुदग्द्वारेषुनिवातप्रवातैकदेशेषु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्सु अग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानि स्ववच्छन्नानि शिक्ये चासज्यस्थापयेत्। तत्तानिचयथादोषंप्रयुञ्जीत ॥ १२ ॥

इस प्रकार औषधियोंको लेकर उनके अनुकूल पात्रमें रखकर जिस घरका पूर्व अथवा उत्तरकी ओर दरवाजा हो जिसमें अधिक वायु न आती हो जो स्थान वायुसे रहित भी न हो, ऐसे स्थानमें उस औषधीको टांग देना चाहिये। और नित्य फूल, हार, बलि कर्म आदिसे सुपूजित घरमें उस औषधीको रखना चाहिये। तथा उस औषधको भली प्रकार छोटे २ टुकडेकर विधिवत ऐसे स्थानमें रखे जिसमें अग्नि, जल, धूप, धूआं, धूल, मूषक आदि जानवर अथवा चौपाये जानवर न जा सकें ऐसे स्थानमें औषधीको रखना चाहिये। फिर जब आवश्यकता हो तो दोषानुसार इन औषधियोंका प्रयोग करे ॥ १२ ॥

वातरोगोंमें अनुपान।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्याम्लफलाम्लदध्यम्लादिभिर्वातं ॥ १३ ॥

वातजनित रोगोंमें औषधी सुरा, सौवीरक, तुषोदक,मैरेय, मेदक, धान्याम्ल, फलाम्ल और दहीके जलके साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

पित्तजरोगोंमें अनुपान।

मृद्वीकामलकमधुकपरूषकफलफाणितक्षीरादिभिश्चपित्ते ॥ १४ ॥

पित्तजनित रोगोंमें मुनक्का, आमले, मुलैठी, फालसा, असार, फाणित और दूध आदिकोंके साथ औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ १४ ॥

कफजरोगोंमें अनुपान।

श्लेष्मणितुमधुमूत्रकषायादिभिर्भावितानिआलोडितानिचइति उद्देशः ॥ १५ ॥

कफजनित रोगोंमें शहत, गोमूत्र तथा कषाय, तिक्त और कटुरसोंके साथ मिलाकर सेवन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

तंविस्तरेणद्रव्यदेहदोषसात्म्यादीनिप्रविभज्यव्याख्यास्यामः ॥१६॥

इस प्रकार औषध प्रयोगका कथन कर अब इन्हीं द्रव्योंके प्रयोगको द्रव्य, देह, दोष और सात्म्य आदि भेदोंसे विभागकर विस्तारसे कथन करतेहैं ॥ १६ ॥

वमनद्रव्योंमें मैनफलकी श्रेष्ठता और उनके ग्रहणका क्रम।

वमनद्रव्याणांमदनफलानिश्रेष्ठतमानिआचक्षतेअनपायित्वात्तानिवसन्तग्रीष्मयोरन्तरेपुष्याश्वयुग्भ्यांमृगशिरसावागृह्णीयान्मैत्रेमुहूर्त्तेकरणेच। यानिपक्वानिहरितानिपाण्डूनिअक्रिमीणिअकुशानिअह्रस्वानिअजग्धानितानिप्रमृज्यकुशपुटेवद्ध्वागोमयेनालिप्ययवतुषमाषशालिकुलत्थमुद्गपर्णीनामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमतऊर्द्धंमृदुभूतानितानिमधिष्टगन्धानिउद्धृत्यशोषयेत्। सुशुष्काणांफलानांपिप्पलीरुद्धरेत्तासांघृतदधिमधुपललविमृदितानां पुनःशुष्काणांतासांनवकलशंसुप्रमृष्टवालुकमरजस्कमाकण्ठंपूरयित्वास्ववच्छन्नंस्वनुगुप्तंशिक्येआसज्यस्थापयेत् ॥ १७ ॥

वमन द्रव्योंमें मैनफल सबसे उत्तम होताहै। क्योंकि यह किसी प्रकारका अवगुण नहीं करता। मैनफलके फलोंको वसन्तऋतुके अंतमें और ग्रीष्मके आदिमें ग्रहण करना चाहिये तथा पुष्य, अश्विनी, मृगसिर, इन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रमें, और मैत्र मुहूर्तमें-जो फल उत्तम पकेहुए, हरे, पीले, कृमि आदि दोष रहित, पुष्ट, स्थूल-

और किसी जीवके खाए कुतरे हुए न हों उनको प्रातःकाल जाकर तोड लावे । फिर कुशामें लपेटकर ऊपरसे गोबरका लेप करे एक बडा गोलासा बना जवोंकी राशिमें अथवा तुषोंमें वा उडद, शालीचावल, कुलथी और मुद्गपर्णी इनमें किसी एकके ढेरमें अथवा अन्य किसी ऐसेही पदार्थके ढेरमें दबाकर रक्खे फिर आठ दिनके बाद जब वह मृदु और सुगंधित होजांय निकालकर सुखा लेवे । जब वह सूख जांय तो उनकी गिरी (बीजों) को निकाल ले इन बीजोंको घी, दही, शहत और तिलक-ल्कमें मिलाकर आच्छीतरह मसल ले फिर उन मैनफलके बीजोंको स्वच्छ करके सुखावे । सूखनेपर बालूसे मांजे हुए स्वच्छ नवीन कलशमें कंठपर्यन्त भरकर भली प्रकार ढककर उत्तम एकांत स्थानमें छीकेपर विधिवत् रखदेवे ॥ १७ ॥

वमनकरानेका क्रम ।

अथच्छर्दनीयमातुरंद्व्यहंत्र्यहंवास्नेहस्वेदोपपन्नश्छर्दयेदिति ॥१८॥

इसके अनन्तर जब किसी रोगीको वमन कराना हो तो पहिले उसको दो तीन स्नेहन और स्वेदन कराके फिर वमन करावे ॥ १८ ॥

९ वामक योग ।

ग्राम्यानूपौदकमांसरसक्षीरदधिमाषतिलशाकादिभिःसमुत्क्लेशि-तश्लेष्माणंव्युषितंजीर्णाहारंपूर्वाह्णेकृतबलिहोममंगलप्रायश्चित्तं निरन्नमनतिस्निग्धंयवाग्वाघृतमात्रांचपीतवन्तं,तासांफलपिप्प-लीनामन्तर्नखमुष्टियावद्वासाधुमन्येतजर्जरीकृत्ययष्टिमधुकषाये-णकोविदारकर्बुदारनीपविदुलबिम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पु-ष्पीकषायाणामन्यतमेनवारात्रिमुषितंविमृद्यपूतंमधुसैन्धवयुक्तंसु-खोष्णंकृत्वापूर्णशरावंमन्त्रेणानेनाभिमन्त्रयेत् ॥ १९ ॥

जब रोगीको वमन कराना हो तो उससे पहिले दिन ग्राम्य, आनूप और जलज जीवोंके मांसरस, दूध, दही, उडद, तिल और शाक आदि भरपेट खिलाकर उसके कफको उत्क्लेशित करे फिर दूसरे दिन प्रातःकाल प्रथम दिनका आहार जीर्ण होनेपर बलि, होम, मंगलाचरण और प्रायश्चित्त करा भोजन बिना खिलाये घीयुक्त यवागूको पूर्ण मात्रासे पिलावे । और इस वमनके दिनसे पहिले दिन दो तोला अथवा जितना उचित हो उतना उपरोक्त मैनफलके बीजोंको लेकर बारीक पीसकर चालीस तोला मुलेठीके काथमें अथवा लाल कचनार, सफेद कचनार, नीप, काल-बेतस, बिम्बाफल, शणपुष्पी, सदापुष्पी और अपामार्ग इनमेंसे किसी एकके आधसेर

काथमें मिलाकर रखदेवे। फिर वमनके दिन घृतयुक्त यवागू पीनेके अनन्तर मैनफलके बीजोंके कल्क और इस काथको उत्तम रीतिसे घोलकर छान लेवे। इसमें शहद और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण गरम करके उस संपूर्ण आधसेर काथको इस नीचे लिखे मंत्रसे अभिमंत्रित करे ॥ १९ ॥

मंत्र।

ओम्ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः। ऋषयःसौषधिग्रामाभूतसंघाश्चपान्तुते ॥ २०॥ रसायनमिवर्षीणांदेवानाममृतंयथा। सुधेवोत्तमनागानांभैषज्यमिदमस्तुते ॥ २१ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, भूमि, चंद्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, औषधियोंके समूह और भूतोंके समूह तेरी रक्षा करें। जैसे ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत, उत्तम नागोंको सुधा गुणकारी होतेहैं उसी प्रकार तुमको यह औषध गुणकारी हो ॥ २० ॥ २१ ॥

इत्येवमभिमन्त्र्योदङ्मुखमातुरंपाययेत्। श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायवन्तंविशेषेणपुनरापित्तागमनात्तेनसाधुवमति ॥ २२ ॥

इस प्रकार इस मंत्रसे अभिमंत्रितकर उत्तराभिमुख रोगीको बिठाकर यह संपूर्ण औषधी पिलादेवे। विशेषकर कफज्वर, गुल्म और प्रतिश्यायमें वमन कराना हितकारक होताहै। जब देखे कि वमनमें पित्त निकलने लगे हैं तो वमन उत्तमरूपसे होगया ऐसा जानना ॥ २२ ॥

हीनवेगमें क्रिया।

हीनवेगन्तुपिप्पल्यामलकसर्षपकल्कलवणोदकैःपुनःपुनः प्रवर्त्तयेदापित्तदर्शनादित्ययंसर्वच्छर्दनयोगविधिः ॥ २३ ॥

यदि वमनका वेग मंद होजाय तो उस रोगीको मैनफलके प्रयोगके अनन्तर आमले और सरसोंका कल्क बना सेंधानमकयुक्तकर गर्मजलके साथ बार २ पिलावे तो वमनका वेग ठीक प्रवृत्त होजाता है। सब प्रकारके वमनयोगोंमेंही वमनके बन्द होनेपर यह आमला आदि कल्क गर्मजलके साथ बार २ पिलानेसे वमनका वेग यथोचित प्रवृत्त होजाताहै ॥ २३ ॥

वमनमें उष्णद्रव्योंमें मधुदेनेकी आज्ञा।

सर्वेषुतुमधुसैन्धवंकफविलायनच्छेदार्थंवमनेषुविदध्यात्।

नचोष्णविरोधोमधुनश्छर्दनयोगयुक्तस्याविपक्कप्रत्यागमनाद्दो-पहरणाच्च ॥ २४ ॥

सब प्रकारके वमनयोगोंमें कफको निकालने और छेदन करनेके लिये शहद और सेंधानमक मिला औषध पिलाना चाहिये । वामक द्रव्योंमें गर्म पदार्थोंके साथ शहद मिलाकर पिलानेका निषेध नहीं है क्योंकि वमन द्रव्योंके साथ पियाहुआ शहद परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको निकालताहुआ स्वयं भी निकलजाताहै ॥ २४ ॥

८ वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांद्वौद्वौभागौकोविदारादिकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःभाव-येत्तेनरसेनतृतीयंभागंपिष्ट्वाहरीतकीभिर्विभीतकैरामलकैर्वातुल्यं वर्त्तयेत् । तासामेकांद्वेवापूर्वोक्तानांकषायाणामन्यतमस्याञ्जलिमा-त्रेणविमृद्यबलवच्छ्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिषुपाययेदितिस-मानंपूर्वेण ॥ २५ ॥

२ पल मैनफलके बीजोंको लेकर कचनार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथकी इक्कीस भावना देवे फिर और १ पल मैनफलके बीज लेकर कचनार आदि किसी द्रव्यके क्वाथके साथ पीसकर उन इक्कीस भावना दियेहुए बीजोंके चूर्णमें मिलादेवे । फिर इनको पीसकर हरड अथवा बहेडा आमलेके समान गोलियें बनावे इनमेंसे एक या दो गोली कचनार आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके २० तोला क्वाथमें घोलकर पीजावे । इससे वमन होकर बलवान् कफका प्रसेक ग्रंथी ज्वर उदररोग और अरुचि यह सब नष्ट होजाते हैं । इसमें अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ २५ ॥

४ वामकयोग ।

फलपिप्पलीक्षीरंतेनवाक्षीरयवागूमधोभागेरक्तपित्तेहृद्दाहेचतृपि-तस्यवादध्नउत्तरकंकफच्छर्दिस्तमकप्रसेकेपुतस्यैवपयसः । शीतस्य सन्तानिकाञ्जलिंपित्तेप्रकुपितेउरःकण्ठहृदयेचतनुकफोपादिग्धेइति समानंपूर्वेण ॥ २६ ॥

उपरोक्त मैनफलके बीजोंसे सिद्ध किया दूध पिलाकर अधोगत रक्तपित्तमें वमन कराना चाहिये । मैनफलके बीजोंसे सिद्ध किये दूधसे बनाईहुई यवागू पिलाकर हृदयके दाहमें वमन कराना चाहिये और बहुतसे मैनफलके बीजोंको पीसकर दूधमें पकावे । इस दूधको जमाकर दहीकी मलाई उतारले इस मलाईसे कफजनित

रोगोंमें, तमकश्वासमें और कफके गिरनेमें वमन कराना चाहिये । तथा मैनफलके बीजोंसे सिद्धकिये दूधको शीतलकर इसकी २० तोला मलाई खिलाकर कुपितहुए पित्तमें वमन करावे । और वक्षःस्थल, कण्ठ तथा हृदय पतले कफसे लिपेहुए हों तो भी इस दूधकी मलाई खिलाकरही वमन कराना चाहिये । अन्य संपूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना चाहिये ॥ २६ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीशृतक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नंफलादिकल्ककषायसिद्धंकफाभिभूताग्निर्विशुष्कदेहश्चमात्रयापाययेदितिसमानंपूर्वेण ॥ २७ ॥

मैनफलके बीजोको दूधमें पकाकर उस दूधकी दही जमावे । इस दहीमेंसे मथकर मक्खन निकाले यह मक्खन १ भाग, मैनफल, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योंका कल्क यह सब मक्खनसे चौथा भाग लेवे और इन मैनफल आदि द्रव्योंका क्वाथ चार भाग लेवे । सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको उचित मात्राके साथ मुलैठीके क्वाथमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर कफसे व्याप्तहुई अग्नि शुद्ध होकर सम्पूर्ण देह शुद्ध होजाताहै । और सम्पूर्ण विधि पहिलेके समान ही जाननी ॥ २७ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांफलादिकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःपरिभावितेनपुष्परजःप्रकाशेनचूर्णेनसरसिवृहत्सरोरुहंसायाह्नेऽवचूर्णयेत् । तद्रात्रिव्युषितंप्रभातेपुनरवचूर्णितमुद्धृत्यहरिद्राकृसरक्षीरयवागूनामन्यतमंसैन्धवगुडफाणितयुक्तमाकण्ठंपीतवन्तमाघ्रापयेत्सुकुमारमुत्क्लिष्टपित्तकफमौषधद्वेषिणमितिसमानंपूर्वेण ॥ २८ ॥

मैनफलके बीज, मुलैठी और कचनार आदि द्रव्योके क्वाथमें मैनफलके बीजोंके चूर्णकी इकीस भावना देवे । फिर बहुत बारीक सूक्ष्म, चूर्ण करे । यह चूर्ण १ बडे तालाव पुष्करिणी आदिमें जाकर जो उसमें बहुत बडा कमलका फूल हो उस फूलपर यह चूर्ण लगाकर चला आवे । दूसरे रोज प्रात काल फिर मैनफलका चूर्ण बुरकाकर उस फूलको युक्तिपूर्वक तोड लावे । फिर रोगीको हलदी, खिचडी, दूध, यवागू, सेंधानमक, गुड, फाणित आदि द्रव्य यहांतक भरपेट पिलावे कि रोगी कण्ठपर्यन्त पूर्ण होजाय । फिर रोगीको वह कमलका फूल सुंघावे । इससे सुकुमारप्रकृति मनुष्यके शरीरमें उत्क्लेशित हुई कफ और पित्त निकल जाती है तथा जो रोगी सुकु-

मार स्वभाव होनेसे औषध पीनेमें द्वेष रखते हैं उनको यह सुंघानेवाला प्रयाग करा॰ वमन कराना चाहिये । अन्य सम्पूर्ण क्रिया पहिलेके समान करना ॥ २८ ॥

एक वामकयोग ।

फलपिप्पलीनांभल्लातकविधिपरिस्रुतंस्वरसंपक्त्वाफाणितेनातन्तु-लीभावाल्लेहयेत्॥ २९ ॥

मैनफलके बीजोंका भिलावेकी विधिके समान स्वरस निकालकर पकावे । जब गाढा होजाय तो फाणितके साथ मिलाकर चाटे तो इससे आमाशयगत दोष वमन॰ द्वारा निकलजातेहैं अन्य सब क्रिया पूर्ववत् जानना ॥ २९ ॥

एकवामकयोग ।

तापशुष्कंवाचूर्णीकृतंजीमूतादिकषायेणपित्तेकफस्थानगतेपायये-दितिसमानंपूर्वेण ॥ ३० ॥

मैनफलके बीजोंके स्वरसको धूपमें सुखाकर चूर्ण कर लेवे फिर इस चूर्णको जी-मूत आदि क्वाथके साथ मिलाकर कफस्थानगत पित्तमें वमन करावे । अन्य सब क्रिया पूर्ववत् करे ॥ ३० ॥

६ वामकयोग ।

फलपिप्पलीचूर्णानिपूर्ववत्कोविदारादीनांपण्णामन्यतमकषायस्रु-तानिवर्त्तिक्रियाःकोविदारादिकषायोपसर्जनाःपेयाइतिसमानंपूर्वे-ण ॥ ३१ ॥

मनफलके बीजोंके चूर्णको कचनार आदि सब द्रव्योंके स्वरसमें अथवा कचनार आदि द्रव्योंमेंसे किसी एकके स्वरसमें घोटकर गोलियें बनावे । यह गोली कचनार आदि किसी द्रव्यके क्वाथमें घोलकर पीवे तो वमन होकर आमाशयगत दोष दूर होता है । अन्य सब क्रिया पहिलेके समान करना ॥ ३१ ॥

२० वामकयोग ।

फलपिप्पलीपुआरग्वधकुटजस्वादुकण्टकपाठापाटलिशार्ङ्गेष्टामू-र्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्दपटोलसुषवीगुडूचीसोमवल्कदीपि-कानांपिप्पलीपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेराणांचअन्य-तमकषायेणसिद्धोलेहइतिसमानंपूर्वेण ॥ ३२ ॥

अमलतास, कुडा, विकंकत, पाढ, सोनापाठा, महाकरंज, मूर्वा, सप्तपर्ण,रक्ताकरंज,

-नीम, पटोलकी जड, सुखवी, गिलोय, सामवल्कल, अजवायन, पीपल, पिपलामूल, गजपीपल, चित्रक और सोंठ इन २० द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके कषायमें मैनफल-के बीजोंका अवलेह बनावे। इस अवलेहको शहद आदि मिलाकर चाटे तो आमाशय-गत संपूर्ण दोष वमनद्वारा निकलजाते हैं। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३२ ॥

बीस २ मोदक और उत्कारिकावामक योग।

फलपिप्पलीषुएलाहरेणुकाशतपुष्पाकुस्तुम्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरक-मरुवकगुग्गुलु-वालुकश्रीवेष्टकपरिपेलक-मांसीशैलेयकस्थौणेयक-सरलपारावतपद्यशोकरोहिणीनांविंशतेरन्यतमस्यकषायेणसाधि-तोत्कारिकाकल्पेनयथामोदकोवामोदककल्पेनयथादोषरोगविभ-क्तिप्रयोज्याइतिसमानंपूर्वेण ॥ ३३ ॥

इलायची, रेणुका,सौंफ, धनियां, तगर, कूठ, तज, चोरक, मरुवा, गूगल, सुंगन्ध-वाला,श्रीवास, नागरमोथा,जटामांसी, शैलेय, थुनेरा, सरलकाष्ठ, हंसपदी, अशोक और कुटकी इन२०द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण सानकर उत्कारि-का अथवा मोदक बनावे। यह मोदक,उत्कारिका घृत मिसरी आदि मिलाकर विधिवत् बनाने चाहिये। इनमेंसे उत्कारिका अथवा मोदक दोषानुसार खिलावे। अन्य क्रिया संपूर्ण पहिलेके समान जाननी ॥ ३३ ॥

एक २ शष्कुली अपूपयोग।

फलपिप्पलीस्वरसकषायपरिभावितानितिलशालितण्डुलपिष्टानि तत्कषायोपसर्जनानिशष्कुलीकल्पेनवापूपाइतिसमानंपूर्वेण ॥३४॥

मैनफलके स्वरस और मैनफलके बीजोंके क्वाथमें तिल और शालीचावलोंकी भावना देकर बारीक पीस चूर्ण करे। इस चूर्णमें मैनफलका क्वाथ मिला उसन लेवे। फिर इसकी शष्कुली अथवा पूडा बनाकर विधिवत् प्रयोग करे। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३४ ॥

पंद्रह २ अपूपशष्कुली योग।

एतेनैवचकल्पेनसुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरकालमालकपर्णासक-क्षवकफणिज्झकश्रृङ्गवेरगृञ्जनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिक्षु-वालिकेक्षुकाण्डेक्षूणाञ्चान्यतमस्यकषायेणकारयेत् ॥ ३५ ॥

इसी प्रकार सुमुख तुलसी, सुरस तुलसी, कुठेरक तुलसी, गण्डीर तुलसी, काल-

मालक तुलसी, पर्णास तुलसी, फणिज्जक तुलसी, अदरक, गाजर, भूतृण, कसौंदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और कांडेक्षु इन १९ औषध द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें मैनफलके बीजोंका चूर्ण उसनकर शष्कुली अथवा पूडा बनावे। अन्य सब क्रिया पहिलेके समान जानना ॥ ३५ ॥

वमनके १० योग।

यथाबदरषाडवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूपमद्यानिमदनफलपाचितानितेनोपसंसृज्ययथादोषरोगविभक्तिदद्यात्तैःसाधुवमतीति ॥ ३६ ॥

तथा बदर, षाडव, राग, लेह, मोदक, पूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूप और मद्य इनमेंसे किसी एकको मैनफलके साथ पाककर। अथवा मैनफलका क्वाथ मिलाकर वा मैनफलका कल्क मिला दोषानुसार कल्पनाकर पिलावे तो उत्तम वमन होतीहै ॥ ३६ ॥

मैनफलके पर्याय।

मदनःकरहाटश्चराटःपिण्डीतकःफलम्।
श्वसनश्चेतिपर्य्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना ॥ ३७ ॥

मदन, करहाटक, राठ, (राडा) पिण्डीतक फल और स्वसन यह सब मैनफलके पर्याय वाचक शब्द हैं ॥ ३७ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकाः।

नवयोगाःकषायेषुवर्त्तिष्वष्टौपयोमुखे । पञ्चफाणितचूर्णेद्वौप्रेयेवर्त्तिक्रियासुपट् ॥ ३८ ॥ विंशतिर्विंशतिर्लेहमोदकोत्कारिकासुच। शष्कुलीपूपयोश्चोक्तायोगाःषोडशषोडश ॥ ३९ ॥ दशान्येषाडवाद्येषुत्रयस्त्रिंशदिदंशतम्। योगानांविधिवद्दृष्टंफलंकल्पेमहर्षिणा॥४०॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने मदनकल्पोनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि मदनकल्पनामक अध्यायमें ९ प्रकारके क्वाथ योग, आठ प्रकारकेवर्त्ती (गोली) योग, पांच प्रकारके दूध, मक्खन आदि योग, एक प्रकारका फाणित, १ प्रकारका चूर्ण, १ प्रकारकी सुंघनी, छः प्रकारकी वर्त्ती, २० प्रकारके अवलेह २० प्रकारके मोदक २० प्रकारकी उत्कारिका

(मुहाली), २० प्रकारकी शष्कुली (पूडी), अन्य १६ प्रकारकी शष्कुली १६ प्रकारके पृडे, दश प्रकारके खाण्डव आदि वामकयोग कहे हैं। यह सब मिलाकर १३३ प्रकारके मैनफलके कल्पोंको महर्षि आत्रेयजीने कथन कियाहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां कल्पस्थाने रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित प्रसादनी-भाषाटीकायां मदनकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

अथातो जीमूतकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

जीमूतके नाम।

कल्पंजीमूतकस्येमंफलपुष्पाश्रयंशृणु।
खरागरीचवेणीचतथास्याद्देवताडकः ॥ १ ॥

अब जीमूतकल्पको श्रवण करो। जीमूतके फल और फूल वमन करानेमें लिये जातेहैं जीमूत-खरागरी, वेणी देवताडक (घोशलता, देवदाली), यह जीमूतके पर्याय वाचक शब्द है ॥ १ ॥

५ योग।

जीमूतकंत्रिदोषघ्नंयथास्वौषधकल्पितम्। प्रयोक्तव्यंज्वरश्वासहिक्काकोद्यामयेषु च ॥ २ ॥ यथोक्तगुणयुक्तानांदेशजानांयथाविधि। पयःपुष्पेपुनिर्वृत्तंफलेपेयाशृतांपयः ॥ ३ ॥ लोमनेक्षीरसन्तानंदध्युत्तरमलोमने। शृतेपयसिदध्यम्लंजातंहरितपाण्डुके ॥ ४ ॥

जीमूत उचित द्रव्योंके साथ कल्पना किया हुआ त्रिदोषको नष्ट करताहै। इसका प्रयोग, ज्वर, श्वास और हिचकी आदि रोगोंमें करना चाहिये। जीमूतको प्रथम कल्पमें कहे अनुसार उत्तम भूमिसे विधिपूर्वक लावे। १ इसके फूल, डालकर सिद्ध किया दूध पीवे। २ अथवा फल मिलाकर पकायाहुआ दूध पीवे। ३ दोषोंका अनुलोमन करनेके लिये जीमूतसे सिद्ध किये दूधकी मलाई खावे। ४ और दोषोंके प्रतिलोम होनेपर जीमूतसे सिद्ध किया दूध पीकर ऊपरसे दही पीवे। ५ पाण्डु और नेत्रोंके हरे होनेपर जीमूतसे सिद्ध किये दूधका खट्टा दही पीवे ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

१ देवदाली, कड़वी तोरीकी जाति, किसीके मतमें बन्दाल्डोडा।

१ योग ।

जीर्णानाञ्चसुशुष्काणांन्यस्तानांभाजनेशुचौ ।
चूर्णस्यपयसाशुक्तिंवातपित्तार्दितःपिबेत् ॥ ५ ॥

जीमूतके फल जब पककर सूखजावें तो उनको उत्तम पवित्र पात्रमें डालकर रक्खे फिर जब आवश्यकता हो तो इन फलोंका चूर्णकर दो तोला चूर्ण लेकर अथवा जितनी मात्रा समयानुकूल उचित हो वातपित्त रोगसे पीडित रोगीको दूधके साथ मिलाकर पिलावे ॥ ५ ॥

१ सुरामण्ड योग ।

आसुत्यचसुरामण्डेमृदित्वाप्रस्नुतंपिबेत् ।
कफजेऽरोचकेकासेपाण्डुरोगेसयक्ष्मणि ॥ ६ ॥

जीमूतके फलको सुरामण्डमें भिगोकर रक्खे फिर १५ दिनके बाद इस फलको सुरामें खूब मसलकर सुराको छान लेवे । इसको पीकर वमन करानेसे कफकी अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्माकी शान्ति होतीहै ॥ ६ ॥

१२ योग ।

द्वेत्रापोथ्याथवात्रीणिगुडूच्यामलकस्यवा । कोविदारादिकानांवा-
निम्बस्यकुटजस्यवा । कषायेष्वासुतंपूत्वातेनैवविधिनापिबेत्॥७॥

जीमूतके दो अथवा तीन फलोंको कूटकर कोविदार आदि ८ द्रव्य, नीम, इन्द्रयव, गिलोय और आमले इन १२ द्रव्यमेंसे किसी एकके क्वाथमें भिगोकर बन्द करके रख देवे । जब आसवके समान उनका रस, क्वाथमें आजाय तो मसलकर छान लेवे । इसको पीकर वमन करे । और मदनकल्पवाली विधिका अनुसरण करे ॥ ७ ॥

७ योग ।

अथवारग्वधादीनांसप्तानांपूर्ववत्पिबेत् ।
एकैकशःकषायेणपित्तश्लेष्मज्वरार्दितः ॥ ८ ॥

अमलतास, कुडा, विकंकत, सोनापाठा, पाटला, महाकरञ्ज और मूर्वा इन सात द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें जीमूतके फलोंको कूटकर भिगोवे । आसवके समान खमीर उठनेपर मसलकर छान लेवे । पित्त और कफ ज्वरसे पीडित रोगीको पिलाकर वमन करावे । सब विधि पहिलेके समान जानना ॥ ८ ॥

---

१ लालकचनार, सफेदकचनार, नीप, काञ्चनस, कंदूरी, शणपुष्पी, सदापुष्पी और अपामार्ग ।

८ योग।

वर्त्तयःफलवत्योऽष्टौकोलमात्रास्तुतामताः । जीमूतकस्यवाकल्कं चूर्णंवाशिशिराम्बुना । ज्वरेपित्तभवेवातदुष्टेश्लेष्मणिचानुगे ॥ ९ ॥

मैनफलके समानही कचनार आदि द्रव्योंके क्वाथसे जीमूतके फलोंकी आठ प्रकार वर्त्ती (वत्ती या वटिका) कल्पना करे और कोविदार आदि द्रव्योंके क्वाथमें घोलकर पीवे अथवा जीमूतके कल्क वा चूर्णको शीतलजलके साथ पीकर पित्तप्रधान वातमध्य, कफानुग ज्वरमें वमन करावे ॥ ९ ॥

४ योग।

जीवकर्षभकेक्षूणांशतावर्य्यारसेनवा ।
पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा ॥ १० ॥

जीवक, ऋषभक, ईख अथवा सतावरके रसके साथ जीमूतका कल्क पिलाकर पित्तकफज्वरमें अथवा वातपित्तज्वरमें वमन करावे ॥ १० ॥

तथाजीमूतकक्षीरात्समुत्पन्नंपचेद्घृतम् ।
फलादीनांकषायेणश्रेष्ठंतद्वमनंमतम् ॥ ११ ॥

जीमूतके साथ सिद्ध कियेहुए दूधमेंसे घृत निकालकर इस घृतमें चौगुना मदन-फलादि द्रव्योंका क्वाथ मिलाकर घृत सिद्धकरे । अथवा इस घृतको मदन फल आदि दश द्रव्योंके क्वाथमें मिलाकर पीवे तो उत्तम वमन होताहै ॥ ११ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्रश्लोकौ ।

षट्क्षीरेमदिरामण्डेएकोद्वादशचापरे । सप्तचारग्वधादीनांकषायेऽष्टौचवर्त्तिषु ॥ १२ ॥ जीवकादिषुचत्वारोघृतश्चैकंप्रकीर्त्तितम् । कल्पेजीमूतकानाञ्चयोगास्त्रिंशन्नवाधिकाः ॥ १३ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेजीमूतकल्पनाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस जीमूतकल्पनामक अध्यायमें दूध आदि ६ योग, सुरामण्डका १ योग, संधानके १२ योग, अमलतास आदि ७ योग, वत्तीके ८ योग, जीवकादि ४ योग और घृतका १ योग । सब मिलाकर ३९ योगोंका वर्णन कियाहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

इति श्रीच० कल्पस्थाने प्र० भाषाटीकायां जीमूतकल्पं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

१ मैनफल, मुलैठी कचनारआदिआठद्रव्य ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात इक्ष्वाकुकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अव हम इक्ष्वाकु कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

इक्ष्वाकुकल्पः ।

सिद्धंवक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्पंयेषांप्रशस्यते ।
पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगाअस्मिन्महर्षिणा ॥ १ ॥

इक्ष्वाकु कल्प सिद्ध फलके देनेवाला है जिसके लिये इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ है उसको वर्णन करते हैं। इसमें इक्ष्वाकु (कडवी तुंबी) के ४५ योग महर्षि आत्रेयजीने वर्णन कियेहैं ॥ १ ॥

कडुवे तुम्बेके नाम और गुण ।

लम्बाथकटुकालाबुस्तुम्बीपिण्डफलातथा । इक्ष्वाकुफलिनीचैव-प्रोच्यतेतस्यकल्पना ॥ २ ॥ कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्त्तेकफक-र्शिते । प्रताम्यतिनरेचैववमनार्थंतदिष्यते ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकु लम्बा, कटुक अलाबु, कडवी तुंबी, पिण्डफला, फलिनी यह इक्ष्वाकुके पर्यायवाचक शब्द हैं। खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर, कफ और पित्तजनित बेहोशीमें इक्ष्वाकु द्वारा वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ २ ॥ ३ ॥

दूध आदि ८ योग ।

अपुष्पस्यप्रवालानांमुष्टिंप्रादेशसंमिताम् ।
क्षीरप्रस्थेशृतंदद्यात्पित्तोद्रिक्तेकफज्वरे ॥ ४ ॥

पुष्परहित कडवे तुंबेकी उत्तम बेल १ बालिस्त, नई कोंपल शाखा १ पल इनको कूटकर १ सेर दूध और १ सेर पानीमें मिलाकर पकावे। जब दूधमात्र शेष रहजाय तो उतारकर छान लेवे। इसके पीनेसे वमन होकर पित्तोल्वण पित्तकफज्वर नष्ट होताहै ॥ ४ ॥

पुष्पादिषुचचत्वारःक्षीरेजीमूतकेयथा ।
योगाहरितपाण्डूनांसुरामण्डेनपञ्चमः ॥ ५ ॥

जैसे फूल आदिकोंके साथ सिद्ध कियेहुए चार प्रकारके योग जीमूतके कहेहैं उसी प्रकार कडवे तुंबेके भी चार प्रकारके योग कल्पना किये जाते हैं। यह चारयोग

हरित पांडुरोगमें प्रयोग करने चाहिये। और जिस प्रकार सुरामण्डमें जीमूतफलका संधानकर प्रयोग किया जाताहै। ऐसेही कडवीतुंबीके फलको भिगोकर सुरामण्डका प्रयोग किया जाताहै ॥ ५ ॥

फलस्वरसभागश्चत्रिगुणक्षीरसाधितम्।
उरःस्थितेकफेदद्यात्स्वरभेदेसपीनसे ॥ ६ ॥

कडवीतुंबीका स्वरस १ भाग, दूध ३ भाग, मिलाकर पकावे। दूधमात्र शेष रहने पर पिलाकर कफजनित छातीके रोग, स्वरभंग और प्रतिश्यायमें वमन करावे ॥ ६ ॥

हृतमध्येफलेजीर्णेस्थितंक्षीरंयदादधि।
जातंस्यात्कफजेकासेश्वासेवम्याश्चतांपिवेत् ॥ ७ ॥

पकीहुई कडवीतुंवीके बीचमें छेदकर उसमें दूध भरकर जमा देवे। जब दही जमजाय तो उस दहीको मथकर कफकी खांसी, कफजनित श्वास और कफजनित वमनमें पिलाकर वमन करावे ॥ ७ ॥

मस्तुका १ योग तक्र का १ योग।

मस्तुनावाफलान्मध्यंपाण्डुकुष्टविषार्दितः।
तेनतक्रंविपक्वंवासक्षौद्रलवणंपिवेत् ॥ ८ ॥

कडवीतुंवीके गूदेको श्वास, पाण्डुरोग, कुष्ठ और विषरोगमें दहीके जलमें पकाकर पिलावे। अथवा कडवीतुंवीके गूदेको छाछमें पकाकर शहद और सेंधानमक मिला पिलावे ॥ ८ ॥

बकरीके दूधका १ योग।

अजाक्षीरेणबीजानिभावयेत्पाययेत्तच।
विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषुश्लीपदेषुच ॥ ९ ॥

इक्ष्वाकुके बीजोंके चूर्णको बकरीके दूधकी भावना देकर विषरोग, गुल्मरोग, उदररोग ग्रंथीरोग, गण्डमाला और श्लीपदरोगमें पिला वमन कराना चाहिये ॥ ९ ॥

१ गंधयोग।

तुम्ब्याःफलरसैःशुष्कैःसपुष्पैरवचूर्णितम्।
छादयेन्माल्यमाघ्रायगन्धसम्पत्सुखोचितः ॥ १० ॥

कडवीतुंवीके फूलोंका चूर्णकर कडवीतुंवीके फलोंके रसमें भावना देवे। फिर सुखाकर बारीक चूर्ण करे इस चूर्णको सुगंधित फूलमालामें लगा सुकुमार प्रकृति मनुष्योंको सुंघावे तो सुखपूर्वक वमन होजाताहै ॥ १० ॥

गुडादि ४ योग ।

भक्षयेत्फलमध्यंवागुडेनपललेनच ।

इक्ष्वाकुफलतैलंवासिद्धंवापूर्ववद्घृतम् ॥ ११ ॥

कडवीतुंबीके गूदेको गुड अथवा तिलकल्कके साथ मिलाकर खावे अथवा कडवी तुंबीके कल्कके साथ सिद्ध किया तेल अथवा जीमूतके समान बनायाहुआ कडवी तुंबीका घृत पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन होजाताहै ॥ ११ ॥

वर्धमान ६ योग ।

पञ्चाशद्दशवृद्धानिफलादीनांयथोत्तरम् ।

पिबेद्विमृद्यबीजानिकषायेष्वासुतंपृथक् ॥ १२ ॥

कडवी तुंबीके दश बीज, मैनफल आदि द्रव्योंके क्वाथके साथ संधानकर पीसके पीवे । फिर क्रमसे दश दश बीज बढाता हुआ ५ दिनमें ५० बीजों तक बढावे । इससे वमन द्वारा शरीरके संपूर्ण दोष दूर होतेहै ॥ १२ ॥

क्वाथक ९ योग । वत्तीके ८ योग ।

यष्ट्याह्वकोविदाराद्यैर्मुष्टिमन्तर्नखंपिबेत् ।

कषायैःकोविदाराद्यैर्मात्राश्चफलवत्स्मृताः ॥ १३ ॥

मुलैठी और कोविदार आदि आठ द्रव्योंके क्वाथमे २ तोला कडवी तुंबीके बीजोंको पीसकर वत्तियें बनावे और दोषानुसार उनका प्रयोग कर वमन करावे । मैनफलमें कहीहुई विधिके अनुसार इसकी ८ प्रकारकी वर्त्तियोंकी कल्पना करे॥१३॥

अवलेहके ५ योग ।

बिल्वमूलकषायेणतुम्बीबीजाञ्जलिंपिबेत् । पूतस्यास्यत्रयोभागाश्चतुर्थःफाणितस्यतु ॥ १४ ॥ सघृतंबीजभागश्चपिष्टमर्द्धांशिकांस्तथा । महाजालिनिजीमूतकृतवेधनवत्सकान् ॥ १५ ॥ तंलेहं साधयेद्दर्व्याघट्टयेन्मृदुनाग्निना । यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितश्च नशीर्य्यते । तंलिह्यान्मात्रयालेहंमन्थश्चापिपिबेदनु । कल्पएषोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते ॥ १६ ॥

बेलकी जडके क्वाथमें ८पल कडवी तुंबीके बीजोंको पकावे । फिर छानकर यह क्वाथ ३ भाग, फाणित एक भाग, घृत १ भाग, कडवी तुंबीका चूर्ण आधाभाग, देवदालीका चूर्ण आधाभाग, कडवी तोरीका चूर्ण आधाभाग, इन्द्रयव आधाभाग इन सबको

मिलाकर मन्द आंचपर पकावे । जब यह पकते २ कडछीमें लगने लगे और तारसा बंधजाय तथा पानीमें डालनेसे पानीमें न घुले सो इसको उतारकर रक्खे । इसमेंसे उचित मात्रानुसार चाटकर ऊपरसे मन्थ पीवे । इसमें फाणित शब्दसे कोई टीकाकार त्रिकुटा लेतेहैं । इसी प्रकार अग्निमंथ, सोनापाठा, कुंभेर और पाटलाकी जडके क्वाथके साथ पृथक् २ यह अवलेह बनाया जाताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

मंथसे १ योग ।

सक्तुभिर्वापिवेन्मन्थंतुम्बीस्वरसभावितैः ।
कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके ॥ १७ ॥

अथवा कडवी तुंबीके रसमें भावना दिये यवके सत्तुओंका मंथ पीवे । इससे वमन होकर कफज्वर, श्वास, खांसी, कण्ठरोग और अरुचि यह सब दूर होतेहैं ॥ १७ ॥

मांसरसका १ योग ।

गुल्मेमेहेप्रसेकेचकल्पंमांसरसैःपिवेत् ।
नरःसाधुवमत्येवंनचदौर्बल्यमश्नुते ॥ १८ ॥

गुल्मरोगमें, प्रमेहमें और कफके गिरनेमें कडवी तुंबीसे सिद्ध किया मांसरस पीवे । इन योगोंसे उत्तम प्रकार वमन होकर शरीर दुर्बल नहीं होता ॥ १८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

पयस्यष्टौसुरामण्डमस्तुतक्रेषुचत्रयः । प्रेयंसपललंतैलंवर्द्धमानासवेषुषट् ॥ १९ ॥ घृतमेकंकषायेपुनवान्येमधुकादिषु । अष्टौवर्त्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा ॥ २० ॥ योगाइक्ष्वाकुकल्पेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच । उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया॥२१॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थान इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस इक्ष्वाकुकल्पमें दूधके साथ ८ योग, सुरामण्डके साथ १ योग, दहीके जल और तक्रके साथ ३ योग, सूंघनेका १ योग, गुड, तिल, कल्क, तेल और वर्द्धमान प्रणालीसे तथा संधानक्रमसे ६ योग, घृतसे १ योग, मुलैठी आदि क्वाथोंसे ९ योग, वटिका विधानसे ८ योग, अवलेह विधिसे ५ योग, मंथसे १ योग, मांसरसके साथ १ योग इसप्रकार सब मिलाकर प्रजागणके हितके लिये महर्षिने ४५ योगोंको कथन कियाहै ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्रीचर० आ० सं० कल्पस्थाने प्र०भा०टी० इक्ष्वाकुकल्पोनाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातो धामार्गवकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः॥

अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

धामार्गवके नाम।

कर्कोटकीकटुफलामहाजालिनिरेवच।
धामार्गवस्यपर्य्यायाराजकोशातकीतथा॥ १॥

धामार्गव, कर्कोटकी, कटुफला, महाजालनी और राजकोशातकी यह कडवी तोरीके पर्यायवाचक शब्द हैं॥ १॥

धामार्गवके गुण।

गरेगुल्मोदरेकासेवातश्लेष्मामयेस्थिते। कफेचकण्ठवक्रस्थेकफ-सञ्चयजेषुच। रोगेष्वेषुप्रयोज्याःस्युःस्थिराश्चगुरवश्चये॥ २॥

गरदोष, गुलम, उदररोग, खांसी, बद्धमूल, वात और कफके रोग, कण्ठ और मुखमें हुए कफके विकार, सब प्रकारके कफके संचय तथा अन्यभी जो भारी और शिरागत रोग हैं उनमें धामार्गवका वमन करना हितकारक होताहै॥ २॥

धामार्गवके ६० योग।

फलंपुष्पंप्रवालश्चविधिनातस्यसंहरेत्। प्रवालस्वरसंशुष्कंकृताश्च गुलिकाःपृथक्। कोविदारादिभिःपेयाःकषायैर्मधुकस्यच॥ ३॥

धामार्गवके फल, फूल, प्रवाल, आदि विधिपूर्वक उचित समयमें ग्रहणकरके रक्खे। धामार्गवके प्रवालोंका स्वरस, धूपमें सुखाकर चूर्ण अथवा गोली बना लेवे। अथवा इस स्वरसको अग्निपर पकाकर गोली बनावे। इस गोलीको मुलैठीके क्वाथसे अथवा कोविदार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन हो॥ ३॥

पुष्पादिषुपयोयोगाश्चत्वारःपञ्चमीसुरा।
पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतः कल्पःप्रवक्ष्यते॥ ४॥

कडवी तोरीके फूल, फल और पल्लवोंके योगसे दूध आदि सिद्धकर ४ प्रकारकी जीमूतके समान कल्पना करे। तथा इसके फलोंको सुरामण्डमें भिगोकर आसवके समान ५ वीं कल्पना करे। जीमूतके समान इसके सूखे फलोंके अन्य कल्प कथन करतेहैं॥ ४॥

मधुकस्यकषायेणबीजंकण्टोद्धृतंफलम् ।
सगुडंव्युषितंरात्रिंकोविदारादिभिस्तथा ॥ ५ ॥
दद्याद्गुल्मोदरार्त्तेभ्योयेचाप्यन्येकफामयाः ।
दद्यादन्नेनवायुक्तंछर्दिंहृद्रोगशान्तये ॥ ६ ॥

धामार्गवके बीजोंका छिलका दूरकर मुलैठीके क्वाथमें अथवा कचनार आदि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें कूटकर रात्रिको भिगो देवे। प्रातःकाल उसमें गुड मिलाकर कफगुल्म, कफके उदररोग तथा अन्य कफके विकारमें पिलाकर वमन करावे। और हृद्रोगमें तथा छर्दीमें अन्नके साथ मिलाकर देवे। किसी पुस्तकमें अन्नकी जगह अम्ल पाठ है। अर्थात् छर्दी और हृद्रोगमें कांजीमें मिलाकर पिलावे तो वमन होकर दोषकी शांति होतीहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनिभावितानिप्रभूतशः ।
रसक्षीरयवाग्वादितृप्तोघ्रात्वावमेत्सुखम् ॥ ७ ॥

धामार्गवके बीजोंका चूर्णकर नीलकमल आदि फूलोंपर पूर्वोक्त क्रमसे बुरकावे। फिर रोगीको मांसरस दूध, यवागू आदि अत्यन्त भरपेट खिलाकर वह चूर्णयुक्त कमल सुंघावे। उसके सूंघनेसे सुकुमार प्रकृति मनुष्योंको सुखपूर्वक वमन होजातीहै ॥ ७ ॥

चूर्णीकृतस्यवर्त्तिंवाकृत्वाबदरसम्मिताम् ।
विनीयाञ्जलिमात्रेतुपिवेद्गोशकृतोरसे॥ ८ ॥

कडवी तोरीके बीजोंके चूर्णको बारीक पीसकर बेरके समान गोलियां बनावे। १ गोली २० तोला गौके गोबरके रसमें मिलाकर पीवे तो उत्तम रीतिसे वमन होकर विष विकार आदि दूर होतेहैं ॥ ८ ॥

पृपतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्ट्राश्वतरस्यच ।
श्वदंष्ट्रखरखड्गानाञ्चैवंपयाशकृद्रसे ॥ ९ ॥

इसी प्रकार पृपतमृग, रीछ, हिरण, घोडा, हाथी, ऊंट, खचर, बघेरा, गधा और गेंडेकी विष्ठाके रसमें भी धामार्गवके चूर्णको पीकर वमन किया जाताहै ॥ ९ ॥

जीवकर्षभकौवीरामात्मगुप्तांशतावरीम्। काकोलींश्रावणींमेदांमहामेदां मधूलिकाम् ॥ १० ॥ एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण तु। शर्करामधुसंयुक्तालेह्याहृद्दाहकासिनाम्॥ ११ ॥

जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, कौंचके बीज, शतावर, काकोली, गोरखमुण्डी, मेदा, महामेदा, और मुलेठी इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकके चूर्णमें धामार्गवके बीजोंका चूर्ण और खांड तथा शहद मिला अवलेह बनावे । यह अवलेह हृदयकी दाह और खांसीवालेको चटाना चाहिये ॥ १० ॥ ११ ॥

सुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितेकफे ।
धान्यतुम्बुरुयूषेणकल्कस्तस्यविषापहः ॥ १२ ॥

पित्तकी उष्णतायुक्त कफमें धामार्गवके चूर्णको गर्मजलके साथ पिलावे । और धनियां तथा नेपाली धनियेंके क्वाथ और मूंगके यूषके साथ धामार्गवका कल्क पीनेसे वमन होकर विषविकार दूर होताहै ॥ १२ ॥

जात्याः सौमनसायिन्यारजन्याश्चोरकस्यवा । वृश्चिकस्यमहाक्षुद्रसहाहैमवतस्यच । विम्ब्याःपुनर्नवायावाकासमर्दस्यवापृथक् ॥ १३ ॥ एकंधामार्गवंद्वेवाकषायेपरिमृद्यतु । तच्छृतंक्षीरजंसर्पिःसाधितंवाफलादिभिः । घृतंमनोविकारेषुपिबेद्वमनमुत्तमम् ॥ १४ ॥

मालतीके फूल, हलदी, वृश्चिक, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, वच, कन्दूरी, पुनर्नवा और कसौंदी इनके क्राथमें एक अथवा दो कडवी तोरीका कल्क मिलाकर दूधको सिद्ध करे । इस दूधका घी निकालकर मदनफलादि कल्कके साथ पीनेसे वमन होकर मनोविकार दूर होतेहैं । यह वमनकारक उत्तम योग है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अध्यायकाउपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे । कषायैर्विंशतिःकल्कैर्दशद्वौच शकृद्रसे ॥ १५ ॥ अन्नएकस्तथाघ्रेयेदशलेहास्तथाघृते । कल्पेधा मार्गवस्योक्ताःषष्टिर्योगामहर्षिणा ॥ १६ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस धामार्गव कल्पनामक अध्यायमें धामार्गवके पल्लवोंसे ४ योग दूधसे १ योग, सुरासवसे १ योग, कषाय और कल्कसे २० योग, गोबरआदि रससे दश योग, अन्नसे १ योग, सूंघनेसे १ योग, अवलेहमे दश योग, और घृतसे दशयोग कल्पना किये हैं । इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग महर्षिने कथन कियेहैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्रीचर० प्र० भा० टी० कल्पस्थाने धामार्गवकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः।

अथातो वत्सककल्पं व्याख्यास्याम इति ह स्माह भगवानात्रेयः।

अब हम वत्सककल्पकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे.

अथवत्सकनामानिभेदंस्त्रीपुंसयोस्तथा।

कल्पश्चास्यप्रवक्ष्यामिविस्तरेणयथातथम्॥ १॥

अब वत्सकके नाम, स्त्री पुरुष भेद और वत्सक (कुडा) के कल्पोंको विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं॥ १॥

कुटजके नाम।

वत्सकःकुटजःशक्रोवृक्षकोगिरिमल्लिका।

बीजानीन्द्रयवास्तस्यतथोच्यन्तेकलिङ्गकाः॥ २॥

वत्सक, कुटज, शक्र, वृक्षक, गिरिमल्लिका, यह कुडाके नाम हैं। इसके बीजोंको इंद्रयव और कलिंग कहतेहैं॥ २॥

स्त्रीपुरुषभेद।

बृहत्फलःश्वेतपुष्पःस्निग्धपत्रःपुमान्भवेत्।

श्यामाचारुणपुष्पीस्त्रीफलवृन्तैस्तथाणुभिः॥ ३॥

जिस कुटज वृक्षमें वडी २ लंबी फलिएँ हों और फूल सफेद हों तथा पत्र चिकने हों उसे पुरुष जातिका कुटज (कुडा) वृक्ष जानना। और जिसमें फूल काले या लाल वर्णके हों, फली और डंडी छोटी हों उसको स्त्री जातिकी कुडा जानना॥ ३॥

कुटजके गुण।

रक्तपित्तकफघ्नस्तुसुकुमारेष्वनत्ययः।

हृद्रोगज्वरवातासृग्विसर्पादिषुशस्यते॥ ४॥

कुटज—रक्तपित्त और कफको नष्ट करताहै और यह सुकुमार मनुष्योंको भी किसी प्रकारकी हानि नहीं करता। तथा हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त और विसर्पादि रोगोंमें इसका प्रयोग करना श्रेष्ठ माना है॥ ४॥

कुटजके १८ योग।

कालेफलानिसंगृह्यतयोःशुष्काणिसंक्षिपेत्। तेषामन्तर्नखंमुष्टिंज-

जरीकृत्यतापयेत् । मधुकस्यकषायेणकोविदारादिभिस्तथा ॥ ५ ॥ निशिस्थितंविमृद्यैतल्लवणक्षौद्रसंयुतम् । पित्तेतद्वमनंश्रेष्ठंपित्तश्लेष्मनिवर्हणम् ॥ ६ ॥

उचित समयमें कुडाकी फलियोंको तोडकर सुखाले । फिर इन फलियोंमेंसे जो इन्द्रजौ निकलें उनको एक मुट्ठी लेकर (दोसे पांच तोला तक) कूटकर मुलैठीके अथवा कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें पकाकर सायंकाल रख देवे प्रातःकाल मसलकर छानले इसमें सेंधानमक और शहद मिला पीकर वमन करे यह वमन पित्तमें कराना श्रेष्ठ है । और कफपित्तको दूर करताहै ॥ ५ ॥ ६ ॥

अष्टाहंपयसार्केणतेषांचूर्णानिभावयेत् । जीवकस्यकषायेणततः पाणितलंपिबेत् ॥ ७ ॥ फलजीमूतकैक्ष्वाकुजीवन्तीनांपृथक्तथा । सर्षपाणांमधूकानांलवणस्याथवाम्बुना । कृसरेणाथवायुक्तंविदध्याद्वमनंभिषक् ॥ ८ ॥

कुडाके बीजोंके चूर्णको आकके दूधमें आठ दिन तक भावना देवे फिर सुखाकर चूर्ण करले । इस चूर्णको एक कर्ष लेकर जीवकके क्वाथके साथ पीवे । अथवा इस आकके दूधसे भावना दियेहुए चूर्णको देवदाली (बंदाल), कडवी तूंबी, मैनफल, जीवंती इनमेंसे किसी एकके क्वाथके साथ पीवे । अथवा सरसोंके क्वाथ, वा मधूक (महुआ या मुलैठी) के क्वाथके साथ अथवा नमकयुक्त गर्म जलके साथ पीवे अथवा वैद्य खिचडीमें मिलाकर खवावे तो उत्तम वमन होताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

उपसंहार ।

तत्रश्लोकः ॥

कषायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताःसलिलैस्त्रयः ।
एकश्चकृसरायांस्याद्योगास्तेऽष्टादशस्मृताः ॥ ९ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेवत्सककल्पंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

यहां उपसंहारमें कहतेहैं कि इस वत्सक कल्पमें क्वाथोंके योगसे ९ नो, चूर्णके योगसे ५ पांच, जलके योगसे ३ तीन और खिचडीके योगसे १ एक । इस प्रकार सब मिलाकर १८ योग कुडाके कहेहैं ॥ ९ ॥

इति श्रीच० प्रणीत० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० कुटजकल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःकृतवेधनकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम कृतवेधन (जंगली कडवी काली तोरी) के कल्पकी व्याख्या करतेहैं, इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

कृतवेधनके नाम ।

कृतवेधननामानिकल्पश्चास्यनिबोधत ।
क्ष्वेडःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! कृतवेधनके नाम और कल्पोंको श्रवण करो । क्ष्वेड, कोशातकी और मृदंगफल यह कृतवेधनके नाम हैं ॥ १ ॥

कृतवेधनके गुण ।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णंगाढेष्विष्टंगदेषुच ।
कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ २ ॥

कृतवेधन अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होतेहैं । इसका गंभीर रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये तथा कुष्ठ, पांडु, प्लीहा, सूजन, गुल्म और गरदोष आदि विकारोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

६०योगोंकी कल्पना ।

क्षीरादिकुसुमादीनिसुराचैतेपुपूर्ववत् । सुशुष्काणान्तुबीजानासेकं द्वौवायथाबलम् । कषायैर्मधुकादीनांनवभिःफलवत्पिबेत् ॥ ३ ॥

कृतवेधनके फूल, फल, पत्र अथवा डंडीसे पकाये दूधके चार प्रकारके प्रयोगोंमेंसे किसी एक योगके पीनेसे उत्तम वमन होजातेहैं इसका क्रम यह है कि इसके फूलोंको दूध और जल मिलाकर पकावे, दूध मात्र शेष रहनेपर छानकर पीवे तो वमन हो यही क्रम फलादिकोंमें भी जानना । कृतवेधनके फूल, फल, पत्र, डंडी सुरामें भिगोकर ८ दिन रक्खे फिर इस सुराको पीनेसे उत्तम वमन होतेहैं । कृतवेधनके सूखे हुए एक अथवा दो बीजे वा जितने बलानुसार उचित समझे उतने बीज पीसकर मैनफलके समान मुलैठीके क्काथ अथवा कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्काथके साथ पीकर वमन करे ॥ ३ ॥

क्काथयित्वाफलंतस्यपूत्वालेहंनिधापयेत् । कृतवेधनकल्कांशंफला-र्यर्द्धांशसंयुतम् । पृथक्चा[illegible]वधादीनांत्रयोदशभिरासुतम् ॥ ४ ॥

---

१ यहां पर बीज, किसीके मतमें फल है ।

कृतवेधनके फलोंका क्वाथकर उसे छानलेवे फिर उस क्वाथका पाक कर अवलेह बनावे। इस अवलेहको वमन करानेमें प्रयुक्त करे । अथवा कृतवेधनका कल्क १ तोला, मैनफल, मुलैठी और कोविदार आदि आठ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एकका कल्क ६ माशे इन दोनोंको मिलाकर गर्मपानीमें घोलकर पीवे तो उत्तम वमन हो जाताहै । इसी प्रकार अमलताश आदि १३ द्रव्योंमेंसे किसी एकके क्वाथमें कृतवेधनके फलोंको कूटकर आसवकी भांति साडकर छान लेवे फिर उसको पीकर वमन करे ॥ ४॥

शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्तथा।
वर्त्तयःफलवत्षट्सुफलादीनांघृतंतथा ॥ ५ ॥

सेमलकी मुसली और सेमलके फूलोंकी टोपियें और कृतवेधनके बीजोंका कल्क मैनफल मुलैठी और कोविदार आदि ८ द्रव्य इन दश द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें मिलाकर पेया बनावे । यह दश प्रकारकी पेया उत्तम वमन करानेवाली हैं। तथा कोविदार आदि ६ द्रव्योंके क्वाथमें कृतवेधनके बीजोंका चूर्ण घोटकर छः प्रकारकी वमनकारक बत्तियें बनाई जाती हैं । और मैनफल आदि १० द्रव्योंका क्वाथ और कृतवेधनके फलोंका कल्क मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत भी उत्तम वमनकारक होताहै ॥ ५ ॥

कोशातकानिपञ्चाशत्कोविदाररसैःपचेत् । तंकषायंफलादीनांकल्कैर्लेहंपुनःपचेत् ॥ ६ ॥ क्ष्वेडस्यतत्रभागःस्याच्छेषाण्यर्द्धांशिकानिच । कषायैःकोविदाराद्यैरेवंपक्त्वापचेत्पृथक् ॥ ७ ॥

कृतवेधनके ५० फलोंको कचनारके क्वाथमें पकावे । फिर इस क्वाथको छानकर मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क मिलाकर अवलेह बनावे । इस अवलेहमें मैनफल आदि द्रव्योंका कल्क एक एक कर्ष और इसमें कृतवेधनका कल्क दोभाग मिलावे । अवलेह सिद्ध होनेपर वमनके लिये प्रयोग करे। इसी प्रकार कोविदार आदि ८ द्रव्योंसे ही अलग २ अवलेह सिद्ध कियेजाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

कषायेषुफलादीनामानूपंपिशितंपृथक् ।
कोशातकीफलंपक्त्वातद्रसंलवणैःपिबेत् ॥ ८ ॥

मैनफलादिगणके द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यके क्वाथमें कृतवेधनके फल और उसके समान अनूपसंचारी जीवोंका मांस मिलाकर पकावे । सिद्ध होनेपर इस रसको छान ले । इस रसमें सेंधानमक मिला पीवे तो उत्तम वमन होताहै ॥ ८ ॥

१ मैनफल आदि गण अपामार्ग तण्डुलीयाध्यायमें सूत्रस्थानमें कहाहै ।

फलादिपिप्पलीतुल्यंतद्वत्क्ष्वेडरसंपिबेत् ।
क्ष्वेडंकाथेपिबेत्सिद्धंमिश्रमिक्षुरसेनच ॥ ९ ॥

अनूपसंचारी जीवोंका मांस और कृतवेधन दोनोंको समभाग लेकर पकावे। सिद्ध होनेपर रसको छानले। इस रसमें बराबरका मैनफल, मुलैठी, नीम, जीमूत, कृतवेधन अथवा पीपल इनमेंसे किसी एकका क्वाथ मिलाकर पीवे। अथवा इन छः द्रव्योंके क्वाथमें कृतवेधनके फलोंको पकाकर सिद्ध करे। फिर इस क्वाथको छानकर ईखका रस मिला पिलावे तो उत्तम प्रकारसे वमन होजाताहै ॥ ९ ॥

उपसंहार।

तत्रश्लोकौ ।

क्षीरेद्वौद्वौसुराचैकाक्वाथाद्वाविंशतिस्तथा। दशपिच्छाघृतश्चैकंपट्चवर्तिक्रियाःशुभाः ॥ १० ॥ लेहेऽष्टौसप्तमांसेचयोगइक्षुरसेऽपरः। कृतवेधनकल्पेऽस्मिन्षष्टियोगाःप्रकीर्त्तिताः ॥ ११ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने कृतवेधनकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इस कृतवेधन कल्पके उपसंहारमें कहतेहैं कि दूधसे चार योग, क्वाथसे २२ योग, पेयासे दश योग, घृतसे १ योग, बत्तियोंसे उत्तम ६ योग, अवलेहसे ८ योग, मांससे सात योग और ईखके रससे १ योग इस प्रकार सब मिलाकर कडवी तोरीके ६० योग कहेहैं ॥ १० ॥ ११ ॥

॥ इति वमन कल्पः ॥

इति श्रीच० आ० स० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० कृतवेधनकल्पो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातः श्यामात्रिवृत्कल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम श्यामा त्रिवृत कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

विरेचनेत्रिवृन्मूलंश्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ।
तस्याःसंज्ञागुणाःकर्म्मभेदकल्पश्चवक्ष्यते ॥ १ ॥

विरेचन अर्थात् जुलाब करानेके लिये काली निशोथकी जड बुद्धिमानोंने

सबसे उत्तम मानी है । अब उसके नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पोंका वर्णन करतेहैं ॥ १ ॥

निशोथके नाम ।

त्रिभण्डीत्रिवृताचैवश्यामाकूटरुणातथा ।
सर्वानुभूतिःसुवहाशब्दैःपर्य्यायवाचकैः ॥ २ ॥

त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, कूटरुणा, सर्वानुभूति और सुवहा यह निशोथके पर्यायवाचक शब्द हैं अर्थात् निशोथके नाम हैं ॥ २ ॥

निशोथके गुण ।

कषायामधुरारूक्षाविपाकेकटुकाचसा ।
कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥ ३ ॥

निशोथ-कसैली, मीठी, रूक्ष, विपाकमें कटु, कफपित्तनाशक और रूक्ष होनेसें वायुका कोप करतीहै ॥ ३ ॥

सेदानीमौषधैर्युक्तावातपित्तकफापहैः ।
कल्पेवैशिष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ॥ ४ ॥

यह निशोथका-वात, पित्त और कफनाशक द्रव्योंके साथ मिलाकर प्रयोग करनेसे अनेक प्रकारके विशेष गुण होतेहैं और यह संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली होतीहै ॥ ४ ॥

निशोथके दो भेद ।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामश्चारुणमेवच । तयोर्मुख्यतरंविद्धिमूलंयदरुणप्रभम् । सुकुमारेशिशौवृद्धेमृदुकोष्ठेचतच्छुभम् ॥ ५ ॥

निशोथकी जड दो प्रकारकी होतीहै । १ काली और २ लाली । उनमें जो लालवर्णकी निशोथ है वह अति उत्तम मानी जातीहै । सुकुमार मनुष्योंको, बालकोंको, वृद्धोंको और मृदुकोष्ठ मनुष्योंको लाल निशोथका प्रयोग करनाही श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

मोहयेदाशुकारित्वाच्छ्यामाकण्ठंक्षिणोत्यपि । तैक्ष्ण्यात्कर्षतिहृत्कण्ठमाशुदोषंहरत्यपि । शस्यतेबहुदोषाणांक्रूरकोष्ठाश्चयेनराः॥६॥

कालीनिशोथ शीघ्रकारी होनेसे मोह और कण्ठकी क्षीणताको उत्पन्न करतीहै । अपने तीक्ष्णभावसे हृदय और कण्ठको कर्षण करती है। परन्तु दोषोंको शीघ्र निकाल देतीहै । बहुत दोषवाले मनुष्योंको और क्रूर कोष्ठवालोंको काली निशोथका प्रयोग करनाही श्रेष्ठ होताहै ॥ ६ ॥

निशोथलानेका क्रम।

गुणवत्यांतयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् । उपोष्यप्रयतःशुक्लेशुक्लवासाःसमाहितः ॥ ७ ॥ गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंनतिर्य्यग्विसृतञ्चयत् । गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वचंशुष्कांनिधापयेत् ॥ ८ ॥

दोनों प्रकारकी निशोथकी जडोंको उत्तम गुणवाली भूमिमेंसे शुक्लपक्षमें श्वेत वस्त्रोंको धारणकर सूर्याभिमुख हो विधिवत् प्रातःकाल उखाडकर लावे निशोथकी जो जड पृथ्वीमें गहरी पहुंची हुई हो तथा कोमल, सीधी और सुडौल हो उसके वीचका काष्ठभाग त्यागकर केवल ऊपरकी मोटी त्वचा ग्रहण करे। फिर उस त्वचाको सुखाकर उत्तम पात्रमें भरकर रक्खे ॥ ७ ॥ ८ ॥

निशोथकी मात्रा।

स्निग्धस्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितःसुखम् ।
अक्षमात्रंतयोःपिण्डंविनीयाम्लेननापिबेत् ॥ ९ ॥

पहिले रोगीको स्नेहन, स्वेदन कर फिर निशोथके एक कर्ष कल्कको कांजीके साथ पिलावे। विरेचन होलेनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे ॥ ९ ॥

निशोथसे अनेकविध विरेचक योग।

गोऽव्यजामाहिषामूत्रसौवीरकतुषोदकैः ।
प्रसन्नयात्रिफलयाशृतयाचपृथक्पिबेत् ॥ १० ॥

१ कर्ष निशोथको गोमूत्र अथवा भैंस बकरी वा भेंडके मूत्रमें वा सौवीरक अथवा तुषोदक वा प्रसन्ना अथवा त्रिफलेके क्वाथके साथ पीवे ॥ १० ॥

एकैकंसैन्धवादीनांद्वादशानांसनागरम् ।
त्रिवृत्त्रिगुणसंयुक्तंचूर्णमुष्णाम्बुनापिबेत् ॥ ११ ॥

अथवा सैंधवादि १२ द्रव्योंमेंसे किसी एकके साथ १ भाग सोंठ, ३ भाग निशोथका कल्क मिलकर पीवे और ऊपरसे गर्मजल पीना चाहिये अथवा ऐसा समझिये कि सैंधवादि १२ द्रव्योंमेंसे कोई एक द्रव्य १ भाग, सोंठयुक्त निशोथका कल्क ३ भाग मिलाकर गर्मजलसे पीवे ॥ ११ ॥

१ कोई सेंधानमक तथा सचरक, बिड, औद्भिद और सामुद्रिक यह पांच नमक, ढाकका क्षार, मूलीका क्षार, सज्जीखार, जवाखार, तिलोंका क्षार, पुटखडेका क्षार और सुहाजनेका क्षार इन १२ द्रव्योंको सैंधवादि १२ द्रव्य मानते हैं। कोई सचरनमके विना सैंधवादि ४ नमक और ८ प्रकारके मूत्रोंको सैंधवादि १२ द्रव्य मानते हैं।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंमरिचंगजपिप्पली । सरलःकिलिमंहिंगुभांगीतेजोवतीतथा ॥ १२ ॥ मुस्तंहैमवतीपथ्याचित्रकोरजनीवचा । स्वर्णक्षीर्य्यजमोदाचशृङ्गवेरश्चतैःपृथक् । एकैकार्द्धांशसंयुक्तंपिबेद्गोमूत्रसंयुतम् ॥ १३ ॥

पीपल, पिपलामूल, मिर्च,गजपीपल, सरल, देवदारु, हींग, भाडंगी, चव्य, नागरमोथा सफेद, वच, हरड, चित्रक, हल्दी, वच, चोख, अजमोद और सोंठ इन १८ द्रव्योंमेंसे किसी एक द्रव्यका आधा भाग और निशोथका कल्क१भाग इनको मिलाकर गोमूत्रके साथ पीवे ॥ १२ ॥ १३॥

मधूकार्द्धांशसंयुक्तंशर्कराम्बुयुतंपिबेत् । जीवकर्षभकौमेदांश्रावणीं कर्कटाह्वयम् ॥ १४ ॥ मुद्गमाषाख्यपर्ण्यौचमहतींश्रावणींतथा । काकोलींक्षीरकाकोलींक्षुद्रांछिन्नरुहांतथा ॥ १५ ॥ क्षीरशुक्लांपयस्याश्वयष्ट्याह्वंविधिनापिबेत् । वातपित्तहितान्येतान्यन्यानितुकफानिले ॥ १६ ॥

मुलैठीका कल्क १ भाग, निशोथका कल्क,२ भाग इन दोनोंको मिलाकर खांडके शर्वतके साथ पीवे अथवा जीवक, ऋषभक, मेदा, गोरखमुण्डी, काकडासिंगी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, महामुण्डी (बडी गोरखमुण्डी), काकोली, क्षीरकाकोली, कटेली, गिलोय, क्षीरविदारी, विदारीकंद और मुलैठी इनमेंसे किसी एकका कल्क १ भाग, निशोथका चूर्ण १ भाग, मिलाकर जलके साथ अथवा खांडके शर्वतके साथ पीवे । यह जीवकादि १५ योग और १ मुलैठीका योग यह १६ योग वातपित्तमें विरेचन करानेके लिये हितकारक हैं । इनके सिवाय उपरोक्त संपूर्ण योग वातकफके विकारोंमें विरेचनके लिये हितकर्त्ता है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्य्यद्राक्षापीलुरसैःपृथक् ।
सर्पिषावातयोश्चूर्णमभयार्द्धांशिकंपिबेत् ॥ १७ ॥

निशोथका चूर्ण-दूध, मांसरस, ईखका रस, कुंभेरके फलोंका रस, पीलूके फलोंका रस और घी इनमेंसे किसी एकके साथ काली अथवा लाल निशोथका चूर्ण पीवे । अथवा आधा भाग हरडका चूर्ण मिला निशोथका चूर्ण पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ १७ ॥

लिह्याद्वामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम् । अजगन्धातुगाक्षीरी विदारीशर्करात्रिवृत् ॥ १८ ॥ चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यांलीढ्वासातुविरिच्यते । सन्निपातज्वरस्तम्भदाहतृष्णार्दितोनरः ॥ १९ ॥

अथवा निशोथका चूर्ण, शहत,घृत और मिसरीके साथ चाटे । अथवा अजवायन, वंशलोचन, विदारीकंद, मिसरी और निशोथका चूर्ण शहद तथा घीमें मिला चाटे तो उत्तम विरेचन होताहै सन्निपातजनितज्वर, स्तम्भ, दाह और प्याससे पीडित मनुष्यके लिये यह उत्तम विरेचन है ॥ १८ ॥ १९ ॥

श्यामात्रिवृत्कषायेणकल्केनचसशर्करम् ।
साधयेद्विधिवल्लेहंलिह्यात्पाणितलंततः ॥ २० ॥

काली निशोथका क्वाथ और मिसरी मिलाकर सिद्ध किया अवलेह । अथवा मिसरीके चासनीमें निशोथका कल्क मिलाकर बनाया हुआ अवलेह २ तोला प्रमाण चाटे तो उत्तम विरेचन हो ॥ २० ॥

सक्षौद्रांशर्करांपक्त्वाकुर्य्यान्मृद्धाजनेनवे । क्षिपेच्छीतेत्रिवृच्चूर्णं त्वक्पत्रमरिचैःसह । मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम् ॥२१॥

खांडकी चासनी बनाकर अवलेहके समान गाढी होनेपर नीचे उतार ले । इसमें दालचीनी, तेजपत्र और मिर्चका चूर्ण १ भाग, निशोथका चूर्ण ३ भाग और शहद ४॥ भाग मिलाकर अवलेह बनावे । इस अवलेहको उत्तम नवीन मट्टीके पात्रमें भरकर रक्खे । इस अवलेहको मात्रानुसार खिलाकर राजा अथवा धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे । कोई इसको शहद और मिसरी दोनोंको एकत्र पाककर चासनी बना अवलेह सिद्ध करना मानतेहैं ॥ २१ ॥

कुडवांशात्रसानिक्षुद्राक्षापीलुपरूषकान् । सितोपलात्पलंक्षौद्रात्कुडवार्द्धश्चसाधयेत् ॥ २२ ॥ तंलेहंयोजयेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णेनशास्त्रवित् । एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणांविरेचनम् ॥ २३ ॥

ईखका रस, दाखका रस, पीलूके फलोंका रस और फालसेका रस एकएक कुडव, मिसरी १ पल मिलाकर अवलेह बनावे । गाढा होनेपर नीचे उतार आधा कुडव शहद मिलावे । इस अवलेहमें निशोथका चूर्ण मिलाकर बुद्धिमान् वैद्य उचित मात्रासे बढेहुए पित्तवाले धनाढ्य पुरुषोंको विरेचन करावे ॥ २२ ॥ २३ ॥

शर्करामोदकान्वर्त्तिर्गुलिकामांसपूपकान् ।
अनेनविधिनाकुर्य्यात्पैत्तिकानांविरेचनम् ॥ २४ ॥

इसी प्रकार निशोथका खांडके योगसे मोदक, वर्त्ती, गुटिका और मांस-पूपालिका आदि बनाकर पित्तप्रधान रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २४ ॥

पिप्पलींनागरंक्षारंश्यामात्रिवृतयासह ।
लेहयेन्मधुनासार्द्धंश्लेष्मलानांविरेचनम् ॥ २५ ॥

पीपल, सोंठ, जवाखार और काली निशोथ, शहद मिला चाटे तो कफविकार-युक्त रोगीको उत्तम विरेचन होताहै ॥ २५ ॥

तैलभृष्टावलेह ।

मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमात् ।
सुमृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्तत्रचावपेत् ॥ २६ ॥

बिजौरा, हरड, आमले, कुंभेर, बेर और अनार इन सबका रस मिसरी मिलाकर पकावे। जब अवलेहकी भांति गाढा होजाय तो इसको तेलमें भूनकर निशोथका चूर्ण मिलावे। इस अवलेहसे कफविकारवाले रोगियोंको विरेचन कराना चाहिये ॥ २६ ॥

सहकारादि अवलेह ।

सहकारात्कपित्थाच्चसाध्यमम्लञ्चयत्फलम् । पूर्ववद्दहलीभूतेत्रि-वृच्चूर्णञ्चसाधयेत् ॥ २७ ॥ त्वक्पत्रकेशरैलानांचूर्णञ्चमधुमा-त्रया । लेहोऽयंकफपूर्णानामीश्वराणांविरेचनम् ॥ २८ ॥

आम, कैथ, बेर और इमली आदि खट्टे फलोंका रस, मिसरी मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको तेलमें भून निशोथका चूर्ण मिलावे। तथा दालचीनी, पत्रज, नागकेशर और इलायचीका चूर्ण मिलावे। फिर शहद युक्तकर यह अवलेह कफविकारयुक्त धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ २७ ॥ २८ ॥

पानकादि ५ योग।

पानकानिरसान्यूषान्मोदकान्रागपाण्डवान् ।
अनेनविधिनाकुर्य्याद्विरेकार्थेकफाधिके ॥ २९ ॥

इसी विधिसे पानक, मांसरस, यूष, मोदक और रागखाण्डव बनाकर कफविकार-युक्त रोगियोंको विरेचन करावे ॥ २९ ॥

विरेचकतर्पण ।

त्वगेलाभ्यांसमंनीतंतैस्त्रिवृत्तैश्चशर्करा । चूर्णफलरसक्षौद्रसक्तुभि-

स्तर्पणंपिबेत् ॥ ३० ॥ वातपित्तकफोत्थेपुरोगेष्वल्पानलेषुच । नरेषुसुकुमारेषुनिरपायंविरेचनम् ॥ ३१ ॥

दालचीनी, बडी इलायची इन दोनोंके चूर्णके समान निशोथका चूर्ण मिलावे। इस संपूर्ण चूर्णके बराबर खांड मिलावे। फिर इसको खट्टे फलोंके रस, शहद और जौके सत्तुओंमें मिला तर्पण बना पीवे। यह तर्पण वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए रोगोंमें और मंदाग्निमें सुकुमार मनुष्योंको विरेचनके लिये पिलावे। इससे किसी प्रकारका उपद्रव न होकर सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥

रेचक मोदक।

शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्मागधिकामधु।
मोदकःसन्निपातोर्द्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ३२ ॥

त्रिफला, निशोथ और पीपल इन सबका समान भाग चूर्ण लेकर खांड और शहदके योगसे लड्डू बनावे। यह मोदक सन्निपात, ऊर्द्धगत रक्तपित्त और ज्वरको नष्ट करते हैं ॥ ३२ ॥

शोधन गुडक।

त्रिवृच्चूर्णामृतास्तिस्रस्तिस्रश्चत्रिफलात्वचः । विडङ्गपिप्पलीक्षारं समास्तिस्रश्चचूर्णिताः ॥ ३३ ॥ लिह्यात्सर्पिर्मधुभ्याश्चमोदकंवागुडेनच । भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छोधनमुत्तमम् ॥ ३४ ॥ गुल्मं प्लीहोदरंश्वासंहलीमकमरोचकम् । कफवातकृतांश्चान्यान्व्याधीनेतद्व्यपोहति ॥ ३५ ॥

निशोथका चूर्ण ९ मासे, गिलोय ९ मासे, त्रिफला ९ मासे, वायविडंग, ३ मासे, पीपल ३ मासे, जवाखार ३ मासे। इन सबका चूर्णकर घी और शहदके साथ मिलाकर चाटे अथवा गुडमें मिलाकर मोदक बनावे। इनके सेवनमें आहार विहारका विशेष परहेज नहीं। यह उत्तम विरेचक योग है। इनके सेवनसे गुल्म, प्लीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक, अरुचि और कफवातजनित अन्य संपूर्ण रोग दूर होतेहैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

कल्याणगुडक।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकान् । मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पलीः ॥ ३६ ॥ लवणान्यजमोदाचचूर्णितंकार्षिकंपृथक् । तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौचाष्टपलोन्मितौ ॥ ३७ ॥

धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन्गुडार्द्धतुलांतथा॥पक्त्वामृद्वग्निनाखादेद्बदरोदुम्बरोपमान् ॥ ३८ ॥ गुडान्कृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा। कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम् ॥३९॥ ग्रहणीपाण्डुरोगांश्चहन्युःपुंसवनाश्चते । कल्याणकाइतिख्याताःसर्वेष्वृतुषुयौगिकाः ॥ ४० ॥

वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चित्रक, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, पीपल, गजपीपल, सेंधानमक और अजमोद । इन सबका चूर्ण एकएक कर्ष लेवे । तिलोंका तेल और निशोथका चूर्ण आठ २ पल, आंवलेका रस ३ प्रस्थ, गुड आधा तुला (२॥ सेर) प्रथम आँवलेका रस और गुड मिलाकर मंद अग्निसे पकावे । जब अवलेहके समान गाढा होजाय तो इसमें वायविडंग आदि संपूर्ण द्रव्योंका चूर्ण मिला देवे और तेलको मूर्च्छितकर चूर्ण डालनेसे पहिलेही मिला देवे । फिर सबको मिलाकर बेर अथवा गूलरके समान गोलियें बनाकर रक्खे। इनके खातेहुए विरेचनके समान विशेष आहार विहारका परहेज नहीं। इनसे नित्य एक दो दस्त होजातेहैं । इनके सेवनसे कुष्ठ, बवासीर, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदरोग, भगन्दर, ग्रहणी और पाण्डुरोग यह सब नष्ट होतेहैं और सब प्रकारके रज, वीर्य विकार दूर होकर संतान उत्पन्न होतीहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

व्योषादियोग ।

व्योषत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः । समभागाभिषग्दद्याद्विगुणश्चमुकूलकम् ॥ ४१ ॥ त्रिवृतोऽष्टगुणंभागंशर्करायाश्चषड्गुणम् । चूर्णितंगुडिकान्कृत्वाक्षौद्रेणपलसम्मितान् ॥ ४२ ॥ भक्षयेत्कल्यमुत्थायशीतश्चानुपिवेज्जलम् । मूत्रकृच्छ्रेज्वरेवम्यांकासेश्वासेभ्रमेक्षये ॥४३॥ तापेपाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौशस्तानिर्यन्त्रिताशिनः । योगःसर्वविषाणाश्चमतःश्रेष्ठोविरेचने ॥ ४४ ॥

त्रिकुटा, तज, पत्रज, नागरमोथा, इलायची, वायविडंग, आमले और हरड इन सबको एकएक कर्ष लेवे । दंती २ कर्ष, निशोथका चूर्ण ८ कर्ष खांड ६ कर्ष इन सबका चूर्णकर शहदमें मिलावे । इसमेंसे १ पल अथवा जितना उचित उतना खाकर ऊपरसे शीतल जल पीवे । इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन, खांसी, श्वास, भ्रम, क्षय, ताप, पाण्डुरोग और सब प्रकारके विषरोग दूर होतेहैं यह योग विरेचनके लिये परमश्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

त्रिवृत्पलंद्विप्रसृतंपथ्याधान्योरुबूकयोः ।
दशैतान्मोदकान्कुर्य्यादीश्वराणांविरेचनम् ॥ ४५ ॥

निशोथका चूर्ण एक पल, हरड, धनियां और एरण्डकी जड यह सब ४ पल । इन सबका चूर्णकर शहद अथवा गुडमें मिला दश गोलियें बनावे । इनमेंसे १ गोली धनाढ्य पुरुषोंको विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ४५ ॥

शुभा गुडिका ।

त्रिवृद्धैमवतीश्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली । समूलापिप्पलीमुस्तमजमोदादुरालभा ॥ ४६ ॥ कार्षिकंनागरपलंगुडस्यपलविंशतिम् । चूर्णितंमोदकान्कुर्य्यादुदुम्वरफलोपमान् ॥ ४७ ॥ हिङ्गुसौवर्च्चलव्योपयमानीविडजीरकैः । वचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्रकधान्यकैः ॥ ४८ ॥ मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्वुरुदाडिमैः । त्रिकवंक्षणहृद्वस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम् । हिक्काकासारुचिश्वासकफोदावर्त्तिनांशुभाः ॥ ४९ ॥

लाल निशोथ, सफेद वच, काली निशोथ, नीलिनी, गजपीपल, पिपलामूल, पीपल, नागरमोथा, अजमोद और जवासा । इन सबको एकएक कर्ष लेवे । सोंठका चूर्ण एक पल, गुड वीस पल । इन सबको मिलाकर गूलरके फलके समान गोलियें बनावे । फिर हींग, कालानमक, त्रिकुटा, अजवायन, वायविडंग, जीरा, वच, त्रिफला, अजमोद, चव्य, चित्रक, धनियां, नैपाली धनियां और अनारदाना इन सबका बारीक चूर्णकर उस चूर्णमें उपरोक्त गोलियोंको लपेटकर रक्खे । १९ दिनके बाद इन गोलियोंका सेवन करे तो यह त्रिकशूल, वंक्षण, हृदय, वस्ति और कोष्ठकी पीडा, अर्शरोग, तिल्ली, हिचकी, खांसी, अरुचि, श्वास, कफ, उदररोग इन सबको दूर करताहै ॥ ४६-४९ ॥

वर्षाऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृतांकौटजंवीजंपिप्पलीविश्वभेषजम् ।
क्षौद्रद्राक्षारसोपेतंवर्षास्वेतद्विरेचनम् ॥ ५० ॥

निशोथ, इन्द्रयव, पीपल और सोंठ इनको शहद और दाखके रसमें मिलाकर वर्षाऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५० ॥

शरदऋतुमें विरेचन ।

त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् ।
द्राक्षाम्बुनासयष्ट्याह्वशीतलंजलदात्यये ॥ ५१ ॥

निशोथ, जवासा, नागरमोथा, खांड, नेत्रबाला, लालचंदन और मुलैठी इनको दाखके रसके साथ अथवा दाखके शीत कषायके साथ शरदऋतुमें विरेचनके लिये देवे ॥ ५१ ॥

हेमंतमें विरेचनयोग ।

त्रिवृतांचित्रकंपाठामजाजींसरलंवचाम् ।
स्वर्णदुग्धीश्चहेमन्तेपिष्ट्वातूष्णाम्बुनापिवेत् ॥ ५२ ॥

निशोथ, चित्रक, पाटला, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और चोक इन सबको बारीक पीस गरमजलके साथ पिलाकर हेमन्तऋतुमें विरेचन करावे ॥ ५२ ॥

ग्रीष्ममें विरेचन ।

शर्करात्रिवृतातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम् ॥ ५३ ॥

ग्रीष्मऋतुमें यदि विरेचन कराना हो तो मिसरी और निशोथको शीतलजलके साथ पीवे ॥ ५३ ॥

सर्वऋतुओंमें विरेचन ।

त्रिवृत्त्रायन्तिहपुषासातलांकटुरोहिणीम् ।
स्वर्णक्षीरीश्चसंचूर्ण्यगोमूत्रेभावयेत्त्र्यहम् ।
एषसर्वर्त्तुकोयोगःस्निग्धानांमलदोषहृत् ॥ ५४ ॥

निशोथ, जवासा, हाउबेर, सातला, कुटकी और चोक इन सबका चूर्णकर गोमूत्रमें ३ दिन भावना देवे । फिर चूर्णकर स्नेहन और स्वेदन किये रोगीको सब ऋतुमें विरेचनके लिये देना चाहिये । यह संपूर्ण मलविकारको निकाल देताहै ॥५४॥

रूक्ष मनुष्योंको विरेचन ।

दुरालभात्रिवृच्छ्यामावरसकंहस्तिपिप्पली । नीलिनीत्रिफलामुस्तंकटुकाचसुचूर्णिता ॥ ५५ ॥ सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तंपाणितलंततः । पिवेत्सुखतमंह्येतद्रूक्षाणामपिशस्यते ॥ ५६ ॥

जवासा, निशोथ, सारिवा, इन्द्रयव, गजपीपल, नीलिनी, त्रिफला, नागरमोथा, इन सबका चूर्ण घीमें मिलाकर मांसरसके साथ अथवा गरम जलके साथ पीवे तो रूक्ष मनुष्योंको उत्तम विरेचन हो इसकी मात्रा १ से ९ तोले तक है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

सिद्धचूर्ण ।

त्र्यूषणात्रिफलाहिङ्गुकार्षिकंत्रिवृतापलम् । सौवर्चलार्द्धकर्षश्चपला-

द्धेश्चाम्लवेतसात् ॥ ५७ ॥ तच्चूर्णंशर्करातुल्यंमद्येनाम्लेनवापि-
बेत् । गुल्मपार्श्वार्त्तिनुत्सिद्धंजीर्णेचाद्याद्रसौदनम् ॥ ५८ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला और हींग यह ७ द्रव्य एकएक तोला, निशोथ ४ तोला, संचरनमक ६ मासे, अम्लवेत २ तोला इन सबका बारीक चूर्णकर चूर्णके बराबर मिसरी मिलावे। फिर यह चूर्ण मद्य अथवा कांजीके साथ पीवे तो गुल्म और पार्श्वपीडाको दूर करताहै। इस औषधके जीर्ण होनेपर मांसरस और पुराने चांवलोंका भोजन करना चाहिये ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

सप्तलादिचूर्ण।

सप्तलांत्रिफलांदन्तींत्रिवृतांव्योषसैन्धवम् । कृत्वाचूर्णन्तुसप्ताहं
भाव्यमामलकीरसे । तद्योज्यंतर्पणेयूषेपिशितेरागयुक्तिषु ॥ ५९ ॥

सातला, त्रिफला, त्रिकुटा, दंती, निशोथ और सेंधानमक इन सब द्रव्योंको समान भाग लेकर चूर्ण करे। इस चूर्णको आमलेके रसमें ७ दिनतक भावना देकर सुखा लेवे। फिर इसको तर्पण, यूष, मांसरस और रागके साथमें खिलावे तो यह संपूर्ण उदररोगोंको और गुल्म आदिकोंको दूर करताहै। सब जगह त्रिफला और त्रिकुटा तीनतीन गुना लेना चाहिये ॥ ५९ ॥

गुल्मनाशक घृत।

तुल्याम्लंत्रिवृताकल्कसिद्धंगुल्महरंघृतम् । मूलंश्यामात्रिवृतयोः
पचेदामलकैःसह । जलेतेनकषायेणपक्त्वासर्पिःपिबेन्नरः ॥ ६० ॥

कांजी १ सेर, निशोथका कल्क १ पाव, घृत १ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले। यह घृत गुल्मरोगको दूर करताहै। कालीनिशोथ, लालनिशोथ इन दोनोंके चूर्णको आमले और ८ गुना जल मिलाकर पकावे। चौथाभाग शेष रहनेपर उतारकर छान लेवे। इस घीके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन निवृत्त होताहै ॥ ६० ॥

निर्य्यूहेणतयोर्युक्त्यासिद्धसर्पिःपिबेत्तथा ।
साधितंवापयस्ताभ्यांसुखंतेनविरिच्यते ॥ ६१ ॥

. काली निशोथ और लालनिशोथके क्वाथमें सिद्ध किया घृत अथवा दूध पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ६१ ॥

त्रिवृतारिष्ट।

त्रिवृन्मुष्टींस्तुसनखानष्टौद्रोणेजलेपचेत् । पादशेषंकषायंतंशीतंगु-

डतुलायुतम् ॥ ६२ ॥ स्निग्धेस्थाप्यंघटेक्षौद्रपिप्पलीफलचित्रकैः । प्रलिप्तेविधिनामासंजातंतन्मात्रयापिबेत् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंगुल्मश्वयथुनाशनम् ॥ ६३ ॥

८० तोला निशोथको १ द्रोण जलमें पकावे । जब चौथाभाग शेषरहै तो उतारकर छानले । फिर इस क्वाथमें ५ सेर गुड मिलाकर किसी एक चिकने घडेमें प्रथम पीपल, मैनफल और चित्रकका चूर्ण शहदमें मिला लेप करे । फिर उस घडेमें यह गुड मिला क्वाथ डालकर ऊपरसे बन्दकर देवे । एक महीनेके बाद निकालकर इस त्रिवृत्त अरिष्टको पीवे तो ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, गुल्मरोग और सूजन यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

सुरांवात्रिवृतापादकल्कांतत्क्वाथसंयुताम् ॥ ६४ ॥

अथवा निशोथका क्वाथ और मद्य दोनों बराबर लेकर उसमें चौथा भाग निशोथका कल्क मिलाकर १ महीनेपर्यन्त रक्खे । फिर छानकर उचित मात्रासे पीवे तो गुल्म आदि अनेक रोग दूर होतेहैं और इससे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६४ ॥

सौवीरक ।

यवैःश्यामात्रिवृत्क्वाथस्विन्नैःकुल्माषमम्भसा ।
आसुतंपडहंपर्णेजातंसौवीरकंपिबेत् ॥ ६५ ॥

कालीनिशोथ और लालनिशोथको लेकर क्वाथ करे । इस क्वाथमें यव डालकर पकावे । जब यव पकजाय तो इसको उतारकर छानलेवे । इसमें कुलमाषजल अर्थात् कांजी मिलाकर किसी पात्रमें डालदेवे । और यवके पत्रोंमें अथवा अन्य घासमें दबाकर रक्खे । छः दिनके बाद इसको निकाल लेवे । यह उत्तम सौवीरक पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ६५ ॥

तुषोदक, आसव ।

भृष्टान्मासतुषाञ्छुद्धान्यवांस्तच्चूर्णसंयुतान् ।
आसुतानम्भसातद्वत्पिबेज्जातंतुषोदकम् ॥ ६६ ॥

उत्तम छडेहुए यवोंको भूनलेवे यह भूनेहुए यव और यवोंके तुष तथा निशोथका चूर्ण मिला गर्म जलमें डाल किसी पात्रमें बन्दकर दे । २१ दिनके बाद निकालकर छानले इसके पीनेसे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ६६ ॥

तथामदनकल्पोक्तान्पांडवादीन्पृथग्दश ।
त्रिवृच्चूर्णेनसंयोज्यविरेकार्थंप्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥

इसी प्रकार मैनफलके कल्पमें कहेहुए १० प्रकारके खाण्डव आदि निशोथके चूर्णसे भी दश प्रकारके अलग २ बनाये जाते हैं। अर्थात् निशोथके चूर्णसे खांडव, राग, लेह, मोदक, पूडी, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य इन दशविध योगोंको बनाकर इनमेंसे किसी एकका विरेचनके लिये प्रयोग करे ॥ ६७ ॥

त्वक्केशराम्रातकदाडिमैलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।
मद्यैस्तथान्यैश्चमनोऽनुकूलैर्युक्तानिदेयानिविरेचनानि ॥ ६८ ॥

तज, नागकेशर, अंबाडा, अनार, इलायची, मिसरी, शहद और मद्य तथा मनोभिलषित द्रव्योंके साथ मिलाकर निशोथके चूर्णका विरेचन दिया जासकताहै ॥ ६८ ॥

शीताम्बुनापीतवतश्चतस्यसिञ्चेन्मुखंच्छर्दिविघातहेतोः ।
हृद्यांश्चमृत्पुष्पफलप्रवालादम्लश्चदद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥ ६९ ॥

विरेचन कर्त्ता द्रव्यको पीकर रोगीको छर्दी न होजाय उसके मुखपर बारबार शीतलजलके छींटे देता रहे और हृदयको प्रसन्न करनेवाले सुगंधित द्रव्य, पानीमें भिगोई हुई सुगंधित मट्टी, फूल,फल, कोमल पत्र, केशर आदि और नींबूको सूघावे ६९

अध्यायका उपसंहार।

तत्रश्लोकाः ।

एकोऽम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्धवादिभिः । मूत्रेऽष्टादशयष्ट्यौ द्वौजीरकादौचतुर्दश ॥ ७० ॥ क्षीरादौसप्तलेहेऽष्टौचत्वारःसितयापिच । पानकादिपुपञ्चैवषड्तौपञ्चमोदकाः ॥ ७१ ॥ चत्वारश्च घृतक्षीरेद्वौचूर्णेतर्पणेतथा । द्वौमद्येकाञ्जिकेद्वौचदशान्येपाडवादिपु ॥ ७२ ॥ श्यामायास्त्रिवृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदाहृतम् । शतंदशोत्तरंसिद्धंयोगानांपरमर्पिणा ॥ ७३ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थानेश्यामात्रिवृतकल्पोनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस श्यामात्रिवृत कल्पमें अम्ल आदिसे नौ योग, सेंधवआदिसे १२ योग, गोमूत्रसे १८ योग, मुलैठीसे २ योग, जीरक आदिसे १४ योग, दुग्ध आदिकोंसे ७ योग, लेहसे ८ योग, मिसरीसे ४ योग, पानक आदिसे ५ योग, ऋतु भेदसे ६ योग, मोदकोंके ५ योग, दूध और घृतसे ४ योग, तर्पणके दो

योग, मद्यसे २ योग, कांजीसे दो योग, खाण्डव आदिकोंसे १० योग । इसप्रकार सब मिलाकर महर्षि आत्रेयजीने निशोथके ११०योगोंका वर्णन कियाहै ॥ ७०-७३ ॥

इति श्री०च०प्र०भा०सं०कल्पस्थाने प्र०भा०टी०. श्यामत्रिवृतकल्पोनामसप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चतुरंगुलकल्पं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अमलतासके नाम ।

आरग्वधोराजवृक्षःसम्पाकश्चतुरंगुलः ।
प्रग्रहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः ॥ १ ॥

आरग्वध, राजवृक्ष, संपाक, चतुरंगुल, प्रग्रह, कृतमाल, कर्णिकार और अवघातक यह सब अमलतासके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

अमलताशके गुण ।

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्त्तादिरोगिषु ।
राजवृक्षोऽधिकंपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः ॥ २ ॥

अमलतासका विरेचन ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त और उदावर्त्त आदि रोगोंमें अत्यंत हितकारक है यह विरेचन मृदु और मधुर होनेसे शीतल और अत्यंत पथ्य है ॥ २ ॥

बालेवृद्धेक्षते क्षीणेसुकुमारेचमानवे ।
योज्यामृदुनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः ॥ ३ ॥

अमलतासका विरेचन निर्विकार होनेसे और मृदु होनेसे बालक, वृद्ध और सुकुमारोंके लिये अत्यंत हितकारी है ॥ ३ ॥

अमलतासके ग्रहणकरनेकी विधि ।

फलकालेफलंतस्यग्राह्यंपरिणतञ्चयत् । तेषांगुणवतांभारंसिकतासुनिधापयेत् ॥ ४ ॥ सप्तरात्रात्समुद्धृत्यशोषयेदातपेभिषक् । ततो मज्जानमुद्धृत्यशुचौभाण्डेनिधापयेत् ॥ ५ ॥

जिस समय अमलतासके फल पके हुए हों उनको तोडकर ले आवे । इन उत्तम २ भारी सुन्दर अमलतासकी फलियोंको वालूके ढेरमें दबादेवे । ७ दिनके बाद

निकालकर धूपमें सुखाले ठीक सूखजानेपर इन फलियोंका गुद्दा निकालले। इस गुद्देको किसी स्वच्छ पात्रमें ढककर रख देवे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अमलतासके १२ वैरेचनिक योग।

द्राक्षारसयुतोदेयोदाहोदावर्त्तपीडिते।
चतुर्वर्षसुखेबालेयावद्द्वादशवार्षिके ॥ ६ ॥

दाह और उदावर्त्तरोगमें अमलतासका गूदा द्राक्षाके रसमें घोलकर पिलाना चाहिये। ४ वर्षसे लेकर १२ वर्षकी अवस्थातक बालकके लिये अमलतासका विरेचन सुखकारी होताहै ॥ ६ ॥

चतुरंगुलमज्ज्ञस्तुप्रसृतंवाथवाञ्जलिम् । सुरामण्डेनसंयुक्तमथवा कोलसीधुना ॥ ७ ॥ दधिमण्डेनवायुक्तंरसेनामलकस्यवा । क्रुवाशीतकषायंतंपिबेत्सौवीरकेणवा ॥ ८ ॥

अमलतासका गूदा २ पल प्रमाण लेकर अथवा ४ पल लेकर सुरामण्डमें अथवा बेरसे बनाईहुई शीधुमें भिगोकर १ दिन रहनेदे। फिर मसलकर मात्रानुसार पीवे तो उत्तम विरेचन सुखपूर्वक होजाताहै। अथवा इसी प्रकार दधिमण्ड वा आमलेके रसके साथ अथवा शीतलजलमें १ दिन भिगोकर वा सौवीरकमें भिगोकर दूसरे दिन मसलकर पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिवृतोवाकषायेणमज्जकल्कंतथापिबेत् ।
तथाबिल्वकषायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥ ९ ॥

अथवा निशोथके क्वाथमें अमलतासका गूदा घोलकर वा बेलके क्वाथमें घोलकर सेंधानमक और शहद मिलाकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ९ ॥

कषायेणाथवातस्यत्रिवृच्चूर्णंगुडान्वितम् ।
साधयित्वाशनैर्लेहंलेहयेन्मात्रयानरम् ॥ १० ॥

अथवा अमलतासके क्वाथके साथ निशोथका चूर्ण और गुड मिलाकर मंदमंद अग्निसे अवलेह सिद्धकरे। यह अवलेह मात्रानुसार मनुष्यको चटावे तो उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ १० ॥

चतुरंगुलसिद्धाद्वाक्षीराद्यद्वुदियाद्घृतम् ।
मज्ज्ञःकल्केनधात्रीणांरसेतत्साधितंपिबेत् ॥ ११ ॥

अमलतासका गूदा आधसेर, दूध ४ सेर, जल ८ सेर इन सबको मिलाकर

पकावे । दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इस दूधमें १ सेर घृत और १ पाव अमलतासके गूदेका कल्क तथा ४ सेर आमलेका रस मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घीके पीनेसे भी उत्तम विरेचन होताहै ॥ ११ ॥

तदेवदशमूलस्यकुलत्थानांयवस्यच ।
कषायेसाधितंकल्कैःसर्पिःश्यामादिभिःपिवेत् ॥ १२ ॥

अमलतासके गूदेसे सिद्ध किया दूध ४ सेर, घी १ सेर, दशमूल, कुल्थी और यवों-का क्वाथ ४ सेर तथा निशोथ, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, कमीला, वच, इन्द्रायणकी जड, दूधली, करंजके बीज, पीलू, अमलतास, दाख, द्रवंती और निचुल-इन सबको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे । इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतके पीनेसे सुखपूर्वक उत्तम विरेचन होताहै॥१२॥

दन्तीकाथेऽञ्जलिमज्ज्ञःशम्पाकस्यगुडस्यच । दत्त्वामासार्द्धमास-स्थमरिष्टंपाययेतच ॥ १३ ॥ यस्ययत्पानमन्नंवाहृद्यंस्वाद्वपिवाकटु । लवणंवाभवेत्तेनयुक्तंदद्याद्विरेचनम् ॥ १४ ॥

दंतीका क्वाथ ४ सेर, अमलतासका गूदा आधसेर, गुड १ सेर इन सबको किसी चिकने पात्रमें भरकर विधिवत् बन्दकर १५ दिन अथवा १ महीना धरा रहने दे । फिर इस अरिष्टको छानकर रोगीको पिलावे । जिस रोगीको जो पीनेकी वस्तु और अन्न, हृदयको प्यारा लगे । अथवा मिठाई चरपरे द्रव्य, नमकीन अथवा खट्टे जैसें द्रव्य उसको प्रिय हों उन्हींके साथमें यह अरिष्ट भी पिलाया जाय तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

उपसंहार ।
तत्रश्लोकौ ।

द्राक्षारसेसुरासीध्वोर्दधिचामलकीरसे । सौवीरककषायाभ्यांविल्व-शम्पाकयोस्तथा ॥ १५ ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वेचयोगाद्वादशकीर्त्तिताः । चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराःप्रकीर्त्तिताः ॥ १६ ॥
इतिश्रीचर०कल्पस्थानेचतुरंगुलकल्पोनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इस चतुरंगुल कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि इस चतुरंगुल कल्पमें द्राक्षारस, मद्य, बेरकी सीधु, दधिमण्ड, अमलेका रस, सौवीरक, निशोथका क्वाथ, विल्व

-और अमलतासका क्वाथ, अवलेह, अरिष्ट और दोप्रकारके घृत इन सबको मिला-
-कर बारह प्रकारके मृदुसुखकारी विरेचनयोग कहे हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

इ० श्री० च० आयु० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० चतुरंगुलकल्पो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम तिल्वक (लोध) के कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् -आत्रेयजी कहने लगे ।

लोधके नाम ।

तिल्वकस्तुमतोलोध्रोबृहत्पत्रस्तिरीटकः ॥ १ ॥

तिल्वक, लोध्र, बृहत्पत्र और तिरीटक यह लोधके पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ १ ॥

लोधके १६ योग ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम् । चूर्णयेत्तुत्रिधाकृत्वा द्वौभागौकाथयेत्ततः । लोध्रस्यैवकषायेणतृतीयंतेनभावयेत् ॥२॥ भागंतंदशमूलस्यपुनःक्वाथेनभावयेत् । शुष्कंचूर्णंपुनःकृत्वाततऊ-र्ध्वंप्रयोजयेत् ॥ ३ ॥ दधितक्रसुरामण्डमूत्रैर्बदरसीधुना । रसेना-मलकानांवाततःपाणितलंपिबेत् ॥ ४ ॥

लोधकी जडके काष्ठभागको त्यागकर ऊपरका मोटा छिलका ले सुखालेवे। इस सुखेहुए लोधका चूर्णकर अलग २ तीन भाग करे । २ भाग चूर्णका क्वाथ बनाकर उस क्वाथसे तीसरे भाग चूर्णकी भावना देवे । फिर दशमूलके क्वाथकी भावना देवे। तदनंतर सुखाकर चूर्ण बनालेवे । इस चूर्णको दही, तक्र, सुरा, मण्ड, गोमूत्र, बेरसे बनीहुई सीधु और आमलेका रस इनमेंसे किसी एकके साथ १ तोला पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

सुरांलोध्रकषायेणजातांपक्षस्थितांपिबेत् ॥ ५ ॥

लोधका क्वाथ और मद्य इन दोनोंको समभाग ले किसी पात्रमें भर १५ दिन -रक्खे फिर इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ५ ॥

मेषशृङ्ग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेशृते । तत्तुलांसुनुयात्तच्चजातं सौवीरकंयदा । भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिबेत्तदा ॥ ६ ॥

मेंढासिंगी, हरड, पीपल, चित्रक इन सबको आध २ सेर लेकर आठगुने जलमें डाल क्वाथ करे । चतुर्थांश शेप रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें ५ सेर गुड मिलावे और यवोंसे बनाईहुई कांजी २ सेर इसमें डाले १५ दिन पर्यन्त बन्दकर रक्खे फिर यह उत्तम सौवीरक बनजाताहै । इसमेंसे १ पाव सौवीरक लेकर उसमें लोधको कल्क मिला पीनेसे उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ६ ॥

दन्तीचित्रकयोर्द्रोणेसलिलस्याढकंपृथक् । संक्वाथ्यचगुडस्यैकां तुलांलोध्रस्यचाञ्जलिम्।आवपेत्तत्परंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम्॥७॥

४ सेर दंतीको १६ सेर जलमें पकावे और ४ सेर चित्रकको १६ सेर जलमें पकावे । जब चौथा २ भाग शेप रहे तो इन दोनोंको अलग २ उतारकर छान लेवे । फिर इन दोनों क्वाथोंको मिलाकर इनमें ५ सेर गुड और २० तोला लोधका चूर्ण मिलाकर किसी चिकने पात्रमें डाल बन्दकर देवे । १५ दिनके अनन्तर निकालकर छानले । इस अरिष्टके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै॥ ७ ॥

तिल्वकस्यकपायेणदशकृत्वःसुभाविताम् ॥ ८ ॥ मात्रांकम्पिल्लकस्यैवकपायेणपुनःपिबेत् । चगुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्य्यएव च ॥ ९ ॥ त्रिफलायाःकपायेणससर्पिर्मधुफाणितः । लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठोविरेचने ॥ १० ॥

लोधके क्वाथसे लोधके चूर्णको दशवार भावना देवे । फिर इस चूर्णको कमीलेके क्वाथकी दशवार भावना देकर चूर्ण बना लेवे । इस चूर्णको कमीलेके क्वाथके साथ अथवा उपरोक्त किसी अरिष्टके साथ पीनेसे विरेचन होजाताहै अमलतासके अवलेहके समान लोधका भी अवलेह बनावे अर्थात् लोधका क्वाथ, निशोथका चूर्ण और गुड मिलाकर अवलेह सिद्धकरे । यह अवलेह भी विरेचन करनेके लिये प्रयोग किया जाताहै त्रिफलेका क्वाथ, घृत, गुड और लोधका चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्धकरे । इस अवलेहमें शहद मिला चाटनेसे उत्तम विरेचन होताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

तिल्वकस्यकपायेणकल्केनचसशर्करः ।
सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठोविरेचने ॥ ११ ॥

लोधके कपायके साथ, लोधका कल्क, खांड और घी मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहके खानेसे भी श्रेष्ठ विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥

अष्टाष्टौत्रिवृतादीनांमुष्टींश्वसनखान्पृथक् ।
द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषेप्रस्थंघृतात्पचेत् ॥ १२ ॥

पिष्टैस्तैरेवबिल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ।
ततोमात्रांपिबेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ १३ ॥

निशोथ, त्रिफला, दंती, नीलिनी, सातला, वच, कमीला, इन्द्रायणकी जड, दूधी, करंजुएकी, गिरी पीलूफल, अमलतास, दाख, द्रवंती और निचुल । इन सबको आठआठ तोला लेकर १ द्रोण जलमे पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । इस क्वाथमें १ प्रस्थ घृत और इन उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका दो दो तोला कल्क, सेधानमक २ तोला और गोमूत्र ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस घृतको मात्रानुसार पीनेसे परमश्रेष्ठ विरेचन होताहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम् ।
चतुरंगुलकल्पेनसर्पिषीद्वेचसाधयेदिति ॥ १४ ॥

लोधका कल्क, गोमूत्र, सेंधानमक और कांजी मिलाकर सिद्ध किया घृत । अथवा लोधका क्काथ, गोमूत्र, कांजी और लवण मिला सिद्ध किया घृत विरेचन करानेमें श्रेष्ठ होताहै । इन दोनों प्रकारके घृतोंमें अमलतासका क्वाथ और उपरोक्त निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क तथा दशमूल, कुलथी और यवोंका क्वाथ भी मिलाना चाहिये । संपूर्ण क्वाथघृतसे चौगुने और सब द्रव्योंका कल्क घीसे चौथा भाग मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहनेपर उतारले । फिर इन दोनों घृतोंमसे किसी एकको पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ १४ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकःसुरासौवीरकेणच । एकोऽरिष्टस्तथायोग एकःकम्पिल्लकेनच ॥ १५ ॥ लेहास्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्प्रदर्शिताः । योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेषोडशदर्शिताः ॥ १६ ॥

इतिश्रीचर० कल्पस्थाने तिल्वककल्पो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहा अध्यायके उपसंहारमे कहतेहैं कि इस तिल्वककल्पमें दही आदि द्रव्योंसे ५ योग, मद्यसे १ योग, सौवीरकसे १ योग, अरिष्टसे १ योग, कमीलेसे १ योग, अवलेहके ३ योग और घृतके ४ योग इस प्रकार सब मिलाकर लोधके १६ योगोका वर्णन कियाहै ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति श्री० च० आ० स० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० तिल्वककल्पो नाम नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः।

अथातः सुधाकल्पं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम सुधाकल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

सुधाको तीक्ष्णत्व ।

विरेचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता । संघातन्तुभिनत्याशुदोषाणांकष्टविभ्रमात् ॥ १ ॥ तस्मान्नैषामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन । नदोषनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिक्रमे ॥ २ ॥

संपूर्ण विरेचनोंमें सुधा (थोहर, सेहुंड) का विरेचन अत्यन्त तीक्ष्ण मानाजाताहै । यह दोषोंके संघातको एकदम तोडकर मनुष्योंको कष्टकारी विभ्रम उत्पन्न करदेताहै। इसलिये इसका विरेचन मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको कभी नहीं देना चाहिये। और अल्पदोषमें तथा जो दोष अन्य विरेचन द्वारा निकल सकतेहों उनमें भी थोहरका विरेचन देना नहीं चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मेकुष्ठेदूषीविषार्दिते । श्वयथौमधुमेहेचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥ ३ ॥ रोगैरेवंविधैर्ग्रस्तंज्ञात्वासप्राणमातुरम् । प्रयोजयेन्महावृक्षंसम्यक्सद्यवचारितः ॥ ४ ॥ सद्योहरतिदोषाणांमहान्तमपिसञ्चयम् ॥ ५ ॥

पाण्डुरोग, उदररोग, गुल्मरोग, कुष्ठ, दूषीविष, सूजन, मधुमेह, उन्माद तथा किसी प्रकारके जो अन्य बलवान् रोग हैं उन रोगोंमें यदि रोगी बलवान् हो तो थोहरके विरेचनका विचारपूर्वक प्रयोग करना चाहिये । थोहर विधिवत् प्रयोग कियेजानेपर दोषोंके महान् संचयको भी शीघ्र हरलेताहै ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

थोहरके भेद और नाम ।

द्विविधःसमतोयैश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः । सुतीक्ष्णैःकण्टकैरल्पैःप्रवरोबहुकण्टकः । सनाम्नातुगुडानन्दीसुधानिस्त्रिंशपत्रकः ॥ ६ ॥

थोहर दो प्रकारका होताहै । एक बहुतसे और तीक्ष्ण कांटोंवाला और दूसरा अल्पकांटोंवाला इन दोनोंमें बहुत कांटोंवाला थोहर श्रेष्ठ होताहै । इसके स्नुक्, गुडा, नन्दी, सुधा और निस्त्रिंशपत्र यह पर्यायवाचक शब्द हैं ॥ ६ ॥

थोहरके २०योग ।

तंविपाट्याहरेत्क्षीरंशस्त्रेणमतिमान्भिषक् । द्विवर्षांवात्रिवर्षांवाशि-

शिरान्तेविशेषतः ॥ ७ ॥ बिल्वादीनांबृहत्यावाकण्टकार्य्यापिचैकशः । कषायंतंसमांशेनकृत्वाङ्गारेषुशोषयेत् ॥ ८ ॥ ततःकोलसमांमात्रांपिबेत्सौवीरकेणवा । तुषोदकेनकोलानांरसेनामलकस्य वा ॥ ९ ॥ सुरयादधिमण्डेनमातुलुङ्गरसेनवा ॥ १० ॥

शिशिर ऋतुके अन्तमें और वसन्तके आदिमें दो तीन वर्षके थोहरवृक्षकी जडको शस्त्रसे छेदनकर उसका दूध निकाललेवे। उस दूधको प्रथम बिल्वादि पंचमूलके काथमें फिर वडी कटेलीके काथमें पीछे कटेलीके क्वाथमें डालकर अंगारोंकी अग्निपर पकावे। इसका यह क्रम है कि प्रथम थोहरके दूधमें बिल्वादिपंचमूलका क्वाथ डालकर पकावे। जब वह जलजाय तो कटेलीका काथ डाले । कटेलीके काथके जलजाने पर जब थोहरका दूध भी गाढा होजाय तो उसकी जंगली बेरके समान गोलियें बनालेवे। इन गोलियोंमेंसे १ गोली सौवीरके साथ अथवा तुषोदकके साथ वा बेरसे बनी शीधुके साथ अथवा आँवलेके रसके साथ या मद्यके साथ अथवा दधिमण्डके साथ वा बिजौरेके रसके साथ पीवे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाताहै ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

सातलांकाञ्चनक्षीरींश्यामादीनिकटुत्रिकम् । यथोपपत्तिसप्ताहं सुधाक्षीरेणभावयेत् ॥ ११ ॥ कोलमात्रंघृतेनातःपिबेन्मांसरसेन वा ॥ १२ ॥

सातला, स्वर्णक्षीरी, निशोथेआदिगण, त्रिकुटा इन सबमेंसे जो मिलसके उन सबका चूर्ण कर उस चूर्णको सात दिन तक थोहरके दूधमें भावना देकर घोटता जाय फिर बेरके समान गोलियां बना एक गोली खाकर ऊपरसे घृत अथवा मांसरस पीवे तो उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

व्यूषणंत्रिफलांदन्तींचित्रकंत्रिवृतांतथा ।
स्नुक्क्षीरभावितंसम्यग्विदध्याद्गुडपानके ॥ १३ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, दंती, चित्रक और निशोथ इन सबका चूर्ण थोहरके दूधकी भावना देकर गोलियें बनावे एक गोली गुडके शर्बतके साथ खावे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ १३ ॥

त्रिवृतारग्वधंदन्तींशंखिनींसप्तलांसमाम्।निशिस्थितंगवांमूत्रेशोप-

(१) अपामार्गतण्डुलीयाध्यायमें कहाहै और तिल्वककल्पमें भी १२ । १३ श्लोककी टीकामें कहाहै ।

येदातपेततः । सप्ताहंभावयित्वैवंस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः ॥१४॥ सप्ताहंभावयेच्छुष्कंततस्तेनापिभावितम् । गन्धमाल्यंतदाघ्रायप्रावृत्यपटमेवच ॥ १५ ॥ सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥ १६ ॥

निशोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें रात्रिके समय भिगो देवे फिर सबेरे सुखावे । फिर चूर्णकर रात्रिको गोमूत्रमें भिगोवे इस प्रकार इस चूर्णको सात भावना देवे । फिर इसी प्रकार थोहरके दूधमें सात बार भावना देवे फिर इस चूर्णको सुखाकर बहुत बारीक पीसले इस सूक्ष्म चूर्णको सुगंधित फूल माला आदिमें लगाकर सुंघा कर रोगीको सर्वतः वस्त्रसे ढककर रक्खे तो इससे तो मृदुकोष्ठ मनुष्योंको राजाआदि सुकुमार मनुष्योंको सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

श्यामात्रिवृत्कषायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः ।
लेहंपक्त्वाविरेकार्थंलेहयेन्मात्रयानरम् ॥ १७ ॥

कालीनिशोथके क्राथ और थोहरके दूधसे घृत और फाणित मिलाकर पकावे अवलेह सिद्ध होनेपर उतारले इस अवलेहको उचितमात्रासे रोगीको खिलावे तो तीक्ष्ण विरेचन होजाताहै ॥ १७ ॥

पाययेत्सुधाक्षीरंयूषैर्मांसरसैर्घृतैः ।
भाविताञ्शुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ १८ ॥

थोहरके दूधको यूप, मांसरस, अथवा घृतमें मिलाकर पिलावे अथवा थोहरके दूधमें भावना देकर सुखाई हुई मछली वा थोहरके दूधसे भावित मांसके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ १८ ॥

क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरङ्गुलवत्पचेत् ।
सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥ १९ ॥

थोहरके दूधसे सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसमेंसे घी निकाले इस घीमें चार गुणा आँवलेका रस, घीसे चतुर्थांश थोहरका दूध मिलाकर पकावे । घृतमात्र शेष रहने पर उतार कर छानले । अथवा इस प्रकार निकालाहुआ घृत १ सेर निशोथ आदि द्रव्योंका कल्क १ पाव दशमूल, कुलथी और जवोंका क्वाथ ४ सेर इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे यह दोनों घृतभी उत्तम विरेचन करतेहैं । अथवा थोहरका दूध मद्यमें मिलाकर १५ दिन धरा रहनेदे फिर इस मद्यको छानकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ १९ ॥

उपसंहार।

तत्र श्लोकौ।

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिषाचरसेनच । पानकंध्रेयलेहौचयोगायूषादिभिस्त्रयः ॥ २० ॥ द्वौशुष्कमत्स्यमांसाभ्यांसुरैकाद्वेचसर्पिषी। सुधाकल्पस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः ॥ २१ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थाने सुधाकल्पोनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस सुधा कल्पमें सौवीरकादिसे ७ योग, घृतके साथ १ योग, पानकसे १ योग, सूंघनेसे १ योग, अवलेहका १ योग, यूषादि ३ योग, सुखी मछली और मांससे २ योग, सुरासे १ योग, और घृतसे २ योग इसप्रकार सब मिलकर २० योग कहेहैं ॥ २० ॥ २१ ॥

इति श्री० च० भा० सं० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० सुधाकल्पोनाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः।

अथातः सप्तलाशंखिनीकल्पंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम सप्तला और शंखिनी के कल्पोंकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सप्तलाशंखिनीके नाम।

सप्तलाचर्म्मसाह्वाचबहुफेनरसाचसा।

शंखिनीतिक्तलाचैवयवतिक्ताक्षिपीडकः ॥ १ ॥

सप्तला, चर्मसाह्वा, बहुफेनरसा ये सातलाके नाम हैं। और शंखिनी, तिक्तला, यवतिक्ता तथा आक्षिपीडक यह शंखिनीके नाम हैं ॥ १ ॥

सप्तलाशंखिनीके गुण।

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिकेषुतु ॥ २ ॥

शंखिनी और सप्तला गुल्मरोग, विषविकार, हृद्रोग, कुष्ठरोग, सूजन, गरदोष और

१ सप्तला कोई थोहरका भेद सातला मानते हैं कोई नीलिनीकोही सप्तला कहते हैं ।

२ शंखिनीसे यवतिक्ताका ग्रहण करते हैं ।

उदररोग आदिमें प्रयोग कीजातीहै । तथा विकाशी, तीक्ष्ण और रूक्ष होनेसे कफ जनित व्याधियोंमें भी इसका प्रयोग किया जाताहै ॥ २ ॥

नातिशुष्कंफलंग्राह्यंशंखिन्यानिस्तुषीकृतम् ।
सप्तलायाश्चमूलानिगृहीत्वाभाजनेक्षिपेत् ॥ ३ ॥

शंखिनीके पकेहुए जो अत्यंत सूखे न हों ऐसे तुषरहित फल लेने चाहिये । और सातलाकी जड ग्रहण करना चाहिये । इन दोनोंको उत्तम पात्रमें डालकर युक्तिपूर्वक रख देना चाहिये ॥ ३ ॥

सप्तलाशंखिनीके प्रयोग ।

अक्षमात्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नालवणायुतम् । हृद्रोगेकफवातार्थेगुल्मे चैवप्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ पियालपीलुकर्कन्धुकोलाम्रातकदाडिमैः । द्राक्षापनसखर्जूरबदराम्लपरूषकैः ॥ ५ ॥ मैरेयदधिमण्डेऽम्लेसौ- वीरकतुषोदके । शीधौचाप्येषकल्पःस्यात्सुखंशीघ्रविरेचने ॥ ६ ॥

फिर इन दोनों द्रव्योंको पीसकर इनका १ तोलेका गोला बना मसन्ना और सेंधे- नमकके साथ हृद्रोग और कफवातजनित गुलमरोगमें प्रयुक्त करे । अथवा चिरौंजी, पीलू, वेर जंगली वेर अंबाडा और अनार इनसबका क्वाथ या रस लेकर उसके साथ अक्षमात्र शंखिनी सप्तलाकी गोली खावे । अयवा द्राक्षा, पनस, खजूर, वेरका रस और फालसेका रस इनसे उस गोलीको सेवन करे । वा मैरेय दधिमण्ड, कांजी, सौवीरक, तुषोदक और शीधु इनमेंसे किसीके साथ गोली खावे तो विरेचन होकर हृद्रोग और कफवात गुल्म दूर होता है । तथा इसके योगसे सुखपूर्वक शीघ्र विरेचन होजाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

तैलंविदारिगन्धाद्यैःपयसिक्वथिते पचेत् । सप्तलाशंखिनीकल्के त्रिवृच्छ्यामार्द्धभागिकोदधिमण्डेनसन्धायसिद्धंतत्पाययेतच॥७॥

तेल १ सेर, शालपर्णी आदि गणसे सिद्ध किया दूध ४ सेर, सप्तला और शंखि- नीका कल्क २० तोला, लाल और काली निशोथका कल्क आधा पाव दहीका मण्ड ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे तेलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । इस तेलको दहीके मण्डमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ ७ ॥

शंखिनीचूर्णभागौद्वौनीलीचूर्णस्यचापरः ॥ ८ ॥ हरीतकीकषाये- णतैलंतत्पीडितंपिबेत् । अतसीसर्षपैरण्डकरञ्जेष्वेषसंविधिः ॥९॥

शंखिनीका चूर्ण २ भाग, नीलनीका चूर्ण १ भाग, यह दोनों तिलोंमें मिलाकर

उन तिलोंको कोल्हूमें पीडितकर तेल निकलवा लेवे। इस तेलमें हरडोंका क्वाथ मिलाकर पीवे। इसी प्रकार तिलोंके बदलेमें अलसी, सरसों एरण्डके बीज और करंजके बीजोंकी गिरी इन चारोंमेंसे किसी एकमें शंखिनी और नीलनीका चूर्ण उपरोक्त विधिसे मिलाकर तेल निकाले। इस तेलको हरडाके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

शंखिनीसप्तलासिद्धात्क्षीराद्यदुदियाद्घृतम् । कल्कभागंतयोरेवत्रिवृच्छ्यामार्द्धसंयुतम् । क्षीरेणालोड्यसम्पक्वंपिबेत्तच्चविरेचनम् ॥१०॥

सातला और शंखिनीसे सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाल लेवे। यह घी १ सेर सप्तला और शंखिनीका कल्क १० तोला, काली और लाल निशोथका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे। घृतमात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले। इस घृतको उचित मात्रासे दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन हो जाताहै ॥ १० ॥

तथादन्तीद्रवन्त्योःस्यादजशृङ्ग्यजगन्धयोः ॥ ११ ॥ क्षीरिण्यानीलिकायाश्चतथैवचकरञ्जयोः । मसूरविदलायाश्चप्रत्यक्श्रेण्यास्तथैवच ॥ १२ ॥

इसी प्रकार दंती और द्रवंतीके साथ सिद्ध किये हुए दूधको जमाकर उसका घृत निकाल लेवे। इस १ सेर घृतमें सातला और शंखिनीका कल्क १० तोला, दोनों प्रकारके निशोथका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्ध करे। अथवा मेंढासिंगी और अजवायनसे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत शंखिनी, सप्तलाके कल्क द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे सिद्धकरे। अथवा क्षीरिणी और नीलिकासे सिद्ध कियाहुआ घृत लेकर वा वच और करंजसे सिद्ध किये दूधका घृत लेकर उस घृतमें सातला, शंखिनी और दोनों प्रकारके निशोथका कल्क मिलाकर उपरोक्त विधिसे घृत सिद्ध करे। अथवा शंखिनी और सप्तलाके दूधसे निकालाहुआ घृत १ सेर उसमें शंखिनी सप्तलाका कल्क १० तोला, मसूरकी दाल और दंतीका कल्क १० तोला, दूध ४ सेर मिलाकर घृत सिद्धकरे। यह सब घृत उत्तम विरेचन करनेवाले हैं। इनमेंसे किसी १ घृतको ४ तोला लेकर पावभर दूधमें मिलाकर पीवे तो उत्तम विरेचन होताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

विडङ्गार्द्धांशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतंपुनः ।
शंखिनीसप्तलाधात्रीकषायेसाधयेद्घृतम् ॥ १३ ॥

शंखिनी और सप्तलासे सिद्ध कियेहुए दूधका घृत १ सेर, वायविडंगका कल्क

आध पाव । शंखिनी सप्तलाका कल्क आध पाव और दूध ४ सेर । इन सबको मिलाकर घृत सिद्ध करे । अथवा शंखिनी, सातला और आँवलेके क्वाथसे उसी प्रकार घृत सिद्ध करे । यह संपूर्ण घृत दूधमें मिला पीनेसे उत्तम विरेचन करते हैं ॥ १३ ॥

त्रिवृत्कल्पेनसर्पिश्चत्रयोलेहाश्चपूर्ववत् ।
सुराकम्पिल्लयोर्योगःकार्य्योलोध्रवदेवच ॥ १४ ॥

शंखिनी और सप्तलाके त्रिवृत् कल्पाध्यायमें कहेहुए विधानसे घृतपाक और तीन प्रकारके अवलेह सिद्धकर विरेचनके लिये प्रयोग करे । तिल्वककल्प अर्थात् इसी कल्पके नवमें अध्यायमें सुरा और कमीलेके योगसे लोधके जो दोःप्रकारके विरेचन योग बनतेहैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सुरा और कमीलेके योगसे दो प्रकारके योग बनाना चाहिये ॥ १४ ॥

दन्तीद्रवन्त्योःकल्पेनसौवीरकतुषोदके ।
अजगन्धाजश्रृङ्ग्योश्चतद्वत्स्यातांविरेचने ॥ १५ ॥

आगे दंती और द्रवंतीके कल्पमें जिस प्रकार सौवीरक और तुषोदक, अजवायन, और मेढासिंगीके योगसे बनतेहैं उसी प्रकार शंखिनी और सप्तलाके भी सौवीरक और तुषोदक बनावे । यह सौवीरक ओर तुषोदक भी उत्तम विरेचन-कर्त्ता योग है ॥ १५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकौ ।

कषायादशषट्चैवषट्तैलेऽष्टौचसर्पिषि । पञ्चमद्येत्रयोलेहायोगाः काम्पिल्लकेतथा ॥ १६ ॥ सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तामवाधि-काः । योगाःसिद्धाःसमस्ताभ्यामेकशोऽपिचतेहिताः ॥ १७ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेसप्तलाशंखिनीकल्पो नामैकादशोऽध्यायः ११॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस शंखिनीसप्तलाकल्पमें क्वाथके योगसे १६ योग, तैलसे ६ योग, घीके ८ योग, मद्यके ५ योग, लेहके ३ योग, कमीलाका १ योग । इस प्रकार सब मिलकर ३९ योग कहेहैं । यह ३९ योग अकेली शंखिनी और अकेली सातलासे अलग २ भी होसकतेहैं और दोनोंको मिलाकर भी यह उपयोग विरेचनके लिये उत्तम हितकर्त्ता है । दोनोंको अलग २ करनेसे यह ७८ योग होजातेहैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

इति श्रीच० प्र० आ० से०कल्पस्थाने प्र०भा०टी०शंखिनीसतलाकल्पोनामैकादशोऽध्यायः॥११॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातोदन्तीद्रवन्तीकल्पंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम दंती और द्रवंतीके कल्पकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

दंतीद्रवंतीके नाम ।

दन्त्युदुम्बरपर्णीस्यान्निकुम्भोथमुकूलकः ।
द्रवन्तीनामतश्चित्रान्यग्रोधीमूषिकाह्वया ॥ १ ॥

दंती, उदुम्बरपर्णी और मुकूलक यह दंती (छोटे जमालगोटेकी जड) के नाम हैं। तथा द्रवंती, चित्रा, न्यग्रोगी और मूषिकाह्वया यह द्रवंतीके नाम हैं ॥ १ ॥

इनके ग्रहण और शोधनक्रम ।

तयोर्मूलानिसंगृह्यस्थिराणिवहलानिच । हस्तिदन्तप्रकाराणि श्यावताम्राणिबुद्धिमान् ॥ २ ॥ पिप्पलीमधुलिप्तानिस्वेदयेन्मृत्कुशान्तरे । शोषयेदातपेऽग्निर्मोहताह्येषांविकारिता ॥ ३ ॥

दंती, द्रवंतीका मूल जो स्थिर, पुष्ट, हाथीके दांतके समान चमकीले तथा श्यामतायुक्त ताम्रवर्ण हों उनको बुद्धिमान् वैद्य उखाड कर उचित समयमें ले आवे। फिर इन जडोंपर पीपलका चूर्ण लगाकर कुशासे लपेट देवे। ऊपरसे मट्टीका लेप कर दे। फिर इनको अग्निमें किंचित् स्वेदित करे। फिर मट्टी आदि दूरकर गरमपानीसे घोडाले और धूपमें सुखा लेवे। ऐसा करनेसे इनका विकार नष्ट होजाताहै और यह शुद्ध होजाती हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

दंती और द्रवंतीके गुण ।

तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणिविकाशीनिगुरूणिच ।
विलापयन्तिदोषौद्वौमारुतंकोपयन्तिच ॥ ४ ॥

दंती और द्रवंती यह दोनों तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी, विकाशी और भारी हैं तथा कफ और पित्तको नष्ट करतीहैं एवं अत्यंत विरेचन होनेपर वायुको प्रकुपित करतीहैं ॥ ४ ॥

दंतीद्रवंतीके प्रयोग ।

दधितक्रसुरामण्डैःपिण्डमक्षसमंतयोः । पियालकोलबदरपीलु-

शीधुभिरेवच ॥ ५ ॥ पिबेद्गुल्मोदरीदोषैरभिखिन्नश्चयोनरः ।
गोमृगाजरसैःपाण्डुःकृमिकुष्ठीभगन्दरी ॥ ६ ॥

दंती और द्रवंती इन दोनोंका १ तोला कल्क, दही, छाछ, सुरामण्ड, बेरका क्वाथ, पीलूका क्वाथ और शीधु इनमेंसे किसी एकके साथ पीवे तो यह विरेचन मनुष्योंके गुल्मरोग, उदररोग और अभिष्यदंता इन सबमें हितकारक है अथवा गौके दूध वा हिरनके मांसरसके अथवा बकरेके मांसरसके साथ कृमिरोग, पाण्डुरोग, कुष्ठरोग और भगन्दररोगवाले मनुष्योंको पिलाना हितकारी है ॥ ५ ॥ ६ ॥

तयोःकल्केकषायेचदशमूलरसायुते ।
कक्ष्यालजीविसर्पेषुदाहेचविपचेद्घृतम् ॥ ७ ॥

दंती और द्रवंतीके कल्क और क्वाथ तथा दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया घृत कधराली (बगलमें होनेवाली गिल्टी) विसर्प और दाहमें विरेचनके लिये प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७ ॥

तैलंमेहेचगुल्मेचसोदावर्त्तेकफानिले ।
चतुःस्नेहंशकृच्छुक्रवातसङ्गानिलार्त्तिषु ॥ ८ ॥

इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया तैल, प्रमेह, गुल्म, उदावर्त्त और कफवात व्याधिमें पिलाना हितकारक है। और इसी प्रकार दंती, द्रवंतीके कल्क, क्वाथ और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध किया चतुःस्नेह मलके विबंध, वीर्यके विबंध और वायुके विबंधको दूर करताहै तथा वातजनित व्याधियोंको दूर करताहै ॥ ८ ॥

रसेदन्त्यजशृङ्ग्योश्चगुडक्षौद्रघृतान्वितः ।
लेहःसिद्धोविरेकार्थेदाहसन्तापमेहनुत् ॥ ९ ॥

दंती और मेंढासिंगीके क्वाथमें गुड और घी मिलाकर अवलेह सिद्धकरे। इस अवलेहमें शहद मिलाकर चाटनेसे विरेचन होकर संताप, दाह और प्रमेह नष्ट होजाताहै ॥ ९ ॥

वाततर्षेज्वरेपैत्तेस्यात्सएवाजगन्धया ॥ १० ॥

अजवायन और दंतीके क्वाथमें चतुर्थांश गुड और घी मिलाकर अवलेह बनावे। इस अवलेहको शहद मिलाकर चाटे तो विरेचन होकर वायुकी तृषा और पित्तज्वर नष्ट होतेहैं ॥ १० ॥

मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे । त्रींस्तुतस्यकषायस्यभागौ-द्वौफाणितस्यच । तत्तेसर्पिपितैलेवाभर्जयेत्तत्रचावपेत् ॥ ११ ॥ कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीनाञ्चभागशः । तत्सिद्धंप्राशयेल्लेहं सुखंतेनविरिच्यते ॥ १२ ॥

दंती, द्रवंतीकी जडका कल्क और आमलेका रस मिलाकर पकावे । जब चौथा-भाग शेष रहे तो उतारकर छानलेवे । यह क्वाथ तीन भाग और फाणित (राब) दो भाग घृत और तेल आँठवां भाग मिलाकर पकावे । जब गाढा होनेपर आवे तो इसमें दंती, द्रवंती और निशोथ आदि गणकी औषधियोंका चूर्ण मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । इस अवलेहके चाटनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ११ ॥ १२ ॥

रसेचदशमूलस्यतथावैभीतकेरसे ।
हरीतकीरसेचैवलेहानेवंपचेत्पृथक् ॥ १३ ॥

दशमूल, बहेडे और हरड इन तीनोंमेंसे किसी एकके क्वाथमें दंती, द्रवंतीको पकावे । चौथाईभाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस रसमें पूर्वोक्त द्रव्य मिलाकर अवलेह सिद्ध करे । यह तीनों प्रकारके अवलेह विरेचन करानेमें उत्तम योग हैं ॥ १३ ॥

तयोर्बिल्वसमंचूर्णतद्रसेनैवभावितम् ।
असृष्टविपित्रातोत्थेगुल्मेचाम्लयुतंशुभम् ॥ १४ ॥

दंती, द्रवंतीके १ पल चूर्णको दंती द्रवंतीके रसमें भावना देकर चूर्ण करले । यह चूर्ण मलके विबंधमें और वातगुलममें कांजीके साथ पिलावे तो परम हितकारी हो ॥ १४ ॥

पाटयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्तरा ।
स्वेदयित्वाततःखादेत्सुखंतेनविरिच्यते ॥ १५ ॥

एक मोटे पौंडा (गन्ना) को बीचमेंसे चीरकर उसमें दंती और द्रवंतीका कल्क भरे । फिर उस पौंडेको उसी प्रकार जोडकर बांध देवे । इसको अग्निमें भूनकर फिर इसका रस निकाल लेवे । इस रसके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै । अथवा दंती, द्रवंतीके कल्कको ईखके रसमें घोलकर पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ १५ ॥

मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चसहमुद्गैर्विपाचयेत् ।
लावतित्तिरिकाणांचने सा:स्युर्विरेचने ॥ १६ ॥

दंती द्रवन्तीको डालकर सिद्ध किया मूंगका यूप अथवा लवा या तीतरका मांस-रस पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होताहै ॥ १६ ॥

तयोर्वापिकषायेणयवागूंजाङ्गलंरसम्। माषयूषांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते-नविरिच्यते ॥१७॥ तत्कषायात्त्रयोभागाद्वौसितायास्तथैवच। एकोगोधूमचूर्णानांकार्य्याचोत्कारिकाशुभा ॥ १८ ॥ मोदकोवास्य-कल्केनकार्य्यस्तत्रविरेचने। तयोर्वापिकषायेणमद्यमस्योपकल्पयेत् ॥ १९ ॥

दंती द्रवन्तीके क्वाथमें सिद्ध कीहुई यवागू अथवा जंगली जीवोंका मांसरस वा उडदोंका यूप, घृतमें भूनकर पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै। दंती, द्रवंतीका क्वाथ तीनभाग, मिसरी २ भाग, गेहूंका चूर्ण १ भाग इन सबको मिलाकर पूडियें बनावे। इन पूडियोंके खानेसे उत्तम विरेचन होताहै अथवा दंती, द्रवंतीके कल्कको मिसरी और गेहूंके योगसे हलवा या लड्डू बनावे तो उत्तम विरेचन होताहै। अथवा दंती, द्रवन्तीका क्वाथ और बराबरकी मद्य मिलाकर आठ दिनतक धर रक्खे फिर इसके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होताहै ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

दन्तीक्वाथेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधितम्।
गुडलावणिकान्भक्ष्यान्विविधान्भक्षयेन्नरः ॥ २० ॥

गुड और सेंधानमक युक्त जितने प्रकारके भक्ष्य पदार्थ हैं अर्थात् पूडा, पूडी, पकौडी आदि बनाना चाहै तो उनको दंतीके क्वाथमें घोलकर दंतीसे सिद्ध किये तैलमें पकावे। इनके खानेसे भी उत्तम विरेचन होजाताहै ॥ २० ॥

द्रवन्तींमरिचंदन्तींयमानीमुपकुञ्चिकाम्। नागरंहेमदुग्धींचचित्रकञ्चेतिचूर्णितम् ॥ २१ ॥ सप्ताहंभावयेन्मूत्रेगवांपाणितलंततः। पिबेद्घृतेनचूर्णन्तुविरिक्तश्चापितर्पणम् ॥ २२ ॥ सर्वरोगहरंमुख्यं सर्वेष्वृतुषुशोभनम्। चूर्णंतदनपायित्वाद्बालवृद्धेषुपूजितम् ॥२३॥ दुर्भक्ताजीर्णपार्श्वार्तिगुल्मप्लीहोदरेषुच। गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्यते ॥ २४ ॥

द्रवंती, मिर्च, दंती, अजवायन, कालाजीरा, सोंठ, चोक, चित्रक इन सबका चूर्णकर गोमूत्रमें ७ दिन भावना देवे। इस चूर्णको १ तोला खाकर ऊपरसे घी पीवे और विरेचन होनेके अनन्तर खांडका शर्बत पीवे। अथवा यवके सत्तू, मिसरी और

जल मिलाकर पतलासा तर्पण बना पीवे । यह चूर्ण संपूर्ण रोगोंके दूरकरनेमें मुख्य है । और विकार रहित होनेसे संपूर्ण ऋतुओंमें तथा बालक, वृद्ध आदि सुकुमार प्रकृतियोंको इस चूर्णका विरेचन अत्यन्त हितकारी है । यह चूर्ण भोजनके अजीर्ण, पार्श्वपीडा, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, गण्डमाला, वातव्याधि और पाण्डुरोगको दूर करताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः । पिप्पलीत्रिवृताक्षौद्रगुडस्याष्टपलेनतत् ॥ २५ ॥ विनीयमोदकान्कुर्य्याद्दशैकंभक्षयेत्ततः । उष्णाम्बुचापिबेच्चानुदशमेदशमेऽह्निच ॥ २६ ॥ एतेनिष्परिहाराःस्युःसर्वरोगनिबर्हणाः । ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोठानिलापहाः ॥ २७ ॥

चित्रक १ पल, दंती १ पल, हरड २० नग, पीपल १ पल, निशोथ १ पल, शहद १ पल, गुड ८ पल । इन सबको मिलाकर १० लड्डू बनावे । इनमेंसे दस २ दिनका अन्तर देकर एक लड्डू गर्मजलके साथ सेवन करे । (अथवा एक एकके मोदककी दस दस गोलियें बना एक गोली नित्य गर्मजलके साथ सेवन करे ।) इनके सेवनमें विशेषरूपसे किसी आहार विहारका परहेज नहीं । इनके सेवनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होतेहैं तथा संग्रहणी, पाण्डु, बवासीर, खुजली, कोढ और वातरोग यह सब नष्ट होतेहैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

दन्तीद्विपलंनिर्य्यूहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ।
शोधनंपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते ॥ २८ ॥

२ पल दंतीका क्वाथकर उस क्वाथमें आधसेर द्राक्षाका रस मिलावे । इनको मिलाकर पकावे । जब पकते २ अवलेह बनजाय तो यह अवलेह पित्तकी खांसी और पाण्डुरोगमें शोधनके लिये देवे । कोई दंतीके क्वाथ और द्राक्षाके क्वाथको मिलाकर पिलाना श्रेष्ठ मानते हैं ॥ २८ ॥

दन्तीकल्कंसमगुडंशीतवारियुतंपिबेत् ।
विरेचनंमुख्यतमंकामलाहरमुत्तमम् ॥ २९ ॥

दंतीके कल्कको बराबरके गुडमें मिलाकर शीतल जलके साथ खाय तो उत्तम विरेचन हो यह विरेचन कामलारोगको दूर करताहै ॥ २९ ॥

शुण्ठीमरिचपिप्पल्याःकार्षिकास्युःपृथक्पृथक् । द्विगुणेशर्करैलेच

शंखिनीस्याच्चतुर्गुणा ॥ ३० ॥ नीलिनीमष्टगुणितांद्विरष्टगुणितांतथा । दन्तींद्रवन्तींत्वक्शाणमेकश्चात्रप्रदापयेत् ॥ ३१ ॥ तस्मादर्द्धपलंचूर्णाल्लिह्यान्माध्वीकसंयुतम् । शीतोदकानुपानन्तुनिरपायंविरेचनम् ॥ ३२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल इन सबको एक एक तोला लेवे । खांड और इलायची दो दो तोला, शंखिनी ४ तोला, नीलिनी ८ तोला, दंती, द्रवंती, सोलह सोलह तोला तथा दालचीनी ४ माशा इन सबको मिलाकर चूर्ण करे । इसमेंसे २ तोला चूर्ण अथवा जितना उचित हो शहद मिलाकर चाटे । ऊपरसे शीतल जल पीवे तो सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

श्यामादन्तीरसेगौडःपिप्पलीफलचित्रकैः ।
लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहपांडूदरापहः ॥ ३३ ॥

एक उत्तम मट्टीके घडेमें पीपल, मैनफल और चित्रकके कल्कका लेप करकें सुखालेवे फिर इस घडेमें काली निशोथ और दंतीका क्वाथ तथा गुड मिलाकर भरदेवे । विधिवत् बन्दकर किसी धान्य आदिकी राशिमें गाडदेवे । २१ दिनके बाद निकालकर इस अरिष्टको पीवे तो वात, कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग और उदररोग दूर होताहै ॥ ३३ ॥

तथादन्तीद्रवन्त्योश्चकषायेणाजगन्धयोः ।
गौडःकार्य्योऽजशृङ्ग्यावारसैःसुखविरेचनः ॥ ३४ ॥

दंती द्रवन्ती और अजवायन इन सबके क्वाथमें गुड मिलाकर उपरोक्त रीतिसें अरिष्ट बनावे अथवा मेढासिंगी और द्रवन्तीके क्वाथमें गुड मिला अरिष्ट बनावे । इन अरिष्टोंके पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३४ ॥

तच्चूर्णक्वाथमाषाम्बुकिण्वतोयसमुद्भवा ।
मदिराकफगुल्माल्पवह्निपार्श्वकटिग्रहे ॥ ३५ ॥

दंती, द्रवन्तीका चूर्ण और क्वाथ, उडदोंका क्वाथ सुराबीज और जल । इन सबको मिलाकर इनसे बनाई मद्य कफ, गुल्म, मंदाग्नि, पार्श्वपीडा और कमरकी पीडाको दूर करतीहै ॥ ३५॥

अजगन्धाकषायेणसौवीरकतुषोदके ।
सुराम्लिपलकेयोगालोध्रवच्चतयोःस्मृताः ॥ ३६॥

अजवायनके क्राथमें, दंती और द्रवंतीका कल्क तथा तुपरहित जवोंका क्राथ तथा अजवायनके क्राथके बराबर कांजी इन सबको मिलाकर १ चिकने घडेमें बन्दकर रखे । ६ दिनके अनन्तर यह सौवीरक तय्यार होजायगा और इसी प्रकार तुषोंसहित यवसे बनायाहुआ तुषोदक कहाता है । यह दंतीद्रवंतीका बनाहुआ सौवीरक और तुषोदक पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाता है । अथवा दंती, द्रवंतीका क्राथ और सुरा इन दोनोंको मिलाकर आठ दिन रखे । इसके पीनेसे भी सुखपूर्वक विरेचन होजाता है अथवा दंती, द्रवंतीके चूर्णको दंती दद्रवंतीके क्राथमें दस भावना देवे, फिर कमीलेके क्राथ में इसी चूर्णको दस भावना देवे।यह लोध्रके समान दंती द्रवंतीका भी काम्पिल्य योग तक्र अथवा जलके साथ १ तोला पीनेसे सुखपूर्वक विरेचन होजाताहै ॥ ३६ ॥

दंती द्रवंतीके योगोंका उपसंहार ।

भवन्ति चात्र ।

दध्यादिपुत्रयःपञ्चपियालाद्यैस्त्रयोरसे । स्नेहेपुवैत्रयोलेहाः पट्चूर्णेत्वेकएवच ॥ ३७ ॥ इक्षावेकस्तथामुद्गमांसानाश्चरसास्त्रयः । यवाग्वादौत्रयश्चैवउक्तउत्कारिकाविधौ ॥ ३८ ॥ एकश्चमोदकेमद्ये चैकंतस्त्रवाथतैलके । चूर्णमेकंपुनश्चैकोमोदकःपञ्चचासवे ॥ ३९ ॥ एकःसौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुतुपोदके । एकासुराकाम्पिल्लकेचैकः पञ्चघृतेस्मृताः॥ ४० ॥ दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन्प्रोक्ताःपोडशका-स्त्रयः । नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोपामयान्प्रति ॥ ४१ ॥

अब इस दंती द्रवंती कल्पके उपसंहारमें कहते हैं कि दही आदि ३ योग, चिरोंजी आदिसे ५ योग, क्वाथोंसे तीन योग स्नेहसे ३ योग, अवलेहसे ६ योग, चूर्णसे १योग, गन्नेमें १ योग, मूंगके यूप और मांसरस ३ योग, यवागू आदिसे ३ योग, पूडियोंका १ योग, मोदकका१ योग, मद्यका १ योग, काथ और तेलका १ योग, चूर्णका १ योग, फिर मोदकका १ योग, आसवके ५ योग, सौवीरकका १ योग, तुषोदकका १ योग, सुराका १ योग, कमीलेका १ योग और घृतके ५ योग इस प्रकार सब मिलाकर दंती द्रवंतीके४८योगोंका वर्णन किया है । यह अनेक प्रकारके योग भोजनसे उत्पन्न हुए अजीर्ण आदि नानाविध उदररोगोंको दूर करते हैं । ३७-४१ ॥

वमन विरेचन योगोंकी संख्या ।

त्रिशतंपञ्चपञ्चाशद्योगानांवमनेस्मृतम्। द्वेशतेनवकाःपञ्चयोगाना-

न्तुविरेचने ॥ ४२ ॥ ऊर्द्धानुलोमभागानामित्युक्तानिशातानिषट् । प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिदशपञ्च च ॥ ४३ ॥

इस कल्पस्थानमें वमनके ३५५ योग कहे हैं और विरेचनके २४५ योग हैं । इस प्रकार दोनोंको मिलाकर ऊर्द्ध विरेचन और अधोविरेचनके ६०० योगोंका कथन किया है । इन योगोंमें निशोथ आदि १५ द्रव्योंको प्रधान माना है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

योगोंमें द्रव्यकी प्रधानता ।

यद्धियेनप्रधानेनद्रव्यंसमनुसृज्यते । तत्संज्ञकःससंयोगोभवतीति विनिश्चितम् ॥ ४४ ॥ फलादीनांप्रधानानांगुणभूताःसुरादयः । ते हितान्यनुवर्त्तन्तेमनुजेन्द्रमिवेतरे ॥ ४५ ॥ विरुद्धवीर्य्यमप्येषां प्रधानानामवाधकम् । समानवीर्य्यन्त्वधिकंक्रियासामान्यमिष्य-ते ॥ ४६ ॥

जो प्रधान द्रव्य जिस अन्य द्रव्यके साथ मिलाया जाता है वह उस प्रधान द्रव्य-की गुणकी प्रधनतासे उस द्रव्यका संयोग होता है जैसे मैनफल आदि प्रधान द्रव्यों को सुरा आदि अन्य द्रव्योंमें मिला देनेसे वह सुरा आदि द्रव्य भी मैनफल आदिके वामकादि गुणको ग्रहण कर लेते हैं और जैसे-अन्य मनुष्य राजाके अनुगामी होकर सब कार्य करतेहैं उसी प्रकार सुरा आदिकभी मैनफल आदि प्रधान द्रव्यके अनुगामी होकर उनके अनुसारही क्रिया करते हैं । इन प्रधान द्रव्योंके गुणोंको विरुद्ध वीर्य द्रव्य भी विगाड नहीं सकते और समान वीर्य द्रव्य प्रधान द्रव्यके साथमें मिला दिये जांय तो प्रधान द्रव्य औरभी विशेषरूपसे क्रियाके करनेवाले होते हैं ॥ ४४-४६ ॥

विरुद्धवीर्य द्रव्योंके मिलानेका हेतु ।

इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थंप्रतिचासयम् । अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोग-इतिनिश्चितम् ॥ ४७ ॥

जो विरुद्धवीर्य द्रव्य मनके अनुकूल सुन्दरवर्ण, रस, स्पर्श और गंधवाला होताहै मनोभिलषित करनेके लिये उसी विरुद्धवीर्य द्रव्यका वमन, विरेचनादिकोंमें संयोग कियाजाताहै । और जो मनोनुकूल गंध, वर्णादियुक्त न हो तथा रोगविशेषमेंभी किसी प्रकार लाभदायक न हो और उससे वमन विरेचनादि क्रियामेंभी कुछ गुण न पहुंचता हो तो उस विरुद्धवीर्य द्रव्यको प्रधान द्रव्यके योगमें मिलाना नहीं चाहिये । वह इस प्रकार गुणकारी विरुद्धवीर्य द्रव्यका प्रयोग कियाजाता है । जैसे किसी विरेचनद्रव्यमें वातकोपकारक, रूक्षगुण हो तो उसको घृतआदि वातनाशक

स्निग्ध द्रव्यमें मिलाकर देदेनेसे विरेचनक्रियाभी उत्तम होजातीहै और रूक्षता आदि हानिकारक दोषभी नहीं रहता। इस प्रकार प्रधान द्रव्यका विरुद्ध वीर्यद्रव्यसे संयोग कियाजाताहै ॥ ४७ ॥

भावना देनेका गुण।

भूयश्चैषांवलाधानंकार्यंस्वरसभावनैः। सुभावितंह्यल्पमपिद्रव्यंस्याद्बहुकर्मकृत्। स्वरसैस्तुल्यवीर्य्यैर्वातस्माद्द्रव्याणिभावयेत् ॥ ४८ ॥

प्रधानद्रव्यको उसीके स्वरसकी भावना देनेसे वह द्रव्य विशेष बलवान् होजाताहै। इस प्रकार भावना दियेजानेसे अल्प द्रव्यभी विशेष कर्मको करनेवाला होजाताहै। इसलिये द्रव्यके चूर्णको उसीके स्वरससे वा अन्य समानवीर्यद्रव्यसे भावना देनी चाहिये ॥ ४८ ॥

इनके संस्कारादि विषयमें ज्ञातव्य।

अल्पस्यापिमहार्थत्वंप्रभूतस्याल्पकर्मताम्।
कुर्य्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥ ४९ ॥

संयोग, वियोग, काल, संस्कार और युक्तिके बलसे अल्प द्रव्य भी महान् अर्थको करनेवाला और महान् द्रव्यभी अल्प अर्थको करनेवाला होजाताहै ॥ ४९ ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्दृष्टव्यमिहषट्शतम्।
स्वबुद्ध्यैवंसहस्राणिकोटीर्वापिप्रकल्पयेत् ॥ ५० ॥

इसप्रकार इन ६०० वमन, विरेचनके योगोंका निदर्शनमात्र कथन कियाहै बुद्धिमान् वैद्य दोष, काल, द्रव्य, संस्कार युक्तिविशेषसे ऐसी हजारों और करोडों योगोंकी कल्पना कर सकतेहैं ॥ ५० ॥

योगोंके ३ भेद।

बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्यानविद्यते।
तीक्ष्णमध्यमृदूनान्तुतेषांशृणुतलक्षणम् ॥ ५१ ॥

द्रव्योंके विकल्पभेदसे तथा रोगविकल्पसे द्रव्योंके योगोंकी गणना नहीं हो सकती इसलिये इन सब वमन, विरेचनकारक द्रव्योंके तीक्ष्ण, मध्य और मृदु यह ३ विभाग कियेहैं। अब इनके लक्षणोंको श्रवण करो ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णयोगके लक्षण।

सुखंक्षिप्रंमहावेगमसक्तंयत्प्रवर्त्तते। नातिग्लानिकरंपायौहृदयेनच

रुक्करम् ॥ ५२ ॥ अन्नाशयमनुक्षिण्वन्कृत्स्नंदोपंनिरस्यति । विरेचनंनिरूहोवातत्तीक्ष्णंमितिनिर्दिशेत् ॥ ५३ ॥

जिस प्रयोगके करनेसे शीघ्र मलका समुदाय ढीला होकर महावेगके साथ निकलने लगे और उस महावेगके कारण किंचित् ग्लानि,गुदा और हृदयमें किंचित् व्यथा उत्पन्न करे तथा आमाशय आदिकोंको क्षीण करके संपूर्ण दोप निकालडाले । इस प्रकारके विरेचन अथवा निरूहणको तीक्ष्ण प्रयोग कहतेहैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

द्रव्यमें तीक्ष्णताका कारण ।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टंदेशकालगुणान्वितम् ।
ईपन्मात्राधिकैर्युक्तंतुल्यवीर्यैःसुभावितम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्यतीक्ष्णत्वंयातिभेपजम् ॥ ५४ ॥

जो द्रव्य अग्नि, जल और कीडे आदिसे दूपित न हुआहो तथा देश, काल, गुण संपन्न हो और तुल्यवीर्य द्रव्यसे भावित कियागया हो उस द्रव्यका स्नेहन, स्वेदन करनेके अनन्तर अधिकमात्रासे प्रयोग कियाजाय तो वह तीक्ष्ण वेगको धारणकर लेताहै ॥ ८४ ॥

मध्यप्रयोगके लक्षण ।

किञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनंपूर्वोक्तैर्मात्रयातथा ।
स्निग्धस्विन्नस्यवासम्यङ्मध्यंभवतिभेजपम् ॥ ५५ ॥

जो द्रव्य इन ऊपर कहे गुणोंसे किंचित् हीन हो और हीनमात्रासे प्रयोग किया गया हो वह स्निग्ध और स्वेदन कियेहुए रोगीको भली प्रकार प्रयोग किया गया हो तो वह द्रव्य मध्यवेगको धारण करता है ॥ ५५ ॥

हीनयोगके लक्षण ।

मन्दवीर्य्यंविरूक्षस्यहीनमात्रन्तुभेपजम् ।
अतुल्यवीर्य्यैःसंयुक्तंमृदुस्यान्मन्दवेगवत् ॥ ५६ ॥
अकृत्स्नदोपहरणादशुद्धंतद्बलीयसाम् ।
मध्यावरबलानान्तुप्रयोज्योसिद्धिमिच्छता ॥ ५७ ॥

जो द्रव्य मंदवीर्य हो और रूक्ष शरीर रोगीको दियाजाय तथा विरुद्धवीर्य द्रव्योंसे भावना दिया हो वह द्रव्य मृदु और मंदवेगवाला होताहै । मंदवेगवाला द्रव्य अर्थात् हीनयोग उत्तम रीतिसे दोपोंको निकाल नहीं सकता । बल्कि बलवान् मनुष्यके

शरीरमें हीनयोग अशुद्धिको पैदाकर देता है । इस लिये सिद्धिकी इच्छावाले वैद्यको निर्बल रोगियोंको और मध्यवल रोगियोंको यह मंदवेग, मृदु विरेचनका प्रयोग करना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तीनप्रकारकी व्याधि आदि विचार।

तीक्ष्णोमध्योमृदुर्व्याधिःसर्वमध्याल्पलक्षणः ।
तीक्ष्णादीनिवलापेक्षीभेषजान्येप्रयोजयेत् ॥ ५८ ॥

संपूर्ण लक्षणोंवाली व्याधि तीक्ष्ण कही जाती है और मध्यम लक्षणवाली व्याधिको मध्यम कहते हैं । अल्पलक्षणवाली व्याधिको मृदुव्याधि कहतेहैं । इसी प्रकार तीन प्रकारकी व्याधि और बलभेदसे तीन प्रकारके रोगी तथा तीक्ष्णादि भेदसे तीनप्रकारकी औषध विचारकर विधिवत् प्रयोग करना चाहिये ॥ ५८ ॥

वमनमें विशेषकर्तव्य।

देयन्त्वनिर्हृतेपूर्वेपीतेपश्चात्पुनःपुनः। भेषजंवमनार्थायप्रायआपित्तदर्शनात् ॥ ५९ ॥ बलंत्रैविध्यमालक्ष्यदोषाणामातुरस्यच ।
पुनःप्रदद्याद्भैषज्यंसर्वशोवाविवर्जयेत् ॥ ६० ॥

जिस मनुष्यको वमनकारक औषधके पीजानेसे यथोचित दोष न निकले उसको वारवार वमनकारक द्रव्य पिलाते रहना चाहिये । जब पित्त निकलने लगे तब वमन उत्तम होगया ऐसा जानना चाहिये । रोगीके उत्तम, मध्य और हीनबलको विचार तथा इसीप्रकार दोषोंके बलको विचारकर वारवार औषधका प्रयोगकर दोषोंको निकाले । जब दोष निकलजांय अथवा काल आदि विचारले तब शोधक औषधीका सर्वथा प्रयोग बन्द कर देना चाहिये ॥ ५९ ॥ ६० ॥

निर्हृतेवापिजीर्णेवादोषानिर्हरणेबुधः ।
भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतप्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ ६१ ॥

यदि वमनकारक औषध निकलगई हो अथवा पचजाय या वमनका वेग न हो तो बुद्धिमान् वैद्य उत्तम सिद्धिकी इच्छा करताहुआ उस रोगीको फिर वमन करानेके लिये औषधी पिलावे ॥ ६१ ॥

अपक्वंवमनंदोषान्पच्यमानंविरेचनम् ।
निर्हरेद्वमनस्यातःपाकंनप्रतिपालयेत् ॥ ६२ ॥

वमनकारी औषध, परिपाक होनेसे पहिलेही दोषोंको लेकर निकलजाती है और विरेचनकारक औषधी पाचन होकर दोषोंको निकालती है । इसलिये वमनकारक

औषधीके परिपाकके समयकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये अर्थात् औषधी पीनेके थोडी देर बादतक वमन हो तो उस वमनके लानेका यत्न करना चाहिये ॥ ६२ ॥

विरेचनमें कर्तव्य ।

पीतेप्रस्रंसनेदोषान्ननिर्हृत्यजरांगते ।
वमितेचौषधेधीरःपाययेदातुरंपुनः ॥ ६३ ॥

विरेचन औषधी पीनेके बादमें जब वह औषध पाचन होजाय तो उस औषधकी मददके लिये अन्य विरेचनकर्त्ता औषधी देवे । परन्तु विरेचन औषधी खिलानेके बादही झटपट और विरेचनकारक औषधी नहीं देना चाहिये । सौंफका अर्क आदि गर्मकरके अथवा अन्य उपयोगी द्रव्य देते रहना चाहिये । यदि विरेचनकी औषधी वमन होकर निकलजाय तो उसको और विरेचनकारक औषधी पिलाना चाहिये । यदि जीर्ण होजाय तो विरेचन करानेवाली अन्य मददगार औषधी पिलाकर विरेचन करावे ॥ ६३ ॥

दीप्ताग्निंवहुदोषश्चदृढस्नेहगुणंनरम् ।
दुःशोध्यंतदहर्भुक्तंश्वोभूयःपाययेत्पुनः ॥ ६४ ॥

जिस मनुष्यकी अग्नि अत्यन्त बलवान् हो अथवा बहुदोषयुक्त हो वा अत्यन्त स्नेहसे स्निग्धकाय हो उसका प्रायः साधारण औषधीके प्रयोगसे शोधन नहीं हो सकता । क्योंकि अग्नि, दीप्त होनेसे औषध पचजाती है । बहुदोष होनेसे अल्पबल औषध क्रिया नहीं करसकती । स्निग्ध शरीरमें रूक्ष औषध अपना काम नहीं कर सकती ऐसे समय उस रोगीको उसदिन और शोधन औषध न देकर भोजन करावे । फिर दूसरे दिन शोधन औषध पिलाकर शोधन कराना चाहिये ॥ ६४ ॥

दुर्बलोवहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः ।
विरिच्यतेरसैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥ ६५ ॥

जो दुर्वल रोगी बहुदोषयुक्त हो उसके दोष यदि विरेचनके दिन न निकलसकें और उसको विरेचनकी औषधी पचजाय और दोषोंके पाचन होनेके अनन्तर मल निकलने लगे तो उस रोगीको दूसरे दिन विरेचनकारक औषधी न पिलाकर विरेचनका रस, यूष, तथा आहारद्रव्योंका भोजन कराकर मल निकालना चाहिये ॥ ६५ ॥

वमनैश्चविरेकैश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः ॥
भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमंनयेत् ॥ ६६ ॥

जो रोगी वमन विरेचन होजाने परभी यथोचित शुद्ध न हो तो उसके शेष दोषोंको सारक द्रव्योंसे संस्कार किये भोजन और पानकादि पदार्थोंका सेवन कराके निकाल डाले॥ ६६ ॥

दुर्वलंशोधितंपूर्वमल्पदोषश्चमानवम् । अपरिज्ञातकोष्ठश्चपाययेदौ-षधंमृदु ॥६७॥ श्रेयोमृदूसकृत्पीतमल्पबाधंनिरत्ययम् । नचाति-तीक्ष्णंयत्क्षिप्रंजनयेत्प्राणसंशयम् ॥ ६८ ॥

जो मनुष्य दुर्वल हो अथवा अल्प दोषयुक्त हो वा उसके कोष्ठकी मृदुता क्रूरताका परिचय न हो उसको प्रथम मृदुविरेचन देनाही श्रेष्ठ होताहै । क्योंकि मृदुद्रव्य-वार २ देनेसे भी कुछ हानि नहीं होती । परन्तु अतितीक्ष्ण योगका प्रयोग करना अच्छा नहीं तीक्ष्ण योगसे ऐसे मनुष्योंके प्राणतक नाश होनेका भयहै ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

दुर्वलोऽपिमहादोषोविरेच्योवहुशोऽल्पशः ।
मृदुभिर्भेषजैर्दोषाहन्युर्ह्येनमनिर्हृताः ॥ ६९ ॥

दुर्वल रोगीके शरीरमें यदि दोष बलवान् हों तो उसको मृदु थोडी २ औषध कईवार पिलाकर दोषोंको निकाल देना चाहिये । क्योंकि निर्वल रोगीको एकवार पिलाई हुई वलवान् औषध यदि पचजाय तो उसके प्राणोंको नष्ट करदेतीहै ॥ ६९ ॥

यस्योर्द्ध्वंकफसंसृष्टंपीतंयात्यनुलोमिकम् ।
वमितंकवलैःशुद्धंलङ्घितंपाययेत्तुतम् ॥ ७० ॥

जिस रोगीको पिलाई हुई वमनकारक औषध ऊपरके भागसे कफावृत होकर उर्द्धगतिको प्राप्त न हो और अनुलोमन होकर अधोमार्गसे निकलजाय उसको कवल धारण करा कुल्ले करावे । जब मुख शुद्ध होजाय तो लंघन कराके कफसे क्षीण होनेपर फिर वमन करावे ॥ ७० ॥

विवन्धेऽल्पेचिराद्दोषैस्त्वरयुष्णंपिवेज्जलम् ।
तेनाध्मानंसतृट्छर्दिर्विवन्धश्चैवशाम्यति ॥ ७१ ॥

यदि वमन, विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर दोष थोडे २ और विलंबसे निकले तो वारवार गरमजल पिलावे । जिससे अफारा, प्यास, वमन और दोषोंका विबंध खुलजाय । अथवा सौंफ, और गुलकन्द ३ तोला खिलाकर ऊपरसे वारवार सौंफ और गुलावका अर्क गरमकर पिलाता जाय ॥ ७१ ॥

भेषजंदोषरुद्धश्चेन्नोर्द्ध्वंनाधःप्रवर्त्तते ।
सोद्गारंसाङ्गशूलंवास्वेदंतत्रावचारयेत् ॥ ७२ ॥

यदि शोधन द्रव्य पीयाजानेके अनन्तर दोषोंद्वारा वह ऐसा रुकजाय कि, न तो वमन द्वाराही निकले और न विरेचन हो तथा डकारें आनेलगें और अंगोंमें शूल हो तो उसको स्वेदन कर नम्र करनेसे दोषोंका अवरोध खुलजाता है ॥ ७२ ॥

सुविरिक्तस्तुसोद्गारमाश्वेवौषधमुल्लिखेत् ।
अतिप्रवर्त्तनंजीर्णेसुशीतैःस्तम्भयेद्भिषक् ॥ ७३ ॥

यदि भलीमकार विरेचन हो लेनेके अनन्तर भी रोगीको डकारें आतीरहें और उन डकारोंमें उस औषधीकी गंध आवे तो उसके आमाशयमें ठहरीहुई उस औषधको वमन द्वारा निकाल देवे । यदि विरेचनका अत्यंत योग होनेलगे अर्थात् दस्तोंकी अत्यंत प्रवृत्ति होजाय तो उसको शीतल क्रिया द्वारा शान्त करना चाहिये ॥ ७३ ॥

कदाचिच्छ्लेष्मणारुद्धंतिष्ठत्युरसिभेषजम् ।
क्षीणेश्लेष्मणिसायाह्नेरात्रौवातत्प्रवर्त्तते ॥ ७४ ॥

कभी कभी ऐसा भी होताहै कि कफद्वारा मार्ग रुककर शोधन औषध छातीमें ही रुकी रहती है । जब सायंकाल कफ क्षीण होजाता है अथवा रात्रिको विरेचन द्वारा निकल जाताहै अर्थात् कफद्वारा रुकनेसे शोधन द्रव्यका वेग रुका रहताहै । फिर रातको विरेचन होने लगता है ॥ ७४ ॥

रूक्षानाहारयोर्जीर्णेविष्टभ्योर्द्ध्वंगतेऽपिवा ।
वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्नेहलवणंपिबेत् ॥ ७५ ॥

यदि रूक्षताके कारण अथवा उपवासके कारण औषधी पचजाय । अथवा विष्टम्भ होकर वायुसे ऊपरको चलीआवे तो उस रोगीको वही औषध चिकनाई और नमक मिलाकर फिर पिलावे ॥ ७५ ॥

तृण्मोहभ्रममूर्च्छाद्याःस्युश्चेज्जीर्य्यतिभेषजे ।
पित्तघ्नंस्वादुशीतञ्चभेषजंतत्रशस्यते ॥ ७६ ॥

शोधन औषधके जीर्ण होजानेपर यदि प्यास, बेहोशी, भ्रम और मूर्च्छा आदि उत्पन्न होजाय अथवा विरेचन होलेनेके अनन्तर प्यास, मोह, मूर्च्छादि उपद्रव होनेलगें तो उनको मधुर, शीतल और पित्तनाशक द्रव्योंद्वारा शान्त करे ॥ ७६ ॥

लालाहृल्लासविष्टम्भलोमहर्षाःकफावृते ।
भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णंकट्वादिकफनुल्लिखम् ॥ ७७ ॥

यदि शोधन द्रव्य अर्थात् वमन या विरेचनकारक द्रव्य कफसे आवृत होकर

रोगीको लार गिरना, हृल्लास, विष्टम्भ और रोमांच होनेलगे तो उसको उष्ण, तीक्ष्ण और चरपरे तथा कफनाशक औषध प्रयोग करना हितकारक है ॥ ७७ ॥

लंघनयोग्य मनुष्य ।

सुस्निग्धंक्रूरकोष्ठश्चलङ्घयेदविरेचितम् । तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासङ्घश्चैवोपशाम्यति ॥ ७८ ॥

जो रोगी अत्यंत स्निग्ध होगया हो और उसका कोठा अत्यंत कठोर हो तो उस रोगीको विरेचन करानेसे पहिले लंघन कराने चाहिये । लंघन करानेसे स्नेहजनित कफका संघात (विबंध) निवृत्त होजाताहै (तदनन्तर विरेचन द्रव्यका प्रयोग करना हितकारक है) ॥ ७८ ॥

वस्तियोग्य रोगी ।

रूक्षवह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशूलिनाम् । दीप्ताग्नीनाञ्चभैषज्यमविरिच्यैवजीर्य्यति ॥ ७९ ॥ तेभ्योवस्तिंपुरादत्त्वापश्चाद्द्याद्विरेचनम् । वस्तिप्रवर्त्तितंदोपंहरेच्छीघ्रंविरेचनम् ॥ ८० ॥

जिन मनुष्योंका रूक्षता और अधिक वायुके कारण कोष्ठ अत्यंत क्रूर होता है अथवा अत्यंत व्यायाम, परिश्रम आदिके कारण दोष क्षीण होकर जठराग्नि तीक्ष्ण होतीहै वा जिनके वातजनित शूल उपस्थित हुआ हो ऐसे मनुष्योंको दी हुई विरेचक औषधी दस्त होनेके विनाही पचजाती है इसलिये ऐसे रोगियोंके पहिले वस्तिकर्म करके दोषोंको शान्त करे । जब दोष अनुलोमन होकर निकलनेलगे फिर विरेचन द्रव्य देवे । वस्तिद्वारा चलेहुए दोष विरेचनसे शीघ्र निकल जातेहैं ॥ ७९ ॥ ८० ॥

शोधनके अयोग्य मनुष्य ।

रूक्षाशनाःकर्म्मनित्यायेनरादीप्तपावकाः । तेषांदोषाःक्षयंयान्ति कर्म्मवातातपाग्निभिः ॥ ८१ ॥ विरुद्धाध्यशनाजीर्णान्दोपानपिजयन्तिते । स्नेह्यास्तेमारुताद्रक्ष्यानाव्याधौतान्विशोधयेत् ॥ ८२ ॥

जो मनुष्य रूक्ष पदार्थोंका सेवन करते हैं तथा नित्य प्रति धूप, परिश्रम आदि सहन करते हैं उनकी इन कारणोंसे जठराग्नि अत्यंत दीप्त होती है । और वायु, धूप, अग्नि और अत्यंत परिश्रम आदि करनेसे दोष क्षीण होजाते हैं । तथा विरुद्ध भोजन, भोजनपर भोजन अजीर्णमें भोजनसे उत्पन्न हुए दोष भी शान्त होजाते हैं । ऐसे मनुष्योंको स्नेहन करना चाहिये । और उनके शरीरमें वायुका कोप न हो इस प्रकार रक्षा करना चाहिये । ऐसे मनुष्योंको वातका कोप और रूक्षाके सिवाय अन्य कोई

व्याधी प्रायः नहीं होसकती । इसलिये इनको वमन विरेचन द्वारा शोधन करना उचित नहीं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य- अत्यंत स्निग्ध हैं उनको स्नेह विरेचन कदापि देना नहीं चाहिये । स्नेहसे उत्क्लिष्ट शरीरवालोंको रूक्ष विरेचन देना चाहिए ॥ ८३ ॥

एवंज्ञात्वाविधिंधीरोदेशकालप्रमाणवित् ।
विरेचनंविरेच्येभ्यःप्रयच्छन्नापराध्यति ॥ ८४ ॥

इस प्रकार देश, काल प्रमाण और विधिको जानकर विरेचनयोग्य मनुष्योंको विरेचन करानेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता । अन्यथा अर्थात् देश कालादि विना विचारे शोधन करानेवाला वैद्य अपराधी होताहै ॥ ८४ ॥

विभ्रंशोविषवद्यस्यसम्यग्योगोयथामृतम् ।
कालेप्ववश्यंपेयश्चतस्माद्यत्नात्प्रयोजयेत् ॥ ८५ ॥

जिस शोधन योगका अयोग्य रीतिपर प्रयोग किया जाता है वह विषके समान हानिकारक होता है और भली प्रकार विधियुक्त प्रयोग करनेसे अमृतके समान गुणकारी होता है । इसलिये उचित रीतिपर समय आदिका विचार रखते हुए देश, काल आदि तथा दोष बलादि अनेक विधि तर्कना कर युक्तिपूर्वक औषध प्रयोग करना चाहिये ॥ ८५ ॥

द्रव्यप्रमाणन्तुयदुक्तमस्मिन्मध्येषुतत्कोष्ठवयोवलेषु । तन्मूलमालम्ब्यभवेद्विकल्प्यंतेषांविकल्पोभ्यधिकोनभावः ॥ ८६ ॥

वमन, विरेचन द्रव्योंमें जिस द्रव्यका जिस प्रकार प्रमाण कहा है उसको कोष्ठ, अवस्था और बल आदि विचारकर उनके अनुसार मात्राकी कल्पना करना चाहिये, अर्थात् कोष्ठ, अवस्था, बल आदि विचारकर औषधिकी मात्रमें न्यूनता और अधिकता करना चाहिए ॥ ८६ ॥

मानपरिभाषा ।

षड्वंश्यस्तुमरीचिःस्यात्षण्मरीच्यस्तुसर्षपः । अष्टौतेसर्षपारक्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्वयम् ॥ ८७ ॥ धान्यमाषोभवेदेकोधान्यमाषद्वयंयवः । अण्डिकास्तेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमाषकः ॥ ८८ ॥

हेमश्चधानकश्चोक्तोभवेच्छाणन्तुतेत्रयः । शाणौद्वौद्रङ्क्षणंविद्यात्कोलंबदरमेवच ॥ ८९ ॥ विद्याद्वौद्रंक्षणौकर्षंसुवर्णश्चाक्षमेवच । विडालपदकंतद्वपिचुंपाणितलंतथा ॥ ९० ॥ तिन्दुकश्चविजानीयात्कवलग्रहमेवच । द्वेसुवर्णेपलार्द्धंस्याच्छुक्तिरष्टमिका तथा ॥ ९१ ॥ द्वेपलार्द्धेपलंमुष्टिः प्रकुञ्चोऽथचतुर्थिका । विल्वं षोडशिकश्चाम्रंद्वेपलेप्रसृतंविदुः ॥ ९२ ॥ अष्टमानन्तुविज्ञेयंकुडवौद्वौतुमानिका । पलंचतुर्गुणंविद्यादञ्जलिंकुडवंतथा ॥ ९३ ॥ चत्वारःकुडवाःप्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम्।पात्रंतदेवविज्ञेयंकंसःप्रस्थाष्टकंतथा ॥ ९४ ॥ कंसश्चतुर्गुणोद्रोणश्चार्म्मणंलल्वनश्चतत् । सएवंकलशःख्यातोघटमुन्मानमेवच ॥ ९५ ॥ घटन्तुद्विगुणंशूर्पोविज्ञेयःकुम्भएवच । गोर्णींशूर्पद्वयंविद्यात्खारींभारींतथैवच ॥ ९६ ॥ द्वात्रिंशच्चैवजानीयाद्वाहंशूर्पाणिबुद्धिमान । तुलांशतपलंविद्यात्परिमाणविशारदः ॥ ९७ ॥

झरोखे द्वारा मकानके अन्दर सूर्यकी किरण पडनेसे जो अति सूक्ष्म उडते हुए कणसे दिखाई पडते हैं उनको वंशी कहते हैं उन ६ वंसियोंकी १ मरीची होती है। ६ मरीचियोंकी १ सरसों। ८ सरसोंकी १ रत्ती अथवा तण्डुल होता है। २ तण्डुलोंका १ धन्यमाप अथवा उडद होताहै। २ धन्यमार्पोका१ यव। ४यवोंका१अण्डका। ४ अण्डकोंका १ मापक (मासा) होताहै इसको हेम और धानक भी कहते हैं ३ धानकोंका १ साण, (टंक) होताहै। २ साणोंका १ द्रंक्षण होताहै,इसको कोल और बदर (आधुनिक व्यवहारमें ६ मासा) होताहै। २ द्रंक्षणोंका १ कर्ष (१ तोला) होताहै, इसको अक्ष विडालपदक सुवर्ण, पिचू, पाणीतल, तिन्दुक और कवलग्रह भी कहते हैं। २ कर्षोंका १ पलार्द्ध होता है इसको शुक्ति और अष्टमिका भी कहतेहैं। २ पलार्द्धका १ पल होता है, इसको मुष्टि, प्रकुंच, चतुर्थिका, विल्व, षोडशिका और आम्र भी कहते हैं। २ पलका १ प्रसृत होता है। २ प्रसृतका १ कुडव होता है, इसको अष्टमान भी कहते हैं। २ कुडवकी १ मानिका होतीहै। अथवा ऐसा समझिये कि ४ पलकी १ अंजली होतीहै इसको कुडव कहते हैं। ४ कुडवका १ प्रस्थ होता है। ४ प्रस्थका १ आढक होताहै इसीको पात्र, भाजन और कंस भी कहते हैं। दो कंसोंका २ प्रस्थाष्टक होताहै। ४ कंसोंका १ द्रोण होताहै इसको अर्मण, लल्वण, कलश, घट

और उन्मान भी कहते हैं । दो घटोंका १ सूर्प होताहै, इसको कुम्भ भी कहते हैं । दो सूर्पोंकी १ द्रोणी (गोणी) होतीहै, इसको खारी और भारी भी कहते हैं ।३२ सूर्पका १ वाह होताहै ।-और १०० पलकी १ तुला होती है । बुद्धिमानोंको इस प्रकार परिमाण जानना चाहिये ॥ ८७-९७ ॥

अनेकविध विचार ।

शुष्कद्रव्येष्विदंमानमेवमादिप्रकीर्त्तितम्। द्विगुणंतद्द्रवेष्विष्टंतथा-सद्योद्धृतेषुच ॥ ९८ ॥ यद्धिमानंतुलाप्रोक्तापलंवातत्प्रयोजयेत् । अनुक्तेपरिमाणेतुतुल्यंमानंप्रकीर्त्तितम् ॥ ९९ ॥

यह उपरोक्त संपूर्ण प्रमाण सूखे द्रव्योंकाही कहा है । तथा गीले और तुरन्तके लाये हुए द्रव्योंका और पतले.द्रव्योंका प्रयोगमें दो गुना प्रमाण जानना । अर्थात हरएक योगमें सब द्रव्य जिस प्रमाणसे डालेजांय उसमें यदि कोई द्रव्य गीला अथवा तत्काल उखाडकर डालना हो तो दुगुना लेना चाहिये । परन्तु तुला और पल यह सब जगह एकसाही प्रयोग करना चाहिये । अर्थात् दुगुना नहीं लेना । जिस योगमें औषधियोंका तोल न कहा हो उसमें सब बराबर लेना चाहिये ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

द्रवकार्य्येऽपिचानुक्तेसर्वत्रसलिलंस्मृतम् ।
यतश्चपादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चसः ॥ १०० ॥

जिस जगह पतले द्रव्योंका कथन न किया हो उस जगह पतला करनेके लिये अथवा पीनेके लिये वा अन्य द्रव कार्यके लिये जल लेना चाहिये । जिस स्थानमें पाद कहा हो उस जगह पादशब्दसे चौथाभाग लेना चाहिये ॥ १०० ॥

जलस्नेहौषधानान्तुप्रमाणंयत्रनेरितम् ।
तत्रस्यादौषधात्स्नेहःस्नेहात्तोयंचतुर्गुणम् ॥ १०१ ॥

जिस जगह जल, स्नेह और औषधियोंका प्रमाण न कथन किया हो उसस्थानमें औषधियोंके कल्कसे ४ गुना स्नेह और स्नेहसे ४ गुना जल लेना चाहिये ॥ १०१ ॥

३ प्रकारके स्नेहपाक ।

स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयोमृदुर्मध्यःखरस्तथा । तुल्येकल्केननिर्य्यासेभेषजानांमृदुःस्मृतः ॥१०२॥ शम्पाकइवनिर्य्यासेमध्योदर्वीविमुञ्चति । शीर्य्यमाणेतुनिर्यासेवर्त्तमानेखरस्तथा ॥ १०३ ॥

स्नेहपाक ३ प्रकारका कहा है । जैसे मृदु, मध्य और खर । जहां तैलादि स्नेह

सिद्ध किया जानेपर नीचेकी गोंद पिच्छलसी नर्म रहजाय और कडछीआदिसे न लगे उसको मृदु स्नेहपाक कहते हैं। अथवा ऐसे कहिये कि तैलादि सिद्ध करनेपर गोंद कल्कके समान पतली रहजाय उसको मृदुस्नेहपाक कहते हैं। और जो अमलतासके गुद्देके समान लेईसी बनकर कडछीसे लगकर न छूटे इस प्रकार स्नेहकी गोंद होनेपर उसको स्नेहका मध्यपाक कहते हैं। तथा स्नेहपाकमें कल्कद्रव्यका सब गीलापन जलकर वह द्रव्य कडछीसे बालूके समान अलग गिरने लगे उसको खर पाक कहते हैं ॥ १०२ ॥ १०३ ॥

उनके प्रयोग।

खरोऽभ्यङ्गेस्मृतःपाकोमृदुर्नस्तःक्रियासुच ।
मध्यपाकन्तुपानार्थेवस्तौचविनियोजयेत् ॥ १०४ ॥

यह जो तीन प्रकारका स्नेहपाक कहा है इनमे खरपाक मालिशमें प्रयोग करना चाहिये। मृदुपाक नस्य क्रियामें प्रयोग किया जाताहै और मध्यपाक पीने तथा वस्तिकर्ममें प्रयोग करना चाहिये ॥ १०४ ॥

मानञ्चद्विविधंप्राहुःकालिङ्गंमागधंतथा ।
कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमेवंमानविदोविदुः ॥ १०५ ॥

मानविवेक (तोल) के जाननेवालोंने कालिंगमान और मागधमान यह दो प्रकारके मान कहे हैं। इन दोनों मानोंमें मागधमान श्रेष्ठ है। (यहांपर मागधमानही कहा है) ॥ १०५ ॥

कल्पका उपसंहार।

तत्रश्लोकौ।

कल्पार्थःशोधनंसंज्ञापृथग्घेतुःप्रवर्त्तते। देशादीनांफलादीनांगुणा योगाःशतानिषट् ॥ १०६ ॥ विकल्पहेतुर्नामानितीक्ष्णमध्याल्पलक्षणम्। विधिश्चावस्थिकोमानंस्नेहपाकश्चदर्शितः ॥ १०७ ॥

इतिश्रीचर०कल्पस्थानेसप्तलाशंखिनीकल्पो नामैकादशोऽध्यायः ११॥

यहां कल्पके उपसंहारमें दो श्लोक हैं कि इस कल्पस्थानमें कल्पका विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधनके हीन और अधिक प्रवृत्तिके कारण तथा देशोंके गुण और मैनफल आदि द्रव्योंके गुण और ६०० प्रकारके शोधनयोग, उनके विकल्प, हेतु, नाम तथा तीक्ष्ण, मध्य और अल्पके लक्षण, अनेक प्रकारकी अवस्था विशेषसे क्रिया, मान, परिभाषा और स्नेहपाक इन सबका वर्णन किया है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

दोहा ।

वमन विरेचन कल्पना, औषधभेद प्रकार ॥
योग ज्ञान अरु मानविध, द्वादश, कल्पमझार ॥ १ ॥
देश काल रुज हेतु बल, शोधन त्रिविध प्रयोग ॥
विधिवत् जानहिं जे भिषक, हरहिं जगत्के रोग ॥ २ ॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहितायां कल्पस्थाने पटियालाराज्यान्तर्गतटकसालनिवास्यायुर्वेदो-
द्धारकवैद्यपञ्चानन पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकायां दन्ती
द्रवन्तीकल्पवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति कल्पस्थानं समाप्तम् ।

सिद्धिस्थानम्।

प्रथमोऽध्यायः।

अथातः कल्पनासिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम कल्पना सिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे.

काकल्पनापश्चसुकर्मसूक्ताक्रमश्चकः किंश्चकृताकृतेषु। लिङ्गंतथैवा-तिकृतेपुसंख्याकाकिंगुणाःकेपुचकाचवस्तिः॥ १॥ किंवर्जनीयंप्र-तिकर्मकालेकृतेकियान्वापरिहारकालः। प्रणीयमानश्चनयातिव-स्तिःकेनैतिशीघ्रंसुचिराच्चकेन। साध्यागदाःस्वैःशमनैश्चकेचित्क-स्मात्प्रयुक्तैर्नशमंव्रजन्ति॥ २॥

भगवान् आत्रेयजीसे अग्निवेश पूछने लगे कि हे भगवन्! १ स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, नस्य और वस्ति इन पंचकर्मोंकी कल्पना अर्थात् पंचकर्मोंकी क्रिया क्या है। २ पंचकर्मोंमें किस प्रकार क्या करना चाहिये। ३ इन पंचकर्मोंके भले प्रकार होजाने और मिथ्यायोगके क्या लक्षण हैं। ४ इनकी संख्या क्या है। ५ पंचकर्मोंमें किसके क्या गुण हैं। ६ वस्ति क्या है। ७ अतियोगादिकोंमें चिकित्साके समय क्या क्या वस्तुयें वर्जनीय हैं। ८ पंचकर्मद्वारा शुद्ध शरीर होने-पर स्वाभाविक आहारविहारका कितने रोजतक त्याग करना चाहिये। ९ वस्ति किस कारण प्रवेश नहीं कर सकती। १० की हुई वस्ति किस कारणसे शीघ्र निकलजातीहै। ११ वस्तिके विलम्बमें प्रत्यागमन होनेका कारण क्या है। १२ कोई २ साध्यरोग भी अपने शमनकरनेवाली औषधियोंके प्रयोगसे क्यों शांत नहीं होते?॥ १॥ २॥

प्रचोदितःशिष्यवरेणसम्यगित्यग्निवेशेनभिषग्वरिष्ठः पुनर्वसुस्त-न्त्रविदाहतस्मैसर्वप्रजानांहितकाम्ययेदम्॥ ३॥

इस प्रकार शिष्यश्रेष्ठ अग्निवेशके प्रश्न करनेपर वैद्योंमें श्रेष्ठ, आयुर्वेदतंत्रके जाननेवाले पुनर्वसुजीने प्रजाके हितके लिये इस प्रकार कहना आरंभ किया॥ ३॥

स्नेहनकी अवधि।

त्र्यहावरंसप्तदिनंपरन्तुस्निग्धोनरःस्वेदयितव्यइष्टः। नातःपरंस्नेह-नमादिशन्तिसात्म्यीभवेत्सप्तदिनात्परन्तु॥ ४॥

मृदुकोष्ठवाले मनुष्योंको ३ दिन स्नेहपान करावे। मध्यकोष्ठवालेको ५ दिन और क्रूर कोष्ठवालेको ७ दिन स्नेहपान कराना चाहिये। ७ दिनके उपरांत शास्त्रके ज्ञाता स्नेहपान करानेको अच्छा नहीं मानते। क्योंकि ७ दिनके उपरांत स्नेह सात्म्य होकर साधारण आहारके समान होजाताहै । इसलिये ३ दिनसे कम और ७ दिनसे अधिक स्नेहपान करानेकी विधि नहीं है । स्नेहपान करानेके अनन्तर स्वेदन कराना चाहिये । (स्नेहन और स्वेदनके क्रमको सूत्रस्थानमें कह आये हैं) ॥ ४ ॥

स्नेहनस्वेदनके गुण।

स्नेहोऽनिलंहन्तिमृदुंकरोतिदेहंमलानांविनिहन्तिसङ्गम् । स्निध-
स्यसूक्ष्मेष्वयनेपुलीनंस्वेदस्तुदोषंनयतिद्रवत्वम् ॥ ५ ॥

स्नेहन वायुको नष्ट करताहै, देहको नर्म करताहै और मलकी रुकावटको खोल देता है । स्नेहनके अनन्तर स्वेदन करनेसे सूक्ष्म छिद्रोंमें लीनहुए दोष पिघलकर पतले होकर निकल जाते हैं ॥ ५ ॥

शोधनके पूर्व सेवनीय द्रव्य।

ग्राम्यौदकानूपरसैःसमांसैरुत्क्लेशनीयःपयसाचवम्यः ।
रसैस्तथाजाङ्गलजैःसयूपैःस्निग्धःकफावृद्धिकरैर्विरेच्यः ॥ ६ ॥

वमन करानेसे पहिले मनुष्यको ग्राम्य, जलज और अनूपसंचारी जीवोंका मांस-रस तथा दूध अधिक २ मात्रासे पिलाकर उसके कफको उत्क्लेशित (वमनाभिमुख) करलेना चाहिये । इसी प्रकार जिस मनुष्यको विरेचन देना हो उसको पहिले जंगली जीवोंका मांसरस तथा यूप जो कफके बढानेवाले न हों उनके द्वारा स्निग्धहुए मनुष्यके दोषोंको शिथिल करलेना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लेष्मोत्तरश्छर्दयतिह्यदुःखंविरिच्यतेमन्दकफस्तुसम्यक् ।
अधःकफेऽल्पेवमनंहिगच्छेद्विरेचनंवृद्धकफेतथोर्द्धम् ॥ ७ ॥

इस प्रकार कफकी अधिकता होनेपर वमन सुखपूर्वक होजाताहै और कफके मंद होनेसे विरेचन सुखपूर्वक होजाताहै । यदि मनुष्यके शरीरमें कफकी अल्पता हो तो पीयाहुआ वमन द्रव्य भी अधोमार्गसे (दस्तद्वारा) निकल जाताहै । और अधिक कफवालेका विरेचनकर्त्ता द्रव्यभी ऊर्द्धमार्गसे (वमनद्वारा) निकलजाता है ॥ ७ ॥

स्निग्धायदेयंवमनंयथोक्तंवान्तस्यपेयादिरनुक्रमश्च ।
स्निग्धस्यसुस्विन्नतनोर्यथावद्विरेचनंयोग्यतमंप्रयोज्यम् ॥ ८ ॥

स्नेहद्वारा स्निग्धहुए रोगीको यथोक्तविधिसे वमन करावे और वमन होनेके अनन्तर पेयादि क्रमका पालन करे। तथा विरेचन करानेके लिये भी रोगीको पहिले विधिवत् स्नेहन और स्वेदन करके फिर उचित रीतिपर विरेचन कराना चाहिये॥८॥

शोधनान्तमें सेवनीय द्रव्य।

पेयांविलेपीमकृतंकृतश्चयूषंरसंत्रिर्द्विरथैकशश्च । क्रमेणसेवेतविशुद्धकायःप्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ ९ ॥ यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैःसन्धुक्ष्यमाणोभवतिक्रमेण । महान्स्थिरःसर्वसहस्तथैव शुद्धस्यपेयादिभिरन्तरग्निः ॥ १० ॥

शोधन प्रधान, मध्य और अधम इन तीन प्रकारका होताहै। इन तीनोंही प्रकारके शोधनोंमें किसी प्रकारके शोधनसे शुद्धहुआ मनुष्य पहिले पेया फिर क्रमसे विलेपी आदि संस्कार करके अथवा विनाँही संस्कारकिये यूष और मांसरस थोडा२ एक, दो अथवा तीनवार करके पीवे। जैसे बहुत सूक्ष्म अग्निमें थोडासा घास और गोबरका चूर्ण आदि धीरे धीरे डालकर जैसे २ अग्नि प्रज्वलित होतीजाती है। वैसे २ उसमें लकडी आदि लगाते जाते हैं उससे वह अग्नि महान् होजाती है। उसी प्रकार वमन विरेचनसे शुद्ध होनेकें अनन्तर प्रथम रूक्षयूष, फिर पेया, फिर विलेपी, फिर पतलासा भात इस प्रकार क्रमसे देतेहुए शुद्धकाय मनुष्यकी जठराग्नि भी धीरे २ स्थिर बलवान् और सब प्रकारके आहारको सहन करनेवाली होजाती है ॥ ९ ॥ १० ॥

शोधनके हीनमध्य और उत्तम वेग।

जघन्यमध्यप्रवरेषुवेगाश्चत्वारइष्टावमनेषडष्टौ ।
दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ॥ ११ ॥

वमनके उत्तम, मध्यम और निकृष्ट इन भेदोंसे तीन प्रकारके वेग होते हैं। उनमें वमनके ८ वेग होना अर्थात् वमनकारक औषधके पीनेसे भली प्रकार आठ वमन होजाना उत्तम वेग कहाता है। और ६ वमनका होना मध्यम वेग होताहै तथा ४ वमनका होना निकृष्ट वेग कहा जाताहै। इसी प्रकार विरेचक द्रव्यके पीनेसे ३० दस्तोंका होना विरेचनका उत्तम वेग होताहै। २० वेगका होना मध्यम और दशका होना निकृष्ट गिना जाताहै। वमन द्वारा वान्तद्रव्य (छर्दहुआ मल) तैलमें ६४ तोला हो तो उत्तम वेग, ४८ हो तो मध्यम वेग और ३२ तोला हो तो कनिष्ठ वेग जानना। इसी प्रकार विरेचनमें ४ प्रस्थ मल निकलना उत्तम परिमाण कहा जाता है। तीन प्रस्थ मध्यम और २ प्रस्थ निकृष्ट प्रमाण होता है ॥ ११ ॥

उत्तम शोधनकी परीक्षा ।

पित्तान्तमिष्टंवमनंतथोर्द्धमधःकफान्तञ्चविरेकमाहुः ।
द्वित्रीन्सविट्कानपनीयवेगान्मेयंविरकेवमनेतुपीतम् ॥ १२ ॥

जबतक वमनमें पित्त न निकले तबतक वमन ठीक नहीं हुआ ऐसा जानना। इसी प्रकार विरेचनके अन्तमें कफ (आंव) न निकले तो विरेचन ठीक नहीं हुआ ऐसा जानना । जब वमनमें पित्त निकल लेवे तो वमन ठीक होगया जानना और विरेचनमें आंव निकलनेसे विरेचन ठीक हुआ जानना । विरेचनमें विरेचकद्रव्य पीनेके अनन्तर जो एक दो बार मल आता है उसको विरेचनके योगोंकी संख्यामें गणना नहीं करना । इसी प्रकार वमनमें पीहुई औषधि जो पहिलेही वेगमें निकलती है वह वमनके वेगोंमें नहीं गणना की जाती ॥ १२ ॥

उत्तम वान्तके लक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्चयस्यैतिसम्यग्वमितःसइष्टः ।
हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौतथालघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥ १३ ॥

जिस वमनमें प्रथम कफ निकले और फिर पित्त तदनन्तर वायु निकले अर्थात् कफ और पित्त निकलकर फिर शुद्ध डकार आने लगे तो वमनको शुद्ध हुआ जानना वमनसे उत्तम रीतिपर शुद्ध हुए मनुष्यके यह लक्षण होते हैं । जैसे-हृदय, पार्श्व, मस्तक, इन्द्रियें और देहके संपूर्ण छिद्र शुद्ध और निर्मल होजांय तथा शरीरमें स्वच्छता और हलकापन प्रतीत हो मन और इन्द्रिय आदि सब प्रसन्न हों यह उत्तम वमन होजानेके लक्षण हैं ॥ १३ ॥

वमनके अयोग और अतियोगके लक्षण ।

दुश्छर्दितेस्फोटककोठकण्डूहृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ।
तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्राबलातिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥१४॥

वमनकारक द्रव्यके पीनेसे यदि ठीक वमन न हो तो शरीरमें फोडे, चकत्ते, खुजली, हृदय और इन्द्रियोंकी ग्लानि तथा शरीरका भारीपन यह लक्षण होते हैं । और वमनका अतियोग होनेसे अर्थात् अत्यंत अधिक वमन होजानेसे प्यास, मोह, मूर्च्छा, वायुका कोप, निद्रानाश और बलकी हानि यह लक्षण होतेहैं ॥ १४ ॥

सम्यक्विरिक्तके लक्षण ।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादोलघुत्वमूर्जोग्निरनामयत्वम् ।
प्राप्तिश्चविट्पित्तकफानिलानांसम्यग्विरिक्तस्यभवेत्क्रमेण ॥१५॥

उत्तम विरेचन होनेसे संपूर्ण स्रोतोंमें शुद्धता, इन्द्रियोंमें प्रसन्नता, शरीरमें हलकापन, ओजकी वृद्धि, जठराग्निका वलवान् होना, शरीरका निरोग होना तथा मल, पित्त, कफ और वायु इन सबका यथोचित निकलना यह लक्षण होते हैं ॥ १५ ॥

दुर्विरिक्तके लक्षण ।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपःसादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या ।
तन्द्रातथाछर्दिररोचकश्चवातानुलोम्यंनचदुर्विरिक्ते ॥ १६ ॥

विरेचक द्रव्यके पीनेसे यदि यथोचित विरेचन हों तो कफ, पित्त और वायुका कोप होना, अग्निका मंद पडजाना, शरीरमें भारीपन, प्रतिस्याय, तंद्रा, वमन अरुचि, और यथोचित अधोवायुका न निकलना यह लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥

अतिविरिक्तके लक्षण ।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाःसुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ।
निद्रावलाभावतमःप्रवेशःसोन्मादहिक्काचविरेचितेऽति ॥ १७ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनका अतियोग होजानेसे कफ, रक्तपित्त, क्षय और वातके रोग, उत्पन्न होना तथा अंगोंका सुन्नसा होना, अंगडाई, क्लम, कंप, निद्रानाश, वलका हीन होजाना, अंधकारमें प्रवेश होना, उन्माद और हिचकी यह सब उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

शोधनके अंतमें कर्तव्य ।

संसृष्टभक्तंनवमेऽह्निसर्पिस्तंपाययेताप्यनुवासयेद्वा ।
दद्यात्र्यहान्नानिवुभुक्षितायतैलाक्तगात्रायततोनिरूहम् ॥ १८ ॥

उत्तम रीतिपर वमन विरेचन द्वारा शुद्धकाय होजानेके अनन्तर पेयादि क्रमसे ९ दिन पर्यन्त अर्थात् प्रथम पेया, फिर विलेपी, तदनन्तर घृतरहित हल्के चावल, मूंगका यूप आदि ९ दिन पर्यन्त भात या पतलीसी खिचडीका पथ्य सेवन करता रहे। फिर नवम दिन घीका सेवन करावे तथा अनुवासन कर्म करे ॥ १८ ॥

निरुहणका समय ।

प्रत्यागतेमांसरसेनभोज्यःसमीक्ष्यवादोपवलंयथार्हम् ।
नरस्ततोनिश्यनुवासनार्होनित्याशितःस्यादनुवासनीयः ॥ १९ ॥

फिर ३ दिन के अनन्तर शरीरपर भली प्रकार तेल लगाकर निरुहणबस्ति करे। परन्तु निरुहण वस्ति करनेसे प्रथम उसको थोडासा भोजन करादेवे अथवा जिस

समय उसको अधिक भूख न हो उस समय निरूहण वस्ति करे। जब निरूहणका प्रत्यागमन होजाय विरेचन द्वारा सब निकलजाय फिर दोष, बल आदि विचारकर हिरन आदि जीवोंके मांसरससे भोजन करावे। यदि वह मनुष्य अनुवासनके योग्य हो तो उसीदिन रात्रिको हलकासा भोजन करनेके अनन्तर अनुवासन कर्म करे॥१९॥

ऋतुभेदसे अनुवासनका समय।

शीतेवसन्तेचदिवानुवास्योरात्रौशरद्ग्रीष्मघनागमेषु।
तानेवदोषान्परिरक्षतायेस्नेहस्यपानेपरिकीर्त्तिताःप्राक् ॥ २० ॥

शीतकालमें और वसन्तऋतुमें दिनमें अनुवासन करना चाहिए। और शरद, ग्रीष्म और वर्षाऋतुमें रात्रिके समय अनुवासन कर्म करना चाहिए। सूत्रस्थानके स्नेहाध्यायमें स्नेहपानके जो दोष कहे हैं अनुवासनके समय भी उन सब दोषोंको त्याग देना चाहिए ॥ २० ॥

अनुवासनमें अन्यक्रम।

प्रत्यागतेचाप्यनुवासनीयेदिवाप्रदेयंव्युषितायभोज्यम्।
सायञ्चभोज्यंपरतस्त्र्यहेवाद्र्यहेऽनुवास्योऽहनिपञ्चमेवा ॥ २१ ॥

अनुवासनका तेल निकलजानेपर रात्रिको निराहार रखकर प्रातःकाल भोजन कराना चाहिए। यदि अनुवासन वस्ति द्वारा दिया हुआ तैल दिनमें निकले तो उसको दिनमें भोजन न देकर रात्रिमें भोजन करावे। फिर तीन २ दिन व्यतीत होनेपर इसी क्रमसे अनुवासन करे अथवा पांचवें दिन अनुवासन करे ॥ २१ ॥

त्र्यहेद्व्यहेवाप्यथपञ्चमेवादद्यान्निरूहादनुवासनञ्च।
एकंतथात्रीन्कफजेविकारेपित्तात्मकेपञ्चतुसप्तवापि ॥ २२ ॥
वातेनवैकादशवापुनर्वावस्तीनयुग्मान्कुशलोविदध्यात् ॥ २३ ॥

निरूहणके अनन्तर इस प्रकार दोषादि विचारकर दो अथवा तीन दिनके बाद या पांचवें दिन अनुवासन वस्ति प्रयोग करना चाहिए। कफजनित विकारोंमें एक अथवा तीन वस्ति प्रयोग करे। पित्तजनित विकारोंमें पांच अथवा सात वस्ति करे और वातजनित विकारोंमें नव अथवा ग्यारह वास्तियोंका प्रयोग करे। इस प्रकार कुशल वैद्य वस्तिका अयुग्मरीतिपर अर्थात् १, ३, ५, ७ आदि रीतिसे प्रयोग करे और युग्म २, ४, ६, आदि क्रमसे प्रयोग न करे ॥ २२ ॥ २३ ॥

निरूहणका अकाल।

नरोविरिक्तस्तुनिरूहदानंविवर्जयेत्सप्तदिनान्यवश्यम्।
शुद्धोविरेकेणनिरूहदानंतद्धयस्यशून्यंविक्षपेच्छरीरम् ॥ २४ ॥

विरेचन करानेके अनन्तर उस मनुष्यको ७ दिनतक निरूहण वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध शरीर होनेसे मलरहित शून्य शरीरमें प्रयोग किया हुआ निरूहण शून्य शरीरको आकर्षण करता है। इसलिये विरेचनके अनन्तर ७ दिनतक निरूहण नहीं करना चाहिए ॥ २४ ॥

निरूहणवस्तिके गुण।

वस्तिर्वयःस्थापयितासुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च। सर्वार्थकारीशिशुवृद्धयूनांनिरत्ययःसर्वगदापहश्च। विट्श्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षीस्थिरत्वकृच्छुक्रबलप्रदश्च ॥ २५ ॥

वस्ति अवस्थाको स्थिर करती है तथा सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर, और वर्णको बढातीहै। वस्तिकर्म बालक,वृद्ध और युवा मनुष्योंके संपूर्ण शारीरिक हितके करनेवाली तथा अनपायी, (किसी प्रकारका उपद्रव न करनेवाली) पूंसर्ण रोगनाशक, तथा विष्टा, कफ, मूत्र, वायु और पित्तको कषर्ण कर-निकाल देनेवाली, शरीरको दृढ तथा वीर्यसंपन्न करनेवाली और बलके देनेवाली होती है ॥ २५ ॥

विश्वक्स्थितंदोषचयंनिरस्यसर्वान्विकाराञ्छमयेन्निरूहः। देहेनिरूहेणविशुद्धमार्गेसंस्नेहनंवर्णबलप्रदश्च ॥ २६ ॥

निरूहण वस्ति संपूर्ण देहके दोषोंको निकालकर संपूर्ण व्याधियोंको शान्त कर-देती है। निरूहण वस्ति द्वारा शरीर शुद्ध होनेपर यदि स्नेह प्रयोग कियाजाय तो वर्ण और बलकी वृद्धि होती है ॥ २६ ॥

अनुवासनके गुण।

नतैलदानात्परमस्तिकिञ्चिद्द्रव्यंविशेषेणसमीरणार्त्ते। स्नेहाद्धिरौक्ष्यंलघुतांगुरुत्वादौष्ण्याच्चशैत्यंपवनस्यहत्वा ॥ २७ ॥ तैलं दधत्याशुमनःप्रसादंवीर्य्यंबलंवर्णमथाग्निपुष्टिम्। मूलेनिषिक्तोहि यथाद्रुमःस्यान्नीलच्छदःकोमलपल्लवाग्रः॥ २८ ॥ कालेमहान्पुष्पफलप्रदश्चतथानरःस्यादनुवासनेन। अपत्यसन्तानविवृद्धकारी कालेयशस्वीबहुकीर्त्तिमांश्च ॥ २९ ॥

अनुवासन द्वारा तेलका प्रयोग करनेके समान और कोई भी द्रव्य वायुको नष्ट करनेवाला नहीं है। तेल अपने स्नेहभावसे रूक्षताको और गुरुतासे वायुके हलकेपनको तथा उष्णभावसे शीतताको दूरकर मनको शीघ्र प्रसन्नता करनेवाला है एवं वीर्य, बल,

वर्ण और जठराग्निको पुष्ट करनेवाला है । जैसे वृक्षकी जडमें जल सींचनेसे वृक्ष हरे कोमल पत्रों और शाखाओंसे युक्त होकर समयपर महान् और पुष्प फलोंसे संपन्न होजाता है । उसी प्रकार अनुवासन द्वारा विधिवत् तैलका प्रयोग करनेसे मनुष्य भी संतान आदिं युक्त बलवान और यशस्वी तथा कीर्तिमान् होजाता है ॥२७॥२८॥२९॥

स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपियेपङ्गवोयेऽपिचरुग्णभग्नाः । येषाञ्च शाखासुचरन्तिवाताःशस्तोविशेषेणहितेषुवस्तिः ॥ ३० ॥

जो मनुष्य वायुसे स्तब्ध, संकुचित, पंगु, रुग्ण और भग्न होगये हैं, तथा जिनके शरीरमें संपूर्ण शाखाओंमें वायु संचार करती है, उन मनुष्योंको निरूहण वस्तिका प्रयोग विशेषरूपसे हितकारी है ॥ ३० ॥

आध्मापनेविग्रथितेपुरीषेशूलेचभक्तानभिनन्दनेच । एवंप्रकाराश्चभवन्तिकुक्षौयेचामयास्तेषुचवस्तिरिष्टः ॥ ३१ ॥

जिन मनुष्योंको अफारा और मलका गांठदार होना, शूल, वातजनित अन्नमें अरुचि तथा इसी प्रकारके अनेक रोग कुक्षीमें हों तो ऐसे मनुष्योंको वस्तिप्रयोग करना हितकारक है ॥ ३१ ॥

याश्चस्त्रियोवातकृतोपसर्गाद्गर्भंनगृह्णन्तिनृभिःसमेताः । क्षीणेन्द्रिया येचनराःकृशाश्चतेषाञ्चवस्तिःपरमःप्रदिष्टः ॥ ३२ ॥

जो स्त्रियें वायुके कियेहुए उपसर्गसे यथोचित रीतिपर पुरुष संग करनेपर गर्भको धारण नहीं करतीं तथा जो मनुष्य क्षीण इन्द्रिय और कृश हैं उनको भी वस्तिकर्म अत्यंत हितकारक कहा है ॥ ३२ ॥

उष्णाभिभूतेषुवदन्तिशीताञ्छीताभिभूतेषुतथासुखोष्णान् । तत्प्रत्यनीकौषधसंप्रयुक्तान्सर्वत्रवस्तीन्प्रविभज्ययुञ्ज्यात् ॥ ३३ ॥

शीतप्रधान रोगोंमें सुखोष्ण द्रव्योंसे वस्ति प्रयोग करना चाहिये । और उष्ण रोगोंमें शीतवीर्य द्रव्योंसे वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । इस प्रकार सुखोष्णवीर्य द्रव्योंसे संपूर्ण शीतरोगोंमें और शीतप्रधान द्रव्योंसे संपूर्ण पित्तजनित रोगोंमें वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३३ ॥

शोधनीय रोगोंमें बृंहणका निषेध।

नबृंहणीतान्विदधीतवस्तीन्विशोधनीयेषुगदेषुवैद्यः ।
कुष्ठप्रमेहादिषुमेदुरेषुनरेषुयेचापिविशोधनीयाः ॥ ३४ ॥

कुष्ठ प्रमेह आदि रोगोंमें तथा मेदसंश्लिष्ट रोगोंमें एवं अन्य भी जो संशोधन

करनेके योग्य हैं उन शोधनीय रोगोंमें वैद्य बृंहण वस्तिका प्रयोग न करे। सबमें शोधन करनाही हित होताहै। शोधनयोग्य रोगोंमें बृंहणका प्रयोग करने अनेक प्रकारसे रोगोंकी वृद्धि होती है ॥ ३४ ॥

संशोधनके अयोग्य रोगी।

क्षीणक्षतानांनविशोधनीयान्नशोषिणांनोभृशदुर्बलानाम्।
नमूर्च्छितानाञ्चनशोधितानांयेषाञ्चदोषेषुनिबद्धवायुः ॥ ३५ ॥

क्षीण, क्षत और शोषरोगसे पीडित मनुष्यको मूर्च्छासे पीडित मनुष्यको और जिन रोगियोंको शोधन करचुके हैं तथा जिसके दोषोंमें वायुका प्रबल संबंध न है ऐसे मनुष्योंको संशोधनवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३५ ॥

वातजरोगोंमें वस्तिकर्मकी श्रेष्ठता।

शाखागताःकोष्ठगताश्चरोगामर्मोर्द्धसर्वावयवाङ्गजाश्च। येसान्तितेषांनतुकाश्चिदन्योवायोःपरंजन्मनिहेतुरस्तिं ॥ ३६ ॥ विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानांविक्षेपसंहारकरःसयस्मात्। तस्यातिवृद्धस्यशमाय नान्यद्वस्तेर्विनाभेषजमस्तिकिञ्चित्। तस्माच्चिकित्सार्द्धमितिब्रुवन्तिसर्वांचिकित्सामपिवस्तिमेके ॥ ३७ ॥

जो रोग शाखागत, कोष्ठगत, मर्मस्थानगत, ऊर्द्धजत्रगत सर्वांग तथा शरीरके किस एक अवयवमें होते हैं। इन सबकी उत्पत्तिका कारण वायुही होता है। तथा विष्ठ मूत्र और पित्तादि दोषोंका संचय, विक्षेप और संहार करनेवाली भी वायुही होती उस वढीहुई वायुकी शान्तिके लिये वस्तिकर्मसे वढकर और कोई औषधि नहीं है इसलिये वस्तिकर्मको चिकित्साका आधा भाग कहते हैं। कोई: वस्तिकर्मको ही संपूर्णरूपसे एकमात्र चिकित्सा मानते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

उत्तम वस्तियोग।

नाभिप्रदेशञ्चकटिञ्चगत्वाकुक्षिंसमालोड्यपुनश्चपार्श्वम् ॥ ३८ ॥ संस्नेह्यकायंशिथिलांश्चकृत्वादोषान्पुरीषंप्रथितंविमथ्य। संसक्तवेगःसपुरीषदोषःप्रत्यागतोवस्तिरितिप्रशस्तः ॥ ३९ ॥

जो वस्तिका प्रयोग कियाहुआ नाभि, कमर, पसली और कूखमें पहुंचकर तथा दोनों पार्श्वभागोंमें आन्दोलन करके शरीरको स्निग्ध कर दोषोंको शिथिल कर-डाले और दोषोंके संचयको तथा बंधेहुए मलको मथन करके अव्याहत अर्थात

सरल रीतिसे मलको और दोषोंका लेकर निकलजाये उस वस्तिके प्रयोगको श्रेष्ठ जानना चाहिए ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वंरुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि । रोगोपशान्तिःप्रकृतिस्थताचबलश्चतत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ ४० ॥

निरूहण वस्तिके ठीक प्रयोग होजानेसे मल, मूत्र और अधोवायुका शुद्धरीतिपर परित्याग होताहै। अन्नपर रुचि और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै तथा आमाशय, ग्रहणी पक्काशय और वस्ति स्थानमें हलकापन प्रतीत हो, रोगकी शान्ति हो, शरीरके संपूर्ण स्वभाव प्रकृतिस्थ हों तथा बलकी वृद्धि हो यह लक्षण होते हैं ॥ ४० ॥

निरूहणके असम्यक्योगके लक्षण।

स्याद्रुक्शिरोहृद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफःप्रतिश्यायविकर्तिकेच ।
हृल्लासिकामारुतमूत्रसङ्गःश्वासोनसम्यक्चनिरूहितेस्यात् ॥४१॥

निरूहण वस्तिका ठीक प्रयोग न होनेसे मस्तक, हृदय, गुदा, कुक्षी और लिंगमें पीडा हो सूजन, प्रतिश्याय और पेटमें कतरनेकीसी पीडा, हल्लास, वात और मूत्रका विबंध तथा श्वास यह लक्षण होतेहैं ॥ ४१ ॥

लिङ्गंयदेवातिविरेचितस्यभवेत्तदेवातिनिरूहितस्य ॥४२॥

जो लक्षण अत्यंत विरेचन होनेसे अर्थात् विरेचनके अतियोगसे होते हैं सोई निरूहणके अतियोगके लक्षण होते हैं ॥ ४२ ॥

अनुवासनके सुयोगके लक्षण।

प्रत्येत्यसक्तंसशकृच्चतैलंरक्तादिबुद्धीन्द्रियसंप्रसादः ।
स्वप्नानुवृत्तिर्लघुतावलश्चसृष्टाश्चवेगाःस्वनुवासितेस्युः ४३॥

अनुवासनका सम्यक् प्रयोग होनेसे तेल विना किसी रुकावटके सुखपूर्वक विष्ठाके साथ निकल आवे, रक्तादि धातुयें बुद्धि, इन्द्रिय, मन यह सब प्रसन्न हों, सुखपूर्वक नींद आवे, शरीरमें हलकापन, बल और मूत्रादि वेगोंकी सुखपूर्वक ठीक प्रवृत्ति हो यह सम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥

अनुवासनके अयोगके ल० ।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वेषुरुग्रूक्षखरश्चगात्रम् ।
ग्रहश्चविण्मूत्रसमीरणानामसम्यगेतान्यनुवासितेस्युः ॥

अनुवासनका ठीक प्रयोग न होनेसे शरीरके अधोभाग, उदर, बाहु, पीठ और पार्श्वोंमें शूल हो, शरीर रूक्ष और कठोर हो, मल, मूत्र और वायुका बंधसा होजाय यह असम्यक् अनुवासनके लक्षण हैं ।

अनुवासनके अतियोगके लक्षण ।

हृल्लासमोहक्लमसादमूर्च्छाविकर्त्तिकाचाप्यनुवासितेस्युः ॥ ४४ ॥

हृल्लास, मोह, क्लम, अंगोंका सुन्नसा होजाना, मूर्च्छा, कतरनेकीसी पीडा यह अनुवासनके अति योगके लक्षण हैं ॥ ४४ ॥

अनुवासनके ठहरनेका समय ।

यस्येहयामाननुवर्त्ततेत्रीन्स्नेहान्नरःस्यात्सविशुद्धदेहः ।

आश्वागतेऽन्यस्तुपुनर्विधेयःस्नेहोनसंस्नेहयतिह्यतिष्ठन् ॥ ४५ ॥

जिस मनुष्यके शरीरमें अनुवासनका स्नेह ३ महर ठहरकर फिर निकले वह विशुद्धदेह होता है । अर्थात् अनुवासनका स्नेह शरीरमें ३ महर ठहरनेसे देहको शुद्ध बनादेता है । और यदि अनुवासनका तेल शीघ्र लौटआवे तो उसको फिर अनुवासन वस्तिका मयोग करना चाहिये । क्योंकि वस्तिका स्नेह शरीरमें न ठहरनेसे शरीरको चिकना नहीं कर सकता ॥ ४५ ॥

वस्तियोंकी संख्या और उनके मयोग ।

त्रिंशत्स्मृताःकर्मसुवस्तयोहिकालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः ।

सान्वासनाद्वादशवैनिरूहाःप्राक्स्नेहएकःपरतश्चपञ्च ॥ ४६ ॥

कर्म वस्तिमें ३० वस्तियोंका मयोग कहा है । कालवस्तिमें १५ वस्तियोंका मयोग होता है । एवं योगवस्तिमें आठ वस्तियोंका मयोग होता है । इन वस्तियोंके मयोगका यह क्रम है—स्नेहन और स्वेदनके पश्चात् एक स्नेहवस्तिका मयोग करना चाहिये । फिर वमन करावे । वमनके पीछे फिर १ स्नेहवस्ति करे । फिर विरेचन देवे । विरेचनके अनन्तर समयपर फिर स्नेहवस्ति मयोग करे । तदनन्तर एकवार निरूहणवस्ति फिर उसके अनन्तर समयपर स्नेहवस्तिका मयोग करे। इस मकार १२ निरूहण और १२ अनुवासन वस्तियें करे । दोनों मिलाकर २४ हुई । इसके अनन्तर ५ स्नेहवस्ति करे । १ स्नेहवस्ति सबसे मथम मयोग करना चाहिए इस मकार सब मिलाकर ३० वस्तियोंको कर्मवस्ति कहते हैं । परन्तु इन ३० वस्तियोंका मयोग पेयादि क्रम पालनकर यथोचित समय समयमें किया जाता है लगातार एकहीवार नहीं किया जाता ॥ ४६ ॥

कालेत्रयोऽन्तःपुरतस्तथैकःस्नेहानिरूहान्तरिताश्चषट्सु ।

योगेनिरूहास्त्रयएवदेयाःस्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥ ४७ ॥

कालवस्ति वर्षाआदि कालमें वातादि निवृत्त करनेके लिये मयुक्त करना चाहिये । कालवस्तिका यह क्रम है कि मथम १ स्नेहवस्ति करे । फिर समयानुसार निरूहण

वस्ति करे। फिर उचित समयपर स्नेहवस्ति करे। इस प्रकार ६ निरूहण और ६ अनुवासन, दोनों मिलकर १२ और इसके उपरांत तीन स्नेहवस्तियोंका प्रयोग करना। यह सब मिलाकर १५ हुए। इन १५ वस्तियोंके प्रयोगको कालवस्ति कहतेहैं। योगवस्तिमें प्रथम १ स्नेहन, फिर १ निरूहण इसप्रकार ३ निरूहण और ३ स्नेहन, वस्ति प्रयुक्त करे। तथा १ प्रथम और १ सबके पीछे यह दो स्नेहन मिलाकर ८ वस्तिका प्रयोग योगवस्ति कहाजाताहै। योगवस्ति प्रायः वाजीकरणके लिये प्रयोग की जातीहै ॥ ४७ ॥

त्रीन्पञ्चवाहुश्चतुरोऽथषड्वावाताधिकेभ्यस्त्वनुवासनीयान् ।
स्नेहान्प्रदायाशुभिषग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतोनिरूहान् ४८॥

वायुकी अधिकतामें ३, ४, ५, अथवा ६ स्नेहवस्ति देकर स्रोतोंकी शुद्धिके लिये निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

शिरोविरेचनक्रम।

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणस्निग्धन्तुतैःस्वेदितमुत्तमाङ्गम् ।
विरेचयेत्त्रिर्द्विरथैकशोवावलंसमीक्ष्यत्रिविधंमलानाम् ॥ ४९ ॥

इस प्रकार वमन, विरेचन और वस्तिकर्मसे देह शुद्ध होनेपर ७ दिन बीचमें डालकर पेयादि क्रमका पालन करता हुआ समयपर मस्तकको स्निग्ध और स्वेदन करके फिर दोषोंका त्रिविध बल विचारकर तथा रोगीकी अवस्था विचारकर तीन वार अथवा दोवार या एकवार शिरोविरेचनका प्रयोग करे। शिरोविरेचन नस्यको तीनवार प्रयोग करना उत्तम मात्रा कहीजातीहै। दोवार मध्यम और एकवार अधम मात्रा मानी जातीहै ॥ ४९ ॥

शिरोविरेचनके योग, अयोग, अतियोग।

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणांस्रोतोविशुद्धिश्चभवेद्विशुद्धे ।
गलोपलेपःशिरसोगुरुत्वंनिष्ठीवनञ्चाप्यथदुर्विरिक्ते ॥ ५० ॥

छातीमें, सिरमें तथा इन्द्रियोंमें हल्कापन और शुद्धता तथा सुख, नासिका आदि छिद्रोंका विशुद्ध होना यह शिरोविरेचनके उत्तम प्रयोग होनेके लक्षण हैं। और जलका भारी और लिपासा होना, शिरमें भारीपन, वारंवार मुखसे थूक आना यह शिरोविरेचनके ठीक प्रयोग न होनेके लक्षण हैं ॥ ५० ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणार्त्तितोदश्चात्यर्थशुद्धेस्तिमिरञ्चपश्येत् ।
स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवञ्चस्निग्धस्यतीक्ष्णन्तुपुनर्नयोगे ॥ ५१ ॥

शिर, नेत्र, कनपटी और कानोंमें पीडा, तोद, आंखोंके आगे अंधकार आना यह शिरोविरेचनके अतियोगके लक्षण हैं। शिरोविरेचनके अतियोग होनेसे उपद्रवोंकी शांतिके लिये तर्पण तथा मृदु, द्रव और स्निग्ध तर्पणोंका प्रयोग करना चाहिये। परन्तु ऐसे समय तर्पणादियोगमें किसी प्रकारके तीक्ष्ण द्रव्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ५१ ॥

पंचकर्मके गुण और परहेजका समय।

इत्यातुरस्वस्थविधिःप्रयोगेबलायुषोर्वृद्धिकृदामयघ्नः ।

कालस्तुवस्त्यादिषुयातियावांस्तावान्भवेद्विःपरिहारकालः॥ ५२ ॥

इस प्रकार रोगी अथवा स्वस्थ मनुष्योंको पंचकर्मका प्रयोग करनेसे बल और आयुकी वृद्धि होतीहै तथा संपूर्ण रोगोंका नाश होताहै। इन वमन, विरेचन आदि पंचकर्ममें जितना समय लगे उससे दुगुने दिनोंतक पेयादिक्रमसे पथ्यपूर्वक रहना चाहिये ॥ ५२ ॥

पंचकर्मके अनन्तर त्याज्य।

अत्याशनस्थानवचांसियानंस्वप्नंदिवामैथुनवेगरोधान् ।

शीतोपचारातपशोकरोषांस्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥ ५३ ॥

पंचकर्मके अनन्तर अत्यन्त भोजन करना, बहुत बैठे रहना, अधिक बोलना अधिक घूमना वा सवारीपर चढना, दिनमें सोना, मैथुन करना, वेगोंका रोकना, शीतल उपचार, धूप, शोक, क्रोध, वेसमय भोजन करना और अहित भोजन इन सब वस्तुओंको त्याग देना चाहिये ॥ ५३ ॥

वस्तिके सुखपूर्वक प्रवेश न होनेके कारण।

वद्धेप्रणीतेविषमेचनेत्रेमार्गेतथार्शःकफविड्विबन्धे ।

नयातिवस्तिनसुखंनिरेतिदोषावृतोऽल्पोयदिवाल्पवीर्य्यः ॥ ५४ ॥

वस्तिका मुख वंद होनेसे अथवा वस्ति (पिचकारी) विषमभावसे प्रवेश करनेसे ववासीरके मस्सों द्वारा गुदाकी वली रुकीहुई होनेसे अथवा कफ, विष्ठा आदिके बंधसे गुदामार्ग रुकाहुआ होनेसे वस्ति सुखपूर्वक प्रवेश नहीं होसकती और सुखपूर्वक बाहर नहीं निकल सकती तथा दोषों द्वारा वस्तिका मार्ग बन्द होजानेसे अथवा वस्तिद्रव्य अल्प और निर्वीर्य होनेसे भी वस्ति सुखपूर्वक कार्य नहीं कर सकती ॥ ५४ ॥

वस्तिके द्रव्यके लौट आनेका कारण।

प्राप्तेतुवर्चोऽनिलमूत्रवेगेवातेविवृद्धेऽल्पबलेगुदेवा ।

अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदौप्रकोष्ठेप्रणीतमात्रःपुनरेतिवस्तिः ॥ ५५ ॥

मल, मूत्र और अधोवायुका वेग उपस्थित होनेसे, वायुकी अत्यंत वृद्धि होनेसे गुदाकी वली निर्वल और शिथिल होनेसे, कोठेके अत्यंत नरम होनेसे तथा वस्ति द्रव्य अत्यंत गरम और तीक्ष्ण होनेसे प्रयोग कियाहुआ वस्तिद्रव्य तत्काल वाहर निकल आताहै ॥ ५५ ॥

अपनी २ औषधोंसे भी रोगोंके शांत न होनेका कारण।

मेदःकफाभ्यामनिलोनिरुद्धःशूलाङ्गसुप्तिश्वयथून्करोति ।
स्नेहन्तुयुञ्जन्नवुधस्तुतस्मैसंवर्द्धयत्येवहितान्विकारान् ॥ ५६ ॥

जब वायु वढेहुए मेद और कफसे रुकजाताहै उस समय शूल, अंगोंका सोना, और सूजन होतीहै । ऐसें समय मूर्ख वैद्य वातविकार समझकर; जो स्नेह वस्तिका प्रयोग करताहै तो यह शूल आदि विकार अत्यंत वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥ ५६ ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाःपरस्परेणावगृहीतमार्गाः ।
सन्दूषिताधातुभिरेवचान्यैःस्वैर्भेषजैर्नोपशमंव्रजन्ति ॥ ५७ ॥

इस प्रकार एक दोषका मार्ग अन्य दोषसे रुकजानेपर और भी इसी प्रकारके अनेक रोग उत्पन्न होजातेहैं । उन सव रोगोंका यथार्थ निश्चय करना कठिन होताहै । ऐसे समय दोष धातुओंके द्वारा रुद्धमार्ग होनेसे अथवा परस्पर संरुद्ध मार्ग होनेसे अपनी २ औषध करनेपर भी शांत नहीं होते ॥ ५७ ॥

सर्वश्चरोगप्रशमायकर्म्महीनातिमात्रंविपरीतकालम् ।
मिथ्योपचाराच्चनतंविकारंशान्तिनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तम् ॥ ५८ ॥

यदि रोगकी औषधका यथोचित प्रयोग न कियाजाय अथवा हीनयोग, अतियोग, वा मिथ्यायोग अथवा विपरीत भावसे, वा विपरीत कालमें प्रयोग कियाजाय तो पथ्य सेवन करनेपर भी रोगकी शान्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकः ।

प्रश्नानिमान्द्वादशपञ्चकर्म्माण्युद्दिश्यसिद्धाविहकल्पनायाम् ।
प्रजाहितार्थंभगवान्महार्थान्सम्यग्जगादर्षिवरोऽत्रिपुत्रः ॥५९॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने कल्पनासिद्धिर्नामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अव यहां अध्यायके उपसंहारमें एक श्लोक है कि इस कल्पनासिद्धि नामक, अध्यायमें ऋषियोंमें श्रेष्ठ आत्रेय भगवानने पंचकर्म विषयक इन १२ प्रश्नोंके महान् अर्थवाले उत्तरोंको प्रजाके हितके लिये भली प्रकार वर्णन कियाहै ॥ ५९ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०स०सिद्धिस्थाने टकसालनिवासि पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचित प्रसादनीभाषा टीकायां कल्पनासिद्धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातः पञ्चकर्मीयसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम पंचकर्मीयसिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

येषांयस्माच्चकर्माण्यग्निवेश ! नकारयेत् ।
येषाञ्चकारयेद्यानितत्सर्वंसंप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! जिन मनुष्योंको पंचकर्म कराना नहीं चाहिये और जिनको पंचकर्म कराना उचित है अब उन सबका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

पंचकर्मके अयोग्य मनुष्य ।

चण्डःसाहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच । सद्वैद्यनृपतिद्वेष्टातद्विष्टःशोकपीडितः ॥ २ ॥ यादृच्छिकोमुमूर्षुश्चविहीनःकरणैश्चयः । वैरीवैद्याभिमानीचश्रद्धाहीनःसशङ्कितः ॥ ३ ॥ भिषजामविधेयश्चनोपक्रम्योभिषग्विदा । एतानुपचरन्वैद्योवहून्दोषानवाप्नुयात् ॥४॥

क्रोधी, खोटा, साहस करनेवाला, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सद्वैद्यसे वैर रखनेवाला, राजद्रोही अथवा राजा जिससे विरोध रखता हो वा वैद्यसे जिसका द्वेष हो, शोकपीडित मनमानी वातोंको करनेवाला, मरनेकी इच्छा रखनेवाला, इन्द्रियोंसे हीन, वैरी, अपने आपको वैद्य माननेवाला, श्रद्धाहीन, वैद्य हरएक कर्ममें शंका करनेवाला ऐसे मनुष्योंकी वैद्यको चिकित्सा करना योग्य नहीं । ऐसे मनुष्योंकी चिकित्सा करनेसे वैद्यको अनेक दोष प्राप्त होतेहैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यानराःसर्वैरुपक्रमैः ।
अवस्थांप्रविभज्यैषांवर्ज्यंकार्य्यंचवक्ष्यते ॥ ५ ॥

इनके सिवाय और मनुष्य सब प्रकार चिकित्सा करनेके योग्य होते हैं । अब वमन, विरेचनादि अवस्थाभेदसे जो त्याज्य रोगी हैं उनका वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥

वमनके अयोग्य मनुष्य ।

अच्छर्दनीयास्तावत्क्षतक्षीणातिस्थूलकृशवालवृद्धदुर्वलश्रान्तपिपासितक्षुधितकर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ता-

प्रसक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृतकोष्ठदुश्छर्दनोर्द्ध्वरक्तपित्तप्रसक्तच्छर्द्यूर्द्ध्ववातास्थापितानुवासितहृद्रोगोदावर्त्तमूत्राघातप्लीहगुल्मोदराष्ठीलास्वरोपघाततिमिरशिरःशंखकर्णाक्षिपार्श्वशूलार्त्ताः ॥ ६ ॥

क्षत, क्षीण, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, थकाहुआ, प्यासा अथवा क्षुधासे पीडित, अत्यंत कामके करनेसे, भारके उठानेसे थका हुआ, उपवास कियाहुआ, मैथुन, अध्ययन, व्यायाम और चिन्ता इनसे व्याकुल, दुर्बल, गर्भवती, सुकुमार, जिसका कोठा वमन करनेमें अति कठिनतासे प्रवृत्त होसके जिसको कष्टसे वमन होसकतीहो । ऊर्ध्वगत रक्तपित्तवाला, जिसको वमनका रोग हो, ऊर्ध्ववातग्रस्त, आस्थापन कियाहुआ अनुवासित, हृद्रोगयुक्त तथा उदावर्त्त, मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, वातष्ठीला, स्वरभंग, तिमिररोग, शिरोरोग, कनपटीके रोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, पसलीके रोग और शूलरोग इन रोगोंसे युक्त मनुष्यको वमन नहीं कराना चाहिये । यह उपरोक्त संपूर्ण मनुष्य वमन करानेके योग्य नहीं हैं ॥ ६ ॥

इनको वमनकरानेके दोष ।

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनाद्रक्तातिप्रवृत्तिःस्यात्। क्षीणातिस्थूलकृशबालवृद्धदुर्बलानामौषधबलासहत्वात्प्राणोपरोधः।श्रान्तपिपासितक्षुधितानाञ्चतद्वत् । कर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामाणांरौक्ष्याद्वातरक्तच्छेदक्षतभयंस्यात्।गर्भिण्या गर्भव्यायामादामगर्भभ्रंशाच्चदारुणारोगप्राप्तिः।सुकुमारस्यहृदयस्यविकर्षणादूर्द्धमधोवारुधिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयोरतिमात्रप्रवाहनाद्दोषाःसमुत्क्लिष्टाह्यन्तःकोष्ठेजनयन्त्यन्तर्वीसर्पस्तम्भजाड्यवैचित्र्यंमरणंवा । ऊर्द्धरक्तपित्तस्यउदानमुत्क्षिप्यप्राणान्हरेद्रक्तञ्चातिप्रवर्त्तयेत् । प्रसक्तच्छर्देस्तुतद्वदूर्द्धवातास्थापितानुवासितानामूर्द्धवातातिप्रवृत्तिहृद्रोगिणोहृदयोपरोधः।उदावर्त्तिनो घोरतरउदावर्त्तःस्याच्छीघ्रतरहन्ता । मूत्राघातादिभिरार्त्तानांतीव्रतरःशूलप्रादुर्भावः । तिमिराणांतिमिरातिवृद्धिःशिरःशूलादिषुशूलातिवृद्धिः । तस्मादेतेनवाम्याः ७ ॥

इनमें उरःक्षत रोगीको वमन करानेसे उरक्षतरोग अर्थात् छातीके घाव अधिक चढते हैं। और घावोंके खुलनेसे मुखद्वारा रक्तकी प्रवृत्ति होने लगतीहै। क्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध और दुर्बल मनुष्य वमनके वेगको सम्हार नहीं सकते इसलिये वमन इन मनुष्योंके प्राणोंका सहसा उपरोध करता है। श्रान्त, प्यासयुक्त और क्षुधायुक्तोंको भी वमन करानेसे यही दोष होतेहैं। काम करनेसे, भारके उठानेसे, रास्ता चलनेसे, उपवास करनेसे, मैथुनसे, अध्ययन करनेसे, व्यायाम करनेसे, चिन्तासे, चिन्तित होनेसे जो मनुष्य व्याकुल हैं अथवा इन उपरोक्त कर्मोंसे युक्त हैं तथा दुर्बल हैं इनको वमन कराया जावे तो रूक्षताके कारण वायु और रक्तका कोप तथा कण्ठ आदि स्थानोंमें छेद वा क्षत होनेका भय होताहै। गार्भिणीको वमन करानेसे गर्भव्यापी रोग अथवा कच्चे गर्भका गिरजाना वा ऐसेही अन्य दारुणरोग उत्पन्न होतेहैं। सुकुमार मनुष्योंको वमन करानेसे, उनका हृदय खिचजानेसे, उर्द्धभागसे और अधोभागसे रक्तकी प्रवृत्ति होने लगतीहै। जिनका कोष्ठ सहजही उत्क्लेशित नहीं होसकता जिनको कष्टसे वमन होताहै उनको वमन करानेसे आमाशयका अतिमात्र खिचावसा होकर वमन तो नहीं होता परन्तु आमाशयमें दोष उत्क्लेशित होकर विसर्प, स्तम्भ, जडता, चित्तका विगडना तथा मृत्युतक कर देतेहैं। ऊर्ध्वगत रक्तपित्तमें वमन करानेसे उदान वायु उत्क्षेपित होकर रक्तकी अधिक प्रवृत्ति और प्राणनाश होताहै। प्रसक्त वमी रोगीको वमन करानेसे इसी प्रकार उदान वायुका कोप होताहै। उर्द्धवातग्रस्त आस्थापन कियाहुआ और अनुवासन कियेहुए रोगीको वमन करानेसे उर्द्धवातकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै। हृद्रोगमें वमन करानेसे हृदयका उपरोध होताहै। उदावर्त्तमें वमन करानेसे घोरतर उदावर्त्त होकर शीघ्र प्राणोंका नाश होताहै। मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला और स्वरभंगमें वमन करानेसे अत्यन्त शूलकी उत्पत्ति होतीहै। तिमिर आदि रोगमें वमन करानेसे तिमिर रोगकी वृद्धि होतीहै। मस्तक शूल तथा कनपटी, कान, नेत्र अथवा पार्श्वशूलमें वमन कराया जाय तो शूलकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै। इसलिये इन रोगोंमें वमन नहीं कराना चाहिये ॥ ७ ॥

इनमेंभी वमनकी आज्ञा।

सर्वेष्वपिखलुएतेष्वपिविषगरविरुद्धाभ्यवहारामकृतेषुअप्रतिपिद्धंशीघ्रकारित्वाद्दोषाणामिति ॥ ८ ॥

जिन २ रोगोंमें वमन कराना नहीं चाहिये यदि उनको विषजनित, गरजनित, विरुद्ध भोजनजनित अथवा आंवजनित विकार उपस्थित हो और उनका वमनके

सिवाय और शीघ्र उपाय न होसकता हो तो ऐसे समय अवश्य मनुष्योंको भी वमन करानेका निषेध नहीं है । क्योंकि यह विष आदि विकार आशुकारी होनेसे शीघ्र प्राणोको नष्ट कर देतेहैं ॥ ८ ॥

वमनकरानेके योग्य रोगी ।

शेषास्तुवाम्याः। पीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासगलग्रहग-लगण्ड-श्लीपद-मेह-मन्दाग्निविरुद्धाजीर्णान्नविपूचिकालसकवि-षगरपीतदष्टदिग्धविद्धाधःशोणितपित्तकफप्रसेकदुर्नामहृल्लासारो-चकाविपाकापच्यपस्मारोन्मादातिसारशोपपाण्डुरोगमुखपाकदुष्ट-स्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चतेपुहिवमनंप्र-धानतममित्युक्तंकेदारसेतुभेदेशाल्यादिशोपदोषविनाशवत् ॥ ९ ॥

उपरोक्त अवम्य अर्थात् जिनको वमन करनेका निषेध है उनके सिवाय और मनुष्य वमन करानेके योग्य होते है तथा पीनस, कुष्ठ, नवज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, प्रमेह, मंदाग्नि, विरुद्धभोजन, अजीर्णान्न, विपूचिका, अलसक, विषपान, गरयुक्त, विषयुक्त जानवरका काटा हुआ, विषयुक्त शस्त्रसे छिदाहुआ, अधोगत रक्तपित्त, मुखसे कफका गिरना, अर्शरोग, हृल्लास, अरुचि, अविपाक, अपची, मृगी, उन्माद, अतिसार, सूजन, पाण्डुरोग, मुखपाक, दुष्टस्तन्य आदि धायके रोग, कफके रोग और विशेषकर सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहेहुए कफजनित२० रोग इन सबमें विशेषरूपसे वमनका करनाही हितकारक है । जैसे खेत-का बाँध टूट जानेसे खेतके संपूर्ण जलके निकलनेपर धान आदि संपूर्ण खेती नष्ट हो जाती है उसी प्रकार वमन द्वारा संपूर्ण दोष निकल जातेहैं ॥ ९ ॥

विरेचनके अयोग्य मनुष्य ।

अविरेच्यास्तुसुभगक्षतगुदमुक्तनालाधोभागरक्तपित्तविलङ्घित-दुर्वलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढकामादिव्यग्राजीर्णनवज्वरमदात्ययिता-ध्मातशल्यार्दिताभिहतातिस्निग्धरूक्षदारुणकोष्ठाःक्षतादयश्चग-र्भिण्यन्ताः ॥ १० ॥

सुकुमार, जिनकी गुदामें घाव हो जिनका मलद्वार शिथिल हो वा कांच निकलती हो, अधोगत रक्तपित्त, उपवाससे कर्षित दुर्वल इन्द्रिय, बहुत अल्प अग्निवाला जिसको निरूहण किया हो, कामादिकोंसे व्यग्रचित्त, अजीर्णयुक्त तथा नवीनज्वर, मदात्यय,

अफारा,शल्यपीडित, आहत, अतिस्निग्ध,अतिरूक्ष,दारुणकोष्ठ, तथा क्षत,क्षीण,अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्वल, भ्रान्तचित्त, प्यासयुक्त, क्षुधायुक्त, कर्म, भार और मार्गसे थका हुआ, उपवाससे दुर्वल, मैथुन, अध्ययन और व्यायामसे थकाहुआ, चिन्तायुक्त, क्षाम और गर्भवती स्त्री इन सबको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥१०॥

इनकोविरेचन करानेकेदोष ।

तत्रसुभगस्यसुकुमारोक्तोवमनदोषःस्यात् । क्षतगुदस्यक्षतेगुदेवायुःप्राणोपरोधकरींवरांरुजंजनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्याहन्यात् । अधोभागरक्तपित्तिनाश्वतद्वदेवविलंघितदुर्वलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढऔषधवेगंनतेसहेरन् । कामादिव्यग्रमनसोनप्रवर्त्ततेकृच्छ्रेणवाप्रवर्त्तमानमधोगदोषान्कुर्य्यादजीर्णिनआमदोषःस्यात् । नवज्वरस्यअविपकान्दोषान्ननिर्हरेद्वातमेवचकोपयेत् । मदात्ययितस्यमद्यक्षीणेदेहेवायुःप्राणोपरोधंकुर्य्यात् । आध्मातस्यआध्मायमानस्यवापुरीषकोष्ठनिचितोवायुर्विसर्पन्सहसाआनाहंतीव्रतरंमरणंवाजनयेत् । शल्यार्दिताभिहतयोःक्षतेवायुराश्रितोजीवितंहिंस्यादतिस्निग्धस्यअतियोगभयंभवेत् । रूक्षस्यवायुरङ्गग्रहंकुर्य्यात् । दारुणकोष्ठस्यविरेचनोद्धतादोषाहृच्छूलपर्वभेदानाहाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छाक्लमाञ्जनयित्वाप्राणान्हन्युः । क्षतादीनांगर्भिण्यन्तानांछर्दनोक्तोदोषःस्यात् । तस्मादेतेनविरेच्याः ॥ ११ ॥

सुकुमार मनुष्यको विरेचन करानेसे हृदयका कर्षण होताहै । गुदामें घाववालेको विरेचन करानेसे प्राणोंको उपरोध करनेवाली अत्यंत पीडा होतीहै । शिथिल गुदावालोंको प्राणोंकी हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्तमें विरेचन देनेसे रक्तकी अधिक प्रवृत्ति होतीहै । उपवाससे कृश दुर्वलेन्द्रिय, अल्पाग्नि और निरूहण करानेके अनन्तर विरेचन देनेसे मनुष्य औषधके वेगको सहन नहीं कर सकता । कामादिसे विभ्रांत चित्तवालेको अधोवेगकी प्रवृत्ति नहीं होती यदि हो भी तो दोषोंका अधोमार्गमें कोप होजाता है । अजीर्णमें दस्त देनेसे आंवदोषकी उत्पत्ति होती है । नवीन ज्वरमें विरेचन देनेसे दोष कच्चे होनेके कारण नहीं निकलते और वायुका कोप होताहै ।

मदात्यय रोगमें मद्यसे क्षीणदेह होनेसे, विरेचन करानेसे वायु प्राणोंका अवरोध करता है । अफारेयुक्त और आध्मायमान मनुष्यको विरेचन देनेसे मलाशयमें स्थित हुआ वायु विसर्पित होकर शीघ्र तीव्र अफारा और मृत्युतकको करता है । तीर आदि लगनेसे और आहत मनुष्यके घावोंमें वायु आश्रित होताहै विरेचन करानेसे वह वायु कुपित होकर जीवनको नष्ट करताहै । अत्यंत स्निग्धको विरेचन करानेसे विरेचनका अतियोग होजाताहै । रूक्ष मनुष्यको विरेचन करानेसे वायु किसी अंगको ग्रहण कर पीडाको उत्पन्न करतीहै क्रूर कोष्ठवालेको विरेचन करानेसे उद्धतहुए दोष हृत्शूल, पर्वभेद, अफारा, अंगमर्द, छर्दी, मूर्च्छा और क्लमको उत्पन्न करते हैं तथा प्राणोंको भी नष्ट कर देते हैं । क्षतसे लेकर गर्भिणी पर्यंत जो पहिले कह आये हैं उनको विरेचन करानेसे छर्दीमें कहेहुए दोष उत्पन्न होतेहैं इसलिये इन संपूर्ण मनुष्योंको विरेचन नहीं कराना चाहिये ॥ ११ ॥

विरेचनयोग्य मनुष्य ।

शेषास्तुविरेच्याः । कुष्ठज्वरमेहोर्द्ध्वरक्तपित्तभगन्दरोदरार्शोब्रध्न-प्लीहगुल्मार्बुदगलगण्डग्रन्थिविषूचिकालसकमूत्राघातक्रिमिकोष्ठ-वीसर्पपाण्डुरोगशिरःपार्श्वशूलोदावर्त्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनी-लीकनेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मा-रोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिर्य्यारोचकाविपाकच्छर्दिश्वयथू-दरविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्च एतेषु-हिविरेचनंप्रधानतममित्युक्तमग्न्युपशमेऽग्निगृहवत् ॥ १२ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको विरेचन कराना चाहिये । तथा कुष्ठ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्द्धगत रक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, ववासीर, वद्ररोग, प्लीहरोग, गुल्मरोग, अर्बुद, गलगण्ड, ग्रंथिरोग, विषूचिका, अलसक, मूत्राघात, कोष्ठक्रामि, विसर्प, पाण्डुरोग, मस्तकपीडा, पार्श्वशूल, उदावर्त्त, नेत्रपीडा, मुखपीडा, हृद्रोग, व्यंग, नीलिका और नेत्रोंके रोग, नासिकारोग, मुखरोग, कानोंके रोग, हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, अपस्मार रोग, उन्माद, वातरक्त, योनिरोग, शुक्रदोष, तिमिररोग, अरोचक, अविपाक, छर्दी, सूजन, उदररोग,विस्फोटक आदि रक्ताश्रित रोग तथा सूत्रस्थानके महारोगाऽध्यायमें कहेहुए पित्तजनित ४० रोग इन सबमें विशेष कर विरेचन देना हितकारी है । जैसे अग्निके शान्त होनेपर अग्निगृह भी स्वयं शान्त होजाताहै उसी प्रकार विरेचन द्वारा दोषोंके निकालनेसे शरीरके रोग शान्त होजाते हैं ॥ १२ ॥

आस्थापनके अयोग्य ।

अनास्थाप्यास्तुअजीर्णयतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्लिष्टदोषाल्पाग्नियानक्लान्तातिदुर्वलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितविरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्म्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तच्छर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिक्कावद्धच्छिद्रोदकोदराध्मातालसकविपूचिकामप्रजातिसारमधुमेहकुष्ठार्त्ताः ॥ १३ ॥

अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, स्नेह पीयाहुआ, दोषोंके उत्क्लिष्ट होनेपर, अल्पाग्निवाला, घोडा आदि सवारीसे थकाहुआ, अति दुर्वल, भूखा, प्यासा, थकाहुआ, अतिकृश, भात खानेके अनन्तर जल पीकर वमन और विरेचनके अनन्तर, क्षतयुक्त नस्य कर्मके अनन्तर, क्रोधी, भयातुर, उन्मत्त, मूर्च्छित, वमनरोगयुक्त, जिसके मुंहसे वारवार कफ गिरता हो, श्वास रोगी, खांसीयुक्त, हिचकीयुक्त, वद्धोदरवाला, छिद्रोदर, जलोदरयुक्त, अलसकरोग, विपूचिका, आमगर्भा अर्थात् ८ महीनेसे प्रथम गर्भवतीको, अतिसारवालेको तथा मधुमेह और कुष्ठवाले रोगियोंको आस्थापनका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ १३ ॥

इनमें आस्थापनके दोष ।

तत्रअजीर्णयतिस्निग्धपीतस्नेहानांदूष्योदरंमूर्च्छाश्वयथुर्वास्यात् उत्क्लिष्टदोषमन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः । यानक्लान्तस्यक्षोभव्यापन्नोवस्तिराशुदेहंशोषयेत् ।अतिदुर्वलक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तानांपूर्वोक्तो दोषःस्यात् । अतिकृशस्यकार्श्यंपुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तयोरुत्क्लिश्योर्द्ध्वमधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रंवस्तौघोरान्विकाराञ्जनयेत् । वमितविरिक्तयोस्तुरूक्षशरीरंनिरूहःक्षतंक्षारइवदहेत् । कृतनस्तःकर्म्मणोविभ्रंशंभृशसंरुद्धस्रोतसःकुर्य्यात् । क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरूर्द्ध्वमुपप्लवेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशंविचालितायांसंज्ञायां चित्तोपघातव्यापत्स्यात् । प्रसक्तच्छर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिक्कार्त्तानामूर्द्ध्वीभूतोवायुरूर्द्ध्वंवस्तिंनयेत् । वद्धाच्छिद्रोदकोदराध्मातानांभृशतरमाध्माप्यवस्तिःप्राणान्हिंस्यात् । अलसकविपूचिकामप्रजातामातिसारिणामकृतदोषःस्यात् । मधुमेहकुष्ठिनोर्व्याधेः पुनर्वृद्धिस्तस्मादेतेनास्थाप्याः ॥ १४ ॥

अजीर्णरोगी और अति स्निग्ध तथा स्नेह पीयेहुएको आस्थापन देनेसे उदररोग, मूर्च्छा अथवा सूजन उत्पन्न होजाती है । दोषोंके उत्क्लेशित होनेपर और मंदाग्निमें आस्थापन करनेसे तीव्र अरुचि उत्पन्न होती है । सवारी आदिसे थकेहुएको आस्थापन वस्ति देनेसे वस्ति क्षोभको प्राप्त होकर उसके शरीरको सुखा देती है । अतिदुर्बल, क्षुधा, तृषा और श्रम आदिकोंसे कर्षित हुए मनुष्योंको आस्थापन देनेसे भी देहमें वस्ति शरीरको शोषण करती है । जल पीनेके अनन्तर और भोजन किया रहनेपर भी आस्थापनका प्रयोग करनेसे उर्द्धभाग अथवा अधोभागमें वायु कुपित होकर वस्तिस्थानमें घोर विकारोंको उत्पन्न करती है । वमन और विरेचनके अनन्तर, शरीर पहिलेही रूक्ष होताहै उस समय निरूहणका, प्रयोग करनेसे जैसे घावपर क्षार लगादेनेसे दाह होतीहै वैसेही दाह उत्पन्न होजातीहै। नस्य कर्मके अनन्तर स्थापन वस्ति करनेसे संपूर्ण स्रोत रुककर नस्यकर्मका गुण नष्ट होजाताहै । क्रोधी और भयभीतको आस्थापन देनेसे वस्तिका उर्द्धगमन होताहै । उन्मत्त और मूर्च्छामें आस्थापन वस्तिका प्रयोग करनेसे चित्तका उपघात होकर मृगी आदि रोग उत्पन्न होजातेहैं । वमन, निष्ठीवन, श्वास, खांसी और हिचकीमें आस्थापनवस्तिका प्रयोग करनेसे वायु ऊर्ध्वगमन करताहुआ वस्तिको भी ऊपरकी और आकर्षण करता है । वद्धोदर, छिद्रोदर जलोदर और अफारेमें वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति अत्यंत आध्मापित होकर अथवा अफारेको अत्यंत बढाकर प्राणोंको नष्टकर देतीहै । अलसक, विषूचिका रोगमें और आमातिसारमें आस्थापन वस्ति देनेसे आमदोषकी वृद्धि होतीहै । ८ महीनेसे पहिले गर्भवतीको आस्थापन वस्तिके प्रयोग करनेसे कच्चागर्भ गिरजाता है । मधुमेह और कुष्ठमें आस्थापन देनेसे रोगकी वृद्धि होतीहै । इसलिये इन सबको आस्थापन नहीं देना चाहिये ॥ १४ ॥

अस्थापनके योग्य मनुष्य ।

शेषास्त्वास्थाप्याः । सर्वाङ्गैकाङ्गकुक्षिरोगवातवर्चोमूत्रशुक्रसङ्गबलवर्णमांसरेतःक्षयदोषाध्मानाङ्गसुप्तिक्रिमिकोष्ठोदावर्त्तातिसारपर्वाभितापप्लीहगुल्महृद्रोगभगन्दरोन्मादज्वरब्रध्नशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठकटिग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्षयार्त्तविषमाग्निस्फिग्जानुजङ्घोरुगुल्फपार्ष्णिप्रपदयोनिबाह्वंगुलिस्तनाङ्गदन्तनखपर्वास्थिशूलशोषस्तम्भान्त्रकूजनपरिकर्तिकादयःवातव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चएतेषुआस्थापनंप्रधानतमामित्युक्तं वनस्पतिमूलच्छेदवत् ॥ १५ ॥

इनके सिवाय अन्य रोगोंमें आस्थापन देना चाहिये। तथा सर्वांगवात, एकांगवात, कुक्षिशूल, वात, मल, मूत्र और शुक्रका विबंध, बलक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, अफारा, अंगसाद (अंगोंका सोना) क्रमिकोष्ठ, उदावर्त्त, पक्वातिसार, पर्वामें शूल, प्लीहरोग, गुल्मरोग, हृद्रोग, भगन्दर, उन्माद, ज्वर, ब्रध्नरोग, शिरोशूल, कर्णशूल, हृच्छूल, पार्श्वशूल, कमरकी पीडा, पीठकी पीडा, कंप, आक्षेपकवायु, अंगोंका भारीपन, वातजनित अत्यंत हलकापन, रजक्षय, रजकाविबंध, विषमाग्नि, नितम्बोंकी पीडा, जानुशूल, जंघाशूल, ऊरुशूल, गुल्फशूल, पार्ष्णिपीडा, पादाग्रपीडा, योनिशूल, बाहुशूल, अंगुलियोंकी पीडा, दोनों स्तनोंके मध्यकी पीडा, दंतपीडा, नखपीडा, पर्वोंकी पीडा, अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अंत्रकूजन और परिकर्तिका आदि रोगोंमें तथा सूत्रस्थानके महारोगाध्यायमें कहेहुए अस्सी प्रकारके वातरोग इन सबमें विशेषकर आस्थापन वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है। इन संपूर्ण रोगोंकी प्रधान चिकित्सा आस्थापन करनाही है। जैसे-वृक्षको जडसे उखाड देनेसे वा जडके काट देनेसे संपूर्ण वृक्ष एकबारही नष्ट होजाताहै उसी प्रकार आस्थापन वस्तिके करनेसे यह संपूर्ण रोग भी समूल नष्ट होजाते हैं ॥ १९ ॥

अनुवासनके अयोग्य।

यएवानास्थाप्याःतएवअननुवास्याःस्युः। विशेपतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहार्शःप्रतिश्यायारोचकमन्दाग्निदुर्बलप्लीहकफोदरोरुस्तम्भवर्चोभेदविषगरपीतकफाभिष्यन्दगुरुकोष्ठश्लीपदगलगण्डापचीक्रिमिकोष्ठिनः ॥ १६ ॥

जो मनुष्य आस्थापन वस्तिके अयोग्य हैं अर्थात् जिनको आस्थापन वस्तिका प्रयोग नहीं करना उन्हीं मनुष्योंको अनुवासन वस्ति भी नहीं करना चाहिए और विशेपकर भोजनके विना किये, नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मंदाग्नि, दुर्बलता, प्लीहरोग, कफोदर, ऊरुस्तम्भ, मलभेद, विषरोग, गरविकार, कफका अभिष्यंद, कोष्ठकी गुरुता, श्लीपद, गलगण्ड, अपची और क्रमिकोष्ठ इनको विशेष अनुवासन देनेका निषेध है ॥ १६ ॥

इनमें अनुवासनके दोष।

तत्राभुक्तभक्तस्यानावृतमार्गत्वादूर्द्धमतिवर्त्ततेस्नेहः। नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहिणांदोषानुत्क्लेश्योदरंजनयेदर्शसस्यअर्शास्यभिष्यन्द्याध्मानंकुर्य्यात्। अरोचकार्त्तस्यअन्नगृद्धिंपुनःहन्यात्।

मन्दाग्निदुर्वलयोर्मन्दतरमग्निंकुर्य्यात् । प्रतिश्यायप्लीहादिमतां भृशश्चोत्क्लिष्टदोषाणांभूयएवदोषंवर्द्धयेत्तस्मादेतेनानुवास्याः॥१७॥

विना भोजन किये अनुवासनके करनेसे मार्ग खुला रहनेसे वस्तिका स्नेह ऊपरको चढजाता है। नवीनज्वर, पाण्डुरोग, कामला और प्रमेहमें अनुवासन वस्ति करनेसे दोष उत्क्लेशित होकर उदररोगको उत्पन्न करते हैं। ववासीरमें अनुवासन करनेसे स्नेह अर्शको अभिष्यंदित करके अफारेको उत्पन्न करता है। अरुचिमें अनुवासन करनेसे अन्नमें इच्छा नहीं रहती। मंदाग्नि और दुर्वलतामें अनुवासन करनेसे अग्नि अत्यंत मंद होजाती है। प्रतिश्याय और प्लीहा आदि रोगोंमें अनुवासन करनेसे संपूर्ण दोष उत्क्लेशित होकर और भी रोगोंकी वृद्धि होती है इसलिये इनमें अनुवासन नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

अनुवासनयोग्यमनुष्य।

यएवास्थाप्यास्तएवानुवास्याः। विशेषतस्तुरूक्षतीक्ष्णाग्नयःकेवलवातरोगार्त्ताश्च। एतेषुह्यनुवासनंप्रधानतममित्युक्तंवनस्पतिमूलच्छेदनवन्मूलेद्रुमसेकवच्च ॥ १८ ॥

जिन मनुष्योंको आस्थापन करना लिखा है उन्हींको अनुवासनका प्रयोग करना चाहिये और विशेषकर रूक्ष, तीक्ष्णाग्नि और केवल वातरोगसे पीडित मनुष्योंको अवश्यही अनुवासन करना चाहिये। इन रोगोंकी विशेष चिकित्सा अनुवासन करनाही है। जैसे–जडके काट देनेसे बनस्पति नष्ट होजाती है उसी प्रकार अनुवासनके करनेसे रूक्षतादि और संपूर्ण वातजनित रोग भी नष्ट होजाते हैं॥ १८ ॥

शिरोविरेचनके अयोग्य मनुष्य।

अशिरोविरेचनार्हाअजीर्णिभुक्तभक्तपीतस्नेहमद्यतोयपातुकामाः स्नातशिराः स्नातुकामःक्षुत्तृष्णाश्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितशस्त्रदण्डाहतव्यवायव्यायामपानक्लान्तनवज्वरशोकाभितप्तविरिक्तानुवासितगर्भिणीनवप्रतिश्यायार्त्ताअनृतुदुर्दिनेचेति ॥ १९ ॥

यह आगे कहेहुए मनुष्य शिरोविरेचनके अयोग्य होते हैं। जैसे–अजीर्णयुक्त भोजन कियाहुआ, स्नेहपानकर, जिसको जल अथवा मद्य पीनेकी इच्छा है, जिसने उसी समय शिर धोया हो स्नान करनेकी इच्छावाला, भूखा, प्यासा, थकित,उन्मत्त, मूर्च्छित, शस्त्रसे भग्नहुआ, दण्डसे आहत, मैथुनसे थकाहुआ व्यायाम करके थकाहुआ, मद्यसे क्लान्त, तरुणज्वरवाला, शोकसे अभितप्त, जिसने विरेचन लिया हो,

अनुवासन कियाहुआ, गर्भवती और नवीन प्रतिश्यायसे पीडित मनुष्योंको शिरोविरेचन नहीं कराना चाहिये तथा वर्षाकालमें और दुर्दिन अर्थात् आंधी आदिसे खराब दिनमें शिरोविरेचन (नस्यकर्म) करना उचित नहीं ॥ १९ ॥

इनमें नस्यकर्मके दुर्गुण ।

तत्राजीर्णिभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्द्ध्ववहानिस्रोतांस्यावृत्यकासश्वासच्छर्दिप्रतिश्यायाञ्जनयेत् । पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानांकृतेचपिवतांमुखनासास्रावाक्ष्युपदेहतिमिरशिरोरोगाञ्जनयेत् । स्नातशिरसःकृतेचस्नानेशिरसः प्रतिश्यायंक्षुधार्त्तस्यवातप्रकोपंतृष्णार्त्तस्य पुनस्तृष्णाभिवृद्धिंमुखशोषश्च । श्रमार्त्तमत्तमूर्च्छितानामास्थापनोक्तोदोषःस्यात् । शस्त्रदण्डहतयोस्तीव्रतरांरुजंजनयेत् । व्यवायव्यायामक्लान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनम् । नवज्वरशोकाभितप्तयोरूष्मानेत्रनाडीभिरनुसृत्यतिमिरंज्वरवृद्धिश्चकुर्य्यात् । विरिक्तस्यवायुरिन्द्रियोपघातंकुर्य्यात् । अनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वञ्चकण्डूक्रिमिदोषाञ्जनयेत् । अन्तर्वत्नीगर्भस्तम्भयेत्सकाणःकुणिः पक्षहतःपीठसर्पीवास्यात् । नवप्रतिश्यायार्त्तस्यस्रोतांसिव्यापादयेत् । अनृतुदुर्दिनेशीतंपूतिनासिकाशिरोरोगश्चस्यात् । तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः ॥ २० ॥

अजीर्णमें और भोजन करनेके अनन्तर शिरोविरेचन देनेसे दोष उर्द्ध्ववाही स्रोतोंको रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्यायको उत्पन्न करतेहैं । स्नेहपानके अनन्तर और जल पीनेकी अथवा मद्य पीनेकी इच्छावालेको शिरोविरेचन दियाजाय तो मुख और नासिकासे स्राव, आंखोंमें क्लेदका लिपाहुआसा होना, तिमिररोग और शिरोरोग उत्पन्न होता है । शिर धोनेके अनन्तर अथवा शिर सहित स्नान करनेके अनन्तर तत्काल स्नान करनेसे प्रतिश्याय उत्पन्न होता है । क्षुधासे पीडितको शिरोविरेचनसे वातका कोप होता है । तृषार्त्तको तृषाकी वृद्धि और मुखशोष होता है । परिश्रान्त, उन्मत्त और मूर्छितको शिरोविरेचन देनेसे अपस्मार आदि रोग उत्पन्न होते हैं । शस्त्रहत और डण्डे आदिसे आहत मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे तीव्र पीडा उत्पन्न होती है । मैथुन अथवा व्यायामसे थकेहुएको शिरोविरेचन देनेसे मस्तक, कंधे, नेत्र और छातीमें पीडा उत्पन्न होती है । तरुणज्वरमें शिरोविरेचन

देनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है । शोकसे तपायमान मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे नेत्रनाडीमें शिरोविरेचनी नस्यकी गर्मी पहुंचकर तिमिररोगको उत्पन्न करती है । विरेचन दियेहुए मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे वायु कुपित होकर इन्द्रियोंको नष्ट करताहै । अनुवासित मनुष्यको शिरोविरेचन देनेसे कफ शिरमें भारीपन, खुजली और कृमिरोग उत्पन्न करताहै । गर्भवती स्त्रीको शिरोविरेचन देनेसे गर्भ स्तब्ध होजाताहै तथा काना, कुनखी, शरीरका आधा अंग माराहुआ अथवा पिंवला गर्भ होजाताहै । नवीन प्रतिश्यायमें शिरोविरेचन देनेसे दुष्टप्रतिश्याय होजाताहै । वेसमय और दुर्दिनमें शिरोविरेचन देनेसे शीत, नाकसे दुर्गंधीका आना और शिरोरोग उत्पन्न होतेहैं । इसलिये इन सबको शिरोविरेचनी नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ २० ॥

शिरोविरेचन योग्य मनुष्य ।

शेपास्त्वर्हाः । शिरोदन्तमन्याहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूकशुक्रतिमिरवर्त्मरोगव्यङ्गोपजिह्विकार्द्धावभेदकग्रीवास्कन्धास्यनासिकाकर्णाक्षिमूर्द्धकपालशिरोरोगार्दितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरोगार्बुदस्वरपरिपकाश्चैतेपुशिरोविरेचनं प्रधानतममित्युक्तम् । तद्ध्युत्तमाङ्गमनुप्रविश्यमज्जपेशीकासक्तं दोषंविकारकरमपकर्षति ॥ २१ ॥

इनके सिवाय अन्य मनुष्योंको उचित समयमें शिरोविरेचन कराना चाहिये । तथा शिरोरोग, दंतरोग, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, पक्व पीनस, गलशुण्डिका, शालूक, शुक्र (नेत्ररोग) तिमिर, वर्त्मरोग, व्यंग, उपजिह्वा, अर्द्धावभेदक, गर्दनके रोग, स्कन्धपीडा, मुखपीडा, नासिकाके रोग, कर्णशूल, नेत्रपीडा, मस्तकपीडा, कपालके रोग, अर्दित, अपतंत्रका, अपतानक, गलगण्ड, दंतपीडा, दंतहर्ष, दांतोंका चलायमान होना, नेत्ररोग, अर्बुद, स्वरभंग, वाणीका रुकना, गद्गद (अकलापन) आदि रोगोंमें तथा ऊर्ध्वजत्रुगत रोगोंमें और वातादिसे उत्पन्न हुए परिपक्व रोगोंमें शिरोविरेचन कराना परम हितकारक है । क्योंकि शिरोविरेचन मस्तक आदिमें पहुंचकर मज्जा और पेशियोंमें चिपटेहुए दोषोंको आकर्षणकर निकाल देताहै ॥ २१ ॥

प्रावृट्शरद्वसन्तेष्वितरेषुआत्ययिकेपुरोगेपुनावनंकुर्य्याद्ग्रीष्मेपूर्वाह्णेशीतेमध्याह्नेवर्षास्वदुर्दिनेचेति ॥ २२ ॥

प्रावृट्, शरद और वसन्तऋतुमें जिसदिन बारिस और बादल आदि न हो उसदिन शिरोविरेचन करना अर्थात् नस्यकर्म कराना हितकारक है। यदि कोई शीघ्र नष्ट करनेवाला आत्ययिक रोग उत्पन्न होजाय तो ग्रीष्म ऋतुमें प्रातःकाल और शिशिर-ऋतुमें दुपहरके समय और वर्षाऋतुमें जिसदिन बादल आदि न हों उस दिन नस्यकर्म कराना चाहिये ॥ २२ ॥

अध्याय काउपसंहार।

तत्रश्लोकाः।

इतिपञ्चविधंकर्मविस्तरेणनिदर्शितम् । येभ्योयत्त्वहितंयस्मात्कर्मयेभ्यश्चयद्धितम् ॥ २३ ॥ नचैकान्तेननिर्दिष्टेतत्राभिनिविशेद्बुधः। स्वयमप्यत्रवैद्येनतर्क्यंबुद्धिमताभवेत् ॥ २४ ॥ उत्पद्येताहि सावस्थादेशकालबलंप्रति । यस्यांकार्य्यमकार्य्यंस्यात्कर्मकार्य्यंञ्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥ छर्दिहृद्रोगगुल्मार्त्तेवमनंस्वेचिकित्सिते । अवस्थांप्राप्यनिर्दिष्टंकुष्ठिनांवस्तिकर्मच ॥ २६ ॥ तस्मात्सत्यपिनिर्दिष्टेकुर्य्यादूह्यंस्वयंधिया । विनातर्केणयासिद्धिर्यदृच्छासिद्धिरेवसा ॥ २७ ॥

इतिश्रीचर० सिद्धिस्थानेपञ्चकर्मीयासिद्धिर्नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

यहां अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस पंचकर्मीयनामक अध्यायमे विस्तार-पूर्वक पंचकर्मकी विधि कही गई है। जिसको जो कर्म जिसप्रकार हानिकारक है तथा जिसको जो हितकारक है वह भी यथोचित रीतिपर कहदिये गयेहैं। परन्तु जिन संपूर्ण नियमोंको यहांपर लिखा गयाहै बुद्धिमान् वैद्य केवल इन्हींके आश्रय न रहकर जिस समय जो उचित हो उसको उसी प्रकार अपनी बुद्धिसे तर्कनाकर युक्ति-पूर्वक क्रिया करनी चाहिये। देश, काल, और बलके भेदसे कभी ऐसी अवस्था उपस्थित होजातीहै कि जिन कर्मोंका जिस रोगमें निषेध है वह भी करने पडतेहैं। और जो कर्तव्य कर्म है उनको भी त्याग दिया जाताहै। जैसे-छर्दी हृद्रोग और गुल्मरोगमें वमन करानेका निषेध है परन्तु अवस्थानुसार वमन कराना पडताहै। कुष्ठरोगमें वस्तिकर्मका निषेध होनेपर भी अवस्थाविशेषसे वस्तिकर्म कियाभी जाताहै। इसलिये जो विषय जिस स्थानमें नहीं भी कहागया उसको भी बुद्धिमान् वैद्य देश, काल आदि विचार अपनी बुद्धिसे तर्कना करके प्रयोग करे। विना

इसप्रकार बुद्धिकी तर्कना किये जो सिद्धि प्राप्त होजाय उसको यदृच्छाप्राप्त अर्थात भागसे प्राप्त सिद्धि जानना। इसलिये सब कर्मोंमें बुद्धिमान् वैद्य समयानुसार तर्कनाकर क्रियाका प्रयोग करे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

इ० श्री०च० प्र०आ०सं०सि०स्थाने प्र०भा०टी० पचकर्मीयसिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातोवस्तिसूत्रीयासिद्धिंव्याख्यास्याम इति हस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम वस्ति सूत्रीयसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

कृतक्षणंशैलवरस्यरम्येस्थितंधनेशायतनस्यपार्श्वे। महर्षिसंघैर्वृतमग्निवेशःपुनर्वसुंप्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ १ ॥ वस्तिर्नरेभ्यःकिमपेक्ष्यदत्तःस्यात्सिद्धिमान्किम्मयमस्यनेत्रम्।कीदृक्प्रमाणाकृतिकिंगुणश्चकेपाश्चांकियोनिगुणश्चवस्तिः ॥ २ ॥ निरूहकल्पःप्रणिधानमात्राः स्नेहस्यकाकाःशमनेविधिःकः। केवस्तयःकेपुमताइतीदंश्रुत्वोत्तरंप्राहवचोमहर्षिः ॥ ३ ॥

पर्वतोंके राजा हिमालयके अंगभूत कैलासनामक रमणीय पर्वतके एक निकुञ्जमें कुबेरके स्थानके पार्श्वभागमें ऋषिगणोंसे सर्वतः सुशोभित पुनर्वसुजीसे अग्निवेश हाथ जोडकर पूछने लगे कि भगवन्! किस अवस्थामें किस प्रकार वस्तिका प्रयोग करनेसे मनुष्योंको फलदायक होतीहै। वस्तिका नेत्र किस द्रव्यसे बनाया जाताहै। वस्तिका नेत्र (मुखनली) कैसा और किस प्रमाणसे किस आकारका बनाना चाहिये उसका गुण क्या है। किसको किस द्रव्यसे वस्ति प्रयोग कियाहुआ क्या गुण करताहै। निरूहकी भिन्न कल्पना किस प्रकार है। अनुवासनकी मात्राका क्या प्रमाण है। पीडा आदि शांतिके लिये विधि क्या है। किस मनुष्यके लिये किस प्रकारकी वस्तिका प्रयोग करना हितकारक है। इस प्रकार अग्निवेशके कियेहुए प्रश्नोंको सुनकर महर्षि पुनर्वसुजी इस प्रकार उत्तर देनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

समीक्ष्यदोषौषधदेशकालसात्म्याग्निसत्त्वादिवयोवलानि। वस्तिः प्रयुक्तोनियतंगुणायस्युःसर्वकर्माणिचासिद्धिमन्ति ॥ ४ ॥

दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य, अग्नि और सत्त्वआदि तथा अवस्था और

बल विचारकर वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्ति गुणदायक होतीहै । तथा सब कर्मोंमें सिद्धिके देनेवाली होतीहै ॥ ४ ॥

वस्तिनेत्रका प्रमाण।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः । नलैर्विषाणैर्मणिभिश्चतैस्तैःकार्य्याणिनेत्राणित्रिकर्णिकानि ॥ ५ ॥

सुवर्ण, चांदी, शीशा, तांबा, पीतल, कांसे, हड्डी, लोहा, लकडी, बांस, हाथीदांत, नरसल, सींग और मणी इनमेंसे किसी वस्तुका वस्तिकी नेत्रे (मुंहनाल) और कर्णिका यह बनाना चाहिये ॥ ५ ॥

षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानिषड्विंशतिर्द्वादशवर्षजानाम् । स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहिच्छिद्राणिवर्त्यापिहितानिचापि ॥ ६ ॥

छः, बारह और बीस वर्षकी अवस्थावाले मनुष्यके लिये वस्तिक नल लम्बावमें क्रमसे ६, ८, और बारह अंगुलका होना चाहिये । और उस वस्तिके मुखका छिद्र छः अंगुल लंबी हो तो मूंगके बराबर मोटा और ८ अंगुल लम्बी हो तो मटरके बराबर तथा १२ अंगुल लंबी हो तो छोटे झाडी बेरके समान मोटा छिद्र होना चाहिये । उस छिद्रद्वारा कोई जीव वस्तिमें छिपकर न बैठजाय इस लिये उस छिद्रके मुखपर कुछ बत्ती आदि लगाये रखना चाहिये ॥ ६ ॥

वस्तिकी परिधि ।

यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यांमूलाग्रयोःस्युःपरिणाहवन्ति।
ऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनिश्लक्ष्णानिचस्युर्गुलिकामुखानि७॥

रोगीकी जो अवस्था हो उसी अवस्थानुसार मनुष्यके अंगूठेके बराबर मोटाई पीछेकी ओरसे और कनिष्ठिका अंगुलीके बराबर मोटाई वस्तिके मुखनालकी मुखकी ओरसे होनी चाहिये । वस्तिका नल नम्र और गोपूच्छके समान ऊपरसे मोटा तथा मुखकी ओरसे पतला और चिकना सुडौल, तथा गोल होना चाहिये ॥ ७ ॥

---

१ गुदा द्वारा जो पिचकारी लगाई जातीहै उसको वस्तिकर्म कहतेहैं यद्यपि शिरोवस्ति आदि (नसमें लगानेकी पिचकारी) अनेक प्रकारकी पिचकारियें प्रयोगमें आतीहैं परन्तु इस स्थानमें गुदामेंही लगानेकी पिचकारीकाही कथन है उस पिचकारी मुखके ओरकी यह नली जो गुदामें प्रवेश की जातीहै उसको वस्तिकानेत्र कहतेहैं ।

वस्तिकर्णिकाव वस्तिपुटक ।

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागेमूलाश्रितेवस्तिनिबन्धनेद्वे ।
जरद्गवोमाहिषहारिणोवास्याच्छौकरोवस्तिरजस्यवापि ॥ ८ ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धःकषायरक्तःसुमृदुःसुशुद्धः ।
नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपंनेत्रेषुयोज्यस्तुसुबद्धसूत्रः ॥ ९ ॥

उस नलीका जो भाग गुदामें प्रवेश किया जाताहै उस ओर नेत्रनलीके चौथे भागमें मुखकी ओर एककर्णिका और नीचेकी ओर दो कर्णिका वस्ति बंधनके लिये होनी चाहिये । किसी बूढे बैल अथवा भैंसा, हरिण, सूअर या बकरा इनमेंसे जिसका आसानीसे मिल सके उसकी मूत्रवस्तिकी थैली निकालकर उसका वस्ति-पुटक अर्थात् वस्तिका पेटा बनावे । यह पेटा दुर्गंधरहित तथा नस रहित और हरड, नासपाल आदिके क्वायसे रंग देकर सुखाया हुआ और नम्र बनायाहुआ होना चाहिये । तथा रोगीकी अवस्थानुसार इस वस्तिके पेटेका लम्बाव, चौडाव, छोटा, बडा होना चाहिये । फिर इस नम्र वस्तिपुटकमें रोगीकी अवस्थानुसार पूर्वोक्त सुवर्ण आदि किसी द्रव्यकी बनी नेत्रनली लगाकर सूत्रके डोरेसे विधिवत्‌बांध देना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

वस्तेरभावेप्लवजोगलोवास्यादङ्कपादःसुघनःपटोवा ।
नेत्रस्यचालाभतएवनाडीहितास्थिजावंशभवानलोवा ॥ १० ॥

बैल आदिकी वस्ति (मूत्राशय) न मिलनेपर मेंढक आदिके चमडेसे वस्ति बनाना चाहिये । अथवा चौपायें जानवरोंके भीतरी नर्म चमडेकी वस्ति बनावे । यदि इन सबका मिलना कठिन हो तो किसी सघन वस्त्र जिसमें पानी न छन सके उसका वस्तिपुटक बनावे । सुवर्ण आदि किसी वस्तुका वस्तिनेत्र (वस्तिकी मुंह-नाल) न मिलनेपर हित हड्डीकी पोली नलीसे कामले अथवा बांसकी नली वा नरसलकी नली लेकर पूर्वोक्त प्रमाणसे वस्तिका नेत्र बन वस्तिपुटकमें लगा विधिवत् वस्तिकर्म करे ॥ १० ॥

वस्तिकर्मविधि ।

आस्थापनार्हंपुरुषंविधिज्ञःसमीक्ष्यपुण्येऽहनिशुक्लपक्षे ।
प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्त्तयोगेजीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत ॥ ११ ॥

१ नेत्रके मुखपर छिद्रवाली एक छोटीसी जगहको कर्णिका कहतेहैं । कर्णिकायुक्त नेत्र, खड या चमडेकी पिचकारीके मुखकी ओर लगा रहताहै । वर्तमान समयमें सब प्रकारकी वस्तियें डाक्टरी रीतिसे बनाई हुई मिलती हैं उन्हींसे काम लेना चाहिये ।

आस्थापनके योग्य रोगीको वैद्य शुभदिन, शुक्लपक्ष, शुभनक्षत्र और उत्तम मुहूर्त्त तथा शुभयोगमें भोजन पचजानेके अनन्तर सावधानीसे आस्थापनवस्ति करे ॥ ११ ॥

वलांगुडूचींत्रिफलांसरास्नांद्विपञ्चमूलेचपलोन्मितानि। अष्टौपलान्यर्द्धतुलाञ्चमांसाच्छागात्पचेदप्सुचतुर्थशेषम् ॥ १२ ॥ पूतंयवानीफलविल्वकुष्ठवचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम् । कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैःसतैलैर्युतंसुखोष्णैस्तुपिचुप्रमाणैः ॥ १३ ॥ गुडात्पलंद्विप्रसृतान्तुमात्रांस्नेहस्ययुक्त्यामधुसैन्धवादि । स्नेहंसुनिर्मथ्यततोऽनुकल्पंप्रक्षिप्यवस्तौमथितंखजेन ॥ १४ ॥ वस्तिंततःसव्यकरेनिधायसुवद्धसुच्छ्रास्यचनिर्व्यलीकम् । अङ्गुष्ठमध्येनसुखंपिधायनेत्राग्रसंस्थामपनीयवर्त्तिम् ॥ १५ ॥

वला, गिलोय, त्रिफला, रास्ना, लघु पंचमूल और बृहत् पंचमूल यह सब द्रव्य एकएक पल लेवे। वकरेका मांस, ८ पल, और आधा तुला (३ सेर) लेकर इन सबको आठगुने जलमें पकावे चौथाभाग रहजानेपर उतारकर छानले। इस क्वाथमें अजवायन, मैनफल, वेलगिरि, कूठ, वच, सौंफ, नागरमोथा और पीपल इन सबका एकएक तोला कल्क मिलावे। तथा गुड २ पल, तेल २ पल, घृत २ पल, शहद और सेंधानमक इन सबको युक्तिपूर्वक मिला देवे। फिर सबको एकत्र मथकर सुखोष्ण करले। यह सुखोष्ण किया हुआ कल्क, स्नेहयुक्त क्वाथ वस्तिमें भरकर खूब हिला लेवे। फिर इस वस्तिको वायें हाथमें लेकर विधिवत् वस्तिको फुलाकर वस्तिके नेत्रके अग्रभागको स्वच्छकर उसके आगेकी वत्ती आदि जो लगीहो उसे निकाल डाले और इसके मुखको अंगूठेके मध्यभागसे वन्दकर रक्खे ॥ १२-१५ ॥

तैलाक्तगात्रंकृतमूत्रविट्कंनातिक्षुधार्त्तंशयनेमनुष्यम् । समेऽथवेपन्नतशीर्षसेवानात्युच्छ्रितेस्वास्तरणोपपन्ने ॥ १६ ॥ सव्येनपार्श्वेनसुखंशयानंकृत्वर्जुदेहंस्वभुजोपधानम् । निकुच्यसव्येतरदस्यसक्थिवामंप्रसार्य्यप्रणयेत्ततस्तम् ॥ १७ ॥ स्निग्धेगुदेनेत्रंचतुर्थभागंस्निग्धंशनैर्मृद्वृजुपृष्ठवंशम् । अकम्पनावेपनलाघवादीन्पाण्योर्गुणांश्चापिहिदर्शयंस्तम् ॥ १८ ॥ प्रपीड्यचैकग्रहणेनदत्तंनेत्रंशनैरेवततोऽपकर्षयेत् ॥ १९ ॥

फिर रोगीको मलमूत्रादि त्याग करानेके अनन्तर तेलकी मालिश करा तथा रोगीको अधिक क्षुधा न लगीहो ऐसी अवस्थामें उत्तम सीधी समान भूमिमें अथवा मस्तककी ओर कुछ नीची भूमिमें सुन्दर शय्या जो बहुत ऊंची, बहुत नीची और ढीली न हो तथा कोमल और स्वच्छहो उसके ऊपर रोगी बाई करवट लेटे और बाई बांहका अपने सिरके नीचे सिरहाना देवे । फिर उसकी दहिनी टांगको पेटकी ओरको सिकोडे और बाई टांगको सीधी फैलावे । फिर गुदाको चिकनीकर और वस्तिके मुखको चिकनाकर वस्तिका चौथा भाग, धीरे २ गुदामें विधिवत् प्रयोग करे । गुदामें वस्तिके नलको ठीक सीधा पीठकी बांसकी ओर रक्खे और वह वस्तिका नेत्र गुदामें प्रवेश करतेहुए अपने हाथोंको कंपावे नहीं तथा स्थिर और हल्का हाथ रक्खे । इस प्रकार वस्तिके नलको गुदामें प्रवेश कर बांयें हाथसे नलका पकड रक्खे और दहिने हाथसे वस्ति (पिचकारी) को दबाता जावे । जिससे वस्तिका द्रव्य गुदामें पहुंच जाय । फिर धीरेसे वस्तिकी नलीको गुदामेंसे निकाल लेवे । परन्तु वस्तिको इतने जोरसे न दबावे कि जिससे संपूर्ण औषधी एकवार बलपूर्वक पहुंचकर हानि पहुंचावे और ऐसा धीरे २ भी न दबावे । जिससे वस्तिकर्ममें अधिक देर लगे। तथा खाली वस्तिको भी न दबावे जिससे गुदामें वस्तिकी पवन पहुंचे । इस प्रकार वस्ति द्रव्यको सावधानीसे गुदामें पहुंचाकर वस्तिके नलको धीरेसे निकाल लेवे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

वस्तिकेविधानमें असावधानीके दोष ।

तिर्य्यक्प्रणीतेतुनयातिधारागुदेव्रणःस्याच्चलितेचनेत्रे । दत्तःशनैर्नाशयमेतिवस्तिःकण्ठंप्रधावत्यतिपीडितश्च । शीतस्त्वतिस्तम्भकरोविदाहंमूर्च्छांश्चकुर्य्यादतिमात्रमुष्णः ॥२०॥ स्निग्धोऽतिजाड्यं पवनश्चरूक्षस्तन्वल्पमात्रालवणस्त्वयोगम् । करोतिमात्राभ्यधिकोऽतियोगंक्षामन्तुसान्द्रःसुचिरेणचैति ॥ २१ ॥ दाहातिसारोलवणोऽतिकुर्य्यात्तस्मात्प्रयुक्तंसममेवदद्यात् ॥ २२ ॥

वस्तिका मुख यदि गुदामें तिरछा प्रवेश किया जाय तो औषधीकी धारा ठीक सीधी नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिका मुख गुदामें हिलता डुलता रहे तो गुदामें घाव होनेका भय है । यदि वस्तिको बहुत देरमें धीरे २ प्रधमन कियाजाय तो वह पक्वाशयमें वा उचित स्थानमें नहीं पहुंच सकती । यदि वस्तिको अत्यन्त जोरसे दबादिया जाय तो वस्तिद्रव्य कण्ठकी ओर चला जाताहै । अत्यन्त शीतल द्रव्यसे वस्ति कीजाय तो स्तम्भको करतीहै । अत्यन्त गर्म वस्ति विदाह और मूर्च्छाको करनेवाली होतीहै । अत्यन्त स्निग्धवस्ति जडताको उत्पन्न करती है । रूक्षवस्ति वायुको

कुपित करती है। वस्तिमें नमककी अल्पमात्रा होनेसे वस्तिका ठीक योग नहीं होता। अधिक मात्रासे वस्तिका अतियोग होताहै। अल्पमात्रा वा अत्यन्त गाढी वस्ति, विलंबसे निकलतीहै। अत्यन्त लवणयुक्त वस्ति अतिसार और दाहको उत्पन्न करती है। इसलिये वस्तिको योग्य रीतिपर युक्तिपूर्वक ठीक योगसे प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

पूर्वंहियोज्यंमधुसैन्धवाभ्यांस्नेहंविनिर्मथ्यततोऽनुकल्कम्।
विमथ्यसंयोज्यपुनर्द्रवैस्तद्वस्तौनिदध्यान्मथितंखजेन ॥ २३ ॥

पहिले स्नेह, लवण और शहदको विधिवत् मन्थनकर एककर लेवे जिससे लवण शहद और घृत तैलादि एक बनजावे फिर इसमें कल्क मिला मन्थनकरे जब कल्क मिलजाय तब क्वाथद्रव्य वा अन्य जो पतले पदार्थ मिलाने हों वह मिलाकर मथनीसे खूब मथ डाले। फिर इसको वस्तिमें भरकर वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ २३॥

वस्तिमें लेटनेका विधान।

आमाशयोऽग्निर्ग्रहणीगुदश्चतत्पार्श्वसंस्थस्यसुखोपलब्धिः।
लीयन्तएवंवलयश्चतस्मात्सव्यंशयानोऽर्हतिवस्तिदानम्।
विड्वातवेगोयदिचार्द्धदत्तेनिष्कृष्यमुक्तेप्रणयेदशेषम् ॥ २४ ॥

आमाशय,जठराग्नि, ग्रहणी,मलाशयमेंकी स्थूल अंतडी यह मनुष्यके बायें पार्श्वकी ओर हैं तथा गुदाकी तीनों वलियें भी बाईं ओरको ही लीन होगई हैं। इसलिये बाईं करवट लेटाकर वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। बाईं करवट लेटाकर वस्तिकर्म किया हुआ वस्तिद्रव्य सुखपूर्वक वेगसे यथास्थान पहुंच जाता है। यदि वस्तिके करते समय आधा द्रव्य प्रवेश होनेपर मल या वायुका वेग आवे तो वस्तिके नलको निकालकर विष्ठा या वातके त्याग होलेनेके अनन्तर फिर वस्तिकर्मकर संपूर्ण द्रव्य भीतर पहुंचावे ॥ २४ ॥

उत्तानदेहश्चकृतोपधानःस्याद्वीर्यमाप्नोतितथास्यदेहम्।
एकोऽपकर्षत्यनिलंस्वमार्गात्पित्तंद्वितीयस्तुकफंतृतीयः ॥ २५ ॥

वस्तिकर्म कर लेनेके अनन्तर रोगी तकियेपर सिर रखके आरामसे चित्त लेटजावे। ऐसा करनेसे औषधका वीर्य रोगीके शरीरमें यथोचित संचार करताहै। एक वस्ति वायुको, दूसरी वस्ति पित्तको और तीसरी कफको अपने मार्गसे कर्षणकर निकाल देती है ॥ २५ ॥

वस्तिके अनंतर कर्म ।

प्रत्यागतेकोष्णजलावसिक्तःशाल्यन्नमद्यात्तनुनारसेन ।
जीर्णेतुसायंलघुचाल्पमात्रंभुक्तेऽनुवास्यःपरिबृंहणार्थम् ॥ २६ ॥

जब वस्ति द्रव्य मलको लेकर बाहर निकल चुके तो सुखोष्ण जलसे शरीरको सेचन कर फिर पतलेसे मांसरस अथवा किसी उचित यूषके साथ शालीचावलोंका भोजन करावे। सायंकालको भूख लगनेपर हल्का और अल्पमात्रासे भोजन करावे। फिर बृंहणके लिये अनुवासन करावे ॥ २६ ॥

अनुवासन विधि ।

निरूहपादांशसमेनतैलेनाम्लानिलघ्नौषधसाधितेन ।
दत्त्वास्फिचोपाणितलेनहन्यात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थम् ॥ २७॥

अनुवासनका तेल निरूहणवस्तिकी मात्रासे चौथा भाग लेना चाहिये।यह तेल हल्के द्रव्योंसे और कांजीसे सिद्ध कियाहुआ होना चाहिये । फिर उसके दोनों नितम्बोंको दोनों हाथोंसे इस प्रकार दबावे जिससे वह तेल शीघ्र निकलने न पावे ॥ २७ ॥

ईषत्पदाङ्गुष्ठयुगञ्चकर्षेदुत्तानदेहस्यतनौप्रमृज्यात् । स्नेहेनपार्ष्ण्य-ङ्गुलिपिण्डिकाश्चयेचास्यगात्रावयवारुगार्त्ताः ॥ २८॥ तांश्चावमृ-ज्यात्ससुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतोपधानः ॥ २९ ॥

दोनों पांवोंके अंगूठोंको थोडा २ खीचे तथा उसको सीधा लेटाकर पांवोंके तलुवोंको धीरे धीरे मसले, एडी, उंगुली, दोनों पिण्डली और जिस २ अंगमें पीडा प्रतीत होतीहो उन सबको तेलसे मसले, जिस प्रकार सब अंगोंको धीरे २ मसलतेहुए उसको निद्रा आजाय इस प्रकार उसकी सेवा करे। निद्रा आनेपर धीरेसे उसके ऊपर वस्त्र दे देवे ॥ २८ ॥ २९ ॥

निरूहणमें स्नेहकी मात्रा ।

भागाःकषायस्यतुपञ्चपित्तेस्नेहस्यपष्ठःप्रकृतौस्थितेच ।
वातेविवृद्धेतुचतुर्थभागोमात्रानिरूहेषुकफेऽष्टभागः ॥ ३० ॥

पित्तजनित रोगमें यदि वायु प्रकृतिस्थ हो तो ५ भाग क्वाथ और ६ ठां भाग स्नेह लेना चाहिये। यदि वायुकी वृद्धि हो तो क्वाथसे चौथा भाग स्नेह लेना चाहिये और कफकी अधिकतामें ७ भाग क्वाथ और आठवां भाग स्नेह लेना चाहिये। यह निरूहणमें स्नेहका प्रमाण है ॥ ३० ॥

निरूहणकी मात्रा ।

निरूहमात्राप्रसृतार्द्धमाद्येवर्षेततोऽर्द्धप्रसृताभिवृद्धिः । आद्वादशात्स्यात्प्रसृताभिवृद्धिरष्टादशाद्वादशतःपरंस्युः । आसप्ततेरुक्तमिदं प्रमाणमतः परंषोडशवद्विधेयम् । निरूहमात्राप्रसृतप्रमाणावाले चवृद्धेचमृदुर्विशेषः ॥ ३१ ॥

१ वर्षके बालकको निरूहणमें १ पल द्रव्यका प्रमाण है । इसके अनन्तर प्रतिवर्ष एकएक पल मात्रा बढाता जाय । १२ वर्षसे लेकर १८ वर्ष पर्यन्त एकएक वर्षमें दो दो पलकी मात्रा बढावे । १८ वर्षसे ७० वर्ष तक यही मात्रा रहने देवे । फिर ७० से उपरांत १६ वर्षकी मात्रा (२० पल) रहने दे बालकको एक प्रसृति (२ पल) और वृद्धावस्थामें प्रायः मृदुमात्रका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

शयनक्रम ।

नात्युच्छ्रितंनाप्यतिनीचपादंसपादपीठं शयनं प्रशस्तम् ।
प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नंप्राक्शीर्षकंशुक्लपटोत्तरीयम् ॥ ३२ ॥

जिस मनुष्यको वस्तिका प्रयोग किया जाय उसको ऐसी शय्यापर लेटाना चाहिये जो न तो अत्यंत ऊंची और न उसके पाये अति नीचेहों शय्यापर चढते समय या शय्यासे उतरनेके समय भी शय्याके समीप पांव रखनेके लिये कोई गद्दी आदि ऐसी होनी चाहिये जिसपर पांव रखकर उतरते चढते समय किसी प्रकार हलचल न पडे । शय्याके ऊपर ठीक लम्बा चौडा और नर्म विछौना होना चाहिये तथा शिरकी ओर और पांवोकी ओर बहुत सुन्दर नर्म तकिये रहना चाहिये और ओढनेके वस्त्र आदिक हाथ पांव पोंछनेके रुमाल यह सब उत्तम सफेद होने चाहिये । शय्याका सिरहना पूर्वकी ओर करके इस विधिसे शय्याको विछावे ॥ ३२ ॥

भोजनादिक्रम ।

भोज्यंपुनर्व्याधिमवेक्ष्यसम्यक्प्रकल्पयेद्यूपपयोरसाद्यैः ॥ ३३ ॥
सर्वेषुविद्याद्विधिमेतदाद्यं वक्ष्यामि वस्तीनत उत्तरीयान् ।
सम्यक्प्रणीताःखलुवस्तयोयेवातामयघ्नाश्चबलप्रदाश्च ॥ ३४ ॥

वस्तिकर्म करनेके अनन्तर व्याधिके दोष बल आदि विचारकर उसको यूप, दूध अथवा मांसरस आदि उसके भोजनके लिये कल्पना करे सब प्रकारकी वस्तियोंमें प्रथम यही विधि की जाती है । उसके उपरांत अन्य वस्तियोंको वर्णन करतेहैं । जिन वस्तियोंका सम्यक् प्रयोग किया जानेपर वातजनित व्याधियें नष्ट होतीहैं और शरीरमें बल प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वातनाशक वस्तियोंके योग ।

द्विपञ्चमूलस्य रसोम्लयुक्तः सच्छागमांसस्य सपूर्वशेषः ।
त्रिस्नेहयुक्तःप्रवरोनिरूहःसर्वानिलव्याधिहरःप्रदिष्टः ॥ ३५ ॥

दोनों पंचमूल और बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे, चौथाभाग शेप रहने पर उतारकर छानलेवे फिर यह क्वाथ तीनभाग और तेल चौथाभाग, कांजी क्वाथका सोलहवां भाग इन सबको मिलाकर निरूहण वस्तिका प्रयोग करे तो संपूर्ण वातव्याधियें नष्ट होतीहैं । किसीके मतमें ३ भाग तेल और ४ भाग क्वाथ मिलाना ऐसा लिखाहै ॥ ३५ ॥

स्थिरादिवर्गस्यबलापटोलत्रायन्तिकैरण्डयवैर्युतस्य । प्रस्थोरसश्छागरसार्द्धयुक्तःसाध्यःपरःप्रस्थरसश्चयावत् ॥ ३६ ॥ प्रियङ्गुकृष्णोघनकल्कयुक्तःसतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च । स्याद्दीपनोमांसवलप्रदश्चचक्षुर्बलश्चापिददातिसयः ॥ ३७ ॥

शालपर्णी आदिगण, बला, पटोलकी जड, त्रायमाण, एरण्डकी जड और यव इन सबको मिलाकर आध सेर लेवे । कूटकर ४ सेर जलमें पकावे । १ सेर जल शेप रहनेपर उतारकर छान ले । यह क्वाथ १ सेर, बकरेका मांसरस आध सेर इन दोनोंको मिला फिर पकावे । १ सेर (८० तोला) रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें फूलप्रियंगु, पीपल और नागरमोथा इनका ३ पल कल्क क्वाथसे चौथाभाग तेल आठवां भाग घी तथा५तोला शहद और६मांसे सेंधानमक मिलाकर खूब मथडाले । इस द्रव्यसे निरूहणवस्ति कीहुई अग्निको दीपन करतीहै मांस और बलको बढाती है तथा नेत्रोंमें शीघ्र बलके देनेवाली है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

एरण्डमूलात्त्रिपलंपलानिह्रस्वानिमूलानिचयानिपञ्च। रास्नाश्वगन्धातिबलागुडूचीपुनर्नवारग्वधदेवदारु॥३८॥भागापलांशामदनाष्टयुक्ताजलाढकेंसेकथितेऽष्टशेषे। पेष्याशताह्वाहवुषाप्रियङ्गुसपिप्पलीकंमधुकंवचाच ॥ ३९ ॥ रसाञ्जनंवत्सकबीजमुस्तंभागाक्षमात्रंलवणांशयुक्तम् । समाक्षिकस्तैलयुतःसमूत्रोवस्तिर्नृणांदीपनलेखनीयः ॥ ४० ॥

एरण्डकी जडका छिलका ३ पल, लघुपंचमूलकी पांचो औषधी एकएक पल तथा रास्ना, असगंध, अतिबला, गिलोय, पुनर्नवा, अमलतासका गूदा देवदारु यह सब एक

एक पल और मैनफल८पल इन सबको ८ सेर जलमें पकावे आठवां भाग शेप रहनेपर उतारकर छानले फिर, इसमें सौंफ हाउवेर, फूलप्रियंगु, मुलैठी, वच, रसौत, इन्द्रयव और नागरमोथा यह एकएक तोला और नमक ३ मासे। इन सबको बहुत बारीक पीसकर उस क्वाथमें मिलावे। फिर तेल, गोमूत्र और शहद मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति मनुष्योंकी जठराग्निको दीपन करती और मलको उखाडकर निकाल देती है॥ ३८-४०॥

एरण्डतेलकी वस्तिके गुण।

जङ्घोरुपादत्रिकपृष्ठशूलंकफावृतंमारुतनिग्रहश्च। विण्मूत्रवातग्रहणंसशूलमाध्मानतामश्मरिशर्करश्च॥ ४१॥ आनाहमर्शोग्रहणीप्रदोषानेरण्डवस्तिःशमयेत्प्रयुक्तः। वैद्येनसम्यक्कुशलेनचैपपुनर्वसूक्तःकृपयानराणाम्॥ ४२॥

एरण्डके तेलसे वैद्य विधिवत् वस्तिप्रयोग करे तो जंघा, ऊरु, पांव, त्रिक और पीठकी जकडन तथा पीडा दूर होजातीहैं और कफावृत वायु नष्ट होतीहै तथा विष्ठा और मूत्रका बंध और अधोवायुका रुकना तथा शूल, अफारा, पथरी,शर्करा यह दूर होतेहैं।एवं अनाह, अर्श और ग्रहणीके विकार यह सब दूर होते हैं। यह वस्तिप्रयोग भगवान् पुनर्वसुजीने मनुष्योंके ऊपर कृपाकरके कथन किया है। एरण्ड तैलकी वस्ति केवल एरण्डके तेलसेही नहीं दीजाती किन्तु उपरोक्त दशमूल वा शालपर्ण्यादि क्वाथमें अन्य तेलके वदलेमें एरण्डतेल मिलाकर वस्तिकर्म करना चाहिये॥ ४१॥ ४२॥

चतुष्पलेतैलघृतस्यभृष्टश्छागाच्छतार्द्धाद्दधिदाडिमाम्लः।
रसः सपेप्योवलवर्णमांसरेतोऽग्निदश्चान्ध्यशिरोरुजाघ्नः॥ ४३॥

२० पल बकरेके मांसको आठगुने जलमें पकावे छठां भाग शेप रहनेपर उतारकर छान ले। इस मांसरसमें दही, अनारका रस और थोडासा सेंधानमक मिलाकर२पल तेल और २ पल घीमें भून ले। इसमें मैनफल मिलाकर निरूहण करनेसे बल, वर्ण, मांस, शुक्र और जठराग्निकी वृद्धि होतीहै तथा मस्तकपीडा दूर होतीहै॥ ४३॥

जलद्विकंसेऽष्टपलंपलाशात्पक्त्वारसोऽर्द्धाढकमात्रशेषः। कल्कैर्वेलामागधिकापलाभ्यांयुक्तःशताह्वाद्विपलेनचापि॥ ४४॥ ससैन्धवः क्षौद्रयुतःसतैलोदेयोनिरूहोवलवर्णकारी। आनाहपार्श्वामययोनिदोषान्गुल्मानुदावर्त्तरुजश्चहन्यात्॥ ४५॥

आठपल ढाककी छालको २ आढक जलमें पकावे । जब आधा आढक शेष रहे तो उतारकर छानले फिर इसमें वला और पीपल, एक एक पल सौंफ २ पल, इनका वारीक कल्ककर तेल, शहद और थोडासा सेंधानमक मिला खूब मथडाले फिर इससे वस्ति करे तो इससे वल, वर्णकी वृद्धि होती है तथा अफारा, पार्श्वपीडा, योनिदोष, गुल्म, उदावर्त्त यह सब दूर होते हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

यष्ट्याह्वमूलाष्टपलेन सिद्धं पयः शताह्वाफलपिप्पलीभिः ।
युक्तंससर्पिर्मधुवातरक्तवैस्वर्य्यवीसर्पहितोनिरूहः ॥ ४६ ॥

मुलैठी ८ पल लेकर २ सेर दूध और ४ सेर पानी मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इसमें सौंफ, मैनफल,पीपल, घृत,शहद मिलाकर निरूहण वस्ति करना वातरक्त, स्वरभंग और विसर्परोगमें हितकारी है ॥ ४६ ॥

पित्तनाशक वस्ति ।

यष्ट्याह्वलोध्राभयचन्दनैश्चश्रृतंपयोऽय्यंकमलोत्पलैश्च ।
सशर्करंक्षौद्रयुतंसुशीतंपित्तामयान्हन्तिसजीवनीयम् ॥ ४७ ॥

मुलैठी, लोध, हरड, लालचन्दन, कमल और नलिकमल इनसे सिद्ध किया दूध, शीतल होनेपर खांड, शहद और जीवनीयगणका क्वाथ तथा कल्क मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो पित्तजनित संपूर्ण व्याधियें शान्त होती हैं ॥ ४७ ॥

द्विकार्षिकांश्चन्दनपद्मकर्द्धियष्ट्याह्वरास्नावृषशारिवाश्च । सलोध्रमञ्जिष्ठमथाप्यनन्तावलास्थिराद्यंतृणपञ्चमूलम् ॥४८॥ निःक्वाथ्य तोयेनरसेनतेनश्रृतंपयोऽर्द्धाढकमम्बुहीनम् । जीवन्तिमेदर्द्धिशतावरीभिर्वीराद्विकाकोलिकशेरुकाभिः ॥ ४९ ॥ सितोपलाजीवकपद्मरेणुप्रपौण्डरीकैःकमलोत्पलैश्च । लोध्रात्मगुप्तामधुकैर्विदारीमुञ्जातकैःकेशरचन्दनैश्च ॥ ५० ॥ पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहंससैन्धवं शीतलमेवदद्यात् । प्रत्यागतेधन्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ ५१ ॥ दाहातिसारप्रदरास्रपित्तहृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरांश्च । सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्सर्वामयान्पित्तकृतान्निहिन्ति ॥ ५२ ॥

लालचन्दन, पद्माख,ऋद्धि, मुलैठी, रास्ना, वांसा, शारिवा, लोध,मंजीठ, नीलदूर्वा, वलाकी जड, शालपर्ण्यादि पंचमूलकी पांचों औषधियें और तृणपंचमूलकी पांचों

औषधियें इन सबको दो दो कर्ष लेकर अठगुने जलमें पकावे। चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस क्वाथमें २ सेर दूध मिलाकर पकावे। जब पानी जलकर दूधमात्र शेष रहे तो इस दूधमें जीवन्ती, मेदा, ऋद्धि, सतावर, कुंभेर, काकोली, क्षीर काकोली, कसेरू, मिसरी, जीवक, कमलकी केसर, पंडचारा, कमल, नीलकमल, लोध, कौंचके बीज, मुलैठी, विदारीकन्द, मुंजातक, नागकेशर और लालचन्दन यह प्रत्येक छः छः मासा लेकर बहुत बारीक कर उस दूधमें मिलावे। तथा घी शहद और सेंधानमक मिलाकर मथडाले। इस शीतल दूधसे निरूहणबस्तिका प्रयोग करे। जब वस्तिद्रव्यका प्रत्यागमन होजाय अर्थात् दस्तद्वारा संपूर्णद्रव्य निकलजाय, तो सुखोष्ण जलसे देह शुद्ध करे। फिर जंगली जीवोंके मांसरस अथवा दूधके साथ शालीचावलोंका भात खिलावे। इस वस्तिके प्रयोगसे पित्तजनित दाह, अतिसार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और कामला आदि पित्तजनित संपूर्ण रोग दूर होते हैं ॥ ४८–५२ ॥

द्राक्षादिकाश्मर्य्यमधूकसेव्यैःसशारिवाचन्दनशीतपाक्यैः। पयःश्रृतंश्रावणिमुद्गपर्णीतुगात्मगुप्तामधुयष्टिकल्कैः ॥ ५३ ॥ गोधूमचूर्णैश्चतथाक्षमात्रैः सक्षौद्रसर्पिर्मधुयाष्टितैलैः। पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेनवस्तिंयुतंपित्तहरंविदध्यात् ॥ ५४ ॥ हृन्नाभिपार्श्वोदरदेहदाहेदाहेऽन्तरस्थेचसकृच्छ्रमूत्रे। क्षीणेक्षतेरेतसिचापिनष्टेपैत्तेऽतिसारेचनृणांप्रशस्तः ॥ ५५ ॥

द्राक्षा आदि फल (मुनक्का, कुंभेरफल, फालसा, हरड, बहेडा, आमला, उन्नाभ बडा बेर, जंगलीबेर और पीलू), कुंभेरके फल, महुआ, खस, सारिवा, लालचंदन और खरैटी इन सबके कल्कसे दूधको सिद्धकरे। इस दूधमें गोरखमुण्डी, मुग्धपर्णी, कौंचके बीज और मुलैठीका कल्क तथा गेंहूका चूर्ण यह एकएक तोला मिलावे। फिर इसमें शहद, घृत, मुलेठीसे सिद्ध कियाहुआ तैल, हरड, विदारीकंदका रस, ईखका रस और गुड मिलाकर वस्तिकर्म करे तो संपूर्ण पित्तविकार दूर होतेहैं तथा हृदय, नाभि, पार्श्व और उदरकी दाह, अंतर्दाह, मूत्रकृच्छ्र, क्षत, क्षीण, वीर्यकी क्षीणता और पित्त जनितअतिसार इन सब रोगोंमें मनुष्योंको इसे द्राक्षादि वस्तिकरना अत्यंत श्रेष्ठ मानाहै ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

कफरोगनाशक वस्ति।

कोशातकारग्वधदेवदारुमूर्वाश्वदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः। पक्त्वाकुलत्थान्बृहतीश्चतोयेरसस्यतस्यप्रसृतादशस्युः ॥ ५६ ॥ तांसर्षपैला-

मदनैःसकुष्ठैरक्षप्रमाणैःप्रसृतैश्चयुक्तान् । फलाह्वतैलस्यसमाक्षिकस्यक्षारस्यतैलस्यचसार्षपस्य ॥ ५७ ॥ दद्यान्निरूहंकफरोगिणेज्ञोमन्दाग्नयेचाप्यशनद्विषेच । पटोलपथ्यामरदारुभिर्वासपिप्पलीकैःक्वथितैर्जलाख्यैः ॥ ५८ ॥

कडवी तोरी, अमलतास, देवदारु, मूर्वा, गोखरू, कुटकी, अर्जक तुलसी, पाटला कुल्थी और बडी कटेली इन सबको एकएक पल लेकर ८० पल जलमें पकावे । २० पल शेप रहनेपर उतारकर छान ले । फिर इसमें सरसों, इलायची, मैनफल और कूठ यह एकएक कर्ष मिलावे । मैनफलका तेल २ पल, शहद २ पल, सरसोंका तेल २ पल और जवाखारका जल २ पल इन सबको मिलाकर कफरोग, मंदाग्नि और अरुचिवालोंको वस्तिकर्म करावे । अथवा पटोलकी जड, हरड, देवदारु और पीपलामूलके क्वाथसे उपरोक्त रीतिपर निरूहणकरे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

द्विपश्चमूलेत्रिफलांसबिल्वांफलानिगोमूत्रयुतःकषायः । कलिङ्गपाठाफलमुस्तकल्कःससैन्धवःक्षारयुतः सतैलः ॥ ५९ ॥ निरूहमुख्यःकफजान्विकारान्सपाण्डुरोगालसकामदोषान् । हन्यात्तथामारुतमूत्रसङ्गंवस्तेस्तथाटोपमथापिघोरम् ॥ ६० ॥

दशमूल, त्रिफला, बेलगिरि और मैनफल, इनसब द्रव्योंके क्वाथमें गोमूत्र तथा इन्द्रयव, पाठा, मैनफल और नागरमोथा इन सबका कल्क तथा सेंधानमक, जवखार और सरसोंका तेल मिलाकर निरूहण वस्ति करे तो कफजनित विकार, पाण्डुरोग, अलसक, आमदोष यह सब नष्ट होतेहैं । तथा वातजनित मूत्रका विबंध और वस्तिका अफारा यह सब दूर होतेहै ॥ ५९ ॥ ६० ॥

रास्नामृतैरण्डविडङ्गदारुसप्तच्छदोशीरसुराह्वनिम्बैः । श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठातिक्ताखुपर्णीदशमूलमुस्तैः ॥ ६१ ॥ त्रायन्तिकाशिग्रुफलत्रिकैश्चक्वाथःसपिण्डीतकतोयमूत्रः । यष्ट्याह्वकृष्णाफलिनीशताह्वारसाञ्जनश्वेतवचाविडङ्गैः ॥ ६२ ॥ कलिङ्गपाठाम्बुदसैन्धवैश्चकल्कैःससर्पिर्मधुतैलमिश्रः । अयंनिरूहःक्रिमिकुष्ठमेहब्रध्नोदराजीर्णकफातुरेभ्यः ॥ ६३ ॥ रूक्षौषधैरत्यपतर्पितेभ्यएतेपुरोगेष्वपिसत्सुदत्तः । निहत्यवातंज्वलनंप्रदीप्यविजित्यरोगांश्चबलंकरोति ॥ ६४ ॥

रास्ना, गिलोय, एरण्डकी जड, वायविडंग, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, खस, देवदारु, निम्बकी छाल, श्यामाक, चिरायता, पटोलपत्र, पाठा, कुटकी, दंती, दशमूल, नागरमोथा, त्रायमाण, सोंहजना और त्रिफला इन सब द्रव्योंको आठगुने जलमें पकाकर चौथाभाग शेष रहनेपर उतारले। इस काथमें मैनफलका क्वाथ,गोमूत्र तथा मुलैठी, पीपल, प्रियंगु, सौंफ, रसौत, सफेद वच, वायविडंग, इन्द्रयव, पाठा, नागरमोथा और सेंधानमक इन सबका वारीक कल्क, घृत, शहद तथा तैल मिलाकर निरूहण वस्ति करे। यह निरूहणवस्ति कृमी, कुष्ठ, प्रमेह, वद, उदरोग, अजीर्ण और कफविकारको नष्ट करतीहै। जो मनुष्य, रूक्ष औषधोंसे अपतर्पित हैं उनके भी इन उपरोक्त रोगोंमें विधिवत् प्रयोग किये जानेसे यह रोग नष्ट होतेहैं। तथा यह वस्ति वायुका नाशकरती, अग्निको प्रज्वलित करतीहै तथा रोगोंको जीततीहै और बलको वढातीहै ॥ ६१–६४ ॥

पुनर्नवैरण्डवृपाश्मभेदवृश्चीरभूतीकवलापलाशाः। द्विपञ्चमूलानि पलांशिकानिक्षुण्णानिधौतानिपलानिचाष्टौ ॥ ६५ ॥ विल्वंयवान्कोलकुलत्थधान्यफलानिचैकप्रसृतोन्मितानि । पयोजलाढ्कोढकयोःश्रृतंतत्क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥ ६६ ॥ वचाशताह्वामरदारुकुष्ठयष्ट्याह्वसिद्धार्थकपिप्पलीनाम् । कल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तं नात्युष्णशीतंगुडसैन्धवाक्तम् ॥ ६७ ॥ क्षौद्रस्यतैलस्यचसर्पिषश्चतथैवयुक्तंप्रसृतत्रयेण। दद्यान्निरूहंविधिनाविधिज्ञस्तंसर्वसंसर्गकृतामयघ्नम् ॥ ६८ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड, वांसा, पाषाणभेद, सफेद पुनर्नवा, अजवायन, बला, ढाक और दशमूलकी दश औषधियें इन सबको एकएक पल ले वेलगिरि ८ पल, यव, वेर,कुल्थी,धनियां और मैनफल यह दोदो पल ले। इन सबकोर सेर दूध और४ सेर जल मिलाकर पकावे। दूधमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेइस दूधमें वच,सौंफ, देवदारु, कूठ, मुलैठी, सरसों, पीपल, अजवायन और मैनफल इन सबको एकएक कर्ष लेकर वारीक कल्क बना मिलावे। तथा गुड, और सेंधानमक, मिलावे। और शहद, तेल और घृत यह तीनों दोदो पल मिलावे। सबको मथकर न बहुत शीतल, न बहुत गर्म रहनेपर विधिपूर्वक वस्तिप्रयोग करे। इस वस्तिसे सब प्रकारकी द्विदोषज व्याधियें नष्ट होतीहैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

वातादिभेदसे निरूहणक्रम ।

स्निग्धोष्णएकःपवनेनिरूहोद्वौस्वादुशीतौपयसाचपित्ते। त्रयःसमूत्राःकटुकोष्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरंविधेयाः ॥ ६९ ॥

वातव्याधिमें एक समय एक स्निग्ध और उष्ण निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । पित्तविकारमें मधुर, शीतल और दूधयुक्त एक समय दो निरूहण वस्तियें करना चाहिये । कफजनित व्याधिमें कटु, उष्ण, तीक्ष्ण द्रव्योंसे और गोमूत्रके साथ एककालमें ३ निरूहण वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये । इससे ज्यादे एक समय वस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ६९ ॥

वातादिभेदसे निरूहणके अनंतर पथ्य ।

रसेनवातेप्रतिभोजनंस्यात्क्षीरेणपित्तेतुकफेचयूषैः । तथानुवास्येपुचबिल्वतैलंस्याज्जीवनीयंफलसाधितञ्च ॥ ७० ॥

वातजनित रोगोंमें निरूहणके पश्चात् मांसरसका पथ्य, पित्तव्याधिमें दूधका पथ्य और कफजनित व्याधिमें कुलथीआदिका यूप देना चाहिये । इसी प्रकार यदि वातव्याधिमें निरूहणके अनन्तर अनुवासन करना पडे तो बिल्वादि दशमूलसे सिद्ध किया तैल, पित्तव्याधिमें जीवनीयगणसे सिद्ध किया तैल और कफव्याधिमें मैनफलआदि गणसे सिद्ध किये तैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७० ॥

अध्यायका उपसंहार ।

इतीदमुक्तंनिखिलंयथावद्वस्तिप्रदानस्यविधानमग्र्यम् । योऽधीत्यविद्वानिहवस्तिकर्मकरोतिलोकेलभतेससिद्धिम् ॥ ७१ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेवस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नामतृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इस प्रकार वस्तिके विधानको तथा वस्तिके प्रधान २ योगोंको यथार्थरूपसे कथन कर दियाहै । जो विद्वान् इसको पढकर विधिवत् वस्तिकर्मका प्रयोग करता है सो संसारमें सिद्धिको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥

इति श्रीचरकप्रणीत० स० सिद्धिस्थाने प्र० भा० टी० वस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

आथातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम स्नेहव्यापादिका सिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

स्नेहवस्तीन्निबोधेमान्वातपित्तकफापहान् ।
मिथ्याप्रणिहितानाञ्चव्यापदःसाचिकित्सिताः ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! अब वात, पित्त और कफको शांत करनेवाली स्नेहवस्तियोंकी विधिको श्रवण करो, और इन वस्तियोंके मिथ्यायोग होनेसे जो उपद्रव होतेहैं उनको तथा उनकी चिकित्साको भी सुनो ॥ १ ॥

वातघ्न अनुवासन योग।

दशमूलंबलांरास्नामश्वगन्धांपुनर्नवाम्। गुडूच्येरण्डभूतीकभार्गी-वृषकरोहिषाम् ॥ २ ॥ शतावरींसहचरंकाकनासांपलांशिकाम् । यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥३॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वाद्रोणशेषेणतेनच । तैलाढकंसमक्षीरंजीवनीयैःपलोन्मितैः । अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥ ४ ॥

दशमूल, बला, रास्ना, असगंध, पुनर्नवा, गिलोय, एरण्डकी जडका छिलका, अजवायन, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, कालावांसा और काकनासा यह सब एकएक पल लेवे । जौ उडद, अलसी, वेर और कुलथी यह प्रत्येक दो दो पल लेवे । इन सबको मिलाकर ४ द्रोण जलमें पकावे । एकद्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस १ द्रोण क्वाथमें १ आढक तैल, १ आढक दूध, जीवनीयगणकी संपूर्ण औषधियोंका एकएक पल कल्क लेवे । फिर सबको मिलाकर पकावे । तैलमात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस तैलसे अनुवासनवस्ति करें तो सब प्रकारके वातविकार नष्ट होते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

आनूपानांवसातद्वज्जीवनीयोपसाधिता ॥ ५ ॥

इसी प्रकार अनूपसंचारी जीवोंकी चर्बीको उपरोक्त द्रव्योंके क्वाथ और जीवनीयगणके कल्कसे तैलके समान सिद्धकरे । फिर इससे अनुवासनकरे तो संपूर्ण वातविकार दूर होते हैं ॥ ५ ॥

शताह्वायवबिल्वाम्लैःसिद्धंतैलंसमीरणे ।
सैन्धवेनाग्निवर्णेनतप्तश्चानिलनुद्धृतम् ॥ ६ ॥

सौंफ, जौ और बेलकी गिरिका कल्क, तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलसे अनुवासन करे । इस तैलके अनुवासन करनेसे वातव्याधियें दूर होतीहैं । अथवा सेंधानमकको आगमें तपाकर लाल होनेपर घृतमें बुझावे इस प्रकार

कईबार बुझाकर सुहाते सुहाते उस घृतसे अनुवासन वस्ति करे तो संपूर्ण वातरोग शान्त होते हैं ॥ ६ ॥

जीवंत्यादि युग्मकस्नेह ।

जीवन्तींमदनंमेदांश्रावणींमधुकंवलाम् । शताह्वर्षभकौकृष्णांकाकनासांशतावरीम् ॥ ७ ॥ स्वगुप्तांक्षीरकाकोलींकर्कटाख्यांशटींवचाम् । पिष्ट्वातैलंघृतंक्षीरेसाधयेत्तच्चतुर्गुणे ॥ ८ ॥ बृंहणंवातपित्तघ्नंवलशुक्राग्निवर्द्धनम् । मूत्ररेतोरजोदोपान्हरेत्तदनुवासनात् ॥९॥

जीवन्ती, मैनफल, मेदा, गोरखमुण्डी, मुलैठी, बला, सौंफ, ऋषभक, पीपल, काकनासा, शतावर, कौंचके बीज, क्षीरकाकोली, काकडासिंगी, कचूर और वच इन सबका कल्क आधसेर, तेल १ सेर, घी १ सेर, दूध ८ सेर । इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे कियाहुआ अनुवासन, बृंहण, वातपित्तनाशक, बलको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक, जठराग्निका बल बढाने वाला तथा मूत्र, वीर्य और रजके दोषोंको हरनेवाला होताहै ॥ ७-९ ॥

पित्तनाशक अनुवासनयोग ।

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् ।
तैलपादंघृतंसिद्धंपित्तघ्नमनुवासनम् ॥ १० ॥

ज्वरकी चिकित्सामें जो चन्दनादि तैलके द्रव्य कहे हैं उन सबको अथवा उनमेंसे जितने मिलसकें लेकर कल्क बनावे । यह कल्क १ पाव, तैल १ पाव, घृत १ सेर, दूध ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । स्नेहमात्र शेप रहनेपर उतारकर छानले । इस स्नेहसे अनुवासन करे तो पित्तविकार दूर होते हैं ॥ १० ॥

वातकफजनित रोगनाशक अनुवासन ।

सैन्धवंमदनंकुष्ठंशताह्वांनिचुलंवलाम् । ह्रीवेरंमधुकंभार्गींदेवदारुसकट्फलम् ॥ ११ ॥ नागरंपुष्करंमेदांचविकांचित्रकंशटिम्। विडङ्गातिविषेश्यामांहरेणुंनीलिनींस्थिराम् ॥ १२ ॥ विल्वाजमोदेकृष्णाश्चदन्तींरास्नाश्चपेपयेत् । साध्यमेरण्डतैलंवातैलंवाकफरोगनुत् ॥ १३ ॥ व्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् । आनाहमश्मरीञ्चैवहन्यात्तदनुवासनात् ॥ १४ ॥

संधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, निचुल (हिंजुल), बला, मुलैठी, भारंगी, देवदारु, कायफल, सोंठ, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चित्रक, कचूर, वायविडंग, अतीस, कालीनिशोथ, रेणुका, नीलिनी, शालपर्णी, बेलगिरि, अजमोद, पीपल, दंती और रास्ना इन सबको एकएक कर्ष लेकर कल्क बनावे। इस कल्कसे एरण्डतैल अथवा तिलोंके तेलको सिद्ध करे। इस तेलसे अनुवासनवस्ति करनेसे कफ वातके रोग नष्ट होते हैं तथा बद, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श प्लीहा, प्रमेह, वातरक्त, अफारा और पथरी यह सब नष्ट होतेहैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

कफनाशक तैलयोग।

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्बिल्वाद्येनगणेनवा।
तैलंकफहरैर्वापिकफघ्नंकल्पयेद्भिषक् ॥ १५ ॥

मैनफलका कल्क और कांजी अथवा बिल्वादि पंचमूलके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल अथवा कफनाशक पिप्पल्यादिगणके कल्क और क्वाथसे सिद्ध-किया तैल अनुवासन करनेसे कफ विकारोंको नष्ट करताहै ॥ १५ ॥

विडङ्गैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृता। जातिप्रवालनिर्गुण्डीदशमूलाखुपर्णिकाः ॥ १६ ॥ निम्बपाठासहचरशम्पाककरवीरकम्। एषांक्वाथेनविपचेत्तैलमेभिश्चकल्कितैः ॥ १७ ॥

वायविडंग, एरण्डकी जडकी छाल, हल्दी, पटोलपत्र, त्रिफला, गिलोय, चमेलीके पत्ते, संभालू, दशमूल, दंती, नीमकी छाल, पाठा, कालाबांसा, अमलतास, और कनेरकी छाल इन सबके कल्क और क्वाथसे सिद्ध किया तैल अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कफरोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

फलबिल्वत्रिवृत्कृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः। सप्तपर्णवचोशीरदार्वीकुष्ठकलिङ्गकैः ॥१८॥ लतायष्टिशताह्वाग्निशटीचोरकपौष्करैः। तत्कुष्ठानिक्रिमीन्मेहानर्शांसिग्रहणीगदम् ॥१९॥ क्लीबत्वंविषमाग्नित्वं मलंदोषत्रयंतथा। प्रयुक्तंप्रणुदत्याशुपानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ २० ॥

मैनफल, बेलकी गिरि, निशोथ, पीपल, रास्ना, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णकी छाल, वच, खस, दारुहल्दी, कूठ, इन्द्रयव, फूल प्रियंगु, मुलैठी, सौंफ, चित्रक, कचूर, चोरक, पोहकरमूल इन सबके कल्क और क्वाथसे सिद्ध कियाहुआ तैल पान, अभ्यंग और अनुवासनमें प्रयोग करनेसे कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, बवासीर, ग्रहणी, नपुंसकता, विषमाग्नि, मल और त्रिदोषको नष्ट करताहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

स्नेहवस्तिके गुण ।

व्याधिव्यायामकर्माध्वक्षीणाबलनिरौजसाम् । क्षीणशुक्रस्यचात्यर्थ तीवस्नेहवस्तिबलप्रदः ॥ २१ ॥ पादजंघोरुपृष्ठस्यकट्याश्चास्थिरतां पराम् । जनयेदप्रजानाश्चप्रजांस्त्रीणांतथानृणाम् ॥ २२ ॥

जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, अन्य श्रमकारक कर्म और मार्ग चलनेसे क्षीण हो गये हैं वा अन्य किसी मैथुनादि कारणसे क्षीण हो गये हैं, जो मनुष्य निर्बल ओजरहित और क्षीणवीर्यवाले हैं उनको स्नेहवस्तिका प्रयोग कराना अत्यंतही बलको देनेवाला है । तथा पांव, जंघा, ऊरु, पीठ और कमरको यह स्नेहवस्ति अत्यंत दृढ बना देती है । जिन स्त्रीपुरुषोंको सन्तान नहीं होती उनको यह स्नेहवस्ति सन्तानको देनेवाली है । अर्थात् विधिवत् स्नेहवस्ति करनेसे क्षीणता और रजवीर्यके विकार दूर होकर सन्तान होने लगती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

स्नेहवस्तिमें ६ व्यापद ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैरावृतस्यच ।
अभुक्तेचप्रणीतस्यस्नेहवस्तेःषडापदः ॥ २३ ॥

स्नेहवस्तिके प्रयोगमें मिथ्या योग होनेसे छः प्रकारकी आपद अर्थात् विघ्न होताहै जैसे वस्तिका वातसे आवृत होना, पित्तसे आवृत होना, कफसे आवृत होना, अन्नसे आवृत होना और पुरीषसे आवृत होना तथा विना भोजन किये वस्तिका प्रयोग करनेसे उस द्रव्यकी खाली पेटमें कण्ठकी ओर आकर्षित होना यह छः आपत्तियें स्नेहवस्तिमें होसकतीहैं ॥ २३ ॥

इन ६ आपदोंके कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिकेवातेपित्तेऽत्युष्णःकफेमृदुः ।
अतिभुक्तेगुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा ॥ २४ ॥
दत्तस्तैरावृतःस्नेहोनयात्यभिभवादधः ।
अभुक्तेनावृतत्वाच्चयात्यूर्द्धंतस्यलक्षणम् ॥ २५ ॥

बहुत बढीहुई वायुमें शीतल वा अल्प वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य वायुसे आवृत होकर प्रत्यागमन अर्थात् बाहर नहीं निकलता । इसी प्रकार बढेहुए पित्तमें अतिउष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य पित्तसे आवृत होकर रुकजाताहै । एवं कफकी अधिकतामें मृदुवस्तिका प्रयोग करनेसे वह द्रव्य कफसे आवृत होकर बाहर नहीं निकलनेपाता । बहुत भोजनकरनेके अनन्तर गुरुवस्तिका प्रयोग करनेसे

वह अन्नावृत होजाती है और भारी मलके संचयमें अल्प बल वस्तिका प्रयोग करनेसे वस्तिद्रव्य मलावृत होजाता है। अत्यंत भूखमें वस्तिकर्म करनेसे वह खाली पेटमें ऊपरकी ओर चढजाताहै। इस प्रकार इन छः व्यापदोंमें वस्ति द्रव्य बाहरको नहीं लौटता ॥ २४ ॥ २५ ॥

वातावृतवस्तिका लक्षण।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः।
पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्यात्स्नेहंवातावृतंभिषक् ॥ २६ ॥

अंगडाई, ज्वर, अफारा, शीत, स्तम्भता, दोनों ऊरुस्थलोंमें पीडा, पार्श्वपीडा, पिण्डलियोंमें वेष्टन कीसी पीडा यह सब लक्षण वातावृत स्नेहवस्तिके हैं। अर्थात् वस्ति द्रव्य वायुसे आवृत होजाय तो स्नेहवस्ति करनेके उपरांत यह अंगडाई आदि लक्षण होजाते हैं ॥ २६ ॥

वातावृतवस्तिकी चिकित्सा।

स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तंरास्नापीतद्रुतिल्वकैः।
सौवीरकसुराकोलकुलत्थरससाधितैः ॥ २७ ॥
निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्चमूलिकैः।
ताभ्यामेवचतैलाभ्यांसायंभुक्तेऽनुवासयेत् ॥ २८ ॥

वातावृत वस्तिमें वस्तिद्रव्यको बाहर निकालनेके लिये रास्ना, सरलकाष्ठ और लोध्रका कल्क, सौवीरक, सुरा, बेर और कुल्थीका क्काथ इन सबको मिलाकर एरण्डतैलसे स्निग्धकर कांजी और सेंधानमक मिला गर्मगर्म निरूहण करे। अथवा गोमूत्र और पंचमूलके क्काथसे निरूहणवस्ति करे। और इन्ही दो प्रकारके निरूहण द्रव्योंके क्काथ, कल्कसे सिद्ध किये तैलोंसे भोजन करनेके अनन्तर अनुवासनवस्ति करे ॥ २७ ॥ २८ ॥

पित्तावृतस्नेहके लक्षण और चिकि०।

दाहरागतृषामोहतमकज्वरदूषणैः।
विद्यात्पित्तावृतंस्वादुतिक्तैस्तंवस्तिभिर्हरेत् ॥ २९ ॥

शरीरमें दाह, लालवर्ण, प्यास, मोह, तमकश्वास और ज्वर यह लक्षण स्नेहवस्ति करनेके अनन्तर होजाय तो पित्तावृत स्नेह जानना। इसमें मधुर और पित्तद्रव्योंसे निरूहणकर स्नेहको निकालना चाहिये ॥ २९ ॥

कफावृतस्नेहके लक्षण, चिकित्सा ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः ।
संमूर्च्छाग्लानिभिर्विद्याच्छ्लेष्मणास्नेहमावृतम् ॥ ३० ॥

तंद्रा, शीत, ज्वर, आलस्य, मुखसे लारका गिरना, अरुचि, भारीपन, मूर्च्छा और ग्लानि यह लक्षण स्नेहवस्तिके अनन्तर होजांय तो कफावृतस्नेह जानना ॥ ३० ॥

कषायकटुतीक्ष्णोष्णैःसुरामूत्रोपसाधितैः ।
फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ॥ ३१ ॥

कफावृत स्नेहमें चरपरे, कडुवे, कसैले और उष्ण द्रव्योंका कल्क, सुरा और गोमूत्रमें मिलाकर उसमें मैनफलका कल्क, तेल और कांजी मिला निरूहणवस्ति करके स्नेहको निकाले ॥ ३१ ॥

अन्नावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिज्वरशूलाङ्गमर्दनैः ।
आमलिंगैःसदाहैस्तंविद्यादत्यशनावृतम् ॥ ३२ ॥

छर्दी, मूर्च्छा, अरुचि, ग्लानि, ज्वर, शूल, अंगडाई, आमके लक्षण और दाह यह सब लक्षण हों तो अन्नावृत स्नेह जानना ॥ ३२ ॥

कटूनांलवणानाञ्चक्वाथैश्चूर्णैश्चपाचनम् ।
विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ॥ ३३ ॥

अन्नावृत स्नेहमें कटु और लवण द्रव्यके क्वाथ और चूर्णसे आमदोषको पाचन करना चाहिये । तथा मृदुविरेचन और आमनाशक क्रिया करना हितकारक है ॥ ३३ ॥

मलावृतस्नेहके लक्षण और चिकित्सा ।

विण्मूत्रानिलसङ्गार्त्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः । स्नेहंविडावृतंज्ञात्वा स्नेहस्वेदैःसवर्त्तिभिः ॥ ३४ ॥ श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्चनिरूहैःसानुवासनैः । निर्हरेद्विधिनासम्यगुदावर्त्तहरेणच ॥ ३५ ॥

यदि स्नेहवस्ति ग्रहण करनेके अनन्तर विष्ठा, मूत्र और अधोवायुका विबंध हो तथा भारीपन ,अफारा और हृदयमें पीडा होय तो विष्ठासे आवृत हुआ स्नेह जानना मलावृत स्नेहमें उसके निकालनेके लिये स्नेहन, स्वेदन और वर्तिप्रयोग करना चाहिये । तथा काली निशोयका कल्क और बिल्वादि पंचमूलका क्वाथ मिलाकर

निरूहणवस्ति करे और इसी कल्क और क्वाथसे सिद्धकिये तैलका अनुवासन करे। तथा मलावृत स्नेहवस्तिमें उदावर्तनाशक संपूर्ण क्रिया करना हितकारक है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

ऊर्द्धगतस्नेहवस्तिके लक्षण और चिकित्सा।

अभुक्तेशून्यपायौवावेगात्स्नेहोऽतिपीडितः।
धावत्यूर्द्धंततःकण्ठादूर्द्धेभ्यःखेभ्यएत्यपि ॥ ३६ ॥

विना भोजन किये खाली पेट स्नेहवस्ति करनेसे वह स्नेह शून्यगुदासे पीडित होकर वेगसे ऊपरको गमन करताहै। फिर कण्ठसे ऊपर अर्थात् मुख और नासिका द्वारा निकलने लगताहै ॥ ३६ ॥

मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धोयवकोलकुलत्थकान्।
तत्सिद्धतैलइष्टोऽत्रनिरूहःसानुवासनः ॥ ३७ ॥

वस्तिका स्नेह ऊर्द्धगत होनेपर गोमूत्र, दोनों प्रकारके निशोथका कल्क तथा यव, बेर और कुल्थीका क्वाथ इन सबको मिलाकर निरूहण करे और इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध किये तैलसे अनुवासनकर्म करे ॥ ३७ ॥

कण्ठादागच्छतःस्तम्भःकण्ठग्रहविरेचनैः।
छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्चतस्यकार्य्यंनिवर्त्तनम् ॥ ३८ ॥

यदि उर्द्धगत स्नेह कण्ठद्वारा निकलने लगे तो कण्ठको भीतरकी ओर घूंट आकर्षण करनेके समान दबाकर स्नेहको रोके तथा वमननाशक और विरेचनकारक चिकित्सा करना चाहिये ॥ ३८ ॥

उपेक्षणीय स्नेह।

यस्यनोपद्रवंकुर्य्यात्स्नेहवस्तिरनिःसृतः।
सर्वोऽल्पोवावृतोरौक्ष्यादुपेक्ष्यःसविजानता ॥ ३९ ॥

जिस मनुष्यके रूक्ष शरीरमें अनुवासन वस्तिद्वारा प्राप्त किया स्नेह रूक्षताके कारण बाहर न निकले तथा कोई उपद्रव भी न करे तो उस मनुष्यके शरीरमें संपूर्ण स्नेह अथवा स्नेहका थोडा भाग हो तो उपेक्षा करना चाहिये अर्थात् उसको निकालनेका यत्न न करे ॥ ३९ ॥

स्नेह मुक्तहोनेपर कर्म।

मुक्तस्नेहंद्रवोष्णञ्चलघुपथ्योपसेवनम्।
भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुवास्यःग्यहात्त्र्यहात् ॥ ४० ॥

इस प्रकार आवृत स्नेह निकलजानेके अनन्तर उस मनुष्यको मात्रानुसार हलका सुखोष्ण पथ्य सेवन कराना चाहिये फिर तीन तीन दिनके अनन्तर मात्रानुसार अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे ॥ ४० ॥

वस्तिकर्ममें जल ।

धान्यनागरसिद्धंहितोयंदद्याद्विचक्षणः ।
व्युषितायनिशाःकल्यमुष्णंवाकेवलंजलम् ॥ ४१ ॥

इस मनुष्यको धनियां और सोंठसे सिद्ध किया जल पीनेको देवे अथवा रात्रिमें धनियां और सोंठको जलमें भिगोकर वह जल पीनेको देवे । अथवा केवल गर्मजल पिलावे ॥ ४१ ॥

गर्मजलके गुण ।

स्नेहाजीर्णंजरयतिश्लेष्माणंतद्भिनत्तिच । मारुतस्यानुलोम्यश्चकुर्य्यादुष्णोदकंनृणाम् ॥ ४२ ॥ वमनेवाविरेकेचनिरूहेसानुवासने । तस्मादुष्णोदकंदेयंवातश्लेष्मप्रशान्तये ॥ ४३ ॥

गर्मजल स्नेहके अजीर्णको पचाता है । कफको भेदन करता और वायुको अनुलोमन करताहै । इसलिये वमन, विरेचन, निरूहण और अनुवासनमें कफवातकी शांतिके लिये गर्मजल पिलानाही श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

स्नेहपाचनका काल ।

रूक्षनित्यस्तुदीप्ताग्निर्व्यायामीमारुताशयी । वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्त्ताश्चदिनेदिने ॥ ४४ ॥ एषाश्चाशुजरांस्नेहोयात्यम्बुसिकतास्विव । अतोऽन्येषांत्र्यहात्प्रायःस्नेहंपचतिपावकः ॥ ४५ ॥

जो मनुष्य नित्य रूक्ष द्रव्योंका सेवन करनेवाले हैं, जिनकी अग्नि दीप्त है, जो नित्य व्यायाम करते हैं, जिनके कोष्ठमें वायुका बल है । जिनके वंक्षण और श्रोणी वातग्रस्त हैं तथा जिनको उदावर्त्त है और जो नित्य वातग्रस्त रहते हैं इन सबको दिया हुआ स्नेह इस प्रकार शीघ्र जीर्ण होजाताहै जैसे बालू (रेत) में डालाहुआ जल शीघ्र शोषण होजाताहै । इनके सिवाय और मनुष्योंकी जठराग्नि स्नेहको प्रायः तीन दिनमें पाचन कर सकतीहै ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अनुवासनीय स्नेह विधान ।

नत्वामंप्रणयेत्स्नेहंसह्यभिष्यन्दयेद्गुदम् ।
सावशेषश्चकुर्वीतवायुःशेषेहितिष्ठति ॥ ४६ ॥

अनुवासन वस्तिमें विना सिद्ध कियाहुआ अर्थात् कच्चा स्नेह कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। क्योंकि कच्चे स्नेहसे गुदा अभिष्यंदित अर्थात् क्लेदित होजाती है। और वस्तिका संपूर्ण स्नेहही मलाशयमें प्रवेश कर देना नहीं चाहिये, उसमें थोडासा स्नेह पिचकारीमें बाकी रहनेदेना उचित है। क्योंकि वस्तिका संपूर्ण स्नेह भीतर चलेजानेपर साथहीवायु प्रवेशकर जाती है इसलिये अनुवासन करते समय थोडा स्नेह बस्तिमें बचालेना चाहिये ॥ ४६ ॥

उभयस्नेहप्रयोगका निषेध।

नचैवगुदकण्ठाभ्यांदद्यात्स्नेहमनन्तरम्।
उभयस्मात्समंगच्छन्दोषवह्नीन्दूषयेत्समम् ॥ ४७ ॥

एकही समय गुदा द्वारा अनुवासन स्नेह और मुखद्वारा स्नेहपान इन दोनों स्नेहोंका प्रयोग करना उचित नहीं। दोनों स्नेहोंका एक समय प्रयोग करनेसे जठराग्नि दूषित होजाती है ॥ ४७ ॥

केवल एकप्रकारकी वस्तिके निरंतरसेवनका निषेध।

स्नेहवस्तिंनिरूहंवानैकमेवातिशीलयेत्। उत्क्लेशाग्निवधौस्नेहान्निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ ४८ ॥ तस्मान्निरूढःस्नेह्यःस्यान्निरूढश्चानुवासितः। स्नेहशोधनयुक्त्यैववस्तिकर्मत्रिदोषनुत् ॥ ४९ ॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहणवस्ति इन दोनोंमेंसे किसी एक वस्तिका निरन्तर अकेले ही प्रयोग करना उचित नहीं क्योंकि केवल स्नेहवस्तिकाही निरन्तर प्रयोग करते रहनेसे स्नेहद्वारा उत्क्लेशित होकर अग्निका नाश होजाताहै। और केवल निरूह वस्तिकाही प्रयोग करते रहनेसे वायुके बढजानेका भय है। इसलिये जिसको निरूहण वस्तिका प्रयोग करना हो उसको प्रथम अनुवासनवस्ति द्वारा स्निग्ध करना चाहिये और निरूहण वस्तिके अनन्तर फिर अनुवासन वस्तिका प्रयोग करे। इस प्रकार स्नेहवस्ति (अनुवासनवस्ति) और शोधनवस्ति (निरूहणवस्ति) का क्रमानुसार प्रयोग करना चाहिये। इस प्रकार युक्तिसे प्रयुक्त की हुई वस्ति तीनों दोषोंको नष्ट करती है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

मात्रावस्तिका प्रयोग।

कर्मव्यायामभाराध्वपानस्त्रीकर्षितेषुच। दुर्बलेवातभग्नेचमात्रावस्तिःसदामतः ॥ ५० ॥ ह्रस्वायाःस्नेहमात्रायामात्रावस्तिःसमोभवेत्।यथेष्टाहारचेष्टस्यसर्वकालंनिरत्ययः ॥५१॥बल्यंसुखोपचर्य्यंचसुखंसृष्टपुरीषकृत्। स्नेहमात्राविधानंहिबृंहणंवातरोगनुत् ॥५२॥

जो मनुष्य श्रमकारी कर्म, व्यायाम, भार, मार्गचलनेकी थकावट सवारी और स्त्री संग आदि कारणोंसे कर्षित हैं तथा जो दुर्वल और भग्न वातरोगी हैं उनको मात्रा वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। मात्रावस्ति स्नेहकी लघुमात्राके समान होती है। मात्रावस्तिके अनन्तर यथेष्ट अहारका सेवन करे। मात्रावस्ति किसी कालमें भी किसीप्रकारका उपद्रव नहीं करती तथा वलकारक, सुखसाध्य, सुखकारक, सुखपूर्वक मलको निकालनेवाली होती है। मात्रानुसार स्नेह प्रयोग करनेसे शरीरमें वल आता है और संपूर्ण वातरोग नष्ट होतेहैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ।

वातादीनांशमायोक्ताःप्रवराःस्नेहवस्तयः। तेपाश्चाज्ञप्रयुक्तानां व्यापदःसचिकित्सिताः ॥ ५३ ॥ प्राग्भोज्यंस्नेहवस्तेर्यद्धुवंयेऽर्हा-रुयहाश्चये। स्नेहवस्तिविधिश्चोक्तोमात्रावस्तिविधिस्तथा ॥ ५४ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेस्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नामचतुर्थोऽध्यायः॥४॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि इस स्नेहन व्यापादिका सिद्धि नामक अध्यायमें वातादि दोषोंकी शान्तिके लिये उत्तम २ स्नेह वस्तियोंका वर्णन उनके अयोग्य रीतिपर प्रयोग करनेसे उत्पन्न होनेवाले विकार उनकी चिकित्सा तथा वस्ति प्रयोगसे प्रथम जिस प्रकारका आहार करना चाहिये जो स्नेहवस्ति प्रयोग करनेके योग्य हैं जिनको तीन दिनमें स्नेहकी मात्रा पचती है तथा स्नेहवस्तिकी विधि और मात्रावस्तिकी विधि यह संपूर्ण वर्णन किया गया हैं ॥ ५३ ५४

इतिश्री० च० आ० सिद्धिस्थाने प्र० भा० टी० स्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः।

अथातो नेत्रवस्तिपादिकासिद्धिं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः।

अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिकी व्याख्या करतेहैं इस प्रकार भगवानात्रेयजी कहने लगे ॥

अथनेत्राणिवस्तींश्चश्रृणुवर्ज्यानिकर्मसु।
नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्यव्यापदःसचिकित्सिताः ॥ १ ॥

जिस प्रकारकी वस्तिनेत्र (वस्तिकी मुखनाल), और वस्तिएं, वस्तिकर्ममें वर्ज-नीय हैं। उनका श्रवण करो और अज्ञानी वैद्यके हाथसे उनके प्रयोग करनेसे जो जो बिगाड होते हैं उनको तथा उनकी चिकित्साको श्रवण करो ॥ १ ॥

त्याज्य वस्तिनेत्र ।

ह्रस्वंदीर्घंतनुस्थूलंजीर्णंशिथिलबन्धनम् ।
पार्श्वच्छिद्रंतथावक्रमष्टौनेत्राणिवर्जयेत् ॥ २ ॥

प्रमाणसे छोटा, प्रमाणसे बडा, पतला, मोटा, पुराना, शिथिलबंधन, जिसके किनारोंमें छिद्र हों और टेढा यह आठप्रकारके वस्तिनेत्र (वस्तिनलके अग्रभाग) त्याज्य होते हैं अर्थात् वस्तिकर्ममें ग्रहणकरने योग्य नहीं ॥ २ ॥

उनके उपद्रव ।

अप्राप्त्यतिगतिक्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः ।
गुदपीडागतिर्जिह्मातेषांदोषायथाक्रमम् ॥ ३ ॥

यदि वस्तिनल छोटा हो तो यथास्थान पहुंच नहीं सकता । लंबा होनेसे अपने योग्य स्थानसे आगे बढकर हानि करताहै । बहुत पतला वस्तिनेत्र होनेसे यथो-चित कार्य नहीं कर सकता । मोटा होनेसे उसके मुखद्वारा मल आकर्षित होने लगताहै । जीर्ण नल गुदामें ही टूट जाताहै । शिथिलबंधन होनेसे नल वस्तिसे खुल-जाताहै या वस्ति द्रव्य गिरने लगताहै । छिद्रयुक्त वस्तिनल होनेसे गुदामें पीडा होती है । और टेढे नलसे वस्तिकी गति भी टेढी होजातीहै । इस लिये इन आठ प्रकारके वस्तिके मुखनलोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

त्याज्य वस्ति ।

मांसलच्छिद्रविषमस्थूलजालकवातलाः ।
छिन्नःक्लिन्नश्चतानष्टौवस्तीन्कर्मसुवर्जयेत् ॥ ४ ॥

मांसल, छिद्रयुक्त, विषम, स्थूल, जालक, वातल, (वायु भराहुआ), छिन्न और क्लेदयुक्त यह आठ प्रकारके वस्तिपुटक ग्रहण नहीं करने चाहिये ॥ ४ ॥

विषमादि वस्तियोंके विकार ।

गतिवैषम्यविस्रत्वस्रावदौर्गन्ध्यविट्स्रवाः ।
फेनिलच्युतधार्य्यत्वंवस्तेःस्याद्वस्तिदोषतः ॥ ५ ॥

वस्तिपुट विषम हो तो वस्तिकी गति विषम होती है । मांसल होनेसे विस्र (दुर्गंध) युक्त होताहै । छिद्रयुक्त होनेसे स्राव होताहै । स्थूल होनेसे यथोचित हाथसे पकडकर

प्रथमन नहीं हो सकता जालक होनेसे स्रवताहै। वातल होनेसे वस्तिद्रव्यमें झाग होजातीहै। छिन्न होनेसे वस्तिद्रव्य बाहिर गिर पडताहै। और क्लिन्न होनेसे वस्तिद्रव्य यथोचित निकलता नहीं वस्तिमें रहजाताहै। इसलिये इन आठ प्रकारकी वस्तिके पुटक त्याज्य होते हैं ॥ ५ ॥

वस्तिके प्रणेताके दोष।

सवातातिद्रुतोत्क्षिप्ततिर्य्यगुल्लिप्तकम्पिताः ।
अतिवाह्यगमन्दातिवेगदोषाःप्रणेतृतः ॥ ६ ॥

वस्ति प्रयोग करनेवाले वैद्यकी अज्ञतासे वस्तिकर्ममें यह उपद्रव होते हैं। जैसे वस्तिद्रव्यके साथ वस्तिमेंसे वायुका प्रवेश होना, अत्यन्त जल्दी वस्ति करना, ऊपरको उठाकर वस्तिका प्रयोग करना, तिरछी वस्तिका प्रवेश करना, वस्तिकर्म करते समय हाथसे वस्तिको कंपादेना, वस्तिको मंदगतिसे और मंदवेगसे प्रवेश करना, वस्तिका अति शीघ्र वेग प्रचलित करना यह वस्तिकर्म करनेवाले वैद्यके दोष हैं ॥ ६ ॥

इनके लक्षण और उपाय।

अनुच्छ्वासानुवन्धेवादत्तेनिःशेषएववा । प्रविश्यकुपितोवायुःशूलतोदकरोभवेत् । तत्राभ्यङ्गोगुदेस्वेदोवातघ्नान्यशनानिच ॥७॥

वस्तिकर्म करनेसे पहिले वस्तिको दवाकर उसके भीतरकी संपूर्ण वायुको निकाल देना चाहिये। और वस्तिकर्म करनेके अनन्तर किंचित् वस्तिद्रव्य वस्तिमें रहजानेपर उसका प्रयोग बन्दकर देना चाहिये ऐसा न करनेसे वस्तिकी वायु पेटमें भरकर शूल और चमकेको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर तैलाभ्यंग मलद्वारमें स्वेदन तथा वातनाशक अन्नपानोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७ ॥

द्रुतंप्रणीतेनिष्क्रष्टेसहसोत्क्षिप्तएववा ॥ ८ ॥
स्यात्कटीगुदजङ्घार्त्तिर्वस्तिस्तम्भोरुभेदनम्।
भोजनंतत्रवातघ्नंस्नेहाःस्वेदाःसवस्तयः ॥ ९ ॥

वस्तिका अतिशीघ्र प्रयोग करनेसे अथवा शीघ्रता पूर्वक खींचलेनेसे वा सहसा वस्ति द्रव्यको शीघ्र वेगसे उत्क्षेपित करनेसे कमर, गुदा और जंघामें पीडा उत्पन्न होजाती है तथा वस्तिका स्तम्भ और ऊरुओंमें भेदनकीसी पीडा होती है। ऐसा होनेपर वातनाशक द्रव्योंका भोजन तथा वातनाशक स्नेह, स्वेद और वातनाशक वस्तियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

तिर्य्यग्बन्धाद्घृतद्वारेवद्धेवापिनगच्छति ।
नेत्रंतदूर्द्ध्वंनिष्कृष्यसंशोध्यचपुनर्नयेत् ॥ १० ॥

वस्तिके तिरछा बन्धन होनेसे वा वस्तिको तिरछा प्रवेश करनेसे वस्तिकी नलीका द्वार बंद होकर वस्तिद्रव्य गमन नहीं करता । ऐसा होनेपर अथवा अन्य किसी प्रकार वस्ति द्रव्य गमन करनेसे रुकजाय तो वस्तिकी नालको गुदासे निकालकर नलकीको स्वच्छ, शुद्धकर लेवे । जब उसमेंसे यथोचित वस्तिद्रव्य चलने लगे तो फिर विधिवत् वस्तिप्रयोग करे ॥ १० ॥

पीडयमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः। उरःशिरोरुजंसादमूर्वोश्च जनयेद्बली । वस्तिःस्यात्तत्रबिल्वादिफलश्यामानिमूत्रवान् ॥११॥

यदि वस्तिकर्म करते २ वस्ति क्रिया समाप्त होनेसे पहिलेही अधवीचमें वस्ति निकाल ली जाय तो गुदामें प्रतिहत होकर छाती और शिरमें पीडा जांघों और ऊरुस्थलोंका सो सा जाना इन उपद्रवोंको वह कुपित हुआ बलवान् वायु उत्पन्न करता है । ऐसा होनेपर बिल्वादि पंचमूल, मैनफल, निशोथ और गोमूत्रके साथ निरूहण वस्ति करे ॥ ११ ॥

स्याद्दाहोदवथुःशोफःकम्पनाभिहतेगुदे ।
कषायमधुराःशीताःसेकास्तत्रसवस्तयः ॥ १२ ॥

वस्तिप्रयोग करते समय वस्तिको कंपादेनेसे गुदामें चोट लगजाती है । उससे सूजन, दाह और संताप उत्पन्न हो जाताहै । ऐसा होनेपर कसैले, मधुर और शीतल द्रव्योंसे परिसेचन, अनुवासन और निरूहण करना हितकारक है ॥ १२ ॥

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनाद्वलेः ॥ १३ ॥ स्याच्छर्दिदाहनिस्तोदगुदवर्चःप्रवर्त्तनम् । तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरंपिच्छावस्तिश्चशस्यते ॥ १४ ॥

वस्तिके मुखनाल अत्यंत जोरसे प्रवेश करनेसे गुदाकी वलियोंको छिल देती है । जिससे पीडा, दाह और सूई चुभनेकीसी पीडाके साथ मल निकलने लगताहै । ऐसा होनेपर औषधियोंसे सिद्ध किये घृत, व्रणनाशक घृत या तेलोंमें भिगोया हुआ फोहा, दूध और अतिसारमें कही हुई पिच्छावस्तिका प्रयोग हितकारी होताहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

नवावहतिमन्दस्तुवाह्यस्त्वाशुनिवर्त्तते ।
स्नेहस्तत्रपुनःसम्यक्प्रणेयःसिद्धिमिच्छता ॥ १५ ॥

वस्ति बहुत धीरे २ प्रधमन करनेसे भीतरको नहीं जाती, वस्तिनलके निकालनेके अनन्तर शीघ्रही बाहर लौट आती है । ऐसा होनेपर सिद्धिकी इच्छावाला वैद्य फिर दूसरीबार विधिवत् स्नेहवस्तिका प्रयोग करे ॥ १५ ॥

अतिप्रपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम् ।
तत्रवस्तिर्विरेकश्चगलंपीडादिकर्मच ॥ १६ ॥

वस्तिको अत्यंत जोरसे एकहीबार दबाकर वस्तिकर्म करनेसे वस्तिद्रव्य आमाशयमें जाकर उपस्थित होजाताहै अथवा कण्ठकी ओर गमन करताहै । ऐसा होनेपर शोधन वस्ति, विरेचन और गलकी ओरसे श्वास द्वारा वेगको नीचेकी ओर दबाना चाहिये ॥ १६ ॥

उपसंहार ।

तत्र श्लोकः ।

नेत्रवस्तिप्रणेतणांदोषानेतान्सभेषजान् ।
विद्वांस्तत्त्वेनमतिमान्वस्तिकर्माणिकारयेत् ॥ १७ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने नेत्रवस्ति० सिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

इस नेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिनामक अध्यायमें नेत्रके दोष और वस्तिके दोष, वस्तिके प्रणेताके दोष, वस्तिकर्ममें इन उपरोक्त दोषोंकी चिकित्सा वर्णन कीगई है बुद्धिमान् वैद्य इन सबको यथोचित रीतिपर समझकर वस्तिका प्रयोग करे ॥ १७ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं० सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी०नेत्रवस्तिव्यापादिका०नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥

षष्ठोऽध्यायः।

अथातो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामइति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वमन, विरेचन, व्यापत्तिसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

अथशोधनयोःसम्यग्विधिमूर्द्धानुलोमयोः ।
असम्यक्कृतयोश्चैवदोषान्वक्ष्यामिसौषधान् ॥ १ ॥

अब वमन और विरेचनके भले प्रकार प्रयोगकी विधि और मिथ्या योगके दोष तथा उनकी चिकित्साको वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

शोधनका समय।

अत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षाहिमागमाः। तदन्तरेप्रावृडाद्यास्ते-षांसाधारणास्त्रयः॥ २॥ प्रावृट्शुचिनभौज्ञेयौशरदूर्जसहौपुनः। तपस्यश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनंप्रति। एतानृतून्विचिन्त्यैवदद्या-त्संशोधनंनृणाम्॥ ३॥

ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर इन तीन ऋतुओंमें क्रमसे अत्यंत गर्मी, अत्यन्त वर्षा और अत्यंत शीत होती है। इन तीन ऋतुओंकी संधिमें प्रावृट्, शरद्, और वसन्त इन तीन ऋतुओंमें वर्षा, शीत और उष्णतामें प्रायः सम होतीहैं। इनमें आषाढ और श्रावण इन दो महीनोंको प्रावृट कहते हैं। कार्तिक और मार्गशीर्ष शरदऋतु कहातेहैं फाल्गुन और चैत्र यह वसन्तऋतु है ये तीन ऋतुएं शोधनके लिये हितकारी कही गई हैं, परन्तु इन ऋतुओंमें भी सर्दी, गर्मी विचारकर, देश, काल आदिभेदसे मनुष्योंकी प्रकृति देखकर वमन कराना चाहिये॥ २॥ ३॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु।
कर्मणांवमनादीनामन्तरेष्वन्तरेषुच॥ ४॥

स्वस्थ मनुष्यको ऋतु आदि विचारकर वमन, विरेचन कराना चाहिये। परन्तु रोगी मनुष्यको यदि किसी व्याधिवश वमन, विरेचन कराना पडे तो संपूर्णही ऋतु-ओंमें कर सकते है॥ ४॥

स्नेहनस्वेदनादि कर्म।

स्नेहस्वेदौप्रयुञ्जीतस्नेहाद्यन्तेप्रयोजयेत्। विसर्पपिडकाशोफका-मलापाण्डुरोगिणः। अभिघातविषार्त्ताश्चनातिस्निग्धान्विरेच-येत्॥ ५॥

वमन विरेचन करानेसे पहिले स्नेहन और स्वेदन करे। और स्नेहन स्वेदनके अनन्तर वमनादिकर्म कराना चाहिये। परन्तु विसर्प, पिडिका, सूजन, कामला, पाण्डु, अभिघात और विषार्त्त मनुष्योंको विनाही अतिस्निग्ध किये वमन विरेचन देना चाहिये॥ ५॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम्॥ ६॥

अत्यंत स्निग्ध शरीरवाले मनुष्यको स्नेह विरेचन देना उचित नहीं। स्नेहसे उत्क्लेशित मनुष्यको रूक्ष विरेचन देना चाहिये॥ ६॥

शोधनद्रव्यपानका समय ।

स्नेहस्वेदोपपन्नेनजीर्णेमात्रावदौषधम् ।
एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥ ७ ॥

स्नेहन और स्वेदनसे उपपन्न हुआ मनुष्य प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होनेपर प्रातःकाल एकाग्रचित्त हो मात्रानुसार शोधन औषधिको पीवे तो वह औषधि वमन विरेचनके उत्तम प्रयोगको करनेवाली होती है ॥ ७ ॥

स्नेहन, स्वेदन और शोधनमें दृष्टान्त ।

स्निग्धात्पात्राद्यथातोयमयत्नेनप्रणुद्यते ।
कफादयःप्रणुद्यन्तेस्निग्धाद्देहात्तथौषधैः ॥ ८ ॥

जिस प्रकार चिकने पात्रमेंसे विना किसी विशेष यत्नके जल छूटजाताहै उसी प्रकार स्निग्धदेह मनुष्यको शोधन औषध प्रयोग करनेसे कफादिक शीघ्र छूट-जातेहैं ॥ ८ ॥

आर्द्रकाष्ठंयथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः ।
तथास्निग्धस्यवैदोषान्स्वेदोविष्यन्दयेत्स्थिरान् ॥ ९ ॥

जैसे गीली लकडीको आगमें डालनेसे अग्निके तेजसे वह सब जगहसे विष्यंदित (गीले स्रावयुक्त) हो जाती है उसीप्रकार स्निग्ध मनुष्यके स्थिर हुए दोषोंको स्वेदन करना चलायमान कर देताहै ॥ ९ ॥

क्लिष्टंवासोयथोत्क्लेश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा ।
स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्यशोध्यतेशोधनैर्मलः ॥ १० ॥

सज्जी आदि क्षारसे उत्क्लेशितहुआ मैल साधारण, जलके साथ धोनेसे निकल-जाताहै उसी प्रकार स्नेहन और स्वेदनसे उत्क्लेशित हुआ मल वमन, विरेचन द्वारा शरीरसे अलग हो जाताहै अर्थात् निकलजाताहै ॥ १० ॥

अजीर्णमें शोधनपीनेके दोष ।

अजीर्णेवर्द्धतेग्लानिर्विबन्धश्चैवजायते ।
पीतंसंशोधनञ्चैवविपरीतंप्रवर्त्तते ॥ ११ ॥

अजीर्णमें वमन, विरेचनकारक द्रव्यके पीनेसे ग्लानिकी वृद्धि होतीहै और विबंध उत्पन्न हो जाताहै तथा उस पिये हुए शोधन द्रव्यकी विपरीत गति होती है । अर्थात् वमनकारक द्रव्य अधोगामी हो जाताहै और विरेचनकारक द्रव्य उर्द्धगामी हो

जाताहै । इसलिये प्रथम दिनका भोजन जीर्ण होजानेपर शोधनकर्त्ता द्रव्य पीना चाहिये ॥ ११ ॥

मात्रावत् औषध ।

अल्पमात्रंमहावेगंवहुदोषहरंसुखम् । लघुपाकंसुखास्वादंप्रीणनं व्याधिनाशनम् ॥१२॥ अविकाराविपन्नश्चनातिग्लानिकरश्चतत् । गन्धवर्णरसोपेतंविद्यान्मात्रावदौषधम् ॥ १३ ॥

जो औषध अल्पमात्रा होनेपर भी महावेगवाली हो तथा सुखपूर्वक वहुदोषोंको हरनेवाली, लघुपाकी, सुखपूर्वक खायी जानेवाली, प्रीतिकारक, व्याधिनाशक, विकाररहित, उपद्रवोंको न करनेवाली, अधिक ग्लानिको न करनेवाली, गंध, वर्ण, और रस संपन्न हो उसको मात्रावत् औषध कहतेहैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

औषधपानक्रम ।

विधूयमानसान्दोषान्कामक्रोधभयादिकान् ।
एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥ १४ ॥

औषध पीनेके समय काम, क्रोध, भय, आदिक मनके दोषोंको त्यागकर एकाग्रचित्त हो औषध पीना चाहिये । इस प्रकार औषध पीनेसे औषधका सम्यक् योग होताहै ॥ १४ ॥

शोधनपीनेसे प्रथमदिनमें आहार ।

नरःश्वोवमनंपाताभुञ्जीतकफवर्द्धनम् । सुजरंद्रवभूयिष्ठंलघुशीतं- विरेचनम् । उत्क्लिष्टाल्पकफत्वेनक्षिप्रंदोषाःस्रवन्तिहि ॥ १५ ॥

जिस मनुष्यको दूसरे दिन प्रातःकाल वमन कराना हो उसको प्रथम दिन कफवर्द्धक आहार सेवन कराना चाहिये । और जिस मनुष्यको दूसरे दिन विरेचन कराना हो उसको जल्दी पचनेवाला अधिक पतला, हल्का और शीतल आहार कराना चाहिये । इस प्रकार क्रम पालन करनेसे कफका उत्क्लेश होकर वमन द्वारा शीघ्र दोष निकल जातेहैं और कफ क्षीण होकर विरेचन द्वारा निकलजाते हैं ॥१५॥

शुद्धिके लक्षण ।

पीतौषधस्यतुभिषक्शुद्धिलिङ्गानिलक्षयेत । ऊर्द्धकफानुगेपित्तेवि- दूपित्तेऽनुकफेत्वधः॥ १६ ॥

वमन, विरेचनकारक औषध पीनेके अनन्तर वैद्य शुद्धिके लक्षणोंकी परीक्षा करे। जसे वमनकारक औषध पीनेके अनन्तर प्रथम कफ उदीर्ण होकर निकलजाय फिर वमनके अंतमें पित्त निकले तो शुद्ध वमन होगई ऐसा जानना । और विरेचन द्रव्य पीनेके अनन्तर पहिले मल फिर पित्त और अन्तमें कफ अर्थात् आंव निकलजाय,तो विरेचनसे रोगीका देह शुद्ध होगया ऐसा जानना ॥ १६ ॥

वमनमें ज्ञातव्य ।

हृतदोषंवदेत्कार्श्यंदौर्बल्यंचेत्सलाघवम् । वामयेत्तुततःशेषमौषधं नत्वलाघवे ॥ १७ ॥ स्तैमित्येऽनिलसङ्गेचनिरुद्गारेऽपिवामयेत् । आलाघवादणुत्वाच्चकफस्याग्निकरंभवेत् । वमितेवर्द्धतेवह्निःशमं दोषाव्रजन्तिहि ॥ १८ ॥

यदि वमन करानेसे रोगीका शरीर, कृश, दुर्वल और हलका होजाय तो फिर और वमन करानेकी आवश्यकता नहीं है । उस समय उसके आमाशयमें बाकी रही हुई जो औषध है उसको वमन द्वारा निकलजाने देवे। यदि रोगीके शरीरमें भारीपन रहे और आमाशय दोषसे भराहुआ प्रतीत हो तो उसको और वमन कराना चाहिये । यदि शरीरमें स्तैमित्य, अधोवायु और डकारका रुकना लक्षण हो तो भी उसको वमन कराना चाहिये । जब तक शरीरमें हल्कापन न आये और कफका थोडा अंश भी बाकी रहे तबतक वमन करातेही रहना चाहिये शुद्ध वमन होजानेके अनन्तर जठराग्निकी वृद्धि होतीहै । वमन करानेसे अग्निकी वृद्धि होकर दोष शान्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

वमितंलङ्घयेत्सम्यग्जीर्णलिङ्गान्यलक्षयन् । तानिदृष्ट्वातुपेयादि-क्रमंकुर्य्यान्नलङ्घनम् ॥ १९ ॥

यदि वमन करानेपर भी कफके जीर्ण होनेके लक्षण दिखाई न दें तो बाकी रहे दोषको पाचन करनेके लिये रोगीको लंघन कराना चाहिये । जब लंघनद्वारा कफका परिपाक होकर कफनष्ट होजाय तो उसको लंघन बन्द करके पेयादि क्रमका पालन कराना चाहिये ॥ १९ ॥

शोधनके अंतमें क्रम ।

संशोधनाभ्यांशुद्धस्यहृतदोषस्यदेहिनः ।
यात्यग्निर्मन्दतांतस्मात्क्रमंपेयादिमाचरेत् ॥ २० ॥

वमन विरेचन द्वारा शुद्ध देह और दोषरहित होनेपर मनुष्यकी अग्नि मंद होजातीहै

अर्थात् शुद्धदेह होनेसे जठराग्निभी अल्प रहजातीहै उस समय शुद्ध मनुष्यको पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये ॥ २० ॥

कफपित्तेविशुद्धेऽल्पंमद्यपेवातपैत्तिकैः ।
तर्पणादिक्रमंकुर्यात्पेयाभिष्यन्दयेद्धितान् ॥ २१ ॥

मद्य पीनेवाले, वातपित्त प्रकृतिवाले मनुष्योंको कफपित्तके अल्प शुद्ध होनेपर पेयादि क्रमके विनाही अल्पमात्रासे तर्पण आदि क्रमसे उपचार करे क्योंकि ऐसे मनुष्योंको पेया पिलाना उनके शरीरको अभिष्यंदित करताहै ॥ २१ ॥

औषधजीर्णके लक्षण ।

अनुलोमोऽनिलःस्वास्थ्यंक्षुत्तृष्णोर्जोमनस्विता ।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिजीर्णौषधाकृतिः ॥ २२ ॥

वायुका अनुलोमन होना, स्वस्थता, क्षुधा, प्यास, पराक्रम, मनकी प्रसन्नता, इन्द्रियोंमें हलकापन, डकारका शुद्ध होजाना । यह औषधी जीर्ण होनेके लक्षण हैं ॥ २२ ॥

अजीर्ण औषधके लक्षण ।

क्लमोदाहोऽङ्गमर्दश्चभ्रममूर्च्छाशिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्चसावशेषौषधाकृतिः ॥ २३ ॥

क्लान्ति, दाह, अंगडाई, भ्रम, मूर्च्छा, शिरमें पीडा, अरति और बलकी हानि यह जीर्णावशेष (विना जीर्ण हुई) औषधके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अकालेऽल्पातिमात्रञ्चपुराणंनचभावितम् ।
असम्यक्संस्कृतञ्चैवव्यापद्येतौषधंध्रुवम् ॥ २४ ॥

जो औषध अकालमें (बेसमयमें) पी जाय अथवा अधिक मात्रा वा अल्पमात्रासे पीजाय तथा पुरानी, विना भावना दीहुई अथवा यथोचित संस्कार की हुई न हो वह औषध अवश्य उपद्रवको करतीहै ॥ २४ ॥

अयोग और अतियोगके १० उपद्रव ।

आध्मानंपरिकर्त्तिश्चस्रावोहृद्गात्रयोर्ग्रहः । जीवादानंसविभ्रंशस्तम्भःसोपद्रवःक्लमः।अयोगादतियोगाच्चदशैताव्यापदोमताः॥२५॥

अफारा, परिकर्तिका, मुखसे लार बहना, हृदय और अंगोंमें जकडन, जीवादान (जीवसंज्ञक रक्तका निकलना अथवा जीवन शक्तिका क्षीण होना), गुदाका विभ्रंश,

स्तम्भ, उपद्रव (विरेचनका ऊर्द्धगमनादिहोना) और क्लान्ति यह दश उपद्रव शोधनके अयोग और अतियोगसे उत्पन्न होते हैं ॥ २५ ॥

परिचारिकादिदोष ।

प्रेष्यभैषज्यवैद्यानांवैगुण्यादांतुरस्यच ।
शुद्धोत्क्लिष्टेनदुर्गन्धमहृद्यमतिबाध्यते ॥ २६ ॥

परिचारक, औषध, वैद्य और रोगीकी विगुणता (दुष्टता) के कारण शुद्ध दोष भी उत्क्लेशित होकर दौर्गंध्य और हृदयकी अप्रियताको उत्पन्नकर कष्टके देनेवाले होजातेहैं ॥ २६ ॥

योगातियोगायोग ।

योगःसम्यक्प्रवृत्तिःस्यादतियोगोऽतिवर्त्तनम् ।
अयोगःप्रातिलोम्येननचाल्पंवाप्रवर्त्तनम् ॥ २७ ॥

औषधका यथोचित योग होनेसे दोष भले प्रकार निकलजातेहैं । और अतियोग होनेसे दोष अत्यंत निकलते हैं । तथा अयोग होनेसे दोष प्रतिलोमी होकर या तो बिल्कुल नहीं निकलते या निकले भी तो बहुत थोडे निकलते हैं ॥ २७ ॥

अजीर्णविरेचनका दोष ।

श्लेष्मोत्क्लिष्टेनदुर्गन्धमहृद्यंनातिवावहु ।
विरेचनमजीर्णेचपीतमूर्द्धंप्रवर्त्तते ॥ २८ ॥

पहिले दिनका अजीर्ण होनेपर यदि विरेचन कारक औषधि पान कीजाय तो वह वमन द्वारा निकलने लगती है और कफके उत्क्लेश होनेसे अल्प अथवा अधिक दुर्गंधता और हृदयग्लानि होतीहै ॥ २८ ॥

वमनका अयोग ।

क्षुधार्त्तमृदुकोष्ठाभ्यांस्वल्पोत्क्लिष्टकफेनवा । तीक्ष्णंपीतंस्थितंक्षुब्धंवमनंस्याद्विरेचनम्।अयोगेतत्रकर्त्तव्यंसमासेनाभिधीयते॥२९॥ प्रातिलोम्येनदोषाणांहरणात्तेष्वकृच्छ्रतः । अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेणनचागच्छतिचाल्पशः ॥ ३० ॥

जिस मनुष्यको अति भूख लगी हो, जिसका कोठा बहुत नर्म हो, जिसका कफ यथोचित्त उत्क्लेशित न हुआ हो, उसको वमनकारक तीक्ष्ण औषधि पिलाई हुई उदीर्ण न होकर और क्षुभित होकर विरेचनद्वारा निकलने लगतीहै । ऐसा होनेपर

यद्यपि वामक औषध विरेचन द्वारा भी निकल जाताहै तो भी वह वमनका अयोगही कहाजाताहै। क्योंकि ऐसे समय दोष कष्टसे निकलें या अल्प निकलतेहैं अथवा वमनके मार्गसे नहीं निकलते इस लिये उनको वमनका अयोगही कहना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

पीतौषधोनशुद्धश्चेज्जीर्णेतस्मिन्पुनःपिबेत्।
औषधंनत्वजीर्णेऽन्यद्भयंस्यादतियोगतः ॥ ३१ ॥

प्रथम पान कीहुई औषधसे रोगी शुद्ध न हुआ हो तो उस औषधके जीर्ण होनेपर फिर उसको दुबारा औषधि पिलाना चाहिये। यदि प्रथम औषधके विना जीर्णहुए फिर दुबारा औषधि पिला दी जाय तो उससे विरेचनके अतियोग होनेका भय है ॥ ३१ ॥

कोष्ठस्यगुरुतांज्ञात्वालघुत्वंबलमेवच।
अयोगेमृदुवादद्यादौषधंतीक्ष्णमेववा ॥ ३२ ॥

यदि शोधनका अयोग हुआ हो तो उसमें कोष्ठकी गुरुता, लघुता और बलाबल विचारकर फिर मृदु अथवा तीक्ष्ण औषधका प्रयोग करे ॥ ३२ ॥

वमनंनतुदुश्छर्द्यांदुष्कोष्ठंनविरेचनम्।
पाययेतौषधंभूयोहन्यात्पीतंपुनर्हितौ ॥ ३३ ॥

जिस मनुष्यको वमन अति कष्टतासे होतीहो उसको वमन नहीं कराना चाहिये। और जिसका अत्यंत कठोर कोठा हो उसको विना नम्रकोष्ठ किये विरेचन नहीं देना चाहिये। इनको वमन, विरेचनकी औषध पिलानेसे वमन, विरेचन नहीं होते। उनके अयोगमे फिर शोधक औषध देनेसे शोधन तो नहीं होता परन्तु इनके प्राणोंके नाश होनेका भय होताहै ॥ ३३ ॥

विरेचनका प्रयोग।

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरूक्षस्यानवमौषधम्। दोषानुत्क्लिश्यनिर्हर्तुमशक्तंजनयेद्गदान् ॥३४॥ विभ्रंशंश्वयथुंहिक्कांतमसोदर्शनंभृशम्। पिण्डिकोद्वेष्टनंकण्डूमूर्वोःसादंविवर्णताम् ॥ ३५ ॥

जो स्निग्ध और स्वेदित न कियागया हो तथा रूक्ष शरीरवाला हो, उसको पुरानी औषध शोधनके लिये दीजाय तो वह औषध केवल दोषोंको तो उत्क्लेशितकर देतीहै परन्तु हीनवीर्य होनेसे दोषोंको यथोचित निकाल नहीं सकती। फिर दोषोंके

उत्क्लेशित होनेसे वह विना निकले दोष रोगोंको उत्पन्न करतेहैं । जैसे-विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अंधकार दिखाई देना, पिण्डलियोंका उद्वेष्टन, खुजली, ऊरुओंका सुन्नसा होजाना और विवर्णता इन रोगोंको उत्पन्न करतेहैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

स्निग्धस्विन्नस्यचात्यल्पंदीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम् । शीतैर्वास्तम्भयेत्सामेदोषानुत्क्लिश्यनाहरेत् ॥ ३६ ॥ तानेवजनयेद्रोगान्नयोगःसर्वएवसः । विज्ञायमतिमांस्तत्रयथोक्तांकारयेत्क्रियाम् ॥ ३७ ॥

रोगीको स्नेहन और स्वेदन करनेपर भी यदि अल्पमात्रा दी जाय अथवा दीप्त-अग्नि होनेके कारण औषध जीर्ण होजाय या शीतल उपचार करनेसे अथवा बढ़ीहुई आमद्वारा वह औषध स्तंभित होजाय तो वह दोषोंको उत्क्लेशित तो करदेती है । परन्तु निकाल नहीं सकती तथा उपरोक्त विभ्रंश आदि रोगोंको उत्पन्न करतीहै । और शोधनका संपूर्ण रूपोंसे अयोग होताहै । इस प्रकार अयोगोंको बुद्धिमान् वैद्य यथोचित समझकर निम्नलिखित क्रिया करे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शोधनके अयोगमें कर्तव्य ।

तंतैललवणाभ्यक्तंस्विन्नंप्रस्तरसङ्करैः । पाययेतपुनर्जीर्णेसमूत्रैर्वानिरूहयेत् ॥ ३८ ॥ निरूढश्चरसैर्धन्वैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत् । फलमागधिकादारुसिद्धतैलेनमात्रया । स्निग्धंवातहरैःस्नेहैःपुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥ ३९ ॥

शोधनका अयोग होनेपर नमकयुक्त तेलकी मालिशकर प्रस्तरस्वेद और संकर-स्वेद द्वारा स्वेदित करे । जब पहिली औषधि जीर्ण होचुके तो फिर औषधि पिलावे अथवा गोमूत्रयुक्त द्रव्योंसे निरूहण वस्ति करे । निरूहणवस्तिके अनन्तर शुद्ध होने-पर जंगली जीवोंके मांसरसके साथ भोजन करावे । फिर अनुवासन वस्ति देवे । अनुवासनके तैल, मैनफल, पीपल और द्रव्य तथा क्वाथसे उचित रीतिपर सिद्ध किये होने चाहिये । तथा वातनाशक तैलोंको स्निग्धकर फिर तीक्ष्ण शोधन कराके दोष और औषधको हरण करे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अतियोगके दोष, चिकित्सा ।

नचातितीक्ष्णेनततोह्यतियोगस्तुजायते । अतितीक्ष्णंक्षुधार्त्तस्य मृदुकोष्ठस्यभेषजम् ॥ ४० ॥ हत्वाशुविट्पित्तकफान्धातून्विस्रावयेद्द्रवान् । बलस्वरक्षयंदाहंकण्ठशोषंक्लमंतृषाम् । कुर्याच्चमधुरैस्तत्रशेषमौषधमुल्लिखेत् ॥ ४१ ॥

क्षुधासे व्याकुल अथवा मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको तीक्ष्ण शोधन नहीं देना चाहिये क्योंकि ऐसे मनुष्योंको तीक्ष्ण शोधन देनेसे शोधनका अतियोग हो जाताहै। अतियोग होनेसे वह औषध प्रथम विष्ठा, पित्त और कफको निकालकर फिर पतली धातुओंको निकालने लगती है। उससे बल और स्वरका क्षय, दाह, कण्ठका सूखना, क्लम, प्यास यह उपद्रव होतेहैं। ऐसे समय मधुर, पदार्थोंसे अथवा जीवनीयगणसे सिद्ध कियेहुए क्वाथोंसे वमन कराकर शेष औषधको निकाल देवे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

वमनेतुविरेकःस्याद्विरेकेवमनंमृदु। परिषेकावगाहाद्यैःसुशीतैस्तम्भयेच्चतम् ॥ ४२ ॥ कषायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा। रक्तपित्तातिसारघ्नैर्दाहज्वरहरैरपि ॥ ४३ ॥

वमनके अतियोगमें विरेचन देकर औषधको निकाले और विरेचनके अतियोगमें वमन द्वारा शेष औषधको निकालडाले तथा शीतल परिसेचन और अवगाहन आदि द्वारा अतियोगका स्तम्भन करे। एवं कसैले, मीठे और शीतल अन्न, पान, औषधों द्वारा तथा रक्तपित्त नाशक और दाहज्वरनाशक द्रव्यो द्वारा शोधनके अतियोगको स्तम्भन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

विरेचनका अतियोगनाशक योग।

अञ्जनंचन्दनोशीरमज्जासृक्शर्करोदकम्।
लाजचूर्णैःपिबेन्मन्थमतियोगहरंपरम् ॥ ४४ ॥

रसौत, लालचंदन, खस इन सबको पीसकर बकरीके रक्त और खांडके शरबतमें मिलाकर उसमें खीलोंका चूर्ण मिला मंथ बनावे। इस मंथके पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै ॥ ४४ ॥

शुङ्गाभिर्वावटादीनांसिद्धांपेयांसमाक्षिकाम्।
वर्चःसंग्राहिकैःसिद्धंक्षीरंभोज्यश्चदापयेत् ॥ ४५ ॥

वटआदि वृक्षोंके शुंगोंसे सिद्ध कीहुई पेया शीतलकर शहद मिला पीनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै। तथा संग्राही द्रव्योंसे सिद्धकिये दूधको शीतलकर उसमें शहद मिलावे अथवा उससे शालीचावलोंका भात कराय तो विरेचनका अतियोग शान्त होताहै ॥ ४५ ॥

जाङ्गलैर्वारसैर्भोज्यंपिच्छावस्तिचदापयेत्।
मधुरैरनुवास्यश्चसिद्धेनक्षीरसर्पिषा ॥ ४६ ॥

विरेचनके अतियोग होनेके अनन्तर जंगलीजीवोंके मांसरसके साथ भोजन और अतिसार रोगमें कहीहुई पिच्छावस्ति तथा जीवनी आदि मधुर द्रव्योंसे सिद्धकियेहुए दूधके घृतसे अनुवासनवस्ति करना हितकारक है ॥ ४६ ॥

वमनके अतियोगमें क्रिया।

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिषेचितम् ।
पिबेत्फलरसैर्मन्थंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ ४७ ॥

वमनके अतियोगमें शीतलजलसे परिसेचन करना, शीतलजलके मुखपर छींटे देना और अनार आदि फलोंके रससे मंथ बना उसमें घृत, शहद और मिसरी मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ४७ ॥

सोद्गारायांभृशंवम्यांमूर्च्छायांधान्यमुस्तयोः ।
समधूकाञ्जनंचूर्णंलेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ ४८ ॥

यदि वमनके अतियोगमें डकारके साथ अत्यन्त वमन आती हो और मूर्च्छा भी होनेलगे तो धनिया, नागरमोथे, महुआ और रसौतके चूर्णको शहदमें मिलाकर चटावे ॥ ४८ ॥

अंतर्गतजिह्वाका यत्न।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहाः । स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्यूषक्षीररसैर्हिताः । फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतोनराः ॥ ४९ ॥

यदि वमन करते २ जिह्वा भीतरको चलीजाय तो उसको चिकने, अम्लरसयुक्त, नमकीन और हृदयको प्रिय यूषोंसे अथवा दूधसे वा मांसरससे कवल धारण कराना हितकारक है। अथवा जिस रोगीकी जिह्वा वमनके अतियोगमें भीतरको चलीगई हो उसके सामने बैठकर दूसरे मनुष्य अनार, निम्बू आदि खट्टे फलोंको खावें अथवा अनारके रस वा निंबूके रससे कवल कराना भी हितकारक है ॥ ४९ ॥

निसृतजिह्वाका यत्न।

निःसृतान्तुतिलद्राक्षाकल्कलिप्तांप्रवेशयेत् ॥ ५० ॥

जिस मनुष्यकी जिह्वा वमन करते २ बाहरको निकल आवे तो उसकी जीभपर तिल और द्राक्षाका कल्क लेप करके भीतरको प्रवेश करे ॥ ५० ॥

वाग्ग्रह।

वाग्ग्रहानिलरोगेषुघृतमांसोपसाधिताम् ।
यवागूंतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौचबुद्धिमान् ॥ ५१ ॥

यदि वमनके अतियोगमें वाणी रुकजाय अर्थात् बोलना बंद होजाय और वायुका कोप हो तो घृत और मांसरसके साथ सिद्ध कीहुई पतली यवागू पिलावे तथा बुद्धिमान् वैद्य स्नेहन और स्वेदन करे ॥ ५१ ॥

वमितश्चविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चविलङ्घितः।
अग्निप्राणविवृद्ध्यर्थंक्रमंपेयादिकंभजेत् ॥ ५२ ॥

वमन, विरेचन द्वारा संशुद्ध होनेसे अल्पअग्निवाले मनुष्यको तथा लंघन किये मनुष्यको अग्निबल बढानेके लिये पेयादि क्रमका पालन करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विरेचनके अयोगमें अफारा।

बहुदोषस्यरूक्षस्यहीनाग्नेरल्पमौषधम्। सोदावर्त्तस्यचोत्क्लिश्यदोषान्मार्गान्निरुध्यच ॥ ५३ ॥ भृशमाध्मापयेन्नाभिंपृष्ठपार्श्वशिरोरुजाम् ॥ श्वासविण्मूत्रवातानांसङ्गंकुर्य्याच्चदारुणम् ॥ ५४ ॥ अभ्यङ्गस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम् । उदावर्त्तहरंसर्वंकर्माध्मातस्यशस्यते ॥ ५५ ॥

बहुदोषोंसे युक्त, रूक्ष और हीन अग्निवाले मनुष्यको अथवा उदावर्त्त रोगीको अल्पमात्रावाला विरेचन देनेसे दोष उत्क्लेशित होजाते हैं। वह उत्क्लेशित दोष न निकलेसे उनका मार्ग रुककर नाभिके चारों ओर आफारा उत्पन्न होजाता है तथा पीठ पार्श्वभाग और शिरमें पीडा होने लगती है श्वास, मल मूत्र और अधोवायुका दारुणरूपसे विबन्ध होजाता है ऐसा होनेपर तैलमर्दन, स्वेदन वर्त्तिप्रयोग. निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक संपूर्ण क्रिया करनी हितकारक है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

परिकर्तिकाके हेतु और चिकित्सा।

स्निग्धेनगुरुकोष्ठेनसामेवलवदौषधम्। क्षामेणमृदुकोष्ठेनश्रान्तेनाल्पबलेनवा ॥ ५६ ॥ पीतंगत्वागुदंसाममाशुदोषांनिरस्यच। तीव्रशूलांसपिच्छास्रांकरोतिपरिकर्तिकाम् ॥ ५७ ॥ लंघनंपाचनंसामेरूक्षोष्णंलघुभोजनम् । बृंहणीयोविधिःसर्वःक्षामस्यमधुरस्तथा ॥ ५८ ॥

स्निग्ध मनुष्यको अथवा गुरुकोष्ठवालेको वा आमदोषवालेको अथवा क्षीण वा मृदुकोष्ठ वा श्रान्त अथवा अल्प बलवालेको विरेचनकी बलवान् औषध देनेसे उसके

आमसहित दोष उदीर्ण होकर गुदामार्गसे शीघ्र निकलने लगतेहैं । उस समय पेटमें तीव्र शूल, पिच्छा और रुधिरयुक्त परिकार्त्तिका होने लगतीहै । ऐसे समय यदि आमदोषयुक्त मनुष्य हो तो उसको लंघन, पाचन, रूक्ष, उष्ण और हलका भोजन करना चाहिये । यदि क्षीण मनुष्यको ऐसा उपद्रव होय तो बृंहणीय विधिका सेवन करना चाहिये तथा जीवनीय मधुर द्रव्योंसे उपचार करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

आमाजीर्णकी चिकित्सा ।

आमाजीर्णेतुबन्धश्चेत्क्षाराम्लंलघुशस्यते । पुष्पकासीसमिश्रंवा क्षारेणलवणेनच ॥ ५९ ॥ सदाडिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिकेसति । दध्यम्लंभोजनेपानेसंयुक्तंदाडिमत्वचा ॥ ६० ॥

आमके अजीर्णसे यदि विबन्ध होजाय तो क्षार और अम्लयुक्त हलका भोजन करा ना हितकारक है और वायुकी अधिकतामें पुष्पकासीस वा क्षार और लवण मिलाकर अनारका रसयुक्त कर घृत पिलाना चाहिये । अथवा भोजन और पानमें खट्टा दही और अनारके फलका छिलका मिलाकर पीवे तो वातादिक आमका पाचन होकर आमाजीर्ण दूर होताहै ॥ ५९ ॥ ६० ॥

देवदारुतिलानांवाकल्कमुष्णाम्बुनापिवेत् । अश्वत्थोदुम्बरप्लक्ष-कदम्बैर्वाशृतंपयः ॥ ६१ ॥ कषायमधुरंवस्तिंपिच्छावस्तिमथापि वा । यष्टीमधुकसिद्धंवास्नेहवस्तिंप्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

अथवा देवदारु और तिलका कल्क गर्म जलके साथ पीवे । वा पीपल, गूलर, पिलखन और कदम्बकी छालसे सिद्ध किया दूध पीवे या कसैले और मधुर द्रव्योंकी वस्ति अथवा अतिसारमें कहीहुई पिच्छावस्ति वा मुलैठीसे सिद्ध की हुई स्नेहवस्ति करे तो आमाजीर्ण अर्थात् आंवका कच्ची अवस्थामें गिरना वा उससे विबन्ध होना यह दूर होताहै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अधिकदोषोंमें अल्पशोधनके दोष चिकित्सा ।

अल्पन्तुबहुदोषस्यदोषमुत्क्लिश्यभेषजम् । अल्पाल्पंस्रावयेत्कण्डूं शोफकुष्ठानिगौरवम् ॥ ६३ ॥ कुर्याच्चाग्निवधोत्क्लेशस्तैमित्यारुचि-पाण्डुताम् । परिस्रावगतंदोषंशमयेद्वामयेदपि ॥ ६४ ॥ स्नेहितं वापुनस्तीक्ष्णंपाययेच्चविरेचनम् । शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्च प्रदापयेत् ॥ ६५ ॥

अधिक दोषवाले मनुष्यको अल्प विरेचन देनेसे उसके दोष उदीर्ण होकर थोडे थोडे निकलते हैं। और खुजली, सूजन, कुष्ठ, भारीपन, अग्निकी मंदता, उत्क्लेश, स्तैमित्य, अरुचि, पाण्डुता और परिस्राव यह लक्षण होतेहैं। ऐसा होनेसे दोषोंको शमन करे अथवा वमन करना चाहिये। वमन करनेसे भी यदि दोष शान्त न हों तो उस मनुष्यको स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देवे। जब शुद्ध होजाय तो उसको चूर्ण, आसव और अरिष्ट अथवा संस्कार कियेहुए यूप आदि देने चाहिये ॥६३-६५॥

रेचक औषध पीकर वेगोंके रोकनेके उपद्रव और चिकित्सा।

पीतौषधस्यवेगानांनिग्रहान्मारुतादयः । कुपिताहृदयंगत्वाघोरं कुर्वन्तिहृद्ग्रहम् ॥ ६६ ॥ सहिक्काश्वासपार्श्वार्त्तिदैन्यलालाक्षि विभ्रमैः । जिह्वांखादतिनिःसंज्ञोदन्तान्किटिकिटापयन् ॥ ६७ ॥ नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदाशुतंभिपक्। मधुरैःपित्तमूर्च्छार्त्तंकटुभिः कफमूर्च्छितम् ॥ ६८ ॥ पाचनीयैस्ततश्चास्यदोषशेषंविपाचयेत्। कायाग्निश्चबलश्चास्यक्रमेणाभिविवर्द्धयेत् ॥ ६९ ॥

औषध पीकर वेगोंको रोक लेनेसे वातादि दोष कुपित होकर हृदयको प्राप्त हो घोर हृद्ग्रह रोगको करते हैं तथा हिचकी, खांसी, पार्श्वपीडा, दीनता लारका बहना, नेत्रोंका विभ्रम, जिह्वाका काटना, बेहोशी और दांतोंका कटकटाना इन उपद्रवोंको उत्पन्न करते हैं। ऐसे समय वैद्य उद्भ्रान्त न होकर उस रोगीको शीघ्र वमन करावे। यदि उसमें पित्तकी मूर्छा हो तो मधुर द्रव्योंसे और कफकी मूर्च्छा हो तो चरपरे द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये। यदि इस प्रकार वमन करानेसे भी दोष संपूर्ण रूपसे शान्त न हों तो उनको पाचन द्रव्योंके योगसे शान्त करे और क्रमपूर्वक इसके अग्निबलको बढावे ॥ ६६-६९ ॥

वमनके अतियोगमें हृद्ग्रह।

पवनेनातिवमतोहृदयंयस्यपीडयते ।
तस्मैस्निग्धाम्ललवणंदद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ॥ ७० ॥

वमनके अधिक होनेसे जिसके हृदयको वायु पीडन करे उसको स्निग्ध, अम्ल और नमकीन मांसरस आदि पिलाकर अथवा अन्य स्निग्ध, अम्ल आदि द्रव्य देकर वायुको शान्त करे और यदि कफकी अधिकता हो तो स्निग्ध, अम्ल औषध न देकर रूक्ष तिक्त आदि उपचार करे ॥ ७० ॥

वामक औषके वेग रोकनेके दोष व चिकित्सा ।

पीतौषधस्यवेगानांनिग्रहेणकफेनवा । रुद्धोऽतिचाविशुद्धस्यगृह्णा-त्यङ्गानिमारुतः ॥ ७१ ॥ स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्त्तिमूर्च्छि-तैः। तत्रवातहरंसर्वंस्नेहस्वेदादिकारयेत् ॥ ७२ ॥

यदि वमनकारक औषध पीकर वमनके आयेहुए वेगको रोकलेवे तो कफ कुपित होकर वायुको रोकलेता है । वह कफद्वारा रुकाहुआ वायु अविशुद्ध मनुष्यके अंगोंको ग्रहणकर स्तंभ, तोद, उद्वेष्टन और घोर मूर्छाको उत्पन्न करता है । ऐसा होनेपर वात-नाशक क्रिया और स्नेहन, स्वेदन आदि करना चाहिये ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

अल्प दोषमें तीक्ष्ण ।

अतितीक्ष्णंमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम् ।
दोषान्हृत्वाविनिर्मथ्यजीवंहरतिशोणितम् ॥ ७३ ॥

अल्पदोषवाले मनुष्यके मृदुकोष्ठमें अति तीक्ष्ण औषध पहुंचकर प्रथम संपूर्ण दोषोंको दूरकर फिर द्रव्य धातुओंको मन्थनकर जीवसंज्ञक रक्तको निकालतीहै॥७३॥

जीवसंज्ञक रक्तकी परीक्षा शोधनके दोष ।

तेनान्नंमिश्रितंदद्याद्वायसायशुनेऽपिवा । भुंक्तेतच्चेद्वदेज्जीवंनभुंक्ते पित्तमादिशेत् ॥ ७४ ॥ शुक्लंवाभावितंवस्त्रमाधानंकोष्णवारिणा । प्रक्षालितंविवर्णंचेत्पित्तंशुद्धन्तुशोणितम् ॥ ७५ ॥

जीवसंज्ञक रक्तकी यह परीक्षा है कि उस रक्तको अन्नमें मिलाकर काग वा कुत्ते-आगे रक्खे । यदि उसको काग, कुत्ता आदि खाजांय तो वह जीवसंज्ञक (शुद्ध रक्त) जानना । यदि न खांय तो रक्तपित्तका रक्त जानना । क्योंकि रक्तपित्तके रक्त-को काग आदि नहीं खाते । दूसरी यह परीक्षा है कि उस रक्तमें श्वेत वस्त्रको डुबोकर गर्मजलसे धोदेवे । यदि कपडेका दाग दूर न हो और विवर्ण होजाय तो रक्तपित्तका विकार जानना । यदि शुद्ध होजाय तो जीवनसंज्ञक रक्त जागना ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

जीवसंज्ञक रक्त निकालनेकी चिकित्सा ।

तृषामूर्च्छामदार्त्तस्यकुर्य्यादामरणात्क्रियाम् ।
तस्यपित्तहरींसर्वामतियोगेचयाहिता ॥ ७६ ॥

विरेचनके अतियोगमें प्यास, मूर्च्छा और मत्तता होजाय तो उस रोगीकी मरणपर्यन्त भी पित्तनाशकही संपूर्ण चिकित्सा करनी चाहिये । तथा विरेचनके अतियोगको दूर करनेवाली जो शीतल क्रिया कही है वह करना हितकारक है॥७६॥

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कंजीवतामसृक्। पिवेज्जीवाभिसन्धानंजीवंतद्ध्याशुगच्छति। तदेवदर्भमृदितंरक्तंवस्तिंप्रदापयेत्॥७७॥

यदि शोधनके अतियोगमें जीवसंज्ञक शुद्ध रक्त निकलजाय तो उस रोगीको मृग, हरिण, भैस, बकरी आदिका तत्काल निकालाहुआ रक्त पिलाना चाहिये। उससे जीवसंज्ञक रक्तके अति निकालनेका दोष दूर होकर शीघ्र जीवत्वकी वृद्धि होती है। अथवा इन्ही मृगादिकोंके रुधिर और कुशाकी जडोंके कल्कको मर्दन कर उससे वस्तिप्रयोग करे॥ ७७॥

श्यामाकाश्मर्य्यबदरीदूर्वावीरैःशृतंजलम्॥ ७८॥ घृतमण्डाञ्जनयुतंवस्तिंशीतंप्रदापयेत्। पिच्छावस्तिंसुशीतंवाघृतमण्डानुवासनम्॥ ७९॥

सारिवाँ कुंभेरके फल, बेर, हरीदूव और क्षीरकाकोली इनके क्वाथमें घृतमण्ड और रसौत मिलाकर शीतल वस्तिका प्रयोग करे। अथवा शीतल पिच्छावस्तिका प्रयोग करके फिर घृतमण्डसे अनुवासन करे तो विरेचनके अतियोगसे जीवसंज्ञक रक्तका निकलना और उससे उत्पन्नहुई क्षीणता दूर होती है॥ ७८॥ ७९॥

विरेचनके अतियोगसे गुदभ्रंश आदि उपद्रवोंकी चिकित्सा।

गुदभ्रंशंकषायैश्चस्तम्भयित्वाप्रवेशयेत्।
सामगन्धर्वशब्दांश्चसंज्ञानाशेऽस्यकारयेत्॥ ८०॥

यदि विरेचनके अतियोगसे गुदाभ्रंश होजाय अर्थात् कांच निकलने लगे तो वड आदि क्षीरी वृक्षोंके क्वाथसे सेचन कर गुदाको रोककर भीतरको प्रवेश करे। यदि विरेचनके अतियोगमें संज्ञानाश होजाय अर्थात् वेहोशी होजाय तो उसके कानके समीप उत्तम स्वरसहित गायन वा वेदका गायन करे॥ ८०॥

शोधन विभ्रंश।

यदाविरेचनंपीतंविडन्तरवतिष्ठते। वमनंभेषजान्तंवादोषानुत्क्लेश्यनावहेत्॥ ८१॥ तदाकुर्वंतिकण्ड्वादीन्दोषाःप्रकुपितागदान्। सविभ्रंशोमतस्तत्रस्याद्यथाव्याधिभेषजम्॥ ८२॥

यदि केवल एक दो बार मल निकलकर विरेचन क्रिया बन्द होजाय और पित्त, कफ न निकले और इसी प्रकार वमनक्रियामें पीहुई केवल औषध निकलकर वमन होना बन्द होजाय और कफ, पित्त न निकले ऐसा होनेसे उसके दोष उत्क्लेशित मात्र होजातेहैं परन्तु शोधन नहीं होता। ऐसा होनेसे उस मनुष्यके शरीरमें खुजली

आदि उत्पन्न होतेहैं इसको वमन, विरेचनका विभ्रंश कहतेहैं । ऐसा होनेमें दोषानुसार अथवा उत्क्लेशित दोषोंसे उत्पन्नहुए रोगानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । वा फिर उचित रीतिपर शोधन कराना भी हितकारी है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अतिस्निग्धको स्नेह विरेचनके दोष ।

पीतंस्निग्धेनसस्नेहंतद्दोषैर्मार्दवाद्धृतम् । नवाहयतिदोषांस्तुस्वस्थानात्स्तम्भयेच्चतान् ॥ ८३ ॥ वातसङ्गगुदस्तम्भशूलैःक्षरतिचाल्पशः । तीक्ष्णंवस्तिविरेकंवादद्याल्लंघनपाचनम् ॥ ८४ ॥

जो अति स्निग्ध मनुष्य स्नेह विरेचन पानकरे तो मृदुताके कारण दोष चलायमान नहीं होते, अपने स्थानसे चलेहुए भी वहींपर स्तंभित होजातेहैं और विरेचन नहीं होता । ऐसा होनेसे अधोवायुका विबंध, गुदस्तम्भ, गुदामें शूलका होना और थोडे २ मलका निकलना यह उपद्रव होतेहैं । ऐसा होय तो तीक्ष्णवस्ति वा रूक्ष विरेचन अथवा लंघन और पाचनद्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी है ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

रूक्षतामें रूक्षविरेचनके दोष, चि० ।

रूक्षंविरेचनंपीतंरूक्षेणाल्पबलेनवा । मारुतंकोपयित्वाशुकुर्य्याद्घोरानुपद्रवान् ॥ ८५ ॥ स्तम्भशूलानिघोराणिसर्वगात्रेषुमारुतः । स्नेहस्वेदादिकस्तत्रकार्य्योवातहरोविधिः ॥ ८६ ॥

रूक्ष और अल्पबल मनुष्यको रूक्षविरेचन देनेसे वह वायुको कुपित करके घोर उपद्रवोंको उत्पन्न करताहै तथा वह कुपित वायु संपूर्ण शरीरमें घोर स्तम्भ और शूल तथा मोहको उत्पन्न करताहै । ऐसा होनेपर स्नेह, स्वेदादि वातनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

गुरुकोष्ठको मृदुशोधनके दोष और चि० ।

स्निग्धस्यगुरुकोष्ठस्यमृदूत्क्लेश्यौषधंकफम् । पित्तंवातञ्चसंरुध्यसतन्द्रागौरवक्लमम् ॥ ८७ ॥ दौर्बल्यञ्चाङ्गसादञ्चकुर्य्यादाशुतदुल्लिखेत् । लंघनंपाचनञ्चात्रस्निग्धेतीक्ष्णञ्चशोधनम् ॥ ८८ ॥

स्निग्ध शरीर और भारी कोष्ठवाले मनुष्यको यदि मृदु औषध पिलावे तो वह औषध उसके कफको उत्क्लेशितकर पित्त और वातको रोकदेतीहै तब तन्द्रा भारीपन, क्लान्ति, दुर्बलता और अंगोंका सोजाना यह उपद्रव उत्पन्न होतेहैं । ऐसा

होनेपर शीघ्र वमन कराना चाहिये । तथा लंघन और पाचनद्वारा कोष्ठकी, स्निग्धता और गुरुताको शान्तकर फिर स्नेहन स्वेदन, करके तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अध्यायका उपसंहार।

तत्र श्लोकौ ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्ताःसर्वाहिसचिकित्सिताः । वमनस्यविरेकस्यकृतस्याकुशलैर्नृणाम् ॥ ८९ ॥ एतान्विज्ञायमतिमानवस्थाश्चैवतत्त्वतः । कुर्य्यात्संशोधनंसम्यगारोग्यार्थीनृणांसदा ॥ ९० ॥

इतिश्रीच० सिद्धि० वमनविरे० व्यापत्सिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस अध्यायमें इस प्रकार वमन, विरेचनकी संपूर्ण व्यापत्तियें उनके उपद्रव और मूर्ख वैद्यके दियेहुए वमन, विरोचनोंसे डंकार इन सबको चिकित्सासहित कथन कियाहै । बुद्धिमान् वैद्य इन विषयोंको यथोचित समझकर और यथार्थरूपसे, अवस्था आदि विचारकर मनुष्योंकी आरोग्यताके लिये शोधन (वमन, विरेचन) का प्रयोग करे ॥ ८९ ॥ ९० ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं०सि०स्थाने प्र०भा०टी०वमनविरेचनव्यापत्तिसिद्धिर्नाम षष्ठोध्यायः॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातो वस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्याम इति हस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वस्तिव्यापत्सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कथन करने लगे ॥

धीधैर्य्यौदार्य्यगाम्भीर्य्यक्षमादमतपोनिधिम् । पुनर्वसुंशिष्यगणःपप्रच्छविनयान्वितः ॥ १ ॥ काः कतिव्यापदोवस्तेः किंसमुत्थानलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्नाञ्छुत्वातानब्रवीद्गुरुः ॥ २ ॥

बुद्धि, धैर्य, उदारता, गांभीर्य, क्षमा, दम और तपस्याके कोषरूप महर्षि पुनर्वसुजीसे शिष्यगण विनयपूर्वक पूछनेलगे कि हे भगवन् ! वस्तिकी व्यापतियें कितनी हैं और कौनसी हैं । उनके कारण क्या हैं और लक्षण क्या हैं तथा चिकित्सा क्य है इस प्रकार शिष्योंके प्रश्नको सुनकर गुरु कहनेलगे ॥ १ ॥ २ ॥

वस्तिकी व्यापत्तियें (विकार) ।

नातियोगौक्लमाध्मातौहिक्काहृत्प्राप्तिरूर्द्धता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गार्त्तिःपरिकर्त्तःपरिस्रवः ॥ ३ ॥ द्वादशव्यापदोवस्तेरसम्यग्योगसम्भवाः । आसामेकैकशोरूपंचिकित्साञ्चनिबोधत ॥ ४ ॥

अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आध्मान, हिचकी, हृत्प्राप्ति, उर्द्धगमन, प्रवाहिका शिरोवेदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका और परिस्राव यह बारह प्रकारके विकार वस्तिके मिथ्यायोगसे उत्पन्न होतेहैं । अब इनके पृथक् लक्षण और चिकित्साको श्रवण करो ॥ ३ ॥ ४ ॥

अयोग ।

गुरुकोष्ठेऽनिलप्रायेरूक्षेवातोल्बणेऽपिवा । शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रोघनोऽपिवा ॥ ५ ॥ वस्तिःसंक्षोभ्यतंदोषंदुर्बलत्वादनिर्हरन् । करोतिगुरुकोष्ठत्वंवातमूत्रशकृद्ग्रहम् ॥ ६ ॥ नाभिवस्तिरुजंदाहं, हृल्लेपंश्वयथुंगुदे । कण्डूगण्डानिवैवर्ण्यमरुचिंवह्निमार्दवम् ॥ ७ ॥

वातप्रधान, गुरुकोष्ठ, रूक्ष और वाताधिक्य मनुष्यको यदि शीतल थोडे नमकवाली थोडे स्नेहवाली, अत्यंत पतली वा अत्यंत गाढी वस्तिका प्रयोग कियाजाय तो वह वस्ति दोषोंको संक्षोभित तो कर देतीहै परन्तु निर्बल होनेसे निकाल नहीं सकती तथा कोष्ठमें भारीपन, अधोवायु, मल और मूत्रकी रुकावट, नाभि और वस्तिस्थानमें पीडा, दाह, हृदयका उपलेप, गुदामें सूजन, खुजली, ग्रंथियें, विवर्णता अरुचि, अग्निकी मंदता इन उपद्रवोंको उत्पन्न करती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अयोगकी चिकित्सा ।

तत्रोष्णायाःप्रमथ्यायाःपानंस्वेदाःपृथग्विधाः । फलवर्त्त्योऽथवाकालंज्ञात्वाशस्तंविरेचनम् ॥ ८ ॥ बिल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान् ॥ सुरादिमूत्रवान्वस्तिःसप्राक्प्रेरितमानयेत् ॥ ९ ॥

ऐसा होनेसे गर्मगर्म प्रमथ्योंको पीवे तथा अनेक प्रकारके स्वेदन, फलवर्त्ती अथवा काल आदि विचारकर विरेचन करना हितकारक है ॥ ८ ॥ अथवा बेलकी जड, निशोथ, देवदारु, यव, बेर और कुलथीके कल्क और सुरा आदि द्रव्य तथा गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति द्वारा पहिले दीहुई वस्तिको निकालडाले ॥ ९ ॥

---

१ हरडके क्वाथको गर्म गर्म पीवे । कोई कहते हैं कि ८ तोला चावलोंको कूटकर ६४ तोला पानीमें पकावे १६ तोला बाकी रहनेपर उतारकर गर्म गर्म पान करे ।

अतियोगके लक्षण और यत्न।

स्निग्धस्विन्नेऽतितीक्ष्णोष्णोमृदुकोष्ठेऽतियुज्यते।
नस्यलिङ्गंचिकित्साञ्चशोधनाभ्यांसमाचरेत्॥ १० ॥

अत्यन्त स्नेहन और स्वेदनके अनन्तर मृदुकोष्ठवाले मनुष्यको अति तीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे अतियोग होताहै। अतियोगके संपूर्ण लक्षण और चिकित्सा वमन विरेचनके अतियोगके समान जानना ॥ १० ॥

पृश्निपर्णीस्थिरांपद्मंकाश्मर्य्यंमधुकंबलाम् । पिष्ट्वाद्राक्षांमधूकञ्च क्षीरेतण्डुलधावने ॥ ११ ॥ द्राक्षायाःपक्वलोष्टस्यप्रसादोमधुकस्य च। विनीयसघृतंवस्तिंदद्याद्दाहेऽतियोगजे ॥ १२ ॥

पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, पद्मकाष्ठ, कुंभेर, मुलहठी और बला इनमेंसे किसी एकका कल्क अथवा सबका मिलाहुआ कल्क वा द्रक्षा और महुएका कल्क करे फिर दूध मिले चावलोंके धोवनमें मुनक्का अथवा महुएका कल्क वा आगमें तपाईहुई मट्टीका ढेला बुझाकर रखदे। उसमेंसे स्वच्छ नितरेहुए धोवनमें उपरोक्त कल्क और घृत मिला वास्तिप्रयोग करे तो वास्तिके अतियोगसे उत्पन्नहुई दाह आदिक नष्ट होजाती है ॥ ११ ॥ १२ ॥

क्लमके लक्षण व चिकित्सा।

आमदोषेनिरूहेणमृदुनादोषईरितः। रुणद्धिमार्गंवातस्यहन्त्यग्निं मूर्च्छयत्यपि ॥ १३ ॥ क्लमंविदाहंहृच्छूलंमोहवेष्टनगौरवम्। कु-र्य्यात्स्वेदैर्विरूक्षैस्तंपाचनैश्चाप्युपाचरेत् ॥ १४ ॥

आमदोषयुक्त मनुष्यको मृदु निरूहण देनेसे दोष उत्क्लेशित होकर वायुके मार्गको रोकलेते हैं तथा अग्निको नष्ट वा मूर्च्छित करदेतेहैं उससे क्लान्ति, विदाह, हृदयमें पीडा, मोह वेष्टनकीसी पीडा और भारीपन यह लक्षण होते हैं। ऐसा होनेपर रूक्ष स्वेदन और पाचनद्रव्योंद्वारा चिकित्सा करना चाहिये॥१३॥१४॥

पिप्पलीकतृणोशीरदारुमूर्वाशृतंजलम्।
पिबेत्सौवर्चलोन्मिश्रंदीपनंहृद्विशोधनम् ॥ १५ ॥

पीपल, रोहिषतृण, खस, देवदारु और मूर्वा इनके क्वाथमें संचरनमक मिलाकर पीवे तो दीपन और हृदयकी शुद्धि होती है ॥ १५ ॥

वचानागरसर्जैलादधिमण्डेनमूर्च्छिताः। पेयाःप्रसन्नयावास्युरारिष्टेनासवेनवा ॥ १६ ॥ दारुत्रिकटुकंपथ्यांपलाशंचित्रकंशटीम् । पिष्ट्वाकुष्ठश्चमूत्रेणपिवेत्क्षारांश्चदीपनान् ॥ १७ ॥

वच, सोंठ, सज्जीखार, और इलायचीके चूर्णको दहीके मण्डमें मिलाकर बनाई हुई पेया अथवा इसी चूर्णको प्रसन्ना, अरिष्ट अथवा आसवमें मिलाकर पीवे तो अग्निदीपन और हृदयकी शुद्धि होकर क्लम दूर होताहै । अथवा देवदारु, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड, पलाशके बीज, चित्रक, कचूर और कूठ इनको गोमूत्रमें मिला कर पीवे वा दीपन क्षारोंको पीवे तो क्लमके विकार दूर होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

वस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलिकम् ।
समूत्रमथवाऽव्यक्तलवणंमधुतैलिकम् ॥ १८ ॥

अथवा दशमूलके क्राथमें गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति करे । वा गोमूत्रमें अल्प लवण मिलाकर शहद और तैलयुक्तकर वस्तिकरे तो वस्ति कर्मके मिथ्यायोग जनित क्लम, व्यापत्ति दूर होतीहै ॥ १८ ॥

आध्मानके हेतु लक्षण चिकित्सा ।

अल्पवीर्योमहादोषेरूक्षेक्रूराशयेकृतः । वस्तिर्दोषावृतोरुद्धमार्गो रुन्ध्यात्समीरणम् ॥ १९ ॥ सर्विमार्गोऽनिलःकुर्यादाध्मानंमर्मपीडनम् । विदाहंगुरुकोष्ठस्यमुष्कवङ्क्षणवेदनाम् । रुणद्धिहृदयंशूलैरितश्चेतश्चधावति ॥ २० ॥

क्रूरकोष्ठवाले और बढेहुए दोषोंयुक्त मनुष्यको अल्पवीर्य और रूक्षवस्तिका प्रयोग करनेसे वस्तिके दोषसे आवृत हुआ वायु ऊपर और नीचेके सब स्रोतोंको रोककर विमार्गगामी हो मर्मोंको पीडन करताहुआ अफारेको उत्पन्न करताहै । उससे विदाह कोष्ठमें भारीपन, फोते आदिकोंमें और वंक्षणमें पीडा, हृदयका उपरोध, यह लक्षण होते हैं तथा यह रोगी शूलसे पीडित हुआ इधर उधर गमन करताहै ॥ १९ ॥ २० ॥

फलश्यामादिभिःकुष्ठकृष्णालवणसर्षपैः । धूममाषवचाकिण्वक्षारचूर्णैर्गुडैःकृताम् ॥ २१ ॥ कराङ्गुष्ठनिभांवर्तिंयवमध्यांनिधापयेत् । स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्यतैलाक्तांस्नेहितेगुदे ॥ २२ ॥ अथवालवणागारधूमसिद्धार्थकैःकृताम् ॥ २३ ॥ विल्वादिनानिरूहःस्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान् । सरलामरदारुभ्यांसिद्धश्चैवानुवासनम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार उपद्रवयुक्त अफारा होनेपर अपामार्गतण्डुलीयाध्यायमें कहेहुए मैनफल आदि गण और निशोथ आदि गणकी औषधियें कूठ, पीपल, सेंधानमक, सरसों, गृहधूम, उडद, वच, सुराबीज और जवाखार इन सबको बारीक पीस गुड मिला अंगूठेके समान मोटी वर्त्ति बनावे। और इस वर्त्तिके भीतर यवोंका चूर्ण भरे फिर इसको तैलमे भिगोकर स्निग्धकीहुई गुदामें प्रवेश करे अथवा लवण, गृहधूम और सफेद सरसोंसे पूर्वोक्त रीतिपर बनाई हुई वर्त्तिका विधिवत् प्रयोगकरे। वा बिल्वादि पंचमूलके काथमें पीलू और सफेद सरसोंका कल्क मिला गोमूत्र युक्तकर निरूहण वस्तिका प्रयोग करे ऐसा करनेसे वस्तिके मिथ्यायोगजनित आध्मान रोग दूर होताहै ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

हिचकीव्यापल्लक्षण और चिकित्सा।

मृदुकोष्ठेऽबलेवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हरन्। कुर्य्याद्धिक्कादिकंतत्र हिक्काघ्नंबृंहणञ्चयत्॥ २५॥ बलास्थिरादिकाश्मर्य्यत्रिफलागुडसैन्धवैः। सप्रसन्नारनालाम्लैस्तैलंपक्त्वानुवासयेत्॥ २६॥

मृदुकोष्ठवाले दुर्बल मनुष्यको अतितीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करनेसे वह वस्ति उसके दोषोंको अत्यन्त हरण करके हिचकीको उत्पन्न करती है ऐसा होनेपर हिचकीनाशक और बृंहणचिकित्सा करना चाहिये। तथा बला, शालपर्ण्यादि पंचमूल, कुंभेर, त्रिफला, गुड, सेंधानमक इनका कल्क और प्रसन्ना तथा कांजी मिलाकर सिद्ध किये तैलद्वारा अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥

कृष्णालवणयोरक्षंपिवेदुष्णाम्बुनायुतम्।
धूमलेहरसक्षीरस्वेदाश्चान्नञ्चवातनुत्॥ २७॥

अथवा पीपल और सेंधानमकका १ तोला चूर्ण गर्मजलके साथ पीवे तो हिचकी दूर होती है तथा इस हिचकीमें धूमपान, अवलेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्नपान हितकारक होते है ॥ २७ ॥

हृद्व्यापतके लक्षण और यत्न।

अतितीक्ष्णःसवातोवानवासम्यक्प्रपीडितः। घट्टयेद्धृदयंवस्तिस्तत्रकासक्षणोत्कटैः॥ २८॥ स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरवदरीफलैः। शृतैर्वस्तिर्हितःसिद्धंवातघ्नैश्चानुवासनम्॥ २९॥

वस्तिके अतितीक्ष्ण होनेसे अथवा पवनयुक्त वस्तिके प्रयोग करनेसे वा एकबार वेगपूर्वक वस्तिको पीडन करनेसे वह वस्ति हृदयको घट्टन (धकधकी) करती है।

ऐसा होनेपर कांस, कुशा और ईखकी जडका क्वाथ और अम्लवर्ग, संधानमक, बांसके कोमल अंकुर और बेरके फलोंके कल्कसे तथा वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध-किये तैलद्वारा अनुवासनवस्ति करना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

ऊर्द्धगमनव्यापत्ति ।

वातमूत्रपुरीषाणांदत्तवेगान्निगृह्णतः । अतिवापीडितोवास्तिर्मुखेनायातिवेगवान् ॥ ३० ॥ मूर्च्छाविकारंतस्यादौदद्याशीताम्बुनामुखम् । सिञ्चेत्पार्श्वोदरञ्चाधःप्रमृज्याद्वीजयेच्चतम् ॥ ३१ ॥

अधोवायु, मूत्र और मलके उपस्थित वेगमें वेगोंको रोककर वस्ति ग्रहणकरे अथवा अत्यंतवेगसे वस्तिको दबाया जाय तो वस्ति द्रव्यमुखकी ओर गमन करता-है उससे मूर्च्छा अथवा मूर्च्छाके समान अन्य विकार होने लगते हैं। ऐसा होनेपर शीतल जलसे मुखपर छींटे देना और उसके पसवाडों और उदरको हाथसे धीरे धीरे नीचेकी ओरको मसलताजाय और पंखेकी पवन करे ॥ ३० ॥ ३१ ॥

केशेष्वालम्ब्यचाकाशेधनुपात्रासयेच्चतम् । गोखराश्वगजैः सिंहै राजप्रेष्यैस्तथोरगैः ३२ ॥ उल्काभिरेवमन्यैश्चवास्तिमस्यन्यसेदधः । वस्त्रपाणिग्रहैःकण्ठोरुन्ध्यान्नम्रियतेयथा ॥ ३३ ॥ प्राणोदाननिरोधाद्धिप्रसिद्धतरमार्गगः । अपानःपवनोवस्तिंतमाश्वेवापर्षति ॥ ३४ ॥

तथा उसके केशोंको खींचकर मस्तककी ओर लावे जिससे उसको कष्ट प्रतीत हो वा उसको धनुपका भय दिखलावे । अथवा गौ, गधा, घोडा, हाथी, सिंह, राजाके चपरासी, सांप, उल्का और बिच्छू आदिकोंसे डरावे । ऐसा करनेसे उस वस्तिका वेग नीचेकी और उत्तर जाताहै । अथवा जिस प्रकार रोगी मर न जावे । ऐसी रीतिसे वस्त्र अथवा हाथों द्वारा उसके कण्ठको दबावे । इस प्रकार गला घोंटनेसे प्राण और उदान वायुका निरोध होकर अपानवायु रुककर अपने मार्गसे नीचेको गमन करती हुई वस्तिद्रव्यको भी नीचे ले जाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

ततःक्रमुककल्काक्षंपाययेताम्लसंयुतम् ।
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरावाच्चवस्तिश्चास्यानुलोमयेत् ॥ ३५ ॥

इसके अनन्तर १ तोला सुपारीके कल्कको कांजीके साथ पिलावे । यह कांजीयुक्त कल्क, उष्णता, तीक्ष्णता और सरत्वगुणसे वस्तिको अनुलोमनकर नीचेकी ओर निकाल देताहै ॥ ३५ ॥

पक्वाशयस्थितेस्विन्नेनिरूहोदशमूलिकः । यवकोलकुलत्थैश्चवि-
धेयोमूत्रसाधितः ॥ ३६ ॥ विल्वादिपञ्चमूलेनसिद्धोवस्तिरुरःस्थि-
ते । शिरःस्थेनावनंधूमःप्रच्छार्यंसर्षपैःशिरः ॥ ३७ ॥

जब पक्वाशयमें वस्तिद्रव्य स्थित हो तो उसको निकालनेके लिये स्वेदन करके दशमूलका क्वाथ, यव, वेर और कुलथीका क्वाथ, गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्तिका प्रयोग करे। यदि वस्तिद्रव्य वक्षस्थलमें अटकाहुआ हो तो बिल्वादि पंचमूलके क्वाथसे निरूहण करे। यदि वस्तिद्रव्य तालुस्थानमें पहुंचगया हो तो नस्य और धूमपानका प्रयोग तथा शिरके ऊपर सरसोंका लेप करना श्रेष्ठ होताहै ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रवाहिकाव्यापत्तिके लक्षण और चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नेमहादोषेवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः । उत्क्लेश्याल्पंहरेद्दोषंजन-
येच्चप्रवाहिकाम् ॥ ३८ ॥ सवस्तिःपायुशोफायजङ्घोरुसदनायच ।
निरुद्धमारुतोजन्तुरभीक्ष्णंसंप्रवाहते ॥ ३९ ॥

महादोषवाले स्निग्ध और स्वेदित रोगीको यदि मृदु और अल्पबल द्रव्यसे वस्तिप्रयोग कियाजाय तो वह वस्ति दोषोंको उत्क्लेशित करके अल्पमात्र दोषोंको हरणकर प्रवाहिका (निवाही या पेचिश) को उत्पन्न करती है। उससे गुदामें सूजन, जंघा और ऊरुओंका सुन्नसा होना और वायुकी रुकावट होकर वह रोगी एकसाथ वारवार थोडे २ मलको तथा अल्प २ आंवदोषको पीडाके सहित प्रवाहण करता रहताहै । अर्थात् त्यागता रहताहै ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

स्वेदाभ्यङ्गान्निरूहांश्चशोधनीयानुलोमिकान् । विदध्याल्लङ्घयित्वा
तुवृत्तिंकुर्य्याद्विरिक्तवत् ॥ ४० ॥

ऐसा होनेपर रोगीको स्वेदन और अभ्यंग करके शोधनीय और अनुलोमनीय निरूहणवस्तिका प्रयोग करे । तथा रोगीको लंघन कराके दोष पाचन होनेके अनंतर विरिक्त मनुष्यके समान पेयादिक्रमका पालन करावे ॥ ४० ॥

शिरःशूलव्यापत्ति ।

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शीतोऽल्पश्चावृतोदोषैर्वस्ति-
स्तद्विहतोऽनिलः ॥ ४१ ॥ मार्गैर्गात्राणिसन्धावन्नूर्द्ध्वंमूर्द्धन्युपाहि-
तम् । ग्रीवांमन्येचगृह्णातिशिरःकण्ठंभिनत्तिच । वाधिर्य्यंकर्णना-
दश्चपीनसंनेत्रविभ्रमम् ॥ ४२ ॥

दुर्बल, तीव्रदोषयुक्त नर्मकोठेवाले मनुष्यको पतला, मृदु, शीतल और अल्प निरूहणवस्तिके प्रयोग करनेसे वह वस्तिद्रव्य दोषों द्वारा आवृत हो जाताहै । उससे विहतहुआ वायु ऊपरके मार्गोंसे गमन करताहुआ ग्रीवा और मन्याको जकड देताहै, तथा शिर और कण्ठमें भेदनकीसी पीडाको करताहै और बहरापन, कर्णनाद, प्रतिश्याय तथा नेत्रोंका विभ्रम इन उपद्रवोंको करताहै ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

कुर्य्यादभ्यञ्जनंतैललवणेनयथाविधि । युञ्ज्यात्प्रधमनैर्नस्यैर्धूमैरास्यंविरेचयेत् । तीक्ष्णानुलोमिकेनाथस्विन्नंभुक्तेऽनुवासयेत् ॥ ४३ ॥

ऐसा होनेपर तेल और सेंधेनमकसे विधिपूर्वक मालिश करे तथा प्रधमन, नस्य, धूमपान, शिरोविरेचन आदि प्रयोग करे तथा स्वेदित करके तीक्ष्ण निरूहणका प्रयोग करे । फिर भोजन करनेके अनन्तर अनुलोमन करता अनुवासनवस्तिका प्रयोग करे ॥ ४३ ॥

अंगशूलव्यापत्ति ।

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्ययस्यवस्तिर्विधीयते । अतितीक्ष्णोगुरुश्चैवसोऽतिमात्रंप्रवर्त्तयेत् ॥ ४४ ॥ स्रुतेषुतस्यदोषेषुनिरूढस्यातिमात्रशः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिहन्यते ॥ ४५ ॥ विलोमेनसमुद्धूतोरुजत्यङ्गानिदेहिनः । गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजृम्भणैः ॥ ४६ ॥ तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा । एरण्डपत्रनिष्काथैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥ ४७ ॥

रोगीको उचित रीतिपर स्निग्ध और स्वेदन करके अधिकमात्रासे अतितीक्ष्ण वस्ति प्रयोग करनेसे वह अधिकमात्रासे प्रवृत्त होती है अर्थात् अत्यंत वेगपूर्वक दोष अधिक मात्रा शीघ्र निकलजाते हैं । फिर संपूर्ण दोषोंके अतिमात्रा निकलजानेसे वायु प्रतिहत होकर उस रोगीके कोठेमें उदावर्त्त और स्तम्भको उत्पन्न करताहै । वह ऊपरको गमन करताहुआ वायु स्रोतोंको रोककर अंगोंमें प्राप्त हो अंगशूल, वेष्टन,

---

१ स्नेहस्वेदैरनापाद्यगुरुतीक्ष्णातिमात्रया । यस्यवस्तिःप्रयुज्येतनातिमात्रंप्रयुज्यते । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यरुद्धःस्रोतः सुमारुतः । प्रपन्नोऽङ्गरुजंकुर्य्यात्सतैललवणान्वितम् ॥ १ ॥ उष्णाम्बुप्रस्तरक्वाथैःस्वेदैस्तमुपपादयेत् । सबिल्वतैललवणानिरूहस्तस्यशस्यते । तैलावगाहस्विन्नस्यकारयेदनुवासनम् ॥ २ ॥ प्रयुज्यविधिनासम्यक्स्निग्धंकायततःपरम् । विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः ॥ ३ ॥ एतच्छ्लोकचतुष्टयकस्मिंश्चित्पुस्तकेधिकमुपलभ्यतेपरन्त्वग्रिमपद्यचतुष्टयेनगतार्थत्वान्नमूलेनिवेशितम् ॥ ४ ॥

तोद, भेद, स्फुरण और जृंभणको उत्पन्न करताहै। ऐसा होनेपर लवणयुक्त तैलसे मालिशकर गर्मजलका सेककरे अथवा एरण्डके पत्रोंके कायसे मस्तरस्वेद करे वा अन्य क्वाथोंसे नाडीस्वेद आदि स्वेदोंद्वारा शूलकी शान्ति करे ॥ ४४–४७ ॥

यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभये । जलाढकद्वयेपक्त्वापाद-शेषेणतेनच । कुर्य्यात्सबिल्वतैलोष्णलवणेननिरूहणम् ॥ ४८ ॥

यव, कुलथी, बेर और दशमूलके दश द्रव्योंको एकसेर लेकर ८ सेर जलमें पकावे। २ सेर रहनेपर उतारकर छानले। फिर इसमें बिल्वतैल और लवण मिलाकर सुखोष्ण रहते हुए निरूहणका प्रयोग करे। तथा तैलकी द्रोणीमें बिठाकर फिर स्वेदन करे। तदनन्तर अल्प भोजन कराके मुलैठी और बिल्वतैलसे अनुवासनका प्रयोग करे ॥ ४८ ॥

निरूहणेसमाश्वस्तंद्रोण्यांसमवगाहयेत् । ततोभुक्तवतस्तस्यका-रयेदनुवासनम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनबिल्वतैलेनवाभिषक् ॥ ४९ ॥

फिर विधिवत् हित भोजनका पालन कराके यथासमय स्नेहन स्वेदन, करावे। और फिर स्निग्ध विरेचन निरूहण और अनुलोमन कर्त्ता अनुवासन वस्तिक प्रयोग करावे ॥ ४९ ॥

परिकर्तिका व्यापत्ति।

मृदुकोष्ठाल्पदोपस्यरूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्रवान् । वस्तिर्दोषान्निरस्या-शुजनयेत्परिकर्त्तिकाम् ॥ ५० ॥ त्रिकवंक्षणवस्तीनांतोदंनाभेरधो रुजम् । विबन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुदनिर्लेखनंभवेत् ॥ ५१ ॥

मृदुकोष्ठ और अल्पदोषवालेको रूक्ष, तीक्ष्ण और अधिक मात्रासे वस्तिप्रयोग किया जाय तो वह वस्ति दोषोंको निकालकर परिकर्त्तिका अर्थात् कतरनेकीसी पीडा उत्पन्न कर देती है तथा त्रिक वंक्षण और वस्तिस्थानमें सूई चुभने कीसी पीडा, नाभिके नीचे शूल, विबन्ध और अल्प २ मल निकले गुदामें विदारणकीसी पीडा हो (अत्यंत कतरनेकीसी पीडायुक्त प्रवाहिकाके समानही परिकर्त्तिका होती है) ॥ ५० ॥

स्वादुशीतौषधैस्तत्रपयइक्ष्वादिभिःशृतम् ।
यष्ट्याह्वतिलकल्काभ्यांवस्तिःस्यात्क्षीरभोजिनः ॥ ५२ ॥

परिकर्त्तिका व्यापत्तिमें मधुरगण और शीतल औषधियोंसे अथवा ईखके रस आदि-से सिद्धि किये दूधमें मुलैठी और तिलकल्क मिला वस्तिकर्म करे और भोजनके लिये रोगीको केवल दूधही देवे ॥ ५३ ॥

ससर्जरसयष्ट्याह्वजिङ्गिनीकर्दमाञ्जनम् ।
विनीयदुग्धेवस्तिःस्यात्तिक्ताम्लमृदुभोजिनः ॥ ५३ ॥

यदि वायुका भी संसर्ग हो और रक्तभी आनेलगे तो राल मुलैठी जीगनका छिलका चिकने तालाबकी पपडी , और रसौंत इनसे पकायेहुए दूधकी वस्ति करना हितकारक है । तथा ऐसे समय तिक्त और अम्लरसके साथ चावलोंका नर्मसा भोजन करावे ॥ ५३ ॥

परिस्राव व्यापत्ति ।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवालवणोऽथवा ॥ वस्तिर्लिखतिपायुन्तुतीक्ष्णोऽतिविदहत्यपि ॥ ५४ ॥ सविदग्धःस्रवत्यस्रंपितञ्चानेकवर्णवत् । साय्यतेवहुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृत् ॥ ५५ ॥

यदि मनुष्यको रक्तपित्त वा रक्तकी ववासीरमें अम्ल,उष्ण, तीक्ष्ण और लवणयुक्त वस्तिका प्रयोग करे तो वह वस्ति गुदाको विदीर्ण कर तीक्ष्ण होनेसे विदाहको उत्पन्न करती है । और विदग्ध होनेसे अनेक वर्णके पित्तके स्रावको उत्पन्न करती है उस स्रावके अति वेगसे रोगीको एकाएकी वेहोशी होनेलगतीहै ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

आर्द्रशाल्मलिवृन्तैस्तुक्षुण्णैराजंपयःश्रृतम् । सर्पिषायोजितंशीतंवस्तिमस्मैप्रदापयेत् ॥ ५६ ॥ वटादिपल्लवेष्वेपकल्पोयवतिलेपुच । सुवर्च्चलोपोदिकयोःकर्वुदारेचशस्यते ॥ ५७ ॥ गुदेसेकाःप्रदेहाश्च शीताःस्युर्मधुराश्चये । रक्तपित्तातिसारघ्नीक्रियाचात्रप्रशस्यते॥५८॥

इस रोगमें सेंवलके गीले वृन्तोंको कूटकर उनसे बकरीके दूधको सिद्ध करे उस दूधको घीमें मिलाकर शीतलही वस्तिका प्रयोग करे अथवा वटादि क्षीरी वृक्षोंके कोमलपत्र, यव,तिल, हुलहुल, पोईके पत्र, लालकचनार इनके क्वाथसे और कल्कसे गुदापर सेचन और लेपन करे । अथवा इनसे सिद्ध किये दूधमें घृत मिलाकर उससे शीतलही वस्तिका प्रयोग करे तथा अन्य शीतल और मधुर द्रव्योंसे गुदापर सेचन और लेपन करे । तथा रक्तपित्तातिसारनाशक क्रिया करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्रश्लोकाः ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्तावस्तेःसाकृतिभेषजाः ।
वुद्ध्वाकात्स्न्र्येनतान्वस्तीन्नियुञ्जन्नापराध्यति ॥ ५८ ॥

अध्यायके उपसंहारमें यह श्लोक हैं कि इस वास्तिव्यापत्तिसिद्धिनामक अध्यायमें वस्तिके मिथ्यायोगसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंके लक्षण और औषधि क्रम कथन कर दिया है इसको संपूर्ण रूपसे समझकर वास्तिके प्रयोग करनेवाला वैद्य अपराधका भागी नहीं होता ॥ ५९ ॥

तीक्ष्णत्वंमूत्रविल्वादिलवणक्षारसर्षपैः ।
प्राप्तकालंविधातव्यंक्षीराद्यैर्मार्दवंतथा ॥ ६० ॥

समय आदि विचारकर वस्तिको तीक्ष्ण अथवा मृदु किया जा सकता है। यदि वस्तिको तीक्ष्ण करना हो तो उसमें गोमूत्र, बिल्वफल, मैनफल आदि, लवण, क्षार और सरसोंका कल्क मिलाना चाहिये और यदि वास्तिको मृदु करना हो तो उसमें दूध, घृत आदि मधुर द्रव्योंका प्रयोग करे ॥ ६० ॥

आपादतलमूर्द्धस्थान्दोषान्पक्काशयेस्थितः ।
वीर्य्येणवस्तिरादत्तेखस्थोऽर्कोभूरसानिव ॥ ६१ ॥

जैसे आकाशमें स्थितहुआ सूर्य पृथ्वीके संपूर्ण रसोंको आकर्षण कर देता है उसी प्रकार विधिवत् वस्तिका प्रयोग करनेसे पक्काशयमें स्थितहुई वस्ति भी पांवोंसे शिरतकके दोषोंको आकर्षण करलेती है ॥ ६१ ॥

यद्वत्कुसुम्भसंमिश्रात्तोयाद्रागंहरेत्पटः ।
तद्वद्द्रवीकृतात्कायान्निरूहोनिर्हरेन्मलान् ॥ ६२ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थाने वस्तिव्यापत्सिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

जैसे जलमें मिलेहुए कसुंमेके फूलोंके रंगको स्वच्छ वस्त्र अपनेमें खेंच लेता है उसी प्रकार संपूर्ण शरीरमें मिलेहुए दोषोंको वस्तिभी द्रवीभूत करके आकर्षण करलेती है ॥ ६२ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०स०सिद्धिस्थाने अ०भा०टी० वस्तिव्यापत्सिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

आथातः प्रासृतयोगिकासिद्धिंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम प्रासृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहनेलगे ।

अथेमान्सुकुमाराणांनिरूहान्स्नेहनान्मृदून् ।
कर्मणाविक्लुतानाञ्चवक्ष्यामिप्रसृतैःपृथक् ॥ १ ॥

अब सुकुमार और अधिक कामकाजसे थकेहुए मनुष्योंके लिये मृदु निरूहण और स्नेह प्रयोगोंका प्रसृत (२ पल) आदि प्रमाणसे पृथक् २ मृदुवास्तियोंका कथन करतेहैं ॥ १ ॥

पंचप्रासृतिकवस्ति ।

क्षीराद्द्वौप्रसृतौकार्य्योमधुतैलघृतात्त्रयः ।
खजेनमथितोवस्तिर्वातघ्नोवलवर्णकृत् ॥ २ ॥

दूध २ प्रसृत (४ पल) शहद, तेल और घी यह तीनों एक एक प्रसृत (दो दो पल) इन सबको मथानीसे मथकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्ति वातनाशक और बल, वर्णको बढानेवाली है ॥ २ ॥

अष्टप्रासृतिकवस्ति ।

एकैकःप्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषः ।
विल्वादिमूलक्वाथाद्द्वौकौलत्थाद्द्वौसवातनुत् ॥ ३ ॥

तेल प्रसन्ना शहद और घृत यह एक एक प्रसृत विल्वादि पंचमूलका क्वाथ २ प्रसृत और कुल्थीका काथ २ प्रसृत इनको मथानीसे मथकर वस्ति प्रयोग करे। यह वस्ति वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ३ ॥

नवप्रासृतिकवस्ति ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिषोः ।
एकैकःप्रसृतोवस्तिःस्नेहनीयोऽनिलापहः ॥ ४ ॥

विल्वादि पंचमूलका क्वाथ ५ प्रसृत, तेल २ प्रसृत, शहद १ प्रसृत, घृत एक प्रसृत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करे यह वस्ति स्नेहन और वायुको नष्ट करनेवाली है ॥ ४ ॥

शुक्रवर्द्धकवस्ति ।

सैन्धवार्द्धाक्षएकैकःक्षौद्रतैलपयोघृतात् ।
प्रसृतौहपुषाख्याच्चनिरूहःशुक्रकृत्परः ॥ ५ ॥

सैंधानमक ६ मासे और शहद, तेल,दूध, घृत, यह सब एक एक प्रसृत, नेत्रवाला का काथ १ प्रसृत इन सबको मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वीर्यकी अत्यंत वृद्धि होतीहै ॥ ५ ॥

पंचतिक्तकवस्ति ।

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः । चत्वारःप्रसृताएको घृतात्सर्षपकल्कतः॥निरूहःपञ्चतिक्तोऽयंमोहाभिष्यन्दकुष्ठनुत् ॥६॥

पटोलपत्र, नीमकी छाल,चिरायता, रास्ना और सप्तपर्णकी छाल इन सबका काथ ४ प्रसृत, घृत १ प्रसृत, सरसोंका कल्क १ तोला इन सबको मिलाकर वस्ति-कर्म करे तो यह वस्ति, मोह, अभिष्यंद और कुष्ठको नष्ट करतीहै ॥ ६ ॥

कृमिनाशकवस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिग्रूफलमुस्ताखुपर्णिकात् ॥ ७ ॥ कषायात्प्रसृताः पञ्चतैलादेकोविमथ्यतान् । विडङ्गपिप्पलीकल्कान्निरूहःक्रिमिना-शनः ॥ ८ ॥

वायविडंग, त्रिफला, साहजनेके बीज, नागरमोथे और दन्ती इन सबका काथ ५ प्रसृति, तेल १ प्रसृति, वायविडंग और पीपलका कल्क २ तोला इन सबको मिलाकर निरूहणवस्ति करे तो इससे मलाशयमें होनेवाले सब प्रकारके कृमि दूर होवेहैं ॥ ७ ॥ ८ ॥

वृष्यवस्ति ।

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषः ।

एकैकःप्रसृतोवस्तिःकृष्णाकल्कोवृषत्वकृत् ॥ ९ ॥

क्षीरकाकोली, शालपर्णी और रास्नाका काथ, ईखका रस, विदारीकंदका रस, शहद और घृत यह सब एक एक प्रसृति तथा पीपलका कल्क मिला सबको मथन करे । इस वस्तिके प्रयोग करनेसे वृष्यता (वीर्यकी वृद्धि) होती है ॥ ९ ॥

अन्य अनेकरोगोंमें वस्तियोग ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिकात् ।

प्रसृताःसर्षपैःपिष्टैर्विट्सङ्गानाहभेदनः॥ १० ॥

तेल, गोमूत्र, दधिमण्ड और खट्टी कांजी यह सब ४ प्रसृति, इसमें सरसोंका कल्क मिलाकर वस्तिकर्म करे तो यह वस्ति अफारा और मलके विबन्धको भेदन-कर दूर करदेती है ॥ १० ॥

श्वदंष्ट्राश्वभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरासवात् । प्रसृताः पञ्चयष्ट्याह्वा-त्कौन्तीमागधिकासिता ॥ कल्कोवस्तिस्तुसानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरोम-तः ॥ ११ ॥

गोखरू, पाषाणभेद, एरण्डकी जड इन सबका क्वाथ ३ प्रसृति, तेल १ प्रसृति, मद्य १ प्रसृति और इसमें रेणुका, पीपल, तथा मिसरीका २॥ तोला कल्क मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति अफारा और मूत्रकृच्छ्रको दूर करतीहै ॥ ११ ॥

एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रसृतानव ॥ १२ ॥

यह जो ऊपर ९ प्रकारके वस्तियोग कहेहैं इनमें सेंधानमक मिलाकर और इनको किंचित् गर्म करके प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

वस्तिविषयक अन्य विवेचना ।

मृदुवस्तौजडीभूतेतीक्ष्णोऽन्योवस्तिरिष्यते ।
तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापनमिष्यते ॥ १३ ॥

यदि मृदुवस्ति रुकजाय तो तीक्ष्णवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और यदि तीक्ष्णवस्तिसे रोगी विशेष कर्षित होजाय अर्थात् तीक्ष्णवस्तिके अतियोगसे व्याकुल रोगी होजाय तो उसको मृदु और आस्थापनवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥१३॥

वातोपसृष्टस्योष्णैःस्युर्गुददाहादयोयदि । द्राक्षाम्बुनात्रिवृत्कल्कंदद्याद्दोषानुलोमनम् । तद्धिपित्तशकृद्वातान्हृत्वादाहादिकाञ्जयेत् ॥ १४ ॥

वातपीडित मनुष्यको उष्णवस्तिका प्रयोग करनेसे यदि उसकी गुदामें दाह आदिक उपद्रव होजाँय तो उसको द्राक्षाके रसके साथ निशोथका कल्क पिलावे। उसके पीनेसे दोषका अनुलोमन होताहै। और यह पित्त और मलको निकालकर दाहादिकोंकी शांति करताहै ॥ १४ ॥

शुद्धश्चापिपिबेच्छीतांयवागूंशर्करायुताम् ॥ १५ ॥

शुद्ध होनेके अनन्तर मिसरी मिलाकर शीतल यवागूको पीवे ॥ १५ ॥

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणविट्कःसभक्षयेत् ।
माषयूषेणकुल्माषान्पिबेद्दध्यथवासुराम् ॥ १६ ॥

अत्यंत विरेचन होनेसे जिस मनुष्यका मल क्षीण होगयाहो उसको उडदोंके यूषके साथ भोजन करावे तथा कुल्माष (उबालाहुआ गेहूं) अथवा दही या सुराका सेवन करावे ॥ १६ ॥

सामंचेदतिसार्येतशूलारोचकवान्नरः ।
सतदाहपुषाकुष्ठनतदारुवचाःपिबेत् ॥ १७ ॥

वस्तिकर्मके अनन्तर मनुष्यको शूल, अरुचि और आमातिसार होजाय तो उसको, हाउबेर कूठ, तगर, देवदारु और वचका चूर्ण पिलावे ॥ १७ ॥

६ मलोंके अतिसार।

शकृद्वातमसृक्पित्तंकफंवायोऽतिसार्य्यते ।
पक्वस्तत्रस्ववर्गीयैर्वस्तिःश्रेष्ठंभिषग्जितम् ॥ १८ ॥

मल, अधो वायु, रक्तपित्त वा कफका अतिसार हो तो उसके पक्व होनेपर रोगीको उस रोगकी ही औषधियोंद्वारा शान्त करना चाहिये। तथा उस रोगके नाश करनेवाले द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

इन ६ के ३० भेद।

षण्णामेषांद्विसंसर्गात्त्रिंशद्भेदाभवन्तिते । केवलैःसहचेत्त्रिंशद्विद्यात्सोपद्रवानपि ॥ १९ ॥ शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान् । सतृष्णादाहमूर्च्छान्तांश्चैषांविद्यादुपद्रवान् ॥ २० ॥

आमाँ, विष्ठा, वायु, रक्त पित्त और कफ इन छः प्रकारके मलोंके दो दो भेदोंकी मिलावट करनेसे ३० प्रकारके भेद होजाते हैं। जैसे आमविष्ठा, आमवायु, आमरक्त, आमपित्त, आमकफ, विष्ठावायु, विष्ठारक्त, विष्ठापित्त, विष्ठाकफ, वायुरक्त, वायुपित्त, वायुकफ, रक्तपित्त, रक्तकफ और पित्तकफ। यह १५ औ ६ प्रकारके उपरोक्त मल मिलानेसे इकीस भेद हुए। इन इकीसोंमें नीचे लिखे ९ उपद्रव मिलावे जैसे शूल, प्रवाहिका, अफारा, परिकर्तिका, अरुचि, ज्वर, प्यास, दाह और मूर्च्छा यह ९ उपद्रव अतिसारके होतेहैं इनके मिला देनेसे ३० भेद होजाते हैं॥ १९ ॥ २० ॥

इनकी चिकित्सा।

तत्रामेवमनंकार्य्यंव्योपाम्ललवणैर्युतम् ।
पाचनंशस्यतेवस्तिरामेहिप्रतिषिध्यते ॥ २१ ॥

आमातिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण और कांजी नमकके साथ पिलाकर वमन करान हितकारक है। और इन्हीं द्रव्योंसे पाचनवस्ति देनेसे भी आमातिसार नष्ट होताहै॥२१॥

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिःशकृतिशस्यते ।
स्वाद्वम्ललवणैःशस्तःस्नेहवस्तिःसमीरणे ॥ २२ ॥

मलातिसारमें वातनाशक, तथा संग्राही द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है। वातातिसारमें मधुर, अम्ल और लवण द्रव्योंसे स्नेहयुक्त वस्तिकर्म करना हितकरक है ॥ २२ ॥

रक्तेरक्तेनपित्तन्तुकषायस्वादुतिक्तकैः ।
सार्य्यमाणेकफेवस्तिःकषायकटुतिक्तकैः ॥ २३ ॥

रक्तातिसारमें बकरेके रक्तसे वा लालचन्दनसे अथवा रक्तातिसारनाशक द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये । पित्तातिसारमें मधुर, तिक्त और कसैले, द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये । कफातिसारमें कसैले, चरपरे और कडुवे द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है ॥ २३ ॥

शकृतावायुनाचामेतेनवर्चस्यथानिले ।
संसृष्टेऽन्तरपानंस्याद्व्योपाम्ललवणैर्युतम् ॥ २४ ॥

आमविष्ठाके अतिसारमें अथवा आम और वायुसे मिलेहुए अतिसारमें वा आम, विष्ठा और वायु इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें वस्तिके अनन्तर कांजी और सेंधेनमकके साथ त्रिकुटेका चूर्ण पिलाना चाहिये ॥ २४ ॥

पित्तेनामेऽसृजावापितयोरामेनवापुनः ।
संसृष्टयोर्भवेत्पानंसव्योपकटुतिक्तकम् ॥ २५ ॥

पित्त और आमके अतिसारमें अथवा आम और रक्तके अतिसारमें वा पित्त, रक्त और आम इन तीनोंके संघातयुक्त अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, स्वादु और तिक्त द्रव्योंके साथ पिलाना चाहिये ॥ २५ ॥

तथामेकफसंसृष्टेकषायव्योपतिक्तकम् ।
आमेतनुकफेव्योपकषायलवणैर्युतम् ॥ २६ ॥

आम और कफके अतिसारमें त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और कडुवे द्रव्योंसे पीना चाहिये । यदि आमके साथ कफका अल्पभाग हो तो त्रिकुटेके चूर्णको कसैले और नमकीन क्काथके साथ पीवे ॥ २६ ॥

वातेनविपिपित्तेवाविट्पित्तेचतथानिले ।
मधुराम्लकषायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः ॥ २७ ॥

वात और विष्ठाके अतिसारमें अथवा वात, विष्ठा और पित्त इन तीनोंके मिलेहुए अतिसारमें मधुर, अम्ल और कसैले द्रव्योंका पाचन देना हितकारक है । अथवा इन्हीं द्रव्योंसे सान्निपातिक अतिसारमें वस्ति करना ही श्रेष्ठ है ॥ २७ ॥

शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तपित्तयोः ।
वस्तिरन्योन्यसंसर्गेकषायस्वादुतिक्तकैः ॥ २८ ॥

रक्त और विष्ठाके अतिसारमें अथवा पित्त और विष्ठाके अतिसारमें वा रक्त और पित्तके अतिसारमें कसैले, मधुर और तिक्तद्रव्योंसे वस्तिकर्म करना हितकारक है ॥ २८ ॥

कफेनविषिपित्तेवाकफेविट्पित्तशोणितैः ।
व्योषतिक्तकषायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः ॥ २९ ॥

कफ और विष्ठाके संसर्गमें अथवा कफ और पित्तके अतिसारमें वा विष्ठा और पित्तके अतिसारमें अथवा कफ, विष्ठा, पित्त और रक्तके सांघातिक अतिसारमें त्रिकुटेका चूर्ण, कसैले और तिक्त द्रव्योंके साथ सेवन कराना हितकारक है। तथा इन्ही द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना भी श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥

स्याद्वस्तिव्योंषतिक्ताम्लःसंसृष्टेवायुनाकफे ।
मधुरव्योषतिक्तस्तुरक्तेकफविमिश्रिते ॥ ३० ॥

अल्पवायुयुक्त कफके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क, कडुवे और खट्टे रसोंमें मिलाकर वस्तिकर्म करे। रक्त और कफसे मिश्रित अतिसारमें त्रिकुटेके कल्कको मधुर और तिक्तद्रव्योंके क्वाथमें मिलाकर वस्तिकर्म करे ॥ ३० ॥

मारुतेकफसंसृष्टेव्योषाम्ललवणोभवेत् ।
वस्तिर्वातेनरक्तेतुकार्य्यःस्वाद्वम्लतिक्तकः ॥ ३१ ॥

अल्पकफयुक्त वायुके अतिसारमें त्रिकुटेका कल्क नमकयुक्त खट्टे रसोंमें मिलाकर वस्तिकर्म करे। वायु और रक्त मिले अतिसारमें मधुर, अम्ल और तिक्त द्रव्योंसे वस्तिकर्म करना चाहिये ॥ ३१ ॥

त्रिचतुःपञ्चषड्योगानेवमेवविकल्पयेत् ।
युक्तिश्चैषातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृता ॥ ३२ ॥

इस प्रकार आम, विष्ठा, वात, पित्त, रुधिर और कफ इन छः प्रकारके मलोंके *तीन, चार, पांच अथवा छः योगोंकी कल्पना करे। जैसे इन छः मलोंके आपसमें* तीनोंके मिलान कियेजानेसे यह दश प्रकारके होजातेहैं। जैसे १ आम, विष्ठा, वात। २ आम, विष्ठा, पित्त। ३ आम, विष्ठा, रक्त। ४ आम, विष्ठा, कफ। ५ विष्ठा, वात, रक्त। ६ विष्ठा, वात, पित्त। ७ विष्ठा, वात, कफ। ८ वात, रक्त-पित्त। ९ वात, रुधिर, कफ। १० रुधिर, पित्त, कफ। और इसी प्रकार चारोंके संसर्गसे कल्पना करे तो६ भेद होतेहैं। तथा पांचोंके संसर्गसे कल्पना कीजाय तो तीन भेद होतेहैं। छः का संसर्ग करनेसे एक भेद होताहै। इन सबको मिलानेसे बीस भेद होतेहैं। यह अतिसारमें कहीहुई कल्पनायुक्ति अन्य ज्वरादि संपूर्ण रोगोंमें भी कल्पना करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

युगपत्षड्रसंपण्णांसंसर्गेपाचनंभवेत्।
निरामाणाञ्चपञ्चानांवस्तिःषाड्रसिकोमतः॥ ३३॥

इन छः मलोंके संसर्गमें मधुर, अम्ल, लवण, कषाय, तिक्त और कटु इन छः रसोंको एक साथ प्रयोग किये जानेसे इन छःओंका पाचन होताहै और इनमें आमके सिवाय और पांच प्रकारके मलोंमें छः रसोंकी वस्ति कल्पना कर प्रयोग करना हितकारक है। परन्तु आममें तो पाचन देना ही हितकारक है॥ ३३॥

उपरोक्त अतिसारनाशक घृत।

उदुम्बरशलाटूनिजम्ब्वाम्रोदुम्बरत्वचः। शंखंसर्जरसंप्लाक्षींकर्दमञ्चपलांशिकम्॥ ३४॥ पिष्ट्वातैःसर्पिषःप्रस्थंक्षीरद्विगुणितंपचेत्। अतीसारेषुसर्वेषुपेयमेतद्यथावलम्॥ ३५॥

गूलरके कच्चे फल और जामुनकी छाल, आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण, राल, लाख और जलस्थानका कीच इन सबको एक एक पल लेवे। इन सबका कल्क वनाकर १ प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध इन सवको मिलाकर पकावे। यह घृत उपरोक्त सब प्रकारके अतिसारोंमें बलानुसार पिलाना अतिहितकारी है॥ ३४॥ ३५॥

यवागू।

कच्छूराधातकीविल्वसमङ्गारक्तशालिभिः।
मसूराश्वत्थशुङ्गैश्चयवागूःस्याज्जलेश्रितैः॥ ३६॥

कौंचके बीज, धावेके फूल, बेलकी गिरि, वाराहक्रान्ता, लाल चावल, मसूर, पीपलके शुंग (कलियें या अंकुर) इन सबके क्काथमें सिद्ध कीहुई यवागू उपरोक्त अतिसारोंमें हितकारक है॥ ३६॥

वालोदुम्वरकट्वङ्गसमङ्गाप्लक्षपल्लवैः।
मसूरधातकीपुष्पवलाभिश्चतथाभवेत्॥ ३७॥

सुगंधवाला, गूलरके कच्चे फल, सोनापाठा, वाराहीकंद, पिलखनके पत्र, मसूर, धावेके फूल और खरैटी इन सबके क्वाथमें सिद्ध कीहुई यवागू भी उपरोक्त संपूर्ण अतिसारोंको दूर करतीहै॥ ३७॥

स्थिरादीनांवलादीनामिक्ष्वादीनामथापिवा।
क्वाथेषुसमसूराणांयवाग्वःस्युःपृथक्पृथक्॥ ३८॥

शालपर्ण्यादिपंचमूल अथवा बला आदि वातनाशक गण वा ईख आदि तण अथवा मसूरके काथमें पृथक् २ यवागुओंको सिद्धकर पिलानेसे भी उपरोक्त अतिसार दूर होता है ॥ ३८ ॥

कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैर्वापिसाधिताः। दधितक्रारनालाम्लक्षारेष्विक्षुरसेऽपिवा ॥ ३९ ॥ शीताःसशर्कराःक्षौद्राःसर्वातीसारनाशनाः । ससर्पिर्मरिचाजाजीमधुरालवणाःशिवाः ॥ ४० ॥

कौंचकी जड और कौंचके बीजोंके काथमें शालि आदि चावलोंकी यवागू सिद्धकर अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखका रस इनमेंसे किसी एकके साथ सिद्ध कीहुई यवागूको शीतलकर मिसरी और शहद मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके अतिसार दूर होते हैं । इन उपरोक्त यवागुओंमें दोषानुसार घृत, मिर्च, जीरा, शहद और लवण इनमेंसे जो जिस दोषानुसार हितकारी हो सो मिलाना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

वातादिभेदसे रसमें कल्पना ।

भवन्ति चात्र ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरंपानंवस्तिश्चमारुतेकोष्णः ।
शीतंतिक्तकषायंमधुरंपित्तेचरक्तेच ॥ ४१ ॥

यहांपर कहते हैं कि वायुमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषधको किंचित् गर्म करके पीना या वस्तिकर्म करना हितकारक है । पित्तमें और रक्तमें शीतल, तिक्त, कषाय और मधुर द्रव्यको शीतलही पीना और शीतलही वस्तिमें प्रयोग करना हितकारक है ॥ ४१ ॥

तिक्तोष्णकषायकटुश्लेष्मणिसंग्राहिवातनुच्छकृति ।
पाचनमामेपानंपिच्छासृग्वस्तयोरक्ते ॥ ४२ ॥

कफमें तिक्त, उष्ण, कषाय और कटुद्रव्योंका प्रयोग करना हितकारी है । मलके भेदन होनेसे संग्राही और वातनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । आमदोषमें पाचन द्रव्यका सेवन करना चाहिये । रक्तमें पिच्छावस्ति और रक्तवस्ति करना हितकारक है ॥ ४२ ॥

अतिसारंप्रत्युक्तंमिश्रंद्वन्द्वामयोगजेष्वपिच ।
तत्रोद्रेकविशेषाद्दोषेपूपक्रमःकार्य्यः ॥ ४३ ॥

इसप्रकार सन्निपातज, द्वंद्वज और आमज अतिसारोंका कथन किया गयाहै। इनमें दोषोंकी न्यूनाधिकता विचारकर दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ॥४३॥

अध्यायका उपसंहार।

प्रासृतिकासव्यापत्क्रियानिरूहास्तथातिसारहिताः। रसकल्पघृतयवाग्वश्चोक्तागुरुणाप्रसृतासिद्धौ ॥ ४४ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेप्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि इस प्रासृतयोगिकासिद्धिनामक अध्यायमें प्रासृतयोग, भिन्न २ व्यापत्तियें और उनकी चिकित्सा, अतिसारनाशक अनेक प्रकारके निरूहरसोंकी कल्पना, यवाग, घृत यह सब भगवान् आत्रेयजीने कथन किये हैं ॥ ४४ ॥

इति श्रीच० कल्पस्थाने प्र० भा० टी० प्रासृतयोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

आथातस्त्रिमर्मीयांसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम त्रिमर्मीया सिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

सप्तोत्तरंमर्मशतमस्मिञ्शरीरेस्कन्धशाखाश्रितमग्निवेश । तेषामन्यतमपीडायांसमधिकापीडाभवतिचेतनानिबद्धवैशेष्यात् ॥ १ ॥

हे अग्निवेश ! इस शरीरमें १०७ मर्मस्थान हैं वह सब स्कन्ध (मस्तक, गर्दन और मध्य शरीर) और शाखा (हाथपांव) के आश्रित हैं। इन १०७ मर्मोंमें अन्य शरीरसे अधिक पीडा होती है क्योंकि मर्मोंमें चेतना शक्ति विशेषरूपसे निबद्ध है अर्थात् स्थित रहती है ॥ १ ॥

मर्मोंका गुरुत्व।

तत्रशाखाश्रितेभ्योमर्मभ्यःस्कन्धाश्रितानिगरीयांसिशाखानांतदाश्रितत्वात् । स्कन्धाश्रितेभ्योऽपिहृद्बस्तिशिरांसितन्मूलत्वाच्छरीरस्य ॥ २ ॥

शाखाश्रित मर्मोंकी अपेक्षा स्कन्धस्थित मर्म भारी होतेहैं क्योंकि शाखा भी स्कन्धाश्रितही होतीहैं।स्कन्धाश्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंसे हृदय वस्ति और शिर अत्यन्त गुरु होते हैं। क्योंकि यही शरीरके मूल हैं और इन्हींके आश्रय शरीरका जीवनहै॥२॥

तत्रहृदिदशचधमन्यःप्राणोदानमनोबुद्धिचेतनामहाभूतानिचना-
भ्यामराइवप्रतिष्ठितानि ॥ ३ ॥

जैसे नाभिसे अमरा नाडी लगीरहती है उसी प्रकार हृदयसे १० धमनीसंज्ञक नाडियें लगीहुई हैं और प्राण,उदान, मन, बुद्धि तथा चेतना यह सब हृदयमेंही रहते हैं। हृदय शरीरके और सब अंगोंकी अपेक्षा पांच भूतोंका मुख्य स्थान है ॥ ३ ॥

शिरसिइन्द्रियाणिइन्द्रियप्राणवहानिचस्रोतांसिसूर्य्यमिवगभस्त-
यःसंश्रितानि ॥ ४ ॥

जैसे प्रकाशकारक किरणें सूर्यमें आश्रित रहती हैं उसी प्रकार शिर (दिमाग) में संपूर्ण इन्द्रियें और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत स्थित रहते हैं ॥ ४ ॥

वस्तिरस्तुस्थूलगुदमुष्कसेवनीशुक्रमूत्रवाहिनीनांनाडीनांमध्येमूत्रा-
धारोऽम्बुवहानांसर्वस्रोतसामुदधिरिवापगानांप्रतिष्ठितोभवति ।
बहुभिश्चतन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैःस्रोतोभिर्गगनमिवदिनकरकरैर्व्याप्तमि-
दंशरीरम् ॥ ५ ॥

स्थूल अंतडी, अण्डकोश, सीवन, वीर्यवाही और मूत्रवाही नाडियोंके मध्यस्थानमें वस्ति होती है। जैसे संपूर्ण नदियोंका केन्द्रस्थान समुद्र है उसी प्रकार संपूर्ण जलवाही स्रोतोंका केन्द्रस्थान वस्ति (मूत्राशय) है। जैसे-सूर्यकी किरणोंसे आकाश व्याप्त होताहै उसी प्रकार इन तीन मूल मर्मोंके आश्रित अन्य मर्मोंके जालसे व्याप्त यह शरीर है ॥ ५ ॥

तेषांत्रयाणामन्यतमस्यापिभेदादाश्वेवशरीरभेदःस्यादाश्रयनाशा-
दाश्रितस्यनाशः । तदुपघातात्तुघोरव्याधिप्रादुर्भावःतस्मादेतानि
विशेषेणरक्ष्याणि । बाह्याभिघाताद्वातादिदोषेभ्यश्च ॥ ६ ॥

इन तीन मर्मोंमें किसी मर्मका भेदन होनेसे शरीरका भी तत्काल भेदन होजाता है। क्योंकि आश्रयका नाश होनेसे आश्रितका स्वयम् नाश होजाता है। इन तीन मर्मोंमें चोट आदि किसी प्रकारका उपघात होनेसे विशेष घोर व्याधियें उत्पन्न होजाती हैं। इसलिये इन तीनों मर्मोंकी विशेषरूपसे बाह्य चोट आदि अभिघातसे और भीतरी वातादि दोषोंसे विशेष ध्यान पूर्वक रक्षा करते रहना चाहिये ॥ ६ ॥

हृदयमें अभिघातसे उपद्रव ।

तत्रहृदयेअभिहतेकासश्वासबलक्षयकण्ठशोषक्लोमापकर्षणजि-
ह्वानिर्गममुखतालुशोषापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयःस्युः ॥७॥

हृदयमें चोट लगनेसे, खांसी, श्वास, वलक्षय,कण्ठका सूखना, क्लोमका अपकर्षण, जीभका बाहर निकल आना, मुखका सूखना, तालुशोप, अपस्मार, उन्माद,प्रलाप चित्तका विगडना यह उपद्रव होते हैं ॥ ७ ॥

शिरमें अभिघातके उपद्रव ।

शिरसिअभिहतेमन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वाक्षिनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि ॥ ८ ॥

शिरमें अभिघात पँहुचनेसे मन्यास्तम्भ, आर्दितरोग, नेत्रोंका विभ्रम, मोह, वेष्टनकीसी पीडा, चेष्टानाश, खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, हकलापन, नेत्रोंका मिचना, गण्डस्थलोंका फडकना, जंभाई, मुखसे लारका वहना और मुखका टेढा होजाना आदि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

वस्तिमें चोटलगनेके उपद्रव ।

वस्तौतुवातमूत्रवर्चोनिग्रहवंक्षणमेहनवस्तिशूलकुण्डलोदावर्त्तगुल्मब्रध्नानिलाष्ठीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहादयः ॥ ९ ॥

वस्ति (मूत्राशय) में चोट लगनेसे अधोवायु, मूत्र और मलका विबंध, वंक्षणमें शूल, लिंगशूल, वस्तिशूल, वातकुण्डलिका (मूत्रको चक्कर देकर रोकनेवाली वातजनित व्याधि) उदावर्त्त, गुल्म, वातष्ठीला, उपस्तंभ, नाभि, कुक्षी, गुदा और श्रोणीमें जकडन तथा ऐसेही अन्य अनेक उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ ९ ॥

मर्मोंकी चिकित्सा ।

वाताद्यपसृष्टानांतुएपांलिङ्गानिचिकित्सितेसाक्रियादिविधीनिउक्तानि । किन्तुएतानिविशेषतोऽनिलाद्रक्ष्याणिअनिलोहिपित्तकफसमुदीरणहेतुः। प्राणमूलश्चमर्मतच्चवास्तिकर्मसाध्यतमम् । तस्मान्नवस्तिसमंकिञ्चित्कर्ममर्मपरिपालनमस्ति ॥ १० ॥

इन तीनों मर्मोंमें होनेवाले वातादिजनित रोगोंके लक्षण और चिकित्साको चिकित्सास्थानके त्रिमर्मीय अध्यायमें कथन करआये हैं । इन तीनों मर्मोंको विशेषकर वायुसे रक्षित रखना चाहिये । क्योंकि वायुही पित्तकफको भी उत्तेजित करनेका हेतुभूत है । यह मर्म प्राणोंके मूलभूत हैं । इनमें वायु आदि दोषोंकी अन्य प्रकार चिकित्साकी अपेक्षा वस्तिकर्म करना अत्यन्त श्रेष्ठ है अथवा मर्मोंकी अन्य चिकित्साओंमें वस्तिकर्म सर्वोत्तम है । इसलिये वस्तिकर्मके समान मर्मोंकी रक्षा करनेवाला और कोई भी उपाय नहीं है ॥ १० ॥

तत्रषडास्थापनस्कन्धान्विमानेद्वौचानुवासनस्कन्धौइहचविहिता-न्वस्तीन्बुद्ध्याविचार्य्यमहामर्मपरिपालनार्थंप्रयोजयेद्वातव्याधि-चिकित्साश्च ॥ ११ ॥

इस लिये जो विमानस्थानमें छः स्थापन स्कंध कहआये हैं और सिद्धिस्थानमें दो प्रकारके अनुवासन स्कन्ध कहेहै उन सबको बुद्धिसे विचारकर इन तीन महामर्मोंकी पालनाके लिये प्रयोग करना चाहिये । इन मर्मोंमें किसी प्रकारकी वातजनित पीडा उपस्थित होनेपर वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥११॥

वातोपसृष्टहृदयकी चिकित्सा ।

भूयश्चहृदिउपसृष्टेवातेनहिङ्गुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तांपेयांमातुलुङ्गस्यरसेनवान्येनवाम्लेनहृद्येनवापाययेत्। स्थिरादिपञ्चमूलीरसःसशर्करःपानार्थंविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवागूःहृद्रोगविहितश्चकर्म ॥ १२ ॥

यदि वायु हृदयको पीडित करे तो हिंग्वादि चूर्ण वा और कोई लवणभास्कर आदि चूर्ण, बिजौरे नींबूके रससे अथवा अन्य खटाईसे युक्तकर पीवे । अथवा हृदयप्रिय द्रव्योंसे वा इन्हीं खटाई आदि द्रव्योंसे बनाईहुई पेया पीवे । अथवा शालपर्ण्यादि पंचमूलके क्वाथमे खाड मिलाकर पीवे वा बिल्वादि पंचमूलके क्वाथसे सिद्ध कीहुई यवागू पीवे तथा हृद्रोगकी शांतिके लिये जो चिकित्सा कह आयेहैं उसका उपयोग करना भी हितकारक है ॥ १२ ॥

वातोपसृष्टशिरकी चिकित्सा ।

मूर्ध्नितुवातोपसृष्टेअभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीडनधूमादीनि ॥ १३ ॥

यदि मस्तक वायुसे पीडित हो तो तेलका अभ्यंग, स्वेदन, उपनाह, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमपानादि कर्म हितकारक है ॥ १३ ॥

वातोपसृष्टवस्तिकी चिकित्सा ।

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्त्तयश्च । श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरूहः । विल्वादिस्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलशृतक्षीरैश्च । त्रपुषैर्वारुखराश्वावीजयवक्षपभककल्कितोनिरूहः । क्षारयवतिल्वकभृष्टकल्कितोवानिरूहः । पीतदारुकसिद्धतैलानुवासनम् । तैल्वकञ्चसर्पिर्विरेकार्थम् ॥ १४ ॥

यदि मूत्राशय वातसे दूषित हो तो कुंभीस्वेद और वर्तिविधान तथा निशोथ आदि गणमें गोमूत्र मिलाकर निरूहण वस्ति करे। अथवा विल्वादि पंचमूलके क्वाथसे वा शरकंडेकी जड, कांसकी जड, ईखकी जड, कुशाकी जड और गोखरूकी जडसे सिद्ध कियेहुए दूधसे वस्तिका प्रयोग करे। अथवा खीरेके वीज, ककडीके वीज और अजमोदके क्वाथमें ऋषभकका कल्क मिलाकर निरूहण वस्ति करे। तथा सरल काष्ठके साथ सिद्ध किये तैलका अनुवासन करना हितहै। और तिल्वक कल्पमें कहेहुए विरेचनकर्त्ता घृत पिलाकर विरेचन कराना श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

औत्तरवस्तिक तैल।

शतावरीगोक्षुरकबृहतीकण्टकारिकागुडूचीपुनर्नवोशीरमधुकद्विशारिवालोध्रश्रेयसीकुशकाशमूलकषायक्षीरचतुर्गुणंबलावृषर्षभकखराह्वोपकुञ्चिकावत्सकत्रपुषैर्वारुबीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभेदवर्षाभूमदनफलकल्कसिद्धंतैलंमुत्तरवस्तिनिरूहः शुद्धस्निग्धस्विन्नस्यवस्तिशूलमूत्रविकारहर इति ॥ १५ ॥

शतावर, गोखरू, वडी कटेली, छोटी कटेली, गिलोय, पुनर्नवा, खस, मुलैठी और दोनों प्रकारकी शारिवा, लोध, गोरखमुण्डी, कुशा और कांसकी जड इन सबका क्वाथ ४ सेर, दूध ४ सेर, तेल१ सेर और वला,अडूसा, ऋषभक, अजमोद,कलौंजी, इन्द्रयव, खीरेके वीज, ककडीके वीज, शालिच शाक, मुलैठी, वच, सौंफ, पाषाणभेद, सफेद पुनर्नवा और मैनफल इन सबका कल्क १ पाव इन सब द्रव्योंको मिलाकर तैल सिद्ध करे। प्रथम रोगीको निरूहण करके शुद्ध होनेपर फिर स्निग्ध और स्वेदनकर इस तैलद्वारा उत्तरवस्ति करे तो वस्तिका शूल और मूत्रविकार दूर होतेहैं ॥१५॥

भवन्तिचात्र।

हृदिमूर्ध्निचवस्तौचनृणांप्राणाःप्रतिष्ठिताः। तस्मात्तेषांसदायत्नात्कुर्वीतपरिपालनम् ॥१६॥ आघातवर्जनंनित्यंस्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम् । उत्पन्नार्त्तिविघातश्चमर्मणांपरिपालनम् ॥ १७ ॥

अब यहां कहते हैं कि हृदय, मूर्द्धा और वस्तिस्थानमें मनुष्योंके प्राणोंका निवासस्थान है। इसलिये इन तीनों मर्मस्थानोंकी यत्नपूर्वक सदैव पालना करते रहना चाहिये तथा सब प्रकारकी चोट आदिसे नित्य बचाकर रक्खे और आरोग्य मनुष्योंके जो जीवनवर्द्धक नियम हैं उनका सेवन करतारहे तथा उत्पन्नहुई व्याधिकी शांतिका यत्न करे और सदा मर्मोंकी रक्षा करतारहे ॥ १६ ॥ १७ ॥

अतऊर्द्ध्वंविकारायेत्रिमर्मीयेचिकित्सिते ।
नप्रोक्तामर्मजास्तेषांकांश्चिद्वक्ष्यामिसौषधान् ॥ १८ ॥

जो जो मर्मोंमें होनेवाले रोग अथवा मर्मस्थानोंसे संबंध रखनेवाले रोग चिकित्सा स्थानके त्रिमर्मीयाध्यायमें नहीं कहेहैं,सो अब उनके लक्षण और चिकित्साको कथन करते हैं ॥ १८ ॥

अपातंत्रकके लक्षण ।

क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुः स्थानादूर्द्ध्वंप्रपद्यते । पीडयन्हृदयंगत्वाशिरः शंखौचपीडयन् ॥ १९ ॥ धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा । कृच्छ्रेणचाप्युच्छ्वसितिस्तब्धाक्षोऽथनिमीलकः ॥ २० ॥ कपोत-इवकूजेच्चानिःसंज्ञःसोऽपतन्त्रकः ॥ २१ ॥

अपने कोपकारक कारणोंसे कुपितहुआ वायु निज स्थानको छोड ऊपरको गमन करताहै । तथा हृदयमें प्रवेशकर हृदयको पीडित करताहै और मस्तक तथा कनपटीमें पहुंचकर मस्तक और कनपटीमें पीडा उत्पन्न करताहै । तथा अंगोंको धनुषके समान झुकाकर आक्षिप्त करताहै और मोहको उत्पन्न करताहै उस समय रोगी कठिनतासे श्वास लेताहै । आंखें स्तब्ध अथवा बंद होजातीहैं । कबूतरके समान कण्ठ कूजन होने लगताहै और संज्ञा जातीरहतीहै । इसको अपतंत्रक रोग कहते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

अपतानकके लक्षण ।

दृष्टिंसंस्तभ्यसंज्ञाञ्चहत्वाकण्ठेनकूजति । हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंया-तिमोहंवृतेपुनः । वायुनादारुणंप्राहुरेकेतदपतानकम् ॥ २२ ॥

वायुके कोपसे दृष्टिका स्तंभित होना, संज्ञानाश, कण्ठकूजन होना और हृदयसे वायु मुक्त होजानेपर आरोग्यता प्रतीत होना हृदय वायुसे आवृत होनेपर फिर बेहोशी होजाना इस प्रकार लक्षणों युक्त वातजनित दारुण रोगको कोई अपतानक कहते हैं ॥ २२ ॥

इनकी चिकित्सा ।

श्वसनंकफवाताभ्यांरुद्धंतस्यविमोचयेत् ।
तीक्ष्णैःप्रधमनैःसंज्ञांतासुमुक्तासुविन्दति ॥ २३ ॥

जिस मनुष्यका श्वास वायु और कफसे रुका हुआ हो उसको तीक्ष्ण प्रधमन (विरेचनीय नस्य) देकर श्वासको खोल देना चाहिये । तीक्ष्ण नस्य द्वारा संज्ञावाहक छिद्रोंके खुलजानेसे बेहोशी दूर होकर होश भी आजाती है ॥ २३ ॥

मारिचंशिग्रुबीजानिविडङ्गञ्चफणिज्झकम् ।
एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २४ ॥

मिर्च सुहांजनेके बीज, वायविडंग, फणिज्झक तुलसी इन सबको बारीक पीसकर नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर संपूर्ण छिद्र खुलजाते हैं और बहोशी दूर होतीहै॥२४॥

हिंगुतुम्बुरुपथ्याचपौष्करंलवणत्रयम् ।
यवक्काथाम्बुनापेयंहृत्पार्श्वार्त्त्यपतन्त्रके॥ २५ ॥

हींग, नैपाली धनियां, हरड, पोहकर मूल, सेंधानमक, संचरनमक और बिडलवण इन सबका चूर्णकर यवोंके क्काथ अथवा गर्म जलके साथ पीवे तो हृदयकी पीडा, पार्श्वपीडा और अपतंत्रक रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

हिङ्ग्वम्लवेतसंशुण्ठीससौवर्चलदाडिमम् । पिवेद्वातकफघ्नञ्च कर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥ २६ ॥ शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्य चक्रत्स्नशः । सौवर्चलाभयाव्योपैःसिद्धन्तुस्याद्घृतंहितम् ॥२७॥

हींग, अमलवेत, सोंठ, संचरनमक, नासपाल इनके चूर्णको गर्मजलके साथ पीवे, तो अपतंत्रक, अपतानक, वातकफके विकार और हृद्रोग दूर होते हैं । रोगोंमें वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया करना भी उपकारक है । तथा शोधन तीक्ष्ण वस्तिका प्रयोग करना भी हितकारी है । और संचरनमक, हरड तथा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर सिद्ध किया घृत भी सब प्रकार हित करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

तंद्रारोगके हेतु, लक्षण ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनाद्भयात् । शोकाद्वयाध्यनुपङ्गाच्च वायुनोदीरितःकफः ॥ २८ ॥ यदासौसमवस्कन्द्यहृदयंहृदयाश्रयान् । समावृणोतिज्ञानादींस्तदातन्द्रोपजायते ॥ २९ ॥ हृदये व्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरवम् । मनोबुद्ध्यप्रसादश्च तंद्रायालक्षणंमतम् ॥ ३० ॥

मधुर, स्निग्ध, भारी और अम्लरसोंका सेवन करनेसे चिन्ता, भय और शोकसे तथा ज्वरादि रोगोंके अनुषंगसे वायु कफको उदीर्णकर हृदयको आच्छादित करदेता है तथा हृदयाश्रित ज्ञानादिकोंको आवृत करके तंद्रानामक रोगको उत्पन्न करता है । उसमें हृदयका व्याकुल होना वाणी, चेष्टा और इन्द्रियोंमें भारीपन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता यह तंद्राके लक्षण कहे हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

तंद्राकी चिकित्सा ।

कफघ्नंतत्रकर्त्तव्यंशोधनंशमनानिच ।
व्यायामोरक्तमोक्षश्चभोज्यश्चकटुतिक्तकम् ॥ ३१ ॥

तंद्रारोगमें कफनाशक चिकित्सा करना तथा शोधन संशमन, आदि क्रिया करना हितकारक है तथा व्यायाम रक्तमोक्षण कटु और तिक्त द्रव्योंका भोजन करना हितकारक है परन्तु ज्वरमें उत्पन्न हुई तंद्राकी यह चिकित्सा नहीं ॥ ३१ ॥

वस्तिरोग व मूत्राघातके १३ भेद ।

मूत्रैकसादजठरंकृच्छ्रोत्सङ्गसङ्क्षयौ । मूत्रातीतोऽनिलाष्ठीला-वातवस्त्युष्णमारुतौ ॥ ३२ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविड्घातो वस्तिकुण्डलम् । त्रयोदशैतेमूत्रस्यदोषास्तांल्लिंगतःशृणु ॥ ३३ ॥

मूत्रैकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रोत्संग,मूत्रक्षय,मूत्रातीत,वातष्ठीला, वातवस्ति, उष्णवात, वातकुण्डलिका मूत्रग्रंथी विड्विघात और वस्तिकुण्डल यह तेरह प्रकारके मूत्रदोष मूत्राशयके विकार होतेहैं । अब इनके पृथक्२लक्षणोंको श्रवणकरो ३२-३३

मूत्रैकसादके लक्षण चिकित्सा ।

पित्तंकफोद्वयंवापिवस्तौसंहन्यतेयदा । मारुतेनतदामूत्रंरक्तपीतं घनंसृजेत् ॥ ३४ ॥ सदाहंश्वेतसान्द्रंवासर्वैर्वालक्षणैर्युतम् । मूत्रै-कसादंतंविद्यात्पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ॥ ३५ ॥

पित्त अथवा कफ वा पित्त और कफ दोनों जब वायुसे प्रेरित होकर मूत्राशयमें इकट्ठे होजातेहैं तब लाल, पीला, और गाढा मूत्र आने लगता है। अथवा दाहयुक्त सफेद और सान्द्र आने लगता है । वा इन दोनो प्रकारके संपूर्ण लक्षणोंसे युक्त होकर मूत्र आता है इस रोगको मूत्रैकसाद जानना । इसको पित्त और कफनाशक चिकित्साद्वारा जीतना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

मूत्र जठरके हेतु, लक्षण, चिकित्सा ।

विधारणात्प्रतिहतंवातोदावर्त्तितंयदा । पूरयत्युदरंमूत्रंतदातदनि-मित्तरुक् ॥ ३६ ॥ अपक्तिमूत्रविट्संगैस्तन्मूत्रजठरंवदेत् । मूत्र-वैरेचनींतत्रचिकित्सांसंप्रयोजयेत ॥ ३७ ॥ हिंगुद्विरुत्तरंचूर्णंत्रि-मर्मीयेप्रकीर्त्तितम् । हन्यान्मूत्रादिसंघातंव्याधिश्चगुदमेढ्योः॥३८॥

मूत्रके आयेहुए वेगको रोकनेसे मूत्र वायुद्वारा प्रतिहत होकर ऊपरको उलटजाता

है तब उदरको पूर्णकर विना किसी निमित्तके उदरमें पीडा उत्पन्न करताहै । फिर अन्नका न पचना, मूत्र और विष्ठाका रुकजाना यह लक्षण होते हैं । इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं । इसमें मूत्रका विरेचन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये । तथा पीछे त्रिमर्मीयचिकित्सामें कहेहुए द्विरुत्तर हिंग्वादिचूर्णका प्रयोग करनेसे मूत्रादिकोंका संघात तथा गुदा और मेढ्रकी व्याधियें नष्ट होतीहैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

मूत्रितस्यव्यवायाच्चुरेतोवातोद्धृतंच्युतम् ।
पूर्वंमूत्रस्यपश्चाद्वास्त्रवेत्तत्कृच्छ्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

मूत्रका वेग आयाहुआ हो उससमय मूत्रको रोककर स्त्रीसंग करे तो वीर्य वायुसे विघटित होकर मूत्रमार्गमें स्थित होजाताहै फिर मूत्रसे प्रथम अथवा मूत्रसे पीछे बडे कष्टके साथ वीर्यकी बूंद गिरती है । इस रोगको मूत्रकृच्छ्र कहतेहैं ॥ ३९ ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

स्त्रवैगुण्यानिलाक्षेपैःकिञ्चिन्मूत्रश्चतिष्ठति । मणिसन्धौस्त्रवेत्पश्चात्तदरुग्वाथवातिरुक् । मूत्रोत्संगःसविच्छिन्नस्तच्छेषोगुरुशेफसः ४०

मूत्रमार्गके बिगडजानेसे अथवा वायुके आक्षेपसे मूत्र त्यागते समय लिंगकी सुपारीसे ऊपरकी तरफ मूत्र अटकजाय और अटक २ कर थोडी देरके बाद विना पीडासे अथवा अत्यंत पीडाके साथ मूत्र आवे और विच्छिन्न शेप रहीहुई मूत्रकी बूंद इन्द्रीमें भारीपनको करे तो इस रोगको मूत्रोत्संग कहतेहैं ॥ ४० ॥

मूत्रक्षयके लक्षण ।

वाताकृतिर्भवेद्वातान्मूत्रेशुष्यतिसंक्षयः ।

वायुके कोपसे वातप्रकृति मनुष्यका मूत्र सूखजाता है इसको मूत्रक्षय रोग कहते हैं इसमें सब लक्षण कुपित वायुके होतेहैं ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरंधारयतोमूत्रंत्वरयानुप्रवर्त्तते ।
मेहमानस्यमन्दंवामूत्रातीतःसउच्यते ॥ ४१ ॥

मूत्र आनेपर जो मनुष्य रोकलेता है उसका रुकाहुआ मूत्र अत्यंत धीरे २ और थोडा २ आने लगता है इसको मूत्रातीत कहते हैं ॥ ४१ ॥

---

१ इसी प्रकार मूत्रके वेगको रोककर स्त्रीसंग करनेसे मूत्रके साथ पीछे अथवा आगे सफेद बूंद विना पीडासे गिरे तो इसको मूत्रशुक्र कहतेहैं ।

वातष्ठीलाके ल० ।

आध्मापयन्वस्तिगुदंरुद्धावायुश्चलोन्नताम् ।
कुर्य्यात्तीव्रार्त्तिमष्ठीलांमूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४२ ॥

कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्ति और गुदाको अफारायुक्तकर और रोक करके पेंडूके नीचेकी ओर तीव्र पीडायुक्त चंचल औरऊंची वायुकी गांठको उत्पन्न करता है इसको वातष्ठीला कहतेहैं इससे मल और मूत्रका अवरोध होजाताहै ॥ ४२ ॥

बालवस्तिके लक्षण ।

मूत्रंधारयतोवस्तौवायुःक्रुद्धोविधारयेत् ।
मूत्ररोधार्तिकण्डूभिर्वातवस्तिःसउच्यते ॥ ४३ ॥

: मूत्रके वेगको रोकनेसे कोपको प्राप्तहुआ वायु वस्तिमें प्राप्त होकर मूत्रका अवरोध, पीडा और खुजलीको उत्पन्न करे उसको वातवस्ति कहतेहैं ॥ ४३ ॥

उष्णवातके ल० ।

ऊष्मणासोष्मकंमूत्रंशोषयन्रक्तपीतकम् ।
उष्णवातःसृजेत्कृच्छ्राद्वस्त्युपस्थार्तिदाहवान् ॥ ४४ ॥

पित्तकी गर्म जब मूत्रको सुखादेतीहै तब मूत्र पीलेवर्णका थोडा २ गर्म और लालवर्णका बडे कष्टके साथ आता है तथा वस्ति और लिंगेन्द्रियमें पीडा और दाह होतीहै इस रोगको उष्णवात कहतेहैं ॥ ४४ ॥

वातकुण्डलिकाके ल० ।

गतिसंगादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः । मूत्रस्यविगुणोवायुर्भग्नव्याविद्धकुण्डली । मूत्रंविहन्तिसंस्तम्भभग्नगौरववेष्टनैः । तीव्ररुङ्मूत्रविट्संगैर्वातकुण्डलिकेतिसा ॥ ४५ ॥

वायु विकृत होकर मूत्रस्थान और मूत्रकी गतिको रोककर ऊपरको उल्टा गमन करताहै तब वह वायु भेदनकीसी पीडायुक्त मूत्रको व्याहतकरके मूत्राशयमें कुण्डलाकार चक्कर देने लगता है उससे मूत्रकी गति रुककर मूत्राशयका स्तम्भ, भेदनकीसी पीडा, भारीपन, उद्वेष्टन, तीव्र पीडा, मूत्रका विबंध और मलका विबंध यह लक्षण होतेहैं । इस रोगको वातकुण्डलिका कहतेहैं ॥ ४५ ॥

मूत्रग्रंथिके ल० ।

रक्तंवातकफाद्दुष्टंवस्तिद्वारेसुदारुणम् । ग्रन्थिकुर्य्यात्सकृच्छ्रेणसृजन्मूत्रंतदावृतम् । अश्मरीसमशूलंतंमूत्रग्रंन्थिप्रचक्षते ॥ ४६ ॥

वायु और कफके कुपित होनेसे वस्तिके द्वारमें रक्त दूपित होकर दारुण ग्रंथिको उत्पन्न करताहै उस ग्रंथिसे वस्तिका द्वार रुककर मूत्र वडे कष्टसे आताहै और वस्तिद्वारमें पथरीके समान शूल होने लगता है । इस रोगको मूत्रग्रंथि कहते हैं ॥ ४६ ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रूक्षदुर्वलयोर्वातेनोदावृत्तंशकृथदा । मूत्रस्रोतःप्रपद्येतविट्संसृष्टंतदानरः । विड्गन्धंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत् ॥ ४७ ॥

रूक्ष वा दुर्वल मनुष्यके शरीरमें कुपित हुई वायुसे विष्ठा विपरीत मार्गगामी होकर मूत्रवाही छिद्रोंमें प्राप्त होकर विष्ठा मिश्रित मूत्र अथवा विष्ठाकी दुर्गंधयुक्त मूत्र वडे कष्टसे आने लगताहै इस रोगको विड्विघात कहते हैं ॥ ४७ ॥

वस्तिकुण्डलके लक्षण ।

द्रुताध्वलङ्घनायासादभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठतिगर्भवत् ॥ ४८ ॥ शूलस्पन्दनदाहार्त्तोविन्दुंविन्दुंस्रवत्यपि । पीडितस्तुस्रवेद्धारांस्तम्भनोद्वेष्टनार्त्तिमान् ॥ ४९ ॥ वस्तिकुण्डलमाहुस्तंघोरशस्त्रविपोपमम् । पवनप्रवलंप्रायोदुर्निवारमवुद्धिभिः ॥ ५० ॥ तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता । श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम् ॥ ५१ ॥ श्लेष्मरुद्धविलोवस्तिःपित्तोदीर्णोनसिध्यति । अविभ्रान्ताविलःसाध्यो नतुयःकुण्डलीकृतः । स्याद्वस्तौकुण्डलीभूतेतृण्मोहोच्छ्वासएवच ॥ ५२ ॥

जल्दी २ चलना, उपवास करना, अधिक परिश्रम करना, चोट लगना और दवजाना आदि कारणोंसे वस्ति (मूत्राशय) अपने स्थानसे उठकर गर्भकी समान स्थूल होकर स्थितहो और उसमें शूल, फडकना और दाह हो तथा मूत्र वहुत थोडा २ बूंद २ उतरे, ऊपरसे दवादेनेसे अर्थात् उस फूलीहुई वस्तिको पीडन करनेसे मूत्रकी धारा निकलने लगे । उस समय स्तम्भ, उद्वेष्टन और पीडा यह लक्षण होनेलगें । इस घोर शस्त्र और विषके समान व्याधिको वस्तिकुण्डल कहतेहैं । यह रोग प्रायः वातप्रवल होताहै । यह अल्पबुद्धिवाले वैद्योंके लिये दुर्निवार है । यदि इसमें वायु पित्तको लेकर वढीहुई हो तो दाह, शूल और मूत्रकी विवर्णता भी होतीहै । यदि कफका संसर्ग हो तो वस्तिमें भारीपन, सूजन,

मूत्र चिकना, गाढा और सफेदवर्णका होता है। इस रोगमें यदि मूत्राशय कफसे रुद्धमुख और पित्त कोपयुक्त हो तो इसको असाध्य जानना । यदि वस्ति कुण्डलीकृत न हो और अविश्रान्त फडकनरहित, पीडा आदि उपद्रवोंसे रहित हो तो साध्य होतीहै। परन्तु कुण्डलीकृत वस्ति कफसे रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ॥ प्यास लगना, मोह, ऊर्द्ध्वश्वास यह लक्षण वस्तिकुण्डल रोगमें हों तो समझना वस्ति कुण्डलीभूत होगई है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इनकी चिकित्सा ।

दोषाधिक्यमवेक्ष्यैतान्मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
वस्तिमुत्तरवस्तिश्चसर्वेषामेवयोजयेत् ॥ ५३ ॥

इन सब प्रकारके मूत्राघातोंमें दोषोंकी न्यूनाधिकता देखकर उचित रीतिपर मूत्रकृच्छ्रनाशक चिकित्सा द्वारा शान्ति करे । तथा वस्तिकर्म वा उत्तरवस्ति इन सब प्रकारके मूत्राघातोंकी शान्तिके लिये प्रयोग करना चाहिये ॥ ५३ ॥

उत्तरवस्तिविधान ।

पुष्पनेत्रश्चहैमंस्यात्सूक्ष्ममौत्तरवस्तिकम् । जातीपुष्पस्यवृन्तेन समंगोपुच्छसंस्थितम् । रौप्यंवासर्षपच्छिद्रंद्विकर्णंद्वादशाङ्गुलम् ॥ ॥ ५४ ॥ तेनाजवस्तियुक्तेनस्नेहस्यार्द्धपलंनयेत् । यथावयोविशेषेणस्नेहमात्रांविकल्प्यवा ॥ ५५ ॥

उत्तरवस्तिकी नली (मूत्रमार्गसे मूत्राशयतक पहुंचानेकी नली) सुवर्णकी और चमेलीके फूलकी डण्डीके समान मोटी होनी चाहिये और गोपुच्छके समान क्रमपूर्वक आगेसे पतला और पीछेसे किंचित् मोटा उसका मुख होना चाहिये। सुवर्णके अभावमें यह नली चांदीकी बनाई जा सकती है सरसोंके दानेके समान इसके भीतर छिद्र अथवा पोलापन रहताहै और इसमें दो कर्णिका (सूक्ष्म छिद्र) होती हैं । यह लम्बावमें १२ अंगुलकी सलाईसी होती है । इसकी वस्ति बकरेकी वस्तिसे बनानी चाहिये । इस वस्ति द्वारा २ तोला स्नेह पहुंचाया जाना चाहिये । अथवा रोगीकी अवस्था आदि विचारकर २ तोलासे कम या जितना उचित हो प्रयोग करना चाहिये । ५४ ॥ ५५ ॥

स्नातस्यभुक्तभक्तस्यरसेनपयसापिवा । सृष्टविण्मूत्रवेगेनपीठेजानुसमेमृदौ ॥ ५६ ॥ ऋजोःसुखोपविष्टस्यहृष्टेमेढ्रेघृतान्विते । श-

लाकयान्विष्यगतिंयथ्यप्रतिहतात्रजेत् ॥ ५७ ॥ ततःशेफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रंप्रवेशयेत् । गुदवन्मूलमार्गेणप्रणयेदनुसेवनीम् ॥ ५८ ॥

उत्तर वस्ति करनेसे प्रथम रोगीको स्नान करा मांसरस अथवा दूधके साथ भातका भोजन करावे। फिर समयपर मल मूत्र त्याग करनेके अनन्तर एक हाथ ऊंचे कोमल आसनके ऊपर सुखपूर्वक बिठावे अथवा शिरके नीचे कुछ तकिया आदि रखकर शिरको ऊंचाकर सीधा लिटावे। फिर इस प्रकार सुखपूर्वक बैठेहुए वा लेटेहुए रोगीके लिंगको हृष्ट और घृतसे चिकना करे। फिर एपणी शलाका (मूत्रमार्गसे वस्तितक पहुंचनेवाली भीतरसे पोली चांदीकी सलाई) को उत्तम औषधीसे सिद्ध घृत लगाकर लिंगके छिद्रद्वारा भीतरको प्रवेश करे। यदि वह सलाई रास्तेमें किसी जगह नहीं अटके और सीधी मूत्राशयतक पहुंचजाय तो उसको निकालकर लिंगके बराबर दूसरी वस्तिनली प्रवेश करे। जिस प्रकार गुदामें पिचकारी करते समय सावधानीसे हाथ आदि न हिलाकर वस्तिकर्म कियाजाताहै उससे भी अधिक सावधानी रखताहुआ मूत्रमार्गद्वारा मूत्रनलीको प्रवेशकरना चाहिये क्यों कि विना सावधानीसे उत्तरवस्तिकी नली प्रवेश कीजाय तो मूत्रनलीमें अनेक घोर उपद्रव होसकतेहै। इस नलीका मुख सीवनकी ओर रहना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

हिंस्याद्वस्तिगतंवस्तिंमूलेस्नेहोनगच्छति।
सुखंप्रपीडयनिष्कंपंनिष्कर्षेन्नेत्रमेवच ॥ ५९ ॥

यदि उत्तरवस्ति अधिक वेगसे प्रवेश कीजाय तो वह वस्ति मूत्राशयमें आघात करतीहै और उससे महान् अनर्थ होसकताहै। यदि अत्यन्त धीरेसे वस्तिमें स्नेह छोडाजाय तो वह स्नेह वस्तिस्थानतक नहीं पहुंचसकता इसलिये हाथको विना कंपाये युक्तिपूर्वक समभावसे वस्तिका स्नेह मूत्रवस्तिमें पहुंचावे और फिर धीरेसे हाथको विना कंपाये वस्तिकी नलीको निकाललेवे ॥ ५९ ॥

वस्तिके स्नेह न निकलनेपर वर्तिप्रयोग।

प्रत्यागतेद्वितीयन्तुतृतीयञ्चप्रदापयेत् । अनागच्छन्नुपेक्ष्यस्तुरजनीव्युषितस्यच ॥ ६० ॥ पिप्पलीलवणागारधूमापामार्गसर्षपैः। वार्त्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्याकैःससहाचरैः ॥ ६१ ॥ मूत्राम्लपिष्टैः

१ आज कल प्रायः रबडकी नलियें (कैथिटर) काममें लाईजातीहैं। एपणीशलाका बीचमेंसे पोली नहीं होतीहै और वस्तिनली बीचमेंसे पोली होतीहै यह चांदीसे बनीहुईभी बडी२ अंग्रेजी दुकानोंपर बिकतीहै।

सगुडैर्वर्तिंकृत्वाप्रवेशयेत् । अग्रेतुसर्षपाकारंपश्चाद्वौमापसम्मिताम् ॥ ६२ ॥ नेत्रदीर्घांघृताभ्यक्तांसुकुमारामभङ्गुराम् । नेत्रवन्मूत्रनाड्यान्तुपायौवाङ्गुष्ठसम्मिताम् ॥ ६३ ॥

जब वस्तिद्रव्य प्रत्यागत होजाय अर्थात् वस्तिस्नेह और मूत्र निकलजाय तो दूसरीवार फिर उसी प्रकार स्नेहवस्ति करे । दूसरी वस्तिका स्नेह निकलनेपर तीसरी वार फिर वस्तिकर्म करना चाहिये । यदि वस्तिका स्नेह न निकले तो एक रात्रिपर्यन्त उस स्नेहके निकालनेकी उपेक्षा करे । फिर दूसरे दिन उसके निकालनेके लिये पीपल, सेंधानमक, गृहधूम, अपामार्गके बीज, सरसों, बैंगनका रस, संभालू, अमलतासका गूदा और पीयाबांसा इन सब द्रव्योंको गोमूत्र, कांजी और गुडके साथ बारीक पीसकर बत्ती बनावे । यह बत्ती आगेसे सरसोंके दानेके समान मोटी और पीछेसे दोउडदोंके बराबर मोटी होनी चाहिये । इस बत्तीको विधिवत् मूत्रमार्गमें प्रवेश करे । यह वर्त्ति मूत्रवस्तिके नेत्रके समान लंबी, घृतमें भिगोईहुई, साफ और कोमल होनी चाहिये । जो वर्ती मूत्रमार्गसे प्रवेश कीजातीहै उसका आकार पुष्पनेत्र मूत्रद्वारा प्रवेश करनेकी सलाईके समान होताहै । और जो वर्त्ती गुदाद्वारा प्रवेश कीजाती है वह अंगूठेके समान मोटी चाहिये ॥ ६०-६३ ॥

स्नेहेप्रत्यागतेताभ्यांसानुवासनिकोविधिः ।
पारिहारस्यसव्यापत्सम्यग्दत्तस्यलक्षणम् ॥ ६४ ॥

उत्तरवस्तिका स्नेह प्रत्यागत होजानेके अनन्तर उस रोगीका अनुवासनवस्तिके समान आहार विहारसे पालन करना चाहिये और उत्तरवस्तिमें किसी प्रकारकी व्यापत्ति (उपद्रव) होजानेपर भी अनुवासनमें कहीहुई व्यापत्तियोंके समान चिकित्सा करनी चाहिये । अनुवासन वस्तिके भलेप्रकार होजानेसे जो लक्षण होतेहैं उत्तरवस्तिके भले प्रकार होनेसे भी उसीके समान लक्षण जानना ॥ ६४ ॥

स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका समय ।

स्त्रीणाश्चार्त्तवकालेतुप्रतिकर्मतदाचरेत् । गर्भासनासुखंस्नेहंतदादत्तेह्यपावृता । गर्भंयोनिस्तदाशीघ्रंजितेगृह्णातिमारुते ॥ ६५ ॥

यदि स्त्रियोंको उत्तरवस्ति करना हो तो जिस समय मासिक ऋतु आया हो उस समय उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये । क्योंकि उस समय गर्भाशयका मुख खुला होनेसे सुखपूर्वक स्नेहको योनिग्रहण करलेतीहै । उस समय वह स्नेह गर्भाशयकी वायुको जीतलेताहै इसलिये वह स्त्री शीघ्र सुखपूर्वक गर्भको धारण करलेतीहै ॥ ६५ ॥

उत्तरवस्तियोग्य रोग ।

वस्तिजेषुविकारेषुयोनिविभ्रंशजेपुच । योनिशूलेपुतीव्रेपुयोनिव्यापत्स्वसृग्दरे ॥ ६६ ॥ अप्रस्रवतिमूत्रेचविन्दुंविन्दुंस्रवत्यपि । विदध्यादुत्तरंवस्तिंयथास्त्रौषधसंस्कृतम् ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके सब प्रकारके वस्ति (मूत्राशय) के विकारोंमें, योनिविभ्रंश जनित विकारोंमें, तीव्र योनिशूलमें, योनिव्यापत्तियोंमें, रक्तप्रदरमें, मासिक ऋतुके विबंधमें और मूत्रकी बूंद २ आनेमें रोगानुसार औषधियोंसे सिद्ध किये स्नेहोंद्वारा स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

स्त्रियोंके लिये वस्तिनलका प्रमाण ।

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तुप्रमदानांदशाङ्गुलम् ।
मूत्रस्रोतःपरीणाहंमूत्रस्रोतोनुवाहिच ॥ ६८ ॥

स्त्रियोंको जो उत्तरवस्ति दीजाती है तो उनका वस्तिनल दश अंगुल लंबा बनाना चाहिये । और स्त्रीके मूत्र छिद्रके समान मोटाईमें होना चाहिये जो मूत्रछिद्रमें सुखपूर्वक प्रवेश होसके ॥ ६८ ॥

गर्भमार्गेतुनारीणांविधेयंचतुरङ्गुलम् ।
द्व्यङ्गुलंमूत्रमार्गेतुवालायास्त्वेकमङ्गुलम् ॥ ६९ ॥

स्त्रियोंके गर्भमार्गमें उत्तरवस्ति करनेके लिये ४ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये और मूत्रमार्गमें उत्तरवस्ति देना हो तो २ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये । वाला (लडकियों) के लिये १ अंगुलका नल प्रवेश करना चाहिये॥६९॥

स्त्रियोंके वस्तिप्रवेशविधि ।

उत्तानायाःशयानायाःसम्यक्सङ्कोच्यसक्थिनी । अथास्याःप्रणयेन्नेत्रमनुवंशगतंसुखम् ॥ ७० ॥ द्विस्त्रिश्चतुर्वातांस्नेहानहोरात्रेणयोजयेत् । वस्तिंवस्तौप्रणीतेचवस्तिश्चानन्तरोभवेत् ॥ ७१ ॥

जब स्त्रियोंको उत्तरवस्तिका प्रयोग कराना हो तो स्त्रीको चित्त लेटाकर उसकी दोनों जांघोंको पीछेको हटाकर सिकोडकर फिर वस्तिनलका मूत्रमार्गसे प्रवेश करे । उस नलका मुख पीठकी बांमकी ओर रखना चाहिये और धीरेसे सुखपूर्वक प्रवेश करे । दिनरात्रिमें दो तीनवार अथवा चारवार इसी प्रकार उत्तर वस्ति द्वारा स्नेहका प्रयोग करे । जब पहिली दीहुई वस्तिका स्नेह लौटआवे फिर दूसरी वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । इसी प्रकार क्रमानुसार दो तीन वार वस्तिका प्रयोग करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

त्रिरात्रंकर्मकुर्वीतस्नेहमात्रांविवर्द्धयन् ।
अनेनैवविधानेनकर्मकुर्य्यात्पुनरुयहात् ॥ ७२ ॥

इस विधिसे तीन दिन उत्तरवस्ति क्रिया करे । पहिले दिनसे दूसरे दिन स्नेहकी मात्रा किंचित् अधिक लेना चाहिये फिर दूसरे दिनसे तीसरे दिन कुछ अधिक ले । इस प्रकार स्नेहकी मात्रा बढाता रहे । तीन दिनके अनन्तर वस्तिक्रिया बन्द कर-दे और तीन दिन बीत जानेबाद फिर इसी प्रकार स्नेहवस्ति करे ॥ ७२ ॥

शंखकके लक्षण और चिकित्सा ।

अतःशिरोविकाराणांकश्चिद्भेदःप्रवक्ष्यते । रक्तपित्तानिलादुष्टाःशं-खदेशेविमूर्च्छिताः तीव्ररुग्दाहरागंहिशोफंकुर्वन्तिदारुणम् ॥७३॥ सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्याशुगलंतथा । त्रिरात्राज्जीवितंहन्तिशंख-कोनामनामतः ॥ ७४ ॥ जीवेत्र्यहंचेद्भैषज्यंप्रत्याख्यायास्यकार-येत् । शिरोविरेकसेकादिसर्ववीसर्पनुच्चयत् ॥ ७५ ॥

अब हम शिरोविकारोंके कुछक भेदोंका कथन करते हैं । रक्त, पित्त और वायु कुपित होकर शंख (कनपटी) स्थानमें प्राप्त होकर तीव्र पीडा, दाह, लाली और दारुण सूजनको उत्पन्न करते हैं । यह रोग विषके समान शीघ्र वेगवाला है । शीघ्र गलको रोक देताहै और तीन दिनमें जीवनको भी नष्ट करता है । इस रोगको शंखक रोग कहते हैं । यदि रोगी तीन दिन पर्यन्त जीता रहसके तो वैद्य यह कहकर कि यह असाध्य रोगी है फिर चिकित्सा करे । इसमें शिरोविरेचन, सेक आदि तथा विसर्परोगनाशक संपूर्ण रोगकी चिकित्सा करना हितकारकहै ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

अर्द्धावभेदकके लक्षण और चिकित्सा ।

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्ववासावश्यायमैथुनैः । वेगसन्धारणायासव्या-यामैःकुपितोऽनिलः ॥ ७६ ॥ केवलःसकफोवार्द्धंगृहीत्वाशिरसो-ऽनिलः मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्द्धेचवेदनाम् । शस्त्राशनिनि-भांकुर्य्यात्तीव्रांसोऽर्द्धावभेदकः ॥ ७७ ॥ नयनंवाथवाश्रोत्रमतिवृ-द्धोविनाशयेत् । चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम् । नाडी-स्वेदोघृतंजीर्णंवस्तिकर्मानुवासनम् ॥ ७८ ॥ उपनाहःशिरोवस्ति-र्दहनंवात्रशस्यते । प्रतिश्यायेशिरोरोगेयच्चोद्दिष्टंचिकित्सितम्॥७९॥

रूक्ष पदार्थोंका सेवन, भोजन कियेपर फिर भोजन करना, अतिभोजन, पूरवकी

पवन, ओस, अथवा शिशिरऋतु, मैथुन, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना, परिश्रम और कसरत आदि कारणोंसे कुपितहुआ वायु अकेलाही अथवा कफको साथमें लेकर मस्तकके आधे भागमें स्थित होकर एकओरके मन्या, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र और आधे मस्तकमें शस्त्रसे काटने अथवा वज्रसे भेदन करनेके समान तीव्र पीडाको उत्पन्न करताहै इसको अर्धावभेदक रोग कहते हैं । यदि यह अत्यंत बढजाय तो नेत्र अथवा कानको नष्ट करता है। इस अर्धावभेदक रोगमें चतुःस्नेहकी उत्तम मात्रा पान करना चाहिये तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, नाडीस्वेद, जीर्णघृतका प्रदेह, वस्तिकर्म, अनुवासन वस्ति, उपनाहस्वेद, शिरोवस्ति अथवा दाह पर्यन्त क्रिया करे अर्थात् आवश्यकता हो तो दाग भी देवे और प्रतिश्याय तथा शिरोरोगमें कहीहुई चिकित्साका प्रयोग करना चाहिये ॥ ७६-७९ ॥

सूर्यावर्तके लक्षण और चिकित्सा।

सन्धारणादजीर्णाद्धैर्मस्तिष्कंरक्तमारुतौ । दुष्टौदूषयतस्तच्चदुष्टं ताभ्यांविमूर्च्छितम् ॥ ८० ॥ सूर्य्योदयांशुसन्तापाद्दुःखंविष्यन्दते शनैः । ततोदिनेशिरःशूलंदिनवृद्ध्याचवर्द्धते ॥ ८१ ॥ दिनक्षये ततःस्त्यानेमस्तिष्केसंप्रशाम्यति । सूर्य्यावर्त्तःसएवस्यात्सर्पिरौत्तरभक्तिकम् ॥ ८२ ॥ शिरःकायविरेकौचमूर्ध्नाचस्नेहधारणम् । जाङ्गलैरुपनाहश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम् ॥ ८३ ॥

मल, मूत्रादि वेगोंको धारण करनेसे तथा अजीर्ण आदि कारणोंसे दूषित हुए रक्त और वायु मस्तकको दूषित कर देते हैं इस प्रकार मस्तकमें प्राप्त हुआ रक्त और वायु दिनमें सूर्यकी किरणोंसे तपायमान होकर जैसे २ सूर्यकी गर्मी बढती जाती है वैसे २ गर्मीसे पिघलतेहुए वह वातयुक्त रक्त मूर्च्छित होकर अत्यंत कष्ट देताहै । ज्यों २ सूर्यकी गर्मी कम होतीजातीहै त्यों २ यह पीडा भी शान्त होती जाती है । इस प्रकार सूर्यकी गर्मीसे बढनेवाली और घटनेवाली पीडाको सूर्यावर्त्त कहते हैं । इस सूर्यावर्त्त रोगमें भोजन करनेके अनन्तर घृतपान करना चाहिये । तथा शिरोविरेचन, कायविरेचन, मस्तकपर तैल धारण करना जंगली जीवोंके मांससे उपनाह स्वेद करना और क्षारयुक्त घृतका सेचन करना हितकारी है ॥ ८०-८३ ॥

बर्हितित्तिरिलावादिशृतंक्षीरोत्थितंघृतम् ।
नावनंजीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥ ८४ ॥

मोर, तीतर और लवा आदि किसी जंगली जीवके मांसके कायसे सिद्ध कियेहुए दूधसे निकला हुआ घृत, जीवनीयगणका कल्क और मोर आदि जीवोंके मांसका

रस तथा घीसे अठगुना दूध इन सबको मिलाकर सिद्ध कियाहुआ घृत नस्य देनेसे सूर्यावर्त्त रोगको दूर करता है ॥ ८४ ॥

अनन्तवातके लक्षण और चि० ।

उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः। दुष्टादोषास्त्रयोमन्यांप-श्चाद्धाटेतुवेदनाम् ॥ ८५ ॥ तीव्रांकुर्वन्तिनामाक्षिभ्रूशंखेष्ववतिष्ठ-ते । स्पन्दनंगण्डपार्श्वस्यनेत्ररोगंहनुग्रहम्। सोऽनन्तवातस्तंह-न्याच्छिरोऽर्कावर्त्तनाशनः ॥ ८६ ॥

उपवास और अत्यंत शोक करनेसे तथा अत्यंत रूक्ष, शीतल और अल्प भोजनके करनेसे तीनों दोष कुपित होकर मन्याके पिछले भागमें अत्यंत तीव्र पीडाको उत्पन्न करते हैं। वह पीडा आँख, भृकुटी, कनपटीमे स्थित होकर गण्डस्थलके पार्श्वमें स्पन्दन-को उत्पन्न करती है तथा नेत्ररोग और हनुग्रहको उत्पन्न करतीहै इसको अनन्त वात कहते हैं। सूर्यावर्त्त नाशक किया द्वारा इसकी शान्ति करनी चाहिये ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

शिरकंपके लक्षण ।

वातोरूक्षादिभिःक्रुद्धःशिरःकम्पमुदीरयेत् ॥ ८७ ॥

रूक्षादि कारणोंसे कुपित हुआ वायु शिरकी नसोंमें प्राप्त होकर शिरःकंपनामक रोगको उत्पन्न करता है ॥ ८७ ॥

इनकी चिकित्सा ।

तत्रामृतावलारास्नामहाश्वेताश्वगन्धकैः ।
स्नेहस्वेदादिवातघ्नंशस्तंनस्यश्चतर्पणम् ॥ ८८ ॥

शिरःकंपमें अमृता, बला, रास्ना और श्वेत अपराजिताके कल्क द्वारा स्निग्ध स्वेदन और इनके कल्कसे सिद्ध किये घृतों द्वारा स्नेहन करना, स्वेदन करना और वातना-शक नस्य तथा तर्पण करना हितकारक है ॥ ८८ ॥

नस्यके गुण ।

नस्तःकर्मचकुर्वीतशिरोरोगेपुसूक्ष्मवित् ।
द्वारंहिशिरसोनासातेन तद्व्याप्यहन्तिताम् ॥ ८९ ॥

शिरके रोगोंमें नस्यकर्म करना सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि शिरका द्वार नासिका है और नस्य नासिका द्वारा शिरमें पहुँचकर शिरके रोगोंको नष्ट कर देतीहै ॥ ८९ ॥

नस्यके ५ भेद।

नावनश्चावपीडश्चध्मापनंधूमएवच ।
प्रतिमर्पश्चविज्ञेयोनस्तःकर्मतुपश्चधा ॥ ९० ॥

नावन, अवपीडन, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्ष यह नस्यके पांच भेद हैं ॥ ९० ॥

स्नेहनः शोधनश्चैवद्विविधंनावनंस्मृतम् । शोधनःस्तम्भनश्चस्यादवपीडोद्विधामतः ॥ ९१ ॥ चूर्णस्याद्ध्मापनंनामदेहस्रोतोविशोधनम् । विज्ञेयस्त्रिविधोधूमःप्रागुक्तःशमनादिकः ॥ ९२ ॥ प्रतिमर्षोभवेत्स्नेहोनिर्दोषउभयार्थकृत् । एवंतद्रेचनंकर्मतर्पणंशमनंत्रिधा ॥ ९३ ॥

स्नेहन और शोधन भेदसे नावन नस्य दो प्रकारका होताहै । शोधन और स्तंभन भेदसे अवपीडननस्य दो प्रकारका होताहै दोमुखी नलकी द्वारा नस्यचूर्णको देहस्रोतोंकी शुद्धिके लिये नासिकामें फूंकनेको ध्मापन नस्य कहते हैं । धूमनस्य शमनादि भेदसे तीन प्रकारी होती है यह पहिले कह आये हैं । प्रतिमर्षमें स्नेहका प्रयोग किया जाताहै यह संशमन और संशोधन इन दोनों गुणोंको करताहै तथा निर्दोष होताहै । इस प्रकार रेचन, तर्पण और शमन यह नस्यके तीन प्रकारके कर्म हैं ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥

नस्यभेदसे साध्य रोग।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याःश्लैष्मिकायेशिरोगदाः ।
शिरसोरेचनंतेपुनस्तःकर्मप्रशस्यते ॥ ९४ ॥

मस्तककी स्तंभता, सुप्ति, मस्तकका भारीपन और कफजन्य शिरोरोगोंमें रेचनी नस्यका प्रयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ९४ ॥

येचवातात्मकारोगाःशिरःकम्पार्दितादयः ॥
शिरसस्तर्पणंतेपुनस्तःकर्मप्रवक्ष्यते ॥ ९५ ॥

शिरःकंप, अर्दित आदि वातजनिक रोगोंमें तर्पण, नस्य अर्थात् स्नेहद्वारा मस्तकको तृप्त करना श्रेष्ठ है ॥ ९५ ॥

रक्तपित्तादिरोगेषुशमनंनस्यमिष्यते ।

रक्तपित्तादि रोगोंमें शमन नस्यका प्रयोग करना चाहिये ॥

ध्मापनंधूमपानश्चयथायोग्येपुशस्यते ।
दोषादिकंसमीक्ष्यैवभिषक्सम्यक्चकारयेत् ॥ ९६ ॥

दोष भेद आदि विचारकर वैद्य विधिवत् ध्मापन और धूमनस्यका ध्मापन और धूमपान योग्य रोगोंमें प्रयोग करे ॥ ९६ ॥

विरेचन नस्य ।

फलादिभेषजंप्रोक्तंशिरसोयद्विरेचनम् ।
तच्चूर्णंकल्पयेत्तेनपचेत्स्नेहंविरेचनम् ॥ ९७ ॥

जो फलमूल आदि शिरोविरेचन द्रव्योंको कथन कर आये हैं उनका बारीक चूर्ण कर अथवा उनके कल्क द्वारा स्नेह सिद्धकर शिरोविरेचन करना चाहिये ॥ ९७ ॥

तर्पण नस्य ।

यदुक्तंमधुरस्कन्धेभेषजंतेनतर्पणम् ।
साधयित्वाभिषक्स्नेहंनस्तःकुर्याद्विधानवित् ॥ ९८ ॥

विमानस्थानमें मधुरस्कंधमें जिन द्रव्योंका कथन कर आये हैं उन द्रव्योंसे सिद्ध किये स्नेहसे विधिको जाननेवाला वैद्य तर्पण नस्यका प्रयोग करे ॥ ९८ ॥

नस्यकर्मविधि ।

प्राक्सूर्य्येमध्यसूर्य्येवाकुर्यात्तर्पणमेवच । उत्तानस्यशयानस्यशय-नेस्वास्तृतेसुखम् ॥ ९९ ॥ प्रलम्बशिरसःकिञ्चित्किञ्चित्पादोन्न-तस्यच । दद्यान्नासापुटेस्नेहंतर्पणंबुद्धिमान्भिषक् ॥ १०० ॥

तर्पण औषधी सूर्योदयसे पहिले अथवा मध्याह्नमें प्रयोग करनी चाहिये। रोगीको सीधा लेटाकर शिरको जरा पीछेकी ओर नीचाकर सुखपूर्वक लिटा दोनों पांव किंचित् ऊपरको रक्खे फिर बुद्धिमान् वैद्य उसके दोनों नासापुटोंमें तर्पण स्नेहका प्रयोग करे ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अनवाक्शिरसोनस्यंनाशिरःप्रतिपद्यते । अत्यवाक्शिरसोनस्यंम-स्तुलुङ्गेचतिष्ठते ॥ १०१ ॥ अतएवशयानस्यशुद्ध्यर्थंस्वेदयेच्छिरः। संस्वेद्यनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा ॥ १०२ ॥ हस्तेनदक्षिणे-नाथदद्यादुभयतःसमम् । प्रणाड्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथावि-धि ॥१०३॥ कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेचपुनःपुनः । तत्स्नेहंश्लेष्मणा सार्द्धंतथास्नेहोनातिष्ठति ॥ १०४ ॥

शिरको पीछेकी: ओर विना झुकाये जो तर्पणनस्य प्रयोग किया जाताहै वह शिरमें न पहुंचकर बाहर निकल आताहै जो शिरको अत्यंत नीचा झुका दियाजाय तो वह स्नेह मस्तकके भेजेमें पहुंच जाताहै। इसलिये मस्तकशुद्धिके लिये प्रथम रोगीके मस्तकको स्वेदन करे। फिर बायें अंगूठेके पोरवेसे नासिकाको जरा उठाकर दहिने हाथसे नाकके छिद्रोंमें नलीके साथ अथवा रूईका फोहा स्नेहमें भिगोकर विधिपूर्वक दोनों नासिकाओंमें स्नेह टपकावे। इस प्रकार नस्यकर्म करके फिर स्वेदन करे। स्वेदन करनेसे वह संपूर्ण स्नेह कफको लेकर बाहर निकल आता है। और मस्तकमें नहीं ठहर सकता॥ १०१॥ १०२॥ १०३॥ १०४॥

स्वेदेनोत्क्लेशितःश्लेष्मानस्तःकर्मण्युपस्थितः। भूयःस्नेहस्यशैत्येन शिरसिस्त्यायतेततःश्रोत्रमन्यागलाद्येषुविकारायसकल्पते॥१०५॥

स्वेदन द्वारा उत्क्लेशित हुआ कफ मस्तकसे चलायमान होजाता है वह स्नेहकी शीततासे गाढा होकर कान गर्दन और गल आदिमें विकारोंको उत्पन्न करता है ऐसा होनेपर फिर स्वेदन करना चाहिये॥ १०५॥

नस्यके अनन्तरकर्म।

ततोनस्तःकृतेधूमंपिबेत्कफविनाशनम्। हितान्नंभुङ्निवातोष्णसेवीस्यान्नियतेन्द्रियः॥ १०६॥

नस्यकर्मके अनन्तर कफनाशक धूमका प्रयोग करना हितकारी है तथा हितकारक अन्नका सेवन करना और निर्वात स्थानमें रहना और उष्णपदार्थोंका सेवन तथा जितेन्द्रिय रहना चाहिये॥ १०६॥

अवपीडन और प्रध्मापन।

विधिरेषोऽवपीडस्यकार्य्यःप्रध्मापनस्यच।
षडङ्गुल्याथवानाड्याधमेच्चूर्णमुखेनवा॥ १०७॥

यही विधि अवपीडन (गीली औषधीका रस नाकमें टपकाना) नस्यमें करनी चाहिये और प्रध्मापन नस्यके चूर्णको छः अंगुलकी नलकीमें रख मुखद्वारा नासापुटमें फूंक मारकर पहुंचादेना चाहिये॥ १०७॥

शिरोविरेचनके अनन्तरकर्म।

विरिक्तशिरसन्तूर्णपाययित्वाम्बुभोजयेत्।
लघुत्रिष्वविरुद्धञ्चनिवातस्थमतन्द्रितः॥ १०८॥

शिरोविरेचनके अनन्तर रोगीको गर्मजल पिलाकर हलका और त्रिदोषके अवि-

-रोंधी अथवा तीनों प्रकारके नस्यके अविरोधी भोजन करावे और निर्वातस्थानमें सावधानीसे रक्खे तथा दिनमें सोने न देवे ॥ १०८ ॥

विरेकशुद्धौदोषस्यकोपनंयस्यसेवते । सदोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहून् । यथास्वंविहितंतेषुक्रियांकुर्य्याद्विचक्षणः ॥ १०९ ॥ अकालकृतजातानांरोगाणामनुरूपतः ॥ ११० ॥

शिरोविरेचनसे शुद्ध होजानेपर जिस दोषके कुपित करनेवाले हेतुओंका सेवन कियाजाय वही दोष विचरण करताहुआ अपने गुणवाले अनेक रोगोंको उत्पन्न करताहै । उन रोगोंमें यथा दोषानुसार चिकित्साकर बुद्धिमान् उन रोगोंको शान्त करे । विना समय नस्य प्रयोग करनेसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनकी भी उन रोगोंके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १०९ ॥ ११० ॥

नस्यकर्मका अकाल और उनमें हुए रोगोंके यत्न ।

अजीर्णेभोजनेभुक्तेतोयपीतेऽथदुर्दिने ।प्रतिश्यायेनवेस्नानेस्नेहपानेऽनुवासने । नावनंस्नेहनंरोगान्करोतिश्लेष्मिकान्बहून् । तत्रश्लेष्महरःसर्वस्तीक्ष्णोष्णादिर्विधिर्हितः ॥ १११ ॥

अजीर्णमें, भोजनके अनन्तर, जल पीनेके अनन्तर वर्षा आदिसे दूषित दिनमें, प्रतिश्यायमें, स्नानके अनन्तर, स्नेहपानके अनन्तर, अनुवासनके अनन्तर, जो नस्यकर्म किया जाताहै वह अकालकृत नस्यकर्म है अर्थात् इन समयोंमें नस्यका प्रयोग नहीं करना चाहिये । अर्थात् ऐसे समयोंमें नस्यकर्म करनेसे अनेक प्रकारके कफजनित रोग उत्पन्न होतेहैं । इन रोगोंमें प्रायः कफनाशक और तीक्ष्ण उष्णादि विधिका सेवन करना हितकारक है ॥ १११ ॥

क्षामेविरेचनेगर्भेव्यायामाभिहतेष्वपि ॥ ११२ ॥ वातोरूक्षेणनस्येनक्रुद्धस्ताञ्जनयेद्गदान् । तत्रवातहरःसर्वोविधिःस्नेहनबृंहणः ॥ ११३ ॥ स्वेदादिःस्याद्घृतंक्षीरंगर्भिण्यास्तुविशेषतः ॥११४॥

क्षीण मनुष्य, विरेचनके अनन्तर, गर्भवती स्त्री, और व्यायामसे थकेहुए मनुष्योंको यदि रूक्ष नस्यका प्रयोग किया जाय तो वायु कुपित होकर वातजनित रोगोंको उत्पन्न करती है । ऐसा होनेपर वातनाशक संपूर्ण क्रिया और स्नेहन, बृंहण स्वेद आदि क्रिया हितकारी है तथा स्नेहन, बृंहण, घृत और दूधका प्रयोग भी हितकारी है । और गर्भिणी स्त्रियोंके लिये तो विशेषकर स्नेहन, बृंहण, घृत, दूधका प्रयोग करना हितकारक है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥ ११४ ॥

ज्वरशोकाभितप्तानांतिमिरंमद्यपस्यच । रूक्षैः सेकाञ्जनैर्लेपैःपुट-पाकैश्चशोधयेत् । तेनज्वरादयस्तत्रप्रशमंयान्तितस्यतु ॥ ११५ ॥

ज्वरसे पीडित और शोकसे संतप्त तथा मद्य पीनेवाले मनुष्यको तिमिर प्रतीत होने लगे तो उसको रूक्ष, सेक, अंजन, लेप पुटपाकों द्वारा शोधन करे । ऐसा करनेसे उसके ज्वरादि शान्त हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

प्रतिमर्ष नस्यके गुण ।

स्नेहनंशोधनञ्चैवद्विविधंनस्यमुच्यते ।
प्रतिमर्षश्चनस्यार्थंकरोतिनचदोषवान् ॥ ११६ ॥

स्नेहन और स्वेदन भेदसे नस्य दो प्रकारका होताहै । प्रतिमर्ष नस्य इन स्नेहन और शोधन दोनों गुणोंको करताहै और किसी प्रकारका अवगुण नहीं करता॥११६॥

नस्तःस्नेहाङ्गुलिंदद्यात्प्रातर्निशिचसर्वदा ।
नचोत्सिहेदरोगाणांप्रतिमर्शःसदार्द्यकृत् ॥ ११७ ॥

नित्य प्रति स्नेहमें अंगुली भिगोकर रात्रिके समय और प्रातःकालमें नाकके छिद्रोंमें लगावे और निश्वास द्वारा बलपूर्वक अंगुलीके स्नेहको आकर्षण करे अर्थात् सूंघे । इसको प्रतिमर्ष, शमन नस्य कहतेहैं । यह शमन प्रतिमर्ष नस्य आरोग्य मनुष्योंको भी दृढता संपादन करनेवाला है ॥ ११७ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

तत्र श्लोकौ ।

त्रीणियस्मात्प्रधानानिमर्माण्यभिहतेषुच । तेषुलिङ्गंचिकित्साश्च रोगभेदाश्चसौषधाः ॥ ११८ ॥ विधिरुत्तरवस्तेश्चनस्तः कर्मविधि-स्तथा । षड्व्यापद्भेषजंसिद्धौमर्माध्यायेप्रकीर्त्तितम् ॥ ११९ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेत्रिमर्मीयसिद्धिर्नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहते हैं कि, इस त्रिमर्मीय सिद्धिनामक अध्यायमें हृदय आदि तीन प्रधान मर्मोंमें किसी प्रकारका आघात लगनेसे जो उपद्रव होतेहैं उन सबके लक्षण चिकित्सा और इन तीनों मर्मोंके भिन्न भिन्न रोग, उनके भेद, चिकित्साविधि, उत्तरवस्तिकी विधि, नस्यकर्म विधि, छः प्रकारकी व्यापत्तियें और उनकी चिकित्सा यह सब वर्णन कियाहै ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं०सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी०त्रिमर्मीयसिद्धिर्नाम नवमोध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथातो वस्तिसिद्धिं व्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः ।

अब हम वस्तिसिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ॥

सिद्धानांवस्तीनांशस्तानांतेपुतेपुरोगेपु ।
शृण्वग्निवेशगदतःसिद्धिंसिद्धिप्रदांभिषजाम् ॥ १ ॥

जो जो प्रत्यक्ष फलको देनेवाली वस्तियें जिन २ रोगोंमें उपयोग की जाती हैं. और वह सिद्ध वस्तियें वैद्योंको सदैव सिद्धिको देनेवाली हैं हे अग्निवेश ! अब उनको सुनो ॥ १ ॥

वलदोपकालरोगप्रकृतीःप्रविभज्ययोजितःसम्यक् ।
स्वैःस्वैरौषधवर्गैःस्वान्स्वान्रोगान्नियच्छति ॥ २ ॥

बल, दोप, काल और प्रकृतिको विचारकर संपूर्ण वातादि रोगोंमें उन रोगोंको नाश करनेवाली औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए वस्तियोग भले प्रकार प्रयोग करनेसे उन संपूर्ण रोगोंको दूर करतीहैं ॥ २ ॥

कर्मान्यद्वस्तिसमंनविद्यतेशीघ्रसुखविशोधित्वात् ।
आश्वपतर्पणयोगात्सर्वैर्पांनिरत्ययत्वाच्च ॥ ३ ॥

वस्तिके बराबर और कोई क्रिया शीघ्रही सुखपूर्वक शोधन करनेवाली नहीं है। यह शीघ्र दोषोंको निकाल देतीहै और कोई उपद्रव भी नहीं करतीहै ॥ ३ ॥

सत्यपिदोपहरत्वेकटुतीक्ष्णोष्णादिभेपजादीनाम् ।
सदुःखोद्गाराहृद्यत्वकोष्ठावाधाविरेकेस्युः ॥ ४ ॥

यद्यपि दोषोंको हरण करनेके लिये कटु, तीक्ष्ण और उष्ण आदि औषधियें हैं परन्तु वह दुःखसे खायीजातीहैं और अहृद्य अर्थात् हृदयको बिगाडती हैं और बुरी डकारें आने लगती हैं । तथा विरेचन होनेमें कोष्ठमें अनेक प्रकारकी बाधा होतीहै ॥ ४ ॥

आस्थापन योग्य मनुष्य ।

अविरेच्यौशिशुवृद्धौहितावदप्राप्तहीनधातुवलौ। आस्थापनमेवतयोः सर्वार्थकृदुत्तमंकर्म। वलवर्णहर्षमार्दवगात्रस्नेहान्नृणांददत्याशु॥५॥

बालक और वृद्ध विरेचन करानेके योग्य नहीं होते क्योंकि बालक तो अप्राप्त

धातुबल होताहै और वृद्ध क्षीणधातु तथा हीनबल होताहै । इसलिये बालक और वृद्धोंको आस्थापन वस्तिका प्रयोग करनाही सब प्रकार गुणकारी और उत्तम चिकित्सा है । आस्थापन वस्ति इनके बल, वर्ण, हर्ष, शरीरकी मृदुता और अंगोंमें चिकनाई इन सब गुणोंको शीघ्र करनेवाली है ॥ ५ ॥

त्रिविध वस्ति ।

अनुवासनंनिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसात्रिविधः ॥ ६ ॥

वस्ति-अनुवासन, निरूहण और उत्तर वस्ति इन भेदोंसे तीन प्रकारकी होतीहै ॥ ६ ॥

वस्तिके गुण ।

शाखावातार्त्तानांसङ्कुचितस्तब्धभग्नसन्धीनाम् ।
विद्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्त्तिरुगादिषुचशस्तः ॥ ७ ॥

वस्ति प्रयोग करनेसे शाखागत वात, अंगसंकोच,स्तम्भ, संधियोंका ढीला पडना अथवा टूटना, विष्ठाका अवरोध, अरुचि, परिकर्त्तिका आदि पीडाओंकी शान्तिके लिये अति श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

उष्णार्त्तानांशीताञ्शीतार्त्तानांतथासुखोष्णांश्च ।
तद्योगौषधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रविनियुञ्ज्यात् ॥ ८ ॥

जो मनुष्य उष्णतासे पीडित हैं उनको शीतलवस्तिका प्रयोग करना चाहिये और जो शीतसे पीडित हैं उनको सुखोष्ण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । जिस रोगमें वस्तिका प्रयोग करना हो उस रोगको शान्त करनेवाली औषधियोंसे सिद्धकर सब रोगोंमें वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

शोधनीयरोगोंमें बृंहणका निषेध ।

वस्तीन्नबृंहणीयान्दद्याद्व्याधिषुविशोधनीयेषु ।
मेदस्विनोविशोध्यायेचनराःकुष्ठमेहार्त्ताः ॥ ९ ॥

शोधनके योग्य रोगोंमें बृंहणवस्तिका प्रयोग नहीं करना चाहिये । और मेदस्वी वमन, विरेचन द्वारा शोधन योग्य,कुष्ठ रोगी और मधुमेहवालेके कभी भी आस्थापन (बृंहण) वस्ति नहीं देना चाहिये ॥ ९ ॥

बृंहणीयोंमें शोधनका निषेध।

नक्षीणक्षतदुर्वलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहानाम् ।
युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिवद्धायुषोयेच ॥ १० ॥

क्षत, क्षीण, दुर्बल, मूर्च्छित, कृश और सूखी हुई देहवाले मनुष्योंको संशोधन वस्ति नहीं देना चाहिये। और जो मनुष्य जन्मसे ही रोगग्रस्त रहतेहैं अथवा जिनकी आयुसे दोष बंधेहुए हैं उनको भी संशोधन वस्ति नहीं देना चाहिये ॥ १० ॥

रोगविशेषसे वस्तिविशेष।

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयुताःसर्वे।
शस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणाश्चकफवाते ॥ ११ ॥

क्षय आदि वाजीकरण योग्य रोगोंमें और रक्तपित्तमें शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्तिप्रयोग करना चाहिये। और कफवातमें तेल, गोमूत्र, कांजी और नमक मिलाकर वस्ति प्रयोग करना चाहिये ॥ ११ ॥

वस्तिमें प्रयोगकियेजानेके द्रव्य।

युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्तिष्वम्लंमूत्रंपयःसुराक्वाथान्।
अविरोधाद्धातूनांरसयोनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥ १२ ॥

कांजी, गोमूत्र, दूध, सुरा और क्वाथ आदि जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करें उनमें जो रोगीकी धातुका विरोधी हो वह नहीं मिलाना चाहिये। जल सब धातुओंका अविरोधी है और रसोंका योनि है इसलिये किंचित् उष्ण जल वस्तिमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठंमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः। ऊर्द्ध्वानुलोमभागाः ससर्षपाःशर्करालवणम् ॥ १३ ॥ आवापोवस्तीनामतःप्रयोज्यानि येषुयानिस्युः। युक्तानिसहकषायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यामि ॥ १४ ॥

देवदारु, सौंफ, इलायची, कूठ, मुलैठी, पीपल, शहद, स्नेह, और मैनफल आदि वमन-कारक द्रव्य, निशोथ आदि विरेचनकारक द्रव्य और सरसों, खांड, सेंधानमक, यह सब कल्क बनाकर वस्तिमें मिलाने योग्य हैं। इनमेंसे जिस समय जो द्रव्य वस्तिमें प्रयोग करना उचित हो उसका प्रयोग करे। अब वस्तिमें प्रयोग करनेके क्वाथ द्रव्योंको कथन करतेहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

चिरजातकठिनबलिषुव्याधिषुतीक्ष्णाविपर्ययेमृदवः।
सप्रतिवापकषायैर्योज्यास्त्वनुवासननिरूहाः ॥ १५ ॥

बहुत पुराने, कठिन और बलवान् रोगोंमें तीक्ष्ण द्रव्योंके कल्क, क्वाथोंसे सिद्ध कीहुई निरूहण और अनुवासन वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। जो रोग थोडे

दिनसे उत्पन्न हुए हों और जो व्याधि दुर्बल हैं उनमें मृदुवीर्य द्रव्योंके कल्क, कार्योंसे निरूहण और अनुवासन करना चाहिये ॥ १९ ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानाव्याधिषुवर्गशः ।
वस्तीन्वीर्य्यसमैर्भागैर्यथार्हानिहताञ्शृणु ॥ १६ ॥

अब अनेक रोगोंकी शांतिके लिये आधे २ श्लोकमें यथावीर्य और भागानुसार जिन रोगनाशक योगोंका वर्णन करतेहैं उन हितयोगोंको सुनो ॥ १६ ॥

वातनाशक योग ।

विल्वाग्निमन्थश्योणाकाःकाश्मर्य्यःपाटलिस्तथा । शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहत्यौवर्द्धमानकः ॥ १७ ॥ यवाःकुलत्थाःकोलास्थिस्थिराचेतित्रयोऽनिले । शस्यन्तेसचतुःस्नेहापिशितस्यरसान्विताः॥१८॥

१ वेलकी गिरी, अरणी, सोनापाठा, कुंभेर और पाढ । २ शालपर्णी, पृश्निपर्णी और कटेली दोनों एरण्डकी जड । ३ कुल्थी, यव, वेरकी गुठली और शालपर्णी । यह तीन योग वातनाशक हैं । इनके पृथक् २ क्वाथोंमें चतुःस्नेह और मांसरस मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे वातरोग शान्त होजातेहैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

पित्तनाशक योग ।

नलवञ्जलवानीरशतपत्राणिशैवलम् । मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका ॥ १९ ॥ चन्दनंपद्मकोशीरंतुङ्गश्चपैत्तिकेत्रयः । सशर्करावृतक्षौद्राःसक्षीरावस्तयोहिताः ॥ २० ॥

१ नरसलकी जड, वंजुल (पानीमें होनेवाली लताविशेष), बेत, कमल और पानीकी काई । २ मंजीठ, शारिवा, कृष्णशारिवा, क्षीरकाकोली और मुलैठी । ३ लालचंदन, पद्मकाष्ठ, खस और तुंगकी छाल । इन तीन योगोंमेंसे किसी एकके क्वाथमें खांड, शहद, घृत और दूध मिलाकर वस्ति करनेसे पित्तरोग शान्त होतेहैं ॥ १९ ॥ २० ॥

कफनाशक वस्तियोग ।

अर्कस्तथैवचालर्कएकाष्ठीलापुनर्नवा । हरिद्रात्रिफलामुस्तंपीतदारुकुटन्नटम् ॥ २१ ॥ पिप्पल्यश्चित्रकश्चेतित्रयस्तेश्लेष्मरोगिणाम् । सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहान्विताहिताः ॥ २२ ॥

१ सफेद आक और लाल आककी जडकी छाल, अगस्तिया वृक्षकी छाल और पुनर्नवा । २ हल्दी, त्रिफला, नागरमोथा, दारुहल्दी और केवटी मोथा । ३ पीपल

-और चित्रककी जडकी छाल। इन तीनों योगोंमेंसे किसी एक योगके क्वाथमें जवाखार, शहद गोमूत्र और किंचित् कडुवा तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे कफके रोग दूर होते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

पक्वाशयशोधक योग।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकवत्सकाः । श्यामाचत्रिफलाचैव स्थिरादन्तीद्रवन्त्यपि ॥ २३ ॥ प्रकीर्य्याचोदकीर्य्याचनीलिनी क्षीरिणीतथा । सप्तलाशंखिनीलोध्रंफलंकाम्पिल्लकस्यच ॥ २४ ॥ चत्वारोमूत्रसिद्धास्तेपक्वाशयविशोधनाः । व्यस्तैरपिसमस्तैश्चचतुर्योगाउदाहृताः ॥ २५ ॥

१ मैनफल, जीमूतक, इक्ष्वाकु, धामार्ग व और कुडा। २ श्यामा, निशोथ, त्रिफला, शालपर्णी, दंती और द्रवंती। ३ करंज, लताकरंज, नीलिनी और क्षीरणी। ४ सातला, शंखिनी, लोध, मैनफल और कमीला इन ४ योगोंमेंसे किसी एक योगका कल्क और क्वाथ गोमूत्रमें मिलाकर वस्ति करनेसे पक्वाशयकी शुद्धि होती है। यह पक्वाशयशोधक चार योग कहे हैं। इनका पृथक् २ अथवा मिलाकर प्रयोग करनेसे पक्वाशय शुद्ध होजाता है ॥ २३-२५ ॥

वीर्यवर्द्धक योग।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशतावरी। विदारीमधुयष्ट्याह्वाशृङ्गाटककशेरुके ॥२६॥ आत्मगुप्ताफलंमाषाःसगोधूमायवास्तथा। जाङ्गलानूपजंमांसमित्येतेशुक्रवर्द्धनाः ॥ २७ ॥

१ काकोली, क्षीरकाकोली,मुद्गपर्णी और शतावर। २ विदारीकंद, मुलैठी, सिंघाडे और कसेरू। ३ कौंचके बीज, उडद, गेंहू और यव। ४ जंगली और अनूप संचारी जीवोंके मांस। यह चार योग वीर्यवर्द्धक हैं । इनमेंसे किसी एकका क्वाथ अथवा सबका क्वाथ,कल्क मिलाकर वस्ति करनेसे वीर्यकी वृद्धि होतीहै२६-२७

संग्राहि योग।

जीवन्तीचाग्निमन्थश्चधातकीपुष्पवत्सकौ । प्रग्रहःखदिरःकुष्टंशमीपिण्डीतकोयवाः ॥ २८ ॥ प्रियङ्गूरक्तमूलीचतरुणीस्वर्णयूथिका। वटाद्याःकिंशुकंलोध्रमितिसांग्राहिकामताः ॥ २९ ॥

१ जीवन्ती, अरणी, धायके फूल और कुडा। २ प्रग्रह (कर्णिकार), खैर, कूठ,

शमीवृक्ष, पिण्डीतक और यव । ३ पुष्प प्रियंगु, रक्त मूली (लाजवंती) घीकुंवार-और स्वर्णयूथिका । ४ वड आदि क्षीरी वृक्ष, ढाक और लोध । यह चार योग संग्राही हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

परिस्रावनाशक योग ।

परिस्रवेश्शृतंक्षीरंसवृश्चीरपुनर्नवम् ।
आखुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥ ३० ॥

सफेद पुनर्नवा और लालपुनर्नवासे सिद्ध किया दूध । अथवा आखुपर्णी और चवलाईकी जडसे सिद्ध किया दूध वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे परिस्रावको दूर करता है ॥ ३० ॥

दाहनाशक योग ।

कोलकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः ।
दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः ॥ ३१ ॥

बेरके पत्र, वा बेरकी मींगी, निर्मलीफल, कांडेक्षु, कुशाकी जड, ईखकी जड और शालीधान्यकी जडके कल्कसे सिद्ध किये दूध और घृत द्वारा वस्ति करनेसे दाह-की शान्ति होती है । तथा उत्पलादि गणके साथ सिद्ध कियाहुआ दूध, घृत भी दाहको दूर करताहै ॥ ३१ ॥

कर्बुदाराढकीनीपविदुलैःक्षीरसाधितैः ।
वस्तिःप्रदेयोभिषजाशीतःसमधुशर्करः ॥ ३२ ॥

सफेद कचनार, अरहरकी जड, कदम्बकी छाल और वेतसकी छालसे किया दूध ठंढा होनेपर उसमें शहद और मिसरी मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे भी दाह शान्त होताहै ॥ ३२ ॥

परिकर्तिका व प्रवाहिका नाशक योग ।

परिकर्त्तैस्तथावृन्तैःश्रीपर्णीकोविदारजैः । देयोवस्तिःसुवैद्यैस्तुयथावद्विदितक्रियैः ॥ ३३ ॥ मुष्टिःशाल्मलिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृतान्वितः । हितःप्रवाहणेतद्वद्वृन्तैःशाल्मलिकस्यच ॥ ३४ ॥

कुंभेर और लाल कचनारके फूलोंकी डण्डियोंके कल्कसे सिद्ध किया दूध घृत मिलाकर वस्ति करनेसे परिकर्त्तिका दूर होती है । अथवा सेंमलके फूलोंके ऊपरकी टोपीयुक्त डण्डीका एक पल कल्क लेकर उससे सिद्ध किया दूध घृत युक्तकर वस्ति करनेसे परिकर्त्तिका दूर होतीहै । और इसीप्रकार सेंमलके फूलोंकी डण्डियोंसे सिद्ध किये दूधसे वस्ति कीजानेपर प्रवाहिका होतीहै ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अतियोग नाशक योग।

अश्वावरोहिकाःकाकनासाराजकशेरुकैः। सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युः क्षौद्राञ्जनघृतैर्युताः॥ ३५॥ न्यग्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधिनापरः। वस्तिःप्रवाहणेदेयोभिषजाकल्पितोधिया॥ ३६॥

असगंध, काकनासा और भद्रमोथेके कल्कसे सिद्ध किया दूध ठंढा करके उसमें शहद, अंजन (काला सुरमा या रसौत) और घृत मिलाकर वस्तिकर्म करनेसे विरेचनका अतियोग दूर होताहै। इसीप्रकार वड, गूलर, पीपल, पिलखन और वेतसके छिलकोंसे सिद्ध कियाहुआ दूध पूर्वोक्त विधिसे शीतलकर शहद आदि मिलाकर विधिवत् वस्ति प्रयोग करे तो विरेचनका अतियोग दूर होता है॥ ३५॥ ३६॥

बृहतीक्षीरकाकोलीपृश्निपर्णीशतावरी। काश्मरीबदरीदूर्वातथोशीरप्रियङ्गवः॥ ३७॥ जीवनीयैःशृतौक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ। वस्तीप्रदेयौभिषजाशीतौसमधुशर्करौ॥ ३८॥

१ बडी, कटेली, क्षीरकाकोली, पृश्निपर्णी और शतावर। कुंभेरके फल, बेरके पत्ते, दूब, खस और प्रियंगु इन दोनोंमेंसे किसी एकके क्वाथ वा कल्कसे सिद्ध किये दूधमें जीवनीयगणका कल्क, घृत, अंजन, शहद और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे विरेचन आदिका अतियोग दूर होताहै॥ ३७॥ ३८॥

गोऽव्यजामहिषीक्षीरैर्जीवनीययुतैस्तथा।
तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशार्करः॥ ३९॥

इसीप्रकार गौ, भैंस, भेड, बकरी इन सबके दूध और जीवनीयगणके कल्क, घृत, शहद, और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अतियोगका विकार शान्त होताहै॥ ३९॥

अतियोगमें रक्तक्षय होनेपर योग।

शशैणदक्षमार्जारमहिषाव्यजशोणितैः।
सद्यस्कैर्मृदुभिर्वस्तिर्जीवादानेप्रशस्यते॥ ४०॥

अतियोगमें शुद्ध रक्तके निकलजानेपर शशा, काला हिरण, मुर्गा, बिल्ला, भैंसा, मेंढा और बकरी इनमेंसे किसी एकका तत्कालमें निकालाहुआ रक्त वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये॥ ४०॥

मधूकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्य्यचन्दनैः ।
शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ॥ ४१ ॥

अथवा महुएके फूल, मुलैठी, दाख, दूर्वा, कुंभेरके फल और लालचंदन । वा खांड, लालचंदन, दाख, मुलैठी, आमले और नीलकमल इनके कल्क और दूध, घृत, मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अतियोग द्वारा रक्त निकलजानेमें हितकारक है ॥ ४१ ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकषायःसोमवल्कजः ।
वस्तिर्देयोविधिज्ञेनभिषजायुक्तिकल्पितः ॥ ४२ ॥

रक्तपित्त और प्रमेहमें सफेद खैरके कषायकी वस्तिविधिको जाननेवाला वैद्य युक्तिपूर्वक प्रयोग करे ॥ ४२ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्काश्चापरेत्रयः । पक्वाशयविशुद्धयर्थं वृष्याःसांग्राहिकास्तथा ॥ ४३ ॥ परिस्रावेतथादाहेपरिकर्त्तेप्रवाहणे । अतियोगेमताःपंचजीवादानेतथात्रयः ॥ ४४ ॥ रक्तपित्तेद्वयं मेहएकस्त्रिंशच्चपञ्च च । सुलभाश्चौषधक्लेशावस्तयोगुणवत्तमाः ॥ ४५ ॥ गुल्मातिसारोदावर्त्तस्तम्भसंकुचितादिषु । सर्वाङ्गैकाङ्गरोगेषुरोगेष्वेवंविधेषु च ॥ ४६ ॥ यथास्वमौषधैःसिद्धान्वस्तीन्दद्याद्विचक्षणः । पूर्वोक्तेनविधानेनकुर्य्याद्रोगान्पृथग्विधान् ॥ ४७ ॥

इतिश्रीच० सिद्धिस्थाने वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अब अध्यायके उपसंहारमें कहतेहैं कि, इस वस्तिसिद्धिनामक अध्यायमें वातनाशक तीन योग, पित्तनाशक तीन योग, कफनाशक तीन योग, पक्वाशयको शोधन करनेवाले चार योग, वीर्यवर्द्धक तीन योग संग्राही तीन योग, परिस्रावनाशक तीन योग, दाहनाशक दो योग, परिकर्तिकानाशक दो योग, प्रवाहिकानाशक एक योग, अतियोगमें पांच योग, रक्तक्षयमें तीन योग, रक्तपित्त और प्रमेहमें एक योग । इसप्रकार ३६ योग सुलभ और सिद्ध वस्तियोंके वर्णन कियेहैं । तथा गुल्म, अतिसार, उदावर्त्त, स्तम्भ, संकोच सर्वांगवात, एकांगवात तथा और इसीप्रकारके रोगोंमें उन रोगोंके नाश करनेवाली औषधियोंसे रोगानुसार पृथक् २ वस्तियोंका वर्णन कियाहै उनको बुद्धिमान् वैद्य रोगानुसार पूर्वोक्त विधिसे प्रयोग करे ॥४३-४७ ॥

श्री० च० प्र० आ०सं० सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी० वस्तिसिद्धिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःफलमात्रासिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अब हम फलमात्रासिद्धिकी व्याख्या करते हैं इस प्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे ।

भगवन्तमुदारसत्त्वधीश्रुतिविज्ञानसमृद्धमत्रिजम् । फलवस्तिवरत्वनिश्चयेसविवादासुनयोप्युपागमन् ॥ १ ॥ भृगुकौशिककाप्यशौनकाःसपुलस्त्यासितगौतमादयः । कतमत्प्रवरंफलादिपुस्मृतमास्थापनयोजनास्विति ॥ २ ॥

श्रुति, विज्ञान, समृद्धि संपन्न, उदारसत्त्व, उदारबुद्धि भगवान् आत्रेयजीके समीप पहुंचकर भृगु, कौशिक, काप्य, शौनक, पुलस्त्य, असित, गौतम तथा और ऋषि भी आपसमें विवाद करतेहुए इसप्रकार जाननेकी इच्छा करनेलगे कि, आस्थापनमें प्रयोग करनेके लिये फलोंमें सबसे उत्तम कौन फल है ॥ १ ॥ २ ॥

आस्थापनविषयकफलोंमें ऋषियोंका विवाद ।

कफपित्तहरंपरंफलेष्वथजीमूतकमाहशौनकः । मृदुवीर्य्यतयाऽभिनत्तितदितिचोवाचनृपोऽथवामकः ॥ ३ ॥ कटुतुम्बीफलमुत्तमंमतंवमनेदोपसमीरणश्चतत् । तदयोग्यमशैत्यतीक्ष्णताकटुरौक्ष्यादितिगौतमोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥ कफपित्तनिवर्हणंपरंसचधामार्गवमित्यमन्यत । तदमन्यतवातलंपुनर्वडिशोग्लानिकरंवलापहम् ॥५॥ कुटजंप्रशशंसचोत्तमंनवलघ्नंकफपित्तहारिच । अतिविज्जलमूर्द्धभागिकंपवनक्षोभिचकाप्यआहतत् ॥ ६ ॥ कृतवेधनमाहवातलंकफपित्तंप्रवलंहरेदिति । तदसाध्विति भद्रशौनकःकटकश्चापिवलघ्नमित्यपि ॥ ७ ॥

उनमें शौनक कहनेलगे कि, कफपित्तका नाशक होनेसे सब फलोंमें जीमूत (देवदालीका फल) श्रेष्ठ है । राजर्षि वामक कहनेलगे कि, जीमूतफल मृदुवीर्य होनेसे मलको यथोचित भेदन नहीं करताहै और कटवी तुंबीका फल वमन करानेमें श्रेष्ठ है यह शीघ्र दोषोंको उखाडकर निकालदेताहै । गौतम कहनेलगे कि, कडवी तुंबी गर्म, तीक्ष्ण, कटु और रूक्ष होनेसे अयोग है इसलिये धामार्गव कफपित्तको दूर

करनेमें परम श्रेष्ठ है। वाडिश ऋषि कहने लगे कि धामार्गव वातल, ग्लानिकारक और बलको हरनेवाला है इसलिये कुडाके बीज (इन्द्रयव) सब प्रकारके फलोंमें उत्तम हैं क्योंकि यह बलको भी नहीं हरते और कफपित्तको हरण करनेवालेहैं काप्यऋषि कहने कि, इन्द्रयव अत्यंत पिच्छिल, ऊर्द्धगामी और वायुको क्षोभ करनेवाले होतेहैं। परन्तु कृतवेधन वातकारक होनेपर भी प्रबल कफपित्तको नष्ट करताहै इसलिये श्रेष्ठ है। भद्रशौनक कहने लगे कि,कृतवेधन श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वह कटु और बलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३-७ ॥

आत्रेयजीका समाधान।

इतितद्वचनानिहेतुभिः सुविचित्राणिनिशम्यबुद्धिमान् । प्रशशंसफलेषुनिश्चयंपरमंचात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥ फलदोषगुणान्सरस्वतीप्रतिसर्वैरपिसम्यगीरिता । नतुकिञ्चिददोषनिर्गुणं गुणभूयस्त्वमतोविचिन्त्यते ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विचित्र वाक्य और हेतुवादको सुनकर बुद्धिमान् आत्रेयजी ऋषियोंकी प्रशंसाकर फलोंके विषयमें परम निश्चयात्मक वाक्यको इस प्रकार कहने लगे कि, आप सबने इन फलोंके गुण और दोषोंको बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है परन्तु कोई भी फल निर्दोष और निर्गुण नहीं होता इसलिये विशेषरूपसे उनके गुणोंकी अधिकताका विचार करना चाहिये कि, किस समय किस रोगके लिये किस द्रव्यका प्रयोग अधिक गुणकारक होसकताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

इहकुष्ठहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहिनेमतम् । कुटजस्यफलंहृदामयेप्रवरंकोठफलश्चपाण्डुषु ॥ १० ॥ उदरेकृतवेधनंहितंमदनंसर्वगदाविरोधितु । मधुकंसकषायतिक्तकंतदरूक्षंकटुकञ्चविज्जलम् ॥ ११ ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यनपायंपवनानुलोमिच । फलनामविशेषतस्त्वतोलभतेऽन्येषुफलेषुसत्स्वपि ॥ १२ ॥

जीमूतफल कुष्ठरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है। इक्ष्वाकुफल प्रमेहमें श्रेष्ठ है। कुटजफल हृद्रोगमें श्रेष्ठ है। कूठफल (कटुतुंबी) पाण्डुरोगमें श्रेष्ठ है। कृतवेधन उदररोगमें श्रेष्ठ है। और मैनफल सब रोगोंमें अविरोधी होनेसे सर्वश्रेष्ठ है। मैनफल-मधुर किंचित् कसैला, तिक्त, अरूक्ष, कटु, पिच्छिल, कफपित्तको हरनेवाला, शीघ्र कार्यकर्ता, अनपायी और वायुको अनुलोमन करनेवाला है इसलिये सब फलोंमें मैनफलही उत्तम है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

शिष्योंका प्रश्न।

गुरुणाचवचस्युदाहृतेमुनिसङ्घैरितिपूजितेततः । प्रणिपत्यमुदा-समन्वितःसहितःशिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥ १३ ॥ सर्वकर्म्मगुणकृ-द्गुरुणोक्तोवस्तिरूर्द्धमतमर्थवेदिना । नाभ्यधोगुदगतश्चशरीरात्स-र्वतःकथमपोहतिदोषान् ॥ १४ ॥

इसप्रकार गुरु आत्रेयजीके वचनको सुनकर मुनियोका समूह प्रसन्न हुआ और आत्रेयजीकी प्रशंसा करने लगा ऐसी अवस्था देखकर अग्निवेश आदि शिष्य प्रसन्न हो प्रणामपूर्वक पूछने लगे कि, हे गुरो! आपने प्रथम कथन किया है कि, वस्ति सब कामोंकी करनेवाली और सर्वगुणकर्ता है वह वस्ति गुदाद्वारा नाभिसे नीचे शरीरके अधोभागमें पहुंचकर संपूर्ण शरीरमेंसे दोषोंको किसप्रकार आकर्षण करलेती है अर्थात् निकाल देतीहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

आत्रेयजीका उत्तर।

तद्गुरुरब्रवीदिदंशरीरंतन्त्रयतेऽनिलःसङ्गविघातात् । केवलएवदो-पसहितःसहिवायुःप्रकोपमुपयाति ॥ १५ ॥ तंपवनंसपित्तकफवि-ट्कंशुद्धिकरोनुलोमयतिवस्तिः । सर्वशरीरगश्चगदसङ्घातप्रकाश-नात्प्रशान्तिमुपयाति ॥ १६ ॥

यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, वायु शरीरके संपूर्ण द्रव्योंको एकत्र तंत्रित करनेवाला है और यही शरीरको धारण करता है । जब यह कुपित होताहै तो एकाएकी अन्य दोषो और मलोंको भी कुपित कर देताहै । और पक्काशयमें प्राप्त होकर वायुको पित्त कफ और मलके साथ अनुलोमन करके शुद्ध कर देता है वह विशुद्ध हुआ वायु संपूर्ण शरीरमें गमन करताहुआ रोगोसहित शान्तताको प्राप्त होजाता है । क्योंकि वायु शरीरके संपूर्ण धातुओं और मलोंसे संबंध रखताहै । मलाशय वायुका प्रधान स्थान है । वस्तिद्रव्य मलाशयमें प्राप्त होकर वायुको संपूर्णरूपसे शुद्ध बना देताहै । पक्काशय और वायुके शुद्ध होनेसे संपूर्ण दोषादि शुद्ध होकर रोग भी स्वयं शान्त होजाते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

हस्तिआदिके विषयमें प्रश्नोत्तर।

अथाभिगम्यार्थमखण्डितंधियागजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिकर्म्म । अपृच्छदेनंसचवस्तिमब्रवीद्विधिश्चतस्याहपुनःप्रचोदितः ॥ १७ ॥

इसके अनन्तर अखण्डित बुद्धिसे शिष्यगण पूछनेलगे कि, हाथी, ऊंट, गौ, घोडा,

करनेमें परम श्रेष्ठ है। वाडिश ऋषि कहने लगे कि धामार्गव वातल, ग्लानिकारक और बलको हरनेवाला है इसलिये कुडाके बीज (इन्द्रयव) सब प्रकारके फलोंमें उत्तम हैं क्योंकि यह बलको भी नहीं हरते और कफपित्तको हरण करनेवालेहैं काप्यऋषि कहने कि, इन्द्रयव अत्यंत पिच्छिल, ऊर्द्धगामी और वायुको क्षोभ करनेवाले होतेहैं। परन्तु कृतवेधन वातकारक होनेपर भी प्रबल कफपित्तको नष्ट करताहै इसलिये श्रेष्ठ है। भद्रशौनक कहने लगे कि,कृतवेधन श्रेष्ठ नहीं है क्योंकि वह कटु और बलको नष्ट करनेवाला है ॥ ३–७ ॥

आत्रेयजीका समाधान।

इतितद्वचनानिहेतुभिः सुविचित्राणिनिशम्यबुद्धिमान् । प्रशशंसफलेपुनिश्चयंपरमंचात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥ ८ ॥ फलदोपगुणान्सरस्वतीप्रतिसर्वैरपिसम्यगीरिता । नतुकिञ्चिददोपनिर्गुणं गुणभूयस्त्वमतोविचिन्त्यते ॥ ९ ॥

इस प्रकार ऋषियोंके विचित्र वाक्य और हेतुवादको सुनकर बुद्धिमान् आत्रेयजी ऋषियोंकी प्रशंसाकर फलोंके विपयमें परम निश्चयात्मक वाक्यको इस प्रकार कहने लगे कि, आप सबने इन फलोंके गुण और दोषोंको बहुत उत्तम रीतिसे वर्णन किया है परन्तु कोई भी फल निर्दोष और निर्गुण नहीं होता इसलिये विशेषरूपसे उनके गुणोंकी अधिकताका विचार करना चाहिये कि, किस समय किस रोगके लिये किस द्रव्यका प्रयोग अधिक गुणकारक होसकताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

इहकुष्ठहितागराग‍रीहितमिक्ष्वाकुतमेहिनेमतम् । कुटजस्यफलंहृदामयेप्रवरंकोठफलञ्चपाण्डुपु ॥ १० ॥ उदरेकृतवेधनंहितंमदनंसर्वगदाविरोधितु । मधुकंसकपायतिक्तकंतदरूक्षंकटुकञ्चविज्जलम् ॥ ११ ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यनपायपवनानुलोमिच । फलनामविशेपतस्त्वतोलभतेऽन्येपुफलेपुसत्स्वपि ॥ १२ ॥

जीमूतफल कुष्ठरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ है। इक्ष्वाकुफल प्रमेहमें श्रेष्ठ है । कुटज फल हृद्रोगमें श्रेष्ठ है। कूठफल (कडुतुंबी) पाण्डुरोगमें श्रेष्ठ है। कृतवेधन उदररोगमें श्रेष्ठ है। और मैनफल सब रोगोंमें अविरोधी होनेसे सर्वश्रेष्ठ है। मैनफल–मधुर किंचित् कसैला, तिक्त, अरूक्ष, कटु, पिच्छिल, कफपित्तको हरनेवाला, शीघ्र कार्यकर्ता, अनपायी और वायुको अनुलोमन करनेवाला है इसलिये सब फलोंमें मैनफलही उत्तम है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

गजेऽधिकोऽश्वत्थवटाश्वकर्णजाःसखादिराःप्रग्रहशालतालजाः।
तथाचउष्ट्रेधवशिग्रुपाटलीमधूकसाराःसनिकम्भचित्रकाः॥ २२ ॥

हाथीको विशेषकर पीपल, वड और अश्वकर्णनामक शाल तथा खैर, अमलतास, शाल और ताडके काथ कल्कसे निरूहण करना चाहिये। और ऊंटको धव, सुहांजना, पाढ, महुएका गोंद, दंती और चित्रकका निरूहण करना चाहिये ॥ २२ ॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणीकषायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः।
पलाशदन्तीसुरदारुकत्तृणद्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥ २३ ॥

गौके लिये पलाश, अजवायन, देवदारु और कुटकीके काथका अधिक भाग मिलाकर निरुहण करना चाहिये। घोडेके लिये पलाश, देवदारु, दंती, रोहिष तृण और द्रवंतीका निरूहण हितकारी है ॥ २३ ॥

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराःशम्पाकविल्वादिगणस्यचच्छदाः।
अजाविकानांत्रिफलापरूषकंकपित्थकर्कन्धुसविल्वकोलजम् ॥२४॥

गधे और ऊंटके लिये पीलू, करील और खैर वा अमलतास और बिल्वादि गणके पत्रोंका निरूहण करना चाहिये। भेड, बकरीके लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैंथ, झाडीबेर, बिल्वफल और बेरके क्वाथसे निरूहण करना चाहिये ॥२४॥

अग्निवेशका प्रश्न।

अथाग्निवेशःसततोऽन्तरान्तराहितश्वपप्रच्छगुरुस्तदाहच।
सदातुराःश्रोत्रियराजसेवकास्तथैववेश्याःसहपण्यजीविभिः ॥२५॥

राजसेवकआदिकोंके रोगग्रस्तरहनेका कारण।

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रताह्निकक्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टते।
नृपोपसेवीनृपचित्तरक्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात्॥ २६ ॥
नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परामृजाभिभूषानिरतापराङ्गना।
सदासनादत्यनुबद्धविक्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः ॥ २७ ॥

फिर अग्निवेश पूछने लगे कि, श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्यायें और दुकानदार प्रायः क्यों सदैव रोगग्रस्त रहा करतेहैं। यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, श्रोत्रिय ब्राह्मण सदैव शिष्योंको पढानेमें, चातुर्मासादि व्रत पालन करनेमें और आह्निककृत्यमें फंसे रहनेके कारण शरीरकी हितचेष्टामें ध्यान नहीं देसकते। और राजाके

मेंढा और बकरी आदिको किसप्रकार वस्तिका प्रयोग किया जाताहै । इसप्रकार पूछनेपर वस्तिके विषयमें आत्रेयजी कहनेलगे ॥ १७ ॥

अजाविकेसौम्यगजोष्ट्रयोर्वागवाश्वयोर्वस्तिमुशन्तिमाहिषम् । अजाविकादन्तसुवस्तिमुत्तरंवदन्तिवस्तिविपरीतरूपम् ॥ १८ ॥

बकरी, मेंढा, हाथी, ऊंट, गौ और घोडोंको यदि वस्तिप्रयोग करना हो तो हे सौम्य ! भैंसके मूत्राशयका वस्तिपुट बनाना चाहिये । बकरी, मेंढा आदि जानवरोंकी वस्तिको सुवस्ति और उत्तरवस्तिको उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥ १८ ॥

हाथीआदिकोंकी वस्तिका प्रमाण ।

सुवस्तिमष्टादशषोडशाङ्गुलंतथैवनेत्रंचदशांगुलंक्रमात् । गजोष्ट्रगोऽश्वाऽव्यजवस्तिसन्धौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत् ॥ १९ ॥

सुवस्तिकी मुखनाल अर्थात् नेत्रनली हाथी और ऊंटके लिये १८ अंगुल और गौ घोडेके लिये १६ अंगुल, भेड, बकरीके लिये १० अंगुल होनी चाहिये । जिसप्रकार मनुष्योंको प्रयोग करनेकी वस्तिमें जोड और चौथे भागमें कर्णिका होती है उसीप्रकार सुवस्तिकी कल्पना भी करना चाहिये ॥ १९ ॥

गौ, घोडा, हाथी, बकरी, आदिको निरूह और अनुवासनकी मात्रा ।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हिनिरूहमात्रागवादिषुद्वित्रिगुणोयथाबलम् । निरूहउष्ट्रस्यतथाढकद्वयंगजस्यवृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥ २० ॥

बकरी और भेडको निरूहणकी मात्रा १ प्रस्थ, गौ और घोडेके लिये बल और अवस्थानुसार निरूहकी मात्रा २ या ३ प्रस्थ ऊंटके लिये निरूहकी मात्रा २ आढक तक होसकतीहै । हाथीके लिये अवस्था और बलके अनुसार ऊंटकी अपेक्षा दुगनी या जितनी उचित हो उतनी मात्रा कल्पना करना चाहिये । इसीप्रकार अनुवासनके लिये निरूहस आठवां भाग मात्राकी कल्पना करना चाहिये ॥ २० ॥

हस्तिआदिको निरूहण योग ।

कलिङ्गकुष्ठेमधुकंसपिप्पलीवचाशताह्वामदनंरसाञ्जनम् । हितानिसर्वेषुगुडःससैन्धवोद्विपञ्चमूलंसविकल्पनात्त्वियम् ॥ २१ ॥

इन्द्रयव, कूठ, मुलैठी, पीपल, वच, सौंफ और मैनफल इन सबके काथमें रसौत, गुड और सेंधानमक मिलाकर हाथी, घोडा, गौ, भैंस आदिको मात्रानुसार निरूहण वस्तिका प्रयोग करना चाहिये । इन्द्रयवादि काथके बदले दशमूलका काथ भी निरूहणमें प्रयोग कियाजाताहै ॥ २१ ॥

गजेऽधिकोऽश्वत्थवटाश्वकर्णजाःसखादिराःप्रग्रहशालतालजाः ।
तथाचउष्ट्रेधवशिग्रुपाटलीमधूकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः ॥ २२ ॥

हाथीको विशेषकर पीपल, वड और अश्वकर्णनामक शाल तथा खैर, अमलतास, शाल और ताडके क्वाथ कल्कसे निरूहण करना चाहिये । और ऊंटको धव, सुहांजना, पाढ, महुएका गोंद, दंती और चित्रकका निरूहण करना चाहिये ॥ २२ ॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणीकषायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः ।
पलाशदन्तीसुरदारुकत्तृणद्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः ॥ २३ ॥

गौके लिये पलाश, अजवायन, देवदारु और कुटकीके क्वाथका अधिक भाग मिलाकर निरुहण करना चाहिये । घोडेके लिये पलाश, देवदारु, दंती, रोहिष तृण और द्रवंतीका निरूहण हितकारी है ॥ २३ ॥

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराःशम्पाकविल्वादिगणस्यचच्छदाः ।
अजाविकानांत्रिफलापरूपकंकपित्थकर्कन्धुसबिल्वकोलजम् ॥२४॥

गधे और ऊंटके लिये पीलू, करीरु और खैर वा अमलतास और बिल्वादि गणके पत्रोंका निरूहण करना चाहिये । भेड, बकरीके लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैंथ, झाडीबेर, बिल्वफल और बेरके क्वाथसे निरूहण करना चाहिये ॥२४॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

अथाग्निवेशःसततोऽन्तरान्तराहितश्वपप्रच्छगुरुस्तदाहच ।
सदातुराःश्रोत्रियराजसेवकास्तथैववेश्याःसहपण्यजीविभिः ॥२५॥

राजसेवकआदिकोंके रोगग्रस्तरहनेका कारण ।

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रताह्निकक्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टते ।
नृपोपसेवीनृपचित्तरक्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात् ॥ २६ ॥
नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परामृजाभिभूषानिरतापराङ्गना ।
सदासनादत्यनुबद्धविक्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः ॥ २७ ॥

फिर अग्निवेश पूछने लगे कि, श्रोत्रिय, राजसेवक, वेश्यायें और दुकानदार प्रायः क्यों सदैव रोगग्रस्त रहा करतेहैं । यह सुनकर आत्रेयजी कहने लगे कि, श्रोत्रिय ब्राह्मण सदैव शिष्योंको पढानेमें, चातुर्मासादि व्रत पालन करनेमें और आह्निककृत्यमें फंसे रहनेके कारण शरीरकी हितचेष्टामें ध्यान नहीं देसकते । और राजाके

सेवक राजाकी सेवामें राजाकी इच्छानुसार उसके मनकी रक्षामें दूसरेके वशमें रहनेसे अत्यन्त चिन्तायुक्त और भयभीत रहतेहैं इसलिये शरीरकी रक्षा नहीं कर-सकते । वेश्या परचित्तकी अनुवर्त्तिनी, परसेवामें तत्पर, पराये मनको हरना और अंगशोभासे विभूषित आदिमें लगीरहतीहै इसलिये अपने शरीरकी यथोचित रक्षा नहीं करसकती । दुकानदारको सदा बैठेही रहना पडताहै, अपने लेनदेनके कार्यमें लगारहताहै और लोभके कारण अपने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेका अवकाश नहीं पासकता ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

सदैवतेह्यागतवेगनिग्रहंसमाचरन्तेनचकालभोजनम् ।
अकालनिर्हारविहारसेविनोभवन्तियेऽन्येपिसदातुराश्चते ॥ २८ ॥

यह पूर्वोक्त मनुष्य आयेहुए मलमूत्रादिके वेगोंको रोकलेतेहैं । यथासमय भोजन नहीं करते । वेसमय मलमूत्रादिका त्याग और भ्रमण आदि कर्मोंको करतेहैं । इसलिये यह सदैव रोगग्रस्त रहाकरतेहैं । इनके सिवाय और जो मनुष्य भी इस-प्रकारका आचरण रखतेहैं वह भी सदैव प्रायः रोगग्रस्त रहतेहैं ॥ २८ ॥

इनकी चिकित्सा ।

समीरणंवेगविधारणोद्धतंविबद्धसर्वाङ्गरुजाकरंभिषक् । समीक्ष्य तेषांफलवर्त्तिमादितःसुकल्पितांस्नेहवर्तींप्रयोजयेत् ॥ २९ ॥
निरूहितंधन्वरसेनभोजितंनिकुम्भतैलेनततोऽनुवासयेत् ॥ ३० ॥

इसप्रकार वेगविधारणसे वायुका कोप होताहै । वायुके कोपसे विबंध और सर्वा-गपीडा आदि व्याधियें उत्पन्न होतीहैं । ऐसे मनुष्योंको प्रथम उत्तम कल्पना कीहुई फलवर्त्तीको स्नेहसे युक्तकर प्रयोग करना चाहिये । फिर निरूहणकरके जंगली जीवोंके मांसरससे भोजन करावे । तदनन्तर दंतीसे सिद्ध किये तैलके द्वारा अनुवासन प्रयोग करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

बलाश्वगन्धासहबिल्वचित्रकान्द्विपञ्चमूलेकृतमालकोत्पले ।
यवान्कुलत्थांश्चपचेज्जलाढकेरसःसपेष्यस्तुकलिङ्गकादिभिः ।
सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितः सदानराणांबलवर्द्धनःपरः ॥ ३१ ॥

बला, असगन्ध, बेलकी गिरी, चित्रककी छाल, दशमूल, अमलतास, नीलकमल, यव, कुलथी इन सबको दो दो तोला लेकर १ आढक जलमें पकावे । चौथा भाग शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस क्वाथमें कुटज आदि द्रव्योंका कल्क, तेल, घृत, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे श्रोणिग्रह आदि पूर्वोक्त

मनुष्योंके रोग दूर होकर बलकी वृद्धि होतीहै इन्हीं पूर्वोक्त संपूर्ण द्रव्योंसे सिद्ध किया स्नेह अनुवासन वस्तिमें प्रयोग करनेसे बलकी वृद्धि होती है ॥ ३१ ॥

पुनर्नवैरण्डनिकुम्भचित्रकान्सदेवदारुत्रिवृतानिदिग्धिकाम् ।
महान्तिमूलानिचपश्चतद्भवान्विपाच्यमूत्रेदधिमस्तुसंयुते ॥ ३२ ॥
सतैलसर्पिर्लवणैश्चपञ्चभिर्विमूर्च्छितंवस्तिमथप्रयोजयेत् ।
तथैवशस्तंमधुकेनसाधितंफलेनविल्वेनशताह्वयाथवा ॥ ३३ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी जड, दंती, चित्रककी छाल, देवदारु, निशोथ, कटेली और बृहत्पंचमूलका कल्क और क्काथ, दही, मस्तु, तेल, घृत और पांचों नमक मिला सिद्धकर उचित प्रमाणसे वस्तिप्रयोग करे। इसीप्रकार मुलैठी अथवा बिल्वफल वा सौंफके साथ घृत, तेल आदि मिलाकर वस्तिप्रयोग करै वा इन्ही द्रव्योंसे सिद्ध कियेहुए तेलसे अनुवासन करना भी हितकारक है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

बालकोंको अनुवासन निरूहण।

सजीवनीयस्तुरसेऽनुवासनेनिरूहणेबालवणेशिशोर्हितः ।
नचान्यदाश्वङ्गबलाभिवर्द्धनंनिरूहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥ ३४ ॥

जीवनीयगणके कल्क और मांसरससे सिद्ध कियेहुए तेलसे अनुवासन और इन्हीं द्रव्योंके कल्क, क्वाथसे निरूहण करना बालकोंके लिये हितकारी है बालक और वृद्धोंके लिये जीवनी आदि द्रव्योंसे सिद्ध कीहुई निरूहणवस्तिसे बढकर और कोई शीघ्र अंगबलवर्धक प्रयोग नहीं है ॥ ३४ ॥

उपसंहार।

तत्रश्लोकः।

फलकर्मवस्तिवरतत्त्वनिश्चयोवाज्यादीनाम् ।
सततातुराश्चदृष्टाःफलमात्रायांहितश्चैषाम् ॥ ३५ ॥

इतिश्रीचर०सिद्धिस्थानेफलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः॥११॥

यहां कहते हैं कि इस फलमात्रासिद्धि नामक आध्यायमें वमनकारक फलोंमें वा वस्ति कर्ममें मैनफलकी श्रेष्ठता घोडे आदिकोंके लिये वस्तिप्रमाण, राजसेवक आदि मनुष्योंके सदैव रोगग्रस्त रहनेका कारण और उनके लिये हितकारक योग यह सब वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

इति श्री०च०प्र०आ०सं० सिद्धिस्थाने प्र०भा०टी० फलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।

आथातउत्तरवस्तिसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अब हम उत्तरवस्ति सिद्धिनामक अध्यायकी व्याख्या करतेहैं इसप्रकार भगवान् आत्रेयजी कहने लगे।

शोधनोत्तर क्रिया।

अथखल्वातुरंवैद्यःसंशुद्धंवमनादिभिः। दुर्बलंकृशमल्पाग्निंमुक्तसन्धानबन्धनम्॥ १॥ निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तंकृशाशयम्। शून्यदेहंप्रतीकारासहिष्णुंपरिपालयेत्॥ २॥ यथैवतरुणंपूर्णंतैलपात्रंतथैवच। गोपालइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः॥ ३॥

वमन आदि संशोधनके अनन्तर अर्थात् वमनादिद्वारा रोगीके संपूर्ण दोष निकलकर जो रोगी शुद्धकाय होनेसे दुर्बल, कृश, अल्पाग्नि होगयाहो और संधियें शिथिल अर्थात् दुर्बलसी होगई हों। वमन और विरेचनके द्वारा वायु, विष्ठा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलजानेसे आशय कृश होगया हो, मलादिकोंसे देह शून्य होकर वह रोगी औषधको सहन न करसकता हो तो ऐसे रोगीको औषधका प्रयोग न करके केवल सावधानीसे हित पेया, आहार, मांसरस आदिके द्वारा रोगीका सब प्रकार पालन करतारहे। जैसे तेलसे भरेहुए नये घडेकी यत्नपूर्वक रक्षा कीजातीहै और जैसे गोपाल गौओंके पीछे रहकर उनकी सब प्रकार रक्षा करताहै। उसीप्रकार ऐसे रोगीकी विधिवत् रक्षा करतेहुए पालना करते रहना चाहिये॥ १॥ २॥ ३॥

अग्निसन्दीपनादि क्रम।

अग्निसन्धुक्षणार्थन्तुपूर्वंपेयादिभिर्भिषक्। रसोत्तरेणैवचरेत्क्रमेणक्रमकोविदः॥ ४॥

इसप्रकार रोगीकी रक्षा रखतेहुए उसके जठराग्निकी वृद्धिके लिये वैद्य प्रथम पेयादिक्रम पालन कराकर फिर मांसरस आदि दीपन और बृंहण द्रव्योंका विधिवत् प्रयोग करे॥ ४॥

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणौरसौ।
स्वादुतिक्तौततोभूयःकषायकटुकौततः॥ ५॥

इसप्रकार रोगीको पहिले चिकने, अम्ल, मधुर और हृदयको प्रिय रस सेवन

करावे। फिर अम्ल और लवणरस सेवन करावे। फिर स्वादु और तिक्त, उसके अनन्तर कषाय और कटुरसका क्रमपूर्वक धीरे २ सेवन करावे ॥ ५ ॥

अन्योऽन्यप्रत्यनीकानांरसानांस्निग्धरूक्षयोः। व्यत्यासादुपयोगेनप्रकृतिंगमयेद्भिषक् ॥ ६ ॥ सर्वक्षमोनिरासङ्गोरतियुक्तःस्थिरेन्द्रियः। बलवान्सत्त्वसम्पन्नोविज्ञेयःप्रकृतिंगतः ॥ ७ ॥

इस विधिसे परस्पर विपरीत क्रमसे रोगीको रसोंका सेवन कराना चाहिये। किसी दिन स्निग्ध, किसी दिन रूक्ष, हल्के द्रव्यका सेवन करावे। ऐसे युक्तिपूर्वक धीरे धीरे सावधानीसे रोगीका पालन करते २ क्रमसे वैद्य रोगीको उसकी असली प्रकृतिपर पहुंचा दे जिससे वह सब प्रकारके आहार विहारको सहन करनेलगे और उसकी किसी प्रकारसे अस्थिरता न हो उसको रतियुक्त स्थिर इन्द्रिय बलवान् सत्त्व तथा प्रसन्न मनसे युक्त और शक्तिसंपन्न होनेसे प्रकृतिस्थ जानना चाहिये ॥ ६।७ ॥

एतांप्रकृतिमप्राप्तःसर्ववर्ज्यानिवर्जयेत्।
महादोषकराण्यष्टाविमानितुविशेषतः ॥ ८ ॥

जबतक वह शोधन किया मनुष्य इस विधिसे अपनी असली प्रकृतिपर न पहुंचे तबतक वर्जनीय संपूर्ण आहार विहारोंको त्याग देवे विशेषकर यह आगे कहेहुए आठ व्यापार महादोषको करनेवाले हैं इसलिये इनको अवश्य ही त्यागदेना चाहिये ॥ ८ ॥

वर्जनीय ८ व्यापार।

उच्चैर्भाष्यंरथक्षोभमतिचंक्रमणासने।
अजीर्णाहितभोज्येचदिवास्वप्नंसमैथुनम् ॥ ९ ॥

बहुत ऊंचा बोलना, रथ आदि हिलनेझुलने वाली सवारीपर चढना, अधिक भ्रमण करना, बहुत बैठाही रहना, अजीर्णमें भोजन, अहित भोजन, दिनमें सोन और मैथुन करना। यह आठ व्यापार निर्बल रोगीको अवश्य त्याग देन चाहिये ॥ ९ ॥

इनके दोष।

तज्जादेहोर्द्ध्वसर्वाधोमध्यपीडामदोषजाः।
श्लेष्मजाःक्षयजाश्चैवव्याधयःस्युर्यथाक्रमम् ॥ १० ॥

बहुत ऊंचा बोलनेसे देहके उपरके भागमें व्याधियें प्रगट होती हैं रथ आदि

सवारियोंकी हलचल लगनेसे संपूर्ण शरीरमें रोग उत्पन्न होते हैं बहुत भ्रमण करनेसे शरीरके अधोभागमें रोग उत्पन्न होतेहैं। अधिक बैठारहनेसे देहके मध्यभागमें रोग होतेहैं। अजीर्णमें भोजन करनेसे आंवसे पैदा होनेवाले रोग उत्पन्न होतेहैं। अहित भोजन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं। दिनमें सोनेसे कफजनित रोग होतेहैं। और मैथुन करनेसे ॥ १० ॥

तेषांविस्तरतोलिङ्गमेकैकस्यसभेषजम्।
यथावत्संप्रवक्ष्यामिसिद्धान्वस्तींश्चयापनान् ॥ ११ ॥

अब इन सब व्याधियोंके विस्तारपूर्वक पृथक् २ लक्षण और चिकित्सा तथा प्रसंगवश सिद्धफलदायक यापनवस्तियोंका वर्णन करतेहैं ॥ ११ ॥

उच्चभाषणजनित रोग।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाषाभ्यांशिरस्तापकर्णशंखनिस्तोदस्रोतोऽवरोध-मुखताल्वकण्ठशोषतैमिर्य्यपिपासाज्वरतमकहनुमन्याग्रहनिष्ठीव-नोरःपार्श्वशूलस्वरभेदहिक्काश्वासादयःस्युः ॥ १२ ॥

शुद्धकाय मनुष्यके उच्च भाषण और अतिभाषण करनेसे शिरमें संताप कान और कनपटीमें सूई चुभनेकीसी पीडा ऊर्द्ध्वस्रोतोंका रुकना मुख, तालु और कण्ठमें शोष होना, तिमिर, प्यास, ज्वर, तमकश्वास, हनुग्रह, मन्यास्तम्भ, बारंबार थूकका आना, छातीमें शूल, पार्श्वपीडा, स्वरभंग, हिचकी और श्वास आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १२ ॥

क्षोभजनित रोग।

रथक्षोभात्सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्णशिरःशूलतोदवह्निविक्षो-भाटोपान्त्रकूजनाध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषण-कटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवादौर्बल्याङ्गाभितापपादशोफप्रस्वा-पहर्षणादयः ॥ १३ ॥

रथ आदि सवारियोंकी हलचलसे संधि और पर्वोंमें शिथिलता, ठोडी, नासिका, कान, और शिरमें पीडा, और तोद, मंदाग्नि,आटोप, आंतोंका कूंजना, अफारा, हृदय और इन्द्रियोंका उपरोध, नितम्ब, पार्श्व, वंक्षण, वृषण, कमर और पीठमें पीडा, संधी, कंधे, गर्दन इनमें दुर्बलता, अंगोंका अभिताप, पावोंमें सूजन, अंगोंका सोना और प्रहर्षण आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १३ ॥

अतिभ्रमणजनित रोग।

अतिचंक्रमणात्पादजङ्घोरुजानुवंक्षणश्रोणीपृष्ठशूलसक्थिसादनिस्तोदपिण्डीकोद्वेष्टनाङ्गमर्दांसाभितापशिराधमनीहर्षश्वासकासादयःस्युः ॥ १४ ॥

अधिक भ्रमण करनेसे पांव, जंघा, ऊरु, जानु, वंक्षण, श्रोणी और पीठमें पीडा, नितम्बोंका सुन्नसा होजाना, सूई चुभनेकीसी पीडा, पिण्डलियोंका उद्वेष्टन, अंगोंका टूटना, दोनों अंसोंका तपना, शिरा और धमनियोंका हर्षित होना, श्वास और खांसी आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १४ ॥

अतिबैठनेसे रोग।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाःस्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः स्युः ॥ १५ ॥

जो रोग रथ आदिके हलचलसे उत्पन्न होतेहैं वही रोग अधिक बैठे रहनेसे होतेहैं तथा नितम्ब, पार्श्व, वंक्षण (पेड़), वृषण (फोते), कमर और पीठमें पीडा आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १५ ॥

अजीर्णमें भोजनसे रोग।

अजीर्णाध्यशनाभ्यान्तुमुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्रसादच्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविषादयःस्युः ॥ १६ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजनपर भोजन करनेसे मुखशोष, अफारा, शूल, सूई चुभनेकीसी पीडा, प्यास, अंगोंका सोना, छर्दि, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, प्रवाहिका और आमविष आदि दारुण रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १६ ॥

अहितभोजनके दोष।

विषमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलापदौर्बल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसादवातादिप्रकोपजाश्चग्रहण्यर्शोविकारादयः ॥ १७ ॥

विषम और अहित भोजनके करनेसे अन्नमें अरुचि, दुर्बलता, विवर्णता, खुजली पामा, देहका सोना, वातादि दोषोंके कोपसे उत्पन्न हुए रोग, ग्रहणीरोग और बवासीर आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १७ ॥

दिनमें सोनेके दोष।

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुकण्डूपामादाह-

च्छर्यङ्गमर्दहृत्स्तम्भजाड्यतन्द्रानिद्राप्रसङ्गग्रन्थिजन्मदौर्बल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपाःपिपासाच ॥ १८ ॥

दिनमें सोनेसे अरोचक, अन्नका परिपाक न होना, मंदाग्नि, शरीरका गिलगिलासा होना, पाण्डु, खुजली, पामा, दाह, छर्दि, अंगमर्द, हृदयका स्तंभ, जडता, तंद्रा, निद्रा, शरीरमें गांठोंका पैदा होना, दुर्बलता, पेशाबका लाल वर्ण होना, नेत्रोंका लालवर्ण होना, तालुमें कफका लेपसा होना और प्यास आदि रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ १८ ॥

मैथुनके दोष ।

व्यवायादाशुबलसादोरुसादवस्तिशिरोगुदमेढ्रवंक्षणोरुजानुजङ्घापादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाङ्गशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितागमनकासश्वासशोणितष्ठीवितस्वरावसादकटीदौर्बल्यैकाङ्गसर्वाङ्गरोगमुष्कश्वयथुवातवर्चोमूत्रसङ्गशुक्रविसर्गजाड्यवेपथुबाधिर्य्यविषादादयःस्युः उत्पाट्यतेइवगुदस्ताड्यतइवमेढ्रमवसीदतीवमनोवेपतेहृदयंपीडयन्तेसन्धयःतमःप्रविशतिइवच ॥ १९ ॥

शोधित शरीरवाले निर्बल मनुष्यके मैथुन करनेसे बलका क्षय, ऊरुओंका सुन्नसा होजाना, वस्ति (मूत्राशय), शिर, गुदा, लिंग, वंक्षण, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों पावोंमें पीडाका होना, हृदयका फडकना, नेत्रोंमें पीडा, अंगोंमें शिथिलता, वीर्यके मार्गसे रुधिरका निकलना, खांसी, श्वास, रुधिरका थूकना, स्वरका बैठजाना, कमरमें दुर्बलता, एकांग अथवा सर्वांगगत वातजनित रोगोंका होना, लिंग और फोतोंमें सूजन होना, अधोवात, विष्ठा और मूत्रका विबंध, वीर्यका हरसमय गिरना, जडता, कंप, बधिरता और विषाद (चित्तमें खेद होना) आदि रोग उत्पन्न होतेहैं । तथा गुदामें उत्पाटन कीसी पीडा लिंगमें चोट लगनेकीसी पीडा, मनकी अप्रसन्नता हृदयका कांपना, संधियोंमें पीडा, नेत्रोंके आगे अंधकारसा प्रतीत होना यह उपद्रव होतेहैं ॥ १९ ॥

इत्येवमेभीरभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्तिउपद्रवाः ॥ २० ॥

इसप्रकार इन आठ प्रकारके अभिचारोंसे शोधनसे दुर्बल हुए मनुष्यके शरीरमें यह प्रवोक्त उपद्रव उत्पन्न होतेहैं ॥ २० ॥

उनकी चिकित्सा ।

तेषांसिद्धिःउच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानामभ्यङ्गस्वेदोपनाहधूमनस्योपरिभक्तस्नेहपानरसक्षीरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मौनञ्च ॥ २१ ॥

ऊंचे बोलनेसे और अधिक बोलनेसे जो रोग उत्पन्न होतेहैं उनमें अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम, नस्य और भोजनके अनन्तर घृतादि स्नेहोंका पानका करना, वातनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये मांसरस और दूध पीना, संपूर्ण वातनाशक विधियोंका सेवन करना और मौन (चुप) रहना हितकारी है ॥ २१ ॥

रथक्षोभातिचंक्रमणात्यासनजानांस्नेहस्वेदादिवातहरंकर्मसर्वंनिदानवर्जम् ॥ २२ ॥

रथ आदि सवारियोंकी हलचलसे और अत्यंत भ्रमणसे वा अधिक बैठे रहनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें स्नेहन और स्वेदन आदि संपूर्ण वातनाशक कर्म करना और रोगोत्पादक हेतुओंको त्याग देना हितकारक है ॥ २२ ॥

अजीर्णाध्यशनजानांनिरवशेषतश्छर्दनंरूक्षस्वेदधूमपानलङ्घनीयपाचनीयदीपनीयौषधावचारणञ्च ॥ २३ ॥

अजीर्णमें भोजन करनेसे और भोजन कियेपर भोजन करनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें निःशेप वमन कराना, रूक्ष स्वेद, धूमपान लंघन, पाचन और दीपन औषधियोंका सेवन करना हितकारक है ॥ २३ ॥

विषमाहिताशनजानांयथास्वंदोपक्रियाः ॥ २४ ॥

विषम भोजन और अहित भोजनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें उन रोगोंको दूर करनेवाली दोपानुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥ २४ ॥

दिवास्वप्नजानांधूमपानलङ्घनवमनशिरोविरेचनव्यायामरूक्षाशनादिदीपनीयौषधोपयोगः । प्रकर्षणोन्मर्दनपरिषेचनादिश्चश्लेष्महरःसर्वोविधिः ॥ २५ ॥

दिनमें सोनेसे उत्पन्न हुए रोगोंमें धूमपान, लंघन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्ष भोजन आदि सेवन करना तथा दीपनीय औपधियोंका प्रयोग हितकारी है । और लंघन, उद्वर्त्तन, परिषेचन आदि कफनाशक संपूर्ण विधियोंका सेवन करना चाहिये ॥ २५ ॥

मैथुनजानांजीवनीयसिद्धयोःक्षीरसर्पिषोरुपयोगः । तथावातहराः

स्वेदाभ्यङ्गोपनाहावृष्याश्चाहाराःस्नेहास्नेहविधयोयापनावस्तयोऽनुवासनश्च । मूत्रवैकृतवस्तिशूलेपुचउत्तरवस्तिः । विदारीगन्धादिगणजीवनीयगणक्षीरसंसिद्धंतैलंस्याद्यापनाश्चवस्तयःसर्वकालंदेयास्तानुपदेक्ष्यामः ॥ २६ ॥

मैथुनसे उत्पन्न हुए रोगोंमें जीवनीय द्रव्योंसे सिद्धकिये दूध और घृतका प्रयोग करना तथा वातनाशक स्वेद, अभ्यंग और उपनाह प्रयोग करना, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) आहारका सेवन करना, स्नेहपान करना, स्नेहविधिका सेवन करना, यापन और अनुवासनवस्तिका प्रयोग करना हितकारक है । यदि मैथुनसे मूत्रमें विकृति और वस्तिशूल आदि विकार हों तो उत्तरवस्तिका प्रयोग करे । शालपर्ण्यादिगण और जीवनीयगण तथा दूधके साथ सिद्धकिये तैल और यापनवस्तिका सब काममें प्रयोग करना हितकारक है । अब आगे उन यापनवस्तियोंका वर्णन करतेहैं ॥ २६ ॥

यापनवस्तिके योग ।

मुस्तोशीरवलारग्वधरास्नामञ्जिष्ठाकटुरोहिणीत्रायमाणापुनर्नवाविभीतकगुडूचीस्थिरादिपञ्चमूलानिपलिकानिखण्डशःकृतानिअष्टौचमदनफलानिप्रक्षाल्यजलाढकेपारिकाथ्यपादशेषेरसः क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तः पुनः शृतः क्षीरावशेषस्तुल्योजाङ्गलरसमधुघृतः शतकुसुममधुककुटजफलरसाञ्जनप्रियङ्गुकल्कीकृतः ससैन्धवः सुखोष्णवस्तिःशुक्रमांसवलजननःक्षतक्षीणकासगुल्मशूलविषमज्वरब्रध्नकुण्डलोदावर्त्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्रजोविसर्पप्रवाहिकाशिरोरुजाजानूरुजङ्घावस्तिग्रहाश्मर्य्युन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्मव्याधिहरःसद्योवलजननोरसायनश्चेति ॥ २७ ॥

नागरमोथा, खस, अमलतास, रास्ना, मंजीठ, कुटकी, त्रायमाण, पुनर्नवा, बहेडा, गिलोय और शालपर्णी आदि पंचमूलकी पांच औषधि यह सब अलग २ एकएक पल लेवे । मैनफल ८ पल । इन सबकेछोटे २ टुकडे करके जलसे धोडाले फिर एक आढक जलमें पकावे । जब चौथा भाग शेष रहे तब उतारकर छानले फिर इसमें २ प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे । जब दूध मात्र शेष रहे तब उतारकर उसमे दूधके वरावर जंगली जीवोंका मांसरस मिलावे तथा शहद, घृत मिलावे ।

और इसमें सोंफ, मुलेठी, इन्द्रयव, रसौत, फूलप्रियंगू और सेंधेनमकका कल्क मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिके प्रयोगसे वीर्य, मांस और बलकी वृद्धि होतीहै तथा यह वस्तियोग क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, ब्रध्न (बध) वातकुण्डल, उदावर्त्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रदर, विसर्प, प्रवाहिका, मस्तकपीडा, जानु, जंघा, ऊरु और वस्तिकी पीडा, पथरी, उन्माद, बवासीर, प्रमेह, अफ़ारा, रक्तपित्त और कफकी व्याधियोंको हरनेवाली है तथा शीघ्र बलको देनेवाली और रसायन है ॥ २७ ॥

एरण्डमूलपलाशात्षट्पलंशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिका-गोक्षुरकाराम्लाश्वगन्धागुडूचीवर्षाभूरारग्वधदेवदार्वितिपालिका-निखण्डशःकृतानिफलानिचाष्टौप्रक्षाल्यजलाढकेक्षीरपादेपचेत् । पादशेषंकषायंपूतंशतकुसुमादिकुष्ठमुस्तापिप्पलीहपुषाबिल्ववचा-वत्सकफलरसाञ्जनप्रियङ्गुयमानिसंक्षेपकल्कितंमधुघृततैलसैन्धव-युक्तंसुखोष्णंनिरूहमेकंद्वौत्रीन्वादद्यात् । सर्वेषांप्रशस्तोविशेषतो ललितसुकुमारक्षतक्षीणस्थविरचिरार्शसामपत्यकामानाञ्च ॥२८॥

एरण्डकी जड ६ पल, ढाककी कची फलियें ६ पल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बडी कटेली, छोटी कटेली, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सफेद पुनर्नवा, अमलतास और देवदारु यह प्रत्येक एकएक पल लेवे । मैनफल ८ पल लेवे इन सबके छोटे २ टुकडेकर गरमजलसे धोलेवे । फिर इनको थोडा २ कूटकर ४ सर पानी और १ सेर दूध मिलाकर पकावे । जब सवासेर बाकी रहे तो उतारकर छानलेवे । फिर इसमें सौंफ, कूठ, नागरमोथा, पीपल, हाउबेर, बेलकी गिरी, वच, इन्द्रयव, रसौत, मैनफल, फूलप्रियंगू और अजवायन यह प्रत्येक नौ.नौ मासे लेकर कल्क बनावे । यह कल्क शहद, घृत, तेल और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए निरूहणवस्ति करे । इसके निरूहण प्रयोग एक अथवा दो वा तीन वार भी किये जातेहैं । यह वस्ति सब प्रकारके मनुष्योंके लिये श्रेष्ठ है । और विशेषकर सुकुमार, ललित, क्षतक्षीण, वृद्ध और पुराने बवासीरवाले रोगीको हितकारी है तथा संतानकी इच्छावाले मनुष्यको विशेषकर हितकारी है ॥ २८ ॥

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसातथाबृहतीकण्टकारीशतावरीच्छिन्नरुहाश्रृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्ककृतेनपूर्ववद्वस्तिः ॥ २९ ॥

काला वांसा, वला, मूर्वा और शारिवाकी जडसे सिद्धकिये दूधमें अथवा वडी कटेली, छोटी कटेली, शतावर और गिलोयसे सिद्धकिये दूधमें मुलैठी, मैनफल और पीपलका कल्क तथा शहद, तेल, घृत और सेंधानमक मिला पूर्वोक्त रीतिसे वस्तिप्रयोग करे ॥ २९ ॥

तथावलातिवलाविदारीशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकादर्भमूलयवकाश्मर्य्यविल्वमदनफलसिद्धेनपयसामधुकमदनकल्कीकृतेनमधुघृतसौवर्चलयुक्तेनकासज्वरगुल्मप्लीहार्दितस्त्रीमद्यक्लिष्टानां सद्योवलजननोरसायनश्च ॥ ३० ॥

वला, नागवला, विदारीकंद, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, वडी कटेली, छोटी कटेली, डाभकी जड, यव, कुंभेरके फल, वेलकी गिरी और मैनफलसे सिद्धकिया दूध मुलैठी और मैनफलका कल्क मिलाकर तथा शहद, घृत और संचरनमक मिलाकर यापनवस्ति करे । यह वस्ति ज्वर, खांसी, गुल्म, प्लीहा, अर्दितरोग, स्त्रीसंगसे क्षीणहुए मनुष्योंको, स्त्रियोंको, मद्यसे थकेहुए मनुष्यको शीघ्र वलको देनेवाली और रसायन है ॥ ३० ॥

तथावलातिवलारास्नारग्वधमदनविल्वगुडूचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धासहचरपलाशदेवदारुद्विपश्चमूलानिपलिकानियवकोलकुलत्थद्विप्रसृतंशुष्कमूलकानाश्चजलद्रोणासिद्धंनिरूहप्रमाणंशेषंकषायंपूतंमधुकमदनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयमानीकल्कीकृतंगुडघृततैलक्षौद्रक्षीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयुक्तं सुखोष्णंवस्तिंदद्यात् । शुक्रमूत्रवर्चःसङ्गेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाध्मानब्रध्नपार्श्वपृष्ठकटीग्रहसंज्ञानाशवलक्षयेषुच ॥ ३१ ॥

वला, अतिवला, रास्ना, अमलतास, मैनफल, वेलकी गिरी, गिलोय, पुनर्नवा, एरण्डकी जड, असगंध, पीयावांसा, पलाशकी फलियें, देवदारु, दशमूलकी दश औषधियें यह सब एकएक पल लेवे । जौ, बेर और कुल्थी यह चारचार पल लेवे । सूखी मूली चार पल लेवे । इनसबको १६ सेर जलमें पकावे । दो सेर जल शेष रहनेपर अथवा जितना निरूहणके लिये प्रयोग करना हो उतना बाकी रहनेपर उतारकर छानलेवे । फिर इसमें मुलैठी, मैनफल, सौंफ, कुठ, पीपल, वच, इन्द्रयव, रसौत, फूलप्रियंगू और अजवायन इन सबको तीनी मासे लेकर कल्क बनावे । यह कल्क

तथा गुड, घृत, तेल, शहद, दूध, मांसरस, खट्टी कांजी और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण रहतेहुए वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति शुक्र, मूत्र और मलके विबंधको दूर करतीहै तथा वातजनित गुल्म, हृद्रोग, अफारा, बघ्र (बध), पार्श्वपीडा, पीट और कमरकी जकडन, संज्ञानाश और बलक्षय इन सबमें हितकारी है ॥ ३१ ॥

हपुपार्द्धकुडवद्विगुणार्द्धक्षुण्णयवःक्षीरोदकसिद्धःक्षीरशेषोमधुघृत-तैललवणयुक्तःसर्वाङ्गविसृतवातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदितहितो-वातहरोबुद्धिमेधाग्निबलजननश्च ॥ ३२ ॥

हाउबेर दो पल, अधकुटे यव ४ पल इन दोनोंको २ सेर दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे। दूध मात्र शेप रहनेपर उतारकर छानले फिर इस दूधमें शहद, घृत, तेल और लवण मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो सर्वांगमें फैलाहुआ वातरक्त, विष्ठा और मूत्रका विबंध तथा स्त्रीसंगसे उत्पन्नहुई क्षीणता दूर होतीहै। यह वस्ति वायुको हरनेवाली तथा बुद्धि, मेधा, अग्नि और बलको बढानेवाली है ॥ ३२ ॥

ह्रस्वपञ्चमूलकषायःक्षीरोदकसिद्धःपिप्पलीमधुकमदनकल्कीकृतः सगुडघृततैललवणःक्षीणविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिः ॥ ३३ ॥

दूध २ सेर, जल ४ सेर, लघु पंचमूलकी औषधियें १० पल इन सबको मिलाकर पकावे। दूध मात्र शेप रहनेपर उतारकर छानले। फिर इस दूधमें पीपल, मुलैठी और मैनफलका कल्क मिला तथा गुड, घृत, तेल और लवण मिलाकर वस्ति प्रयोग करे यह वस्ति क्षीणता और विषमज्वरसे कृशहुए मनुष्योंके लिये हितकारक है ॥ ३३ ॥

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धक्षुण्णयवाञ्जलिकषायःपूर्ववद्व-स्तिःस्थविरदुर्बलक्षीणशुक्राणांपथ्यतमः ॥ ३४ ॥

बला, अतिबला, पुठखण्डेके बीज, कौंचके बीज यह प्रत्येक दो दो पल, अधकुटे यव ४ पल। इन सबको लेकर पूर्वोक्त रीतिसे दूध सिद्ध करे और उस दूधमें पीपल आदिका कल्क और गुड, घृत आदि सब पूर्व कहेहुए द्रव्योंको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति वृद्ध, दुर्बल और क्षीणवीर्य मनुष्योंके लिये अत्यंत पथ्य अर्थात् हितकारी है ॥ ३४ ॥

बलामधुकविदारीदर्भमूलमृद्वीकायवैःकषायमाजेनपयसापक्वाम-धुकल्कितंसमधुघृतसैन्धवंज्वरार्त्तेभ्योवस्तिंदद्यात् ॥ ३५ ॥

बरा, मुलैठी, विदारीकंद, कुशाकी जड और यव इनको दूध और जलके साथ सिद्धकिये क्राथमें मुलैठीका कल्क, शहद, घृत और सेंधानमक मिला ज्वरसे कृशहुए मनुष्यको वस्तिप्रयोग करना चाहिये ॥ ३५ ॥

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्य्यपरूषकखर्जूरफलमधूकपुष्पैरजाक्षीरजलप्रस्थाभ्यांसिद्धःकषायःपिप्पलीमधुकोत्पलकल्कितः सघृतसैन्धवःक्षीणेन्द्रियविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिशस्तः ॥ ३६ ॥

शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, गोखरूकी जड, कुंभेरके फल, फालसे, खजूर, मैनफल, महुएके फूल इन सबको एकएक पल लेकर २ सेर बकरीका दूध और ६ सेर जल मिलाकर पकावे । २ सेर शेष रहनेपर उतारकर छानले । इस दूधमें पीपल, मुलैठी और नीलकमलका कल्क, घृत और सेंधानमक मिलाकर क्षीणेन्द्रिय और विषम ज्वरसे कृशहुए मनुष्यको वस्ति देना हितकारी है ॥ ३६ ॥

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलेनशालिषष्टिकयवगोधूममाषकषायपञ्चप्रसृतेनछागपयःश्रृतंपादशेषंकुक्कुटाण्डरससममधुघृतशर्करासैन्धवसौवर्चलयुक्तोवस्तिर्वृष्यतमोबलवर्णजननश्च ॥ ३७ ॥

स्थिरादि पांचमूलकी पांचों औषधियें पांचपल, शालीचावल, साठीचावल, यव और गेंहू इन सबका क्वाथ २ सेर बकरीका दूध १ सेर, जल २ सेर इसमें पूर्वोक्त स्थिरादि पंचमूलकी पांच पल औषधियोंको पकावे, दूध मात्र शेष रहनेपर उतार कर छान ले । फिर इसमें मुर्गेके अण्डोंका रस, शहद, घृत, खांड, सेंधानमक और संचरनमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति अत्यंत वृष्य अर्थात् वीर्यवर्द्धक और बलको बढानेवाली है ॥ ३७ ॥

कल्पश्चैषांशिखिगोनर्दहंसाण्डरसेस्यात् ॥ ३८ ॥

शालपर्णी आदि वस्तियोगोंमें मुर्गेके अण्डेके बदलेमें मोर, हंस और सारसके अण्डोंकी कल्पना करनेसे भी अत्यंत वृष्यता और वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ३८ ॥

सतित्तिरिःसमयूरोराजहंसपञ्चमूलीपयःसिद्धंशतकुसुममधुकराह्नाकुटजफलपिप्पलीकल्कःघृततैलगुडसैन्धवयुक्तोवस्तिर्बलवर्णशुक्रजननोरसायनश्च ॥ ३९ ॥

शालपर्णी आदि पंचमूलको दूध और जलमें पकाकर क्वाथ करे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानलेवे । इस दूधमें तीतर, मोर और राजहंस इनमेंसे किसी

एकका मांसरस तथा सौंफ, मुलैठी, रास्ना, इन्द्रयव और पीपलका कल्क, घी, तैल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे वल, वर्ण और वीर्यकी वृद्धि होती है तथा आयु वढतीहै ॥ ३९ ॥

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरससिद्धंपयःपादशेषंपिप्पलीमधूकरास्नामदनमधुकल्कशर्करामधुघृतयुक्तंस्त्रीष्वतिकामानांवलजननोवस्तिः॥४०॥

दोनों पंचमूल और मुर्गेके मांसरससे सिद्धकिये दूधमें पीपल महुएके फूल, रास्ना, मैनफल और मुलैठीका कल्क, खांड, शहद और घृत मिलाकर वस्ति करनेसे स्त्रीसंगकी अत्यंत इच्छा रखनेवाले मनुष्यके शरीरमें बलकी वृद्धि होती है ॥ ४० ॥

मयूरमद्गुपित्तपक्षपादास्यान्त्रंत्यक्त्वास्थिरादिभिःपलिकैःसहजलेपयसिपक्वाक्षीरशेषंमदनविदारीशतकुसुममधुककल्कीकृतंमधुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिंदद्यात्स्त्रीष्वातिप्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोवलवर्णकरः॥ ४१ ॥

मोर व मद्गुका पित्ता, पांव, नेत्र और आंत आदिको त्यागकर केवल मांस और हड्डी आदि लेवे। यह मांस और शालपर्ण्यादि पंचमूलकी औषधियें५फल, दूध१सेर, जल ३ सेर इनको पकाकर दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले फिर उस दूधमें मैनफल, विदारीकंद, सौंफ और मुलैठीका कल्क तथा शहद, घृत और सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे यह वस्तियोंमें अत्यंत प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय मनुष्यको अत्यंत हितकारी तथा बल और वर्णको बढानेवाली है ॥ ४१ ॥

कल्पश्चैषविष्किरप्रतुदप्रसहाम्बुचरेषुस्यादक्षीरोरोहितादिषुचमत्स्येषुच ॥ ४२ ॥

इसी प्रकार मोरके बदलेमें विष्किरपक्षी, प्रतुदपक्षी, गृध्र आदि प्रसहपक्षी और जलचर जीवोंके मांसरससे प्रयोग किया जाताहै (परन्तु रोहू मछलीका मांस डालकर यदि यापनवस्ति सिद्ध कीजाय तो उसमें दूध न डालकर केवल मांसरससे ही पूर्वोक्त रीतिसे वस्तिका प्रयोग करना चाहिये। क्योंकि रोहू आदि मछलियोंका मांस और दूध मिलनेसे रक्त दूषित होकर कुष्ठादि रोग उत्पन्न होते हैं) ॥ ४२ ॥

गोधानकुलमार्जारमूषिकशल्लकमांसानांदशपलान्भागान्सपञ्चमूलान्पयसिपक्वातत्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलशर्करामधुघृततैलयुक्तोवस्तिर्वल्योरसायनःक्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथि-

तोरस्करथगजहयभग्नवातबलासकप्रभृत्युदावर्त्तवातसक्तमूत्रवर्चः-शुक्राणांहिततमश्च ॥ ४३ ॥

गोह, नकुल, बिलाव, मूसा और सेह इन सबका मांस दश पल, शालपर्णी आदि पंचमूल दश पल, दूध २ सेर, जल ४ सेर इन सबको मिलाकर पकावे । दूध मात्र शेष रहनेपर उतारकर छानले । फिर इसमें पीपल और मैनफलका कल्क, सेंधानमक, संचरनमक, खांड, शहद, घृत और तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति बलवर्द्धक और रसायन (आयुर्वर्द्धक) है तथा क्षीण और क्षत रोगीके छातीके घावोंको भरदेनेवाली यक्ष्मा आदि रोगोंसे जिनकी छाती मथित होगई है अथवा रथ, हाथी, घोडे आदिकी सवारीसे जिनका देह भग्न होगयाहै, जिनको वातबलासक प्रभृति वातकफके रोग हैं तथा उदावर्त वायुसे मल, मूत्र और वीर्यकी विबंधता हो उनके लिये यह वस्ति अत्यंत हितकारक है ॥ ४३ ॥

कूर्मादीनामन्यतमपिशितसिद्धंपयोगोवृषनागहयनक्रहंसकुक्कुटाण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवेक्षुरकात्मगुप्तफलकल्कसंसृष्टोवस्तिर्वृद्धानामपिबलजननः ॥ ४४ ॥

कच्छू आदि जलचर जीवोंके मांससे सिद्ध किया दूध और हाथी, घोडे आदिका मांसरस तथा मगर मच्छ, हंस और मुर्गेके अण्डोंका शोरुवा शहद, घृत, खांड, सेंधानमक ईखका रस और कौंचके बीजोंका कल्क मिलाकर वस्ति करनेसे वृद्ध मनुष्योंमें भी युवा पुरुषके समान बल आजाताहै ॥ ४४ ॥

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकसिद्धंक्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतंकिञ्चिल्लवणितंवस्तिः ॥ ४५ ॥

गौका दूध और बैल, बकरा तथा वराहके फोते, कर्कट और चिडेका मांस और जल मिलाकर सिद्धकिया हुआ दूध, उटंगनके बीज तालमखाने कौंचके बीज, शहद, घृत और किंचित् नमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करना अत्यंत वाजीकरण आर्थात वीर्यवर्द्धक और कामोत्पादक होता है ॥ ४५ ॥

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तःसमधुघृतशर्करोवस्तिरित्येतेवस्तयः परमवृष्याः ॥ ४६ ॥

कर्कट (समुद्रमें होनेवाला केंकडा) का मांसरस और चिडियोंके अण्डोंका रस, शहद, घृत और खांड मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे अत्यन्त वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ४६ ॥

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताशृतक्षीरप्रतिभोजनानुपानात्स्त्रीशतगामिनं नरंकुर्य्युः ॥ ४७ ॥

उटंगनके बीज, तालमखाने और कौंचके बीज इन सबको मिलाकर सिद्धकिया दूध पीनेसे अथवा भोजनके अनन्तर अनुपान करनेसे पुरुषोंको सौ स्त्रियोंसे गमन करनेकी शक्ति उत्पन्न होजातीहै ॥ ४७ ॥

दशमूलमयूरहंसकुक्कुटकाथात्पञ्चप्रसृतंतैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृत-युक्तंशतपुष्पामुस्तहपुषाकल्कीकृतःसलवणोवस्तिःपादगुल्फोरुजा-नुजङ्घात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणानिलहरः ॥ ४८ ॥

दशमूल और मोरका मांस अथवा मोरके मांसके बदलेमें हंस या मुर्गेका मांस इन सबको मिलाकर क्वाथ करे। यह क्वाथ दश पल लेकर उसमें तेल, घी, चर्बी और मज्जा इन चारोंको दोदो पल मिलावे। फिर इसमें सौंफ, मोथा और हाउबे-रका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करनेसे पांव, गुल्फ, ऊरु, जानु, जंघा, त्रिकस्थान, वंक्षण, मूत्राशय और फोतोंमें स्थितहुआ वायु अथवा वातजनित रोग दूर होकर शरीरमें बल और वीर्यकी वृद्धि होती है ॥ ४८ ॥

मृगविष्किरानूपविलेशयानामेतेनैवकल्पेनवस्तयोदेयाः ॥ ४९ ॥

इसीप्रकार हिरण, विष्किरपक्षी, अनूपसंचारी जीव और विलेशय जीवोंके मांस-रससे वस्तियोंकी कल्पनाकर प्रयोग करनेसे बल, वीर्यकी वृद्धि होतीहै ॥ ४९ ॥

मधुघृतद्विप्रसृतंतुल्योष्णोदकंशतपुष्पार्द्धपलंसैन्धवार्द्धाक्षयुक्तोव-स्तिर्दीपनोबृंहणोबलवर्णकरोनिरुपद्रवोवृष्यतमोरसायनः। क्रिमि-कुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोब्रध्नप्लीहमेहहरः॥ ५० ॥

शहद और घृत २ प्रसृत (४ पल), गर्मजल २ प्रसृत, सौंफका कल्क आधा पल, सेंधानमक ६ माशे इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे। यह वस्ति दीपन, बृंहण, बलवर्णकारक, उपद्रवरहित, वीर्यवर्द्धक और आयुको बढानेवाली है तथा कृमि, कुष्ठ, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, बद, प्लीहा और प्रमेहको दूर करनेवाली है ॥ ५० ॥

तद्वत्समधुघृताभ्यांपयस्तुल्योवस्तिःपूर्वकल्केनबलवर्णकरोवृष्यत-मोनिरुपद्रवोवस्तिमेढ्रपाकपरिकर्त्तिकामूत्रकृच्छ्रपित्तव्याधिहरोर-सायनश्च ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार शहद और घृत ४ पल, दूध ४ पल, मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति बल और वर्णकरता, अत्यन्त वृष्य, उपद्रवरहित तथा वस्ति, दाह, मेढ्र (लिंग) का पकना, परिकर्त्तिका, मूत्रकृच्छ्र और पित्तजनित व्याधिको हरनेवाली और आयुवर्द्धक है ॥ ५१ ॥

मधुघृताभ्यांमांसरसतुल्योमुस्ताक्षयुक्तःपूर्ववद्वस्तिर्बलासपादहर्षगुल्मजानूरुनिकुञ्चनवस्तिवृषणमेढ्रपृष्ठशूलहरः ॥ ५२ ॥

शहद और घृत ४ पल, मांसरस ४ पल, मोथेका कल्क १ तोला इन सबको मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति कफ, पादहर्ष, गुल्म, जानु और ऊरुओंका सिकुडना तथा मूत्राशय, फोते, लिंग और पीठकी पीडाको दूर करतीहै ॥ ५२ ॥

सुरासौवीरककुलत्थमांसरसमधुघृततैलसप्तप्रसृतंमुस्तशताह्वाकल्कितंसलवणोवस्तिःसर्ववातरोगहरः ॥ ५३ ॥

सुरा, सौवीरक, कुलथी, मांसरस, शहद, घृत, तेल इन सातोंको मिलाकर १४ पल लेवे फिर इसमें मोथा और सौंफका कल्क तथा सेंधानमक मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । यह वस्ति संपूर्ण वातजनित रोगोंको दूर करतीहै ॥ ५३ ॥

तथाद्विपञ्चमूलत्रिफलाबिल्वमदनफलकषायोगोमूत्रसिद्धःकुटजःमदनफलमुस्तपाठाकल्कितः सैन्धवयावशूकक्षौद्रतैलयुक्तोवस्तिः श्लेष्मव्याधिवस्त्याटोपवातशुक्रसङ्गपाण्डुरोगाजीर्णविषूचिकालसकेषुदेयइति ॥ ५४ ॥

दशमूलकी दश औषधियें, हरड, बहेडे, आँवले, बेलगिरी और मैनफलको गोमूत्रमें पकाकर कषाय बनावे । फिर इसमें इन्द्रयव, मैनफल, नागरमोथा और पाढका कल्क तथा सेंधानमक, जवाखार, शहद और तेल मिलाकर वस्तिप्रयोग करे तो यह वस्ति कफजनित व्याधि मूत्राशयका अफारा अधोवायु और वीर्यका विबंध, पाण्डुरोग, अजीर्ण, विषूचिका और अलसक आदि रोगोंको दूर करतीहै ॥ ५४ ॥

अतिवृष्य स्नेहयोग ।

अतऊर्द्ध्ववृष्यतमान्स्नेहान्वक्ष्यामः ॥ ५५ ॥

अब हम अत्यन्त वीर्यवर्द्धक अनुवासनीय स्नेहोंका वर्णन करतेहैं ॥ ५५ ॥

शतावरीगुडूचीक्षुविदार्य्यामलकद्राक्षाखर्जूराणांयन्त्रपीडितानांसप्रस्थमेकैकंतद्वद्घृततैलगोमहिष्यजाक्षीराणांद्वेद्वेदद्यात्।जीव-

कर्षभकमेदामहामेदात्वक्क्षीराश्रृङ्गाटकमधूलिकामधुकोच्चटकपिप्पलीपुष्करवीजनीलोत्पलकदम्बपुष्पपुण्डरीककेशरकल्कान्पृपततरक्षुमांसकुक्कुटचटकचकोरमत्ताक्षबर्हिजीवञ्जीवककलिङ्गहंसानां रसंवसामज्जादेश्चप्रस्थंदत्त्वासाधयेत् । ब्रह्मघोषशङ्खपटहभेरीनिनादैःसिद्धंसितच्छत्रकृतच्छायंगजस्कन्धमारोपयेद्गवन्तंनृपध्वजमभिपूज्यतंस्नेहंत्रिभागमाक्षिकमङ्गलाशीःस्तुतिदेवतार्चनैर्वस्तिगमयेत् । नृणांस्त्रीविहारिणांनष्टरेतसांक्षतक्षीणविषमज्वरार्त्तानांव्यापन्नयोनीनांवन्ध्यानांरक्तगुल्मिनीनांमृतापत्यानामनार्त्तवानाञ्चस्त्रीणांक्षीणमांसरुधिराणांपथ्यतमरसायनमुत्तमंवलीपलितनाशनंविद्यात् ॥ ५६ ॥

शतावरका रस, गिलोयका रस, ईखका रस, विदारीकंदका रस, आँवलेका रस, दाखका रस, और खजूरका रस यह प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेवे। घृत १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, गौका दूध २ प्रस्थ, भैंसका दूध २ प्रस्थ, बकरीका दूध २ प्रस्थ लेवे। तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, वंशलोचन, सिंहाडे, मधूलिका, मुलैठी, टटंगणके बीज, पीपल,कमलगट्टे, नीलकमल,कदंबके फूल,प्रपौंडरीक और नागकेशर यह सब दो दो कर्ष लेवे। पृपतमृग, तरक्ष, मुर्गा, चिडा, चकोर, मत्ताक्ष,मोर, जीवनजीवक, कुलिंग और हंसके मांसका रस, चर्बी,मज्जा आदिक सब एक एक प्रस्थ लेवे फिर उपरोक्त सब द्रव्योंको एकत्रित कर पकावे। जब पकनेस्नेह सिद्ध होनेपर आवे तो वेदपाठ, शंखध्वनि, पटह और भेरियोंका शब्द करे जब स्नेह सिद्ध होजाय तब उसको उत्तम वस्त्रमें छानकर उत्तम पात्रमें राजाओंके योग्य श्वेत छत्र उस स्नेहके ऊपर धारणकर हाथीके ऊपर स्नेहको लेकर चढे फिर भगवान् शिवका पूजन करके उत्तम स्थानमें इस स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलावे फिर इसका वस्तिप्रयोग करनेसे स्त्रियोंमें अत्यन्त आसक्ति होतीहै, तथा यह स्नेह वस्ति नष्टवीर्य, क्षतक्षीण, और विषमज्वरवालोंके लिये अत्यन्त हितकारी है। तथा योनिरोगवाली स्त्री, वंध्या स्त्री, रक्तगुल्मवाली स्त्री, मृतवत्सा, जिन स्त्रियोंको यथोचित मासिक रज नहीं होता तथा जो मनुष्य क्षीणमांस और क्षीणरक्त हैं। उन सबके लिये यह स्नेहवस्ति अत्यन्त हितकारी रसायन, वलीपलितनाशक और पुष्टकारक है ॥ ५६ ॥

बलादि वृष्यस्नेह ।

वलागोक्षुररास्नाश्वगन्धाशतावरीसहचराणांशतंशतमायोज्यज-

लद्रोणशतेप्रसाध्यंतस्मिञ्जलद्रोणावशेषेरसेवस्त्रपूतेविदार्य्यामलकस्वरसयोर्वस्तमहिषवराहवृषकुक्कुटबर्हिहंसकारण्डवसारसानांघृततैलयोश्चैकंपृथक्प्रस्थमष्टौप्रस्थान्क्षीरस्यदत्त्वाचन्दनमधुकमधूलिकात्वक्क्षीरीविसमृणालोत्पलपटोलफलात्मगुप्तान्नपाकितालमज्जकखर्जूरमृद्वीकातामलकीकण्टकारीजीवकर्षभक्षुद्रसहामहासहाशतावरीमेदापिप्पलीह्रीवेरत्वक्पत्रकल्कांश्चदत्त्वासाधयेत् । ब्रह्मघोषादिनाविधिनातत्सिद्धंवस्तिमादद्यात् । तेनस्त्रीशतंगच्छेन्नचात्रास्तेविहारयन्त्रणाकचित् । एष वृष्योवर्ण्योबृंहणआयुष्योवलीपलितनुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्रविषमज्वरार्त्तानांव्यापन्नयोनीनाञ्च पथ्यतमः ॥ ५७ ॥

वला, गोखरू, रास्ना, असगंध, शतावर और पीयावांसा इन सबको सौ सौ पल लेकर सौ द्रोण जलमें पकावे । जब १ द्रोण बाकी रहै उतारकर छानले फिर इसमें विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, आंवलेका रस १ प्रस्थ तथा बकरा, भैसा, वराह, वृष, मुर्गा, मोर, हंस, चकवा और सारसके मांसका रस एक एक प्रस्थ लेवे । घृत १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ लेवे । तथा लालचंदन, मुलैठी, मधूलिका, वंशलोचन, भिस, कमलकी डण्डी, नीलकमल, पटोलपत्र, मैनफल, कौचके बीज, अन्नपाकी तालकी मज्जा, खजूर, दाख, कटेली, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शतावर, मेदा, पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपत्र इन सबके कल्क १ कुडव मिलाकर स्नेह सिद्धकरे । इस स्नेहमें भी पूर्वके समान वेदध्वनि आदि करना चाहिये । फिर स्नेहसे तीसरा भाग शहद मिलाकर वस्तिप्रयोग करे । इस वस्तिके प्रयोगसे मनुष्य सौ स्त्रियोंमें गमन करसकताहै और इसमें किसी प्रकारके आहार विहारका भी विशेष नियम नहीं रखना पडता । यह स्नेहन, वीर्यवर्द्धक, वर्णकारक, शरीरको पुष्ट करनेवाला, आयुवर्द्धक, सलवट और सफेद बालोंको दूर करनेवाला है । तथा क्षत, क्षीण, नष्टवीर्य और विषमज्वरसे पीडित मनुष्योंको तथा योनिरोगवाली स्त्रियोंको अत्यन्त पथ्य है ॥ ५७ ॥

सहचरादिरसायन स्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपक्त्वाद्रोणशेषेरसेसुपूतेविदारीक्षुरसप्रस्थाभ्यामष्टगुणक्षीरंघृततैलप्रस्थंवलामधुकमधूकचन्दनमधू-

लिकाशारिवामेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुमञ्जि-ष्ठाव्याघ्रनखीशटीसहचरसुहस्त्रवीर्य्यावराङ्गलोध्राणामक्षमात्रैर्द्विगु-णशर्करैःकल्कैःसाधयेद्ब्रह्मघोषादिनाविधिना। तत्सिद्धंवस्तिंदद्या-देपसर्वरोगहरोरसायनोललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षतक्ष-यवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभागमाक्षिकोवलीपलितनुद्वर्ण-रूपबलमांसशुक्रवर्द्धनः॥ ५८॥

पीयावांसेका पंचांग १०० पल लेकर उसको जौकुट कर चार द्रोण जलमें पकावे। १ द्रोण शेष रहनेपर उतारकर छानले। फिर उसमें विदारीकंदका रस १ प्रस्थ, ईखका रस १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, तेल १ प्रस्थ, तथा वला, मुलैठी, महुएके फूल, लालचंदन, मधूलिका (कणकुनामक गेहूं), शारिवा, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, क्षीरविदारी, अगर, मँजीठ, व्याघ्रनखी, कचूर, पीयावांसा, हरी दूव, दालचीनी इन सबका एक एक तोला कल्क और मिसरी दो तोला। इन सबको मिलाकर पकावे। सिद्ध होनेपर पूर्वोक्त रीतिसे वेदध्वनि आदि कर इस सिद्धवस्तिका प्रयोग करे। यह स्नेहवस्ति संपूर्ण रोगोंको हरनेवाली और रसायन है। जो मनुष्य अत्यन्त सुकुमार और लाडले हैं और जो अन्तःपुरमें रहनेवाली सुकुमार स्त्रियें आदि हैं उनके लिये अत्यन्त उपयोगी है। तथा क्षत, क्षय, वात-पित्तजनित व्याधि, श्वास और खांसीको दूर करतीहै। यदि इस स्नेहमें तीसरा भाग शहद भी मिला दिया जाय तो वलीपलित दूर हो और बल, वर्ण, रूप, मांस और वीर्यकी वृद्धि होतीहै॥ ५८॥

इत्येतेरसायनाःस्नेहवस्तयःसतिविभवेशतपाकासहस्त्रपाकावाका-र्य्यावीर्य्यबलाधानार्थमिति॥ ५९॥

इस प्रकार यह रसायन स्नेहवस्तियें जो मनुष्य धनवान् और सब प्रकार विभव-संपन्न हो तो इन्हीं स्नेहोंको उपरोक्त विधिसे १०० वार अथवा सहस्रवार सिद्धकर प्रयोग करें तो यह अत्यंत वीर्यसंपन्न होनेसे वहुत विशेष गुणके करनेवाले होजाते हैं (सौवार और सहस्रवार पाक करनेके लिये कल्क द्रव्य स्नेहसे सोलहवाँ भाग और द्रवपदार्थ दोगुना लेना ही यथेष्ट है)॥ ५९॥

इन स्नेहवस्तियोंके विशेष गुण।

भवन्ति चात्र।

इत्येतावस्तयःस्नेहाश्चोक्ताप्राणिपुसंद्धिताः। सुस्थानामातुराणाञ्च

वृद्धानाश्चाविरोधिनः ॥ ६० ॥ अतिव्यवायशीलानांशुक्रमांसव-लप्रदाः । सर्वरोगप्रशमनाःसर्वेष्वृतुषुयौगिकाः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार संपूर्ण मनुष्योंके लिये हितकारक इन स्नेहवस्तीयोंका कथन किया गया है यह स्नेह स्वस्थ मनुष्योंके लिये और रोगियोंके लिये तथा वृद्ध मनुष्योंके लिये अविरोधी हैं अर्थात् सबके ही लिये हितकारक हैं अत्यंत मैथुन करनेवालोंके लिये वीर्य मांस और बलके देनेवाले हैं । संपूर्ण रोगोंको नष्ट करनेवाले और सब ऋतुओंमें प्रयोग करने योग्य हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

नारीणामप्रजातानांनराणाश्चाप्यपत्यदाः ।
उभयार्थकराद्दष्टाःस्नेहवस्तिनिरूहयोः ॥ ६२ ॥

जिन स्त्री पुरुषोंको संतान नहीं होती उनको संतानके देनेवाले और यह स्नेह, अनुवासन और निरूहणमें प्रयोग किये जानेसे दोनों प्रकारके गुण करनेवाले हैं ॥६२॥

इनमें त्याज्य कर्म ।

तत्रश्लोकाः ।

व्यायामोमैथुनंमद्यंमधुनिशिशिराम्बुच ।
सम्भोजनंरथक्षोभेवस्तिष्वेतेपुगर्हितम् ॥ ६३ ॥

व्यायाम करना, स्त्रीसंग, मद्य, मधुर पक्व पदार्थ, शीतल जल, अत्यंत भोजन, रथ आदि क्षोभकारक सवारीमें बैठना इन सबको वस्तिकर्ममें प्रकृतिस्थ होनेपर्यन्त त्याग देना चाहिये । इनके न त्यागनेसे अनेक प्रकारके रोग होनेका भय है ॥ ६३ ॥

वस्तियोगोंका उपसंहार ।

शिखिगोनर्दहंसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः । विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्र-तुदैःप्रसहैर्नव ॥ ६४ ॥ विंशतिश्चतथासप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः । नवमत्स्यादिभिश्चैवाशिखिकल्पेनवस्तयः ॥ ६५ ॥ दशाकर्कटकाद्यै-श्चकूर्मकल्पेनवस्तयः।मृगैःसप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्दश॥ ६६ ॥ आनूपैर्दक्षशिखिवद्भूशयैश्चचतुर्दश । एकोनविंशदित्येतेसहस्नेहैः समासतः ॥ ६७ ॥

मुर्गेके अण्डेके योगसे १ मोर सारस और हंसके अण्डोंसे ३ विष्किरपक्षियोंसे २० प्रतुद पक्षियोंसे १० प्रसहोंके मांसकेरससे ९ जलचरोंके मांससे २७ मछली आदि-

कोंसे ९ मोरके मांसके समान वस्तियोंके प्रयोग किये जातेहैं । कछुआ और केंकडा आदिसे १० मृगोंसे १७ विष्किरोंसे १९ अनूपसंचारी जीवोंसे १० भूशयजीवोंके मांससे १४ प्रकारकी वस्तियोंकी कल्पना कहीगईहै इनसबको संक्षेपसे उनतीस स्नेह योगोंके भीतर वर्णन किये गये हैं यह सब योग विस्तारसे पृथक् २ कल्पना करनेपर २१६ होतेहैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

प्रोक्ताविस्तरशोभिन्नाद्विशतेषोडशोत्तरे । एतेमाक्षिकसंयुक्ताःकुर्वन्त्यतिवृषंनरम् । नातियोगंनवायोगस्तम्भितास्तेचकुर्वते ॥ ६८ ॥

इन स्नेहयोगोंमें शहद मिलाकर प्रयोग करनेसे यह अत्यंत वाजीकरण होजाते हैं और मनुष्यको कामवल संपन्न करदेतेहैं । इन वस्तियोंके विधिवत् प्रयोग कियेजानेसे अतियोग और अयोग भी नहीं होता इसलिये यह स्तंभित भी नहीं होती, अर्थात् भीतरही विबंधको प्राप्त होकर रुकती भी नहीं है ॥ ६८ ॥

इनमें अन्यक्रम ।

मृदुत्वान्ननिवर्त्तेरन्वस्तयश्चेन्निरूहणे ।
समूत्रैर्वस्तिभिस्त्वेकैरास्थाप्यःक्षिप्रमेवच ॥ ६९ ॥

यदि यह वस्तियें मृदुताके कारण रुकजांय तो गोमूत्रयुक्त तीक्ष्ण आस्थापन वस्ति का शीघ्र प्रयोग करना चाहिये ॥ ६९ ॥

निरंतर यापनवस्तिके दोष ।

शोफाग्निनाशपाण्डुत्वशूलार्शःपरिकर्त्तिकाः । स्युर्ज्वरश्चातिसारश्चयापनात्यर्थसेवया ॥ ७० ॥ अरिष्टक्षीरशीध्वाद्यातत्रेष्टादीपनी क्रिया । युक्त्यातस्मान्निषेवेतयापनान्नप्रसङ्गतः ॥ ७१ ॥

यापनवस्ति निरन्तर अत्यंत सेवित की जाय तो सूजन, जठराग्निका नाश, पांडुता, शूल, ववासीर, परिकर्तिका, ज्वर और अतिसार यह उपद्रव उत्पन्न होजाते हैं । ऐसा होनेपर अरिष्ट, दूध, शीधु आदि अनेक प्रकारकी दीपन क्रिया करनी चाहिये । उपद्रवोंके भयसे यापनवस्तियोंको अप्रसंग क्रमसे सेवन न करे ॥ ७० ॥ ७१ ॥

इत्युच्चैर्भाष्यपूर्वाणांव्यापदःसचिकित्सिताः ।
विस्तरेणपृथक्प्रोक्तास्तेभ्योरक्षेन्नरंसदा ॥ ७२ ॥

इस प्रकार उच्चभाषण आदि अनुचित व्यापारोंसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंके लक्षण और चिकित्सा विस्तारपूर्वक पृथक् २ कथन करदी गई है । वैद्यको चाहिये कि इन आपत्तियोंसे रोगीकी रक्षा करतारहे ॥ ७२ ॥

सिद्धिस्थानकी निरुक्ति।

कर्मणांवमनादीनामसम्यक्करणापदाम्।
यत्रोक्तंसाधनंस्थानेसिद्धिस्थानंतदुच्यते ॥ ७३ ॥

वमनादि कर्मोंमें मिथ्यायोग होनेसे जो आपत्तियें उत्पन्न होती हैं उन आपत्तियोंका साधन जिस स्थानमें कहाजाय उसको सिद्धिस्थान कहते हैं ॥ ७३ ॥

इत्यध्यायशतंविंशमात्रेयमुनिवाङ्मयम्।
हितार्थंप्राणिनांप्रोक्तमग्निवेशेनधीमता ॥ ७४ ॥

इस प्रकार महात्मा अग्निवेशजीने महर्षि आत्रेयजीके वाणीमय अर्थात् महर्षि आत्रेयजीके कथन किये हुए १२० अध्यायोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये इस ग्रन्थको कथन कियाहै ॥ ७४ ॥

इसग्रन्थके पढनेका फल।

दीर्घमायुर्यशःप्रज्ञामारोग्यश्चापिपुष्कलम्।
सिद्धिश्चानुत्तमांलोकेप्राप्नोतिविधिनापठन् ॥ ७५ ॥

जो मनुष्य इस ग्रंथको पठन करेगा वह दीर्घायु,यश, बुद्धि सब प्रकार परम आराग्यता इस लोकमें अनुपम सिद्धिको प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥

विस्तारयतिलेशोक्तंसंक्षिपत्यतिविस्तरम्। संस्कर्त्ताकुरुतेतन्त्रंपुराणञ्चपुनर्नवम् ॥ ७६ ॥ अतस्तन्त्रोत्तरमिदंचरकेणातिबुद्धिना। संस्कृतंतत्तुसंसृष्टंविभागेनोपलक्ष्यते ॥ ७७ ॥

जो ग्रंथ पहिले संक्षेपसे कहाहुआ हो उसको विस्तारपूर्वक कर देना जो अतिविस्तारसे कहा हो उसको सुन्दरतासे संक्षेपमें करना । इस प्रकार संक्षेप विस्तारको उत्तम रीतिसे ग्रंथको सुगम, बनादेना अर्थात् पुराने ग्रन्थको सुन्दर रीतिसे नवीन और दोषरहित सरल बनानेवालेको संस्कारकर्ता कहते हैं । सो इस ग्रन्थको प्रथम महात्मा अग्निवेशजीने निर्माण किया और महात्मा चरकऋषिने अपनी बुद्धिसे इस ग्रन्थको उत्तम रीतिसे संस्कारकर एक प्रकारसे नवीन बनादिया ऐसा इसके विभागोंसेही जानाजाता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

इदमन्यूनशब्दार्थंतन्त्रंदोषविवर्जितम्। अखण्डार्थंदृढबलोजातः पञ्चनदेपुरे ॥ ७८ ॥ कृत्वाबहुभ्यस्तन्त्रेभ्योविशेषाच्चवलोच्चयम्। सप्तदशौषधाध्यायसिद्धिकल्पैरपूरयत् ॥ ७९ ॥

यह ग्रन्थ कहीं पर भी शब्द और अर्थमें अपूर्ण नहीं है तथा दोषरहित, अखण्डितार्थ है। इस ग्रंथमें जो चिकित्सास्थानके १७ अध्याय और सिद्धिस्थान तथा कल्पस्थान अग्निवेशके बनाये हुए नहीं थे उनको पंचनदनिवासी महात्मा दृढबलने अग्निवेश, भेड, जतु, कर्ण आदि ऋषियोंकी बनाई संहिताओंसे विशेष विचारपूर्वक संकलनकर ये १७ अध्याय चिकित्साके तथा सिद्धिस्थान और कल्पस्थान अति उत्तमरीतिसे बना इस ग्रन्थमें लगाकर ग्रंथको अखण्डरूपसे पूर्ण किया ॥७८॥७९॥

३५ युक्तियोंका संग्रह।

पञ्चत्रिंशद्विचित्राभिर्भूषितंतन्त्रयुक्तिभिः। तत्राधिकरणंयोगोहेत्वर्थोऽर्थःपदस्यच ॥ ८० ॥ प्रदेशोद्देशनिर्देशवाक्यशेषाःप्रयोजनम्। उपदेशापदेशातिदेशार्थापत्तिनिर्णयाः ॥ ८१ ॥ प्रसङ्गैकान्तनेकान्ताःसापवर्गोविपर्य्ययः। पूर्वपक्षविधानानुमतव्याख्यानसंशयाः ॥ ८२ ॥ अतीतानागतापेक्षास्वसंज्ञाह्यसमुच्चयाः। निदर्शनंनिर्वचनंसन्नियोगोविकल्पनम्॥८३॥प्रत्युच्चारस्तथोद्धारःसम्भवस्तन्त्रयुक्तयः । तन्त्रेव्याससमासाभ्यांभवन्त्येतानिकृत्स्नशः ॥ ८४ ॥ तन्त्रेसमासव्यासोक्ताभवन्त्येताहिकृत्स्नशः । एकदेशेनदृश्यन्तेसमासाभिहितास्तुताः ॥ ८५ ॥ यथाम्बुजवनस्यार्कः प्रदीपोवेश्मनोयथा । प्रबोधनप्रकाशार्कास्तथातन्त्रस्ययुक्तयः ॥८६॥

यह ग्रंथ अधिकरण, योग, हेत्वर्थ, पदार्थ, प्रदेश, उद्देश, निर्देश, वाक्यशेष, प्रयोजन, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, अर्थापत्ति, निर्णय, प्रसंग, एकान्त, अनेकान्त, अपवर्ग, विपर्यय, पूर्वपक्ष, विधान, अनुमत, व्याख्या, संशय, अतीत, अनागतापेक्षा, स्वसंज्ञा, असमुच्चय, निदर्शन, निर्वचन, संनियोग, विकल्पन, प्रत्युच्चार, उद्धार और संभव इन ३५ विचित्र युक्तियोंसे विभूषित है। यह संपूर्ण युक्तियें इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे सूत्रस्थान और विमानस्थान आदिकोंमें कथन कीगई हैं। क्योंकि यह संपूर्ण इस तंत्रमें संक्षेप और विस्तारसे पृथक् २ कहीं २ कथन कीगई हैं। उन सबके ज्ञान निर्देशके लिये यहांपर संग्रहकरके लिख दी गईं। जैसे–कमलोंका वन रहते हुए भी सूर्यके प्रकाश विना कमलोंके वनमें फूल नहीं दिखाई देते, जैसे घरमें संपूर्ण वस्तुएं रहतेहुए भी विना दीपकसे दिखाई नहीं देता उसी प्रकार इस तंत्रमें वह संपूर्ण युक्तियें छिपीहुई रहनेसे सहजही जाननेमें कठिन पडतीं। इसलिये उनको सुगमतासे जाननेके लिये यहां पर संग्रहकर दिखादीहैं ॥ ८०–८६ ॥

एकस्मिन्नपियस्येहशास्त्रेलब्धास्पदामतिः। सशास्त्रमन्यदप्याशु युक्तिज्ञत्वात्प्रबुध्यते ॥ ८७ ॥ अधीयानोऽपिशास्त्राणितन्त्रयुक्त्या विचक्षणः। नाधिगच्छतिशास्त्रार्थानर्थान्भाग्यक्षयेयथा ॥ ८८ ॥

इस एक ही शास्त्रमें जिसकी बुद्धि यथोचित प्रवेश करगई है अर्थात् जिसको यह चरकतंत्र एक ही ग्रन्थ संपूर्ण रूपसे आताहै वह इसकी युक्तियोंको जाननेसे अन्य शास्त्रोंको भी शीघ्र जान सकताहै। जो वैद्य अनेक शास्त्र भी पढा हो परन्तु उन शास्त्रोंके पढनेपर भी उनके भाव और युक्तियोंको न जानताहो वह मूर्ख शास्त्रके विषयोंको इस प्रकार प्राप्त नहीं हो सकता जैसे भाग्यहीन मनुष्य अर्थ प्राप्त नहीं करसकता ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

दुर्गृहीतंक्षिणोत्येवशास्त्रंशस्त्रमिवाबुधम्। सुगृहीतंतदेवज्ञंशास्त्रंशस्त्रंचरक्षति ॥८९॥ तस्मादेताःप्रवक्ष्यन्तेविस्तरेणोत्तरेपुनः। तत्त्वज्ञानार्थमस्यैवतन्त्रस्यगुणदोषतः ॥ ९० ॥

जैसे अबोध मनुष्य शस्त्रको अज्ञानवश उल्टी रीतिसे उठाकर उससे अनेक प्रकारसे अपने शरीरकी हानि करलेताहै वा अपने इष्टमित्रोंकी हानि करताहै उसी प्रकार मूर्ख वैद्य बिना युक्तियोंके जाने शास्त्रसे हानिको प्राप्त होताहै। जैसे बुद्धिमान्, शूरवीर, शस्त्रसे आत्मरक्षा आदि हितसाधन करसकता है। उसी प्रकार बुद्धिमान वैद्य शास्त्रसे आत्मरक्षा और संपूर्ण प्राणियोंका हितसाधन करसकताहै इसलिये इस ग्रंथके गुणदोष और तत्त्वज्ञानके लिये इन युक्तियोंको ग्रंथके अंतमें फिर वर्णन कर दिया है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

ग्रंथका फल।

इदमखिलमधीत्यसम्यगर्थान्विमृशतियोविमलःप्रयोगनित्यः। स मनुजसुखजीवितप्रदानाद्भवतिधृतिस्मृतिबुद्धिधर्मवृद्धः ॥ ९१ ॥

जिस वैद्यने यह संपूर्ण ग्रंथ यथार्थरूपसे पढ़कर अर्थबोध कर लियाहै तथा जो इस विमल शास्त्रका नित्य प्रयोग करताहै वह मनुष्य सुख और जीवनको देनेवाला होनेसे धारणा, स्मृति, बुद्धि और धर्ममें सर्व श्रेष्ठताको प्राप्त होताहै ॥ ९१ ॥

यस्यद्वादशसाहस्रीहृदितिष्ठतिसंहिता। सोऽर्थज्ञःसविचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्चसः। रोगांस्तेषांचिकित्साञ्चसकिमर्थंनबुध्यते ॥ ९२ ॥

जिस मनुष्यके हृदयमें यह १२००० श्लोकात्मक संहिता स्थित रहतीहै वह

अर्थका जाननेवाला विचारज्ञ और चिकित्साकुशल होताहै । ऐसे कौन रोग और उनकी चिकित्सा हैं जिनको इस तंत्रका जाननेवाला न जान सकता हो अर्थात् सब-कोही यथार्थ रूपसे जान सकताहै ॥ ९२ ॥

चिकित्सावह्निवेशस्यसुस्थातुरहितंप्रति ।
यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित् ॥ ९३ ॥

इस अग्निवेशके रचेहुए तंत्रमें स्वस्थ और रोगी मनुष्योंके हितके लिये जो कुछ चिकित्सा कथन कीहै वह और तंत्रोंमें भी मिल सकती है परन्तु जो इसमे नहीं है सो कहीं भी नहीं है ॥ ९३ ॥

अग्निवेशकृतेतन्त्रेचरकप्रतिसंस्कृते । सिद्धिस्थानेऽष्टमेप्राप्तेतस्मिन्दृढबलेनतु । सिद्धिस्थानंस्वसिद्ध्यर्थंसमासेनसमापितम् ॥९४॥

इतिश्रीमहर्षिचरकप्रणीतायुर्वेदीयसंहितायां सिद्धिस्थान उत्तरवस्तिसिद्धिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

समाप्तमिदंचरकतन्त्रम् ।

इस अग्निवेशके रचेहुए तथा चरकके संस्कार कियेहुए तंत्रमें इस आठवें सिद्धि-स्थानकी प्राप्तिमें दृढबलने अपनी सिद्धिके लिये सिद्धिस्थानको समाप्त किया ॥९४॥

इति श्रीचरकप्रणीतायुर्वेदसंहिताया सिद्धिस्थाने पटियाळाराज्यान्तर्गतटकसालनिवासि पं० द्वारकादासात्मजरामप्रसादवैद्योपाध्यायविरचितप्रसादनीभाषाटीकाया सिद्धिस्थान उत्तरवस्तिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

॥ श्लोक ॥

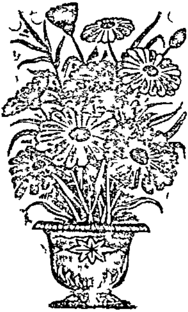
वह्निवेशकृतं तंत्रं चरकप्रतिसंस्कृतम् ।
वैद्यरामप्रसादेन प्रसादिन्या विभूषितम् ॥ १ ॥
वसुऋत्वङ्कचंद्रेऽब्दे आश्विने बुधवासरे ।
कृष्णपक्षे च पञ्चम्यां टीका पूर्तिगमादियम् ॥ २ ॥

॥ दोहा ॥

अग्निवेशकृत तंत्र यह, चरक सुशोभित कीन्ह ॥
रामप्रसाद प्रसादनी, भाषायुत करदीन्ह ॥ १ ॥
उन्निससौ अठसठविषे, कृष्णाश्विन बुधवार ॥
हिन्दीभाषायुत कियो, पन्नगतिथी मझार ॥ २ ॥

समाप्ता चेयं चरकसंहिता सभाषाटीका ।

सब प्रकारकी वनौषधी, कंद, घृत, तैल, रस, लक्ष्मणा, शिवलिंगी आदि इस पतेसे मिल सकती हैं।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस मुम्बई.

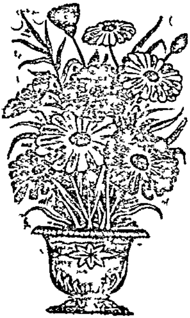
जाहिरात।

विक्रय्यपुस्तकें-वैद्यकग्रन्थः।

नाम.	कीमत.
सुश्रुतसंहिता-सान्वयसटिप्पण सपरिशिष्ट भाषाटीका समेत-सूत्रस्थान, निदानशारीरस्थान, चिकित्सकस्थान, कल्पस्थान, उत्तरतंत्र, संपूर्ण पंडित राजवैद्य मुरलीधरजीकृत भाषाटीका सहित जिसमें संपूर्णरोगोंका निदान लक्षण और औषधोंके प्रकार वा प्रत्येक रोगपर क्वाथ, चूर्ण, रस, घी आदिसे अच्छीप्रकारसे चिकित्सा वर्णित है इसग्रंथकी योग्यता संपूर्ण भारतवर्षमें प्रसिद्ध है	१२)
,, तथा उपरोक्त अलंकारों समेत सूत्रस्थान प्रथमभाग	३)
,, ,, ,, निदान शारीरस्थान द्वितीयभाग	२॥)
,, ,, ,, चिकित्सा व कल्पस्थान तृतीयभाग	३॥)
,, ,, ,, उत्तरतंत्र चतुर्थभाग	३॥)
,, ,, ,, केवलशारीरस्थान	१)
[हारी]तसंहिता-पंडित रविदत्तकृत भषाटीका सहित और राजवैद्य पं. मुरलीधरकृत संशोधित इसकेछःस्थानोंमें संपूर्ण पय धान्यादिवर्ग और औषधियोंका गुणदोष और रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति लक्षण निदान चिकित्सादिका वर्णन है	३)
[भावप्र]काश-मूल और लालाशालिग्रामकृत भाषाटीका तीनखंडोंमें भावमिश्रकृत संगृहीत, कर्पूरादिवर्ग गुडूच्यादिवर्ग पुष्पवर्ग वटादिवर्ग आम्रादि फलवर्ग शाकवर्ग मांसवर्ग जातिभेदसे पशु पक्षियोंके मांसके गुण, कृतान्नवर्ग, वारिवर्ग, दुग्धवर्ग, नवनीतवर्ग, घृतवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, सन्धानवर्ग, मधुवर्ग, इक्षुवर्ग, अनेकार्थ नामवर्ग, धातुनाम, शोधनमारण विधि, पुटप्रकार, रत्नोंकी शोधनमारणविधि, विष और उपविषोंकी शोधनविधि इत्यादि संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति निदान चिकित्सा इत्यादि वर्णित हैं	७)
[धन्व]ंतरी-वैद्यक-लालाशालिग्राम वैश्यकृत भाषाटीका समेत जिसमें समस्त रोगोंका निदान कारण लक्षण और चिकित्सक औषधि संग्रहकर लिखा है	५)

सब प्रकारकी वनौषधी, कंद, घृत, तैल, रस, लक्ष्मणा, शिवलिंगी आदि बूटियें इस पतेसे मिल सकती हैं।

पं॰ रामप्रसाद मुरारीलाल उपाध्याय
पो॰ टकसाल (रियासत पटियाला)
पंजाब.



पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस मुम्बई.

जाहिरात।

विक्रय्यपुस्तकें-वैद्यकग्रन्थः।

नाम.	कीमत.
सुश्रुतसंहिता-सान्वयसटिप्पण सपरिशिष्ट भाषाटीका समेत-सूत्रस्थान, निदानशारीरस्थान, चिकित्सकस्थान, कल्पस्थान, उत्तरतंत्र, संपूर्ण पंडित राजवैद्य मुरलीधरजीकृत भाषाटीका सहित जिसमें संपूर्णरोगोंका निदान लक्षण और औषधोंके प्रकार वा प्रत्येक रोगपर क्वाथ, चूर्ण, रस, घी आदिसे अच्छीप्रकारसे चिकित्सा वर्णित है इसग्रंथकी योग्यता संपूर्ण भारतवर्षमें प्रसिद्ध है	१२)
,, तथा उपरोक्त अलंकारो समेत सूत्रस्थान प्रथमभाग	३)
,, ,, ,, निदान शारीरस्थान द्वितीयभाग	२॥)
,, ,, ,, चिकित्सा व कल्पस्थान तृतीयभाग	३॥)
,, ,, ,, उत्तरतंत्र चतुर्थभाग	३॥)
,, ,, ,, केवलशारीरस्थान	१)
हारीतसंहिता-पंडित रविदत्तकृत भाषाटीका सहित और राजवैद्य पं. मुरलीधरकृत संशोधित इसकेछःस्थानोंमें संपूर्ण पथ धान्यादिवर्ग और औषधियोंका गुणदोष और रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति लक्षण निदान चिकित्सादिका वर्णन है	३)
भावप्रकाश-मूल और लालाशालिग्रामकृत भाषाटीका तीनखंडोंमें भावमिश्रकृत संगृहीत, कर्पूरादिवर्ग गुडूच्यादिवर्ग पुष्पवर्ग वटादिवर्ग आम्रादि फलवर्ग शाकवर्ग मांसवर्ग जातिभेदसे पशु पक्षियोंके मांसके गुण, कृतान्नवर्ग, वारिवर्ग, दुग्धवर्ग, नवनीतवर्ग, घृतवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, सन्धानवर्ग, मधुवर्ग, इक्षुवर्ग, अनेकार्थनामवर्ग, धातुनाम, शोधनमारण विधि, पुटप्रकार, रत्नोंकी शोधनमारणविधि, विष और उपविषोंकी शोधनविधि इत्यादि संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति संप्राप्ति निदान चिकित्सा इत्यादि वर्णित है	७)
धन्वंतरी-वैद्यक-लालाशालिग्राम वैश्यकृत भाषाटीका समेत जिसमें समस्त रोगोंका निदान कारण लक्षण और चिकित्सक औषधि संग्रहकर लिखा है	५)

नाम	कीम
माधवनिदान–मूल और पं. दत्तरामचौबेकृत भाषाटीकासहित इसमें संपूर्ण रोगोंका कारण उत्पत्ति लक्षण समाप्ति इत्यादि वर्णनहै कागज ग्लेज....	
,, ,, ,, तथा रफ्	
हंसराजनिदान–भाषाटीकासहित इसमें रोगोंकी पहिचान नाडीपरीक्षा साध्यअसाध्यका ज्ञान इत्यादि अनेक विषय वर्णित है....	
अनुपानदर्पण–भा० टी० इसमें रस धातु बनानेकी क्रिया और अनुपानदेना और रोगोंपर औषधोंमें क्या २ अनुपान देना यह सब वर्णित है	
कालज्ञान–भाषाटीका यह ग्रंथ संपूर्ण अभ्यास करनेसे भूत भविष्य वर्तमानका ज्ञान होताहै	
पथ्यापथ्य–भाषाटीका सहित पं० केशवप्रसादमिश्र संगृहीत जिसमें संपूर्ण रोगोंपर पथ्यापथ्यकरना और अपथ्यादिकका निषेध इत्यादि वर्णितहैं भिषग् गणोंको अवश्य लेना उचित है....	
रसरत्नाकर–सिद्धनाथ प्रणीत–समस्त रसग्रंथोमें शिरोभूषण–लाला शालिग्रामकृत भाषाटीका सहित–इस ग्रंथमें पारा गंधक हरताल तांबा रूपा हीरा वैक्रांत सफेद अभ्रक मनशील खपरिया नीलाथोथा शिलाजीतादि रसोंकी शोधनविधि तथा उनके गुण और प्रत्येक रोगोंकी चिकित्साका वर्णनहै ग्रन्थ बहुतही उत्तम वैद्योपयोगी है	

संपूर्ण–पुस्तकोंका "बडा सूचीपत्र" अलग है–आध आनेका टिकट भेजकर मँगा लीजिये ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–मुम्बई